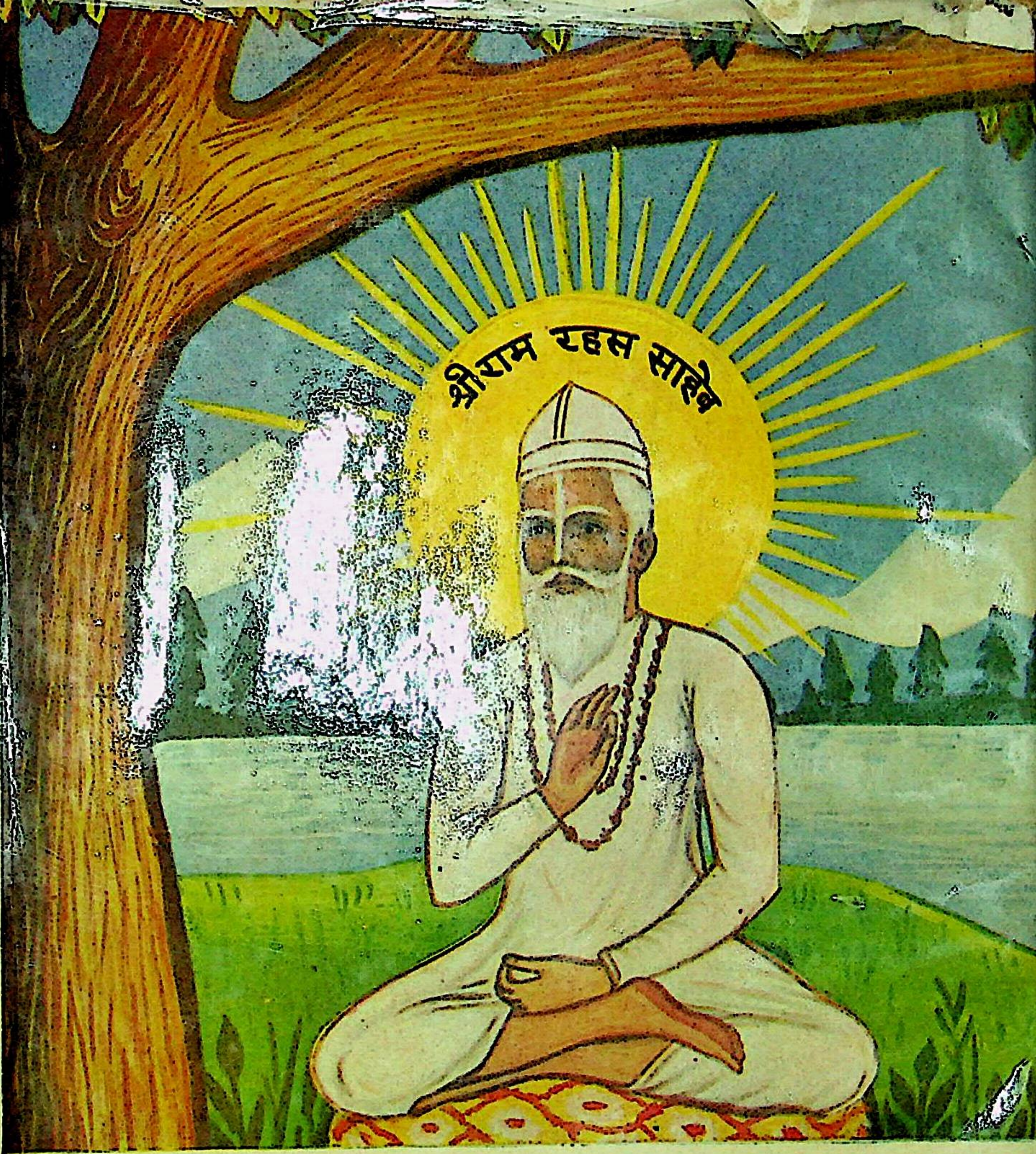


प्राप्ति जीव इच्छा नहीं, केवल हंत छुड़ाव।
निज स्वरूप लखि दया युत, दीन जानि अपनाव

पंचग्रंथी

अभिलाष दास

सद्गुरवे नमः

परम पारखी सद्गुरु श्री रामरहस साहेब

प्रणीत

पंचग्रंथी

व्याख्याकार

अभिलाषदास

सद्गुरुवे नमः

श्री रामरहस साहेब रचित

पंचग्रंथी

(यह ग्रंथ बीजक की टीका के रूप में माना जाता है)

व्याख्याकार

श्रीकबीर धर्ममंदिर जियनपुर अयोध्या निवासी

सद्गुरु श्रीरामसूरत साहेब का चरणशिष्य

अभिलाषदास

प्रकाशक

साधु शरणपाल दास जी

शंकर भक्त जी

श्री कबीरमंदिर बड़हरा

प्रथमावृत्ति

सं० २०३२ सन् १९७६

सत्कबीराब्द ५७८

[redacted] रुपये

११०/

मुद्रक

श्री विश्वेश्वर प्रेस

बुलानाला, वाराणसी

सद्ग्रंथ पंचग्रंथी पठन, पाठन तथा मनन करने का सम्यक

महत्त्वलाभ दर्शन

सुबोधक ने समझाते हुए अपने प्रेमी मित्र गुणग्राहीलाल से कहा—"मैं आपको यह पुस्तिका देता हूँ इसे सादर पठन, मनन करते और चरित्र में उतारते हुए कुछ कालान्तर में मुझसे मिलियेगा।"

कुछ दिन के पश्चात गुणग्राहीलाल सुबोधक के सम्मुख हुआ और प्रणाम दण्डवत करके नतमस्तक होते हुए कहा "आपने हमें बहुत ही हितकारी पुस्तिका दी है।"

"इससे आप क्या पाये ?"

"सब कुछ।"

"सब कुछ पा गये, यह कैसे ?"

"वह इस प्रकार है—

प्रथम 'पंचकोश' नामक प्रकरण मनन किया। मानो गहिरे गर्त से निकल कर स्वस्थ हुआ। तन, मन, प्राण, बुद्धि, सुख, शून्य की मान्यता रूप पंचकोशों में डूबकर दुखी हो रहा था, उन सबों का ज्ञाता भिन्न ज्ञान मात्र अखण्ड हूँ; क्योंकि मेरी जानकारी में ही तो पंचकोशों की सिद्धि-असिद्धि होती है।

दूसरे प्रकरण 'समष्टिसार' पर ध्यान दिया तो एक के भ्रमभास से लेकर दो, चार, आठ, दश, बीस आदि मायाजाल की कल्पनायें मुझ चेतन से पृथक भ्रम मात्र देखने में आई और उनका अभाव हुआ।

आगे तृतीय प्रकरण 'मानुष विचार' का जब मनन किया तब (१) सर्व नशेबाजी, फैशन और विलासीय छाजन का त्याग किया, जिससे व्यर्थ के हर्जे खर्चे से बचकर स्वस्थता प्राप्त की। (२) इससे शुद्ध शाकाहारी होना पाया। (३) इससे मैथुन की आसक्ति त्यागते हुए ब्रह्मचर्य जीवन पाया। (४) इससे निद्रा का सुधार करते हुए घोर अज्ञान निद्रा से जागृत हुआ। (५) इसके मनन, चिन्तन, धारणा से निर्भय पद पाया। (६) इससे मोहासक्ति जाल से छुटकारा पाया। इस प्रकार छहकर्मों के सुधार मार्ग विचार पथ पर चला। शील, दया और वीरता को ग्रहण कर एकरस स्वतः निर्विषय स्वरूपबोध में पूर्ण शांत होकर सर्व निर्बलता का अंत किया।

चौथा प्रकरण 'गुरुबोध' सारशब्दनिर्णयामृत का मधुररस पान किया, तो गुरु कबीर से लेकर सर्व पारखी संतों के निर्णय की एकता पायी। उसमें गुरु-शिष्य के

आचरणों की मर्यादा, उपासक-उपास्य, मानवता, साधुता एवं जीवन्मुक्ति रहनी तथा सिद्धांत का निष्पक्ष मूल्यांकन पाया। इस प्रकार निर्णयामृत का पान करते हुए जीवन्मुक्ति की ओर चलने को पूर्ण बल मिला। अन्य प्रेमियों के हेतु मेरी हार्दिक इच्छा है कि वे भी इसका पान करें।

आगे पंचम प्रकरण 'टकसार' व 'सत्ताईस रमैनी' का मनन चिंतन किया। इससे यह ज्ञान हुआ कि ज्योतिदर्शन, नामधुनि, अनहदनाद, षटचक्र वेधन, ओहं, ररा, ममा, अजपाजाप, ओंकार, व्यापक ब्रह्म, एकात्मवाद, अन्य कर्तावाद, देहवाद की समस्त कल्पना करने वाला नर जीव सबसे श्रेष्ठ सत्य स्थित है। ऐसे स्वरूप के सत्य बोध और जगत अनादि के यथार्थ निर्णय द्वारा भ्रामक अक्षरों के महाजालों से; भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना के झूला वेग के उत्पात से; काल, संधि, झांई, वर्णाभिमान, पंचकोश के कंटकों से तथा समूह के समूह योगी, भोगी, अवतारों, पैगंबरों, सिद्ध, नाउत, आडंबरी भविष्य वक्ताओं की झूठी कल्पनाओं से छुटकारा पाया। जिस काल चक्की में सब जीव पिसे जाते हैं, उस काल चक्की के त्रिदोष से सर्व का परीक्षक सबसे भिन्न शुद्ध चैतन्य पारख अपने आप को शुद्ध स्वतंत्र पाया।"

इतनी बातें श्रवण कर "मेरा बीज बोना सफल हो गया" ऐसा सुबोधक मित्र प्रमुदित होकर कहा। सर्व सज्जनों से विनम्र निवेदन है कि शुद्ध भाव से इस सद्ग्रंथ को अपना कर कल्याण करें।

उद्बोध पदावली

जीवन के हितकारी गुरुवर, जीवन के हितकारी रे।
बोध कि वर्षा झड़ी लई है, सन्त सुजन निरुवारी रे॥ १॥
चलो चलो सत्संग सुनैं अब, नींद व आलस टारी रे।
नित्य नियम सद्ग्रन्थ पढ़ें तब, होवै चरित सुधारी रे॥ २॥
रामरहस स्वामी का निर्णय, पीयुष पान मिठारी रे।
पूरण काम आप को देखे, अजब रंग फुलवारी रे॥ ३॥
दश दरवाजे इस मंदिर के, अंतर मन बुधि धारी रे।
सबका निश्चय कर्ता आपै, देवक देव करारी रे॥ ४॥
जड़ चेतन दो वस्तु जगत में, तीसर कौन अधारी रे।
भ्रम के परदे दूरि किये गुरु, प्रश्नोत्तर निरुवारी रे॥ ५॥
प्रेम दौड़ि गुरुपद को भेंटे, सेवा शरण मिलारी रे।
तब निज बोध विशाल स्वपदलहि, सो कबीर बलिहारी रे॥ ६॥

निवेदक
प्रेमदास

भूमिका

परमपारखी सद्गुरु कबीर द्वारा पारख-सिद्धांत का मूल ग्रंथ बीजक रचने के बाद लगभग विक्रमीसंवत् अठारहवीं में फतुहा (बिहार) निवासी पारखी संत श्री गुरुदयाल साहेब ने पारखसिद्धांत के ठोस ग्रंथ 'कबीरपरिचय' की रचना की, जो ३४६ साखियों तथा ११ शब्दों में पूर्ण है।

तत्पश्चात लगभग विक्रमीसंवत् अठारहवीं तथा उन्नीसवीं के बीच में गया (बिहार) निवासी श्री रामरहस साहेब हुए, जिन्होंने पारखसिद्धांत का यह तीसरा ग्रंथ 'पंचग्रंथी' की रचना की।

पंचग्रंथी पद्यमय होते हुए भी इसे बीजक की प्रथम टीका मानी जाती है। बीजक सिद्धांतों का इसमें सविस्तार वर्णन है तथा सारासार परखने-परखाने के लिये परमतों का भी वृहद् विवेचन है।

पंचग्रंथी

इस ग्रंथ में पाँच प्रकरण हैं—पंचकोश, समष्टिसार, मानुषविचार, गुरुबोध तथा टकसार। इन पाँच प्रकरणों रूप पंचग्रंथों का समुच्चय होने से इसका नाम पंचग्रंथी है। पंचप्रकरणों के किंचित विवरण इस प्रकार हैं—

१. पंचकोश

प्रथम प्रकरण पंचकोश है। यहाँ कोश का अर्थ परदा एवं आवरण है। जीव के ऊपर पाँच आवरण हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय तथा विज्ञानमय। इस प्रथम प्रकरण में इन सबका विस्तृत वर्णन है और इनसे अपने चेतन स्वरूप को पृथक बता कर पारखपद की स्थिति बतलायी गयी है।

२. समष्टिसार

समष्टि कहते हैं 'सामूहिकता' या 'संपूर्णता' को, 'सार' का अर्थ यहाँ कदाचित 'संक्षेप' है। अतः समष्टिसार का भावार्थ हुआ 'संक्षेप में संपूर्णता का वर्णन'। इसमें पिंड-ब्रह्मांड एवं उसके विषय में विविध मतमतान्तरों का वर्णन है।

३. मानुषविचार

मानुषविचार का अर्थ होता है 'मनुष्य संबंधी विचार'। इस तीसरे प्रकरण में मानव के गुण लक्षणों में छह पशु कर्मों का सुधार तथा पंच महासद्गुणों का वर्णन आया है। आगे चल कर सद्गुरु-असद्गुरु के लक्षण तथा मतमतांतरों की आलोचना है।

४. गुरुबोध

गुरुबोध का अर्थ है गुरुद्वारा प्राप्त ज्ञान। इस प्रकरण में गुरु और शिष्य का प्रश्नोत्तर चला है। इसमें स्वरूपज्ञान, बंधन और मोक्ष के स्वरूप, जीवन्मुक्ति की रहनी, मनुष्य की सर्वोच्चता, गृहस्थोधर्म, शिक्षा देने का प्रकार आदि गंभीर विषयों पर आलोचना है। इसके अंत में एक छोटा प्रसंग 'सारशब्द निर्णय' है जिसमें मानवीय गुणों का अत्यंत ही हृदयस्पर्शी विवेचन है।

५. टकसार

टकसार या टकसाल उस स्थान को कहते हैं जहाँ सरकार की ओर से सिक्के ढलते हैं। टकसाल प्रामाणित होता है; अतएव उसके सिक्के भी प्रामाणित होते हैं। इसीलिये टकसाल के अर्थ निर्दोष वस्तु, चोखा और खरा भी किये जाते हैं।

ग्रंथ के लगभग आधे भाग में पूर्व के चारों प्रकरण हैं और आधे में यह प्रकरण अकेला है। इसके अंत में २७ रमैनियाँ हैं जो इसी प्रकरण में आती हैं। इस प्रकरण में परमत तथा स्वमत पर विस्तृत आलोचना है।

पूरी पुस्तक में क्या है इसका आभास आपको विषय-सूची से मिल सकता है।

एक अन्य पंचग्रंथी

कम पाठक जानते होंगे कि पारख सिद्धांत की एक अन्य 'पंचग्रन्थी' पुस्तक है।

बिहार प्रदेशस्थ पावा स्थान के संस्थापक श्री कुंजलदास जी साहेब कृत यह पंचग्रंथी है। यह किस सन् सम्वत में रची गयी इसका उल्लेख तो नहीं मिलता; परन्तु ग्रंथकर्ता द्वारा लिखित विक्रमी संवत १९०९ की हस्तलिपि कापी से सन् १९५४ अर्थात विक्रमी सम्वत २०११ में श्रीराम प्रेस, बुलानाला, वाराणसी में पावा स्थान द्वारा प्रथम बार छपी है। इस ग्रंथ के आरंभ में—'दो शब्द' में लिखा है। कि "यह ग्रंथ कब बनाये हैं सो ग्रंथकर्ता पुस्तक में नहीं दिये। स्वयं ग्रंथकर्ता की हस्तलिखित कापी का ता० सम्वत वि० १९०९ स्थान में पाया जाता है।"

इस पंचग्रंथी में पाँच प्रकरण हैं। उनके नाम हैं—निर्णय परख विलास, निर्णयविचार, विवेकसार, पारख बानी तथा निर्णय पारख। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ के परिशिष्ट में छह प्रकरण हैं—निर्णय रहस विलास गत परिशिष्ट, दरियादास जी की जीवनी ज्ञानरत्न, ग्रन्थ उपदेश, पारख परकाश तथा अर्जी। इस ग्रन्थ में पारख सिद्धांत एवं जीववाद का ही प्रतिपादन हुआ है। इससे पता चलता है कि शताब्दी पूर्व से ही बिहारप्रदेश पारखसिद्धांत से कितना प्रभावित रहा है।

दर्शन पद्ध

ब्रह्म

'ब्रह्म' का सरल और सीधा अर्थ है 'बड़ा' बृहत्वाद् ब्रह्म। परन्तु ब्रह्मवादियों ने उसे घट-मृतका, जल-तरंग, स्वर्ण-भूषण वत जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक अद्वैत माना है। इस प्रकार इसमें विवेक का स्थान ही नहीं रह गया है। इस ब्रह्मवाद में 'चेतन, जड़ से छूट कर मुक्त होगा' यह धारणा एकदम निराधार एवं असंगत हो जाती है। जब ब्रह्म के अतिरिक्त किसी की सत्ता ही नहीं है और ब्रह्म ही जगत है तथा जगत ही ब्रह्म है, तब कौन किससे मुक्त होगा ?

पारखी सन्तों ने इस विवेकविरुद्ध धारणा को पानी पी-पी कर कोसा है। श्री गुरुदयाल साहेब ने जैसे 'कबीरपरिचय' में ब्रह्मवाद की आलोचना घूम-घूम कर की है, वैसे श्रीरामरहस साहेब ने इस ग्रन्थ में की है।

उपजन विनशन रहट की खानी। ब्रह्म भये नहिं कुशल बखानी॥

(गुरुबोध, चौ० ३।१)

उक्त विषय पर यहाँ विस्तार से लिखना निष्प्रयोजन लगता है; क्योंकि इसके विषय में यह ग्रन्थ भरा पड़ा है।

आत्मा

आत्मा का सीधा अर्थ है अपना आप। यह जीव स्वयं ही आत्मा है। गीतादि शास्त्रों में आत्मा का अर्थ ब्रह्म, जीव, मन, इन्द्रियाँ तथा देहादि भी किया गया है। परन्तु ब्रह्मवादियों ने आत्मा शब्द का प्रयोग अधिकांशतः तथाकथित व्यापक चेतन के लिये किया है। इसलिये पारखी सन्त आत्मा शब्द का प्रयोग। बहुत कम करते हैं।

ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ में आत्मा शब्द का प्रयोग विधिपरक और निषेधपरक—दोनों प्रकार से किया है। तथाकथित व्यापक चेतन को लक्ष्य में रखकर आत्मा शब्द का प्रयोग खण्डनपरक में किया है और व्यक्ति चेतनको दृष्टि में रखकर आत्मा शब्द का प्रयोग विधिपरक में किया है। खण्डनपरक में आत्मा शब्द का प्रयोग अधिक है, विधिपरक में कुछ स्थल पर इस प्रकार हैं —

अस्ति आत्माराम यह, नास्ति सनेही दीन।
गुरुमुख मिटै सो दीनता, काल कला होय छीन॥

(गुरुबोध, दोहा १९५)

अस्ति आत्माराम है, नास्ति जगत व्यवहार।

(गुरुबोध, दोहा ३२६)

आतम सत्य सब जगत अनित्य।

(गुरुबोध, सारशब्द चौ० १५)

इस प्रकार पारख सिद्धांत में आत्मा शब्द का प्रयोग कहीं-कहीं व्याप्य-व्यापक तथा जड़ से रहित शुद्ध चेतन के लिये हुआ है। जहाँ आत्मा का अर्थ व्यापक और जड़ से अभिन्न माना गया है वहाँ उसका निषेध कर दिया गया है।

राम

इस ग्रन्थ में शुद्ध चेतन स्वस्वरूप के लिये राम शब्द का प्रयोग भी हुआ है। कहना न होगा कि बीजक ग्रन्थ में भी सद्गुरु कबीर ने व्यक्ति चेतन के लिये आत्मा और राम शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र किया है। यह कहना सर्वथा गलत है कि पारख सिद्धांत में राम का आदर नहीं है। हाँ, पारख सिद्धांत का राम अपना चेतन स्वरूप है। उदाहरण के लिये—

रामरूप मय परम पुनीता।

(गुरुबोध, गुरुशतक सार)

बासक राम सो भूमि अधारा।

(गुरुबोध, १९२ दोहा के आगे छन्द)

आनन्द

ब्रह्मवादी जन आत्मा को 'सत' 'चित्' के साथ 'आनन्द' भी कहते हैं। चेतन सर्वापत्तिरहित होने से मानो आनन्द स्वरूप ही है—यदि इतना ही भाव हो तो उत्तम है; अन्यथा आनन्द एक मनोगत द्वन्द्व है जो क्लेश का विरोधी है। अर्थात क्लेश और आनन्द मनोगत द्वन्द्व हैं। आनन्द की अपेक्षा चेतन स्वरूप को शान्त स्वरूप कहना अधिक उपयुक्त है। सर राधाकृष्णन् ने अपनी गीता टीका के ८५ वें पृष्ठ में विवेक चूड़ामणि के उदाहरण में कहा है—"यह आनन्दमय आत्मा भी सर्वोच्च आत्मा नहीं है, क्योंकि यह परिस्थितियों के वशीभूत है और यह प्रकृति का ही सुधरा हुआ रूप है यह एक परिणाम है और अच्छे कर्मों के सब परिणामों का सार है।"—विवेक चूड़ामणि २१२।

अतएव चेतन के शुद्ध स्वरूप में न क्लेश है और न आनन्द। वह एकरस शुद्ध, शान्त है। इसीलिये श्री काशी साहेब ने कहा है—

जीवन्मुक्ति सुख अनित्य पिछानो। सुख स्वरूप जीव नहिं जानो।।

(जड़ चेतन निर्णय)

श्री पूरण साहेब कहते हैं—

आनन्द आनन्द सब कहै, आनन्द जीव को काल।
पूरण परख प्रकाश भौ, शरण कवीर दयाल॥

अपने स्वरूप के अतिरिक्त जहाँ तक आनन्द का मोह है सब बन्धन रूप है। विषयों में आनन्द का भास बन्धन है ही; ब्रह्म-जगत अन्ततः एक होने से तथाकथित ब्रह्मानन्द भी विषयानन्द से पृथक नहीं है। ऐसे आनन्द का इस ग्रन्थ में निषेध है।

इस ग्रन्थ में आनन्द शब्द का प्रयोग विधिपरक भी हुआ है। वासनाओं के निवृत्त होने पर जो जीवन्मुक्तिजनित सुख है उसी को आनन्द शब्द से ध्वनित किया गया है। यहाँ यह समझने में सावधानी रखनी चाहिये कि यहाँ चेतन के शुद्ध स्वरूप के लिये आनन्द शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है; अपितु वासना' निवृत्ति एवं जीवन्मुक्ति सुख के लिये हुआ है। उदाहरण के लिये कुछ पद देखें—

आनंद सिंधु अहंता तीता। राम रूपमय परम पुनीता॥
(गुरुबोध, गुरु शतकसार चौ० १३)

आनंद महल अवास सुहावन, भौन साधु समाज विहारा।
(गुरुबोध, १९२ दोहा से आगे छन्द)

हे शिष्य ऐसे हंस की, दृष्टि स्वतः आनन्द।
ते आनन्द की प्राप्ति को, द्रष्टा लहै स्वच्छन्द।
(गुरुबोध, दोहा २३६)

गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद, बसे आनंद अटारी।
प्रेम भाव साधुन सेवकाई, कहहिं कबीर पुकारी॥
(गुरुबोध, दोहा २५७ के आगे शब्द)

ॐ

ॐ में तीन मात्रायें मानी जाती हैं—अ, उ, म्। म् हलंत होने से ढाई मात्रायें भी कही जाती हैं; परन्तु सामान्यतया लोग ॐ में तीन मात्रायें कहते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री रामरहस साहेब ने ॐ की पाँच मात्रायें—अ, उ, म, अर्धचन्द्र (ँ) और विन्दु (ं) निर्धारित करके उनके द्वारा पंचकोश, समष्टिसार तथा टकसार प्रकरण में उत्पत्ति क्रम आदि का वर्णन किया है जो अन्य शास्त्रों के विचार हैं। सोहं, राम तथा ॐ शब्दों की उत्पत्ति और ॐ की पाँच मात्राओं से सृष्टि की समस्त अवयवों का ओतप्रोत होना किस ढंग से रामरहस साहेब ने वर्णन किया है बड़ा ही अद्भुत है। निश्चित ही यह सब तांत्रिक ग्रन्थों या अन्य शास्त्रों पर आधृत होगा। ॐ की पाँच मात्राओं के विषय में एक श्लोक प्रसिद्ध है, वह इस प्रकार है—

अकारश्च उकारश्च मकारश्चत्रिमात्रिकम् ।
इकारश्चैव यंकारः पञ्चकं मातृ संज्ञकम् ॥

महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज बताते हैं—"प्रणव में अकार, उकार, मकार, बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना तथा उन्मना इतने अंश हैं ।

"'अ'कार की मात्रा १, 'उ'कार की मात्रा २, और 'म'कार की मात्रा ३, सब मिलाकर छह मात्रायें हैं । विन्दु अर्धमात्रा है । अर्धचंद्र आदि की मात्रा क्रमशः और भी कम है । विन्दु से 'समना' तक मात्रांश को जोड़ देने पर एक मात्रा होती है । यद्यपि माया जगत में मंत्र की छह मात्रायें हैं; परन्तु मायातीत पद में वह केवल एक ही मात्रा है । वह एक मात्रा भी सूक्ष्म है और सूक्ष्मतर होते-होते सर्वत्र व्याप्त होकर कार्य करती है । भागांश इस प्रकार है—

विन्दु	१।२	मात्रा	
अर्धचन्द्र	१।४	,,	
निरोधिनी	१।८	,,	
नाद	१।१६	,,	जोड़
नादान्त	१।३२	,,	१ मात्रा
शक्ति	१।६४	,,	
व्यापिनी	१।१२८	,,	
समना	१।१२८	,,	

(भारतीय संस्कृति और साधना खण्ड १ पृष्ठ ४७३)

माण्डूक्य उपनिषद् के आरम्भ में ही आता है—"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम् इति', ओम् यह अक्षर ही यह सारा जगत है । इस प्रकार इस जगत को ही ॐ कहा गया है । शायद इसीलिये प्रश्न उपनिषद् में कहा गया है—

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता
अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः ।

(प्रश्न ५, मंत्र ६)

अर्थात—ओंकार की तीनों मात्रायें (अ, उ, म) एक दूसरे से संयुक्त रहकर प्रयुक्त की गयी हों या अलग-अलग एक-एक ध्येय के चिन्तन में इनका प्रयोग किया गया हो, दोनों प्रकार से वे मृत्युयुक्त अर्थात जड़ है ।

वस्तुतः ॐ एक प्रतीकात्मक उपासना है जो मनुष्यों द्वारा गढ़ा गया है । भूल वहीं होती है जहाँ मनुष्य अपनी गढ़ी हुई कल्पनाओं में फँस जाता है और अपने वास्तविक स्वरूप की महत्ता को गौणकर देता है । आरम्भ में बच्चों को समझाने के लिये 'क'

माने कबूतर ठीक होता है; परन्तु उसके लिये आगे चलकर 'कबूतर' के उदाहरण का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इसी प्रकार सामान्य साधकों के लिये ॐ आदि किसी भी शब्द, रूप आदि की उपयोगिता हो सकती है; परन्तु आगे चलकर इन समस्त काल्पनिक जंजालों को छोड़कर तथा अपने चेतन स्वरूप को समझ कर स्वयं में स्थित होना चाहिये। मनुष्य की आत्मा से बढ़कर ॐ आदि कुछ भी नहीं है। इसीलिये सद्गुरु कबीर ने कहा है—

ॐकार आदि जो जानै। लिख के मेटै ताहि सो मानै॥
ॐकार कहैं सब कोई। जिन्ह यह लखा सो बिरलाहोई॥
(बीजक, ज्ञानचौंतीसा)

अर्थात ॐकार का जो मूल एवं आरम्भक है वह मनुष्य है, ऐसा जो जानता है वह यही मानता है कि ॐ को लिखकर उसे काट देने वाला मनुष्य ही श्रेष्ठ है। ॐ-ॐ तो सब वैदिक कहते हैं; परन्तु जो उसकी परीक्षा करता है, वह विरला है।

सार यह कि ॐ से भी मनुष्य श्रेष्ठ है।

चारमुख वाणी

श्री रामरहस साहेब ने काल, संधि, झाँई और सार—चार प्रकार की वाणियाँ मानी हैं जिनको श्री पूरण साहेब ने क्रमशः जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुख रूपमें कहा है।

अनबनि बानी चार प्रकार। काल सन्धि झाँई औ सार॥
(टकसार, सत्ताइस रमैनी १)

उक्त चारों प्रकार की वाणियों का स्पष्टीकरण तद्स्थल पर देखना चाहिये।

स्वतः बोध

ग्रन्थकर्ता ने यह निर्धारित किया है कि सारी उपयुक्त योग्यताओं के एकत्र हो जाने पर व्यक्ति को स्वतः बोध हो सकता है और यह बता कर सद्गुरु कबीर की ओर संकेत किया गया है कि उनको किसी गुरु की अपेक्षा के बिना स्वतः बोध हुआ है। इसका वर्णन गुरुबोध प्रकरण के २६ वें दोहा से आगे चौपाई भाग ५ में तथा ५९ वें दोहा के आगे चौपाई भाग ७ में हुआ है तथा ग्रन्थ के अन्यत्र एक-दो स्थलों पर भी इसकी झलक आयी है।

पारख सिद्धांत

जगत प्रवाहरूप अनादि है, अतः जगतकर्ता नहीं है। जड़-चेतन सर्वथा भिन्न हैं। चेतन असंख्य, प्रत्येक एकदेशी, एक दूसरे से सर्वथा पृथक, मूल गुण-लक्षणों में समान, अजर, अमर, अनादि और नित्य हैं। कर्मवासनावश जन्म-मरण का प्रवाह अनादि है। जैसे बीजवृक्ष का प्रवाह अनादि है; परन्तु बीज को आग में भून देने से उससे वृक्ष

नहीं होता, वैसे कर्म और देह का प्रवाह अनादि है; परन्तु ज्ञानद्वारा कर्मों का अभाव होने से पुनः देह नहीं होती है। स्वरूप के अज्ञान तथा पंचविषयों की आसक्ति से बंधन है और स्वरूप के यथार्थज्ञान तथा पूर्ण विषयविरक्ति से मोक्ष की सिद्धि है।

साधारण लोगों को जब सदाचार की आवश्यकता है तब ज्ञानी का तो स्वभाव ही सदाचारमय हो जाता है। पारखसिद्धांत में निर्लिप्तवाद की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

सद्‌गुरु कबीर के बाद श्री गुरुदयालसाहेब, श्री रामरहससाहेब तथा श्री पूरणसाहेब पारख सिद्धांत के ये तीन महान चिंतक हुए हैं। परन्तु इन तीनों महापुरुषों ने जीव जड़ से कैसे भिन्न है तथा जगत किस प्रकार अनादि है—इसका विवरण देने का प्रयास नहीं किया है। ये तीनों चिंतक जड़ से अभिन्न, चराचरव्यापक चेतन ब्रह्म का विविध प्रकार से निरास करके जीववाद के समर्थन में जोर दिये हैं। सद्‌गुरु कबीर के बीजक से लेकर इन तीनों महापुरुषों की कृतियों में जड़-चेतन अभिन्न अद्वैतवाद का जितना खण्डन किया गया है, उतना अन्य का नहीं।

जड़ से जीव एवं चेतन कैसे पृथक है, जगत किस प्रकार अनादि है—इसका विवरण श्री काशी साहेब ने देना आरम्भ किया है। उन्होंने पारखसिद्धांत के सत्संग की एक विशिष्ट शैली ही खोल दी है। अब श्री विशाल साहेब आदि चिंतक इस पर पूरा खुलाशा निर्णय किये और कर रहे हैं।

बीजक निष्ठा

जहाँ पर जिस व्यक्ति में सद्‌गुरु कबीर रचित 'बीजक' पर निष्ठा है, वह स्व और पर का विवेक करता है। पारख ज्ञान के प्राप्त होते ही उसका भ्रम दूर हो जाता है और उस व्यक्ति का कल्याण हो जाता है। न वे किसी ईश्वरादि अनुमान में लटकते हैं और न मरने के बाद मोक्ष की आशा करते हैं। वे तो पारखज्ञान में रमते हुए, शरीर में रहते हुए सदैव जीवन्मुक्ति का सुख भोगते हैं। बीजक के पारखज्ञान प्राप्त हो जाने पर कल्याणार्थ आचरण और बोध सब प्रकार से समझ में आ जाते हैं। फिर वह माया जाल में नहीं भटकता।

जहाँ जेहि निष्ठा बीजक केरा। अपनी पराई करे निवेरा॥
परख प्रकाश लहत भ्रमभाजा। निश्चय होय जीव को काजा॥
नहिं अनुमान न मूये मुक्ता। परख विलास सदा सुख भुक्ता॥
रहनी गहनी बहुविधि फरियाई। मायाजाल नहीं भरमाई॥

(मानुष विचार, चौपाई ३०)

आचार पक्ष

मानवता

मानवता के विचार में इस ग्रन्थ में तीसरा प्रकरण ही कह डाला है। मानुष विचार के आरम्भ में ही आता है—"मनुष्य तो सब कहलाते हैं; परन्तु मानवीय बुद्धि किसी विरले में आती है। भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह—ये छह कर्म मनुष्य और पशु आदि में भी समान रूप से पाये जाते हैं। अतः विचार करके देखा जाय तो पशु से मनुष्य पृथक नहीं है।

"हाँ, यदि उसने उक्त छह कर्मों का सुधार करके विचार, शील, दया और वीरता धारण कर लिया है तो वह मनुष्य कहलाने योग्य है।" इस विषय को खूब दूर तक समझाने की चेष्टा की गयी है।

मनुष्यतत्त्व

ग्रन्थकर्ता ने मनुष्य का स्तर सर्वोच्च समझा है। साधक को, विवेकी को और जीवन्मुक्त को मनुष्य कहा गया है। ग्रन्थकार की दृष्टि में कल्याणसाधक और कल्याण-प्राप्त पुरुष के लिये 'मनुष्य' सर्वोच्च शब्द है। इसका विवरण गुरुबोध प्रकरण में भरा पड़ा है। इससे अधिक सच्ची दृष्टि और क्या हो सकती है। प्रायः मतमतान्तर के लोग मनुष्य को तुच्छ ही कहते हैं; परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं यदि मनुष्य को तुच्छ कहा जाय तो श्रेष्ठ कौन होगा? वस्तुतः सच्चा मनुष्य जीवन्मुक्त ही है।

क्षमा दया सत्य धीर विचारा। मानुष लक्षण सहित निर्धारा॥
सदा एकसम बुद्धि प्रकाशा। भाखै वचन न कल्पित आशा॥
अस विवेक शिष्य जेहि घट आवा। सो गुण मानुष केर कहावा॥
चारि खानि का जीयरा, मानुष कधी न होय।
जाको गुरु पारख लही, मानुष कहावै सोय॥

(गुरुबोध, दोहा १४४)

उपदेश देने की रीति

गुरुबोध प्रकरण के २१ वें प्रश्नोत्तर में उपदेश देने की रीति बतायी गयी है। वहाँ हमें यह सुझाव दिया गया है कि किसी को सीधे उपदेश मत करो। किसी के मन के विरुद्ध मत कहो। जिसको उपदेश देना है उपदेष्टा को चाहिये कि पहले उसकी मान्यता, स्वभाव आदि को जान ले, फिर उसके अनुकूल बात कहे। पहले मेलमिलाप की भावना से उसके मन को प्रसन्न कर दे। पीछे से उसका हृदय अनुकूल जानकर धीरे-धीरे सारासार परखावे।

ऐसन विधि तेहि पारख देई। चित नहिं दुखै नीक करि लेई॥
काहे ते शिष्य मेलविधि, उचटै नहिं सो जीव।
वह तू जमा सो एक ही, ताते मेलहु कीव॥
मिलि रखेते उचटै नहीं, एकता सुख की खानि।
सत्य शब्द टकसार विधि, निर्णय कही बखानि॥
'दादा भाई बाप कै लेखो, चरणन होइहौं बंदा।
अबकी पुरिया जो निरुवारै, सो जन सदा अनंदा॥'

(गुरुबोध, दोहा २९३ से २९५)

गृहस्थी शिक्षा

"सेवाभाव का आदर्श रखे, मनमें अहंकार न रखे। सारासार निर्णय करे। सद्गुरु संतों की भक्ति करे। जगत का व्यवहार सत्य, शील, दया के सहित बरते। गुरु संतों के अधीन रहकर विनम्र भाषण करे। विषयों का बहुत संग्रह न करे। सर्वत्र मधुकर वत गुणग्राही हो। संसार में अनेक विषमता है। सब जगह समता बुद्धि से काम ले। सद्गुरु के पारख निर्णय में सदैव प्रेम करे। साधु संग करे। गृहस्थी में उत्तम-मध्यम अनेक व्यवहार होते हैं, उनमें न्यायपूर्वक आचरण करे। गृहस्थीधर्म बड़ा खटपटी है। उसमें सावधान रहना चाहिये। लोकवेद की जहाँ पर जो रीत हो विचार पूर्वक बरते। शक्ति चले तक जीवघात न करे। अप्रिय वचन न बोले। अन्न, वस्त्र, द्रव्य से दूसरे की यथाशक्ति रक्षा करे। भक्तिभाव धारण करके गुरु के पारख बोध में स्थित होवे।"

(गुरुबोध दोहा ३३५–३४१)

जो मानुष गृहिधर्म युत, राखे शील विचार।
गुरुमुख वाणी साधु संग, मन वच सेवा सार॥

(गुरुबोध, दोहा—३३४)

विरक्त धर्म

"विरक्त का कर्त्तव्य है कि वह अपनी देह का अहंकार छोड़े और अष्ट मैथुनों को मन, वाणी तथा कर्म से त्याग कर साधु संग में विचरण करे। कहीं भूलकर भी विषयों में मन, वाणी, कर्म से भ्रष्ट न हो। सहनशील बनकर मन-इन्द्रियों को स्वाधीन करे। नीचबुद्धि त्याग कर आठो पहर सावधान रहे। मैं बड़ा हूँ, यह छोटा है—इस प्रकार भाव रखकर अपने में अहंकार न लावे। मनुष्यजाति के बीच में एकता और समता की दृष्टि से देखे। गृहस्थ का धर्म है सेवा करना; परन्तु साधु त्यागवृत्ति से रहे।"

(गुरुबोध, दोहा ३४३-३४५)

उत्तम दशा विरक्तता, प्राप्त बोध के रूप।
अहै प्रत्यक्ष प्रमाण जग, स्वयं साधु गुरु रूप ॥

(गुरुबोध, दोहा ६८)

ज्ञान तथा आचरण से मोक्ष

भले कोई गृहस्थी वेष में हो और विशेषतर आश्रम बनाकर रहता हो; परन्तु यदि उसने विषय वासनाओं का त्याग कर दिया है और अधिक प्रवृत्ति का त्याग करके निर्वाह मात्र का व्यवहार रखता है और गुरु भक्ति, सन्त सेवा एवं सत्संग-सदग्रन्थ का आधार रखकर साधना में लवलीन है और वासनाओं को त्याग कर स्वरूप में स्थित हो जाता है, तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

चाहे कोई धोती वाला हो या लंगोटी वाला, लालसाओं, कामनाओं को छोड़कर एवं अधिक प्रवृत्ति से हटकर ही वासनाओं का त्याग एवं स्वरूपस्थिति होती है। गुरुबोध प्रकरण में दोहा ३४८ से ३६१ तथा इसके आगे तक इस विषय पर सुन्दर विवेचन आया है। प्रमाण के लिये एक दोहा पर्याप्त है—

प्राप्ति पदारथ कारणे, गृही कोई कोइ साध।
गुरुमत प्राप्ति भयो जहाँ, ठहरे तेहि अबाद ॥

(गुरुबोध, दोहा ३५५)

मर्यादारक्षण आवश्यक

गृहस्थ-विरक्त, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष—सभी क्षेत्रों में उचित मर्यादा की रक्षा—आवश्यक है। मर्यादा से रहनी और बोध की रक्षा होती है। शुद्ध वेष; शुद्ध रहनी और मर्यादा का पालन करते हुए अपने और पराये का कल्याण करना चाहिये।

सत्य भेष सत्पद सहित, ठहरै अस्ति स्वरूप।
ते अधिकारी पारखी, साँचे गुरुमत भूप ॥
मर्यादा जेहि जौन विधि, बरतै तौन प्रमान।
जमा माँहि कछु फेर नहिं, उज्ज्वल धर्म अरुज्ञान ॥

(गुरुबोध, दोहा ३६३,३७५)

सर्वोपरि इष्ट संत और गुरु

पारखसिद्धान्त में सर्वोपरि इष्ट संत और सद्गुरु हैं। गुरु की पूजा करो और संतों का सत्कार करो। संत और सद्गुरु को एक समान समझो। प्रत्यक्ष देवता संत-गुरु को समझो। इसके अतिरिक्त मान माहात्म्य की सारी बातें भ्रम और भुलावे में डालने वाली हैं। जिसके मुखारविन्द से अधिक निर्णय सुनने को मिला है उसके सामान अन्य गुरु नहीं है। यथा—

गुरुपूजा संतन सन्मान। गुरु संत एकै सम जान ॥
प्रत्यक्ष देव संत गुरु मान। मान महातम भरम भुलान ॥

जा मुख निर्णय लखै विशेष । ते गुरुसम न और कोई लेख ।।
साहेब गुरु दास शिष्य होय । भक्ति तेहि अधिकारी सोय ।।
धन्य धन्य सोई जीव है, जिन परखा संसार ।
तेई बंदीछोर हैं, तारण तरण उदार ।।
(गुरुबोध, सारशब्द निर्णय अंत)

साधु बतावै गुरुको, गुरु कहैं साधु पूज ।
अर्स पर्स के खेल में, भई अगम को सूझ ।।
एक रूप गुरु साधु का, दूजा काल को फंद ।
अशरण शरण दयाल गुरु, साधु सदा स्वच्छंद ।।
(गुरुबोध दोहा ५१,५२)

सेवा, भक्ति

धर्म साधना के क्षेत्र में सेवा, भक्ति की महान आवश्यकता है । बिना पूरी निर्मानता-पूर्वक सेवा, भक्ति जीवन में आये कोई साधक नहीं बन सकता । अतएव ग्रन्थकार कहते हैं—

गुरु सेवा अरु साधु की, देहे शिष्य तेहि होय ।
सोई कृपा विहार है, शिष्य लेहु भल जोय ।।
मन बच कर्म गुरु साधु की, आज्ञामा समुहाय ।
द्रव्य जुरै रक्षै तिन्है, वस्त्र अन्न जल प्याय ।।
हे शिष्य उत्तम शिष्य यह, जिन्ह कीन्हा परमान ।
भक्ति सोई अधिकार पद, मानुष सों बुद्धिमान ।।
हमहूँ हे शिष्य यह कर्म, कीन्हों गुरु अभ्यास ।
सो तेहि ब्यवरा भाखेउँ, हती वस्तु जो पास ।।
(गुरुबोध, दोहा १९७, २०८-२१०)

गुरु साधु पद दीर्घ जग, हे शिष्य सबन प्रमान ।
त्रिविधि ताहि सेवन करै, आपु दास पद मान ।।
दास भाव सेवा सहित, भक्ति साधु गुरु केर ।
यह प्रकार हंसा वसै, सेवक को नहि फेर ।।
(गुरुबोध, दोहा २६५, २६८)

बोधवान सर्वोच्च है

"हे शिष्य ! जिसने बोध पाया वह कृतार्थ हो गया । वही गुरु है, वही गुरु का शिष्य है, वही साधु है, वही दयालु है । जो यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेगा वह अहंकार क्यों करेगा ? वह तो अपनी स्थिति में रहेगा । जिसके हृदय में गुरुबोध दृढ़ हो गया ।

वह स्थिर हो गया। वही मोक्ष का अधिकारी है। वही साधकों का पथप्रदर्शक है और वही उनका स्वामी है। साधकों के स्वामी गुरूदेव होते हैं। सब मनुष्य अहंकारमें पड़े हैं; परन्तु साधु अहंकार का द्रष्टा बनकर उससे पृथक निर्विघ्न गुरुमार्ग पकड़ता है।"

हे शिष्य निर्णय जो लखै, तेही भया निहाल।
तेई गुरु तेई शिष्य गुरु, तेई साधु दयाल॥
निर्णय यथा प्रमाण जिन, लहै दृष्टि निज सोय।
तें शिष्य हन्ता क्यों परै, रहै अपन पद जोय॥
गुरुमत जाके उर बस्यो, निश्चल भयो सो जीव।
हे शिष्य अधिकारी अहै, साधुन के गुरु पीव॥
हंता मा सबही परे, हंता देखै साध!
हंता ते न्यारा रहै, गुरुमुख दृष्टि अबाध॥

(गुरुबोध, दोहा २५८-२६०, २३१)

गुरुतत्त्व

जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मद, मानादि विकारों में फँसा हो वह सद्गुरु नहीं है। सद्गुरु वह भी नहीं हो सकता जो अपने शुद्ध स्वरूप चेतन से पृथक भास-अध्यास में आसक्त है।

वस्तुतः विषयवासनाओं से मुक्त होकर अपने स्वरूप में स्थित पुरुष ही सद्गुरु है। ऐसे पुरुष की शरण ही मुमुक्षु के लिये मोक्षप्रद है।

गुरु तो ऐसा चाहिये, ज्यों शिकलीगर होय।
जन्म जन्म का मूरचा, गुरु पल में डारै खोय॥

(मानुषविचार साखी २९)

अन्ततः अपना चेतन स्वरूप ही गुरुतत्त्व है। अतएव स्वरूपस्थिति ही मनुष्य का परम प्राप्तव्य है।

हंसरहनी, पक्केतत्त्व, प्रकृति

सत्य, धैर्य, दया, शील और विचार—ये पाँच पक्के तत्त्व कहे जाते हैं और विवेक, वैराग्य तथा गुरुभक्ति ये तीन पक्के गुण कहे जाते हैं। उक्त पाँच पक्के तत्त्वों की पाँच-पाँच प्रकृतियाँ हैं। वह सब सद्गुणों की सेना हैं जिसे दैवीसम्पदा कह सकते हैं। इनका जिसके जीवन में पूर्णतया अवधारण हो जाय तो वह व्यक्ति हंस है, विवेकी है और वही जीवन्मुक्त है। इस प्रसंग को पूर्णतया मनन करने के लिये गुरुबोध के दोहा २८ से लेकर ४२ तक देखना चाहिये।

हंस (विवेकी) द्रष्टा बनकर मुक्त हो जाता है

हे शिष्य! हंस की दृष्टि पारख की होती है। वह पृथ्वी पर भ्रमण करता और

ठहरता कालक्षेप करता है और जन्म-मरण की वासना से मुक्त हो जाता है। सबके लिये पारख (ज्ञान) ही स्थिर पद है। सत्संग में निवास करके उसमें स्थित होना चाहिये। स्थितिवान मन और माया रचित मूल्यों को मिथ्या एवं नाशवान समझता है। नाम-रूपादि भौतिक पदार्थों में 'मैं-मेरी' अर्थात अहंता-ममता का संकल्प करना दु:ख की खानि है। विवेकी द्रष्टा उसको त्याग कर गुरुपारख में स्थित होता है। विवेकी जब सबका द्रष्टा बन कर और मन के बंधनों को छोड़कर स्थितिपद प्राप्त कर लेता है, तब वह पारखी पुरुष जीवनपर्यन्त जीवन्मुक्ति सुख में विहरता है और देखते-देखते कृतार्थ हो जाता है।

सब जीव भौतिक पदार्थों के अहंकार में पड़े हैं। कोई संत ही अहंकार के द्रष्टा बनकर उससे मुक्त हो जाते हैं और निर्विघ्न गुरुमार्ग पर चलते हैं। अपनी परख-दृष्टि की तेज-शक्ति से, सद्गुरु के विशेष उपदेश से और नित्य सत्संग में विहार करने से पारखी सबका द्रष्टा बनकर मन-वासनाओं को देखता है और उससे मुक्त हो जाता है। गुरुका पारख बोध उसी हृदय में प्रकट हुआ समझो जहाँ स्वस्वरूप के अतिरिक्त कहीं अनुमान, कल्पना, भास, अध्यास नहीं है। वहाँ स्वरूपस्थितिजनित निर्मल, पूर्ण और यथार्थ सुख प्राप्त है।

(गुरुबोध, दोहा २१६, २१७, २१९, २२६, २३१, २३४, २३५)

शिक्षासार

जीव को कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं करना है, अपितु प्राप्त-अप्राप्त समस्त वस्तु संज्ञाओं का अहंकार दूर करना है। सारे अहंकारों का सर्वथा उपशमन ही मोक्षावस्था है। दूसरे जीव भी इच्छा के वश दीन बने हैं, उन्हें अपने ही समान जानकर अपनाओ और बोध देकर उनका भी यथाशक्ति दु:ख दूर करो।

प्राप्ति जीव इच्छा नहीं, केवल हंत छुड़ाव।
निज स्वरूप लखि दयायुत, दीन जानि अपनाव॥

(गुरुबोध, दोहा ३५२)

भले ही ब्रह्मवादी लोग तथाकथित चराचरव्यापक जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्म का विचार करें; परन्तु हे सत्येच्छुक। तुम गुरुकृपा से पारख का ही विचार करो। क्योंकि ब्रह्म तथाकथित चेतन होते हुए भी जड़-जगत से पृथक नहीं है और पारख शुद्ध चेतन है तथा जड़ से सर्वथा पृथक है। अतएव पारख-बोध द्वारा अपने शुद्ध स्वरूप चेतन को जड़ से सर्वथा पृथक समझ कर स्थित होने से जीव का जगत-बंधनों से छुटकारा होता है।

ब्रह्म से जगत तथा जगत से ब्रह्म होना मान रखा है; परन्तु पारख से जगत और जगत से पारख नहीं होता। अतएव ब्रह्म में स्थित होने से जगत से छुटकारा मिलना असंभव है। परन्तु पारख शुद्ध चेतन को कहते हैं। वह जगत से सर्वथा पृथक है।

इसलिये उस स्व स्वरूप पारख चेतन में स्थित होने से ही भवबंधनोंका अंत है। अतएव बड़ी समता से, किंतु दृढ़ता पूर्वक ग्रंथकार इस ग्रंथ की अंतिम साखी कहते हैं जो सिद्धान्तसार है—

ब्रह्म विचारैं ब्रह्म को, पारख गुरु परसाद।
रहित रहै पद परखि के, जीव का होय उबार ॥

अर्थात-ब्रह्मवादी भले ब्रह्म का विचार करें; परन्तु तुम गुरुकृपा से पारख का ही विचार करो। अपना स्वरूप सबसे पृथक परख कर जड़ बंधनों से रहित रहो, जिससे जीव का उद्धार हो।

टीका लेखन एवं प्रकाशन

सन् १९६९ में प्रथमबार मेरी बीजक टीका छप जाने के बाद से मुझसे प्रायः लोग पूछ बैठते थे "क्या पंचग्रन्थी की टीका नहीं लिखेंगे ? या कब लिखेंगे ?" मैंने इस बात पर कभी विचार भी नहीं किया था। ग्रन्थ की गम्भीरता देख कर मन कतराता रहता था। फिर सोचता "बीजक तो इससे भी गम्भीर है। जब वह कर दिया, तब कौन जाने इसे भी कभी कर दूँ।"

अप्रैल १९७३ में जब मैं गुजरात से लौट कर छत्तीसगढ़ रीवाँ ग्राम में बाबू हिरामन के यहाँ आया, वहीं पंचग्रन्थी टीका करने का विचार उदित हुआ। साथियों के विचार भी जोर पकड़ते गये और उधर चपरीद आदि कई गाँवों में रहकर जब मई अंत में कलकत्ता गया तब पंचग्रन्थी मूल का एक बार पारायण किया और वहीं २३ जून को टीका लिखना आरम्भ कर दिया। फिर उत्तर प्रदेश गोंडा जिला में आकर श्री कबीर मंदिर सालपुर में कुछ दिनों तक लिखा। परन्तु शंकर भक्त जी का अति आग्रह होने से उनके मुहम्मदनगर की कुटिया पर संत समाज सहित चला गया और वहीं भादों से अगहन तक रहना हुआ। भक्तराज जी तन, मन, धन से संत समाज की सेवा में लगे रहे और घर, गाँव के अन्य भक्त, सज्जन भी यथायोग्य सेवा कार्य करते रहे।

टीका का अधिकतम अंश मुहम्मद नगर की कुटिया पर ही लिखा गया। अन्य कार्यक्रमों से बीच-बीच में रुकना पड़ा और इसका अंतिम अंश पुनः कलकत्ता जाकर दिसम्बर में पूर्ण किया गया। इस प्रकार यह टीका करीब सौ दिनों में लिख कर समाप्त की जा सकी।

इसके पश्चात फरवरी-मार्च १९७४ ई० में राजस्थान के भ्रमण में कबीर परिचय की टीका लिखी गयी। साथ-साथ दोनों पुस्तकों की शुद्ध प्रतिलिपि ब्रह्मचारी किशनलाल (साधु परीक्षा दास) जी करते रहे।

अबकी बार पुस्तक प्रकाशन में जिन संतों साधकों एवं भक्तों ने आर्थिक सहयोग किया है उनकी नामावली गीतासार में दे दी गयी है। अधिक धन तो साधु शरणपाल दासजीका ही लगता रहा है, इस ग्रन्थ में शंकर भक्त जी का भी काफी योग दान है संतजन तो स्वभाव से ही परोपकारी होते हैं। साधक एवं भक्तों के प्रति शुभाकांक्षा व्यक्त करना हमारा कर्तव्य है।

टीका लिखते समय पूज्य श्री महाराज राघव साहेब तथा श्रद्धेय श्रीरामस्वरूप साहेब की पंचग्रंथी की टीकायें हमारे साथ में थीं और वे यत्र-तत्र हमारा पथप्रकाश करती रहीं। अतएव मैं उक्त श्रद्धास्पद गुरुजनों का सादर आभार स्वीकार करता हूँ।

अंततः जिन बोधदाता सद्गुरुदेव तथा संतसमाज के साहचर्य में रहकर यह दास कुछ भी करने को समर्थ हुआ है, उनका उपकार स्मरण करना स्वभाविक है। विषय, अर्थ, वाक्यादि में रही हुई त्रुटियों के लिये मैं समस्त पाठक बन्धुओं से सविनय क्षमा प्रार्थी हूँ।

वाराणसी
फाल्गुन शुक्ल ७ वि० २०३२
मार्च १९७६

विनम्र
अभिलाषदास

विषय-सूची

प्रथम प्रकरण

पंचकोश

द्वितीय प्रकरण

समष्टि सार

तृतीय प्रकरण

मानुष विचार

चतुर्थ प्रकरण

गुरुबोध

पंचम प्रकरण

टकसार

(सत्ताईस रमैनी)

पंचग्रंथी

सद्गुरवे नमः

दया गुरुकी ।। अथ लिख्यते ग्रंथ

पंचग्रंथी

प्रथम अनुसार पारख विलास

प्रथम प्रकरण

पंचकोश

साखी

सांचा शब्द बताइया, सांचा दिया मुकाम ।
ताते वंदत हौं तव चरण, सांच गुरु सत नाम ।। १ ।।

शब्दार्थ — मुकाम = स्वरूपस्थिति । सत नाम = सत्य नाम; सच्चा निर्णय ।

भावार्थ — सद्गुरु ने सत्य निर्णय द्वारा सच्चा उपदेश देकर स्वरूपस्थिति की भूमिका बता दी है । अतएव हे सच्चे गुरुदेव ! मैं आपके चरणों की वंदना करता हूँ ।।१।।

विशेष — जो किसी मत, पथ, पोथी का पक्ष न लेकर सच्चा निर्णय करे और सच्चा रास्ता बतावे, वही सच्चा गुरु है । उसी की भक्ति, वंदना, उपासना करना उपयुक्त है तथा उसी के उपदेश से जीव का कल्याण है ।

इस साखी के पहले आया है 'प्रथम अनुसार पारख विलास' । 'प्रथम अनुसार' का तो तात्पर्य हुआ कि 'जैसा पहले था वैसा ही' । 'पारख' का अर्थ 'ज्ञान' व 'पारख सिद्धांत' है । 'विलास' का अर्थ 'चमकना' 'व्यक्त होना' या 'प्रकाशित हो जाना' है । सबका तात्पर्य हुआ 'जिस प्रकार पहले था वैसा ही पारख सिद्धांत का प्रकाशन उद्घाटन करना' ।

ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि मैं इस ग्रन्थ में जिस पारख सिद्धांत का प्रतिपादन करने जा रहा हूँ वह केवल मेरा अपना ही अनुभव नहीं है, अपितु इसकी परम्परा हमारे पहले से चली आयी है । आधुनिक युग में पारख सिद्धांत के आदि आचार्य सद्गुरु कबीर हैं, वैसे उसका वस्तुतथ्य अनादि है और उसके बोधवान तथा बोधक अनादिकालके जगत में असंख्यों हो सकते हैं । हम सत्य को एक व्यक्ति में सीमित नहीं कर सकते ।

छंद– अन्नमय अरु प्राणमय, तीजे मनोमय जानिये।
ज्ञानमय विज्ञानमय, सोइ पंचकोश बखानिये॥
तत् त्वं असि त्रिविधि बानि, सबै पहिचानिये।
कठिन सो त्रिदोष कारण, परमपद किमि मानिये॥ १॥

शब्दार्थ — पंचकोश = पाँच आवरण या स्थान जो जीव के स्वरूप को ढँक रखे हैं। तत् = वह। त्वं = त्वम्, तू। असि = है।

भावार्थ — अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय तथा विज्ञानमय– ये पाँच कोश कहे जाते हैं जो जीव को आवरण स्वरूप हैं। तत्, त्वम् और असि— ये तीन प्रकार की वाणियाँ हैं; हे मुमुक्षु! इन सबकी परख करो। उक्त तीनों वाणियाँ--भयंकर दोषपूर्ण हैं, उन्हें सर्वोच्च स्वरूप कैसे माना जाय?॥ १॥

विशेष — अन्नमय, प्राणमय, मनोमय के साथ कहीं-कहीं विज्ञानमय तथा आनन्द-मय कहा जाता है और यहाँ ज्ञानमय तथा विज्ञानमय कहा गया है। पंचकोशों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है--

अन्नमयकोश (स्थूल देह) प्राणमयकोश (सूक्ष्मदेह) मनोमयकोश (कारणदेह) ज्ञानमयकोश (महाकारणदेह) और विज्ञानमयकोश (कैवल्यदेह) है।

१—गोलक इन्द्रियों का समूह, अन्न से सुरक्षित रहने वाली जो यह स्थूल काया है, यही 'अन्नमयकोश' है, इसका कर्म-मार्ग है।

२—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और पञ्चप्राण का समूह जो अन्य तत्त्वयुक्त विशेष वायु से रचित है, जो सूक्ष्म शरीर या सूक्ष्म-देह कहा जाता है* यही प्राणमयकोश है। इसका उपासना मार्ग है।

३—कल्पित ईश्वर की प्राप्ति-अर्थ योग करना, योग समाधि या सुषुप्ति अवस्था में मन, बुद्धि आदि चतुष्टय और जाग्रत-स्वप्नादि का लय होकर संस्कारों का बीज रूप से रह जाना कारणदेह माने हैं, इसी को 'मनोमयकोश' कहते हैं। इसका योग-मार्ग है।

४—व्यापक ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है, व्यापक ब्रह्म का अन्तःकरणों में पड़े हुए प्रतिबिम्ब जीव हैं और माया में पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब ईश्वर है। अथवा मुक्त ब्रह्म आश्रय माया जगत का कारण है, वह ब्रह्म मैं हूँ इत्यादि ऐसी मान्यता ही महाकारणदेह का विस्तार है, इसीको 'ज्ञानमय कोश' कहते हैं। इसका ज्ञान-मार्ग है।

५—जीव, ईश्वर, माया तथा जगत् इत्यादि कुछ नहीं, सम्पूर्ण जगत् एक मैं अद्वितीय आत्मा। इसी मान्यता को कैवल्य देह माने हैं और इसी को 'विज्ञानमय-कोश' कहते हैं। इसका विज्ञान मार्ग है।

---

* -स्थूल-सूक्ष्म दो ही देह निर्णय से सिद्ध हैं और अन्य कारण, महाकारण और कैवल्य देह कल्पित हैं।

पंचकोशों का दूसरे प्रकार वर्णन

अन्नमय—अन्न से सुरक्षित रहने वाला इन्द्रियादिकों का समूह अस्थूल शरीर को अन्नमयकोश कहते हैं।

प्राणमय—अपान, समान, व्यान, उदान और प्राणइन पंच प्राणों का समूह, जो स्थूल शरीर-इन्द्रिय को सत्ता देता है; इसे प्राणमयकोश कहा जाता है।

मनोमय—सब स्मृतियों (यादगोरियों) का केन्द्र जो मन है, जो प्राणमय कोश को सत्ता देता है; इसे मनोमय कोश कहते हैं।

ज्ञानमय—सत्य-असत्य निर्णय करने का साधन जो बुद्धि है, जो मन को सत्ता देती है; इसे ज्ञानमयकोश कहा जाता है।

आनन्दमय—कल्पित ब्रह्मानन्द या विषयानन्द का अहंकृत समूह जो अहंकार है, जो बुद्धि को सत्ता देता है; इसे आनन्दमयकोश कहते हैं।

तत्त्वमसि का तात्पर्य है 'वह तू है'। अर्थात् जिसको तू पृथक खोजता है, वह परमात्मा तू ही है। और यह विचार सर्वोच्च है। फिर यहाँ पर "तत्त, त्वम्, असि" तीनों पदों को महान दोषपूर्ण क्यों कहा गया है ? वस्तुतः इसका शाब्दिक और सीधा अर्थ सुन्दर है; परन्तु तत्त्वमसि शब्द का अधिक प्रयोग करने वाले लोग उसे जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक तथा एक मानते हैं। अर्थात् वे यह कहते हैं कि मैं ही यह सारा विश्व हूँ। मैं ही कहीं सूरज बनकर चमकता हूँ, कहीं पहाड़, बनकर खड़ा हूँ आदि। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—सब कुछ ब्रह्म है। इस मान्यता में जड़-चेतन का विवेक खो जाता है। इसलिये सूक्ष्मदर्शी ग्रंथकार ने तत्त्वमसि को महान दोषपूर्ण बतलाया है। जो तत्त्वमसि जड़ से अभिन्न है, वह परमपद तथा अपना स्वरूप कैसे माना जा सकता है ? अपना स्वरूप तो जड़ से सर्वथा पृथक, व्याप्य-व्यापकरहित शुद्ध चेतन है।

दोहा– पशुवा लोक अरु वेद के, मोह अंध संसार।
वह लादै खेदै आपको, य है अपनी चहत उबार ॥ १ ॥

शब्दार्थ – पशुवा = जो पशु सदृश दूसरे के हाँकने से किधर भी चलता रहे; पक्षपाती। आपको = अपने स्वार्थ या मत के पक्ष में।

भावार्थ — जो लोग आँखें मूँदकर लोक और वेद के पीछे चलने वाले हैं और संसार के मोह में अंधे हैं; वे लोग इसमें अपना उद्धार तो चाहते हैं; परन्तु संसारी और मतवादी इनके ऊपर खानी-वाणी का बोझा लादकर इन्हें अपने स्वार्थवश भोग और मोक्ष के लालच में भटका रहे हैं ॥ १ ॥

विशेष — जो व्यक्ति सत्यज्ञान से हीन बना अंधा है, जो बिना विवेक केवल लोकमान्यता के पीछे या किसी पोथी के पीछे पागल है, वह पशु है। यहाँ वेद का अर्थ ज्ञान नहीं है और न तो ऋग् आदि चार वेद ही हैं। यहाँ वेद का अर्थ है किसी भी

मत की पोथी। जो अपनी पोथी को खुदाई कहकर उसमें विवेक नहीं करने देता, वही पशु है।

पशुता से मुक्त तथा मनुष्य वही है जो किसी मत का पक्षपात न करके निष्पक्ष सत्य का ग्राही है।

१-अथ अन्नमय कोश वर्णन

चौकड़ी—१

अन्नमय कोश को सुनो विस्तार। देह स्थूल आश्रम ब्रह्मचार ॥१॥
चिन्ह अचार प्रलयता नित्त। दशा बाल अवस्था जागृत ॥२॥

शब्दार्थ — चिन्ह = लक्षण। अचार = आचार-स्नान, संध्या, पूजा, पाठ आदि।

भावार्थ — अन्नमयकोश का विस्तार सुनो, इसकी देह स्थूल है और आश्रम ब्रह्मचर्य है॥ १ ॥ लक्षण स्नान, संध्या, पूजा, पाठ आदि शुद्ध आचार रखना है, निद्रा रूपी नित्य प्रलय है, दशा बाल और अवस्था जागृति है ॥ २ ॥

विशेष — स्थूल देह को ही अन्नमय कोश कहते हैं। वैदिक परम्परा में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चार आश्रमों का विधान है। इस देह को इन चार आश्रमों में क्रमशः रखकर इसका वर्तमान किया जाता है। प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य है।

अन्नमयकोश रूप स्थूल देह का लक्षण है शुद्ध आचरण रखना। नित्य स्थूल देह में निद्रा आती है यही नित्य प्रलय है।

साधन श्रवण सुनन को जान। मुक्ति सालोक विश्व अभिमान ॥ ३ ॥
दीक्षा कोहं विषयानन्द। क्षर आकार देव शिवनंद ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — कोहं = कोऽहम्, 'मैं कौन हूँ? क्षर = चल, नाशवान। शिवनंद = शिव का लड़का—गणेश।

भावार्थ — अन्नमयकोश (स्थूलदेह) का साधन वेदादि का श्रवण समझो, मुक्ति देवलोक 'में निवास, अभिमान विश्व, दीक्षा मैं कौन हूँ ?' आनन्द विषय, आकार नाशवान (परिवर्तनशील) तथा देवता गणेश जी हैं ॥ ३, ४ ॥

विशेष — स्थूलदेहस्वरूप अन्नमयकोश में साधन प्रथम है; वह है श्रवण। स्थूल शरीर में शुभ कर्म करके देवलोक प्राप्त होना माना है। स्थूल देह के अभिमान का घेरा विश्व है। धन, परिवार, राज, काज आदि विश्व अभिमान कहलाता है। मैं कौन हूँ ? यह जिज्ञासा ही इसकी दीक्षा या मन्त्र है। स्थूल देह का आनन्द विषय माना है। इसका आकार बदलते रहना है ही। कहते हैं गणेश जी गुदाद्वार पर बैठे टट्टी आदि की सफाई करते रहते हैं; इसलिये देह ठीक रहती है। इसलिये इसके वे ही मुख्य देवता हैं।

क्रिया शक्ति जठराग्नि जान । पाद प्रथम खेचरी मुद्रा मान ॥ ५ ॥
वाचा वैखरी मात्रा अकार । रजोगुण ब्रह्मा नेत्र के द्वार ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — जठराग्नि = पेट की अग्नि । पाद = भाग, हिस्सा, गायत्री मन्त्र का प्रथम भाग 'भूः' । **खेचरी** = दोनों नेत्रों से त्रिकुटी के मध्य एकटक देखना । **मुद्रा** = आसन । **वाचा** = वाणी । **वैखरी** = मुख से उच्चरित वाणी । **मात्रा आकार** = ॐ की प्रथम मात्रा 'अ' ।

भावार्थ —अन्नमयकोश (स्थूलदेह) की शक्ति क्रिया, अग्नि पेट की, गायत्री का पहला भाग 'भूः', मुद्रा खेचरी, वाचा वैखरी, ॐ की प्रथम मात्रा 'अ' जो त्रिकुटी स्थान में है, गुण रजस् जिसके अधिपति ब्रह्मा हैं और नेत्रों के द्वारा राग-रंग रूप रजस् का विशेष ग्रहण होता है ॥ ५, ६ ॥

विशेष— स्थूलदेह में कर्म करने की शक्ति है । इसमें जठराग्नि का भी बड़ा महत्त्व है । इसी से शरीर स्वस्थ रहता है । गायत्री का प्रथम पाद 'भूः' है जिसका अर्थ पृथ्वी है । स्थूल देह का गुण रजस् है । रजस् में क्रियाशीलता, रागरंग आदि सब आते हैं ।

साढ़े तीन हाथ की देह । तारक मुख थल त्रिकुटी नेह ॥ ७ ॥
पूरब दिशा इन्द्र सो देव । सिर्जन कर्म अर्ध शून्य भेव ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — तारक = तारकब्रह्म जो खेचरी मुद्रा द्वारा त्रिकुटी में दिखता हुआ ज्योति प्रकाश है । **मुख** = मुख्य । **थल** = स्थल । **सिर्जन** = सर्जन, निर्माण, रचना । **अर्ध** = नीचे । **भेव** = भेद ।

भावार्थ — अन्नमयकोश रूप यह स्थूल देह साढ़े तीन हाथ की है । इसका ब्रह्म तारक है जो भवसागर से तारता है । तारक ब्रह्म का मुख्य स्थल त्रिकुटी है जिसके ध्यान में लोग स्नेह करते हैं ॥ ७ ॥ इस देह की मुख्य दिशा पूर्व की है अर्थात् दोनों हाथों के वीच छाती ही पूर्व दिशा है उन हाथों का देवता इन्द्र है । इस देह का कर्म है सृष्टि करना या नाना कर्मकरके निर्माण करना । सृष्टि का भेद शरीर के निचले हिस्से नर-नारी के अधोद्वार के शून्य स्थल हैं ॥ ८ ॥

पीत बरण उच्चार हरस्व । साम सो वेद पृथ्वी तत्त्व ॥ ९ ॥
औ उपदिशा ईशान बखान । शिव अभिमानी ताको जान ॥१०॥

शब्दार्थ — **बरण** = रंग । **हरस्व** = ह्रस्व, लघु । **उपदिशा** = अन्तर्दिशा, कोण । **ईशान** = उत्तर-पूरब का कोना ।

भावार्थ — अन्नमयकोश रूप स्थूल देह का मुख्य रंग पीला और उच्चारण लघु कहा है । वेद साम है जिसमें अखिल विश्व ब्रह्म माना जाता है और तत्त्व पृथ्वी है, यानी इसी से अन्नमंयकोश की मुख्य रचना है ॥ ९ ॥ इस कोश का कोण दिशा ईशान कही जाती है जिसके अभिमानी देवता शिवजी माने जाते हैं ॥ १० ॥

तंती स्वर अपान सो वायु । घटाकाश अधोशून्य पायु ॥११॥
पीत रक्त कमल को रंग । मारग पपिल कहै परसंग ॥१२॥

शब्दार्थ — तन्ती = तन्त्री, वीणा का तार। अपान = मल-मूत्र त्याग में बल देने वाला वायु। अधोशून्य = नीचे का छिद्र। पायु = गुदा। पपिल = पिपीलिका, चींटी। परसंग = प्रसंग, अवसर, मौका, क्रम।

भावार्थ — अन्नमयकोश रूप स्थूलदेह में तार लगे हुए वीणा, सितार आदि के स्वर के समान अनाहतनाद सुनाई देता है, इसका वायु अपान है जिससे स्थूलदेह ठीक रहती है। इस कोश का आकाश घट के भीतर जैसा अल्प है; अर्थात् शरीर के भीतर का पोलस्थान है। और इस शरीर के नीचे शून्य स्थल गुदाद्वार है, जिससे शरीर की शुद्धि होती है ॥ ११ ॥ गुदास्थान मूलाधार चक्र में स्थित चार दलकमल का रंग पीला और लाल है; और इस कोश के क्रम में चींटी के समान निरन्तर कुछ कर्म करते रहना रूप पिपीलिकामार्ग है ॥ १२ ॥

अद्वै जाति ऋचा गनि लेहु । उर्मी कला ताहि को देहु ॥१३॥
सत्यलोक को भोग विलास । सन्मुखी मुद्रा जहाँ प्रकाश ॥१४॥

शब्दार्थ — जाति = वर्ग, सिद्धान्त। ऋचा = वेदमन्त्र। गनिलेहु = समझ लो। उर्मी = ऊर्मि, लहर, तरंग; शरीर के छः क्लेश—भूख, प्यास, लोभ, मोह, सर्दी और गरमी। सन्मुखी मुद्रा = नाक के सामने नेत्र लगाकर ध्यान करना।

भावार्थ — अन्नमयकोश में ऋचा अद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक वेद मन्त्रों को समझ लो। भूखप्यासादि छः उर्मियों के भाग भी उसी अन्नमयकोश में होना जानो ॥ १३ ॥ अन्नमयकोश की साधनाकर्म करने से सत्यलोक में पहुँचकर भोग-विलास की प्राप्ति माना है, या त्रिकुटी को ही सत्यलोक मानकर जहाँ सन्मुखीमुद्रा द्वारा प्रकाश दिखता है उसमें भोग-विलास करना माना है ॥ १४ ॥

झीनी वायु देवदत्त होय । अहं विकार स्थूल को सोय ॥१५॥
भूमिका छिप्रा प्रध्वंसाभाव । भोग स्थूल विषय को चाव ॥१६॥

शब्दार्थ — वायु देवदत्त = देवदत्त वायु जो मुख या कंठ में रहता है जिससे जम्हाई आती है तथा जो योगसाधना में बल देता है। छिप्रा = छिप्र, तेज, शीघ्रगामी। प्रध्वंसाभाव = कारण में कार्य का वह अभाव जो उसकी उत्पत्ति के पीछे होता है जैसे जल जाने पर काष्ठ और फूट जाने पर घट का अभाव। चाव = इच्छा।

भावार्थ — अन्नमय कोश में झीना वायु देवदत्त को माना है, और इस स्थूल देह का विकार अहंकार है जैसे शरीर, धन, परिवार आदि में अहंता-ममता करना ॥ १५ ॥ इस कोश की भूमिका शीघ्रगामी, अर्थात् गतिशीलता है और अंततः इसका अभाव

प्रध्वंस है; अर्थात् यह नष्ट होकर इसका अभाव हो जाता है। इसकोश में स्थूलपांचों विषयों को भोगने की चेष्टा अज्ञ जीव को बनी रहती है ॥ १६ ॥

विशेष—शास्त्रों में चार अभाव माना है--प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यंताभाव तथा अन्योन्याभाव।

प्रागभाव (प्राक् अभाव)

कार्य का अपनी उत्पत्ति के पहले कारण में न रहना, जैसे दूध में दही नहीं रहता।

प्रध्वंसाभाव

कारण में कार्य का वह अभाव जो उसकी उत्पत्ति के पीछे होता है जैसे जल जाने पर काष्ट और फूट जाने पर घट का अभाव।

अत्यंताभाव

किसी वस्तु का पूर्ण अभाव, तीनों कालों में संभव न होना, जैसे आकाश-कुसुम।

अन्योन्याभाव

एक में दूसरे का अभाव, जैसे घट में पट का, पट में घट का और मनुष्य में हाथी का और हाथी में मनुष्य का अभाव।

पांच तत्त्व त्रिगुणमैं जान। और प्रकृति पचीस बखान ॥ १७ ॥
ज्ञान कर्म इन्द्री समुदाय। पांचों अंतःकरण मिलाय ॥ १८ ॥

शब्दार्थ — मैं = मय, युक्त, जैसे जलमय अर्थात् जलयुक्त। पाँचों अन्तः-करण = अन्तःकरण पंचक।

भावार्थ — अन्नमय कोश का घेरा पाँचतत्त्व, तीन गुण, पचीस प्रकृतियाँ, पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ, पाँचकर्मइन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण पंच मिलाकर समझो ॥ १७, १८ ॥

विशेष — यह स्थूल शरीर ही अन्नमय कोश है, जिसमें ये सब सामग्रियाँ लगी हैं :—

पाँचतत्त्व - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश।

तीनगुण — सत, रज तथा तम।

पचीस प्रकृति--पृथ्वी की - हड्डी, मांस, नस, त्वचा तथा रोम। जल की—रक्त, पसीना, लार, मूत्र, और वीर्य। अग्नि की—भूख, प्यास, आलस, निद्रा तथा जम्हाई। वायु की—प्रसारण, संकोचन, चलना, दौड़ना तथा बलकरना। आकाश की—काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा भय (आकाश कोई वस्तु नहीं है। इसलिये कामादिक उसकी प्रकृति नहीं हो सकते। फिर यदि ये प्रकृति हैं तो जीवन पर्यन्त छूट भी नहीं सकते। अतएव कामादिक प्रकृति नहीं, अपितु मनोविकार मात्र हैं, इसीलिए वे छूट जाते हैं)।

पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ—आँख, नाक, कान, जिह्वा, तथा त्वचा।

पाँच कर्म इन्द्रियाँ—हाथ, पैर, मुख, शिश्न तथा गुदा।

अंतःकरण पंचक—अन्तःकरण, मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार।

छंद–थाने चतुर्दश देव तिनके, भिन्न भिन्न विचारिये।
नाना अनंग तरंग कौतुक, कला अनंत सुधारिये॥
व्यवहार त्रिविधि विचार नाना, पिंड खंड प्रमाण सो।
भूले अनेकन मध्य भवके, जगत भक्त अमान सो॥२॥

शब्दार्थ — थाने=स्थानों में, अंगों पर। चतुर्दश देव=चौदह देवता। अनंग=शरीर रहित—काम, मन। कौतुक=कुतूहल, तमाशा। कला=काम की ६४ कलाओं की कल्पना कर रखा है, जिसका विवरण अनावश्यक समझ कर यहाँ नहीं दिया जा रहा है। त्रिविधि=तीन प्रकार, सत, रज, तम या कर्म, उपासना, ज्ञान। पिंड=देह। खंड=भाग। प्रमाण=सीमा। जगत=संसारी। भक्त=उपासक। अमान=निर्मानी, ज्ञानी।

भावार्थ — इस अन्नमयकोश रूप स्थूल देहके भिन्न-भिन्न अंगों पर चौदह देवताओं का निवास माना है। इस स्थूल देह में अनादिकाल से अध्यासित मन तथा काम के विविध तरंगें, तमाशे एवं असंख्य काम कलायें हैं जिनका सुधार करना आवश्यक है। स्थूलदेह के विभिन्न भागों की सीमा के अनेक व्यवहार तथा त्रिगुणात्मक मान्यताओं के अनेक भवजाल के बीच में कर्मी, उपासक तथा ज्ञानी आदि भूले पड़े हैं॥ २॥

विशेष — शरीर के चौदह अंगों के चौदह देवता इस प्रकार हैं :—अंतःकरण का विष्णु, मन का चन्द्रमा, चित्त का नारायण, बुद्धि का प्रजापति (जो लिंग का भी है) अंहकार का महादेव; कान का दिशा, नेत्र का सूर्य, त्वचा का वायु, जीभ का वरुण, नाक का अश्वनीकुमार, मुख का अग्नि, हाथ का इन्द्र, पाँव का उपेन्द्र, लिंग का प्रजापति, गुदाका यमराज देवता है।

कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों कल्याण के साधन हैं। परन्तु जव इनके रूप काल्पनिक एवं भ्रमपूर्ण हो जाते हैं तब ये अंततः कल्याण के घातक हो जाते हैं। अतएव भ्रमपूर्ण कर्म में संसारी, भ्रमपूर्ण उपासना में भूले भक्त एवं भ्रमपूर्ण ज्ञान में ज्ञानी कहलाने वाले पड़े भटक रहे हैं।

मनुष्य अनेक विषय वासनाओं, व्यवहारों तथा मान्यताओं में पड़े हैं। इन सबकी आसक्तियों से ऊपर उठना मुमुक्षु का कर्तव्य है।

दोहा-- काल शब्द औ संधिमें, अन्नमयकोश प्रचंड।
परखि तासु गुरुगम लहै, भास मिटै तव पिंड॥२॥

शब्दार्थ — काल शब्द=विषयभोग तथा देवी देवताओं की मान्यता के शब्द। संधि (शब्द)=स्वस्वरूप से भिन्न ईश्वर मान्यता के शब्द। गुरुगम=गम-पहुँच, गुजर, पथ, गमन-गुरुमार्ग। पिंड=स्थूल देह।

भावार्थ — काल और संधि के शब्दों में पड़े हुए जीवों के अन्नमयकोश के बंधन,

भयंकर हो रहे हैं। जब मुमुक्षु गुरुमार्ग में चलकर गुरुमुख वाणियों द्वारा उन बंधनों को परख कर उनका त्याग करता है तब स्थूल देह एवं उनके कर्मों का अध्यास नष्ट होता है ॥ २ ॥

विशेष — काल, संधि, झाँई तथा सार इन चार प्रकार की वाणियों के लक्षण टकसार के अन्त में सत्ताइस रमैनियों के आरम्भ में वर्णन है। सार अर्थ है कि विषयासक्ति, देवी, देवता, तीर्थादि के मिथ्या महात्म्य एवं स्वरूप से पृथक अपना लक्ष्य मानकर उनमें जीव भूले हैं। पारखी सद्गुरु के सत्संगद्वारा सारासार समझकर इनका अध्यास नष्ट करना चाहिये।

इति अन्नमयकोश सम्पूर्ण ॥

२--अथ प्राणमय कोश वर्णन

छंद-- प्राणधारी जीव जेते, मनोमय बासा किये।
त्रयखानि साधन युक्ति जे नर, योग खानि अनुमय लिये॥
संयम नेम समाधि प्राणायाम, कष्ट तन को किये।
ब्रह्मांड बासा खं विलासा, बुद्धि मन तेहि थल दिये ॥३॥

शब्दार्थ — मनोमय = मनोरूप, मानस। त्रयखानि = पिण्डज, अण्डज तथा उष्मज। योग = योग्य, पात्र। अनुमय = अनु + मय, अनु = हीन, मय = रूप-हीन दशा; अनुमान। ब्रह्मांड = खोपड़ी, कल्पित स्वर्ग। खं = आकाश; ब्रह्मरंध्र।

भावार्थ—प्राणमय कोश में जितने जीव हैं सब मनोमय में निवास कर रहे हैं। ऐसे बहुत व्यक्ति हैं जो उतम मनुष्य खानि में आकर भी अपना हीनरूप, हीनदशा एवं कल्पना-भ्रांति को लिये हुए उन्हीं साधन-युक्तियों से चल रहे हैं जिससे वे निम्न तीन खानियों में जाने के ही भागीदार हैं। कितने लोग कुछ आगे बढ़ते हैं तो वे इतना करते हैं कि कायाकष्ट पूर्वक संयम, नियम, प्राणायाम, समाधि का अभ्यास करते हुए और ब्रह्मांड में वायु चढ़ाकर उसमें निवास करते हुए ब्रह्मरन्ध्र में विलास करते हैं। इस प्रकार वे कल्पित मान्यतानुसार जड़-भास को ही ब्रह्ममानकर उसी में अपने मन-बुद्धि को लगाते हैं ॥ ३ ॥

विशेष — योगी लोग खोपड़ी में श्वास रोक कर ब्रह्म का पाना मानते हैं और उपासक लोग मनःकल्पित इष्ट की उपासना करके आकाशस्थित लोक-लोकान्तर में निवास चाहते हैं।

दोहा– सूक्ष्म देह जानि निजु, करहिं क्रिया बहु मूढ़।
भटकहिं भव की धार महँ, मानि कहहिं यह गूढ़ ॥३॥

शब्दार्थ — सूक्ष्म देह = प्राणमयकोश। मूढ़ = बोधहीन। भव = जन्म, संसार। गूढ़ = गोपनीय, उच्च।

भावार्थ — बहुत से अबोधी व्यक्ति प्राणमयकोशरूप सूक्ष्म देह ही को अपना स्वरूप मानकर अनेक अविवेकपूर्ण क्रियायें करते हैं। वे अपनी इस ज्ञानहीन धारणा को अत्यन्त गोपनीय तथा सर्वोच्च मान तथा बतला कर मनोमय तथा जन्म-मरण की धारा में भटकते हैं ॥ ३ ॥

विशेष — कितने लोग अपने आपको प्राणवायु रूप ही मानते हैं तथा कितने लोग वायु रूप सूक्ष्म ईश्वरमानकर उसकी प्राप्ति के लिये भटकते हैं। यह सब स्वस्वरूप के अज्ञान का परिणाम है।

चौकड़ी—२

कोश प्राणमय सूक्ष्म देह। आश्रम गृहचार गुन नेह ॥१॥
गुरुमय चिन्ह प्रलय नैमित्य। दशा पिशाच की जानहु सत्य ॥२॥

शब्दार्थ — गुन = सगुण। नेह = प्रेम। गुरुमय = गुरु के समान। नैमित्य = नैमित्त, निमित्त संबंधो।

भावार्थ — प्राणमयकोश की सूक्ष्म देह है, आश्रम आचरण पूर्वक गृहस्थी है जिसमें सगुण उपासना में प्रेम करना बतलाया जाता है ॥ १ ॥ गुरु के समान चिन्ह या वेष रखना, अथवा प्रणव (ॐ) को गुरु मानकर उसकी उपासना करना मान्य है। ध्यान आदि निमित्त पाकर वृत्ति का स्थिर होना रूप नैमित्तिक प्रलय है। इसकी असली दशा पिशाच की समझनी चाहिये; अर्थात् चंचलतापूर्वक नामस्मरणादि करना चाहिये ॥२॥

अवस्था स्वप्न समान बखान। सामीप्य मुक्ति तैजस अभिमान ॥३॥
दीक्षा वोहं योगानंद। अक्षर मात्रा वेदको छंद ॥४॥

शब्दार्थ — सामीप्य मुक्ति = ईश्वर के निकट निवास। वोहं = वोऽहम्, वह मैं हूँ। अक्षर = नाश न होने वाला श्वास रूप।

भावार्थ — जैसे सूक्ष्म शरीर में स्वप्न होते हैं वैसे उपासक कल्पित इष्ट की ध्यानावस्था में निमग्न कहे जाते हैं। फलतः वे सामीप्य मुक्ति पाते हैं; और वे तैजस अर्थात् कल्पित प्रकाशवान भगवत् स्वरूप के अभिमानी होते हैं ॥ ३ ॥ उनकी दीक्षा है 'वह मैं हूँ' अर्थात् मैं भगवत् का अंश हूँ; और उसी के संयोग से परमानन्द की प्राप्ति होती है। प्राणमय कोश का स्वरूप अक्षय श्वास रूप वायु माना है (जो वस्तुतः परिवर्तनशील है) जिससे वर्ण, मात्राओं की उत्पत्ति होकर वेदों के मंत्र बने हैं ॥ ४ ॥

द्रव्य शक्ति देव मार्तंड। कामाग्नि पद दुतिया खंड ॥५॥
भूचरी मुद्रा वाचा मध्यमा। मात्रा उकार विष्णु सतगुणा ॥६॥

शब्दार्थ — मार्तंड = सूर्य। पद = चरण, भाग। दुतिया खंड = भुवः, भुवलोक-अंतरिक्षलोक। भूचरी मुद्रा = नाभि या पृथ्वी पर एकाग्र दृष्टि से देखते हुए ध्यानमग्न होना। मध्यमा = कंठस्थान से निकलने वाली वाणी। उकार = 'उ'।

भावार्थ — प्राणमय कोश में अंतःकरण द्वारा पंचविषयों को ग्रहण करना रूप द्रव्यशक्ति है। इस कोश का देवता सूर्य है। अग्नि कामवासना की है और गायत्री का दूसरा चरण भुवः है जो अंतरिक्षलोक वाचक है ॥ ५ ॥ इसकी मुद्रा भूचरी, वाणी मध्यमा, ॐ की दूसरी मात्रा 'उ' कार है जिसका प्रतिनिधित्व विष्णु या सतोगुण करता है।

देह प्रमाण अंगुष्ठाकार। कण्ठ स्थान थूल सो विचार ॥७॥
दंडक नाम जिह्वा सो द्वार। खानपान सो करत अहार ॥८॥

शब्दार्थ—प्रमाण = माप। थूल = सूक्ष्म। दंडक = डंडा, साधनाद्वारा नाभि से त्रिकुटी तक दण्डायमान प्राणवायु जिसे दंडक ब्रह्म कहते हैं।

भावार्थ — सूक्ष्म देहका माप अंगूठे के बराबर माना है। उसी में से कंठस्थान से सूक्ष्म कल्पनायें उठा करती हैं ॥ ७ ॥ इस कोश का ब्रह्म दण्डक माना है। इसका द्वार जिह्वा मानी गयी है, जिसके द्वारा खान-पान का ग्रहण होता है ॥ ८ ॥

विशेष — सूक्ष्म शरीर को अंगुष्ठ प्रमाण मानना ठीक नहीं। वह बहुत सूक्ष्म है। अंगुष्ठ प्रमाण मानकर कुछ लोग ध्यान करते हैं। यह उनकी कल्पना है।

श्रीहट स्थान दिशा पश्चिम। वरुण देवता ताके सूक्षम ॥९॥
पालन कर्म उर्ध शून्य निवास। श्वेत वर्ण को कहिये भास ॥१०॥

शब्दार्थ — श्रीहट = गले में छोटी जिह्वा जिसे पड़जिह्वा भी कहते हैं उसके ऊपर का स्थान 'श्री हट' कहलाता है। ऊर्धशून्य = श्रीहट के पास का शून्य भाग।

भावार्थ — इस कोश का स्थान श्रीहट और दिशा पश्चिम माना है। पश्चिम कहते हैं पीठ को परन्तु यहाँ श्रीहट को पश्चिम दिशा कहा है। इसके सूक्ष्म देवता वरुण हैं ॥ ९ ॥ पड़जिह्वा से हरसमय लार झरते रहने से उसका पालनकर्म है। उसी के ऊपर शून्य में ध्यानकरके लोग अपनी वृत्ति को टिकाते हैं, वहाँ मोतीवत उज्ज्वल रंग चमकता है जिसके ध्यान में लोग निमग्न होते हैं ॥ १० ॥

दीर्घ उच्चार यजुर सो वेद। जल तत्त्व समान करै परस्वेद ॥११॥
उपदिशा नैऋत्य बखान। नैऋत्य देव तहाँ पहिचान ॥१२॥

शब्दार्थ — परस्वेद = प्रस्वेद, पसीना। उपदिशा = कोण की दिशा। नैऋत्य = पश्चिम-दक्षिण दिशा का कोण।

भावार्थ — प्राणमयकोश में नाभि से कंठतक दीर्घ स्वर में उच्चारण, अवतारवाद समर्थक यजुर्वेद माना है। शरीर के रोमकूपों से निकलता हुआ पसीना ही जल का हिस्सा है ॥ ११ ॥ इसके कोण की दिशा नैऋत्य तथा देवता भी नैऋत्य नाम का माना है ॥ १२ ॥

वायु उदान झाँझ को नाद। मठाकाश जहाँ है अनाहाद ॥१३॥
श्याम रक्त रंग कमल प्रकाश। मार्ग विहंगम भक्ति तनदास ॥१४॥

शब्दार्थ — वायु उदान = उदानवायु जो कंठ में रहता है। मार्ग विहंगम = विहंगम मार्ग, पक्षी का मार्ग; जैसे पक्षी आकाश में उड़ता रहता है वैसे भगवान तथा देवताओं के चिंतन में लगा रहना।

भावार्थ — इस कोश का वायु कंठस्थानीय उदान है। मकान में घिरे हुए आकाश के समान ब्रह्माण्ड के आकाश में होते हुए अनाहतनाद में झाँझ का नाद है ॥ १३ ॥ हृदयकमल में ध्यान में दिखती हुई मूर्ति काला और लाल रंग में प्रकाशित मानी है। इसकोश का विहंगम मार्ग और शरीर से भगवान का दास बनकर सेवा करना माना है ॥ १४ ॥

धूर्मी कला लोक बैकुंठ। ऋचा वामदेव आकुंठ ॥१५॥
सूक्ष्म विषय भोग तहं जान। गुप्त मुद्रा उन्मिलनि मान ॥१६॥

शब्दार्थ — धूर्मी = धुवाँ जैसा। वामदेव = गौतम गोत्रोत्पन्न एक वैदिक ऋषि। आकुण्ठ = जड़, कुंद, भोथरा, गुप्त। उन्मिलनि = अर्ध खुले नेत्र।

भावार्थ — प्राणमय कोश में धूर्मीकला अर्थात् ध्यान में दिखता हुआ धुवाँवत प्रकाश को भगवान माना है और बैंकुंठ लोक, वामदेव की ऋचायें और गुप्तरीति से उपासना तथा नाम स्मरणद्वारा स्वर्ग की प्राप्ति मानी है ॥ १५ ॥ वहाँ सूक्ष्म विषयों का भोग माना है। गुप्त भाव से मनद्वारा भगवतध्यान करते हुए तथा अर्ध खुले नेत्रों से उसकी छवि देखते हुए मग्न हो जाना माना है ॥ १६ ॥

झीनी नागवायु अनुरूप। मन मंतव्य संकल्प स्वरूप ॥१७॥
भूमि गतागत प्राग अभाव। सूक्ष्म देह के कहै स्वभाव ॥१८॥

शब्दार्थ — नागवायु = डकार लाने वाला वायु। अनुरूप = सदृश; उपयुक्त। मंतव्य = मत; निश्चय। गतागत = आना-जाना, जन्म-मरण। प्राग अभाव = कार्य का अपनी उत्पत्ति के पहले कारण में न रहना जैसे दूध में दही, वैसे सूक्ष्म शरीर में स्थूल शरीर नहीं रहता है, परन्तु बीज रहता है।

भावार्थ — इसकोश का झीना और उपयुक्त नागवायु है। मनका कुछ मानना, संकल्प करते रहना उसका स्वरूप है ॥ १७ ॥ इस कोश की भूमिका जीव को योनियों में गमनागमन कराना है। इस सूक्ष्म शरीर में स्थूल का अभाव रहता है; परन्तु उसका बीज रहता है। यही सूक्ष्मदेह का स्वभाव कहा जाता है ॥ १८ ॥

छंद- ज्ञान इन्द्री पाँच औ, अंतःकरण मन आदि दै।
सूक्ष्म पाँचों तत्त्व औ, प्रकृति सबै देवादि दै ॥

व्यवहार देवनि सूक्ष्म कीन्हा, देखु हृदय विचारि कै ।
यम जाल खानि कलेश है, प्रेतादि योनि संचारि कै ॥४॥

शब्दार्थ — **यमजाल** = मनका जाल, कल्पना; भ्रमिकों की मान्यता । **संचारि** = संचारना, फैलाना; उत्पन्न करना ।

भावार्थ — पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ, मन आदि अन्तःकरण पंचक, पाँचों तत्त्वों के सूक्ष्म अंश, सभी (२५) प्रकृतियाँ, सभी (१४) देवता, देवताओं के व्यवहार इन सबके सूक्ष्म अंशों के स्वरूप को सूक्ष्म शरीर या प्राणमय कोश माना है। (यह तो कुछ संशोधन पूर्वक ठीक है; परन्तु) हृदय में विचार करके देखो, भ्रमिकों ने विशेष सुख भोगने की खानि सूक्ष्मशरीरधारी देवता और विशेष दुःख भोगने की खानि भूत-प्रेतादि योनियों की कल्पना करके उसका प्रचार कर रखा है ॥ ४ ॥

विशेष — ऊपर सूक्ष्म शरीर के वर्णन में देवतादि कुछ कल्पनाओं का मिश्रण है । वस्तुतः सूक्ष्म शरीर वासनामय अत्यंत सूक्ष्म होता है ।

सूक्ष्मशरीर धारी प्रेत होते हैं यह मानना एक भ्रम है । बिना स्थूलशरीर धारण किये जीव किसी प्रकार कर्म नहीं कर सकता । अतएव भूत-प्रेत की खानि मानना कल्पित एवं झूठ है ।

दोहा— स्थूल सो सूक्ष्म अंग है, उलटि पलटि अरुझाय ।
शब्द कला होय परखि ले, नहिं तो यमपुर जाय ॥४॥

शब्दार्थ — **शब्दकला** = शब्दों की रचना । **यमपुर** = वासना, गर्भवास ।

भावार्थ — स्थूल देह का ही यह सूक्ष्म शरीर वासनाबीज होने से उसी का एक अंग है । इन्हीं स्थूल-सूक्ष्म शरीरों में जीव उलट-पलट करके फँसे हुए जन्म-मरण में नाच रहे हैं । संसार में शब्दों की अनेक प्रकार की रचनायें हैं । हे मुमुक्षु ! उनके सारासार की परख कर, अन्यथा वासना-वश हुआ गर्भवास में जायेगा ॥ ४ ॥

इति प्राणमयकोश संपूर्ण ॥

३-अथ मनोमय कोश वर्णन

छंद— कोश मनोमय रंग बहुत, तरंग मुनि व्याकुल भये ।
जग जीव पामर खानि, तीनों कोश तिन गिनती किये ॥
ब्रह्मादि शिव को चित्त क्षोभ्यो, आदि कारण चाहहीं ।
सो खानि कष्ट कलेश में, आशा धरै पछतावहीं ॥५॥

शब्दार्थ — **रंग** = भावनायें । **तरंग** = कल्पनायें । **पामर** = नीच, मलीन । **खानि** = रूप । **छोभ्यो** = क्षुब्ध किया । **आदि कारण** = ब्रह्म, ईश्वर ।

भावार्थ — मनोमय कोश की बहुत भावनायें एवं कल्पनायें हैं, जिसमें ऋषि-मुनि गण व्याकुल फिरते हैं। जो संसार के मलीन रूप व्यक्ति हैं वे अन्नमय, प्राणमय तथा मनोमय को ही अपना मुख्य स्वरूप मान रखे हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि का चित्त भी मनोमय की कल्पना में पड़कर क्षुब्ध हो गया है और वे भी सबका मूल-कारण किसी तथाकथित ब्रह्म या ईश्वर की खोज में पड़े उसको पाना चाहते हैं। अतएव मनकी कल्पना में घूमने वाले सब जीव सुख तथा ईश्वर प्राप्ति की आशा धारण कर और क्लेशमय खानियों में पड़े दुःख पाते हुए पश्चाताप करते रहते हैं ॥ ५ ॥

दोहा— मनोमय कोश विस्तार बहु, कहैं मुनीश्वर वेद।
कारण देह आशा बँधे, प्रत्यक्ष मनको भेद ॥५॥

शब्दार्थ — कारण देह = अज्ञान। भेद = रहस्य, मर्म।

भावार्थ — श्रेष्ठ मुनिजन तथा वेद मनोमयकोश का बहुत विस्तार से वर्णन करते हैं। इसकी देह कारण यानी अज्ञान है जिसका स्वरूप है विषयों की आशा में बँधे रहना, यह प्रत्यक्ष मन का रहस्य है ॥ ५ ॥

चौकड़ी ३

कोश मनोमय कारण देह। आश्रम वानप्रस्थ का येह ॥१॥
जंगम आतम लिंग बसत्व। विश्वप्रलय दशा उन्मत्त ॥२॥

शब्दार्थ — जंगम = चलने वाला; लिंगायत संप्रदाय के गुरुओं की उपाधि। लिंग = लक्षण।

भावार्थ — मनोमयकोश की देह कारण है; और इसका आश्रम वानप्रस्थ है ॥१॥ वानप्रस्थी लोग चलते-फिरते समस्त प्राणियों में आत्मा के निवास का लक्षण मानकर उनपर दया करते हैं। इस कोश में योगनिद्रा की गाफिली रूपी विश्वप्रलय है और दशा ज्ञानयोग में मस्त रहकर उन्मत्त रहना है ॥ २ ॥

अवस्था सुषुप्ति मुक्ति सारूप। तहाँ अभिमानी प्राज्ञरूप ॥३॥
दीक्षा तहाँ शिवोहं जान। अरु अद्वैत आनंद बखान ॥४॥

शब्दार्थ — प्राज्ञ = बुद्धिमान, चतुर, दक्ष, ज्ञानी, जीवात्मा। शिवोहं = शिवोऽहम्, मैं कल्याण स्वरूप हूँ।

भावार्थ — मनोमयकोश की अवस्था सुषुप्ति, मुक्ति भगवान के रूपवाला हो जाना, अभिमान ज्ञान का है ॥ ३ ॥ इसमें दीक्षा शिवोऽहम् की जाननी चाहिये तथा अद्वैत बोध का आनन्द कहा जाता है ॥ ४ ॥

इच्छा शक्ति साधन निदिध्यास। क्षेत्रज्ञ निर्णय जानहु तास ॥५॥
देव रुद्र तहाँ के होय। मंदाग्नि औ तमोगुण सोय ॥६॥

शब्दार्थ — निदिध्यास = अनवरत चिंतन । क्षेत्रज्ञ = क्षेत्र-शरीर-प्रकृति का जानने वाला आत्मा ।

भावार्थ — इस कोश की शक्ति इच्छा है, साधन लक्ष्यका निरंतर चिंतन और निर्णय क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ अर्थात् ईश्वर और प्रकृति का विवेक है ॥ ५ ॥ इस कोश का देवता रुद्र है, इसकी अग्नि मंद तथा गुण तम है ॥ ६ ॥

विशेष — इस कोश का योगमार्ग होने से उसमें आहार-विहार स्वल्प होता है; अतएव मंदाग्नि रहती है और योगनिद्रा रहने से तमगुण रहता है ।

तृतीय पाद गायत्री जान । चाचरी मुद्रा रुद्र गुण खान ॥७॥
वाचा पश्यंती मात्रा मकार । स्थान बास हृदय सो द्वार ॥८॥

शब्दार्थ — तृतीत पाद = 'स्वः', स्वर्ग । चाचरी मुद्रा = योगकी एक मुद्रा जिसमें आंखें बंद करके चिमचिमाहट का प्रकाश देखते हैं ।

भावार्थ — इसकोश में गायत्री का तीसरा चरण 'स्वः' है जो स्वर्गवाचक है, चाचरी मुद्रा है और तमगुण के खान रुद्र देवता हैं ॥ ७ ॥ हृदय में रहने वाली पश्यंती वाणी है, ॐ की तीसरी मात्रा 'म' है, इसके भी स्थान और द्वार हृदय हैं ॥ ८ ॥

अर्ध अंगुष्ठ देह को भास । ब्रह्म कहै कुंडल्या जास ॥९॥
गोह्लाट हृदय अस्थान । दक्षिण दिशा देव यम मान ॥१०॥

शब्दार्थ — कुंडल्या = कुंडल्यब्रह्म । गोह्लाट = गोलचक्र ।

भावार्थ — इस कोश में योगी लोगों द्वारा कल्पना में दिखता हुआ अर्धअंगुष्ठ का शरीर माना है जो हृदय का भास या चमक है । और जिसे कुण्डल्य ब्रह्म कहते हैं वह भी हृदय में कल्पना से दिखता हुआ गोल प्रकाश है, जो जड़भास है ॥ ९ ॥ हृदय में ही गोह्लाट यानी गोला चक्र माने हैं; कहते हैं इसका स्थान नेत्र में भी है । इस कोश की दिशा दक्षिण (दाहिना हाथ) है तथा इसके देवता यमराजा हैं ॥ १० ॥

मध्य शून्य औ प्रलय क्रिया । लाल वर्ण मात्रा कल्पत्या ॥११॥
तेज तत्त्व वेद अथर्वण धाम । उपदिशा अग्नेय अग्निदेव नाम ॥१२॥

शब्दार्थ — मध्यशून्य = हृदयाकाश । प्रलयक्रिया = सुषुप्ति । कल्पत्या = कल्पना । अग्नेय = दक्षिण पूरब का कोण ।

भावार्थ — मनोमय कोश में हृदय का आकाश, सुषुप्तिरूप प्रलय क्रिया, हृदयकमल का लाल रंग, श्वास में मात्राओं की कल्पना, अग्नि तत्त्व, अथर्ववेद जो पंचतत्त्व को ही ब्रह्मधाम (ब्रह्मस्वरूप) मानता है, कोण की दिशा अग्नेय तथा उसका देवता अग्नि माना है ॥ ११ ॥ १२ ॥

बाजा शंख वायु है प्राण। महदाकाश मार्ग कपि जान ॥१३॥
कमलवर्ण रक्त अरु श्वेत। ऋचा तहाँ सतपुरुष समेत ॥१४॥

शब्दार्थ — महदाकाश = अनन्त आकाश। मार्गकपि = कपिमार्ग, बन्दर जैसे कूद के चलता है, वैसे एक चक्र से दूसरे चक्र पर हठयोगी वायु ले जाते हैं।

भावार्थ—इस कोश में अनाहतनाद के बाजा में से शंख का बाजा है, वायु प्राण है, आकाश महत् है और मार्ग कपि का जानना चाहिये ॥ १३ ॥ हृदय का द्वादशदल कमल तथा मस्तक का सहस्रदल कमल के रंग लाल और उजले हैं। वहाँ अथर्वेद के मन्त्र तथा सतपुरुष का वर्णन करते हैं ॥ १४ ॥

ज्योति कला लोक कैलाश। आनंदमय तहँ भोगविलास ॥१५॥
शांभवी तहाँ मुद्रा झीनि। कूर्म वायु सूक्ष्म परवीनि ॥१६॥

शब्दार्थ — शांभवी = शम्भु यानी शिव सम्बन्धी मुद्रा; ब्रह्मरन्ध्र।

शब्दार्थ — इसकोश में हृदय में कैलाश पर्वत माना है उसमें कल्पना से दिखते हुए ज्योतिप्रकाश को शिवकी कला या अंश माना है। उसमें ध्यानमग्नता को आनन्द-मय भोग विलास कहते हैं ॥ १५ ॥ वहाँ सूक्ष्ममुद्रा शांभवी माना है, यह वस्तुतः शिवतत्त्व में मग्नता है। प्रवीणयोगी लोग इसमें सूक्ष्म कूर्मवायु को मानते हैं जो नेत्रों के पलकों को गिराता-उठाता है और योग में सहायक है ॥ १६ ॥

बुद्धि बोधव्य तहाँ व्यवहार। सौलेष्टता भूमि कहै परचार ॥१७॥
अभाव अन्योन्या जानहु तीन। मन के कोश कहै परबीन ॥१८॥

शब्दार्थ — बोधव्य = बोध करने योग्य, निश्चय। सौलेष्टता = अच्छी तरह से लिपटा हुआ एकीकरण, एकाग्रता। अभाव अन्योन्या = अन्योन्याभाव, एक में दूसरे का अभाव जैसे घट में पट का तथा पट में घट का अभाव।

भावार्थ— इस मनोमय कोश में केवल बुद्धि से किसी बात का निश्चय करना रूप व्यवहार रहता है। इसकोशमें योगी लोग सौलेष्टता भूमिका का वर्णन करते हैं जो एकाग्रता कहलाती है ॥ १७ ॥ इस कोश का अभाव अन्योन्या है, अर्थात् योग से प्राप्त ईश्वर शुद्ध है न उसमें अन्नमय, प्राणमय तथा मनोमय तीनों कोश हैं और न तीनों कोशों में वह है। इस प्रकार विद्वान लोग मनोमयकोश का वर्णन करते हैं ॥१८॥

छंद--मनोमय कोश कारण देह याके, चारु अंतःकरणयं।
तहाँ सूक्ष्म तत्त्व प्रकृति संयुत, एक ते बहु विधि भयं ॥
गन यक्ष योनि निवास कीन्हों, चौरासी कारण अयं।
संधिक दशा आशा सो झाँई, मनोमय वर्णन अयं ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — चारु अन्तःकरणयं = चतुष्टय अन्तःकरण— मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार । संधिकदशा = ईश्वर की कल्पना । झाँई = धोखा ।

भावार्थ — मनोमय कोश की देह 'कारण' है जो चतुष्टय अन्तःकरण तथा सूक्ष्म तत्त्व-प्रकृति का संयुक्त अभ्यासबीज है, जिस एक अज्ञानरूप कारण देह से जीव अनेक प्रकार की योनियों में भटकता है । इस कारण देह को लेकर देवगण तथा यक्ष आदि योनियों की मिथ्या कल्पना मनुष्यों ने कर रखी है, वस्तुतः यह चौरासी—मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज में जाने का कारण है । इस मनोमयकोश में इस बात का मुख्य रूप से वर्णन किया गया कि किस प्रकार योगी लोग धोखे में पड़कर देह के भास को ही ईश्वर मान कर उसमें भूले हैं ॥ ६ ॥

विशेष — देव, यक्ष आदि योनि केवल कल्पित हैं । मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि आदि योनि ही सत्य हैं ।

सोरठा–इन्ह अंगन संयुक्त, मनोमय कारण देह यह ।
बंधन त्रिगुण युक्त, ब्रह्म निष्ठा में जीव बँधे ॥ १ ॥

शब्दार्थ — त्रिगुण = सत, रज, तम ।

भावार्थ — उपर्युक्त भागों के सहित यह मनोमयकोश या कारणदेह है, इनमें उलझे हुए लोग त्रिगुणात्मक बंधनों में बंधे हैं । यदि कोई इनसे छूटा तो अपने शुद्ध स्वरूपसे पृथक किसी कल्पित ब्रह्म की निष्ठा में बंधमान हुआ ॥ १ ॥

विशेष — ब्रह्म की कल्पना का दिग्दर्शन आगे दो कोशों में होगा ।

इति मनोमय कोश संपूर्ण ॥

४–अथ ज्ञानमय कोश वर्णन

छंद–ज्ञानमय यह कोश जानो, महाकारण देह को ।
उतपति खानि विकार पूरण, ब्रह्म वर्ण अदेह को ॥
देवादि इच्छा करें ताकी, ज्योति रूप प्रत्यक्ष है ।
साक्षी त्रिगुण को आदि कारण, गुप्त राखै स्वच्छ सो ॥७॥

शब्दार्थ — महाकारण = ब्रह्म । वर्ण = रंग, वर्णन ।

भावार्थ — यह ज्ञानमयकोश समझो जिसकी देह महाकारण ब्रह्म है । उस ब्रह्म को यद्यपि देहातीत वर्णन करते हैं तथापि उसी को जगत की उत्पत्तिखानि कहकर विकार-पूर्ण सिद्ध कर देते हैं । (कहते हैं) उसे ज्योति स्वरूप प्रत्यक्ष मानकर देवादि भी उसकी प्राप्ति की इच्छा करते हैं । वह त्रिगुणात्मक जगत का साक्षी तथा मूल कारण है फिर उसके विषय में मनमें गुप्तभाव से स्वच्छ होने का भी दावा रखते हैं ॥ ७ ॥

विशेष — जो जगत का स्वाभाविक कारण है वह स्वच्छ एवं शुद्ध कदापि नहीं हो सकता ।

दोहा-ज्ञानमये यह कोश में, भटके बहु अज्ञान ।
गुरू पारख पाये बिना, मानि मानि भरमान ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — मानि मानि = सत्य समझ कर ।

भावार्थ — इस ज्ञानमय कोश में भी बहुत अबोधी मनुष्य भटकते हैं, और सद्गुरु से यथार्थ पारख की प्राप्ति हुए बिना झूठी बातों को सत्य समझ कर चक्कर काटते हैं ॥ ६ ॥

चौकड़ी-४

ज्ञानमय कोश महाकारण रूप । आश्रम चौथा संन्यास स्वरूप ॥ १ ॥
महाप्रलय शिवलिंग बखान । दशा मौन तुर्या पद मान ॥ २ ॥

शब्दार्थ — महाप्रलय = सब का ब्रह्म में लय । शिवलिंग = मुक्त स्वरूप परमात्मा ।

भावार्थ — ज्ञानमयकोश का महाकारण (ब्रह्म) स्वरूप है जिसे सबका उत्पादक माना है । इसका चतुर्थ संन्यास आश्रम बतलाते हैं ॥ १ ॥ इसमें सब का लयकरके एक ब्रह्म रह जाना रूप महाप्रलय है तथा इसमें कल्याणस्वरूप परमात्मा का लक्षण बताया गया है । इस ब्राह्मी स्थिति में ब्रह्मवादी मौनदशा धारण करके गायत्री के चतुर्थ (तत्) तुरीय पद में स्थित रहते हैं ॥ २ ॥

मुक्ति सायुज्य बखानै वेद । अभिमानी प्रत्यगात्मा भेद ॥ ३ ॥
सोहं दीक्षा विदेहानंद । साधन साक्षात्कार आनंद ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — प्रत्यगात्मा = सूत्रमणिन्याय सबमें व्यापक और सबसे भिन्न आत्मा या ब्रह्म; यहाँ 'प्रत्यक्' का अर्थ है भीतर, अर्थात् वह आत्मा जो सारे विश्व के भीतर हो । सोहं = सोऽहम्, वह मैं हूँ ।

भावार्थ — इसकोश की मुक्ति सायुज्य अर्थात् ब्रह्ममें मिल जाना है ऐसा वेद कहता है । इसकोश में अभिमान का भेद प्रत्यगात्मा है, अर्थात् मैं सबमें व्यापक हूँ यह अहंकार है ॥ ३ ॥ दीक्षा 'सोऽहम्' है तथा आनन्द विदेह का है और साधन स्वयं प्रत्यक्ष ब्रह्मानन्द है ॥ ४ ॥

निर्णय आतमा ईश्वर सो देव । ज्ञान शक्ति ॐ पद भेव ॥ ५ ॥
बड़वाग्नि मुद्रा अगोचरी । मात्रा इकार वाचा परा परी ॥६ ॥

शब्दार्थ — भेव = भेद, रहस्य । अगोचरी = इन्द्रियों से परे । इकार = अर्धमात्रा 'ँ' । वाचा परा = परा वाणी ।

भावार्थ — इसकोश में जगत असत्य तथा आत्मा सत्य है यह निर्णय, सर्वशक्तिमान ईश्वर देवता, ओम् पद का रहस्यरूप ज्ञान की शक्ति, बड़वाग्नि के समान जगत बनने की इच्छा, मुद्रा इन्द्रियों से परे ब्रह्म में ध्यान, ओम् की चौथी अर्धमात्रा 'ँ' तथा वाणी परा है ॥ ६ ॥

विशेष — कहते हैं कि परा वाचा का पिंडांड में नाभि तथा ब्रह्माण्ड में तालु स्थान है ।

शुद्ध सत्वगुण ईश्वर देव । तहाँ स्थान मूर्धनी सेव ॥ ७ ॥
मसूर प्रमाण काया वखान । ब्रह्म अर्धचंद्र अनुमान ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **मूर्धनी**=मूर्द्धा-मूर्धा, मुख के भीतर का तालु और कंठ के बीच का वह भाग जो मस्तक या शीर्षस्थानके ठीक नीचे पड़ता है और जहाँ से मूर्द्धन्य वर्णोंका उच्चारण होता है; नाभिस्थान । **प्रमाण**=माप ।

भावार्थ — इस कोश का गुण शुद्ध सत्व है और देवता ईश्वर है, उसका निवास स्थान ब्रह्माण्ड में तालु तथा पिंडांड में नाभि है जिसका सेवन ज्ञानी जन करते हैं ॥७॥ महाकारणदेह का आकार मसूर प्रमाण मानते हैं जिसे छोटा बिंदु के रूप में ध्यान में देखते हैं । और अर्धचन्द्राकार ब्रह्मका अनुमान कर रखे हैं ॥ ८ ॥

पुण्यगिरी अउठ पीठ स्थान । उत्तर दिशा कुबेर वखान ॥ ९ ॥
क्रिया सूर्य प्रत्यक्ष तहाँ जान । हरा वर्ण सर्वशून्य मान्य ॥१०॥

शब्दार्थ — **पुण्यगिरी**=पुण्य का पर्वत, ऋद्धि-सिद्धि-प्राप्ति का स्थान । **अउठपीठ**=नाभि या कपाल, जहाँ त्रिकुटी, श्रीहट तथा गोल्लाट की एकता मानी है ।

भावार्थ — इस कोश में नाभि या मुख्य कपाल कुहर स्थान है जिसमें ध्यानस्थ हो जाने से पुण्यों की महाढेरी या ऋद्धि-सिद्धि की प्राप्ति होना माना है । इस कोश की दिशा उत्तर या बायाँ हाथ है और इसके देवता कुबेर कहे जाते हैं ॥ ९ ॥ यह ज्ञानमय कोश सूर्यवत प्रकाशन करता है जिसमें अन्य पूर्वकथित तीन कोश ज्ञानयुत रहते हैं । ध्यान में हरा रंग और जगत का लय रूप सर्वशून्य माना है ॥ १० ॥

उच्चार अर्धमात्रा सो होय । वेद ऋग तहाँ जानहु सोय ॥११॥
तत्व वायु तहाँ वायु समान । बाजा तहाँ मृदंग वखान ॥१२॥

शब्दार्थ — **वायु समान**=समानवायु ।

भावार्थ — इस कोश में उच्चारण अर्धमात्रा का है और वेद ऋग समझना चाहिये ॥११॥ इसमें तत्व वायु (प्राण) समान है और अनाहत नाद में बाजा मृदंग का माना है ॥ १२ ॥

वायव्य उपदिशा वायु सो देव । चिदाकाश आकाश गनेव ॥१३॥
वर्ण कमल श्याम शुद्ध पीत । मारग मीन ज्ञान सुचीत ॥१४॥

शब्दार्थ — वायव्य = पश्चिम-उत्तर कोण । **मारग मीन** = मीनमार्ग, जैसे मछली जलधारा के उल्टा चलती है वैसे वायु को ऊपर चढ़ाकर ब्रह्मध्यान में मग्न होना । **सुचीत** = सुचित, दृढ़ मन से ।

भावार्थ — इस कोश में कोण की दिशा वायव्य, देवता वायु, तथा आकाश चेतनाकाश कहा जाता है ॥ १३ ॥ नाभि के दश दल कमल का रंग श्याम तथा शुद्ध पीला माने हैं । श्वासा उलटा ब्रह्माण्ड में चढ़ाकर ज्ञान में दृढ़ मन से लगे रहना रूप मीनमार्ग इसका मार्ग है ॥ १४ ॥

ऋचा ईश्वर कला सो जोय । ज्वाला लोक अधर तहाँ होय ॥१५॥
ईश्वरमय तहाँ भोग विलास । आत्मभावनी मुद्रा तास ॥१६॥

शब्दार्थ — **ऋचा** = मंत्र । **ज्वालालोक** = प्रकाशपुंज लोक । **अधर** = अंतरिक्ष । **आत्मभावनीमुद्रा** = मैं आत्मा सबका साक्षी हूँ यह भावाकार वृत्ति ।

भावार्थ—इस कोश की कला वेद मंत्र रूपी ईश्वर (वेद भगवान) है, अंतरिक्ष में प्रकाशपुंज ब्रह्मलोक माना है ॥१५॥ यहाँ ईश्वर का स्वरूप धारण करके भोग-विलास करना माना है और इस कोश की मुद्रा आत्माकार की भावना में निमग्नता है ॥१६॥

किंकिरा सूक्ष्म तहाँ बाय । चित्त को स्वभाव चैतन्य बताय ॥१७॥
भूमि सुलीन अभाव अत्यंत । ज्ञान प्रकाश निर्णय सम्यंत ॥१८॥

शब्दार्थ—**सुलीन** = अच्छी तरह लीन हो जाने का भाव । **सम्यंत** = पूर्ण ।

भावार्थ—इस कोश में सूक्ष्मवायु किंकिरा (कृकल) है, जिससे छींक आती है । इस कोश में चित्त का स्वभाव ज्ञानपूर्ण बताया गया है ॥१७॥ इसकी भूमिका सुलीन अर्थात् अच्छी तरह वृत्तिलयता है जहाँ जगत का अत्यंताभाव माना गया है । इसमें पूर्ण निर्णय से ज्ञानप्रकाश माना है ॥१८॥

छंद—इमि ज्ञानकोश बखान वेद, प्रमाण महाकारण कह्यो ।
अभिन्न हं चिद खानि उतपति, जीव तेहि परवश रह्यो ॥
साक्षी विकल्प समाधि पूरण, निर्विकल्प इच्छा धरे ।
बहु कलेश देश अनामयं, सेवंत जे पिस आदरे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **अभिन्न** = एक रूप, ब्रह्म जगत की एकता । **हं** = हम्, एकोऽहम् बहुस्याम्, एक मैं बहुत हो जाऊँ । **विकल्प** = विभिन्नता; संदेह, अज्ञान; चिंतन । **निर्विकल्प** = विकल्प से रहित, ज्ञाता, ज्ञेय आदि के भेद तथा विशेष्य—विशेषण के

सम्बंध से रहित वह ज्ञान जिसमें केवल ब्रह्म और आत्माकी एकरूपता का अखण्ड बोध होना मानते हैं। अनामयं = अनामय, रोगरहित। पिस = पिसे जाना, दुखी होना।

भावार्थ — वेद के प्रमाण से उपर्युक्त प्रकार से ज्ञानमयकोश तथा महाकारण देह का वर्णन किया गया। "मैं ब्रह्म जगत से अभिन्न हूँ", यह भावना ही जगत-उत्पत्ति का कारण या भवजाल है जिसके वश में पड़े जीव अनादिकाल से नाच रहे हैं। ज्ञानी लोग साक्षी व सविकल्प एवं सचिंतन रूपी समाधि को पार कर पूर्ण निर्विकल्प रूप आत्मा और ब्रह्म की एकता की अवस्था में पहुँचने की इच्छा धारण किये हुए हैं। परन्तु वे यह नहीं जानते कि तथाकथित अनामय स्वरूप ब्रह्म जगत की अभिन्नता रूपी महारोग से पूर्ण है; अतः जो लोग उसका आदर पूर्वक सेवन करते हैं वे जगत चक्कर में पीसे जाते हैं ॥८॥

सोरठा—ऐसो निर्मल ज्ञान, खानि कलेश को बीज है।
जो पै संत सुजान, परख बुद्धि तेहि ना गहै॥ २॥

शब्दार्थ—खानि = उत्पत्ति स्थान। सुजान = समझदार।

भावार्थ—इस प्रकार ऊपर से निर्मल दिखता हुआ उपर्युक्त ब्रह्मज्ञान सबका उत्पत्ति कारण तथा जगत से अभिन्न होनेसे दुःखों का बीज है। अतः जो सच्चे समझदार परखबुद्धि वाले श्रेष्ठ पुरुष होंगे वे इसे नहीं ग्रहण कर सकते ॥२॥

विशेष – ब्रह्म जगत का कारण है अतः वह मुमुक्षुओं को त्याज्य है। अपना चेतन स्वरूप शुद्ध है; अतः अपने आप में संतुष्ट होना चाहिये।

इति ज्ञानमय कोश संपूर्ण

५—अथ विज्ञानमय कोश वर्णन

छंद—अब सुनहु संत समान चित, विज्ञानमय पूरण अयं।
कैवल्य देह सो ब्रह्म अद्वै, अनामय अव्यक्त स्वयं॥
जो परात्पर निर्वचन सब पर, वेद अमल भनंत जे।
ते लखहु सज्जन परखि गुरुमुख, देख सत्त भासंत जे॥ ९॥

शब्दार्थ — समान = सावधान। अनामय = नीरोग। अव्यक्त = अप्रकट; अज्ञात। परात्पर = सबसे परे। निर्वचन = मौन, चुप; कथन में न आने वाला। भनंत = कहना।

भावार्थ — हे संतो! सावधान मन से सुनो। अब मैं पूर्ण विज्ञानमय कोश का वर्णन करता हूँ। इसकी देह कैवल्य है जिसका स्वरूप अद्वैत ब्रह्म है, जो नीरोग, अज्ञात एवं अदृश्य, स्वतः, परात्पर, कथन में न आने वाला, सर्वोपरि है और जिसको वेद

निर्मल कहते हैं। हे सज्जनो ! जो लोगों को सत्य प्रतीत होता है उस ब्रह्म की काल्पनिकता गुरुमुख वचनों से परख कर देखो ॥९॥

दोहा–परमहंस मत प्रगट यह, झांईं प्रथम विकार।
यह अनुरागी जीव कहँ, खानी कलेश अधिकार ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — झाँईं =छाया, धोखा। प्रथम = सर्वोच्च मानवतन। अधिकार= हक; योग्यता; पात्रता।

भावार्थ — यह विज्ञानमय कोश का विस्तार प्रत्यक्ष परमहंसों का मत है जो सर्वोच्च मानव तन धारी के अंतःकरण का धोखा या भ्रम है। जो व्यक्ति इसकोश के प्रपंच में अनुरक्त हैं वे बारम्बार जन्ममरण के दुःखों के पात्र हैं ॥७॥

विशेष — ब्रह्म जगत से अभिन्न होने से ब्रह्म में निष्ठा रखने वालों की दृष्टि जड़ाध्यास से निवृत्त नहीं हो सकती; अतएव वे जन्मादि के ही अधिकारी बने रहते हैं।

चौकड़ी—५

विज्ञानमय कोश को सुनो विस्तार। जाते खानी कलेश अपार ॥ १ ॥
विज्ञानकोश देह कैवल्य। आश्रम परमहंस निश्चल्य ॥ २ ॥

शब्दार्थ — निश्चल्य = स्थिर।

भावार्थ — विज्ञानमयकोश का विस्तार सुनो जिसके अध्यास से जीव नाना खानियों में अनेक दुःख पाता है ॥१॥ विज्ञानमय कोश का कैवल्य देह है; और आश्रम परमहंस है जो अचल ब्रह्म का साधन क्षेत्र है ॥२॥

प्रसाद चिन्ह प्रलय एकांत। दशा सुजड़ जानो विभ्रांत ॥ ३ ॥
उन्मनि वाचा सहजारूप। निर्गुणमय मुक्तिता भूप ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — प्रसाद = निर्मलता, स्वच्छता। एकांत = अत्यंत। उन्मनि = उन्मन, उदास।

भावार्थ — इस कोश में अंतःकरण की निर्मलता लक्षण है, प्रलय है जगत की अत्यंत निवृत्ति अर्थात् अपने से पृथक जगत न मानना। दशा जड़भरत आदि के समान संसार में मूढ़वत या पागलवत चेष्टा करना है ॥३॥ वाणी-वचन कहने-सुनने से उदास हो जाना और हर समय सहजरूप से रहना, गुणातीत हो जाना और सायुज्यादि सभी मुक्तियों से ऊपर सम्राटवत् हो जाना ॥४॥

तहाँ निरंजन आप अभिमान। दीक्षा अनामयोहं जान ॥ ५ ॥
ब्रह्मानंद मगनता पाय। साधन ज्योति स्वरूप कहाय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — निरंजन = निर्दोष। अनामयोहं = अनामयोऽहम्, अनामयः + अहम, मैं नीरोग हूँ।

भावार्थ — विज्ञानमय कोश में मैं निर्दोष ब्रह्म हूँ यह अभिमान है, और "अनामयोऽहम्" यह दीक्षा जानो ॥५॥ इसमें ब्रह्मानन्द की मग्नता की प्राप्ति होती है और ज्योति स्वरूप की साधना की जाती है ॥६॥

विशेष — 'मैं निर्दोष ब्रह्म हूँ' इसे अभिमान इसलिये बताया गया है क्योंकि इसी में जगत होने का बीज है।

कूटस्थ निर्विकलपता मान। निर्णय देव तहाँ शक्ति बखान ॥ ७ ॥
शक्ति परा है सबकी खान। ब्रह्माग्नि पदारथ पद मान ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — कूटस्थ = कूट + स्थ, कूट = अहिरन, निहाई; स्थ = स्थित- निर्विकार। परा = मूलाधार में स्थित रहने वाली नाद रूपिणी वाणी; ब्रह्मविद्या।

भावार्थ — जैसे लोहार-सोनार की निहाई पर अनेक वस्तुयें पीट-काट कर बनायी जाती हैं और वह एक समान अचल रहती है; वैसे ब्रह्म में विश्व बनता-मिटता है; परन्तु ब्रह्म एकरस निर्विकार रहता है यह ब्रह्म का कूटस्थ या निर्विकल्प होना माना है। ज्ञानमय कोश में निर्णय किये हैं कि ईश्वर महान देवता तथा सर्वशक्तिमान है ॥७॥ ब्रह्मविद्या रूपी परा शक्ति सारे जगत का मूल माना है। और ब्रह्म को परम-पदार्थ मानकर उसकी ज्ञानाग्नि में द्वैत का शमन बताया है यही ब्रह्माग्नि है ॥८॥

सर्वसाक्षी मुद्रा ताके लक्ष। वाचा परात्पर अहै प्रत्यक्ष ॥ ९ ॥
मात्रा यं निर्गुण गुण तहाँ। शिव देव गुण कै है जहाँ ॥१०॥

शब्दार्थ — वाचा परातपर = वाणी से अत्यंत परे। यं = विंदु '०'।

भावार्थ — विज्ञानमयकोश में 'ब्रह्म सबका साक्षी' ऐसा लक्ष्य में रखना सर्व-साक्षी मुद्रा है। वह ब्रह्म वाणी से अत्यंत परे है और प्रत्यक्षभूत जो कुछ है सब वही है ॥९॥ इसमें ओम् की मात्रा विंदु '०' है और गुणनिर्गुण अर्थात् गुणातीत है। इस निर्गुण तत्त्व के देवता शिव जी हैं जिनका गुण कल्याण करना है ॥१०॥

अस्थल शिखा ब्रह्ममय बिंदु। नीलवर्ण तहाँ क्रिया है इंदु ॥११॥
स्थान सूक्ष्म ब्रह्मरंध्र जान। भ्रमरगुफा ताको परवान ॥ १२॥

शब्दार्थ — इन्दु = चंद्रमा। ब्रह्मरंध्र = मस्तक के मध्य में माना जाने वाला एक छेद जिससे होकर प्राण निकलने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होना माना है।

भावार्थ — इस कोश में सिर के मध्य स्थल में ब्रह्मस्वरूपी विंदु माना है। कहते हैं वह ध्यान में नील रंग का प्रतीत होता है और उसमें ध्यान की स्थिरता के कम-वेशी से चन्द्रमा की क्रिया के समान कम-वेशी शीतलता एवं शांति का अनुभव होता है ॥११॥ ब्रह्मरंध्र स्थान को अत्यन्तसूक्ष्म समझो, इसी को कोई भ्रमरगुफा भी कहते हैं। ब्रह्मरंध्र द्वार से जिस ज्ञानी के प्राण निकलते हैं वे ब्रह्मग्राम में जाते हैं, ऐसा मान रखा है ॥१२॥

दिशा ऊर्ध्वं ब्रह्म तहाँ देव । महाशून्य उच्चार समेव ॥१३॥
सुसंवेद तहाँ तत्त्व अकाश । उपदिशा अधो विष्णु को बास ॥१४॥

शब्दार्थ — **समेव** = लीन हो जाना । **सुसंवेद** = स्वसंवेद्य; जिसका ज्ञान केवल अपने को हो सके ।

भावार्थ — इस कोश की दिशा ऊपर (ब्रह्माण्ड) की है, वहाँ का देवता साक्षात ब्रह्म है। उच्चारण है महाशून्य में लीन हो जाना अर्थात् मौन ॥१३॥ इस कोश का वेद स्वसंवेद्य अर्थात् स्वतः अनुभूति है । और तत्त्व आकाश है जिसे ब्रह्मरूप मान रखा है । कोण की दिशा नीचे की है जहाँ विष्णु का निवास माना है ॥१४॥

बंशी नाद वायु तहाँ व्यान । निजाकाश माकाश बखान ॥१५॥
पद्म रंग पीत अरु श्वेत । मारग शेष सब परके हेत ॥१६॥

शब्दार्थ — **व्यान** = व्यान वायु जो शरीर भर में रहकर जोड़ों को घुमाता है। **निजाकाश** = अपना आकाश स्वरूप ब्रह्म । **माकाश** = महदाकाश, अनन्त आकाश । **शेष** = अंत, लय । **परके हेत** = दूसरे के लिये ।

भावार्थ — इस कोश में अनाहत नादों में वंशी का मधुर नाद है, व्यान वायु है, अनन्त आकाश के समान अपना आकाश स्वरूप ब्रह्म कहा गया है ॥१५॥ ब्रह्माण्डस्थित सहस्त्र दल कमल का रंग पीला और श्वेत है । इस कोश का साधनामार्ग है सब कुछ का ब्रह्म में अंत या लीन कर देना । आचरणता उपदेशादि जो कुछ विज्ञानी पुरुष करते हैं दूसरे के लिये ही अर्थात् लोकसंग्रह के लिये, वे स्वयं विधि-निषेध से अपने को परे कहते हैं ॥१६॥

ऋचा अघोर लोक निराधार । कलातीत जानहु निराकार ॥१७॥
ब्रह्ममई तहाँ भोग बखान । पूर्णबोधनी मुद्रा मान ॥ १८॥

शब्दार्थ — **अघोर** = अ + घोर, अ = रहित; घोर = भयानक; गहरा; कठोर; बुरा; दुःख—**अघोर** = दुःखरहित । **पूर्णबोधनी** = पूर्णबोधिनी मुद्रा, वह ध्यान जिसमें ब्रह्मका पूर्ण बोध हो ।

भावार्थ — इस कोश में दुःखरहित ब्रह्मानुभव ही वेद की ऋचा समझो, लोक आधार रहित है, इसकी कला कलातीत—अर्थात् मायिक रचना से भिन्न निराकार जानो ॥१७॥ इस कोश का भोग-विलास ब्रह्ममयता कहा गया है और इसकी मुद्रा पूर्णबोधिनी समझो जिसमें ब्रह्म का संपूर्ण अनुभव होना माना है ॥१८॥

धनंजय झीनी वायु गनाय । अंतः निर्विकल्पता पाय ॥१९॥
तहाँ अभाव भूमिका जान । भावातीत भाव पहिचान ॥२०॥
है विज्ञानकोश वर्णन येह । कहबे मात्रिक कहिये देह ॥२१ ॥

शब्दार्थ — **धनंजय** = वह वायु जो योग मार्ग की साधना में बल देता है तथा मृतक शरीर को फुलाता है। **भावातीत** = समस्त भावनाओं तथा अस्तित्वों से परे।

भावार्थ — इसकोश में झीना वायु धनंजय कहा गया है। इसकोश में अंतःकरण संकल्प-विकल्पों से रहित निर्विकल्प हो जाता है॥ १९ ॥ इसमें अभावभूमिका है जहाँ पर सबका अभाव होकर ब्रह्म ही रहता है। इसे भावातीत भाव समझो जो समस्त भावनाओं एवं अस्तित्वों से परे है ॥ २० ॥ यह विज्ञानमयकोश का वर्णन हुआ। कहने मात्र के लिये ही इसे कैवल्य देह कहा गया है, अन्यथा ब्रह्मवादी जन इसे शुद्ध ब्रह्म स्वरूप ही मानते हैं॥ २१ ॥

छंद-है नहिं कछु तहाँ नहि संभव, वर्णन वेद बखानही।
निर्वचन परे परात्पर सो, ब्रह्म कैवल्य मानही॥
जहाँ नहिं कछु सभ भये कहाँसे, कहहु सत्य विचारिकै।
झांईं संभव प्रथम गांसी, वेदाकार देखु निहारिकै॥१०।

शब्दार्थ — **झांईं** = छाया; धोखा; कल्पना। **संभव** = उत्पन्न। **प्रथम** = सर्वोच्च मानव शरीर। **गांसी** = तीर आदि का फल, हथियार की नोक; गाँठ; कपट; चुभने वाली बात; तात्पर्य में अज्ञान।

भावार्थ — वेद विस्तृत रूप में कहते हैं कि ब्रह्म में कुछ मायिक प्रपंच नहीं है; अतः उससे कुछ उत्पन्न नहीं हो सकता, वह निर्विकार है, वाणी से कथन में न आने वाला, सबसे परे और अद्वैत माना गया है। (अब ग्रन्थकार वेदवादियों से पूछते हैं कि) जिस ब्रह्ममें कोई मायिक प्रपंच नहीं है तो यह त्रिगुणात्मक जगत कहाँ से प्रकट हुआ है, इस बात को ईमानदारी से विवेकपूर्वक कहने की कृपा करें। वस्तुतः परख करके देखा जाय तो बात यह सत्य है कि संसार के सर्वोच्च प्राणी मानव के मन में यह भ्रम उत्पन्न हुआ कि हमसे पृथक कोई ब्रह्म है और वह शुद्ध है पुनः उसी में से संसार भी निकला है। यही हृदयकी अज्ञानग्रन्थि वेदवाक्यों का आकार लेकर संसार में प्रकट हो गयी ॥ १० ॥

दोहा-पंचकोश मत प्रगट यह, वेद कहै सत सोय।
परखदृष्टि बल तेहिसो, गुरू कृपा जब होय॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **परखदृष्टि** = परोक्षादृष्टि।

भावार्थ — उपर्युक्त पंचकोशों का विवरण दिया गया है, वेद इन्हें सत्य करके मानते हैं। जब पारखी सद्गुरु की कृपा से परोक्षादृष्टि की शक्ति प्राप्त हो जाती है तब करके सारासार का पता चलता है॥ ८ ॥

झांईं मूल विकार है, जाते भये अनेक।
गुरुगम परख प्रकाश लहु, करहु विचार विवेक॥ ९ ॥

शब्दार्थ — झांईं = ब्रह्म की मान्यता। **गुरुगम** = गुरु + गम, गुरु = सद्‌गुरु; गम = पहुँच, प्रवेश—गुरुज्ञान में प्रवेश।

भावार्थ — माना हुआ ब्रह्म मनुष्य के मन का भास है और वही सभी विकारों का कारण है। क्योंकि ब्रह्मवादी लोग उसी ब्रह्मसे विविधितापूर्ण संसार का उत्पन्न होना मानते हैं। अतएव हे मुमुक्षुओ! गुरुज्ञान में प्रविष्ट होकर परख की दिव्य दृष्टि प्राप्त करो और तब उसका विचार और विवेक करो ॥ ९ ॥

काल संधि औ झांईं, तीनिउ पंच समान।
पांच कोश परपंच रचि, भोरे सकल जहान ॥ १० ॥

शब्दार्थ — काल = जीव को अंश, प्रतिबिम्ब आदि होने की कल्पना। **संधि** = अलग ईश्वर मानकर उससे मिलने की कल्पना। **झांईं** = अपने आपको जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक मानने की कल्पना। **पंच** = पंचकोश। **समान** = सदृश, प्रविष्ट। **भोरे** = भुलाये।

भावार्थ — काल, संधि तथा झाँई इन तीनों की मानंदियाँ पंचकोशों के सदृश या उनमें समाई हैं। लोगों ने पंचकोशों का विस्तार करके संसार के सारे लोगों को भुला रखा है ॥ १० ॥

विशेष — त्वम्‌पद वाची जीव जिसे अंतःकरण विच्छिन्न एवं अंश स्वरूप माना है, काल वाणी के घेरे में है; यह अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशों का भोक्ता है। तत्पद वाची ईश्वर जिसे मायाविच्छिन्न माना है, संधि वाणी के घेरे में है; यह ज्ञान-मयकोश का भोक्ता है। असिपद वाची ब्रह्म जिसे अनंत और शुद्ध माना है, झाँई वाणी के घेरे में है; यह विज्ञानमय कोश का भोक्ता है।

वस्तुतः सारवाणी से ही जीवके वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। जीव का वास्तविक स्वरूप व्याप्य-व्यापक, अंश–अंशी तथा जड़से सर्वथा पृथक अविनाशी, शुद्ध चेतन है।

तत्त्वमसि अरु सोहं, वोहं ब्रह्म स्वरूप।
काल संधि अरु झांईं, ये ही विविध स्वरूप ॥ ११ ॥

शब्दार्थ — तत्त्वमसि = वह तू है। **सोहं** = सोऽहम्, सो मैं हूँ। **वोहं** = वोऽहम्, वह मैं हूँ।

भावार्थ — तत्त्वमसि, सोऽहम्, वोऽहम् आदि सब ब्रह्मस्वरूप के वाचक हैं। और ये सब काल, संधि तथा झाँई वाणी के घेरे के भीतर हैं। ये ही अनेकरूपों में होकर वेदांत के अनेक भेदप्रभेदों में बटे हैं ॥ ११ ॥

विशेष — जैसा कि इस बात की चर्चा कई बार 'विशेष' में की गयी है कि 'वह तू है' 'वह मैं हूँ' अर्थात् परम तत्त्व तू–मैं के रूप में विद्यमान व्यक्ति ही है। यह बात

सर्वथा उचित और सत्य है। परन्तु ब्रह्मवाद की दृष्टि से तू-मैं जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक हो जाने से तत्वमसि आदि वाक्यों का इस ग्रंथ में निरास किया गया है। यदि सही शब्द की परिभाषा कालक्रमानुसार गलत होने लगे तो कहीं-कहीं उस सही शब्द को भी छोड़ना पड़ता है।

आदि सोई सोइ मध्य है, अंत सोई परमान।
त्रिविधि घात यम जाल है, किये जीव हैरान ॥ १२ ॥

शब्दार्थ — परमान = मानना। घात = चोट; अहित। यमजाल = मनकी कल्पना।

भावार्थ — वही ब्रह्म सबका आरम्भक है, वही मध्य में विश्व के रूप में प्रदर्शित है तथा अंत में उसी में सब लीन हो जायगा—ऐसा मान रखा है। उपर्युक्त प्रकार से ब्रह्म में ही सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होने से जीव का उसमें अनुराग करने से अहित है। अतः यह मन की कल्पना जीवों को दुखी कर रखी है ॥ १२ ॥

विशेष — जब ब्रह्ममें उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय होना स्वभाव है तब उसमें अनुराग करने से जीव का मोक्ष कहाँ ? अतः मोक्ष के लिये सबसे विरक्त होना पड़ेगा।

जीव दुखी चाहे छुटन, बहु विधि करै उपाय।
रक्षक जानि शरण गहै, भोंदू तेहि भरमाय ॥ १३ ॥

शब्दार्थ — भोंदू = भोलेभाले।

भावार्थ — त्रिविधि ताप से पीड़ित जीव दुःखों से छूटना चाहते हैं और उसके लिये अनेक प्रकार के साधन भी करते हैं। वे अनेक मत के गुरुओं को अपना रक्षक जानकर उनका आश्रय पकड़ते हैं, परन्तु वे भोलेभाले लोग उन्हें और भटका देते हैं।

विशेष — जो स्वतः भोला है वह दूसरे को क्या वास्तविक ज्ञान देगा ?

नाना मति निज कलिप करि, फंदा रचै बनाय।
सेवक ताहि बनाय के, स्वामी आप कहाय ॥ १४ ॥

शब्दार्थ — मति = मत, सिद्धांत। फंदा = बंधन।

भावार्थ — भोले लोगों ने अपनी कल्पना से नाना सिद्धांतों को स्थिर करके अनेक बंधनों का निर्माण कर रखा है। अतएव आश्रय में आये हुए लोगों को वे अपना दास बनाकर (योग्यता न होने पर भी) अपने को स्वामी कहलाने लगते हैं ॥ १४ ॥

बिन गुरु पारख के लहै, काल जाल न लखाय।
बिना लखे यह जालके, सकलों सेवहिं आय ॥ १५ ॥

शब्दार्थ — काल = कल्पना, अज्ञान।

भावार्थ — यथार्थ सदगुरु से पारखबोध की प्राप्ति हुए बिना मनकी अनेक कल्पनाओं का जाल समझ में नहीं आता; और बिना इस जाल की वास्तविकता को समझे सभी मनुष्य उसी को सत्य मानकर उसका सेवन करते हैं ॥ १५ ॥

बंदीखान कलेशके, परे त्रिविधि सो जीव।
एकहिं एक पुकारहीं, गोहरावहिं कोइ पीव ॥ १६ ॥

शब्दार्थ — बंदीखान = बंदीखाना, कारावास; अज्ञानबंधन। त्रिविधि = सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी। पीव = पति; ईश्वर; मालिक।

भावार्थ — सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी—सभी मनुष्य दुःखपूर्ण अज्ञान के कारावास में पड़े हैं और भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं को पुकारते हैं तथा कोई अपना पति परमात्मा पृथक मानकर उसको हाँक लगाते हैं ॥ १६ ॥

विशेष — संसार के पवित्र नर-नारी को छोड़कर कहीं कोई देवी-देवता नहीं तथा अपने चेतन स्वरूप को छोड़कर कहीं कोई परमात्मा नहीं। अतएव आकाश में हाथ उठाना और शून्य में पुकारना छोड़कर ज्ञानी मानव से सत्संग करो तथा स्वस्वरूपज्ञान में शांत होओ।

सुख को लेश दिखायके, जीवहिं रखै भुलाय।
बंदीछोर बिनु कौन हैं जीवहिं लेहि छुड़ाय ॥ १७ ॥

इति पंचकोश रामरहस्य साहेब कृत गुरु की दया से संपूर्ण।

शब्दार्थ — लेश = अणु; सूक्ष्म अंश, अल्पता। बंदीछोर = बंधनछुड़ाने वाला सद्गुरु।

भावार्थ — खानी और वाणी के भूले लोग मनुष्यों को किंचित सुख का लालच देकर उन्हें मोटी-झीनी माया में भुला रखे हैं। अथवा मन क्षणिक सुख का लोभ देकर जीव को भुला रखा है। बंधन छुड़ाने वाले पारखी सद्गुरु बिना कौन ऐसा है जो मनुष्य को भवबंधनों से छुड़ा ले ? ॥ १७ ॥

प्रथम प्रकरण पंचकोश समाप्त।

सद्गुरवे नमः

पंचग्रंथी

द्वितीय प्रकरण

समष्टिसार

दया गुरु की ।। अथ समष्टिसार ग्रंथ लिख्यते

साखी

वारों तन मन धन सबै, पद परखावन हार ।
युग अनंत जो पचि मरै, बिन गुरु नहिं निस्तार ।। १ ।।

शब्दार्थ – **वारों**=वारना; बलि जाना, उत्सर्ग करना; निछावर करना । **पद**= स्वरूप ।

भावार्थ — स्वरूपज्ञान की परख कराने वाले सद्गुरु के चरणों में मैं अपने तन मन और धन को निछावर करता हूँ । चाहे कोई अनंतों युगों तक भटकता रहे, बिना यथार्थ सद्गुरु की शरण में गये मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता ।। १ ।।

संसारी पारख बिना, कैसे पावै ठौर ।
विविधि युक्ति अनमिल सबै, भोगवहिं और की और ।।२।।

शब्दार्थ — **ठौर**=स्थिति; शांति; छुटकारा । **और की और**=साँच का झूठ तथा झूठ का साँच ।

भावार्थ — खानी-वाणी रूप संसार में आसक्त लोग पारख की प्राप्ति विना कैसे शांति पा सकते हैं ? क्योंकि संसार में खानी जाल विषयभोग के और वाणी जाल मतमतांतर के अनेक तौर-तरीके हैं, अतः वे उसमें पड़कर तथा साँच का झूठ और झूठ का साँच मान कर बंधनों को झेल रहे हैं ।। २ ।।

पेड़ संधि संदेह के, मताधीश सब डार ।
अनबनि पत्र भौचक्र है, फूलै फलै जंजार ।। ३ ।।

शब्दार्थ — **संधि**=जोड़; भेद; छिद्र; कसर; भ्रम । **संदेह**=अनिश्चय । **मताधीश**=मतों के आचार्य । **अनबनि**=अनेक । **भौचक्र**=संसार चक्कर । **जंजार**=जंजाल; झंझट; बखेड़ा; बंधन ।

भावार्थ — भ्रम और अनिश्चय का वृक्ष है, अनेक सिद्धांत के आचार्यगण या उनके मत उसकी शाखायें हैं, उनकी अनेक वाणियाँ तथा विविध मान्यतायें उनके पत्र हैं जो महा संसारचक्कर है । इस प्रकार यह संदेह का वृक्ष बंधन ही फलता फूलता है ।

बास सतावै रस चखै, ये बहु करहि गोहार।
अंधा तेही तजै नहीं, गहै सो बारंबार ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — बास = गंध, वासना।

भावार्थ — उपर्युक्त संदेह एवं अज्ञान का वृक्ष कुवासनाओं में मनुष्य को उन्मत्त करता है, फिर भी लोग उसी का रसास्वादन करते हैं, और स्वरूपज्ञान न करके पृथक रक्षक की पुकार करते हैं। विवेकहीन मनुष्य उक्त भ्रम को नहीं छोड़ते, अपितु बारम्बार उसी को पकड़ते रहते हैं ॥ ४ ॥

(१)—अद्वैत ब्रह्म पर विचार तथा उसका निरास

चौकड़ी--१

राम रहस पूरण संसार। परखै कौतुक परखनहार॥ १ ॥
संशय रूप जगत परचार। दूसरी संशय ब्रह्म विचार॥ २ ॥

शब्दार्थ — संशय = अनिश्चय; अज्ञान; खतरा; संकट। **परचार** = प्रचार; व्यवहार।

भावार्थ — ग्रन्थकार पूज्य श्रीरामरहस साहेव कहते हैं कि परखने वाला कोई विवेकी पुरुष संपूर्ण संसार को एक तमाशा के रूप में देखकर उससे अनासक्त रहता है ॥ १ ॥ (साधारण लोगों के लिये) विश्व का व्यवहार संदेहपूर्ण है। इसके समाधान के लिये ब्रह्म का विचार किया गया है; परन्तु उससे समाधान न होकर वह स्वयं दूसरे संदेह के रूप में उपस्थित हो गया है ॥ २ ॥

विशेष — विवेकवान तो समझते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा शून्य आकाश अनादि तथा अनंत हैं। आकाश को छोड़कर अन्य चार तत्त्वों में गुण, धर्म, क्रिया, शक्ति, मेल तथा आकार — ये छः भेद हैं जिससे प्राकृतिक सृष्टि अनादि काल से होती आयी है और अनन्तकाल तक होती रहेगी। इससे पृथक अगणित चेतन जीव हैं जो व्याप्य-व्यापकरहित अजर, अमर हैं। वे अनादि से वासनावश खानियों में भटकते हैं और कर्मफल भोग भोगते हैं। जो जीव सत्संग में अपने स्वरूप का यथार्थ भेद जान लेता है वह सबसे अनासक्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है और वह प्रारब्धांत में पुनः देह न धारण करके सदाके लिये मुक्त होकर निराधार एवं असंग हो जाता है।

इस प्रकार इस जगत का कोई रचयिता नहीं। यह स्वयं अनादि है। जीव असंख्य हैं। वे मानवतन में कर्म करने में स्वतंत्र तथा फल भोगने में उन्हीं कर्मों के अधीन हैं जैसे प्याज खानेवाले को दुर्गंधित डकार आना स्वाभाविक है। वासनावश आवागमन है, वासना त्याग से मोक्ष। मोक्ष में सहायक विवेकीपुरुषों का सत्संग है इत्यादि।

उपर्युक्त बोध न होने से जगत को देखकर लोग इसके बनाने वाले का भ्रम करते

हैं। कहते हैं कि इस जगत को ब्रह्म ने बनाया है जो सर्वसमर्थ, दयालु, सर्वान्तरयामी है। परन्तु दुःख से भरे हुए और पाप से पूर्ण जगत को उक्त लक्षण वाले ब्रह्मकी रचना कहना और संदेहास्पद हो जाता है। दयालु पुरुष ऐसे दुःखमय जगतको क्यों बनायेगा ? यदि जगत दुःखमय नहीं है तो इससे मुक्ति लेने का उपाय शास्त्रों में क्यों बताया है ? सर्वशक्तिमान के सर्वत्र व्याप्त रहते हुए भी संसार में सर्वत्र पाप क्यों होते हैं ? ईश्वर अपने ही विषय में अनेक विरोधी विचारधाराओं को क्यों रहने देता है ? एक सज्जन मनुष्य भी कल्पना करता है कि संसार में पाप ताप न रह जाय; परन्तु अनादिकाल से ईश्वर की निद्रा आज तक भंग नहीं हुई कि वह जागकर संसार वालों को सुधार दे। ऐसे ईश्वर से अपने कल्याण की आशा करना वंध्यापुत्र के बल पर अपना काम छोड़ देना है। अतएव जगत की सृष्टि किसने की इस संदेह को मिटाने के लिये जो ईश्वर को खड़ा किया गया वह अपने आप में महा संदेहयुक्त ही नहीं, भ्रमपूर्ण है।

ब्रह्म विचार के ऐसा भेव। बिन पारख सो लावै सेव ॥ ३ ॥
अज हरिहर मुनिवर प्रचंड। सनकादिक जिव जे ब्रह्मंड ॥ ४ ॥
बड़े कहाये तत्त्व विचार। मत समस्त ऐसे निरुवार ॥ ५ ॥
प्रगट बखाने चारिउ वेद। पंचीकरण है ताके भेद ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — भेव = भेद, रहस्य। प्रचण्ड = प्रतापी, बड़ा। निरुवार = निर्णय।

भावार्थ — ब्रह्मविचार का उपर्युक्त भ्रमपूर्ण भेद होते हुए भी जिन्हें परख नहीं है वे उसका सेवन करते हैं ॥ ३ ॥ इस विश्व में ब्रह्मा, बिष्णु, महादेव, श्रेष्ठ ऋषि-मुनि गण, सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार जितने प्रतापी पुरुष या महान कहलाने वाले हुए ॥ ४ ॥ ये सब तत्त्वविचार करने में बड़े कहलाये; परन्तु इन समस्त लोगों ने ऐसे ही मत का निर्णय किया है ॥ ५ ॥ चार वेद भी उसी ब्रह्म का खुलकर वर्णन करते हैं जिसका रहस्य पंचीकरण में आ जाता है ॥ ६ ॥

विशेष — कहते हैं ब्रह्मसे आकाश वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि क्रमशः उत्पन्न हुए। इस प्रकार ब्रह्म को चेतन तथा निर्विकार कहकर उससे अचेतन और विकारी तत्त्वों की उत्पत्ति बतलाते हैं और ब्रह्म बनने के लिये पृथ्वी को जल में, जलको अग्नि में, अग्निको वायु में, वायुको आकाश में तथा आकाशको ब्रह्म में लीन करना बतलाते हैं जो एक महाभ्रम है। इस प्रकार पंचीकरण का भेद बतलाकर सब ब्रह्म ही कहते हैं। पंचीकरण नाम की एक वेदांत की पुस्तक है उसमें भी इन सब बातों का वर्णन है। ब्रह्मवाद में जड़-चेतन की अभिन्नता एक महान दोष है।

छौ में वेद वेदांत है जेठ। और अठारह जगत के पेठ ॥ ७ ॥
सार निवारिके करै बखान। गीता भागवत है परमान ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — छौ = छः शास्त्र-सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग तथा वेदान्त। वेद = ऋग्, यजु, साम, अथर्व। वेदांत = उपनिषद्। पेठ = पीठ; आधार। निवारिके = निर्णय करके।

भावार्थ — छः शास्त्रों से वेद तथा वेदों से उपनिषद् श्रेष्ठ माना है, क्योंकि उनमें ब्रह्मवाद का निरूपण है। अन्य जो अठारह पुराण* हैं उनका मुख्य आधार भगवान के चौबीस अवतारों की जागतिक लीला है ॥ ७ ॥ कहते हैं उपनिषदों का निर्णय करके सारब्रह्मसिद्धान्त का प्रामाणिक ढंग से वर्णन गीता और भागवत में कर दिया गया है ॥ ८ ॥

अधिष्ठाता जे बानी वेद। वेद अपक्ष जानै भेद ॥ ९ ॥
वेद की उतपति प्रलय होय। अधिष्ठाता ज्यों का त्यों सोय ॥१०॥

शब्दार्थ — अधिष्ठाता = नियामक; अध्यक्ष। अपक्ष = निष्पक्ष।

भावार्थ — (कहते हैं) जो वेदों का भी नियामक है उस ब्रह्म का रहस्य वही जानेगा जो वेदों से भी निष्पक्ष हो जायगा ॥ ९ ॥ क्योंकि वेदों की रचना और उनका विनाश भी होता है परन्तु उसका मालिक ब्रह्म सदा निर्विकार रहता है ॥ १० ॥

निराकार निर्लेप बखान। बानी छोड़ि ऐसो अनुमान ॥११॥
सोहं ब्रह्म सनातन एक। निज स्वभाव ते भये अनेक ॥१२॥
सो है युक्ति विदित विस्तार। ऐसो लखहिं असारहिं सार ॥१३॥

शब्दार्थ — निर्लेप = अनासक्त।

भावार्थ — कहते हैं ब्रह्म निराकार और अनासक्त है। उसका ऐसा अटकल करते हैं कि वह वाणी से परे है ॥ ११ ॥ वह ब्रह्म मैं हूँ जो नित्य तथा अद्वैत है। वह अपने सृष्टि रचने के स्वभाव-वश अनेक होकर जगत बन गया है ॥ १२ ॥ उपर्युक्त एक ब्रह्म से अनेकतापूर्ण जगत बनने के विषय में वेदान्त ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक युक्तिया दी गयी हैं जो जगत में प्रसिद्ध हैं। इसप्रकार वेदांती लोग असत्य को ही सत्य माने बैठे हैं ॥ १३ ॥

साखी—भरमिक भरम उदवेगते, संतत करैं विचार।
दुगदुग मिटै न जीव की, कहैं असारहु सार ॥ ५ ॥

---

* ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, नारद पुराण, मारकण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, बाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुणपुराण, ब्रह्मांड पुराण—ये अठारहपुराण है।

शब्दार्थ — उद्वेग = उद्वेग, क्षोभ; चित्त की अनस्थिरता। संतत = सर्वदा। दुगदुग = संदेह।

भावार्थ — भ्रमिक लोग अपने हृदय के भ्रम के क्षोभ से यह सदा विचार करते हैं कि जड़-चेतन दोनों सर्वथा भिन्न हैं या एक। परन्तु वेदांतविचार के मोह में पड़े रहने से उनका संदेह नहीं मिटता, और वे असत्य को ही सत्य कहते रहते हैं ॥ ५ ॥

विशेष — ब्रह्मवादी लोग क्षण में कहते हैं पंचतत्त्व, शरीर, संसार मैं नहीं हूँ। पुनः कहते हैं सारा विश्व मेरा ही स्वरूप है। इस प्रकार अद्वैतवेदान्त में जड़ से भिन्न स्वरूप चेतन का निश्चित बोध नहीं हो सकता।

संधि आये माकाशके, रोग सुभाविक मान।
उपजै खपै उपाधि सो, तेहि के करें बखान ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — संधि = भेद; छिद्र, त्रुटि, कसर। माकाश = महदाकाश, अनन्ताकाश। उपाधि = झंझट।

भावार्थ — मनुष्य अपनी त्रुटि से अनन्त आकाशवत् ब्रह्मस्वरूप मानकर और उसमें स्थित होकर अपना कल्याण चाहता है। परन्तु भाई, ब्रह्ममें जगत निर्माण करने की इच्छा रूपी रोग स्वाभाविक माना गया है। कहते हैं वैसे तो ब्रह्म शुद्ध है; परन्तु मायोपाधि से उसमें सृष्टि-प्रलय होते हैं ॥ ६ ॥

२—घटाकाश, मठाकाश, महदाकाश तथा एँ, ह्रीं, क्लीं आदि का वर्णन

चौकड़ी-२

प्रथमहि सूक्षम भया अहं। सोई कहावै एकोहं ॥ १ ॥
बहुस्याम प्रजाय विलास। तेहि मिलि तीनि एकहि आकाश ॥ २ ॥

शब्दार्थ —बहुस्याम = बहुः + याम, बहुः = बहुत; याम = गमन, प्रगति—बहुत हो जाना।

भावार्थ — किसी मनुष्य शरीर धारी को कभी सूक्ष्मरूप से यह भावना हुई कि मैं ब्रह्म हूँ, वही अपने को 'मैं अद्वितीय ब्रह्म हूँ' कहने लगा ॥ १ ॥ उसी ने यह सिद्धांत रखा कि ब्रह्म सोचा कि मैं बहुत प्रगति करूँ, अर्थात् सृष्टि के रूप में होकर विलास करूँ। फिर सूक्ष्म अहं, एकोऽहम् तथा बहुस्याम—इन तीनों को मिलाकर अंततः एक आकाशस्वरूप ब्रह्म का सिद्धान्त स्थिर किया ॥ २ ॥

घटाकाश प्रणव बहुस्याम। मठाकाश एकोहं राम ॥ ३ ॥
अधिष्ठाता सोई माकाश। ताके यों कहते दृढ़भास ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — घटाकाश = घड़ा में रहने वाला आकाश; अन्तःकरणाविच्छिन्न जीव। प्रणव = ॐ। मठाकाश = मठ (मकान) में रहने वाला आकाश; माया-

विच्छिन्न ईश्वर । माकाश = महदाकाश, अनन्ताकाश, अनंतनिर्गुणब्रह्म । दृढ़भास = पक्का भ्रम ।

भावार्थ — प्रणवस्वरूप ब्रह्म के अनेक हो जाने से घट में रहे हुए आकाश के समान अनेक जीव हैं; और मकान में रहे हुए बड़े आकाश के समान ईश्वर या राम है जिसमें एकोऽहम् की स्फुरणा है ॥ ३ ॥ परन्तु जो समस्त सीमाओं से परे निर्गुण ब्रह्म है वह सबका अधिष्ठान है वही महदाकाश से व्यंजित होता है । वेदांती लोग उसको इसी प्रकार कहते हैं; क्योंकि उनको ऐसा ही पक्का भ्रम है ॥ ४ ॥

विशेष — आकाश को छिन्न करने वाले घट और मठ आकाश से भिन्न हैं । अद्वैत ब्रह्म में जब दूसरा है ही नहीं तब उसको किसने छिन्न किया ? अतएव ये सारे प्रमाणों से अद्वैत सिद्ध करना अपने आप में व्याघातदोषयुक्त है ।

घटाकाश तत्त्व इंद्रियभास । मठाकाशमन करे विलास ॥ ५ ॥
चिदाकाश माकाश बखान । सदा अलेप सोई परवान ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **अलेप** = अलिप्त, अनासक्त । **परवान** = प्रमाण, सत्य ।

भावार्थ — (कहते हैं) घट में घिरे हुए आकाश के समान अन्तःकरण द्वारा पृथक किया हुआ चेतन जो जीव के रूप में प्रतीत होता है वह तत्त्व और इन्द्रियों का भास है । और मठ में घिरे हुए बड़े आकाश के समान मायाद्वारा पृथक किया हुआ चेतन जो ईश्वर के रूप में प्रतीत होता है वह भी मन का विलास है ॥ ५ ॥ परन्तु जो अनंत आकाशवत् चेतनाकाश कहा जाता है वही नित्य, निर्लिप्त और वास्तविक तत्त्व है ॥ ६ ॥

चौथे भेदबुद्धि उठि जाय । निर्वचनी कछु कहै न कहाय ॥ ७ ॥
प्रथम दुतीया तृतीया चार । सर्व कला आपै निरधार ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **चौथे** = तुरीय अवस्था । **निर्वचनी** = चुप, मौन । **प्रथम** = घटाकाश । **दुतीय** = मठाकाश । **तृतीय** = महदाकाश । **चार** = तुरीय । **कला** = अंश ।

भावार्थ — चतुर्थ तुरीयावस्था में पहुँच जाने पर ज्ञानी की भेद बुद्धि एवं द्वैतभाव लुप्त हो जाता है । वह न कुछ स्वयं कहता है न दूसरे से कुछ कहलाता है ॥ ७ ॥ घटाकाश, मठाकाश, महदाकाश और तुर्यगा इन सभी अंशों में वह ब्रह्म स्वयं निराधार व्याप्त है ॥ ८ ॥

ब्रह्मांड हिरण्यगर्भ अव्याकृति । औ चहु शरीर ले मूलप्रकृति ॥ ९ ॥
उतपति पालन औ संहार । सर्वसाक्षिणी अवस्था चार ॥१०॥

शब्दार्थ — **ब्रह्मांड** = विश्वगोलक, सम्पूर्ण विश्व । **हिरण्यगर्भ** = जिसके भीतर विश्व के तेजवान पदार्थों की सूक्ष्म सामग्री हो; सृष्टि के आरम्भ में माना गया स्वर्णमय

अण्डा जिससे सृष्टि होना मानते हैं। अव्याकृति = अव्याकृत, अव्यक्त, जो प्रगट न हो; जगतकारण। मूलप्रकृति = जगत का कारण रूप शक्ति।

भावार्थ — विराट ईश्वर की चार देहें ये हैं – स्थूल देह – ब्रह्माण्ड, सूक्ष्मदेह – हिरण्यगर्भ, कारण देह – अव्याकृत तथा महाकारण देह – मूलप्रकृति ॥ ९ ॥ उसका उत्पत्ति, पालन और संहार करना उसकी क्रमशः जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थायें हैं और उसका सबका द्रष्टा रहना यह उसकी चौथी तुरीय अवस्था है ॥ १० ॥

भूर्भुवः स्वः जपे जो तीन। प्रणव मूल पूरण परबीन ॥११॥
क्लीं ह्रीं एँ सो सेव। घ्रीं सो बीज निरंजनदेव ॥१२॥

शब्दार्थ — भूः = पृथ्वी। भुवः = अंतरिक्ष; जल। स्वः = स्वर्ग; अग्नि में। प्रणव = ॐ। क्लीं = महादेव का संहारक बीजमंत्र। ह्रीं = विष्णु का पालक बीजमंत्र। एँ = ब्रह्मा का सर्जक बीजमंत्र। सेव = जप। घ्रीं = वह वायु जो ब्रह्माण्ड में चढ़ाकर स्थित किया जाता है उसे सबका बीज अक्षर मान रखा है।

भावार्थ — (कहते हैं) मूल मंत्र प्रणव (ॐ) को जोड़कर पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग के प्रतिनिधित्व करने वाले 'भूर्भुवः स्वः' को जो जपता है वह पूर्ण पण्डित है ॥ ११ ॥ एँ, ह्रीं और क्लीं—क्रमशः ये तीन बीजमन्त्र सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कर्ता हैं; अतएव पण्डित जन इनका भी जप करते हैं। सुषुम्णा में स्थित 'घ्रीं' सबका बीज अक्षर माना है और उसका देवता निरंजन बताते हैं ॥ १२ ॥

साखी-आपु निरंजन कर्ता, दुतिया इच्छा नार।
त्रिगुण नाना भाँति के, महाजाल विस्तार ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — आपु = ब्रह्म। त्रिगुण = सत, रज, तम।

भावार्थ — (कहते हैं) स्वयं निरंजन ब्रह्म कर्ता बना और दूसरा कारण जगत बनाने की इच्छा रूपी नारी को पैदा किया। फिर तीनों गुणों से जड़-चैतन्यात्मक नाना प्रकार के सृष्टि रूपी महाजाल का विस्तार किया ॥ ७ ॥

३–त्रिपुटी का विस्तार वर्णन

चौकड़ी–२

जहाँ लौं त्रिपुटी के हैं जाल। त्रिगुण तीन लोक तिहुँ काल ॥ १ ॥
वर्षा शिशिर धूप निहार। शशि औ सूर्य राहु परचार ॥ २ ॥

शब्दार्थ — त्रिपुटी = तीन का समाहार (जोड़, मिलान) जैसे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इत्यादि। परचार = प्रसिद्ध।

भावार्थ — अब जहाँ तक त्रिपुटी का विस्तार है उनमें कुछ का वर्णन किया जाता है, जैसे – सत, रज, तम – तीन गुण; स्वर्ग, पाताल, मृत्यु – तीन लोक; भूत

भविष्य, वर्तमान – तीन काल ॥ १ ॥ वर्षा, शीत, गरमी – तीन मुख्य ऋतुयें; चन्द्रमा, सूर्य और राहु – तीन मुख्य ग्रह ॥ २ ॥

विशेष — वर्षा रजोगुण रूप वनस्पति आदि का उत्पादक है, शीत सतोगुण रूप पुष्ट करने वाला है तथा गरमी तमोगुण रूप नाशक है। इसी प्रकार चन्द्रमा रजोगुण, सूर्य सतोगुण तथा राहु तमोगुण माना है।

रेखा आकार उकार मकार। क्षर अक्षर निःक्षर सार ॥ ३ ॥
अव्यक्त व्यक्त है बानी तीन। इंगला पिंगला सुषुम्ना कीन्ह ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — **रेखा** = चिन्ह। **क्षर** = नाशवान शरीर। **अक्षर** = अविनाशी आत्मा। **निःक्षर** = परमात्मा। **सार** = सत्य, महत्वपूर्ण। **अव्यक्त** = अप्रकट। **व्यक्त** = प्रकट। **बानी** = वाणी।

भावार्थ — ॐम् कार के तीन लक्षण 'अ' ब्रह्मा, 'उ' विष्णु तथा 'म' महादेव हैं। तत्त्व तीन माने हैं 'क्षर' नाशवान देह, 'अक्षर' अविनाशी आत्मा तथा निःक्षर परात्पर परमात्मा जो सत्य तथा महत्वपूर्ण है ॥ ३ ॥ मूल तत्त्व की स्थितियाँ तीन मानी हैं—'अव्यक्त' तमोमय शून्य दशा; 'व्यक्त' सतोमय प्रकट दशा तथा 'वाणी' रजोमय स्थूल कहने-सुनने में आने वाली दशा। मुख्य नाड़ियाँ भी तीन हैं। 'इडा' रजोमय, 'पिंगला' सतोमय तथा 'सुषुम्णा' तमोमय ॥ ४ ॥

वोहं सोहं रं अमान। सत्त सादृश मध्य जो भान ॥ ५ ॥
दैहिक दैविक भौतिक ताप। वर्णन मोक्ष पुण्य औ पाप ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **अमान** = मान रहित शुद्ध परमात्मा। **भान** = प्रतीत। **दैहिक** = ज्वर, फोड़ा, लकवा आदि शारीरिक कष्ट व शोक-संतापरूप मानसिक पीड़ा। **दैविक** = जल, पेड़, बिजली आदि जड़ तत्त्वों के आघात से कष्ट। **भौतिक** = सर्प, बिच्छू, सिंह, मच्छड़, मनुष्यादि प्राणियोंद्वारा मिली हुई पीड़ा।

भावार्थ — परमात्मा को मानरहित शुद्ध मानकर उसके मुख्य तीन जप हैं—वोऽहम्, सोऽहम् तथा राम जो क्रमशः ब्रह्मा, शंकर तथा विष्णु के हैं। सत्ता तीन हैं—सत्य, सदृश और प्रतीत ॥ ५ ॥ ताप तीन हैं दैहिक, दैविक और भौतिक। इसी प्रकार कथन तीन हैं—मोक्षप्रद वैराग्य, सुखप्रद पुण्य तथा दुःखप्रद पाप ॥ ६ ॥

विशेष — सत्य, सदृश और प्रतीत—तीन सत्तायें हैं। अर्थात् पहली सत्ता वह है जो सत्य है, यही वास्तविक सत्ता है। दूसरी सत्ता 'सदृश' है। अर्थात् मनुष्य जैसी कल्पना करता है उसी के सदृश उसे बाहर दिखाई देता है। जैसे किसी व्यक्ति के विषय में हमने मित्र होने की कल्पना करली, तो जब वह मिलता है तब वह हमारे हृदय की मान्यता के सदृश प्रिय लगता है। यदि कुछ दिन में हमने उसे शत्रु मान लिया तो हमारे हृदय के मान्यतानुसार वह शत्रुरूप में दिखता है। जब कभी हम

किसी भले आदमी को भ्रमवश बुरा मान लेते हैं तो वह जब मिलता है उसकी बातें हमें अच्छी नहीं लगतीं। पापी को सारा संसार पापी तथा पुण्यात्मा को पुण्यात्मा दिखता है। इस प्रकार कुछ माने में मनुष्य की मान्यता के सदृश सत्ता का भास होता है। सदृश सत्ता का हम दूसरे प्रकार से भी अध्ययन कर सकते हैं; जैसे यह शरीर सत्य सदृश भासता है, परन्तु सत्य नहीं है इत्यादि।

तीसरी सत्ता 'प्रतीत' है। रज्जू में सर्प, सीपी में चाँदी, मृगमरीचिका में जल प्रतीत होते हैं; इसी प्रकार स्वप्न में उसके सब व्यवहार प्रतीत होते हैं, परन्तु वे वस्तुतः हैं नहीं।

इस प्रकार सत्य, सदृश तथा प्रतीत—ये तीन सत्ताओं में सत्य ही परमार्थ रूप है, शेष विकारी हैं।

संसार में तीन प्रकार के वर्णन या कथन हैं। या तो ऐसा कथन होगा जो वैराग्य-ज्ञान उत्पन्न कर मोक्ष की तरफ ले जायगा, या ऐसा वर्णन होगा जो मन में शुभ वृत्ति उत्पन्न कर सुख की ओर ले जायगा तथा या ऐसा वर्णन होगा जो पाप वृत्ति उत्पन्न कर दुःख की ओर ले जायगा।

देव तीन नाम गुण रूप। कर्ता क्रिया कर्म स्वरूप॥ ७॥
इंद्री इंद्रिय कर्म विचार। इंद्री देव सोई अनुहार॥ ८॥

शब्दार्थ — कर्ता = करने वाला; क्रिया के करने वाले का बोधक। क्रिया = किया जाना। कर्म = वह जिस पर क्रियाका फल पड़े। अनुहार = रूप, अनुसार।

भावार्थ — मुख्य देवता तीन हैं – ब्रह्मा, विष्णु, शंकर। किसी वस्तु में मुख्य तीन भाग हैं – नाम, रूप और गुण। व्याकरण में मुख्य तीन का ज्ञान आवश्यक है— कर्ता, कर्म और क्रिया ॥७॥ इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के कर्म तथा इन्द्रियों के वे देवता जो उनके अनुसार हों इनकी भी त्रिपुटी है ॥८॥

विशेष — नाम, रूप, गुण का भेद इस प्रकार है, जैसे 'जल' यह दो अक्षर मिला कर नाम या संज्ञा है और जो आँखों से दिखता हुआ द्रव है वह जल का 'रूप' है; और उसमें शीतलता तथा मधुरता 'गुण' है।

कर्ता, कर्म, क्रिया इस प्रकार हैं—'राम रोटी खाता है।' यहाँ 'राम' कर्ता है, 'रोटी' कर्म है और 'खाता है' क्रिया है। 'कुम्हार घड़ा बनाता है।' इसमें 'कुम्हार' कर्ता, 'घड़ा' कर्म तथा 'बनाता है' क्रिया है।

ज्ञान भक्ति कर्म के भेव। प्रयागराज त्रिवेणी सेव॥ ९॥
कारण कारज परगट होय। यथार्थ परमार्थ स्वार्थ सोय॥१०॥

शब्दार्थ — भेव = भेद। कारण = वासना। कारज = क्रिया। परगट = स्थूल व्यवहार।

भावार्थ — साधना तीन भेदों वाली है—ज्ञान, भक्ति और कर्म। प्रयागराज जिसका लोग सेवन करते हैं वहाँ भी गंगा, यमुना, सरस्वती का मिलन रूप त्रिवेणी मानी जाती है ॥ ९ ॥ सूक्ष्म वासनायें कारण हैं, उनके अनुसार क्रिया करना कार्य है तथा स्थूल व्यवहार उनका प्रत्यक्षीकरण है; यह भी त्रिपुटी है। यथार्थ – जड़-चेतन के वास्तविक स्वरूप के दर्शन हैं; परमार्थ – जीव का कल्याण है तथा स्वार्थ— शरीर की रक्षा का व्यवहार है ॥ १० ॥

शब्द ब्रह्म ब्रह्मा के भेव। सगुण ब्रह्म हरी सो देव ॥११॥
शंकर निर्गुण आपै आप। भेद उठै तिहुँ होय भिलाप ॥१२॥
वात पित्त कफ नाड़ी तीन। सन्निपात शून्य लौलीन ॥१३॥

शब्दार्थ — शब्दब्रह्म = ॐ ही ब्रह्म है। भेद = पर्दा।

भावार्थ — प्रणव (ॐ) ही ब्रह्म है यह ब्रह्मा का भाव है, सगुण अवतारी ही ब्रह्म है यह विष्णु देव का विचार है ॥ ११ ॥ परन्तु महादेव का विचार है कि ब्रह्म स्वतः और निर्गुण है। जब इन तीनों का पर्दा हट जाता है तब तीनों के विचार एक हो जाते हैं—सबकुछ ब्रह्म है ॥ १२ ॥ नाड़ियाँ तीन हैं—वात, पित और कफ जो क्रमशः तम, सत और रज रूप मानी गयी हैं। ये जब एकत्र होती हैं तब मनुष्य को सन्निपात हो जाता है। इसी प्रकार द्रष्टा, दृश्य, दर्शन का भेद मिटाकर जब सब कुछ (जड़-चेतन) ब्रह्म ही मान लिया जाता है तब सन्निपात सदृश भ्रमज्ञान उत्पन्न हो जाता है और मनुष्य यथार्थ स्वरूपज्ञान छोड़कर शून्य ब्रह्म में लौलीन होता है ॥१३॥

साखी—मृतुक सनेही तीन गुण, चौथे शून्य सो जान।
भेद उठावे चहुँ कला, तुर्यातीत विज्ञान ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — शून्य = ब्रह्मज्ञान। कला = भाग।

भावार्थ — त्रिगुणयुक्त जितना भी प्रपंच है सब नाशवान शरीर के साथ ही तक है। तीनों गुणों से परे चौथा शून्य स्वरूप ब्रह्म माना है। कहते हैं जब इन चारों भागों का भेद समाप्त हो जाता है तब तुरीय से भी परे विज्ञान दशा आती है जिसमें विधि-निषेध कुछ नहीं ॥ ८ ॥

४ – तुरीयातीतदशा, चारों वेदों के ब्रह्मविषयकविचार तथा निर्गुण ब्रह्म का वर्णन

चौकड़ी-४

तुरियातीत नहिं मान अमान। ज्यों का त्यों सोई परमान ॥ १ ॥
है विज्ञान सोइ तुरियातीत। भेद अवस्था उठै परतीत ॥ २ ॥

शब्दार्थ — तुरियातीत = विज्ञानदशा। मान = जगत। अमान = ईश्वर।

भावार्थ — (कहते हैं) तुरीयातीत दशा में जब ज्ञानी पहुंच जाता है तब उसके लिये जगत और ब्रह्म दोनों विलीन हो जाते हैं। उसकी दृष्टि में आत्मतत्त्व ज्यों-का-त्यों निर्विकार है वही सत्य है ॥ १ ॥ जो विज्ञान की दशा है वही तुरीयातीत है जहाँ पर अवस्थाओं का भेद तथा जगत-प्रतीत—ये सब समाप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

विशेष — विज्ञानदशा वाले कहते है ब्रह्मजगत कुछ नहीं। यह प्रपंच न हुआ है न है और न होगा। तत्त्व ज्यों-का-त्यों है। वे कहते हैं कि न हमें अवस्थायें दीखती हैं न संसार।

तुरियातीत निरंजन राय। आनन्द भास अव्यक्त कहाय ॥ ३ ॥
ऋग सो वेद बखाने भेव। अलेप अमान निरंजन देव ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — निरंजनराय = श्रेष्ठ ब्रह्म। अव्यक्त = अप्रकट; अनिश्चित। अलेप= निर्लिप्त। अमान = शुद्ध।

भावार्थ — (कहते हैं) तुरीयातीत अवस्था में पहुंच कर ही श्रेष्ठब्रह्म की उपलब्धि होती है। उन्हें वृत्तिस्थिर होने पर जो आनन्द का आभास होता है उसी को वे अव्यक्त ब्रह्म कहते हैं ॥ ३ ॥ ऋग्वेद भी तुरीयरूप से उसका रहस्य वर्णन करता है कि वह ब्रह्म देव निर्लिप्त तथा शुद्ध है ॥ ४ ॥

दूजे सुषुप्ति मन आकाश। वेद अथर्वण शून्य विलास ॥ ५ ॥
तीजे विकल्प श्वास परमान। शून्य आनरूप यजुर परधान ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — शून्य = सुषुप्ति। विकल्प = वक्तव्य, कथन। श्वास = स्वप्न। शून्य आनरूप = सुषुप्ति का दूसरा रूप अर्धसुषुप्ति—स्वप्न, सगुण-साकार।

भावार्थ — दूसरी सुषुप्ति अवस्था का अध्यास योग है जिसमें मन आकाश के समान शून्य हो जाता है। अथर्ववेद शून्य को ही ब्रह्म बतला कर उसी में विलास करने का उपदेश करता है ॥ ५ ॥ तीसरी स्वप्न अवस्था के अध्यास रूप उपासना मार्ग का कथन करते हैं और कहते हैं यही प्रामाणिक है। यजुर्वेद सगुण अवतारवाद को ही प्रधानता देकर उसी का महत्त्व करता है ॥ ६ ॥

विशेष — जैसे व्यक्ति स्वप्न में दृश्य देखता है वैसे उपासक कल्पना में इष्ट को देखते हैं।

चौथे जागृति शब्द विलास। पाँच पचीसों अनन्य भास ॥ ७ ॥
सामवेद पूरण परकाश। चारि वेद का सोई विलास ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — विलास = चमकना; व्यक्त होना; उपभोग। अनन्य = एकनिष्ठ; एकाश्रयी; अभिन्न; अद्वितीय; अविभक्त।

भावार्थ — चौथी जागृति अवस्था के अध्यास में कहते हैं सारा विश्व शब्द-विलास (कथन) मात्र है और पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृतियाँ तथा समस्त भासमान

दृश्य एकाश्रयी, अद्वितीय, अविभक्त ब्रह्म है ॥ ७ ॥ सामवेद उक्त सिद्धांत का ही पूर्ण प्रकाश करता है यही चारों वेदों का वाक्य विलास एवं कथन है ॥ ८ ॥

युग सो चार चार पन होय । जहाँलों चार चार है सोय ॥ ९ ॥
प्रथम हं कारण सो एक । उलटि विचार चतुर्थ विवेक ॥१०॥

शब्दार्थ — हं = एकोऽहम् बहुस्याम । चतुर्थ = तुरीय अवस्था, ब्रह्म ।

भावार्थ — सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग—ये चार युग तथा बाल कुमार, युवा, वृद्ध—ये चार पन होते हैं; जहाँ तक चार-चार का घेरा है ॥ ९ ॥ इन सबका प्रथम कारण एक ब्रह्म का जगत रचने की इच्छा करना मात्र है । विचार-विवेक करके देखें तो इस सिद्धान्त से उलट करके सारे व्यष्टि, समष्टि रूप तुरीय एवं ब्रह्म में लीन हो जाते हैं जो चौथी अवस्था है ॥ १० ॥

दुतिया दुंदज कारण होय । जड़चेतन दुखसुख गुणसोय ॥ ११ ॥
दिन औ रैन पुण्य औ पाप । स्वर्ग नरक नर नारी थाप ॥ १२ ॥
गुण औ दोष है साधु असाधु । देवता दानव द्वैत बियाधु ॥ १३ ॥
हेतु दुविधा कारज बहु होय । दुंदज द्वैत कहावै सोय ॥ १४ ॥

शब्दार्थ — दुतिया = द्वैत । दुंदज = द्वन्द्वज = दो से उत्पन्न, परस्पर विरोधी भाव । दुविधा = द्विधा, दो प्रकार ।

भावार्थ — (कहते हैं) दो परस्पर विरोधी पदार्थों तथा भावनाओं के उत्पन्न होने में द्वैत (दो) कारण है; जैसे जड़-चेतन, सुख-दुःख के स्वभाव, दिन-रात, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, स्त्री-पुरुष, गुण-दोष, सज्जन-दुर्जन, देवता-दानव (दैत्य) रूपी समस्त व्याधियों का कारण द्वैत ही है जिससे ये सब कार्य प्रपंच होते हैं; वस्तुतः विरोधी तत्त्व ही द्वैत कहलाता है ॥ ११-१४ ॥

साखी—द्वैत अद्वैत न भेद कछु, एकै भाव अनेक ।
आदि अन्त पूरण तेई, माया मध्य विवेक ॥ ९ ॥

शब्दार्थ — भाव = अस्तित्त्व । मध्य = बीच का प्रतीत ।

भावार्थ — (कहते हैं) शुद्ध ब्रह्म में द्वैत और अद्वैत का कोई अन्तर नहीं है, वस्तुतः विविधतापूर्ण जगत में जल वर्फ न्याय एक ही ब्रह्म तत्त्व का अस्तित्त्व है । विवेक करने से पता चलता है कि आदि से अन्त तक ब्रह्म ही परिपूर्ण व्याप्त है और मध्य में जो जगत प्रतीत होता है, वह मायामय है ॥ ९ ॥

५—प्रणव, उसका तथा ब्रह्माण्ड का उत्पत्ति कथन

चौकड़ी ५

आदि अन्त सोइ आपै आप । जगत मध्य माया सन्ताप ॥ १ ॥
प्रणव सो पूरण जग भेव । जो दृढ़ गहै सो सोहं देव ॥ २ ॥

शब्दार्थ — आपै आप = ब्रह्म । प्रणव = ॐ । भेव = भाव, सत्ता ।

भावार्थ — ब्रह्म स्वयं शुद्ध निर्गुण पहले भी था और अंत में भी रहेगा, यह केवल बीच में मायामय जगत संतापरूप दिखता है ॥ १ ॥ अनन्त विश्व का अस्तित्त्व व सत्ता प्रणव का स्वरूप है। इस भाव को जो दृढ़ करके मान लेता है, वह स्वयं ब्रह्मस्वरूप है ॥ २ ॥

विशेष — गौड़पादाचार्य अपनी कारिका में कहते हैं "आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपितत्तथा ।" अर्थात् जो आदि अंत में नहीं है वह (जगत) वर्तमान में (होते हुए) भी (वस्तुतः) नहीं है। अतएव सब समय केवल ब्रह्म ही है। कहते हैं यह अखिल विश्व प्रणवरूप या ब्रह्मरूप ही है।

सोहं देव का इहै विचार । लिखि मेटै मानै निरधार ॥ ३ ॥
अनुस्वार आपै माकाश । अर्धचन्द्र सो शक्ति विलास ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — सोहं = प्रणव, ॐ, ब्रह्म । अनुस्वार = बिंदु "" । माकाश = महदाकाश । अर्धचन्द्र = "ँ" । शक्ति = माया ।

भावार्थ — प्रणव ब्रह्म के विषय में लोग यही विचार करते हैं कि वही सब कुछ है। आश्चर्य है जिस प्रणव (ॐ) को मनुष्य कागज पर लिख कर और उसे पुनः मिटा देता है उसी को वह निराधार, सर्वाधार और सबका मूलतत्त्व मानता है ॥३॥ कहते हैं ॐ पर जो बिंदु है वह स्वयं महदाकाशवत अनन्त ब्रह्म का स्वरूप है; और जो अर्धचंद्र है वह माया रूप ब्रह्म का विलास है ॥ ४ ॥

कर्म द्रव्य इच्छा अरु ज्ञान । चारों चरण शक्ति के मान ॥ ५ ॥
कर्म स्थूल द्रव्य सो थूल । इच्छा कारण ज्ञान है मूल ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — चरण = पाद, भाग । शक्ति = माया । थूल = सूक्ष्म । मूल = महाकारण ।

भावार्थ -- उत्पत्ति रूप कर्म, पंचविषय रूप द्रव्य, स्फुरणा या चाहना रूप इच्छा तथा जगत का साक्षी व द्रष्टा बने रहना रूप ज्ञान—ये चारों भाग माया के बतलाते हैं ॥ ५ ॥ कर्म माया का स्थूल शरीर है, द्रव्य सूक्ष्म शरीर है, इच्छा कारण शरीर तथा ज्ञान महाकारण शरीर माना है ॥ ६ ॥

विशेष — कर्म, द्रव्य, इच्छा तथा ज्ञान—ये चारों क्रमशः माया के स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण शरीर माना है।

ज्ञानी आपै स्वतः प्रकाश । ज्ञान अज्ञान सो शक्ति विलास ॥ ७ ॥
विद्या अविद्या माया रूप । अधिष्ठाता पद स्वतः अनूप ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — विद्या = पराविद्या, आत्मविद्या । अविद्या = अपराविद्या, कर्मकाण्ड, भौतिकज्ञान । अधिष्ठाता = नियामक, मालिक । अनूप = उपमारहित ।

भावार्थ — (कहते हैं) ज्ञानी स्वतः प्रकाश स्वरूप है और ज्ञान-अज्ञान माया की क्रीड़ा है ॥ ७ ॥ अध्यात्म विद्या तथा अविद्या रूप भौतिक विद्या सब मायारूप हैं, परन्तु सबका अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म अपने आप एवं उपमारहित है ॥ ८ ॥

ज्ञान ते उतपति हृदय होय । अंक तीनितिहुँ गुण में सोय ॥ ९ ॥
अज अकार है हरि उकार । हर सो तहाँ भये मकार ॥ १० ॥

शब्दार्थ — अंक = चिन्ह; छाप; मात्रायें ।

भावार्थ — ब्रह्म के अपने निजज्ञान से हृदयाकाश में 'अ' 'उ' 'म' ये तीन मात्रायें उत्पन्न हुईं जो तीनों गुणों में व्याप्त हैं ॥ ९ ॥ रजोगुणी ब्रह्मामें 'अ' कार है, सतोगुणी विष्णु में 'उ' कार है तथा तमोगुणी महादेव में 'म' कार है ॥ १० ॥

अंक तीन अर्ध के माँह । अर्ध रहै शून्य की छाँह ॥ ११ ॥
पाँच कला प्रणव के विचार । अज हरिहर माया अनुसार ॥ १२ ॥

शब्दार्थ — अर्ध = अर्धचंद्र 'ँ' अनुसार = अनुस्वार, विंदु 'ं' ।

भावार्थ — त्रिगुणरूप अ, उ, म—ये तीनों मात्रायें अर्धचंद्र रूप माया में विलीन हो जाती हैं और अर्धचंद्र रूप माया शून्य ब्रह्म के आश्रय में लीन हो जाती है ॥११॥ इस प्रकार प्रणव (ॐ) के पाँच भागों का विचार हुआ—अ, उ, म, अर्धचंद्र 'ँ' और विंदु 'ं' जिसके क्रमशः लक्ष्य हैं रज (ब्रह्मा), सत (हरि), तम (महादेव), माया और ब्रह्म ॥ १२ ॥

मूल प्रकृति कला सो साँच । तेहिते भये तत्त्व सो पाँच ॥ १३ ॥
शून्याशून्य भास अकाश । तेहि सों प्रगटी अर्ध बतास ॥ १४ ॥

शब्दार्थ — मूलप्रकृति = माया । कला = अंश, भाग । साँच = सत्यब्रह्म । अर्धबतास = अर्धमात्रा, माया; स्थिर वायु ।

भावार्थ — मूलप्रकृति रूप माया सत्यब्रह्म का एकअंश है, उससे आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ये पाँचतत्त्व क्रमशः उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ केवल शून्य-ही-शून्य जो प्रतीत होता है वह आकाश है, यह पहले पैदा हुआ । उस आकाश से थीर पवन प्रकट हुआ ॥ १४ ॥

पूरण पवन थीर सो भेव । तासों प्रगट भये सो देव ॥ १५ ॥
चंचल पवन सो हरके रूप । उठै तरंग अनेक अनुरूप ॥ १६ ॥

शब्दार्थ — भेव = भेद, रहस्य । अनुरूप = समान रूप वाला; उपयुक्त ।

भावार्थ — सूक्ष्म रूप में पूर्ण व्याप्त वायु ही थीर पवन का रहस्य है । इसी से जल, अग्नि तथा पृथ्वी—ये तीन देवता प्रकट हुए । अथवा चंचल वायु, अग्नि और जल के रूप में क्रमशः महादेव, विष्णु और ब्रह्मा देवता प्रकट हुए ॥ १५ ॥ चंचल

वायु महादेव का स्वरूप है जिससे विश्व या जल में अनेक उपयुक्त तरंगें उठती हैं ॥१६।

कोटि उनचास पवन परमान । गिनती वेद सो करै बखान ॥ १७ ॥
कारण शोषक पवन के माँह । जल कारण पुनि तेहि दर्शाह ॥ १८ ॥

शब्दार्थ — परमान = प्रमाण; सीमा । शोषक = शोषण करने वाला, सोखने वाला ।

भावार्थ — लोग वेदों (ग्रन्थों) का प्रमाण देकर उनचास (४९) या उनचास करोड़ वायुयों की गिनती करके उनका वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥ वायु में जलको सुखाने का कारण 'शोषक वायु' है, जो सूर्य किरणों के सहारे पृथ्वी का जल सुखाकर आकाश में चढ़ाता है अतएव वही वायु कालान्तर में जलवृष्टि का कारण होता है, ऐसा प्रतीत होता है ॥ १८ ॥

पवन अकर्षण अनल उपाय । हरि के कला सोई प्रगटाय ॥ १९ ॥
चमके बिजुली पवन समाय । पाये वेग नीर निर्माय ॥ २० ॥

शब्दार्थ — उपाय = उत्पन्न होना ।

भावार्थ — वायु के खिचाव से अग्नि उत्पन्न होती है, वही प्रत्यक्ष विष्णु की कला है ॥ १९ ॥ वही अग्नि विजली है जो चमकती है और हवा (बादल) में समा जाती है । इस प्रकार गरमी का जोर पाकर आकाशस्थित सूक्ष्म जलकण स्थूल बुंदका रूप धारण करते हैं ॥ २० ॥

घटा होय देखलाई देय । उतपति जल की प्रगटै सोय ॥ २१ ॥
अधिकारी जो अनल धमाय । पूरण जल तेहि ते प्रगटाय ॥ २२ ॥

शब्दार्थ — घटा = मेघमाला । अधिकारी = अधिक रूप से । धमाय = धमना, धौंकना, हवाभरना ।

भावार्थ — अपनी पूर्ण योग्यता पाकर जल से भरी हुई मेघमालायें आकाश में दिखलाई देती हैं; फिर उनसे जल उत्पन्न होकर पृथ्वी पर अवतरित होता है ॥२१॥ जब गरमी में अधिकरूप से अग्नि एवं लू की धौंकनी चलती है तब उससे पुष्कल जल प्रकट होता है ॥ २२ ॥

कारण आदि एक सो होय । कार्य अनेक दिखावै सोय ॥ २३ ॥
जो जल शोषक उठै बतास । तुरतहिं तहाँ घटा को नाश ॥ २४ ॥

शब्दार्थ — एक = थीर पवन । बतास = वायु ।

भावार्थ — चंचल, प्रेरक, शोषक, आकर्षक आदि वायुयों का मूल कारण एक थीर पवन है उसी के अनेक कार्य दिखलाई देते हैं ॥ २३ ॥ यदि जलका शोषण करने वाला वायु उठ जाये, तो वहाँ की मेघमालाओं का तुरन्त नाश हो जाता है ।२४।

सोई नीर है अज के रूप । पुनि त्रिगुण में तिहुँ स्वरूप ॥ २५ ॥
तेहि नीर ते पृथिवी होय । तेज अरु पवन सहायक सोय ॥ २६ ॥

शब्दार्थ — अज = ब्रह्मा ।

भावार्थ — वही जल ब्रह्मा का स्वरूप है जो सृष्टि करता है। इस प्रकार सत, रज, तम के रूप में क्रमशः अग्नि, जल तथा वायु उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ उसी ब्रह्मा के स्वरूप जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, पृथ्वी के उत्पन्न होने में जल के साथ अग्नि और वायु भी सहायक हुए ॥ २६ ॥

साखी–थीर पवन अरु अनल जल, मिलि पृथिवी परमान ।
अस्थूल रूप माया भई, पुरुष नीर परधान ॥ १० ॥

शब्दार्थ — पुरुष = ब्रह्म । नीर = वीर्य, मूलकारण ।

भावार्थ — स्थिर वायु, अग्नि और जल मिलकर पृथ्वी का निर्माण हुआ । इस प्रकार स्थूलरूप विश्वकाय में माया प्रकट हुई और प्रधानतः मूलकारणरूप से ब्रह्म हुआ, जिससे विश्व प्रकट हुआ । १० ॥

विशेष — उक्त १३ से २६ चौपाइयों तथा १० वीं साखी तक का सार यह है कि ब्रह्म से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमशः प्रकट होकर विश्व बन गया जिसमें मूलरूप से ब्रह्म है और कायावान स्थूल विश्व रूप में माया है। वस्तुतः ग्रन्थ-कर्ता यहाँ पूर्व पक्ष का वर्णन कर रहे हैं।

विचारणीय विषय यह है कि ब्रह्म जब चेतन रूप है तब उससे जड़तत्त्वों की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? आकाश शून्य है उसकी उत्पत्ति कहना अनर्गल है। शून्य आकाश से द्रव्य रूप वायु तथा वायु के विरोधी गुण वाला अग्नि तत्त्व एवं उससे विरोधी जल, पृथ्वी आदि एक-दूसरे के कार्य-कारण नहीं हो सकते ।

वस्तुतः शून्य आकाश और वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ये सब उत्पत्ति रहित अनादि हैं। यह विश्व अनादि-अनन्त है। नाना जीव अविनाशी तथा नित्य हैं। वे अपने कर्म संस्कार वश भटकते हैं और कर्मों को उलंघन कर मुक्त हो जाते हैं।

६ – रज-वीर्य से मनुष्य की उत्पत्ति तथा उसका विनाश, उसी प्रकार विश्व का प्रलय कथन

चौकड़ी–६

नीर बीज पृथिवी रज मान । अद्भुत कला मध्य प्रगटान ॥१॥
रज औ बीज सो भै उपाय । वैसे उलटी जाय समाय ॥२॥
कसर कला कोई जो होय । जाय विलाय रहै न कोय ॥३॥

शब्दार्थ — भै उपाय = उत्पन्न हुआ ।

भावार्थ — पुरुष का वीर्य जल तथा स्त्री का रज पृथ्वी समझो और इसके मिलने से अद्भुत रचना पूर्वक अनेक शरीरों की उत्पत्ति होती है ॥ १ ॥ इस प्रकार रज और वीर्य से शरीर की उत्पत्ति हुई और उसी प्रकार उलट करके शरीर मिट्टी-जल आदि में अंततः लीन हो जाते हैं ॥ २ ॥ यदि स्त्री और पुरुष के रज-वीर्य में तथा स्त्री की बच्चेदानी की रचना में कोई त्रुटि होती है तो रज-वीर्य यों ही नष्ट हो जाते हैं, और वे संतान के उत्पत्ति योग्य नहीं रह जाते ॥ ३ ॥

विशेष — रज-वीर्य से शरीर बन कर पुनः मिट जाता है यह प्रमाण देकर विश्व की उत्पत्ति मानने वाले कहते हैं कि इसी प्रकार ब्रह्म से विश्व बनकर पुनः उसी में लीन हो जाता है। विश्व का उत्पत्ति प्रकार तो पाँचवे प्रसंग में दिया जा चुका है अब प्रलय प्रकार देते हैं :—

पृथिवी लीन होय जल माहिं । जल को तेज प्रत्यक्षहिं खाहिं ॥४॥
तेज पवन में जाय विलाय । पवन सो जाय अकाश समाय ॥५॥
अकाश लीन शब्दमें होय । वर्णन प्रणव ताहि कहै सोय ।.६॥

शब्दार्थ — प्रणव = ॐ ।

भावार्थ — पृथ्वी जल में लीन हो जाती है, जल को अग्नि प्रत्यक्ष ही शोषण कर लेता है अर्थात् जल अग्नि में लीन हो जाता है ॥ ४ ॥ अग्नि वायु में विलीन हो जाती है और वायु जाकर आकाश में लीन हो जाता है ॥ ५ ॥ और कार्य आकाश उस शब्द में लीन हो जाता है जिसे ॐ कहकर उसका विविध भाँति से वर्णन किया जाता है ॥ ६ ॥

शब्द अकाश के मध्य विलाय । अकार उकार लै होय जाय ॥ ७ ॥
सो धून नाश मकार के माँहि । श्वासा अर्धचंद्र के पाँहि ॥ ८ ॥
अर्धचंद्र मिटि शून्या रहै । महाकाल महाप्रलय कहै ॥ ९ ॥

शब्दार्थ — शून्या = ब्रह्म । महाकाल = अखण्ड, अनन्तकाल; संहारकारीरूप ।

भावार्थ — पुनः वह प्रणव शब्द अनंताकाश में विलीन हो जाता है; और रजोगुण रूप 'अ' कार तथा सतोगुण रूप 'उ' कार की ध्वनि तमोगुण रूप 'म' कार में विलीन हो जाती है। और 'म' कार रूप श्वास माया रूपी अर्धचंद्र में विलीन हो जाता है और अंततः अर्धचंद्र रूप माया मिट कर विंदु रूपी शून्य ब्रह्म में लीन हो जाती है जिसे लोग महाकाल तथा महाप्रलय कहते हैं ॥ ७–९ ॥

विशेष — उपर्युक्त ४ से ९ चौपाई तक महाप्रलय का वर्णन हुआ है। आगे एकांतिक प्रलय का वर्णन करते हैं।

कर्म नशाय द्रव्य के साथ । नाशे द्रव्य इच्छा के हाथ ॥ १० ॥

इच्छा ज्ञान में होवै लीन। ज्ञानी आपु ब्रह्म परवीन ॥ ११ ॥
एकांतिक प्रलय कहावै सोय। पुनि सो इच्छा परगट होय ॥ १२ ॥

शब्दार्थ — **कर्म**=क्रिया मात्र। **द्रव्य**=पंच विषय; मूलद्रव्य। **इच्छा**= स्फुरणा, कामना। **परवीन**=प्रवीण, निपुण, कुशल, सर्वज्ञ। **एकांतिक**=पक्का, निश्चित; व्यक्तिगत।

भावार्थ — कर्म नष्ट होकर द्रव्य में लीन हो जाते हैं, अर्थात् द्रव्य क्रिया रहित हो जाते हैं; और द्रव्य भी नष्ट होकर ब्रह्म की इच्छा में विलीन हो जाते हैं ॥ १० ॥ पुन: इच्छा ज्ञानस्वरूप ब्रह्म में विलीन हो जाती है, और ब्रह्म तो स्वयं ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ है ॥ ११ ॥ सबका लय होकर एक ब्रह्म का रह जाना इसे कहते हैं एकांतिक अर्थात् निश्चित प्रलय। परन्तु ब्रह्मका स्वभाव है जगत निर्माण करना अतएव कालान्तर में पुन: उसमें जगत बनाने की इच्छा प्रकट होती है ॥ १२ ॥

पुरुष प्रकृति सनातन जान। संतत स्वतः स्वभाव समान ॥ १३ ॥
स्वतः स्वभाव नहिं मिटै मिटाय। संतत जोई सोई प्रगटाय ॥ १४ ॥

शब्दार्थ — **पुरुष**=ब्रह्म। **प्रकृति**=माया। **सनातन**=नित्य। **सन्तत**= सर्वदा। **समान**=एक-सा, बराबर।

भावार्थ — ब्रह्म और माया को नित्य समझो। उनके स्वत: स्वभाव भी सर्वथा एक-से हैं जगत की उत्पत्ति तथा लय करते रहना ॥ १३ ॥ यह न्याय की बात है कि द्रव्य में जो स्वतः स्वभाव होता है (जैसे अग्नि में उष्णता) वह मिटाने से नहीं मिटता, उनमें जो सदा से होते आया है वही आगे भी होता रहता है ॥ १४ ॥

साखी — स्वतः स्वभाव प्रपंच जो, छूटै कौन उपाय।
दुख सुख सम अनुमान के, सहज रहा जहँड़ाय ॥ ११ ॥

शब्दार्थ — **प्रपंच**=विस्तार, जगत। **जहँड़ाय**=ठगाय।

भावार्थ — जगत प्रपंच ब्रह्मका स्वत: स्वभाव ही है, फिर वह किस साधन से छूट सकता है ? परन्तु लोग यह अटकल लगाकर अपने आपको सीधे ठगा रहे हैं कि ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति होने पर सुख-दुख में समता होकर परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है ॥ ११ ॥

विशेष — अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो जाने से निश्चित ही मनुष्य परम-शांति को पाकर मुक्त हो जाता है; परन्तु जगत स्वरूप ब्रह्म में स्थित होकर जगत से छुटकारा पाने की आशा दुराशा मात्र है।

उपर्युक्त जो पृथ्वी का जल में तथा जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा का क्रमशः एक दूसरे में लय होनेकी बात बतायी है, सर्वथा अयुक्त है। एक तत्त्व दूसरे से सर्वथा

पृथक हैं, अतएव वे परस्पर मिलकर भी स्वरूपतः पृथक रहेंगे। फिर समस्त जड़ तत्त्व अंततः आत्मा में मिल जायेंगे यह महाभ्रम है। जिसमें जड़ तत्त्व लीन हों वह आत्मा कदापि नहीं हो सकता, वह तो विकारी है।

७ – चार प्रलय तथा चार अभावों का वर्णन

चौकड़ी–७

प्रलय चार चहुँ कहौं बुझाय। नित्य प्रलय नित नितहिं नशाय ॥ १ ॥
जागृति में जेता उतपात। उपजहिं पिंड ब्रह्मांड नशात ॥ २ ॥
शैन अस्थूल भोग मिटि जाय। कारण रहै पुनि पुनि प्रगटाय ॥ ३ ॥
सोई नित्य प्रलय कहत है वेद। प्रळय मरण जलामय भेद ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — शैन = शयन निद्रा; शय्या। कारण = वीज; संस्कार। भेद = रहस्य, मर्म।

भावार्थ — वैदिकसाहित्यों में चार प्रलय माना है; अब उनको समझा कर कहता हूँ। नित्य प्रलय उसे कहते हैं जो सुषुप्ति में नित्य जागृति व्यवहार का नष्ट होना है ॥ १। जैसे जागृति अवस्था में पिण्ड-ब्रह्माण्ड के जितने उपद्रव दृष्टिगोचर होते हैं सुषुप्ति अवस्था में भूल जाते हैं ॥ २ ॥ अर्थात् गाढ़ी निद्रा में स्थूल (सूक्ष्म) इन्द्रियों के सारे भोग मिट जाते हैं, परन्तु संस्कार वीज रूप में रहते हैं इसलिये जागने पर वे पुनः-पुनः प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥ इस सुषुप्ति अवस्था में व्यवहार के अभाव को ही वेद नित्य प्रलय कहते हैं और जलामय प्रलय का रहस्य है–मृत्यु। अर्थात् मृत्यु जलामय प्रलय कहलाता है ॥ ४ ॥

विशेष — नित्यप्रलय, जलामयप्रलय, एकांतिक प्रलय तथा महाप्रलय—ये चार प्रलय माना है। छठीं चौकड़ी की ४ से ९ चौपाइयों तक महाप्रलय और १० से १२ चौपाइयों तक एकांतिक प्रलय का वर्णन हो चुका है। इस चौकड़ी में मात्र नित्य प्रलय तथा जलामय प्रलय का वर्णन करना था; वह भी नित्य प्रलय का ऊपर चार चौपाइयों में हो गया और जलामय प्रलय का संक्षिप्त स्वरूप भी ऊपर चौथी चौपाई के दूसरे चरण में बता दिया गया। अब उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

पाँचतत्त्व पिंड ब्रह्मांड। प्रलय पिंड जलामय अंड ॥ ५ ॥
नाडी तीन एक घर होय। सन्निपात गुण नाशक सोय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ —अंड = अण्डाकार ॐ, कारण ब्रह्म।

भावार्थ — पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व, चारखानियों की देहें तथा नाना वस्तु रूप पिण्ड एवं विश्व ब्रह्माण्ड—इस प्रकार समस्त बंधे हुए पिण्डों का जल में डूबकर नष्ट हो जाना और एक अण्डरूप प्रणव व ब्रह्म का रह जाना जलामयप्रलय है ॥ ५ ॥

(और भी) कफ, पित्त तथा वात ये तीन नाड़ियाँ जब एकत्र हो जाती हैं तब मनुष्य को सन्निपात हो जाता है जो जीवत्व गुण का नाशक है, पुनः — ॥ ६ ॥

जलमा सोई सीतंग उपाय। श्वासा उलटि गगन समाय ॥ ७ ॥
उलटि पाँचों जाय बिलाय। सूक्ष्म देह सो थूल रहाय ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — जलमा = जलमें, रक्तमें। सीतंग = शीतलता। पाँचों = प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान—पाँचों प्राण। थूल = सूक्ष्म।

भावार्थ — रक्तमें शीतलता उत्पन्न हो जाती है, श्वास उलट कर खोपड़ी में चला जाता है ॥ ७ ॥ पंच प्राण भी अपनी क्रिया को छोड़कर नष्ट हो जाते हैं; और मनुष्य मर जाता है। परन्तु सूक्ष्म देहमें सूक्ष्म रूप में संस्कार रहते हैं ॥ ८ ॥

मन आदि इंद्री के विलास। स्वर्ग नर्क दुख सुख परकाश ॥ ९ ॥
पुनि सूक्ष्म स्थूल सो होय। प्रथम अनुहार दृढ़ावै सोय ॥ १० ॥

शब्दार्थ — विलास = भोग। अनुहार = भेद, प्रकार। दृढ़ावै = निश्चय कराते, बताते।

भावार्थ — मन और इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होकर किये गये पाप-पुण्य कर्मों के द्वारा दुःख-सुख रूप नर्क-स्वर्ग का जीव उपभोग करता है ॥ ९ ॥ शरीर छूट जाने पर उन्हीं सूक्ष्म संस्कारों के अनुसार पुनः स्थूल शरीर की प्राप्ति होती है। जैसे सूक्ष्म संस्कार-वश जीव पहले शरीर धारण किया था, पुनः शरीर धारण करने में वही प्रकार पुनः बताया जाता है ॥ १० ॥

विशेष — प्रसंगवश जीव को पुनः शरीर प्राप्ति आदि का भी कारण बताया गया। यहाँ की मुख्य बात तो यह है कि पिंडका जलामय प्रलय शरीर छूट जाना है। अब ब्रह्माण्ड का जलामय प्रलय बताते हैं।

तीनि नाड़ि तिहुँ समय प्रचंड। होय एकत्र जलामय अंड ॥ ११ ॥
पाँच तत्त्व सो जाय नशाय। सूक्ष्म ग्रह आदिक सो रहाय ॥ १२ ॥
पुनि उपजै पुनि जाय विलाय। ब्रह्मांड जलामय सोई कहाय ॥ १३ ॥

शब्दार्थ — ग्रह = तारे; नौ ग्रह मुख्य हैं:—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु।

भावार्थ — पिण्ड में जैसे कफ, पित्त तथा वात ये तीन नाड़ियाँ हैं वैसे ब्रह्माण्ड में वर्षा, शीत तथा गरमी ये तीन समय हैं, ये तीनों जब अपना भयंकर रूप धारण करके एकत्र हो जाते हैं तब ब्रह्माण्ड का जलामय प्रलय होकर वह एक अण्ड ॐ कार में समा जाता है ॥ ११ ॥ उस समय पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, केवल ग्रह, नक्षत्रादि रह जाते हैं ॥ १२ ॥ इस प्रकार बारम्बार ब्रह्मसे सृष्टि उत्पन्न होकर

उसी में विलीन होती रहती है, यह सृष्टि का ब्रह्म में विलीन होना ही ब्रह्माण्ड का जलामय प्रलय है ।। १३ ।।

थूल नशाय सुषुप्ति भोग । धुन्धाकार दुहुँ भास वियोग ।।१४।।
कारण सब छिपि रहै तेहि माँह । थूल अस्थूल बहुरि प्रगटाह ।।१५।।
सो कारण नाशै ब्रह्मज्ञान । ज्ञान नशाय आपु अमान ।।१६।।
पिंड भाव ब्रह्मांड अनुमान । प्रलय चार सो वेद प्रमान ।।१७।।

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म । धुन्धाकार = धुंधकार, अंधकार । अमान = निर्मल ब्रह्म । पिंड = देह; वस्तुयें ।

भावार्थ — सूक्ष्म स्वप्नभास भी जब समाप्त हो जाता है तब जीव सुषुप्ति अवस्था में पहुँच कर उसका उपभोग करता है । उस समय जागृति और स्वप्न दोनों के भास समाप्त होकर केवल घोर अंधकारमय गाढ़ी निद्रा रहती है ।। १४ ।। जागृति तथा स्वप्न के समस्त कारणबीज उस सुषुप्ति में लीन रहते हैं; इसीलिये वे सूक्ष्म और स्थूल दोनों पुनः प्रकट होते हैं । अर्थात् पुनः स्वप्न तथा जागृति अवस्था आती हैं ।।१५।। परन्तु स्थूल, सूक्ष्म देहों का बीज जो कारण देह है जिसकी अवस्था सुषुप्ति है वह ब्रह्मज्ञान होने पर नष्ट हो जाती है और केवल महाकारण (ज्ञान देह) रह जाता है । पुनः वह भी नष्ट होकर अपने आप निर्मल, निरंजन ब्रह्म रह जाता है । (यह एकांतिक प्रलय की झलक है जिसका वर्णन ६ ठीं चौकड़ी की १० से १२ चौपाइयों में द्रष्टव्य है) ।। १६ ।। शरीर तथा नाना वस्तुओं को विनशते देखकर लोगों ने ब्रह्माण्ड के प्रलय का भी अटकल लगाया है और उसका वेदादि ग्रंथों में वर्णन किया है । उसी प्रमाण से चार प्रलयों का लोग कथन करते हैं ।। १७ ।।

विशेष — विवेक से जड़-चेतनमय जगत अनादि है; अतएव अनन्त भी है । इसका सर्वथा प्रलय कहना गलत है । जैसे शरीरों तथा नाना वस्तुओं की उत्पत्ति एवं प्रलय आज होते रहते हैं वैसे सदा से होते रहे और आगे भी होते रहेंगे । परन्तु पृथ्वी, जलादि सबका अभाव होकर शून्य हो जाना बतलाना एक भ्रम है ।

आगे चार अभावों का वर्णन किया जाता है ।

अभाव चार सोई सहिदान । प्राग प्रध्वंसा अन्योन्या जान ।।१८।।
अत्यंता नहिं मान अमान । अन्योन्या कहिये आप अमान ।।१९।।

शब्दार्थ — सहिदान = पहिचान, चिन्ह, लक्षण । अत्यंताभाव = जैसे खरगोश के सींग । अन्योन्याभाव = एक में दूसरे का अभाव, जैसे कपड़े में घड़ा का तथा घड़ा में कपड़े का । मान = जगत । अमान = ब्रह्म ।

भावार्थ — अभाव चार हैं—प्राग, प्रध्वंस, अन्योन्य तथा अत्यंत । उनके लक्षण

इस प्रकार हैं—अत्यन्ताभाव कहते हैं जहाँ ब्रह्म और जगत दोनों का अत्यन्त अभाव हो। इसको निर्गुण ब्रह्म की स्थिति कहते हैं। अन्योन्याभाव का अर्थ है अन्य का अभाव होकर केवल एक अमान—ब्रह्मतत्त्व का रह जाना ॥ १९ ॥

प्रागभाव कारण के जान। प्रध्वंसा परलय पहिचान ॥२०॥
चारों अभाव स्वरूपीराम। सोहं वोहं राम अकाम ॥२१॥

शब्दार्थ — प्रागभाव = प्राक् + अभाव; प्राक् (प्राच्) = पूर्व, पहले का; अभाव = न होना, जैसे दूध में दही का न होना प्रागभाव है। प्रध्वंसाभाव = प्रध्वंस + अभाव; प्रध्वंस = नष्ट; अभाव=न होना, जैसे घट के नष्ट होने पर उसका अभाव। राम = ब्रह्म।

भावार्थ — प्रागभाव कारण में कार्य का अभाव समझिये, जैसे दूध में दही का पहले अभाव दिखता है। नाश को प्रध्वंसाभाव जानिये, जैसे घड़ा के नाश होने पर उसका अभाव रहता है। २० ॥ चारों अभाव ब्रह्मका स्वरूप है जिसको लोग वोऽहम्, सोऽहम्, राम तथा निष्काम शब्दों से जानते हैं ॥ २१ ॥

विशेष — ब्रह्म में सबका अभाव है और ब्रह्म स्वयं शून्य स्वरूप है; इसलिये वह चारों अभावों का स्वरूप कहा गया है। ग्रंथकार ब्रह्मवादियों का मत परखाने के लिये ये सब विवरण दे रहे हैं। जिज्ञासु को उसे परखकर भ्रमको छोड़ना चाहिये और यथार्थ बोध ग्रहण करना चाहिये।

साखी—कोइ उलटै कोइ पलटै, सोहं वोहं राम।
दुहुँ भाँति जब थिति नहीं, आपु सकाम अकाम ॥१२॥

शब्दार्थ — थिति = स्थिति।

भावार्थ — सोऽहम्, वोऽहम् तथा राम शब्द को कोई सीधे तथा कोई उसका विलोम (उलटा) करके—जैसे सोहं का हंसो तथा राम का मरा आदि जपता है। जब इन दोनों प्रकारों से मनुष्य को माना हुआ परमात्मा नहीं मिलता और उसे शांति नहीं आती तब वह ईश्वर प्राप्ति का कामनावाला बना सकामी व्यक्ति उस कामना को छोड़कर स्वयं निष्काम ब्रह्म बनता है ॥ १२ ॥

विशेष — विविध साधनों से जब माना हुआ परमात्मा या ब्रह्म नहीं मिलता तब मनुष्य उससे निराश होकर कहता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं ही ब्रह्म (श्रेष्ठ) हूँ यह भाव तो ठीक है; परन्तु वह जब व्याप्य-व्यापकभाव से पृथक तथा जड़से भी भिन्न हो। वस्तुतः चराचर व्यापक माना हुआ ब्रह्म कल्पित है। उसकी कल्पना करने वाले चेतन जीव ही सत्य एवं श्रेष्ठ हैं, जो केवल ज्ञान गुण में एक समान तथा व्यक्तित्व में अनेक अर्थात् असंख्य हैं।

८– पिण्ड तथा उसमें पंचसूक्ष्म वायु, और रेचक, पूरक, कुम्भक का वर्णन

चौकड़ी-८

स्वतः स्वभाव सनातन देव । कैल पिंड के कहते भेव ॥ १ ॥
जेहि प्रकार भया ब्रह्मांड । सोई कला विचार जो पिंड ॥ २ ॥

शब्दार्थ — कैल = क्रीड़ा, खेल । भेव = भेद ।

भावार्थ — (कहते हैं) नित्य ब्रह्मका स्वतः स्वभाव है सृष्टि बनाना जिसका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है । अब शरीर तथा उसमें अन्य रचनाओं के खेल का रहस्य कहता हूँ ॥ १ ॥ जिस प्रकार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है विचार करने पर वही रचना पिण्ड में भी प्रतीत होती है ॥ २ ॥

पाँच तत्त्व मिलि नाना रूप । खंड ब्रह्मांड अनेक स्वरूप ॥ ३ ॥
पिंड ब्रह्मांड बहुत कराल । इंद्री प्रकृति अनेकन्हि जाल ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कराल = भयंकर बन्धन ।

भावार्थ — पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वों से मिलकर अनेक वस्तुयें, प्राणियों के शरीर तथा विश्व ब्रह्माण्ड—ये नाना रूप प्रकट हुए हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकार पिण्ड-ब्रह्माण्ड तथा इन्द्रिय-प्रकृति के अनेकों भयंकर मोह के बन्धन हैं जिनमें जीव बंधे पड़े हैं ॥ ४ ॥

पाँच थूल तत्त्व ब्रह्मांड । सोई देखिये प्रगटै पिंड ॥ ५ ॥
पाँच तत्त्व पाँच समान । अधिकारी प्रति नाम बखान ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म । समान = प्रवेश, मिले हुए । अधिकारी = हकदार; अधिकांश ।

भावार्थ — (कहते हैं) जैसे पाँच सूक्ष्म तत्त्वों से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, देखो; उन्हीं सूक्ष्म तत्त्वों से सब खानियों के शरीर भी प्रकट होते हैं ॥ ५ ॥ पाँचों तत्त्व परस्पर पाँचों में सूक्ष्मरूप से मिले हुए हैं, परन्तु जहाँ जो तत्त्व अधिक है उसका नाम लिया जाता है ॥ ६ ॥

विशेष — पृथ्वी में अन्य सब तत्त्व सूक्ष्मरूप में मिले हैं, परन्तु अधिकतम पृथ्वी है, इसलिये वहाँ पृथ्वी तत्त्व का ही नाम लिया जाता है । इसी प्रकार अन्य तत्त्वों के विषय में समझ लें ।

पोल संधि सोई आकाश । श्वासा पूरण वायु विलास ॥ ७ ॥
जठर अग्नि है जल सो अनंग । तासो पृथ्वी प्रगटे संग ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — पोल = खोखलापन; खाली जगह । संधि = छेद । जठर = पेट ।

अनंग=अंग-देहरहित, काम; तात्पर्य में वीर्य। **पृथ्वी**=शरीर। **संग**=नर-नारी का संग।

भावार्थ — शरीर में जहाँ खाली जगह, छिद्र या शून्य है वही आकाश है। शरीर में आकाश होने से ही प्राण चलते तथा अनेक वायु क्रीड़ा करते हैं ॥ ७ ॥ पेट में मुख्य रूप से अग्नि निवास करती है जिसमें खाये-पीये हुए पदार्थ पचते हैं, और जलका अंश वीर्य है जिससे नर-नारी के संग से पार्थिव शरीर की उत्पत्ति होती है ॥८॥

उभय अकाश नहीं कछु आस। अंतःकरण भया सो भास ॥ ९ ॥
तासों प्रगटै थीर बतास। पंच कला तामें प्रकाश ॥१०॥

शब्दार्थ — **उभय अकाश**=दोनों आकाश–पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड का आकाश। **आस**=राख, पर्दा, अन्तर। **भास**=कल्पना। **थीरबतास**=स्थिर वायु, माया। **कला**=भाग, अंश।

भावार्थ — कुछ लोगों के अन्तःकरण में ऐसी कल्पना हुई कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड के आकाश में कोई अन्तर नहीं है ॥ ९ ॥ अतएव जैसे ब्रह्माण्ड के आकाश में पहले स्थिर पवन उत्पन्न हुआ बताया गया है वैसे शरीर के आकाश में भी स्थिर पवन प्रकट हुआ। पुनः उसमें पाँच अंशों में चंचल वायुयों का प्रकटीकरण हुआ ॥ १० ॥

धनंजय सो आकाश अनुरूप। सांई निरंजन लिये स्वरूप ॥११॥
देवदत्त शक्ति परवान। जेहि आश्रित सब कर्म उपान ॥१२॥

शब्दार्थ — **निरंजन**=ब्रह्म। **परवान**=प्रमाण, मानना।

भावार्थ — शरीरस्थ धनंजय वायु आकाश स्वरूप माना गया है। कहते हैं यह साक्षात ब्रह्म का अंश हैं और शरीर का पोषण करता तथा फुलाता है ॥ ११ ॥ देवदत्त वायु पृथ्वी रूप माना गया है जिसके आधार में शरीर में सभी प्रकार के कर्म होते हैं, यह माया का अंश है ॥ १२ ॥

वायु कूर्म नैन के दाव। नाग वायु उदगार स्वभाव ॥१३॥
चमकावन कृकरा के जान। झीनी पाँचों पै निरमान ॥१४॥

शब्दार्थ — **पाँचों पै**=पाँचों तत्त्वों से।

भावार्थ — कूर्मवायु जो नेत्र के पलकों को गिराता-उठाता है अग्नि तत्त्व का रूप तथा विष्णु का अंश है। नाग वायु जिसका डकार लाना स्वभाव है जलतत्व का रूप तथा ब्रह्मा का अंश बताया जाता है ॥ १३ ॥ कृकल वायु का काम शरीर को चमका देना या छींक लाना समझो, यह चंचलवायुतत्त्व का रूप तथा महादेव का अंश माना जाता है। ये पाँचों झीने वायु पाँच तत्त्वों के अंश से प्रकट हुए हैं ॥ १४ ॥

रेचक पूरक कुंभक तीन। त्रिगुणी नाड़ी तहाँ सो कीन्ह ॥१५॥
खैंचै गहै चढ़ावै श्वास। अंगीकार पूरक के गाँस ॥१६॥

शब्दार्थ — **त्रिगुणी नाड़ी**=इडा, पिंगला, सुषुम्णा। **अंगीकार**=स्वीकार, ग्रहण; ऊपर लेना, उठाना। **गाँस**=भेद की बात; निगरानी; शासन; अधिकार।

भावार्थ — उक्त वायुयों में से ही इडा, पिंगला और सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ हुईं, जिनमें अभ्यासी लोग रेचक, पूरक और कुम्भक का अभ्यास करते हैं (उनका प्रकार इस तरह है—) ॥ १५ ॥ श्वास को नाक से ऊपर खीचना, ग्रहण करना, चढ़ाना, ऊपर ले जाना—यह पूरक का रहस्य या उसपर अधिकार है ॥ १६ ॥

विशेष — खींचना, ग्रहण करना, चढ़ाना, ऊपर ले जाना एक ही बात है। यह इडा (नाक के बायें छेद) से बहुतायत किया जाता है। वैसे पिंगला से भी किया जाता है।

छाड़ै उतारै डारै जोय। प्रतीकार रेचक के होय ॥१७॥
कुंभक छिपावै मिटावै श्वास। भास अभास सो करै विलास ॥१८॥

शब्दार्थ — **प्रतीकार**=प्रतिकार, जवाब देना, उलटा करना; तात्पर्य में चढ़ाया हुआ वायु बाहर करना। **भास**=श्वास के साथ कल्पित ध्यान। **अभास**=शून्य-वृत्ति। **विलास**=क्रीड़ा।

भावार्थ — जो श्वास पूरक में ऊपर चढ़ाया गया है, उसे धीरे-धीरे छोड़ना, उतारना, डालना (त्यागना), उलटना—रेचक का स्वरूप कहलाता है ॥ १७ ॥ कुम्भक उसे कहते हैं जब पूरक के बाद और रेचक के पहले वायु ब्रह्माण्ड में ग्रहण किया हुआ रहता है उस समय उसे छिपावे, मिटावे अर्थात् जितना बन सके रोक रखे। इस प्रकार प्राणायाम के अभ्यासी लोग श्वास के साथ कल्पित ध्यान रूप भास में तथा शून्यवृत्ति रूप अभास में क्रीड़ा करते हैं ॥ १८ ॥

विशेष — इडा (नाक के बायें छेद) से वायु चढ़ाना पूरक है; मस्तक में रोक-रखना कुम्भक है; पुनः पिंगला (नाक के दायें छेद) से निकालना रेचक है। इसी प्रकार उलटाकर पिंगला से चढ़ाना, रोकना तथा इडा से उतारना होता है।

चारि कला तेहि माँह देखाय। संमत द्वादश वाक्य उपाय ॥१९॥

शब्दार्थ — **कला**=अंश, भाग। **संमत**=संवत, वर्ष। **द्वादश**=बारह (१२)।

भावार्थ — उक्त योगध्यान में महावाक्य के चार भागों के दर्शन हुए और एक वर्ष में जैसे बारह महीने होते हैं वैसे एक ब्रह्मके बोधक बारह अवान्तर (गौण) वाक्य प्रकट हुए ॥ १९ ॥

विशेष — चार महावाक्य ये हैं :—प्रज्ञानंब्रह्म (ऋग्वेद), अहंब्रह्मास्मि (यजुर्वेद), तत्त्वमसि (सामवेद) तथा अयमात्माब्रह्म (अथर्ववेद)।

बारह अवान्तर (गौण-बीच के) वाक्य ये हैं:—क्षर, अक्षर, निःक्षर; जहद्, अजहद्, जहदाजहद्; जीव, ब्रह्म, आत्मा; तत्, त्वं, असि।

साखी — चहुँ कला किये तिह अंग में, द्वादश वाक्य पहिचान।
संवत बारह मास सो, तीन के समय प्रमान ॥१३॥

शब्दार्थ — तिह = तीन–रेचक, पूरक, कुम्भक।

भावार्थ — प्राणायाम के तीन अंगों—रेचक, पूरक तथा कुम्भक के अभ्यास-पूर्वक ध्यानयोग में चार महावाक्य रूप ब्रह्मसिद्धि के चार भागों का निर्माण किया गया, और उसके बाद द्वादश अवांतर वाक्यों का सृजन हुआ, जैसे वर्षा, ठण्डी तथा गरमी—इन तीन समयों के एक-एक में चार महीने होकर बारह महीनों का वर्ष होता है ॥ १३ ॥

कारण तजि कला भया, धनंजयादि समुदाय।
विकलपभाव इन्द्रिय बहिर, झीनी चाल उपाय ॥१४॥

शब्दार्थ — कारण = पृथ्वी, जल आदि मूल तत्त्व। कला = अंश, रचना। विकलप = विभिन्नता। **झीनी चाल** = अन्तःकरण चतुष्टय की क्रियायें।

भावार्थ — मूल पृथ्वी आदि तत्त्वों को छोड़कर जो धनंजय, कूर्म, नाग आदि प्रकृति अंशों का समूह है विभिन्न भाव वाली बाह्य इन्द्रियों तथा सूक्ष्म क्रिया वाले अंतःकरण की उत्पत्ति में हेतु है ॥ १४ ॥

विशेष — इन्द्रिय तथा अंतःकरण की उत्पत्ति में पृथ्वी आदि तत्त्व तो हेतु हैं ही; परन्तु जो उनसे उत्पन्न धनंजय आदि वायु हैं वे भी इन्द्रिय तथा अंतःकरण के उत्पन्न होने में हेतु बतलाते हैं; जिसका विवरण अगले प्रसंग में द्रष्टव्य है।

९ – चतुष्टय अंतःकरण, पिंड के पाँच प्राण तथा ज्ञान इन्द्रियों का उत्पत्तिकथन

चौकड़ी – ८

सोई कला ले इंद्री होय। हं चित मन बुद्धि जानहु सोय ॥ १ ॥
वायु अकाश मिलि चित अनुसंधान। तेज अकाश अहंकार करतूत जान॥ २ ॥

शब्दार्थ — कला = भाग। हं = अहंकार। **अनुसंधान** = खोज, चिंतन।

भावार्थ — उपर्युक्त धनंजयादि भागों को लेकर आँख, नाक आदि इन्द्रियाँ तथा अहंकार, चित्त, मन, बुद्धि की उत्पत्ति समझना चाहिये ॥ १ ॥ वायु और आकाश मिल करके चित्त की उत्पत्ति बतलायी गयी है जो चिंतन या खोज का काम करता है; और अग्नि तथा आकाश मिलकर अहंकार की उत्पत्ति मानी गयी है जिसका स्वभाव है कर्तव्य करना या स्वीकार करना ॥ २ ॥

विशेष — उपर्युक्त चित्त तथा अहंकार की उत्पत्ति में क्रमशः वायु और तेज के साथ जो आकाश जोड़ा गया है वह धनंजय वायु के स्थल पर प्रयुक्त हुआ है।

आकाश नीर ले मन अनुहरे। संकल्प विकल्प जानहु करे ॥ ३ ॥
होखै गगन पृथ्वी के संग। निश्चय कर्म बुद्धि के अंग ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अनुहरे = अनुहार = आकृति। होखै = होता है।

भावार्थ — आकाश और जल मिलकर मनकी आकृति बनती है, जिसका काम संकल्प-विकल्प करना समझना चाहिये ॥ ३ ॥ और पृथ्वी आकाश जब एक साथ होते हैं, तब बुद्धि की उत्पत्ति होती है, जिसका काम है निश्चय करना ॥ ४ ॥

विशेष — यहाँ भी मन और बुद्धि की उत्पत्ति में जल और पृथ्वी के साथ जो आकाश जोड़ा गया है धनंजय वायु का वाचक हैं।

धनंजय सो गगन स्वरूप। देवदत्त पृथिवी अनुरूप ॥ ५ ॥
वायु किंकरा कूर्म सो आग। नीर अनुरूप बखानै नाग ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — अनुरूप = समान; स्वरूप।

भावार्थ — धनंजय आकाश स्वरूप, देवदत्त पृथ्वी स्वरूप, कृकल वायु स्वरूप, कूर्म अग्नि स्वरूप तथा नाग को जलस्वरूप वर्णन करते हैं ॥ ५, ६ ॥

बाहर इंद्री कारण प्रतिकूल। सूक्ष्मदेह आवै सो मूल ॥७॥
देवदत्त कर्म अभिमान। धनंजय सो विशेष विज्ञान ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — मूल = वासना, जड़।

भावार्थ — आँख, नाकादि बाह्य इन्द्रियाँ पंचविषयों के ग्रहण में हेतु हैं तथा उसके प्रतिकूल अंतःकरण रूपी सूक्ष्म देह में जो एकत्रित होती है वह जन्मादि का हेतु भूत मूल वासना है ॥ ७ ॥ (अब पाँचों वायुयों के कर्तव्य बतलाते हैं) देवदत्त कर्म का अभिमानी है, अर्थात् वह कर्म करने में बल देता है; और धनंजय विशेष रूप में ब्रह्मज्ञान रूप विज्ञान के अनुभव में सहायक है ॥ ८ ॥

वायु किंकरा ज्ञानस्वरूप। कूर्म आग उपासना रूप ॥ ९ ॥
नाग वायु योग बलठान। तासों पवन श्वास निरमान ॥१०॥

शब्दार्थ — निरमान = निर्मित हुआ।

भावार्थ — किंकिरा वायु आत्म ज्ञान करने में बल देता है, और अग्निरूप जो कूर्मवायु है वह उपासना में सहायक है ॥ ९ ॥ नाग वायु योग में शक्ति प्रदान करता है, उसी से श्वास वायु का निर्माण हुआ है ॥ १० ॥

पाँचों भये प्रत्यक्ष विशेष। श्वासा बीच कला औ रेष ॥११॥
इंगलादि नाड़ी तीन। झीनी नाड़ी परगट कीन्ह ॥१२॥

शब्दार्थ — कला = रचना, अनुभव । रेष = रेखा, लक्षण ।

भावार्थ — (कहते हैं) जिस योगी को उक्त धनंजय आदि पाँचों वायु साधना द्वारा विशेष प्रत्यक्ष हो जाते हैं वे अपने श्वास के बीच में ही तत्त्वों के रंग, पिण्ड-ब्रह्माण्ड की रचना तथा नाना लक्षणों को देखते व अनुभव करते हैं ॥ ११ ॥ ऐसे योगी लोग इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा इन तीनों नाड़ियों में प्रत्यक्ष तत्त्वोंका प्रकाश देखते हैं ॥ १२ ॥

सो अस्थूल भया परचंड । और पाँचसो प्रगटै पिंड ॥१३॥
प्राण अपान व्यान समान । और उदान उतपति पहिचान ॥१४॥

शब्दार्थ — सो = सूक्ष्म ।

भावार्थ — उपर्युक्त सूक्ष्म रचनायें स्थूलता की ओर बढ़ती हुई अपना विशाल रूप बनाती गयीं तथा पिण्ड में अन्य पाँच वायु प्रकट हुए, उनके नाम हैं—प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान; इनकी उत्पत्ति को भी समझो ॥ १३, १४ ॥

वायु अकाश व्यान सो होय । सर्व शरीर व्यापै सोय ॥१५॥
नाभि समान वायु जुग जान । तेज वायु मिलि हृदया प्रान ॥१६॥

शब्दार्थ — जुग = युग, दो । प्रान = प्राण ।

भावार्थ — वायु तथा आकाश मिल कर व्यान का निर्माण होता है जो सारे शरीर में व्याप्त रहता है ॥ १५ ॥ समान वायु नाभि में रहता है जो ब्रह्माण्ड की कृकल तथा पिंड की चंचल—इन दो वायुओं से उत्पन्न हुआ समझो; और अग्नि तथा वायु मिलकर प्राण उत्पन्न होते हैं जो हृदय में रहते हैं ॥ १६ ॥

जल वायु मिलि कंठ उदान । मृत्तिका वायु गुदा अपान ॥१७॥
तेहिते ज्ञान इंद्री समुदाय । कर्म इन्द्री पाछे प्रगटाय ॥१८॥

शब्दार्थ — मृत्तिका = मिट्टी ।

भावार्थ — जल तथा वायु मिलकर उदान प्रकट होता है जो कंठ में रहता है और वह खाये पीये हुए पदार्थों को विभक्त करके यथास्थान पहुंचाता है । और मिट्टी तथा वायु से अपान पैदा होता है जो गुदास्थान में रहकर मल-मूत्र त्याग करने में सहायक होता है ॥ १७ ॥ उपर्युक्त प्रकार की सामग्री से ही ज्ञानइन्द्रियों का समूह भी प्रकट होता है तथा पीछे से कर्मइन्द्रियाँ प्रकट होती हैं ॥ १८ ॥

विशेष — उपर्युक्त प्राण, अपान आदि के प्रकट होने में जो पृथ्वी, जल अग्नि आदि के साथ में वायु जोड़ा गया है वह कृकल वायुका वाचक माना गया है । अब आगे पहले ज्ञानइन्द्रियों की उत्पत्ति बतायी जायगी ।

श्रवण रसना नैन बखान। त्वचा नासिका उतपति मान ॥१९॥
तेज अकाश मिलि श्रवण होय। बिना तेज सुनते नहिं कोय ॥२०॥

शब्दार्थ — रसना = जिह्वा। तेज = अग्नि।

भावार्थ — कान, जीभ, आँख, चमड़ी तथा नाक—ये पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ कही जाती हैं, जिनकी उत्पत्ति इस प्रकार मानी गयी है—॥ १९ ॥ अग्नि और आकाश मिलकर कान की उत्पत्ति बतायी जाती है। कहते हैं बिना अग्नि तत्त्व की सहायता पाये कोई शब्द को सुन नहीं सकता ॥ २० ॥

विशेष — यहाँ तेजतत्त्व ब्रह्माण्ड का कूर्म वायु तथा आकाशतत्त्व पिंड का व्यान वायु वाचक माना गया है।

वायु तेज त्वचा परचंड। इन्द्री सो स्पर्श प्रगटै पिंड ॥२१॥
तेज तेज मिलि चक्षु उपाय। तेज नीर रसना प्रगटाय ॥२२॥
तेज पृथ्वी जुग नासा होय। पाँचो पाँच विषय रस भोय ॥२३॥

शब्दार्थ — परचंड = तीव्र। चक्षु = नेत्र। जुग = युग, दो। भोय = भूल जाना।

भावार्थ — वायु तथा अग्नि मिल कर तीव्र स्पर्शग्राही चमड़ी उत्पन्न होती है, यह इन्द्रिय शरीर भर में व्याप्त है ॥ २१ ॥ अग्नि-अग्नि मिल कर नेत्र प्रकट होते हैं जो रूप ग्रहण करते हैं और अग्नि तथा जल मिलकर जिह्वा देवी प्रकट होती हैं (जो बड़ी अनर्थकारी हैं) ॥ २२ ॥ पुनः अग्नि और पृथ्वी को मिलाकर नाक प्रकट होती है जो गन्ध ग्रहण करती है। इस प्रकार ये पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध में लग कर जीव को विषयों में भुलाये रखती हैं ॥ २३ ॥

विशेष — त्वचा की उत्पत्ति में तेज कूर्मवायु का वाचक तथा वायु समान वायु का वाचक है। नेत्र की उत्पत्ति में तेज-तेज कूर्म तथा प्राण वायु के वाचक हैं। रसना की उत्पत्ति में तेज कूर्मवायु तथा नीर उदान वायु के वाचक हैं। और नासिका की उत्पत्ति में तेज कूर्मवायु तथा पृथ्वी अपान वायु के वाचक माने गये हैं।

साखी — अपनी अपनी विषय को, कारण ग्राही होय।
षड संपुट औ त्रिपुटी, राम प्रकाशिक सोय ॥१५॥

शब्दार्थ — कारण = ज्ञानेन्द्रिय। ग्राही = ग्रहण करने वाला, पकड़ने वाला। षड् = छः-पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ छठाँ मन, योगी, जंगमादि छः दर्शन; छः शास्त्र, छः ऊर्मियाँ इत्यादि। संपुट = बंद। त्रिपुटी = तीन का जोड़—सत, रज, तम; ज्ञान, भक्ति, योग; स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि। राम = चेतन जीव।

भावार्थ — सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को ग्रहण करती हैं; जैसे—कान

शब्द को, त्वचा स्पर्श को, नेत्र रूप को, जिह्वा रस को तथा नाक गंध को; इसी प्रकार मन संकल्प-विकल्प को। परन्तु जहाँ तक छः का समूहवंद, तीन का जोड़ या यावत जड़ सामग्री है—सबका ज्ञाता चेतनजीव रूप राम ही है ॥ १५ ॥

विशेष — शरीर में चेतन जीव का निवास न हो तो इन्द्रियाँ कुछ नहीं कर सकतीं। अतएव इस जड़साज में चेतनरूप राम की ही सर्वोपरिता है।

उपर्युक्त सारे उत्पत्ति कथन पराइत हैं।

१०—कर्मइन्द्रिय, विषय तथा २५ प्रकृतियों का उत्पत्तिकथन

चौकड़ी- १०

ज्ञान इंद्री को इहै विचार। कर्म इंद्री उतपति निरुवार ॥ १ ॥
क्षिति औ गगन जहाँ मिलाय। वाक्य इंद्रीसो तहाँ दृढ़ाय ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **निरुवार** = सुलझाव, निर्णय। **क्षिति** = पृथ्वी।

भावार्थ — ज्ञानइन्द्रियों की उत्पत्ति के विषय में जो विचार शास्त्रों के हैं उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। अब कर्मइन्द्रियों की उत्पत्ति का निर्णय देखिये ॥ १ ॥ पृथ्वी और आकाश मिल कर वाक्य इन्द्रिय उत्पन्न होना माना गया है ॥ २ ॥

विशेष — जिह्वा में ही रसना वाक्य दोनों इन्द्रियाँ हैं। यहाँ पृथ्वी देवदत्तवायु और आकाश व्यान वायु का वाचक है जिससे वाक्य इन्द्रिय की उत्पत्ति मानी है।

क्षिति वायु दोनों परसंग। इंद्री हाथ कर्म के अंग ॥ ३ ॥
क्षिति अरु तेज पाद उतपान। पृथिवी नीर शिश्न परवान ॥ ४ ॥
क्षिति क्षिति गुदा बखानै सोय। पाँचों कर्म इंद्री हैं जोय ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — **परसंग** = प्रसंग, संवन्ध। **पाद** = पैर। **शिश्न** = मूत्रइन्द्रिय। **गुदा** = मलइन्द्रिय।

भावार्थ — पृथ्वी और वायु के मिलने से हाथ इन्द्रिय उत्पन्न होती है जो कर्म का अंग है ॥ ३ ॥ पृथ्वी और अग्निके संयोग से पैर उत्पन्न हुए; और पृथ्वी तथा जल से मूत्रेन्द्रिय हुई ॥ ४ ॥ और पृथ्वी-पृथ्वी मिलकर मलेन्द्रिय की उत्पत्ति कहते हैं—ये ही पाँच कर्म इन्द्रियाँ हैं ॥ ५ ॥

विशेष — हाथ की उत्पत्ति में पृथ्वी और वायु क्रमशः देवदत्त तथा समान वायु के वाचक हैं। पैर की उत्पत्ति में पृथ्वी देवदत्त और तेज प्राणवायु के वाचक हैं। शिश्न की उत्पत्ति में पृथ्वी देवदत्त तथा जल उदान वायु के वाचक हैं। और गुदा की उत्पत्ति में पृथ्वी-पृथ्वी देवदत्त तथा अपान वायुके वाचक हैं।

शब्द स्पर्श रूप रस गंध। पाँचों विषय उतपति प्रतिबंध ॥ ६ ॥
नीर गगन ले शब्द उपाय। जल वायु स्पर्श दृढ़ाय ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — प्रतिबंध = बंधन; योजना; सदा बना रहने वाला सम्बन्ध; नियम । हढ़ाय = कथनकरना ।

भावार्थ — शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध--ये पाँच विषय हैं तथा इनके उत्पन्न होने का नियम इस प्रकार बताते हैं-।। ६ ।। जल और आकाश मिलकर शब्द की उत्पत्ति होती है, और जल तथा वायु मिलकर स्पर्श विषय की उत्पत्ति होना कहते हैं

विशेष — शब्द की उत्पत्ति में जल नागवायु तथा आकाश व्यानवायु का वाचक और स्पर्श विषयकी उत्पत्ति में जल नागवायु और वायु समान वायुका वाचक बताते हैं ।।७

नीर तेज रूप हढ़ भास । जल ही जल रस करै विलास ।। ८ ।।
नीर पृथिवी गंध सो होय । पाँचों विषय कहावै सोय ।। ९ ।।

शब्दार्थ — हढ़भास = अत्यन्त मोह या भ्रम । विलास = क्रीड़ा, भोग ।

भावार्थ — जल और अग्नि से रूप की उत्पत्ति होती है जिसका मनुष्यों को अत्यंत मोह है । और केवल जल-जल से रस विषय की उत्पत्ति होती है जिसका प्राणी जिह्वा से उपभोग करते हैं ।। ८ ।। जल और पृथ्वी से गंध विषय की उत्पत्ति बतलाते हैं । ये ही पाँचों विषय कहलाते हैं ।। ९ ।।

विशेष — रूप की उत्पत्ति में जल नागवायु तथा अग्नि प्राणवायु का और रस विषय की उत्पत्ति में जल-जल नागवायु तथा उदान वायु का वाचक माना है । गंध विषय की उत्पत्ति में जल नागवायु तथा पृथ्वी अपान वायु का वाचक है ।

अब आगे पाँच तत्वों का शरीर में निवास बतलाते हैं

पाँच स्थान सो तहाँ विशेष । भिन्न भिन्न लेखा सो लेख ।।१०।।
शून्य ब्रह्मांड अनहद का भोग । नाभि पवन गंध उतपोग ।।११।।

शब्दार्थ — तहाँ = शरीर । लेखा = अंदाज, विचार । शून्य = आकाश । ब्रह्मांड = खोपड़ी, भ्रमरगुफा । अनहद = अनाहत नाद, दश बाजा । नाभि = पेट का बीचभाग । उतपोग = उपभोग ।

भावार्थ — शरीर में पाँच तत्वों के पाँच विशेष स्थान माना है और उनका पृथक-पृथक अन्दाज लगा रखा है; उनका वर्णन इस प्रकार है-।। १० ।। आकाश का निवास खोपड़ी में है और उसका उपभोग है घंटा, भेरी आदि दश अनाहत नादों का श्रवण जो कान द्वारा होता है । वायु का स्थान नाभि में माना है तथा उसका उपभोग गंध-सुगंध ग्रहण बताया है जो नाक से ग्राह्य है ।। ११ ।।

तेज छुधा है पीत मुकाम । द्वारा नैन रूप सो काम ।।१२।।
बासा नीर विशेष लिलाट । मैथुनभोग जुग खुलै कपाट ।।१३।।
पृथिवी कलेजा मुख जेहि द्वार । खान पान सो करत अहार ।।१४।।

शब्दार्थ — छुधा = भूख । पीत = पित्त, यह नीलापन लिये पीले रंगका और

कड़वा होता है। लिलाट = ललाट, मस्तक। जुग = युग, दो—नर-नारी। कलेजा = प्राणियों का एक भीतरी अंग जो छाती के भीतर बाँयी ओर रहता है और जिससे पित्त बनता है और दूषित रक्त शुद्ध होता है।

भावार्थ — अग्नि का स्थान पित्त की घड़ियों में है, इसका काम है भूख-प्यास उत्पन्न करना। अग्नि का द्वार नेत्र है जिससे रूप ग्रहण होता है और अज्ञानवश लोग मोहित भी होते हैं॥ १२॥ जल का विशेष स्थान वीर्य रूप में मस्तक में माना है जिससे दम्पती सम्बन्ध में दोनों के मस्तक कपाट खुल कर रज-वीर्य का स्राव होता है जिसका द्वार शिश्न है॥ १३॥ पृथ्वी का स्थान कलेजा माना है, और उसका द्वार मुख है, जिससे खा-पीकर और आहार ग्रहण करके कलेजे की पुष्टि होती है॥ १४॥

विशेष — अब पाँच तत्त्वों से पचीस प्रकृतियों की उत्पत्ति बतायी जाती है जैसा की शास्त्रों में कहा है।

पाँच तत्त्वसों भये पचीस। अंश पिंड ब्रह्मांड सो ईश॥१५॥
लोभ काम क्रोध औ मोह। भय मिलि पंच गगन महँ सोह॥१६॥

शब्दार्थ — ईश = ईश्वर। सोह = शोभता है, निर्मित।

भावार्थ — पाँच तत्त्वों से पचीस प्रकृतियाँ उत्पन्न हुईं। कहते हैं अंशी रूप ईश्वर से पिण्ड, ब्रह्मांड समस्त अंश रूप में प्रकट हुए॥ १५॥ लोभ, काम, क्रोध, मोह और भय—ये पाँच आकाश की प्रकृतियाँ हैं अर्थात् उन्हीं से उत्पन्न होती हैं॥१६॥

विशेष — काम-क्रोधादि प्रकृति नहीं मनोविकार हैं, इसीलिये विवेक द्वारा उनका नाश होता है। यदि ये प्रकृतियाँ होती तो नष्ट नहीं होतीं। फिर आकाश तो शून्य है उससे कुछ होने से रहा। वस्तुतः ये सारे उत्पत्तिक्रम शास्त्रोक्त हैं। ग्रन्थकार उनके मत को दिखा रहे हैं। इनमें सार बातें भी बीच-बीच में हैं, शेष वाक्य-जाल है।

शून्यहि शून्य उतपति है लोभ। वायु शून्य काम के क्षोभ॥१७॥
तेज अकाश क्रोध तेहि होय। कारण मोह गगन जल सोय॥१८॥

शब्दार्थ — शून्य = आकाश। क्षोभ = विकार।

भावार्थ — आकाश-ही-आकाश मिलकर लोभ तथा वायु और आकाश मिलकर काम विकार की उत्पत्ति मानी है॥ १७॥ अग्नि और आकाश से क्रोध का उत्पन्न होना माना है और आकाश तथा जल मोह के उत्पन्न होने में कारण हैं॥ १८॥

विशेष — लोभ की उत्पत्ति में शून्य-शून्य धनंजय तथा व्यान वाचक हैं; काम की उत्पत्ति में आकाश धनंजय तथा वायु समान वायुका वाचक है; क्रोध की उत्पत्ति में आकाश धनंजय और अग्नि प्राणवायु वाचक माना है; और मोहकी उत्पत्ति में आकाश धनंजय तथा जल उदानवायु वाचक माना है।

पृथिवी अकाश मिलि भय मान। शून्य प्रकृति पाँच परवान ॥१९॥
चलन बोलन प्रसारन जोय। सिकोरन धावन वायुते होय ॥२०॥

शब्दार्थ — परवान = प्रमाण, मानना।

भावार्थ — पृथ्वी और आकाश मिलकर भय उत्पन्न होता है। इस प्रकार मुख्य आकाश (रूप समान वायु) से पाँच प्रकृतियों को उत्पत्ति मान रखा है॥ १९॥ चलना, बोलना, पसारना, सिकोड़ना और दौड़ना—ये वायु की प्रकृतियाँ हैं॥ २०॥

विशेष — भयकी उत्पत्ति में आकाश धनंजय वायु का तथा पृथ्वी अपानवायु का चवका है।

अब आगे वायु को पाँच प्रकृतियों की उत्पत्ति बतायी जाती है।

वायु आकाश ते प्रसारन होय। वायु वायु मिलि धावन सोय ॥२१॥
वायु तेज मिलि बोलन जान। वायु जल सिकोरन परवान ॥२२॥
वायु पृथिवी से चलन होय। पाँच प्रकृति पवन के सोय ॥२३॥

शब्दार्थ — परवान = समझो।

भावार्थ — वायु और आकाश से अंगों का फैलाना; वायु-वायु मिलकर दौड़ना; वायु और अग्नि मिलकर बोलना; वायु तथा जल मिलकर सिकोड़ना और वायु तथा पृथ्वी मिलकर चलना—इस प्रकार अन्यतत्त्व मिश्रित मुख्य वायु से उसकी पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई॥ २१-२३॥

विशेष — पसारना, दौड़ना, बोलना, सिकोरना तथा चलना—इनकी उत्पत्ति में एक वायु है जो कृकल वायु वाचक है अन्य क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी हैं जो क्रमशः व्यान, समान, उदान तथा अपान वाचक हैं।

निद्रा मैथुन आलस जान। तृषा छुधा अनल पहिचान ॥२४॥
तेज अकाशते निद्रा होय। तेज वायु ते मैथुन सोय ॥२५॥
तेज तेज मिलि आलस जान। तेज नीर ते तृषा मान ॥२६॥
तेज पृथिवीते छुधा बखान। पाँच प्रकृति तेज के जान ॥२७॥

शब्दार्थ — तृषा = प्यास। छुधा = भूख।

भावार्थ — निद्रा, मैथुन, आलस्य, प्यास और भूख—ये अग्नि तत्त्व की प्रकृतियाँ समझो॥ २४॥ अग्नि और आकाश से निद्रा; अग्नि और वायु से मैथुन; अग्नि-अग्नि से आलस्य, अग्नि और जल से प्यास तथा अग्नि और पृथ्वी से भूख उत्पन्न होते हैं—इन पाँच प्रकृतियों का मुख्य अग्नितत्त्व से उत्पन्न होना जानो॥ २७॥

विशेष — निद्रा, मैथुन, आलस्य, प्यास और भूख—इन पाँचों की उत्पत्ति

कारण मे एक अग्नि है जो कूम वायु का वाचक है, और दूसरे क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी हैं जो क्रमशः व्यान, समान, प्राण, उदान तथा अपान के वाचक हैं।

यहाँ निद्रा, आलस्य, प्यास तथा भूख के साथ मैथुन भी अग्नि की प्रकृति में गिनाया है जो विवेक-विरुद्ध है। यदि मैथुन प्रकृति है तो उसकी निवृत्ति असंभव है। और प्रत्यक्ष है कि ब्रह्मचर्य एवं वैराग्य द्वारा उसकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। अतएव मैथुन प्रकृति नहीं केवल मनके विकार से उत्पन्न क्रिया है। अतः मैथुन की जगह पर जम्हाई गिनना चाहिये।

कितने ज्ञानी कहलाने वाले मैथुन को शरीर की प्रकृति मानकर उसके होते रहने में ज्ञान में कोई हानि नहीं मानते; जो एक अज्ञान या जबरदस्ती है। ग्रन्थकार ने तो केवल शास्त्रों की मान्यता परखाई है स्वसिद्धान्त से यह मान्य नहीं है।

लार रक्त पसीना बनाय। मल मूत्र पाँचों जल ते उपाय ॥२८॥
जल अकाशते लार होय। जल वायु ते रक्त है सोय ॥२९॥
जल औ तेजते पसीना जान। जल जल ते मूत्र पहिचान ॥३०॥
जल पृथ्वी सो मल उतपान। पाँच प्रकृति नीर परधान ॥३१॥

शब्दार्थ — मल = टट्टी; वीर्य।

भावार्थ — लार, रक्त, पसीना, मल (वीर्य) तथा मूत्र—ये पाँचों जल की प्रकृतियाँ हैं ॥ २८ ॥ जल और आकाश मिल कर लार, जल तथा वायु मिलकर रक्त; जल और अग्नि मिलकर पसीना; जल-जल मिलकर मूत्र तथा जल और पृथ्वी मिलकर मल या वीर्य उत्पन्न होते हैं, ये पाँचों प्रकृतियाँ अन्यतत्त्व मिश्रित मुख्य जल की हैं ॥ २९–३१ ॥

विशेष — लार, रक्त, पसीना, मूत्र तथा वीर्य की उत्पत्ति में एक कारण मुख्य जल है जो नागवायु का वाचक है; अन्य कारण क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी हैं जो क्रमशः व्यान, समान, प्राण, उदान तथा अपान के वाचक हैं।'

यहाँ जलकी पाँचवीं प्रकृति मल माना है जो मुख्यतः वीर्य के लिये प्रयुक्त होता हुआ-सा प्रतीत होता है।

रोम नाड़ी त्वचा मांस अस्थि। पृथिवी प्रकृति पचीस समस्ति ॥३२॥
पृथिवी आकाश रोम उतपान। क्षिति वायुते नाड़ी परधान ॥३३॥
पृथिवी तेज मिलि त्वचा सो होय। क्षिति जलते मांस प्रगटै सोय ॥३४॥
पृथिवी पृथिवी मिलि अस्थि उपाय। सोई पचीस प्रकृति कहाय ॥३५॥

शब्दार्थ — अस्थि = हड्डी। समस्ति = समस्त, सम्पूर्ण।

भावार्थ — रोम, नाड़ी, त्वचा, मांस तथा हड्डी—ये समस्त पाँच पृथ्वी की

प्रकृतियाँ हैं ।। ३२ ।। पृथ्वी और आकाश मिलकर रोम; पृथ्वी तथा वायु मिलकर नाड़ी; पृथ्वी और तेज से त्वचा; पृथ्वी और जलसे मांस तथा पृथ्वी-पृथ्वी से हड्डी उत्पन्न हुई । ये ही पचीस प्रकृतियाँ कहलाती हैं ।। ३३–३५ ।।

विशेष — रोम, नाड़ी, त्वचा, मांस तथा हड्डी की उत्पत्ति में मुख्य कारण पृथ्वी मानी गयी है, जो देवदत्त वायु का वाचक है और अन्यकारण क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी हैं जो व्यान, समान, प्राण, उदान तथा अपान के वाचक हैं ।

११ः–पाँच तत्त्व पचीस होय, प्रगट भये सो पिंड ।
नाड़ी तीन रूप धरी, रची जाल परचंड ।।१६।।

शब्दार्थ — **नाड़ी तीन** = इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा वायु जो नाक के क्रमशः बायें, दायें तथा दोनों में बराबर माने हैं । **नौ** = नौ नाड़ी–पुहुखा, पयस्विनी, गंधारी हस्थिनी, गणेशिनी, वारुणी, कुहू, शंखिनी तथा अलंबुषा हैं जो क्रमशः बायें कान में, दाहिने कान में, बायें नेत्र में, दाहिने नेत्र में, बायें हाथ में, दाहिने हाथ में, लिंग में, गुदा में तथा मुख में निवास माने हैं । **परचंड** = प्रचंड, भयंकर ।

भावार्थ — पृथ्वी आदि पाँचतत्त्व पचीस प्रकृतियों में परिवर्तित होकर शरीर में प्रकट हो गये हैं; और तीन नाड़ी तथा नौ नाड़ियों के रूप धारण करके प्रकृति ने भयंकर बन्धन बना दिया है ।। १६ ।।

विशेष — विवेक से समझें तो जीव के वासनावश यह शरीर रज-वीर्य से तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन तत्त्वों से निर्मित है जिसमें अन्य अनेकों भेद-प्रभेद तथा अंग-उपांग हैं और सब वस्तुतः जड़ हैं । चेतन उनका ज्ञाता है । उसे चाहिये कि वह किसी में न आसक्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो ।

११ – तीन, पाँच, छः, सात, आठ, नौ आदि अंगो की माया का वर्णन

चौकड़ी – ११

नाड़ी श्वासा के जो तीन । त्रिविधि कला ताहि मँह कीन्ह ।। १ ।।
तीन तिया नौ द्वारा जान । दशयें रुधिर रज वीर्य मान ।। २ ।।

शब्दार्थ — **नाड़ी तीन** = इडा, पिंगला, सुषुम्णा । **तीन तिया** = तीन में तीन से गुणा करने पर नौ हुआ । **नौ द्वारा** = नाक के दो छिद्र, कान के दो छिद्र, दो आँख, मुख, गुदा और शिश्न । **दशयें** = कपाल (ब्रह्मरंध्र) में एक छेद ।

भावार्थ — श्वास की जो इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा तीन नाड़िया हैं, इनमें मनुष्यों ने रेचक, पूरक तथा कुंभक रूप तीन विशेषताओं का सिर्जन किया अर्थात् इन्हीं नाड़ियों में कुम्भकादि प्राणायाम का अभ्यास किया ।। १ ।। उक्त तीनों नाड़ियों

में तीन गुणा अधिक बढ़ कर पुहुखा आदि नौ नाड़ियों की उत्पत्ति हुई। उसी प्रकार शरीर में आँख-नाक आदि नौ द्वार प्रकट हुए। दशवाँ द्वार ब्रह्मरंध्र माना है जहाँ नारी नर के रज और वीर्य का अधिक स्थान माना है ॥ २ ॥

विशेष — इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा को क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती का अंश माना है, और पूरक, रेचक, कुंभक को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव का अंश माना है। पुहुखा आदि का वर्णन पिछले १०वें प्रसंग में कर आये हैं।

नाड़ी तीन वात पित शीत। तेहि नौ चाल चिकित्सा रीति ॥ ३ ॥
बीच में नौका अंक सो गाँस। एक पर शून्या दशयें नाश ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — बीच = नाभि। अंक = संख्या का चिन्ह; देह; गोद। गाँस = गाँठ

भावार्थ — पिण्ड की तीन नाड़ियाँ वात, पित्त और कफ हैं। चिकित्सा के नियम से उनमें भी नौ चाल (भेद) माने हैं ॥ ३ ॥ उक्त तीन तथा नौ विकारों की गाँठें जब नाभि या शरीर के भीतर हो जाती हैं तब शरीर उसी प्रकार समाप्त हो जाता है जैसे १ पर ० रख देने से नौ का नाश हो जाता है ॥ ४ ॥

विशेष — जब १ पर शून्य ० रख दिया जाता है तब ९ कोई नहीं कहता, अतएव उसका अभाव होकर १० हो जाता है। इसी प्रकार कफ, पित्त, वात के नौ दोषों के उत्पन्न होने से शरीर नहीं ठहरता।

कफ, पित्त, वात में नौ चाल इस प्रकार हैं—कफ-कफ के मिलान से विकार, कफ और पित्त से तथा कफ और वात से होने वाला विकार; पित्त-पित्त मिलकर, पित्त और वात मिलकर, पित्त और कफ मिलकर तथा वात-वात मिलकर, वात तथा कफ मिलकर और वात तथा पित्त मिलकर नौ प्रकार से विकार होना माने हैं।

चाँद सूर्य राहू घर तीनि। नौ ग्रह कला दशम परवीनि ॥ ५ ॥
दश द्वारा दश दिगसो होय। तहाँ तिहुं समय लखावै सोय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — चाँद = इडा। सूर्य = पिंगला। राहु – सुषुम्णा। घर = ग्रह का स्थान; तीन नाड़ियाँ। नौ ग्रह = सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु। दशम = ब्रह्म। दश दिग = दश दिशा—पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नैऋत्य, वायव्य, अग्नेय, ईशान; अर्ध, उर्ध। तिहुँ समय = वर्षा, शीत, गरमी।

भावार्थ — शरीर में इडा, पिंगला, सुषुम्णा तीन नाड़ियों का घेरा है और आकाश में चाँद, सूर्यादि नौ ग्रहों के स्थान हैं। दशवाँ शुद्ध ब्रह्म है जो सर्वज्ञ है ॥ ५ ॥ शरीर में नाक-कानादि दश द्वार हैं और बाहर विश्व में दश दिशायें हैं, फिर वहाँ तीन नाड़ी-रूपी तीन समय कहे जाते हैं—वर्षा, शीत, गरमी ॥ ६ ॥

पुनि तिहुँ माँह नौ चाल समान। दशयें शून्य प्रगट तहँ आन ॥ ७ ॥
सोई कला धरती नौ खंड। तीरथराज नाड़ी परचंड ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — धरती नौ खंड = ब्रह्म, सौम्य, गभिस्त, वरुण, नाग, इन्द्र, कसेरु, भरत तथा ताम्र खण्ड, इन्हें शरीर में क्रमशः कान, त्वचा नेत्र, जिह्वा, नाक, हाथ, पाँव, लिंग तथा गुदा के स्थान पर भी माना है।

भावार्थ — पुनः वर्षा, शीत तथा गरमी—इन तीन समयों में नौ चाल प्रविष्ट हैं और दशवाँ निराकार ब्रह्म स्वयं प्रकट है, अर्थात् जब सबका अभाव हो तब ब्रह्मका रह जाना मानते हैं ॥ ७ ॥ उक्त तीन समयों में नौ अंश होने से पृथ्वी भी ब्रह्म-सौम्य आदि नौ खण्डों में विभक्त है। शरीर में इडा, पिंगला का सुषुम्णा में लय करके लोग योगसिद्धि की साधना करते हैं, वैसे बाहर भी प्रयागराज में गंगा, यमुना तथा सरस्वती का सम्मिलन बनाकर तीर्थ मान रखा है ॥ ८ ॥

विशेष — तीन समयों में नौ चाल समाये हैं; जैसे— वर्षा-वर्षा मिलकर; वर्षा और शीत मिलकर, वर्षा तथा गरमी मिलकर; शीत-शीत मिलकर, शीत तथा गरमी मिलकर और शीत तथा वर्षा मिलकर; और गरमी-गरमी मिलकर गरमी तथा वर्षा मिलकर एवं गरमी तथा शीत मिलकर वातावरण में विकार होते हैं।

दशयें जलामय गर्वड़ी होय। शून्याशून्य दिखावै सोय ॥ ९ ॥
नौ नाथ होय बैठी नारि। शक्ति सिद्धि चौरासी झारि ॥१०॥

शब्दार्थ — दशयें = ब्रह्म। जलामय = जलमग्न, प्रलय। गर्वड़ी = उथलपुथल। नौ नाथ = मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, जलंधरनाथ, चर्पटनाथ, मंगलनाथ, चम्बानाथ, प्राणनाथ, घच्युनाथ तथा गोपीनाथ। नारि = नाड़ी। झारि = बिलकुल, सबके सब।

भावार्थ — नौ अंक के बाद जो दशम शून्य स्वरूप ब्रह्म है उसमें जब सब कुछ लीन होकर सृष्टि का प्रलय होता है; या वर्षादि तीन समयों के नौवों विकार एकत्र होकर और सारा विश्व उथलपुथल तथा जलमय होकर दशम ब्रह्म में लीन हो जाता है, तब केवल शून्य ब्रह्म रह जाता है ॥ ९ ॥ श्वास तथा नाड़ियों की साधना करके और उसे बैठाकर एवं व्यवस्थित करके मत्स्येन्द्रनाथ आदि नौ सिद्ध कहलाये; तथा योगशक्ति को प्राप्त सबकेसब चौरासी सिद्ध प्रसिद्ध हुए ॥१०॥

विशेष — चौरासी सिद्धों के नाम बीजक में २५५ साखी में देखें।

पाँच पाँच जेते होय प्रकाश। पंचकोश के पूर विलास ॥११॥
तीनि अंश नाड़ी परमान। तीनि अंश के षट परधान ॥१२॥

शब्दार्थ — विलास = विस्तार; क्रीड़ा।

भावार्थ — पाँच तत्त्व, पंच विषय, पंच देह, पंच प्राण, पंच इन्द्रिय आदि जहाँ तक पाँच की संख्या वाले प्रपंच हैं वे सब पंचकोश के पूर्ण विस्तार में हैं ॥११॥ इडा, पिंगला, सुषुम्णा ये नाड़ियाँ—क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती के अंश मानी गयी हैं, और पूरक, रेचक तथा कुंभक क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर के अंश माने गये हैं। इस प्रकार छः अंगों से मिलकर पुरुष-प्रकृति एवं माया-ब्रह्म प्रधान माने गये हैं ॥१२॥

सो षट अंशी जग पहिचान। षट शास्त्र षट कर्म अमान ॥१३॥
दर्शन के सोई भास। पंडौं छठयें कर्म विलास ॥१४॥

शब्दार्थ — षट शास्त्र = सांख्य (कपिल रचित), योग (पंतजलिरचित), मीमांसा (जैमिनिरचित); न्याय (गौतमरचित), वैशेषिक (कणादरचित) तथा वेदांत (व्यासरचित)। षटकर्म = यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह— ये ब्राह्मणों के छः कर्म हैं। अमान = ब्रह्म। षटदर्शन = योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मण। पंडौं = युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीम तथा अर्जुन। छठयें = श्रीकृष्ण।

भावार्थ — उपर्युक्त ब्रह्म और माया के छः अंशों से जगत उत्पत्ति होना बतलाते हैं छः शास्त्र, ब्राह्मणों के छः कर्म तथा उसके आगे निर्मल ब्रह्मकी व्याख्या करते हैं ॥१३॥ योगी-जंगमादि छः दर्शनों में भी अपने स्वरूप से पृथक किसी ब्रह्म ईश्वर की खोज का भास-अध्यास घुसा है। पाँचों पाण्डव भी श्रीकृष्णजीके उपदेश से घोरकर्म युद्ध आदि में क्रीड़ा करते हुए मोक्ष पाना मान रखे थे ॥१४॥

सतयें सत्त वर्तमान। विद्या अविद्या मूल निधान ॥१५॥
कहँ पंचकन्या पंच पचीस। चारि तीन दो विध कहँ ईश ॥१६॥

शब्दार्थ — सतयें = सत्यलोक। सत्त = सत्य। वर्तमान = विराजमान। विद्या = ब्रह्म विद्या। अविद्या = भौतिक विद्या। निधान = आधार, लयस्थान। पाँच कन्या = अहिल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी।

भावार्थ — कहीं भूः भुवः स्वः, महः, जन, तप इनलोकों से परे सातवें 'सत्य' लोक में सत्य ब्रह्मको विराजमान माना गया है और उसे अध्यात्मविद्या तथा भौतिक विद्या का कारण व आश्रयरूप कहा गया है ॥१५॥ कहीं अहिल्यादि पाँच कन्याओं की महिमा गाकर उन्हें शरीर में ही क्रिया, द्रव्य, इच्छा, ज्ञान और परा शक्ति के नामों से घटाया है। कहीं पाँच तत्त्वों, पचीस प्रकृतियों का विश्लेषण किया है—कहीं चार आश्रम, चार वेद, चार देह, चार मुक्ति, चार पुरुषार्थ और कहीं तीन देव, तीन गुण, तीन नाड़ियाँ आदि तथा कहीं दो माया–ब्रह्म कहकर और कहीं तो एक अद्वैत ब्रह्म कहकर वाणियों का वर्णन किया गया है ॥१६॥

कहूँ षट कला देखावै अनेक। कहँ सात सत्त ॐ एक ॥१७॥
सात स्वर्ग सो कारण होय। अपवर्ग आठ आपु है सोय ॥१८॥

शब्दार्थ — षट कला = छः भाग—षट कर्म, षट धर्म, षट उर्मी, षट शास्त्र आदि। सात = सात स्वर्ग—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक।

भावार्थ — वाणी में कहीं छः कलाओं का अनेक प्रकार से दिग्दर्शन है, कहीं सात, कहीं एक ॐ को ही सत्य बताया है ॥१७॥ कहीं सात स्वर्गों या लोकों की महिमा है, कहीं उन्हें मायामय बतला कर उन सातों का कारण आठवाँ अपवर्ग एवं मोक्षरूप ब्रह्मको बताया गया है ॥१८॥

धरती सात एक शीश सुमेर । मस्तक अष्टम अंगनिबेर ॥१९॥
सात कमल एक श्वासा भोग । सायर सात नीर प्रतियोग ॥२०॥

शब्दार्थ — **धरती**=पृथ्वी; शरीर । **सुमेर**=सुमेरु, एक कल्पित पर्वत जो पुराणों के अनुसार इलावृतवर्ष में अवस्थित है और सोने का बना हुआ है । **निबेर**= निर्णय, ठहराव । **सात कमल**=सात चक्र । **सायर**=समुद्र । **प्रतियोग**= प्रति समुद्र में भरा ।

भावार्थ — पृथ्वी में जैसे सात द्वीप माना है । वैसे शरीर में भी सात द्वीप माना है । पृथ्वी में जैसे एक सर्वोच्च सुमेरु पर्वत की कल्पना कर रखी है वैसे शरीर में सिर स्थान माना है, और मस्तक को आठवाँ अंग ठहराया है, जहाँ ब्रह्म का निवास मानरखा है ॥१९॥ बाहर पृथ्वी पर सात समुद्रों की चर्चा है तो शरीर में भी मेरुदण्ड (पीठकी रीढ़) में सात कमल या चक्र माना है । जहाँ सब मिलाकर—इक्कीस हजार छः सौ श्वासों का उपभोग एक श्वास में माना है तथा वहाँ सातसमुद्रों की कल्पना की है, जिसमें मीठे-खारे आदि जल प्रति समुद्र में भरा हुआ माना है ॥२०॥

विशेष — बाहर पृथ्वी पर सात द्वीप इस प्रकार माने गये हैं—जंबू, शंख, कुश, श्वेत, पुष्कर, शाल्मल और क्रौंच जिन्हें शरीर में क्रमशः इन स्थानों में माने हैं—हाड़, मज्जा, मांस, बाल, नाभि, त्वचा तथा सिर ।

शरीरस्थ मेरुदण्ड में सात कमलों का विवरण टकसार प्रकरण के ५६ वीं चौपाई में देखें । और सात समुद्रों का विवरण टकसार २३ चौपाई में देखें और यह सब इसी प्रकरण में आगे १३ वीं चौकड़ी में देखें ।

पृथ्वी पर सात द्वीपों तथा सात समुद्रों का काल्पनिक वर्णन इस प्रकार है— (१) जंबूद्वीप एक लाख योजन विस्तारवाला जिसकी चारों ओर खारा समुद्र है, (२) श्वेतद्वीप दो लाख योजन विस्तार वाला जिसकी चारों ओर मीठारस का समुद्र है, (३) शाल्मलद्वीप चार लाख योजन विस्तार वाला जिसकी चारों ओरमदिरा का समुद्र है, (४) कुश द्वीप आठ लाखयोजन विस्तार वाला जिसकी चारोंओर घृत का समुद्र है, (५) क्रौंच द्वीप सोलह लाख योजन विस्तार वाला जिसकी चारों ओर क्षीर (दूध) का समुद्र है, (६) शंखद्वीप बत्तीस लाख योजन विस्तार वाला जिसकी चारों ओर दधि (मट्ठे) का समुद्रभरा है और (७) पुष्करद्वीप चौसठ लाख योजन विस्तार वाला जिसकी चारों ओर अमृत (स्वच्छ एवं मिष्ट जल) का समुद्र भरा है ।

उपर्युक्त वर्णन सर्वथा काल्पनिक हैं; क्योंकि वैज्ञानिक बतलाते हैं कि पृथ्वी का पूरा घेरा कुल पचीस हजार मील के लगभग है फिर कई लाख योजनों का एक-एक द्वीप होना अपने आप में भ्रम है। मदिरा, घृत, दधि, रस आदि के समुद्र होते तो आज पृथ्वी पर इनकी इतनी महँगाई न होती; अतएव यह भी महाभ्रम है।

बार सात यह भाँति उथान। अष्टम अष्टंगी पहिचान॥२१॥
अष्टभुजा अष्टवर्ग विलास। षोडश नर नारी युग भास॥२२॥

शब्दार्थ — बार सात = सात दिन रवि, सोम आदि। अष्टवर्ग = 'अ' वर्ग 'क' वर्ग तथा च, ट, त, प, य, श, वर्ग (देखें टकसार, चौ० ४४)। युग = दो।

भावार्थ — सात संख्या के प्रकार में रवि, सोम आदि सात दिनों का निर्धारण हुआ तथा आठ की संख्या में पंच तत्त्व और तीनगुणयुक्त अष्टांगी माया का स्वरूप निर्धारित हुआ॥२१॥ अष्ट भुजा वाली दुर्गा की कल्पना की गयी तथा क वर्गादि आठ वर्गों का निर्धारण करके लोग वाणीविलास करते हैं और स्त्री-पुरुष जो दोनों परस्पर आसक्त रहते हैं दश इन्द्रिय, पंच विषय तथा एक मन--इन सोलहों के स्वरूप होते हैं॥२२॥

विशेष — शरीर में सात स्थान--हाथ, पैर, पेट, पीठ, मुख, शिश्न और गुदा माना है। अष्टांग के स्वरूप इस प्रकार भी कहा है—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय तथा इडा, पिंगला और सुषुम्णा। अथवा प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान तथा पित्त, वात, कफ।

हृदय में आठ दल का चक्र माना है और यह बताया गया है कि जिस दल पर मन बैठता है उसकी बुद्धि उसी प्रकार होती है जैसे पहले दल पर बैठने से हास्य, विनोद, आनन्द, दूसरे दल पर बैठने से पुत्र-स्त्री आदि का मोह, तीसरे पर क्रोध, द्वेष आदि दुष्टभावना, चौथे पर आलस्य, उद्वेग, चितादि, पाँचवें पर उदारता, वीरतादि शुद्ध वासना, छठें पर श्रवण, सत्संग, धर्माचरण, शांति, सातवें पर भोग वासना तथा आठवें पर बैठने से तीर्थयात्रादि की वासना होती है। वस्तुतः यह एक कल्पना है। मनमें विविध संस्कार हैं इसलिये उसमें विविध संकल्प उठते हैं। विवेक से उनका सुधार होता है।

सात भूमिका आपु अमान। सोरह कला पूर पहिचान॥२३॥
अष्टांग योग बखानै वेद। सोरह आना सोरह भेद॥२४॥
आठों नवों पुनि अंक विलाय। शून्य लहत एक दहलाय॥२५॥

शब्दार्थ — अमान = ब्रह्म। दहलाय = दहला, दश की संख्या।

भावार्थ — स्वतः ब्रह्मकी प्राप्ति के लिये सात भूमिकायें मानी हैं। सोलह कला-युक्त चन्द्रमा को माना है उसी प्रकार सोलहों कला पूर्ण श्री कृष्णावतार को मान

रखा है ॥ २३ ॥ वैदिक साहित्य में योग के आठ अंगों का वर्णन है। सोलह आना का रुपया माना है तथा सोलह भेदों वाले नारियों का शृंगार ठहराया है ॥ २४ ॥ आठों या नवों उस समय समस्त अंक विलीन हो जाते हैं जब १ पर ० रख देने पर दहला (दश) हो जाता है। अर्थात् शून्य ब्रह्म में सारी माया का विलय होकर केवल वही रह जाता है ॥ २५ ॥

विशेष — सात भूमिकायें ये हैं—सुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापति, असंसक्ति, पदार्थभावना तथा तुर्यगा। इनका विवरण इस प्रकार है :—

सुभेच्छा—मोक्ष की इच्छा पूर्वक शास्त्रों का अध्ययन करना, सत्पुरुषों की वाणियों का श्रवण करना और उनका विचार करना यह प्रथम भूमिका है, इसको 'श्रवण' भूमिका भी कह सकते हैं।

विचारणा—शास्त्रों के अध्ययन-मनन तथा सत्संग द्वारा विवेक वैराग्य प्राप्त करके सदाचार में प्रवृत्त होना—यह दूसरी भूमिका है, इसे 'मनन' भूमिका भी कह सकते हैं।

तनुमानसा—अनासक्त होकर विचरण करना। इसे 'निदिध्यासन' भूमिका भी कह सकते हैं।

सत्त्वापति—शुद्ध अन्तःकरण-द्वारा ब्रह्म में तद्रूप हो जाना। संसार का स्वप्नवत् भासना। कहा जाता है इस भूमिका में श्री याज्ञवल्क्य जी, राजा अश्वपति, जनक आदि थे।

असंसक्ति—अन्तःकरण की समाधि में आरूढ़ हो जाना। इस भूमिका में जड़ भरत जी की स्थिति मानी जाती है।

पदार्थभावना—संसार का सर्वथा भान न होना, गाढ़ी सुषुप्ति के समान रहना, दूसरे-द्वारा बहुत प्रेरणा करने पर बाहरी भान होना। इस भूमिका में ऋषभदेव माने जाते हैं।

तुर्यगा—(तुरिया) कहा जाता है इस अवस्था के प्राप्त होने पर अन्तर-बाहर कुछ भान नहीं रहता, वह मुर्दे के समान संसार से शून्य हो जाता है, मुर्दे में और इस तुर्यगा भूमिका प्राप्त ज्ञानी में अन्तर इतना ही रहता है कि एक में श्वास नहीं चलता और दूसरे में श्वास चलता है; परन्तु दूसरे-द्वारा बारम्बार जगाने पर भी तुर्यगा-प्राप्त ज्ञानी का जागरण नहीं होता। (इस प्रकार योगवासिष्ठ' ग्रन्थ के 'उत्पत्ति प्रकरण' के ११८ सर्ग में वर्णन मिलता है।)

यहाँ पर छठीं और सातवीं भूमिका का वर्णन 'अतिशयोक्ति' से खाली नहीं प्रतीत होता। सातवीं भूमिका 'तुर्यगा' तो 'अतिशयोक्ति' का रूप ही है। ब्रह्मज्ञान कोई ऐसा क्लोरोफार्म नहीं है कि जिसको सूँघकर मनुष्य जीवन-पर्यन्त के लिये अचेत हो जाय।

एक से पाँच भूमिका तक की बातों में बहुत सी ग्राह्य हैं। जड़-चेतन की एकता रूपी सिद्धान्त दोष इसमें खटकने वाली मुख्य बात है। ब्रह्मज्ञान की दृष्टि में जड़-चेतन दो नहीं, अपितु एक ही है। इसीलिये 'तुर्यगा' को परिभाषा करते हुए योगवासिष्ठकार कहते हैं :—

भेदस्यानुपलम्भतः ।

अर्थात् 'जिस अवस्था में दूसरों-द्वारा प्रेरित करने पर भी भेद की उपलब्धि नहीं होती वह तुर्यगा है।'

विवेकवान् को अपनी पारखदृष्टि-द्वारा सार-असार का निर्णय करके सार का ग्रहण और असार का त्याग करना चाहिये।

अष्टांगयोग का विवरण टकसार ५६ वीं चौपाई में देखें। उसके अतिरिक्त लय, तारक, अमनस्क, राज, हठ, कुण्डली, लम्बिका तथा सांख्य ये भी योग के आठ अंग माना है।

साखी—एक शून्य संग्रह किये, परखै नहीं सो संध।
अनेक जाल भौ अंक में, परे जीव सब बंध ॥१७॥

शब्दार्थ — अंक = चिन्ह, शून्य '०'। संध = छिद्र; कसर।

भावार्थ — एक शून्य ब्रह्म सब का अधिष्ठान मानकर लोगों ने उसी को मजबूती से पकड़ रखा है; परन्तु लोग उसकी इस कसर को नहीं परख पाते कि उसी शून्य ब्रह्मसे संसार व संसार के अनेक बंधन उत्पन्न होना मानते हैं; अतएव सब जीव उसी बंधन में बँधे पड़े हैं ॥ १७ ॥

विशेष — जब ब्रह्म उत्पत्ति और लय का आश्रय है तब वह शुद्ध, मुक्त नहीं हो सकता न उसमें मिलने से जीव को निश्चलता ही मिल सकती है। जीव को अपने ही स्वरूप में स्थित होना चाहिये।

१२—मतों की अनेकता, व्यावहारिक तथा पारमार्थिक चर्चा तथा मनके भासको ही ब्रह्म मान लेनेका कथन।

चौकड़ी-१२

श्वासा भेद स्वरोदय जान। नाड़ी स्वभाव चिकित्सा मान ॥ १ ॥
ग्रह चाल बुद्धि जोतिष होय। समय स्वभाव किसानी सोय ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **स्वरोदय** = श्वासभेद से शुभाशुभ फल जाननेकी विद्या। **चिकित्सा** = रोगनिवारक उपाय।

भावार्थ — इडा, पिंगला, सुषुम्णा श्वासा को साध कर लोग शुभाशुभ फल जाननेकी चेष्टा करते हैं। और कफ, पित्त, वात नाड़ियों का भेद जान कर शारीरिक

रोगों का उपचार करते हैं ॥ १ ॥ सूर्य, चन्द्र, शनि आदि ग्रहों की चाल देखकर ज्योतिष शास्त्र का निर्धारण करते हैं। और वर्षा, शीत, गरमी के समय की प्रकृति जानकर किसानी का काम करते हैं ॥ २ ॥

विशेष — इन बातों का विवरण टकसार प्रकरण में सविस्तार है। टकसार की सूची देखें।

नाना मत ताके व्यवहार। अरुझै जहाँ तहाँ अरुझनहार ॥ ३ ॥
नष्ट रूप जे जगके जाल। सोहं देव कहै ब्रह्म जाल ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अरुझनहार = फंसने वाले, भूले लोग। सोहं = सोऽहम, वह मैं हूँ।

भावार्थ — उपर्युक्त फलित और गणित ज्योतिष, चिकित्सा तथा कृषि विज्ञान के नाना मत हैं। निर्वाह के अतिरिक्त बातों में भी भूले लोग यत्र-तत्र फंस कर दुःख उठाते हैं ॥ ३ ॥ जगत जाल की सारी उन्नतियाँ अंततः नाशवान हैं; (अतएव विवेक पूर्वक व्यवहार करना चाहिये)। और यह कहना कि मैं ही वह ब्रह्म हूँ जो सर्वत्र व्याप्त जड़-चेतन अभिन्न है, वस्तुतः इसे ब्रह्मजाल समझो ॥ ४ ॥

विशेष — इस प्रसंग में पहले व्यवहार जाल बताया गया और पीछे ब्रह्मजाल भी बताया गया है। व्यवहार अनासक्त होकर करना चाहिये तथा ब्रह्मजाल को त्याग कर स्वरूपज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

एक एक अंग कोई बलवान। कहँ सर्वज्ञपूर्ण परवान ॥ ५ ॥
जथा प्रयोग में रहै तमान। अधिक भये वह सुख अनुमान ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — परवान = प्रमाण, सत्य; मानना। जथा = यथा, उसी प्रकार तमान = चक्कर, तंवार, तमन = दमघुट जाना, मरण, तात्पर्य में दुखी।

भावार्थ — कोई किसी मत को श्रेष्ठ मानता है कोई किसी मत को; फलतः सब एक-एक पक्ष को पकड़ रखे हैं। कहीं किसी ने जड़-चेतन अभिन्न परिपूर्ण, सर्वज्ञ ब्रह्मकी मान्यता कर रखी है ॥ ५ ॥ जो जिस प्रकार के मत धारण किये हुए हैं वे उसी प्रकार की साधना में दुखी हैं। अधिक साधना हो जाने पर जो मनकी एकाग्रताका सुख प्राप्त होता है उसको लोग ब्रह्म से आया हुआ मान लेते हैं ॥ ६ ॥

विशेष — अनेक भ्रम मान्यतायें हैं। तदनुसार अनेक भ्रम एवं कष्टपूर्ण साधनायें भी हैं। वृत्तिनिरोधका जो सुख है उसका भी द्रष्टा बन जाना चाहिये; क्योंकि अपने चेतनस्वरूप में कुछ नहीं है।

जगत समाय रहा ब्रह्मज्ञान। सूर्यकला महँ रैनि समान ॥ ७ ॥
कहँ सुख स्वभाव देखाई देय। कहुँ अधिकै दुःख मानै तेय ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — सूर्यकला = सूर्य का अंश, प्रकाश।

भावार्थ — (कहते हैं) जगत ज्ञानस्वरूप ब्रह्म में ओतप्रोत–एक रूप है। यह तो ऐसा हुआ कि अन्धकार सूर्य में ओतप्रोत है ॥ ७ ॥ माना कि जगत का कोई-सा रूप क्षणकाल के लिये सुखस्वरूप होकर प्रदर्शित होता है; परन्तु वस्तुतः जगत में दुःख का अत्यन्त रूप ही मानना पड़ता है ॥ ८ ॥

विशेष — जगत को ब्रह्मरूप बतलाना अंधकार को सूर्य रूप कहना है तथा ब्रह्म से जगत का उत्पन्न होना सूर्य से अंधकार का निकलने के समान असम्भव है। ब्रह्मको आनन्द रूप मानते हैं, यदि ब्रह्म जगत एक है तो जगत भी आनन्दरूप होना चाहिये। माना कि अविवेक से संसार में कहीं आनन्द प्रतीत होता है परन्तु विवेक से देखने पर संसार दुःख से ही भरा हुआ प्रतीत होता है।

"सर्वमेव दुःखं विवेकिनः।" (योगदर्शन)

सायर वारि स्वभाव सो आग। अपने स्वभाव चलै सो भाग ॥ ९ ॥
भागत अनल अधिक लहराय। अपने स्वभाव वारि हुलसाय ॥१०॥

शब्दार्थ — **सायरवारि**=समुद्र का जल; मनकी वासना। **आग**=इच्छा, कामना। **लहराय**=तरंगे मारना, हिलना, दहकना। **हुलसाय**=तरंगित होना।

भावार्थ — मनुष्य का अंतःकरण एक समुद्र है, उसमें वासना का जल भरा है; उसका स्वभाव शीतल न होकर आग के समान उष्ण है। वे वासनायें अपने चंचल स्वभाव वश भागती फिरती हैं ॥ ९ ॥ वासनायें जितनी ही दौड़ती हैं उतनी ही आवाँ के समान दहकती तथा उत्तप्त होती हैं। इस प्रकार वासना रूपी अग्निमय जल अपने स्वभाव वश मनमें तरंगे मारती हैं ॥ १० ॥

सो दुख देखि भये जब थीर। सुख अनुमान मिटा बहु पीर ॥११॥
भावना मिटि रही सो समाय। बारम्बार वारि अकुलाय ॥१२॥

शब्दार्थ — **अनुमान**=अटकल, मानना; भ्रम। **वारि**=जल; वासना।

भावार्थ — उपर्युक्त वासनाकृत दुःख देखकर और विचार करके जो व्यक्ति स्थिरता को प्राप्त किया, उसको सुखमान्यता के भ्रम से जो बहुत-सी पीड़ाएँ मिल रही थीं, मिट गयी ॥ ११ ॥ उसके सांसारिक विषयों की भावना तथा आसक्तियाँ नष्ट हो गयीं और वे वासना की तरंगे शांत हो गयीं जो बारम्बार उठकर जीव को व्याकुल करती थीं ॥ १२ ॥

पानी खासा औ मलहीन। सार मता सोई दृढ़ कीन्ह ॥१३॥
पूर्ण कला के अनमिल दाव। जोई सहाय सोई सो नशाव ॥१४॥

शब्दार्थ — **खासा**=उत्तम। **दाँव**=युक्ति।

भावार्थ — जब जल स्थिर और मलरहित होता है तब उसमें मनुष्य का अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता है; परन्तु मनुष्य को चाहिये कि उस भास में भूले नहीं। इसीप्रकार जब मनोवृत्ति स्थिर होती है तब मनुष्य भ्रम वश उसमें नाना कल्पित शब्द-ज्योति इत्यादि भासों को देखता है और उसे ब्रह्म या ईश्वर मानकर उसी को सत्यमत निश्चय कर लेता है ॥१३॥ मनुष्य अपने चेतन स्वरूप से पृथक जो पूर्ण कलायुक्त कल्पित ब्रह्म माना है उसको सिद्ध करने की सारी युक्तियाँ अनमिल तथा अयोग्य हैं। अतः व्यक्ति ने जिसे अपना सहायक, मुक्ति दाता माना, वही बंधनप्रद सृष्टि का स्वाभाविक कारण सिद्ध किया है ॥१४॥

रक्षक भक्षक हर्ष विलाप। दुतिया नहिं कछु आपै आप ॥१५॥

शब्दार्थ — विलाप = रोना; दुःख।

भावार्थ — ब्रह्मवाद में रक्षक-भक्षक सुख और दुःख का दूसरा जड़ तत्त्वादि हेतु नहीं कि उससे प्रयत्न करके छुटकारा मिल सके; प्रत्युत ब्रह्म अपने आप ही सब कुछ है ॥ १५ ॥

विशेष — सुख-दुःखादि सारा विकार उसका स्वभाव ही है; अतएव ब्रह्मवाद में रोग असाध्य है ॥१५॥

साखी—अंध धुंध में पगि रहा, दुखिया चहै विलास।
बिनु सरणागत पारखी, बिलटै निज उश्वास ॥१८॥

शब्दार्थ — अंधधुंध = अंधेरा; अज्ञान। पगि रहा = आसक्त हो रहा। विलास = आनन्द, सुख, शांति। उश्वास = उसाँस, ऊपर की खींची हुई लम्बी साँस; दुःखसूचक साँस।

भावार्थ — संसारके खानी-वाणी जाल रूपी अंधकार में पड़े हुए उसी में आसक्त हैं, और वे दुखी जीव उसीमें सुख-शांति चाहते हैं; परन्तु यथार्थ पारखी सद्गुरु की शरण में आये बिना पश्चाताप कर रहे हैं ॥१८॥

विशेष — 'बिलटै निज उश्वास' बारम्बार दुःखभरे श्वास की पुनरावृत्ति करना।

१३—योगियों का शरीर में ही सातस्वर्ग, सातपाताल आदि का मानना तथा वर्ण, श्वास कमलदल आदि का वर्णन।

चौकड़ी १३

योग युक्ति जे कमल विहार। कहै प्रचार स्वर्ग अनुहार ॥ १ ॥
कमल सहस्र दल सोई गौलोक। शब्दविलास अनहद का भोग ॥ २ ॥

शब्दार्थ — विहार = क्रीड़ा; योग साधना। अनुहार = रूप। शब्द = ॐ। विलास = निवास; ज्योतिका जगमगाना।

भावार्थ — जो लोग योग की युक्तियों को जानकर षट या सप्तदल कमलों में क्रीड़ा करते हैं, वे जोर देकर कहते हैं कि कमलदल स्वर्ग के अनुरूप सुखप्रद हैं ॥ १ ॥ ब्रह्माण्ड (खोपड़ी) में हजार दल का कमल है, वही आंतरिक गौलोक है । वहाँ ॐ रूपी शब्दब्रह्म का निवास या जगमगाहट है और घंटा, भेरी, शंख आदि दश बाजों के रूप में होते हुए अनाहतनाद का उपभोग है ॥२॥

विशेष — अनाहतनाद के दश बाजे ये हैं जिसे योगी लोग खोपड़ी में सुनते हैं:— दुंदुभी, भेरी, घंटा, शंख, मृदंग, झाँझ, वीणा, सितार, सहनाई, और बाँसुरी ।

सकल गोपिका कृष्ण विलास । अद्भुत शोभा लीला रास ॥ ३ ॥
सायर शुद्ध अमी के खान । योगी चहहीं सोई परवान ॥ ४ ॥
सहस्र श्वास ताही के भोग । कारा रंग गगन संयोग ॥ ५ ॥

शब्दार्थ —सायर=समुद्र । अमी=अमृत, लार । परवान=सत्य ।

भावार्थ — वहाँ कृकल, धनंजय, पुहूखा, गंधारी तथा इडा, पिंगलादि समस्त नाड़ी रूपी गोपियाँ ब्रह्म रूपी कृष्ण से क्रीड़ा करती हैं । उस लीला तथा रास की शोभा विचित्र है ॥३॥ वहाँ पर ही शुद्ध अमृत की खान रूपी समुद्र है । उसी को मुक्ति दाता मानकर योगी लोग लम्बिका योग से पीना चाहते हैं ॥४॥ उक्त सहस्रदल कमल में एक हजार श्वास का उपभोग होता है; उसका भ्रमरगुफा रूपी आकाश से सम्बंध होने के कारण रंग काला है ॥५॥

विशेष — खोपड़ी से झरते हुए लार को अमृत मान कर तथा योगी लोग जिह्वा को उलटा कर उसे पीते हैं । उसी से अमर होना मानते हैं । कहते हैं ब्राह्माण्ड (खोपड़ी) में आकाशतत्त्व का निवास है और वह काला रंग का होता है अतएव उक्तस्थित कमल का रंग भी काला है, इत्यादि कल्पना कर रखा है । वस्तुतः आकाश शून्य है उसका कोई रंग नहीं है । ऊपर दीखती हुई नीलिमा पृथ्वी आदि जड़तत्त्व के रजकण हैं ।

महा बैकुंठ दुई दल सो ज्योत । सहसू श्वास भोग तेहि होत ॥ ६ ॥
सायर घृत तहाँ परवान । लालवर्ण झलकारी जान ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — दुइ दल=त्रिकुटी । झलकारी=ज्योति दर्शन ।

भावार्थ — त्रिकुटी में आज्ञाचक्र दो दल कमल का माना है इसी को महा-बैकुण्ठ लोक माना है । यहाँ परमात्मा देवता रहते हैं और यहां योगी लोग ज्योति दर्शन करते हैं । इसमें भी हजार श्वास का उपभोग होना माना है ॥६॥ यहाँ (नाक का मल-पोटा) घृत का समुद्र माना है और लाल रंग की झलक या ज्योति निश्चित किया है (यहीं से 'ह' और 'क्ष' अक्षर की उत्पत्ति मानी है) ॥७॥

सत्त लोक दल षोडस होय । सती शारदा बासा सोय ॥ ८ ॥

श्वेत रंग दधि सायर जान। भोग सहस्र श्वासा अनुमान ॥ ९ ॥
सोरह स्वर उपजै ताहि। अक्षर बानी प्रगटी जाहि ॥१०॥

शब्दार्थ — दल षोडस = सोलहदल। सोरह स्वर = अ, आ, इ, ई, उ ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

भावार्थ — कण्ठस्थान विशुद्धिचक्र में सोलह दलका कमल माना है। यहाँ पर श्रीमती सती शारदा देवीका स्थान माना जाता है ॥८॥ यहाँ कमल का रंग उजला तथा समुद्र दही का समझो (जो वस्तुतः खखार है)। यहाँ भी एक हजार श्वासों का उपभोग माना है ॥९॥ यहाँ से अ, आ, आदि सोलह स्वरों की उत्पत्ति मानी गयी है, जिससे अक्षर की स्थिति होकर वाणी प्रकट होती है ॥१०॥

द्वादश दल कैलाश बखान। अनहद चक्र हर के अस्थान ॥११॥
मदिरा मस्त करै अचेत। भोग सहस्र छौ रंग है श्वेत ॥१२॥

शब्दार्थ — अनाहतचक्र = हृदय स्थान।

भावार्थ — हृदयस्थान अनाहतचक्र में बारह दल का कमल, कैलाश पर्वत तथा महादेव का निवास माना है ॥११॥ यहाँ मदिरा (पित्त) का समुद्र माना है अतएव उसे पीकर योगी लोग अचेत रहते हैं। यहाँ छः हजार श्वासों का उपभोग तथा कमल का रंग उजला माना है। यहाँ से बारह वर्णों की उत्पत्ति मानी है—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ ॥१२॥

दशदल विष्णु लोक परवान। क्षीर समुद्र हरि के परधान ॥१३॥
श्याम वर्ण षट सहस्र विलास। प्रगट कहै सो विष्णुनिवास ॥१४॥

शब्दार्थ — परवान = प्रमाण, मानना।

भावार्थ — नाभिस्थान मणिपूरचक्र दशदल कमलयुक्त माना है। यहाँ श्रेष्ठ विष्णु जी का क्षीर समुद्र (नारियों के दूध की नली) है ॥ १३ ॥ कमल का वर्ण श्याम और छः हजार श्वासों का उपभोग तथा विष्णु का प्रत्यक्ष निवास माना है। यहाँ से ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ — इन दश अक्षरों की उत्पत्ति मानी है ॥ १४ ॥

षट दल ब्रह्मलोक परचार। बासा अजके करहि विचार ॥१५॥
मीठा सायर भोग विलास। षट सहस्र श्वासा परकाश ॥१६॥
पीत वर्ण भू पृथिवी जान। सो तहाँ प्रजापती अनुमान ॥१७॥

शब्दार्थ — षटदल = छः दल, स्वाधिष्ठानचक्र।

भावार्थ — नाभिस्थान के छः अंगुल नीचे पेड़ू स्थान तथा शिश्न के मूल में छः दल वाला स्वाधिष्ठान चक्र या कमल माना है। उसको ब्रह्मलोक कहा है, और विचार

करते हैं कि वहाँ ब्रह्मा का निवास स्थान है ॥ १५ ॥ विषयभोग के विलास में जो वहाँ क्षणिक आनंद आता है उसीको मीठा समुद्र मान रखा है। यहाँ भी छः हजार श्वासों का उपभोग माना है ॥ १६ ॥ यहाँ कमल का रंग पीला, तत्त्व पृथ्वी माने हैं। यहाँ पर कर्ममार्गी प्रजापति के निवास का अटकल लगाये हैं। यहाँ से ब, भ, म, य, र, ल छः वर्णों की उत्पत्ति मानी है ॥ १७ ॥

देवलोक है दल सो चार। गणनायक शूर मूलद्वार ॥१८॥
मूत्र सायर लोन सो जान। छौ सै श्वासा लाल पहिचान ॥१९॥

शब्दार्थ — मूलद्वार = मलद्वार।

भावार्थ — मूलद्वार में चार दल का कमल माना है, इसे मूलाधारचक्र कहते हैं, यह देवलोक कहलाता है और यहाँ गणों के अधिपति महाबली गणेश जी रहते हैं ॥१८॥ यहाँ मूत्रपोटली को खारा समुद्र माना है। इस चक्र का रंग लाल है। यहाँ छः सौ श्वासों का उपभोग माना है। यहाँ से व, श, ष, स — इन अक्षरों की उत्पत्ति मानी है ॥ १९ ॥

छियानबे कोटि के श्वासा के भोग। सो प्रतिबंध मनुष्य उतयोग ॥२०॥
सहस् एकइस छौ सै दिन रात। पल षट श्वासा गिनत गिनात ॥२१॥

शब्दार्थ — प्रतिबंध = नियम। उतयोग = कल्पना। पल षट श्वासा = एक पल में छः श्वासों के चलने की बात।

भावार्थ — मनुष्य के पूर्ण जीवन में छानवे करोड़ (९६०००००००) श्वासों का उपभोग मानकर उसकी आयु के नियम की कल्पना की गयी है ॥ २० ॥ रात-दिन में इक्कीस हजार छः सौ (२१६००) श्वासों का चलना माना गया है। और एक पल में छः बार श्वास का चलना माना है। इस प्रकार श्वास-स्वरोदय वाले गिनते-गिनाते हैं ॥ २१ ॥

विशेष — दिन-रात में इक्कीस हजार छः सौ श्वासों के चलने के हिसाब से छानबे करोड़ श्वासों में ३६० दिन-रात के वर्ष मानने पर मनुष्य की पूर्ण आयु १२३ वर्ष, ५ महीने, १४ दिन, १० घंटे तथा ४० मिनट होते हैं। इतना मनुष्य का पूरा जीवनकाल माना गया है।

पुनि थिति नहिं जियरे होय। मृत्युअकाल बतावै सोय ॥२२॥
प्रेतयोनी भुगतावै भोग। सो योनि अस कहै संयोग ॥२३॥
सूक्ष्म शरीर श्वासा के साथ। वाको भोग भुगतावै नाथ ॥२४॥

शब्दार्थ — प्रेतयोनि = भूत, प्रेत की खानि। नाथ = यमराज।

भावार्थ — यदि उपर्युक्त कथन अनुसार पूरी आयु के बीच ही में किसी कारण से शरीर छूट गया तो इसे अकाल मृत्यु कहते हैं ॥ २२ ॥ (कहते हैं) ऐसे लोगों को वह अकाल मृत्यु प्रेतयोनि में लेजाकर भुगतावेगी । उस योनि में जाने का संयोग इस प्रकार से बताते हैं ॥ २३ ॥ जीवको सूक्ष्म शरीर एवं सूक्ष्म श्वास के साथ में रखकर यमराज प्रेतयोनियों में भटकाता रहेगा ॥ २४ ॥

विशेष — उपर्युक्त कथन पूर्वपक्ष का है । ग्रंथकार उसका दिग्दर्शन मात्र कराते हैं । वस्तुत: अकालमृत्यु कहना ही गलत है । सबकी अपनी आयु पूरी होने पर ही शरीर छूटता है । सबकी आयु समान या लम्बी नहीं हो सकती । प्रेतयोनि की केवल कल्पना है । प्रेतयोनि एकदम झूठी है ।

आगे शरीर में ही सात पातालों का वर्णन करके उसका दिग्दर्शन कराते हैं:—

हाथ अतल है हरि के भेव । छाति वितल ब्रह्मा सो देव ॥२५॥
तल सो पीठ शंभु सहिदान । पेट सुतल सावित्री स्थान ॥२६॥
शंकर पूत सो रहै पताल । तलातल लक्ष्मी पद प्रतिपाल ॥२७॥
रसातल पेड़ू आद्या रूप । कहूँ लिंग कहूँ भगचक्र अनूप ॥२८॥

शब्दार्थ — सहिदान = पहिचान, स्थान । आद्या = दुर्गा । अनूप = विलक्षण ।

भावार्थ — हाथ अतल है, जहाँ विष्णु जी रहते हैं, छाती वितल है जहाँ ब्रह्मा-देवता रहते हैं ॥ २५ ॥ पीठ तल है जहाँ शिवजी विराजमान हैं; पेट सुतल है जहाँ सावित्री जी रहती हैं ॥२६॥ और शंकर के पूत—गणेश जी पाताल में रहते है, गुदा को ही पाताल माना है । पैर तलातल है उसकी रक्षा में वहाँ लक्ष्मी जी निवास करती हैं ॥ २७ ॥ रसातल पेडू स्थान को माना है जो मूत्र की जगह है; यहाँ दुर्गादेवी बसती हैं । इस प्रकार कल्पना करने वालों ने पवित्र देवी-देवताओं को विलक्षण स्थान कहीं मूत्रकी जगह पर तथा कहीं टट्टी की जगह पर ला बैठाया है ॥ २८ ॥

साखी—चिन्ह चक्र नर नारी के, चिदाभास विलास ।
उपजै अनबनि मोहमें, खानी क्लेश निवास ॥१९॥

शब्दार्थ — चिदाभास = चिद + आभास, चेतन होने का भ्रम; जड़ शरीर को चेतन रूप मान लेना । विलास = क्रीड़ा; आनन्द । अनबनि = अनबन, अनेक ।

भावार्थ — अविवेकी स्त्री और पुरुषों का परस्पर शरीर के चिन्ह-चक्र आदि पर लक्ष्य बना रहता है; और वे अपने तथा दूसरे के जड़, गंदे शरीर को चेतन रूप तथा रमणीय मानकर परस्पर रमण करते हैं । इस महामोह की अंधियारी में पड़कर जीव अनेक अपार क्लेशपूर्ण खानियों में बारम्बार जन्म धारण करते हैं ॥ १९ ॥

विशेष — जन्म-मरण का मूल कारण विषय वासना है । अत: मुमुक्षु को चाहिये कि वह इसका विनाश करे ।

१४-माया के चार-चार अंगों का वर्णन ।

चौकड़ी-१४

चारि देव रेखा सो चार । चारि देह का करहिं विचार ॥ १ ॥
महाकारण कारण औ थूल । पिंड विराजै सो अस्थूल ॥ २ ॥

शब्दार्थ — रेखा = मात्रा । थूल = सूक्ष्म ।

भावार्थ — ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तथा ईश्वर ये चार देवता; अ, उ, म अर्ध-मात्रा 'ँ' ये चार मात्रायें; और चार देहों का भी विचार करते हैं–॥ १ ॥ महाकारण, कारण, सूक्ष्म तथा पिण्डरूप में विराजमान स्थूल –ये चार देह हैं ॥ २ ॥

तुर्या सुषुप्ति स्वप्न विलास । चौथी अवस्था जागृति भास ॥ ३ ॥
प्रत्यज्ञ प्राज्ञ तैजस अभिमान । विश्व अभिमान चार पहिचान ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — भास = इन्द्रियों का व्यवहार ।

भावार्थ — तुरीय, सुषुप्ति, स्वप्नक्रीड़ा तथा चौथी जागृति अवस्था जो इन्द्रियों का व्यवहार है—ये चार अवस्थायें हैं ॥ ३ ॥ प्रत्यज्ञ, प्राज्ञ, तैजस और विश्व—ये चार अभिमान माने गये हैं ॥ ४ ॥

विशेष — प्रत्यज्ञ आदि चारों अभिमानों का स्वरूप टकसार प्रकरण के ६६वीं साखी के आगे 'आकार कालचक्र को पंचकोश' में देखें ।

ऋग अथर्वण यजुर औ साम । चारों वर्ण चहूँ मुकाम ॥ ५ ॥
मूर्धनी हृदय कंठ औ नैन । चारि अवस्था बखानै बैन ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — चहूँ मुकाम = चार आश्रम । मूर्धनी = नाभि, तालु । बैन = वाणी ।

भावार्थ — ऋग, अथर्व, यजुर और साम—ये चार वेद हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं । ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम हैं ॥ ५ ॥ चार अवस्थाओं के चार स्थान हैं—तुरीय का स्थान नाभि, सुषुप्ति का हृदय, स्वप्न का कण्ठ तथा जागृति का नेत्र । तदनुसार चार वाणियाँ भी हैं—तुरीय की परा, सुषुप्ति की पश्यंती, स्वप्न की मध्यमा तथा जागृति की बैखरी ॥ ६ ॥

विशेष — कहीं ऐसा वर्णन मिलता है कि नाद रूपिणी परा वाणी मूलाधार में स्थित हैं, कहीं इसे नाभि में माना है । यहाँ परा को नाभि में, पश्यंती को हृदय में, मध्यमा को कंठ में तथा बैखरी को जिह्वा में माना है ।

कहीं-कहीं वर्णन आता है कि मूलाधार (नाभि और शिश्न के मध्य एक चक्र) से परा वाणी उठती है, वही नाभि में आकर पश्यंती, हृदय में मध्यमा तथा कंठ में

बैखरी कहलाती है। परा वाक् और पश्यंती वाक् केवल ईश्वर और योगियों को ही गोचर हैं ऐसी कल्पना कर रखा है।

आनंदाभास आनंदापोत। स्थूल विलास भोग चहुँ होत॥ ७॥
रज सत तम गुण तीनिउ जोय। चौथे शब्द सतोगुण होय॥ ८॥

शब्दार्थ — आनंदाभास = आनंद का सूक्ष्म भास होना। **आनंदापोत** = प्रगाढ़ आनंद; अपेत कहते हैं रहित, वंचित या मुक्त को तात्पर्य में समस्त संकल्पों से रहित का आनंद। **स्थूल** = पंच विषय का आनन्द। **विलास** = स्वप्न का आनन्द।

भावार्थ — तुरीय अवस्था का भोग 'आनन्दाभास' है, सुषुप्ति अवस्था का भोग 'आनन्दापोत' है, स्वप्न अवस्था का भोग 'विलास' है तथा जागृति अवस्था का भोग 'स्थूल' है॥ ७॥ सत, रज, तम ये तीन गुण हैं और चौथा शुद्ध सतोगुण है जो ज्ञानी एवं ईश्वर का माना है॥ ८॥

विशेष — तुरीय अवस्था की देह महाकारण है, ज्ञानी इसमें 'आनन्दाभास' का उपभोग करते हैं। सुषुप्ति अवस्था की देह कारण है, योगी लोग सर्व वृत्ति का अभाव कर 'आनन्दापोत' रूप प्रगाढ़ आनन्द में रहते हैं। स्वप्न अवस्था की देह सूक्ष्म है, उपासक लोग कल्पित स्वप्नवत इष्ट में तन्मय होकर 'विलास' का आनन्द भोगते हैं। जागृति अवस्था की देह स्थूल है, इसमें कर्मी लोग नाना कर्म करके पाँचों विषयों का 'स्थूल' उपभोग करते हैं।

छिप्रा गतागत दूजी मान। सौलेष्टता सुलीन भूमिका जान॥ ९॥
मुक्ति सालोक्य सामीप्य सारूप। चौथे है सायुज्य अनूप॥१०॥
जेते चारि चारि परसंग। सबका देखहु एकै रंग॥११॥

शब्दार्थ — **छिप्रा** = छिप्र, तेज, शीघ्रगामी। **गतागत** = आना जाना, जन्म-मरण। **सौलेष्टता** = अच्छी तरह से लिपटा हुआ; एकीकरण; एकाग्रता। **सुलीन** = अच्छी तरह लीन हो जाने का भाव। **सालोक्य** = ईश्वर के लोक में रहना। **सामीप्य** = ईश्वर के समीप रहना। **सायुज्य** = ईश्वर में घुलमिल जाना।

भावार्थ — स्थूलदेह की छिप्रा, सूक्ष्म देह की गतागत, कारण देह की सौलेष्टता तथा महाकारण देह की सुलीन भूमिका है॥ ९॥ मुक्ति भी चार प्रकार की मानरखी है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य॥ १०॥ जितने चार-चार अंगों के प्रकरण आते हैं, सब चार देहों के भास-अध्यास के लक्षण हैं॥ ११॥

विशेष — स्थूल देह या जागृति अवस्था की भूमिका छिप्रा है। इसमें छिप्र एवं तेजी से मन-इन्द्रियों द्वारा कर्म होते हैं। सूक्ष्म देह एवं स्वप्न अवस्था की भूमिका गतागत है। इसमें सूक्ष्म शरीर जीवका गमनागमन कराता है व स्वप्न में मनकी वासनायें ही दौड़ती हैं। कारण देह एवं सुषुप्ति अवस्था में सौलेष्टता भूमिका रहती है। इसमें

वासनायें अज्ञानरूप में समवेत तथा एक में लिपटी हुई एकत्रद्ध होती हैं। महाकारण देह तुरीय अवस्था को भूमिका सुलीन है। इसमें वृत्तियाँ अच्छी तरह लीन रहती हैं।

साखी-चारि अवस्था चारि चहूँ, सोई चारि शरीर।
महाशून्य औ शून्य में, लहै सदा बहु पीर ॥२०॥

शब्दार्थ — महाशून्य = शुद्धब्रह्म। शून्य = सबल ब्रह्म।

भावार्थ — जागृति आदि चार अवस्थायें तथा चार-चार के जहाँ तक प्रपंच हैं, वे सब स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण—इन चार देहों के भास-अध्यास हैं। इसके आगे मनुष्य अपने चेतन स्वरूप से पृथक सबल ब्रह्म तथा शुद्ध ब्रह्मकी शून्य एवं महाशून्य रूप में कल्पना करके सदैव नाना कष्टों को उठाता है ॥२०॥

विशेष — मनुष्य जब तक बाहरी कल्पनाओं से मुड़कर अपने आप में शांत नहीं होता तब तक वह दुःख ही उठाता है।

१५-पंद्रह इन्द्रियाँ, उनके विषय तथा देवताओं का क्रमशः अध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदेव रूप में वर्णन

चौकड़ी-१५

इंद्री कर्म इंद्री के भेव। जहाँ जेहिकला इंद्री के देव ॥ १ ॥
सो सुनि लेहु करहु विचार। त्रिगुण तत्वमसि सब सार ॥ २ ॥

शब्दार्थ — इंद्री = इन्द्रियाँ रजोगुण रूप 'अध्यात्म' हैं। कर्म = इन्द्रियों के कर्म या विषय तमोगुण रूप 'अधिभूत' हैं। कला = भाग। इंद्री के देव = इन्द्रियों के देवता सतोगुण रूप 'अधिदेव' हैं।

भावार्थ — इन्द्रियाँ रजोगुण के रूप हैं और इनको यहाँ 'अध्यात्म' कहा गया है; इन्द्रियों के कर्म व विषय तमोगुणरूप हैं और इनको 'अधिभूत' कहा गया है तथा इन्द्रियों के देवता सतोगुणरूप हैं और इनको 'अधिदेव' कहा गया है। जहाँ जिस भाग यानी इन्द्रिय में जिसको देवतादि माना गया है उसका भेद इस प्रसंग में बताया जायगा ॥ १ ॥ इन सब बातों को सुनो और विचार करो। त्रिगुण और तत्वमसि आदि सबका सारासार निर्णय करो। ॥२॥

विशेष — रजोगुण को अध्यात्म, तमोगुण को अधिभूत तथा सतोगुणको अधिदेव माना हैं। इसी प्रकार त्वम् को अध्यात्म, तत् को अधिभूत और असि को अधिदेव माना है।

निर्गुण मत शंकर के होय। शब्द ब्रह्म ब्रह्मा है सोय ॥ ३ ॥
हरि सो सगुण ब्रह्म परवान। गुण औ नाम रूप पहिचान ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — शब्दब्रह्म = प्रणव, ॐ। गुण = निर्गुण, अधिदेव। **नाम** = ॐ, शब्दब्रह्म; अध्यात्म। **रूप** = सगुण, अधिभूत। **परवान** = प्रमाण, सत्य।

भावार्थ —शंकर जी का निर्गुण ब्रह्मका मत है, इसीको शंकराचार्य ने माना है। ॐ शब्द को ब्रह्म मानकर कर्मकाण्ड का उपदेश करना ब्रह्मा का मत है ॥ ३ ॥ विष्णुका मत है सगुण ब्रह्म जिससे अवतारादि की मान्यता है। इन तीनों को क्रमशः गुण, नाम और रूप में पहचान लो। अर्थात् निर्गुण शिव का, नाम (ॐ) ब्रह्मा का तथा रूप (सगुण) विष्णुका मत है ॥ ४ ॥

विशेष — अब आगे इन्द्रियों के कर्म तथा उनके देवताओं का वर्णन आता है।

अंतस निर्विकल्प अधिभूत। महाविष्णु देव मजबूत ॥ ५ ॥
मन इंद्रिय मंतव्य व्यवहार। शशि असाधि देव परचार ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **अंतस** = अंतःकरण। **निर्विकल्प** = विकल्प से रहित; संकल्पहीन। **अधिभूत** = माया, जड़, विषय। **मंतव्य** = मानने योग्य; तात्पर्य में मनन, संकल्प। **असाधि** = अधिदेव, देवता।

भावार्थ — अंतःकरण अध्यात्म (इन्द्रिय) है, उसका अधिभूत (विषय) निर्विकल्प है तथा उसके अधिदेव महाबलिष्ट विष्णु हैं ॥५॥ मन इन्द्रिय (अध्यात्म) है, मनन करना उसका व्यवहार (अधिभूत) है तथा चंद्रमा अधिदेव हैं ॥६॥

बुद्धि अध्यातम निश्चयभास। ब्रह्मा देवता संग विलास ॥ ७ ॥
चित्त अध्यातम चिंतन करै। तासु देवता हरि अनुहरै ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **भास** = प्रतीत, ग्रहण। **अनुहरै** = अनुकरण करना; अनुसार होना।

भावार्थ — बुद्धि अध्यात्म है, प्रतीत हुए का निश्चय करना अधिभूत है तथा ब्रह्मा अधिदेव है जो उसके साथ विलास करता है ॥ ७ ॥ चित्त अध्यात्म है, चिंतन करना अधिभूत है तथा उसके अनुसार उसका अधिदेव हरि है ॥८॥

अहंकार अध्यातम करणी अहं। रुद्र देवता एकोहं ॥ ९ ॥
श्रवण तेहि सुनना अधिभूत। दिग असाधी देव मजबूत ॥१०॥

शब्दार्थ — **करणी** = करनी, कर्तव्य। **श्रवण** = कान। **असाधी देव** = अधिदेव।

भावार्थ — अहंकार अध्यात्म है, अहंकृतकर्तव्य अधिभूत है तथा 'एक मैं श्रेष्ठ हूँ' का भाव रखने वाला संहारकारी अहंकारी रुद्रदेवता अधिदेव है ॥ ९ ॥ कान अध्यात्म है, उसका अधिभूत है सुनना तथा उसके अधिदेव हैं बलशाली दशो दिशायें ॥ १० ॥

त्वचा इंद्री स्पर्श व्यवहार। वायु असाधी देव अनुहार ॥११॥
चक्षु अध्यातम द्रष्टव्य सो भेव। सूर्य असाधी ताहि के देव ॥१२॥

शब्दार्थ — अनुहार = भेद, प्रकार; आकृति । चक्षु = नेत्र । दृष्टव्य = देखने योग्य; तात्पर्य में देखना ।

भावार्थ — त्वचा अध्यात्म है, स्पर्श व्यवहार करना उसका अधिभूत है तथा उसी के प्रकार का वायु अधिदेवता है ॥ ११ ॥ नेत्र अध्यात्म है, उसका देखना अधिभूत का रहस्य है तथा उसका अधिदेव सूर्य है ॥ १२ ॥

जिभ्या रस वरुण सो देव । घ्राण गंध अश्वनी सेव ॥१३॥
वाक्य सोई वक्तव्य विचार । अग्नि असाधी देव निरुवार ॥१४॥

शब्दार्थ — घ्राण = नाक । वक्तव्य = भाषण, बोलना ।

भावार्थ — जीभ अध्यात्म है, रस ग्रहण करना उसका अधिभूत है तथा वरुण उसका अधिदेव है । नाक अध्यात्म है, गंध ग्रहण करना उसका अधिभूत है तथा अश्विनी कुमार उसके अधिदेव हैं जो गंध सेवन में सहायता करते हैं ॥ १३ ॥ वाक् अध्यात्म है, उसका अधिभूत बोलना या भाषण करना विचारा गया है तथा उसके अधिदेव अग्नि माने गये हैं ॥ १४ ॥

पाणी अध्यात्म ग्रहण सो भेव । इंद्र असाधी कहावै देव ॥१५॥
पाद अध्यात्म चलना होय । उपेंद्र असाधी देवता सोय ॥१६॥

शब्दार्थ — पाणी = पाणि, हाथ । भेव = भेद; अधिभूत, विषय । पाद = पैर ।

भावार्थ — हाथ अध्यात्म है, उसका अधिभूत ग्रहण करना है तथा इन्द्र उसका अधिदेव है ॥ १५ ॥ पैर अध्यात्म है, उसका अधिभूत चलना है तथा उसका अधिदेव उपेन्द्र है ॥ १६ ॥

शिश्न अध्यात्म मैथुन भोग । प्रजापति असाधी देवता योग ॥१७॥
गुदा विसर्जन सोई जान । यम असाधी देवता मान ॥१८॥
सोई अस्थूल पिंड ब्रह्मांड । प्रगटै कला अनेक प्रचंड ॥१९॥

शब्दार्थ — कला = रचना । प्रचंड = बड़ा ।

भावार्थ — शिश्न अध्यात्म है, उसका अधिभूत मैथुनभोग या मूत्रत्याग है और उसके अधिदेव प्रजापति हैं ॥ १७ ॥ गुदा अध्यात्म है, उसका अधिभूत मलत्याग है तथा उसका अधिदेव यम माना गया है ॥ १८ ॥ शरीर और संसार में इन्हीं इन्द्रियों द्वारा अनेक बड़ी-बड़ी रचनायें प्रकट होती हैं ॥ १९ ॥

साखी–महा जाल जंजाल है, आस ओस संसार ।
झाँई संधि सो परखि ले, गुरुमुख शब्द विचार ॥२१॥

शब्दार्थ — आस = आशा । ओस = शबनम, ओसकण । झाँई = छाया; भ्रम; धोखा । संधि = छिद्र; भेद; त्रुटि ।

भावार्थ — उपर्युक्त पंद्रह इन्द्रियों के विषय तथा भ्रमपूर्ण देवताओं की मान्यतायें महान जंजाल एवं भवबंधन है। संसार के विषयों की आशा ओसकणवत निस्सार है। हे मुमुक्षुओ ! उपर्युक्त मन-इन्द्रियों के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए धोखा और त्रुटियों को गुरुमुख शब्दों के विचार द्वारा परख लो ॥ २१ ॥

विशेष — अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार–ये पाँच भीतरी सूक्ष्म इन्द्रियाँ हैं, इन सबको अंतःकरण कहा जाता है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नाक ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और वाक्, हाथ, पैर, शिश्न तथा गुदा–ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन्हीं पंद्रहों का वर्णन ऊपर हुआ है।

१६–अनेक मतों का वर्णन

चौपाई १६

दहिने नर बायें सो नार। शून्य अंग निरंजन सार ॥ १ ॥
कारा श्याम गोरा औ पीत। चारों रंग कला तेहि रीत ॥ २ ॥

शब्दार्थ — कला = रचना। रीत = नियम।

भावार्थ — शरीरका दाहिना अंग पुरुष का तथा बायाँ अंग स्त्री का माना है; और शरीर में जहाँ शून्य जगह है वहाँ सारतत्त्व ब्रह्म का स्वरूप माना है ॥ १ ॥ शरीर के काला, साँवला, गोरा और पीला रंग उसकी रचना के नियमानुसार होते हैं।२।

विशेष — अथवा स्वरोदय के अनुसार नाक के दायें छिद्र की हवा 'पिंगला' पुरुष रूप तथा बायें छिद्र की हवा 'इडा; स्त्री रूप और मध्य की' सुषुम्णा 'ब्रह्म-रूप माना है। योगी लोग श्वास में पाँचों तत्त्वों के रंग देखते हैं। नासिका के भीतर श्वासगति में आकाश तत्त्व का काला रंग; नासिका के बाहर आठ अंगुल तक चलते हुए श्वास में वायु का हरा रंग; नासिका के बाहर चार अंगुल तक चलते हुए श्वास में अग्नि तत्त्व का लाल रंग; नाभिसे नासिका के बाहर सोलह अंगुल तक चलते हुए श्वास में जलतत्त्व का उजलारंग तथा नासिका के बाहर बारह अंगुल तक चलते हुए श्वास में पृथ्वी तत्त्व का पीला रंग देखते हैं।

आकाश शून्य है, उसमें कोई रंग नहीं होता। ऊपर जो नीलिमा दिखाई देती है वह पृथ्वी आदि तत्त्वों के कणोंका घनाकार होने से उनके मिश्रित रंग हैं। वायु पर-माणुयुक्त द्रव्य अवश्य है, परन्तु उसमें भी रंग नहीं होता। रंग केवल अग्नि, जल तथा पृथ्वी में होता है।

बवना नाटा औ मझोल। लंबा चौथे करै कलोल ॥ ३ ॥
कर्म धर्म मत त्रिगुण राज। शम दम दंड विभेद समाज ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — कलोल = क्रीड़ा । धर्म = उपासना । मत = ज्ञान । शम = साम, समता । दाम = धन देकर । दंड = दंड देकर । विभेद = फूट डालना । समाज = राजसमाज ।

भावार्थ — बवना, नाटा, मझोला तथा लम्बा—ये चार शरीर के कद होते हैं जिसमें व्यक्ति आनन्द मानकर क्रीड़ा करता है ॥ ३ ॥ कर्म, उपासना और ज्ञान-ये तीन के मुख्य सम्प्रदाय होते हैं । सत, रज, तम तीन गुण होते हैं । समता लेकर, धन देकर, दण्ड देकर तथा फूट डालकर विपक्षी तथा प्रजा को वश में करना ये क्रमशः साम, दाम, दण्ड और भेद चार राजनीतियाँ हैं ॥ ४ ॥

विशेष — जो सबसे छोटे कद का हो वह बवना कहलाता है । कहते हैं यह बावन अंगुल का होता है । जो इससे कुछ ऊंचा हो वह नाटा कहलाता है । जो मध्यम कद का हो वह मझोला है और जो अधिक ऊंचा हो वह लम्बा है ।

शम समान दम निग्रह जान । विराग विचार साधन पहिचान ॥ ५ ॥
कर्म समाधि अज के होय । धर्म समाधि विष्णु है सोय ॥ ६ ॥
सहज समाधि शिव के भेव । तीनिउ कला विराजै देव ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — निग्रह = रोक, वश में लाना । कला = भाग ।

भावार्थ — शम मन का शांत हो जाना है, दम इन्द्रियोंका वश में होना समझो, विराग विषयों से अनासक्ति है तथा विचार सारासारका पृथक्करण है—ये चार साधन कहे गये हैं ॥ ५ ॥ कर्म करने में मग्न रहना कर्म समाधि है, जो ब्रह्मा का मत है; उपासना में निरत रहना धर्म समाधि है, यह विष्णुका मत है तथा ज्ञान में मस्त रहना सहज समाधि है, यह शिवका मत है । इस प्रकार तीनों भागों में तीनों देवता विराजते हैं ॥ ६, ७ ॥

षट का षट मुनि करें विचार । जुगतावें बिंदु द्वय सार ॥ ८ ॥
मीमांसा कर्म ही परधान । वैशेषिक सो समय बखान ॥ ९ ॥
न्याय एक कर्ता लौलीन । पातंजल योग कला परवीन ॥१०॥
नित्यानित्य सो सांख्य दृढ़ाय । पूरण कहै वेदांत बुझाय ॥११॥

शब्दार्थ — षट = छः शास्त्र—मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, वेदांत । षट मुनि = छः शास्त्रकर्ता—जैमिनि, कणाद, गौतम, पतंजलि, कपिल, व्यास । जुगतावें = युक्ति देते हैं । बिंदु = ब्रह्म, अद्वैत । द्वय = द्वैत । सार = सत्य ।

भावार्थ — छः शास्त्रों के छः ऋषि गण विचार करते हैं । उनमें कोई अद्वैत की सिद्धि में युक्ति देकर उसे सत्य सिद्ध करता है और कोई द्वैत की सिद्धि में ॥ ८ ॥ मीमांसा दर्शन में जैमिनि जी कर्म ही को प्रधान मानते हैं; वैशेषिक दर्शन में कणाद

जी समय का वर्णन करते हैं ॥ ९ ॥ न्याय दर्शन में गौतम जी एक ईश्वर में तद्गत हैं, योगदर्शन में पतंजलि जी ने योग की कुशलता दिखाई है ॥ १० ॥ सांख्यदर्शन में कपिल जी ने नित्य-अनित्य एवं पुरुष-प्रकृति का विभेद किया है; और वेदांत में वेद-व्यास जी ने सम्पूर्ण जगत ब्रह्म रूप कहकर समझाया है ॥ ११ ॥

सतयें भक्ति अनन्य अकाम । चौंच समान विशेषी नाम ॥१२॥
जगत कला जो है विस्तार ; गाय गाय सो कहै विचार ॥१३॥

शब्दार्थ — अनन्य = एकनिष्ठ; एकाश्रयी । **विशेषी नाम** = ईश्वर के चौबीस अवतारों के विशेष नाम जैसे राम, कृष्ण, मत्स्य आदि ।

भावार्थ — सातवें भक्तिमार्गी हैं जो सत्य माने हुए निर्गुण ब्रह्मके समतुल्य ही चौबीस अवतारों के राम, कृष्णादि विशेष नामों में एकनिष्ठ होते हैं और उनकी भक्ति किसी कामना को न लेकर केवल परमात्मा के लिये होती है ॥ १२ ॥ वे चौबीस अव-तारों की जो पुराणोंद्वारा संसार में लीलायें फैली हैं, उन्हें गा-गा कर और उनका श्रद्धातिरेक पूर्वक विचार करके कथा करते हैं ॥ १३ ॥

अस्थूल पाँच तत्त्व को जान । अष्टम मता इहै परधान ॥१४॥
व्यापक एक एकहि मान । भिन्न भिन्न कोइ करै बखान ॥१५॥

शब्दार्थ — अष्टम मता = आठवाँ मत भौतिकवाद ।

भावार्थ — कोई तो पाँच तत्त्वों को ही सब कुछ समझते हैं और उनसे निर्मित स्थूल शरीर ही को आत्मा मानते हैं, आठवाँ यही श्रेष्ठ मत है ॥ १४ ॥ कोई कहता है एक ब्रह्म जल बर्फ न्याय सर्वत्र व्याप्त है, वे एक ही तत्त्व मानते हैं; और कोई कहता है कि नहीं जड़-चेतन व ईश्वर-जीव भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं ॥ १५ ॥

विशेष — ब्रह्मवादी ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, इन सबका सम्बन्ध तथा भेद— ये छः पदार्थ अनादि मानकर अन्य पाँच सांत (ज्ञानहोने पर नष्ट) मानते हैं और केवल ब्रह्मको ही अनन्त मानते हैं ।

पृथिवी सनातन काहु विचार । स्वयं शिला ताहि अनुहार ॥१६॥
काहू नीर बीज परवान । अनल ज्योति कोइ लावै ध्यान ॥१७॥

शब्दार्थ — **सनातन** = नित्य । **अनुहार** = अनुसार । **परवान** = प्रमाण, मानना ।

भावार्थ — किसी का विचार है कि अलोकाकाश में (अत्यंत ऊपर) एक नित्य पृथ्वी है जो मुक्तात्माओं की स्वयं की है जिसका नाम है चंद्रशिला, उसका दिव्य स्वरूप है ॥१६॥ कोई जलरूप वीर्य को ही आत्मा मानता है; और कोई त्रिकुटी आदि में अग्नितत्त्व का भासरूप ज्योति का ध्यानकरके उसी को आत्मा-परमात्मा रूप मानता है ॥१७॥

कोई लखावै ख्याल बतास । शून्य धूंध कोइ लावै श्वास ॥१८॥
वैयाकरण शब्द परचंड । ग्रह आदिक जोतिष ब्रह्मंड ॥१९॥

शब्दार्थ — ख्याल = ख़याल, ध्यान । बतास = वायु । धूंध = अंधियारा ।

भावार्थ — कोई तो वायु को ही परमात्मा स्वरूप मानकर उसका ध्यान करने की राय देता है । कोई श्वास को रोक कर शून्य व अंधियारे में ध्यान लगाता है और उसीको ब्रह्म बताता है ॥१८॥ वैयाकरण लोग शब्द को ब्रह्म बता कर जीवनपर्यंत उसे ही रटने से मुक्ति मानते हैं । जोतिषी लोग ज्योतिष को सबसे बड़ा मानकर ग्रहादि ब्रह्माण्ड की चाल जानते रहने मात्र से अपना उद्धार मानते हैं ॥१९॥

कोई अस्थूल करै विश्वास । कोई स्वतः पद थीर बतास ॥२०॥
कोई स्वर्गादिक निश्चय करै । सातों सात भाँति अनुहरै ॥२१॥

शब्दार्थ — अस्थूल = देह । थीर बतास = स्थिर वायु । अनुहरै = अनुसरण करना ।

भावार्थ — कोई केवल इस स्थूल शरीर पर ही विश्वास करता है और इसके अतिरिक्त आत्मा-परमात्मा को नहीं मानता । कोई तो स्थिर वायु को ही स्वत:स्वरूप मानता है ॥२०॥ कोई तो स्वर्गादि लोक निश्चय करके तथा कर्मद्वारा वहाँ पहुँचना चाहता है । इस प्रकार छ: वैदिक तथा सातवें अवैदिक में अन्य सब—ये सातों सात प्रकार या विभिन्न प्रकार के मतों का अनुसरण करते हैं ॥२१॥

कोई समुझै निश्चय ज्ञान । पचीस समस्त मता पहिचान ॥२२॥
ताके शाखा भये अनेक । अदबुद पंथ सब करें विवेक ॥२३॥

शब्दार्थ — शाखा = डगालियाँ । अदबुद = अद्भुत ।

भावार्थ — कोई ज्ञान को निश्चित मार्ग समझता है (कोई भक्ति आदि को) इस प्रकार मुख्य पचीस मतों में सारे मत आ जाते है ॥२२॥ इन्हीं में अनेक शाखायें हुई हैं, जिसके असंख्य अद्भुत पंथ एवं सम्प्रदाय हैं, जिसके विवेक-विचार में सब लगे हुए हैं ॥२३॥

साखी–पचीस डार परपंच है, समस्त मूल सो एक ।
अदबुद रंग तरंग है, पंथिक पत्र अनेक ॥२२॥

शब्दार्थ — परपंच = प्रपंच, विस्तार । मूल सो एक = जीव की कल्पना । रंग = भाव ।

भावार्थ — उपर्युक्त पचीस मत रूप शाखायें विस्तार हैं, इन सबका मूल मनुष्य की कल्पना है । मानवीय कल्पनाओं एवं भावों को अद्भुत तरंगें हैं, इन पचीस शाखाओंमें पथिकोंके असंख्य सम्प्रदाय रूप पत्र हैं ॥२२॥

विशेष — ऊपर पचीस मतों का वर्णन किया गया। इसी में अनेक शाखायें फूट कर अगणित मत हैं।

१७–एक से लेकर अनेक अंगों का वर्णन

चौकड़ी १७

संधि अव्यक्त अंड परकाश। परकाशिक परकाश विलास ॥ १ ॥
दुतिया द्वैत इच्छा सो नार। तीन अंक अज हरि हर सार ॥ २ ॥

शब्दार्थ — संधि = जोड़; छिद्र; भूल। अव्यक्त = अदृश्य; अज्ञात। अंड = जगत। परकाश = प्रकाश; प्रकट। अंक = गोद; चिन्ह, अ, उ, म।

भावार्थ — मनुष्य अपने यथार्थ स्वरूप की भूल से कल्पना किया कि एक अज्ञात ब्रह्म है जिसने जगत को प्रकट किया है। वही सबका प्रकाशक है और वह अपने प्रकाश में सदैव विलास करता है ॥ १ ॥ दूसरी द्वैत रूप में उसकी इच्छा रूपी नारी या माया है जिसकी गोद में ॐ स्वरूप ब्रह्म अ, उ, म मात्रा वाले क्रमशः तीन बच्चे ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव प्रकट हुए जो लोगों द्वारा सत्य के प्रचारक माने जाते हैं ॥ २ ॥

सनकादिक चारिउ चहुँ रूप। भ्राता चारि चतुर्भुज भूप ॥ ३ ॥
शंख चक्र गदादिक चार। पाँचों पांडौ पाँच विचार ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — चतुर्भुज = चार हाथ वाले।

भावार्थ — सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार चार रूपधारी चारभाई हैं जो हर समय पाँचवर्ष की उम्र में माने जाते हैं। श्रीराम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न— ये चार आदर्श भाई थे और चार हाथों वाले विष्णु माने जाते हैं ॥ ३ ॥ उनके चार आयुध हैं—शंख, चक्र, गदा तथा पद्म। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव—ये पाँच पाण्डव हैं। और वेदांत में प्रायः पाँच विचार हैं—द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत ॥ ४ ॥

चतुरानन पंचानन भेव। षटमुख कार्तिक नाना देव ॥ ५ ॥
छौ चकवे छौ मुनि परवान। सप्त ऋषि सो सात गुमान ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — कार्तिक = स्वामिकार्तिक। चकवे = चक्रवर्ती। गुमान = संदेह; अनुमान, सात बीजों का अनुमान।

भावार्थ — चार मुख वाले ब्रह्मा, पाँच मुख वाले महादेव, छः मुखवाले स्वामिकार्तिक जो नाना देवताओं के नायक थे श्रेष्ठ देवता माने गये हैं ॥ ५ ॥ नहुष, शिवि, मान्धाता, सुहोत्र, मरुत और पृथु—ये छः चक्रवर्ती हुए हैं। कपिल, जैमिनि, कणाद, पतंजलि, गौतम तथा व्यास—ये छः शास्त्र प्रणेता मुनि माने गये हैं। कश्यप, अत्रि,

भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, जमदग्नि और विश्वामित्र—ये सात ऋषि माने गये हैं और ॐ, श्रीं, रं, सों, ऐं, ह्रीं तथा क्लीं—ये सात बीज मंत्रों का अनुमान किया गया है ॥६॥

अठयें कुंभज करे विलास । नवें नाथ नौ अंक नेवास ॥ ७ ॥

दश अवतार एकादश नार । वाक्य द्वादशतिलक अनुहार ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — कुम्भज = घड़ा से पैदा हुआ, तात्पर्य में कुंभक प्राणायाम ।

भावार्थ — योगी जन कुम्भक आदि करके वायु को मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा इन छः चक्रों को वेध कर और उसके ऊपर सातवें सहस्रदल कमल में होते हुए आठवें 'सुरतिकमल' में विलास करते हैं । गोरखनाथ आदि नौ नाथ हैं तथा १ से ९ तक नौ अंकों की स्थिति है ॥ ७ ॥ मुख्य अवतार दश हैं, प्रतिपदा से दशमी तिथि के ऊपर नारी रूपी एकादशी है । बारह अवान्तर वाक्य हैं तथा बारह अंगों के बारह तिलक हैं ॥ ८ ॥

विशेष — नौ नाथों का वर्णन पीछे ११वीं चौकड़ी की १०वीं चौपाई में देखें । दश मुख्य अवतार ये हैं—मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह सत्युग में; वामन, राम, परशुराम त्रेता में, कृष्ण, बुद्ध द्वापर में तथा कल्कि कलियुग में । क्षर, अक्षर, निःक्षर; जहद, अजहद, जहदाजहद; तत्, त्वम्, असि तथा जीव, ब्रह्म, आत्मा—ये द्वादश अवांतर वाक्य हैं । द्वादश तिलक के स्थान ये हैं—नाक, कपाल, मस्तक, गला, दोनों कान, दोनों हाथ, छाती की दोनों ओर नाभि और पीठ ।

निश्चय सोई द्वादश अस्कंध । चतुष्ट श्लोकी सोई संध ॥ ९ ॥

संवत सब द्वादश अस्थूल । तेरह आपै सबन के मुल ॥१०॥

शब्दार्थ — संध = मिलान । संवत = संवत, वर्ष ।

भावार्थ — विष्णु, ब्रह्मा, सनकादि तथा नारद से क्रमशः व्यास को चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश मिला, व्यासने उसी में अनेक प्रसंग मिलाकर निश्चित रूप से बारह स्कन्धों का भागवत तैयार किये ॥ ९ ॥ बारह महीनों के खण्डों को जोड़कर एक वर्ष होता है और तेरहवें में स्वयं ब्रह्म सबकी जड़ माना है ॥ १० ॥

मनु चौदह सोई विद्या जान । गाँठ अनंत कला परधान ॥११॥

पंद्रह तिथि पक्ष अनुहार । सोरह सोरह कला विचार ॥१२॥

शब्दार्थ — गांठ = मनकी गाँठ, मानंदी । अनुहार = अनुसार; अनुरूप ।

भावार्थ — चौदह मनु हैं, चौदह देवता समझो तथा अनेकों मनकी मानन्दियाँ हैं जिससे बड़ी-बड़ी कला-कल्पनायें फैली हैं ॥ ११ ॥ प्रतिपदा (परिवा) से अमावस्या या पूर्णमासी पक्ष के अनुरूप पंद्रह तिथियाँ हैं । चन्द्रमा की सोलह कलायें तथा स्त्रियों के सोलह शृंगार माने हैं ॥ १२ ॥

विशेष — चौदह मनु ये हैं—स्वयंभू, स्वारोचिष, उत्तम,तामस, रैवत, चाक्षुष, श्राद्धदेव (वैवस्वत), सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि ।

चौदह विद्याओंका वर्णन टकसार प्रकरण की ७९वीं चौपाई में देखें ।

सत्रह जाल भागवत सार । हरीपुराण अठारह भार ॥१३॥
सप्तश्लोकी गीता होय । अध्याय अठारह जानहुसोय ॥१४॥

शब्दार्थ — सप्तश्लोकी = सप्तशती, सात सौ श्लोकों की ।

भावार्थ — सत्रहवाँ पुराण भागवत है जिसमें जाल की भी बातें हैं और सार भी हैं । अठारहवाँ विष्णु पुराण है । इन सबमें तमाम कल्पना के बोझों से लदी हुई वाणियाँ हैं ॥ १३ ॥ गीता सातसौ श्लोकों की है जिसमें अठारह अध्याय हैं ॥ १४ ॥

विशेष — वनस्पतियाँ भी अठारह भार कही गयी हैं । दश करोड़, सात लाख, छिहत्तर हजार प्रकार की वनस्पतियों को एक भार कहते हैं । ऐसे अठारहभार वनस्पतियों की कल्पना है । जिसका योग एक अरब, एक्कासी करोड़, उनतालिस लाख, अड़सठ हजार (१८१३९६८०००) होता है ।

एक्कीस ब्रह्मांड विचार । तत्त्व सांई चौबीस अवतार ॥१५॥
चौंतीस अक्षर बावन रूप । दानी तीन लोक बलि भूप ॥१६॥

शब्दार्थ — दानी = दान करने वाला । बलिभूप = राजा बलि ।

भावार्थ — सात स्वर्ग, सात पाताल तथा सात मृत्युलोक (या सात अन्य देव लोक) इस प्रकार इक्कीस ब्रह्माण्डों की मान्यता कर रखी है । पाँच तत्त्व, दश इन्द्रियाँ, पाँच विषय तथा चार अंतःकरण इस प्रकार चौबीस तत्त्व माना है उसी प्रकार मत्स्य आदि चौबीस अवतारों की कल्पना की गयी है ॥१५॥ देवनागरी में क से क्ष तक चौंतीस अक्षर और इनमें अ से अः तक सोलह स्वर तथा त्र और ज्ञ मिला देने से बावन (५२) रूपों की मान्यता की गयी है । और तीनों लोकों में महानदानी राजा बलि को माना गया है ॥१६॥

विशेष — चौबीस अवतार ये हैं—मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि ये मुख्य दश हैं । अन्य चौदह हैं—दत्तात्रेय, व्यास, मनु, कपिल, हयग्रीव, पृथु, जड़भरत, ऋषभदेव, सनकादि, बद्री, धनवंतरि, हंस, नारद और मोहिनी ।

सभे कला अवतार औ रेख । लोभ मोह कहुँ क्रोध विशेष ॥१७॥
कहुँ कामी कहुँ भय परचार । कहुँ वक्ता कहुँ जड़ अवतार ॥१८॥

शब्दार्थ — कला = अंश ; विशेषता ; गुण । रेख = चिन्ह, लक्षण ।

भावार्थ — सभी माने गये अवतारों की विशेषतायें और लक्षणों में कहीं लोभ की प्रबलता देखी जाती है और कहीं मोह की, कहीं क्रोध की तो कहीं काम की और कहीं भय देने की और कोई वक्ता है तो कोई जड़ है ॥१७, १८॥

विशेष — माने गये अवतारों में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम तथा राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण महान हैं। परन्तु रामायण तथा भागवत लिखने वालों ने श्रीराम को सीता के मोह में विह्वल कराके वृक्ष-लताओं से उनकी खबर पुछवायी है तथा श्रीकृष्ण को परायी स्त्रियों को लेकर रात में वन-वन में नचवाया है और उनसे विलास करवाया है। अब चाहे वे महापुरुष ही सचमुच ऐसा किये हों और चाहे लेखकों ने अपनी बुद्धिमता दिखाई हो; परन्तु समीक्षक तो पुस्तक का ही आधार लेगा।

वामन को महा लोभी कहा जाय या पक्षपाती जो छल करके धर्मात्मा बलिकी जमीन छीनकर लम्पट इन्द्र की गद्दी सुरक्षित रखने का प्रयास किये। परशुराम का क्रोध जगतप्रसिद्ध है जिन्होंने इक्कीस बार हैहयवंशी क्षत्रियों का कत्लेआम किया। नृसिंह ने भयंकर रूप दिखाकर हिरण्यकश्यपु को मारा, वे हिरण्यकश्यपु का मन नहीं ठीक कर पाये। व्यास जो वक्ता थे, जड़भरत जो जड़दशा में रहते थे।

वस्तुतः ऋग्वेद में ऋत् का वर्णन है कि ऋत् से ही संसार की व्यवस्था होती है। वह ऋत् है मूल तत्त्वों के गुणधर्म। परन्तु उस ऋत् को पीछे से सर्वव्यापक अव्यक्त चेतनसता बनाया गया। पुनः उसको दयालु, न्यायी, सर्वसमर्थ ठहराया गया। फिर सुविधानुसार उसको अवतरित भी करवाया गया कि भक्तों के कष्ट दूर करने के लिये वह समय-समय पर अवतार लेकर संसार में आता है यह सब कल्पना का विकसित रूप है। जिसकी सत्ता मात्र से अनंत ब्रह्माण्डों का चलना बताया जाय उसको मच्छड़ सरीखे किसी व्यक्ति को मारने के लिये अवतार लेना पड़े यह धारणा अपने आप में हास्यास्पद है।

मत्स्य, कच्छप, वराह आदि तो सर्वथा काल्पनिक हैं। इसमें संदेह नहीं कि परमादरणीय मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम, श्रीकृष्ण, व्यास, कपिल, बुद्ध, सनकादि, नारद आदि श्रद्धेय हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम किसी के गलत आचरण और गलत मान्यता को भी स्वीकार कर लें। यदि हम अपने प्राचीन पुरुषों का आदर न करें तो हमारे जीवन में श्रद्धा का क्या स्थान रहा और यदि हम श्रद्धा के जोश में गलत आचरण तथा गलत मान्यता को भी स्वीकार करते जायँ तो बुद्धि या विवेक का क्या स्थान रहा ? अतएव हमें श्रद्धापूर्वक बुद्धि तथा बुद्धिपूर्वक श्रद्धा रखनी चाहिये। ये सब महापुरुष थे, इनसे सद्गुण लेना चाहिये।

साखी—अस्मदादि जीव जगत के, विशेष सोई अवतार।
अधिक कला सब तासुके, ब्रह्मज्ञान परचार ॥२३॥

शब्दार्थ — अस्मदादि = हमलोग । कला = गुण, हुनर ।

भावार्थ — संसार के हमलोगों—जैसे व्यक्तियों में से जिनमें अधिक गुण एवं किसी महत्त्वपूर्ण विषय में विशेषता आगयी, उसी को अवतार कहते हैं; और ब्रह्मवाद एवं ईश्वरवाद प्रचार के लिये भी अवतार की कल्पना की गयी है ॥२३॥

विशेष — अवतारवाद की धारणा की तली में ग्रंथकार यहाँ दो कारण बतलाते हैं। एक तो यह कि मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह किसी व्यक्ति में जब विशेष गुण देखता है तब उसे वह श्रद्धावश अवतार कहने लगता है। दूसरा कारण यह कि अवतारवाद से ईश्वरवाद का सर्वसाधारण में प्रचार हो जाता है। अतएव ईश्वर-वादियों ने ईश्वरसिद्धि के लिये अवतारों की कल्पना की।

वस्तुतः जीवही सर्वश्रेष्ठ है जिसने ईश्वरवाद तथा अवतारवाद की कल्पना की है; अतएव जीवके वास्तविक अविनाशी चेतनस्वरूप को परखकरो।

१८—मुसलिम विचारों का दिग्दर्शन

चौकड़ी - १८

पनिहारी सब नदिया एक। बानी विविधि घाट अनेक ॥ १ ॥
अलफ एक अल्लाह बखान। बे बंदा दूजा परवान ॥ २ ॥

शब्दार्थ — अलफ = अलिफ, फारसी लिपि का पहला अक्षर; तात्पर्य में एक खुदा। बे = फारसी वर्णमाला का दूसरा अक्षर; तात्पर्य में दूसरा जीव। **बंदा** = सेवक, दास; वशवर्ती।

भावार्थ — जैसे एक ही नदी में पानी भरने वाली अनेक पनिहारिन अनेक घाटों से पानी भरती हैं, वैसे अनेक काल्पनिक वाणियों की एक विशाल नदी है और लोग उसमें विविध मतरूपी घाट बनाकर अपनी-अपनी भाषा में उसी की चर्चा करते हैं ॥१॥ (मुसलमान बंधु कहते हैं) फारसी वर्णमाला का पहला अक्षर जैसे अल्लिफ है वैसे अल्लाह एक है, फिर दूसरा अक्षर बे है। इसका तात्पर्य हुआ अल्लाह के बाद में दूसरे उसके वशवर्ती असंख्य रूह (आत्मायें) हैं ॥२॥

जात सिफात सोई पहिचान। दुविधा द्वैत चाल बिगरान ॥ ३ ॥
कादिर कुदरत जामें हक्क। सभै मुकैयद खुद मुतलक्क ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — जात = जात, वस्तुतत्त्व, स्वरूप, निजरूप; स्वभाव; देह; व्यक्ति; प्रकार; तात्पर्य में अल्लाह का स्वरूप। सिफात = सिफ़त, गुण, विशेषता; लक्षण। **कादिर** = क़ादिर, कुद्रतवाला, शक्तिमान। **हक्क** = सत्य, अधिकार। **मुकैयद** = मुकैयद, कैद किया हुआ, बन्दी। **खुद** = स्वतः ईश्वर। **मुतलक्क** = मुतलक़, आजाद, बंधन रहित।

भावार्थ — (कहते हैं) अल्लाह के स्वरूप का लक्षण पहिचानो। यदि उस पर संदेह करोगे और किसी दूसरे की पूजा करोगे तो तुम्हारा आचरण इस्लाम से बिगड़ा हुआ समझा जायगा ॥ २ ॥ वह कुद्रतवाला सर्वशक्तिमान है, उसीमें या उसी का सारा अधिकार है, वही सत्य है। सारी कुदरत व जीव उसीके बंदी हैं और वह स्वयं मुत-लक़ है; अर्थात् स्वतंत्र एवं बंधन रहित है ॥ ४ ॥

जबराइल वक्ता अज होय। मिकाइल हरि गुण गावै सोय ॥ ५ ॥
इजराइल शंकर संहार। तीहुँ फिरस्तन में सरदार ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — जबराइल, मिकाइल, इजराइल = जिब्रील आदि उक्त तीनों खुदा के फिरिश्ते माने जाते हैं।

भावार्थ — जिब्रील ब्रह्मा के समान वक्ता हैं, मेकाइल विष्णु के समान अल्लाह की इंबादत (उपासना) करने वाले हैं ॥ ५ ॥ तथा इजराइल शिव के समान सृष्टि के संहारकर्ता हैं। उक्त तीनों फ़िरिश्ते खुदा के अन्य सभी फ़िरिश्तों में श्रेष्ठ हैं ॥६॥

विशेष — अल्लाह के वैसे बहुत फ़िरिश्ते हैं, परन्तु जिब्रील, मेकाइल तथा इज-राइल मुख्य माने जाते हैं। जिब्रील वक्ता, मेकाइल इबादत करने वाला तथा इजराइल रूह को कब्ज करने वाला अर्थात् प्राणियों को मारने वाला माना गया है।

नासूत मलकूत जबरूत बखान। लाहूत चौथे हाहूत अमान ॥ ७ ॥
जंबूर तौरेत ईंजील फुर्कान। कुतुब चार चहुँ यार गुमान ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — फुर्कान = कुरान शरीफ। कुतुब = ध्रुव तारा; तात्पर्य में प्रकाश स्तम्भ। **चहुँयार** = चार यार-मित्र जिनका वर्णन नीचे ९ वीं चौपाई में है। **गुमान** = शक, सन्देह; गर्व।

भावार्थ — नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत तथा हाहूत ये सब युग, दशायें या समय की अवधियाँ हैं; हाहूत सबका प्रलय होकर अल्लाह और रूहों (आत्माओं) का रहजाना है ॥ ७ ॥ जबूर, तौरेत, इंजील और कुरान ये चार किताबें खुदाई प्रकाशस्तम्भ मानी जाती हैं। हजरत मुहम्मद को अपने चार मित्रों पर बड़ा गर्व था जिनके नाम अगली चौपाई में द्रष्टव्य हैं ॥ ८ ॥

विशेष — मुसलमानों के विचारानुसार अल्लाह ने जब पहले संसार बनाया उस समय के युग का नाम 'आलमे लाहूत' था अर्थात् वह समय लाहूत का आलम था। आलम के अर्थ दुनिया, भीड़ और समय या हालत है। सृष्टि के आरम्भ को लाहूत का आलम, लाहूत की दुनिया या लाहूत की हालत (युग) कहा जाता है।

उसके बाद का युग है 'आलमे जबरूत'। 'जबरूत' का अर्थ होता है 'ताकत'। इस युग में अल्लाह ने दुनिया को अपनी ताक़त दिखायी कि मैं कितनी ताक़त वाला हूँ और उसने अपनी ताक़त से दुनिया का रूप खड़ा किया।

इसके बाद का युग है 'आलमे मलकूत' का। 'मलक' का अर्थ होता है 'फ़िरिश्ता'। यानी फ़िरिश्तों का युग। यह हिंदुओं के सतयुग का स्थान ग्रहण कर सकता है। इस समय फ़िरिश्ते अल्लाह की इबादत व प्रार्थना करते थे। सर्वत्र अल्लाह के गुणानुवादों का जोर था।

इसके बाद युग आता है 'आलमेनासूत' का। 'नासूत' का अर्थ है नक्शा। यहाँ का तात्पर्य है वह युग जिस समय अल्लाह ने इंसान को बनाने का आरम्भिक नक्शा बनाया। इसके पहले तो उसने संसार का रूप खड़ा किया था। जो 'आलमे लाहूत' था। पुनः ताकत दिखाया था जो 'आलमे जबरूत' था। पुनः तेजोमय दिव्य देहधारी फ़िरश्ते उसकी ताक़त देखकर उसकी इबादत (प्रार्थना) में लगे थे जो 'आलमे मलकूत' था। अब अल्लाह ने इंसान व अन्य प्राणियों को बनाना चाहा तो उसका नक्शा तैयार किया और यह समय 'आलमेनासूत' कहलाया।

इसके पश्चात युग आता है 'आलमे असजाद' का। 'असजाद' का अर्थ होता है 'शरीर'। इस समय में पूरी सृष्टि हो जाती है। शायद आज का समय भी 'आलमे असजाद' है।

फिर अन्त में आता है 'आलमे अरुवाह'। 'अरुवाह' रूह (आत्मा) का बहुवचन है। इसका तात्पर्य है सृष्टि का लय होकर केवल अल्लाह तथा रूहों (आत्माओं) का रह जाना। यह युग कयामत या प्रलय का है। इसी को 'हाहूत' कह सकते हैं जो अमान एवं शुद्ध ब्रह्मकी दशा माना है।

'ज़बूर' वह इलहामी (खुदाई) किताब मानी जाती है जो हज़रत दाऊद पर उतरी थी। परन्तु इस किताब का पता नहीं लगता। इसे लुप्त हुए बहुत दिन बीत गये होंगे।

'तौरेत' यहूदियों का प्रधान धर्मग्रन्थ है जो मुख्य हजरत मूसा पर उतरा माना जाता है, और 'इंजील' इसाइयों का प्रधान धर्मग्रन्थ है जो मुख्य हजरत ईसा पर उतरा माना जाता है, वैसे इनमें कई भविष्यवक्ता लेखक माने जाते हैं। फुर्कान कुरान का नाम है जो मुसल्मान का प्रधान धर्मग्रंथ है और हजरत मुहम्मद पर उतरा माना जाता है। उक्त चारों किताबों का मुसलमान लोग आदर करते हैं परन्तु मुख्य रूप से कुरान को मानते हैं।

अबूबकर उमर उसमान अली। चारो यार मुक़ामी बली ॥ ९ ॥
पँचये महम्मद खतम नबी। पंचतन पाक अजीद गबी ॥१०॥

शब्दार्थ — यार = मित्र, साथी। **मुकामी** = मुक़ामी, स्थानीय। **बली** = शक्तिशाली। **खतम नबी** = अल्लाह के अन्तिम रसूल। **पंचतन** = पाँच शरीर वाले। **पाक** = पवित्र। **अजीद** = यज़ीद। **गबी** = कुंद जेहन, मन्दबुद्धि।

भावार्थ — अबूबकर, उमर, उसमान और अली ये चारों हजरत मुहम्मद के मित्र उनके स्थानीय घनिष्ठ और बलवान साथी थे ॥ ९ ॥ पाँचवे हजरत मुहम्मद स्वयं थे जो मुसलमानों के मान्यतानुसार इस दुनिया के आखीरी रसूल एवं पैगम्बर थे। ये पाँचों पवित्र शरीर के थे। और इनकी औलाद के विरोधी सीरिया का बादशाह यज़ीद था जो मंदबुद्धि एवं नालायक था ॥ १० ॥

विशेष — अबूबकर, उमर, उसमान, अली और हजरत मुहम्मद—ये पाँच पवित्र व्यक्ति 'पंच तन पाक' माने गये हैं। पंचतन पाक इस प्रकार भी माना जाता है—हजरतमुहम्मद, बीबी फातिमा (उनकी लड़की), अली (उनके दामाद व चचेजात भाई व साथी), हसन और हुसैन (जो फातिमा के बेटे एवं हजरत मुहम्मद के नाती थे)।

मुसलमान मानते हैं कि अल्लाह ने पहले एक लाख चौबीस हजार पैगम्बर दुनिया के हर हिस्से में भेजे। सबसे आखीर में मुहम्मद को भेजा। मुहम्मद के आने पर पहले के सब पैगम्बरों तथा खुदाई पुस्तकों को फेल कर दिया गया है। अल्लाह ने दुनिया वालों को बताया कि अब कयामत (प्रलय) के दिन तक मुहम्मद तथा उनका कुरान ही मान्य रहेगा। अतः हजरत मुहम्मद 'खत्मनबी' कहलाते हैं।

मोवाविया बादशाह का लड़का 'यज़ीद' था जो सीरिया का बादशाह हुआ। वह हजरत मुहम्मद के पीछे अली के लड़के हसन हुसैन जो श्रेष्ठ माने गये उनकी अवहेलना करके पूरे अरब को हड़प लिया। इधर हसन पहले मर चुके थे। पीछे हुसैन अपने परिवार के सत्तर (७०) सदस्यों को लेकर यज़ीद से लड़ने चले और यज़ीद की फौजद्वारा बीच ही 'कर्बला' नामक स्थान में घेर कर मार डाले गये। इसीलिये यज़ीद को गवी एवं मंदबुद्धि का कहा गया। और वह मंदबुद्धि का नहीं किंतु तेज बुद्धि का था, परन्तु हजरत मुहम्मद के खानदान से विरुद्ध होने के कारण गवी कहा गया जिसका अर्थ नालायक मान सकते हैं।

शरियत तरिकत हकीकत होय। मारफत चारों चाल हैं सोय ॥११॥
शेख सैयद मिर्जा खान। चारों वर्ण कह अनुमान ॥१२॥

शब्दार्थ — शरियत = शरीयत, कर्ममार्ग। तरिकत = तरीक़त, उपासनामार्ग। हकीकत = सत्य, स्थिति। मारफत = ज्ञान।

भावार्थ — शरीयत, तरीक़त, मारिफ़त तथा हक़ीक़त—ये चार आचरण करने के मार्ग हैं ॥ ११ ॥ सैय्यद, शेख, मिर्जा तथा खान—ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार वर्णवत माने व कहे जाते हैं ॥ १२ ॥

विशेष — शरीअत आदि का विवरण पंचम प्रकरण टकसार की ८५ वीं चौपाई के आगे २९३ साखी की व्याख्या में देखने योग्य है।

बारह इमाम चौदह मासूम । तेहिते बहुत फरीक अमूम ॥१३॥
अट्ठासी सहस् नवी परमान । ताके पंथ अदबुद पहिचान ॥१४॥

शब्दार्थ — **इमाम**=नेता, अगुआ; धर्म के कार्यों में नेतृत्व करने वाला । **मासूम**=निष्पाप, निर्दोष । **फरीक**=फ़रीक़, जुदा करने वाला, जमात । **अमूम**=अमूमन्, बहुत करके, साधारणतया । **अदबुद**=अद्‌भुत ।

भावार्थ — इसलाम में प्राचीन बारह धर्मनेता तथा चौदह निर्दोष व्यक्ति माने जाते हैं । फिर उनसे साधारणतया बहुत सी जमातें व जुदे-जुदे फिरके बने ॥ १३ ॥ अट्ठासी (८८) हजार व एक लाख चौबीस हजार (१२४०००) खुदा के भेजे पैगम्बर माने जाते हैं । उनके फिरकों (पंथों) की परख करके देखो तो अद्‌भुत-अद्‌भुत है ॥१४॥

विशेष — बारह इमाम ये हैं—(१) हजरत अली, (२) हजरत हसन, (३) हजरत हुसैन, (४) हजरत जैनुल आब्दीन, (५) हजरत मुहम्मदबाकर, (६) हजरत जाफर सादिक, (७) हजरत मूसा काजिम, (८) हजरत अलीरजा, (९) हजरत मुहम्मद तकी, (१०) हजरत अलीनकी, (११) हजरत हसन असकरी और (१२) हजरत इमाम मेंहदी ।

उपर्युक्त बारह इमाम तथा पैगम्बरेइस्लाम मुहम्मदरसूलल्लाह (हजरतमुहम्मद) तथा हजरत फातिमा—इन दोनों को मिलाकर चौदह मासूम (निष्पाप) हैं ।

ईसा इंगलिश बारह ग्रन्थ । समस्त विचार अवैबी पंथ ॥१५।
इशारा कुन हुकुम मुतलक़ । मसाईन स्वाभाविक हक़ ॥१६॥

शब्दार्थ — **अवैबीपंथ**=अज्ञात ईश्वर की कल्पना का मार्ग । **कुन**=कुन्—हो जा । **हुकुम**=आज्ञा । **मुतलक**=स्वतंत्र । **मसाईन**=मसाईन का शुद्ध शब्द है 'साईन' जिसका अर्थ होता है कोशिश करने वाला । **हक**=सत्य, अधिकार ।

भावार्थ — ईसा की मान्यता रखने वाले इसायी लोगों की धर्म पुस्तक बाइबिल है, जिसका अनुवाद इंगलिश में बहुत प्रचलित है; उसमें मुख्य बारह या कई ग्रंथ या अध्याय हैं । परन्तु उनके समस्त विचार अज्ञात, कल्पित ईश्वर को खोजना है ॥ १५ ॥ मुसलमान बंधु कहते हैं कि वह बलशाली खुदा कुछ हो जाने के लिये संकेत करने तथा आज्ञादेने में स्वतंत्र है; और किसी काम के लिये कोशिश करने का स्वाभाविक अधिकार मनुष्य को प्राप्त है ॥ १६ ॥

अल्लाह को जब कुछ करना होता है तब उसे करना नहीं पड़ता; अपितु वह कह देता है कि 'हो जा' बस हो जाता है । इसका अरबी शब्द है 'कुन् फैयकुन्' 'कुन' का अर्थ 'हो जा' । और 'फैयकुन' का अर्थ 'हो गया' या प्रलय हो गया उसने कहा 'हो जा' बस 'हो गया' । खुदा को कुछ बनाने के लिये परिश्रम नहीं करना पड़ता, उसके केवल

कह देने से हो जाता है। परन्तु मनुष्य को यदि कुछ बनाना पड़े तो उसे करना पड़ता है। वह कोशिश करने का अधिकारी है। मनुष्य का सहज अधिकार प्रयत्न करना है, फिर हो या न हो।

जोगई संगाल एक अनुमान। वचन फेर बहु पन्थ उपान ॥१७॥
जेहि जे भावै करै विचार। आस्तिक नास्तिक मत अनुहार ॥१८॥

शब्दार्थ — जोगई = जोगाया हुआ, संग्रह किया हुआ, मत-मतांतरों की संग्रीह बातें। संगाल = संगात्र वार्तालाप, वाद। अनुहार = भेद, प्रकार।

भावार्थ — चाहे पहले की संग्रहीत वाणियाँ हों और चाहे वर्तमान का वार्तालाप हो बिना पारख सब एक मात्र अनुमान-कल्पना में ही ले जाते हैं। हाँ, इतना हुआ है कि उसी कल्पना की सिद्धिके लिये वचनों के हेर फेर में अनेकों सम्प्रदाय प्रगट हो गये हैं ॥१७॥ आस्तिक और नास्तिक मत के प्रकार को लेकर उनमें से जिसको जो अच्छा लगता है वह उसी को लेकर विचार करता है ॥१८॥

विशेष — प्रकृति से भिन्न जीव, आत्मा या परमात्मा के रूप में चेतन का अस्तित्व, पुनर्जन्म, कर्मफलभोग, बंध, मोक्ष, सदाचार आदि मानने वाला आस्तिक है तथा इसको न मानने वाला नास्तिक है।

त्रिगुण चाल सोहं सो देव। परखैं परखनहारा भेव ॥१९॥
परखहु रामरहस विचार। समष्टिसार सोई संसार ॥२०॥

शब्दार्थ — त्रिगुण = तीनों गुण—सत, रज, तम। सोहं = सोऽहम्, वह मैं हूँ। समष्टिसार = सबकी एक रूपता, समवेतसत्ता।

भावार्थ — तीनों गुणों के अंदर के समस्त आचरण तथा माना हुआ कोई ब्रह्मदेव जिसे अंततः मैं ही हूँ कहा जाता है; इसके रहस्य को परखने वाला कोई विरला ही पारखी होता है और वह इन सबकी वास्तविकता को परखता है ॥१९॥ पूज्यग्रंथकार श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि हे सत्य के जिज्ञासु! परखो और विचार करो जो जड़-चेतन एवं अनेक विभिन्नताओं का दिखता हुआ एक समूह है यही संसार हे ॥ २० ॥

विशेष — सोऽहम्, वह (ब्रह्म) मैं हूँ, यह वाक्य महत्त्वपूर्ण सा दिखता है; परन्तु ब्रह्मको जड़-चेतन अभिन्न माना है। इसलिये सोऽहम् भी धोखे में है। अपना चेतन स्वरूप समस्त जड़वर्ग से पृथक है।

साखी—रामरहस पारख करै, जो शब्द विवेकी होय।
लखै संधि संदेह का, झाँई रहै न कोय ॥२४॥

शब्दार्थ — संधि = भेद। **फाँई** = धोखा; असावधानी।

भावार्थ — श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि जो सारासार शब्दों का विवेकी होता है वह सबकी परख करता है। वह समस्त संदेहशील बातों का भेद समझने की चेष्टा करता है; और वह किसी प्रकार की धोखाधड़ी एवं असावधानी में नहीं पड़ता ॥२४॥

साखी—नदी उतरै नाला उतरै, समुद्रहु उतरि जाई।
खाई अंगुल चार की, तामें गोता खाई ॥२५।

इति समष्टिसार रामरहससाहेब कृत गुरु की दया से संपूर्ण।

शब्दार्थ — गोता = डुबकी, डूबना।

भावार्थ — मनुष्य नाले, नदी और समुद्र को भी पार कर जाता है, परन्तु चित, मन, बुद्धि, अहंकार—चतुष्टय अन्तःकरण रूपी चार अंगुल की खाई में डूबता है ॥२५॥

विशेष — नाले, नदी क्या मनुष्य हजारों मील लम्बे समुद्र को भी पार कर जाता है; परन्तु मन, बुद्धि, चित, अहंकार रूपों वाले छोटे से अंतःकरण को नहीं पार पाता। वह सदैव मनकी धारा में डूबता, उतराता और बहता रहता है।

मनुष्य का परम पुरुषार्थ यही है कि वह अपने मनको जीते। अपने अंतःकरण को अपने वश में रखे।

—*—

सद्गुरवे नमः

पंचग्रंथी

तृतीय प्रकरण

मानुषविचार

दया गुरु को ॥ अथ लिख्यते ग्रंथ मानुष विचार ॥

१—मनुष्यता पर विचार

बीजक मूल, साखी—३३३

बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल।
कहा लाल लै कीजिये, बिना बास का फूल ॥ १ ॥

शब्दार्थ — बेतूल = तुलनारहित, हल्का।

भावार्थ — जाति, विद्या, रूप, सौंदर्य, यौवन, शृंगार से सर्वांग बना ठना मानव यथार्थ बुद्धि (मानवता) बिना हल्का है। सुगन्धी रहित देखने में सुन्दर लाल फूल क्या कीजियेगा ? ॥ १ ॥

विशेष — सेमल के फूल लाल-लाल, बड़े-बड़े तथा देखने में सुन्दर होते हैं; परन्तु उनमें सुगन्ध नहीं होती, अतः निष्प्रयोजन होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य बाहर से सब प्रकार से योग्य होकर तथा भौतिक उन्नति में आगे बढ़कर भी यदि दया, क्षमा, शील, विचार, समता, संतोष आदि सद्गुणों से रहित है तो वह सच्चा मानव नहीं है।

चौपाई—१

मानुष मानुष सबै कहावै। मानुष बुद्धि कोई बिरला पावै ॥ १ ॥
छाजन भोजन मैथुन कर्मा। भय निद्रा मोह पट धर्मा ॥ २ ॥
पशु पक्षी सबहिन को व्यापै। निशिवासर सो दावा दापै ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — छाजन = कपड़ा, मकान। धर्मा = स्वभाव। दावा = जोर, बल। दापै = दबाना, विवश करना।

भावार्थ — सभी मानवतनधारी मनुष्य कहलाते हैं; किन्तु मनुष्य की बुद्धि कोई बिरला प्राप्त करता है ॥ १ ॥ छाजन, भोजन, मैथुनकर्म, भय, निद्रा तथा मोह—ये छह पशुस्वभाव हैं ॥ २ ॥ ये मनुष्य तथा पशु-पक्षी सभी के जीवन में रात-दिन बलपूर्वक उन्हें विवश करके उनमें व्याप्त होते हैं ॥ ३ ॥

विशेष — मैथुन, मोह और भय—इनका सर्वथा त्याग किया जा सकता है और भोजन, छाजन तथा निद्रा—इन्हें सुधार कर इनका अनासक्ति पूर्वक उपयोग किया जा सकता है। जो लोग मैथुन, मोह तथा भय का सर्वथा त्याग न कर सकें, वे भी उनका सुधार तो कर ही सकते हैं।

इन षट धर्म निपुण सब भाँती। चतुर मूढ़ मानुष पशु जाती ॥ ४ ॥
निर्णय करि देखो मन माहीं। पशु मानुष ते भिन्न कछु नाहीं ॥ ५ ॥
मानुष बुद्धि न देखै जोई। कपट भेष नाना विधि होई ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — निपुण = प्रवीण। चतुर = विद्वान। मूढ़ = अनसमझ।

भावार्थ — उपर्युक्त छह स्वभावों एवं कर्मों में विद्वान, अविद्वान, मनुष्य, पशु आदि सभी वर्ग के प्राणधारी सब प्रकार से प्रवीण हैं ॥ ४ ॥ निर्णय करके मन में विचार करो ऐसे मनुष्य पशु से पृथक नहीं हैं ॥ ५ ॥ जिसमें मनुष्य की बुद्धि न देखी जाय उसे नाना प्रकार के कपटपूर्ण वेष बनाने वाला ही समझना चाहिये ॥ ६ ॥

विशेष — खाने में, सोने में, कपड़े तथा मकानादि से अपनी रक्षा करने में, विषयभोगों में, मोह करने में तथा अपने प्रतिकूल से भय करने में सब प्राणी चतुर हैं, चाहे वे मनुष्य हों, पशु हों या पक्षी-कृमि आदि। यदि मनुष्य भी इतने ही में रहा तो वह भी पशु है। जो इनका सुधार नहीं कर सका उसका मनुष्यचोला कपटपूर्ण है, क्योंकि उसके भीतर तो पशुता भरी है। उसका सभ्य तथा मांगलिक वेष बनाना भी अपने आप तथा समाज को धोखा देना है।

मसला—गदहा चलै स्वर्ग को। छार लगाय लगाय ॥ १ ॥

शब्दार्थ — मसला = मसल; कहावत; लोकोक्ति, मिसाल। छार = धूल।

भावार्थ — जैसे गधे धूल लगा-लगा कर और अपना तपस्वी का स्वांग बनाकर स्वर्ग को जाने की चेष्टा करें तो वे हास्यास्पद ही होंगे। इसी प्रकार जो भीतर से पशु बने हैं, जिनके आचार विचार तथा उच्चार सभी गलत हैं, ऐसे लोग यदि केवल बाह्य मानवचोला के बल पर या किसी प्रकार धार्मिक वेष के आधार पर अपने कल्याण की कामना करें तो उनकी भूल ही होगी।

चौपाई—२

कपट बनौरी बहु विधि कीन्हा। अरुझि अरुझि जिव मिथ्या दीन्हा ॥ १ ॥
कपट स्वांग विद्या बहु भाँती। दिन दिन संशय सोग उत्पाती ॥ २ ॥

शब्दार्थ — बनौरी = ओला, उपल, बर्फ, यहाँ का अर्थ है बनाई हुई, कृत्रिम। सोग = शोक। स्वांग = वस्तु स्थिति के विपरीत वेष।

भावार्थ — मनुष्य कपटपूर्वक अनेक प्रकार से कृत्रिम वेष बना रखा है और उन्हीं में फँस-फँसकर वह नाशवान पदार्थों में अपने को अर्पित करता है ॥ १ ॥ दूसरों को ठगने के लिये वास्तविकता के विपरीत वेष बनाकर कपट-छल पूर्ण अनेक प्रकार की विद्या एवं कला का उपयोग करना यही मानवता का शत्रु है। यह धारणा अपने और दूसरों के लिये दिनप्रतिदिन शोक-सन्ताप ही उत्पन्न करती है ॥ २ ॥

विशेष — करोड़ों की संख्या में मनुष्य के चोले में पशु हैं, साधु के वेष में ठग हैं, सभ्य के फैशन में दुराचारी हैं। लोग भोगों में फँस कर अपने आपको दुराचार के गड्ढे में डाल लेते हैं। क्या साधु क्या गृहस्थ—सबमें ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो सुन्दर वेष बनाकर गढ़ी-छिली हुई कोमल वाणी बोलकर और कपटपूर्वक क्षणिक मधुरतम व्यवहार करके दूसरों को ठग लेते हैं। अपनी प्राप्त विद्या का उपयोग ही दूसरों को बेवकूफ बनाने में समझते हैं। परन्तु इसका परिणाम उनके लिये सदैव घोर दुःखकर है।

आपु गये औरन लै नासी। बाट चलाय डालै गल फाँसी ॥ ३ ॥
जो काहू मानुष बुधि आवै। कहै और ते और बनावै ॥ ४ ॥
चाहत सुख पड़े ठग हाथा। भरम भूत भयो ठग साथा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — बाट = रास्ता। बनावै = मूर्ख बनाते। भूत = प्राप्त।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार के लोग स्वयं तो पतित होते ही हैं दूसरे संगी-साथी को भी लेकर चौपट करते हैं। वे अपने ही कुपंथ में लोगों को चलाकर उनके गले में भ्रष्ट आचरण एवं अज्ञान की फाँसी डाल देते हैं ॥ ३ ॥ यदि किसी को सौभाग्य से मानवीय बुद्धि आने लगे, तो वे कुपथगामी लोग उसकी अच्छाई को बुरा कहने लगते हैं तथा उसे मूर्ख बनाते हैं ॥ ४ ॥ सचमुच जीव सुख तो चाहता है, परन्तु मन ठग के हाथ में बिका है यह भ्रम को प्राप्त कर मन के साथ भटकता है ॥ ५ ॥

बीजक साखी १०४

मानुष होय के ना मुवा, मुवा सो डाँगर ढोर।
एकौ जीव ठौर नहिं लागा, भया सो हाथी घोर ॥ २ ॥

शब्दार्थ — डाँगरढोर = गाय, भैंस आदि पशु। घोर = घोड़ा।

भावार्थ — मनुष्य, सच्चा मनुष्य बनकर शरीरांत नहीं किया, प्रत्युत पशुबनकर जीवन अंत किया। अतः ऐसे लोगों में से एक जीव भी स्थिति नहीं पाये, प्रत्युत हाथी, घोड़े पशु खानि में गये ॥ २ ॥

विशेष — अथवा जो सच्चा मनुष्य बना वह सचमुच नहीं मरा। वह तो अजर-अमर स्वरूपस्थिति को पा लिया। मरना अर्थात् पतित होना उसी का होता है

जो पशुता धारण करके मरता है। ऐसे जीव स्थिति न पाकर पशु आदि खानि में जाते हैं। अतएव पशुता छोड़कर सच्चा मनुष्य बनो।

बीजक साखी २८५

रामहि सुमिरै रन भिरै, फिरै और की गैल।
मानुष केरी खोलरी, ओढ़ै फिरत हैं बैल॥ ३॥

शब्दार्थ — रन = रण, युद्ध। गैल = मार्ग।

भावार्थ — लोग राम का नाम तो भजते हैं, परन्तु दूसरों की हत्या करने के लिये उनसे लड़ बैठते हैं। वस्तुतः लोग अन्य के मार्ग अर्थात् वाममार्ग में भटकते हैं। इस प्रकार मानो मनुष्य का चाम ओढ़ कर पशु घूमता है ॥३॥

विशेष — यदि धर्म का स्वांग रचकर भी मनुष्य दूसरों को पीड़ा देने में तत्पर है तो वह वस्तुतः पशु है वह केवल चाम ही मनुष्य का ओढ़ लिया है।

२—मनुष्य के मुख्य चार गुण हैं—विचार, शील, दया और वीरता

चौपाई—३

मानुष बुद्धि दुर्लभ संसारा। कोई जानै जाननहारा॥ १॥
बिन जाने कोई ठौर न पावै। भरमभूत होय के पछतावै॥ २॥

शब्दार्थ — भूत = बीता हुआ, वस्तुतः घटित, उत्पन्न, सत्य, प्राप्त, युक्त, रूप या अवस्था विशेष को प्राप्त (घनीभूत, पूँजी भूत), सदृश, तत्त्व, प्राणी, प्रेतपिशाच कृष्णपक्ष, शिव, कार्तिकेय, जगत, कल्याण, पुत्र, बहुत बड़ा भक्त, पाँच की संख्या, उपयुक्तता। ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी से प्रकाशित 'बृहत् हिन्दी कोश' में भूत के उपर्युक्त इतने प्रकार के अर्थ दिये हैं। यहाँ अर्थ है—प्राप्त।

भावार्थ — इस संसार में एक ही वस्तु दुर्लभ है, वह है मानवीय बुद्धि का आना। कोई बिरला मानवबुद्धि का ज्ञाता या उसका धारण करने वाला होता है॥१॥ मानवीयबुद्धि के ज्ञान बिना कोई संसार सागर से पार नहीं पाता; प्रत्युत भ्रम को ही प्राप्त होकर परिणाम में पश्चाताप करता रहेगा ॥२॥

मानुष जन्म दुर्लभ संसारा। जाते आवागमन निवारा॥ ३॥
विचार शील दया है बीरा। चार रीति है मानुष केरा॥ ४॥

शब्दार्थ — बीरा = वीरता। रीति = ढंग, प्रकार, व्यवहार, गुण।

भावार्थ — जिससे साधना करके आवागमन का दुःख निवृत्त होता है ऐसा मनुष्यजन्म का पाना संसार में दुर्लभ है ॥३॥ मनुष्य के मुख्य चार गुण हैं—विचार, शील, दया और वीरता ॥४॥

जो चारिउ विधि पूरा होई। सबहीं बात सुधारै सोई ॥ ५ ॥
प्रथमै पशुवत कर्म सुधारै। जो बर्तै सो भली संभारै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—प्रथमै = प्रथम, विचार। नोट—विचार, शील, दया और वीरता में पहला विचार गुण है।

भावार्थ— जो महामानव उपर्युक्त चारों सद्गुणों से पूर्ण होता है वही कल्याण साधन के सभी काम सुधार लेता है ॥५॥ पहले विचार सद्गुण की साधना करे। अर्थात विचार पूर्वक भोजन, छाजन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह—इन छह पशु कर्मों का सुधार करे। जीवन में जो आवश्यक हो और जिसका वर्ताव करना पड़े उसको भलीभाँति सम्हाल कर बरते ॥६॥

विशेष— मानव के यहाँ चार मुख्य गुण बताये गये हैं। उसमें पहला विचार है और विचार के भीतर ही छह पशुकर्मों का सुधार यहाँ बताया गया है।

२—छाजन का सुधार

छाजन सो मतलब है संगा। करै विचार छाड़ि मतिभंगा ॥ ७ ॥
संगति भली भली बुधि होई। ओछी संगत मूलहु खोई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ— छाजन = आच्छादन, कपड़ा, रक्षक। मतिभंगा = बुद्धि नाश करने वाला। ओछी = छिछिली, तुच्छ, बुरी।

भावार्थ— उतने ही वस्त्रों से अपना मतलब रखे जितने में सहजरूप से निर्वाह हो जाय। शुद्ध संगत भी आच्छादन एवं रक्षक है; अतएव विचार करके बुद्धिभ्रष्ट करने वाली संगत का सर्वथा परित्याग करे ॥ ७ ॥ क्योंकि अच्छी संगत करने से अच्छी बुद्धि होती है और छिछिली एवं बुरी संगत करने से रही-रहाई बुद्धि भी नष्ट हो जाती है ॥ ८ ॥

विशेष— छाजन एवं आच्छादन का अर्थ वस्त्र होता है; दूसरे अर्थ में वर्षा, शीत' धूप से शरीर की रक्षा करने के लिये घर-महल आदि को भी माना जाता है।

तड़कीले-भड़कीले वस्त्रों एवं राग-रंग-फैशन से मन विकारी होता है। अहंकार एवं दम्भ बढ़ता है। शरीरासक्ति पुष्टि होती है। खर्च बढ़ता है। अशान्ति बढ़ती है। दूसरे के लिये आदर्श खराब होता है। फैशनेबुल लोगों को देखकर दूसरे लोग भी उनकी नकल करके अपने हर्ज-खर्च एवं अशांति को बढ़ा लेते हैं। अतएव फैशन एवं शृंगार की भावना-क्रिया का सर्वथा त्याग करना चाहिये।

सादा एवं सात्त्विक वस्त्रों को धारण करने से जीवन में सरलता, स्वच्छता, विनम्रता, मितव्ययता, संयम आदि आते हैं; अतएव उसे शान्ति की प्राप्ति होती है। जैसे फोड़ा में मलहम-पट्टी का उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार शरीर एक फोड़ा है। इसमें भोजन मलहम तथा कपड़ा पट्टी का काम करता है। अतएव भोजन-वस्त्र को मलहम-पट्टी समझकर इसका उपयोग होना चाहिये, आसक्ति नहीं।

घर-मकान को धर्मशाला के समान समझकर इसमें निर्वाह करना चाहिये। इसकी आसक्ति से सर्वथा दूर रहना चाहिये।

छाजन के सुधार में यहाँ ग्रन्थकार ने संगत को भी लिया है और उसको ही प्रमुख स्थान दिया है। आच्छादन एक रक्षक है और वस्तुतः मनुष्य के चरित्र का रक्षक सुसंग ही है। कुसंग में पड़कर अच्छे लोग भी पतित हो जाते हैं तथा सुसंग में लगकर बुरे लोग भी ऊपर उठ जाते हैं। प्रत्यक्ष है कितने साधक कुसंग से गिर गये और कितने ही पतित सुसंग से उठ गये। अतएव सद्गुरु कबीर ने भी कहा है—

बीजक साखी २०७

संगत कीजै साधु की, हरे और की व्याधि।
ओधी संगत कूर की, आठो पहर उपाधि॥ ४ ॥

शब्दार्थ — व्याधि = रोग, मानसिक कष्ट। कूर = क्रूर, दुष्ट। उपाधि = झंझट, प्रपंच, दुःख।

भावार्थ — सन्तों की संगत करो वे दूसरे के मनकी पीड़ा को हरण कर लेते हैं। दुष्टों की संगत बुरी होती है, वहाँ रात-दिन प्रपंच एवं दुःख लगे रहते हैं।

४—भोजन का सुधार

चौपाई—४

दूजे भोजन कर्म सुधारै। अंकुरज भछै जीव प्रतिपालै॥ १ ॥
जीव अजीवहिं करहि विचारा। जड़ चेतन जो है संसारा॥ २ ॥

शब्दार्थ — अंकुरज = अंकुर से उत्पन्न साग-सब्जी, अन्न-फल आदि। जीव = चेतन। अजीव = जड़।

भावार्थ — दूसरा कर्म, भोजन का सुधार करे। जमीन फोड़कर अंखुवा से उत्पन्न साग-सब्जी, अन्न-फल आदि जो सात्त्विक, स्वच्छ हो उसे खाये और चलते-फिरते प्राणियों की रक्षा करे। उन्हें न मारे न खाये॥ १ ॥ जीव क्या है तथा निर्जीव क्या है इसका विचार करे जो संसार में चेतन और जड़ के रूप में विद्यमान हैं॥२॥

विशेष — वृक्ष-वनस्पत्ति, साग-अन्नादि में भी जीव होते हैं—यह भ्रम बहुत पुराना है और डॉ० जगदीशचन्द्र बसु की कल्पना ने इस भ्रम को और बल दे दिया है।

उत्तम मनुष्य को चाहिये कि वह प्राणधारियों को मारने, काटने एवं खाने का सर्वथा परित्याग कर दे क्योंकि उनमें चेतन जीव हैं। और साग, फल, अन्नादि शुद्धता से खाये; क्योंकि वे निर्जीव हैं। सबमें जीव नहीं होते। जीव-निर्जीव तथा जड़-चेतन का कुछ विचार भी है, सब धान साढ़े बाइस पसेरी नहीं है।

जहाँ जीव तहँ चेतन होई। सुख दुख सब विधि जानै सोई ॥ ३ ॥
जैसे उष्ण अनल को कर्मा। सदा शीत है जल को धर्मा ॥ ४ ॥
सूर प्रकाश भिन्न नहि दोई। वैसे जीव धर्म चिद होई ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — **जहाँ**=जिस शरीर में। **अनल**=अग्नि। **कर्मा**=कर्म, स्वभाव। **शीत**=ठंढा। **धर्मा**=स्वभाव। **सूर**=सूर्य। **चिद**=चेतन, चेतना।

भावार्थ — जहाँ जीव रहता है वहाँ निश्चित चेतना एवं ज्ञान रहता है। वह सब प्रकार से सुख-दुःखों को जानता है ॥ ३ ॥ जैसे अग्नि का नित्य स्वभाव गर्म है और जल का शीतल है ॥ ४ ॥ सूर्य और उसका प्रकाश धर्म दोनों दो नहीं हैं। उसी प्रकार जीव और उसकी चेतना एवं ज्ञान धर्म दोनों वस्तुतः एक हैं ॥ ५ ॥

विशेष — उपर्युक्त दूसरी चौपाई में यह बताया गया था कि जीव-अजीव एवं जड़-चेतन का भिन्न विचार करके जीवधारियों की हिंसा शक्ति चले तक बचाते हुए निर्जीव सात्त्विक खाद्य को ग्रहण किया जाय। अब प्रश्न उठता है जीव या अजीव एवं चेतन या जड़ क्या है ? उपर्युक्त तीन से पाँच चौपाइयों तक चेतन जीव का लक्षण बताया गया है कि जैसे अग्नि और उसकी गर्मी, जल और उसकी शीतलता तथा सूर्य और उसका प्रकाश एक है, वैसे जीव और उसका ज्ञान धर्म एक है। इसका अर्थ है जीव ज्ञान स्वरूप है। वह जहाँ जिस खानि में रहता है सुख-दुःख, हानि-लाभ, अनुकूल-प्रतिकूल जानता है। ये लक्षण जहाँ हों वह जीवधारी है और उन्हें मारना-खाना विवेक-विरुद्ध है। अब आगे जड़ का लक्षण बतलाते हैं।

५—वनस्पति निर्जीव

जल थल पावक पवन आकाशा। सो सब स्वर्ग जीव को वासा ॥ ६ ॥
सकल पसारा जड़ को होई। पाँचों तत्त्व कहावैं सोई ॥ ७ ॥
जैसे केस उधमज है देहा। ऐसे अंकुरज पृथ्वी नेहा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **स्वर्ग**=सुख। **वासा**=वासना, निवास। **उधमज**=उत्पन्न होना। **अंकुरज**=अंकुर से उत्पन्न, वनस्पति। **केस**=केश, बाल। **नेहा**=नेह; प्रेम, सम्बन्ध।

भावार्थ — जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु तथा आकाश—इन पाँचो तत्त्वों से निर्मित शरीरादि समस्त भौतिक वस्तुओं को सुखरूप मानकर भूलवश जीव उन्हीं की वासना रखकर उन्हीं में निवास करते हैं ॥ ६ ॥ जो पाँचों तत्त्व कहलाते हैं, वह सब फैलाव जड़ का है ॥ ७ ॥ जैसे बाल शरीर में उत्पन्न होते हैं, वैसे पृथ्वी के सम्बन्ध में अंकुरज उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

विशेष — ग्रंथकर्ता यहाँ जड़ का लक्षण बतलाते हुए यह कहते हैं कि पृथ्वी, जल,

अग्नि, वायु और आकाश (शून्य) और पंचविषय पदार्थ सब जड़ हैं। हाँ, जीव इनमें सुख मानकर तथा इनकी वासना के वश में होकर इनमें निवास करता है।

शरीर में बाल उगते हैं। उनको काट देने से उनमें कोई पीड़ा नहीं होती, क्योंकि बाल निर्जीव होते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी में वृक्ष, वनस्पति, साग-सब्जी, अन्नादि अंकुरज उगते हैं। वे निर्जीव होते हैं। इसलिये उनको काटने-खानेमें कोई दोष नहीं है।

नीचे दो चौपाइयों में ग्रन्थकर्ता पूर्वपक्ष की ओर से यह बतलाने की चेष्टा करते हैं कि किस प्रकार उनका अंकुरज में जीव होने की मान्यता है।

शून्य सुषुप्ति अस्ति समाना। तेहि आश्रित अंकुरज उतपाना ॥९॥
पूरण अस्ति पिंड ब्रह्मंडा। भेद अवस्था खंड औ पिंडा ॥१०॥

शब्दार्थ — अस्ति = होना, सत्ता, चेतन जीव। खंड = भिन्न-भिन्न। पिंडा = पिण्ड, देह।

भावार्थ — (कहते हैं) जो चेतन जीव (अस्थावरखानि के अध्यास सहित) चेतना से शून्य एवं सुषुप्तवत होकर तत्त्वों में समाता है, उसके आधार में अंकुरज उत्पन्न होते हैं। तात्पर्य यह कि अंकुरज (वनस्पति) में जीव सुषुप्तावस्था में रहता है ॥ ९ ॥ चेतन तो पिण्ड-ब्रह्माण्ड-सर्वत्र पूर्ण है; केवल अवस्थाभेद तथा देहभेद से भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है ॥ १० ॥

विशेष — पूर्वपक्ष की मान्यता है कि चेतन एक और व्यापक है। वह भिन्न-भिन्न अवस्थाओं तथा देहों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रतीत होता है। वही चेतन वृक्षों में सुप्तावस्था में होने से चेतनाहीन प्रतीत होता है और मनुष्य आदि में होने से चेतनायुक्त प्रतीत होता है। वही चेतन कृमि-कीटादि में अत्यन्त मूढ़ और पक्षियों में प्रबुद्ध, पशुओं में प्रबुद्धतर एवं मनुष्यों में प्रबुद्धतम प्रतीत होता है। पूर्वपक्ष का सारांश यह हुआ कि अंकुरज-वृक्षादि में जीव सुषुप्ति अवस्था में रहते हैं।

पूर्वपक्ष की यह मान्यता कि चेतन एक है; विवेक के अनुकूल नहीं है। चेतन अनेक होने से उनको सर्वत्र व्यापक मानना गलत है। अंकुरज में जीव सुषुप्ति अवस्था में रहते हैं—इसका निराकरण आगे सद्गुरु स्वयं कर रहे हैं।

जागृत स्वप्न जहाँ व्यवहारा। नहीं तहाँ अंकुरज पैसारा ॥११॥
हरे सुखै जो शंका होई। ताकर भेद तुम लेहु बिलोई ॥१२॥

शब्दार्थ — पैसारा = पसार, विस्तार। बिलोई = मथन करना, विवेक करना।

भावार्थ — (पूर्वपक्ष के अनुसार) जहाँ जागृत और स्वप्न का व्यवहार है वहाँ अंकुरज का विस्तार नहीं है। अतएव अंकुरज में जब जागृत और स्वप्न अवस्थायें नहीं होतीं तब उसमें सुषुप्ति अवस्था कैसे सिद्ध हो सकती है? अतः अंकुरज में सुषुप्ति अवस्था में जीव रहता है, यह कहना गलत है। अंकुरज निर्जीव है ॥ ११ ॥ यदि यह

शंका हो कि बिना जीव के अंकुरज-वृक्षादि कैसे हरे-भरे रहते हैं और उनमें से क्या निकल जाता है जिससे वे सूख जाते हैं; तो इसका भेद भी विवेक करके जान लो ॥१२॥

विशेष — अंकुरज में जीव सुषुप्ति अवस्था में रहता है, इस बात को सिद्ध करने के लिये कोई आधार नहीं है। जो कभी जागता है, वह जागृति का संस्कार अर्ध-सुषुप्ति में स्वप्न के रूप में देखता है और वही पूर्ण विश्रान्ति रूप गाढ़ी निद्रा में सोया हुआ कहलाता है। जो कभी जागता नहीं, उसका स्वप्न देखना सिद्ध नहीं होगा और इन दोनों के बिना सुषुप्ति अवस्था अपने आप असिद्ध है। इन्द्रिय-मन का व्यवहार जागृतावस्था है। अंकुरज में इन्द्रिय-मन नहीं हैं; इसलिये जागृतावस्था असिद्ध है। बिना जागृतावस्था के कोई संस्कार एवं वासना नहीं बनती, और बिना संस्कार-वासना के स्वप्न नहीं होता। और जागृत-स्वप्न के बिना सुषुप्ति अवस्था का होना अपने आप असिद्ध है। अतएव वृक्षों में जीव सुषुप्ति अवस्था में रहते हैं—यह मानना विवेक तथा युक्ति-विरुद्ध है।

चिखुर बढ़ाये बहु विधि बाढ़ै। अनल जराय छिनमों डारै॥१३॥
अनल दीप को तेल अधारा। पवन थीर में करत विहारा।१४॥

शब्दार्थ — चिखुर = बाल, केश। विहारा = विहार, स्वतन्त्रगति से जलना।

भावार्थ —बाल बढ़ाने से बहुत बढ़ जाते हैं; परन्तु यदि उनमें आग लग जाय तो वे क्षणमात्र में जल जाते हैं। कटवा देने से कट जाते हैं। परन्तु उनमें पीड़ा नहीं होती; क्योंकि वे निर्जीव हैं इसी प्रकार पृथ्वी पर अंकुरज-वृक्षादि उत्पन्न होते तथा बढ़ते हैं। उन्हें काट या जला देने से कट-जल जाते हैं; परन्तु उनको पीड़ा नहीं होती; क्योंकि वे निर्जीव हैं॥ १३ ॥ दीपक जलते रहने के आधार हैं अग्नि, तेल और बत्ती और स्थिरवायु में वह स्वच्छन्दगति से जलता है। दीपक जलते रहने का आधार उसमें प्रविष्ट कोई चेतन जीव नहीं है। इसी प्रकार वृक्षों में जीव नहीं है। उसके उगने, बढ़ने तथा हरे-भरे रहने के आधार हैं जल, मिट्टी, वायु, अग्नि आदि के साधक तत्त्व अंश तथा बीजी असर आदि॥ १४ ॥

विशेष — बाल के समान वृक्षादि निर्जीव हैं। दीपक ज्योति के समान वृक्षादि केवल जड़ आधारित हैं।

पवन झकोर ते वायु बुझाई। अधार पाय पुनि देर रहाई॥१५॥
लोहु चर्म है चिखुर आधारा। जल पृथ्वी अंकुरजको सारा॥१६॥

शब्दार्थ — लोहु = रक्त। चर्म = चमड़ी। सारा = सार, मूल, आधार।

भावार्थ — दीपक वायु के झोंका में बुझ जाता है, परन्तु हाथ; कपड़ा, दीवार आदि का आधार पाकर विलम्ब तक जलता रहता है॥ १५ ॥ बाल के उगने, स्थिर रहने आदि के आधार रक्त और चमड़ी हैं और अंकुरज-वृक्षादि के आधार मुख्य रूप से जल और पृथ्वी हैं॥ १६ ॥

पाँच तत्त्व को उधमज्ञ आहीं। इनके भछे दोप कछु नाहीं ॥१७॥
नाना रूप जीव कृमि होई। जल थल अंकुरज रहा समोई ॥१८॥
दुख दिये ते बड़ अपराधा। दया विचार में होवै बाधा ॥१९॥

शब्दार्थ — उधमज=उत्पन्न । **समोई**=समाया हुआ, प्रवृष्ट, निवास करता हुआ ।

भावार्थ — अंकुरज पदार्थ—अन्न, साग, फल, मूलादि केवल जड़तत्त्वों से उत्पन्न हुए सर्वथा निर्जीव हैं। अतएव इनको खाने से कोई दोष नहीं है ॥१७॥ हाँ नाना प्रकार के छोटे-छोटे देहधारी, कीड़े होते हैं, वे जल, पृथ्वी तथा अन्न, साग, सब्जी, फल इत्यादि में अलग से देहधारण करके निवास करते हैं ॥ १८ ॥ यदि उनको जान बूझ कर तथा शक्ति चले तक नहीं बचाया गया, प्रत्युत हिंसा की भावना रखकर उन्हें मारा गया तो जानो बड़ा अपराध हुआ । ऐसी स्थिति में उसके दया और विचार के पालन में बाधा हुई समझना चाहिये ॥ १९ ॥

विशेष — अंकुरज पदार्थ केवल जड़ तत्त्वों से उत्पन्न हुए निर्जीव हैं । अतएव उनको विवेक एवं शुद्धता पूर्वक खाने से कोई दोष नहीं है । हाँ, अन्न, जल, फल, मूल, सब्जी आदि में जो बाहर से देहधारी जीव पड़ जाते हैं या उसके भीतर ही देह धारण करके प्रत्यक्ष हिलते-डुलते दिखते हैं, जितनी शक्ति चले, उनकी रक्षा करते हुए अपना शरीर निर्वाह करे । जिसके मनमें हिंसा की भावना नहीं है जो शक्ति चले तक सभी जीवों को हिंसा से बचाता है, उसके द्वारा असमर्थता वश यदि किसी जीव की हत्या हो जाती है तो उसको दोष नहीं है । क्योंकि उसका हृदय दया से पूर्ण एवं पवित्र है ।

६–अंकुरज-वृक्षादि में जीव नहीं : एक विवेचन

जहाँ देहधारी जीव होते हैं, वहाँ इन्द्रियाँ होती हैं । इन्द्रियों का व्यवहार ही जागृतावस्था है । जागृतावस्था में हुए कर्मों के संस्कार अर्धसुषुप्ति में स्वप्न के रूप में प्रस्तुत होते हैं । जागृत और स्वप्न की थकान से मन-इन्द्रियों की पूर्ण विश्रान्ति सुषुप्ति-अवस्था है । ये तीनों अवस्थायें देहधारी जीवों में पाये जाते हैं । वृक्षादि में इन्द्रियाँ न होने से जागृतावस्था असिद्ध है तथा जागृतावस्था न होने से स्वप्न और सुषुप्ति अपने आप असिद्ध है ।

एक प्राणी के अंग काट-काट कर अनेक प्राणी नहीं उत्पन्न किये जा सकते; परन्तु वृक्ष-लताओं में कलम बाँधकर तथा उन्हें काट-काट कर उनसे अनेक वृक्ष एवं लतायें पैदा की जाती हैं । इसलिये वृक्षादि निर्जीव हैं ।

लाजवन्ती (छुईमुई) छूने से लजाती नहीं है; क्योंकि जिसके आँख नहीं उसको लज्जा कहाँ ! लाजवन्ती जड़ पौधा है । वास्तव में उसका जड़ स्वभाव है ठोकर पाकर कुम्हला जाना । जोरसे हवा चलने पर भी ठोकर लगनेके कारण वह कुम्हला जाता है ।

प्राणी कितना ही सुन्दर हो उसमें से जीव के निकल जाने पर वह तुरन्त बदशक्ल हो जाता है; परन्तु कितने ऐसे पेड़ हैं उन्हें काट देने पर भी पानी-बादल का समय हो तो बहुत दिन तक वे हरे-भरे बने रहते हैं। क्योंकि वे निर्जीव हैं।

वृक्षादि अंकुरज पदार्थ जमीन में गड़े हैं इसलिये भाग तो नहीं सकते; परन्तु यदि सजीव हैं और उन्हें सुख-दुःख होते हैं तो उनको जब कोई काटने लगता है तब वे अपनी डगाली-पत्ती को हिलाकर भयका संकेत क्यों नहीं करते।

किसी जाति के वृक्ष के पत्ते यदि पास के प्राप्त प्राणियों को लपेट लेते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वे सजीव मांसाहारी पौधे हैं। वास्तव में वृक्षों के पत्तों तथा प्राणियों के शरीरों में कुछ ऐसे तत्त्व होंगे जिससे पत्ते प्राणियों को लपेट लेते होंगे और प्राणियों के मर के सूख जाने के बाद उन्हें छोड़ देते होंगे। चुम्बक लोहे को खींच लेता है तो इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि पत्थर सजीव लोहा भक्षी प्राणी है।

तत्त्वों के गुण-धर्मों से कंकड़-पत्थर बढ़ते हैं इसी प्रकार वृक्षादि जड़-तत्त्वों के गुण-धर्मों तथा बीजी असर आदि के कारण उगते, बढ़ते तथा पुष्ट होते हैं और बाधक तत्त्व पाकर या अवधि की समाप्ति होने पर सूख कर नष्ट हो जाते हैं। एक मकान भी तो अवधि के बाहर तक नहीं टिक सकता।

जैसे तेल, बत्ती तथा आग से ज्योति बढ़ती है वैसे तत्त्वों के संयोग से वृक्ष बढ़ते हैं। जैसे शरीर में बाल निर्जीव होते हैं वैसे पृथ्वी पर जल-मृतकादि से उत्पन्न अंकुरज निर्जीव होते हैं।

अतएव अंकुरज पदार्थों को काटना-खाना हिंसा नहीं है। हाँ, उनमें नशीली वस्तुओं जैसे गाँजा, भाँग, तम्बाकू, ताड़ी, शराब आदि का सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे बुद्धि एवं स्वास्थ्य के नाशक हैं। केवल सात्त्विक वस्तुओं को शुद्धतापूर्वक खाना चाहिये।

साखी—अंकुरज भछै सो मानवा, मांस भछै सो श्वान।
जीव बधै सो काल है, सदा नर्क परवान॥ ५॥

शब्दार्थ — **भछै** = भक्षण करे; खाये। **श्वान** = कुत्ता, पशु। **परवान** = प्रमाण; सबूत; सत्यता; निश्चित।

भावार्थ — जो व्यक्ति अन्न, साग, फल, मूलादि अंकुरज पदार्थों को खाता है वह मनुष्य है; और जो मांस खाता है वह श्वान है। जो जीव का वध करता है वह काल है ऐसे लोगों का अधोगति में जाना निश्चित है॥ ५॥

जीयत जीव मुर्दा करै, कर्महि भया कसाय।
मरी खाय चमरा भया, अधम कर्म के दाय॥ ६॥

शब्दार्थ — **दाय** = देने योग्य; हिस्सा; भाग; फल।

भावार्थ — जो लोग जीवित प्राणी की हत्या करके उसे मुर्दा कर देते हैं, उनका कर्म कसाई का हो जाता है और उस मृतक को खाकर वे चमार हो जाते हैं। इस कर्म का फल भी उनको मिलता है ॥ ६ ॥

विशेष — मांस, बिना जीवहत्या किये नहीं मिलता। मांस रोगमय, गरिष्ट, अपवित्र तथा असभ्यतापूर्ण है। अतएव मांस, मछली, अण्डे आदि कभी भी नहीं खाना चाहिये। विद्वानों ने मांस का मांसत्व बतलाया है कि 'माम्+स'=मेरे को वह खायेगा। अर्थात् जिसको मैं खाता हूँ वह मेरे को खायेगा।

संसार के समस्त प्राकृतिक चिकित्सकों ने मांस, मछली, अण्डा आदि खाने का घोर विरोध किया है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक 'एडोल्फ जस्ट' ने अपनी पुस्तक 'रिटर्न टू नेचर' में जिसको पढ़कर गाँधी जी ने बहुत बड़ी प्रेरणा पायी, मांसाहार का घोर विरोध किया है। उनकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :—

७–आहार पर एडोल्फ जस्ट के विचार

"प्रकृति ने मनुष्य को मांस खाने वाला शिकारी जानवर नहीं बनाया है।

मनुष्य को कच्चा मांस खाना अच्छा नहीं लगता। उसे उनके बनाने, पकाने, बघारने और छौंकने और उसमें मसाला मिलाने की जरूरत होती ही है। उसे मांस के साथ और कुछ न सही, नमक तो चाहिये ही।

जब हिंसक पशु अपना शिकार मार लेता है तब वह उल्लास से भर जाता है और ताजा खून पीकर मतवाला-सा हो जाता है।

पर मनुष्य जो पूर्णतया पशु नहीं हो गया है, हत्या करने से घबराता है। जब वह पशु को, जिसे मनुष्य का सजातीय ही कहना चाहिये, मारने के लिये खूंखार अस्त्र उठाता है तो उसका विवेक उसे हमेशा ऐसा करने से रोकता है। मरते हुए पशु का छटपटाना देखकर कठोर से कठोर हृदय पिघल जाता है। मांस खाने वालों को यदि जानवर को स्वयं अपने हाथों मारकर खाना पड़े तो अधिकांश न खाना ही पसंद करेंगे। कच्चा बिना पका मांस अथवा कसाई के दूकान में रखी पशु की लाश देखकर सभी का मन घृणा से भर जाता है। अतः अनेक स्थानों में मांस को खुला ले जाने के विरुद्ध कानून बन गये है।

मनुष्य इस सम्बन्ध में भी प्रकृति, अपने विवेक, रसना, घ्राणसक्ति, आँख और नैसर्गिक प्रवृत्ति की बात क्यों नहीं सुनता? क्या ऐसा कर सकना बहुत सरल नहीं है?

मनुष्य इस प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान में कि वह पशु का मांस खानेवाली जाति का है या सर्व-भक्षी सूअर-भालू आदि की जाति का है, क्यों अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करता है? पशु की ये दोनों जातियाँ तो मनुष्य को सदा से ही क्रूर और निर्दय प्रतीत होती रही हैं और इस नाते वह इनसे सदा घृणा करता रहा है।

मांस मनुष्य के लिये उचित भोजन है या नहीं—इस प्रश्न की छान-बीन मनुष्य

उन सरल साधनों से नहीं करता जो प्रकृति ने उसे दिये हैं। वह दांत और आंत का अध्ययन करता है, मांस के अवयवों को जानने की कोशिश करता है—यह मनुष्य की अस्वस्थ ज्ञान-पिपासा का दूसरा प्रमाण है।

अनेक विद्वानों ने, जिन्हें मांस खाना निश्चय ही बहुत प्रिय रहा है, कहा है कि मनुष्य के दातों को देखकर, कहा जा सकता है कि मनुष्य अंशतः मांसाहारी है और आज भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो उनके इस राग को बिना समझे-बूझे अलाप रहे हैं।

जो कुछ भी हो, अपने शिकार को पकड़ने और फाड़ने के जैसे नाखून और दाँत शिकारी जानवरों के होते हैं वैसे मनुष्य के नहीं हैं! इसी तरह मांस-भक्षी पशु की पाचन-प्रणाली भी मनुष्य की पाचन-प्रणाली से सर्वथा भिन्न होती है।

शिकारी जानवर, मसलन कुत्ता, मांस के साथ-साथ हड्डी भी खा सकता है, पर मनुष्य तो ऐसा नहीं कर सकता। इससे यह साबित होता है कि मनुष्य का आमाशय इन पशुओं से सर्वथा भिन्न प्रकार का है।

मनुष्य के दांत और आँख की फल और साक खाकर रहने वालों एवं मांस-भक्षी तथा सर्व-भक्षी पशुओं के दांतों और आंखों से तुलना करने पर प्रतीत होता है कि मनुष्य शिकारी पशुओं की जाति का न होकर फल और साक खाने वाली जाति का ही है। हाथी और चूहों के दांतों में जो साम्य है उससे अधिक साम्य मनुष्य और मांस-भक्षी तथा सर्वभक्षी पशुओं के दाढ़ और आँखों में नहीं है। मनुष्य की आंतों की लम्बाई भी बताती है कि मांस उसके अनुकूल नहीं है।

यदि प्रकृति ने मनुष्य के लिये मांस नहीं बनाया है तो उसका उपयोग मनुष्य के लिये अवश्य ही क्षतिकारक है। मनुष्य मांस खाकर स्वस्थ और मजबूत नहीं बनता, बरन् बीमार पड़ता है और कमजोर होता है।

कहा जाता है कि मनुष्य को मांस खाना चाहिये, क्योंकि उसमें चर्बी होती है जो आदमी को सर्दी से बचाती है। अगर यही बात है तो शरीर में आवश्यक गरमी स्नेहप्रधान मेवे खाकर क्यों नहीं उपजाई जाती ? इन मेवों में मनुष्य के लिये प्राकृतिक चिकनाई पाई जाती है और उनमें वे सब चीजें नहीं होतीं जो मनुष्य के लिये हानि-कारक और जहरीली हैं।

ग्रीनलैंड में न साक होते हैं न मेवे जिनसे वहाँ के निवासी, जिन्हें एसकिमों कहते हैं, पोषण पा सकें। अतः वे लोग उत्तरी ध्रुव की कड़ाके की सरदी, मांस और पशु की चर्बी खाकर बर्दाश्त करते हैं। यह हो सकता है कि चरबी के आहार के कारण एस-किमों उत्तर की सरदी में रह पाता है, पर उसके इस अप्राकृतिक भोजन के कारण उसका शरीर कुरूप और भद्दा हो गया है और उसका मस्तिष्क बिलकुल जड़।

लोग अक्सर अपने अप्राकृतिक जीवन, मांस और शराब की आदत को खराब मौसम के बहाने के पीछे छिपाते हैं। मौसम की आड़ लेकर वे प्राकृतिक जीवन के

विरुद्ध बड़े-बड़े पाप करते हैं, मौसम उनका विवेक दबा देता है। फलाहार अप्राकृतिक खाद्यों की अपेक्षा मनुष्य को सरदी और गरमी सहने की अधिक शक्ति देता है।

ऐसा मानने की तो गुंजाइस नहीं है कि मनुष्य, जो पृथ्वी का सर्वाधिक विकसित प्राणी है, पृथ्वी के एक अंश पर ही रहने के लिये बनाया गया था। बाइबिल कहती है, :—"पृथ्वी को परिपूर्ण करो।"

पर सारी पृथ्वी को भरने के लिए, पृथ्वी के प्रत्येक भाग में रहने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने प्राकृतिक भोजन को छोड़े।

उष्ण कटिबन्ध के उष्णतम भाग और उत्तर के शीततम भाग मनुष्य के रहने योग्य नहीं है। पर यदि यह समझा जाय कि प्रकृति ने मनुष्य को गरम जगह में रहने के लिये बनाया है तो भी उसे अपना अप्राकृतिक जीवन छोड़कर प्राकृतिक जीवन ही व्यतीत करना आरम्भ करना चाहिये। इससे उसकी नैसर्गिक प्रकृति अधिकाधिक जाग्रत होगी और वह गरम जगह में रहना पसंद करेगा। पर वास्तव में शीतोष्ण कटिबन्ध ही मनुष्य के रहने के अधिक उपयुक्त हैं। अपने इस कथन पर मैं अधिक प्रकाश आगे डालूंगा।

मनुष्य ईश्वर की प्रति मूर्ति है। उसे इस पृथ्वी की बादशाहत भलमंसाहत और दयालुता के साथ करनी चाहिये। जब वह अपने भोजन के लिये पशुओं की हत्या करता है या उसकी हत्या का कारण होता है तो वह अपने अन्तर्नाद के विरुद्ध चलता है। आज तो मनुष्य अपने इन बन्धुओं के खून से अपना हाथ लाल कर रहा है। भोजन प्राप्त करने के लिये किये गये इस पाप के फलस्वरूप उसे बहुत कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी।

इस दृष्टि से मांस खाना अप्राकृतिक रिवाज है प्रकृति की अवज्ञा है जिसका परिणाम बहुत बुरा और खतरनाक होना चाहिये। मांस और अन्य अप्राकृतिक खाद्यों को खाने पर उनका ठीक पाचन नहीं हो पाता। मांस न पचने पर पेट में पड़ा सड़ता रहता है, सड़न से उठा हुआ खमीर शरीर और रक्त में फैलता रहता है जिसकी वजह से अनेक प्रकार की सूजन उत्पन्न करने वाली और बुरी-बुरी बीमारियाँ पैदा होती हैं।

यूनान की पौराणिक कथाओं में ओरेस्टेस की कथा आती है जिसमें उसने कोई भयानक हत्या की थी। इसका बोझ उसकी आत्मा पर बराबर पड़ता रहता था, उस हत्या का बदला लेने के लिये इरिनिस नामक देवता उस पर बराबर सवार रहता था। आज मनुष्य जाति का विवेक इन हत्याओं के बोझ से दबा पड़ा है और उसे पृथ्वी पर कहीं सुख-शांति नहीं मिल रही है।

मांस की गरमी और उसे स्वादिष्ट बनाने के लिये उसमें डाले गये मसाले और नमक हमेशा नशीले पेय और मद्य पीने की इच्छा पैदा करते हैं। इस प्रकार मांस खाना छिपे हुए शैतान, मद्य के लिये घर का दरवाजा खोल देता है। मद्य मांस का भाई है,

जो निहायत ही पाजी और शरारती है और हमेशा अपने भाई के साथ रहता है। मद्य तनिक सा पिया जाय या बहुत सा, पर क्या किसी से भी इनका हानिप्रद और खतरनाक रूप छिप सकता है !

शराब नाड़ियों को उत्तेजित करती है और इसको पीने वाला सुन्दर सपनों की माया में पहुँच जाता है; पर जब नशा उतरता है तो उसकी प्रतिक्रिया यह होती है कि यह दुनिया उसे नीरस और शून्य लगती है, उसकी यथार्थता उसे कष्ट और पीड़ा पहुँचाती है। शराब पीने वाले समझते हैं कि शराब से उन्हें शक्ति मिलती है, पर वास्तव में वे धोखे में रहते हैं। बनावटी तरीके से पैदा की गई उत्तेजना स्वास्थ्य के लिये अत्यंत हानिकर है। यदि शराब के क्षणिक प्रभाव के भुलावे में न पड़ा जाय तो यह तुरन्त समझ में आ जाता है कि शराब शरीर को बहुत कमजोर कर रही है और नाड़ियाँ खास तौर से छिन्न-भिन्न होती जा रही है। शराब से आत्मा पतित और मस्तिष्क कमजोर होता है। फलतः मनुष्य पाप और दोष की ओर अग्रसर होता है।

जो मांस नहीं खाता उसकी मानसिक वृत्ति सदा ऐसी रहती है कि उसे शराब का सुन्दर किन्तु क्षणिक, साथ ही मायावी स्वप्न-सुख भोगने की इच्छा नहीं होती।

पर यदि मांस शरीर और आत्मा के लिये इतना हानिकारक है तो सवाल यह उठता है कि क्या बाइबिल और ईसा ने मांस का विरोध नहीं किया है ? क्या ही अच्छा होता यदि हम फिर, अपने जीवन के प्रत्येक कार्य के लिये ईसा और बाइबिल से अधिक से अधिक पथ-प्रदर्शन ग्रहण करते।

तौरेत के पुराने अनुवादों में अनेक भूलें हैं और कुछ तो इतनी भद्दी भूलें हैं कि उनसे मांस के सम्बन्ध के उपदेश उल्टे अधिक अस्पष्ट हो गये हैं।

"बाग के हर पेड़ के फल तू खुशी से खा सकता है, पर ज्ञान के भले और बुरे की समझ वाले पेड़ से पैदा हुए को न खाना अगर तू ने उसे खाया तो तुझे मौत की सजा मिलेगी।"

भला ज्ञान का पेड़ क्या हो सकता है ? कहीं पेड़ में भलाई और बुराई समझने की ताकत होती है।

इसलिये बाईबिल में वृक्षों से पशुओं को अलग करने के लिये "बुराई और भलाई समझने वाला" यह वाक्यांश जोड़ा गया है। बाइबिल में पशु को एक जगह 'सजीव वृक्ष' कहा है, अर्थात् वृक्ष (प्राणी) जिसमें जीवन हो। अतः बाइबिल में यदि "भलाई और बुराई समझने वाला प्राणी" लिखा होता तो ज्यादा सही होता और इस प्राणी से जो यह समझ सकता है कि क्या बुरा है क्या भला है, क्या हानिकर और क्या लाभदायक है, और जिसे मनुष्य की तरह अनुभव की शक्ति है, किसी अन्य का नहीं,

पशु का ही बोध होगा। मनुष्य के पतन का आरम्भ यहीं से हुआ, उसने पहला पाप यही किया कि पशु[1] का निषिद्ध मांस खाया।

हिन्दू-धर्म के ग्रन्थों में, जिनका अनुवाद जर्मन-भाषा में भी सही-सही मिलता है पशु का मांस खाना निषिद्ध ठहराया गया है।

प्रकृति के प्रांगण की ओर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि केवल मांस खाने वाले प्राणी हत्या करते हैं। प्रकृति मांसाहारी में हत्या की इच्छा प्रतिष्ठित करती है। मनुष्य ने अपने पतन के बाद पहला या यों कहिये कि एक ही बुरा काम किया था, वह था हत्या--भ्रातृ-हत्या। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य के पतन का कारण मांसाहार है अन्यथा हत्या का यहाँ कोई अर्थ नहीं है।

ऐसी स्थिति में ईसा मांस कैसे खा सकते थे। ईसा सबसे अधिक मृदुता और दया की शिक्षा देते थे। तो क्या उन्होंने अपनी आत्मा और ईश्वर की आवाज के विरुद्ध मनुष्य को राक्षस बनाने वाला पशु-मांस खाया होगा, जिसे जबह करने में दया को एकबारगी तिलांजलि दे देनी पड़ती है। यह कार्य ईसा की दया का विरोधी होता, वह हत्या के पाप से मुक्त नहीं हो सकते थे। भला ईसा शरीर और आत्मा को रुग्ण बनाने वाला पाप और दोष में फँसाने वाले मांस को स्वीकार कर सकते थे?

तौरेत के अनुवाद में की गई गलती के समान ही बाइबिल के अनुवाद में भी गलती मिलती है। प्राचीन समय में लोग मांस खाने के पाप के प्रायश्चित स्वरूप देवताओं को शान्त करने के लिये पशु की बलि दिया करते थे। इतिहासकारों का कहना है कि एसेन जाति के लोग, जिनसे ईसा सम्बन्ध थे, पशु बलि नहीं देते थे। इससे यह आसानी से समझा जाता है कि वे मांस भी नहीं खाते थे। धर्म शास्त्रियों की भी यही मान्यता है।

इसको इस तरह से भी कह सकते हैं कि वे लोग पशु की बलि नहीं चढ़ाते थे, मांस नहीं खाते थे। ईसा और उनके शिष्यों ने कभी कोई बलि नहीं दी। उन्होंने तो पशु-बलि का निषेध भी किया है।

"मुझे दया चाहिये, बलि नहीं।"

जिस किसी ने बाइबिल की भावना को समझा है और खास तौर से तौरेत को जानता है कि ईसा ने मांस खाना साफ-साफ मना किया है और इसमें शक और शुबहे की जगह ही नहीं है कि ईसा मांस नहीं खाते थे।

---

१ तौरेत में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य का पहला पाप यही था कि उसने मांस खाया था। आरम्भ में लोग अपने इस पाप को पहचानते थे और इससे बचने की कोशिश करते थे, पर धीरे-धीरे वे फिसलते गये। अन्त में वे अपने इस पाप का समर्थन करने लगे और यहाँ तक समझने लगे कि मनुष्य ईश्वर की ओर से मांस खाने के लिये स्वतन्त्र है।

तर्क के बच्चे सांप से पैदा हुआ विज्ञान मनुष्य को आज भी उसी प्रकार पथ-भ्रष्ट कर रहा है जिस प्रकार इसके पिता सर्प ने आदम को स्वर्ग में किया था। यह आज भी पढ़ा रहा है कि प्रकृति पथ का त्याग करने से मनुष्य की आत्मा और शरीर को अनेक लाभ मिलेंगे।

अभी एक विद्वान ने कहा है कि मनुष्य ने परिष्कृत एवं वैज्ञानिक जीवन अपनाकर बड़ी उन्नति की है और अंत में वह देवताओं की तरह अमर हो जायगा।

पर विज्ञान धोखा देने और भुलावे में रखने के सिवाय अधिक क्या कर रहा है ?

प्रत्येक स्थिर बुद्धि और निष्पक्ष व्यक्ति यह कहेगा कि मनुष्य अप्राकृतिक जीवन को अपनाकर देवता नहीं बन सकता, इसके विपरीत वह रोगी, दुःखी, पापी, पाजी मूर्ख और सच्चे अर्थ में दानव ही तो बनेगा।''

('एडोल्फ जस्ट' के 'रिटर्न टु नेचर' का अनुवाद 'प्राकृतिक जीवन की ओर')

८ —मैथुनका सुधार

चौपाई—५

तीसर मैथुन कर्म विचारै। हानि लाभ को भले निहारै ॥ १ ॥
छिन एक घसत घसावत भावै। पाछे नाना दुःख दिखलावै ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **निहारै**=देखे।

भावार्थ — छह पशुकर्मों में तीसरा मैथुन कर्म है। इस पर भी विचार करना आवश्यक है। मनुष्य को चाहिये कि वह विवेक से देखे कि किस काम के करने में वास्तविक हानि है और किसके करने से सच्चा लाभ है ॥ १ ॥ भोगों में भ्रांतिजनित क्षणिक सुख है, परन्तु उसके पीछे नाना कष्ट दिखाई देते हैं ॥ २ ॥

विशेष — काम वासना एक ऐसा प्रबलरोग है जिसमें फँस जाने पर मनुष्य, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य सभी कल्याण साधनों से शून्य होकर पीड़ा भोगने का ही अधिकारी रह जाता है।

काम खलित दोऊ की हानी। ज्ञान रहा सो ताहि समानी ॥ ३ ॥
जात पाँत हुरमत के गाहक। तिनकी डर पैठी उर नाहक ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — **खलित**=स्खलित; गिरा हुआ; पतित। **समानी**=लीन; खोया; नष्ट। **हुरमत**=इज्जत। **गाहक**=ग्राहक, लेने वाला। **उर**=हृदय। **नाहक**=व्यर्थ।

भावार्थ — रज-वीर्य के पतित हो जाने पर स्त्री-पुरुष दोनों की हानि होती है और उनका ज्ञान उसी भोगावरण में खो जाता है ॥ ३ ॥ फिर तो गृहस्थीजाल में उलझकर जाति, पाँति, भाई, बन्धु तथा अन्य जो समय पाकर इज्जत, मर्यादा को लूट लेने वाले हैं उन सबका भय मनमें व्यर्थ ही घुस जाता है ॥ ४ ॥

विशेष — कामासक्ति में आध्यात्मिक ज्ञान नष्ट हो ही जाता है। गृहस्थी जाल में फँस जाने से जाति-पाँति का भय लग जाता है जिसमें तमाम खटपट है। कोई तो इज्जत की रक्षा करने वाला मिलता है और कोई उसको लूटने वाला मिलता है। इस प्रकार हृदय अनेक भय से पूर्ण हो जाता है।

बड़ी देख भाई सो डाहै। ओछी परी तो नाहिं निबाहे ॥ ५ ॥
पुत्र न होय तो अति बड़ सोगी। कुहकत जहाँ तहाँ जस रोगी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — बड़ी = लम्बी, अधिक, बढ़ोत्तरी। डाहै = ईर्ष्या में जलना। ओछी = कमी।

भावार्थ — भाई के धन, यश, परिवार इत्यादि की बढ़ोत्तरी देखकर लोग ईर्ष्या में जलते हैं। यदि धन की कमी देखते हैं तो साथ छोड़ देते हैं ॥ ५ ॥ गृहस्थी में पुत्र न हो तो लोग अज्ञान वश अत्यन्त शोक करते हैं और रोगी के समान यत्र-तत्र विलखते हैं ॥ ६ ॥

विशेष — विषय प्रपंच में पड़कर लोग किस प्रकार दुःखों में जलते हैं, गुरुदेव इसका वर्णन बड़ी मार्मिकता से कर रहे हैं। लोग भाई की विशेषता देखकर भी जलते हैं। भाई-बहिन में भी प्रायः परस्पर ईर्ष्या-द्वेष की आग लगी रहती है। "बड़ी देख भाई सो डाहै" का अर्थ यह भी हो सकता है कि कितनी युवतियाँ या युवक काम-वासना के बढ़ जाने पर भाई या बहिन से भी विषयाग्नि में जलने लगते हैं। "ओछी परी तो नाहिं निबाहै" अर्थात् स्त्री-पुरुष एक दूसरे में नपुंसकता, रोग, दुर्बलता आदि देखकर उनका निर्वाह जीवनपर्यन्त नहीं करते और बीच में ही छोड़ देते हैं।

कहते हैं कि "गृहस्थी में कुल का दीपक पुत्र ही है। यदि वह न हो तो आगा अंधियार है। निर्वंशी का मुख देखना पाप है। बिना पुत्र के पितरों का तरन्तार नहीं हो सकता।" इसी प्रकार और भी अनेक प्रकार की कल्पना तथा अज्ञानपूर्ण बातें सोच, सुन और कहकर पुत्रहीन लोग पीड़ित रहते हैं।

जो होय पुत्र अधिक सो मोहू। छिन एक चैन न आवै वोहू ॥ ७ ॥
छतिस पवनियाँ रहें लौं लाई। अपनी अपनी चाह सुनाई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — वोहू = वह, मोही मनुष्य। पवनियां = पौनियाँ, पौनी लोग— नाई, धोबी, बढ़ई, लोहार, कहार, कोहार आदि। लौ = चाह, आशा।

भावार्थ — यदि पुत्र पैदा हो जाय, तो उसके प्रति माता-पिता का प्रबल मोह हो जाता है। इसलिये उन्हें क्षणमात्र भी शांति नहीं मिलती ॥ ७ ॥ छत्तीस जाति के पौनी लोग या छत्तीस प्रकार के पौनी--नाई, धोबी आदि उनसे कुछ पाने की आशा रखते हैं जिनके घर में पुत्र पैदा हुआ है। इस प्रकार वे अपनी-अपनी इच्छा की बातें कहकर वस्त्र, आभूषण, पशु जमीन आदि माँगते हैं ॥ ८ ॥

विशेष — पुत्र के प्रति माता, पिता तथा परिवार वालों को प्रबल मोह हो जाता है। पुत्र रोगी न हो, मर न जाय, इसका भय बना रहता है। यहाँ तक कि जो बिलकुल झूठी बातें हैं ऐसे नजर, टोना, भूत, चुड़ैल आदि लगने का भय बना रहता है। इसलिये पुत्र के सम्बन्ध में माता-पिता को शांति नहीं मिलती। इधर पौनी-परजा को इनाम देकर उन्हें सन्तुष्ट करने का संकट आता है।

उतसव बड़ा बधावा बाजा। संपति बड़ी निछावर छाजा ॥ ९ ॥
मरि गया पुत्र भया हाहाकारा। चली अपरबल मोह की धारा ॥१०॥

शब्दार्थ — बधावा = बधाई; मंगलाचार; पुत्र-जन्म आदि पर भेजा जाने वाला उपहार-भेंट। निछावर = उत्सर्ग; इनाम। छाजा = शोभित। अपरबल = प्रबल; अपरबल का अर्थ तो जो प्रबल न हो, वही होगा; परन्तु ग्रामीण बोली में अपर-बल का अर्थ प्रबल है।

भावार्थ — पुत्र होने पर भूले लोग बड़ा उत्सव करते हैं, प्रेमियों को उपहार भेजते हैं और बाजा-गाजा, नाच-नौटंकी के सहित खूब धूमधाम करते हैं। यदि बड़ी सम्पत्ति हुई तो नेगहरूओं तथा पौनियों को काफी इनाम देकर पुत्रजन्मोत्सव की शोभा बढ़ाते हैं॥ ९ ॥ यदि ये सब करने के बाद या कुछ दिनों में पुत्र मर गया तो घर में हाय-हाय का कोलाहल मच जाता है और मोह की प्रबलधारा फूट कर निकल पड़ती है ॥ १० ॥

विशेष — पुत्रजन्म पर बहुत खर्च करके बड़ा उत्सव मनाना एक भोलापन है। जिसमें अधिक हर्ष प्रकट किया जायगा उसके विनष्ट होने पर उतना ही अधिक शोक होगा।

हित परिवार बुझावन आवै। गुण सो देखि दुहुं विधि कुहुकावै ॥११॥
अशौचकर्म लगावै ताही। हित बन्धू ऐसे जग मांही ॥१२॥

शब्दार्थ — कुहुकावै = रुलावे। अशौचकर्म = छूतकर्म, अशुद्धकर्म।

भावार्थ — मित्र और परिवार के लोग जिनका पुत्र मर गया है उन्हें समझाने आते हैं; परन्तु उनमें से कुछ ऐसे होते हैं जो मृतक पुत्र की अच्छाइयों का वर्णन करके शोकितों के हृदयों के शोक को उत्तेजित करते हैं और पुनः उन्हें शोक न करने का उपदेश देकर उन्हें दोनों ओर से रुलाते हैं ॥ ११ ॥ और वे उस मृतक को जलाने व दफनाने के कारण पूरे गोत्रसहित घर वालों को कहते हैं कि तुम अपवित्र कर्म किये हो, अतः अशुद्ध हो। इस प्रकार तो संसार में मित्र-बन्धु हैं ॥ १२ ॥

विशेष — संसार में यह प्रथा है कि जब किसी के कोई मर जाता है तब उसे मित्र सम्बन्धी तथा परिवार वाले समझाने आते हैं। उनका समझाना उसी प्रकार

का है जैसे एक अन्धे को दूसरा अन्धा रास्ता दिखाये। इसीलिये उसे समझाने का कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता। रस्मीलिहाज से एक आदमी शोकित को समझाता है, परन्तु उसी उपदेष्टा का जब लड़का या स्वजन मर जाता है तब वह स्वयं बैठकर बुल्ल-बुल्ल रोता है। तब उसे दूसरे समझाते हैं।

कितने लोग तो दूसरे के पुत्रादि मरण पर समझाने जाते हैं तब उन्हें समझाते हुए कहते हैं "भैया, मत रोवो, वह तुम्हारा नहीं था, संसार सपना है।" इतना कहने के बाद तब उस मृतक लड़के का संकेत करके कहते हैं कि "भैया हम क्या कहें तुम्हारा कर्म ही फूटा रहा, नहीं तो ऐसे होनहार लड़के को भगवान उठा लेते ? उस लड़के की आँखें तो आम की फाँकी जैसी, मुंह तो जैसे चन्द्रमा, और बोली तो ऐसी थी कि टायँ-टायँ करता था।" इतना सुनकर शोकित व्यक्ति अधिक जोर मार कर रोने लगता है। तब वे पुनः उनको संसार की नश्वरता समझाते हैं। इस प्रकार दोनों ओर से रुलाते हैं।

संसार के लोग ऐसे स्वार्थी हैं कि किसी के यदि कोई मर जाय तो उसे पहले अशुद्ध घोषित कर देते हैं, और पीछे से उसके यहाँ कई समय खाकर तब उसे शुद्ध करते हैं। किसी के यहाँ किसी का मरना क्या है हित-बन्धू तथा परिवार वालों का बरा-भात खाने का छूट मिल जाना है। कितने गरीबों का तो इसमें घर बिक जाता है। किसी का कोई अहित हो जाय तो उसे सहायता पहुँचाना चाहिये; तो उल्टे लोग उसी को लूट कर खाना चाहते हैं।

जो जीवै नाना जंजाला। जग धंधा में सदा बेहाला ॥१३॥
धंधा सोच सदा रहै घेरा। निसुदिन चैन नहीं संसारा ॥१४॥

शब्दार्थ — धंधा = काम-काज; व्यवसाय। बेहाला = बेहाल; परेशान।

भावार्थ — यदि लड़का जी जावे तो उसको सम्पन्न और सुखी बनाने के लिये माता-पिता नाना जंजाल अपने ऊपर ले लेते हैं और सांसारिक काम-काज में ही सदैव परेशान रहते हैं॥ १३॥ उन्हें काम-काज की चिन्ता ही सदैव घेरे रहती है। इस प्रकार उसे संसार में रात-दिन शांति नहीं मिलती॥ १४॥

विशेष — सारी उन्नति का फल शांति की प्राप्ति होना चाहिये; परन्तु भौतिक पदार्थों के पीछे बेतहाशा भागते हुए मनुष्य की समझ में यह बात नहीं आती। अतएव वह हर समय अशान्त रहता है।

कनक संचवन बहुविधि करहीं। मोरी हुरमत कैसे निबही ॥१५॥
जेहि जंजाल फँसे पितु माता। पुत्र फँसावै कहै कुशलाता ॥१६॥

शब्दार्थ — संचवन = संग्रह। हुरमत = इज्जत; प्रतिष्ठा।

भावार्थ — वह सदैव धन का संग्रह करता है; उसे सदैव यही ध्यान रहता है कि समाज में हमारी प्रतिष्ठा कैसे बनी रहेगी ।। १५ ।। जिस प्रपंच में माता-पिता फँसे हुए हैं उसी में अच्छाई बतलाकर पुत्र को भी फँसाते हैं ।। १६ ।।

विशेष — व्यावहारिक क्षेत्र में धन का उचित संग्रह रखना तथा समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने की चिन्ता करना कोई बुरा नहीं है, अपितु उचित ही है । परन्तु जब मनुष्य धनका उदारता पूर्वक उपयोग या परोपकारादिक न करके केवल मधु-मक्खी के समान संग्रह में ही वृत्ति रखता है और सदाचार, धर्म, भक्ति पर न ध्यान देकर झूठी प्रतिष्ठा, लोकवाहवाही में ही ध्यान रखता है तब वह अपने आपको धोखा देता है ।

कितने माता-पिता पुत्र को झुठाई लबारी, बेईमानी, झूठी प्रतिष्ठा और गलत सही ढंग से धन के संग्रह करने आदि में ही परमोन्नति बतलाकर उपदेश देते हैं । स्वयं तो डूबे ही हैं, पुत्र को भी डुबाते हैं ।

धूर्त सपूत महा जंजाली । साँचा सुधा भक्ति कुलघाली ।।१७।।
निज हित हेतु भक्ति जो करहीं । कलह कल्पना देखि सो डरही ।।१८।।

शब्दार्थ — सपूत = उत्तम पुत्र । कुलघाली = परिवार को डुबाने वाला; कुल-घातक । कलह = झगड़ा । कल्पना = हर्ष, शोक, राग, द्वेष ।

भावार्थ — यदि लड़का दूसरों को ठगने वाला धूर्त तथा महान प्रपंची हो तो उसे सपूत एवं कुल का दीपक कहते हैं; और यदि सत्य, क्षमा, दया, विचार, संतोष, भक्ति आदि अमृतमय गुणों को ग्रहण करने वाला हो तो उसे कुल का डुबाने वाला एवं कुलघातक कहते हैं ।। १६ ।। जो पुत्र अपने कल्याण के लिये भक्ति करता है, उससे घरवाले झगड़ा करते हैं और हर्ष-शोक, राग-द्वेष की बातें करते हैं । घरवाले पुत्र का भक्तिमार्ग देखकर डरते हैं कि यह कहीं घर छोड़कर साधु न हो जाय ।। १८ ।।

जीवत मरत दोऊ विधि लूटै । बिना विचार न यम से छूटै ।।१९।।
निर्णय करि देखो सो फंदा । परवश कुंवा परा है अंधा ।।२०।।

शब्दार्थ — यम = वासना; अशुद्ध मन; बंधन देने वाले नर-नारी । अंधा = अविवेकी ।

भावार्थ — यदि पुत्र पैदा होकर जी जाय तो उसकी मोह-ममता तथा उसे सम्पन्न बनाने में और यदि वह मर जाय तो उसके शोक में—दोनों प्रकार से मनुष्य अपनी मानवता एवं कल्याण साधना से लूटा जाता है । इस प्रकार अविवेकी बनकर मनुष्य बंधनों से नहीं छूट सकता ।। १९ ।। निर्णय करके इस काम एवं मोहबंधन को देखो । यह अविवेकी मनुष्य परवशता के कूयें में पड़ा है ।। २० ।।

विशेष — "जीवत मरत दोऊ विधि लूटै" का अर्थ यह भी है कि समाज ने मनुष्यों के जन्म से मृत्यु तक तथा मरणोपरान्त के लिये कुछ ऐसे संस्कारकर्म तथा प्रथायें बना ली हैं जिनमें मनुष्य पिसता जाता है। उसके धन और मन विपरीत दिशा में लगते हैं। यद्यपि मनुष्यों के लिये कुछ संस्कारकर्म तथा प्रथायें आवश्यक हैं; परन्तु इसका उद्देश्य समाज के कुछ चतुर मनुष्यों के निहित स्वार्थ की सिद्धि के लिये समाज को अन्धकार में रखना नहीं होना चाहिये; अपितु समाज का कल्याण होना चाहिये।

बीजक साखी—१४८

कनक कामिनी देखि के, तू मति भूल सुरंग।
मिलन बिछुरन दुहेलरा, जस केंचुलि तजत भुजंग।। ७ ।।

शब्दार्थ — **सुरंग** = अच्छा रंग; ज्ञानस्वरूप। **दुहेलरा** = संकट; दुःख। **केंचुलि** = केंचुलि; साँप की त्वचा जो जाड़े में सूख कर अपने आप खोल की शकल में गिर जाती है। **भुजंग** = सर्प।

भावार्थ — हे ज्ञानस्वरूप मनुष्य ! धन और स्त्री को देखकर तू मत भूल। ये सर्प की केंचुलि के समान मिलने-बिछड़ने—दोनों में संकटदायी हैं।। ७ ।।

विशेष — जाड़े में जब सर्प की त्वचा सूख कर केंचुली का रूप धारण करती है तब कहा जाता है कि वह प्रायः अन्धा हो जाता है। अंधेपन तथा त्वचा के सूख जाने से उसे कष्ट होता है। और जब उसके ऊपर से केंचुली उतर जाती है, तब नयी कोमल त्वचा में काँटा, कंकड़ लगकर तथा चीटियों द्वारा उसे बड़ा कष्ट मिलता है। इसी प्रकार धन और स्त्री के मिलने पर मनुष्य अन्धा हो जाता है। वह काम, लोभ और मद में मतवाला बन जाता है और इनके छूटने पर शोक-मोह में पागल बन जाता है। अतएव कल्याणार्थी को सावधान रहना चाहिये।

जैसे कल्याणार्थी पुरुष के लिये स्त्री माया है, वैसे कल्याणार्थी स्त्री के लिये पुरुष माया है। वस्तुतः स्त्री-पुरुष के मनकी विषयासक्ति ही माया है।

निर्वाह और परोपकार में लगता हुआ धन सार्थक है, शेष अनर्थ उत्पन्न करने वाला है।

शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन ही मैथुन का पूर्ण सुधार है। परन्तु यह सबसे सम्भव नहीं है। अतएव गृहस्थों को चाहिए कि वे लड़के का पचीस वर्ष की तथा लड़की का अठारह-बीस वर्ष की अवस्था होने पर योग्य देखकर विवाह करदें। स्त्री-पुरुष विशेष विषयलम्पट न बनकर केवल ऋतुकाल में संगत करें। दो-तीन सन्तान होने पर शुद्ध ब्रह्मचारी बनें। सन्तान न होते हों तो सन्तान की आशा में जीवन को मलीन न बनाये रहें। शीघ्र ब्रह्मचर्यव्रत लें। जो नरनारी मन के अति दुर्बल ही हों वे भी व्यभिचारवृत्ति से जीवनपर्यन्त सर्वथा बचे रहें।

जीवन का सच्चा सुख चाहें तो शुद्ध ब्रह्मचारी बनें।

९–भयका सुधार

चौपाई—६

चौथे भय को करे विचारा। बिना विचार को पावै पारा ॥ १ ॥
निसुदिन चहहु शरीर बचावा। ताको छिन छिन होत चलावा॥ २ ॥

शब्दार्थ — चलावा = परिवर्तन ।

भावार्थ — चौथे भय के सुधार के लिये विचार करें । बिना विचार एवं विवेक के संसार सागर से कौन पार पा सकता है ॥ १ ॥ ऐ मनुष्य ! तू अपने माने हुए शरीर को रात-दिन सुरक्षित रखना चाहता है; परन्तु उसका तो क्षण-क्षण परिवर्तन हो रहा है ॥ २ ॥

विशेष — प्राणी को सबसे बड़ा भय शरीर छूट जाने का है। परन्तु वह हर समय बदल रहा है। एक दिन पूरा विनष्ट होकर ही रहेगा। अतएव भय करना निरर्थक है ।

जासु मोह सब जीव डेराई। सो एकौ छिन नहिं ठहराई ॥ ३ ॥
दशों द्वार नर्क की खानी। तहाँ जीव चाहत अबादानी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — दशों द्वार = दो नाक, दो कान, दो आँख, मुख, गुदा, उपस्थ तथा एक कपाल में माना है, ये दश द्वार हैं। खानी = खानि; उत्पत्ति स्थान। अबादानी = आबादानो; आबादानी; आबाद जगह, जहाँ कोई बसा हो; आमोद-प्रमोद। 'आबादानी' फारसी शब्द है।

भावार्थ — जिस शरीर के मोह में पड़ कर लोग मृत्यु से डरते हैं वह एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता ॥ ३ ॥ यह दशोंद्वार से पूर्ण शरीर नरक की खानि है, भूला जीव इसी में रहना चाहता या आमोद-प्रमोद करना चाहता है ॥ ४ ॥ ॥

सोऊ संग न काहु के लागे। मिथ्या पचि पचि मरहिं अभागे ॥५॥
पशु के समान पोषै तन सोई। विषय विवश गये आप बिगोई ॥६॥

शब्दार्थ — बिगोई = नष्ट ।

भावार्थ — वह गन्दा शरीर भी किसी के साथ सदैव नही रहता। अतएव अभागे जीव व्यर्थ ही इसमें आसक्त हो-होकर भय में मरते हैं ॥ ५ ॥ ऐसे देहाभिमानी लोग पशु के समान केवल अपने शरीर का पालन-पोषण करते हैं; और विषयासक्त होकर अपने आपका विनाश करते हैं ॥ ६ ॥

विशेष — जिनको अपने अजर, अमर चेतन स्वरूप का ज्ञान नहीं है वे देह ही को अपना स्वरूप मानकर केवल पशुतुल्य शरीर का पोषण करते हैं। और उसी की आसक्ति में अपना जीवन नष्ट करते हैं।

उत्तम नर की देह जो लागे । भूलि गये सो अधम अभागे ॥ ७ ॥
करहु विचार सुधारहु अपना । नहिं तो काल विवश है कल्पना ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — लागे = कल्याण साधन सत्संग में लगे । कल्पना = सुख, दुःख, राग-द्वेष, हर्ष-शोक ।

भावार्थ — जो उत्तम मानवशरीर कल्याणसाधन सत्संगादि में लगने योग्य है उसे भाग्यहीन अधम लोग मलिन विषयों में लगा कर भूल गये ॥ ७ ॥ अतएव जड़-चेतन, जीव-देह, बंध-मोक्ष का भिन्न विवेक करो और अपना सुधार करो; अन्यथा कल्पनाकाल के विवश होकर दुःख उठाओगे ॥ ८ ॥

नर की देह जो होवै विचारा । तो हित पोषण उचित अचारा ॥ ९ ॥
धन्य सो जीव तारण तरणा । अभय अशंक त्रास नहिं मरणा ॥१०॥

शब्दार्थ — तारण = तारने की क्रिया, तारने वाला । तरणा = तरने की क्रिया; तरजाने वाला । अचारा = आचार; चाल चलन; व्यवहार; आहार ।

भावार्थ — मनुष्य की देह में यदि विवेक है तो उसके विकास एवं कल्याण के लिये शरीर का पालन-पोषण करना, उसे आहार देना और उसका व्यवहार निभाना उचित है ॥ ९ ॥ वे मनुष्य धन्य हैं जो दूसरे को संसारसागर से तार देते हैं और अपना स्वयं तर जाते हैं। वे निर्भय और निःशंक होते हैं । उन्हें मिथ्या शरीर की मृत्यु का भय नहीं रहता ॥ १० ॥

विशेष — यदि इस शरीर से जगत कल्याण तथा आत्मकल्याण होता है तो इसका पालन-पोषण करना सार्थक है; अन्यथा घूर पाटना है । वे पुरुष प्रशंसाभाजन हैं जो स्व-पर के कल्याण में अपने नश्वर शरीर को लगा दिये हैं, जो अजर-अमर स्वरूप में स्थित हैं, जिन्हें मृत्यु का डर नहीं है ।

मृतक शरीर नाश सब भाँती । तेहि अपनाय कौन कुशलाती ॥११॥
मानुष होय देह भय त्यागै । अपने कारज सो मन लागै ॥१२॥

शब्दार्थ — मृतक = जड़ । अपने कारज = अपना कल्याण ।

भावार्थ — शरीर जड़ होने से पहले से ही मरा हुआ है और सब प्रकार से नाशवान है । इसको अपना मानकर तथा इसमें ममता बनाकर अपना कौन सा मंगल होगा ? ॥ ११ ॥ मनुष्य शरीर तो मिला है; परन्तु विवेक प्राप्त करके सच्चे मनुष्य बनो और शरीर के नाश होने तथा छूटने का भय छोड़ो; और अपनी कल्याणसाधना में मन लगाओ ॥ १२ ॥

साखी–जो पद एकौ थीर नहिं, सो भय मानुष नाहिं ।
समझहु बादर गगन के, उपजहिं तुरित बिलाहिं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — पद = स्थान; आधार; दर्जा ।

भावार्थ — शरीर तथा शरीर से उठी हुई कल्पनायें जिन्हें लोग भूलवश अपना पद अर्थात् आधार मान रहे हैं ये एक भी स्थिर नहीं हैं । उनको उसी प्रकार नाशवान समझना चाहिए जैसे आकाश के बादल उत्पन्न होकर तुरन्त विलीन हो जाते हैं । अतएव सच्चे मनुष्य (विवेकी) को इनके छूट जाने का भय नहीं होता ॥ ८ ॥

विशेष — शरीर तथा शरीर सम्बन्धी प्राणी, पदार्थ, अवस्था, परिस्थिति, वर्ण, आश्रम, नाम, रूप, गुण, कर्म, मर्यादा–सभी पद अनस्थिर हैं । सभी आकाश के बादल तथा विद्युत के समान क्षणिक हैं । श्री रामरहस्य साहेब कहते हैं कि "सो भय मानुष नाहिं ।" अर्थात् जो मनुष्य को इन सबके छूटने, विनशने का भय नहीं रहता, जिसे नाशवान पदार्थों के सम्बन्ध में कोई भय नहीं है, जो निर्भय, जीवन्मुक्त हैं, वह 'मनुष्य' है । ग्रन्थकर्ता के मन में 'मनुष्य' पद का कितना ऊँचा स्थान है । वे जीवन्मुक्त पुरुष को केवल 'मनुष्य' कहकर सम्बोधित करते हैं । 'मनुष्य' में सच्चा, साधु, विवेकी आदि विशेषण लगाने की भी आवश्यकता नहीं समझते । जो सच्चा मनुष्य हो गया वह जीवन्मुक्त हो गया ।

१०–निद्रा का सुधार

चौपाई—७

पंचये निद्रा को निरुवारै । जहाँ सुषुप्ति स्वप्न बिड़ारै ॥ १ ॥
जागृति स्वप्न सुषुप्ति तुरिया । सो सब जुइनी यम की कुरिया ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **निरुवारै** = निरुवारना; सुल्झाव करना । **बिड़ारै** = बिड़ारना; तितर-बितर करना; भगाना; दूर करना । **तुरिया** = तुरीय; वेदान्त के अनुसार वह अवस्था जिसमें आत्मा का ब्रह्म में लीन हो जाना मानते हैं । **जुइनी** = योनि । **यम** = वासना, अज्ञानबंधन । **कुरिया** = झोपड़ी, स्थिति ।

भावार्थ — छह पशुकर्मों में पाँचवाँ निद्रा है । इसका सुल्झाव एवं सुधार करना चाहिये ॥ १ ॥ जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया—ये चारों अवस्थाओं के अध्यास नाना योनियों में जाने के लिये वासना-बन्धन की स्थिति है ॥ २ ॥

विशेष — यदि मनुष्य विवेकवान नहीं है तो जागृतावस्था में पाँचों विषयों का अध्यास ग्रहण करके वह बँधा रहता है । जागृत में वह अध्यास न मिटाने से स्वप्न में भी उन्हीं वासनाओं के अधीन रहता है और वे ही जागृत की वासनायें सुषुप्ति में बीज रूप से हृदय में रहती हैं, तभी जागते ही सब बन्धन सामने हो जाते हैं । अतएव जब

तक विवेक-वैराग्यादि साधनों द्वारा वासनाओं का नाश नहीं किया जाता है तब तक जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनों अवस्थायें बन्धन रूप ही हैं।

अव प्रश्न उठ सकता है कि उक्त तीनों अवस्थाओं के साथ 'तुरीय' जो जीव का ब्रह्म से मिलन की अवस्था है वह क्यों बन्धन रूप है? वह इसलिये बन्धन रूप है कि जीव से पृथक ब्रह्म की कल्पना करना एक भ्रम है और उसमें मिलने की अवस्था निश्चित ही बन्धन है। इसके अतिरिक्त शास्त्रों में ब्रह्म को सवका जन्मस्थान रूप योनि माना है यथा—"जन्माद्यस्य यतः" (वेदान्त १, २) अर्थात् 'जिससे स्थावर-जंगम् सबका जन्म होता है, वह ब्रह्म है। "एष योनिः सर्वस्य" (माण्डुक्योपनिषद ६) अर्थात् 'यह ब्रह्म सबकी योनि है।'

इस प्रकार ब्रह्मवादानुसार ही ब्रह्म सबकी उत्पत्ति के लिये योनि है, फिर उसमें स्थित होने से जन्मादि चक्कर से जीव कैसे छूटेगा? इसलिये उक्त चौपाई में "सो सब जुइनी यम की कुरिया" कहकर बताया गया है कि वासनापूर्ण होने से जागृतादि अवस्थायें बन्धन हैं, 'तुरीय' भी ब्रह्माध्यास पूर्ण होने से जन्मादि हेतुभूत योनि तथा वासना की स्थिति है। स्वरूपस्थिति तभी हो सकती है जव चारों अवस्थाओं के अध्यासों का त्याग करके सबका द्रष्टा वन जाय।

परिश्रमी व्यक्ति को चौबीस घंटे में कम से कम छह घंटे तथा अधिक से अधिक आठ घण्टे और कम परिश्रमी व्यक्ति को कम से कम चार घण्टे तथा अधिक से अधिक छह घण्टे सोना चाहिये। निद्रा का मुख्य सुधार अज्ञाननिद्रा को जीतना है।

सत्य असत्य के वर्तै जोई। धोखा में जिव जाय बिगोई ॥ ३ ॥
अस्थूल त्याग कोई झांई सोना। झांई स्वर्ग नर्क की होना ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — बिगोई = नष्ट। अस्थूल = स्थूल। झांई = झांईं; छाया; प्रतिबिम्ब अंधेरा; धप्पा; प्रतिध्वनि; धोखा। सोना = सो जाना; सुषुप्तावस्था में होना।

भावार्थ — जो कोई सत्य को असत्य और असत्य को सत्य मानकर भ्रमपूर्ण स्थिति में व्यवहार बरतेगा; अर्थात् सत्य चेतन जीव को प्रतिबिम्ब, आभास, अंश आदि मानेगा और इस जीव की कल्पना को ही जो असत्य है, सत्य एवं अपना लक्ष्य मानेगा वह धोखा में पड़कर पतित हो जायगा ॥ ३ ॥ कोई देह-गेहादि को मैं-मेरा मानना रूपी स्थूल मोहनिद्रा तो छोड़ दिये; परन्तु वे अपने मान्यताकृत कल्पित प्रतिबिम्ब एवं धोखा को ही अपना लक्ष्य मानकर उसी में सोने लगे अर्थात् मस्त हो गये। वह झांईं, प्रतिबिम्ब एवं धोखा यद्यपि उनको स्वर्ग रूप एवं कल्याण रुप लगा, परन्तु वस्तुतः वह तो "नर्क की होना" है ॥ ४ ॥

विशेष — जो कुछ जीव का मनोभास एवं कल्पनायें, प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि, ज्योति, नाद आदि हैं, सब दृश्य जड़ हैं। इन सबका अध्यास ग्रहण करना अपने आपको वासना के नर्क में गिराना है।

स्वर्ग नर्क का सपना चीन्हा । सुषुप्ति शून्य महल घर कीन्हा ॥ ५ ॥
तुर्या शुद्ध प्रकाश बखाना । साक्षी तीन अवस्था जाना ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — चिन्हा = परखा; समझा । **सुषुप्ति** = योगनिद्रा । **तुर्या** = तुरीय ।

भावार्थ — किसी ने और आगे कदम बढ़ाया तथा स्वर्ग-नर्क सब कुछ स्वप्न के समान समझकर योगनिद्रा रूपी शून्य मन्दिर में अपना स्थान बनाया ॥ ५ ॥ इससे भी आगे वेदान्ती लोग तुरीय अवस्था को शुद्ध प्रकाशस्वरूप एवं ज्ञानस्वरूप कहते हैं । उनके मन्तव्य से तुरीय ही जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं का द्रष्टा है ॥ ६ ॥

विशेष — स्थूल कर्ममार्ग, झांई उपासनामार्ग, सुषुप्ति योगमार्ग तथा तुरीय ज्ञानमार्ग है । तुरीयातीत विज्ञानमार्ग बताते हैं । कर्म असुद्ध एवं रागात्मक होने से; उपासना अपने चेतन स्वरूप से पृथक होने से; योग जड़वत् शून्यदशा होने से; ज्ञान एवं तुरीय जन्मजगतका कारणबीज होने से तथा तुरीयातीत एवं विज्ञान जड़-चेतन अभिन्न होने से विवेकियों के लिये वर्जित है । अतएव—

सर्व साक्षिनी धोखा ज्ञाना । सर्बहि मांहि नास्ति विज्ञाना ॥ ७ ॥
आदि संधि नहिं सूझै ताही । भरमहि सदा ताहि के मांही ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **सर्व साक्षिनी** = सबका द्रष्टा । **सर्बहि मांहि** = सबमें व्यापक । **नास्ति** = न + अस्ति; नहीं है; जो न हो; असत्य । **विज्ञाना** = जड़-चेतन की अभिन्न मान्यता की दशा । **आदि** = आरम्भ; ब्रह्म से जगत का उत्पन्न होना । **सन्धि** = छेद; दरार; भेद, पर्दा । **ताही** = भूले लोग ।

भावार्थ — यह मान्यता एक धोखा है कि तुरीय अवस्था सबका द्रष्टा है; क्योंकि वह स्वस्वरूप चेतन से पृथक ब्रह्मकल्पना का द्रष्टा नहीं बन सकी, प्रत्युत उसी में समा गयी । जड़-चेतन अभिन्न, सब में परिपूर्ण, सब कुछ एक—यह मान्यता ही विज्ञान दशा है; और वस्तुतः जड़-चेतन भिन्न हैं । चेतन असंख्य तथा जड़ से पृथक हैं । अनेक तत्त्व हैं एवं एक तत्त्व की असंख्य इकाइयाँ हैं; इसलिये विवेक के धरातल पर यह माना हुआ विज्ञान असत्य है ॥ ७ ॥ उन भूले लोगों को यह भेद नहीं समझ पड़ता कि ब्रह्मसे ही जगत के उत्पन्न होने की कल्पना की है; फिर ब्रह्म में स्थित होने से जन्मादिक दुखों से कैसे छूटेंगे ? अतएव वे सदैव ब्रह्म-जगत की कल्पना में ही भटकते रहते हैं ॥८॥

पुनि पुनि जाय मरै संसारा । समता करहिं बुड़हि भवधारा ॥ ९ ॥
जागृत पृथिवी सपना स्वासा । सुषुप्ति शून्य तुरिया परकाशा ॥१०॥

शब्दार्थ — **समता करहिं** = जड़-चेतन एवं योग-भोग को बराबर या एक ही मानते है । **भव** = वासना; संसार । **पृथिवी** = पार्थिव स्थूल शरीर । **स्वासा** = श्वास; वासनामय सूक्ष्मशरीर । **शून्य** = कारण शरीर । **परकाशा** = महाकारण

शरीर । इनके क्रमशः जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय अवस्थायें एवं कर्म, उपासना, योग तथा ज्ञानमार्ग है ।

भावार्थ — जो लोग भूलवश जड़-चेतन एवं योग-भोग को एक समान या एक ही मानकर सब धान साढ़े बाइस पसेरी समझते हैं, वे संसार में बारम्बार जन्म-मृत्यु में घूमते हैं और भवधारा में डूबते हैं ॥ ९ ॥ पार्थिव स्थूलशरीर में जागृतावस्था, श्वासरूप सूक्ष्मशरीर में स्वप्नावस्था, शून्यरूप कारण शरीर में सुषुप्तावस्था एवं प्रकाशरूप महाकारण शरीर में तुरीयावस्था का निवास है ॥ १० ॥

विशेष — स्थूलशरीर में कर्म होते हैं । सूक्ष्म शरीर में कर्मों के अध्यास टिकते हैं । कारण शरीर अज्ञान मात्र है । महाकारण शरीर में अज्ञान का बीज है । स्थूल का अध्यास जागृत में, सूक्ष्म का अध्यास स्वप्न में, कारण का अध्यास सुषुप्ति में तथा महाकारण का अध्यास तुरीय में है । इनसे पृथक पांचवां एक कैवल्य शरीर माना है जिसका वर्णन यहाँ नहीं है । उसका विज्ञानमार्ग, तुरीयातीत अवस्था है । इस प्रकार कैवल्य का अध्यास तुरीयातीत अवस्था में है, जिसमें ब्रह्मज्ञानी लोग सब कुछ ब्रह्म मानकर बेसुध होते हैं ।

चारि अवस्था भले विचारे । एक एक कै सबै सुधारै ॥११॥
बिना सुधारे भरम न जाई । यम के फन्दा रहै अरुझाई ॥१२॥
सूझि न परै दिनों दिन अंधा । पचि पचि मरै न छूटै गंधा ॥१३॥

शब्दार्थ — यम = वासना । पचि पचि = आसक्त हो होकर । गंधा = गंध; वास; बू; वासना; आसक्ति ।

भावार्थ — जागृत, स्वप्न सुषुप्ति, एवं तुरीय इन चारों अवस्थाओं का अच्छी तरह विचार करे और एक-एक करके सबका सुधार करे ॥ ११ ॥ इनका बिना सुधार किये अज्ञान दूर नहीं हो सकता; प्रत्युत वासना के बन्धनों में ही जीव उलझता जायगा ॥ १२ ॥ अज्ञानवश मनुष्य को दिखाई नहीं देता । वह दिन प्रतिदिन अन्धा ही होता जा रहा है । विषयों में आसक्त हो-होकर मरता है । उसकी गन्दी वासना नहीं छूटती ॥ १३ ॥

विशेष — जागृतावस्था में पाँचों विषयों की आसक्ति को दूर करे और अपने चेतन-स्वरूप को सबसे भिन्न समझ कर बोध ठीक करे । जब जागृतावस्था में अपने स्वरूप से पृथक सब आसक्ति सर्वथा ध्वस्त हो जायगी तब अन्य स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओं के भी अध्यास मिट कर जीव का मोक्ष हो जायगा ।

साखी—खाया पीया अघाय कै, सोवै पांव पसार ।
भोंदू कछु जानै नहीं, को हम को संसार ॥ ९ ॥

शब्दार्थ — **भोंदू**=भोलाभाला ।

भावार्थ — भोलेभाले लोग अवा करके गले तक खा-पी लिये और पैर पसार करके सो गये, वे इतना ही जीवन का लक्ष्य समझते हैं । वे यह नहीं जानते कि मैं कौन हूँ तथा संसार क्या है ? ॥ ९ ॥

विशेष — जीवन का लक्ष्य खाना-सोना नहीं है । खाना-सोना तो केवल शरीर की रक्षा के लिये है और शरीर से कल्याण साधन करना है ।

११–मोह का सुधार

चौपाई—८

छठये मोह माया परचंडा । कुल परिवार को नाना दंडा ॥ १ ॥
सो परिवार स्वप्न को साथी । झूठा नेह देह कुल जाती ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **परचंडा**=प्रचण्ड; भयंकर : **दंडा**=दण्ड; दुःख ।

भावार्थ — छठाँ पशुकर्म 'मोह' है । यह माया का मोह बड़ा भयंकर है । इसी के अधीन होकर मनुष्य कुल, परिवार के पोषण, रक्षा आदि में नाना कष्ट सहता है । ॥ १ ॥ वे परिवार के लोग सपना के साथी हैं आज साथ हैं कल नहीं । अतएव इस संसार का प्रेम, अपना माना हुआ शरीर, कुल, जाति आदि सब मिथ्या हैं ॥ २ ॥

तासों नेह नहीं दृढ़ कीजे । जीव है एक कहाँ कहाँ दीजे ॥ ३ ॥
दिना कईक के संगी कहिये । तेहि कारण नाना दुख सहिये ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — **कईक**=कई एक; कुछ ।

भावार्थ — इसलिये किसी में अपना मोह मत बाँधो । जीव तो एक है उसे कहाँ-कहाँ लगाया जाय ? ॥ ३ ॥ कहना चाहिये संसार के लोग थोड़े दिन के ही साथी हैं; परन्तु तू उन्हीं के लिये नाना दुःख उठा रहा है ॥ ४ ॥

पुनि सो इनकी मोह बहोरी । चौरासी राखहिं बरजोरी ॥ ५ ॥
बहुत कष्ट कै दाम कमावै । सो सब विषय के फंद उड़ावै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **बहोरी**=बहुरि; पुनः; अनन्तर । **चौरासी**=मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज ये चारि राशियाँ । **बरजोरी**=बल पूर्वक ।

भावार्थ — पुनः इन परिवार वालों एवं प्राणियों की ममता बलपूर्वक चारों खानियों में जीव को घेर रखती हैं ॥ ५ ॥ बहुत कष्ट एवं शुभ-अशुभ कर्मों के द्वारा लोग धन कमाते हैं और परिवार वाले उस धन को विषय के फंदे में पड़कर उड़ाते हैं या स्वयं विषयवश धन उड़ाते हैं ॥ ६ ॥

कृपिण कनक बहु भाँति जोगावै । सर्प होय निज जन्म गमावै ॥ ७ ॥
ममता मोह सदा दुखकारी । पशु नहिं चीन्हें कर्म विकारी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — जोगावै = इकट्ठा करना; संग्रह करना ।

भावार्थ — यदि कंजूस हुआ तो अनेक प्रकार से सोना, चाँदी, धनादि का संग्रह करता है । और उसी की ममता में शरीर छोड़कर तथा सर्प का शरीर धारण करके अपने जन्म को उसी की रक्षा में व्यतीत करता है ॥ ७ ॥ संसार की ममता एवं मोह सदैव दुःख उत्पन्न करने वाले हैं । परन्तु पशुस्वभाव का बना हुआ मनुष्य अपने मलीन कर्म को नहीं पहचानता है ॥ ८ ॥

सो सब पशुवत कर्म सुधारै । कसर खोट सबहीं खोय डारै ॥ ९ ॥
हृदया साँच साँच मुख भाखै । कपट खोट एकौ नहिं राखै ॥१०॥

शब्दार्थ — कसर खोट = कमी; त्रुटि; बुराइयाँ ।

भावार्थ — उक्त छहों पशु सदृश कर्मों का सुधार करे और जीवन से सारी बुराइयों को निकालकर बाहर कर दे ॥ ९ ॥ हृदय में सत्यता रखे और मुख से सत्य बात बोले; एक भी कपट और त्रुटि की बात मनमें न रखे ॥ १० ॥

कोई बात कहै नहिं कांची । बोल अडोल भाखै सो सांची ॥११॥
भवबन्धन जाते होय रूढ़ा । ऐसी बात कहे सो मूढ़ा ॥१२॥
जेहि विधि कार्य जीवको होई । निर्णय वाक्य उचारे सोई ॥१३॥

शब्दार्थ — काँची = कच्ची, असत्य । अडोल = अटल; सत्य । रूढ़ा = आरूढ़; सवार; दृढ़ ।

भावार्थ — एक भी बात असत्य न बोले । जो बात बोली जाय अटल एवं सत्य हो ॥ ११ ॥ जिससे संसार का बन्धन दृढ़ हो, ऐसी बात जो बोलता है वह भोला है ॥१२॥ जिस प्रकार से जीव का कल्याण हो वही निर्णय वचन बोलना चाहिये ॥१३॥

बीजक साखी ३३४ ,२७६

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप ॥ १० ॥

शब्दार्थ — आप = स्वयं चेतन की स्थिति ।

भावार्थ — सत्यभाषण, सत्यभाव, सत्यरहनी तथा सत्यज्ञान के पालन के समान अन्य तपस्या नहीं है; और मिथ्याभाषण, मिथ्याभाव, मिथ्याचरण एवं मिथ्याज्ञान के समान पाप नहीं है । जिसके हृदय में सत्यता है; उसके हृदय में अपने चेतन स्वरूप की स्थिति है ॥ १० ॥

बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जान।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आन ॥ ११ ॥

शब्दार्थ — हिये = हृदय। आन = लाओ।

भावार्थ — यदि कोई बोलने को जाने तो बातें तो ऐसी उत्तम-उत्तम होती हैं जिसका मूल्य चुकाया नहीं जा सकता। अतएव हृदय रूपी तराजू पर तौलकर तब मुख के बाहर बातें निकालो ॥ ११ ॥

साखी-शब्द संभारे बोलिये, शब्द के हाथ न पांव।
एक शब्द औषधि करे, एक शब्द करे घाव ॥१२॥

शब्दार्थ — संभारे = सम्हालकर।

भावार्थ — शब्दों को सम्हालकर बोलो। यद्यपि शब्दों के हाथ-पैर नहीं होते; तथापि एक शब्द औषध का काम देता है तथा एक शब्द घाव करता है ॥ १२ ॥

विशेष — कटु शब्द दुःखदायी होते हैं तथा प्रिय सुखदायी। सत्य बोलो, परन्तु प्रिय बोलो।

इस प्रकरण की तीसरी साखी के बाद की चौपाइयों में मानवता के चार लक्षण विचार, शील, दया, और वीरता का उल्लेख हुआ था। उनमें प्रथम विचार के अन्दर छादन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह इन छह पशुकर्मों के सुधार की बातें कही गयीं। अब आगे दूसरे लक्षण शील का वर्णन किया जाता है।

१२-शील के लक्षणों पर विचार

चौपाई—६

दूसर शील विचार को अंगा। सब अस्थूल अंग होय भंगा ॥ १ ॥
बुरे कर्म सो लज्जा करे। बिना विचार के पगु नहिं धरे ॥ २ ॥

शब्दार्थ — शील = चरित्र; मनकी स्थायीवृत्ति; सद्वृत्ति; रागद्वेषहीनता; तटस्थव्यवहार; संकोचीस्वभाव; मुरौवत; विनम्रता। भंगा = भंग; नष्ट।

भावार्थ — पहला विचार का अंग तो ऊपर विस्तार से बताया गया है, अब दूसरा शील का लक्षण बताया जाता है। शील को धारण करने से दिखते हुए स्थूलदेह के सारे दोष नष्ट हो जाते हैं। अथवा स्थूल शरीर के सभी अंगों का एक दिन नष्ट हो जाना निश्चित है; इसलिये सब कुछ नाशवान समझकर विनम्रता धारण करो ॥ १ ॥ बुरे कर्मों से सदैव लज्जा करना चाहिये। बिना विचार किये किसी कार्य में एक पग भी नहीं रखना चाहिये ॥ २ ॥

विशेष — शील मानवता का महान सद्गुण है। शीलका बड़ा व्यापक अर्थ है। उत्तम चरित्र, कोमलता, रागद्वेष से मुक्ति, हमारे मन, वाणी, कर्म से दूसरे को किंचित भी दुःख न पहुँचे इसका सदैव ध्यान ये सब शील के लक्षण हैं।

शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनों की खानि ।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आनि ॥

जो काहू के होय उपकारा । मन वच कर्म करि लेय विचारा ॥ ३ ॥
मानुष भरसक चूकै नाहीं । आखिर होय दोष नहिं ताहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — भरसक = शक्ति चले तक ।

भावार्थ — अपने मन, वाणी तथा कर्म से यदि किसी अन्य का हित हो जाय तो विचारपूर्वक उसे करले ॥ ३ ॥ मनुष्य को चाहिये कि वह परोपकार करने में अपनी शक्ति चले तक असावधान न हो । अन्ततः जो उसकी शक्ति के बाहर होने से उससे न हो सके, तो उसे कोई दोष नहीं है ॥ ४ ॥

पशुवा होय सो आँखि छिपावै । मानुष बुद्धि सपने नहिं पावै ॥५॥
जिन्ह की आँखि शील नहिं होई । काल स्वरूप जानिये सोई ॥६॥

शब्दार्थ — पशुवा = पशु स्वभाव वाला ।

भावार्थ — जो नरदेहधारी पशुस्वभाव वाला होता है वह दूसरे के हित करने से आँख छिपाता है । उसे स्वप्न में भी मनुष्य की बुद्धि नहीं मिल सकती ॥ ५ ॥ जिनकी आँखों में शील नहीं है; उनको कालस्वरूप ही समझो ॥ ६ ॥

बिना शील वेपीर कठोरा । लंपट विषयी झूठा चोरा ॥ ७ ॥
मानुष के गुण ही अधिकारा । मुये भखै जेहि श्वान सियारा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — वेपीर = निर्दय । अधिकारा = अधिकार; प्रभुत्व, विशेषता ।

भावार्थ — जिसमें शील नहीं है वह निर्दय, कठोर, लम्पट, विषयी, मिथ्याभाषी तथा चोर होता है ॥ ७ ॥ मनुष्य में सद्‌गुणों की ही विशेषता है । मरने पर तो उसके शरीर को कुत्ता, स्यार आदि खा लेते हैं ॥ ८ ॥

अग्नि जरै माटी गलि जाई । हाड़ चाम की यही बड़ाई ॥ ९ ॥
जो ना भाव भक्ति बनि आवै । बिन गुरु भव ते कौन छुड़ावै ॥१०॥
भक्तिहीन नर पशु हैं सोई । गुणवंता तै देखु बिलोई ॥११॥

शब्दार्थ — बिलोई = निर्णय ।

भावार्थ — यदि मृतक शरीर को आग में रख दिया जाय तो जल जाता है और यदि माटी में गाड़ दिया जाय तो गल जाता है । हाड़-चाम से बने हुए शरीर की यही विशेषता है ॥ ९ ॥ यदि इस शरीर से कुछ भक्ति भाव नहीं बना सका तो अनर्थ ही हुआ; क्योंकि बिना सद्‌गुरु-संतों के संसार-सागर से कौन उबार सकता है ॥ १० ॥ ऐ गुणवान मनुष्य ! तू निर्णय करके देख, जो मनुष्य भक्तिहीन है, वह पशु है ॥ ११ ॥

बीजक साखी १९९

मानुष तेरा गुण बड़ा, मांसु न आवै काज।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजन बाज ॥१३॥

शब्दार्थ — **आभरण**=आभूषण; गहना। **त्वचा**=चमड़ी।

भावार्थ — ऐ मनुष्य ! तेरे दयादि सद्गुण ही श्रेष्ठ हैं; अन्यथा तेरा मांस किसी के काम में नहीं आता, न तेरी हड्डी के गहने बनते हैं और न तो तेरी चमड़ी का बाजा बनकर बजता है ॥ १३ ॥

विशेष — यदि मनुष्य में सद्गुण न हों तो वह दो कौड़ी का भी नहीं है। वह जीवन भर अपने-पराये को हानि करने वाला ही बना रहेगा और मरने के बाद भी उसका शरीर किसी के काम में नहीं आयेगा।

१३–दया के लक्षणों पर विचार

चौपाई—१०

तीसर दया मानुष व्यवहारा। निर्दया क्या करे विचारा ॥ १ ॥
दया धर्म हृदया जेहि नाहीं। भुक्ते नर्क सो यमपुर माहीं ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **भुक्ते**=भोगता है। **यमपुर**=बुरी वासना; गर्भादि।

भावार्थ — मनुष्य का तीसरा व्यवहार एवं लक्षण 'दया' है। निर्दयी मनुष्य अपने-पर के कल्याण का क्या विचार कर सकता है ? ॥ १ ॥ जिसके हृदय में दया-धर्म नहीं है, वह वासना-वश नाना योनियों में नर्क भोगता है ॥ २ ॥

अपनी ओर छोह जिव करहीं। भावै वैसे आपुहि मरहीं ॥ ३ ॥
यह संसार मृतक को थाना। भरम भूत जग रहा भुलाना ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — **छोह**=स्नेह; ममता; कृपा; दया। **भावै**=भाव; अस्तित्व; जैसा अच्छा लगे; जन्म; योनि। **थाना**=स्थान। **भूत**=प्राप्त।

भावार्थ — दयालु पुरुष अपनी ओर से शक्ति चले तक हस्ती से कीट तक सब जीवों पर दया करता है। परन्तु जीव अपने कर्मवश जैसे जन्म धारण करके फलभोग रहे हैं वैसे अपने कर्मानुसार स्वयं मरते भी हैं। उसमें दयालु पुरुष को कोई दोष नहीं है ॥ ३ ॥ यह संसार तो जन्म-मृत्यु का स्थान है। सब जीव भ्रम से अभिभूत होकर इसी में भूले हैं ॥ ४ ॥

विशेष — दयालु पुरुष अपनी ओर से सब पर दया रखता है और शक्ति चले तक उनकी रक्षा भी करता है; परन्तु यह संसार ऐसा विकट है कि जगह-जगह चुप रह जाना पड़ता है। प्रतिक्षण असंख्य जीव अपने कर्मवश जन्म ग्रहण करते और मरते हैं। उन्हें मृत्यु से कौन रोक सकता है। मनुष्य के वश की बात यही है कि वह अपने

मन से किसी को दुखाने की चेष्टा न रखे। यदि विवशता से उसके शरीर से किसी जीव की क्षति होती है तो वह क्या करे।

उपजै बिनसै भव का फंदा। बिनु गुरु राह न पावै गंदा ॥ ५ ॥
घात परस्पर लावै दोऊ। कष्ट बहू विधि पावै सोऊ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — भव = मन; संसार; जन्म। घात = चोट; टक्कर। दोऊ = स्त्री-पुरुष।

भावार्थ — सब जीव अज्ञानवश संसार के बन्धन में पड़कर जन्मते-मरते हैं। बिना यथार्थ सद्गुरु के जीव कल्याणमार्ग नहीं पाते; प्रत्युत हाड़-मांस के गंदे शरीर में आसक्त होकर बंधे हैं ॥ ५ ॥ स्त्री-पुरुष विषयासक्तिवश एक-दूसरे को विषयचोट एवं कामबाण से घायल करते हैं। इसलिये वे दोनों अनेक प्रकार से कष्ट पाते हैं ॥ ६ ॥

एक दुखी सब यह संसारा। दुःख दिये तेहि कौन विचारा ॥ ७ ॥
निर्बैरी बर्तै जग माहीं। मन वच कर्म घात कोउ नाहीं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — निर्वैरी = वैररहित।

भावार्थ — एक तो संसार के सब जीव अज्ञानवश स्वयं दुखी हैं; फिर उनको अपनी ओर से भी यदि दुःख दिया जाय, तो यह कौन-से विचार की बात होगी? ॥ ७ ॥ अतएव संसार में वैर-विरोध छोड़कर सबसे उत्तम व्यवहार करे; और मन, वाणी, कर्म से किसी को चोट न पहुँचावे ॥ ८ ॥

सकभरि काहू सो नहिं मुरई। भूखा नंगा तिर्पित करई ॥ ९ ॥
गुरु के शब्द रहै लौ लाई। जाते फंदा काल नशाई ॥१०॥

शब्दार्थ — सकभरि = शक्ति चले तक। मुरई = मुड़ना; मुख छिपाना। तिर्पित = तृप्त; संतुष्ट। लौ = लाग; धुन; ध्यान। काल = दुःखदायी कामादि कल्पना।

भावार्थ — मनुष्य को चाहिये कि वह शक्ति चले तक परोपकार करने में किसी से मुख न छिपाये। भूखों को भोजन तथा नंगे को वस्त्र देकर उन्हें सन्तुष्ट करे ॥ ९ ॥ सद्गुरु के निर्णयवचनों में ध्यान रखे, जिससे काम-कल्पनादि का बन्धन नष्ट हो ॥१०॥

विशेष — ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न सन्त-पुरुषों की पूज्य भाव से सेवा करे। विद्वानों की आदरपूर्वक सहायता करे। अपाहिज एवं लाचार लोगों को जो काम धंधा करने में असमर्थ हैं उन्हें जल वस्त्र देकर तृप्त करे। जो हृष्ट-पुष्ट है; काम-धंधा कर सकता है, उसको दान करके उसे कर्महीन, मुफ्तखोर एवं आलसी न बनावे। हाँ, कोई हृष्ट-पुष्ट ही हो, परन्तु समय का मारा है तो वह दान या सहायता का पात्र है।

गुरु साँचा साँची सो बानी। झूठे के संग मूलहु हानी ॥११॥
मूल दया जो आप सँवारे। सँवरे और जीव को तारे ॥१२॥

शब्दार्थ — आप = स्वयं; खुद । मूल = मुख्य । सँवारे = सुधारे; कल्याण करे ।

भावार्थ — सच्चे गुरु की सच्ची वाणी होती है अतः उनकी शरण में ही कल्याण है । और झूठे लोगों का साथ करने से अपने पास का रहा हुआ मूलविचार भी नाश हो जाता है ॥ ११ ॥ मुख्य दया उसी ने की जो अपने आपका सुधार-कल्याण कर लिया है । ऐसा पुरुष ही स्वयं सुधरता है और अन्य जीवों को तार देता है ॥१२॥

विशेष — यहाँ दया के दो प्रकार बताये गये हैं एक निजदया, दूसरा परदया । मुख्यदया निजदया है। जो अपने आपका सब दोषों से उद्धार कर लेता है वही दूसरे का कल्याण कर सकता है । जो स्वयं भ्रष्ट है वह दूसरे का उद्धार क्या कर सकता है ।

भौतिक वस्तुओं को पहले दूसरे की सेवा में लगाकर तब हम अपना उपभोग करें जैसे भोजन, वस्त्र इत्यादि का तो यह सम्भव है । परन्तु आध्यात्मिक वस्तुओं का पहले स्वयं उपभोग किये बिना हम दूसरे को नहीं दे सकते । हम स्वयं विद्वान बन कर दूसरे को विद्या, स्वयं ज्ञानी बनकर दूसरे को ज्ञान तथा स्वयं शान्त बनकर दूसरे को शांति दे सकते हैं ।

जो अपने आपका उद्धार कर लिया वही समाज का कल्याण कर सकता है । इसलिये पहले अपने आपको निर्दोषी बनाओ तब आपके सम्पर्कमात्र से दूसरे निर्दोषी बनेंगे । हर मनुष्य समाज का एक अंग है । यदि हर मनुष्य अपना सुधार कर ले तो पूरा समाज सुधर सकता है । और यदि अपना सुधार न करके सब एक-दूसरे को उपदेश ही देते रहें तो कोई नहीं सुधर सकता । अतएव यह आत्मकल्याण के लिये एक महान सूत्र है :—

"मूल दया जो आप संवारे । संवरे और जीव को तारे ।"

सो बिन गुरु की दया न होई । गुरु साँचा जग बिरला कोई ॥१३॥
साँचा साहेब सेवा कीजै । भली प्रकार सबै जँच लीजै ॥१४॥

शब्दार्थ — साहेब = स्वामी, रक्षक । जँच = जाँचना, परख करना ।

भावार्थ — उपर्युक्त स्व और पर का कल्याण होना गुरु के कृपास्वरूप सत्योपदेश बिना असम्भव है । और संसार में सच्चे सद्गुरु भी बिरले होते हैं ॥ १३ ॥ ऐ कल्याणार्थी । तुम सच्चे सद्गुरु की सेवा करो; और कल्याण की सभी बातें उनके सत्संग में परख लो ॥ १४ ॥

विशेष — सद्गुरु में 'सच्चे' शब्द का विशेषण लगाना अनावश्यक है । क्योंकि गुरु कहते हैं महान या प्रकाशस्वरूप को और उसमें जब 'सद्' विशेषण लगा है तब उसमें दोहरा 'सच्चा' शब्द का विशेषण लगाना पुनरुक्ति ही है । परन्तु सद्गुरु कहलाने वाले भी जगत में बड़े-बड़े विचित्र लोग हैं; अतएव सद्गुरु में भी 'सच्चे' शब्द का विशेषण लगाना पड़ता है ।

साखी-जो तू आया जगत में, तो ऐसा करि लेय।
कर साहेब की बंदगी, भूखे को कछु देय ॥१४॥

शब्दार्थ — बंदगी = वंदना; नमस्कार, सेवा।

भावार्थ — यदि तू मानव शरीर धारण करके संसार में आया है तो ऐसा करले कि सच्चे सद्गुरु की वन्दना एवं सेवा कर और भूखे, लाचार लोगों को कुछ दान कर ॥ १४ ॥

विशेष — उपर्युक्त साखी में धर्म तथा भक्ति का सुन्दर उपदेश है। दुखियों को कुछ दो और सद्गुरु की सेवा करके यथार्थज्ञान की प्राप्ति कर अपना कल्याण करो।

१४—वीरता के लक्षणों पर विचार

चौपाई-११

चौथे बीर व्यवहार विचारै। पक्का होय के सबै सुधारै ॥ १ ॥
पक्का जो कुछ करै विचारा। तासो कबहुँ टरै नहिं टारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — बीर = वीर; शूर; बहादुर।

भावार्थ — मानव का चौथा सद्गुण 'वीरता' है। उसे चाहिये कि वीर बनकर मनको जीतने में वीरता का व्यवहार करे। वह अपने कल्याणमार्ग में पक्का निश्चयी बनकर सब प्रकार से सुधार करे ॥ १ ॥ क्योंकि पक्का निश्चय वाला वीर पुरुष जो कुछ करने का विचार करता है वह दृढ़ रूप से करता है। वह अपने निश्चित पथ से किसी के हटाने से नहीं हटता ॥ २ ॥

जो जिव भगजुगनी सम तुला। छिन चमकै छिन धुंध बेसूला ॥ ३ ॥
चमकै रात अँधियारी माहीं। दिन के जोत भग माहिं समाहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — भगजुगनी = भग + जुगनी । भग = मूलद्वार; गुदाद्वार । जुगनी = जुगनू; खद्योत । धुंध = अन्धेरा । बेसूला = बे-सुलूक; सुलूक = वर्ताव, आचरण, नेकी, भलाई से जो रहित हो वह बे-सुलूक है। सुलूक अरबी शब्द है। जोत = ज्योति।

भावार्थ — जो मनुष्य उसी प्रकार क्षणिक बुद्धि वाले हैं जैसे जुगनू के पूँछ या मूलद्वार से क्षण में किंचित प्रकाश होता है और क्षण में प्रकाश लुप्त होकर अन्धकार हो जाता है। वे भलाई के स्थायी आचरण से रहित बे-सुलूक होते हैं ॥ ३ ॥ जुगनू का प्रकाश रात की अँधियारी में चमकता है; परन्तु दिन के सूर्यप्रकाश में उसके मूलद्वार में ही समाया रहता है।

विशेष — कच्चे मन वाले कायर लोग साधारण मनुष्यों में अपना ज्ञान बघारते हैं; परन्तु वे वैसा चल नहीं पाते और ज्ञान सम्पन्न सदाचारियों के बीच में पहुँचने पर वे तेजहीन हो जाते हैं; और वहाँ से भाग खड़े होते हैं।

कछुवा लोमरी जानहु सोई । छिन चमकै छिन भीतर होई ॥ ५ ॥
मानुष बिना बिचार न करई । जो कुछ करै सो नाहीं टरई ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — कछुवा = कछुआ; कच्छप । लोमरी = लोमड़ी; गीदड़ की जाति का एक हिंसकी जानवर ।

भावार्थ — जो एक क्षण ज्ञान चमकाता है और दूसरे क्षण उसका ज्ञान लुप्त हो जाता है वह कछुआ और लोमड़ी के समान है ॥ ५ ॥ जो वास्तविक मनुष्य है वह बिना विचार के कुछ नहीं करता है और जो कुछ करता है, वह अटल होकर ॥ ६ ॥

विशेष — कछुआ कभी अपने अंगों को फैलाता है और कभी समेट कर भीतर कर लेता है इसी प्रकार लोमड़ी प्रायः बिल में छिपी रहती है और कभी-कभी बाहर निकलती है । जब वह बाहर निकलकर चलती है तब बारम्बार अपने पीछे देखा करती है । क्योंकि हिंसकी जीव भयवश प्रायः पीछे देखा करते हैं ।

जो लोग कायर हैं उनका ज्ञान भी इसी प्रकार क्षणिक होता है । क्योंकि वे सदैव मन-इन्द्रियों के गुलाम तथा भयभीत होते हैं ।

जो समझदार है वह बहुत सोच-समझकर किसी काम पर कदम उठाता है, और जब कदम उठा लेता है तब पीछे नहीं मुड़ता ।

जो कछु बुरा कर्म बनि आवै । परखत ताही तुरत बहावै ॥ ७ ॥
मन बच कर्म साँच के संगी । छाड़ै संग जीव बहुरंगी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — जीव बहुरंगी = बहुरंगी जीव; भ्रमित मनवाले मनुष्य ।

भावार्थ — यदि अपने से भूलवश कुछ बुरा कर्म बन जाय, और जब वह अपने परखने में आ जाय, तो उसका पक्ष तथा अहंकार तुरन्त दूर कर दे ॥ ७ ॥ मन, वाणी तथा कर्म से सत्यवादी, सत्यज्ञानी तथा सदाचारी की संगत करे । जो अनेक भुलावे में भटकते हुए भ्रमित लोग हैं उनकी संगत छोड़ दे या उनसे बचा रहे ॥ ८ ॥

विशेष — अपनी गल्ती अपनी समझ में आ जाने पर उसे विनम्रता पूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिये और यदि अवसर एवं उचित हो तो जिनके प्रति हुआ या जिनके बीच में हो उनसे क्षमा भी माँग लेना चाहिये । अपनी गल्ती को स्वीकार करने वाला ही वीर है ।

आँधरि गुष्ट न भावै कोई । बिन देखे परतीत न होई ॥ ९ ॥
जौ लौं देखिये न अपने नैना । तौ लौं मानिये न गुरु के बैना ॥१०॥

शब्दार्थ — आँधरि = अन्धी; विवेकहीन । गुष्ट = गोष्ठ; सभा । नैना = विवेक ।

भावार्थ — वीर एवं विवेकी पुरुष को विवेकहीन सभा अच्छी नहीं लगती । वह बिना स्वयं परख कर लिये किसी बात पर अन्धता पूर्वक विश्वास नहीं करता ॥ ९ ॥

अतएव ऐ कल्याणार्थी ! आप भी, जब तक अपने विवेक से भली भाँति वस्तु को न परख लें तब तक गुरु की बातों को भी आँख मूँदकर सच मत मानिये ॥ १० ॥

विशेष — जहाँ युक्तिहीन, केवल शास्त्रों की दोहाई दे-देकर अन्धश्रद्धा पूर्वक कल्पित बातें की जाती हैं; वहाँ की बातें तो विवेकवानों को अच्छी ही नहीं लगतीं। उसे श्रद्धा के साथ बौद्धिक सन्तोष भी चाहिये।

साधारण लोगों के लिये सत्य का ज्ञान प्राप्त करना एक समस्या है। यदि जिज्ञासु श्रद्धा न रखे तो गुरु कितने ही सच्चे हों और वे कितनी ही सच्ची बातें कहें तो भी वह उसे न समझकर, प्रत्युत उसे कुतर्क से काटता ही रहेगा। यदि वह गुरु का पूर्ण परिचय पाये बिना उसकी सब बातें आँखें मूँदकर मानता जाय तो यदि गुरु सच्चा ज्ञानी और पूर्ण पारखी एवं संत है तो शिष्य का कल्याण बना-बनाया है; परन्तु यदि गुरु अधूरा रहा तो शिष्य का घाटा होगा। पूर्ण गुरु मिल जाने पर शिष्य उनकी बातें बेखटके मानकर अपना कल्याण कर सकता है। परन्तु पूर्ण गुरु की बातों पर भी यदि शिष्य विचार कर लिया करे तो दूषण नहीं, अपितु भूषण ही है।

जिज्ञासु एवं शिष्य को चाहिये कि वह श्रद्धापूर्वक बुद्धि से गुरु के वचनों पर विचार करे। बुद्धि एवं विवेक पूर्वक समझकर मानी हुई बातें स्थायी एवं कल्याणकर होती हैं और भावुकता से मान ली गयी बातें क्षणिक तथा प्रभावहीन होती हैं। अतएव महान क्रांतिकारी संत श्री रामरहस साहेब की यह उक्ति कि "जौ लौं देखिये न अपने नैना। तौ लौं मानिये न गुरु के बैना।" बड़ा ही महत्त्वपूर्ण, अंधविश्वास के प्रति विद्रोह तथा सारगर्भित है।

गुरु उपदेश समुझावन हेतू। मुये कहाँ समुझाव अचेतू ॥११॥

शब्दार्थ — मुये = मृतक; विवेकहीन। अचेतू = असावधान।

भावार्थ — गुरु का उपदेश होता है शिष्य को यथार्थ ज्ञान समझाने एवं बोध देने के लिये; परन्तु जो गुरुनामधारी स्वयं विवेकहीन एवं असावधान है, वह शिष्य को क्या समझा सकता या बोध दे सकता है ! ॥११॥

विशेष — गुरु-शिष्य का सम्बन्ध कल्याण के लिये है। यदि कल्याणकार्य न हो तो गुरु-शिष्य का सम्बन्ध कैसा ? अतएव जिज्ञासु को निष्पक्ष होकर सत्य का खोजी होना चाहिये।

बीजक, साखी २८०, ६५

साधू होना चाहिये, पक्का होय के खेल।
कच्चा सरसों पेरि के, खरी भया नहिं तेल ॥१५॥

शब्दार्थ — खेल = साधना। खरी = खली।

भावार्थ — विवेक-वैराग्यादि पक्के सद्गुणों की साधना करके साधु होना चाहिये; अन्यथा कच्ची सरसों पेर कर न तेल होता है और न खली ही ॥ १५ ॥

विशेष — सद्गुरु कबीर की स्वीकृति है कि साधु होना चाहिये। परन्तु अधकचरे में नहीं, पक्का होकर। भक्ति, विवेक, वैराग्यादि साधनों में जब अपने को खूब कस ले, तब साधु का वेष ले। वेष से काम बनने वाला नहीं है, रहनी की आवश्यकता है।

साँचा सौदा कीजिये, अपने मन में जान।
साँचे हीरा पाइये, झूठे मूलहु हान ॥१६॥

शब्दार्थ — हीरा = स्वरूपज्ञान।

भावार्थ — अपने मन में अच्छी तरह समझ बूझकर सच्चे ज्ञान का सौदा करो। सत्य से ही स्वरूपज्ञान रूपी हीरा मिलेगा; और झूठे से तो अपने मूल की भी हानि होगी ॥ १६ ॥

विशेष — अपना चेतन स्वरूप ही मूलधन है जो नित्य है। असत्य का पक्ष पकड़ने से स्वरूपज्ञान जाता रहता है।

१५—यथार्थ निर्णय तथा गुरु की खोज

चौपाई—१२

जेहि मानुषबुद्धि सब विधि आवै। अपना कारज सोई बनावै ॥ १ ॥
कपट कुटिलता काल नसाई। सत्य विचार रहे लौ लाई ॥ २ ॥

शब्दार्थ — अपना कारज = कल्याण। काल = कल्पना, कामादि।

भावार्थ — जिस व्यक्ति में सब प्रकार से मानवीय बुद्धि आ जाती है; वह अपना कल्याण बना लेता है ॥ १ ॥ वह कपट, क्रूरता और कामकल्पनादि का नाश करके विचारादि में ही अनुरक्त रहता है ॥ २ ॥

जौनि भाँति जिव कारज होई। लाज मिटाय करै दृढ़ सोई ॥ ३ ॥
लोक लाज कुल कान के मारे। भँवरि भँवरि भव रहहिं बिचारे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — कान = कानि; मर्यादा; लिहाज। मारे = मारा, ग्रस्त, पीड़ित। भँवरि = भँवर; चक्कर। बिचारे = बेचारे; बे-चारा। फारसी का 'चारा' शब्द उपाय या शक्तिवाचक है; 'बे' उसमें उपसर्ग है। अतएव निरुपाय, बलहीन को बेचारा कहते हैं।

भावार्थ — जिस प्रकार से जीव का कल्याण एवं मोक्ष हो, वही काम सब लज्जा मिटाकर एवं दृढ़तापूर्वक करना चाहिये ॥ ३ ॥ संसारी और वेषधारी बेचारे लोकलज्जा और कुल की मिथ्या मर्यादा से ग्रसित होकर संसार में ही चक्कर काट रहे हैं ॥ ४ ॥

विशेष — कितने गृहस्थ तथा साधु-वेषधारी, महंत, गद्दीधारी, विद्वान आदि मिथ्या मर्यादा और लोकलज्जा में ही पड़कर सत्यज्ञान और सत्यरहनी धारण करने

से दूर हैं। परन्तु यह एक छलावा है। जिससे कल्याण हो सब लाज छोड़कर वही करना चाहिये।

जेहि यमफंदा छूटे सो करना। नाहक में क्यों पचि पचि मरना ॥५॥
भली भाँति सो लेहु विचारी। सकल अचरज यम आप सुधारी ॥६॥

शब्दार्थ — यम = मलीन मन; वासना। आप = स्वयं।

भावार्थ — जिस साधन से मन, माया, वासना का बन्धन छूट जाय वही करना चाहिये। व्यर्थ में मान-मर्यादा, खानी-वाणी में आसक्त होकर क्यों मरना ? ॥५॥ इसका भली भाँति विचार करलो और मनद्वारा मानी हुई सारी आश्चर्यमय कल्पनायें एवं मान्यतायें तुम स्वयं सुधार लो ॥६॥

विशेष — इस मन रूपी यमराज ने मान-मानकर नाना आश्चर्यमय बन्धन बना रखा है। परन्तु ऐ मुमुक्षु ! तुम उसे तोड़ डालो। मन के द्रष्टा बनो।

खरा खोट जो परखा नाहीं। अंधा धोखा मूल नसाहीं ॥ ७ ॥
प्रथम विचारहु औषध रोगा। केहि विधि शब्द हरै सब सोगा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — खरा = सत्य। खोट = असत्य। औषध = अज्ञानरोग को दूर करने वाला।

भावार्थ — जिसने सत्य और असत्य की परख नहीं की वह विवेकहीन धोखे में पड़कर विचारादि मूलको ही नष्ट कर दिया ॥७॥ पहले अज्ञान रूपी रोग की निवृत्ति के लिये निर्णयवचन रूपी औषध का विचार करो। विचार करने पर तुम देखोगे कि किस प्रकार निर्णयवचन सभी शोक को दूर कर देते हैं ॥ ८ ॥

देखो शब्द प्रकाश विचारी। जाते सकल होय उजियारी ॥ ९ ॥
गुरु एक सो कौन कहावै। जाते आवागमन नशावै ॥१०॥

शब्दार्थ — शब्द प्रकाश = निर्णय वचनों द्वारा निकला ज्ञान। गुरु एक = इकला गुरु; सर्वोतम गुरु।

भावार्थ — ऐ सज्जनो ! जिनसे सब प्रकार से ज्ञान का उजाला होता है उन निर्णय वचनों के प्रकाश को विचार करके देखो ॥ ९ ॥ वह जो सर्वोतम गुरु कहलाता है, जिससे आवागमन का बन्धन नष्ट होता है, कौन है ?॥१०॥

सेवा अनेक करिये केहि केरा। बिन जाने सब धुंध अंधेरा ॥११॥
गुरुमत मन्मत करै विचारा। तब सो जीव करै निरुवारा ॥१२॥

शब्दार्थ — गुरुमत = यथार्थ समझ। मन्मत = मन की कल्पनायें।

भावार्थ — कौन भवतारक है जिसकी अनेक प्रकार से सेवा की जाय ? यह सब ठीक-ठीक जाने बिना सब धुंधला और अंधेरा है ॥११॥ गुरु की सम्मति एवं यथार्थ

समझ क्या है और मन की सम्मति एवं गलत समझ क्या है ? इसका विचार करे, तभी यह जीव अपने बंधनों को खोल कर मुक्त हो सकता है ॥१२॥

बीजक, साखी ३४

बिन देखे वह देश की, बात कहै सो कूर ।
आपुहि खारी खात है, बेचत फिरै कपूर ॥१७॥

शब्दार्थ — **देखे**=अनुभव किये । **वह देश** = मुक्तिस्थिति का स्वरूप । **कूर** = मूर्ख । **खारी**=असार खली; इन्द्रियभोग । **कपूर**=दारचीनी की जाति के पेड़ों से निकला हुआ एक सुगंधित सफेद द्रव्य; तात्पर्य में श्रेष्ठ ज्ञान ।

भावार्थ — मुक्तिस्थिति का वास्तविक अनुभव किये बिना जो उसका उपदेश करते हैं वे मूर्ख हैं । वे स्वयं तो इन्द्रिय भोग एवं जड़भास में फँसे हैं, और दूसरे के लिये शुद्ध ज्ञान एवं मोक्ष का उपदेश देते फिरते हैं ॥१७॥

विशेष — ज्योतिदर्शन, अमृतवल्लरीपान, अनाहतनाद आदि अपने से पृथक किसी काल्पनिक वस्तु में अपने मनको फँसाकर लोग स्थूल-सूक्ष्म विषयवासना ही में पड़े हैं। विषय से सर्वथा रहित शुद्ध चेतन का ज्ञान उनको है ही नहीं, परन्तु वे मुक्ति का ढिंढोरा पीटते हैं । यह एक छलावा है ।

१६-पाँच विषयों में शब्द की प्रधानता जिससे बंध और मोक्ष दोनों सम्भव हैं

चौपाई—१३

औषध पाँच राह सब करहीं । औषध बिना न कोई सरहीं ॥ १ ॥
शब्द स्पर्श रूप रस गंधा । द्वारा पाँच औषध के संधा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **औषध पाँच**=पाँच विषय । **राह**=मार्ग; पंच ज्ञानेन्द्रियाँ । **सरहीं**=सरना; काम चलना, पूरा पड़ना । **संधा**=योग; मेल; घनिष्ठ सम्बन्ध ।

भावार्थ — शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पाँच विषय ही पाँच औषधियाँ हैं और सबलोग इनका सेवन क्रमशः पाँचज्ञानेन्द्रिय कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नाक के द्वारा करते हैं । इन औषधियों के बिना सेवन किये किसी का काम नहीं चल सकता ॥ १ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध इन पाँचो विषय रूप औषधों का क्रमशः कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नाक इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वार से घनिष्ठ सम्बन्ध है ॥२॥

विशेष — ग्रन्थकर्ता पाँचों विषय को औषध बतलाते हैं जिनका पाँच ज्ञानेन्द्रियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है । इन विषयों के सेवन के बिना मनुष्य का निर्वाह नहीं चल सकता । इसलिये मनुष्य को इनका सेवन तो करना पड़ेगा, परन्तु उसे चाहिये कि वह दूषित विषयों का सेवन न करे । मुमुक्षु को मैथुन, मोह, नाच, रंग, नशा, व्यसन, मद्य,

मांस आदि का सर्वथा त्याग करना आवश्यक है। उसे चाहिये कि वह केवल शरीर निर्वाह के लिये आसक्तिरहित होकर पाँचों विषयों का सेवन करे। जहर भी शोधकर काम में ले तो अमृततुल्य औषध का काम देता है और अमृत अन्न भी यदि गलत तरीके से खाये तो जहर रूप रोग बन जाता है, इसी प्रकार पाँचों विषयों में जितने अंश सर्वथा छोड़ने योग्य हों उन्हें सर्वथा छोड़कर और जो निर्वाह के लिये ग्रहण करने योग्य हों उन्हें अनासक्ति पूर्वक ग्रहण करते हुए साधना द्वारा वासनाओं की निवृत्ति करे।

सबहीं द्वारा बूझ रहाई। बिन बूझे नहिं कोइ ठहराई ॥ ३ ॥
कहिं झीना कहिं मोटा द्वारा। तैसा तास भिन्न व्यवहारा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — द्वारा = ज्ञानेन्द्रियाँ। बूझ = समझ; चेतना। ठहराई = स्थिर होना; सिद्ध होना; अनुभव होना। कहीं = कोई। झीना = सूक्ष्म। मोटा = स्थूल।

भावार्थ — सभी इन्द्रियों में चेतन की चेतनावृत्ति रहती है। बिना समझे, बूझे एवं चेतना के कोई भी विषय की सिद्धि एवं अनुभव नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ कोई इन्द्रिय एवं विषय सूक्ष्म है और कोई स्थूल है; और उसी प्रकार उनके विस्तृत या सीमित व्यवहार हैं ॥ ४ ॥

विशेष — ग्रन्थकर्ता यहाँ यह बतलाते हैं कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों से पाँचों विषयों का भोग करने वाला चेतन उनसे पृथक है। वही अपनी बूझ, समझ एवं चेतना से उनका अनुभव करता है। जिस समय चेतन की मनोवृत्ति दूसरी ओर रहती है उस समय किसी विषय का उपभोग करते हुए भी उसका ज्ञान नहीं होता। कभी-कभी भोजन करने के बाद हमसे पूछा जाता है कि कढ़ी कैसे रही ? तो हम कहते हैं कि हम खा तो गये, परन्तु ध्यान नहीं दिये कि कैसे रही। कभी हम किसी की बात सुनते हैं, परन्तु बीच में हमारी चेतनावृत्ति कहीं अलग लग जाती है तो हम उसकी बात समझ नहीं पाते; और हम उससे उस बात को पुनः दोहराने को कहते हैं। कभी हमारे सामने से कोई निकल जाता है; परन्तु उसे हम देख नहीं पाते। अतएव यह बिलकुल सत्य है कि "बिन बूझे नहिं कोइ ठहराई।" अर्थात् इन्द्रियों से विषयों का सम्बन्ध होते हुए भी बिना स्मरणवृत्ति उसमें लगे उसकी सिद्धि एवं अनुभव नहीं होता।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध ये पूर्व-पूर्व सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम हैं और उत्तरोत्तर स्थूलतर एवं स्थूलतम हैं। इसका विश्लेषण ग्रंथकार स्वयं आगे करते हैं।

झीना शब्द है पवन स्वरूपा। तासो मोटा अनल को रूपा ॥ ५ ॥
अनलहू ते जल मोटा होई। जल ते मोटा पृथिवी सोई ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — झीना = सूक्ष्म। अनल = आग।

भावार्थ — शब्द स्थिर वायु का स्वरूप है और पाँचों विषयों में सूक्ष्मतम हैं, (स्पर्श उससे स्थूल है, और वह चंचल वायु का स्वरूप है), रूप उससे भी स्थूल है जो अग्नि का स्वरूप है ॥ ५ ॥ अग्नि से भी जल स्थूल होता है जिसका विषय रस है। और जलसे भी स्थूल पृथ्वी है जिसका गुण गन्ध है ॥ ६ ॥

विशेष — स्थिर वायु सूक्ष्मतम, चंचलवायु सूक्ष्मतर, अग्नि सूक्ष्म, जल स्थूल एवं पृथ्वी स्थूलतर एवं स्थूलतम है। क्रमशः इन पाँचों के विषय शब्द सूक्ष्मतम, स्पर्श सूक्ष्मतर, रूप सूक्ष्म, रस स्थूल तथा गंध स्थूलतर एवं स्थूलतम हैं।

पुनि प्रकाश एक ते एका। थिर होय देखे करे विवेका ॥ ७ ॥
पृथिवी मोटा गंध प्रकाशा। तासों मध्यम दृष्टि प्रवेशा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — प्रकाश = ज्ञान। तासों = इसलिये। मध्यम = बीच का; साधारण।

भावार्थ — पुनः इसमें प्रकाश भी एक से दूसरे का क्रम-विशेष है। इसे स्थिरता पूर्वक विवेक करके देखना चाहिये ॥ ७ ॥ गंधवती पृथ्वी का प्रकाश स्थूल है, इसलिये इसमें दृष्टि का प्रवेश साधारण रूप से होता है ॥ ८ ॥

विशेष — उपर्युक्त ७ वीं चौपाई में "पुनि प्रकाश एक ते एका।" कह कर यह बताया गया है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, चंचलवायु एवं सामान्यवायु; इसी प्रकार गंध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द ये दोनों पंचक पूर्वोत्तर क्रम प्रकाशशील एवं उत्तरोत्तर अधिक प्रकाशशील हैं। यहाँ प्रकाश का अर्थ ज्ञान का आधार है। जिसका स्पष्टीकरण आगे है।

पृथ्वी स्थूल है, इसलिये उसकी ऊपरी सतह तक ही दृष्टि पहुँचती है। पृथ्वी के भीतर क्या है, यह सहज दृष्टि द्वारा नहीं देखा जा सकता।

पृथिवी सों जल झीना होई। भीतर जो है दीसै सोई ॥ ९ ॥
जल सों झीना तेज प्रकाशा। जामें दीसे धरति अकाशा ॥१०॥

शब्दार्थ — दीसै = दिखाई देता है।

भावार्थ — पृथ्वी से जल सूक्ष्म एवं स्वच्छ है, इसीलिये उसके भीतर में जो वस्तु है वह भी दिखती है ॥ ९ ॥ जल से भी सूक्ष्मप्रकाश अग्नि का है, जिसमें धरती से आकाश तक की सब वस्तुयें दिखाई देती हैं ॥ १० ॥

रूप सों अधिक शब्द उजियारा। दृष्टि में आवै सब संसारा ॥११॥
भूत भविष्य जो है वर्तमाना। शब्द के भीतर सबै समाना ॥१२॥

शब्दार्थ — उजियारा = प्रकाश; ज्ञान।

भावार्थ — अग्नि से वायु अधिक सूक्ष्म है इसीलिये रूप से अधिक प्रकाश अर्थात् ज्ञान शब्द में है। शब्द के द्वारा सारे संसार का दिग्दर्शन हो जाता है ॥११॥ जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों समय हैं, ये शब्दज्ञान के भीतर ही प्रविष्ट हैं ॥ १२ ॥

विशेष — जैसे पृथ्वी से जल सूक्ष्म, जलसे अग्नि सूक्ष्म तथा अग्नि से वायु सूक्ष्म है और वायु में चंचलवायु से स्थिर वायु सूक्ष्म है। इसी प्रकार इनके क्रमशः गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द पाँच विषय हैं। ये भी क्रमशः उत्तरोत्तर ज्ञानवर्द्धन में अधिक सूक्ष्म एवं सहायक हैं।

गंध-विषय का जोर संसार में कम है। इसकी आसक्ति लोगों में कम होती है। जो गंध विषय में अत्यन्त आसक्त हों ऐसे व्यक्ति संसार में कम हैं।

रस-विषय गंध से प्रबल है। षटरस की आसक्ति संसार में बहुत है। रस-विषय में आसक्त होकर लोग अधिक विषयी बनते हैं। जो रस-विषय को नहीं जीत पाता वह काम-वासना पर विजय नहीं कर पाता।

रूप-विषय रस से भी प्रबल है। रूप को तो देखते ही अविवेकी मनुष्य पागल बन जाता है। यदि मनुष्य माने हुए आकर्षक रूपों से अपनी दृष्टि हटाकर नेत्र का संयम नहीं करता तो उसका काम-वासना पर विजय कर पाना आकाश-कुसुम ही है।

स्पर्श-विषय रूप से भी अधिक प्रबल है। जैसे घी आग का स्पर्श पाकर पिघल जाता है, वैसे नर-नारी एक दूसरे का स्पर्श पाकर बेभान हो जाते हैं। यदि त्वचा को दूषित स्पर्श से हटाकर उसका संयम नहीं किया गया तो अनर्थ रखा-रखाया है।

शब्द विषय स्पर्श से भी प्रबल है। विषय, कल्पना और भ्रांति के शब्द सुनकर मनुष्य बंधनों में पड़ता है। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल का ज्ञान शब्द के भीतर में है। हम प्राचीनतम तमाम बातें पूर्वलिखित पुस्तकों के द्वारा ही जानते हैं। वर्तमान में भी सारा व्यवहार, व्यापार कथनोपकथन, ग्रन्थ, पत्र, पत्रिका, समाचार पत्र, वही, खाता आदि शब्द द्वारा ही चलते हैं। भविष्य के लिये भी ज्योतिषविद्या द्वारा या अनुमान करके अनेक बातें शब्दों में पिरों कर पुस्तकों में रखी गयी हैं। जड़ और चेतन, बन्धन और मोक्ष की परिभाषा शब्दों में ही की जाती है। अतएव शब्दों में अधिक प्रकाश है। अर्थात् ज्ञान के माध्यम में शब्द प्रबलतम है। यहाँ ज्ञान का अर्थ केवल जानना है। वह यदि विवेक पूर्ण रहा तो कल्याणदायी होगा और यदि अविवेकपूर्ण रहा तो बन्धनदायी होगा। यहाँ ग्रन्थकर्ता का मन्तव्य है कि संसार में सारशब्द एवं विवेकपूर्ण वचन बहुत कम हैं। सर्वत्र रोचक, भयानक शब्द का ही जोर है। इसलिये शब्द के जाल में अधिकांशतम लोग उलझे हैं।

बूझ शब्द में पैठे जाई। शब्द के भीतर अनल रहाई ॥१३॥
अनल मध्य होय के जल देखै। जल के भीतर पृथिवी पेखै ॥१४॥

शब्दार्थ — बूझ = समझ; चेतनावृत्ति। पैठे = घुसना; प्रविष्ट होना। अनल = अग्नि; अहंकार।

भावार्थ — मनुष्य की चेतनावृत्ति शब्दों में जाकर प्रविष्ट हो जाती है। और शब्द घेरा के भीतर ही अग्नि के रूप विषय का ज्ञान रहता है॥ १३ ॥ इसी प्रकार

अग्नि के रूप विषय के भीतर ही होकर जल के रस का ज्ञानक्षेत्र समझना चाहिये। और रस क्षेत्र के भीतर ही पृथ्वी के गंध विषय का विस्तार समझना चाहिये ॥ १४ ॥

विशेष — तात्पर्य यह है कि संसार में पाँचों विषयों में शब्द का क्षेत्र विशाल है। उससे कम स्पर्श तथा रूप, रूप से कम रस तथा रस से कम गंध विषय का क्षेत्र है।

अथवा उपर्युक्त दोनों चौपाइयों का अर्थ हो सकता है कि मनुष्य का लक्ष्य भ्रामक शब्दों में जा बैठता है; परन्तु उन भ्रामक शब्दों में अग्निवत् अहंकार एवं देहाभिमान में आरूढ़ होने से रज-वीर्य रूप जल का एकत्रीकरण होना देखा एवं समझा जाता है। और उस जल के भीतर ही स्थूल शरीर रूप पृथ्वी का निर्माण होना सम्भव होता है।

अथवा मनुष्य की चेतनावृत्ति भ्रामक शब्दों में प्रविष्ट होकर मान लेती है कि वायु में अग्नि, अग्नि में जल तथा जल में पृथ्वी लीन होकर एक ब्रह्म की सिद्धि हो जाती है।

साखी–रैन समानी भान में, भान अकाशहि माहिं।
अकाश समाना शब्द में, शब्द रहा कछु नाहिं ॥१८॥

शब्दार्थ — रैन = रात्रि; अज्ञान। भान = सूर्य; ज्ञान। अकाश = शून्य; विज्ञान। शब्द = ब्रह्म; ॐ।

भावार्थ — जैसे रात्रि का अंधकार सूर्य के उदय होते ही उसमें लीन हो जाता है और शाम होते ही सूर्य आकाश की किसी दिशा में छिप जाता है, और फिर आकाश भी तमाच्छादित होकर केवल शब्द में ही सब व्यवहार चलता है। अर्थात् अंधकार में भी शब्द कहकर व्यवहार होता है। अन्ततः शब्द भी शान्त हो जाता है।

उसी प्रकार अज्ञान ज्ञान में, ज्ञान विज्ञान में तथा विज्ञान ब्रह्म, ॐ आदि शब्दों में समा जाता है; और अन्ततः अपने चेतन स्वरूप से पृथक वह ब्रह्म, ॐ भी कोई वस्तु नहीं। अतएव जीव शब्दों के चक्कर में ही भटक जाता है ॥ १८ ॥

विशेष — पूर्वपक्ष के मत की दुर्बलता दिखलाने के लिये ग्रंथकर्ता कहते हैं कि अद्वैतवादीजन अज्ञान का अधिष्ठान (आधार) ज्ञानस्वरूप आत्मा को ही मानते हैं। इसलिये उनके मन्तव्य से अज्ञान, ज्ञान स्वरूप आत्मा में ही लीन हो जाता है। और ज्ञानस्वरूप आत्मा आकाशवत व्यापक विज्ञान में लीन हो जाता है। और आकाशवत व्यापक विज्ञान ब्रह्म या ॐ शब्द में समाता है। अर्थात् पूर्वपक्ष का अंतिम शब्द ब्रह्म या ॐ है जो सबका अधिष्ठान है। परन्तु विवेक करके देखा जाय तो अपने चेतन स्वरूप से पृथक ब्रह्म या ॐ कहाँ है ? एक कल्पना ही है। अतएव इस शब्द का अर्थ कुछ भी नहीं रहा। केवल कल्पना ही हाथ में लगी।

इसलिये विवेकी को शब्दों के वेग में न बहकर उनका द्रष्टा बनना चाहिये और शब्दादि समस्त विषयों से पृथक अपने स्वरूप को समझना चाहिये।

१७-निर्णय शब्द तथा गुरु पर विवेचन

चौपाई—१४

पाँचों औषध करै बिचारा। मोटा झीना है व्यवहारा॥ १॥
औषध अन्न जल पेट समाहीं। जाते क्षुधा अरु प्यास नसाहीं॥ २॥

शब्दार्थ — मोटा = स्थूल। झीना = सूक्ष्म।

भावार्थ — शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध इन पाँचों औषधों का विचार करें। इनका स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप व्यवहार है॥ १॥ इस औषध में अन्न और जल हैं जो पेट में प्रवेश करते हैं; और जिससे भूख और प्यास मिटती है॥ २॥

बहु प्रकार लाद के रोगू। सो सब जाय भोजन संजोगू॥ ३॥
गंध कपाल पहुँचे जाई। गुण अवगुण सब अंग समाई॥ ४॥

शब्दार्थ — लाद = आँत; अतड़ी; पेट। गंध = सुगंध-दुर्गंध विषय।

भावार्थ — पेट के रोग कब्जियत, मंदाग्नि आदि बहुत प्रकार के होते हैं। आहार-विहार सुधार लेने से वे सब दूर हो जाते हैं॥ ३॥ गंध विषय नाक द्वारा मस्तिष्क में पहुँच जाता है। यदि गंध शुद्ध है तो शरीर के लिये गुणकारी बनकर और यदि अशुद्ध है तो अवगुणकारी बनकर सब अंगों में समा जाता है॥ ४॥

विशेष — संसार में अन्न न पाने के कारण भूख से तड़फ कर मरने वाले कम हैं; परन्तु भूख से अधिक खाकर और पेट का रोगी बनकर मरने वाले अधिक हैं। प्रायः पेट के रोग से ही अन्य रोग होते हैं। पेट के रोग होते हैं अधिक खाने से, गलत चीज खाने से तथा समयविरुद्ध खाने से। यदि भूख लगने पर खाया जाय और भूख से कुछ कम खाया जाय तो समयविरुद्ध होने पर भी प्रायः विकार नहीं बनता। यों समय का नियम भी आवश्यक है।

अधिक खाना महापाप है। अधिक खाने वाले का मन स्थिर नहीं रहता। अधिक खाने से पेट में गैस बनती है और शरीर के जिस अंग को दुर्बल पाती है उसे दबा देती है और वहाँ एक नया रोग उत्पन्न हो जाता है। अल्प, शुद्ध, सात्त्विक भोजन करके पेट को शुद्ध रखना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग जीभ के रस विषय में आसक्त होते हैं वे इस बात को नहीं समझ पाते। अतएव रस विषय को जीतना चाहिये।

गंध विषय भी स्वास्थ्य पर असर डालता है। दुर्गन्ध ग्रहण होने पर स्वास्थ्य खराब होता है। और सुगन्ध ग्रहण करने से स्वास्थ्य का शुद्धीकरण होता है। परन्तु सुगंध की भी आसक्ति नहीं होनी चाहिये।

लपै गुण सब ले पहुँचावै। गुण अवगुण सब माहिं समावै॥ ५॥
आँखि की राह रूप गहि लेई। शीतल उष्ण अंगमहि देई॥ ६॥

शब्दार्थ — लेपै = लेपने की क्रिया; लिप्त होना; मैल; पाप; वासना। अंगमहि = अंगों में; त्वचा में।

भावार्थ — विषयों में लिपायमान वासनायें सभी गुणों को जीव के साथ लेकर कर्मानुसार योग्य खानियों में पहुँचा देती हैं; और गुण-दोष सभी कर्मी जीवों में समाये हुए हैं ॥ ५ ॥ जीव नेत्रद्वारा रूप विषय को; और त्वचा द्वारा शीत-उष्णादि स्पर्शों को ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

शब्द औषधी कान के द्वारा। बूझ समाय करै निरुवारा ॥ ७ ॥
हर्ष विषाद यंत्र और मंत्रा। व्यापै सब कोइ कोइ स्वतंत्रा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — बूझ = समझ; चेतना। निरुवारा = निरवार; सुलझाव। विषाद = दुःख, शोक। यंत्र = अंक या अक्षरों से युक्त विशेष आकार या कोष्ठ जिनमें देवताओं का वासा मानते हैं। मंत्र = कुछ शब्दों का समूह। व्यापै = ढंक लेना; समा जाना; प्रभावित करना।

भावार्थ — शब्द विषय कान के द्वारा ग्रहण होता है; और उन शब्दों का रहस्य जब समझ में आता है तब मनुष्य उनका सुलझाव करता है ॥ ७ ॥ हर्ष और शोक, यंत्र और मंत्र के शब्द होते हैं; ये सभी जीवों को प्रभावित करते हैं। इनसे कोई विरला-विरला मुक्त होता है ॥ ८ ॥

विशेष — कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिनको सुनकर हर्ष होता है तथा कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिनको सुनकर शोक होता है। परन्तु इन हर्ष-शोकों के पीछे अपनी अज्ञान-कृत मान्यता ही रहती है। यंत्र-मंत्र के विषय में तो यही शब्द पर्याप्त है कि "यंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो सब कोय।"

हर्ष-शोक के शब्दों में जीव अज्ञानवश प्रभावित होता है। यंत्र-मंत्र एकदम झूठे होते हैं; परन्तु अविवेकवश उसमें भी बहुतलोग प्रभावित होकर भटक रहे हैं।

मर्म सबै द्वारा को बूझै। बिना शब्द निर्णय नहिं सूझै ॥ ९ ॥
स्पर्श रूप इत्यादिक चारी। सो सब मोटा स्थूल अधिकारी ॥१०॥

शब्दार्थ — मर्म = रहस्य; भेद। द्वारा = इन्द्रियाँ; मत-पथ।

भावार्थ — मनुष्य को चाहिये कि वह सभी इंद्रियों के रहस्य एवं दुर्बलता को भली-भांति समझ कर उनका त्याग करे अथवा सभी मत-पंथों के रहस्य को परख कर भ्रम से बचे। परन्तु निर्णय-शब्दों के बिना मनुष्य को सारासार नहीं समझ पड़ता ॥ ९ ॥ स्पर्श, रूप, रस, गंध—ये चार विषय स्थूल हैं और स्थूल शरीर के भोग के आश्रय हैं ॥ १० ॥

पुनि अस्थूल सो थिर न रहाई। तैसे औषध ताहि समाई ॥११॥
अंग अंग को देश है जैसा। अल्प गहिये औषध तैसा ॥१२॥

शब्दार्थ — **अस्थूल**=स्थूल शरीर । **अंग**=शरीर के अंग प्रति अंग । **देश**=जगह ।

भावार्थ — फिर यह स्थूल शरीर तो स्थिर रहने वाला नहीं है । अतएव इसे क्षणभंगुर समझकर और इसकी आसक्ति त्यागकर इसके रक्षानुसार ही इसको खान-पानादि की औषध दो ॥ ११ ॥ भिन्न-भिन्न अंगों एवं इंद्रियों की जैसी जगह है उसके लिये उसी प्रकार पंच विषयरूप औषध अल्पमात्रा में शुद्धरूप से आसक्ति रहित होकर ग्रहण करो ॥ १२ ॥

विशेष — शरीर नाशवान है । इसके लिये पाप मत करो । इसके निर्वाहमात्र के लिये इसका खान-पानादि का व्यवहार करो । जैसे इंद्रिय और उसकी जगह है वैसे उसे स्वल्प निर्वाह दो । नेत्र से देखकर चलो । देखकर काम करो । सद्ग्रंथ पढ़ो, संतों के दर्शन करो । और इससे विकारी रूपदर्शन का त्याग करो । जीभ से सात्त्विक पवित्र भोजन ग्रहण करो । मांस, अण्डा, मछली, शराब, ताड़ी, गाँजा, भाँग, तम्बाकू, बीड़ी आदि त्याग दो । बहुत चटपटा भी मत खाओ । सात्विक, मध्यवर्तीय वस्त्रों एवं बिस्तरा आदि का उपयोग करो । कोमल, बहुत मूल्यवान वस्त्रादि की आसक्ति न बनाओ । निरर्थक स्पर्श मत करो । कुत्सितभावना से स्पर्श मत करो । दुर्गंध मत ग्रहण करो । सुगंध की भी आसक्ति न रखो । निर्णय, विवेकपूर्ण शब्दों का श्रवण, कथन, मनन आदि करो । विषयोत्पादक, भ्रमोत्पादक तथा मोहोत्पादक शब्द न बोलो, न सुनो और न सोचो । इस प्रकार विवेक से जीवन निर्वाह लो ।

शब्द अति झीना बूझ विचारा । जाते होय सकल निरुवारा ॥१३॥
शब्द बिना कोइ पार न पावै । बिन गुरु कौन सो दावँ लखावै ॥१४॥
सर्व देश स्वलपज्ञ है सोई । बिनु तेहि कारज सधै न कोई ॥१५॥

शब्दार्थ — **दावँ**=बार; मौका; सुयोग; उपाय; युक्ति । **सर्वदेश**=सब मत, पंथ, सम्प्रदाय । **स्वलपज्ञ**=कम ज्ञानवाला । **सोई**=मनुष्य । **सधै**=साधना; काम पूरा होना ।

भावार्थ — शब्द विषय पाँचों विषयों में अत्यंत सूक्ष्म है । समझ एवं विवेक रखने से शब्दों के द्वारा ही सभी बातों का सुलझाव होता है ॥ १३ ॥ सारासार शब्दों को परखे बिना कोई इस महावाणी जाल तथा खानी जाल से भी पार नहीं पा सकता । अथवा निर्णय शब्दों के पाये बिना काल, संधि, झाँईं एवं रोचक, भयानक से कोई उबर नहीं सकता । परंतु बिना यथार्थ पारखी सद्गुरु के मिले वह युक्ति कौन बतायेगा जिससे सब सत्य-असत्य समझ में आवे ॥ १४ ॥ सभी मत, पथ, सम्प्रदायों में भटकते हुए मनुष्य प्राय: अल्पज्ञान वाले ही हैं; अतएव बिना यथार्थ पारखी-सद्गुरु के उनके कल्याण का कोई भी कार्य पूरा नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

बीजक, साखी—४

शब्द बिना सुरति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिर फिर भटका खाय ॥१९॥

शब्दार्थ — सुरति = सुरत; ध्यान; लक्ष्य।

भावार्थ — शब्द बिना लक्ष्य अंधा है, कहो भला, वह कहाँ जायगा ? जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख या काल, संधि, झाँई या रोचक, भयानक आदि शब्दों को समझने का द्वार गुरुमुख या सारशब्द या यथार्थवाणी है; इसे पाये बिना जीव बारम्बार भ्रमपूर्ण वाणियों में भटका खाता है ॥ १९ ॥

विशेष — शब्द सुनकर उसके आधार पर मन चलता है। संसार में सर्वत्र भ्रमपूर्ण शब्दों का पसारा है। गुरुमुख सारशब्दों द्वारा ही उसको परख करके उनसे छुटकारा लिया जा सकता है।

साखी—गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव।
गुरू सदा सो बन्दिये, जो शब्द बतावै दाव ॥२०॥

शब्दार्थ — भेद = फर्क; अंतर। भाव = आशय; अर्थ; उपदेश; विश्वास; ढंग। दाव = दावँ; युक्ति।

भावार्थ — गुरुजनों में परस्पर बड़ा अंतर है। उन सबके आशय, उपदेश, विश्वास एवं प्रकारों में भी फर्क है। वही सद्गुरु सदैव वंदनीय है जो भवबंधनों एवं भ्रांति से छूटने के लिये युक्तिपूर्ण निर्णयशब्दों को बताता है ॥ २० ॥

विशेष — संसार में अनेक भेदों वाले गुरु हैं। उनके अनेक रीति, संस्कार, विश्वास एवं विचार हैं; परंतु यदि वे स्वयं सदाचार एवं त्याग से चलते हैं और जनता को उसकी प्रेरणा देते हैं तो उन सबके द्वारा समाज का किसी-न-किसी प्रकार से हित होता है। परन्तु जीव के पूर्णकल्याण का उपदेष्टा सच्चा वंदनीय सद्गुरु वही है जो सर्व भ्रमों का अन्त करके और स्वरूपबोध देकर मुक्तिपथ में कर दे।

साखी—फेर परा नहिं अंग में, नहिं इंद्रीयन माहिं।
फेर परा कछु बूझ में, सो निरुवारेहु नाहिं ॥२१॥

शब्दार्थ — फेर = अन्तर; फर्क। बूझ = समझ। निरुवारेहु = निरवारना; सुलझाना; दूरकरना; मुक्तकरना; छुड़ाना।

भावार्थ — ज्ञानी-अज्ञानी के शरीरों के हाथ, पैर, मुख, ग्रीवादि, अंगों में अन्तर नहीं और न उनकी इन्द्रियों में फर्क है। कुछ अन्तर है तो दोनों की समझ में ही। परन्तु ऐ मनुष्य ! तूने उसका निर्णय करके सुलझाव नहीं किया ॥ २१ ॥

विशेष — अज्ञानी के एक मुख तथा दो हाथ हों और ज्ञानी के दो मुख तथा चार हाथ हों ऐसी बात नहीं है। बाह्य अंगों में तथा इन्द्रिय शक्तियों में दोनों समान हैं। दोनों की केवल समझदारी में अन्तर है। ज्ञानी अपने को शरीर से भिन्न शुद्ध चेतन, जीवन लक्ष्य शांति एवं मोक्ष की प्राप्ति, उसके साधन त्याग, संयम, सत्संग समझता है; और अज्ञानी अपने को शरीर; जीवन लक्ष्य इन्द्रिय भोग, उसके साधन केवल धन एवं पाँचों विषय, कुसंग, राग-रंग समझता है।

यदि मनुष्य दुखी है तो इसका अर्थ है कि वह समझदार नहीं है। ठीक समझ हो जाने से मनुष्य दुःखों से मुक्त हो जाता है।

१८–गुरु तथा उनके उपदेशों की वास्तविकता की परख

चौपाई—१५

यह संसार बहु वैद्य विराजै। नाना भाँति औषधी छाजै॥ १॥
साँच एक झूठ बहुतेरा। बिना सांच नहिं होय निबेरा॥ २॥

शब्दार्थ — वैद्य = गुरु। विराजै=विराजना, शोभित होना, रहना। औषधी= उपदेश। छाजै=छाजना, शोभा देना। निबेरा = निर्णय, छुटकारा।

भावार्थ — इस जगत में बहुत से गुरु विराजमान हैं, उनके नाना प्रकार के उपदेश भी शोभते हैं॥ १॥ सत्य गुरु और सत्य उपदेश तो कहीं बिरले-बिरले हैं और झूठे बहुतेरे हैं। परन्तु बिना सच्चे गुरु तथा सच्चे उपदेश के न निर्णय होता है न जीव का भवबन्धनों से छुटकारा ही॥ २॥

एक असल पर नकल अनेका। अनेक नकल नहिं पावैएका॥ ३॥
बहु विधि ठग सब करैं ठगाई। यम के फन्दा रहै अरुझाई॥ ४॥
बूझ समुझि के औषधि कीजे। मिथ्या में जीव काहे को दीजे॥ ५॥

शब्दार्थ — असल = अस्ल; सचाई। अस्ल अरबी शब्द है। यम = मन; कल्पना।

भावार्थ — एक असल पर अनेकों नकल होते हैं; परन्तु अनेकों नकल उस एक असल को नहीं तुलते॥ ३॥ बहुत तो गुरु के वेष में ठग घुसकर वे ठगाई का काम करते हैं; और अपने मनःकल्पित बन्धनों में लोगों को फँसा रखते हैं॥ ४॥ अतएव ऐ जिज्ञासुओ! समझ-बूझ कर उपदेश ग्रहण करो, अपने जीव को मिथ्या जंजाल में क्यों डालो॥ ५॥

मसला—गुरु कीजिये जान। पानी पीजिये छान॥ २॥

शब्दार्थ — पानी = जल; वाणी।

भावार्थ — जानबूझ एवं अच्छीतरह समझ कर यथार्थ सद्गुरु से उपदेश लो। और जैसे सदाचारी लोग स्वच्छ कपड़े से छानकर जल पीते हैं, वैसे खूब छान, विचार एवं निर्णय करके सार वाणियों को ग्रहण करो ॥ २ ॥

१९—गुरु और उनके उपदेशों की निष्पक्ष परख

चौपाई—१६

वेद पुराण किताब कुराना। दोहा साखी छन्द प्रमाना ॥ १ ॥
अनन्त भाँति का शब्द पसारा। बिन जाने नहिं होय सुधारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **प्रमाना** = प्रमाण; वह साधन जिसके द्वारा किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो; सत्यता; आदेश; उपदेश।

भावार्थ — संसार में वेद, पुराण, किताब, कुरान, दोहा, साखी, छन्द, आदेश-उपदेश एवं सिद्धान्त सिद्ध करने के साधन—अगणित प्रकार के शब्दों का पसारा है। इन सबकी यथार्थता समझे बिना कल्याण नहीं हो सकता ॥ १,२ ॥

सो सब औषध बहुविधि जाँचै। यम फंदा से तबहीं बाँचै ॥ ३ ॥
पक्ष बानी को मन्मत कहिये। जाते दुंद सबै घर लहिये ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — **औषध** = वाणी; उपदेश। **जाँचै** = जाँचना; परखना। **दुंद** = द्वन्द्व; झगड़ा। **सबै घर** = सब मत, पंथ।

भावार्थ — उपर्युक्त सभी ग्रन्थों, छन्दों एवं शब्दों की भलीभाँति परख करे तभी यह जीव भवबंधनों से बच सकता है ॥ ३ ॥ जिस वाणी में किसी मतवाद, सम्प्रदाय एवं परम्परा का पक्ष है वह गुरुमत नहीं अपितु मन्मत है। इन्हीं पक्षपातपूर्ण वाणियों के कारण सभी सम्प्रदायों में झगड़ा मचा रहता है ॥ ४ ॥

विशेष — जो निर्णय, युक्ति एवं विवेक की बातें नहीं मानता; प्रत्युत अपने सम्प्रदाय; परम्परा और तथाकथित इलहामी किताबों एवं ईश्वरीय वाणियों पर जोर देता रहता है, निश्चित ही उसकी बातें पक्षपात से खाली नहीं होतीं।

निर्णय बानी गुरुमत होई। जाते पछापच्छ सब खोई ॥ ५ ॥
जब निर्णय की बानी आवै। झूठा खोटा आपु लजावै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **पछापच्छ** = पक्ष + अपक्ष; 'पक्ष' का अर्थ है किसी की बात उचित न होते हुए भी उसे सत्य बताना और 'अपक्ष' का अर्थ है किसी की बात ठीक होने पर भी उसपर ध्यान न देना। **खोटा** = घटिया; बुरा। **आपु** = स्वयं; खुद। **लजावै** = लज्जित होना, दूर हो जाना।

भावार्थ — यथार्थ निर्णय की वाणी ही गुरुमत कहलाती है; जिसमें झूठे का पक्ष नहीं लिया जाता और सत्य से उदासीन नहीं हुआ जाता। उसमें पक्ष और अपक्ष दोनों समाप्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ इस प्रकार जब निर्णय की वाणी मनमें आती है, तब झुठाई, बुराई आदि अपने आप दूर हो जाती हैं ॥ ६ ॥

निर्णय सो सबके हितकारी। जेहि परसे जीव होय सुखारी ॥ ७ ॥
सारशब्द निर्णय को नामा। जाते होय जीव को कामा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — परसे = स्पर्श करने से; मनन करने से। सार शब्द = निर्णय वचन; गुरुमुख वाणी। कामा = कार्य, कल्याण।

भावार्थ — यह निर्णय वचन सबके लिये हितकारी होता है, उसके मनन करने से मनुष्य सब भ्रान्तियों एवं भारों से मुक्त होकर सुखी हो जाता है ॥ ७ ॥ निर्णय को ही सारशब्द कहते हैं, जिसके धारण करने से जीव का कल्याण होता है ॥ ८ ॥

गुरु एक जो निर्णय करई। झगरा कबहुँ परै न परई ॥ ९ ॥
जो कोई निर्णय आश्रित भयऊ। सेवा करि निज कारज कियऊ ॥१०॥

शब्दार्थ — आश्रित = आधार।

भावार्थ — एक वही गुरु सर्वोपरि है जो निष्पक्ष एवं यथार्थ निर्णय करता है। न वह कभी वादविवाद में पड़ता है न दूसरे को उसमें डालता है ॥ ९ ॥ जो कोई मुक्त जीव निर्णय वचनों का आधार लेता है वह निर्णयवचन दाता सद्‌गुरु की सेवा करके अपना कल्याण कर लेता है ॥१०॥

सो सब सेवा शिष्य कहावै। मन्मत सो जो और बनावै ॥११॥
जगबुधि कहै मम गुरु एका। जेहि तेहि सेवा करै अनेका ॥१२॥

शब्दार्थ — जेहि तेह = जिनका, तिनका; यत्र तत्र; भूत, भैरवी, देवी, देवतादि।

भावार्थ — उपर्युक्त निर्णयदाता सद्‌गुरु एवं सद्‌ज्ञान की सेवा एवं सेवन करने वाला शिष्य कहलाता है; और वह मन्मती है जो विवेक-वैराग्य सम्पन्न मनुष्य रूप संत-गुरु जनों को छोड़कर अतिमानव की खोज करता तथा आकाश में हाथ उठाता है ॥११॥ संसारीबुद्धि वाले मनुष्य भी कहते हैं कि "हमारे भी एक गुरु हैं जिनके हम शिष्य हैं;" परन्तु वे भ्रम-वश यत्र-तत्र भूत-भैरव, देवी-देवता, पानी-पाथर-पेड़ पर सर पटकते तथा उनकी सेवा करते हुए घूमते हैं ॥१२॥

पुनि जाको इन गुरु ठहराई। ताको दूसर गुरू सहाई ॥१३॥
जेहि की सेवा करै लौलाई। सो सेवापद कैसे कहाई ॥१४॥

शब्दार्थ — लौ = ध्यान; लगन।

भावार्थ — फिर इन संसारी बुद्धि वालों ने जिनको अपना गुरु मान रखा है, वे पूर्ण विवेकी एवं यथार्थ सद्गुरु तो हैं नहीं। उनको तो अपने कल्याण के लिये अभी अन्य सद्गुरु का आश्रय लेना चाहिये। अथवा वे स्वयं तृप्त न होकर अन्य दैव-गोसइयाँ पुकार रहे हैं ॥१३॥ अतएव ये जिन अबोधी गुरुओं की सेवा ध्यान लगाकर करते हैं उनकी सेवा यथार्थ सेवापद कैसे कहला सकता है ? ॥१४॥

टहल करै टहलुवा कहावै। तासो कैसे पद सेवा बनि आवै ॥१५॥
सोइ सेवक जो सेवा करई। बिना विचार बूझि ना परई ॥१६॥

शब्दार्थ — टहल = चाकरी, काम-धंधा। टहलुवा = टहलुआ; टहलू; चाकर; नौकर। ना परई = नहीं पड़ता; बिना सोचे-समझे किसी काम को न करना।

भावार्थ — जो अपने तथा परिवार के पेट-पर्दा को चलाने के लिये किसी के यहाँ चाकरी करता है वह नौकर-चाकर कहलाता है। इसी-प्रकार जो पुत्र, धन, स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये कल्पित देवी-देवता, भूत-भैरव पूजता है वह चाकर है। उससे मोक्षविषयक सेवापद कैसे बनेगा ? ॥ १५ ॥ सच्चा गुरु का सेवक वही है जो यथार्थ ज्ञान तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिये यथार्थ सद्गुरु की सेवा करता है; और बिना समझे-बूझे वह किसी की बातों में नहीं पड़ता ॥ १६ ॥

विशेष — सच्चे सद्गुरु का सच्चा सेवक वही है जो सब काम विवेक से करता है। वह किसी के भ्रमाने से नहीं भ्रमता।

अपनी अपनी गुरुमत जानै। और सबै मन्मत अनुमानै ॥१७॥
बिना निर्णय सो दुंद न जाई। पचिपचि मरहि करहिं लराई ॥१८॥
जहाँ झगरा तहाँ गुरुमत नाहीं। जहाँ गुरुमत तहाँ दुंद नसाहीं ॥१९॥

शब्दार्थ — गुरुमत = यथार्थ मत। मन्मत = मनःकल्पित मत। दुंद = द्वन्द्व, झगड़ा। पचिपचि = दुखी हो होकर।

भावार्थ — यह सभी का स्वभाव है कि अपने-अपने मत को सब लोग गुरुमत समझते हैं तथा अन्यमतों को मन्मत मानते हैं ॥ १७ ॥ यह झगड़ा बिना निर्णय के नहीं जाता। फलतः लोग दुखी हो होकर लड़ते-मरते हैं ॥१८॥ जहाँ झगड़ा है, वहाँ गुरुमत नहीं है; और जहाँ गुरुमत आ जाता है, वहाँ तू-तू, मैं-मैं का झगड़ा समाप्त हो जाता है ॥ १९ ॥

बीजक, साखी १३८, ५

पछापछी के कारणे, सब जग रहा भुलान।
निर्पछ होय के हरिभजे, सोई सन्त सुजान ॥२२॥

शब्दार्थ — पछापछी = राग-द्वेष। हरि = ज्ञान। भजै = स्मरण करे; चिंतन करे। सुजान = अच्छाजानकार; ज्ञानी।

भावार्थ — अपने मत का पक्षपात तथा दूसरे मतों के प्रति उदासीनता—इस राग-द्वेष के कारण जगत के सब मनुष्य भूल में भटक रहे हैं। जो निष्पक्ष होकर स्वरूप ज्ञान का चिंतन करता है, वही संत तथा ज्ञानी है ॥ २२ ॥

शब्द शब्द बहु अन्तरे, सारशब्द मथि लीजै।
कहहिं कबीर जहाँ सारशब्दनहिं, धृग जीवन सो जीजै ॥२३॥

शब्दार्थ — अन्तरे = अन्तर; फर्क। सारशब्द = निर्णय वचन। धृग = धृक; निंदनीय। जीजै = जीना; जीवित रहना।

भावार्थ — अनेक प्रकार के शब्दों में परस्पर बड़ा अन्तर होता है; अतएव सब में से मथन करके सारशब्द ले लो। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं जिसके जीवन में निर्णय-वचनों का आदर नहीं है, उसका जीना निंदनीय है। २३ ॥

२०–सच्चे और कच्चे गुरु की परख

चौपाई – १७

खरा खोट परखहु बहु भाँती। तबहीं होय जीव कुशलाती ॥ १ ॥
जेहि गुरु ज्ञान न छूटन केरा। बहु अनुमान भरम बौड़ेरा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — खरा = सत्य। खोट = असत्य। बौड़ेरा = बौड़ना; मतवाला होना; पागल होना।

भावार्थ — सत्य-असत्य की परख अनेक प्रकार से करो; तभी जीव का कल्याण होगा ॥ १ ॥ जिन गुरुओं का ज्ञान भवबन्धन छुड़ाने वाला नहीं है; प्रत्युत अनेक अनुमान-कल्पना एवं भ्रम में ही पागल बना देने वाला है, (वे वास्तविक गुरु नहीं हैं) ॥२॥

भवसागर दुस्तर कठिनाई। नौका नाम तहँ सत्य दृढ़ाई ॥ ३ ॥
बूड़े भव की धार न सूझै। मुये मुक्त ऐसी दृढ़ बूझै ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — भवसागर = जन्म-मरण एवं संसार रूपी समुद्र। दुस्तर = तरने में कठिन।

भावार्थ — वे कहते हैं "संसारसागर तरने में कठिन है और तरने के सभी साधन कठिन हैं।" वे संसारसागर से तरने के लिये नाम की नौका सत्य और सरल कह कर दृढ़ाते हैं; कहते हैं नाम जपते-जपते मृत्यु पश्चात जीव मुक्त होकर भगवान के धाम में चला जायगा ॥ ३ ॥ ऐसा उपदेश सत्य मानकर लोग संसार के धार में ही

डूबने लगते हैं, उनको सारासार नहीं दिखाई देता। क्योंकि वे 'मरने के बाद मुक्ति होगी' ऐसा ही दृढ़ करके मान रखे हैं ॥ ४ ॥

विशेष — जब तक मनुष्य जीवन रहते-रहते, ज्ञान, विवेक द्वारा शोक से मुक्त नहीं होता तब तक मरने पर क्या मुक्त होगा ? "जियत न तरेहु मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै ॥" (बीजक, शब्द १४)

जहाँ से उपजै तहाँ समानै । कसर विकार मूल नहिं जानै ॥ ५ ॥
भरमे आप जीवन भरमावै । नाटक चाटक सुयश बढ़ावै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **मूल** = अज्ञान । **नाटक चाटक** = दिखावा चातुरी ।

भावार्थ — विवेक न प्राप्त होने से लोग जिस विषयवश शरीर धारण किये थे, वही स्थूल-सूक्ष्म विषयासक्ति होने से पुनः उसी गर्भवास में जाते हैं। वे अज्ञान के कसर-विकार को नहीं समझ सके ॥ ५ ॥ ऐसे लोग स्वयं तो नाना भ्रम में हैं ही अन्य जीवों को भी भ्रमाते हैं। वे नाटक-चाटक दिखावा-चातुरी करके संसार में अपनी सुकीर्ति बढ़ाने की चेष्टा में रहते हैं ॥ ६ ॥

करामात करतूत बखानै । नास्तिज्ञान सोइ सत्य कै मानै ॥ ७ ॥
ऋद्धि सिद्धि सब जात नसाई । नास्ति ज्ञान नहीं कुशलाई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **करामात** = चमत्कार; सिद्धि; अचरज भरी बात । **करतूत** = करनी; निद्यकर्म; गुण; कला । **नास्ति** = असत्य । **ऋद्धि सिद्धि** = धन-दौलत और सफलता ।

भावार्थ — वे अचरज भरी चमत्कार की बातें, निंद्यकर्म की बातें, गुण-कला की बातें करते हैं। ये झूठे ज्ञान को ही वे सत्य करके मानते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु धन-, दौलत एवं भौतिक सफलतायें सब अन्त में नष्ट हो जाते हैं। इन झूठे ज्ञान तथा कला चमत्कारों में कल्याण नहीं है ॥ ८ ॥

सब ऐश्वर्य नास्तिहि माहीं । जाके पाछे जिव बौराहीं ॥ ९ ॥
आपु गये यजमानहु खोये । भाँति भाँति के फंदा अरुझाये ॥१०॥

शब्दार्थ — **यजमानहु** = यजमान को भी । **यजमान** = यज्ञ करने वाला; दक्षिणा देकर ब्राह्मणों से धार्मिक कृत्य कराने वाला ।

भावार्थ — वे सभी ऐश्वर्य नाशवान हैं जिनको पाकर एवं जिनके पीछे लोग अहंकार में पागल बन जाते हैं ॥ ९ ॥ ऐसे ऋद्धि, सिद्धि एवं चमत्कार दिखाने वाले बने हुए गुरु स्वयं तो डूबते ही हैं अपने यजमान को भी अनेक प्रकार के भ्रमों एवं बन्धनों में बाँधकर, नष्ट करते हैं ॥ १० ॥

रोगी वैद दोनों एकु ठाऊँ । औषध केहि कल्याण के गांऊँ ॥११॥
जेहि कारण नर साई देवै । सो सौदा जँचि काहे न लेवै ॥१२॥

शब्दार्थ — रोगी = अज्ञानग्रसित शिष्य । **वैद** = भ्रमिकगुरु । **साई** = बयाना; पेशगी । **जँचि** = निरख-परख ।

भावार्थ — उपर्युक्त रोगी और वैद दोनों एक ही रोग के स्थान पर हैं । अर्थात् गुरु-शिष्य दोनों अज्ञानग्रसित हैं । फिर भवव्याधि की औषध किस कल्याण के गाँव में मिलेगी ? अथवा वहाँ भवव्याधि की औषध कहाँ और कल्याण की जगह कहाँ ? ॥११॥ जिस मोक्षसौदा के लिये मनुष्य गुरुओं को सेवा, भक्ति एवं तन-मन-धन समर्पण रूपी बयाना या पेशगी देते हैं, उस सौदा की ठीक निरख-परख वे क्यों नहीं कर लेते ?॥१२॥

ठग भरमावै बहुविधि लूटै । जग धंधा से कबहुँ न छूटै ॥१३॥
मोटी अविद्या छुड़ावन लागै । झीनी महा अविद्या पागै ॥१४॥

शब्दार्थ — **मोटी अविद्या** = स्थूल अज्ञान; धन, पुत्र, स्त्री इत्यादि का मोह । **झीनी अविद्या** = सूक्ष्म अज्ञान; मन से कल्पित देवी-देवादि वाणी-जाल व मान-बड़ाई का मद । **पागै** = आसक्त होना ।

भावार्थ — वस्तुतः ठग गुरु के वेष में आकर लोगों को भ्रमाते और अनेक प्रकार से उन्हें लूटते हैं; और ऐसे गुरु-शिष्य सांसारिक बन्धनकृत धन्धे से कभी नहीं छूटते ॥ १३ ॥ ये गुरु लोग दूसरे को उपदेश करते हैं कि स्त्री, पुत्र, घर, धन, शरीरादि की आसक्ति एवं मद छोड़ दो; और स्वयं अनेक कल्पना, मान-बड़ाई रूपी सूक्ष्म अज्ञान में आसक्त हैं ॥ १४ ॥

झीनी मोटी दोउ कष्ट स्वरूपा । कारण नास्ति परै तेहि कूपा ॥१५॥
पूरा धनी पूरा सो सौदा । परखत मिटै काल के रौंदा ॥१६॥

शब्दार्थ — **नास्ति** = असत्य । **पूराधनी** = ज्ञान-वैराग्य से पूर्ण सम्पन्न गुरु । **पूरा सौदा** = पूर्ण ज्ञान । **रौंदा** = चक्कर; मर्दन; तहस-नहस ।

भावार्थ — आसक्ति तो चाहे स्त्री, पुत्र, घर, धन, आदि मोटी माया की हो और चाहे मठ, शिष्य-शाखा, महन्ती-गद्दी, दैव-गोसइयाँ की कल्पना एवं मान-बड़ाई आदि झीनी माया की हो, सब कष्ट स्वरूप ही है । असत्य मानन्दी के कारण मनुष्य उसी मोटी-झीनी माया के कूयें में पड़ता है ॥ १५ ॥ ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न पूर्ण सद्गुरु का ज्ञान भी पूर्ण होता है । उनके पूर्णज्ञान के द्वारा सबकी परख कर लेने पर काम-कल्पनादि के चक्कर तथा उनके द्वारा होने वाला जीव का पतन रुक जाता है ॥१६॥

संधि लखावहिं कारण रोगा । मेटहिं सब विधि संधिकसोगा ॥१७॥

नहि संदेह न यम को त्रासा। सदा सुखारी परख विलासा ॥१८॥
धन्य सो बूझिसमुझि पगधरहीं। अंधरन भटकि भटकि भवपरहीं ॥१९॥

शब्दार्थ — संधि=दरार; छेद; भेद; कसर। यम=मन; भवबन्धन में जीव को भुलाने वाले नर-नारी। त्रासा=दुःख। भव=जन्म, संसारबन्धन। परख=गुण-दोष के निर्णय की दृष्टि से किसी वस्तु को देखने की क्रिया; परीक्षा। विलासा=विलास; चमकना; व्यक्त होना; क्रीड़ा; सजीवता।

भावार्थ — पूर्ण सद्गुरु जन्ममरण स्वरूप रोग के कारण की कसर एवं भेद को परखाते हैं; और वे सन्धि कसर-विकार सम्बन्धी सभी शोकों को दूर कर देते हैं ॥१७॥ यथार्थ सद्गुरु द्वारा सभी भ्रान्तियों के उड़ जाने पर न उन्हें किसी प्रकार का सन्देह रह जाता है और न बन्धनों का कष्ट ही। वे सदैव सबकी परीक्षा करने में सावधान होने से सुखी रहते हैं ॥ १८ ॥ वे धन्य हैं जो समझ-बूझ कर पैर रखते हैं। विवेकहीन लोग तो भटक-भटक कर सांसारिक बन्धनों में पड़ते हैं ॥ १९ ॥

विशेष — जन्म-मरण का कारण है अपने से पृथक अपना लक्ष्य समझना। यही 'सन्धि' है। सन्धि के अर्थ संयोग, मेल, दरार, भेद आदि हैं। ये सब दो में होते हैं। अपने चेतन स्वरूप से पृथक अपने मनका लगाव एवं मोह बन्धन का मूल है वह चाहे स्थूल पाँच विषय हों और चाहे ईश्वरादि की कल्पना हो। यथार्थ सद्गुरु सबकी कसर परखा देते हैं। इसलिये संधिक शोक मिट जाता है तब अपना मन अलग नहीं भटकता क्योंकि यथार्थ ज्ञान में तो अपना लक्ष्य अपने आप ही है। वे सदैव परख विलासी अर्थात् परीक्षा करने में सावधान, सार-असार परखने में सचैतन्य एवं ज्ञान में रमने वाले होते हैं। इसलिये सदैव अनन्त सुखी होते हैं।

बीजक, साखी १३२, २६४, ११३

बलिहारी तेहि पुरुष की, जो परचित परखनहार।
साईं दीन्हों खाड़ को, खारी बूझै गँवार ॥२४॥

शब्दार्थ — बलिहारी=निछावर होना; कुर्बान होना; प्रशंसा करना। साईं= बयाना, पेशगी। खाड़=शकर। खारी=नमक, खली। बूझै=समझै, माँगे, बेझे-लादे। गँवार=मूढ़, भोला भाला।

भावार्थ — मैं उस व्यक्ति पर निछावर हूँ और उसकी प्रशंसा करता हूँ जो यथार्थ ज्ञान से परिचित है तथा सबके सार-असार को परखने वाला है। परन्तु उस भोले भाले पर तो दया आती है जो शकर खरीदने के लिये बयाना देकर नमक या खली माँगता या लादता है ॥ २४ ॥

विशेष — लोग गुरु की शरण में जाते हैं यथार्थ ज्ञान एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिये और इसीलिये वे गुरुदीक्षा लेते, गुरु की सेवा करते, गुरु को तन, मन, धन अर्पित

करते हैं। परन्तु वे कितने भोले हैं जो गुरुओं के द्वारा ऋद्धि-सिद्धि एवं चमत्कार की बातें तथा नाना भ्रांतियों की बातें सुनकर उन्हीं में मुग्ध हो जाते हैं।

कर बन्दगी विवेक की, भेष धरै सब कोय।
सो बन्दगी बहि जान दे, जहाँ शब्द विवेक न होय ॥२५॥

शब्दार्थ — वंदगी = वंदना, सेवा ।

भावार्थ — विवेकवान पुरुष की वन्दना तथा सेवा करो। संत गुरु का वेष तो भ्रमिक एवं विषयासक्त भी धारण कर लेते हैं। परन्तु जिनके उपदेश में विवेक की बातें न हों, उनकी वन्दना तथा सेवा करने के पीछे मत पड़ो ॥२५॥

विशेष — गुरु और संत के वेष मात्र धारण कर लेने से कोई वास्तविक गुरु तथा संत नहीं हो सकता। जिनमें विवेक-वैराग्यादि शुभगुण हैं वे ही गुरु-संत हैं। उन्हीं की वन्दना-सेवा करने से जिज्ञासु का कल्याण है। केवल वेष से कुछ काम बनने वाला नहीं है।

दण्डवत्, प्रणाम, बन्दगी तो किसी भी वेषधारी को देखकर कर लो। इस साखी में जो विवेकी पुरुष की ही बन्दगी करने को कहा गया है उसका अर्थ है गुरु भाव मानकर सेवा करना।

मानुष जन्म नर पाय के, चूकै अबकी घात।
जाय परै भवचक्र में, सहै घनेरी लात ॥२६॥

शब्दार्थ — चूकै = असावधान होना। घात = वार; मौका; अवसर। भवचक्र = जन्म-मरण का चक्कर। घनेरी = बहुत।

भावार्थ — जीव कल्याणसाधन करने योग्य उत्तम मानव शरीर को पाकर यदि अबकी अवसर पर असावधान हो गया; तो पुनः वह जाकर जन्म-मरण के चक्कर में पड़ जायगा; और कीट-पतंगादि होकर मनुष्य-पशुओं के पैरों के आघात को सहता रहेगा ॥२६॥

२१—गुरु के विषय में अंध विश्वास का कथन

समाचार पराईत मसला

(समाचार का अर्थ 'खबर' है और समाचार के अर्थ व्यवहार; रीति; प्रथा; वृतांत; संवाद; विवरण आदि भी होते हैं। पराईत का अर्थ 'दूसरे का' है। मसला का शुद्ध शब्द 'मसल' है, जो अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ होता है 'कहावत' 'लोकोक्ति' 'मिसाल'। अतएव 'समाचार पराईत मसला का भावार्थ हुआ 'वह कहावत जो दूसरे मतों द्वारा कही गयी या उसका विवरण दिया गया हो।')

अपनी देखी दूर कर। भले आदमी का कहा कर ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — अपनी देखी = अपने विवेक की बातें। भला आदमी = अच्छे मनुष्य; बड़े-बड़े पुरुष।

भावार्थ — अपनी देखी हुई बातों को मत मानों, उसे छोड़ दो। अच्छे पुरुषों की कही हुई बातों पर अपना आचरण करो। सरसरी निगाह से देखने पर मूल मसला का अर्थ यही प्रतीत होता है। परन्तु वस्तुतः अर्थ यह नहीं है। अर्थ है कि भ्रांति में भूले हुए लोग कहते हैं कि "अपने विवेक, विचार नेत्रों का भरोसा मत करो। क्योंकि तुम अल्पज्ञ जीव हो। तुम्हें तर्क नहीं करना चाहिये। तुम बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि, पीर पैगम्बरों के बताये रास्ते पर चलो।" और भी वे भ्रांति में भटके हुए भूले लोग मनुष्यों की बुद्धि पर ताला लगाते हुए जो कहते हैं उसका विवरण आगे है—

चौपाई—१८

गुरु कामी को कृष्णहि जानै। क्रोधी होय नरसिंघ बखानै ॥ १ ॥
लोभी बावन रूप अनुमानै। मोही रामचन्द्र मन मानै ॥ २ ॥

शब्दार्थ — नरसिंघ = नृसिंह अवतार।

भावार्थ — यदि गुरुमहाराज कामी हों तो उनको गोपिका विहारी श्रीकृष्ण भगवान समझो। यदि क्रोधी हों तो हिरण्यकश्यपु के वध करने वाले नृसिंह भगवान मानो ॥ १ ॥ यदि वे लोभी हों तो उन्हें लोभवश छल करके बलि का राज्य छीनने वाले भगवान बावन समझो। और यदि गुरुमहाराज मोही हों तो उन्हें श्रद्धापूर्वक भगवान राम मानो जो सीता जी के मोहवश वन-वन रोते थे ॥ २ ॥

बुरा कर्म जो गुरु में होई। यहि विधि शिष्य सुधारे सोई ॥ ३ ॥
देखि कुकर्म शंका जो आनै। चौरासी को भोग न जानै ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — आनै = लावै; लाना।

भावार्थ — यदि गुरुमहाराज में बुरे कर्म हों तो उन्हें उपर्युक्त प्रकार से भगवान समझ कर तथा "समरथहिं नहिं दोष गोंसाई। रवि सुरसरि पावक की नाईं ॥" मानकर उनके दूषण को भी भूषण समझे ॥ ३ ॥ जो गुरु में कुकर्म देखकर उनमें दोष होने की शंका करता है, निश्चय ही वह नहीं जानता कि "इस दोष दर्शन के परिणाम में शिष्य को चौरासीयातना का भोग होगा" ॥ ४॥

विशेष — (वे भूले लोग कहते हैं) गुरु में चाहे जितनी बुराई हो वह सब भगवान की विभूति ही समझे। गुरु में दोष देखने से शिष्य का नरक होता है।

एक बार नारद पै कहिया। तेहि कारण नाना दुख सहिया ॥ ५ ॥

गुरु पाथर को ठाकुर कहिये । शिष्य चतुर होय सो गहिये ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **पै**=परन्तु; ऐब; दोष; त्रुटि । **पाथर**=पत्थर की मूर्ति, जड़बुद्धि ।

भावार्थ — एक बार नारद ने अपने गुरु में त्रुटि मानकर विष्णु भगवान से 'पै' या 'परन्तु' कह दिया था; इसीलिये वे नाना दुःख भोगे ॥ ५ ॥ अतएव गुरु चाहे जड़बुद्धि वाला हो और चाहे पत्थर की मूर्ति ही क्यों न हो, उसे शिष्य को अपना मालिक, स्वामी एवं मोक्षदाता समझना चाहिये । जो शिष्य चतुर होता है वह ऐसे ही भाव ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

अन्तरकथा — कहा जाता है कि नारद जी नित्य विष्णु भगवान के पास जाते थे । जब उनकी सभा से उठकर चल देते तब विष्णु जी उनके बैठे हुए जमीन को पुनः लिपवा कर शुद्ध करवाते थे । एक दिन नारद जी को पता चल गया । उन्होंने विष्णु भगवान से कारण पूछा । विष्णु भगवान ने कहा "तुम निगुरा हो, अभी गुरु नहीं किये हो, इसलिये तुम जहाँ बैठते हो वह जमीन अशुद्ध हो जाती है और उसे लीपना पड़ता है ।"

नारद जी ने कहा "प्रभो ! हम शीघ्र गुरु करना चाहते हैं, किसे गुरु करें ?" विष्णु जी ने कहा "सुबह तुम्हें जो मिल जाय, उसी को गुरु मानकर उससे दीक्षा ले लेना ।"

दूसरे दिन अपने आश्रम पर जब नारद जी प्रातः उठे और चले तो एक मछली मारने वाला मछुआ मिला जो कांध पर जाल रखकर मछली मारने जा रहा था । विष्णु जी के कथनानुसार नारद ने उसका पैर पकड़ लिया । वह कहा "मैं गुरु बनने योग्य नहीं हूँ ।" नारद ने कहा "हमारे तो गुरुदेव आपही हैं ।" अतएव मछुआ ने उन्हें दीक्षा देकर रामनाम मंत्र सुना दिया ।

नारद जी जब विष्णु जी के पास गये, तब उन्होने पूछा "क्या आपने गुरु किया ?" नारद ने कहा "किया तो 'परंतु'···।" विष्णु भगवान ने कहा " 'परंतु' क्या ?" नारद ने कहा "गुरु जी मछली मारने वाले जड़बुद्धि के धीमर हैं ।" विष्णु जी ने कहा "तुम गुरु के प्रति 'परंतु' लगाये हो, इसलिये चौरासी का दुःख भोगोगे ।"

नारदजी विष्णु के शाप से घबरा गये । विष्णु जी ने कहा "शाप का दण्ड तुम्हारे गुरु ही दूर कर सकते हैं ।" नारद जी अपने गुरु के पास गये और उनसे सब बातें कहीं । धीमर गुरु ने कहा "जाओ, चौरासी का दुःख एक कागज पर लिखकर विष्णु भगवान के चरणों में रख दो और उसी कागज पर लोट-पोट लो तो शाप से छूट जाओगे ।" नारद ने ऐसा ही किया, तब वे शाप से छूटे ।

इस प्रकार गुरु कैसा भी हो तो भी उसे अपना मोक्षदाता माने (ऐसा भ्रमिक लोग कहते हैं) ।

काहु मच्छा काहु भैंसा दृढ़ाई। निश्चय होय अपनी गति पाई॥ ७॥
शिष्य पूरा होय गुरु को तारै। निशिदिन बिरह अग्नि तन जारै॥ ८॥

शब्दार्थ -- मच्छा = मछली; मत्स्यावतार।

भावार्थ — (कहा जाता है।) गुरुओं ने तो किन्हीं धीमर आदि को 'मछली-मछली' और किन्हीं अहिर आदि को 'भैंसा-भैंसा' या 'भैंसे के सींग-भैंसे के सींग' जपना दृढ़ कर दिया; और वे शिष्य गण उन्हीं का निश्चय करके उन्हें जपने लगे तो अपनी गति पा गये एवं भगवान के धाम में चले गये। अथवा मत्स्यावतार, कच्छपावतार, नृसिंहावतार, हयग्रीवावतार आदि अवतार जो गुरु लोग दृढ़ाते हैं उनको निश्चय करके सत्य मान लो तो अवश्य भगवान के पास पहुंच जाओगे॥ ७॥ यदि शिष्य पूरा होता है तो रात-दिन भगवान की विरहाग्नि में अपने तन को जलाकर गुरु को भी तार देता है॥ ८॥

पतिबर्ता सम करै स्वभाऊ। सो शिष्य जग में पूर कहाऊ॥ ९॥
जो पति कुष्ट नपुंसक होई। पतिब्रर्ता मन भावै सोई॥१०॥
जो पति छाड़ होय व्यभिचारी। वेश्या भजै पर पुरुष छिनारी॥११॥

शब्दार्थ — पतिबर्ता = पतिव्रता।

भावार्थ — (वे कहते हैं) जो शिष्य अपने स्वभाव को पतिव्रता के समान बना कर केवल अपने कुलगुरु, दीक्षागुरु या परम्परागुरु को भजता है और दूसरे विवेकी संत-गुरुजनों के पास नहीं जाता, उनकी बातें नहीं सुनता वही संसार में पूर्ण शिष्य कहलाता है॥ ९॥ चाहे पति कुष्टरोग से पीड़ित व नपुंसक हो तो भी वह पतिव्रता स्त्री के मन को अच्छा लगता है। ऐसे पति को भी छोड़कर जो स्त्री व्यभिचार करती है वह पराये पुरुष को भजने वाली वेश्या तथा छिनाल है। इसी प्रकार गुरु चाहे मूढ़, जड़बुद्धि, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, हिंसकी आदि कैसे भी हो, ऐसे गुरु को भी छोड़कर जो शिष्य किसी विवेकी संत-गुरु का सत्संग करके उनसे बोध-विचार प्राप्त करता है तो वह गुरुद्रोही तथा नरकगामी है॥१०, ११॥

साखी-गुरु गूँगा गुरु बावरा, गुरु देवन का देव।
जो तू चेला चतुर है, तो करो गुरू की सेव॥ २७॥

शब्दार्थ — बावरा = पागल।

भावार्थ — गुरु विवेक की बातें कहने में गूंगा हो, बुद्धि से पागल हो एवं सब प्रकार से अज्ञानी हो, तो भी वह देवताओं का भी देवता है। ऐ शिष्य! यदि तू बुद्धिमान है तो जैसे-तैसे गुरु की भी सेवा कर॥२७॥

विशेष — भ्रमिकों ने उपर्युक्त प्रकार से झूठे गुरुओं की झूठी महिमा फैलाकर जगत के लोगों को विवेकहीन बना रखा है ।

निर्णय मसला

(वास्तविक निर्णय)

गुरुवा तो सस्ते भये, कौड़ी अर्थ पचास ।
अपने तन की सुधि नहीं, शिष्य करन की आस ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — गुरुवा = भ्रम, अज्ञान एवं स्वार्थासक्ति से पूर्ण नाम के गुरु। अर्थ = के लिये ।

भावार्थ — ऐसे नाम मात्र के गुरु सस्ते हो गये और कौड़ी के लिये पचासोंगुरु मनुष्य के सामने विनीत खड़े रहते हैं । उनको अपने तन की तो सुधि नहीं है, परन्तु दूसरे को शिष्य बनाने की आशा है ॥ ४ ॥

विशेष — स्वार्थ में डूबे हुए बने गुरु पैसे कमाने के लिये शिष्य मूड़ने के चक्कर में पड़े रहते हैं । स्वयं तो उनको स्वरूपज्ञान नहीं है और दूसरे को बोध देते फिरते हैं ।

२२—गुरु का सच्चा स्वरूप

चौपाई--१९

साँचा साहेब सेवा लावै । ठग झूठे के संग नहिं जावे ॥ १ ॥
कामी क्रोधी लोभी मोही । दुष्ट जीव जग जानहु सोही ॥ २ ॥

शब्दार्थ — साँचा साहेब = सच्चे सद्गुरु ।

भावार्थ — कल्याणइच्छुक को चाहिये कि वह सच्चे सद्गुरु की सेवा करे, झूठे गुरुओं के संगमें कभी न जावे ॥ १ ॥ कामी, क्रोधी, लोभी, मोही इनको जगत के खल प्राणी समझो ॥ २ ॥

जो अपने नहि तिर्पित होई । तासों तिर्पित कैसे कोई ॥ ३ ॥
जो जल साँच पियास नसाई । ध्यान अनुमान भरम अधिकाई ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — तिर्पित = तृप्त; सन्तुष्ट । अनुमान = अटकल; अन्दाज ।

भावार्थ — जो स्वयं नहीं सन्तुष्ट है उसके द्वारा दूसरा कोई कैसे सन्तुष्ट हो सकता है ? ॥३॥ जो सच्चा जल होता है वह प्यास को नष्ट करता है । इसी प्रकार सच्चा ज्ञान दुःख दूर करता है और अटकलऊ एवं संदेहपूर्ण ज्ञान भ्रम को ही बढ़ाता है ॥ ४ ॥

आपै रोगी वैद्य बिचारा । तासों कौन होय निरुवारा ॥ ५ ॥
कनक लोभ बहु भेष बनाई । झूठा बहुविधि करै ठगाई ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **रोगी** = अज्ञान से ग्रसित । **बिचारा** = बेचारा; दीन ।

भावार्थ — वैद्य के ही रोगी होने के समान जब स्वयं गुरु ही अज्ञानग्रसित हैं, फिर उनसे शिष्य के कल्याण के लिये कौन-से निर्णय की आशा की जाय ? ॥ ५ ॥ बहुत से लोग धन, मठ, महन्ती आदि के लोभवश साधु-संन्यासी के वेष बनाते हैं। वे लोगों को झूठी आशा देकर अनेक प्रकार की ठगाई करते हैं ॥ ६ ॥

नाता नारि पुरुष का लावै । जगत जाल कहिके समझावै ॥ ७ ॥
आपहु नारी शिष्यहु नारी । दोऊ कामिनी शुद्ध व्यभिचारी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **शुद्ध** = ठीक; बिलकुल । **व्यभिचारी** = नियमविरुद्ध; चंचल । **व्यभिचार** = सत्पथ का परित्याग, नियम का अपवाद; गलत तर्क ।

भावार्थ — वे अपने से पृथक एक ईश्वर की कल्पना करके उसको अपना पति कायम करते हैं और स्वयं उसकी नारी बनते हैं। इस प्रकार ईश्वर-जीव में स्त्री-पुरुष का नाता स्थिर करते हैं और लोगों को जगत को जालरूप कहकर समझाते हैं; परन्तु वे यह नहीं समझते कि यह स्त्री-पुरुष का नाता भी जगत-जाल है ॥ ७ ॥ वे कहते हैं एक ईश्वर ही पुरुष है और सब जीव स्त्री हैं। इस रीति से तो गुरुजी स्वयं अपने को स्त्री माने तथा शिष्य को भी स्त्री माने और दोनों ईश्वर की कामना करके एवं कामिनी रूप बनकर स्वरूपज्ञान से बिलकुल नियमविरुद्ध हो गये ॥ ८ ॥

विशेष — वास्तविक ज्ञान का अन्तिम स्वरूप है अपने आपमें पूर्ण तृप्ति । परन्तु जब अपना लक्ष्य अपने से पृथक एक कल्पित पदार्थ माना गया; तब ज्ञान के वास्तविक नियम में व्यभिचार हो गया, अर्थात् गलत तर्क रखा गया या कहिये वास्तविकता को छिपा दिया गया ।

जीव ही परम तत्त्व है। वही कल्पना करके ईश्वर को माना है। परन्तु अपने श्रेष्ठत्व को भूलकर स्वयं को नारी बना डाला और अपनी मनःकल्पना को पुरुष बना डाला । शुद्ध व्यभिचारी होने का मतलब है वास्तविकता के बिलकुल विरुद्ध चले जाना।

एक पुरुष का सुमिरन करई । इष्ट विचार विरह ते मरई ॥ ९ ॥
अधम कला पाखंड पसारा । मिथ्या पचहीं मूढ़ गँवारा ॥१०॥

शब्दार्थ — **इष्ट** = प्रिय; पूज्य । **अधम** = निम्न; घटिहा । **कला** = हुनर; गुण ।

भावार्थ — वे अपने से पृथक एक मनःकल्पना को अपना पति मानकर उसका स्मरण करते हैं और उस इष्ट के विचार एवं विरह में व्याकुल होते हैं ॥ ९ ॥

स्वप्नपुरुष को खड़ा कर अपने आपको उसकी पत्नी बना डालना बड़ा ही लज्जास्पद निम्नकोटि की करतूति एवं पाखण्ड फैलाना है। कितने ही भोले भाले लोग इस मिथ्या मान्यता एवं संस्कार में जकड़कर अन्त में दुखी होते हैं ॥ १० ॥

विशेष — कितने भक्त लोग तो अपने आप को भगवान की पत्नी मानकर पुरुष होते हुए साड़ी, ब्लाउज, चूड़ी, आभूषणादि पहनते हैं। स्त्री का पूरा रूप बनाते हैं। मटका कर स्त्रियों की तरह बोलते हैं। लालरंग में कपड़ा भिगा कर और उसे अधोद्वार में लपेट कर तीन दिन के लिये रजस्वला बनते हैं। पत्थर के लोढ़े (बट्टे) में कपड़ा लपेट कर बच्चा पैदा होने का स्वांग करते हैं। ऐसे लोग भक्ति करते हैं कि आगे जन्म में सचमुच स्त्री-शरीर पाने की तैयारी करते हैं। कहा जाता है सूफी लोग अपने आप को पुरुष तथा ईश्वर को पत्नी मानते हैं; क्योंकि पुरुष स्वाभाविक पत्नी में प्रेम करता है।

नाम बढ़ावै पंथ चलावै । आप नसाने और नसावै ॥११॥
सर्मासर्मी पचि पचि मरहीं । साँचा निर्णय चित्त नहिं धरहीं ॥१२॥
बहु पाथर पारस नहिं भाई । साँच बिरले काहु ठहराई ॥१३॥

शब्दार्थ — **सर्मासर्मी** = शर्माशर्मी; लज्जावश। **पारस** = स्पर्शमणि; कहते हैं इसमें लोहा छू जाय तो सोना हो जाय। यह दृष्टान्त में तो चलता है; परन्तु यह कल्पित मालूम होता है।

भावार्थ — जो गुरुलोग अपना भ्रान्तिपूर्ण पंथ चलाकर लोगों को भरमाते तथा अपने नाम की यश-कीर्ति चाहते हैं, वे स्वयं को अधोगति में डालते हैं तथा दूसरे को भी पतित करते हैं ॥ ११ ॥ जिस सम्प्रदाय में पड़ गये वह चाहे कितना ही अन्धकार-पूर्ण हो, उससे लज्जावश नहीं निकलते, अपितु उसी में पच-पच कर मरते हैं। वे यथार्थ निर्णय पर ध्यान नहीं देते ॥ १२ ॥ ऐ भाई ! दिखते हुए बहुत-से पत्थर स्पर्शमणि नहीं होते; अर्थात् तमाम गुरु वेष में घूमने वाले सब यथार्थ सद्गुरु नहीं हैं। सत्यज्ञान को स्थिर करने वाला जगत में कोई विरला सद्गुरु होता है ॥ १३ ॥

साखी-शब्द कहै सो कीजिये, गुरवा बड़े लबार ।
अपने अपने काज को, ठौर ठौर बटपार ॥२८॥

शब्दार्थ — **शब्द** = निर्णय शब्द। **गुरवा** = असद्गुरु; झूठे गुरु। **लबार** = झूठा; गप्पी, बक्की। **बटपार** = बटमार; बाट (रास्ता) में मार देने वाला; राह में लूट लेने वाला, राहजन।

भावार्थ — सार शब्द एवं यथार्थ निर्णय से जो त्याग-ग्रहण योग्य सिद्ध हो वही करो; झूठे गुरु तो बड़े गप्पी होते हैं। वे अपने-अपने स्वार्थके लिये जगह-जगह कल्याण-पथिकों को लूटते एवं राहजनी करते हैं ॥ २८ ॥

विशेष — केवल किसी का नाम गुरु हो इसीलिये उसकी सारी बातें सच्ची नहीं हो सकतीं जब तक कि उसकी परख अच्छीतरह न हो जाय । इसलिये निर्णय वचनों से जो बात स्थिर हो वही सत्य है । यह ठीक है कि जो सच्चा सद्गुरु होता है उसकी सारी बातें बेखटके मानने योग्य होती हैं ।

गुरु तो ऐसा चाहिये, ज्यों शिकलीगर होय ।
जन्म जन्म का मूरचा, गुरु पलमें डारै खोय ॥२९॥

शब्दार्थ — शिकलीगर = सिकलीगर; हथियार तेज करने वाला; चमक लाने वाला । मूरचा = मोरचा; जंग ।

भावार्थ — गुरु तो ऐसा चाहिये जैसे सिकलीगर होता है और वह मोरचा खाये हुए हथियार को सिकली करके स्वच्छ एवं चमकदार बना देता है; इसी प्रकार वह सच्चा सद्गुरु जीव के जन्म-जन्मान्तरों के अज्ञान, आसक्ति एवं अध्यास को बहुत थोड़े समय में नष्ट कर देता है ॥ २९ ॥

विशेष — सच्चे, विनम्र, मुमुक्षु शिष्य को जब सच्चे कृपालु वैराग्यवान-विवेकवान सद्गुरु मिल जाते हैं तब मुमुक्षु के कल्याण होने में देरी नहीं लगती ।

२३–हिन्दुओं की सामान्य मान्यता का विचार

समाचार मसला पराईत

राम नाम सार है, और सब लबार है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — सार = सत्य । लबार = गप्पी ।

भावार्थ — (कुछ मतवादियों के मन्तव्य एवं वक्तव्य हैं—) राम का नाम जपना ही सार है । अन्य जड़-चेतन का विवेक करना, स्वरूपज्ञान की खोज करना तथा इन सबके विषय में निर्णय करना बेकार की गप्पबाजी है ॥ ५ ॥

चौपाई २०

संध्या तर्पण नित नित कीजे । राम कृष्ण सुमिरन चित दीजे ॥ १ ॥
नहिं तो पारब्रह्म मन लावै । कर्म भरम सब दूरि बहावै ॥ २ ॥

शब्दार्थ — संध्या = योग; मेल, प्रातः, दोपहरी तथा सायं, इनमें की जाने वाली पूजा । तर्पण = तृप्त करने की क्रिया, कल्पित देवताओं, ऋषियों और पितरों को तिल या चावल मिश्रित जल देने की क्रिया, यज्ञाग्नि का इन्धन, आहार ।

भावार्थ — (वे कहते हैं–) रोज-रोज नियम से त्रिकाल संध्या एवं तर्पण करो, और राम तथा कृष्ण जैसे पवित्र नाम के जप एवं स्मरण में मन लगाओ ॥ १ ॥

अन्यथा यदि बुद्धि सूक्ष्म हो तो सारे कर्म-भ्रमों को दूर डाल कर परब्रह्म में मन को स्थिर करो ।। २ ।।

बूझि विचार कहाँ लगि करना । भजन करो जाते है तरना ।। ३ ।।
वाक्य ज्ञान कोइ पार न पावै । आपै आप अनुभव बनि आवै ।। ४ ।।

शब्दार्थ — बूझि = बूझ; समझ । विचार = सारासार निर्णय । तरना = मुक्ति ।

भावार्थ — समझना, निर्णय-विचार करना और परखना कहाँ तक किया जाय । यह सब छोड़ कर भजन करो जिससे तरन्तार है ।। ३ ।। वाक्यज्ञान एवं बकवाद करने से कोई पार नहीं पाता । भजन करने से अपने आप भगवान का अनुभव होने लगता है ।। ४ ।।

ताकी आस रहो लौलाई । अनेक जन्म सिद्धि तिन पाई ।। ५ ।।
तीरथ वर्त करो चितलाई । पाप कटै पुण्य होय सहाई ।। ६ ।।

शब्दार्थ — लौ = ध्यान ।

भावार्थ — (वे कहते हैं–) उस भगवान की आशा करो और उसी का ध्यान करो । जो उसके भजन-ध्यान करता है उसे वह फल मिलता है जिस फल को योगी जन अनेक जन्मों की सिद्धि में पाते हैं ।। ५ ।। प्रेम पूर्वक गया, प्रयाग, जगन्नाथ; अयोध्यादि तीर्थ करो तथा एकादशी, तेरस आदि व्रत करो । इससे पाप दूर होंगे और भगवद्दर्शन में पुण्य सहायक होंगे ।। ६ ।।

भजहु सदा लीला अवतारा । यह पद दुर्लभ है संसारा ।। ७ ।।
सोई तुम्हार मुक्ति को मूला । मुक्तिहु नाहिं ताहि समतूला ।। ८ ।।

शब्दार्थ — दुर्लभ = कठिनता से प्राप्त होने वाला । समतूला = सदृश, समान ।

भावार्थ — सदैव श्रीराम-कृष्णादि दश या चौबीस अवतारों की लीलाओं का गुण गान करो । इस भक्तिपद की प्राप्ति संसार में कठिन है ।। ७ ।। ऐसी भक्ति ही तुम्हारी मुक्ति का कारण है, और इसके समान मुक्ति भी नहीं है ।। ८ ।।

निशिदिन पाठ करहु मम गाया । राम का अन्त काहू नहिं पाया ।। ९ ।।
ब्रह्मादिक जेहि पार न पाई । राम की माया अपरबल भाई ।।१०।।
रसना राम कृष्ण रट लइये । जाते चार पदारथ पइये ।।११।।

शब्दार्थ — मम गाया = मेरे कथन का । अपरबल = प्रबल । रसना = जीभ ।

भावार्थ — (वे कहते हैं-) मेरे कथनानुसार रात-दिन पूजा-पाठ करो, इससे राम मिलेगा । वैसे उसका अंत किसी ने नहीं पाया है ।। ९ ।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव

आदि भी जिसका पार नहीं पाते, ऐ भाई ! उस राम की माया वड़ी बलवती है ॥१०॥ अतएव इतना ही अपना वश है कि जीभ से अवतारों में श्रेष्ठ भगवान राम एवं भगवान कृष्ण के नामों का जप करो, जिससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष–ये चारों पदार्थ प्राप्त हो जायेंगे ॥ ११ ॥

साखी–ब्रह्म ही को स्वरूप है, माया ब्रह्म दोउ एक ।
सीताराम सुमिरि लेहु, भजन का करहु विवेक ॥३०॥

शब्दार्थ — भजन = राम नाम जप । विवेक = राम भजन सार है अन्य सब असार है ।

भावार्थ — भगवान श्रीराम जी निराकार निर्गुण ब्रह्म के ही स्वरूप हैं और जगज्जननी माँ श्री सीता जी माया या मूलप्रकृति हैं । जैसे शक्तिमान और शक्ति एक होते हैं उसी प्रकार माया और ब्रह्म दोनों एक हैं एवं तदनुसार श्रीराम और श्री सीता जी भी एक ही हैं । अतएव ऐ भक्तो ! पवित्र नाम 'सीताराम' का जप एवं स्मरण करते रहो और इतना ही विवेक करो कि राम का नाम जप सार है तथा अन्य सब असार है ॥ ३० ॥

निर्णय मसला

(यथार्थ निर्णय)

कबीर का गाया गावैगा । अजगैब का धक्का पावैगा ।
कबीर का गाया बूझेगा । तो तीन लोक सब सूझेगा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — कबीर = नाना मतवाद में भूले लोग । गाया = कथन किया हुआ । अजगैब = अजग़ैब, गैब से, परोक्ष से, अलक्षित स्थान से, अदृष्ट स्थान, काल्पनिक, भ्रांति, 'अजगै.ब' फारसी शब्द है । बूझेगा = समझेगा, परखेगा । तीन लोक = रज, सत, तम; काल, संधि, झाँई; ज्ञान, भक्ति, योग; तत, त्वम, असि; मन, वाणी, कर्म ।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से नाना मतवादियों के द्वारा कथन की हुई काल्पनिक बातों को जो सही मान कर उसे स्वयं गाने लगेगा, वह परोक्ष एवं काल्पनिक बातों में फँस कर भ्रान्ति एवं अज्ञान की चोट खायेगा । और जो मतवादियों के कथन की निरख-परख करके सारासार समझेगा, उसको सारी वास्तविकता दिखाई पड़ेगी ॥ ६ ॥

विशेष — उपर्युक्त मसला में आया हुआ 'कबीर' शब्द सद्गुरु कबीर का द्योतक नहीं है, अपितु मतवादियों का है । वस्तुतः 'क-काया' में 'वीर' वही कबीर जीव का नाम है । वह जीव अपने स्वरूप के भूल-वश भटक रहा है और नाना कल्पित मत एवं वाद बनाकर भ्रान्तियों की बातें कह रहा है ।

उपर्युक्त जो अवतारादि लीलागान, नामजप, तीर्थ, व्रतादि पूर्वपक्ष द्वारा बताया गया है यद्यपि सब काल्पनिक है, तथापि यहाँ इसका यह अर्थ नहीं है कि उस प्रकार कोई न माने-जाने तथा कोई उस प्रकार न करे। जिस परम्परा, श्रद्धा, विश्वास में जो व्यक्ति रहता है यदि वह सात्त्विक है तो उसके अनुसार कुछ भजन-पूजन करने से उसे मानसिक प्रसन्नता मिलती है, भले ही उसके भजन-पूजन का आधारबिन्दु काल्पनिक हो। कभी-कभी आरम्भिक साधना में किसी-किसी को काल्पनिक आधारबिन्दु भी कुछ सात्त्विकता एवं ज्ञान दे जाता है। बच्चे को वास्तविक दूध न मिलने पर भी थोड़े समय के लिये चटुआ (काष्ठ का लट्टू) चाटने से भी उसे मानसिक सन्तोष हो जाता है। परन्तु यह निश्चित है कि उसे सच्चे अर्थ में भूख को मिटाने के लिये माता के स्तन से सच्चा दूध पीना पड़ेगा।

इसी प्रकार अपने विश्वास के अनुसार कुछ धार्मिक क्रियाकलाप करते रहने से मनुष्य को कुछ सात्त्विकता मिलती है। उसकी रुचि सत्संग में लगती है। फिर सच्चे संत-गुरु के मिल जाने पर उसकी सभी भ्रान्तियाँ मिट जाती हैं और उसका कल्याण हो जाता है।

अपने चेतन स्वरूप से पृथक परब्रह्म, ईश्वरादि की कल्पना करना और अपनी स्थिति उसमें मानना एक भ्रांति धारणा है। सभी वासनाओं को त्यागकर ही स्वरूप-स्थिति होती है।

बीजक, साखी २४६

गावै कथै विचारै नाहीं, अनजाने का दोहा।
कहहिं कबीर पारस परसे बिना, जस पाहन भीतर लोहा ॥३१॥

शब्दार्थ — पाहन = पत्थर।

भावार्थ — व्यक्ति गाता है, भाषण करता है, परन्तु उसको विचारता नहीं है; अतएव उसका समस्त कथन अर्थ से अनभिज्ञ व्यक्ति के दोहे-साखी गाने वाले के समान है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यदि पारस पत्थर से स्पर्श न हो तो लोहा चाहे अन्य पत्थरों के बीच में ही पड़ा रहे तो क्या होता है ॥ ३१ ॥

विशेष — लोहा यदि अन्य पत्थरों के बीच में पड़ा रहे तो सोना नहीं होता जब तक पारस पत्थर से उसका स्पर्श नहीं होता। इसी प्रकार जीव अनेक भ्रान्तिपूर्ण वाणियों में पड़ा रहे तो उसको बोध नहीं होता जब तक पारख की वाणी नहीं मनन करता। अथवा मोरचा से ढका हुआ लोहा चाहे पारस पत्थर के बीच में ही पड़ा रहे तो भी वह सोना नहीं होता जब तक बीच का परदा रूप मोरचा को नहीं हटा देता। इसी प्रकार जीव जड़ता रखकर चाहे पारख की वाणी ही में पड़ा रहे तो भी उसको तब तक बोध एवं स्थिति नहीं हो सकती जब तक जड़ता को नहीं दूर करता।

केवल शब्दों को रटने से काम नहीं चलता । शब्दों पर विचार करो तथा त्याग-ग्रहण योग्य वस्तुओं का त्याग-ग्रहण करो ।

२४—सारासार विवेचन

चौपाई—२१

सुरति समानी सब संसारा । उतपति परलय भरम अपारा ॥ १ ॥
बिना शब्द सो दीसत नाहीं । दिन दिन संशय अधिक समाहीं ॥ २ ॥

शब्दार्थ — सुरति = सुरत; लक्ष्य । उतपति = जन्म । परलय = मरण । शब्द = निर्णय वचन । संशय = संदेह; अज्ञान ।

भावार्थ — जीव का लक्ष्य खानी-वाणी रूप सारे संसार में समाया है; और उस अपार भ्रम में पड़कर वह जन्म-मरण के चक्कर में घूम रहा है ॥ १ ॥ बिना निर्णय एवं पारख विवेक पाये वह सब भ्रान्ति जीव को समझ नहीं पड़ती; फलतः उसके मनमें दिन-प्रतिदिन अधिक संदेह एवं अज्ञान प्रवेश करते जाते हैं ॥ २ ॥

तासु हेतु बहु शब्द उचारा । जाते होय जीव निरुवारा ॥ ३ ॥
सो जो बूझि परै नहिं अबहीं । अंधरी गुष्ट न भावै कबहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — शब्द = निर्णयवचन । अंधरी = विवेकहीन । गुष्ट = गोष्ठी; सभा; मण्डली; समाज; समूह; वार्तालाप ।

भावार्थ — विवेकी पुरुषों ने भवबन्धन छूटने के लिये अनेकों निर्णय शब्द कहा है, जिससे जीव का भ्रान्तियों से सुलझाव होकर मोक्ष हो सके ॥ ३ ॥ वह जो भ्रमपूर्ण वाणी है, जिसकी वास्तविकता अभी समझ में नही आती, निर्णयवचनों के पा जाने पर वह विवेकहीन वार्तालाप भविष्य में कभी अच्छी नहीं लगेगी ॥ ४ ॥

विशेष — संसार में मान-माहात्म्य एवं भ्रान्ति की बहुत वाणियाँ हैं जिन्हें पहले मनुष्य सब सत्य मानता है । उसमें सार और असार क्या है यह नहीं जान पाता। परन्तु जब उसे पारख की वाणियाँ मिल जाती हैं और वह उन्हें पूर्ण अभ्यस्त कर लेता है तब उसे श्रद्धातिरेक तथा अतिशयोक्ति से पूर्ण वाणियों में प्रेम नहीं लगता । क्योंकि उसकी कसर की परख हो जाती है ।

जेहि सो आजु तेहि सो काला । बिन बूझै सो सदा बेहाला ॥ ५ ॥
करो विचार भरम मिटि जाई । भरम मिटै तो होय भलाई ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — आजु = आज; वर्तमान । काला = कल; भविष्य । बेहाला = बेहाल; कष्ट से व्याकुल ।

भावार्थ — जो भूल, भ्रम एवं संस्कार आंज हैं यदि वे मिटाये न गये तो कल

भी रहेंगे; इसी प्रकार जन्मान्तर में भी वे पहुँचेंगे। अतएव बिना वास्तविकता को समझे जीव सदैव दुखी रहता है एवं रहेगा ॥ ५ ॥ अतएव विवेक करो तो सब अज्ञान दूर हो जायेंगे; और जब अज्ञान दूर होगा तो जीव का कल्याण होगा ॥ ६ ॥

विशेष — 'जेहि सो आज तेहि सो काला' का अर्थ यह भी हो सकता है कि ऐ मनुष्य ! कल्याणकार्य को आज-काल पर टालो मत। जिस सांसारिक रुकावट एवं मायामोह-वश तुम आज अपना कल्याण साधन नहीं कर रहे हो, और भविष्य पर टाल रहे हो, तो भविष्य में भी इसी प्रकार बन्धन-रुकावट आदि रहेंगे। अतएव आज ही अपना कल्याणकार्य पूरा करो; अन्यथा दुःख उठाओगे।

आँधर दर्पण सूझत नाहीं। ऐसो शब्द भरम को आहीं ॥ ७ ॥
शुद्ध वचन साँचा के होई। जामें देख परै सब कोई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — आँधर दर्पण = वह शीशा एवं दर्पण जिसमें चेहरा न दिखे।

भावार्थ — जैसे अंधे दर्पण में चेहरा नहीं दिखता, उसी प्रकार भ्रमपूर्ण शब्दों से स्व-स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं होता ॥ ७ ॥ सत्य निर्णय ही शुद्ध वचन है, जिसके मनन से सार-असार सब साफ दिखाई देता है ॥ ८ ॥

विशेष — स्वच्छ दर्पण होने पर भी यदि मनुष्य अंधा है तो उसे उसमें अपना चेहरा दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार जड़ताबुद्धि वालों को निर्णयवाणियों से भी बोध नहीं होता।

बीजक, साखी १११, रमैनी साखी २३, साखी २६४

मानुष बिचारा क्या करै, जाके कहै न खुले कपाट।
सोनहा चौक बैठाय के, फिर फिर ऐपन चाट ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ — मानुष = विवेकी पुरुष। कपाट = किवाड़, दरवाजा, अज्ञान। सोनहा = श्वान, कुत्ता, मन। चौक = चौका, वेदी, अन्तःकरण। ऐपन = चावल और हल्दी एक साथ पीस कर बनाया हुआ लेप जो मांगलिक कार्यों एवं पूजनों में काम आता है।

भावार्थ — विवेकी पुरुष बेचारे उपदेश देकर क्या करें, जिनके सत्योपदेश करने पर भी इन जड़ जीवों का हृदयकपाट नहीं खुलता। यदि वेदी में कुत्ता को बैठा दिया जाय तो वह उसमें पूरे हुए ऐपन आदि मांगलिक द्रव्यों को बारम्बार चाटता ही रहेगा। इसी प्रकार अज्ञानी मनुष्यों का मन अन्तःकरण में प्रविष्ट कल्याणप्रद उपदेशों का दुरुपयोग करता है ॥ ३२ ॥

रामहि राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रोस।
सूधा जल पीवै नहीं, खोद पीवन की हौंस ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ — रोस = छाले, घट्ठे, सूख जाना। हौस = हवस, हौसला, मनकी तरंग, प्रबल इच्छा।

भावार्थ — राम-राम जपते-जपते लोगों की जीभ में छाले एवं घट्ठे पड़ जाते हैं या जीभ सूख जाती है। लोग सीधा पात्र में रखा हुआ स्वच्छ, शीतल, सुमिष्ट जल नहीं पीते, प्रत्युत वे कूप खोद कर पीने की प्रबल इच्छा रखते हैं ॥३३॥

विशेष — हाथ के पात्रजल को छोड़कर कूयें खोदकर पीने की इच्छा रखने वाले के समान लोग सहज स्व-स्वरूप स्मरण एवं स्थिति को छोड़कर केवल किसी प्रकार के नामजप से मोक्ष की अभिलाषा करते हैं, जो बालबुद्धिवत है।

अहिरहु तजि खसमहु तजी, बिना दाद की ढोर।
मुक्ति परे बिललात है, वृन्दावन की खोर ॥३४॥

शब्दार्थ — अहिरहु = अहिर; चरवाहा; भूलेगुरु। खसमहु = खसम; मालिक; ईश्वर। मुक्ति = छुटा हुआ। परे = अलग; दूर। बिललात = विलखता हुआ; कष्टित। दाद = इन्साफ; न्याय। 'दाद' फारसी शब्द है। ढोर = पशु।

भावार्थ — जैसे किसी वृद्ध पशु को चरवाहा छोड़ दे और उसका स्वामी भी छोड़ दे, तो यह न्याय विरुद्ध है। इस दशा में वह छूटा हुआ वृन्दावन आदि किसी जंगल की गलियों में विलखता पड़ा रहता है।

इसी प्रकार विवेकरहित जीव को भूले गुरु लोग अपने से पृथक लक्ष्य दिखाकर छोड़ दिये और जो अपने से पृथक अपना स्वामी माना वह असत्य होने से पहले ही छूटा-छुटाया है; अतएव वह जीव कहीं न्याय न पाकर तथा अपने से पृथक मुक्ति, गति या अपना लक्ष्य मानकर कल्पित पुरुष की विरह-भावना में वृन्दावन आदि की गलियों में व्याकुल होकर फिरने लगा ॥३४॥

अनहद अनुभव आस में, बूड़े बहुत अचेत।
अचरज एक देखो हो सन्तो, बेरहि खाया खेत ॥३५॥

शब्दार्थ — अनहद = अनाहतनाद या हदरहित। अनुभव = प्रायोगिक ज्ञान। बेरहि = बाड़; फसल की रक्षा के लिये खेत के चारों ओर लगाया हुआ काँटे आदि का घेरा; रक्षक।

भावार्थ — अनाहतनाद श्रवण एवं सीमारहित ब्रह्म के ज्ञान की आशा में बहुत-से असावधान लोग भ्रम में डूब गये। ऐ सन्तो! एक आश्चर्य देखता हूँ कि बाड़ ने ही खेत को खा लिया है ॥३५॥

विशेष — जीव ने अपने को छोटा समझकर व्यापक ब्रह्मकी कल्पना की और उसको रक्षक माना; परन्तु वही कल्पना जीव को स्वरूपज्ञान से भटका दी। अपने चेतन स्वरूप से पृथक कुछ मानना एक भ्रम है।

२५—श्रीकृष्ण तथा पाण्डवों पर चर्चा

समाचार कृष्ण पाण्डव का

चौपाई—२२

राम कृष्ण अहिर के बालक। व्रजवधू कौरव कुल घालक ॥ १ ॥
सोरह कला जानै बहु भाँती। छली अनेक कामिनी उतपाती ॥ २ ॥

शब्दार्थ — राम = बलराम जी। अहिर = ग्वाल, यादव। घालक = मारने वाला, नाश करने वाला। सोरह कला = नृत्य, गीत, वादित्र, सौंदर्य, वाग्मि, राजनीति, योग, अध्यात्म, ज्ञान, गोदोहन, यज्ञों में चरणपखारन, सुदामा से मैत्री, गीताज्ञान आदि।

भावार्थ — महाराज श्री बलराम तथा महाराज श्री कृष्ण के पालन-पोषण करने वाले यादवकुल भूषण नन्दबाबा होने से ये दोनों, ग्वाल के बालक कहे जाते थे। व्रज की वनिताओं से विशेषतर श्री कृष्ण जी का स्नेह बताया जाता है, और कौरव कुल के विनाशक भी ये ही थे ॥ १ ॥ श्री कृष्ण जी सोलह कला तथा अनेक प्रकार के गुण जानते थे। पुराणों के अनुसार अनेक कामिनियों को छलकर उनसे उपद्रव करते थे ॥ २ ॥

अन्तरकथा — श्री वसुदेव जी क्षत्रिय थे। उनकी एक स्त्री रोहिणी से बलराम पहले पैदा हुए थे तथा दूसरी स्त्री देवकी से श्री कृष्ण जी मथुरा में कंस के कारावास में पैदा हुए और किसी प्रकार छिपाकर गोकुल में नन्दबाबा के यहाँ उनकी पत्नी यशोदा तक पहुँचाये गये। इसप्रकार बलराम तथा कृष्ण दोनों क्षत्रिय कुल उत्पन्न माने जाते हैं तथा पालन-पोषण ग्वाल के यहाँ हुआ।

विशेष — यहाँ यह बात बताई जा रही है कि जो लोग श्री कृष्ण महाराज को संसार का हर्ता-कर्ता सिद्ध करते हैं वे भ्रम में ही हैं तथा वही भ्रम दूसरों में भी फैलाते हैं। श्री कृष्ण महाराज एक शूर-वीर-योद्धा, राजनीतिकुशल तथा प्रवक्ता थे। महाभारत से यही ध्वनित होता है। परन्तु श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराणादि के लेखकों ने नशा में पड़कर उनके आचरण को इतना शिथिल बना डाला है कि जैसा आज कोई निम्नातिनिम्न व्यक्ति भी नहीं होगा। और यह सारा दोष मढ़ दिया जाता है श्रीवेदव्यास पर कि वे ही इन पुराणों के रचयिता हैं।

यहाँ तो ग्रन्थकर्ता पुराणों के अनुसार ही बतला रहे हैं कि क्या सर्वशक्तिमान ईश्वर के अवतार का ऐसा ही शिथिल आचरण होना चाहिये? क्या सर्वशक्तिमान भगवान राजाओं को सत्प्रेरणा देकर उन्हें सत्मार्ग पर न ला सके? क्या उन्हें मारडालना ही चारा रह जाय? और क्या वह उसी प्रकार छल-छद्म से उन्हें मारे जिस प्रकार भागवत, महाभारत आदि में वर्णित है?

सो सखियन सों रहे अनुकूला । वेद वेदांत कथै बहु मूला ॥ ३ ॥
कपटी झूठा बात लबारी । अनेक राजा छल सो मारी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अनुकूला = मेल रखने वाला । मूला = मुख्य सिद्धान्त अद्वैतब्रह्म ।

भावार्थ — श्री कृष्ण महाराज (पुराणानुसार) व्रज की सखियों से काफी मेल-मिलाप रखते थे, और इधर वेद-वेदान्त का मूल सिद्धान्त अद्वैत ब्रह्म का व्याख्यान भी करते थे । ॥ ३ ॥ कपट करना, झूठ बोलना, बढ़ाचढ़ा कर बात करना यह सब भी गुण उनमें विद्यमान थे । उन्होंने अनेक राजाओं को छलपूर्वक मारा व मरवाया ॥४॥

विशेष — श्री कृष्ण जी का छल, बल, चतुरता पुराणों तथा महाभारत में प्रसिद्ध है ।

उद्धव जब श्रीकृष्ण का ज्ञानसंदेश गोपिकाओं को सुनाने लगे तब गोपिकायें श्रीकृष्ण की करतूति पर बोलीं—

हमका ज्ञान योग लिखि भेजा । आपु रहत कुबरी के सेजा ॥
जिमि गणिका निज कस बैठाने । औरेन ते वैराग बखाने ॥
तेहि के वचन कहो को मानै । तैसे श्याम देत हैं ज्ञानै ॥

जो कहो पृथ्वी ब्रह्म सम, घट सम जीव अनेक ।
ताहि लखो वा न लखो, अन्त होय सब एक ॥
उद्धव तस्कर कैद में, परो कहै हौं भूप ।
तौं का छूटै कर्मं वश, त्यों तुम ब्रह्म स्वरूप ॥

हम युवतिन कहँ लिखत विरागा । आप परे चेरी के रागा ॥
अपना गुरू भये संयोगी । केहि प्रकार हम होईं योगी ॥
जो गुरुही निज भद्र न चीन्हा । तिन शिष्यन को कब सुख दीन्हा ॥
जो गुरु कुटुम जाल में बाँधे । तौ शिष्य के किमि काटै फाँदे ॥
जो गुरु काम क्रोध में जरई । तो शिष्य को कब शीतल करई ॥
जो गुरु है तृष्णा वश लोभी । सो शिष्य को कब करे अछोभी ॥
जो गुरु है पाथर की नावा । सो शिष्य को कब पार लगावा ॥

जो गुरु को कुछ पढ़ि नहिं आवै । तो शिष्य को केहि भाँति पढ़ावै ॥
त्योहिते आपु दशा पर आवैं । तब हमको लिखि योग पठावैं ॥
ज्योहिते कुछ लागै उपदेशा । करहिं सकल योगी कर भेषा ॥
जौं जल जरन आप ही लागै । तो तजि मीन कहाँ को भागै ॥
लखि गोपिन को प्रेम प्रमाना । बिसरि गये उद्धव को ज्ञाना ॥
(विश्राम सागर कृष्णायन)

सो अवतार गुसाईं भाखा। सुजस बहुत पोथी लिख राखा ॥ ५ ॥
ब्रह्मज्ञान कथै ब्रह्म कहावै। नाम हेतु बहु पंथ बढ़ावै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — गुसाईं = गोस्वामी सूरदास जी। सुजस = सुयश, कीर्ति।

भावार्थ — कृष्णावतार का हिन्दी काव्य में अधिक वर्णन गोस्वामी सूरदास जी ने सूरसागर आदि ग्रन्थों में कर रखा है और उन पोथियों में श्रद्धातिरेकवश उनकी बहुत काल्पनिक कीर्ति लिख रखी है ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण जी गीतादि में अपने को ब्रह्म बताकर ब्रह्मज्ञान का ही व्याख्यान किये हैं; और अपने नामकी प्रसिद्धि के लिये अपना सम्प्रदाय फैलाये हैं ॥ ६ ॥

विशेष — गीता में महाराज श्रीकृष्ण के मुख से बारम्बार कहलाया गया है कि मैं ही सब कुछ हूँ, मेरी शरण में आने से सबका उद्धार होगा, जो मुझे परमेश्वर नहीं समझते वे मूढ़ हैं। इन सब बातों से उनमें अहंकार एवं स्वकीर्ति की भावना आरोपित होती है। यद्यपि यह सब लीला है लेखकों की और उन्होंने श्रीकृष्ण को परमात्मा सिद्ध करने के लिये उनके मुख से असंगत बातें कहला कर उनपर अहंकारी तथा यशाभिलाषी होने का दोष मढ़ा है।

पाँचों पाण्डौ मन कर्म बानी। ताकी सेवा रहै लपटानी ॥ ७ ॥
अर्जुन को ब्रह्मज्ञान दृढ़ाई। संशय गाँठि न अंतै जाई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — दृढ़ाई = निश्चय किया। अंतै = अलग; दूर।

भावार्थ — युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भीम और अर्जुन ये पाँच पाण्डव मन, वाणी, कर्म से श्री कृष्ण महराज की सेवा में लगे रहते थे ॥ ७ । उनमें अर्जुन को उन्होंने ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया; परन्तु उनकी संदेह-ग्रंथि दूर नहीं हुई (यदि दूर होती तो युद्ध करने तथा हिमालय में गलने की क्या आवश्यकता पड़ती ?) ॥८॥

विराट रूप माया दिखलाया। भाँति भाँति कात्रास बताया ॥ ९ ॥
दुर्योधन सों युद्ध कराई। कुल परिवार को मार ढहाई ॥१०॥

शब्दार्थ — त्रास = दुःख। ढहाई = विनष्ट किया।

भावार्थ — उन्होंने दुर्योधन तथा अर्जुन को इन्द्रजालवत् विराटरूप दिखलाकर उन्हें अनेक प्रकार से दुःख बतलाया ॥ ९ ॥ अन्ततः अर्जुन को दुर्योधन से युद्ध करने में लगाये और कौरव-पाण्डव दोनों के कुल-परिवार को मरवा करके विनष्ट कर दिये ॥१०॥

विशेष — श्री कृष्ण महाराज जब पाण्डवों का दूत बनकर दुर्योधन के पास उसे समझाने गये थे; परन्तु वह समझा नहीं, तो उसे भी विराटरूप दिखाकर भयभीत किये; परन्तु इतने पर भी उसे प्रभावित न कर सके।

जब अर्जुन युद्ध-क्षेत्र में आये और विपक्षी सेना में गुरु, आचार्य, चाचा, पितामह को देखकर उनसे युद्ध करने का विचार छोड़ने लगे, तब श्री कृष्ण जी उन्हें अनेक प्रकार से समझाकर युद्ध करने में लगाने की चेष्टा किये। यहाँ तक कहे कि जीव अविनाशी है वह मरता नहीं, फिर तू युद्ध करने में पाप क्यों मानता है। युद्ध में तो केवल नाशवान शरीर मरेगा। और अन्ततः अर्जुन को विराटरूप दिखाकर यह सिद्ध किये कि ये सब मेरे द्वारा मारे गये हैं। करने-कराने वाला सब मैं हूँ। तू चिंता मत कर इनको मार। यदि नहीं मारेगा तो तू ही अपने कर्तव्य से गिर कर पापी बनेगा। इसप्रकार उल्टा-पल्टा समझा कर युद्ध करवाया और दोनों कुलों का नाश करवाया। महाभारत युद्ध के बाद ही से भारत का पतन होना आरम्भ हुआ। शोक है, भू-भारहारी द्वारा ही भू-भार भारत पर लद गया।

पुनि सो कहा भया अपराधा। अश्वमेध करो जेहि मिटै उपाधा ॥११॥
जो जो कहा सो सब कीन्हा। कोई बात सों चूक न लीन्हा ॥१२॥

शब्दार्थ — **अश्वमेध** = एक प्रसिद्ध वैदिक यज्ञ जिसे कोई चक्रवर्ती राजा या सम्राट ही कर सकता था और जिसमें सभी देशों का भ्रमण करके लौटने वाले घोड़े को मार कर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था (वृहत हिन्दी कोश : ज्ञानमण्डल प्रेस वाराणसी)। **चूक** = असावधान।

भावार्थ — फिर श्रीकृष्ण महाराज युद्ध के बाद कहे कि युद्ध करके महान पाप हुआ। अतएव अश्वमेध यज्ञ करो जिससे सब पाप दूर हो ॥ ११ ॥ श्रीकृष्ण महाराज ने जो कुछ कहा वह सब पाण्डवों ने किया। उन्होंने किसी बात में असावधानी नहीं की ॥ १२ ॥

बँधे बरिष अश्वमेध को लागी। मोचन पाप लायउ न आगी ॥१३॥
अन्तकाल चहिये कल्याना। गले हिवारे जाय अयाना ॥१४॥

शब्दार्थ — **बरिष** = वरिष; ताँबा; ताम्रपत्र। **लागि** = के लिये। **मोचन** = बन्धन, कष्ट आदि से छुड़ाना।

भावार्थ — अश्वमेध यज्ञ कराने के लिये घोड़े के मस्तक पर विजय ताम्रपत्र बाँधकर घोड़ा छोड़ दिये (जिन लोगों ने घोड़ा पकड़ा, उनको भी मार कर समाप्त किये। फिर सर्वत्र विजय करके जब घोड़ा लौटा तब उसे मारकर उसकी चर्बी का हवन किये तथा अन्य भी बहुत से जीव मारे। इस प्रकार पाप को छुड़ाने के लिये दोहरी हिंसा की पापाग्नि लगाये।) परन्तु यह यज्ञाग्नि पाप को दूर नहीं कर सकती ॥ १३ ॥ अंत समय में मोक्ष चाहिये; इसलिये मुक्ति के लिये पाचों पाण्डव अल्पज्ञवत् हिमालय में जाकर गल गये ॥ १४ ॥

बीजक, साखी २३६

कृष्ण समीपी पाण्डवा, गले हिंवारे जाय।
लोहा को पारस मिलै, तो काहेको काई खाय ॥३६॥

शब्दार्थ — **हिंवारे** = हिमालय। **काई** = एक छोटी घास; पाप।

भावार्थ — श्रीकृष्ण महाराज के पास में रहने वाले पाण्डव मोक्ष के लिये जाकर हिमालय में गल गये। यदि लोहा को पारस का स्पर्श हो जाय तो उसमें मोरचा क्यों लगेगा ? अर्थात् यदि पाण्डव को सच्चे सद्गुरु मिले होते तो उनका हिमालय में गलने की क्या आवश्यता थी ? ॥ ३६ ॥

चौपाई—१२

२६-विविध विषयों पर आलोचना

समाचार भजन आराधन जगबुद्धि

चौपाई—२३

जग में जेते भये बलधारी। महिमा एक अनेक सँवारी॥ १ ॥
मच्छ कच्छ सूकर वपुधारा। जो जो कर्म किया संसारा॥ २ ॥

शब्दार्थ — **बलधारी** = बल को धारण करने वाले; शक्तिशाली। **सँवारी** = सजाया। **वपु** = शरीर; अवतार ।

भावार्थ — संसार में जितने शक्तिशाली लोग हुए हैं; उनकी एक से अनेक महिमायें लोगों ने पुस्तकों में सजा कर रखी हैं। अथवा एक पुस्तक से लेकर अनेक पुस्तकों में उनकी महिमायें सजाई हैं॥ १ ॥ कहते हैं भगवान ने मत्स्य (मछली) कच्छप (कछुआ) और सूकर का अवतार धारण किया है। उन्होंने जो-जो कर्म संसार में किया है उसका वर्णन पुराणों में विदित है॥ २ ॥

विशेष — मत्स्य, कच्छप, सूकर आदि अवतार संसार में किये क्या हैं, सब मनुष्यों की कल्पनाओं ने की है। अर्थात् ये बिल्कुल अलीक एवं कल्पनाप्रसूत हैं।

नरहरि बावन छल अधिकारी। परशुराम क्षत्री जिन मारी॥ ३ ॥
बहु महिमा लीला रघुराई। बाल्मीक शंकर गुण गाई॥ ४ ॥

शदार्थ — **नरहरि** = नृसिह अवतार।

भावार्थ — हिरण्यकश्यपु को मारनेवाले नृसिह, राजा बलि को छलने वाले छल करने में प्रवीण वामन, जिन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों को मारा वे परशुराम ये सब भगवान के अवतार माने जाते हैं॥ ३ ॥ रघुनाथ श्रीराम जी को अवतार मान कर

उनकी लीला की बहुत महिमा गोस्वामी तुलसीदास जी ने शंकर के मुख से पार्वती के प्रति कहलाया है तथा उसके पहले बाल्मीकि जी अपनी रचित रामायण में वर्णन किया है ॥ ४ ॥

कैकई सौत संशय उर आनी । दशरथ छली कामबस जानी ॥ ५ ॥
दशरथ वचन रामवन गवना । सीता हरण कियो तेहि रवना ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — गवना = गमन; गये । **रवना** = रावण ।

भावार्थ — राम की माता कौशिल्या थीं । उनकी सौत कैकयी थीं । चेरी मंथरा के उलटा-पलटा समझाने से कैकयी के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ कि सौत का पुत्र राम यदि राजा हुआ तो हम और हमारा पुत्र भरत तिरस्कृत होंगे । अतः कुपित हुई । दशरथ छोटी पत्नी कैकयी में अति आसक्त थे । वे उसे मोहवश समझाने लगे । कैकयी ने दशरथ को कामवश जानकर उन्हें छल करके उनसे भरत का राज्य तथा राम को चौदह वर्ष के लिये वनवास स्वीकार करा लिया ॥५॥ अतएव दशरथ की आज्ञा से राम वन को चले गये । उनके साथ में लक्ष्मण और सीता जी भी गये । उसी वनवास-काल में रावण सीता को चुरा कर लंका ले गया ॥ ६ ॥

तासु मोह विकल भये भारी । कपिदल साज रावण मारी ॥ ७ ॥
राजकर्म में भयउ पुनीता । निश्चर निकर अपरबल जीता ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **निकर** = समूह । **अपरबल** = प्रबल ।

भावार्थ — सीता के वियोग से उनके मोह में महाराज राम बहुत दुखी हुए । अतएव उन्होंने वानर (वन के नर = जंगली मनुष्यों) की सेना साजकर रावण तथा उसके परिवार एवं सेना को मार डाला ॥ ७ ॥ उन्होंने प्रबल निश्चर समूह को जीत कर और पीछे सीता को लेकर अयोध्या आये और राज्यकर्म में उन्होंने पवित्र व्यवहार किया अर्थात् पुत्रवत् प्रजाको मानकर उनका पालन किया ॥ ८ ॥

कल्याण हेतु संशय उर आई । मुनि वशिष्ठ ब्रह्मज्ञान दृढ़ाई ॥ ९ ॥
अंतस ब्रह्मज्ञान अभिमानी । पूजा पाठ बहुत उन ठानी ॥१०॥

शब्दार्थ — **अंतस** = भीतर; अन्तःकरण ।

भावार्थ — महाराज राम के मन में अपने मोक्ष के लिये संदेह हुआ कि हमारा उद्धार कैसे होगा ? तब वशिष्ठ मुनि ने उन्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया ॥ ९ ॥ इस प्रकार उनके अन्तःकरण में ब्रह्मज्ञान का स्वाभिमान था कि 'अहंब्रह्मास्मि' । उन्होंने वैदिक ढंग से बहुत प्रकार से पूजा-पाठ के विधानों का भी पालन किया ॥ १० ॥

विशेष — विवेक से तथा सरसरी निगाह डालने से भी सिद्ध होता है कि महाराज श्रीराम एक राजा के पुत्र थे । सामान्य लोगों के समान सुख-दुःख भोगे थे ।

योगवाशिष्ठ ग्रन्थ के अनुसार उनको ब्रह्मज्ञान निश्चय हुआ था। वे पूजा-पाठ तथा यज्ञ-यागादि करते थे। इन सब बातों में भी गुण-दोष हैं। परन्तु खास रूप से वे एक राज-नीतिक धार्मिक पुरुष थे। प्रजापालक थे।

लीला कृष्ण बरनि बहु भाँती। ध ध्यान दिवस औ राती ॥११॥
कामिनी छली रूप अधिकाई। अबला मोहै बाँस बजाई ॥१२॥

शब्दार्थ — बाँस = बंसरी।

भावार्थ — श्री कृष्ण जी की लीला ग्रंथकारों ने बहुत प्रकार से वर्णन की है। उनके भक्त लोग उन्हीं लीलाओं का रात-दिन ध्यान धारण करते हैं ॥ ११ ॥ श्री मद्-भागवतादि ग्रन्थों के अनुसार श्रीकृष्ण जी महाराज अपना रूप-सौंदर्य अधिक बनाकर व्रज की ललनाओं को छले और बंसरी बजाकर उनको मोहित किये ॥ १२ ॥

तिनके संग क्रीड़ा बहु करई। कामातुर सों पायन परई ॥१३॥
विषय वासना निशिदिन धावै। ब्रह्म अच्युतानंद कहावै ॥१४॥

शब्दार्थ — धावै = दौड़ना; ध्यान करना। अच्युतानंद = अच्युत + आनन्द; अच्युत = जो पतित न हो, अपने आप में स्थित; आनन्द = मंगलमय।

भावार्थ — (पुराणों के अनुसार) श्री कृष्ण जी पर यह आरोप लगता है कि वे व्रजललनाओं के साथ अनेक प्रकार से क्रीड़ा करते थे। कामातुर होकर गोपियों के पैर भी पड़ते तथा उनको अपने कंधे पर बैठा कर घूमते थे ॥ १३ ॥ इस प्रकार रात-दिन तो विषय-वासना की पूर्ति के लिये दौड़ते थे या उसी का ध्यान करते थे। परन्तु कहलाते थे अच्युतानन्द अर्थात् न पतित होने वाला, अपने आप की स्थिति में आनन्दमग्न ॥ १४ ॥

राज काज सबै अधिकारी। विरह व्याकुल व्रज की नारी ॥१५॥
गोपिन विरह अनल तन जारी। तासु लोक गौलोक विचारी ॥१६॥

शब्दार्थ — अधिकारी = प्रवीण। गौलोक = श्रीकृष्ण का कल्पित स्वर्गलोक।

भावार्थ — श्रीकृष्ण जी राज-काज चलाने में प्रवीण थे; और व्रज की नारियाँ उनके विरह में व्याकुल थीं ॥ १५ ॥ श्री कृष्ण जी के न रहने पर गोपियों ने विरहाग्नि में अपना शरीर जला डाला। पीछे भक्तों ने उनके विषय में अपना यह विचार बनाया कि सब गोपिकायें गौलोक एवं श्री कृष्ण के धाम को चली गयीं ॥ १६ ॥

सोइ सोइ पाट करहिं लौ लाई। संशय मोह दिन दिन अधिकाई ॥१७॥
जगत जाल नाना दुख पावै। मुक्ति हेतु सो लीला गावै ॥१८॥

शब्दार्थ — पाट = पार्ट; अंश; भाग; नाटक या लीला का अंश।

भावार्थ — वही रासलीला का अंश व सर्वांश आज भी लोग ध्यान से करते हैं। परन्तु उससे तो संशय और अज्ञान दिन प्रतिदिन अधिक ही होते जाते हैं ॥ १७ ॥ जगत के विषयजाल में जीव नाना प्रकार के दुःख पाते हैं। आश्चर्य है उन दुःखों से छुटकारा के लिये उसी विषयक्रीड़ा एवं रास की लीला का गायन करते हैं ॥ १८ ॥

विशेष — पुराणों ने श्री कृष्ण महाराज को विषयवासना में अत्यन्त लीन सिद्ध करने की भरपूर चेष्टा की है। श्रीमद्भागवत ने श्रीकृष्ण जी की सोरह हजार एक सौ आठ (१६१०८) रानियाँ सिद्ध की हैं। अकेले श्री कृष्ण इतनी रानियों को कैसे संतुष्ट कर सकते थे ? इस शंका के समाधान के लिये नारद का एक उपाख्यान जोड़ा है कि एक बार यही सन्देह नारद को भी हुआ और इसके समाधान के लिये वे श्री कृष्ण के रंगमहल में गये। उनके रंग महल में प्रति रानी के लिये अलग कमरे थे। प्रति कमरे में नारद ने जाकर देखा तो सब में श्री कृष्ण जी राग-रंग करते हुए मिले। अर्थात् वे एक ही साथ प्रति रानी के लिये भिन्न रूप बना लेते थे। महाराज श्री कृष्ण के आचरण को अत्यन्त शिथिल बनाने के लिये पुराणों में ऐसी-एसी बातें लिखी गयीं हैं जो अत्यन्त भोलापन को जाहिर करती हैं।

श्री कृष्ण तथा गोपियों का जो वीभत्स विषयक्रीड़ा का वर्णन भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराणादि में है, उसका स्यात् शतांश भी आजकल के होटलों के डांस (नाच) में नहीं होता, जो कि धार्मिक लोगों की दृष्टि में घृणित है। आज के बड़े-बड़े विद्वान उस रासलीला एवं विषय-क्रीड़ा को भगवान-भगवती की चिन्मय दिव्यलीला बतलाकर उसे बड़ी ऊँची स्थिति सिद्ध करते हैं; और उसे हमें द्राविडप्राणायाम (चक्करदार बातों) द्वारा सही समझाने की चेष्टा करते हैं। उनकी बातों से भोले-भाले लोग भले उसे अच्छा मान लें; परन्तु विवेकियों को वे बातें खटकती हैं और विदेशी एवं विधर्मी लोग इस बेहूदापन पर हँसते हैं।

भागवत में आता है—

रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥

(भागवत १०।९०।५। टी० गी० प्रे०)

भगवान श्री कृष्ण सोलह हजार से अधिक पत्नियों के एकमात्र प्राणवल्लभ थे। उन पत्नियों के अलग-अलग महल भी परम ऐश्वर्य से सम्पन्न थे। जितनी पत्नियाँ थीं, उतने ही अद्भुत रूप धारण करके वे उनके साथ विहार करते थे।

चाहै भवसागर सों तरना। पुनि सो भवजल फेर न गहना ॥१९॥
जगन्नाथ प्रतिमा बनाई। कृष्ण पिंड गाड़ा तहँ जाई ॥२०॥

शब्दार्थ — **भवसागर** = जन्म-मरण । **प्रतिमा** = मूर्ति ।

भावार्थ — यदि जीव भवसागर से पार पाना चाहता हो तो उसे सांसारिक बन्धनों में पुनः नहीं पड़ना चाहिये ॥ १९ ॥ श्रीकृष्ण महाराज का शरीर जब 'जरा' नाम के व्याध के बाण से सवा सौ वर्ष की अवस्था में छूट गया, तब उनके भक्तों ने उनके शव को ले जाकर जगन्नाथ में गाड़ दिया और उस पर चन्दनकाष्ट की उनकी प्रतिमा का भी स्थापन किया या केवल उनकी प्रतिमा का ही स्थापन किया ॥ २० ॥

विशेष — कुछ लोगों की यह भी मान्यता है जैसा सर राधाकृष्णन ने अपनी 'इण्डियन फिलॉसॉफी' में कहा है कि जगन्नाथ का मंदिर बौद्धों का था । पीछे से सनातन धर्मियों ने उसपर अपना कब्जा कर लिया है ।

बुद्धगया जो बौद्ध अवतारा । जाके पंथ जैनी संचारा ॥२१॥
दत्तात्रेय व्यास कवि नाना । गिनती चौबिस करहिं बखाना ॥२२॥

शब्दार्थ — **बुद्धगया** = विहार प्रदेश में स्थित गया तीर्थ के सात मील दूरी पर एक वन के एक पेड़ के नीचे तप करते हुए गौतम को बुद्धत्व (ज्ञान) प्राप्त हुआ था । इसीलिये उनका नाम बुद्ध हुआ और उस स्थान का नाम बुद्धगया हुआ । **बौद्ध अवतार** = बुद्ध अवतार । **संचारा** = संचार; मार्ग; ढंग; जीवन व्यापार ।

भावार्थ — जो बुद्ध अवतार हुआ वह जहाँ बुद्धत्व प्राप्त किये उस स्थान का नाम बुद्ध गया हुआ । उनके सम्प्रदाय के बहुत से ढंग, मान्यता एवं रीति-रिवाज जैनियों से मिलते-जुलते हैं ॥ २१ ॥ दत्तात्रेय, कवि व्यास आदि अनेक अवतार हुए जिनको चौबीस की संख्या में वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥

विशेष — बुद्ध उत्तरी भारत के कपिलवस्तु राजधानी में राजा सुद्धोधन के औरस से आज (विक्रमी सम्वत् २०३०) से पूर्व २५३० वें वर्ष में जन्म लिये । इनके अनुयायी बौद्ध कहलाये । इनसे जेष्ठ इन्हीं के काल में महावीर स्वामी थे, जिनसे जैन मत का विकास हुआ ।

हिन्दू पण्डितों ने बुद्ध मतावलम्बियों को राक्षस सिद्ध करने के लिये छलपूर्वक बुद्ध को अवतार घोषित किया । कहा कि "परमात्मा ने राक्षसों को मोहित करने के लिये बुद्ध अवतार धारण करके वेदों की निन्दा की है । अतएव समस्त राक्षस वेद और वैदिक यज्ञ के निंदक होकर पतित हुए, वे ही सब बुद्धिष्ठ हैं ।" ये बातें कितनी बेतुकी हैं ।

एक आस आगे लौ लावै । कलि विषहरन कलंकी गावै ॥२३॥
सनकादिक शुक नारद ज्ञानी । सहस अठासी मुनिवर खानी ॥२४॥

शब्दार्थ — **कलंकी** = कल्कि; विष्णु का दशवाँ अवतार जो कलियुग के अंत में

संभल (मुरादाबाद) में होगा ऐसी कल्पना कर रखी है। **सहस**=सहस्र, हजार। **खानी**=खानि; खान; खूँट; ओर; प्रकार; भेद।

भावार्थ — दश अवतारों में से एक अंतिम कल्कि अवतार जो कलियुग के अन्त में होना कथन कर रखा है, उसके प्रति लोगों की आशा तथा ध्यान लगा है कि वह कलियुग के सारे पाप एवं अत्याचार रूप विष को दूर कर देगा ॥२३॥ सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार, शुकदेव, नारद आदि ज्ञानी हुए तथा अनेकों प्रकार से अठासी हजार श्रेष्ठ मुनिगण हुए ॥ २४ ॥

आप आप सब ब्रह्म कहावै। खोजि खोजि कछु अंत न पावै ॥२५॥
आप गये औरन भरमावै। पुनि सो ब्रह्म एक भिन्न कहावै ॥२६॥

शब्दार्थ — **अंत**=निबटारा; निश्चय। **औरन**=दूसरों को।

भावार्थ — सभी ज्ञानी जब ईश्वर या ब्रह्म को बहुत खोजे और उसका निबटारा या बाहर निश्चय नहीं हो सका तब वे सब अपने आप को ही कहने लगे कि 'मैं ही ब्रह्म हूँ—अहंब्रह्मास्मि' ॥ २५ ॥ वे स्वयं भूल गये और दूसरे का भी भुलाने लगे। पुनः कहने लगे कि वह ब्रह्म अद्वैत और सबसे भिन्न है ॥ २६ ॥

विशेष — मनुष्य को अमरता, स्वतंत्रता तथा दुःखहीनता की प्रबल इच्छा हर समय बनी रहती है; परन्तु वह मरणशीलता, परतन्त्रता और दुःख में सदैव सना रहता है, इसलिये वह उक्त आदर्श अलग खोजता है। जो अमर, स्वतन्त्र और दुःख-मुक्त हो, उसका नाम वह ईश्वर या ब्रह्म रखता है। जब वह बाहर से भी उसे कहीं नहीं पाता, तब पुनः अपनी ओर लौटता है और अपने अमर चेतन स्वरूप पर विचार करता है और कहता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही श्रेष्ठ हूँ। यह स्थिति सर्वोच्च है, परन्तु जब उसकी परिभाषा बिगाड़ न डाली गयी हो। जब उस अपने आपको जड़ से अभिन्न तथा चराचर व्यापक मान लिया जाता है तब फिर बात वहीं-की-वहीं रह जाती है। जड़-चेतन, पाप-पुण्य, बन्ध-मोक्ष सब बराबर हो जाता है। फिर तो एक ब्रह्मज्ञानी तथा दूसरा भौतिकवादी दोनों की दृष्टि से सब एक है। उसी को भौतिक-वादी जगत कहते हैं और उसी को ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म कहते हैं। जगतरोग ब्रह्म में स्वाभाविक होने से उसका छूटना भी असम्भव हो जाता है। फिर वे कभी-कभी कहते हैं कि इस जगत से ब्रह्म पृथक है। इस प्रकार उनको कोई स्थायी निश्चय भी नहीं रहता। ऐसी स्थिति के लोग स्वयं भूले तथा दूसरे को भी भुलाये।

हम पूज्य सनकादि महर्षियों को बुरा नहीं कह सकते। क्योंकि अपने काल में उन्होंने जितना स्वरूप शोधन किया प्रशंसनीय समझना चाहिये। उसके आगे हमें स्वयं परख-विवेक करना चाहिये। वस्तुतः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश (शून्य) जड़तत्वों से चेतन सर्वथा पृथक तथा प्रत्येक भिन्न-भिन्न और व्याप्य-व्यापक वर्जित हैं।

असी सहस्र पैगम्बर होई। कुदरत खोज तिनहुँ नहिं पाई ॥२७॥
आदम आद होय अल्लाह पठाना। नाम खलील की बानी ठाना ॥२८॥

शब्दार्थ — **कुद्रत** = कुदरत; ईश्वरीय शक्ति; प्रकृति, सामर्थ्य; कारीगरी। **आदम** = यहूदी, ईसायी तथा इस्लामियों के अनुसार वह मनुष्य जिसको ईश्वर ने सृष्टि के पहले पहल बनाया था। **आद** = आदि; शुरू। **पठाना** = भेजना। **खलील** = खलील; प्यारा; एक पैगम्बर।

भावार्थ — कहते हैं संसार में असी हजार (८००००) पैगम्बर आये; परन्तु वे भी ईश्वर शक्ति तथा प्रकृति का पता नहीं लगा सके ॥२७॥ अल्लाह ने सृष्टि के पहले आदम को संसार में भेजा और उसने ईश्वर के प्यारे नाम की वाणी का प्रचार किया अथवा खलील नामक पैगम्बर के उपदेशों का प्रचार लोगों ने किया अथवा आदम के बाद इब्राहिम खलुल्ला या खलील पैगम्बर हुए और उनकी वाणी का प्रचार हुआ ॥ २८ ॥

विशेष — 'इस्लाम प्रबोधिनी' नामक पुस्तक में लिखा है कि संसार में एक लाख चौबीस हजार रसूल (पैगम्बर) आये। इस प्रकार हिन्दुओं के समान मुसलमानों में भी कल्पना की बड़ी-बड़ी उड़ाने हैं।

नूह सुलेमान ईसा मूसा। नाम महम्मद कहै संदेशा ॥२९॥
अपनी उक्ति कुरान बनाई। रोजा हज्ज फर्ज फुरमाई ॥३०॥

शब्दार्थ — **नूह** = शामी या इबरानी मतों के अनुसार आदम से दशवीं पीढ़ी में उत्पन्न एक पैगम्बर (जिनके समय में एक ऐसा तूफान आया था कि सारी सृष्टि जलमग्न हो गयी थी। उस समय अपने परिवार तथा सभी जानवरों के एक-एक जोड़े के साथ एक स्वनिर्मित नौका में बैठाकर इन्होंने प्राण बचाये थे। कल्पना है कि उन्हीं से पुनः सृष्टि हुई इसकी कथा बाइबिल के आरम्भ में है, जिसका संक्षिप्त विवरण जगन्मीमांसा में बाइबिल खण्ड में दिया गया है)। **सुलेमान** = सुलैमान, दाऊद का बेटा यहूदियों का तीसरा बादशाह जिसने यरूशलम नगर का निर्माण कराया और जिसकी गणना विश्व के बडे मनीषियों में की जाती है। **ईसा** = ईसायी धर्म के प्रवर्तक जो ईश्वर के पुत्र माने जाते हैं। **मूसा** = यहूदी धर्म के प्रवर्तक जो पैगम्बर या ईश्वर के संदेशवाहक माने जाते हैं। **महम्मद** = अन्तिमी पैगम्बर, इस्लाम का प्रवर्तक। **उक्ति** = कथन, वाक्य; पद्य। **रोजा** = रमजान महीने में तीसों दिन रात में खाकर दिन में उपवास रहना। **हज्ज** = संकल्प करना; नियतकाल पर काबे के दर्शन और प्रदक्षिणा करना; मक्के की यात्रा। **फर्ज** = फर्ज; ईश्वरादिष्ट अवश्य कर्तव्य कर्म; शास्त्रविहित कर्म, कर्तव्य, जिम्मेदारी, कल्पना। **फुरमाई** = फरमाया, कहा, आज्ञा दिया।

भावार्थ — (यहूदी, ईसायी तथा मुसलमानों के अनुसार) नूह, सुलेमान, ईसा, मूसा तथा मुहम्मद नाम के पैगम्बर तथा महान पुरुष ईश्वर के सन्देश का प्रचार करने आये हैं ॥२९॥ हजरत मुहम्मद ने चालीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर अपने वाक्यों में अरबी भाषा में कुरान शरीफ की रचना की है और इस्लामधर्म चलाया है तथा उसी मत से रोजा (उपवास), हज्ज (मक्का-यात्रा), नमाज (ईश्वर प्रार्थना) जकात (दान, आमदनी का ४० वाँ भाग देना) तथा कलमा हर मुसलमान का कर्तव्य बताया है ॥ ३० ॥

विशेष — इस्लामके मुख्य पाँच नियम हैं—रोजा, हज्ज, निमाज, जकात और कलमा।

निमाज हज सिजदे में जाई। भरम जाल जग रहा भुलाई ॥३१॥
खतमा नबी कलमा जग आना। तेहि पाछे जग भया दिवाना ॥३२॥

शब्दार्थ — निमाज = नमाज। हज = हज्ज। सिजदे = सिजदा; माथा टेकना; खुदा के आगे सिर झुकाना; मुसलमानों की उपासना का एक अंग जिसमें माथा, नाक, कुहनियाँ, घुटने और पाँवों की उँगलियाँ जमीन पर लगती हैं। खतमा = समाप्ति; आखीरी। नबी = ईश्वर का दूत; पैगम्बर। कलमा = कलमा; सार्थक शब्द, बात, उक्ति; वह वाक्य जो मुसलमानों के धर्म विश्वास का मूल मंत्र है—"ला इलाह इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह"— अर्थात् अल्लाह के सिवा दूसरा ईश्वर नहीं, मुहम्मद अल्लाह का रसूल (भेजा हुआ) है।

भावार्थ — लोग नमाज पढ़ते, मक्के की यात्रा करते तथा मस्जिद में सिर झुकाते हैं, इस प्रकार जगत के लोग भ्रमजाल में भूल रहे हैं ॥३१॥ आखीरी पैगम्बर हजरत मुहम्मद दुनिया में कलमा लाये; उसके पीछे दुनिया के लोग दीवाने बन गये।३२।

विशेष — यदि हिंसारहित हो तो अपने विश्वासानुसार किसी प्रकार धार्मिक कृत्य करना ठीक है। परन्तु केवल उसी में गड़ जाना और आगे यथार्थ स्वरूपशोधन का विचार न करना बड़ी भूल है। जिन्दगी भर शून्य की ही उपासना करते रहना और अपने स्वरूप को न पहचानना अपने आप के लिये ही अक्षम्य है।

मुसलमान बन्धुओं की यह धारणा कि "हजरत मुहम्मद 'खतम नबी' एवं आखीरी पैगम्बर हैं। उन्होंने आखीरी निर्णय दिया है उसको जो नहीं मानेगा वह काफिर है। उनमें एक जोश उत्पन्न कर दिया। और इस जोश से अपने राज्य काल में वे जो इसलाम नहीं स्वीकार किये उन्हें अवसर पड़ने पर तलवार के घाट पर भी उतार दिये। अतएव उक्त संकीर्ण उपदेश के पीछे मुसलिमजगत् अवश्य बदहवासी की स्थिति में गुजरा। वह बदहवासी अभी सिर पर चढ़ी है।

खोजि खोजि कछु अंत न पावै। अनलहक्क तब आप कहावै ॥३३॥
निज पहिचान हेत जब कियेऊ। पीर पैगम्बर औलिया भयेऊ ॥३४॥

शब्दार्थ — अंत = निबटारा; निश्चय। अनलहक्क = अनलहक़; मैं हक; मैं सत्य; मैं ब्रह्म: अहंब्रह्मास्मि। निज = स्वयं। हेत = हेतु; लक्ष्य। पीर = मुसलमानों के धर्म गुरु। पैगम्बर = ईश्वर का भेजा हुआ। औलिया = सिद्ध पुरुष, संत, महात्मा, पहुँचा हुआ मुसलमान फकीर; 'वली' का बहुवचन; 'वली' का अर्थ 'सिद्ध पुरुष' है।

भावार्थ — ईश्वर को खोजते-खोजते जब उसका बाहर कहीं पता न लगा और निश्चय न हुआ तब स्वयं अपने को ब्रह्म कहने लगे—'अनलहक़'॥३३॥ जो व्यक्ति अपने आपको पहचानने का जब लक्ष्य किया तब साधना करते-करते पीर, पैगम्बर और औलिया हुआ॥३४॥

विशेष — ईश्वर को अपने से बाहर मानने वाले भी जब उसे बाहर खोजकर थक जाते हैं तब अपने आपकी ओर लौटते हैं। कट्टर ईश्वरवादी मुसलमान बन्धु भी आत्मवाद की ओर लौट कर 'अनलहक़' अर्थात् 'मैं ही सत्य हूँ' कह बैठते हैं। अतएव चाहे कोई अरबों युग ईश्वर को अलग खोज ले; अन्ततः हार कर आत्मज्ञान एवं स्वरूप-ज्ञान की ओर बिना लौटे कल्याण कहाँ ?

यद्यपि मूल रूप से अपने आपको पहचानने के लिये ही लोग स्वयं गुरु बनते, पैगम्बर बनते तथा संत या सिद्ध बनते हैं; तथापि यथार्थ पारख दृष्टि न होने से भटक जाते हैं।

प्रथम अज्ञान न चीन्है आपू। मध्यमें जात त्रिविध संतापू॥३५॥
अंत पैगम्बर जीव बखानै। मार फनाका निज मुख गानै॥३६॥

शब्दार्थ — मध्य = बीच। जात = उत्पन्न, जन्मा हुआ। फना = फना, विनाश, अस्तित्व मिटना, जीवात्मा और परमात्मा या उपास्य-उपासक का अभेद होना। गानै = गान, बखान, वर्णन।

भावार्थ — पहले तो मनुष्य अपने अज्ञान को समझता नहीं; पीछे नाना बन्धनों के बीच में फँसकर उसके जीवन में नाना पीड़ायें उत्पन्न होती हैं॥३५॥ आखीरी पैगम्बर हजरत मुहम्मद जीवों के लिये यह व्याख्यान किये हैं कि रोज़क़यामत (प्रलय) का दिन आने पर अल्लाह अपने मुख से कहेगा 'फना' तब सारे संसार का प्रलय हो जायगा॥३६॥

आदि अन्त मध्य चीन्ह न जाई। खुद खुदाय रहा जहँड़ाई॥३७॥
केते कहैं जनकूं दसीहदीशा। कादि सो छिपा और को दीशा॥३८॥

शब्दार्थ — आदि = शुरू। अंत = प्रलय। मध्य = सृष्टि का स्थित काल। जहँड़ाई = जहँड़ाना, ठगाना, गँवाना। जनकूं = लोगों को, जनता से। दसीहदीशा = दशोदिशायें।

भावार्थ — अल्लाह से सृष्टि का आरम्भ मानना, सृष्टि स्थित काल में बिना पूर्वजन्म के कर्म के भाग्य-दुर्भाग्य एवं सुख-दुखों का भोग मानना और अंत में सबजीवों के कर्मों के न्याय के लिये प्रलय का दिन मानना—ये इनकी कसरें लोगों की परख में नहीं आतीं। मनुष्य स्वयं परम है; परन्तु वह दूसरा कर्ता मानकर अपने को ठगा रहा है ।।३७।। कितने लोग जनता से कहते हैं "वह ईश्वर दशों दिशाओं में व्याप्त है।" परन्तु वह किससे भय मान कर छिपा है ? उसे अन्य कौन देखा है ? ।।३८।।

विशेष — अल्लाह एवं ईश्वर जब पूर्ण काम है, तब वह दुःखमय सृष्टि रचने के चक्कर में क्यों पड़ा है ? फिर यहूदी, ईसायी और मुसलमानों के ईश्वर द्वारा सृष्टि-रचने में तो कोई हेतु नहीं दिखता। क्योंकि सृष्टि के पहले तो वे जीव जो सृष्टि में हैं, देहधारी थे नहीं। तब उनका कौनसा फल देने के लिये ईश्वर ने सृष्टि बनायी ? जब जीव पूर्वजन्म से रहित हैं तब आज उनमें कोई कोढ़ी, कोई सर्वांग सम्पन्न, कोई मूढ़ तथा कोई प्रबुद्ध क्यों है ? "शरीर छोड़ने के बाद पुनः जीव देह नहीं धरते, अन्तिम प्रलय में ही उनका न्याय होगा।" यह केवल भ्रम है। जो सर्वसमर्थ है वह दुनिया से बुराइयों को क्यों नहीं दूर करता ? वह सर्वत्र है फिर भी सर्वत्र होते हुए पाप को नहीं रोक पाता। वह किसके डर से छिपा है ? वह यदि एकबार भी जोर से हल्ला करके कहदे कि 'मैं हूँ' तो भी लोग मान लें।

अतएव अपने चेतन स्वरूप से पृथक ईश्वर खोजना एक मृग-तृष्णा है। कल्पना छोड़कर स्वरूपस्थिति करो।

भरमिक भरम संधि बौआई। बिन गुरु संतत रहा जहँड़ाई ।। ३९।।
जामें मुनिवर पचि पचि हारे। हबी नबी सब भये बिचारे ।।४०।।

शब्दार्थ — संधि = भेद, दरार, अपने से पृथक ईश्वर मानना। **बौआई** = बौआना, सपने में प्रलाप (अकबक) करना। **जहँड़ाई** = जहँड़ाना, ठगा जाना। **हबी** (हबीब) = अतिशय प्रेम करने योग्य, मित्र, खुदा या नबी। **नबी** = मुसलमानी शास्त्रों के रचयिता, पैगम्बर। **बिचारे** = बे-चारे, लाचार।

भावार्थ — भ्रमिक लोग भ्रमवश ईश्वर को अपने से पृथक मानकर स्वप्नप्रलाप करते हैं। बिना यथार्थ गुरु के सदैव अपने को ठगा रहे हैं ।।३९।। जिस कल्पना में पड़कर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि चिंता में गल-गल कर हार गये, उसी में बेचारे पीर-पैगम्बर भी अपने आप को खपा दिये ।।४०।।

सोइ सोइ कीर्ति निशुदिन गावै। अक्बत को बेर खैर बतावै ।४१।।
मुये मुक्ति सबहिन की होई। संधिमृत्यु नहिं चीन्है कोई ।।४२।।

शब्दार्थ — अकबत = किस्मत, भाग्य। **बेर** = दफा, बार, जैसे बार-बार,

या एक बार दो बार। खैर=खैर, भलाई। संधि=अपने से पृथक अपना लक्ष्य करना। मृत्यु=पतन।

भावार्थ — ईश्वर तथा उसके अवतार एवं पैगम्बर की कीर्ति रात-दिन गाते हैं और वे वही कीर्ति का कीर्तन करने में बारम्बार मनुष्य का भाग्य एवं भलाई बतलाते हैं ॥४१॥ इन सबकी मुक्ति मरने के बाद होगी, ऐसा उन्हें निश्चय है। यह कोई नहीं पहचानता कि अपने से पृथक अपना लक्ष्य करना ही अपना पतन है ॥४२॥

विशेष — जो जीते जी मुक्त है वह मरने पर भी मुक्त है और जो जीवित अवस्था में आसक्ति में बँधा है वह मरने पर क्या मुक्त होगा ?

बीजक, शब्द ५७

सेतहि सेत सितंग भौ, सैन बाढ़ु अधिकाय ॥
जो सन्निपात रोगियन मारै, सो साधू पार न पाय ॥३७॥

शब्दार्थ — सेत=शुद्ध। सितंग=शित+अंग, शीतल मन। सैन=संकेत, सेना।

भावार्थ — शुद्धब्रह्म-शुद्धब्रह्म कहते-कहते ब्रह्मवादियों का अंग तो शीतल हो गया और उस ब्रह्म की ओर संकेत करने वाली कल्पनाओं की सेना बहुत बढ़ी। जिस अद्वैतवाद के सन्निपात से बड़े-बड़े ब्रह्मवादी रोगी मारे गये; उस कल्पना का पार आज अन्य साधुलोग भी नहीं पाते हैं ॥३७॥

विशेष — ब्रह्मवाद में अन्ततः जड़-चेतन की अभिन्नता मान्य है, यह उसमें प्रबल दोष है।

२७—हरिभोंगपुर का चित्रण

इतिहास हरिभोंगपुर का

चौपाई—२४

हरिभोंग नगर जहाँ चौपट राजा। भाजी टके टके सेर खाजा ॥ १ ॥
खाँड़ छार गनै एकसारा। हरिभोंग नगर के चाल निन्यारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — टके=टका, पुराने दो पैसों के बराबर ताँबे का सिक्का, अधन्ना। खाजा=खाद्य, खाने की वस्तु, मैदे की बनी एक प्रसिद्ध मिठाई। खाँड़=राब, शक्कर। छार=नमक, धूल। गनै=मानते हैं। एकसारा=एकसमान।

भावार्थ — एक 'हरिभोंगपुर' नाम का शहर था। वहाँ 'चौपट' नाम का राजा राज्य करता था। वहाँ दो पैसे में एक सेर सब्जी मिलती थी और दो ही पैसे में एक सेर अच्छी खाजा नाम की मिठाई मिलती थी ॥ १ ॥ वहाँ के लोग शक्कर और नमक

या धूल को एक समान समझते थे। हरिभोंग नामके शहर की सब चाल विलक्षण थी ॥ २ ॥

एक वस्तु बिकी जो जाई। तहाँ नौ नेगी दुंद मचाई ॥ ३ ॥
आपु आपु को खैंचे सबहीं। घटी होय नफा नहिं कबहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — नेगी = नेग पाने का अधिकारी; विवाहादि मांगलिक कार्य में सम्बन्धियों एवं पौनियों को दिया जाने वाला द्रव्य, वस्त्र, पशु आदि को नेग कहते हैं। यहाँ सार अर्थ 'चुंगी', नेगी का अर्थ चुंगी लेने वाला। दुंद = द्वन्द्व, झगड़ा। नफा = लाभ।

भावार्थ — उस शहर में यदि कोई एक वस्तु भी बिक्री के लिये ले जाये, तो नौ जगह नाकाचुंगी वाले चुंगी लेने के लिये झगड़ा करते थे ॥ ३ ॥ इसलिये वहाँ वस्तु बेंचने से व्यापारी का घाटा होता था, लाभ कभी नहीं ॥ ४ ॥

ताहि नगर अंधेरी राता। चले चोर चोरी के घाता ॥ ५ ॥
दीन्हीं सेंध महल कोइ साहू। तहाँ न भई मनोरथ लाहू ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — घाता = घात; दाँव-पेच; छल; अवसर। सेंध = नकब। लाहू = लाभ।

भावार्थ — उसी नगर में अन्धेरी रात के समय एक चोर चोरी करने के दाँव-पेंच में चला ॥ ५ ॥ और जाकर एक कोई सेठ के घर में सेंध लगाया; परन्तु वहाँ उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई ॥ ६ ॥

पैठत सेंध मरे दबि चोरा। देर भई चोरटी सुधकेरा ॥ ७ ॥
खोजत खोजत पहुँची तहवाँ। तस्कर दबी मुवा है जहँवा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — चोरटी = चोरिन; चोर की पत्नी। तस्कर = चोर।

भावार्थ — चोर सेंध में घुसते ही उसके ऊपर दीवार गिर पड़ी और वह उसी में दबकर मर गया। सुबह हुआ और अधिक दिन चढ़ आया, तब चोरिन को स्मरण आया कि हमारा पति रात में चोरी करने के लिये गया था, वह अभी तक क्यों नहीं आया ? ॥ ७ ॥ वह अपने पति की खोज करते हुए वहाँ पहुँची जहाँ सेठ की दीवार में चोर दब कर मरा पड़ा था ॥ ८ ॥

करत विलाप गई ढिग राजा। जहाँ के भोंदू सकल समाजा ॥ ९ ॥
कहा दाद मोहि दीजै राऊ। नहिं तो परजा बसै न गाँऊ ॥ १० ॥

शब्दार्थ — भोंदू = मूर्ख; बुद्धू; भोलेभाले। दाद = इन्साफ; न्याय। राऊ = राजा।

भावार्थ — वह विलाप करते हुए राजा के पास गयी, जहाँ की पूरी सभा भोली-भाली थी ॥ ९ ॥ चोरिन ने कहा हे राजन ! हमें न्याय दो । हमारा पति क्यों सेठ की दीवार को सेंध में दब कर मरा ? अन्यथा आप के नगर में (अन्याय जानकर) प्रजा नहीं बसेगी ॥ १० ॥

चोर गये चोरी के हेता । सो दबि मुवा साहु के भीता ॥११॥
साहु बुलाइके फाँसी दीजे । यही न्याव देर मति कीजे ॥१२॥

शब्दार्थ — हेता = के लिये ।

भावार्थ — हमारा पति चोर है । वह चोरी करने के लिये सेठ के घर पर गया और उसको दीवार में सेंध लगाया । परन्तु दीवार इतनी कमजोर थी कि वह उसी में दबकर मर गया ॥ ११ ॥ अतएव आप सेठ को बुलाकर उन्हें फाँसी दो । उनके साथ यही न्याय करो । विलम्ब मत करो ॥ १२ ॥

राजा साहू पकरि बुलावा । फाँसी देन तुरित फुरमावा ॥१३॥
साहु उजुर किया प्रभु मेरा । ई खोरी सुतिहारन केरा ॥१४॥

भावार्थ — तुरित = तुरन्त । फुरमावा = फरमाया, आज्ञा दिया । उजुर = उज्र, आपत्ति, विरोध । खोरी = दोष, गलती । सुतिहारन = शिल्पी, कारीगर, थवई ।

भावार्थ — चौपट राजा ने सेठ को पकड़ कर बुलवा लिया; और उसे फाँसी देने के लिये तुरन्त आज्ञा दे दी ॥ १३ ॥ सेठ ने विरोध किया कि हे स्वामिन् ! हमारी गलती नहीं है । यह दोष दीवार बनाने वाले कारीगर का है ॥ १४ ॥

घर काँचा उन काहे उठाई । देत सेंध चोर दबि जाई ॥१५॥
राजा पकरि मँगावा सोई । दोष तुम्हारा फाँसी होई ॥१६॥

शब्दार्थ — काँचा = कच्चा; कमजोर ।

भावार्थ — (सेठ ने कहा) कारीगरों ने कमजोर दीवार क्यों उठाई, जिससे सेंध लगाते समय चोर दब गया ? ॥ १५ ॥ तब राजा ने कारीगर को पकड़वा कर बुलवा लिया और उससे कहा कि चोर को दबकर मरने में तुम्हारा दोष है, अतः तुम्हारी फाँसी होगी ॥ १६ ॥

उजुर किया बहुविधि सुतिहारा । दोष मजूरन नाहिं हमारा ॥१७॥
गिलावा कसर मजूरन केरी । ताते भीत गिरी भौ ढेरी ॥१८॥

शब्दार्थ — गिलावा = गारा, कीचड़ । भीत = भित्त, दीवार ।

भावार्थ — कारीगर ने राजा के न्याय पर अनेक प्रकार से आपत्ति की कि

सरकार दोष हमारा नहीं है, प्रत्युत मजदूरों का है ॥ १७ ॥ मजदूरों ने गिलावा बनाने में कसर रखी इसलिये भीत गिरकर चोर के ऊपर ढेर बन गयी ॥ १८ ॥

मजुरा पकरि बुलावा जबहीं । बहु विधि उजुर सुनाया तबहीं ॥१९॥
मजुरा कहै सुनो हो राऊ । हम पर दोष तुम काहे लगाऊ ॥२०॥

शब्दार्थ—मजुरा=मजदूर ।

भावार्थ— राजा ने जब मजदूर को पकड़ कर मँगवाया और उसको फाँसी होने की आज्ञा दी, तब उसने भी अनेक प्रकार से इस न्याय का विरोध किया ॥ १९ ॥ मजदूर कहता है हे राजा ! हमारे ऊपर तुम दोष क्यों लगाते हो ? ॥२०॥

पुत्री काजी चढ़ी अटारी । नूपुर शब्द भया झनकारी ॥२१॥
नाना भाँतिसों पायल बाजै । कोटि भानु सोभा सो लाजै ॥२२॥

शब्दार्थ— अटारी=अट्टालिका, कोठा । नूपुर=पैर का एक गहना, घूँघुर । भान=सूर्य ।

भावार्थ— (मजदूर ने कहा जिस समय मैं गिलावा बना रहा था) काजी की पुत्री अपनी अट्टालिका पर चढ़ी थी । उसके पैरों के नूपुरों की शब्द-झनकार हुई ॥ २१ ॥ उसके नूपुर विविध भाँति बजने लगे । उसके सामने करोड़ों सूर्य की शोभा भी फींकी पड़ गयी थी ॥ २२ ॥

सुनत देखत हम सबै भुलाना । खोरि तासु हम नहीं अयाना ॥२३॥
पुत्री काजी पकरि बुलाई । काहे को अटारी चढ़ी भुलाई ॥२४॥

शब्दार्थ— खोरि=दोष । अयाना=अज्ञानी ।

भावार्थ— उसकी आवाज सुनकर तथा उसके रूप सौंदर्य को देखकर हम सब कुछ भूल गये । अतएव काजी की पुत्री की गलती है, उसमें हमारी निजी भूल नहीं है ॥ २३ ॥ राजा ने काजी की पुत्री को पकड़कर मंगवा लिया और उससे कहा कि तू अट्टालिका पर चढ़कर क्यों भूल का काम किया ? ॥ २४ ॥

पुत्री काजी कहै पुकारी । दोष न दीजै राव हमारी ॥२५॥
बादशाहकी खड़ी असवारी । शोभा देखन चढ़ी अटारी ॥२६॥

शब्दार्थ— राव=राजा । असवारी=सवारी ।

भावार्थ— काजी की पुत्री व्याकुल होकर कहने लगी कि हे राजा ! हमें दोष मत दीजिये ॥ २५ ॥ वस्तुतः बात यह हुई कि बादशाह की सवारी खड़ी थी, मैं उसे देखने के लिये अपनी अट्टालिका पर चढ़ी ॥ २६ ॥

बादशाह को पकरि मँगावो। हमपर दोष तुम काहे लगावो ॥२७॥
लस्कर पकरन ताहि पठाई। नहिं पाई लस्कर फिरि आई ॥२८॥

शब्दार्थ — लस्कर = लशकर; सेना।

भावार्थ — (काजी की पुत्री ने कहा—) हे राजन ! बादशाह को पकड़ करके मंगवाओ और उसे फाँसी दो। तुम हमारे ऊपर दोष क्यों लगाते हो ॥ २७ ॥ चौपट राजा ने बादशाह को पकड़ने के लिये अपनी सेना भेजी, परन्तु उसे कहीं न पाने से वापस लौट आई ॥२८॥

मींजहिं हाथ परा पछतावा। चोरटी न्याव न बनत बनावा ॥२९॥
तेहि अवसर मंत्री उपदेशा। राजा काहे करहु अँदेशा ॥३०॥

शब्दार्थ — चोरटी=चोरिन। अँदेशा = सोच, चिन्ता, शक।

भावार्थ — चौपट राजा हाथ मीजने और पछताने लगे कि हाय ! चोरिन के सन्तोषार्थ न्याय करते नहीं बन रहा है कि किसको फाँसी दी जाय ! ॥ २९ ॥ उसी समय मंत्री राजा को समझाने लगे कि हे राजन् ! आप चिंता क्यों कर रहे हैं ? ॥ ३० ॥

बादशाह औरो दरवेशा। दोऊ समतुल अस कहै संदेशा ॥३१॥
मोटा होय तेहि फाँसी दीजे। अपजस न्याव में काहे को लीजे ॥३२॥

शब्दार्थ — दरवेशा=दरवेश, फकीर, संत। संदेशा = संवाद, खबर। अपजस= अपयश, अपकीर्ति।

भावार्थ — (मंत्री ने कहा) हे राजन ! धर्मशास्त्रों में ऐसी खबर बतायी जाती है कि बादशाह और संत दोनों समान होते हैं ॥ ३१ ॥ अतएव जहाँ कहीं मोटे-तगड़े संत मिल जाँय, उनको फाँसी की सजा दे दी जाय। उनकी फाँसी हो जाने पर मानों बादशाह की फाँसी हो जायगी। न्याय करने में आप अपयश क्यों लें ? ॥ ३२ ॥

तेहि नगर दोउ रहे फकीरा। संत सुखी बहु मोट गंभीरा ॥३३॥
हुकुम किया सो पकरि मँगाये। फाँसी देन तुरित फुरमाये ॥३४॥

शब्दार्थ — फकीर=संत। तुरित=तुरन्त। फुरमाये=फुरमाया, आज्ञा दिया।

भावार्थ — उसी नगर में दो फकीर रहते थे। संत सुखी होते ही हैं। वे बहुत मोटे-तगड़े तथा गंभीर थे ॥ ३३ ॥ राजा ने आज्ञा देकर उन दोनों सन्तों को पकड़ कर मँगवा लिया और उन्हें फाँसी पर लटका देने के लिये तुरन्त आज्ञा दे दी ॥ ३४ ॥

दोऊ विचार करे मन माँहीं। यह हरिभोग बचावा नाहीं ॥३५॥
एक कहै मोहि फाँसी दीजे। दूसर कहै खैंचि मोहि लीजे ॥३६॥

शब्दार्थ — हरिभोंग = हरिभोंगपुर शहर; विपरीत बुद्धि वालों की वस्ती।

भावार्थ — दोनों सन्त मनमें विचार करने लगे कि यह हरिभोंगपुर नगर है यहाँ छुटकारा नहीं है। (यहाँ के सब लोग विपरीत बुद्धि वाले हैं। इनसे न्याय की बात करोगे तो कोई लाभ नहीं होगा। इन विपरीत बुद्धि वालों से बचने के लिये कुछ विपरीत ही बातें करनी चाहिये। ऐसा विचार कर) ॥ ३५ ॥ एक संत कहते हैं कि पहले मेरी फांसी होनी चाहिये; इतने में दूसरे संत फाँसी को खींचकर पहले अपनी फाँसी होने की अभिलाषा प्रकट करने लगे ॥ ३६ ॥

रार परस्पर देखी राऊ। अचरज पूछहिं भेद बताऊ ॥३७॥
मंत्री तहाँ निर्णय अनुमाना। मर्म फकीरा हम पहिचाना ॥३८॥

शब्दार्थ — रार = झगड़ा। अनुमाना = अटकल एवं अन्दाज लगाया। मर्म = भेद।

भावार्थ — राजा दोनों संतों का आपस में पहले फाँसी लेने के लिये झगड़ा देख कर आश्चर्य में डूब गया और मंत्री से पूछने लगा कि इसका भेद बतलाइये ॥ ३७ ॥ मंत्री ने उस समय अपनी विचित्र अटकलबाजी से निर्णय दिया कि संतों का भेद मैं जान गया हूँ ॥ ३८ ॥

कहा लगन उत्तम यह होई। ऐसी लगन न पावै कोई ॥३९॥
चार चरण चारों परवाना। ताका मर्म कोइ बिरले जाना ॥४०॥

शब्दार्थ — लगन = मुहूर्त। चरण = भाग; चतुर्थांश। परवाना = परवान; प्रमाण; यथार्थता; सत्यता।

भावार्थ — (मंत्री ने कहा—) आज के दिन में उत्तम मुहूर्त है। ऐसा मुहूर्त कोई नहीं पा सकता ॥ ३९ ॥ लगन के चार भाग हैं और चारों सच्चे एवं योग्य हैं। इसका भेद कोइ विरला जानता होगा ॥ ४० ॥

पहली लगन जो फाँसी परई। अचल राज त्रैलोक के करई ॥४१॥
दूसर लगन फाँसी व्रत ठानी। अक्षय वजीरी निश्चय जानी ॥४२॥

शब्दार्थ — व्रत = प्रतिज्ञा। वजीरी = मंत्रीपद।

भावार्थ — पहले मुहूर्त में जिसकी फाँसी होगी, वह भूलोक, स्वर्गलोक और अन्तरिक्ष (या पाताल) लोक का निष्कंटक राज करेगा ॥ ४१ ॥ और जो दूसरे मुहूर्त में फाँसी लेने की प्रतिज्ञा करके फाँसी लेगा निश्चय जानो वह उस राज के अक्षय मंत्री पद का अधिकारी होगा ॥ ४२ ॥

तीसर लगन मुसाहिब होई। चौथी लस्कर जानहु सोई। ४३॥
सुनत राव दरवेश निकारी। फाँसी अपने गरे सँवारी ॥४४॥

शब्दार्थ — मुसाहिब = साथ उठने बैठने वाला; साथी-सुहबती; राजा-नवाबों के वे दरबारी जिनका खास काम बातचीत से उनका दिल बहलाना होता है। लस्कर = लशकर; सेना, फौज। दरवेश = संत।

भावार्थ — तीसरे मुहूर्त में जिसकी फाँसी होगी वह उस बादशाह के साथ में रहने वाला होगा, और चौथे मुहूर्त में जिसकी फाँसी होगी वह उसकी सेना के रूप में उत्पन्न होगा, ऐसा जानो ॥ ४३ ॥ मंत्री की ये बातें सुनते ही राजा ने दोनों संतों को फाँसी के दण्ड से मुक्त कर दिया और तत्काल ही पहले मुहूर्त में फाँसी अपने गले में डाल कर लटक गया ॥ ४४ ॥

दूसर फाँसी मंत्री लीन्हा। तीसर लगन मुसाहिब दीन्हा ॥४५॥
चौथी लगन सकल हरिभोंगू। फाँसी परहि बड़े संयोगू ॥४६॥

शब्दार्थ — बड़े संयोगू = बड़ी उत्तम योग्यता एवं मुहूर्त।

भावार्थ — दूसरे मुहूर्त में मंत्री ने अपनी फाँसी ली और तीसरे मुहूर्त में मुसाहिब ने अपने को फाँसी दी ॥ ४५ ॥ और चौथे मुहूर्त में हरिभोंगपुर के सम्पूर्ण लोग अपना उत्तम सौभाग्य मान कर खुशी से फाँसी पर लटक गये ॥ ४६ ॥

बीजक, साखी १७८

ऊपर की दोऊ गई, हियेहु की गई हिराय।
कहहिं कबीर जाकी चारों गई, ताको काह उपाय ॥३८॥

शब्दार्थ — ऊपर की = दोनों चर्म की आँखें। हियेहु = हृदय के विचार विवेक।

भावार्थ — जिसकी ऊपर की दोनों आँखे फूट गयी हैं तथा हृदय के भी विचार-विवेक खो गये हैं; इस प्रकार जिनकी चारों आँखे चली गयी हैं; सद्गुरु कबीर कहते हैं उनके कल्याण के लिये क्या साधन है ? अर्थात् कुछ नहीं ॥ ३८ ॥

२८—हरिभोंगपुर का सिद्धांत

चौपाई—२५

सब घट एक ब्रह्म सम लेखै। सोई टके सेर बिक्री पेखै ॥ १ ॥
नौ नाड़ी में जीव अरुझाना। नौ नेगी को सोइ निसाना ॥ २ ॥

शब्दार्थ — पेखै = पेखना; देखना; समझना। नौ नाड़ी = शंखिनी, पूहखा, गणेशनी, कुहु, पयस्विनी, हस्तिनी, गंधारी, अलंबुसा तथा वारुणी। निसाना = निशान, पहिचान, लक्षण।

भावार्थ — सभी शरीरों में एक ब्रह्म देखना, (इतना ही नहीं जड़-चेतन समस्त विश्व ब्रह्म है यह मान्यता) ही भाजी और खाजा दोनों का टके सेर बिकना है ॥१॥

नौ नाड़ियों से स्थित शरीर में जीव फँसा है, यही नौ नाका चौकियों पर चुंगी चुकाने की पहिचान है ॥ २ ॥

विशेष — यह संसार ही हरिभोंग नगर एवं भूल भुलैया का शहर है। यहाँ मन 'चौपट' राजा है। चाहे भौतिकवाद की दृष्टि से और चाहे ब्रह्मवाद की दृष्टि से जड़-चेतन को तत्वतः एक मानना, और इस एकता के ज्ञान से मोक्ष मानना चाहे आचरण कैसा भी हो, यही उत्तम मिठाई और सब्जी का एक भाव बिकना है। अर्थात् जड़-चेतन, बन्ध-मोक्ष का विवेक छोड़ देना अंधाधुन्ध राजशासन है। इस नौ नाड़ी के शरीर के इन्द्रिय भोग में अपनी शक्ति का व्यय करते रहना मानो जगह-जगह चुंगी देकर अपने परमार्थ व्यापार में घाटा लगाना है।

तस्कर लोभ मोह की राती। जीव साहु घर चलै निवाती ॥ ३ ॥
पदार्थ अर्थ इत्यादिक चारी। जप तप साधन सेंध सँवारी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — तस्कर = चोर। निवाती = निवात का अर्थ वात = वायु रहित जगह है; निवात के अर्थ शस्त्रों से सुसज्जित सुरक्षित, वह कवच जो शस्त्रों द्वारा भेदा न जा सके, आश्रयस्थान, घर, शांति, सुरक्षित स्थान इत्यादि हैं, प्रसंगानुसार निवात, निपात एवं लूटना भी हो सकता है। **पदार्थ अर्थ** = अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चार पदार्थ। **सेंध** = चोरों द्वारा बनाया गया दीवार में छेद।

भावार्थ — लोभ चोर, मोह की घोर रात्रि में सेठ जीव के शांति सुरक्षित हृदय घर में चोरी करने चला ॥ ३ ॥ अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष चार पदार्थ (एवं दया, क्षमा, धीर, विचार इत्यादि) सेठ जी की सम्पत्ति है; और चोर ने जप, तपस्या एवं नाना साधनाओं की सेंध लगाई है ॥ ४ ॥

पैठत सेंध मरै दबि लोभा। जो किये चारि पदारथ शोभा ॥ ५ ॥
निःकामी होय जप तप साधी। तहाँ पदारथ चाहे उपाधी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — जप, तपादि साधन रूपी सेंध में घुसते ही वह लोभचोर मर गया एवं शांत हो गया जो अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष रूपी चार पदार्थों की शोभा के आकर्षण में चोरी करने घुसा था ॥ ५ ॥ लोभ के मर जाने पर साधक निष्काम होकर जप, तप, साधनादि करता है, क्योंकि साधना में पदार्थों की इच्छा करना उपद्रव का स्वरूप है ॥ ६ ॥

चोरटी अविद्या कीन्ह बिलापा। संशय शोग सोई उर व्यापा ॥ ७ ॥
इन्द्रिन पर है मनुवा राजा। जाकी अटपट सकल समाजा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — बिलापा = विलाप, रोना। अटपट = अटपटा।

भावार्थ — लोभ के मर जाने पर चोरिनि अविद्या विलाप करने लगी, जिससे

जीवके हृदय में संदेह और शोक व्याप्त हो गये ॥ ७ ॥ इन्द्रियों के ऊपर मन ही चौपट राजा है, जिसका पूरा समाज (काम-क्रोधादि) ऊटपटाँग एवं विचित्र है ॥ ८ ॥

नालिश करी साहु जीव घेरी । साहु कहै नहिं खोरी मेरी ॥ ९ ॥
महल शरीर ब्रह्मा सुतिहारा । जाकी रची सकल संसारा ॥१०॥

शब्दार्थ — नालिश = फरियाद, अभियोग, अपराध विशेष का आरोप । खोरी = गलती । ब्रह्मा = रजोगुण, क्रियाशक्ति । सुतिहारा = कारीगर ।

भावार्थ — अविद्या ने चौपटराजा मन के न्यायालय में अपना मुकदमा दायर करा दिया, फिर मनराजा ने सेठ जीव को घेर कर पकड़वाया और पूछा कि तुमने ऐसा कच्चा घर-शरीर क्यों बनाया जिसमें लोभ दबकर मर गया । सेठ जीव ने कहा कि इसमें हमारी गलती नहीं है ॥ ९ ॥ शरीर घर का निर्माता कारीगर रजोगुण (क्रिया-शक्ति) है, उसीकी रचना सारा संसार है ॥ १० ॥

मिथ्या काँची भीत उठाई । तासु हेतु चोर दबि जाई ॥११॥
सो सुतिहार कहै परचारा । दोष कर्म नाना परकारा ॥१२॥

शब्दार्थ — परचारा = प्रचार, स्पष्ट ।

भावार्थ — और उसी ने ही शरीरघर की मिथ्या कच्ची भीत उठाई है, इसलिये उसके गिरने से चोर दबकर मर गया है ॥ ११ ॥ कारीगर रजोगुण को बुलाने और उससे पूछने पर उसने स्पष्ट कहा कि दोष हमारा नहीं, अपितु नाना प्रकार के कर्मों का है ॥ १२ ॥

जैसा कर्म गिलावा कीन्हा । तैसा महल उठाई दीन्हा ॥१३॥
कर्म कहैं हम नहीं अयाना । काजी पण्डित पुत्रि पुराना ॥१४॥

शब्दार्थ — गिलावा = गारा, कीचड़ । पुराना = पुराण, पोथी ।

भावार्थ — जैसा कर्म का गारा बना, वैसा शरीर रूपी घर निर्मित हुआ ॥१३॥ कर्मों ने कहा हम अज्ञानी नहीं हैं, अपितु काजी और पण्डित की जो पुत्रियाँ हैं पुरान, कुरान आदि पोथियाँ उन्हीं को देखकर हम भूल गये हैं ॥ १४ ॥

विशेष — धर्माचार्यों की बनायी पोथियाँ काजी की पुत्री हैं, जिसे देखकर मनुष्य अपने कर्मों में गलती करता है । नाना मतों की धर्मपुस्तकों में हिंसा, मांसभक्षण, व्यभिचार, विषयासक्ति, रासलीला के नाम पर अनैतिकता, छल, कपट नाना कुकर्मों का भी यत्र-तत्र प्रवेश है । उन्हें देखकर साधारण मनुष्य बुरे कर्मों में फिसलते रहते हैं ।

जाके शब्द कर्म अरुझाई । कसर खोट बहु विधि रहिजाई ॥१५॥
पुत्री काजी कहै बहूरी । बादशाह की निश्चय खोरी ॥१६॥

शब्दार्थ -- बहूरी = बहुरि, पुनः, पीछे ।

भावार्थ — पोथियों के शब्दों के चक्कर में पड़कर मनुष्यों के कर्म उलझे हैं; भ्रामक पोथियों को स्वतः प्रमाण मानने से मनुष्य के कर्मों में अनेक प्रकार की कसरें एवं त्रुटियाँ रह जाती हैं ।। १५ ।। तदनन्तर काजी की पुत्री रूप पोथियाँ कहने लगीं इसमें हमारी गलती नहीं है; अपितु निश्चय ही परब्रह्म परमात्मा रूपी बादशाह की गलती है ।।१६।।

विशेष — जब मनुष्य अपने विवेक को बलिवेदी पर चढ़ाकर केवल अपनी परंपरा की पोथियों के अक्षर-अक्षर को ही सत्य मान लेता है तब निश्चय ही वह अनेक भूलें करता है ।

परन्तु पोथियों पर सारा दोष आने से मानो वे भी अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये कह रही हों कि हमारी त्रुटि नहीं है; बादशाह परमात्मा की त्रुटि है ।

बादशाह अवतार अनेका । पूरण ब्रह्म कोई करै विवेका ।।१७।।
तासु चरित्र भये वेद पुराना । दोहा छंद किताब कुराना ।।१८।।

शब्दार्थ — बादशाह = ब्रह्म । चरित्र = आचरण; व्यवहार ।

भावार्थ — (मानो पोथियाँ कह रही हों) कोई विवेक करके देखे तो बादशाह पूर्ण ब्रह्म के अनेक अवतार हुए हैं ।।१७।। उन अवतारों के चरित वेद, पुराण, कुरान, बाइबिल आदि में दोहा छन्द आदि में चित्रित हैं ।। १८।।

विशेष — दोष केवल पोथियों का नहीं है; अपितु ईश्वर-खुदा के अवतार तथा पैगम्बरों के चरित्र ही तो पोथियों में लिखे हैं । पोथियाँ तो उन अवतारों-पैगम्बरों के आदर्शों के मनुष्य तक प्रेषक मात्र हैं । दोष है ईश्वर के अवतार एवं पैगम्बरों का जिनके जीवन में बहुत सी कमजोरियाँ रही हैं । उन्हीं कमजोरियों के चित्र पुस्तकें हैं ।

बादशाह को पकरि न पावै । बेचून बेअंत कहिके पछतावै ।।१९।।
मन बुधि तहाँ कछु पहुँचत नाहीं । धोखाधार मन गोता खाहीं ।।२०।।

शब्दार्थ — बेचून = जो चुना (बनाया) न गया हो; अजन्मा । बेअन्त = सीमातीत । धोखाधार = भ्रमप्रवाह ।

भावार्थ — जब बादशाह परमात्मा का दोष निश्चित हुआ, तब चौपटराजा मन उसको पकड़ मँगाने की चेष्टा करने लगा । परन्तु उसका कहीं पता न लगने से उसे अजन्मा, अनन्त, निराकार आदि कहकर पछताने लगा ।।१९।। वहाँ मन-बुद्धि आदि कुछ नहीं पहुँचते हैं और भ्रमप्रवाह में मन डुबकी लगाता है ।।२०।।

विशेष — मनुष्य ने जब यह माना कि सभी का मूल, कर्ता, धर्ता ईश्वर है तब उसे खोजने लगा; परन्तु वह कहीं नहीं मिला । ईश्वर, परमात्मा नाम की वस्तु जो

मनुष्य का अपना लक्ष्य हो वह अपने से पृथक कहीं है भी नहीं। परन्तु मनुष्य को स्वरूपज्ञान न होने से वह वाणी के धोखाधार में पड़ा ऊबता-डूबता है।

मंत्री बुद्धि तहाँ निर्णय कीन्हा। बदला शाह दरवेशहिं लीन्हा ॥२१॥
विवेक वैराग्य दोउ दरवेशा। संत सुखी नहिं दुख कर लेशा ॥२२॥

शब्दार्थ — दरवेशहिं = दरवेश; संत।

भावार्थ — वहाँ बुद्धिमंत्री ने निर्णय किया कि बादशाह परमात्मा का बदला संत से लिया जाय ॥ २१ ॥ विवेक-वैराग्य ही मानों संत हैं। संत तो सुखी होते हैं, उनको किंचिन्मात्र दुःख नहीं होता ॥ २२ ॥

विशेष — दृष्टान्त में जैसे बादशाह की खोज न कर पाने से दो संतों को फाँसी देने की चेष्टा की गयी थी; उसी प्रकार सिद्धान्त में परमात्मा न मिलने पर विवेक-वैराग्य को ही दण्ड देने को सोचे।

फाँसी देन को पकरे जबहीं। रार परस्पर लाये तबहीं ॥२३॥
बिना वैराग्य विवेक न होई। बिना विवेक वैराग्य न कोई ॥२४॥

शब्दार्थ — रार = झगड़ा।

भावार्थ — चौपट राजा मन जब विवेक-वैराग्य को फाँसी देने के लिये पकड़ा, तब वे दोनों परस्पर झगड़ा करने की विचित्र चाल चले ॥२३॥ बिना वैराग्य के विवेक उत्पन्न नहीं होता तथा बिना विवेक के वैराग्य नहीं उत्पन्न होता ॥ २४ ॥

विशेष — जब मन विवेक-वैराग्य को विषय में क्षीण करना चाहता है, तब सुज्ञजीव के हृदय में विवेक-वैराग्य में परस्पर संघर्ष होने लगता है। जब पंच विषयों से वैराग्य उत्पन्न होता है तब विवेक तीव्र होता है तथा जब विवेक तीव्र होता है तब वैराग्य बढ़ता है। यहाँ विवेक-वैराग्य में संघर्ष होने का अर्थ विरोध नहीं, अपितु परस्पर घर्षण एवं एक दूसरे के लिये उत्तेजन है।

दोउ विधि देखि राव अकुलाना। पूछा तहाँ मंत्री अनुमाना ॥२५॥
उत्तम लगन मनुज अवतारा। फाँसी मान बनौरी सारा ॥२६॥

शब्दार्थ — राव = राजा, मन। अनुमाना = अटकल लगाया। बनौरी = बनायी हुई; कृत्रिम वाणी कल्पना।

भावार्थ — विवेक-वैराग्य के तौर-तरीके देखकर चौपटराजा मन व्याकुल हो गया। तब वह मंत्री से पूछा। मंत्री ने अपनी अटकलबाजी की ॥ २५ ॥ उसने मनुष्य जन्म का पाना उत्तममुहूर्त बतला कर सारी कृत्रिम वाणियाँ एवं भ्रममान्यता रूपी फाँसी हढ़ा दी ॥ २६ ॥

विशेष — चौपटराजा का मंत्री बुद्धि तो है, परन्तु वह अशुद्ध है। वह मनुष्य शरीर को उत्तम तो अवश्य बतलाता है; परन्तु उसमें मोक्ष के धोखा में बंधनों में फँसने का जाल रच लेता है।

बुद्धि ने उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और महाकनिष्ठ इन चार वर्गों के मनुष्यों के उद्धार या मोक्ष के लिये साधन के चार चरणों का अनुमान किया है; वे हैं ज्ञान, उपासना, योग और कर्म। यदि इनके स्वरूप विवेकपूर्ण हों तो ये निश्चय मनुष्य के लिये कल्याणकर हों, परन्तु जब जड़-चेतन और राग-विराग की अभिन्नता ही 'ज्ञान'; यथार्थ सद्गुरु-संत एवं स्वस्वरूप चेतन को छोड़कर मनःकल्पना में अनुराग ही 'उपासना'; सबका द्रष्टा बनकर मनको शांत करना छोड़कर हठयोगादि द्वारा जड़ शब्द, ज्योति आदि में वृत्ति शून्य करना ही 'योग' और परोपकार एवं आत्मशुद्धि आदि कर्म छोड़कर केवल हवन, तर्पण, तीर्थाटन आदि ही 'कर्म' मान लिये जाते हैं तब ये ज्ञान, उपासना, योग और कर्म ही जीव को फाँसी व बंधन रूप हो जाते हैं।

चारि चरण का किया विचारा। किया भिन्न भिन्न निरुवारा ॥२७॥
स्वतः प्रकाश प्रथम अनुमानी। फाँसी परे भये ब्रह्मज्ञानी ॥२८॥

शब्दार्थ — चारिचरण = चारभाग।

भावार्थ — ज्ञान, उपासना, योग और कर्म मोक्षसाधनाओं के चारों चरणों का विचार करके उनका पृथक-पृथक वर्णन किया ॥ २७ ॥ और प्रथम चरण ज्ञानसाधना द्वारा यह अटकल लगाया कि ब्रह्म स्वतःप्रकाश है, वही जड़-चेतन सब कुछ है और वही मैं हूँ, ऐसा मानकर ब्रह्मज्ञानी हुए और अपने गले में जड़-चेतन अभिन्नता की फाँसी लगा ली ॥ २८ ॥

विशेष — उत्तम मोक्षसाधन ज्ञान है। परन्तु जब जड़से सर्वथा पृथक अपने शुद्ध चेतन स्वरूप का बोध हो। वह ज्ञान तब बंधन रूप बन जाता है जब हम यह मान लेते हैं कि जैसे जल और उसका तरंग एक है उसी प्रकार जड़ और चेतन तथा ब्रह्म और जगत एक है। इससे अद्वैतवाद में बन्ध-मोक्ष अपने आप असिद्ध हैं।

दूजे दुतिया दास कहावै। भक्त वजीरी युग युग पावै ॥२९॥
तीजे लगन योग के होई। साधे सिद्ध कहावै सोई ॥३०॥

शब्दार्थ — दुतिया = द्वैत, ईश्वर। वजीरी = मंत्रीपद।

भावार्थ — दूसरी श्रेणी का मोक्षसाधन 'उपासना' है; जिसमें अपने से पृथक ईश्वर मानकर अपने को उसका दास बताया जाता है। द्वैतमार्ग से ईश्वर की उपासना का फल यह है कि भक्त जीव सदा के लिये ईश्वर का मंत्रीस्वरूप बनकर 'सारूप्य मुक्ति' पा जाता है ॥ २९ ॥ और तीसरी श्रेणी का मोक्षसाधन है 'योग'। इसको साध लेने पर वह सिद्ध कहलाता है और इसका फल 'सामीप्यमुक्ति' पाता है ॥३०॥

चौथे तीरथ बर्त अचारा। लोक वास का किया विचारा ॥३१॥
चार मुक्ति सोई अनुमानी। सायुज्य सामीप्य सारूप्य बखानी ॥३२॥

शब्दार्थ — लोक वास = वैकुण्ठलोक, गोलोक, साकेतलोक में निवास; सालोक्यमुक्ति।

भावार्थ — चौथी श्रेणी का मुक्तिसाधन है 'कर्म' जिसमें तीर्थ, व्रत, आचार आदि किये जाते हैं। इसका फल भगवान के लोक में निवास करना सालोक्यमुक्ति होता है ऐसा विचार कर रखा है ॥ ३१ ॥ ज्ञान, उपासना, योग और कर्म की साधना द्वारा प्राप्त होने वाली क्रमशः सायुज्य; सारूप्य, सामीप्य तथा सालोक्य मुक्तियाँ हैं ऐसा अटकल लगाकर पोथियों में वर्णन कर रखा है ॥ ३२ ॥

चौथे सो सालोक्य बताई। जेहि पाछे सब जग भरमाई ॥३३॥
सो हरिभोंग नगर संसारा। जाकी शोभा अगम अपारा ॥३४॥

शब्दार्थ — शोभा = सौंदर्य; विचित्रता।

भावार्थ — चौथा मोक्ष सालोक्य बतलाया है। इन चारों मुक्तियों के पीछे ही इसकी महिमा में जगत के लोग होश-हवास छोड़े वेतहास दौड़े जा रहे हैं ॥ ३३ ॥ वह हरिभोंगनगर यह कल्पना का संसार ही है जिसकी विचित्रता अगम, अपार है।३४।

साखी—यह निर्णय हरिभोंगपुर, भोंदू सकल समाज।
मानुष बुद्धि बिनु पशु सबै, भये सो राज विराज ॥३९॥

शब्दार्थ — भोंदू = समझ का दुर्बल; भोलाभाला। मानुष बुद्धि = मानवीय बुद्धि; विवेक बुद्धि। राज = सुव्यवस्था। विराज = अव्यवस्था।

भावार्थ — हरिभोंगपुर का यह उलटा न्याय है; और इस नगर का सारा समाज भोलाभाला है। मानवीय एवं विवेकबुद्धि बिना जहाँ होना चाहिये व्यवस्था वहाँ अव्यवस्था हो गयी ॥ ३९ ॥

विशेष — जड़से सर्वथा भिन्न तथा व्याप्य-व्यापक भावरहित अपने शुद्ध चेतन स्वरूप का बोध तथा विषयासक्ति की पूर्ण निवृत्ति हो जाने पर देहमें रहते हुए भी द्रष्टा मुक्त है। प्रारब्ध शरीर नाश हो जाने पर मुक्त चेतन स्थूल, सूक्ष्म, कारण समस्त शरीरों से रहित सदा के लिये शांत अपने आप है। परन्तु यह स्थिति शीघ्र न समझ पाने से लोगों ने मोक्ष की सविषय, आकर्षक एवं रमणीय कल्पना की है।

सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य तथा सालोक्य—ये चार मुक्तियाँ मानी हैं। अपने से पृथक कल्पना करके आनन्दस्वरूप ब्रह्म या ईश्वर माना। उसमें मिल जाना सायुज्य है। भगवान की कल्पना की और उसका रूप वाला श्यामसुन्दर एवं कमलनयन हो

जाना सारूप्य है। भगवान के पास रहना सामीप्य है। तथा भगवान के लोक में रहना सालोक्य है। यह सब कोरी कल्पना है। यहाँ पर विषय को ही मोक्ष मान रखा है। मनुष्य इस लोक में इच्छानुकूल भोगों को नहीं भोग पाता है, तब वह लोक-लोकान्तर की कल्पना करके और वहाँ भोगों को उत्कर्ष रूप देकर भोग चाहता है।

ज्ञान, उपासना, योग और कर्म कल्याण के साधन हैं, परन्तु जब उनके स्वरूप शुद्ध हों। जड़ से भिन्न स्वस्वरूप चेतन का ज्ञान, सद्गुरु-संतों की तथा अंततः स्व-स्वरूप की उपासना, मनोनिग्रह रूप योग तथा सदाचार रूप कर्म—ये ही सब कल्याण-प्रद हैं। और जब जड़-चेतन अभिन्नता ही ज्ञान, काल्पनिक परोक्ष भास ही उपासना, हठयोगादि योग तथा नाना स्थूलप्रपंच कर्म हो जाते हैं तब वे सब फाँसों के तुल्य एवं बन्धन रूप हो जाते हैं। इसलिये मनुष्य को सारासार विवेकी होना चाहिये।

२९—नाना कल्पित विचारों की समीक्षा

इतिहास दूसरा

चौपाई—२६

हरिभोंगपुर पट्टन संसारा। बहु विपरीत जेहि वार न पारा ॥ १ ॥
गंधा देश विकार की खानी। गंधी पवन सो गजबज पानी ॥ २ ॥

शब्दार्थ — हरिभोंगपुर = भूलभुलैया का गाँव। पट्टन = शहर। गंधा = गन्दगी पूर्ण; बदबूदार। पवन = वायु, वातावरण। गजबज = सड़ाहुआ। पानी = जल, वाणी।

भावार्थ — यह संसार भूलभुलैया का ग्राम व शहर है। यहाँ की चाल बहुत उलटी-पलटी है जिसका आदि-अन्त नहीं है॥ १॥ यह प्रकृतिदेश गन्दगीपूर्ण एवं विकारों की खान है, यहाँ का वातावरण बुरा है और यहाँ की फैली हुई वाणियाँ भी सड़ी हुई एवं मानसिक स्वास्थ्य नाशक हैं॥ २॥

विशेष — संसार भूलभुलैया का घर है यहाँ के कुछ ही लोगों को छोड़कर शेष सब धनमद, कुटुम्बमद, राजमद, मानमद, पूज्यमद, रूपमद, यौवनमद, स्त्रीमद, अधिकारमद, जातिमद आदि में पागल हैं। इस संसार के पागलपन का वारापार नहीं है। यह जड़देश विकारी है। चारों ओर बुरी बातें सुनायी पड़ती हैं। अच्छी बातें दुर्लभ हैं। भ्रान्तियों का राज्य है।

नष्टरूप पूरण सो गाऊँ। महाराज भोंदू तेहि नाऊँ ॥३॥
तेहि दुख दुखित न परै पहिचाना। एक अनन्त सोई जहँड़ाना ॥४॥

शब्दार्थ — जहँड़ाना = ठगाना।

भावार्थ — यह बुरे लोगों की संगति रूपी गाँव पूर्णरूपेण नष्ट स्वरूप ही है। जो वास्तविक ज्ञान से अजानकार एवं भोलाभाला है, वही बहुत बड़ा महाराज एवं ज्ञानाचार्य नाम वाला है ॥ ३ ॥ उस अज्ञान के दुःख से सब स्वयं दुखी हैं, अतः उनको वास्तविकता परख में नहीं आती। एक व्यक्ति से लेकर अनन्तों-असख्यों लोग, सभी अपने आप को ठगा दिये हैं ॥ ४ ॥

जथा जमा सब गो छितराई। सोई हरिभोंग नगर बसाई ॥ ५ ॥
सब चाहैं सुख पावै न मर्मा। बाढ़ै दुख करै जो कर्मा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — जमा = पूंजी; धन, स्थायी; नित्य। छितराई = बिखरजाना, सर्वत्र आसक्त हो जाना।

भावार्थ — जीवका जैसा अपना अविनाशी सत्य स्वरूप है वैसी स्थिति में न रहकर वह अपनी मनोवृत्ति को सर्वत्र विषयों में बिखेर दिया एवं सर्वत्र आसक्त हो गया। यही मानों हरिभोंग शहर बसाना है ॥ ५ ॥ सब जीव सुख चाहते हैं; परन्तु वह कैसे मिलेगा ? यह रहस्य नहीं जानते। अतएव वे जो कुछ कर्म करते हैं उनसे दुःख ही बढ़ता है ॥ ६ ॥

विशेष — अपने निःसंग, निराधार, शुद्ध चेतन स्वरूप के भूलवश मनुष्य अपने मनसे कल्पना करके खानी-वाणी की नाना सृष्टि बनाता है। प्राणी-पदार्थों, धन-धामों का मोह खानी जाल है तथा मन से कल्पित भूत-प्रेत, देवी-देवादि वाणी जाल है। ये ही अपनी मोहजनित सृष्टियाँ हैं। जीव का यही हरिभोंगपुर एवं उसके लिये भूल-भुलैया का नगर है। इसमें पड़े रहने से दुःख के सिवा सुख कहीं नहीं है।

बहु विस्तार छोरि न जाई। विवश दुखी समष्टि ठहराई ॥ ७ ॥
भर्म कर्म अनेकन भाँती। राज काज चाहै कुशलाती ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — समिष्ट = सामूहिकता; सम्पूर्णता; समवेत सत्ता, संयुक्त सत्ता; सभी का एक रूप।

भावार्थ — बन्धनों का बड़ा विस्तार है, भूलवश जीव से छुड़ाया नहीं गया, तब वह लाचार एवं पीड़ित होकर जड़-चेतन, विधि-निषेध सब एक ही मान लिया ॥७॥ भूलवश मनुष्य ने अनेकों प्रकार के कर्म-भ्रम सिर पर ले रखा है। इस प्रकार भ्रान्तियों के राज-काज में जीव अपना कल्याण चाहता है ॥ ८ ॥

विशेष — मनुष्य खोजते-खोजते जब अपने स्वरूप का ठीक बोध नहीं पाया और उसकी विषयासक्ति निवृत्त होने में कठिन दिखा है तब वह अपने बोझा को हल्का करने के लिये विधि-निषेध, जड़-चेतन, बन्ध-मोक्ष, विषय-निर्विषय सब एक एवं समष्टि

मान लिया। परन्तु इससे वह अपने आपको सरलता के नाम पर ठगाया ही। क्योंकि वास्तविकता का अपलाप असम्भव है।

जहाँ समष्टि जथा विस्तारा। ज्ञान कला सो ईश विचारा ॥ ९ ॥
सर्वसाक्षिणी ज्ञान कहावै। बहु प्रकार मर्म ठहरावै ॥१०॥

शब्दार्थ — **समष्टि** = संयुक्तसत्ता। **जथा** = यथा; जैसे। **सर्वसाक्षिणी** = सबका द्रष्टा। **मर्म** = रहस्य; भेद।

भावार्थ — जैसे संसार में ज्ञान, श्री (ऐश्वर्य), ब्रह्माण्डता (व्यापकता-प्रचार क्षेत्र का विस्तार), यश, विद्या और बल ये छह गुण यत्र-तत्र लोगों में आंशिक ढंग से मिलते हैं; परन्तु ये सभी गुण पूर्णरूप से जिस एक ही में संयुक्त सत्ता के रूप में हों, उस ज्ञानगुण से युक्त पुरुष को लोगों ने ईश्वर माना है ॥ ९ ॥ ईश्वर का ज्ञान सर्वसाक्षिणी अर्थात सबको जानने वाला कहलाता है। इसके बहुत प्रकार के भेद निर्धारित किये हैं ॥१०॥

विशेष — ईश्वरवादी मानते हैं कि जिसमें सर्वज्ञान हो, सर्वऐश्वर्य हो, सर्वव्यापकता हो, सर्वयश हो, सर्वविद्या हो तथा सर्वशक्ति हो वह ईश्वर है। परन्तु ईश्वर कहलाने वाले राम, कृष्ण आदि किसी में इन सबकी सर्वांगता नहीं थी। फिर कल्पित ईश्वर के पुत्र एवं पैगम्बरों में यह सब होना तो असम्भव ही है। प्रत्यक्ष है कि इन महापुरुषों को कोई मानता है, कोई नहीं मानता।

लोग कहते हैं कि "एक अदृश्यशक्ति है, जिसमें ये सम्पूर्णरूप से छह गुण विराजमान हैं, वही ईश्वर है।" परन्तु ऐसी शक्ति भी नहीं देखी जाती। यदि उसमें सर्वज्ञान तथा सर्वशक्ति भी है तो उसे सारे विश्वपर नियंत्रण रखना चाहिये। उसमें सर्वज्ञान होने से वह सब समय सब कुछ जानता है, सर्वव्यापक होने से सब जगह भी है। अतः उसे सब मनुष्यों की सब त्रुटियों को, उठे हुए कुचिन्तनों को, पापाचारों को तुरन्त निर्मूल कर देना चाहिये। उसकी प्रेरणा का कोई उलंघन करे ऐसा सम्भव नहीं; क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है। "वह जीव की स्वतन्त्रता में दखल नहीं देना चाहता" यह बहाना बेकार है। ऐसी स्वतंत्रता किस काम की जिससे व्यक्ति गड्ढे में जाय।

"कपड़ा, वर्तन, मकान ऐसी अनेक वस्तुयें हैं जिनका द्रष्टा मनुष्य है; क्योंकि वह उसका कर्ता भी है। परन्तु पर्वत, समुद्र, खनिज पदार्थ, चन्द्र, सूर्यादि असंख्य ग्रह इनका द्रष्टा एवं विश्व के कण-कण का द्रष्टा तो मनुष्य नहीं हो सकता। और तो क्या मनुष्य इतना ही नहीं बता सकता कि उसके शरीर में कितने बाल हैं। अतएव समस्त विश्व का कोई द्रष्टा होना चाहिये। क्योंकि बिना द्रष्टा के कोई कार्य नहीं हो सकता। अतएव जो सर्वसाक्षी है, सर्व द्रष्टा है, वही ईश्वर है।"

उपर्युक्त तर्कों में उतना बल नहीं है जितना मान लिया गया है। विश्व के जितने कार्य हों सब साक्षी के साक्षित्व एवं द्रष्टा के दर्शन ही में हों ऐसी कोई बात नहीं है। आज हम विज्ञानद्वारा बहुत सी ऐसी वस्तुओं का और उनमें होते हुए परिवर्तनों का ज्ञान प्राप्त कर लिये हैं जिनको पहले नहीं जानते थे। परन्तु हमारे न जानने पर भी वे वस्तुयें थीं तथा उनमें वे परिवर्तन होते थे।

ऋगवेद में 'ऋत' और 'सत्' का बहुत बड़ा महत्त्व है। वेदों में ईश्वर का नहीं अपितु 'ऋत' का ही महत्व है। उनमें ऋत और सत्य ही जड़-चेतन सृष्टि के धारक हैं। वस्तुतः जड़सृष्टि की क्रमबद्धता एवं नियम 'ऋत' के बल पर चलता है और प्राणियों के चेतनाक्षेत्र एवं मानवीय गुणों में क्रमबद्धता एवं व्यवस्था 'सत्' से चलती है। सार अर्थ यह है कि जड़तत्त्वों में उनका अपना स्वभाव है उसी को 'ऋत' कहा गया है तथा चेतन का जो अपना स्वभाव है वही 'सत्' कहा गया है।

चेतन प्रकृतिसम्बन्ध में अवश्य द्रष्टा है; परन्तु जड़ चेतनाहीन होने से द्रष्टा नहीं है। उसका कार्य सम्पादन उसके स्वभाव से स्वयं होता है। गरमी और वायु से जल का सब समय वाष्पीकरण होता है तथा प्रेरक वायु पाकर जल की वृष्टि होती है। यह सब बिना द्रष्टा की अपेक्षा रखे होता रहता है। यदि ये साक्षी के साक्षित्व में होते हैं तो समयानुकूल वर्षा क्यों नहीं होती ? अतिवृष्टि, अनावृष्टि में जनता क्यों पिसती है ? यदि अनावृष्टि से जनता जल रही है तो क्या सारी जनता पापी है और उसके बाद सर्वत्र खूब वर्षा हो गयी तो क्या तुरन्त सबके शुभ कर्म उदित हो गये ? शुभाशुभ कर्मों के भोग तो मनुष्य को होते ही हैं। परन्तु वर्षा-अवर्षा जड़प्रकृति की योग्यता पर निर्भर करता है। जड़प्रकृति में भी स्वभाव और नियम हैं जिसको वेदों में ऋत कहा गया है; परन्तु वह चेतनाहीन है इसीलिये वह जनता के सुख-दुःख को नही जानती। इसलिये सबका द्रष्टा कोई होना ही चाहिये यह कोई नियम नहीं है।

निर्वचनी सो ब्रह्म महाराजा। वचन विलास जगत सब साजा ॥११॥
शब्दातीत शब्द परकाशा। बिन दुख दर्द कैसे भासा ॥१२॥

शब्दार्थ — **निर्वचनी** = निर्वचनीय; जिसका निर्वचन (कथन) हो सके; निर्वचनीय का अर्थ यहाँ है कि जो वचन में न आवे; जिसे समझाया न जा सके। **महाराजा** = बादशाह; सर्वोपरि सत्ता। **विलास** = चमकना, व्यक्त होना, क्रीड़ा। **साजा** = बनाया, शोभा। **शब्दातीत** = शब्द + अतीत, शब्द से परे। **परकाशा** = प्रकटकिया; उपदेश किया।

भावार्थ — कहते हैं उस सर्वोपरिसत्ता ब्रह्म का कथन नहीं किया जा सकता; परन्तु वचनों की ही क्रीड़ा में उस अव्यक्त ब्रह्मसे व्यक्त समस्त विश्व की शोभा बतलाते हैं ॥११॥ उसे शब्दों में न आने वाला शब्दातीत कहते हैं, साथ-साथ शब्दों द्वारा ही

उसका उपदेश करते हैं। यदि उस ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ नहीं है तो द्वैत के बिना दुःख-दर्द कैसे और किसको प्रतीत होता है ? ॥१२॥

कुहकत एकोहं भये ज्ञानी। राजकला सोई ठहरानी ॥१३॥
बहुस्यामि विस्तार अनेका। रैयत त्रिगुण राज विवेका ॥१४॥

शब्दार्थ — कुहकत = कुहकना, मोर आदि पक्षी का कूजना, बोलना; तात्पर्य में उपदेश करना। एकोहं = एकोऽहम्; एकः + अहम; एकः = एक; अहम = मैं — मैं एक हूँ, अद्वैत हूँ। राजकला = सम्प्रदाय फैलाने की हुनर, विशेषगुण। बहुस्यामि = बहुस्याम; बहु + याम; बहु = बहुत; याम = गमन; प्रगति। रैयत = प्रजा, रिआया। त्रिगुण = तीन गुण; सत, रज, तम।

भावार्थ — मैं अद्वैत ब्रह्म हूँ, यह जप या उपदेश करते हुए लोग ज्ञानी बने और ये ही सम्प्रदाय फैलाने का विशेष गुण धारण करके उसे निर्धारित किये ॥ १३ ॥ उनका मन्तव्य है कि वह ब्रह्म सोचा कि मैं बहुत गमन या प्रगति करूँ फिर उसका अनेक प्रकार से विस्तार हुआ। ब्रह्मज्ञानियों ने विचार किया कि उस ब्रह्म राजा का त्रिगुण या तीन गुण धारण करने वाले जीव प्रजा हैं ॥ १४ ॥

विशेष — कहते हैं ब्रह्म एक था, फिर उसने अनेक होने और फैलने की इच्छा की। इस प्रकार व्यष्टि-समष्टि अर्थात् पृथक व संयुक्त रूप से जो कुछ दिखता है, सब ब्रह्म ही है। इसी ज्ञान के प्रचार के लिये ब्रह्मज्ञानी प्रयत्न करते हैं। परन्तु एक, अखण्ड पदार्थ अनेक एवं विकारवान नहीं हो सकता। अतः अद्वैतवाद विवेक के अनुकूल नहीं है।

त्रिगुण तीनों लोक विराजै। देवता दानव मनुज होय गाजै ॥१५॥
चारों खानि योनि चौरासी। चौदह भुवन जीव जंतु वासी ॥१६॥

शब्दार्थ — विराजै = विराजना, शोभित होना। गाजै = गाजना; गरजना, प्रसन्नता में जोर-शोर से बोलना। चौरासी = चार राशि (समूह)। वासी = वासना रखने वाले।

भावार्थ — सत, रज और तम ये तीन गुण ही तीनों लोक के रूप में शोभते हैं। मनुष्यों में सतोगुणी देवता, रजोगुणी मनुष्य तथा तमोगुणी ही राक्षस होकर व्यवहार करते हैं ॥ १५ ॥ मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज ये चार खानियाँ एवं चार राशियाँ, कल्पित चौदह लोकादि की वासना रखने वाले समस्त देहधारी — ॥ १६ ॥

जीवसृष्टि महंतो त्रिदेवा। अविद्या शक्ति सबै उपेवा ॥१७॥
कहुँ तामस राजस अधिकारी। कहुँ सात्विक देव विचारी ॥१८॥

शब्दार्थ — महंतो = महान। त्रिदेवा = ब्रह्मा, विष्णु, शंकर। उपेवा = उत्पन्न हुए; जन्म लिये। अधिकारी = योग्यतावाले।

भावार्थ — और ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि सभी जीवों की शरीर रचनायें अज्ञानशक्ति से होती हैं, एवं सभी अज्ञान से ही जन्म धारण करते हैं॥ १७॥ कहीं तो तामसगुण की योग्यतावाले तथा कहीं राजसगुण की योग्यतावाले तथा कहीं सात्विकगुण की योग्यतावाले देव रूप में जीव हैं। विचारणीय है कि ये गुणों की भिन्नता अपने कर्मानुसार ही है॥ १८॥

ईश्वरी माया के गुण गावै। महंतो त्रिदेवा समुझावै ॥१९॥
चौथे ईश्वर ज्ञान स्वरूपा। अंग प्रकाश प्रकाशक भूपा ॥२०॥

शब्दार्थ — चौथे = चौथा; तुरीय महाकारण देह; उसके पहले स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन देह हैं। अंग = देह, अवयव, विभाग, गौण या आश्रित वस्तु, माया। भूपा = सम्राट, परमतत्त्व।

भावार्थ — कितने लोग ईश्वर की माया का गुण गाते हैं और यह समझाते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर ये तीनों महान उसके प्रतिनिधित्व करने वाले हैं॥१९॥ चतुर्थमहाकारण देह की जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति से आगे चतुर्थ तुरीय अवस्था का अहंकारी ईश्वर ज्ञानस्वरूप है। वह परमतत्त्व पिण्ड-ब्रह्माण्ड समस्त माया का प्रकाशक है और सभी गौण पदार्थ उसी के प्रकाश्य हैं॥ २०॥

विशेष — ब्रह्मवादी मानते हैं कि "जब जीव जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर चतुर्थ तुरीय (ज्ञान) अवस्था में पहुँचता है तब वह ईश्वर हो जाता है और वह अनुभव करता है कि संसार मेरा ही विलास है उस समय वह यह समझता है कि चाँद, सूर्यादि समस्त ग्रह मेरे प्रकाश से ही प्रकाशित हैं। सारा विश्व मेरी सत्ता से चलता है।" परन्तु उपर्युक्त धारणायें कोरी कल्पना हैं। जीव स्वरूपज्ञान पाकर मुक्त एवं शांत हो सकता है, ब्रह्माण्ड का ईश्वर नहीं बन सकता।

ज्ञान अज्ञान को पंचये मूला। अक्षरातीत ब्रह्म अनुकूला ॥२१॥
दुखिया त्रिविधि सृष्टि बनाई। ब्रह्म ईश्वर जीव रहा जहँड़ाई ॥२२॥

शब्दार्थ — ज्ञान = तत्पद, ईश्वर। अज्ञान = त्वंपद, जीव। पंचये = ब्रह्म, कैवल्य। अक्षरातीत = अक्षर + अतीत, वर्ण व शब्द से परे। जहँड़ाई = जहँड़ाना; ठगाना।

भावार्थ — कहते हैं जीव और ईश्वर का मूल पाँचवाँ कैवल्य ब्रह्म है। वह शब्दों में न आने वाला सबके अनुकूल है॥ २१॥ अज्ञान से पीड़ित जीवों ने त्रिगुणा-

त्मक सृष्टि निर्मित की है और उसमें ब्रह्म, ईश्वर, जीव अर्थात् तत्, त्वं, असि का वाणी जाल फैलाकर अपने वास्तविक स्वरूप ज्ञान से रहित होकर ठगा रहे हैं ।। २२ ।

विशेष — ॐ में अ, उ, म, अर्धचन्द्र और बिन्दु ये पाँच मात्रायें हैं, जिसके अर्थ क्रमशः रजस्, तमस्, सत्व, माया एवं ब्रह्म होते हैं । अतएव पाँचवाँ बिन्दु ब्रह्म है। अथवा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण इन चार देहों के ऊपर पाँचवाँ कैवल्य देह है। कैवल्य का अर्थ ब्रह्म ही है । ब्रह्म ही को ज्ञान, अज्ञान, जड़-चेतन, जीव-ईश्वर आदि सबका मूल मान रखा है, जो एक मनोराज्य है ।

अटलराज नहि कलह कल्पना । नष्टबुद्धि नहिं सूझै मरना ।।२३।।
पुरवासी रहैं रोग बेहाला । निशिदिन शोकव्यथा जंजाला ।।२४।।

शब्दार्थ — पुरवासी = संसार के लोग । व्यथा = पीड़ा ।

भावार्थ — उपर्युक्त कलह-कल्पना में स्थायी स्वतंत्रता नहीं है । भ्रांत मनुष्यों की बुद्धि नष्ट हो चुकी है, उन्हें अपनी मृत्यु (पतन) नहीं दिखाई पड़ती ।। २३ ।। संसार के लोग अज्ञानव्याधि से विह्वल हैं । वे रात-दिन संसार के जंजाल में पड़कर शोक एवं पीड़ा से जरजरीभूत हैं ।। २४ ।।

आँखि न सूझै पीड़ा भारी । मोह अमल माते संसारी ।।२५।।
दशा परस्पर लेहिं निहारी । बर्तें सब संतोष विचारी ।।२६।।

शब्दार्थ — अमल = आदत, नशा ।

भावार्थ — संसारी जीव इस प्रकार अज्ञान के नशा में उन्मत्त हैं कि उनके आँखों से कुछ सार-असार दिखाई नहीं देता और महान पीड़ा से पीड़ित हैं ।। २५ ।। वे एक दूसरे की दुःखदायी स्थिति को देखकर संतोष की साँस लेते हैं और जीवन वर्तमान करते हैं ।। २६ ।।

विशेष — कोई धनमद में चूर है तो कोई अधिकार मद में चूर है, किसी को विद्वान होने का बुखार चढ़ा है तो किसी को पूज्यता का जोश है। इस प्रकार सब जीव अज्ञान के नशा में पागल हैं । सब रात-दिन दुःख में जलते हैं । एक दूसरे के दुःखों को देखकर उन्हें संतोष होता है और दुःख सहने की शक्ति मिलती है ।

इन्शा कवि कहते हैं :—

भला गर्दिश फ़लक की चैन देती है किसे इन्शा ।
ग़नीमत है कि हमसूरत यहाँ दो चार बैठे हैं ।।

गर्दिश (चक्कर); फलक (आकाश, संसार), ग़नीमत (संतोष करने योग्य बात), हमसूरत (हमारे समान) ।

अर्थात्—इन्शा कवि कहते हैं कि संसार का चक्कर किसको चैन से रहने देता है ? हाँ, सन्तोष की बात यह है कि हमारे समान दुखी यहाँ और भी दो-चार बैठे हैं ।

जो हरिभोंग नगर से न्यारा । परम परख परखा टकसारा ॥२७॥
महा अगम सम्भव दुखनाशी । शरण गये सो सुख भौ बासी ॥२८॥

शब्दार्थ — हरिभोंग नगर = भूलभुलैया का चक्कर। परख = परीक्षा। परखा = गुण-दोषों का निरीक्षण किया। टकसारा = टकसाल, सिक्कों की ढलाई का स्थान, निर्दोष वस्तु, चोखा, खरा; सत्संग, बीजक। अगम = अगम्य, कठिन, अपार। सम्भव = उत्पन्न होना, घटित होना।

भावार्थ — जो व्यक्ति भूलभुलैया के चक्कर से पृथक है या पृथक हो गया है, वह सत्संग एवं सत्य द्वारा महान परीक्षादृष्टि प्राप्त कर सब सार-असार का भेद परख लिया है ॥ २७ ॥ उसके भविष्य में होने वाले महान कठिन दुःख नष्ट हो गये और वह पारखी सद्गुरु की शरण में जाकर सुख-शांति-भूमिका का निवासी हो गया ॥२८॥

विशेष — शास्त्र भी कहते हैं "हेयम् दुःखम् अनागतम्" अर्थात् भविष्य में आने वाले दुःख नाश करने योग्य हैं। क्योंकि जो दुःख बीत गया है उसको नाश करने का प्रश्न ही नहीं उठता और जो दुःख वर्तमान में प्रारब्ध रूप में भोग रहे हैं वह भी भोग करके ही मिटेगा। अतएव भविष्य के सर्वदुःखों को मिटाने के लिये ही हम समर्थ हैं।

सो निज ओर दया प्रभु कीन्हा । महाकष्ट छुड़ावन लीन्हा ॥२९॥
इन्ह में जे वैराग्य समाना । नहिं थिति बिनु कल्याण अपाना ॥३०॥

शब्दार्थ — समाना = प्रवेश किया। थिति = स्थिति; शांति; मोक्ष। कल्याण = मंगल; तात्पर्य में स्व-स्वरूपबोध।

भावार्थ — उपर्युक्त महान दुःखों को दूर करने के लिये पूज्यसद्गुरु अपनी ओर से निष्काम भावपूर्वक कृपा किये और जीव को अपनी शरण में लिये ॥२९॥ सद्गुरु की शरण में गये हुए मुमुक्षुओं में से जो वैराग्यमार्ग में प्रवेश किये और उनको यथार्थ वैराग्य हुआ, परन्तु यदि उनको अपने चेतन स्वरूप का ठीक से बोध नहीं हुआ तो उनको स्थिति एवं मुक्ति नहीं मिल सकती ॥३०॥

विशेष — मोक्षप्राप्ति के लिये वैराग्य और स्व-स्वरूपबोध दोनों अत्यन्तावश्यक हैं।

छल प्रपंच एकौ नहिं भावै । चाहत मर्म भरम लखि आवै ॥३१॥
परख अधिकारी शुद्ध तेहि जानी । परख प्रकाश शरण निज ठानी ॥३२॥

भावार्थ — सच्चे मुमुक्षु को एक भी छल, प्रपंच अच्छा नहीं लगता। ऐसे सच्चे जिज्ञासु को स्वरूपबोध एवं वास्तविकता के रहस्य को जानने की इच्छा करते ही सारे भ्रम समझने में आजाते हैं और उन्हें सत्य का बोध हो जाता है ॥३१॥ सारासार की

परीक्षादृष्टि पाने के योग्य उसी को जानना चाहिये जो अपने मनमें निश्चय कर लिया है कि पारखज्ञान का उपदेश करने वाले वैराग्य-विवेकसम्पन्न सद्गुरु की शरण लेनी है और उन्हीं की शरण में रहना है। अथवा परखप्रकाश ही हमारे लिये शरण है, सदैव विवेक में जागृत रहने से ही हमारा कल्याण है ॥३२॥

लहत प्रकाश तिमिर नसाना। सब हरिभोंग चाल पहिचाना ॥३३॥
दया स्वभाव परख प्रकाशी। अभय अशंक सदा सुखराशी ॥३४॥

शब्दार्थ — लहत = प्राप्त होते ही। हरिभोंग = भूलभुलैया।

भावार्थ — सारासार विवेचन करने की शक्ति रूपी पारख का प्रकाश प्राप्त होते ही सारे अंधकार नष्ट हो जाते हैं; और उन्हें भूलभुलैया की सारी चाल जानने में आती है ॥३३॥ जड़ासक्ति से निवृत्त बोधवान सद्गुरु दया के स्वरूप, वास्तविक ज्ञान के उपदेशक, निर्णय, निःशंक और सदैव सुख को राशि होते हैं ॥३४॥

निजपद जानि सो दीनदयाला। लगे छोड़ावन जीव बेहाला ॥३५॥
परख परखाय अनेक सुधारे। परम वैद्य निज नाम प्रचारे ॥३६॥

शब्दार्थ — पद = दर्जा; वस्तु; स्वरूप। बेहाला = बेहाल; जिसका हाल बुरा हो; कष्ट से व्याकुल। परम वैद्य = अज्ञान रूपी रोग के चिकित्सक; महान सद्गुरु। नाम = संज्ञा; प्रसिद्धि।

भावार्थ — वे दीनों पर दया करने वाले सद्गुरु अज्ञान में पीड़ित अन्य मनुष्यों को अपनी ही जाति (स्वरूप) का जानकर उन्हें अज्ञान के बंधनों से छुड़ाने लगे ॥३५॥ और अनेक लोगों को सारासार की परीक्षादृष्टि देकर उनका कल्याण कर दिये इस प्रकार उनकी महानता से उनका नाम परमसद्गुरु प्रख्यात हुआ ॥३६॥

महंतों गाँव रहै खिसियाई। पुरबासी कहँ जाय पराई ॥३७॥
पावै न भेद बहुत अकुलाई। ममता राज लाग खिसियाई ॥३८॥

शब्दार्थ — महंतों = महन्त; नाना मत के गुरु लोग। गाँव = ग्राम; घेरा; सम्प्रदाय। खिसियाई = खिसियाना; लजिज्त होना; लज्जित होकर, बेवकूफ बन कर खीझना। पुरबासी = सम्प्रदाय के लोग। पराई = भागजाना। राज = सम्प्रदाय और चेला-चेली का विस्तार।

भावार्थ — विवेकवान का वास्तविक ज्ञान का प्रचार देखकर नाना भूले गुरुओं के सम्प्रदायी लोग अपनी त्रुटि के कारण लज्जित होकर क्रोध में जलने लगे; और वे सोचने लगे कि हमारे सम्प्रदाय के लोग कहाँ भागे जा रहे हैं ॥३७॥ वे विवेकवानों का भेद नहीं जान पाते, इसलिये अधिक व्याकुल होते हैं। वस्तुतः उनके क्रोध का कारण है उनका स्वार्थ, सम्प्रदाय एवं चेली-चेला की ममता ॥३८॥

अनबनि भाँति लराई ठाना । हारि हारि मनमें पछताना ॥३९॥
औंढू राजा के ढिग जाई । समाचार हरिभोंग सुनाई ॥४०॥

शब्दार्थ — अनबनि = अनबन; बिगाड़; झगड़ा ।

भावार्थ — निज-पर के कल्याण की भावना से रहित केवल स्वार्थ में पगे वे साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ाने वाले कोई बिगाड़ का प्रकार अपनाकर झगड़ा ठान दिये । परन्तु सत्य के सामने न टिक पाने से और हार-हार कर अपने मनमें पश्चाताप करने लगे ॥३९॥ फिर वे श्रेष्ठ माने हुए किसी अपने गुरु के पास गये जो वस्तुतः यथार्थ ज्ञान से हीन, भोलेभाले ही हैं; और अपने भूलभुलैया से निकल कर भागते हुए लोगों का समाचार सुनाये ॥४०॥

परमवैद्य एक पट्टन आवा । बहु हरिभोंगिन को अपनावा ॥४१॥
गाँव ठाँव सो जानि न जाई । परजा तेहि दिशि जाय पराई ॥४२॥

शब्दार्थ — पट्टन = नगर; शहर । गाँव ठाँव = स्थान; सम्प्रदाय । परजा = प्रजा; शिष्यगण ।

भावार्थ — (वे कहते हैं) हे गुरु महाराज ! शहर में एक परमवैद्य नाम के सद्गुरु आये हैं । वे हमारे भूलभुलैया में पड़े हुए अनेक लोगों को ज्ञान देकर अपना अनुयायी बना लिये हैं ॥४१॥ उनके सम्प्रदाय तथा ठौर-ठिकाना का पता नहीं चलता, परन्तु उनमें इतना आकर्षण है कि आपके शिष्य भी उधर भागे जा रहे हैं ॥ ४२ ॥

बहु प्रकार लरेऊँ तेहि संगा । होवै न ताके एकौ भंगा ॥४३॥
सब हथियार मम खाली परहीं । तुम्हरे डर सों नाहीं डरहीं ॥४४॥

शब्दार्थ — हथियार = युक्तियाँ । खाली = व्यर्थ ।

भावार्थ — हे महाराज ! मैं उससे बहुत प्रकार से वादविवाद किया । परन्तु उसकी एक बात भी नहीं खण्डित हुई ॥ ४३ ॥ मेरी सारी युक्तियाँ एवं प्रमाण व्यर्थ गये । वह आप का तनिक भी डर नहीं मानता ॥ ४४ ॥

राज हेतु महाराज अकुलाना । विविधिभाँति लराई ठाना ।४५॥
हारि देखि सकुचाने राजा । घेरा निज पट्टन महाराजा ॥४६॥

शब्दार्थ — अकुलाना = घबड़ाना । सकुचाने = सिमिटगये; लज्जित हो गये ।

भावार्थ — अपने अनुयायियों की बातें सुनकर महन्त जी अपने चेली-चेला और सम्प्रदाय रूपी राज की सुरक्षा के लिये बहुत घबरा गये; और जाकर उस विवेकवान पुरुष से वादविवाद करने लगे ॥ ४५ ॥ अन्ततः उनके सामने अपने आपको हारता हुआ देखकर महन्त जी सकुचा गये । तब वे अपने सम्प्रदाय वाले चेला-चेलियों को घेर कर उनको समझाने लगे ॥ ४६ ॥

सब परजा को कहा प्रचारी । अमल बाहर मति जाव हमारी ॥४७॥
मम पट्टन से भिन्न जे चाहै । महादण्ड की राह निबाहै ॥४८॥

शब्दार्थ — परजा = प्रजा; अनुयायी । अमल = अधिकार; शासन । पट्टन = शहर, सम्प्रदाय, घेरा ।

भावार्थ — महन्त जी ने अपने सभी अनुयायियों एवं शिष्य मण्डली को स्पष्ट करके कहा कि हमारे अनुशासन के बाहर कोई मत जाओ ॥ ४७ ॥ जो व्यक्ति हमारे घेरा एवं सम्प्रदाय से पृथक ज्ञान की बात या आचरण करना चाहता है उसे घोर नरक-यातना का रास्ता पकड़ना पड़ेगा ॥ ४८ ॥

परजन भोंदू कहा बहोरी । तुम्हरे राज कष्ट बहुतेरी ॥४९॥
कष्ट दूर जो होय हमारा । काहे को अंतै भाग विचारा ॥५०॥

शब्दार्थ — अंतै = अलग, दूसरा मत ।

भावार्थ — तदनन्तर उन भोलेभाले महंत जी की बात सुनकर उनके अनुयायियों ने उनसे कहा हे गुरु महाराज ! आप के सम्प्रदाय एवं मत में अज्ञानकृत अनेक कष्ट हैं ॥ ४९ ॥ यदि आपकी शरण में हमारे अज्ञानकृत कष्ट दूर ही हो जाते तो हम बेचारे भाग कर अलग क्यों जाते ? ॥ ५० ॥

विशेष — सभी मत के गुरुओं को चाहिये कि वे स्वार्थवश अपने शिष्यों एवं अनुयायियों को घेरघार एवं विवश करके न रखें । उन्हें सारासार को परखने-समझने की स्वतंत्रता दें ।

महंतन राजा कहा बुझाई । वैदक तीनों हम देव बताई ॥५१॥
तीनिउ चाल न्यारा न्यारा । नहिं भागै ते प्रजा हमारा ॥५२॥

शब्दार्थ — राजा = महंतो के ऊपर बड़ा महंत । वैदक = चिकित्साशास्त्र, धर्म की पोथी । तीनों = सत, रज, तम; भ्रमपूर्ण ज्ञान, भ्रमपूर्ण उपासना एवं भ्रमपूर्ण कर्म ।

भावार्थ — बड़े महन्त जी ने छोटे महन्तों को समझा कर कहा कि मैं त्रिगुणात्मक बोधक धर्मपोथियों को अच्छी तरह तुम्हें पढ़ा दूँगा ॥ ५१ ॥ तीनों के आचरण पृथक-पृथक विवरण कर दूँगा । जो हमारे पंथ से न भागे, वह हमारा अनुयायी है ॥ ५२ ॥

एक सन्देह सागर परवाना । दूजे सोग पोख परधाना ॥५३॥
तीजे शंका के नाम बताई । अनबनि विधि ततबीर दृढ़ाई ॥५४॥

शब्दार्थ — सन्देह सागर = अनिश्चितता का समुद्र; भ्रमपूर्णज्ञान । सोग पोख = शोक का पोखरा (तालाब) भ्रमपूर्ण उपासना । शंका = भय भ्रमपूर्णकर्म । ततबीर = तदबीर, उद्योग, प्रयास ।

भावार्थ — एक तो अनिश्चितता का समुद्र भ्रमपूर्ण ज्ञान है जिसमें जड़-चेतन तत्त्वतः पृथक नहीं होते, दूसरा शोक का सरोवर भ्रमपूर्ण उपासना है, जिसमें उपास्य का स्वरूप शून्य होने से उपासक जीवनपर्यन्त असन्तुष्ट एवं शोक विह्वल ही रह जाता है, और तीसरा भयरूप भ्रमपूर्ण यज्ञादि कर्म हैं जिनमें इष्टानिष्ट होने का सदैव डर लगा रहता है। इस प्रकार झगड़े वाले साधनों का दृढ़तापूर्वक उपदेश कर दिया ॥५३-५४॥

राजडंड सो औषध कीन्हा। डर औ लोभ चौकी तेहि दीन्हा ॥५५॥
आदि अंत मुचलिका राखी। त्रिविधि अनादि वैदक साखी ॥५६॥

शब्दार्थ —**राजडंड** = गुरुद्वारा दिया हुआ दण्ड। **औषध** = उपदेश। **चौकी** = रखवाली, पड़ाव। **मुचलिका** = मुचलका, प्रतिज्ञापत्र। **साखी** = साक्षी, गवाह।

भावार्थ — साम्प्रदायिकतावश संकीर्ण महन्त जी ने दण्ड का भय देकर उपदेश किया और कहा कि इस उपदेश को जो मानेगा उसको स्वर्ग एवं सालोक्यादि मुक्तियाँ मिलेंगी और जो इसको छोड़कर अलग जायेगा उसका नरक होगा। इस प्रकार लोभ और भय को उपदेश की रखवाली करने का निश्चित किया ॥५५॥ हमारे उपदेशों को आदि से अन्त तक नहीं छोड़ना इसके लिये उन्होंने शिष्यों से प्रतिज्ञापत्र लिखवाया; और कहा कि हमारे उपदेश किये हुए ज्ञान, उपासना एवं कर्म इन्हीं तीनों से सबका कल्याण है। इसके लिए हमारे मत की ईश्वरीय अनादि पोथियाँ गवाह हैं ॥ ५६ ॥

विशेष — ज्ञान, उपासना एवं कर्म निश्चित ही कल्याणकर हैं; परन्तु जब उनके स्वरूप यथार्थ हों। कोई पोथी न अनादि है न ईश्वरीय, सब मानवकृत हैं। इसलिए सब पर विचार करना मानव का अधिकार है। परन्तु यह बात साम्प्रदायिक संकीर्ण लोगों को नहीं रुचती।

दीन्ह दृढ़ाय महंतो बहु भाँती। शहर ढिंढोरा कहै कुशलाती ॥५७॥
कुशल चहहु वैदक अनुसरहू। हाकिम हुकुम शीस पर धरहू ॥५८॥

शब्दार्थ — **ढिंढोरा** = मुनादी; डुग्गी बजाकर की गई घोषणा। **वैदक** = चिकित्सा शास्त्र, धर्म पोथी।

भावार्थ — महन्तों ने अनेकों प्रकार के भ्रम दृढ़ा दिये और संसार में बाजा बजाकर उसी भ्रमज्ञानादि द्वारा जीव की कुशलता होने का प्रचार कर दिया ॥ ५७ ॥ उन्होंने कहा कि यदि तुम लोग अपना कल्याण चाहो तो हमारे सम्प्रदाय की धर्मपोथी के अनुसार चलो। यही ईश्वराज्ञा है, अतः इसे अपने सिर पर धारण करो ॥ ५८ ॥

विशेष — प्रायः मतावलम्बी लोग अपनी-अपनी पोथियों को ईश्वरीय तथा दूसरे की पोथियों को अनीश्वरीय घोषित करने की चेष्टा करते हैं। यह केवल स्वमत प्रचार का आड़ा है।

इन्ह तीनों छोरि अंते जो जाई । सो मम दुष्ट बहुत पछिताई ॥५९॥
ऐसा ढिंढोरा शहर फिराई । त्रिविधि वैदक चाल चलाई ॥६०॥

शब्दार्थ — दुष्ट = खल; नीच ।

भावार्थ — हमारे मतानुसार ज्ञान, उपासना तथा कर्म को छोड़कर जो अलग जायगा, वह हमारा वैरी एवं खल है । वह अन्त में बहुत पश्चाताप करेगा ॥ ५९ ॥ इस प्रकार संसार में प्रचार किया और अपनी त्रिगुणात्मक पोथियों के अनुसार चलने का आदेश दिया ॥ ६० ॥

जो अकुलाय राज इनकेरा । वैद्य जानि जाई तेहि घेरा ॥६१॥
मन वच कर्म वैद्य ढिग जाई । व्यथा पीड़ा सब काहि के सुनाई ॥६२॥

शब्दार्थ — अकुलाय = कष्टित हुआ । व्यथा = कष्ट ।

भावार्थ — उनके सम्प्रदाय के लोगों में से जो व्यक्ति संसार के दुःखों से घबराता है, उनको गुरु जानकर उनके समाज में जाता है ॥ ६१ ॥ मनसा, वाचा, कर्मणा उन गुरुओं के पास जाकर अपने कष्ट एवं पीड़ा को कह कर उन्हें सुनाता है ॥६२॥

विहँसि वैद्य कहा मुख बानी । भली प्रकार हम औषध जानी ॥६३॥
पशु पंछी सब सनमुख आवैं । परसत जड़ी सो रोग नशावैं ॥६४॥

शब्दार्थ — विहँसि = विहँसना; मुस्कराना । औषध = उपदेश; ज्ञान ।

भावार्थ — वे गुरु लोग मुस्कराकर कहते हैं कि हम जन्म-मरण-रोग-नाशक औषध भली प्रकार जानते हैं ॥ ६३ ॥ उस उपदेश रूप औषध एवं नाम का इतना महत्त्व है कि उसके सामने होते और उसका स्पर्श करते अर्थात् उसे जपते ही मनुष्य क्या जामवान, हनुमान, गीध, काकभुशुण्डि, गरुण जैसे पशु-पक्षी भी भवव्याधि से मुक्त हो जाते हैं ॥ ६४ ॥

बूटी नाम सुने जो पावै । छिन में कष्ट सब दूर बहावै ॥६५॥
महिमा जड़ी की जाय न वरणी । धन्यनाम भवसागर तरणी ६६॥
सुनत वचन रोगी हरखाई । वैद्य प्रसाद रोग अब जाई ॥६७॥

शब्दार्थ — बूटी = जड़ी; औषध; उपदेश; मंत्र; नाम । हरखाई = हर्षित हुआ । प्रसाद = कृपा ।

भावार्थ — (वे कहते हैं) उस उपदेश एवं मंत्र का नाम सुनते ही क्षण में सारे कष्ट दूर हो जाते हैं ॥ ६५ ॥ उस नाम की महिमा वर्णन नहीं की जा सकती । वह नाम धन्य है जिसके जपने से जीव भवसागर से पार हो जाता है ॥ ६६ ॥ जिज्ञासु

इतना वचन सुनते ही हर्षित हो जाते हैं; और उनके मन में विश्वास होने लगता है कि गुरुजी महाराज की कृपा से अब हमारी भव-व्याधि दूर हो जायगी ।। ६७ ।।

साखी—ज्यों ज्यों महिमा सुनावहीं, त्यों त्यों होय अभिलाप ।
जो चाहै सो औषधी, गुप्त रखे नहिं भाप ।।४०।।

शब्दार्थ — अभिलाष = चाह; लोभ । भाष = भाषा; वाणी; कथन ।

भावार्थ — गुरुलोग जितना अधिक अपने उपदेश, मंत्र एवं नाम की महिमा सुनाते हैं; उतना अधिक लोगों में उसके लिए चाहना बढ़ती है। वे कहते हैं कि यदि इस भवरोग नाशक औषध से अपना कल्याण करना चाहते हो, तो इसे गुप्त रखना, कहीं कहना नहीं ।। ४० ।।

विशेष — उपर्युक्त महिमा सुनकर कुछ जिज्ञासु एवं मुमुक्षु उन गुरुमहाराज के पास गये और दीक्षा की याचना किये, तब उन्होंने कहा—

३०–भूले गुरु तथा शिष्यों का प्रश्नोत्तर

चौपाई—२७

लगन सोधि तोहि औषध देहों । तोहरे रास की मुरी बनैहों ।। १ ।।
पूछे परजा वैद्यजी कहहू । रास लगन काहे चित चहहू ।। २ ।।

शब्दार्थ — लगन=मुहूर्त । औषध = उपदेश; दीक्षा । रास = राशि; क्रांतिवृत्त में आनेवाले विशेष तारा समूह (मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन) । क्रान्तिवृत्त या क्रांतिमण्डल का अर्थ है सूर्य का भ्रमणमार्ग । उपर्युक्त बारहों राशियों में से कोई एक राशि हर मनुष्य के नाम में पण्डित लोग निर्धारित करते हैं । मुरी = जड़ी; तावीज ।

भावार्थ — उत्तम मुहूर्त शोधकर और तुम्हारे नाम की राशि के अनुसार जड़ी अर्थात् उपदेश का विचार करके तुम्हें दीक्षा देंगे ।। १ ।। जिज्ञासुगण गुरु महाराज से पूछने लगे कहो गुरुजी ! राशि और मुहूर्त का विचार क्यों करना चाहते हो ? ।। २ ।।

जो जल सत्य अनल प्रभु मेरे । सब दिन शीतल तपन निबेरे ।।३।।
जेहि औषधि महिमा अति भाखब। लगन आधिन काहेक राखब ।।४।।

शब्दार्थ — जल = उपदेश । अनल = तपन; दुःख ।

भावार्थ — हे प्रभु ! यदि आपका उपदेश शीतल जल के समान सत्य एवं शिष्य के मन की तपन बुझाने में समर्थ है, तो हमारे दुःख एवं ताप को सब दिन दूर करके शीतल कर सकता है उसके लिए अमुक दिन, तिथि, मुहूर्त की कोई आवश्यकता नहीं ।। ३ ।। जिस उपदेश की आप इतनी महिमा बतलाये कि उसे सुनते ही पशु-पक्षी तक मुक्त हो जाते हैं; उसे लगन, मुहूर्त के अधीन क्यों रख रहे हैं ? ।। ४ ।।

कहै वैद्य तुम भेद न पावा। समय पाय के जड़ी उपावा ॥५॥
जाहि समय जो वस्तु अधिकारी। बहु विधि बल सो वस्तु निहारी ॥६॥

शब्दार्थ — उपावा = उपाव, उपाय, पास जाना, साधन, युक्ति, इलाज औषध। अधिकारी = बलप्राप्त।

भावार्थ — गुरुमहाराज ने कहा हे शिष्य ! तुम इसका रहस्य नहीं जान सके। जैसे समय के अनुकूल ही जड़ी औषध के काम में आती है, वैसे उत्तम मुहूर्त में ही उपदेश भवव्याधि नष्ट करता है ॥ ५ ॥ जिस समय जो वस्तु अधिक बलप्राप्त होती है उस समय उसे देखने से पता चलता है कि वह बहुत शक्तिशाली है ॥ ६ ॥

गरमी समय अनल परचंडा। समय शीत जल शीतल पिंडा ॥ ७ ॥
परजा पूछे कहो समुझाई। गरमी के दिन जो गरमी पाई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — परचंडा = प्रचण्ड, प्रखर।

भावार्थ — गरमी की ऋतु में आग एवं धूप प्रखर रहती है, और ठण्डी ऋतु में जल अत्यन्त शीतल और कहीं-कहीं वर्फ के रूप में पिण्ड बँधा हुआ रहता है — यह समय की ही तो प्रवलता है ॥ ७ ॥ जिज्ञासु पूछते हैं हे गुरुजी महाराज ! हमें समझाकर कहो, यह ठीक है कि गर्मी के दिन में अधिक गरमी सताती है ॥ ८ ॥

तहाँ तृषा बहु धूप के मारे। जल पाये सुख होय हमारे ॥ ९ ॥
जाहि शीत अमल अधिकारी। तहाँ अनल जीव करत सुखारी ॥१०॥

शब्दार्थ — मारे = के कारण, वजह से। अमल = अधिकार, नशा।

भावार्थ — और वहाँ धूप के कारण बहुत प्यास लगती है, और हमें शीतल सुमिष्ट जल पाने से सुख होता है ॥ ९ ॥ जिस समय ठण्डी का साम्राज्य होता है और कोई अत्यन्त बर्फीली जगह में शीतलता के नशा में पीड़ित हो जाता है, वहाँ प्राणी को आग सुख देती है ॥ १० ॥

जो जेहि समय वस्तु बलदाई। तेहि संयोग कष्ट अधिकाई ॥११॥
एक समय है काल स्वरूपा। तेहि बस कीन्ह कल्याण अनूपा ॥१२॥

शब्दार्थ — काल = कल्पना। बस = वश, अधीन। अनूपा = विलक्षण।

भावार्थ — ठण्डी-गरमी आदि कोई भी वस्तु जिससमय शक्तिशाली होती है, उस समय उसके सम्बन्ध में अधिक कष्ट होता है ॥ ११ ॥ एक तो समय का स्वरूप कल्पित है और आपने मोक्षसाधन को उसी के अधीन बना दिया है ॥ १२ ॥

विशेष — अधिक ठण्डी या अधिक गरमी में प्राणियों को कष्ट ही होता है, उसकी निवृत्ति तो उस समय उसके विरोधी वस्तु सेवन में है। जैसे अधिक गरमी में शीतलजल एवं बर्फ आदि का सेवन और अधिक ठण्डी में अग्नितापन आदि।

इसी प्रकार जीव अधिक अज्ञान से पीड़ित हैं। यदि उनपर वही अज्ञान और लादा जाय तो उनको शांति कैसे मिलेगी ? उन्हें तो उस समय ज्ञान देना चाहिये। इसके अतिरिक्त लग्न, मुहूर्त इत्यादि समय काल्पनिक हैं। अमुक लग्न, मुहूर्त में दीक्षा, उपदेश देना चाहिये यह भ्रम है। जब जिज्ञासु की योग्यता आ जाये वही लग्न एवं मुहूर्त है।

वैद्य कहै तुम बाद बखानो। हम वैदक के विधिवत मानो ॥१३॥
तुम्हरे बुद्धि का क्या परवाना। वैद्य कहै सोई परधाना ॥१४॥

शब्दार्थ — बाद = वाद; बात-चीत; तर्क; बहस। परवाना = प्रमाण; सत्यता, विश्वास। परधाना = प्रधान; श्रेष्ठ।

भावार्थ — गुरुमहाराज कहने लगे तुम तर्क करते हो, और हम तो वही मानते हैं जो धर्म पोथी कहता है ॥ १३ ॥ तुम्हारी बुद्धि का क्या विश्वास है ? जो गुरु कहते हैं वही श्रेष्ठ मानना चाहिये ॥ १४ ॥

प्रथम मुचलिका लिखो प्रचारी। पाँचों औषध करो विचारी ॥१५॥
रोग दूर होय की नाहीं। और औषधि के ढिग नहिं जाहीं ॥१६॥

शब्दार्थ — मुचलिका = मुचलका; प्रतिज्ञापत्र। प्रचारी = प्रकट करके। औषध = उपदेश।

भावार्थ — पहले तो प्रकट करके यह प्रतिज्ञापत्र लिखकर हस्ताक्षर करो कि हमारे अज्ञान का रोग दूर हो या न हो, हम दूसरे उपदेश और उपदेशक के पास तक नहीं जायेंगे; और फिर पीछे कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञान—इन पाँचों साधनों की विचारपूर्वक साधना करो ॥ १५-१६ ॥

विशेष — विवेकपूर्वक सत्कर्म, यथार्थ सद्गुरु संतों की तथा स्वरूपज्ञान की उपासना, मननिरोध रूप योग; स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति रूपी विज्ञान ये तो कल्याणप्रद हैं। परन्तु भूले गुरु लोगों को इसपर लक्ष्य नहीं है। वे भ्रांतिपूर्ण कल्पित वस्तु की उपासना, कल्पित तथा जड़ शब्द-ज्योति आदि में वृत्तिलय करना योग, भ्रमपूर्ण ज्ञान तथा जड़-चेतन विधि-निषेध का विचार छोड़कर सब धान साढ़े बाइस पसेरी मानना विज्ञान मान रखे हैं जो जीव को बन्धनप्रद हैं।

जो जाऊँ तो कैद मोहि कीजै। नाना भाँति के सासत दीजै ॥१७॥
सुनतहि परजा उठै चिहाई। दूसर और वैद्य को भाई ॥१८॥

शब्दार्थ — कैद = क़ैद; बन्धन; कारावास, शर्त, प्रतिबन्ध। चिहाई = चिहूँकना, चौंकना।

भावार्थ — (और प्रतिज्ञापत्र में ऐसा लिखो कि) यदि हम दूसरे गुरु के पास उपदेश लेने या सुनने जायें तो हे गुरुमहाराज आप मेरे ऊपर प्रतिबन्ध लगा दें या मुझे दण्डित करें, और नानाप्रकार के कष्ट दें ॥ १७ ॥ गुरुमहाराज की इतनी बात सुनते ही शिष्यगण चौंक उठे और बोले हे गुरुमहाराज ! दूसरा और कौन कल्याण का उपदेशक है ? क्या दूसरा भी है ? यदि दूसरा हो तो बतावें ? ॥ १८ ॥

विशेष — आश्चर्य है कि कितने गुरु ऐसे भी होते हैं कि अपने शिष्यों से प्रतिज्ञापत्र लिखवाकर उस पर उनका हस्ताक्षर करवाते हैं कि हमको या हमारे घेरा को छोड़ करके दूसरे गुरु, उपदेशक और संतों को नहीं मानना। अगर दूसरे को मानोगे तो नरक में जाओगे।

कहै वैद्य कोई दूसर नाहीं। विधिवत वैदक सब विधि चाहीं ॥१९॥
अहिमा औषध के बहुतेरा। तो काहे लिखो मुचलिका मेरा ॥२०॥

शब्दार्थ — दूसर = दूसरा उपदेशक, गुरु।

भावार्थ — गुरुमहाराज कहने लगे हे शिष्य ! हमको छोड़कर कोई दूसरा उपदेष्टा एवं गुरु नहीं है। अतएव विधिपूर्वक सब प्रकार पोथी के प्रमाण से चलना चाहिये ॥ १९ ॥ शिष्यों ने कहा कि हे गुरुमहाराज ! जब आपके कथनानुसार आप के उपदेश का बहुत बड़ा महत्व है, तब उसको बलात मनवाने के लिये हमसे प्रतिज्ञापत्र क्यों लिखवाते हो ? आपके उपदेश की महत्ता हम समझ जायेंगे तो स्वयं मानेंगे ॥ २० ॥

वैद्य कहै हुज्जत मत करहू। वैदक कहै सोई निर्बहहू ॥२१॥
बहु विधि कौल करार कराई। फंदा वैदक गया जहँड़ाई ॥२२॥

शब्दार्थ — हुज्जत = दलील, बहस; विवाद। निर्बहहू = निर्वाह करना; पालन करना। कौल = वचन; प्रतिज्ञा, इकरार। कौल करार = परस्पर प्रतिज्ञा। जहँड़ाई = जहँड़ाजाना; ठगा जाना।

भावार्थ — गुरु महाराज कहते हैं कि तर्क मत करो; धर्मपोथी जो बात कहे उसी का पालन करो ॥ २१ ॥ इस प्रकार बहुत भाँति से प्रतिज्ञा कर-कराकर गुरु-शिष्य दोनों धर्मपोथी के अंधविश्वास में अपने को ठगा दिये ॥ २२ ॥

कोई दिन बिते लगन बहु शोधा। चौका बैठि नाम एक बोधा ॥२३॥
शंखन भेरी झाँझ बजाई। फुस फुस कान लगे गुरु आई ॥२४॥

शब्दार्थ — भेरी = भेर नगाड़ा; डंका। फुसफुस = धीरे से मंत्र कहना।

भावार्थ — कुछ दिन बीतने पर गुरुमहाराज जी बहुत विचार करके एक मुहूर्त

शोधन किये और निश्चित मुहूर्त में चौका में बैठकर शिष्य को किसी एक नाम का ज्ञान दिये ॥ २३ ॥ उस समय शंख, नगाड़े, झाँझ इत्यादि बजने लगे; और गुरु महाराज शिष्य के कान में धीरे से मंत्र सुना दिये ॥ २४ ॥

विशेष — उपर्युक्त कथन का अर्थ यह नहीं है कि यह सब नहीं करना चाहिये। यदि यह सब सच्चाई से हो, सत्यज्ञान के आदान-प्रदान में हो तो कल्याणकर है, अन्यथा केवल व्यापार है।

कहा वैद्य गुरु मंतर आही। निशिदिन जपो कहो मति काही ॥२५॥
पूछै शिष्य गुरुजी कहिये। महिमा बहुत एकौ नहिं लहिये ॥२६॥

शब्दार्थ — मंतर = मंत्र। लहिये = लहना, पाना, लाभकरना।

भावार्थ — गुरुमहाराज ने कहा कि यह गुरुमन्त्र है, इसको रात-दिन जपो, किसी से कहो मत ॥ २५ ॥ तदनन्तर शिष्य पूछने लगा हे गुरुजी ! कहिये, आपने अपने मंत्र एवं उपदेश की महिमा बहुत वर्णन किया था, परन्तु मुझे तो उसमें कुछ नहीं लाभ हो रहा है ॥ २६ ॥

कौन जड़ी को नाम यह आही। ठौर ठिकाना देहु बताही ॥२७॥
सो है परम वैद्यको नामा। जाते होय तुम्हारो कामा ॥२८॥

शब्दार्थ — जड़ी = बूटी; उपदेश, देवता।

भावार्थ — हे गुरु महाराज ! जिस नाम का उपदेश आपने मुझे दिया है वह कौन से देवता का है। उसको स्थिति-भूमिका बतला दो ॥ २७ ॥ गुरु महाराज ने कहा वह नाम परमपुरुष का है, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा ॥ २८ ॥

वैद्यराज हम आहि तुम्हारो। पशु पंछी जत रोग विचारो ॥२९॥
हमका वैद्यई पूजा पूजो। परमवैद्य को ध्यान में खोजो ॥३०॥

शब्दार्थ — वैद्यराज = गुरु। जत = चला जाता है। वैद्यई पूजा = गुरुपूजा; गुरुदक्षिणा। परमवैद्य = परमपुरुष; ईश्वर।

भावार्थ — हम तुम्हारे गुरु हैं, जो कहते हैं, मानो। इस मंत्र व नाम से पशु-पक्षी की भी भवव्याधि दूर हो जाती है, इस महत्त्व को मानो ॥ २९ ॥ हमें गुरुदक्षिणा दो, और परमपुरुष की अपने ध्यान में खोज करो ॥ ३० ॥

तीरथ व्रत जप तप कीजै। नाना भाँति अनुपायन लीजै ॥३१॥
स्वासा सोहं करो बिलछानी। ज्योति स्वरूप अनहद बानी ॥३२॥

शब्दार्थ — अनुपायन = अनुपान; दवा के साथ व पीछे ली जाने वाली वस्तु। सोहं = सोऽहं; वह मैं हूँ। बिलछानी = बिलछना; लखना; ताड़ना; देखना। अनहद = अनाहतनाद; शिर में होती हुई नसों की झनकार।

भावार्थ — तीर्थ, व्रत, जप, तपस्या आदि नाना प्रकार के अनुपान सहित मंत्र औषध का सेवन करो ॥ ३१ ॥ और श्वास में सोऽहं का जप करो, ज्योतिस्वरूप के दर्शन करो और अनाहद नाद सुनो ॥ ३२ ॥

स्वासा उलटि निःअक्षर ध्यावो । मूल ठिकाना सूर्ति समावो ॥३३॥
पाँचों मुद्रा करो विचारा । योग अष्टांग करो पसारा ॥३४॥

शब्दार्थ — निःअक्षर = जो अक्षर एवं शब्द में न आवे । ध्यावो = ध्यान करो । सूर्ति = सुरत; लक्ष्य । पाँचों मुद्रा = खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी तथा सर्व-साक्षिणी । योग अष्टांग = अष्टांगयोग—हठ, राज, लय, कुण्डली, लम्बिका, तारक, अमनस्क तथा संख्ययोग; अथवा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ।

भावार्थ — श्वास को पिण्ड से ब्रह्माण्ड में उलटा चढ़ाकर शब्दातीत पुरुष का ध्यान करो । उस पुरुष के मूल स्थान नाभि या ब्रह्मरन्ध्र में अपना लक्ष्य लीन करो ॥३३॥ विचार करके पाँचो मुद्राओं को एवं विस्तृत अष्टांगयोग की साधना करो ॥३४॥

रकार अकार रहो लौलाई । वोहं सोहं जो मन भाई ॥३५॥
प्राणायाम श्वासा जुक्तावो । अमर शरीर करिके तुम पावो ॥३६॥

शब्दार्थ — रकार अकार = राम । प्राणायाम = श्वास प्रश्वास की गति का नियमन । जुक्तावो = युक्ति पूर्वक करो ।

भावार्थ — राम, वोऽहं तथा सोऽहं इनमें से जिसमें तुम्हारा मन लगे उसका जप तथा ध्यान करो ॥ ३५ ॥ युक्तिपूर्वक श्वासा का नियमन करके प्राणायाम करो । इस प्रकार अपने शरीर को अमर करके तुम ऋद्धि-सिद्धि को प्राप्त करोगे ॥ ३६ ॥

विशेष — नाक के बाँये छिद्र से वायु को धीरे-धीरे ऊपर चढ़ाना 'पूरक' है । नाक-मुख वन्द करके श्वास को रोक रखना 'कुम्भक' है । और रोका हुआ वायु नाक के दायें छिद्र से धीरे-धीरे बाहर निकालना 'रेचक' है । ये सब मिलाकर प्राणायाम कहलाता है ।

नाम निःक्षर करो अभ्यासा । ऋद्धि सिद्धि के बहुत विलासा ॥३७॥
ज्ञानस्वरोदय अभय अरु ध्याना । काल परीक्षा होय पहिचाना ॥३८॥

शब्दार्थ — अभ्यासा = अभ्यास; निदिध्यासन । ज्ञानस्वरोदय = ज्ञान + स्वर + उदय = स्वर के उदय, उत्पत्ति का ज्ञान; श्वासभेद से शुभाशुभ फल जानने की विद्या । काल = समय; मृत्यु ।

भावार्थ — शब्दातीत पुरुष का निदिध्यासन करो, जिसमें धन, दौलत एवं सफलताओंका आनन्द मिलेगा ॥ ३७ ॥ निरन्तर ध्यान से जब श्वासभेद द्वारा

शुभाशुभ फल जानने की शक्ति मिल जायगी तब निर्भय हो जाओगे; क्योंकि तब तुम्हें अपने मृत्यु समय की परीक्षा हो जायगी और तुम उसकी पहचान करके योगाभ्यास द्वारा उससे बच सकोगे ॥ ३८ ॥

देवी देवता को अपनाओ । परमवैद्य का नित गुण गावो ॥३९॥
वैदक औषध नाना भाँती । सबमिलि सुनो होय कुशलाती ॥४०॥

शब्दार्थ — वैदक = धर्मपोथी । औषध = उपदेश ।

भावार्थ — देवी-देवता को मानो और उन्हें पूजो; और परमपुरुष परमेश्वर का सदैव गुणानुवाद करो ॥ ३९ ॥ धर्मपोथियों में नाना उपदेश भरे पड़े हैं, उन्हें सब मिलकर सुनो, जिससे कल्याण हो ॥ ४० ॥

साखी—बहुविधि औषध सुनि के, केतेहिं रहैं भुलाय ।
अपनी अपनी भावना, लीन्हीं शीश चढ़ाय ॥४१॥

शब्दार्थ — औषध = उपदेश ।

भावार्थ — इस प्रकार अनेक विधि के उपदेश सुनकर कितने मनुष्य उनमें भूल गये; और अपनी-अपनी भावना के अनुसार उनमें से कुछ या सर्वांश अपना-अपना शिरोधार्य कर लिये ॥ ४१ ॥

कोइ कोइ पूछै वैद्य सों, परमवैद्य बतलाव ।
इन्ह कर्मन कल्याण नहिं, काहे मोहि जहँड़ाव ॥४२॥

शब्दार्थ — परमवैद्य = ईश्वर ।

भावार्थ — उनमें से कुछ चतुर शिष्य पूछते हैं कि हे गुरुमहाराज ! बतलाओ, ईश्वर के दर्शन कैसे होंगे ? आपके बताये हुए उपर्युक्त जड़कर्मों से तो कल्याण होने वाला नहीं है । आप हमें क्यों ठग रहे हैं ? ॥ ४२ ॥

चौपाई—२८

सुनो शिष्य मैं कहौं समुझाई । वह सब जगत कला दिखलाई ॥ १ ॥
परमवैद्य को अद्भुत शोभा । ध्यान धरत जेहि मनुवा लोभा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — कला = गुण; हुनर ।

भावार्थ — गुरुमहाराज कहते हैं हे शिष्य ! सुनो, मैं तुम्हें समझाकर कहता हूँ । जो ऊपर हमने विशेष कर्ममार्ग बताया है वह निम्नश्रेणी के लोगों के लिये जगतगुण युक्त एवं संसारी है ॥ १ ॥ ईश्वर की शोभा तो आश्चर्यजनक है, जिसका ध्यान करते ही मन उसमें मुग्ध हो जाता है ॥ २ ॥

कोइ एक रूप गहो मनमानी । निःकामी होहु तुम ध्यानी ॥ ३ ॥
रोग दूर को इच्छा कैसा । धरो ध्यान लहो वर तैसा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — रोग = अज्ञान; जन्म-मरण । वर = वर; आशीर्वाद ।

भावार्थ — दश अवतारों में से इच्छानुसार किसी एक रूप का निष्कामभाव पूर्वक ध्यान धारण करो ॥ ३ ॥ जन्म-मरण से मुक्त होने की इच्छा तुम्हें क्यों हो रही है ? क्या भक्ति से मुक्ति बड़ी है ? अतएव भगवान का ध्यान करो और उसके प्रकट होने पर उससे इच्छानुसार आशीर्वाद पाकर कृतकृत्य हो जाओ ॥ ४ ॥

परमवैद्य जब परगट होई । रोग शोक दुख सबही खोई ॥ ५ ॥
सबसों न्यारा सब घट माँहीं । निश्चय होय तुरत प्रगटाहीं ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — परमवैद्य = ईश्वर ।

भावार्थ — जब ईश्वर ध्यान में या साक्षात प्रकट होगा, तब उसके आशीर्वाद से जन्म-मरण के रोग, शोक एवं दुःख सब नष्ट हो जायेंगे ॥ ५ ॥ वह सबसे पृथक है और सब दिलों में भी है, ऐसा पक्का निश्चय हो जाय, तो तुरंत प्रकट हो जायगा ॥६॥

यह उपदेश वैद्य जो कीन्हा । सो रोगिन माथे गहि लीन्हा ॥ ७ ॥
औषध पाय बहु भरम भुलाने । इनमें जो कोइ कोइ अकुलाने ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — रोगिन = रोगी लोग; भवव्याधि से पीड़ित शिष्यगण ।

भावार्थ — गुरुमहाराज ने जो उपर्युक्त उपदेश किया उसे शिष्यगण शिरोधार्य किये ॥ ७ ॥ उक्त उपदेश पाकर बहुत से लोग ईश्वर के भ्रम में वास्तविकता को भूल गये । परन्तु इनमें जो कोई-कोई व्याकुल हुए ॥ ८ ॥

कहा वैद्य सो व्यथा बहोरी । जेहि विधि जाय करो जनि खोरी ॥ ९ ॥
परमवैद्य खोजा बहु भाँती । ध्यान अनुमान रोग नहिं जाती ॥१०॥

शब्दार्थ — व्यथा = पीड़ा । बहोरी = पुनः; तदनन्तर । जनि = नहीं; मत (निषेधार्थक) । खोरी = गलती ।

भावार्थ — वे गुरुमहाराज से पुनः कहने लगे कि जिस विधि से हमारे अज्ञान एवं जन्म-मरण के रोग दूर हों वही करो, गलती मत करो ॥ ९ ॥ हमने तो ध्यान और अटकलबाजी आदि अनेक प्रकार से ईश्वर को खोजा; परन्तु न वह मिला और न हमारा अज्ञानरोग दूर हुआ ॥ १० ॥

बोलै वैद्य सुनहु शिष्य मोरा । उत्तम शिष्य हम जानब तोरा ॥११॥
प्रथम उन्हें जो कहा पुकारी । तामें भूलि रहा संसारी ॥१२॥

शब्दार्थ — उन्हें = साधारण कोटि के लोग ।

भावार्थ — गुरुमहाराज ने कहा हे मेरे प्रिय शिष्य ! सुनो, हम तुम्हें अपना उत्तम शिष्य जानते हैं ॥ ११ ॥ जो पहला उपदेश मैं उन साधारण कोटि के लोगों को किया था, उसी में वे संसारी लोग भूल गये ॥ १२ ॥

तुम्हें निपुण हम औषध देहीं । अपयश वैदक काहेको लेहीं ॥१३॥
परम वैद्य को निर्गुण ध्यावो । अगम अगोचर के गुण गावो ॥१४॥

शब्दार्थ — निपुण = चतुर, प्रवीण, कुशल; ठीक; पूर्ण ।

भावार्थ — हम तुम्हें पूर्ण उपदेश देंगे, धर्मपोथी की अपकीर्ति क्यों करेंगे ॥१३॥ निर्गुण, अगम, अगोचर ईश्वर का ध्यान करो और उसके गुण गाओ ॥ १४ ॥

मन बुद्धि बानी न जाने भेदा । नेति नेति गुण गावत वेदा ॥१५॥
अलख निःअक्षर है निर्वाना । सोई स्वरूप को धरिये ध्याना ॥१६॥

शब्दार्थ — नेति = न इति; इतना ही नहीं । निर्वाना = निर्वाण; बुझा हुआ; मुक्त ।

भावार्थ — उस ईश्वर का भेद मन, बुद्धि और वाणी नहीं जानती । वेद भी नेति-नेति कहकर उसका गुण गाते हैं ॥ १५ ॥ वह अदृश्य, शब्द से परे और मुक्त है, उसी स्वरूप का ध्यान धारण करो ॥ १६ ॥

शीत उष्ण समान सो करहू । वीतराग पद चित में धरहू ॥१७॥
खाक लगावो वन में जावो । ठाढ़ेश्वरी दिगम्बर मौनी होवो ॥१८॥

शब्दार्थ — समान = समता । दिगम्बर = नंगा ।

भावार्थ — ठण्डी-गरमी को समान करके समझो । अपने मनमें वैराग्यदर्जा निश्चय करके वैरागी बनो ॥ १७ ॥ शरीर में राख लपेट कर वन में जाओ और ठाढ़े-श्वरी, नग्न तथा मौनी बनकर तप करो ॥ १८ ॥

कायाकष्ट करो मन लाई । ऊर्ध्वमुख धूम्रपान फुरमाई ॥१९॥
पंच अग्नि गरमी के काला । शीत समय जल शयन सो हाला ॥२०॥

शब्दार्थ — ऊर्ध्वमुख = ऊपर मुख करके तप करना । फुरमाई = फरमान; आज्ञा । सो हाला = उस स्थिति में ।

भावार्थ— प्रेम पूर्वक तप की दृष्टि से काया को कष्ट दो । पोथी के आज्ञानुसार ऊपर मुख करके तथा अधमुख होकर धूम्रपान करते हुए तप करो ॥ १९ ॥ गरमी के समय में पंचाग्नि तापो और ठण्डी समय के अत्यन्त शीतकालीन स्थिति में प्रातःकाल जल में शयन करो ॥ २० ॥

जो दृढ़ होहु कहा सो करहू । महाकष्ट सरिता ते तरहू ॥२१॥
जल थल पूरण है सब माँहीं । निश्चय नहिं केहि विधि प्रगटाहीं ॥२२॥

शब्दार्थ — दृढ़ = पक्का ।

भावार्थ — यदि तुम पक्के शिष्य हो तो हमारा कहा हुआ करो; और महान दुःखपूर्ण संसारसरिता से तर जाओ ॥ २१ ॥ वह तो जल, स्थल सर्वत्र परिपूर्ण है; परन्तु साधक को ऐसा निश्चय नहीं होता, तो वह किस प्रकार प्रकट हो ? ॥ २२ ॥

जो मिलना निश्चयकर जानो । निज जीवन ममता मति आनो ॥२३॥
जलसिज्या अनलसिज्या कीजै । जीयत समाधि धरती में लीजै ॥२४॥

शब्दार्थ — जलसिज्या = जलशय्या, पानी में सोना । अनलसिज्या = अग्नि-शय्या; आग में सोना ।

भावार्थ — यदि ईश्वर से मिलने का दृढ़ विचार है, तो अपनी जिन्दगी का मोह मत करो ॥२३॥ उसको पाने के लिये जल में सोवो, आग में सोवो; और जीते जी धरती के भीतर समाधि लो ॥२४॥

स्वासा साधि मस्तक तरकावो । जीवन्मुक्ति प्रत्यक्षहि पावो ॥२५॥
जो कछु औषध रोगिन दीन्हा । बहु प्रकार शिष्य सब कीन्हा ॥२६॥

शब्दार्थ — तरकावो = तड़काना; आवाज करना; अनाहतनाद ।

भावार्थ — श्वास को साध कर ब्रह्मरन्ध्र में रोको और दश अनाहतनाद सुनो; फिर प्रत्यक्ष जीवन्मुक्ति सुख का अनुभव करोगे ॥२५॥ इस प्रकार शिष्यों को जो कुछ उपदेश उन्होंने दिया वे उसकी अनेक प्रकार से साधना किये ॥२६॥

राजदंड को पंथ पसारा । बिनु पारख पचि मरहिं गँवारा ॥२७॥
जो कछु दंड जानि बिलगाना । वैद्य के संग सों कलेश बखाना ॥२८॥

शब्दार्थ — राजदंड = गुरुकोप, शाप आदि ।

भावार्थ — भ्रान्ति में फँसे हुए गुरुलोग अपने सम्प्रदाय को फैलाकर और बात न मानने पर अपने अनुयायियों को शाप देकर उन्हें नरक में ढकेलने का भय दिये हैं । जिनमें पारख एवं विवेक नहीं है ऐसे भोले भाले लोग उनकी घेराबन्दी में पड़कर और पचपच कर मरते हैं ॥२७॥ जो बुद्धिवादी उनके दण्ड-भय की निरर्थकता जानकर उनके जाल से पृथक हो जाता है, वह ऐसे गुरुओं के सम्बन्ध में होते हुए क्लेशों को बतलाता है ॥ २८ ॥

विशेष — जो उनके द्वारा लादे हुए भय की निरर्थकता जानकर उनसे अलग हुआ, वह उनकी दुर्बलताओं को बताकर अन्य जिज्ञासुओं को भी सावधान कर देता है ।

जो मन बुद्धि में आवत नाहीं। तासों कैसे रोग नसाहीं ॥२९॥
नष्ट भये कल्यान न होई। मेरे मन दृढ़ भासे सोई ॥३०॥

शब्दार्थ — **नष्ट भये** = पंचाग्नि तापन, जलशयनादि द्वारा शरीर को कष्ट देने से; अपने अस्तित्त्व को मिटाकर ब्रह्म में मिल जाने से।

भावार्थ — जो ब्रह्म मन और बुद्धि में नहीं आता है, उससे जीव का जन्म-मरण-रोग कैसे मिटेगा ? ॥२९॥ अपना अस्तित्त्व किसी कल्पित ब्रह्म में खो देने से जीव का कल्याण नहीं हो जायगा, ऐसा हमारे मन में दृढ़ विश्वास हो रहा है ॥३०॥

विशेष — हमारा अपना चेतन स्वरूप मन, बुद्धि, वाणी से परे है, यह तो ठीक है; क्योंकि वह मैं ही हूँ; परन्तु हमसे कोई पृथक ब्रह्म नाम की वस्तु है और वह मन, बुद्धि, वाणी आदि से परे हैं तब उसे हम जान कैसे सकते हैं ? उसका हमारा न सम्बन्ध होगा और न उससे हमारा कल्याण होगा।

अपने सत्य चेतन स्वरूप को नाशवान बुन्द मान लेना और कल्पित ब्रह्म को समुद्र मान लेना और अपने आपको सदा के लिये मिटाकर उस कल्पित ब्रह्म में खो जाने की कल्पना करना यह सब महा भ्रान्ति एवं मोक्ष का विरोधी है।

जल थल जड़ नहिं चेतन दीसे। तासो कैसे रोग सब खीसे ॥३१॥
तुम हो वैद्य रोग पहिचानो। जेहि विधि जाय उपाय सो ठानो ॥३२॥

शब्दार्थ — **खीसे** = नष्ट होना। **वैद्य** = गुरुमहाराज। **रोग** = अज्ञान, जन्म-मरण।

भावार्थ — (शिष्य कहता है) जल, पृथ्वी आदि तत्त्व जड़ हैं, वे चेतन नहीं दिखलाई देते; फिर जड़मूर्ति, गंगा, यमुना आदि से अज्ञानरोग कैसे मिटेगा ? ॥३१॥ तुम गुरुमहाराज हो, भवव्याधि पहचानते हो, अतएव वह जिस प्रकार से नष्ट हो, वही उपाय करो ॥३२॥

बिहँसे वैद्य यह भकुवा संसारा। हम जो कहा सो नाहिं विचारा ॥३३॥
यह परमवैद्य जो कुछ कहिया। बहुविधि सगुण अगुण कहि जहिया ॥३४॥

शब्दार्थ — **भकुवा** = मूर्ख। **जहिया** = जब, जिस समय, पहले।

भावार्थ — गुरुमहाराज मुस्कराकर कहने लगे कि यह संसार के लोग मूर्ख हैं। जो बातें मैंने पूर्व में कहीं हैं उसका विचार उन लोगों ने नहीं किया है, अपितु सबकुछ मान लिया है ॥३३॥ यह पहले मैंने परमात्मा के जो कुछ भी सगुण-निर्गुण अनेक प्रकार के भेद वर्णन किया है—॥३४॥

सो तो तुमहीं करो निरुवारा। आपै राम रमै संसारा ॥३५॥
परम वैद्य कोइ दुतिया नाहीं। जासों रोग तुम्हारो जाहीं ॥३६॥

शब्दार्थ — परमवैद्य = परमात्मा । दुतिया = दूसरा ।

भावार्थ — निर्णय करो, वह तो तुम्हीं हो । तुम स्वयं ही राम हो और संसार में जल-स्थल सर्वत्र रम रहे हो ।। ३५ ।। तुमसे पृथक परमात्मा कोई दूसरा नहीं है, जिसकी कृपा से तुम्हारी भवव्याधि मिटना हो ।। ३६ ।।

दिसे देह सो सगुण बखानी । निर्गुण आतम स्वतः कै मानी ।।३७।।
यह मत शिष्य तुम निश्चय करहू । हमारा कहा शीश पर धरहू ।।३८।।

शब्दार्थ — दिसे = दिखाई दे । मत = सिद्धान्त, निश्चय ।

भावार्थ — जो स्थूल शरीर दिखाई देता है वह सगुण कहलाता है; और स्वतः आत्मा ब्रह्म को निर्गुण माना जाता है ।। ३७ ।। हे शिष्य ! हमारा कथन शिरोधार्य करो और यह मत निश्चय करके मान लो ।। ३८ ।।

पूछे शिष्य प्रभु कहो बुझाई । परमवैद्य जो हमहिं कहाई ।।३९।।
तो हम रोगी काहेको भयऊ । कुहकत निशिवासर मम गयऊ ।।४०।।

शब्दार्थ — कुहकत = बिलखते; चीखते ।

भावार्थ — शिष्य पूछता है कि हे गुरुमहाराज ! हमें समझा करके कहो कि यदि हम स्वयं ही परब्रह्म परमात्मा हैं ।। ३९ ।। तो हम भवव्याधि से पीड़ित क्यों हुए ? क्योंकि दुःखों में चीखते हुए हमारे रात-दिन बीतते हैं ।। ४० ।।

बोलै वैद्य भरम यह तेरा । शोक मोह ते सबै अँधेरा ।।४१।।
अब यह जानि न संशय कीजै । आतमा आप सो परिचय लीजै ।।४२।।

शब्दार्थ — भरम = भ्रम; ब्रह्ममें जगतप्रतीति ।

भावार्थ — गुरुमहाराज बोले—हे शिष्य ! यह जगतप्रतीति तेरा भ्रम है । तुम्हें मिथ्या जगत में मोह होने से शोक होता है, अतएव तुम्हें सब अंधेरा ही दिखाई देता है ।। ४१ ।। अब यह जान करके संदेह छोड़ दो कि आत्मा स्वयं ही सबकुछ है और उसी का परिचय प्राप्त करो ।। ४२ ।।

जब निजरूप परे पहिचानी । सकल रोग तब होवै हानी ।।४३।।
शिष्य सिखापन ऐसे पाई । केतेक तहाँ रहे सिथिलाई ।।४४।।

शब्दार्थ — केतेक = कितने ही, कई एक । सिथिलाई = शिथिलाई, शिथिलता, आलस्य ।

भावार्थ — जब तुम्हें अपने ब्रह्मस्वरूप की पहचान हो जायगी, तब सारी भवव्याधि का अंत हो जायगा ।। ४३ ।। शिष्यगण यह शिक्षा पाकर उनमें से कितने ही लोग ढीलपड़कर वही मान लिये ।। ४४ ।।

इनमें जो कोइ रहै सयाना । वैद्य सों पुनि निज व्यथा बखाना ॥४५॥
परम वैद्य प्रभु हमको कीन्हा । रोग व्यथा नहिं आवत चीन्हा ॥४६॥

शब्दार्थ — व्यथा = कष्ट । कीन्हा = सिद्ध किया ।

भावार्थ — उनमें जो कोई प्रखर बुद्धि के थे । पुनः गुरुमहाराज से अपनी भव-व्याधि की बातें कहे ॥ ४५ ॥ हे गुरुमहाराज ! आपने हमें ही परमात्मा सिद्ध कर दिया है ; परन्तु ऐसी स्थिति में भी यह पहचानने में नहीं आता कि भवव्याधि का दुःख क्यों होता है ॥ ४६ ॥

सूझ न परै पीड़ा अधिकाई । परम वैद्य प्रभु कैसे कहाई ॥४७॥
जौन दीसै सो दूसर होई । निज स्वरूप किमि जानै सोई ॥४८॥

शब्दार्थ — दीसै = दिखाई दे; दृश्य जड़ पाँच विषय ।

भावार्थ — हे गुरुमहाराज ! कुछ समझ नहीं पड़ता, भवव्याधि का दुःख घोर है । हे प्रभु ! हम परमात्मा कैसे कहला सकते हैं ? ॥ ४७ ॥ आँख, नाक, कान, त्वचा और जिह्वा से जो पाँचों विषय प्रतीत होते हैं; वे तो अपने स्वरूप से पृथक हैं । उनको अपना स्वरूप कैसे माना जाय ? ॥ ४८ ॥

विशेष — यदि गुरुमहाराज यह बतलावें कि तुम ब्रह्म हो और यह चराचर जगत तुम्हारा ही स्वरूप है तो शिष्य कहता है कि जगत तो पाँच विषय रूप जड़ है, वह हमारा स्वरूप कैसे हो सकता है ।

कहै वैद्य सुनु शिष्य सयाना । वे सब भोंदू परम अयाना ॥४९॥
जो हम कही सोइ सोइ मानी । और औषध को मर्म न जानी ॥५०॥

शब्दार्थ — औषध = उपदेश, ज्ञान ।

भावार्थ — गुरुमहाराज बोले हे बुद्धिमान शिष्य ! सुनो, वे अन्य शिष्य सब भोले भाले और बड़े अज्ञानी हैं ॥ ४९ ॥ जो हमारे पूर्वकथन को ज्यों-का-त्यों मानते गये, और अन्य प्रकार के ज्ञान का रहस्य नहीं जानते ॥ ५० ॥

तुम पूछे हो परम विवेकी । तुमसे छिपाय न राखों एकी ॥५१॥
करहु विचार रोग औ रोगी । रोगि में रोग कि रोग में रोगी ॥५२॥

शब्दार्थ — रोग = भवव्याधि । रोगी = जीव ।

भावार्थ — तुम आगे ज्ञान की जिज्ञासा करते हो, तुम परम विवेकी हो । अतएव तुमसे एक भी बात छिपाकर नहीं रखूंगा ॥ ५१ ॥ तुम रोग और रोगी का विचार करो रोगी में रोग है कि रोग में रोगी है ? अर्थात् आत्मा में अज्ञान है कि अज्ञान में आत्मा है ? ॥ ५२ ॥

विशेष — आत्मा के स्वरूप में अज्ञान है कि अज्ञान के स्वरूप में आत्मा है ? यह विचारणीय है । अर्थात् क्या रोगी और रोग एक हैं ?

रोगी भिन्न रोग है भिन्ना । यह औषध कोइ बिरले चीन्हा ॥५३॥
सोइ विचार निशिवासर करहू । महामोह भव सरिता तरहू ॥५४॥

शब्दार्थ — भवसरिता = संसारनदी ।

भावार्थ — रोगी अलग तथा रोग उससे अलग वस्तु है, अर्थात् आत्मा पृथक है और अज्ञान उससे पृथक है; यह ज्ञान की बात कोई विरला समझता है ॥ ५३ ॥ आत्मा और अज्ञान पृथक-पृथक हैं यही विचार रात-दिन करो, और महामोह रूप संसारसागर को तर जाओ ॥ ५४ ॥

सब रोगी मिलि करहु विचारा । हम कछु और रोग कछु औरा ॥५५॥
इनमें जो कोइ रहै प्रबीना । बोले वचन वैद्य सो दीना ॥५६॥

शब्दार्थ — औरा = और; अन्य । प्रबीना = प्रवीण; बुद्धिमान ।

भावार्थ — भवव्याधि से पीड़ित सभी मनुष्य मिलकर यह विचार करो कि हम आत्मा हैं और अज्ञान हमसे अलग है ॥ ५५ ॥ शिष्यों में जो अधिक बुद्धिमान थे, वे गुरुमहाराज से विनम्रतापूर्वक बोले ॥ ५६ ॥

रोगी रोग एक नहिं होई । सो तो विदित जानै सब कोई ॥५७॥
कहको काहे रोग जो न्यारा । तुम उपदेश भल कीन्ह विचारा ॥५८॥

शब्दार्थ -- विदित = प्रसिद्ध ।

भावार्थ — रोगी और रोग एक नहीं होता है, यह बात संसार में प्रसिद्ध है और इसे सब कोई जानते हैं ॥ ५७ ॥ आपके उपदेशों पर हम लोग अच्छी तरह विचार कर लिये हैं । यदि आत्मा से अज्ञान व माया अलग है तो सब प्राणी क्यों दुःखों में पड़े कराहते हैं ॥ ५८ ॥

सुनहु शिष्य आतम सुधि जानो । बुद्धि से परे निःकल्प अनुमानो ॥५९॥
भास बुद्धि रोग भ्रम भाई । बुद्धि से परे तुम ब्रह्म सुखदाई ॥६०॥

शब्दार्थ — सुधि = सुध; होश; स्मरण । निःकल्प = कल्पना से परे । अनुमानो = मान लो । भास = प्रतीत; चमक; कल्पना ।

भावार्थ — हे शिष्य ! सुनो; अपने आत्मस्वरूप का स्मरण करो और उसे ठीक से जानो । उसे बुद्धि से परे तथा कल्पनातीत समझो ॥ ५९ ॥ हे भाई ! बुद्धि में जगत की कल्पना होने से ऐसा भ्रम होता है कि मैं भवव्याधि से पीड़ित हूँ, परन्तु तुम उस बुद्धि से परे आनन्दघन ब्रह्म हो ॥ ६० ॥

बोलै शिष्य सुनो प्रभु मेरा। बुद्धि भ्रष्ट भई कारण केरा ।।६१।।
बुद्धि भ्रष्ट के कारण कौना। सो समुझाय कहो प्रभु तौना ।।६२।।

शब्दार्थ—तौना=तौन; वह; उसे।

भावार्थ — शिष्य कहता है कि हे गुरु महाराज ! हमारी भी बात सुनो; बुद्धि भ्रष्ट होने एवं बुद्धि में जगत की कल्पना होने का क्या कारण है ? उसे समझाकर कहो ।। ६१–६२ ।।

कहै वैद्य तुम भली विचारी। तुम्हरे बुद्धि न तुलै अनारी ।।६३।।
औषध एक कहौं प्रन ठानी। शोक मोह की रहै न निशानी ।।६४।।

शब्दार्थ — अनारी = अनाड़ी; अज्ञानी। प्रन = प्रण; प्रतिज्ञा। निशानी = चिन्ह।

भावार्थ - गुरुमहाराज बोले हे शिष्य ! तुम अच्छा सोचे। तुम्हारी बुद्धि में अज्ञानियों की बुद्धि नहीं तुल सकती ।। ६३ ।। प्रतिज्ञा करके कहता हूँ तुम्हें एक उत्तम उपदेश करूँगा; फिर तो तुम्हारे जीवन में शोक-मोह के चिन्ह तक नहीं रहेंगे ।। ६४ ।।

नहिं कछु रोग नहीं कछु रोगी। नहिं कछु भोग नहीं कछु भोगी ।।६५।।
ज्यों का त्यों ही ब्रह्म विराजै। एक अनंत सबै भ्रम भाजै ।।६६।।

शब्दार्थ — एक = अद्वैत। भाजै = भाग जाता है।

भावार्थ — न तो कुछ रोग है और न कोई रोगी है और न तो कुछ भोग है न उसे भोगने वाला है ।। ६५ ।। ब्रह्म एक समान सदैव विराजता है। एक ब्रह्म से अनन्त अवयव युत जगत हुआ ये सब भ्रम इस ज्ञान में दूर भाग जाते हैं ।। ६६ ।।

विशेष — शुद्ध अद्वैत ब्रह्मवाद में जीव और जगत, भोग्य और भोक्ता दोनों का अस्तित्व नहीं माना जाता है। उनके विचार से जगत है ही नहीं, फिर वह ब्रह्म से हुआ क्या ? जो वे कदाचित यह कहते हैं कि जगत का कारण ब्रह्म है, तो वे ऐसा नैयायिकों, सांख्यवादियों आदि के डर से कहते हैं कि कहीं वे जगत का कारण ईश्वर, परमाणु और प्रकृति न सिद्ध कर दें। यद्यपि द्वैतभास उनका सदैव बना रहता है; परन्तु वे बलात अद्वैत ब्रह्म सिद्ध करते हैं।

जो कछु होय तो द्रष्टा कहिये। दृष्ट अदृष्ट न एकौ लहिये ।।६७।।
नहिं कछु हुवा न होवनहारा। शब्द विलास भया संसारा ।।६८।।

शब्दार्थ — दृष्ट = अनुभूति; साक्षात्कार; दर्शन; देखा हुआ; जाना हुआ; लौकिक। अदृष्ट = न देखा हुआ; अदृश्य; अज्ञात; भाग्य; प्रारब्ध; पूर्वजन्म के कर्म। लहिये = लहना; प्राप्त होना; सिद्ध होना। विलास = चमकना; व्यक्त होना; क्रीड़ा।

भावार्थ — (वे कहते हैं—) यदि अपने ब्रह्म स्वरूप से पृथक कुछ हो तो ब्रह्म

को उसका द्रष्टा कहा जाय। अद्वैतब्रह्म में दृश्य-अदृश्य, लोक-परलोक कुछ सिद्ध नहीं होता ॥ ६७ ॥ ब्रह्म के अतिरिक्त जगत आदि न पहले हुआ, न आज है और न आगे कुछ होगा। यदि कहो संसार दिखाई देता है तो यह वस्तुतः नहीं है। यह तो केवल शब्दों का विलास है अर्थात् कथन मात्र है ॥ ६८ ॥

अध्यारोप कहाँ लौं कीजे। वचन रचन होय मन चित दीजे ॥६९॥
आगे जो पूछो सो भर्मा। रोग अवस्था पिंड के धर्मा ॥७०॥

शब्दार्थ -- अध्यारोप = एक वस्तु के गुण-धर्म का भ्रमवश अन्य वस्तु में आरोप करना; जैसे सीपी में चाँदी, रस्सी में सर्प, मृग मरीचिका में जल का आरोप, वैसे ब्रह्म में जगत का मिथ्या आरोप। रोग = जन्म-मरण। अवस्था = जागृतादि व बाल्यादि। पिंड = शरीर। धर्मा = स्वभाव।

भावार्थ — अद्वैत शुद्ध ब्रह्म में अनेकतापूर्ण जगत का मिथ्या आरोप कहाँ तक करोगे ? ये द्वैत का बकवास तो मन, बुद्धि आदि द्वारा रचित मिथ्या वेदादि वाणियों के पढ़ने-सुनने से बढ़ा है ॥ ६९ ॥ यदि इसके आगे भी तुम कुछ पूछोगे तो तुम्हारा भ्रम ही होगा। और ये जन्म-मरण के रोग तथा बाल्य-युवादि एवं जागृत-स्वप्नादि अवस्थायें तो स्थूल शरीर के स्वभाव हैं। उसमें ब्रह्म का क्या बिगड़ता है ॥ ७० ॥

शब्द उद्वेग ते संशय होई। जो जाने निर्वचनी सोई ॥७१॥
सुनि के वचन शीतल भये रोगी। खुटका विवश रहा सब सोगी ॥७२॥

शब्दार्थ -- उद्वेग = क्षोभ, हलचल। निर्वचनी = निर्वचन, मौन, चुप, आपत्ति रहित। खुटका = खटका, शंका। सोगी = शोकातुर।

भावार्थ — द्वैतपरक अनेक शब्दों को कह-सुन कर उनके हलचल में जगत-जीव, जन्म-मरण, पाप-पुण्य, विधि-निषेध आदि की भ्रांति खड़ी होती है। जो पुरुष अद्वैत शुद्ध ब्रह्म जान लिया वह तर्क करना छोड़ कर मौन हो जाता है ॥ ७१ ॥ गुरुमहाराज के उपर्युक्त वचन सुनकर भवव्याधिग्रसित मनुष्य एवं शिष्यसमुदाय ठंडे तो पड़ गये (क्योंकि आगे प्रश्न करना अपराध बतला दिया गया है); परन्तु अनेक शंकाओं में डूबे वे सब शोकातुर बने रहे ॥ ७२ ॥

घिचपिच समुझि परे नहिं कोई। जापर बीते जाने सोई ॥७३॥
पुनि कोइ इनमें पूछै जाई। वैद्य कृपाकरि होहु सहाई ॥७४॥

शब्दार्थ — घिचपिच = मिला-जुला; अस्पष्ट; भ्रांतिपूर्ण।

भावार्थ — गुरुमहाराज की मिली-जुली बातें शिष्यों की समझ में नहीं आयीं।

संशयशील अवस्था जिस पर बीतती है, वही उसके कष्ट को जानता है ॥७३॥ उन शिष्यों में कोई एक बुद्धिमान शिष्य पुनः जाकर पूछा हे गुरुमहाराज ! कृपा करके हमारा संदेह दूर करो ॥ ७४ ॥

नहीं रोग नहिं रोगी कहते । अनल रोग सदा हम दहते ॥७५॥
बिना दर्द किमि कुहको भाई । कुहक विलास जगत दिखलाई ।७६॥

शब्दार्थ — कुहक = कराह; पीड़ा से चीत्कार करना । विलास = व्यक्त होना ।

भावार्थ — आप कहते हैं न रोगी है और न रोग है, अर्थात् न जीव है न जगत है; परन्तु हम सब भवव्याधि की आग से सदैव जले जा रहे हैं ॥७५॥ हे भाई ! बिना कष्ट के प्राणी क्यों रोते-बिलपते हैं ? वस्तुतः संसार दुःखों के चीत्कार से ही व्यक्त दिखाई देता है ॥ ७६ ॥

जथा जमा क्यों फूटा प्रभु मेरा । कारण कौन लगा यह केरा ॥७७॥
जो कहहु फूटा नहिं सोई । एक अनन्त कहाँ ते होई ॥७८॥

शब्दार्थ — जमा = स्थायी, नित्य, अविनाशी ।

भावार्थ — हे गुरुमहाराज ! मेरा अविनाशी ब्रह्मस्वरूप क्यों फूटकर टुकड़े-टुकड़े जगत के रूप में विभक्त हो गया ? उसको ऐसा होने में कौन-सा प्रयोजन लगा ? ॥७७॥ यदि आप कहें कि वह फूटा नहीं; तो बिना फूटे एक ब्रह्म जगतरूप अनन्त टुकड़ों में कैसे बट गया ? ॥ ७८ ॥

एक वैद्य एक रोगी कहहू । परम वैद्य एक भिन्न अनुसरहू । ७९॥
पुनि घिचपिच सब एक बतावो । नहिं रोगी कहिके समुझावो ॥८०॥

शब्दार्थ — अनुसरहू = अनुसरण करना, पीछे चलना, किसी के अनुकूल कार्य करना । घिचपिच = मिली-जुली, घपलाबाजी ।

भावार्थ — आप कहते हैं एक तो भवतारक गुरु है, दूसरा भवव्याधिग्रसित जीव है और तीसरा सबसे पृथक एक परमात्मा है, जिसके अनुकूल सब कार्य करना चाहिये ॥ ७९ ॥ फिर घपलाबाजी करके सब कुछ एक ब्रह्म बतलाते हो कि न रोग है न रोगी; अर्थात् न जगत है न जीव, न बन्ध है न मोक्ष ॥ ८० ॥

जो है सत्य वैद्य तुम नाऊँ । वैदक आनन्द सत्य दरशाऊँ ।८१॥
तो पहिचान करहु प्रभु मेरा । कैसा रोग भया हम केरा ॥८२॥

शब्दार्थ — नाऊँ = नाम ।

भावार्थ — यदि तुम्हारा नाम सद्गुरु है, और धर्मपोथी प्रतिपादित सत्य आनन्द के दर्शन कराते हो ॥ ८१ ॥ तो हे गुरुमहाराज ! हमारी परख करो, हमें यह भवव्याधि क्यों हुई ? ॥ ८२ ॥

कैसे रोग दूर सो होई। वैसी औषधि देहु बताई ॥८३॥
एक रोग नाना जंजाला। दूसर औषध कीन्ह बेहाला ॥८४॥

शब्दार्थ — बेहाला = बेहाल, पीड़ित।

भावार्थ — और वह व्याधि कैसे दूर होगी ? उसकी औषध बतला दो ॥ ८३॥ एक तो भवव्याधि स्त्री, पुत्र, धन, घर, विषयवासना, काम, क्रोधादि नाना जंजाल हैं और दूसरी भवव्याधि आप की चपलावाजी का उपदेश है जो अधिक पीड़ित कर दिया है ॥ ८४ ॥

औषध सो जो रोग नशाई। नहिं चाहत हम ब्रह्म कहाई ॥८५॥
वैद्य कहै तू निंदक अहही। इन लोगन कहँ फाँसी चहही ॥८६॥

शब्दार्थ — औषध = उपदेश।

भावार्थ — उपदेश वह है जिससे भवव्याधि का नाश हो; हम अपने आपको ब्रह्म नहीं कहलाना चाहते हैं। बिना यथार्थज्ञान के केवल ब्रह्म कहलाने से क्या होगा ? ॥ ८५ ॥ गुरुमहाराज ने शिष्य से कहा कि तुम लोग निंदक हो। ऐसे लोगों को ही शाप देकर भस्म कर देना चाहिये ॥ ८६ ॥

जो हम कहा सो मानत नाहीं। औषध और सो माँगत जाहीं ॥८७॥
यह हरिभोग सनातन ऐसा। रोग स्वभाविक छूटै कैसा ॥८८॥

शब्दार्थ — सनातन = नित्य, अनादि।

भावार्थ — जो हम उपदेश देते हैं वह तो मानते नहीं हो, प्रत्युत अधिक उपदेश पाने के लिये तर्क करते जाते हो ॥ ८७ ॥ यह संसार तो इसी प्रकार अनादि है। यह भवव्याधि स्वाभाविक है, फिर कैसे छूट सकता है ? ॥ ८८ ॥

विशेष — ब्रह्ममें जगत का बनते-मिटते रहना स्वभाव और सनातन है। जगत ब्रह्म दोनों एक हैं। अतएव यह रोग नित्य है। ब्रह्म को छोड़कर संसार व भवव्याधि कहाँ जायगी ?

पाँच तत्त्व अनादि हैं भाई। स्वतः सदा ऐसेहि समुझाई ॥८९॥
संयोग पाय बहु रूप उपाई। वियोग होत सो जात नशाई ॥९०॥

शब्दार्थ — उपाई = उत्पन्न होना।

भावार्थ — हे भाई ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँच तत्त्व अनादि हैं। ये सदा से अपने आप हैं, ऐसा पोथियों में समझाया गया है ॥ ८९ ॥ इन तत्त्वों में परस्पर संयोग पाकर उनके रूप में कार्यपदार्थ उत्पन्न होते हैं। जब तत्त्वों का वियोग हो जाता है, तब वे कार्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ९० ॥

वचन बोधते संशय होई । तेहि पाछे मति जाहु बिगोई ॥९१॥
शब्द का कारज कहिये सुनिये । बन्धन मोक्ष भरममों लहिये ॥९२॥

शब्दार्थ — बोधते = ज्ञान से; जानने से । बिगोई = बिगोना; गँवाना; बिगाड़ना ।

भावार्थ — अनेक प्रकार की वाणियों के ज्ञान होने से जन्म-मरण, बन्ध-मोक्ष आदि अनेक प्रकार के सन्देह खड़े हो गये हैं; परन्तु उसके पीछे अपने को मत गंवाओ ॥ ९१ ॥ कहना-सुनना शब्दकाकार्य है । बन्ध-मोक्ष भी शब्द ही है; अतः उन्हें भी भ्रमरूप ही समझो ॥ ९२ ॥

मिथ्यावादी वैद्य कहीजै । वचन प्रमाण कौने विधि कीजै ॥९३॥
पाँच तत्त्व जड़ आपुहि आपा । किमि संयोग लहहिं प्रतापा ॥९४॥

शब्दार्थ — प्रतापा = प्रताप, तेज; बल ।

भावार्थ — (शिष्य बोला, जब बन्ध-मोक्ष शब्दविलास मात्र है, अर्थात् सब मिथ्या है तब) गुरुमहाराज मिथ्यावादी कहे जाने के योग्य हो गये । फिर उनके वचनों का प्रमाण किस प्रकार माना जाय ? ॥ ९३ ॥ पाँच जड़ तत्त्व अपने आप हैं; यह ठीक है; परन्तु उनके संयोग से चेतनाशक्ति कैसे आ सकती है; क्योंकि तत्त्वों में चेतना नहीं है ॥ ९४ ॥

अनवन रूप किमि जड़ की रचना । पुनि वियोग किमि कारण खचना ॥९५॥
निज स्वभाव कैसे सुख मानो । सुख की चाह कहिके पहिचानो ॥९६॥

शब्दार्थ — अनवनरूप = झगड़ारूप; मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि आदि विविध रूप । खचना = उलझ जाना; लय हो जाना । सुख = आनन्द । पहिचानो = परखो, समझो ।

भावार्थ — मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि आदि नाना सचेतनप्राणी केवल जड़तत्त्वों की रचना कैसे हो सकते हैं ? पुनः उसका वियोग होकर नाना चेतन जड़तत्त्वों में लय किस कारण से हो सकते हैं ? ॥ ९५ ॥ हे गुरुमहाराज ! तुम इस अपने गलत स्वभाव में कैसे सुख मानते हो; और सांसारिक सुख की चाहना वाली बात कहकर, फिर वास्तविकता को पहचानने की बात करते हो ॥ ९६ ॥

विशेष — जहाँ पर जड़-चेतन का विवेक न हो; बन्ध-मोक्ष वचनमात्र मिथ्या माना जाय वहाँ केवल देहवाद एवं भौतिकसुख का ही लक्ष्य रहता है । भले वह सब धर्म और अध्यात्मसाधना का आड़ा लेकर किया जाय । भौतिकवाद और ब्रह्मवाद अन्ततः दोनों देहसुखवाद या जड़वाद हो जाते हैं; क्योंकि उन दोनों की दृष्टि में जड़-चेतन, बन्ध-मोक्ष, पाप-पुण्य मिथ्या हैं ।

वैद्य प्रपंची झूठा खोटा। भोरे सकल कुशल के ओटा ॥९७॥
अब कहा कुशल कहा गुरुवाई। वैदक झूठा वैद्य अन्याई ॥९८॥

शब्दार्थ — खोटा = घटिहा; बुरा। भोरे = भोराना; भुलाना, बहकाना। कुशल = कल्याण। ओटा = ओट; आड़; आधार।

भावार्थ — गुरुमहाराज प्रपंची, मिथ्यावादी एवं गलत हैं, वे कल्याण एवं अध्यात्म के आधार में सबको भुला रखे हैं ॥ ९७ ॥ ऐसी स्थिति में गुरु और शिष्य का कहाँ कल्याण है और गुरुता भी कहाँ रही ? धर्मपोथी झूठी हुई और उपदेशक न्यायविरुद्ध आचरण करने वाले हुए ॥ ९८ ॥

सुनत वचन वैद्य खिसियाने। अनल क्रोध बहुते झुलसाने ॥९९॥
वैद्य गये ढिग भोंदू राऊ। कहा राउ तुम करहू न्याऊ ॥१००॥

शब्दार्थ — खिसियाने = लजाकर क्रोधित हुए। भोंदू राऊ = वह धर्माधिकारी जो अत्यन्त भोलाभाला हो।

भावार्थ — शिष्य के उपर्युक्त वचन सुनकर गुरुमहाराज लज्जित होकर क्रोधानल में बहुत जल गये ॥ ९९ ॥ तब वे ऐसे बड़े धर्माधिकारी के पास न्याय कराने गये जो बड़े ही भोलेभाले थे, जिन्हें सारासार का विवेक नहीं था। उनसे उन्होंने कहा कि महाराज आप हमलोगों के झगड़ा का न्याय कर दें ॥ १०० ॥

बहुविधि औषध रोगिन दीन्हा। पोथी कहै तेहि चूक न कीन्हा ॥१०१॥
तबहु कहै रोग नहिं जाई। ऐसी परजा भई अन्याई ॥१०२॥

शब्दार्थ — औषध = उपदेश। रोगिन = भवव्याधिग्रसित मनुष्य या शिष्य।

भावार्थ — मैंने इन मनुष्यों को अनेक प्रकार के उपदेश दिया; और धर्मपोथी जो कुछ कहती है, उसमें मैंने असावधानी नहीं की ॥ १०१ ॥ तब भी ये कहते हैं कि हमारा अज्ञान नहीं दूर हो रहा है। इस प्रकार ये शिष्य अन्यायी हो रहे हैं ॥१०२॥

ताहि पकरि के फाँसी दीजे। पोथी कहै सोई प्रभु कीजे ॥१०३॥
राजा रोगिन पकरि मँगावा। बहु प्रकार सासत दिखलावा ॥१०४॥

शब्दार्थ — सासत = साँसत; कष्ट।

भावार्थ — अतएव आप उन्हें पकड़कर दण्डित करें, हे स्वामी ! जो धर्मपोथी कहती है वही कीजिये ॥ १०३ ॥ यह सुनकर उन भोले धर्माधिकारी महाराज ने शिष्यों एवं मनुष्यों को पकड़कर मँगवा लिया, और उन्हें गुरु और धर्मपोथी की बातों का उल्लंघन करने के फल में घोर नरकयातना होती है आदि अनेक प्रकार के कष्ट का भय दिया ॥ १०४ ॥

कहा परजा सुनहु तुम मेरा। चहहु उजारन पट्टन केरा ॥१०५॥
तुम्हरे कछु रोग न होई। वैद्यक अनुहार करंगा सोई ॥१०६॥

शब्दार्थ — पट्टन = नगर; शहर। अनुहार = भेद, प्रकार, आकृति, अनुसार।

भावार्थ — धर्माधिकारी महाराज ने कहा हे प्रजा ! तुम सब मेरी बात सुनो; क्या तुम हमारे सम्प्रदाय रूपी शहर को उजाड़ना चाहते हो ? ॥ १०५ ॥ वस्तुतः तुम शुद्ध आत्मा हो, तुम्हारे में कुछ रोग तो है नहीं। हम तो वही उपदेश देंगे जो धर्म-पोथी के अनुसार हो ॥ १०६ ॥

सदा रोग जो शिर पर धरहू। फुमफुस बहु भाँति से करहू ॥१०७॥
लिखो मुचलिका चाहो न काजा। सो तुम रानी अटल हम राजा॥१०८॥

शब्दार्थ — रोग = जगतभ्रम। फुसफुस = बात करना, तर्क करना। मुचलिका = मुचलका; प्रतिज्ञापत्र।

भावार्थ — यदि जगतभ्रम का रोग अपने सिर पर सदैव रखे रहोगे अर्थात् यह समझोगे कि जगत है तो इसी प्रकार अनेक प्रकार के तर्क करते रहोगे ॥ १०७ ॥ अतएव हमारे सामने यह प्रतिज्ञापत्रलिखो कि आप के आज्ञाविरुद्ध मैं कोई काम नहीं करुंगा। फिर तो तुम सच्चे भक्त हो और हम तुम्हारे स्थायी गुरु हैं ॥ १०८ ॥

तुम कामिनी हम पुरुष तुम्हारा। कौतुक राज अचार हमारा ॥१०९॥
जस हम तस तुम भेद न कोई। राज विलास नर नारी सोई ॥११०॥

शब्दार्थ — कामिनी = कामिनी; कामवेग का अनुभव करने वाली स्त्री; तात्पर्य में कामनायुक्त भक्त। पुरुष = ब्रह्म। कौतुक = कुतूहल; तमाशा, लीला। अचारा = आचार; व्यवहार।

भावार्थ — तुम ब्रह्मप्राप्ति की कामना रखने वाले भक्त हो और हम तुम्हारे परमपुरुष ब्रह्म हैं। यह संसार हमारा लीलाराज है, उसमें क्रीड़ा करते रहना हमारा स्वभावसिद्ध व्यवहार है ॥ १०९ ॥ अन्ततः तो जैसे हम हैं वैसे तुम हो, प्रत्युत हम और तुम भेदरहित एक ही हैं। एक ही ब्रह्म, जगत लीलाविलास के लिये प्रकृति-पुरुष, नर-नारी तथा गुरु-शिष्य बन जाता है ॥ ११० ॥

कामरूप मम जग उपजाया। सदा स्वभाविक मोरी माया ॥१११॥
अब यह जानि रहहु हरिभोंगू। चारिमुक्ति लहहु संजोगू ॥११२॥

शब्दार्थ — कामरूप = इच्छानुसार रूप बनाने वाला; सुन्दर; जिसकी उत्पत्ति काम से हुई हो। स्वभाविक = स्वाभाविक; स्वभाव से उत्पन्न; स्वभावसिद्ध, प्राकृतिक, जो न छूटे। हरिभोंगू = संसार; सम्प्रदाय। चारिमुक्ति = सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य।

भावार्थ — यह कामरूप मेरा उत्पन्न किया हुआ है। यह जगत-उत्पत्ति रूपी मेरी माया सदैव स्वाभाविक है। अर्थात् ब्रह्म में जगत सदैव बनता-मिटता ही रहेगा ॥ १११ ॥ ऐसा जानकर अब तुम हमारे ही सम्प्रदाय में रहो और साधना द्वारा सालोक्यादि चार मुक्तियों को पाने का संयोग प्राप्त करो ॥ ११२ ॥

नाचो नाना रूप बनाई। बिरह विकल चित मम मति ताई ॥११३॥
त्रिविध सृष्टि विलास हमारा। हमरे सुख में सुख तुम्हारा ॥११४॥

शब्दार्थ — ताई = के लिये। त्रिविध = सत, रज, तम।

भावार्थ — मेरे मत के प्रचार के लिये नाना वेष बनाकर नाच-गान कीर्तनादि करो और मन से परमपुरुष को पाने के लिये हरक्षण व्याकुल रहो ॥ ११३ ॥ सत, रज, तम तीन प्रकार की सृष्टियाँ हमारी क्रीड़ा हैं। हमारे आनन्द में ही तुम्हारा आनन्द निहित है ॥ ११४ ॥

जिन यह मानि सोई मम रानी। निःकामी सेवा सो ठानी ॥११५॥
कहा प्रचारि ढिंढोरा देई। नहिं मानै सो दुष्ट मम होई ॥११६॥

शब्दार्थ — प्रचारि = प्रकट करना।

भावार्थ — उपर्युक्त मेरी बातों को जो मानेगा वही हमारा प्यारा भक्त है; क्योंकि उसने निष्कामभाव पूर्वक हमारी सेवा करने को निश्चय कर लिया है ॥११५॥ इस प्रकार बड़े धर्माधिकारी महाराज प्रकट करके तथा डुग्गी बजवाकर सबको सुना दिये; और कह दिये कि जो हमारी इस आज्ञा को नहीं मानेगा, वह दुष्ट हमारा द्रोही है ॥ ११६ ॥

वचन सुनत बहु चित ठहराना। राज अनुशासन में बिलखाना ॥११७॥
कोइ कोइ उजुर किया महाराजा। तुम सुखरूप कष्ट केहि साजा ॥११८॥

शब्दार्थ — अनुशासन = आदेश, शिक्षा; शासन; दण्ड, नियमपालन। उजुर = उज्र, आपत्ति। साजा = सजाया, सँवारा, बनाया।

भावार्थ — उपर्युक्त वचन सुनकर बहुत से लोग उन्हें अपने मन में बसा लिये; और उनके साम्प्रदायिक आदेश, शासन व दण्ड में पड़कर दुखी होने लगे ॥ ११७ ॥ परन्तु कोई-कोई उन बड़े महाराज से जाकर आपत्ति किये कि हे भगवन् ! तुम तो आनन्दस्वरूप ब्रह्म हो तो इस दुःखरूप संसार को किसलिये साजकर तैयार कर दिये हो ॥ ११८ ॥

जो दुख रहै फुस फुस के लागी। वैदकु कौन अर्थ अनुरागी ॥११९॥
राजा कहै जगत मम सपना। झूठा सार तुम्हार कल्पना ॥१२०॥

शब्दार्थ -- फुस फुस = बातकरना; तर्क वितर्क करना; वारम्बार पूछना। सार = सत्य।

भावार्थ — बोध न होने के कारण यदि हमलोगों को वारम्बार पूछने का दुःख लगा रहे; तो धर्मपोथी में श्रद्धा करके भी हमारा क्या प्रयोजन हल हुआ ? ॥ ११९ ॥ शिष्यों का प्रश्न सुनकर महाराज कहने लगे देखो बेटा ! यह जगत मेरा स्वप्नविला स है। इस झूठे जगत को यदि तुम सत्य मानते हो तो वह तुम्हारी मिथ्या कल्पना है ॥१२०॥

हमरे हुकुम सपने तुम देखा। कौतुक खेल सो जानहु लेखा ॥१२१॥
हमरे ढिग जागृत है तेरा। सपना भरम विवश है तुम्हारा ॥१२२॥

शब्दार्थ — हुकुम = हुक्म; आज्ञा, फैसला, निर्णय। लेखा = हिसाब, अन्दाज, विचार। ढिग = पास। जागृत = जागृति; जागरण, ज्ञान।

भावार्थ -- हमारे उक्त निर्णय के प्रताप से तुम जगत को स्वप्नरूप समझ सके हो। इस जगत के विषय में तुम पुनः यह विचार समझो कि यह मेरी लीलामात्र है ॥ १२१ ॥ तुम्हारा ज्ञान हमारे पास है, अर्थात् हमसे ज्ञान पाकर ही तुम सुखी हो सकते हो; और यह सपने का संसार जो तुम्हें कष्ट दे रहा है, वह तुम्हारे भ्रमवश है ॥१२२॥

महाराज जी कहो समुझाई। प्रथम कैसे रहे दुचिताई ॥१२३॥
जागत नींद कौने विधि कीन्हा। त्रिधा सृष्टि उपजाई लीन्हा ॥१२४॥

शब्दार्थ — दुचिताई = द्वैतबुद्धि। त्रिधा = तीन प्रकार; तीन भागों में सत, रज, तम। जागत = जाग्रत; ज्ञान स्वरूप।

भावार्थ — (शिष्य बोला-) हे महाराज जी ! यह हमें समझा कर कहो कि पहले पहल आप में कैसे द्वैतबुद्धि उत्पन्न हुई ? ॥ १२३ ॥ ब्रह्म ज्ञानस्वरूप होकर भी किस प्रकार माया की नींद में सो गया, और सत, रज, तम त्रिगुणीसृष्टि निर्मित कर डाला ? ॥ १२४ ॥

नर नारी केहि भाँति उपाई। सकल भेद मोहि कहो बुझाई ॥१२५॥
सत चिद् आनन्दरूप हमारा। तेहि विलास जगत विस्तारा ॥१२६॥

शब्दार्थ -- उपाई = उत्पन्न हुए।

भावार्थ — स्त्री-पुरुष किस प्रकार उत्पन्न हुए ? वह सारा रहस्य मुझे समझाकर कहो ॥ १२५ ॥ महाराज जी बोले, हमारा स्वरूप सच्चिदानन्द है, जिसकी क्रीड़ा जगत का विस्तार है ॥ १२६ ॥

विशेष — कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म से ही कार्य जगत बना है। इसीलिये जगत के सारे पदार्थ अस्ति, भाति, प्रिय रूप हैं। अस्ति कहते हैं होने को जिसका मूल है सत्;

भाति कहते हैं चमक, दीप्ति या ज्ञान को जिसका मूल है चिद्; और प्रिय कहते हैं सुखकर को जिसका मूल है आनन्द। एक पुस्तक में भी अस्ति, भाति, प्रिय है। उसकी सत्ता है, इसलिये अस्ति, वह प्रतीत होती है इसलिये भाति, और वह काम में आती है इसलिये प्रिय है। विष में भी अस्ति, भाति, प्रिय है। वह है, इसलिये अस्ति, प्रतीत होता है इसलिये भाति और वह दवाई के काम में आता है या जीवन से घबराये हुए आदमी को वह प्रिय लगता है और उसे खाकर वह प्राणान्त करता है इसलिये प्रिय है। इसप्रकार अस्ति, भाति, प्रिय रूप से सारा विश्व एवं उसका कण-कण सच्चिदानन्द है।

चिद् स्वरूप मैं पुरुष अमाना। आनन्द नारी अंग बिलगाना॥१२७॥
सदा शब्द एक अंग हमारा। ताके मोह नींद विस्तारा॥१२८॥

शब्दार्थ — चिद् स्वरूप = चेतन स्वरूप। नारी = आदिमाया। बिलगाना = अलग हुआ। शब्द एक = ॐ।

भावार्थ — मैं मानरहित चेतन पुरुष हूँ। आनन्द रूपी आदि माया हमारा एक अंग एवं भाग है; जो आरम्भ से मुझसे अलग होकर स्थूल रूप धारण की॥ १२७॥ ॐ शब्द सदैव हमारा रूप है। आदि माया की मोहनींद में मुझे असावधानी आई और मेरे सकाश (सामीप्य) में माया से सृष्टि का विस्तार हुआ॥ १२८॥

पूछे परजा सब संदेहा। जथा जमा फूटा केहि नेहा॥१२९॥
फूटा अंड कहहु केहि भाँती। सत चित आनन्द कैसे कहाती॥१३०॥

शब्दार्थ — जमा = स्थायी; अविनाशी। नेहा = प्रेम; मोह। अंड = अण्डाकार ॐ एवं ब्रह्म।

भावार्थ — महाराज जी के उपर्युक्त उत्तर की अवहेलना करके सभी शिष्य पुनः अपने मनके सन्देह की बात पूछने लगे हे प्रभो! किसके मोह में पड़कर अविनाशी, निरवयव ब्रह्म फूटकर जगत के रूप में फैल गया॥ १२९॥ कहो भला, किस प्रकार अण्डाकार ॐ एवं ब्रह्म फूटा; और वह ऐसी स्थिति में सच्चिदानन्द कैसे कहला सकता है। अथवा वह अस्ति, भाति, प्रिय जगत रूप में सच्चिदानन्द कैसे हो सकता है?॥१३०॥

विशेष — ब्रह्म को एक, अखण्ड, निरवय तथा अविनाशी कहते हैं, फिर वह फूट कर अनेक कैसे हो सकता है? यदि वह फूट कर अनेक हुआ तो एक, अखण्ड, निरवय एवं अविनाशी कहना व्यर्थ हुआ। उपर्युक्त १२७ वीं चौपाई में बताया गया है कि माया ब्रह्मका एक अंग एवं भाग है, वह ब्रह्म से अलग हो गयी। इस सिद्धान्त से न ब्रह्म अखण्ड और अद्वैत रहा और न निरवयव; क्योंकि माया उसमें द्वैत तथा उसका एक अवयव (अंग) है।

यह कहना कि सच्चिदानन्द ब्रह्म से जगत उत्पन्न हुआ, इसीलिये जगत अस्ति, भाति, प्रिय रूप है, ठीक नहीं है। क्योंकि संसार की वस्तुओं की कसौटी करने पर वह अस्ति, भाति, प्रिय रूप नहीं ठहरती हैं। पहली बात अस्ति है। कुरसी, मकान या ऐसी कोई वस्तु कुछ समय के लिये ही अस्ति एवं सत्तावान हैं। थोड़े समय में उनका रूप बदल जाता है। इसलिये उसे हम अस्ति या सत नहीं कह सकते। फिर ब्रह्मवादी तो जगत को शशाश्रृंगवत असत्य कहते हैं तो उसमें अस्ति एवं सत्य लक्षण कहाँ आ गया ? रहा, यदि उसे कुछ समय के लिये अस्ति मान लिया जाय तो भी मकान, कुरसी, कपड़ा या ऐसी अन्य वस्तुयें भाति तो बिलकुल नहीं हो सकतीं। अर्थात् उसमें चेतना बिलकुल नहीं है। ब्रह्मवादी कहते हैं कि हम मकान को जानते हैं तो मकान भाति एवं चेतन रूप हुआ। मतवाद के कारण वे इतना भी नहीं समझ पाते कि जिनको जाना जाता है वे पाँच विषय चेतन नहीं हैं; अपितु उनको जानने वाले चेतन हैं। यदि संसार के सभी वस्तु आनन्द के प्रत्यावर्तन रूप प्रिय हैं तो उनसे मनुष्यों को कष्ट क्यों होता है ? जिसका स्वभाव ही प्रिय या आनन्द हो उससे सबको सब समय आनन्द होना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नहीं है।

ब्रह्म को सद्-चिद्-आनन्द कहते हैं; वही जगत का उपादान कारण है। उसी से जगत बना है। फिर जगत असद्-अचिद्-अआनन्द के रूप में क्यों लक्षित होता है। ब्रह्म को निराकार तथा आकाश के समान शून्य कहते हैं फिर उससे साकार स्थूल जगत कैसे बन सकता है ? जिसके फूटने से इतना विशाल विकारवान संसार निर्मित हुआ वह सच्चिदानन्द कैसे कहला सकता है ?

तीनि अंक तुम कहेउ विचारी। एकु शुद्ध एक करै खुवारी ॥१३१॥
कहहु केहि कारण तुम जहँडाने। एक अनंत त्रिधा होय विहँडाने ॥१३२॥

शब्दार्थ — तीनि अंक = तीन भेद सद्-चिद्-आनन्द। खुवारी = ख्वारी; खराबी; बरबादी। जहँडाने = ठगाये; गँवाये; हानि उठाये। त्रिधा = तीन प्रकार, तीन भागों में सत, रज, तम; अस्ति, भाति, प्रिय। विहँडाने = विहँड़ना; काटना; टुकड़े करना, नष्ट करना, मार डालना।

भावार्थ — आपने बहुत सोच-विचार कर सद्-चिद्-आनन्द—तीन भेदों वाला ब्रह्म सबका कारण बतलाये। परन्तु उसमें भी एक सद् को तो शुद्ध बताये और दूसरे आनन्द को माया का रूप बताकर उसे सृष्टि प्रपंचरूप बरबादी लाने वाला बताये।॥१३१॥ कहिये महाराज ! किस कारण से आप इस भ्रामक मतद्वारा ठग लिये गये। और किस कारण से अखण्ड अद्वैत ब्रह्म सत, रज, तम अथवा कल्पित अस्ति, भाति, प्रिय तीन रूपों या अनन्त रूपों में होकर विनष्ट हो गया। अथवा वह क्यों अपने वास्तविकरूप को विनष्ट कर दिया ॥ १३२ ॥

सुनत राव व्याकुल तब भयऊ । हमरे राज दुष्ट यह ठयऊ ॥१३३॥
ऐसहि परजा जाय पराई । भेद लहौं तो करौं प्रभुताई ॥१३४॥

शब्दार्थ — राव = राजा; बड़े धर्माधिकारी महाराज । ठयऊ = जगह; ठानना; निश्चय करना होना । पराई = भाग जाना । प्रभुताई = प्रभुता या प्रभुत्व; प्रभु का भाव, गौरव, अधिकार, स्वामित्व, दबाव ।

भावार्थ — शिष्यों की उपर्युक्त तर्कपूर्ण एवं विवेकपूर्ण बातें सुनकर महाराज जी व्याकुल हो गये और कहने लगे कि हमारे राज्य में ये दुष्ट हैं ॥ १३३ ॥ इस प्रकार होने से तथा हमारे शिथिल रहने से तो बहुत से शिष्य हमारा सम्प्रदाय छोड़-कर भाग जायेंगे । यदि उन तर्कशीलों का रहस्य जान पाऊँ कि उनका क्या विचार एवं मत है, तो मैं भी उन्हें दबाने के लिये अपने ऐश्वर्य एवं अधिकार का रोब दिखाऊँ ॥१३४॥

फाँसी दिया किया बरजोरा । फेरा सारा शहर ढिंढोरा ॥१३५॥
जो कोई पोथी कहा न मानै । यही हाल सो आपन जानै ॥१३६॥

शब्दार्थ — फाँसी दिया = भ्रम में फँसाया । बरजोरा = बलात्कार, जबरदस्ती ।

भावार्थ — महाराज ने बलपूर्वक जिसको बन पड़ा उन्हें भ्रम में फँसाया और सारे संसार में घोषित कर दिया ॥१३५॥ कि जो कोई धर्मपोथी का कहा नहीं मानेगा, उसे भी अपनी यही दशा समझ लेनी चाहिये । अर्थात् उसे भी बलपूर्वक सनातन धर्म में लगाया जायगा ॥ १३६ ॥

झूठहि वैद्य कहै सो साँचा । झूठा सो जो चाहै जाँचा ॥१३७॥
जेहि जो औषध वैद्य बताई । सोइ सोइ चाल चले समुझाई ॥१३८॥
नाना चाल चली है हरिभोगू । विविधि कष्ट के लहहि संजोगू ॥१३९॥

शब्दार्थ — वैद्य = गुरुमहाराज । जाँचा = जाँचना, पूछना, परख करना, छान-बीन करना । औषध = उपदेश ।

भावार्थ — गुरुमहाराज झूठी बातें भी कहें तो भी शिष्य को चाहिये कि उन्हें सच्ची समझें, क्योंकि वह धर्म पोथी से मान्य होगी । वह झूठा शिष्य है जो पोथी और गुरु के कथन में भी सार-असार एवं सत्य-असत्य की छान-बीन करना चाहता है । सच्चा शिष्य वही है जो गुरुके मुखसे निकली या धर्मपोथी की बातें बिना आनाकानी किये अक्षरशः मान ले ॥ १३७ ॥ "गुरुमहाराज जिसको जो उपदेश दे दें उसको उसी के अनुसार चलना चाहिये ।" इस प्रकार धर्माधिकारी महाराज घोषित किये ॥१३८॥ इस प्रकार इस भूलभुलैया के संसार में लोग नाना चाल से चलते हैं; और अनेक के दुःखों को भोगने की योग्यता प्राप्त करते हैं ॥ १३९ ॥

बीजक, रमैनी-साखी५३, साखी१५४

तीन लोक मुवा कौवाय के, छूटि न काहु की आश।
एकै अँधरे जग खाया, सबका भया निपात ॥४३॥

शब्दार्थ — तीन लोक = सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी। कौवाय = कौआना; चकाकाना; स्वप्न में बड़बड़ाना। एकै अँधरे = मन। निपात = अधःपतन, विनाश।

भावार्थ — सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी सब भ्रमस्वप्न में बड़बड़ाकर मरते हैं। अपने स्वरूप से पृथक की वस्तुओं की आशा, वासना, कल्पना नहीं छूटती हैं। इस एक अविवेकी मन ने जगत के सभी जीवों को भटकाया है, उसी में सबका अधःपतन हुआ तथा हो रहा है ॥ ४३ ॥

जाका गुरु है आँधरा, चेला काह कराय।
अन्धे अन्धा पेलिया, दोऊ कूप पराय ॥४४॥

शब्दार्थ — आँधरा = विवेकहीन। पेलिया = ढेला, ढकेला, धक्का देना।

भावार्थ — जिसका गुरु अविवेकी है वह शिष्य बेचारा क्या विवेक प्राप्त करेगा ? उसमें तो वही दशा है कि दो अन्धे एक दूसरे को धक्का देते-देते दोनों कूयें में जा गिरे ॥ ४४ ॥

३१—सत्सुकृत, मुनीन्द्र, करुणामय तथा कबीर साहेब पर विचार, सार ग्रहण तथा समीक्षायें

चौपाई २६

बहुत कोलाहल ऐसो देशा। मानत कौन संत उपदेशा ॥ १ ॥
गाढ़ी चौकी फिरै दिन राती। घर घर भौ राजा उतपाती ॥ २ ॥

शब्दार्थ — कोलाहल = हल्ला। गाढ़ी = कठिन। चौकी = रखवाली चुंगीनाका।

भावार्थ — इस प्रकार संसार में भ्रांतिपूर्ण वाणियों का बहुत हो-हल्ला है। फिर विवेकी सन्तों के सार उपदेशों को कौन मानने लगा ? ॥ १ ॥ भ्रांति के प्रचारकों की रात-दिन कठिन पहरेदारी फिर रही है; और घर-घर में भ्रान्ति फैलानेवाले धर्माधिकारियों का बोलबाला है ॥ २ ॥

गोंठ गोंठ चहुँ दिश हेरा। लहत परख सब कष्ट निबेरा ॥ ३ ॥
जाल फाँस राजा के खोई। अभय अशंक सदा सुखदाई ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — गोंठ गोंठ = कोना कोना; चप्पा-चप्पा। हेरा = खोजा। परख = परीक्षा, यथार्थ ज्ञान।

भावार्थ — वास्तविक बोध की प्राप्ति के लिये संसार के चारों कोनों का चप्पा-चप्पा खोज डाला, परन्तु वह न मिला। किन्तु पारखी सद्गुरु से यथार्थ परख प्राप्त होते ही सब मनके कष्ट दूर हो गये ॥ ३ ॥ भ्रम में भूले तथा दूसरों को भुलाने वाले धर्माधिकारियों के जालफाँस का भय मिट गया; और निर्भय निःशंक सदा सुखप्रद पारख की प्राप्ति हो गयी ॥ ४ ॥

देखा चौकीदार बहु रीसे। कला न लहै हाथ सब मीसे ॥ ५ ॥
सब हरिभोंग करै कौवारा। हम लोगन से भया यह न्यारा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — चौकीदार = पहरा देनेवाला; भ्रमोपदेशक गुरु। कला = हुनर, गुण, उपाय। मीसे = मसलना; पीसना। कौवारा = कौआर, कौआरोर, कागारोल, हल्ला।

भावार्थ — मनुष्यों को भ्रम छोड़कर सत्यमार्ग में लगते हुए देखकर भ्रमोपदेशक धर्माधिकारी लोग बहुत क्रुद्ध होते हैं। परन्तु उनका अपना कोई उपाय न लगते देखकर हाथ पीस कर सब रह जाते हैं ॥ ५ ॥ भूलभुलैया में फँसे हुए सभी लोग हो-हल्ला करते हैं कि "ये हम लोगों से पृथक हो गये ॥ ६ ॥

नहिं डर महंतों न राजा मानै। ना जानो यह क्या व्रत ठानै ॥ ७ ॥
यहि विधि युगन युगन चलि आई। दया दयाल काल अन्याई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — व्रत = प्रतिज्ञा, निश्चय।

भावार्थ — ये न तो महंतों का डर मानते हैं और न धर्माधिकारी बड़े महाराजाओं का। पता नहीं इन्हें कौन-सा विचार दृढ़ हो गया है ? ॥ ७ ॥" इस प्रकार विवेक और विवेकी तथा भूल और भुलाने वाले सदा से चले आये हैं ॥ ८ ॥

विशेष — ग्रंथकर्ता का विचार है कि स्वयं भूले हुए और दूसरों को भुलाने वाले भी सदा से रहे हैं और स्वयं सत्यज्ञानी तथा दूसरे को सत्यज्ञान देने वाले भी सदैव से रहे हैं। उसका स्थूलरूप से स्पष्टीकरण करते हुए वे स्वयं कहते हैं:—

सतयुग सतसुकृत गुरु आई। त्रेता मुनिंद्र बहु जीव चेताई ॥ ९ ॥
द्वापर करुणामय सुखदाई। कलियुग कबीर जीव मुक्ताई ॥ १० ॥

शब्दार्थ — मुक्ताई = मुक्त किये।

भावार्थ — सत्युग में 'सतसुकृत' नाम के पारखी गुरु हुए; और त्रेतायुग में 'मुनीन्द्र' नाम के पारखी गुरु होकर बहुत जीवों को बोध दिये ॥ ९ ॥ द्वापरयुग में

शांतिदाता 'करुणामय' नामके सद्गुरु हुए; और कलियुग में 'कबीर' नाम से पारखी सद्गुरु होकर असंख्य जीवों को भवबन्धनों से मुक्त किये ।। १० ।।

विशेष — कबीर पंथ में यह एक पुरानी धारणा रही है कि कबीर साहेब चारों युग में सतमुकृत, करुणामय, मुनीन्द्र और कबीर नाम से संसार में प्रकट होकर जीवों को यथार्थ ज्ञान देते हैं। अथवा चारों युगों में उक्त चारों महापुरुष एक दूसरे से भिन्न रहे हैं; और अपने-अपने युग के पारखसिद्धान्त के प्रचारक रहे हैं। पहली धारणा में कबीर साहेब को ईश्वर रूप मानकर उनके प्रतियुग में अवतार लेने जैसी बात कहकर ईश्वरवाद और अवतारवाद की नकल की गयी है; जो अपने में भ्रांतिपूर्ण है।

दूसरी धारणा में यह है कि पारख का बोध करने वाले चारों युगों में सतमुकृत, करुणामय, मुनीन्द्र और कबीर नाम के चार सद्गुरु हुए हैं। इसमें भी चारयुगों की कल्पना मिथ्या ही है। दश-पाँच हजार वर्षों का कोई लेखा-जोखा नहीं रख पाता, और उसके इतिहास का भी ठीक-ठिकाना नहीं लगता, फिर लाखों वर्षों के युगों का कौन हिसाब रखेगा ? युग इत्यादि की आलोचना तो ग्रंथकर्ता ने स्वयं (टकसार, चौपाई ५३ में) की है। इसके अतिरिक्त उक्त चार गुरुजनों की कहीं कोई प्रमाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ में चर्चा भी नहीं है। अतएव यह भी धारणा ठीक नहीं है।

फिर प्रश्न होता है कि श्री रामरहस साहेब जैसे तार्किक विद्वान संत पुरुष उक्त धारणा का उल्लेख अपने प्रामाणिक ग्रन्थ में क्यों किये हैं; तो इसका कारण यह प्रतीत होता है कि बहुत दिनों से चला आया हुआ स्वपक्ष के विश्वास का सभी प्रकार से एकाएक विरोध नहीं कर मिलता।

सद्गुरु कबीर ने अपने युग में सभी प्रकार के अंधविश्वासों को अस्वीकार कर दिया। उसके बाद संतपरम्परा में पुनः काफी अंधविश्वास घुस आये; तो एक समय आया श्री रामरहस साहेब का। उन्होंने सारे अंधविश्वासों को छिलके की तरह उतार फेंक दिया; परन्तु इस बात पर वे भी रहम कर गये। यह ठीक है कि सत्य अनादि है और उसके द्रष्टा भी अनादिकाल के जगत में होते ही आये रह सकते हैं। परन्तु वह किसी काल्पनिक नामधारी पुरुष में सीमित नहीं किया जा सकता।

इसके अतिरिक्त ग्रन्थकर्ता ने चौथे प्रकरण 'गुरुबोध' के आरम्भ में ही 'गुरुशतक सार नाम' दिया है। अर्थात् गुरु के सौ नामों का वर्णन किया है। उसी में उक्त चारों नाम हैं। वहाँ पर सद्गुरु के सद्गुणों तथा चेतन के लक्षणों के नामों का ही वर्णन है। जो सत्य और सत्कर्म में प्रीति रखे तथा दूसरे को उसका उपदेश करे वही 'सतमुकृत' है; जो करुणामूर्ति हो वही 'करुणामय' है; जो मुनियों में श्रेष्ठ हो वही 'मुनीन्द्र' है तथा जो काया में वीर अर्थात् पूर्ण जितेन्द्रिय हो, वही 'कबीर' है। वस्तुतः सद्गुरु कबीर ऐतिहासिक पारखी संत पुरुष हुए हैं। उन्हीं या उन्हीं जैसे विवेकी पुरुष के लिये यह सब नाम विशेषण हैं।

बन्दीछोर बिन नहिं छुटकारा । खानी कष्ट हरिभोंग अपारा ॥११॥
दयानिधान एक युक्ति सँवारी । जाते फाँस कटे भव भारी ॥१२॥

शब्दार्थ — वन्दीछोर=बन्धन छुड़ाने वाले सद्गुरु । युक्ति=उपाय । सँवारी=बनाया । निधान=आधार ।

भावार्थ — बन्धनछुड़ाने वाले सद्गुरु के बिना जीव को छुटकारा नहीं है । संसार में चारों खानियों का कष्ट अपार है ॥११॥ दयानिधान सद्गुरु कबीर साहेब ने एक उपाय किया जिससे संसार के महामोह की फाँसी कटे ॥ १२ ॥

जो जेहि फाँस जीव अरुझाया । सो समेटि के बीजक बनाया ॥१३॥
जाते सूझि परै यम फन्दा । परख पाय जीव होय आनंदा ॥१४॥

शब्दार्थ — यम=मन, वासना, मनवशी नर-नारी ।

भावार्थ — संसार के असंख्य जीव सब अज्ञान एवं भ्रम के बन्धनों में फँसे हैं; सद्गुरु ने उन सारे अज्ञान तथा भ्रमों को चुन-चुन कर इकट्ठा किया तथा विवेक द्वारा उनका निराकरण करते हुए और यथार्थ स्वस्वरूप चेतन का बोध देते हुए उन्होंने बीजक ग्रन्थ की रचना की ॥ १३ ॥ जिससे अपने मनवासनाओं के तथा भूले हुए नर-नारियों के जाल समझ में आयें; और इस प्रकार सारासार की परख पाकर जीव को वास्तविक शान्ति मिले ॥ १४ ॥

भयवशि जीव न गहै प्रभु वचना । फाँसेफाँस विविधि यम रचना॥१५।
तासु हेतु प्रभु दीनदयाला । बाना भेष की राह सम्हाला ॥१६॥

शब्दार्थ — फाँसेफाँस=बंधन ही बंधन । बाना भेष=वेष; साधु का वेष ।

भावार्थ — संसार के लोग अपने गुरुओं तथा देवी-देवताओं के भयवश सद्गुरु के सत्य निर्णय को बहुतायत नहीं ग्रहण कर पाते; क्योंकि उन्हें मनकी कल्पना ने अनेक बन्धनों में बाँध रखा है ॥ १५ ॥ इसलिये दीनों पर दया करने वाले सद्गुरु कबीर साधुवेष का पथ लिये ॥ १६ ॥

विशेष — सत्यसिद्धान्त के प्रचार के लिये भी किसी शुद्ध निर्धारित वेष की आवश्यकता होती है । इसलिये सद्गुरु कबीर ने भी अपने विचारों के प्रचार के लिये साधुवेष की आवश्यकता का अनुभव किया ।

राजतिलक ब्रह्मा को लीन्हा । दया उरमाल विष्णु की चीन्हा ॥१७॥
यति के लँगोट शंभु के मारी । अजादि बाना कफन गरे डारी ॥१८॥

शब्दार्थ — चीन्हा=चिन्ह । यति=त्यागी । मारी=काम को मार देना; कामदमन । अजादि=आज़ाद, स्वतन्त्र । कफन=कफनी; अलफी ।

भावार्थ — सद्गुरु कबीर ने मस्तक में श्वेत खड़ा तिलक लगा कर ब्रह्माका राजतिलक ग्रहण किया, अर्थात् ब्रह्मा के वेष का श्रेष्ठ अंश लिया। और हृदय एवं गले में माला धारण कर विष्णु का दयाचिन्ह लिया ॥ १७ ॥ कामदमन एवं त्याग का वेष लंगोट एवं कौपीन है वह शिव का चिन्ह लिया और साधु का स्वतंत्र वेष कफनी गले में डालकर मनुष्यों को बोध देने लगे ॥ १८ ॥

साहनसाही टोपी दीन्हा। सत्त रहनी सत्त भेप तब कीन्हा ॥१९॥
नष्ट अमंगल भेप दुराई। दुर्मति सबकी दीन्ह लखाई ॥२०॥

शब्दार्थ — साहनसाही टोपी = शाहंशाही टोपी, राजाधिकार का मुकुट; तात्पर्य में धर्माचार्यत्व की टोपी। दुराई = दूर रखा।

भावार्थ — धर्माचार्यत्व सूचक टोपी लगाये, इसप्रकार सात्विक आचरण के अनुसार सात्विक वेष बनाया ॥ १९ ॥ बुद्धिनाशक रजोगुणी ठाट तथा हाड़-चर्म आदि युत अमंगल वेष को दूर ही रखा; अर्थात उन्हें अपने वेष में नहीं आने दिया। और सबके गलत विचारों को परखा कर परदाफाश कर दिया ॥ २० ॥

विशेष — कबीर साहेब स्वतः सत्य के द्रष्टा थे; इसलिये वे स्वयं अपना साधु वेष बना लिये। श्री विशाल साहेब ने ठीक ही कहा है:—

बोध मिले जेहि और से, तेहि को और से भेष।
स्वयं बोध को प्राप्त जो, सो तो स्वयं सुवेष ॥

(सत्यनिष्ठा, साखी १०)

तब यम अपना दाव पसारा। लहै न एकौ मूढ़ पचिहारा ॥२१॥
दयासागर अस युक्ति बनाई। बहु जीवन की फाँस छुड़ाई ॥२२॥

शब्दार्थ — यम = मन; वासना; वासनावशी नर-नारी; मतवादी। लहै = लगना; प्राप्त होना।

भावार्थ — तदनन्तर मनके भुलावे में पड़े हुए लोग चाल चलकर उन्हें नीचा दिखाना चाहे। वे भोले विरोध करके हार गये; परन्तु उनका एक भी उपाय न चला (सत्य को कोई रोक नहीं सकता) ॥ २१ ॥ फिर कृपासमुद्र सद्गुरु इस प्रकार ज्ञानोपदेश किये जिससे बहुत जीवों के भ्रम मिटकर उन्हें यथार्थ बोध हो गया ॥ २२ ॥

पुनि यम आपन फंद पसारा। नगर हरिभोंग दुंद प्रचारा ॥२३॥
साहेब ओट निज नाम धराई। बहुमति दुविधा जीव दृढ़ाई ॥२४॥

शब्दार्थ — दुंद = द्वन्द्व। ओट = आड़ा; आधार।

भावार्थ — लोगों की मनोवासनाओं ने अपना जाल पुनः फैलाया; और संसार नगर में अनेक झगड़ों का प्रचार किया ।। २३ ।। भूले लोग सद्गुरु कबीर के नाम के आड़ में अपना नाम कबीरपंथी रखकर मनुष्यों को अनेक विचारों वाले संदेहात्मक उपदेश दृढ़ करने लगे ।। २४ ।।

विशेष — जब सद्गुरु कबीर के विचार सर्वत्र बढ़ने लगे, तब उनके महत्त्व से प्रभावित होकर हर योग्यता के लोग कबीरपंथ में आ गये और वे अपने सड़े-गले संस्कारों को कबीरपंथी जामा पहनाकर पंथ को बदनाम करने लगे। फिर तो कबीरपंथ में अनेकों पंथ हो गये।

नाना बानी अनमिल सबहीं। एक न एक मिले नहिं कबहीं ।।२५।
कहुँ वोहं कहुँ सोहं जापा। कहुँ अकार कहुँ निःअक्षर थापा ।।२६।।

शब्दार्थ — अकार = अ। निःअक्षर = शब्दातीत; ईश्वर। थापा = स्थापित किया; स्थिर किया।

भावार्थ — उन कल्पित मतों की नाना वाणियाँ परस्पर अनमिल हैं, एक दूसरे से नहीं मिलती ।। २५ ।। कोई 'वोऽहं' तथा 'सोऽहं' जप कर रहा है तो कोई केवल 'अ अ अ.........' पुकार रहा है, और कोई निःक्षर ईश्वर निश्चय कर रखा है ।।२६।।

कहुँ ररा कहुँ नाम दृढ़ाई। कहुँ कहुँ आतमज्ञान बताई ।।२७।।
स्वासा उलटि काहु भटकाना। सतगुरु शब्द सोई गुरुध्याना ।।२८।।

शब्दार्थ — आतमज्ञान = जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्मज्ञान।

भावार्थ — कोई 'ररा' या 'राम-राम' जप रहा है तो कोई 'सत्यनाम' जपने से मुक्ति निश्चय कर रखा है। कहीं-कहीं जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्मज्ञान व आत्मज्ञान को ही कबीर साहेब का मुख्य सिद्धान्त बतला रहे हैं ।। २७ ।। कोई तो प्राणायाम क्रिया करके श्वासा को उल्टा चढ़ाकर शून्य समाधि में लीन होकर भ्रम रहा है और कोई शब्द-स्वरूप सद्गुरु को बतलाकर उसी के ध्यान में मग्न है ।। २८ ।।

प्रथम उतपति जेहि वैदक केरा। सोइ सोइ जाल रचा बहुतेरा ।।२९।।
विविधिपंथ साहेब के नामा। मायाजाल है यम को कामा ।।३०।।

शब्दार्थ — वैदक = धर्मपोथी। यम = वासना।

भावार्थ — जैसे पहले धर्मपोथियों के आधार में अनेक भ्रमों की उत्पत्ति होकर वे संसार में चल रहे थे; वही-वही जाल अनेक प्रकार से कबीरपंथ के नाम से भी रचे गये ।। २९ ।। इस प्रकार साहेब के नाम से जोड़कर लोगों ने नाना पंथ चलाया। वासना का काम ही है मायाजाल फैलाना ।। ३० ।।

कहँ मूल बीज दरसावै । विषय विकार मों गोता खावै ॥३१॥
कपट भेष माया सो होई । पारख होय तब जाने सोई ॥३२॥

शब्दार्थ — बीज = वीर्य; शुक्र; रेत ।

भावार्थ — कहीं तो वीर्य को ही मूल तत्त्व बतलाकर विषयविकार में डुबकी लगा रहे हैं ॥ ३१ ॥ कल्याण का वेष बनाकर भीतर भौतिक सुख की चाह होना कपट वेष रखना है, यही माया है। मनुष्य को जब पारख प्राप्त होता है तब यह जानने में आता है ॥ ३२ ॥

साखी— कपट भेष परपंच रची, भोरे सकल जहान ।
बिना प्रकाश प्रभु परखके, केहि विधि होय पहिचान ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ — भोरे = भुलाये । जहान = जगत ।

भावार्थ — नाना लोग गुरु का कपटवेष बनाकर और पाखण्ड बढ़ाकर संसार के सारे लोगों को भुला रखे हैं। बिना पारखी सद्गुरु के पारख प्रकाश पाये उसकी परख किस प्रकार हो सकती है ? ॥ ४५ ॥

३२–यथार्थ ज्ञान से कल्याण तथा उपदेश देने की रीति

चौपाई—३०

जहाँ जेहि निष्ठा बीजक केरा । अपनी पराई करै निबेरा ॥ १ ॥
परख प्रकाश लहत भ्रम भाजा । निश्चय होय जीव को काजा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — अपनी = अपना चेतनस्वरूप । पराई = जड़भास । निबेरा = निर्णय; सुलझाव ।

भावार्थ — कबीरपंथ में जहाँ पर जिस व्यक्ति में सद्गुरु कबीर रचित सद्ग्रन्थ बीजक में श्रद्धा है और पारखी सद्गुरु द्वारा उसे पढ़ता है तो वह व्यक्ति अपने चेतन पारखस्वरूप को समस्त जड़भासों से निर्णय करके अलग कर लेता है ॥ १ ॥ छान-बीन की निर्णयदृष्टि रूप पारख का प्रकाश पाते ही उसके सारे भ्रम दूर हो जाते हैं; और तब उस व्यक्ति का कल्याण निश्चित हो जाता है ॥ २ ॥

नहिं अनुमान न मुये मुक्ता । परख विलास सदा सुख भुक्ता ॥ ३ ॥
रहनी गहनी बहु विधि फरियाई । मायाजाल नहीं भरमाई ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अनुमान = अटकल, अन्दाज । रहनी = रहनि; रहने की क्रिया या ढंग, रहना, चाल, ढाल, आचरण, लगन, प्रेम । गहनी = पकड़, निश्चय । फरियाई = फरियाना, निर्णय करना, साफ होना ।

भावार्थ — उनका अटकलऊ ज्ञान नहीं रहता; अर्थात वे अपने चेतन स्वरूप से पृथक किसी कल्पित ईश्वर, ब्रह्म, सत्पुरुष आदि में मिलकर मोक्ष नहीं मानते और न वे यही मानते हैं कि "जीवन पर्यन्त चाहे जैसे रहे या अमुक क्रिया कलाप करलेने मात्र से मरने के बाद मुक्ति हो जायगी।" वे तो परखविलासी होते हैं; अर्थात् सदैव प्राणी, पदार्थों, मन, वासनाओं को परख-परख कर और उन्हें छोड़कर, यानी सबसे अनासक्त रहकर और स्वस्वरूप चेतन में स्थित होकर सदैव जीवन्मुक्ति सुख भोगते हैं ॥ ३ ॥ उनके जीवन बिताने के निर्मल ढंग तथा सत्य के लिये दृढ़ निश्चय सब प्रकार से स्पष्ट, स्वच्छ एवं निर्भ्रान्ति होते हैं। वे माया के जाल में नहीं भटकते ॥४॥

विशेष — जिनको सारी भ्रान्तियाँ कटकर अपने चेतन पारखस्वरूप का यथार्थ बोध हो गया है; उनका लक्ष्य बाहर कहीं नहीं होता। उनका अपना स्वरूप ही अपना लक्ष्य है। वे मरने के बाद मुक्ति पाने की आशा नहीं रखते। वे इसी जीवन में कृतार्थ होते हैं। उनकी सभी कामनायें पूर्ण होती हैं। वे सदैव स्वरूपानिमग्न होते हैं। उनके जीवनयापन के प्रकार निर्मल, अनासक्त, मध्यवर्ती, सर्वत्र सबसे निष्काम होते हैं। वे कहीं कोई कामना करके अपने आपको परवशता के बन्धनों में नहीं बाँधते और न दूसरे व्यक्ति को विवश करते हैं। वे स्वयं स्वतंत्र तथा दूसरे को स्वतंत्र रखते हैं। परन्तु वे स्वतंत्रता के नाम पर व्यवहार नहीं बिगाड़ते। स्वतंत्रता और आजादी शब्द चाहे जितने मोहक प्रतीत हों, परन्तु बिना श्रद्धा, निष्ठा, आज्ञाकारिता, अनुशासन, समता, व्यवहारप्रवृति के न जीवन चल सकता है और न तो मोक्षका साधन हो बन सकता है। इसलिये वे विवेकवान पुरुष व्यवहार की व्यवस्था ठीक रखते हुए परमार्थ की कमाई करते हैं। उनके जीवन आचरण बड़े निर्मल तथा अनासक्त होते हैं। उनका मोक्षमार्ग का दृढ़निश्चय होता है। लाखों विघ्न पड़ने पर भी वे पीछे नहीं हटते।

सब परपंच छूटै भ्रमजाला। सदा सुखी सो शरण दयाला ॥ ५ ॥
फंद फरफंद न एकौ राखै। निर्णय वचन सत्य सोइ भाखै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — परपंच = प्रपंच, विस्तार, संसार, भवजाल। फंद = फंदा, बन्धन, मायाजाल। फरफंद = छल कपट, फरेब; दाँव-पेच, नखरा।

भावार्थ — जो व्यक्ति दयालु पारखी सद्गुरु की शरण में सर्वतोभावेन हो जाता है उसके सभी प्रपंच एवं भ्रमजाल छूट जाते हैं और वह सदैव के लिये सच्चा सुखी हो जाता है ॥ ५ ॥ फिर वह अपने पराये का बन्धनजाल और छलकपट एक भी नहीं रखता, वह जो निर्णययुत एवं सत्यवचन हो वही बोलता है ॥ ६ ॥

वचन तासु जो सुनै चित लाई। ठहरिके समुझै छोड़ि कदराई ॥ ७ ॥
सदा सुखारी परख के पाये। फंदा यम के तुरत बहाये ॥ ८ ॥

शब्दार्थ -- कदराई = कायरता, दुर्बलता। यम = मन, वासना।

भावार्थ — उपर्युक्त बोध-आचरण एवं रहनी-गहनी के पक्के पारखी सद्गुरु के निर्णय वचनों को जो व्यक्ति प्रेम पूर्वक सुनता है और कायरता छोड़कर निर्भयता तथा स्थिरता पूर्वक उन्हें समझने की चेष्टा करता है ॥ ७ ॥ वह सारासार की परख करके और मन, वासनाओं तथा भ्रमों के बन्धन तुरन्त दूर डालकर, सदैव के लिये सुखी हो जाता है ॥ ८ ॥

साखी— जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहाँ संशय तहाँ सोग।
सज्जन सोई सराहिये, जो काटे यम का योग ॥४६॥

शब्दार्थ — आपा = अहंकार, गर्व। आपा के अर्थ अपनास्वरूप, सत्ता, जात; अपनी सत्ता का ज्ञान, सुध-बुध भी होते हैं; परन्तु यहाँ का अभिप्राय अहंकार तथा गर्व ही है। आपदा = विपत्। संशय = अ-निश्चय, हिचक, सन्देह। सोग = शोक, मनःपीड़ा। योग = सम्बन्ध।

भावार्थ — जहाँ अहंकार है वहाँ विपत् है और जहाँ सन्देह है वहाँ मनःपीड़ा है। वही सज्जन प्रशंसनीय है जो मन-वासनाओं का सम्बन्ध काटता रहता है ॥४६॥

विशेष — 'मैं अजर, अमर, शुद्ध चेतन पारख स्वरूप हूँ' यह भाव अहंकार नहीं है। क्योंकि यह वास्तविकता है। जो नित्य के लिये अपना साथी न हो उसे अपना मानकर उसमें मैं-मेरी करना जैसे मैं रूपवान, जवान, धनवान, विद्वान, वैराग्यवान, सद्गुणसम्पन्न आदि हूँ मान लेना अहंकार है। क्योंकि ये सब शरीर के साथ समाप्त हो जायेंगे। जहाँ अहंकार होता है वहीं विपत्ति एवं क्लेश होते हैं।

जो संदेहशील है, जिसके मनमें किसी बात के लिये स्थिरता नहीं है, वही मन की वेदना में सदैव पीड़ित रहता है। इसलिये बाहरी भौतिक उन्नति से भी महान उन्नति है आध्यात्मिक। यदि जीवन में सच्चा सुख चाहते हो तो मनवासनाओं का योग अर्थात सम्बन्ध सदैव काटते रहो। जो विवेकवान नर-नारी अपने लक्ष्य को वासनाओं से पृथक रखता है वह अहंकार तथा संशय से मुक्त हो जाता है।

उतते अंधा आवही, इतते अंधा जाय।
अंधे को अंधा मिला, कौन बतावै राह ॥४७॥

शब्दार्थ — अंधा = विवेकहीन।

भावार्थ — उधर से एक अंधा आ रहा था और इधर से दूसरा अंधा जा रहा था। इस प्रकार एक अंधे को दूसरा अंधा मिल गया; फिर कौन मार्ग बताये ? ॥४७॥

विशेष — विवेकहीन गुरु तथा विवेकहीन शिष्य दोनों में कौन किसका मार्ग-दर्शक बने ?

बंधे को बंधा मिला, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निर्बंध की, जो पल में लेहि छुड़ाय ॥४८॥

शब्दार्थ — बन्धा = भवबन्धन में बँधा। निर्बन्ध = जीवन्मुक्त।

भावार्थ — अबोध तथा आसक्ति में बँधे हुए शिष्य को अबोध एवं आसक्ति में बंधे हुए गुरु मिल गये; बताइये वे दोनों किस उपाय से छूटेंगे ? अतएव उस जीवन्मुक्त पुरुष की सेवा करो जो तुम्हें बन्धनों से पल मात्र में छुड़ा ले ।।४८।।

विशेष — जो ज्ञान से आलोकित तथा विषयासक्ति से सर्वथा मुक्त है ऐसे दिव्य पुरुष का जब सत्पात्र मुमुक्षु के प्रति ज्ञान-वैराग्यपरक उपदेश होता है तब उस उपदेश में एकाग्रमन वाले सत्शिष्य के सब बन्धन तुरन्त कट जाते हैं; परन्तु वह वहाँ से उठकर जब अलग जाता है तब अभ्यास न होने से उस उपदेश को सुरक्षित नहीं रख पाता। इसलिये पुनः उसके मनमें बन्धन आने लगते हैं। परन्तु यदि वह उक्त गुरुउपदेश श्रवण काल की धारणा सम्हाले रह सके तो मुक्त ही है।

वस्तुतः यथार्थ सद्गुरु के उपदेश से भव-बन्धनों से मुक्त होने का रास्ता शीघ्र दिख जाता है। यही गुरु का शिष्य को पल में छुड़ा लेना है। परन्तु उस रास्ता पर चलने के लिये जीवनपर्यन्त सावधानी बरतनी पड़ती है; और बहुत काल के ज्ञान वैराग्य के अभ्यास से स्थायी जीवन्मुक्ति मिलती है।

ज्ञान-वैराग्य के कितने समय के अभ्यास से जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होगी ? इसका कोई मापदण्ड नहीं है। अभ्यास में जितना जोर होगा, उतना काम शीघ्र होगा।

साधू सोई सराहिये, जो चौड़े कहै बजाय।
की छूटै की फूटै, बिन कहे भर्म न जाय ।४९॥

शब्दार्थ — चौड़े = चौड़ा, मैदान। बजाय = जोर से, स्पष्ट। छूटै = भवबन्धन से निवृत्त होना। फूटै = फूट जाना, स्वपक्ष से अलग होकर विपक्ष में मिल जाना, असन्तुष्ट हो जाना।

भावार्थ — वही उपदेष्टा साधु प्रशंसनीय है जो खुले मैदान स्पष्ट करके सत्य-असत्य का निर्णय कर देता है। ऐसा करने से यदि श्रोता सत्पात्र रहा तो उसका बन्धन छूट जाता है और यदि असत्पात्र रहा तो असंतुष्ट होकर चला जायगा और अपने सिर की उपाधि मिट जायगी। बिना सारासार का स्पष्ट निर्णय किये सब भ्रम नहीं मिट सकते ॥ ४९ ॥

विशेष — सत्य-असत्य का बिना स्पष्ट निर्णय किये जिज्ञासु को यथार्थ बोध नहीं होता। यह ठीक है कि ऐसा करने से कुछ लोगों को असन्तोष होता है; परन्तु फिर इसके लिये क्या किया जाय ? यथार्थ निर्णय न किया जाय तो भी सारे संसार को प्रसन्न नहीं किया जा सकता। संसार का स्वभाव ही है विचारों की भिन्नता रखना।

उपदेष्टा साधु-भक्त सावधान

उपर्युक्त साखी के भाव से विभोर कितने ही उपदेष्टा किसी के मनकी कोई भी परवाह न करके सबके दिलको दुखने वाली बातें कहते रहते हैं। यह एक महाभ्रम है कि अपने निश्चित सिद्धान्त की सारी बातें ज्यों-की-त्यों बिना उसके अधिकारी के सर्वत्र कहते रहना अपना सच्चा न्यायवादी व परमपारखी होना है।

ज्ञानी उपदेष्टा संत हो या भक्त उसे चाहिये कि वह कट्टरपंथी न हो। वह अपनी ही नाक की सिधाई में दुनियाभर को ले जाने की चेष्टा न करे; क्योंकि ऐसा होना असम्भव है। उपदेष्टा को चाहिये कि वह अपने निश्चित दार्शनिक सिद्धान्त की बातें केवल अपने मुख्य श्रद्धालु जिज्ञासुओं में कहे; और सामाजिक स्तर पर जहाँ बातें करनी हों वहाँ ऐसी बातें करे जो सार्वजनिक हों। वह अपने दार्शनिक सिद्धान्त की बातें भी यदि वहाँ कहे तो कुछ ऐसे ढंग से हो जो विमत के लोगों को प्रायः अप्रिय न लगे।

'चौड़े कहै बजाय' का अर्थ इतना ही होना चाहिये कि जिज्ञासुओं के सामने स्पष्ट निर्णय करना चाहिये। 'की छूटै की फूटै' का भी अर्थ यही होना चाहिये कि जिज्ञासु से, जो बारम्बार यथार्थ ज्ञान चाहता है साफ-साफ निर्णय कर दो। इससे या तो उसे बोध हो जायगा; अन्यथा वह जो पीछे लगा है, पिंड छोड़ देगा।

कोई भी उपदेष्टा अपने शुष्क दार्शनिक सिद्धान्त की बातें यदि समाज में ज्यों-की-त्यों कह दे तो इससे किसी को न तो बोध हो जायगा और न उसके सब अनुयायी हो जायेंगे; प्रत्युत समाज में लोगों को असन्तोष बढ़ सकता है। दार्शनिक सिद्धान्त का बोध तो व्यक्तिगत लगातार सत्संग से संभव है। आम समाज में तो मानवीय गुणों का वर्णन होना चाहिये जिससे सबका कुछ-न-कुछ हित हो। ग्रन्थकर्ता ने अगले गुरुबोध प्रकरण के प्रश्नोत्तर २१ चौपाई १७ में उपदेश देने की रीति बताई है; जो देखने योग्य है।

बीजक, साखी १६६

हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारी हाट।
जब आवै जन जौहरी, तब हीरों की साट ॥५०॥

शब्दार्थ — हरि = ज्ञान। जौहरी = पारखी; गुण-दोष परखने वाला। हाट = बाजार। साट = परख।

भावार्थ — ज्ञान हीरा है विवेकी जन उसके पारखी हैं। सभी मतवादी अपना ज्ञान हीरा संसार एवं सत्संग बाजार में फैला रखे हैं। परन्तु जब कोई सच्चा पारखी आयेगा। तब इनके ज्ञान-हीरों की परख करेगा॥ ५०॥

विशेष — सभी मतवादी अपने ज्ञान को सर्वोच्च मान रखे हैं, परन्तु जो पारख पर खरा उतरे वही सच्चा हो सकता है।

३३—छह दर्शनों के नाम, जप तथा सिद्धांतों का वर्णन

अथ षट दर्शन वर्णन

साखी—योगी जंगम सेवड़ा, संन्यासी दर्वेश ।
छठवा कहिये ब्राह्मण, छौ घर छौ उपदेश ॥ १॥

शब्दार्थ — जंगम = लिंगायत सम्प्रदाय के गुरुओं की उपाधि । शैव सम्प्रदाय को लिंगायत कहते हैं जो गले में शिवलिंगी बाँधते हैं । सेवड़ा = जैनी सम्प्रदाय । दर्वेश = फकीर ।

भावार्थ — योगी, जंगम, जैनी, संन्यासी, फकीर और ब्राह्मण ये मुख्य छह दर्शन हैं और इनके छह उपदेश हैं ॥ १ ॥

विशेष — जगत में प्रचलित दर्शन वह शास्त्र है जिसमें जीव, ईश्वर, प्रकृति, पुरुष, बन्ध-मोक्ष, मानव जीवन के उद्देश्य आदि का वर्णन है । परन्तु यहाँ दर्शन का अर्थ सम्प्रदाय है ।

षट दर्शनों के जाप

चौपाई—१

ॐकार ब्राह्मण उपासी । सोहं ब्रह्म इष्ट संन्यासी ॥ १ ॥
हू अल्लाहू सुफी अधारा । महीनाद योगी विस्तारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — सोहं = सोऽहं = वह मैं हूँ । हू अल्लाहू = अल्लाह है । सुफी = सूफी, सूफी सम्प्रदाय के संत । महीनाद = मही + नाद, महि = पृथ्वी, नाद = ध्वनि; पृथ्वी रूप शरीर एवं नाभि से उठता हुआ नाद । विस्तार = फैलाव; प्रचार ।

भावार्थ — ब्राह्मण लोग 'ॐ' का जप करते हैं । संन्यासियों को 'सोऽहं ब्रह्म' इष्ट है, अतएव वे उसी का जप करते हैं ॥ १ ॥ सूफियों का अवलम्ब 'हू अल्लाहू' है, अतः वे उसी का जप करते हैं । योगियों के जप का प्रचार महीनाद है अर्थात वे नाभि से उठते हुए नाद में 'सोऽहं' का जप करते हैं ॥ २ ॥

तत्त्वनाम सेवड़ा परवाना । नाम निरंजन जंगम ध्याना ॥ ३ ॥
षट दर्शन षट अंग उपासी । राम नाम भक्ता अविनाशी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — सेवड़ा = जैनी । अंग = साधन ।

भावार्थ — जैनी लोग 'तत्त्वनाम अरिहन' या 'अरिहन्तारम्' जपते हैं; और जंगम लोग निरंजन या 'निरंजनाय' जपते तथा उसी का ध्यान करते हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकार छह सम्प्रदाय के लोग छह साधनों से उपासना करते हैं; और भक्त लोग कोई अविनाशी राम (ईश्वर) मान कर उसकी उपासना एवं जप करते हैं ॥ ४ ॥

षट दर्शनों के सिद्धान्त

चौपाई—२

अदेवमूल श्रवण को कहिये। अहं ब्रह्म संन्यासी लहिये ॥ १ ॥
वायु खेल योगी सो धरणी। शशी अमीरस जाने जैनी ॥ २ ॥

शब्दार्थ — अदेवमूल = अद्वैतब्रह्म। यद्यपि अर्थ है जो देवता न हो, दैत्य, असुर; तद्यपि यहाँ का अर्थ 'अद्वैतब्रह्म' ही प्रतीत होता है। वायु = वायु के समान ईश्वर की धारणा। धरणी = पृथ्वी; स्थूल शरीर, पिण्ड का वायु ब्रह्माण्ड में ले जाकर ज्योति में मग्नता। शशी अमीरस = बहुत ऊपर एक चन्द्रशिला जिसमें मुक्त जीव का रहना माना है।

भावार्थ — ब्राह्मणों का सिद्धान्त अद्वैतब्रह्म है। संन्यासियों का सिद्धान्त है 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ॥ १ ॥ मुसलिम फकीरों का सिद्धान्त है वायु के समान ईश्वर में मिल जाना। योगियों का सिद्धान्त है पृथ्वी रूपी पिण्ड का वायु ब्रह्माण्ड में लेजाकर ज्योतिदर्शन में मग्न होना। और जैनियों का सिद्धान्त है जीवमुक्त होकर बहुत ऊपर एक अमर चन्द्र-शिला पर जाकर सदा के लिये निवास करता है ॥ २ ॥

महा अकाश जंगम के होई। षट सिद्धान्त जानहु सोई ॥ ३ ॥
पुरुष राम सब नारि स्वरूपा। यह सिद्धान्त है भक्ति अनूपा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — महा आकाश = महान आकाशवत शिव। अनूप = विलक्षण।

भावार्थ — महान आकाशवत् शिव सर्वत्र व्यापक है यह सिद्धान्त जंगमों का है। इस प्रकार छह दर्शनों के छह सिद्धान्त हुए ॥ ३ ॥ राम एक पुरुष है तथा सब जीव उसकी नारियाँ हैं यह विलक्षणभक्ति, भक्तों का सिद्धान्त है ॥ ४ ॥

३४—छह आश्रमों का वर्णन

षट आश्रम वर्णन

चौपाई—३

गृही वानप्रस्थ संन्यासी। ब्रह्मचर्य षटकर्म विलासी ॥ १ ॥
सिया सुनि षट इष्ट होई। अच्युतगोत्री सतयें सोई ॥ २ ॥

शब्दार्थ — गृही = गृहस्थ आश्रम। वानप्रस्थ = पचास वर्ष की अवस्था हो जाने पर घर छोड़कर ब्रह्मचर्य पूर्वक वन में तप करना। ब्रह्मचर्य = यज्ञोपवीत हो जाने पर ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरुकुल में विद्याध्ययन करना। यह पचीस वर्ष की अवस्था तक अनिवार्य है और कोई-कोई ३६ तथा ४८ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहते थे।

सिया सुनि = मुसलमानों के दो फिरके । इष्ट = उपास्य । अच्युतगोत्री = रामानन्दी साधुओं का समाज या शिष्य परम्परा ।

भावार्थ — गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, ब्रह्मचर्य, सीया, सुन्नी ये छह आश्रम हैं और इनके अलग-अलग उपास्य हैं। सातवाँ आश्रम अच्युतगोत्र रामानन्दी साधु सम्प्रदाय है ॥ १–२ ॥

३५—छानवे पाखण्ड का वर्णन

छानवे पाखण्ड

साखी—दश संन्यासी बारह योगी, चौदह शेख बखान ।
ब्राह्मण अठारह अठारह जंगम, चौबीस सेवड़ा परवान ॥ २ ॥

शब्दार्थ — परवान = प्रमाण ।

भावार्थ — संन्यासियों में दश भेद, योगियों में बारह भेद, मुसलिम फकीरों या मुसलमानों में चौदह भेद, ब्राह्मणों में अठारह भेद और जैनियों में चौबीस तीर्थंकर (गुरु)—ये सब मिलकर छानवे पाखण्ड हैं ॥ २ ॥

विशेष — गिरी, पुरी, भारती, वन, पर्वत, आरण्य, सरस्वती, सागर, आश्रम, तीर्थ—नाम से दश संन्यासी हैं । औघड़, नाथ आदि भेद से बारह योगी हैं । सिया, सुन्नी, शेष, दरवेस आदि भेद से चौदह मुसलमान हैं ।

१. पूज्य, २. द्विज, ३. श्रोत्रिय, ४. पंक्तिपावन, ५. गुरु, ६. आचार्य, ७. उपाध्याय, ८. ऋत्विक, ९. पण्डित, १०. ऋषि, ११. क्षात्र ब्राह्मण, १२. वैश्य ब्राह्मण, १३. शूद्र ब्राह्मण, १४. विडाल व बक ब्राह्मण, १५. म्लेक्ष ब्राह्मण, १६. चाण्डाल ब्राह्मण, १७. राक्षस ब्राह्मण, १८. अधमाधम ब्राह्मण—ये अट्ठारह ब्राह्मण हैं ।

१. शिव, २. पशुपति, ३. मृत्युञ्जय, ४. त्रिनेत्र, ५. कृतिवास, ६. पंचवदन, ७. शितिकण्ठ, ८. खण्डपरसु, ९. प्रथमाधिप, १०. गंगाधर, ११. महेश्वर, १२. रुद्र, १३. विष्णु, १४. पितामह, १५. संसार वैद्य, १६. सर्वज्ञ, १७. परमात्मा, १८. कपाली—ये शिव के नाम हैं जंगम शिव उपासक होते हैं और कहा जाता है कि अट्ठारह भेदों वाले होते हैं ।

१. ऋषभदेव, २. अजितनाथ, ३. संभवनाथ, ४. अभिनन्दननाथ, ५. सुमतिनाथ ६. पद्मप्रभु, ७. सुपार्श्वनाथ, ८. चन्द्रप्रभु, ९. सुविधिनाथ, १०. शीतलनाथ, ११. श्रेयांसनाथ, १२. वासुपूज्य, १३. विमलनाथ, १४. अनन्तनाथ, १५. धर्मनाथ, १६. शांतिनाथ, १७. कुन्थुनाथ, १८. अरनाथ, १९. मल्लिनाथ, २०. मुनिसुव्रतनाथ, २१. नमिनाथ, २२. नेमिनाथ, २३. पार्श्वनाथ, २४. महावीर स्वामी—जैनियों के ये चौबीस तीर्थंकर हैं ।

३६—चार मुक्तियों का वर्णन

चारमुक्ति वर्णन

चौपाई—४

सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायूज। चार प्रकार की मुक्ति मनूज ॥ १ ॥
मुक्ति कहिये छूटे को नामा। तहाँ अनेक पावै विश्रामा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — सायूज = सायुज्य। मनूज = मानते हैं।

भावार्थ — सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य ये चार प्रकार की मुक्तियाँ हिन्दू-परम्परा में मान्य हैं ॥ १ ॥ परन्तु वस्तुतः मुक्ति छूटने का नाम है, उस अवस्था में जीव को सब प्रकार की विश्रान्ति मिल जाती है ॥ २ ॥

विशेष — मुक्ति का अर्थ है छूट जाना। शरीर रहते हुए शरीरादि सारी आसक्तियों से छूट जाना जीवन्मुक्ति है; तथा पूर्णवासना निवृत्ति के कारण शरीर छूटने पर सदा के लिये जन्म-मरण से रहित हो जाना विदेहमुक्ति है। विदेहमुक्ति में जीव किसी में न तो मिल जाता है तथा न किसी लोक-लोकान्तर में जाता है और न वायु में घूमा करता है। उस समय न उसे कोई संकल्प होता है न स्मरण और न सुख-दुख। वह स्थूल, सूक्ष्म, कारणादि समस्त शरीरों से सर्वथा मुक्त असंग, निराधार, शुद्ध स्थिर रहता है। उसे पूर्ण विश्रांति मिल जाती है। यह बात शीघ्र नहीं समझ में आ सकती है। इसके लिये साधना करने की आवश्यकता है। जो जीवन्मुक्त हो जाता है वह विदेहमुक्ति को देखता है।

जो सालोक्यादि चार मुक्तियाँ मानी हैं वह वस्तुतः इस जीवन की अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति के लिये एक कल्पनासृष्टि है। उनके मान्यतानुसार उपर्युक्त चारों मुक्तियों का ग्रन्थकर्ता स्वयं आगे वर्णन करते हैं।

सालोक्य सोई जो स्वर्ग निवासा। देवयोनि मों करत विलासा ॥ ३ ॥
सामीप्य हजूरी दास कहावै। भक्तिवजीरी युग युग पावै ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — विलासा = विलास, क्रीड़ा, उपभोग। हजूरी = हुजूरी; समीपता; हाजिरी; शाहीदरबार; खास नौकर या सेवक; दरबारी। वजीरी = मंत्रीपद।

भावार्थ — कर्मयोग से चलकर लोग स्वर्ग में जाकर देवयोनि को प्राप्त होते हैं और वे वहाँ अप्सरादि दिव्य भोगों का उपभोग करते हैं यही सालोक्य मुक्ति माना है ॥ ३ ॥ भक्तिमार्ग से चलकर लोग भगवान के लोक में जाकर दास के रूप में उनके निकट निवास करते हैं या सदा के लिये भक्ति रूपी मंत्रीपद पा जाते हैं; यह सामीप्य मुक्ति है ॥ ४ ॥

विशेष — कर्ममार्गद्वारा प्राप्त स्वर्ग रूपी सालोक्यमुक्ति तो एकदम घृणित है। अप्सरादि भोग शूकर-कूकर के भोग से क्या अधिक है ? स्वर्गस्थपुरुषों को तो अप्सरायें मिलती हैं और स्वर्गस्थ स्त्रियों को कौन मिलता है ? कि उनका स्वर्ग नहीं होता ? या वे अप्सरायें बन जाती हैं ? यदि ऐसा हो तो यहाँ की वेश्यावृत्ति से उसमें क्या विशेषता है ? सामीप्यमुक्ति भी कल्पना की एक उड़ान है।

भृंगी रंग कीट जो पावै। मुक्ति सारूप्य सोई कहावै ॥ ५ ॥
सायुज्य ज्योति में ज्योति मिलिजाई। मायारूप रहा जहँडाई ॥ ६ ॥
मुक्ति चार सो जोइन जानो। निश्चय यम के फंदा मानो ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — भृंग = भौंरा। जहँडाई = जहँड़ाना; ठगा जाना। जोइन = योनि; जन्म का कारण। यम = मन।

भावार्थ — संसार में कहानी है कि भृंगी कीड़ा दूसरे कीड़ा को पकड़कर तथा उसे अपना शब्द सुनाकर उसे अपने रंग तथा रूप वाला बना लेता है; इसीप्रकार योगमार्गद्वारा लोग भगवान के लोक में जाकर भगवान के रूप-आकार के समान रूप-आकार वाले होकर दिव्य भोग भोगते हैं; यही सारूप्यमुक्ति कहलाती है ॥ ५ ॥ ज्ञानमार्ग से चलकर ज्ञानीलोगों की आत्मज्योति ब्रह्मज्योति में मिल जाती है या भगवान के लोक में एक अखण्डज्योति है जो करोड़ों सूर्यों से अधिक तेजवान है। उसी में ज्ञानी जा मिलता है; यही सायुज्यमुक्ति है। वस्तुतः ये सब दृश्य, जड़, माया रूप हैं, इसी में भूले लोग अपने को ठगा रहे हैं ॥ ६ ॥ उपर्युक्त चारों मुक्तियों का मोह या संस्कार जड़ाध्यास है और जन्मादिक का कारण है। अतएव उन्हें निस्सन्देह मन का कल्पना जाल समझो ॥ ७ ॥

३७—संसार की दशा

सलोने शब्द लिख्यते

अंधा धोबी औघट घाट। नहिं कछु साबुन पानी पाट ॥ १ ॥
लोकवास में धोवावन जाय। निर्मल तबहीं फटे फटाय ॥ २ ॥

शब्दार्थ — अंधा = ज्ञानरहित। धोबी = गुरु। औघटघाट = दुर्गमपथ। साबुन = निर्णय। पानी = वाणी। पाट = आधार, स्थिति। लोकवास = लोक-लोकान्तरों में पहुँचने की वासना। फटे = कामनाओं से जरजरित। फटाय = पुनः अधिक कामनाओं में डाल देना।

भावार्थ — जो गुरु ज्ञानरहित हैं, उनकी साधना एवं ज्ञानमार्ग दुर्गम तथा गलत है। न उनके पास निर्णय की वाणी है और न स्थिर आधार है॥ १ ॥ संसारी लोग लोक-लोकान्तरों की अनेक वासना वाले हैं। वे गुरुलोग उनके अन्तःकरण को धोकर निर्मल करने के लिये उनके निकट पहुँचते और उन्हें धोते हैं। वे पहले से अनेक कामनाओं में पड़कर फटे हुए उनकी धुलाई में अधिक फट जाते हैं; अर्थात् अधिक कामनाबद्ध हो जाते हैं॥ २ ॥

विशेष — वहाँ मनुष्य का कैसे कल्याण हो जहाँ गुरु ज्ञानरहित है। उसके पास न निर्णय वचन है न बोध है, तथा न उसका कोई सुनियोजित वास्तविक मार्ग है। शिष्य भी लोक वासना वाले हों, और अनेक कामना से घिरे हों तथा गुरु महाराज उनको और अधिक अज्ञानकृत कामनाओं में डाल दें।

रोख मजूरी भट्टी की आँच। बिरहा गावै सोई साँच॥ ३॥
धोबिया अपार बसै कौआर। यहि विधि कबीरा भये खुवार॥ ४॥

शब्दार्थ — रोख = कड़ी, अधिक। मजूरी = मजदूरी, दक्षिणा। भट्टी = चूल्हा, पंचाग्नि, जलशयन, खड़ेश्वरी आदि गलत साधना। बिरहा = एक लोकगीत जो अहिर (ग्वाल) तथा धोबी गाते हैं। दोनों की ध्वनि में अन्तर होता है। तात्पर्य में अपने स्वरूप से पृथक किसी कल्पित पदार्थ के प्रति बिरह, लगन, प्रेम। कौआर = कौआर, कौआरोर, कागारोल, हल्ला। कबिरा = जीव। खुवार = ख्वार, परेशान, दुखी।

भावार्थ — वे असद्गुरु लोग अपनी गुरुदक्षिणा तो अधिक ही लेना चाहते हैं, परन्तु शिष्यों को गलत एवं दुःखपूर्ण साधना के ताप में डाल देते हैं। वे अपने से पृथक किसी कल्पित पुरुष की विरह-व्यथा एवं प्रेम के गीत गाते हैं और उसी को सच्चा साधन बतलाते हैं॥ ३ ॥ इन भोलेभाले गुरुओं के पास बसने में मनुष्यों को भ्रामक वाणियों का अपार हो-हल्ला सुनने को मिलता है; और इस प्रकार मनुष्य उनके भ्रम में फंसकर पीड़ित होते हैं॥ ४ ॥

कौवा बाप पूत सो हंस। नाती बकुला बाढ़ो बंस॥ ५॥
कोय कोय करि कौवा मरै। हंसा छीर नीर निरुवारै॥ ६॥

शब्दार्थ — कोय कोय = काँय-काँय; व्यर्थ बकवास।

भावार्थ — क्या पिता कौआ से हंस पुत्र हो सकता है ? अर्थात् क्या बोधरहित गुरु से शिष्य बोधवान हो सकता है ? उसके पुत्र, पौत्र आदि वंश परम्परा सब बगुले सदृश ऊपर वेष से ही गुरु या ज्ञान रूप लगेंगे, और भीतर से मलीन ही रहेंगे॥ ५ ॥ कौआवत अबोधी का लक्षण है केवल बकवास करके मर जाना। हंसवत विवेकी का लक्षण है क्षीर-नीर-निरवारवत जड़-चेतन का निर्णय करना॥ ६ ॥

बकुला तरै लाय बकु ध्यान । औगुण गर्भ करै अभिमान ।। ७ ।।
कहहिं कबीर अंधी है गाय । मुरदा खाल देखी पन्हाय ।। ८ ।।

शब्दार्थ — अंधी गाय = अनिर्णयवती बुद्धि; अंधीबुद्धि । **मुरदा खाल** = मरे हुए बछड़े की खाल में भूसा भर कर गाय के आगे रख देते हैं; गाय उसे जिन्दा बछड़ा समझकर पन्हा जाती है ।

भावार्थ — बकुलावत भीतर काला ऊपर उजला अर्थात कपटी लोग बकध्यान वत लक्ष्य रखकर तरने का स्वांग करते हैं । वे ऊपर से योगी का स्वांग दिखाकर भीतर से भोगी रहते हैं । वे दुर्गुणों से भरे तथा उसी का अहंकार करने वाले होते हैं ।। ७ ।। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वह गाय अन्धी है जो मुरदा बछड़ा की खाल को देखकर पन्हा जाती है । इसी प्रकार वह बुद्धि अन्धी है जो मिथ्या देवी-देवताओं एवं सारहीन बातों की महिमा सुनकर भावविभोर हो जाती है ।। ८ ।।

चंचल राजा दहुँ दिश धाय । परजा को तहँ फिर ले जाय । ९ ।।
जो नहिं परजा पावै दाम । राजहि पकरि करावे काम ।।१०।।

शब्दार्थ — **राजा** = मन । **परजा** = प्रजा; इन्द्रियाँ । **दाम** = विषयभोग ।

भावार्थ — चंचल राजा मन दशों दिशाओं में दौड़ता है, वह इन्द्रियों को उन्हीं विषयों में पुनः-पुनः ले जाता है जहाँ उसकी आसक्ति है ।।९।। आदती इन्द्रियाँ भी यदि अपने विषय न पावें तो मन को पकड़ कर उससे काम करा लेती हैं अर्थात् विषयचिंतन और भोग करा लेती हैं ।। १० ।।

व्याकुल राजा कल नहिं परै । कुहकै लाख एकौ नहिं सरै ।।११।।
कहहि कबीर भोंदू के गाँव । लालबुझक्कर बूझै नाँव ।।१२।।

शब्दार्थ — **कल** = शांति । **कुहकै** = पीड़ित होकर रोना । **सरै** = काम चलना; पूरा पड़ना । **भोंदू** = भोलाभाला । **लालबुझक्कर** = विना मर्म जाने अटकल से अर्थ लगाने वाला, अगम्य बातों को समझने का दावा करने वाला, गँवार ।

भावार्थ — विषय चाहना से व्याकुल मन राजा को शांति नहीं मिलती । वह भोगों के लिये लाखों रुलाई करता है, परन्तु उसका पूरा नहीं पड़ता ।। ११ ।। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि भोलेभालों के गाँव में लालबुझक्कड़ ही वस्तु का नाम बताते हैं । अर्थात जड़इन्द्रियों के बीच में मन ही राजा बना बैठा है । अथवा भोलेभाले लोगों के बीच में वास्तविकता से अनभिज्ञ अटकलबाज लोग ही ज्ञानदाता बने बैठे हैं ।। १२ ।।

विशेष — लालबुझक्कड़ की कथा इस प्रकार है—एक गाँव नदी के तट पर था । उस गाँव के लोग सब बहुत ही भोलेभाले थे । नदी में एक बार बाढ़ आयी, तो एक

जाठ लगा हुआ तेली का कोल्हू बह आया। लोग आश्चर्य में पड़ गये कि यह क्या है। उनके गाँव में एक लालबुझक्कड़ थे। वे आकर और उसे देखकर कहने लगे "लालबुझक्कड़ बूझि गये और न बूझै कोय। मैं जानों यह खुदा की सुरमादानी होय।"

एक बार उस गाँव के लोग हाथी के पैर से दबी हुई जमीन में गड्ढे देखकर अचंभे में पड़ गये कि यह क्या है। लालबुझक्कड़ बुलाये गये। वे देखकर कहे—"लालबुझक्कड़ बूझि गये और न बूझै कोय। पैर में जाता बाँधि कै चूहा का कूदा होय।"

इसी प्रकार वास्तविकता जाने बिना जो अटकल लगाते हैं वे लालबुझक्कड़ हैं।

साखी—कबीर धूरकी यों कहैं, मसहफ की सम्बाद।
मारे तेरे ना मुवा, डोलै खैराबाद ॥३॥

शब्दार्थ — धूर=धुर; पक्का। यों=यों ही; मनमानी; जो मनमें आया वही। मसहफ=वह खुदाई आदेश जो फिरिस्ता जिब्रील द्वारा लाकर हजरत मुहम्मद को बताया गया हो; खुदा का हुक्म। डोलै=भटकता है। खैराबाद=खैर+आबाद; खैर=भलाई; आबाद=बसा हुआ; संपन्न; खुशहाल।

भावार्थ — सद्गुरु कबीर कहते हैं कि लोग अंध विश्वासी बनकर जो कुछ उनके अटकल में आता है, उसी मनमानी को खुदाई हुक्म व पक्का निश्चय करके मान लेते हैं। परन्तु हे मतवादियों! जीव को भटकाकर तुम्हारे मारने से वह मरेगा नहीं; क्योंकि वह अमर है। हाँ, वह अपनी भलाई तथा कल्याण के लिये इधर-उधर भटका करेगा ॥ ३ ॥

विशेष — मुसलमान लोग कहते हैं कि कुरान के सभी वाक्य खुदाई हैं; क्योंकि खुदा अपने मुख्य फिरिश्ता जिब्रील द्वारा कुरान के वाक्यों को हजरत मुहम्मद के पास भेजा है। वस्तुतः अपनी पुस्तक को सर्वमान्य कराने के लिये यह एक छल है। यही छल बहुत-से सम्प्रदाय के लोग करते हैं।

ग्रंथकर्ता कहते हैं कि मुसलमानों के मान्यतानुसार खुदा या फिरिश्ता और मुहम्मद के सम्वाद जैसा पक्का निश्चय सभी मतवादी बताते हैं कि हमारी बात खुदाई या 'मसहफ' है। परन्तु विवेक से देखें तो यह एक भ्रम है।

तात्पर्य यह है कि हर पुस्तक या बात पर विचार करना चाहिये। बिना विचार किये कुछ मत मानो।

सद्गुरवे नमः

पंचग्रंथी

चतुर्थ प्रकरण

गुरुबोध

दया गुरु की ।। अथ लिख्यते ग्रंथ गुरुबोध ।।

१–वंदना

दोहा—नमों नमों गुरुदेव जू, साधुस्वरूपी देव ।
आदि अंत गुण काल के, जाननहारे भेव ।। १ ।।

शब्दार्थ — काल = अज्ञान; कल्पना; मन; वासना; भवबन्धन। आदि = कारण। अंत = निदान। गुण = स्वभाव। भेव = भेद; रहस्य।

भावार्थ — उन गुरुदेवजो को बारम्बार नमस्कार है जो साधुस्वरूप देवता हैं; और अज्ञान एवं भवव्याधि के कारण तथा निदान के स्वभाव एवं प्रभाव के रहस्य जानने वाले हैं ।। १ ।।

विशेष —पिछले प्रकरण में यह देख चुके हैं कि गुरु अनेक प्रकार के होते हैं। इसलिये प्रश्न होता है कि कौन गुरु वंदनीय है ? वास्तविक गुरु वह है जो "साधु-स्वरूपी" हो। अर्थात जो अपने मन और इन्द्रियों को साधना में कस कर उन पर पूर्ण विजयी हो गया हो। गुरु का दूसरा गुण है कि वह "देव" हो। देव या देवता के अर्थ हैं चमकने वाला, देने वाला तथा राग-द्वेष से रहित रहने वाला। जो अपने पवित्र आचरणों एवं स्वरूपज्ञान के कारण चमकता हो अर्थात दिव्य हो; जो भक्तवत्सल हो और करुणा करके सत्पात्र को बोध देता हो; और जो ममता वैर से मुक्त हो वह देवता है।

सद्गुरु का तीसरा गुण यह है कि वह भवबन्धनों के कारण और निदान का पूर्ण रहस्य एवं मर्म जानता हो। भवबन्धन का कारण क्या है तथा उसकी चिकित्सा तथा विनाश कैसे होगा इसका पूरा भेद जानना ही काल के आदि-अंत के गुण को जानना है।

इस प्रकार सच्चा सद्गुरु वह है जो इन्द्रियजीत साधुरूप, दिव्यगुण सम्पन्न, ज्ञानदाता, राग-द्वेष-मुक्त, भवव्याधि का पूर्ण मर्मज्ञ एवं उसका विनाशक है।

सोरठा—मेटेउ काल को जाल, याते गुरु तव नाम यह।
बन्दीछोर दयाल, अशरण शरण उदार अति ॥ १ ॥

शब्दार्थ — काल = अज्ञान। बन्दीछोर = बंधन छुड़ाने वाला। अशरण = आश्रयहीन, असहाय। शरण = आश्रय; घर, रक्षा का स्थान। उदार = दानशील, विशाल, दूसरों में गुण देखने वाला, धीर।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! आपने अज्ञान के बन्धनों को विनष्ट कर दिया है, इसलिये बन्दीछोर, दयालु, अशरणशरण तथा अत्यन्त उदार आपके नाम कहे जाते हैं ॥ १ ॥

विशेष — सच्चे सद्गुरु मन-माया कृत जाल को मिटाने वाले हैं; जीवों को बन्धनों से छुड़ाने वाले हैं; कृपालु हैं; आश्रयहीन जीव को स्वरूपज्ञान का आश्रय देने वाले हैं और अत्यन्त विशाल हृदय सबके गुणों का आदर करने वाले हैं।

मन से माने हुए समस्त स्थूल, सूक्ष्म, खानी-वाणी का मोह ही काल है। इसी के जाल में जीव फँसे हैं। यथार्थ सद्गुरु इस जाल से छुड़ाने वाले हैं। इसी मे उनके सारे सद्गुण चरितार्थ होते हैं।

गुरुशतक सारनाम

२—सद्गुरु के सौ विशेषणों के नामों का वर्णन

चौपाई—१

दीनबन्धु करुणामय सागर। हंस उद्धारण तारण आगर ॥ १ ॥
दीनानाथ शरण सुखदाई। अभय तासु पद गुरु समराई ॥ २ ॥

शब्दार्थ — हंस = जीव; मुमुक्षु। तारण = तारने वाले। आगर = कुशल; बुद्धिमान। पद = दर्जा, भूमिका, स्थिति। समराई = समान; सम + राई, सम = समान, राई = राजा, स्वतंत्र।

भावार्थ — दीनों के बन्धु, करुणापूर्ण, दयासागर, मुमुक्षुओं के उद्धारकर्ता, भवसमुद्र से जीवों को तारने वाले, बुद्धिमान एवं विवेकी ॥ १ ॥ भक्तों के स्वामी, आश्रय देने वाले, बोधरूपी सुख देने वाले, निर्भय स्थिति वाले, अपने समान शिष्य को भी स्वतंत्र बना देने वाले सद्गुरु हैं ॥ २ ॥

बन्दीछोर बिरद अति तासू। हंस रूप परगट जग जासू ॥ ३ ॥
अधम उधारण तारण स्वामी। परवरदिगार मालिक अनुगामी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — बन्दीछोर = बन्धन छुड़ाने वाला। बिरद = नाम; बड़ाई, यश।

तासू = तासु, उनका । परवरदिगार = पालन-पोषण करने वाले, पालक । अनुगामी = पीछे चलने वाला, शिष्य, साथी ।

भावार्थ -- जो बन्धन छुड़ाने वाले सद्गुरु हैं उनका यश अत्यन्त है, वे नीर-क्षीर के विवेकी जगत में प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥ वे नीचों को ऊपर उठाने वाले, भवडूबते हुए को बचाने वाले स्वामी हैं, आश्रितों के पालक तथा अनुगामियों के मालिक हैं ॥४॥

काल जालके मेटनहारे । बिरद लाजराखन पति प्यारे ॥ ५ ॥
धीरज दया तत्त्व संयुक्ता । रामभूमिका बासक युक्ता ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — काल = अज्ञान । बिरद = यश । लाजराखन = लज्जा रखना; निभाना । रामभूमिका = चेतनस्वरूप की स्थिति । युक्ता = युक्त, उचित; एकाग्रमन ।

भावार्थ — सद्गुरु अज्ञान के बंधन को मिटाने वाले, पवित्र कीर्ति को अपने पवित्रकर्मों द्वारा निभाने वाले, प्रिय स्वामी ॥ ५ । धैर्य, दया, विचार, सत्य, शील, क्षमा, विवेक, वैराग्य आदि पक्के तत्त्वों से सम्पन्न स्वस्वरूप चेतनराम में नित्य स्थित तथा एकाग्रमन वाले हैं ॥ ६ ॥

चिन्तारहित अचिंत गुसाँई । परम रूप परकाशक साँई ॥ ७ ॥
अखिल ब्रह्मांड के जाननहारे । कर्तानाम प्रगट बिस्तारे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — गुसाँई = गोस्वामी, गो + स्वामी, गो = इन्द्रिय, स्वामी = पति, इन्द्रियजीत । साँई = स्वामी । कर्ता = बोधकर्ता, कल्याणकर्ता ।

भावार्थ — सद्गुरुदेव चिन्तारहित एवं निश्चिन्त, इन्द्रियजीत, श्रेष्ठ स्वस्वरूप-ज्ञान के प्रकाशक, स्वामी ॥ ७ ॥ सम्पूर्ण विश्व की वास्तविकता को जानने वाले, बोध-कर्ता और कल्याण का विस्तार करने वाले प्रसिद्ध हैं ॥ ८ ॥

निष्कामी माया परचंडा । ताको नाशक पूरण ब्रह्मंडा ॥ ९ ॥
मंगलरूप गोसाँई आपू । जगत विदित पूरण परतापू ॥१०॥

शब्दार्थ — परचंडा = प्रचण्ड, प्रबल । परतापू = प्रताप, तेज, यश ।

भावार्थ — सद्गुरु कामना-रहित, सम्पूर्ण विश्व के प्रबल माया मोह के नाशक॥९॥ कल्याणरूप, अपने आप पर विजयी हैं । आपका पूर्ण तेज संसार में प्रकाशित है ॥१०॥

साहेब निर्भय पद दातारा । कर्ता पुरुष सबनके पारा ॥११॥
महा मोह दल नाशक स्वामी । हंसन नाह अपार अगामी ॥१२॥

शब्दार्थ — साहेब = स्वामी । पुरुष = चेतन । नाह = अधीश्वर, पति । अगामी = अगम, अज्ञात ।

भावार्थ — सद्गुरु साहेब निर्भयपद देने वाले, बोधकर्ता चेतन, सबसे अनासक्त ॥ ११ ॥ मोह के महान दल के नाशक, मुमुक्षुओं के अधीश्वर तथा अपार और अगम भ्रांतियों के अंत करने वाले हैं ॥ १२ ॥

आनंद सिंधु अहंतातीता । रामरूपमय परम पुनीता ॥१३॥
सत्य यथारथ अतिप्रिय साधू । मन माया को मेटेउ व्याधू ॥१४॥

शब्दार्थ — आनन्द = जीवन्मुक्ति सुख । व्याधू = व्याध, रोग ।

भावार्थ — सद्गुरु शांति समुद्र, अहंकार से मुक्त, चेतनराम में नित्य रमने वाले, बाहर-भीतर अत्यन्त पवित्र ॥ १३ ॥ सत्य स्वरूप के यथार्थ बोधक, सन्तों को अत्यन्त प्रिय; तथा मन-माया के महारोग को नाश करने वाले हैं ॥ १४ ॥

पुंजनिये अनुमान विनाशिक । सत सुकृत प्रकाश प्रकाशिक ॥१५॥
नाम मुनींद्र सबन सुखदाई । बारम्बार कहौं गोहराई ॥१६॥

शब्दार्थ — पुंजनिये = पुंज, समूह । अनुमान = भ्रमकृत मान्यता । सुकृत = पुण्य, सत्कर्म । प्रकाश = ज्ञान । मुनीन्द्र = मुनियों में श्रेष्ठ इन्द्र ।

भावार्थ — भ्रममान्यताओं के समूह के विनाशक, सत्य, सत्कर्म और ज्ञान के प्रकाशक ॥ १५ ॥ मुनियों में श्रेष्ठ सबको शांति देने वाले आदि नामों से भक्तगण बारम्बार पुकारते एवं वंदना करते हैं ॥ १६ ॥

सत्य सिंधु प्रभु दीनदयाला । नाशक अनुमय सहज कृपाला ॥१७॥
आपु जीव निष्कर्म निधाना । शब्दी अजर अकाल सम ज्ञाना ॥१८॥

शब्दार्थ — प्रभु = शक्तिशाली; योग्य । अनुमय = अनुमान किया हुआ, भ्रम मान्यता । निधाना = आधार; आश्रय । शब्दी = शब्दों का कर्ता तथा द्रष्टा ।

भावार्थ — सद्गुरु सत्यज्ञान के समुद्र, परमार्थ पथ में शक्तिशाली, दीनों पर दया करने वाले, भ्रांतिपूर्ण मान्यताओं के नाशक; सरलहृदय; कृपालु ॥ १७ ॥ स्वयं सभी जीवों से कुछ इच्छा न रखने वाले; मुमुक्षुओं के आश्रय; वाणियों के पारखी; अक्षीण; समय के चक्कर से परे तथा समदर्शी विचार के हैं ॥ १८ ॥

साधुरूप पूरण परमाना । गरीब निवाज गहहु गुरुज्ञाना ॥१९॥
झाँई शब्द परखावन हारे । तारण तरण विगत संसारे ॥२०॥

शब्दार्थ — परमाना = प्रामाणिक, मानने योग्य । निवाज = दया करने वाला, रहम करने वाला । झाँई = प्रतिबिम्ब, प्रतिभास, भ्रम । विगत = अतीत, बीता हुआ ।

भावार्थ — संतरूप, पूर्णमाननीय, ज्ञानधनहीनों पर दया करने वाले, भ्रम

तथा शब्दों की परीक्षा कराने वाले, दूसरों को तारनेवाले, स्वयं तरजानेवाले सद्गुरु के ज्ञान को हम ग्रहण करें ॥ १९,२०॥

मन अनुमान गुमान विनाशक । मोद प्रत्यक्ष दान निज दासिक ॥२१॥
वेद कुरान बुझाय यथारथ । मन कर्म वचन साधु में स्वारथ ॥ २२॥

शब्दार्थ — अनुमान = अटकलें । गुमान = संदेह, भ्रम, गर्व, घमंड । मोद = प्रसन्नता । स्वारथ = स्वार्थ, अपना फायदा, अपना काम सिद्ध, सफल, कृतार्थ ।

भावार्थ — सद्गुरु मनकी उलूल-जुलूल अटकलों, भ्रमों एवं घमण्ड के विनाशक, अपने दासों को प्रसन्नता एवं प्रत्यक्ष बोध के दाता ॥ २१ ॥ वेद-कुरान आदि ग्रन्थों एवं मतों की वास्तविकता को समझाने वाले और मनसा, वाचा, कर्मणा साधुसंग में ही अपना लाभ या सफलता समझाने वाले हैं ॥२२॥

इमि शत नाम गुरु गनि आई । सब वृत्तान्त गुरु मुख जो बुझाई ॥२३॥
साधु गुरु कबीर गोसाईं । बन्दीछोर नाम जपु गाई ॥२४॥

शब्दार्थ — गनि आई = वर्णन हुआ । वृत्तान्त = वृत्तांत, अवसर, घटना, धर्म, वर्णन ।

भावार्थ — गुरुमुख से सभी बातों को समझकर इसप्रकार विशेषण रूप में गुरु के सौ नामों का गुणानुवाद गाया गया ॥२३॥ साधु, गुरु, कबीर, गोसाईं, बन्दीछोर आदि नाम का जप या वर्णन किया गया ॥२४॥

दोहा—गुरु के अमृतमय वचन सुनि, शिष्य श्रवण मन देय ।
झाँई संधि औ काल गुण, तुरत मिटै नहिं लेय ॥ २ ॥

शब्दार्थ — झाँई = परिछाई, प्रतिविम्ब, जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्मवाद की मान्यता । **संधि** = दरार, भेद, अपने से पृथक ईश्वरादि मानना । **काल** = कल्पना, भूत-प्रेत, देवी-देवता, विषय-वासना । **गुण** = प्रभाव, स्वभाव । **लेय** = लेना ग्रहण करना ।

भावार्थ — शिष्य को चाहिये कि वह सद्गुरु के अमृतमय वचनों को सुनकर चारों श्रेणियों—श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार का विकास करे; तो निश्चित ही उसके झाँई, संधि और काल के प्रभाव शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे । तदनन्तर उसे चाहिये कि उन्हें पुनः न ग्रहण करे ॥ २ ॥

सोरठा—ऐसे गरीब निवाज, दीन उद्धारण गुरु सही ।
शिष्य देखि सुमिजाज, प्रश्न करी निज बोध हित ॥ २ ॥

शब्दार्थ — निवाज = दया करने वाला । सही = वास्तविक । सुमिजाज = सु + मिजाज, अच्छी तबियत या प्रकृति ।

भावार्थ — उपर्युक्त सद्‌गुण सम्पन्न, बोध एवं शांतिधन से रहित जीवों पर कृपा करने वाले; दीनों के उद्धारकर्ता; सच्चे सद्‌गुरु को प्रसन्नचित्त देखकर शिष्य अपने स्वरूपबोध की प्राप्ति के लिये प्रश्न किया ॥ २ ॥

३—मैं कौन हूँ तथा ब्रह्म क्या है आदि पर विचार

शिष्य प्रश्न—१

छन्द—हौं कौन कौन यह देह पंच, बखानि उत्तर दीजिये ।
जन जानि अपनो दया करि, प्रभु बाँह गहि के लीजिये ॥
केहि बिधि भयो एक ते सो, अनंत कारण जग ठयो ।
जब एक होय सुख दुख, केहि भांति अस्थिरता लह्यो ॥१॥

शब्दार्थ — हौं = मैं । पंचदेह = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य । बखानि = वर्णन करके, विवरण पूर्वक । ठयो = ठानना, संकल्प पूर्वक आरम्भ करना ।

भावार्थ — हे प्रभो ! मुझे अपना सेवक जानकर मुझपर कृपा कीजिये और मेरा हाथ पकड़कर मुझे उबार लीजिये । विवरणपूर्वक उत्तर देने की कृपा करें कि मैं कौन हूँ ? पंच देह क्या है ? किस प्रकार एक ब्रह्म अनन्तरूपों में बिखरकर जगत का कारण बना और सृष्टि करने का संकल्प किया ? जब ब्रह्म स्वजाति, विजाति तथा स्वगतभेदों से रहित शुद्ध अद्वैत है, तब वह सुख-दुख के झमेले में क्यों पड़ा ? और उसने कैसे स्थिरता पायी ? ॥ १ ॥

सद्‌गुरु उत्तर—१

चौकड़ी—१

तू कहिबे मात्र सच्चिदानन्द । तू हंस स्वतः आनंद ॥ १ ॥
देह पंच में ब्रह्म बिकार । उपजै खपै न अस्थिर सार ॥ २ ॥

शब्दार्थ — सच्चिदानन्द = सत् + चिद् + आनन्द । हंस = चेतन । अस्थिर = स्थिर; नित्य । सार = सत्य ।

भावार्थ — हे शिष्य ! तू कहने मात्र के लिये सच्चिदानन्द है; अन्यथा तू तो शुद्ध चेतन स्वयं आनन्दस्वरूप है ॥ १ ॥ स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य इन पाँचों देहों में क्रमसे तारक, दण्डक, कुण्डली, अर्धचन्द्र तथा बिन्दु ये पाँच भेदों वाला ब्रह्म मानें हैं; अथवा पंचदेहों में ब्रह्मका ही विकार है; या सबका उपादान ब्रह्म होने से पंचदेह भी ब्रह्मके ही विकार एवं परिवर्तित रूप हैं । ब्रह्म वही है जो जगत है । अतः वह सदैव उपजता-विनशता हुआ विकारवान है । अतएव वह न स्थाई है न सत्य ॥ २ ॥

विशेष — उपर्युक्त चौपाई में कहा गया है कि तू कहने मात्र के लिये सच्चिदानन्द है अन्यथा तू 'हंस स्वतः आनन्द' स्वरूप है । 'सच्चिदानंद' तथा 'हंस स्वतः आनंद' में कुछ अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। 'सच्चिदानन्द' का अर्थ होता है वह तत्त्व जो सत्य, चेतन और आनन्द स्वरूप हो । 'हंस स्वतः आनंद' का अर्थ होता है चेतन स्वयं आनन्द स्वरूप है । फिर सच्चिदानंद का यहाँ खण्डन क्यों है ?

वस्तुतः सच्चिदानन्द शब्द बुरा नहीं है । परन्तु उसकी परिभाषा लोगों ने कर डाली है जड़चेतन अभिन्न चराचर व्यापक, जिसमें जड़-चेतन का विवेक नष्ट हो जाता है । इसलिये सच्चिदानन्द शब्द ठीक होते हुए भी उसका निरास किया गया है। 'तू हंस स्वतः आनन्द' विधिपरक वाक्य कह कर मानो यह स्वीकार किया गया है कि सच्चिदानन्द तो ठीक हैं यदि वह जड़ से, व्याप्य-व्यापक से, कारण-कार्य से सर्वथा रहित हो तो । क्योंकि सच्चिदानन्द में चिद् को हंस (चेतन) कहकर स्वीकार किया गया है, और आनन्द को ज्यों-का-त्यों स्वीकार किया गया है । रहा 'सद्', वह किसी को भी अस्वीकार नहीं होगा ।

सद्-चिद्-आनन्द-अपना स्वरूप सद् एवं सत्य है यह ठीक है, और चिद् अर्थात चेतन है यह भी सर्वथा ठीक है । परन्तु आनन्द भी है, यह कुछ ऊटपटांग लगता है । क्योंकि आनन्द और क्लेश द्वन्द्व हैं और ये दोनों मनकी वृत्तियाँ हैं । दोनों के शमन होने पर शांति अवस्था आती है । वस्तुतः अपना स्वरूप शांत है । यहाँ विशेषतर आनन्द शब्द का प्रयोग जीवन्मुक्तिजनित स्थिरवृत्ति सुख में है; और यदि शुद्ध चेतन के विशेषण में आनन्द शब्द का प्रयोग हो तो उसका अर्थ यही है कि वह सर्वापत्तिरहित, दुःखों एवं क्लेशों से रहित होने से आनन्दस्वरूप ही है । अन्यथा आनन्द स्थूल, सूक्ष्म, कारणादि शरीर के सम्बन्ध में ही सम्भव है । शुद्ध चेतन वृत्तिजनित आनन्द और क्लेश दोनों से मुक्त है । ग्रन्थकर्ता श्रीरामरहस साहेब ने ग्रन्थ में 'आनन्द' शब्द का प्रयोग विधिपरक भी किया है । इसी प्रकार उन्होंने 'राम' और 'आत्मा' शब्दों का प्रयोग भी विधिपरक किया है ।

जिस ब्रह्म को सद्-चिद्-आनन्द माना है, वह तो पंचदेह, पंचविषय स्वरूप यह जगत है; जो उन्हीं के मान्यतानुसार असद्-अचिद्-अआनन्द रूप तथा बनने-बिनशने वाला है । अतः ब्रह्म न स्थिर है और न सत्य ।

रहट घड़ी इमि ब्रह्म अरु जीव । जीव कलपना ब्रह्म अरु पीव ॥ ३ ॥
एक ब्रह्म जग मन अरु माया । माया रहित सो ब्रह्म निकाया ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — रहट = रहँट, कुयें से पानी निकालने का यंत्र जिसमें मालाकार पीपे लगे रहते हैं । घड़ी = समय बताने वाली, जिसकी सूई मालाकार घूमती है । पीव = ईश्वर । निकाया = निकाय, समूह, समुदाय, शरीर, वासस्थान, ब्रह्म, समष्टि ।

भावार्थ — जैसे रहँट और घड़ी का चक्कर घूमता रहता है वैसे ब्रह्म में विकार उठकर अनेक जीव एवं जगत का होना तथा अनेक जीव तथा जगत का एकीकरण होकर एक ब्रह्म का बन जाना चलता रहता है (इस प्रकार उनकी मान्यता है)। वस्तुतः ब्रह्म और ईश्वर जीव की ही कल्पना है ॥ ३ ॥ कहते हैं जगत, मन और माया सब एक ब्रह्म ही है। फिर मानते हैं कि वह सबका समष्टि (सम्मिलित रूप) होते हुए भी माया से मुक्त है ॥ ४ ॥

विशेष — जब पूर्ण जगत का समूह ही ब्रह्म है तब ब्रह्म माया से मुक्त है यह बात अपने आप में विरुद्ध है। उनके कथनानुसार वस्तुतः ब्रह्म, जगत, माया, काया, मन ये सब कहने के लिये अलग हैं, वास्तविकता में एक ही बात है।

ब्रह्म भये नहिं मिटिया जन्मा। देख विचार शिष्य इमि भरमा ॥ ५ ॥
जग चौरासी भरमहिं कहै। हंस स्वतः पद आनन्द लहै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — इमि = इस प्रकार, उपर्युक्त प्रकार।

भावार्थ — हे शिष्य ! उपर्युक्त प्रकार भ्रम को विचार करके देखो ब्रह्म बनने से जन्म-मृत्यु का चक्कर नहीं बन्द हो सकता ॥ ५ ॥ वे कहते हैं कि चौरासी योनि एवं जगत भ्रम है उसी को ब्रह्म भी कहते हैं; इसलिये यह ब्रह्मज्ञान बड़ा ही घपलामय है। अतएव जो हंसवत् जड़-चेतन एवं सारासारविवेकी है वह जगत, ब्रह्म, मन, माया सबको त्याग कर स्वतः चेतन स्वरूप में ही सन्तुष्ट रहता है ॥ ६ ॥

४— ब्रह्मवाद पर कसौटी

शिष्य प्रश्न — २

दोहा—ऐसे सुनि गुरु के वचन, कीन्ही शंका शिष्य।
ब्रह्म भये थिति क्यों नहीं, वेद कहैं बहु ऋष्य ॥ २ ॥

शब्दार्थ — थिति = स्थिति; मोक्ष। ऋष्य = ऋषि; मंत्रद्रष्टा, वेदमंत्रों के रचयिता।

भावार्थ — गुरु के उपर्युक्त वचनों को सुनकर शिष्य ने शंका की कि हे गुरुदेव ! ब्रह्म बनने से स्थिति क्यों नहीं होती ? वेद और अनेक ऋषिगण तो यही कहते हैं कि ब्रह्म बनो, ब्रह्म में स्थित होओ ॥ २ ॥

सद्गुरु उत्तर—२

सोरठा—हे शिष्य हृदय विचार, ब्रह्म पदारथ प्रथम पद।
जग को कारण सार, ब्रह्म जहाँ तहाँ भरमियाँ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — **पदारथ**=पदार्थ, पद का अर्थ, वस्तु । **प्रथम**=सृष्टि के आरम्भ के पूर्व । **पद**=स्थान; आधार । **सार**=मुख्य, सर्वोत्तम, शक्तिशाली ।

भावार्थ — हे शिष्य ! हृदय में विवेक करो कि ब्रह्मवादियों ने यह माना है कि ब्रह्म वह वस्तु है जो सृष्टि के पूर्व से ही विद्यमान सृष्टि का आधार है । जगत निर्मित होने का वही मुख्य एवं अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, अतः ब्रह्म बनकर यत्र-तत्र भटकना ही होगा ।। ३।।

विशेष — ब्रह्मवादी कहते हैं कि पहले कुछ नहीं था, केवल ब्रह्म था । फिर वही ब्रह्म स्वयं जगत एवं सृष्टि बन गया । घड़ा का निमित्त कारण कुम्हार तथा उपादान कारण मिट्टी है । परन्तु जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण ब्रह्म ही है । ब्रह्म का अनादि-अनन्त स्वभाव है सृष्टि बन जाना ।

इस प्रकार जो ब्रह्म इतना विकारी है कि जिसमें सृष्टि सदा स्वाभाविक बनती-मिटती रहती है, हे शिष्य ! उस ब्रह्म में जो अपनी स्थिति करेगा अर्थात उसकी कल्पना में जो पड़ेगा वह निश्चित है जन्म-मरण के चक्कर में घूमता रहेगा ।

जो यह कहा गया है कि ब्रह्म का समर्थन वेद और ऋषिगण भी करते हैं, इसलिये उसे मान लेना चाहिये । परन्तु यह ठीक नहीं । क्योंकि वेदों में भी इसके विपरीत बातें हैं तथा कपिल, जैमिनी, कणाद जैसे मूर्धन्य ऋषिगण ब्रह्म का विरोध करते हैं । इसके अतिरिक्त सत्य के शोधन में किसी का भी पक्ष करना उचित नहीं । हमें अधिक इस पर ध्यान नहीं देना चाहिये कि वह कौन कहता है, अपितु यह ध्यान देना चाहिये कि क्या कहता है ।

इच्छा मन विस्तार, माया मिलि जग निर्मियो ।
सब मिटि ब्रह्म मंझार, रहट ब्रह्म थिति है नहीं ।। ४ ।।

शब्दार्थ — **मन**=संकल्प । **मँझार**=मध्य, में । **रहट**=रहँट, चक्कर ।

भावार्थ — 'एकोऽहम बहुस्याम' अर्थात् एक मैं बहुत हो जाऊँ, इस प्रकार पहले ब्रह्मने इच्छा की, फिर उसके संकल्प का विस्तार हुआ और माया को मिला कर ब्रह्म ने जगत का निर्माण किया । और प्रलयकाल में सारीसृष्टि, मन एवं माया मिट कर ब्रह्म में लीन हो जायेंगे और यही चक्कर आगे भी चलता रहेगा । अतएव उपर्युक्त उनके मान्यतानुसार ब्रह्म उत्पत्ति-प्रलय का एक चक्कर है, न वह स्थिर है न उसमें स्थित होने से जीव को शांति मिल सकती है ।। ४ ।।

झूलना—१

पाँच तत्त्व तीन गुण चतुर्दश देवता, दशों इन्द्री अहै जगत बहु विस्तरा ।
मन माया सोई ब्रह्म कारण खड़ा, अखिल ब्रह्मांड पंच देह मध्ये निस्तरा ।।

ब्रह्म ही सर्व में सर्व ते न्यारा है, यहि मत वेद ऋषि शास्त्र प्रकट करा।
जीव अनुमान यह ब्रह्म सृष्टि अहै, शिष्य यह परखि ले फंद माया भरा॥१॥

शब्दार्थ — पाँचतत्त्व = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। तीन गुण = सत, रज, और तम। चतुर्दशदेवता = चौदह देवता—दिशा (कान के), वायु (त्वचा के), वरुण (जीभ के), सूर्य (आँख के), अश्वनीकुमार (नाकके), अग्नि (मुख के), इन्द्र (हाथ के), उपेन्द्र (पैर के), प्रजापति (लिंगके) यमराज (गुदाके), नारायण (चित्तके), ब्रह्मा (बुद्धि के), चन्द्रमा (मनके) और रुद्र (अहंकार के)। दशों इन्द्री = दश इन्द्रियाँ—आँख, नाक, कान, जीभ और चमड़ा ज्ञान इन्द्रियाँ तथा हाथ, पैर, मुख, गुदा और लिंग कर्म इन्द्रियाँ। अखिल = सम्पूर्ण। पंचदेह = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य। निस्तरा = निस्तार, पार जाना, मुक्त होना, सुविधा, निर्वाह, व्यवस्था, यहाँ का तात्पर्य व्यवस्था में है।

भावार्थ — कहते हैं कि 'एक ब्रह्म से ही पाँच तत्त्व, तीन गुण, चौदह देवता, दश इन्द्रियाँ तथा जगत का बहुत विस्तार हुआ है।' वस्तुतः मन ही माया है और वही इस ब्रह्म का स्वरूप है अर्थात ब्रह्म मनकी कल्पना है जिसको मनुष्यों ने सारी सृष्टि का कारण स्थिर किया है, और सम्पूर्ण विशाल ब्रह्माण्ड की व्यवस्था स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण एवं कैवल्य इन पाँच देहों के बीच ही में मान रखा है। 'बर्फ में जल के सदृश ब्रह्म ही सब में है और वह सबसे पृथक भी है'—इस मत को वेदों के कुछ मंत्र, कुछ शास्त्र और कुछ ऋषिगण प्रचलित किये हैं। परन्तु हे शिष्य! 'ब्रह्म से सृष्टि होती है' यह मान्यता मनुष्य जीव का अनगढ़ अटकल एवं निरी कल्पना है। इसे परखो यह मन का फंदा माया अर्थात कल्पना से भरा हुआ है॥ १॥

विशेष — 'अखिल ब्रह्माण्ड पंच देह मध्ये निस्तरा' अर्थात सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था पंचदेहों में है, इसका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर यह काया है, सूक्ष्म शरीर मनोमय है, कारण शरीर अज्ञान है, महाकारण शरीर ब्रह्मकी साक्षी दशा माने हैं तथा कैवल्य शरीर सबका अपने में लय करके ब्रह्म बन जाना है। परन्तु समय पाकर उसी ब्रह्म से पुनः सब उत्पन्न होता है। इस प्रकार जो ब्रह्माण्ड में है वही व्यवस्था पिण्डाण्ड में भी माना है।

कहते हैं एक ब्रह्म से पुरुष और प्रकृति उत्पन्न हुए, प्रकृति से महतत्त्व, महतत्त्व से अहंकार, अहंकार से सत, रज, तम—त्रिगुण। उनमें से सत से चौदह देवता, रज से दशों इन्द्रियाँ और तम से पाँच तत्त्व; पंचविषय आदि जगत उत्पन्न हुआ। परन्तु उपर्युक्त बातें युक्तिसंगत नहीं हैं। ब्रह्म जब चेतन है तब उससे जड़ प्रकृति, त्रिगुण, पंचतत्त्व आदि कैसे उत्पन्न हो सकते हैं। ब्रह्म को जब निर्विकार कहते हैं तब उससे कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा। जब ब्रह्म सबमें बर्फ में जल के सदृश है तब वह सबसे

पृथक कैसे हो सकता है ? जब ब्रह्म ही जगत तथा जगत ही ब्रह्म है तब इस जंजाल को छोड़ना आवश्यक है।

सोरठा—माया ब्रह्म समाय, जगत कियो विस्तार सब।
फूले ब्रह्म कहाय, श्रवण मनन साक्षात मत ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—माया = अनेक होने की इच्छा। फूले = गर्व से इतराये, अहंकार किये।

भावार्थ — खेद है, जिस ब्रह्ममें सृष्टि बनने की इच्छा-माया स्वभाव से ही समायी हुई होने के कारण वह जगत का सारा विस्तार करता है, उसी मतवाद की वाणियों का श्रवण, मनन एवं दृढ़ करके और अपने आपको ब्रह्म कहला कर लोग गर्व से इतराते हैं ॥ ५ ॥

विशेष — जो ब्रह्म जगत की उत्पत्ति एवं प्रलय का स्वाभाविक स्वरूप है उसी को अपनास्वरूप मानकर उसका अहंकार करना सीमातीत भूल है। मैं ब्रह्म हूँ तथा ब्रह्मज्ञान ही मोक्ष का राजमार्ग है यह मानकर कितने लोग अहंकार में चूर-चूर रहते हैं। परन्तु वे जब यह समझ लेंगे कि यह माना हुआ तथाकथित ब्रह्म ही सभी विकारों का अधिष्ठान है, अतः निर्विकार स्थिति की प्राप्ति के लिये इसको सर्वथा छोड़ना आवश्यक है तब वे इस ब्रह्मजाल को सर्वथा छोड़ कर सबसे पृथक अपने चेतन पारख-स्वरूप में स्थित हो जायेंगे जो संसार के कारण-कार्य से रहित शुद्ध एवं निराधार है।

शिष्य प्रश्न-३

चौपाई—२

श्रवण मनन साक्षातहुँ जाना। मन माया सो भौ बिलगाना ॥ १ ॥
बिलगे ब्रह्म सनातन स्वामी। सो किमि चौरासी अनुगामी ॥ २ ॥

शब्दार्थ —बिलगाना = पृथक होना। सनातन = नित्य। अनुगामी = पीछे चलने वाला, भ्रमणशील।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! जब वेदांत का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ और यह जानने में आया कि मैं ही ब्रह्म हूँ; तब तो वह मन और माया से पृथक हो गया ॥ १ ॥ हे स्वामी ! मैं नित्य ब्रह्म सबसे पृथक हूँ यह जानने वाला कैसे चौरासी के चक्कर में भ्रमण करेगा ॥ २ ॥

चौरासी मिटि ब्रह्म जो होई। ब्रह्म भये सुख पूरण सोई ॥ ३ ॥
सो केहि भाँति दीन प्रतिपाला। ब्रह्म भये चौरासी काला ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — चौरासी = चार राशियाँ (समूहें) मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज; दुःख; संसार। काला = काल; समय; कल्पना; दुःखदायी।

भावार्थ — यदि समस्त जड़-चेतन जगत मिट कर ब्रह्म में लीन हो गया, तो ठीक ही हुआ। जब सब कुछ ब्रह्म हो जाता है वही परमानन्द की अवस्था है ॥ ३ ॥ हे जिज्ञासुओं के बोधकर्ता गुरुदेव ! वह आनंद स्वरूप ब्रह्म किस प्रकार चौरासी का चक्कर बनकर सबके लिये दुःखदायी हो जाता है ? ॥ ४ ॥

सद्गुरु उत्तर—३

दोहा—ब्रह्म की इच्छा माया, माया मन कृत भास।
माया मन निरसन भयो, एक ब्रह्म परकास ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — कृत = किया हुआ; बनाया हुआ। भास = चमक; प्रतीत; कल्पना। निरसन = फेंकना; खण्डन; प्रत्याख्यान।

भावार्थ — ब्रह्म को अनेक होने की इच्छा ही उसमें माया है और माया तथा मन एक ही बात है। मन-माया अर्थात संकल्प से प्रतीत या कल्पना किया हुआ संसार है। जब मन-माया अर्थात संकल्प को दूर डाल दिया जाता है तब एक ब्रह्म का प्रकाश होता है ॥ ४ ॥

विशेष — ब्रह्म को अनेक होने का संकल्प उसमें माया है और इसी से उसे संसार प्रतीत होता है, और जब संकल्प दूर डाल दिया तब एक ब्रह्म शेष रहा। अर्थात ब्रह्म संकल्प से सृष्टि रचता है और सृष्टि को अपने में लय करके वह अकेला रह जाता है।

सोरठा—यह मत सबन प्रमाण, वेद ऋषीश्वर मुनि मनुन।
दैत्यनहूँ यह जान, सत्य शौच दाया रहित ॥ ६ ॥

शब्दार्थ -- प्रमान = प्रमाण; सत्य।

भावार्थ — उपर्युक्त मत को वेद, बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, मनुष्य, सत्य-पवित्रता-दया से रहित तामसी लोग भी—सबने सत्य करके माना है ॥ ६ ॥

ब्रह्म मिलै सुख चैन, ऐसे प्रगट बखानहीं।
देखे बिन नहिं चैन, देखहि ताहि अनुमानते ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — प्रगट = प्रकट; स्पष्ट। देखेबिन = साक्षात्कार हुए बिना। अनुमान ते = अटकल से।

भावार्थ — वे इस प्रकार स्पष्ट वर्णन करते हैं कि 'ब्रह्म के मिलने पर ही स्थायी सुख-शांति मिलेगी।' उसके साक्षात्कार हुए बिना उन्हें विश्रांति नहीं मिलती; परन्तु वे उसे अटकल से कल्पना में देखते हैं ॥ ७ ॥

दोहा—ब्रह्म भये पुनि इच्छा, मन मायाकृत भास।
कैसे चौरासी मिटै, सुनु शिष्य सुबुधि प्रकाश ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — मन माया = संकल्प ।

भावार्थ — हे उत्तम बुद्धि के प्रकाशक शिष्य ! ब्रह्म बनने से जगत की इच्छा उसमें रहेगी और समय आने पर संकल्प से किया हुआ जगतभास खड़ा होगा; फिर जन्म-मृत्यु का चक्कर कैसे मिट सकता है ? ॥ ५ ॥

विशेष — यह ठीक है कि ब्रह्म से जगत तथा जगत से ब्रह्म होने का मत बड़े-बड़े कहलाने वाले मानते हैं। परन्तु किसी बात की सत्यता इसीलिये नहीं हो सकती कि उसको कुछ या बहुत बड़े लोग मानते हैं। किसी की सत्यता की कसौटी उसकी परख है। जब ब्रह्म में जगत बनने की स्वभावसिद्ध इच्छा है तब ब्रह्म बनने में छुटकारा कहाँ है ?

चौपाई—३

उपजन विनशन रहट कि खानी । ब्रह्म भये नहिं कुशल बखानी ॥ १ ॥
इमि सो ब्रह्म संकल्प जगता । ब्रह्म मुक्त जग भरम असकता ॥ २ ॥

शब्दार्थ — इमि = इसप्रकार । असकता = अशक्त; शक्तिहीन; मिथ्या ।

भावार्थ — ब्रह्म में उपजना और विनशना होता है और वह वस्तुतः खानियों का चक्कर है; अतएव विवेकवानों ने ब्रह्म बनना मंगल का हेतु नहीं बताया है ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी इस प्रकार बतलाते हैं कि जगत ब्रह्मका संकल्प है, ब्रह्म उससे मुक्त है और जगत भ्रम तथा मिथ्या है ॥ २ ॥

विशेष — ब्रह्म संकल्प करके स्वयं जगत बन गया। कनक-कुण्डल, घट-मृतका, जल-तरंग न्याय जगत-ब्रह्म अभिन्न है। ऐसी स्थिति से ब्रह्म जगत से मुक्त कैसे रहेगा ? जगत भ्रम है तो उनका कथन भी जगत के भीतर होने से वह भी भ्रम है।

ताते शिष्य पदारथ ब्रह्म । परखो झाँई सन्धिक भर्म ॥ ३ ॥
काल संधि झाँई मत आहीं । गुरुमुख कहा रमैनिन माहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — झाँई = प्रतिबिम्ब; असावधानी, धोखा । सन्धिक = संधि; दरार, भेद; अपने से पृथक ईश्वर-ब्रह्म मानना; अज्ञान । काल = देवी-देवादि, मंत्र-मंत्रादि की कल्पना । मत = विचार; सिद्धान्त; पंथ ।

भावार्थ — अतएव हे शिष्य ! छान-बीन करके देखो ब्रह्म शब्द का अर्थ क्या है एक धोखा या अज्ञान है अथवा भ्रम है ॥ ३ ॥ संसार में काल संधि और झाँई अर्थात कल्पना, अज्ञान और धोखा के ही मतों का जोर है; और इन्हें परखने के लिये सार शब्द है जो गुरुमुख है। इन चारों का वर्णन ग्रन्थसमाप्ति में २७ रमैनियों के आरम्भ में ही हुआ है ॥ ४ ॥

विशेष — जो अपने से पृथक एक कल्पना हो, जिसके विषय में यह मान्यता हो कि वह उत्पत्ति और प्रलय का कारण है और पुनः उसी में लीन होकर कल्याण माना जाय तो धोखा खाना नहीं और क्या है ?

नास्ति लखै सो भौ अनुमान। जथा अस्ति में रहै समान ॥ ५ ॥
परखै शब्द जथा टकसार। सुनु शिष्य ताको जो व्यौहार ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **नास्ति**=जो न हो; असत्य। **जथा**=यथा; जैसे। **अस्ति**=होना; सत्ता; भाव; विद्यमानता; चेतन। **टकसार**=टकसाल, सिक्के ढलने के स्थान, तात्पर्य में सत्संग व बीजक ग्रंथ। **व्यवहार**=कार्य; रहस्य।

भावार्थ — सुख चाहते हुए दुःख मिलते रहने से, विशाल जगत को देखकर, अपना कर्मफलभोग तथा जड़-चेतन का भेद न जानने से मनुष्य अपने से पृथक किसी दूसरी सर्वसमर्थ सत्ता का अटकल लगाता है। जो वस्तुतः नहीं है उसी को देखना चाहता है। जैसे मनुष्य कल्पित वस्तु को लक्ष्य करता है वैसे वह संस्कार रूप में जीव के मन में समायी रहती है ॥ ५ ॥ हे शिष्य ! सुनो, सत्संग तथा बीजक में जिस प्रकार सारासार का रहस्य बताया गया है उन वाणियों को परखो ॥ ६ ॥

विशेष — अनुमान करके मनुष्य असत्य की ओर देखता है और जैसे वह उसकी ओर देखता है वैसे वे संस्कार उसमें गड़ जाते हैं। संसार के सारे मनुष्य भ्रम में हैं। एक पारख ही औषध है जिससे भ्रम से छूटा जा सकता है।

५—स्थिति की भूमिका क्या है ?

शिष्य प्रश्न-४

दोहा— परख कौन टकसार की, साहेब देहु बताय।
जेहि अनुरागे जीयरा, बसै हंसपद आय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **परख**=सार असार का विवेक। **टकसार**=सत्संग; बीजक। **अनुरागे**=प्रेम करने या श्रद्धा करने से। **हंसपद**=विवेकमयी स्थिति।

भावार्थ — हे स्वामी ! कृपया यह बतलाइये कि पारखी संत अपने सत्संग तथा बीजक में कौन-सी परख बताते हैं; जिसको श्रद्धापूर्वक धारण करने से जीव आकर विवेकमयी स्थिति में निवास करता है ? ॥ ६ ॥

ताकी देही कौनती, कौनते तत्त्व प्रकृत्ति।
गुण कौन संबंध ते, रहत सदा निर्भीति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — **देही**=देह स्वरूप। **कौनती**=कौन सी, किस प्रकार।

भावार्थ — उस जीवन्मुक्त की कौन-सी देह है और उस देह में कौन-सी तत्त्व प्रकृति लगी है? वह कौन से गुणों के सम्बन्ध में निवास कर सर्वत्र निर्भय रहता है ?॥७॥

विशेष — जिसदेह तथा तत्त्व-प्रकृतिसे जीव मुक्त की स्थिति होती है वे कोई स्थूल नहीं हैं वे सद्गुण-सदाचरणों का समूह हैं जो इसी मानव देह में धारण होते हैं। इसका विवरण आगे २७ वें दोहा से किया गया है।

अंडमाँहि रचना जेती, सो तो बंधन आहिं।
मन माया कृत जो भयो, सो सब ब्रह्महि माहिं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — अंड = ब्रह्माण्ड, विश्व।

भावार्थ — ब्रह्माण्ड में जितनी रचनायें हैं सब बन्धनप्रद हैं; क्योंकि मनमाया का किया हुआ जो कुछ है वह सब ब्रह्म के भीतर या ब्रह्म स्वरूप ही है ॥ ८ ॥

विशेष — ब्रह्मवादियों के मतानुसार जगत ब्रह्मका विकार है, और अन्ततः ब्रह्मरूप है। अतएव ब्रह्म कहो या जगत वह सब तो बन्धनस्वरूप ही है। फिर कौन सी भूमिका है जहाँ पर स्थित होकर जीव का कल्याण होता है ?

सद्गुरु उत्तर-४

दोहा—अंड निरंजन ब्रह्मका, मन माया परकाश।
जीव चारि खानी परे, बिकल त्रसित तेहि आश ॥ ९ ॥

शब्दार्थ — अंड = जो अण्डे के आकार का हो, ॐ, ब्रह्माण्ड, विश्व। निरंजन = जो अंजन (सुरमा या काजल) न लगाया हो; परन्तु यहाँ का तात्पर्य है जो नेत्र से न दिखे; अंजन के अर्थ माया तथा अज्ञान भी हैं; अतः निरंजन का अर्थ मायारहित तथा अज्ञानरहित भी होते हैं।

भावार्थ — (उनके मतानुसार) यह विश्व मायातीत ब्रह्म के संकल्प का प्रकाश एवं विस्तार है और सभी जीव उसी की चारि खानियों में पड़कर बेचैन तथा पीड़ित हैं; फिर भी लोग अपने कल्याण के लिये उसी ब्रह्म की आशा किये बैठे हैं ॥ ९ ॥

विशेष — अण्ड का अर्थ यदि ॐ माना जाय तो अभिप्राय होगा ओंकाररूप मायातीत ब्रह्म के संकल्प से जगतप्रपंच है।

जो ब्रह्म जगत का कारण बनकर जीवों के दुःखों का हेतु बनता है, कल्याण के लिये उसकी आशा करना भूल है।

सत्य शब्द टकसार-बीजक, रमैनी-साखी-२७

साखी—एक अंड ॐकारते, सब जग भया पसार।
कहहिं कबीर सब नारि रामकी, अविचल पुरुष भतार ॥१०॥

शब्दार्थ — भ्रतार = भर्तार, कांत, पति । राम = ब्रह्म ।

भावार्थ — (उनकी मान्यता है) एक अण्डाकार ॐकार ब्रह्म से सारे जगत का विस्तार हुआ है; अथवा एक ॐकार ब्रह्मसे अंड (विश्व) एवं सब जगत का सृजन हुआ है । कबीर साहेब कहते हैं कि सब भूले जीव उस ब्रह्म को अपना अविनाशी पति मानकर उसी की नारी बन रहे हैं ।।१०।।

विशेष — ॐ कुछ मनुष्यों द्वारा अक्षर-मात्राओं का संयोजित स्वरूप है । मनुष्य ने उपासना के लिये उसे एक कल्पना बिन्दु बना रखा है । उसके द्वारा जगतोत्पत्ति आदि मानना एक भ्रम है । उसको अपना स्वामी मानना डबल भ्रम है ।

दोहा—जथा अनेकन लहरिते, जल थिरता नहिं पाय ।
थीर जहाँ तहाँ बड़वा, नीरहि सोष कराय ।।११।।

शब्दार्थ — जथा = यथा, जैसे । बड़वा = बड़वाग्नि, समुद्रस्थित कालानल । सोष = शोषण करना, सुखाना ।

भावार्थ — जैसे समुद्र का जल अनेक तरंगों के कारण स्थिर नहीं होता । जहाँ बहुत गहराई में पानी कुछ स्थिर भी होता है, वहाँ बड़वाग्नि उसे शोषण करती है।।११।।

दुहुँ प्रकार थिरता नहीं, ब्रह्महु जगत पर्यंत ।
जीवहि दुख दुसह अति, त्राहि त्राहि बिलखंत ।।१२।।

शब्दार्थ — त्राहि = बचाओ, रक्षा करो, पाहि । बिलखंत = दुखी होना, विलाप करना ।

भावार्थ — ब्रह्म से जगत पर्यन्त – दोनों प्रकार जीवको शांति नहीं मिलती और उसे न सहने योग्य अत्यन्त क्लेश है; इसीलिये वह पीड़ित होकर जगह-जगह 'बचाओ' 'रक्षाकरो' कहकर विलाप करता है ।।१२।।

विशेष — लोगों ने ब्रह्म को समुद्र और जगत को तरंग माना है । जगत तरंगवत् उथल-पुथलमय है और ब्रह्म में पुनः जगत बनने की बड़वाग्नि के समान प्रबल और स्वभावसिद्ध इच्छा है । इसलिये जीव को ब्रह्म और जगत में शांति नहीं है ।

शुद्ध होय दाया द्रवित, प्रेम सांच निज पाय ।
स्वतः नेत्र मूँदे खुले, निज अनुमान दिखाय ।।१३।।

शब्दार्थ — द्रवित = पिघला हुआ । अनुमान = अटकलबाजी; भ्रम ।

भावार्थ — अनेक जन्मों के उत्तम संस्कारों या वर्तमान के शुद्ध पुरुषार्थ से जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, जो अपने आप को दुःखों से छुड़ाने के लिये अपने आप पर ही दया से पिघल गये हैं, जिनको अपने कल्याण के लिये सच्चा प्रेम उत्पन्न

हो गया है; उनकी अपनी अनादिकाल से ढँपी विचार-विवेक की आँखें खुल जाती हैं, और अपने हृदय में पूर्व से सुरक्षित भ्रम दिखलाई देने लग जाते हैं ॥ १३ ॥

विशेष — उपर्युक्त दोहा बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। गुरुजन कितना ही उपदेश करें जब तक मनुष्य में स्वयं चेष्टा नहीं उत्पन्न होती तबतक वह कल्याण-साधन में नहीं बढ़ सकता। जब अत्यन्त भूखे-प्यासे को भोजन-जल की इच्छा के समान कल्याण को प्रबल अभिलाषा हो जाती है तब रास्ता बन जाता है, केवल यथार्थ सद्गुरु मिल जायँ, बस।

सो अनुमान प्रचंड अस, कीन्हों ब्रह्माकार।
व्याप नास्ति जब ब्रह्म भये, तब जीव भये खुवार ॥१४॥

शब्दार्थ — अनुमान = माना हुआ; तात्पर्य में भ्रम। प्रचंड = प्रबल। नास्ति = असत्य। खुवार = ख्वार; परेशान; पीड़ित।

भावार्थ — वह भ्रांति ऐसी प्रबल है कि जिसमें पैठी उसको ब्रह्माकार बना दी। जब जीव व्यापक ब्रह्म बना जो वस्तुतः कुछ नहीं है, तब वह पीड़ित हुआ ॥ १४ ॥

विशेष—ब्रह्म नाम की वस्तु जो वस्तुतः कुछ नहीं है, व्यापक मानते हैं। कहते हैं वही चाँद, पृथ्वी, सूर्य, नक्षत्र एवं अखिल विश्व के रूप में विद्यमान है। जो उसी ब्रह्म को अपना स्वरूप मानकर ब्रह्माकार बनता है वही जगताकार है, वही दुःखों का पात्र है।

निज झाँईं संभव लखै, सो अनुमान मिटाय।
जीव ब्रह्म माया मनहिं, देखु परख थिति पाय ॥१५॥

शब्दार्थ — झाँईं = छाया, अँधेरा, धोखा। संभव = उत्पन्न। लखै = समझे। थिति = स्वरूपस्थिति।

भावार्थ — उस कल्पित मान्यता को अपने ही धोखा से उत्पन्न हुई समझकर उसे मिटावे; और जीव, ब्रह्म, माया तथा मन का तात्त्विक भेद समझ एवं परख कर स्वरूपस्थिति की प्राप्ति करे ॥१५॥

विशेष — अपने चेतनस्वरूप से पृथक जितनी मान्यताओं में अहन्ता-ममता की जाती है, सब अपने ही धोखा एवं भ्रम का परिणाम है। अतः उन्हें दूर करके ही शांति मिल सकती है। जीव ही ब्रह्म, माया और मन की कल्पना करता है। वही अपनी भूलवश उनमें उलझता है।

निरपच्छिक जे जीयरा, ते तारण भव सेत।
ब्रह्म महानिधि मन लहर, माया रतन अपोत ॥१६॥

शब्दार्थ — निरपच्छिक=निष्पक्ष। सेत=सेतु, पुल। निधि=आधार। अपोत=पोत कहते हैं नावका या जहाज को, अपोत का अर्थ हुआ जहाँ जहाज न चल सके, दुर्गम।

भावार्थ — जो निष्पक्ष व्यक्ति है वह तो (स्वयं तर ही जाता है) संसारसागर से दूसरों को तारने के लिये पुल बन जाता है; और ब्रह्म की कल्पना तो महान दुर्गम समुद्र है, जिसमें एक से अनेक होने के संकल्पों की तरंगे तथा माया के रत्न हैं ॥१६॥

हंस स्वतः आनन्द पद, सोई पद है जीव।
सोई पदारथ सोई तन, लहै कुशल निजकीव ॥१७॥

शब्दार्थ — हंस=विवेकी। आनन्दपद=जीवन्मुक्तिसुख की स्थिति; यहाँ आनन्द विधिपरक है। पदारथ=पदार्थ, वस्तु, दया, क्षमा, शील, विचारादि सद्गुण। तन=देह, हंस देह, विवेक की भूमिका।

भावार्थ — विवेकी पुरुष सदैव स्वतः जीवन्मुक्ति सुख की स्थिति में रहते हैं; यही जीव की वास्तविक स्थिति है। वे उन्हीं सद्गुणों तथा उसी हंसभूमिका को लेकर अपना और दूसरे का कल्याण करते हैं ॥१७॥

६—जीव स्वतः कैसे है, वह भ्रम में क्यों है, भ्रम से छूटता कैसे है ? तथा स्वतः बोध होने का प्रकार

शिष्य प्रश्न—५

चौपाई—४

स्वतः जीव कैसे होते स्वामी। काहे भयउ जगत अनुगामी ॥ १ ॥
झाँई संधि कालका फेरा। काहे परै सो करो निवेरा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — स्वतः=अपने आप। अनुगामी=पीछे चलने वाला, दास। झाँई=परिछाईं, धब्बा, धोखा, जड़-चेतन-अभिन्न ब्रह्म की मान्यता। संधि=दरार, भेद, अपने से पृथक ईश्वर की मान्यता। काल=कल्पना, देवी-देवता, यंत्र-मंत्र, विषयासक्ति, सुख-दुःख। निवेरा=निर्णय, सुलझाव।

भावार्थ — हे स्वामी ! जीव कैसे अपने आप है ? फिर क्यों जगत का दास बना है ? ॥ १ ॥ जीव काल, संधि और झाईं के चक्कर में क्यों पड़ता है ? इसका निर्णय एवं सुलझाव कीजिये ॥ २ ॥

पुनि कैसे सो निज पद पावा। कैसे मनमाया भरमावा ॥ ३ ॥
एक एक निर्णय कहि दीजे। निःसंदेह बुद्धि मम कीजे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — निजपद = अपनी स्थिति; अपने चेतनस्वरूप में शांति ।

भावार्थ — पुनः उनमें से कोई-कोई किस प्रकार अपनी स्वरूप स्थिति को पा जाते हैं ? और दूसरे जीव कैसे मन तथा माया के चक्कर में भटकते हैं ? ॥ ३ ॥ इस प्रकार एक-एक बात का निर्णय करके समझा दीजिये; और हमारी बुद्धि को संदेहरहित कर दीजिये ॥ ४ ॥

निःसंदेह होय जब येहा । झाँईं संभव मिटै संदेहा ॥ ५ ॥
निजपद निजदेही बल सारा । पैठे गुरुमुख करै बिचारा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — झाँईं = धोखा । संभव = उत्पन्न । निजपद = अपना चेतन स्वरूप । निजदेही = हंसभूमिका; दैवीसम्पदा । सारा = सार; सर्वोत्तम; सत्य । पैठे = पैठना; प्रवेश करना ।

भावार्थ — जब यह जीव स्वस्वरूप का बोध प्राप्त करके निस्संदेह हो जाता है, तब उसके धोखा से उत्पन्न हुए समस्त संदेह एवं अज्ञान मिट जाते हैं ॥ ५ ॥ वह गुरुमुख निर्णयवती वाणियों में प्रवेश करके विचार करता है और अपने चेतन पारख स्वरूप तथा सद्गुणों के सर्वोच्च बल से स्वस्वरूप में स्थित हो जाता है ॥ ६ ॥

गुरु उत्तर–५

दोहा—ऐसे सुनि शिष्यके वचन, विनय सहित श्रुति प्रीति ।
बिहँसि के अशरण शरण गुरु, कही यथारथ नीति ।१८॥

शब्दार्थ — बिहँसि = मुस्करा कर । नीति = व्यवहार की रीति; युक्ति, बोध होने का उपाय ।

भावार्थ — इस प्रकार शिष्य के विनम्रतापूर्ण, कान को मीठे लगने वाले वचन सुनकर दीनों को आधार देने वाले सद्गुरु मुस्कराकर बोध होने की वास्तविक युक्ति कही ॥ १८ ॥

हे शिष्य उत्तम प्रश्न यह, कीन्हेंउ सब सुखदैन ।
मन वच कर्म अनुमान को, नाश सुलभ सुख चैन ॥१९॥

शब्दार्थ — सुखदैन = सुख देने वाला । अनुमान = अटकल; अन्दाज; भ्रम, अज्ञान । सुलभ = सहज में ।

भावार्थ — हे शिष्य ! सब सुख देने वाला तुमने उत्तम प्रश्न किया है । इसके समाधान का मनन करने से मन, वाणी, कर्म के सारे अज्ञान सहज में नष्ट हो जायेंगे और जीव वास्तविक सुख-शांति प्राप्त करेंगे ॥ १९ ॥

जीव ब्रह्म दोउ सृष्टि को, कल्पित माया हं ।
अहंब्रह्म यह कल्पना, अखिल सृष्टि आरम्भ ॥२०॥

शब्दार्थ — जीव = जीवसृष्टि, व्यष्टि; भिन्नत्व । ब्रह्म = ब्रह्मसृष्टि, समष्टि, एकत्व । हं = अहम्; अहंकार । माया = धोखा । अहंब्रह्म = मैं ब्रह्म ।

भावार्थ — जीवसृष्टि तथा ब्रह्मसृष्टि अर्थात व्यष्टि-समष्टि दोनों का कारण है कल्पित माया में अहंकार । 'मैं ब्रह्म जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हूँ' यह धारणा एक कल्पना है जिससे कि सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं ॥ २० ॥

विशेष — किसी जीव का शरीर निर्मित होना तथा उसके परिवार, धन, निवासस्थान, नाम, रूपादि का घेरा जीवसृष्टि या व्यष्टि कहलाता है । और सम्पूर्ण विश्वका निर्माण व घेरा को ब्रह्मसृष्टि या समष्टि कहते हैं । इस विश्व को कभी कोई रचा हो यह एक भ्रम है । वस्तुतः यह संसार सदा से है । जीव अज्ञानवश अनादिकाल से जन्म-मरण के चक्कर में घूमते हैं ।

ब्रह्म सृष्टिमा जीयरा, वायस जैसे जहाज ।
थिति नहीं वार पार नहीं, हेर फेर रहै जहाज ॥२१॥

शब्दार्थ — वायस = कौआ, काक । वारपार = इस ओर से उस ओर तक । हेरफेर = परिवर्तन, उलट-पुलट ।

भावार्थ — ब्रह्मसृष्टि में जीव उसी प्रकार विश्रांति नहीं पा सकता जिस प्रकार समुद्री जहाज पर बैठा कौआ । जहाजवालों के द्वारा खदेड़े जाने के कारण न तो वह जहाज पर बैठने पाता है और लम्बा रास्ता होने से न तो समुद्र के पार जा सकता है । अन्ततः वह उलट-पुलट कर जहाज के पास ही मंडराया करता है ॥ २१ ॥

विशेष —किसी बन्दरगाह पर एक जहाज खड़ा था, जिसपर शाम को एक कौआ आकर बैठ गया । जहाज वालों ने उसे रात ही में हाँक दिया । वह सुबह तक सैकड़ों मील दूर चला गया । प्रातःकाल होने पर जहाज के अधिकारी ने कौआ को देखा और उसे बंदूक की आवाज से उड़ा दिया । वह उड़कर मीलों गया, परन्तु जल के अतिरिक्त वह कुछ नहीं देखा । इसलिये वह हार-थक कर पुनः उसी जहाज पर आगया । जहाज अधिकारी ने पुनः उसे उड़ाया । इस प्रकार न तो वह जहाज पर आराम से रहने पाता है और समुद्र के उस क्षेत्र से धरातल अत्यन्त दूर होने से न तो वह वहाँ से जाकर अलग विश्रांति पाता है ।

इसी प्रकार लोगों ने इस संसारसागर में कल्पित ब्रह्म को एक जहाज माना है । जीव उस ब्रह्म में स्थित होकर विश्रांति चाहता है; परन्तु उसमें तो जगत बनने की मूल एवं स्वभावसिद्ध इच्छा है । अतएव ब्रह्म जगत का अधिष्ठान होने से विकारी व

दुःखपूर्ण ठहरा; फिर उसमें स्थित होने से उसे विश्रांति कहाँ ? और पारख न होने से उसे छोड़कर अलग भी जीव को विश्रांति नहीं दिखती; अतएव वह दुःखी बना रहता है।

जीव कल्पना ब्रह्म भौ, ब्रह्म सृष्टि इमि गूढ़।
जीव परे तेहि सृष्टिके, पंच देहिमा मूढ़ ॥२२॥

शब्दार्थ — **गूढ़** = छिपा हुआ; समझने में कठिन। **पंचदेहिमा** = पाँच देहों में; अथवा पंचविषयों से पूर्ण देह में। **मूढ़** = मुग्ध; हक्का-बक्का, हैरान, जड़बुद्धि।

भावार्थ — वस्तुतः मनुष्य जीव की कल्पना से ही ब्रह्म की उत्पत्ति हुई है; अर्थात ब्रह्म एक कल्पित मान्यता है। और उस ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति इस प्रकार माना है जो समझने में दुर्गम ही नहीं, अपितु असम्भव है। क्योंकि ब्रह्म और उससे सृष्टि दोनों असत्य है। जीव उसी सृष्टि के पंचदेहों के प्रपंच में विमोहित बनकर पड़ा है ॥ २२ ॥

विशेष — सृष्टि ब्रह्म से नहीं हुई है। सृष्टि दो प्रकार है एक जड़ात्मक, दूसरा जड़-चेतनात्मक। पृथ्वी, चाँद, सूरज, नक्षत्र, वृक्ष, पहाड़, नदी, पवन आदि जड़ात्मक हैं और मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज देहों की उत्पत्ति तथा उनके द्वारा निर्मित नाना पदार्थ जड़-चेतनात्मक हैं। जड़ात्मकसृष्टि बिना चेतन के स्वाभाविक प्रवाह रूप अनादि है, और जड़-चेतनात्मकसृष्टि जीवों के अपने स्वरूप के अज्ञान से वासनावश प्रवाह रूप अनादि है।

जीव सृष्टि में विमोहित होकर स्थूल देह के गलत कर्मों में, सूक्ष्मदेह के भ्रमपूर्ण उपासनाओं में, कारणदेह के गलतयोग में, महाकारणदेह के गलतज्ञान में एवं कैवल्य देह के जड़-चेतन-अभिन्न अद्वैत के भ्रम में पड़कर भटक रहे हैं।

पंचै पंचौ पंचधा, पाये पाँचन पाँच।
जीव प्रपंचे पंचके, कहुँ न पावै बाँच ॥२३॥

शब्दार्थ — **पंचै** = पंच विषय – शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध। **पंचौ** = पंचकोश – अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय, विज्ञानमय। **पंचधा** = धारण किये हुए पंच शरीर–स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य। **पाँचन पाँच** = पाँच पंचे पच्चीस प्रकृति—हाड़, चाम, बाल, मांस, मज्जा; लार, पसीना, रक्त, वीर्य, मूत्र; भूख, प्यास, नींद, आलस्य, जम्हाई; बोलना, चलना, उठना, बैठना, दौड़ना; तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय। वस्तुतः काम, क्रोध लोभ, मोह और भय प्रकृति नहीं अपितु विकार हैं इसीलिये सद्पुरुषार्थ से छूट जाते हैं। **बाँच** = बँचना; छुटकारा।

भावार्थ — जीव पंचविषय, पंचकोश, पंचदेह तथा पचीस प्रकृति को प्राप्त होकर पाँच के प्रपंच में पड़ा है और वह इससे छूटकर कहीं स्थितिभूमिका नहीं पा रहा है ॥ २३ ॥

पंचाइत गुरुमुख लखै, पाँच पचीसों त्याग ।
गुरु पंचाइत न्याव बिनु, यह प्रपंच अनुराग ॥२४॥

शब्दार्थ — पंचाइत = पंचायत, सत्संग । अनुराग = प्रेम; आसक्ति ।

भावार्थ — सत्संग में बैठकर गुरुमुख सारवाणियों को समझे और पंचविषय, पंचकोश, पंचदेह, पचीस प्रकृति–इन सबकी आसक्तियों का त्याग करे । गुरुसत्संग तथा उनका निर्णय न जानने से ही इन प्रपंचों में आसक्ति हो रही है ॥ २४ ॥

चौकड़ी— २

जीव कल्पना एकोहं । सोई कहावै सच्चिद ब्रह्म ॥ १ ॥
आनंद अहंकार सो माया । ब्रह्म बाच मातै सब जाया ॥ २ ॥

शब्दार्थ — एकोहं = एकोऽहं, एकः अहम्, एक मैं । बाच = वाच, कथन । मातै = मतवाला होना; मद में भूल जाना । जाया = उत्पन्न हुआ ।

भावार्थ — मनुष्य ने यह कल्पना की कि प्रथम ब्रह्म ने कहा कि 'मैं एक हूँ'; यह ब्रह्म ही सद्-चिद् कहलाता है ॥ १ ॥ इस अहंकार में उसे आनन्द आया और वही आनन्द माया रूप बना और 'एक मैं अनेक रूपों में हो जाऊँ' इस ब्रह्मानन्द में वह मस्त हो गया और उसने सारी सृष्टि उत्पन्न की ॥ २ ॥

सूक्ष्म अहं धूनि ते ॐकार । सोई सोहं वोहं ब्रह्मास्मि सार ॥ ३ ॥
ॐकार ते निरंजन रूप । पाँचों देहि प्रथम अनुरूप ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अहं = अहम्, मैं । धूनि = ध्वनि । ब्रह्मास्मि = ब्रह्म हूँ । सार = सर्वोत्तम । निरंजन = मायातीत । प्रथम अनुरूप = पूर्वजन्म ।

भावार्थ — मनुष्य ने सूक्ष्म अहम् भाव लेकर एक धीमी ध्वनि की कल्पना की । उस ध्वनि को वह ॐकार माना । उसी को किसी ने सोऽहं, वोऽहं तथा ब्रह्मास्मि कह कर उसे सर्वोत्तम सिद्धान्त माना ॥ ३ ॥ प्रतीकात्मक ॐकार की उपासना के आगे उस ब्रह्म का स्वरूप मायातीत माना गया; और स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य इनके क्रमशः पाँच काण्ड कर्म, उपासना, योग, ज्ञान तथा विज्ञान पहले के मान्यतानुसार मनुष्य मानते गये ॥ ४ ॥

विशेष — 'ॐ' शब्द के समर्थक कहते हैं कि ॐ सबमें व्याप्त है। गाय और बैल भी कहते हैं 'ओम्'। मनुष्य भी डकारता है तब कहता है 'ओम्'। इस प्रकार रेलगाड़ी की आवाज

में अपनी कल्पना के अनुसार भिन्न-भिन्न शब्द सुनने वालों के समान ॐ की खींचतान है। वस्तुतः ॐ अ, उ, म, अर्धचन्द्र और बिन्दु से मनुष्यों द्वारा निर्मित एक काल्पनिक शब्द मात्र है।

ताते माया मन उपजाय। पाँच खानि जग की निर्माय ॥ ५ ॥
अद्‌बुद सृष्टि भया विस्तार। अरुझै सबै जहाँ तहँ कोइ डार ॥ ६ ॥

शब्दार्थ —माया = काया। मन = संकल्प। पाँच = पंच विषय, पंचकोश, पंचदेह, पंचकाण्ड आदि। अद्‌बुद = अद्‌भुत। डार = त्याग देना, छोड़ देना।

भावार्थ — कहते हैं कि एक ॐ से ही संकल्प और शरीर की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार पंचविषय, पंचदेह, पंचकाण्ड आदि के अभ्यासवश जीव जगत के नाना योनियों में शरीर निर्माण करते हैं ॥ ५ ॥ इस भाँति सृष्टिउत्पत्ति की अद्‌भुत कल्पनाओं का विस्तार हुआ। इस कल्पना में यत्र-तत्र सब फँसे हुए हैं; कोई विरले विवेकी पारखी संतों की संगत करके इन महान भ्रमों को त्याग कर बचे हैं ॥ ६ ॥

माया जनित त्रिगुण तत्त्व पाँच। प्रकृति सहित पाँच तन जाँच ॥ ७ ॥
पंचकोश में भौ यह जीव। अरुझै सबै ब्रह्म गहि पीव ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — जाँच = परख, परीक्षा। पंचकोश = अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय, आनन्दमय।

भावार्थ — वे अपनी परीक्षा से कहते हैं कि सत, रज, तम ये तीनगुण तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पंच तत्त्व, प्रकृति सहित स्थूल, सूक्ष्मादि पंच देह—सब माया से उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥ इस प्रकार ये सभी जीव पंच कोशों के प्रपंच में आसक्त होकर स्वामी के रूप में ईश्वर और ब्रह्म की कल्पना पकड़ कर उलझे हुए हैं ॥ ८ ॥

ऐसो संतत भयो प्रचंड। पिंड खंड ब्रह्मांड सो अंड ॥ ९ ॥
अंड सो पिंड ब्रह्मांड उपाय। पिंड ब्रह्मांड सो अंड समाय ॥ १० ॥

शब्दार्थ — संतत = फैलाया हुआ, अविच्छिन्न, बहुत; बराबर रहने वाला; लगातार। प्रचंड = तीव्र; प्रबल। पिंड = जगत के नाना पदार्थ, व्यष्टि। खंड = टुकड़े। ब्रह्मांड = सम्पूर्ण विश्व; समष्टि। अंड = ॐ; ब्रह्म। उपाय = उत्पन्न होना।

भावार्थ — इस प्रकार प्रबल कल्पनाओं का बराबर विस्तार होता गया। टुकड़े रूप जगत के कार्यपदार्थ और सबका समूह ब्रह्माण्ड ॐ रूपी अण्ड से उत्पन्न हुए मानते हैं ॥ ९ ॥ कहते हैं कि ॐकार रूप अण्ड से ही पिण्ड-ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है और अन्त में पिण्ड-ब्रह्माण्ड ॐ में लीन हो जायेंगे ॥ १० ॥

रूप निरंजन अंड प्रमान। उपजै खपै अंड निर्मान ॥११॥
अंड अकाश सनातन सोय। अंड से उपजै अंड में होय ॥१२॥

शब्दार्थ — **अंडप्रमान** = अण्डाकार के समान।

भावार्थ — उस मायातीत ब्रह्मका स्वरूप अण्डे के समान बताते हैं; कहते हैं कि उसी अण्डे से जगत उत्पन्न होता है और उसी में लीन होता है तथा पुनः-पुनः उसी से उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥ वह सनातन ब्रह्म अण्डे या आकाश के समान है। सब कुछ उसी अण्डे से उत्पन्न होता है तथा अन्ततः उसी में लीन होता है ॥१२॥

विशेष — मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में यह बतलाते हैं कि किस प्रकार अण्डे से जगत हुआ।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

अर्थ — "जल को 'नारा' कहते हैं, क्योंकि वह नर (रूप परमात्मा) की सन्तान है। वह 'नारा' (जल) परमात्मा का प्रथम आश्रय (निवासस्थान) है, इस कारण से परमात्मा 'नारायण' कहे जाते हैं" ॥१०॥

नारायणपरोव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्　।
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपात्र मेदनी ॥१०।४॥

अर्थ — "अतिशय अन्धकार युक्त और अव्यक्त संसार रूपी व्यक्त वह अण्डा नारायण से उत्पन्न हुआ। उस अण्डे के भीतर ये (अनेक) लोक और सात द्वीपों वाली पृथ्वी थी ॥ १०।४ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवाऽऽत्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥ १२ ॥

अर्थ — "ब्रह्मा ने उस अण्डे में (अपने वर्ष से) एक वर्ष (मनुष्य के वर्ष के इकतीस खर्ब, दश अर्ब, चालीस करोड़ वर्ष) तक निवास करके अपने ध्यान के द्वारा उस अण्डे को दो टुकड़े कर दिये ॥१२॥"

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥ १३ ॥

अर्थ — (और उन्होंने) उस अण्डे के उन दो टुकड़ों से स्वर्ग तथा पृथ्वी की सृष्टि की और बीच में आकाश, आठ दिशाओं तथा जल का आश्रय अर्थात समुद्र की सृष्टि की ॥ १३ ॥

इस प्रकार अण्डे से जगत की उत्पत्ति मानी है, जो एक निराधार कल्पना है।

दोहा— ब्रह्म ईश माया मनहि, कल्पित नाना रूप ।
जग चहुँ खानि लोक त्रय, गुणन सहित अनुरूप ॥२५॥

शब्दार्थ — अनुरूप = समान रूप वाला; सदृश ।

भावार्थ — मनुष्य ने अपने मन से कल्पना करके ब्रह्म, ईश्वर, माया आदि के नाना रूप खड़ा किया है । जगत में मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज चार खानियाँ हैं; पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग ये तीन लोक माने हैं और सत, रज तथा तम ये तीन गुण हैं और इन गुणों के अनुरूप जीवों की स्थितियाँ हैं ॥ २५ ॥

विशेष — मनुष्य मन से कल्पना करके ब्रह्म, ईश्वर, माया, जगत, चारों खानियाँ, तीन लोक, तीन गुण तथा उनके सदृश अपने आपको भूलवश मान रखा है । यह नहीं समझता कि मैं शुद्ध चेतन इन सारे दृश्यों से भिन्न एवं अविनाशी हूँ ।

जीव रहटमा सो परे, सूक्ष्म बहु छिरियाय ।
जहाँ नास्ति पावै तहाँ, निश्चय प्रेम लगाय ॥२६॥

शब्दार्थ — रहट = रहँट, चक्कर । छिरियाय = छिटकना, फैलना । नास्ति = कुछ नहीं, असत्य ।

भावार्थ — इस प्रकार जीव जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़े हैं और उनकी सूक्ष्म कर्मवासनायें स्थूलकर्मभोगों के रूप में प्रकट होकर बहुत फैलती रहती हैं । जहाँ कुछ नहीं है ऐसे धोखाधार में जीव विश्रांति पाना चाहते हैं और उसी भ्रम में निश्चय पूर्वक प्रेम लगाते हैं ॥ २६ ॥

चौपाई—५

इमि अबोध बहुते दिन बीता । दुखहि सुख करि सबै गनीता ॥१॥
दुख को मर्म न जानै मूढ़ा । दुख भुगतै तेहि सुख करि गूढ़ा ॥२॥

शब्दार्थ — अबोध = अज्ञान । गनीता = गनते हैं; समझते हैं । गूढ़ा = रहस्य ।

भावार्थ — इस प्रकार अज्ञान में पड़े-पड़े जीव के अनादिकाल के समय बीत गये; और सभी भूले जीव इस जड़व्यापार रूपी दुःख को सुख रूप ही समझते रहे ॥१॥ विमोहित मानव अपने दुःखों का भेद नहीं जानता । वह रात-दिन दुःख भोगता है; परन्तु उसे सुख का रहस्य समझता है ॥ २ ॥

छितरी समेटि पुनि छितरी अरुझा । अबूझहु बूझे बूझ सों अबूझा ॥३॥
इमि अंधधुंध भयो परचंडा । जीवहि बिकल नहिं चैन ब्रह्मंडा ॥४॥

शब्दार्थ — छितरी = छाता, फैलाव । अबूझहु = न समझने योग्य, अज्ञानपूर्ण, जड़-कल्पना । बूझ = समझ, चेतना । अंधधुंध = अंधाधुन्ध, अंधेरा, अज्ञान । ब्रह्मंडा = संसार ।

भावार्थ — यदि मनुष्य इन्द्रियों के विषयभोग तथा विषयकामना के फैलाव को समेट कर शांति की ओर बढ़ना चाहता है, तो वह ब्रह्म बनकर उससे जगत होने के महा फैलाव में फँस जाता है। जो अज्ञानपूर्ण कल्पित बातें हैं उन्हें समझने के लिये लोगों की बड़ी चेष्टा है और समझने योग्य अपने चेतनस्वरूप को नहीं समझना चाहता ॥३॥ इस प्रकार अज्ञान अंधेरा प्रबल है और इस कारण इस संसार में जीव को विश्रांति नहीं मिल रही है ॥ ४ ॥

ब्रह्माकार माहिं नित रहै । परख यथारथ नाहीं गहै ॥५॥
बिनु परखै यह आदि कहानी । ब्रह्म जीव माया सहिदानी ॥६॥

शब्दार्थ — सहिदानी=पहिचान, लक्षण।

भावार्थ — वाणी के पक्ष में पड़कर 'मैं ही अग जग ब्रह्म हूँ' इस ब्रह्माकार वृत्ति में कितने ही लोग रहते हैं; उसकी यथार्थ परीक्षा नहीं करते ॥ ५ ॥ यह बहुत दिनों से चली आई हुई कथा की परख किये बिना ब्रह्म, जीव तथा माया की पहचान नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

विशेष — जीव अविनाशी शुद्ध-बुद्ध है; और ब्रह्म तथा माया उसकी कल्पनायें हैं।

बहुत कष्ट जीवहिं जब भयऊ । तब सो ब्रह्मपद बोधित ठयऊ ॥७॥
ब्रह्म भये थिति कल्पित पाई । कल्पित सृष्टि कहाँ थिर भाई ॥८॥

शब्दार्थ — ठयऊ=ठानना, दृढ़ निश्चय के साथ आरम्भ करना। थिति=स्थिति।

भावार्थ — जब जीव को कुछ विवेक से विषयभोगों में अत्यन्त कष्ट मालूम हुआ; तब वह किसी गुरुद्वारा सुनकर ब्रह्मस्वरूप के ज्ञान को प्राप्त करने का निश्चय किया॥७॥ तदनन्तर वह श्रवण-मननादि करके अपने को ब्रह्म माना; परन्तु ब्रह्म होने पर उसने कल्पित स्थिति पाई। हे भाई ! जिस ब्रह्म में सदैव सृष्टि की कल्पना विद्यमान है वहाँ शांति कहाँ है ? ॥ ८ ॥

अनुभव करहिं पड़हिं तेहि गाढ़ा । ईश ब्रह्म पद करि करि ठाढ़ा ॥ ९ ॥
इमि अनुमान बहुत दिन बीता । दुख दुख दुख दुसह नौनीता ॥१०॥

शब्दार्थ — अनुभव=प्रत्यक्षज्ञान, परन्तु यहाँ अनुभव व्यंग के लिये है। गाढ़ा=कठिन, विकट। नौ=नये, नवीन। नीता=नित्य, रोज।

भावार्थ — अपने शुद्ध चेतन स्वरूप से पृथक कल्पित ईश्वर-ब्रह्म आदि के रूप खड़ा कर-करके उसके विकट भ्रम में पड़ते हैं, परन्तु उनको अहंकार है कि मैं अनुभव करता हूँ अर्थात यह प्रत्यक्ष ज्ञान है ॥ ९ ॥ इस प्रकार अनुमान कल्पना में पड़े-पड़े जीवके अनादि के समय बीत गये और उसको तीनतापों के नित्य नये-नये भयंकर दुःख घेरे रहे ॥ १०॥

एक दिना अतिशय अकुलाना । सरधा होय बहुत बिलखाना ॥११॥
अशरण शरण बिरद संभारी । साँचा होय प्रेम जिवधारी ॥१२॥

शब्दार्थ — सरधा = श्रद्धा, आस्था । बिलखाना = दुखी हुआ, व्याकुल हुआ । अशरण = आश्रयहीन । शरण = आश्रय, रक्षा का स्थान । बिरद = नाम, बड़ाई, यश ।

भावार्थ — अनेक जन्मों के शुद्ध संस्कारी कोई सुज्ञजीव को किसी दिन संसार के दुःखों से अत्यन्त अकुलाहट हो जाती है । उसे दुःखों से सर्वथा निवृत्ति तथा परम-शांति की प्राप्ति में प्रबल श्रद्धा जग जाती है, और वह संसार के मोह बन्धनों से अपने आप को छुड़ाने के लिये बहुत व्याकुल हो जाता है ॥११॥ जो विषयासक्ति तथा अबोधवश आश्रयहीन एवं अरक्षित था, वही निर्विषय तथा स्वरूपबोध की ओर चलने से सुरक्षित स्थान को पाकर अपने हंसगुण के सम्मान तथा यश को सम्हाल लेता है; क्योंकि उसमें सच्चाई से अपने आप को दुखों से छुड़ाने के लिये प्रेम उत्पन्न हुआ है ॥ १२ ॥

प्रेम गोहार शुद्ध मन थीरं । गुरु सोइ कल्पित मिटै समीरं ॥१३॥
देखु दृष्टि निज कल्पित जाला । निजपद द्रष्टा भये निहाला ॥१४॥

शब्दार्थ — प्रेम गोहार = प्रेमपुकार, आंतरिक अभिलाषा । समीरं = समीर, वायु, वासना । निजपद = स्वस्वरूप चेतन । निहाला = कृतार्थ ।

भावार्थ — वैसे सुज्ञजीव को मोक्ष की आंतरिक प्रबल अभिलाषा जग जाने से उसका अन्तःकरण शुद्ध तथा मन शांत हो जाता है । इस प्रकार जिसकी कल्पित वासनाओं का वायु शांत हो जाता है, वही गुरु रूप है ॥१३॥ वे अपने बनाये हुए पूर्व के अनेक मान्यताकृत जालों को अपनी विवेकदृष्टि से देख लेते हैं, और उन्हें सर्वथा त्यागकर तथा स्थूल-सूक्ष्म सभी मान्यताओं के द्रष्टा बन स्वस्वरूप में स्थित होकर, कृतार्थ हो जाते हैं ॥ १४ ॥

सोई दृष्टि निज बोधहि पाई । गुरु पारख निज प्रगट जनाई ॥१५॥
सारशब्द निर्णय यथारथ । गुरुमुख सब सुख लहै न अनारथ ॥१६॥

शब्दार्थ — निज बोधहि = स्वरूपज्ञान । अनारथ = अनर्थ, विपरीत अर्थ ।

भावार्थ — वे सुज्ञजीव उपर्युक्त स्वतः आन्तरिक अभिलाषा एवं परख दृष्टि द्वारा स्वस्वरूप का ज्ञान पा जाते हैं । वे गुरु रूप बनकर अपने पारख ज्ञान को सर्वत्र प्रकाशित करके उपदेश करते हैं ॥१५॥ ऐसे पुरुष सारशब्द व गुरुमुख वाणी, जिसका अर्थ है यथार्थनिर्णय, धारण करते हैं; अतएव वे पुनः कभी अनर्थ को नहीं प्राप्त होते ॥ १६ ॥

सोइ गुरु प्रथम शिष्य मत येहा । परख प्रताप मगन न संदेहा ॥१७॥
बन्दीछोर ताहि को नामा । भेष साधु मंगलगुणधामा ॥१८॥

शब्दार्थ — मगन = प्रसन्न । बन्दीछोर = बन्धन छुड़ाने वाले । मंगल = शुभ; कल्याण ।

भावार्थ — हे शिष्य ! यह मेरा मत है कि उपर्युक्त प्रकार से जो नररत्न अपने शुद्ध संस्कार तथा प्रबल विवेक बल से अपने सारे पूर्वकृतबंधनों को काटकर स्वस्वरूप में स्थित हुए वही प्रथम सद्गुरु हुए । वे अपनी तीक्ष्ण परखदृष्टि के प्रभाव से सदैव जीवन्मुक्ति सुख में निमग्न रहते हैं, उन्हें कोई संदेह नहीं रहता ॥ १७ ॥ उन्हीं का नाम है बंधन छुड़ाने वाले बन्दीछोर । वे साधु वेष से सुशोभित, सद्गुणों के धाम तथा कल्याणरूप होते हैं ।

विशेष — उपर्युक्त प्रसंग में १० से १८ चौपाइयों तक ग्रन्थकर्ता ने यह चित्रण किया है कि इस अनादिकाल के जगतबन्धनों में पड़े हुए असंख्य जीवों में से कभी कोई जीव अनेक पूर्वजन्मों के निरन्तर शुभकर्मों के शुद्ध संस्कारों के बल पर उन्हें बन्धनों से प्रबल वैराग्य उत्पन्न हो जाता है । वे सारे बंधनों को स्वयं तोड़ डालते हैं । वे ज्ञान के यथार्थ तली तक बिना गुरु के ही अपने आप ही पहुँच जाते हैं । यह सच है कि ऐसे महत्तम पुरुष बहुत दिनों में कभी कोई हो सकते हैं । यह घटना सद्गुरु कबीर में घटी थी । वे स्वयं पारखबोध के शोधक हुए थे ।

जो लोग यह मानते हैं कि "स्वयं-बोध होने की योग्यता इस अनादिकाल के जगत में केवल सद्गुरु कबीर को हुई है, अन्य किसी को नहीं हुई तथा भविष्य में भी किसी में नहीं होगी ।" इस मत को मानने में कठिनता है । साहित्य जगत का सारा पूर्व इतिहास ऋग्वेद काल तक का है; जो कुछ हजार वर्षों का है । इस अनादिकाल के जगत में असंख्यों स्वतःबोध द्रष्टा हो गये हों और आगे भी असंख्यों हों; इसमें क्या संदेह है ? कबीर साहेब के अतिरिक्त कोई स्वतःबोध द्रष्टा भूतपूर्व में हो गया हो या भविष्य में हो जाय तो कबीर साहेब की कोई तौहीनी नहीं; और न हुआ मानने में कोई उनकी विशेषता नहीं ।

युक्ति से भी यही सिद्ध होता है कि स्वतःबोध होने की सारी सामग्री जिसमें एकत्र हो जायेगी उसी जीव को स्वतः बोध हो सकता हैं । सब जीव स्वरूपतः समान हैं । कबीर साहेब का जीव भी अन्य से स्वरूपतः विलक्षण नहीं, अपितु समान ही होगा । फिर कबीर साहेब में ही वह योग्यता आये अन्य किसी जीव में कभी आये ही नहीं ऐसा क्यों ? स्वयंबोध की योग्यता केवल कबीर साहेब में ही घट सकती थी, अन्य में कभी नहीं घट सकती यह मान्यता ईश्वरवाद जैसी भ्रांति उत्पादक है । जितनी योग्यताओं के आने से कबीर साहेब को स्वयं बोध हुआ, उतनी ही योग्यताओं के आ

जाने पर दूसरे जीव को भी स्वयं बोध हो सकता है। स्वयं बोध होने की सात योग्यताओं का वर्णन श्री विशाल साहेब के प्रवचन द्वारा श्री प्रेम साहेब ने इस प्रकार किया है—

(१) अखण्ड सुख की इच्छा करना, (२) दुःख में कष्टित होना, (३) अनेक जन्मों के शुभ संस्कार समय पर उदय होना, (४) विषयों में सुख मानकर भोगते हुए बार-बार असंतुष्ट ही रह जाना, (५) मोक्ष की इच्छा करना (६) अनेक मनुष्य तथा अनेक जन्तुओं के संग से अनेक प्रकार के ज्ञान उत्पन्न होना, (७) स्वयं अपर प्रकाश। ये सात योग्यतायें जिस घट में एकत्र हुई। वे स्वयं जंगल में बूटी शोध लेने वत, स्वतः पारख पद का प्रकाश किये हैं।

(मुमुक्षु-स्थिति, १७ वीं शिक्षा)

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्णजी महाराज उद्धवजी से कहते हैं—

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्व विचक्षणाः।
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात्॥

संसार में जो मनुष्य 'यह जगत क्या है ? इसमें क्या हो रहा है ? इत्यादि बातों का विचार करने में निपुण हैं वे चित्त में भरी हुई अशुभ वासनाओं से अपने आप को स्वयं अपनी विवेकशक्ति से ही प्रायः बचा लेते हैं।

(श्री मद्भागवत ११।७।१९।गी० प्रे०)

ज्ञान सोई जो यह मत जानै। भक्ति सोई गुरु साधुहि मानै॥१९॥
थिरपद गुरुमुख साधु जहाना। ताके रहस चरित्र विधिनाना॥२०॥

शब्दार्थ — थिरपद = स्वरूपस्थिति। जहाना = जहान, जगत। रहस = रहनी, आचरण; दिव्य गुण तथा आचरण। चरित्र = आचरण, कर्म; शील; स्वभाव।

भावार्थ — यथार्थ ज्ञान उसी को है जो उपर्युक्त विचारों को समझता हो और वही भक्ति का वास्तविक स्वरूप है जहाँ विवेकी साधु-गुरु को श्रद्धा पूर्वक माना जाता है॥ १९॥ संसार में सन्तजन गुरुमुख-निर्णयवचनों के अनुसार चलकर स्वरूपस्थिति प्राप्त करते हैं। उनके उत्तम गुण, आचरण, शील, स्वभाव नाना प्रकार के होते हैं॥२०॥

तत्त्व प्रकृति कहब विस्तारा। यह देही को जो व्यवहारा॥२१॥
निर्गुण सगुण उधमज दोई। परख यथारथ मिथ्या सोई॥२२॥

शब्दार्थ — यह देही = मनुष्य देह, हंस देह; विवेकभूमिका। निर्गुण = गुणरहित ब्रह्म। सगुण = गुणयुक्त विराट विश्वब्रह्म। उधमज = उत्पन्न; कल्पना से पैदा हुआ।

भावार्थ — हे शिष्य ! इस मनुष्य देह में जो पूर्ण मानवता एवं मोक्षदशा के व्यवहार हैं उन शुद्ध तत्त्व-प्रकृतियों का हम विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे ॥ २१ ॥ अपने चेतन स्वरूप से पृथक कोई निर्गुण या सगुण ब्रह्म आधार मनकी कल्पना से उत्पन्न है। उसकी यथार्थ परीक्षा करने से वह असत्य सिद्ध होता है ॥ २२ ॥

दोहा— ॐ अंड कल्पित सोई, सो सब प्रगट लखाव।
याकी तत्त्व प्रकृति अब, कहब यथारथ भाव ॥२७॥

शब्दार्थ — याकी = इसकी, हंसदेह, मानवता की।

भावार्थ — सबकामूल माना हुआ अण्डाकार ॐ, वह तो मनःकल्पित है, वह सब तो स्पष्ट करके समझा दिया है (शेष आगे समझाया जायगा)। अब यहाँ हंसदेह जीवन्मुक्ति की रहनीस्वरूप शुद्ध तत्त्व प्रकृति तथा गुणों का यथार्थ रहस्य कहूँगा ।२७।

७—पाँच पक्के तत्त्व तथा पचीस पक्की प्रकृतियों का वर्णन

दोहा—शुद्ध साँच सो प्रथम पद, हंस जीव कहि ताहि।
साँच धीरता दयालता, शील विचार समाहि ॥२८॥

शब्दार्थ — प्रथम पद = पहला नम्बर; सर्वोत्तम, मनुष्य शरीर। **समाहि** = समाये हुए; लीन।

भावार्थ — मनुष्य शरीर पवित्र, सर्वोत्तम तथा सत्य तक पहुँचाने वाला है। इस मनुष्य शरीर के निवासी को ही हंस जीव, विवेकी मनुष्य तथा मोक्ष का अधिकारी कहा जाता है। क्योंकि मनुष्य के अन्तःकरण में स्वाभाविक रूप से सत्य, धैर्य, दया, शील और विचार समाये हुए हैं ॥ २८ ॥

विशेष — सभी खानियों के शरीरों में मनुष्य शरीर ही सर्वोपरि है मनुष्य के अन्तःकरण में कल्याण करने की पूरी सामग्री स्वाभाविक विद्यमान है। उसे उसका उपयोग करना चाहिये। उन सद्गुणों को आप दैवीसम्पदा, मानवता तथा हंस लक्षण कह सकते हैं। उनके रूपों का वर्णन यहाँ पाँच तत्त्व, तीन गुण तथा पचीस प्रकृतियों के नाम से किया जा रहा है।

ई पाँचो हैं तत्त्व सो, संगी हंसा केर।
साधु गुरुमत गहन मन, कल्पित सृष्टि हेर ॥२९॥

शब्दार्थ — गहन = ग्रहण। **हेर** = आसुरी माया काम-क्रोधादि (यहाँ हेर का अर्थ खोज या तलाश नहीं है)।

भावार्थ — उपर्युक्त सत्य आदि पाँचों सद्गुण रूपी तत्त्व मुमुक्षु जीव के कल्याणमार्ग के साथी हैं। अतएव मुमुक्षु को चाहिये कि विवेकी साधु-गुरु के विचार

हंसगुण को हृदय से ग्रहण करे और आसुरी माया की जो कल्पित सृष्टि काम, क्रोध, लोभ, मोह, भयादि हैं उनका त्याग करे ॥ २९ ॥

इहै कल्पना परखकी, त्रिगुण सुनहु परचार ।
विवेक वैराग्य औ गुरुभक्ति, साधु भाव उर धार ॥३०॥

शब्दार्थ — परचार = प्रचार; स्पष्ट । साधुभाव = त्याग; शील ।

भावार्थ — इन कल्पनाओं को परखने के लिये तीनों गुणों को स्पष्ट रूप से सुनो; वे हैं विवेक, वैराग्य और गुरुभक्ति; त्यागभाव पूर्वक इनको धारण करो ॥ ३० ॥

विशेष -- यदि जीवन में विवेक, वैराग्य तथा गुरुभक्ति धारण हो, तो निश्चय ही सभी कल्पनायें छूटकर जीव शुद्ध हो जाय ।

अब प्रकृति पचीस को, कहौं सुनो परसंग ।
पाँच पाँच ते पाँच भौ, जेहि विधि बाढ़ो अंग ॥३१॥

शब्दार्थ — परसंग = प्रसंग, प्रकरण । अंग = भाग-विभाग ।

भावार्थ — हे शिष्य ! अब मैं पचीस प्रकृति को कहता हूँ जिस प्रकार शुद्ध पाँच तत्त्वों में एक-एक से पाँच-पाँच होकर उनके भाग-विभाग बढ़े, उस प्रकरण को सुनो ॥ ३१ ॥

साँच तत्त्व है प्रथमता, ताके जाये पाँच ।
निर्णय निर्बिंद प्रकाश थीर, क्षमा पाँचवें साँच ॥३२॥

शब्दार्थ — जाये = उत्पन्न किये ।

भावार्थ — पहला तत्त्व सत्य है । उससे पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुईं–निर्णय, निर्बिन्द, प्रकाश, स्थिर, और क्षमा ।

विशेष — सत्य, धैर्य, क्षमा, शील और विचार इन पाँच सद्गुणों को यहाँ पक्के तत्त्व या शुद्ध तत्त्व कहा गया है । इनमें से एक-एक से पाँच सद्गुणों की वृद्धि हुई है, उनको प्रकृति संज्ञा दी गयी है । पाँचों में सत्य पहला है । उसके निर्णय, निर्बिन्द, प्रकाश, स्थिर और क्षमा हैं । उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

निर्णय

जड़-चेतन, सार-असार, देह-जीव, पाप-पुण्य, विधि-निषेध का पृथक-पृथक विभाग करना निर्णय है । निर्णय में किसी प्रकार अंधकार व पक्षपात नहीं रहता ।

निर्बिन्द

बिन्द का अर्थ बुंद, वीर्य एवं प्रकारान्तर से विषयासक्ति है । और 'निर' उपसर्ग लगने से उसका उल्टा निर्विषय है । अर्थ हुआ विषयासक्ति का सर्वथा त्याग ।

प्रकाश

इसका अर्थ उजाला है। जहाँ पर किसी प्रकार का अज्ञानान्धकार नहीं है, जहाँ सारी भ्रांतियों का अंत है, उस हृदय में ही प्रकाश विद्यमान है।

स्थिर

चंचलता का अभाव। मन, वाणी, कर्मों में सुव्यवस्था। साधारण चंचलता का भी त्याग; जैसे—निरर्थक तृण तोड़ना, हाथ-पैर की उँगुलियों से जमीन कुरेदना, निरर्थक हाथ-पैर हिलाना, दूमना आदि।

क्षमा

अपराधी से भी बदला लेने की भावना न रखना। लोग तनिक-तनिक-सी गलती के बदले में गलती करने वालों को दण्ड देकर उनसे शत्रुता पूरी करते हैं। परन्तु उसमें सुधार नहीं होता। क्षमा एक ऐसा गुण है जिससे आग सदा के लिये बुझ जाती है। यहाँ यह भाव नहीं है कि सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर दण्ड का विधान न रहे। दण्ड विधान की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु हमें अपने व्यक्तिगत जीवन में पद-पद पर क्षमा की बड़ी आवश्यकता है। बदला लेने से भय, शत्रुता तथा हानियाँ दोनों ओर से बढ़ती हैं; और क्षमा कर देने से निर्भयता, मित्रता एवं शांति बढ़ती है।

धीरज दूजे तत्त्व की, प्रकृति सुनहु मन देह।
मिथ्या त्यागन गहन मत, निःसंदेह समेह ॥३३॥
चौथे सेवन साधु के, निरसन हंता भाय।
पाँच प्रकृति यह धीरता, दूजे कही गनाय ॥३४॥

शब्दार्थ — मन देह = मन देकर या मन लगाकर। गहन = ग्रहण। मत = विचार, उच्च विचार। समेह = समाना, स्थिति। निरसन = फेंकना, दूर हटाना, निवारण, खण्डन।

भावार्थ — हे शिष्य! दूसरे शुद्ध तत्त्व धैर्य की प्रकृति को मन लगा कर सुनो—मिथ्या का त्याग करना, सत्य विचार का ग्रहण करना, संदेहरहित स्थिति को प्राप्त करना, संतों की सेवा करना तथा अहंकार को दूर करना। हे भाई! दूसरे धैर्य तत्त्व की यह पाँच प्रकृतियाँ मैंने तुम्हें गिना दी ॥३३, ३४॥

विशेष — हंसदशा का धैर्य एक महान तत्त्व है। धैर्य से उत्पन्न पाँच प्रकृतियाँ मान्य हैं—मिथ्यात्याग, सत्यमतग्रहण, निःसंदेह, साधुसेवन तथा हंतानिरसन।

मिथ्यात्याग

धन, परिवार, शरीर, पंचविषय भोगों की आसक्ति तथा उनकी अहन्ता ममता एक मिथ्या धारणा है। इसी प्रकार अपने चेतन स्वरूप से पृथक् देवी-देवादि की नाना

मान्यतायें मिथ्या हैं। मान, बड़ाई, पूज्यतादि को सत्य मान लेना भी मिथ्या धारणा है। इन सब धारणाओं का सर्वथा त्याग ही मिथ्यात्याग है।

सत्यमतग्रहण

उन विचारों को ग्रहण करना जो परख की कसौटी पर भली-भाँति कसे हुए हैं; जो सर्वथा सत्य, उज्ज्वल एवं निर्भ्रान्त हैं।

निःसंदेह

शंका, संशय, संदेह का सर्वथा अंत। यह एक महान गुण है। इस अवस्था तक पहुँचे बिना मनुष्य शांति को नहीं पाता। संदेहरहित हो जाने पर मनुष्य में स्थिरता आती है। परन्तु मूढ़तापूर्वक संदेहरहित होना किसी काम का नहीं है। समझ-बूझ कर निःसंदेह होना चाहिये।

साधुसेवन

विवेकी संतों की सेवा करना। इसकी बड़ी आवश्यकता है। बिना संतों की सेवा किये साधक का अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता। संतों की सेवा का फल महान है। विवेकी संतों की सेवा, संगवास, उनका ध्यान, चिंतन तक मन को शुद्ध करते हैं।

हंतानिरसन

सभी प्रकार के अहंकार का त्याग। शरीर, धन, वर्ण, आश्रम, परिवार, समाज, मान, बड़ाई, ऐश्वर्य आदि नाशवान हैं। इनका अहंकार रखने से मनुष्य निरन्तर नीची गति को जाता है। स्थूल हो या सूक्ष्म सभी दृश्यों में से किसी का किंचिन्मात्र भी अहंकार होना जीव के बंधनों का कारण है। अतएव सभी अहंताओं का त्याग करना चाहिये।

दया तत्त्व तीजे सुनहू, तिनके पाँचों जूत।
अद्रोही सम मित्रजीव, अभय नैन अद्रूत ॥३५॥

शब्दार्थ—जूत=जुते हुए, जुड़े हुए, एक साथ। नैन अद्रूत=अद्रुतनयन, अ+द्रुत+नयन, द्रुत कहते हैं तीव्र या चंचल को, अर्थ हुआ नेत्र का चंचल न होना, स्थिरदृष्टि।

भावार्थ— हे शिष्य ! सुनो, तीसरा शुद्ध तत्त्व दया है; उसकी पाँचों प्रकृतियाँ एक दूसरे से जुड़ी हुई क्रमवद्ध हैं—अद्रोही, सम, मित्रजीव, अभय तथा अद्रुतनयन ॥३५॥

विशेष— दया तीसरा तत्त्व है। जीवन-उन्नति एवं कल्याणमार्ग में इसकी बड़ी आवश्यकता है। इससे पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई मानी जाती हैं जिनकी व्याख्या इस प्रकार है—

अद्रोही

जो किसी से वैर नहीं करता, वह अद्रोही है। वस्तुतः कोई भी प्राणी अपना वैरी नहीं है। जो मनुष्य अपने मन-इन्द्रियों को जीत लेता है वह किसी से द्रोह क्यों करे ?

सम

सबको अपने समान जानकर किसी की अवहेलना न करना ही सम या समता है। यद्यपि व्यवहार में कुछ मर्यादाओं का पालन उसे चलाने के लिये करना पड़ता है, तथापि वह पुरुष अपने हृदय से सबको समान समझता है।

मित्रजीव

जीव मात्र अपने मित्र हैं, यह भावना जिसके हृदय में रहती है उसका हृदय शुद्ध, प्रसन्न एवं शांत रहता है। अतः साधकों को सभी प्राणियों को अपना मित्र समझना चाहिये।

अभय

जो किसी से द्रोह नहीं करता, सबमें समता रखता है तथा सबजीवों से मैत्री भाव रखता है निश्चय है वह निर्भय होगा। निर्भयता एक महान सद्गुण है जिसके बिना व्यावहारिक और आध्यात्मिक दोनों उन्नत्तियाँ असम्भव हैं। निर्भय होने के लिये निष्काम और अनासक्ति की आवश्यकता है। प्रियवियोग, धन-जन-हानि, मान-हानि, शरीरनाश आदि के अनेकों भय हैं जिन्हें सर्वथा त्याग देना अत्यन्त आवश्यक है।

अद्रुतनयन

स्थिरदृष्टि। नेत्रों की चंचलता से अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं, मुख्यतः कामवासना का प्रादुर्भाव होता है।

चौथे शीलहि तत्त्व के, पाँच भेद गनि लेहु।
छुधानिवारण प्रियवचन, शांतबुद्धि रहु येहु ॥३६॥
परख प्रत्यक्ष सब सुख प्रगट, प्रथमा कही बखान।
अब पंचम की पंचधा, सुनहु जथारथ मान ॥३७॥

शब्दार्थ — प्रथमा = प्रथम, श्रेष्ठ, उत्तम, सर्वोपरि।

भावार्थ — चौथे शील तत्त्व के पाँच भेद समझ लो—क्षुधानिवारण, प्रियवचन, शांतिबुद्धि, पारख प्रत्यक्ष तथा सब सुख प्रकट। ये गुण सर्वोत्तम कहे जाते हैं। इसके आगे पाँचवे तत्त्व विचार की धारणकरने योग्य पाँच प्रकृतियाँ यथार्थ रूप में सुनो और विचारो ॥३६, ३७॥

विशेष — पाँच शुद्ध तत्त्वों में शील अपना उत्तम स्थान रखता है। उनसे निकले हुए या उसके संबंधी सद्गुणों की व्याख्या इस प्रकार है—

क्षुधानिवारण

क्षुधा कहते हैं भूख को। यहाँ भूख का अर्थ है संसार की कामना। जीने, भोगने, खाने, करने इत्यादि संसार की कामनाओं का त्याग करने से वास्तविक तृप्ति होती है। इच्छा का त्यागी ही सुखी रहता है।

प्रियवचन

मीठा बोलना। हम सत्यभाषण करें, परन्तु वह प्रिय हो। कटु बोलने वाला सर्वत्र अपना शत्रु बना लेता है और मीठा बोलने वाला सर्वत्र मित्र। कटु बोलने वाले का मन सदैव अशांत रहता है और सत्य-प्रिय बोलने वाले का मन सदैव प्रसन्न एवं शांत रहता है। अतएव सत्य के साथ सदैव प्रिय बोलना चाहिये।

शांतिवुद्धि

शांतिवुद्धि का सहज अर्थ हुआ शांतमन। मनका शांत होना जीव की बहुत बड़ी उपलब्धि है। चित्त की स्थिरता के विना कोई भी काम नहीं बन सकता। स्थिर मन वाला ही अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है।

पारखप्रत्यक्ष

परख-परख करके सभी वासनाओं को त्यागते हुए अपने आप शेष एवं शांत रह जाना 'पारखप्रत्यक्ष' या पारख का साक्षात्कार होना है। जब द्रष्टा दृश्य से सर्वथा उदासीन होकर अपने आप निराधार एवं असंग रह जाता है यही 'पारखप्रत्यक्ष' है।

सब सुख प्रकट

जीवन्मुक्ति ही सब सुख या सर्वोच्च सुख है, और उसकी अनुभूति ही उसका प्रकट होना है। जब मनके सारे बन्धन कटकर निवृत्त हो जाते हैं यह सर्व अहंकार-रहित दशा ही जीवन्मुक्ति है। जीवन्मुक्ति में मनके सारे दुःखों की समाप्ति हो जाती है; और स्थिर सुख का अनुभव होता है।

अहै विचार सो पाँचवाँ, ताते भये यह पाँच।
अस्ति नास्ति पद बिलगान, अहै जथारथ साँच ॥३८॥
व्यवहारै शुद्धता गहन, परख यथा टकसार।
वेद आदि बानी सबै, बोध हेतु उर धार ॥३९॥

शब्दार्थ — अस्ति = सत्य। नास्ति = असत्य। बिलगान = पृथक करना; निर्णय।

भावार्थ — विचार पाँचवाँ तत्त्व है, जिससे ये पाँच उत्पन्न हुए हैं—अस्ति नास्ति पद निर्णय, यथार्थ या साँच, शुद्धव्यवहार, यथार्थ परख टकसार तथा वेदादि वाणियों को बोध के लिये हृदय से आदर देना ॥ ३८,३९ ॥

विशेष — शुद्ध या पक्के पाँच तत्त्वों में विचार पाँचवाँ है। इसकी भी पाँच प्रकृतियाँ हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

अस्तिनास्ति पद निर्णय

सत्य क्या है तथा असत्य क्या है, इसका विवेक करके सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करना विचार की प्रथम प्रकृति है। सत्य-असत्य के बीच में विभाजक रेखा खींच पाना तभी संभव है, जब मनुष्य निष्पक्ष हो।

यथार्थता या सत्य

सत्यभाषण, सत्यभाव, सत्य रहनी, परख करके सत्य बातों का ग्रहण एवं सर्वत्र केवल यथार्थता या सत्य का आदर करना यह विचार की दूसरी प्रकृति है।

शुद्धव्यवहार

विचार की तीसरी प्रकृति व्यवहार की शुद्धि है। मनुष्य को प्राणी, पदार्थ, अवस्था तथा परिस्थितियों के बीच में होकर गुजरना पड़ता है इसलिये इनके साथ अपना व्यवहार उत्तम रखना चाहिये। प्राणियों का व्यवहार सर्वोच्च है। कुटुम्ब या समाज के रूप में जो मिले हों तथा नित्य के व्यवहार में जो मनुष्य मिलें उनके साथ मधुरतम व्यवहार करने से ही उसकी शुद्धि रह सकती है।

अपने अधिकार की लालसा तथा दूसरे के कर्तव्य पर दृष्टि न रखना; अपितु अपना कर्तव्य पालन करना और दूसरे के अधिकार की रक्षा करना; स्वयं सहनशील होना तथा दूसरे को सहाने की चेष्टा न करना; अपनी कामनाओं का यथासम्भव दमन करना और दूसरे की कामनाओं को यथासंभव पूर्ण होने देना और अपनी बात सत्य होने पर भी दूसरों पर बलात न लादना और दूसरों की उचित बातें मान लेना—इन उपर्युक्त चार बातों का यदि जीवन में प्रयोग करे तो प्राणियों के साथ अपना व्यवहार शुद्ध होगा।

पदार्थों का लोभरहित होकर यथायोग्य उपयोग करना; सभी अवस्थाओं को आने-जाने वाली जान कर उनका द्रष्टा रहना तथा अनुकूल और प्रतिकूल भावों में सम रहकर सबसे उदार होकर बर्तना व्यवहार की शुद्धि है।

वस्तुतः सब कुछ नाशवान है और नाशवान पदार्थों के लिये राग-द्वेष करना अज्ञान है। अविनाशी स्वरूपस्थिति के लिये तो राग-द्वेष करना ही नहीं है, अपितु उन्हें छोड़ना है। अतएव राग-द्वेष से रहित होकर सबसे प्रेमपूर्वक मधुरतम व्यवहार करना चाहिये।

जल-मिट्टी से शरीर के अंगों को शुद्ध रखना तथा कपड़ा, बर्तन, निवासस्थान की स्वच्छता रखना, जल छान कर पीना, अन्न अमनिया करके शुद्ध भण्डारी द्वारा शुद्धता पूर्वक पकाया हुआ भोजन स्वयं शुद्ध होकर खाना। व्यवहार में सबप्रकार से शुद्धता का ध्यान रखना व्यवहार की शुद्धि है।

यथार्थ परख टकसार

टकसाल वह स्थान है जहाँ प्रामाणिक सिक्के ढलते हैं, जिन्हें सबको स्वीकार करना पड़ता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से सत्संग ही टकसाल है जहाँ सारासार विवेक होता है। अतएव सत्संग में वास्तविकता की परख करना यह विचार की चौथी प्रकृति है। सत्संग में निर्णय करके परख कसौटी पर कसी हुई बातें टकसाल से निकले हुए सिक्कों के समान प्रामाणिक होते हैं।

टकसार या टकसाल का पारखसिद्धांतोक्त पारिभाषिक अर्थ एक सत्संग है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, दूसरा 'बीजक' ग्रन्थ है जो सद्गुरु कबीर की प्रामाणिक रचना है।

बीजक की वाणियों की यथार्थ परख करना यह विचार की चौथी प्रकृति के भीतर है। बीजक में सद्गुरु कबीर ने दूसरे की भ्रममान्यताओं को परखाने के लिये जीवमुख, मायामुख एवं ब्रह्ममुख की वाणियाँ कही हैं, और ग्रहणकरने योग्य गुरुमुख है जो विवेकपूर्ण होती है। अतएव इसकी सूक्ष्मता को समझकर केवल यथार्थ वाणियों को लेना चाहिये।

बोध हेतु वेदादि वाणियों का ग्रहण

वेद से लेकर संसार के जितने भी ज्ञान के ग्रन्थ हों, सबमें सारासार का विवेक करके सार ग्रहण कर लेना तथा असार को छोड़ देना यह विचार की पाँचवीं प्रकृति है। इस प्रकार यहाँ वेदादि ग्रंथों का आदर किया गया है।

जो लोग यह कहते हैं कि कबीरपंथ वेदादि ग्रन्थों का अनादर करता है, बिलकुल गलत है। वेदादि ग्रंथ हमारे श्रद्धेय पूर्वजों की रचनायें हैं। उनमें हमारे पूर्वजों के इतिहास तथा नाना प्रकार की ज्ञातव्य बातें हैं, फिर उनका अनादर कैसे और क्यों किया जायगा ? वेदादि प्राचीन साहित्य हमारे लिये पूर्वजों की देन हैं। उनसे हम बहुत कुछ सीख-समझ सकते हैं।

अब रहा उनको स्वतः प्रमाण मानकर उनकी सारी बातें बिना 'न नु न च' किये आँख मूँद कर मान लेना यह पारखी समाज एवं विवेकवान के लिये असंभव है। जब वे अपने मान्यवर गुरुकबीरसाहेब की प्रामाणिक पुस्तक बीजक की वाणियों में भी सारासार विवेचन करने को कहते और करते हैं तब वे किसी ग्रन्थ-पंथ के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार कैसे कर सकते हैं।

इमि पाँचों की पंचधा, भेद प्रकृति पचीस।
ई देह की तत्त्व प्रकृति, बूझो बिस्वावीस ॥ ४० ॥

शब्दार्थ — बिस्वावीस = भली-भाँति; निश्चित।

भावार्थ — इस प्रकार सत्य, धैर्य, दया, शील और विचार, और इन पाँचों की पचीस प्रकृतियों का भेद—यह सब शुद्ध तत्त्व और प्रकृतियाँ इस मानव शरीर तथा हंस भूमिका के लक्षण एवं सद्गुण हैं; अतएव इनको भलीभाँति समझ लो ॥४०॥

तीनों गुण आचरण शुभ, कहेउँ बहुत प्रकार।
जो विवेक ताके गुनन, जो जानै निर्धार ॥४१॥

शब्दार्थ — तीनोंगुण = विवेक, वैराग्य और गुरुभक्ति। गुनन = मनन, अध्यवसाय; प्रयत्न। निर्धार = चुनना, अलग-करना; निर्णय; निश्चय।

भावार्थ — विवेक, वैराग्य तथा गुरुभक्ति ये तीन गुण हैं, इनके आचरण कल्याण-प्रद हैं, इनका वर्णन प्रकारान्तर से अनेक रूपों में पहले कर चुका हूँ और आगे अधिक स्पष्ट रूप में करने जा रहा हूँ। उनमें विवेक पहला है। जो प्रयत्नपूर्वक विवेक करता है और उसके द्वारा चुनाव करने योग्य निश्चित वस्तु को ग्रहण कर लेता है, वही विवेकी है ॥ ४१ ॥

विशेष — विवेक का अर्थ है मिले हुए पदार्थों को अलग करना और सार का ग्रहण तथा असार का त्याग करना। जो सदैव विवेक में जाग्रत रहता है वह धोखा में नहीं पड़ता।

विराग हंता त्याग को, भक्ति सत्य गुरु नेम।
साधु भाव त्रिगुण सहित, हंसन के यह क्षेम ॥४२॥

शब्दार्थ — हंसन = हंस, विवेकी या मनुष्य के बहुवचन। साधुभाव = उत्तम स्वभाव, दयालुता। क्षेम = कुशल-मंगल; कल्याण।

भावार्थ — वैराग्य जिसमें सभी अहंकार का त्याग होता है, नियमपूर्वक सच्चे गुरु की भक्ति—इन तीनों गुणों के सहित उत्तम स्वभाव ये मनुष्यों के कल्याण के साधन हैं ॥ ४२ ॥

विशेष — विवेक, वैराग्य तथा गुरुभक्ति ये कल्याण के मुख्य साधन हैं। विवेक का लक्षण ऊपर बताया गया है। यहाँ वैराग्य तथा भक्ति का उल्लेख किया जाता है।

वैराग्य

वैराग्य का शुद्ध शब्द विराग है, जिसका अर्थ होता है राग न करना। राग कहते हैं मोह को अथवा किसी प्राणी-पदार्थ में अन्तःकरण की चिपकाहट को। इसके मूल में रहता है अहंकार। जब सारे अहंकार गल जाते हैं तब वैराग्य की पूर्णता होती है और वैराग्य के निरन्तर अभ्यास से अहंकार का शमन होता है। शुद्ध वैराग्य में कुछ भी अपना नहीं माना जाता। यद्यपि वैराग्यवान पुरुष भी व्यवहार यथावत बर्तते हैं, तथापि अहंता-ममता से रहित होकर ही।

गुरुभक्ति

भक्ति कहते हैं किसी पवित्र पुरुष के लिये अति अनुराग व श्रद्धा को, जिसमें सेवा, आराधना, आज्ञापालन आदि सम्मिलित होते हैं। यह उसी महापुरुष के प्रति पूर्ण रूप से हो पाती है जो सच्चा गुरु या संत हो। जिसके मन, वाणी, कर्म निर्मल हैं, जो समस्त अहंकारों से रहित स्वरूपज्ञान में स्थित हैं ऐसे परमपवित्र पुरुष के प्रति श्रद्धा रखने से, उनका ध्यान, स्मरण, चिंतन, पादसेवन, संगत आदि करने से जिज्ञासुओं का परम कल्याण होता है।

भक्ति कल्याण का द्वार है। बिना भक्ति के विवेक, वैराग्य नहीं टिक सकते। अतएव विनम्रता, सेवाभाव, पूज्यपुरुषों की उपासना स्वरूप भक्ति का अवलम्ब लेना चाहिये।

अंततः स्वरूपज्ञान में रति ही भक्ति मानी जाती है।

सत्य शब्द टकसार, बीजक,साखी २६६

साखी— साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं विचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार।।४३।।

शब्दार्थ — तरवार = तलवार, खड्ग।

भावार्थ — साधु का वेष धारण कर लेने से क्या प्रयोजन हल हुआ यदि विचार पूर्वक नहीं बोलता है और अपनी जीभ में कटु, भ्रांति एवं अज्ञानपूर्ण वाणियों की तरवार बाँधकर दूसरे की आत्मा का हनन करता है।। ४३।।

विशेष — जो निरर्थक कटु शब्द कहकर दूसरे के दिल को दुखाते हैं। वे क्षम्य नहीं हैं उनकी साधुता में त्रुटि है। और जो स्वयं न जानने के कारण भ्रांति एवं अज्ञानपूर्ण बातें लोगों में फैलाकर सबको अज्ञान एवं भ्रम के गड्ढे में डालने के कारण बनते हैं वे अपने भोलेपन के कारण तो क्षम्य हैं, परन्तु वे अपने तथा दूसरे के विघातक हैं। उन्हें स्वयं में चेतना चाहिये।

चौपाई—६

ऐसनि संगति त्यजहु सबेरा। गहहु शरण गुरु परख उजेरा।। १।।
अशरण शरण ताहि को नामा। भेष साधु मंगल गुणधामा।। २।।

शब्दार्थ — सबेरा = शीघ्र। उजेरा = उजाला, प्रकाश, ज्ञान।

भावार्थ — कटु बोलने वाले या मीठे ही बोलकर भ्रांति तथा अज्ञान में फँसाने वाले साधु-गुरु कोई भी हो उनकी संगत का शीघ्र त्याग करो; और उन सद्गुरु की शरण ग्रहण करो जिनमें पारख का प्रकाश है।। १।। उन्हीं का नाम है अशरणशरण

अर्थात आश्रयहीन को आश्रय एवं बोधहीनों को बोध देने वाले। वे साधुवेष से सुशोभित, सद्गुणों के धाम तथा कल्याण रूप होते हैं ॥ २ ॥

बन्दीछोर सबन सुखदायक। दीनबंधु हंसन के नायक ॥ ३ ॥
परख प्रत्यक्ष कालको फंदा। दीनदयाल की शरण आनंदा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — नायक=ले जाने या पहुँचाने वाला, मार्गदर्शक, श्रेष्ठ, स्वामी। काल=मन।

भावार्थ — बन्धनों को छुड़ाकर सबको सुख देने वाले; दीनों के बन्धु तथा मुमुक्षुओं के मार्गदर्शक ॥ ३ ॥ मन के बन्धनों को प्रत्यक्ष परखाने वाले ऐसे दीनदयाल सद्गुरु की शरण में ही मुमुक्षुओं को मोक्ष का आनंद मिलता है ॥ ४ ॥

८—जीव एक है कि अनेक? काल और दयाल में अंतर तथा साधु एवं गुरु में एकता तथा साधु, संत और गुरु पर विवेचन

शिष्य प्रश्न—६

सोरठा—बन्दीछोर सुजान, अब चीन्हा शुभरूप तव।
मंगल धाम निधान, किंचित शंका उदय चित ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — सुजान=ज्ञानी, सुविज्ञ। निधान=आधार, आश्रय।

भावार्थ — हे सुविज्ञ मंगलधाम एवं ज्ञानकोष बन्दीछोर! अब मैं आप को कल्याण स्वरूप पहचाना हूँ। हमारे मन में थोड़ी-सी शंका उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥

दोहा — जमा एक की अपर बहु, सो प्रसंग समुझाव।
शुद्ध भये यह तन लहै, प्रथम कौन यह आह ॥ ४४॥

शब्दार्थ — जमा=मूलधन, अविनाशी चेतन, 'जमा' पारख सिद्धान्त का पारिभाषिक (लाक्षणिक) शब्द है जिसका अर्थ माना जाता है पारखपद, अविनाशी चेतन। अपर=अन्य, दूसरा। यह तन=हंसदेह, शुद्ध तत्त्व, प्रकृति एवं त्रिगुण की देह, दैवीसम्पदा।

भावार्थ — चेतनपद एक है कि अन्य बहुत हैं? यह प्रसंग समझाने की कृपा करें। चेतन विषयासक्ति एवं अज्ञान से निवृत्त होने पर इस हंसभूमिका एवं दैवीसम्पदा से सम्पन्न होता है; परन्तु यह पहले किस रूप में रहता है? ॥४४॥

सद्गुरु उत्तर—६

दोहा—जमा एक पद बहु भया, कारण हंता पाय।
हंता बासी जीयरा, सोई ब्रह्म कहाय ॥४५॥

शब्दार्थ — जमा = चेतन। पद = स्थान, स्थिति, स्वरूप। हंता = अहंकार।

भावार्थ — चेतन के स्वरूप एक समान ज्ञानगुणयुक्त हैं; परन्तु भौतिक अहंकार का कारण पाकर रागी-विरागी, सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी अनेक स्वभावों में लक्षित होते हैं। जो जीव अहंकार में निवास करते हैं वे ही अपने को ब्रह्म कहते हैं ॥४५।

विशेष— चेतन व्यक्तित्व से अनेक हैं, परन्तु गुण-धर्म से एक हैं। चेतन प्रति शरीर भिन्न-भिन्न हैं। वे चाहे बंधन में रहें या मोक्ष में एक चेतन दूसरे में कभी घुल मिल नहीं सकते, क्योंकि उनके स्वरूप अजर, अमर और अविकारी हैं। परन्तु उनके स्वरूप एक समान ज्ञानगुणयुक्त हैं। वे अपने मूल स्वरूप में परस्पर एक समान हैं। अन्तिम पारख स्थिति में भी एक समान हैं। परन्तु शरीर, वर्ण, धन आदि भौतिक पदार्थों का अहंकार लेकर अथवा सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण की अहंता लेकर परस्पर विलक्षण प्रतीत होते हैं। जैसे कोई कामी, कोई क्रोधी, कोई लोभी, कोई निष्कामी, कोई निर्लोभी, कोई अच्छा, कोई बुरा।

चेतन अनेक हैं। परन्तु स्वरूपतः एक समान हैं। उनमें विलक्षणता का कारण देहोपाधियुक्त अहंता है। अहंकारी जीवात्मा ही अपने को ब्रह्म कहते हैं। क्योंकि ब्रह्म जड़-चेतन अभिन्न कल्पित वस्तु है और केवल मन के अहंकार से ही मान्य है।

यहाँ 'जमा एक पद बहु भया' का अर्थ यह नहीं है कि एक चेतन अनेक हो गया। इसका तो सर्वत्र खण्डन है। अपितु अर्थ है कि चेतन एक लक्षण वाले होते हुए भी अहंकारवश अनेक लक्षणों के युक्त प्रतीत होते हैं जिसका स्पष्टीकरण आगे के दोहों में अपने आप होता गया है।

गुरु सम्बन्धी जीयरा, इमि देहि शुभ धार।
बसै भूमिका रामपर, साधु रूप सुप्रकार ॥४६॥

शब्दार्थ — भूमिका राम पर = राम की भूमिका पर, चेतन की स्थिति पर, अपने चेतन स्वरूप में। साधु = उत्तम, शुद्ध। सुप्रकार = भलीप्रकार।

भावार्थ — यथार्थ सद्गुरु से बोध प्राप्त हुए जीव उपर्युक्त प्रकार के कल्याण कारक हंसदेह अर्थात दैवीसम्पदा को धारण करके उत्तमरूप से भलीप्रकार अपने चेतन स्वरूप में स्थित रहते हैं ॥ ४६ ॥

विशेष — उपर्युक्त दोहे में 'राम' अपना चेतनस्वरूप है। रामकी भूमिका ज्ञानकी स्थिति है। जिनको यथार्थ गुरु मिले और जो समस्तसद्गुणों को धारण कर लिया वह अपने चेतनराम में ही निमग्न रहता है।

एकता भयो भेद बहु, निरख एक अब नाहिं।
काल दयालहि भेद बहु, समझहु परखहु ताहिं ॥४७॥

शब्दार्थ — निरख = देखो। अब = इस दशा में, अज्ञान हालत में।

भावार्थ — सभी चेतन एक समान होते हुए भी प्रकृति सम्बन्ध एवं देहोपाधिवश उनमें बहुत भेद हैं। विवेक करके देखो इस दशा में एक समानता कहाँ हैं ? एक तो अज्ञान को धारण करके अपने तथा दूसरे के लिये कालस्वरूप बन रहा है और दूसरा हंसगुण तथा स्वरूपज्ञान धारण करके स्व-पर के लिये दयालु स्वरूप हो रहा है। इस प्रकार काल-दयाल में बड़ा अन्तर है, उसे समझो तथा परखो ॥४७॥

उपजावन औ नाशन, ये गुण काल अहंत।
दयाल दीन उद्धारण, स्वतः हंस स्वलहंत ॥४८॥

शब्दार्थ — काल = कल्पना, अज्ञान, विषयासक्ति, अज्ञानी मनुष्य। गुण = स्वभाव। अहंत = है, अहंकार।

भावार्थ — भूलवश अपने और दूसरे के काल बने अज्ञानी मनुष्यों का स्वभाव है अहंकार पूर्वक कार्य करके अपने तथा दूसरे को जन्म-मरण के चक्कर में डाले रहना। और दयालु पुरुष दीनों का उद्धारक होता है। वह अपने हंस स्वरूप को धारण करके स्वस्वरूप की स्थिति को प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

विशेष — अपने और दूसरे को डुबाने वाला काल है, और अपने तथा दूसरे को उबारने वाला दयालु है सभी चेतन मूलतः एक समान हैं, परन्तु देहोपाधि तथा दुष्प्रवृत्ति-सुप्रवृत्ति वश काल-दयालु बने हैं।

ऐसे काल दयाल गुण, एकता कैसे होय।
ताते शिष्य विचारिये, शुद्ध हंस पद जोय ॥४९॥

शब्दार्थ — हंसपद = विवेक की स्थिति।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से काल और दयालु का विरोधी स्वभाव है फिर उन दोनों में व्यवहारतः एकता कैसे हो सकती है ? अतएव हे शिष्य ! जो शुद्ध विवेक की स्थिति है उसी का विचार एवं ग्रहण करो ॥ ४९ ॥

काल अनेकन रूपते, जीवहि रखे भुलाय।
दयाल एकहि रूपते, साधु गुरू कहाय ॥५०॥

शब्दार्थ — जीवहि = जीवों को।

भावार्थ — जो लोग अज्ञानवश अपने और दूसरे के काल बने हैं; वे अनेक रूपों में होकर मनुष्यों को भ्रम में डाल रखे हैं। और दयालु तो एक ही स्वरूप धारण करके लोककल्याण कर रहे हैं ; वे साधु-गुरु कहलाते हैं ॥५०॥

विशेष — जो लोग अपने-पराये के पतन करने वाले हैं, उनके अनेक रूप हैं। कोई तो विषयासक्ति का पाठ पढ़ाता है, कोई दुर्व्यसन की सीख देता है, कोई भूत-प्रेतादि कल्पित भास को दृढ़ करता है। इस प्रकार वे स्वयं भूले हुए लोग दूसरे को भी भूल के गड्डे में डालकर स्व-पर की हानि करते हैं। और विवेकी संत-गुरु सर्व कल्पना, विषयासक्ति छुड़ाकर तथा जड़ दृश्य से अपना चेतन स्वरूप पृथक निर्णय करके स्वरूप-स्थिति का उपदेश करते हैं।

साधु और गुरु की समानता

साधु बतावैं गुरु को, गुरु कहैं साधु पूज।
अर्स पर्सके खेल में, भई अगम की सूझ ॥५१॥

शब्दार्थ — अर्स पर्स = सत्संग। खेल = सहज ही, आसानी से, यथा "खेल-खेल में उन्होंने ऐसा कठिन काम कर लिया"। अगम = अगम्य, कठिन, अथाह, अपार। सूझ = समझ, ज्ञान।

भावार्थ — संतजन जिज्ञासुओं को कहते हैं कि सद्गुरु की सेवा करो और सद्गुरु कहते हैं संतों की पूजा, बंदगी एवं सत्संग करो। इस प्रकार सदियों से जिस स्वरूपज्ञान एवं मोक्षस्थिति को हम अगम्य, दुरूह तथा अप्राप्य कहते थे उसकी समझ सद्गुरु-संतों के सत्संग में सहज ही हो जाती है ॥५१॥

विशेष — सद्गुरु और संतों के सत्संग का फल स्वरूपज्ञान तथा मोक्ष की प्राप्ति है।

एक रूप गुरु साधु का, दूजा काल को फंद।
अशरण शरण दयाल गुरु, साधु सदा स्वच्छन्द ॥५२॥

शब्दार्थ — स्वच्छन्द = अपनी इच्छा या पसंद, स्वतंत्र।

भावार्थ — अतएव विवेकी सद्गुरु तथा संतों का एक रूप है ये जीव के उद्धारक हैं और इनके अतिरिक्त भ्रम में पड़े हुए लोग कल्पना के फंदे में फँसाने वाले हैं। सद्गुरु दयालु तथा आश्रय हीनों को आश्रय देने वाले होते हैं; और संतजन सदैव स्वतंत्र होते हैं ॥५२॥

विशेष — सद्गुरु और संत वस्तुतः एक समान हैं। यदि कुछ भेद है तो इतना ही कि सद्गुरु वह कहलाता है जो मुमुक्षु जीवों पर करुणा करके उन्हें अपनी शरण में लेकर उनके उद्धार का प्रयत्न करता है, और संत वह कहलाता है जो उपदेश तो कर देता है, परन्तु किसी को अपनी शरण में लेकर उसे निभाने का उत्तरदायित्व नहीं लेता।

इस प्रकार सद्गुरु वह है जो लोककल्याण के लिये विशेष प्रवृत्त होता है; और संत वह है जो स्वतंत्र एवं स्वच्छन्द रहता है। परन्तु यह समझ लेना चाहिये कि संत

दशा में पूर्ण रूप से पहुँच कर ही गुरुदशा को स्वीकार करना चाहिये। जो संतदशा को प्राप्त किये बिना ही गुरुदशा को धारण करता है वह अपने और दूसरों को भी गड्ढे में ले जाता है ।

'संतदशा स्वच्छन्द या स्वतंत्र दशा है'—इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो साधुवेष धारण करके इधर-उधर मनमानी घूमता हो तथा आलसी बनकर पुरुषार्थ से हीन हो वह संत तथा स्वच्छन्द है। वह तो मनका दास है। वस्तुतः जो गुरुभक्ति, वैराग्य, विवेक, शम, दम, दया आदि साधनों में अथक पुरुषार्थ करके अपने मन-इन्द्रियों पर पूर्ण विजयी हो गया हो, जिसकी विषयासक्ति पूर्ण निवृत्ति हो गयी हो, जो इच्छाओं को जीत लिया हो वह स्वच्छन्द, स्वतंत्र संत है। ऐसा संत ही गुरु बनने का अधिकारी है।

'सद्‌गुरु लोककल्याण के लिये प्रवृत्ति लेते हैं'—इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे उस प्रवृत्ति में दुखी रहते हैं। जो दुखी हो वह सद्‌गुरु नहीं। यदि गुरु ही प्रवृत्ति में दुखी हो तो वह शिष्यों तथा आश्रयीजनों को क्या सुख-शांति दे सकता है? वस्तुतः निष्काम संतदशा पर पहुँच कर गुरुता की प्रवृत्ति लेने से वह लोककल्याण तो करता है, परन्तु व्यवहार में कहीं उलझता नहीं। वह अपनी कल्याण दशा हर समय पूरी रखता है, उसके साथ-साथ दूसरे का भी हित करता जाता है। वह लोककल्याण करते हुए भी हरसमय सब कुछ को स्वप्नवत समझकर स्वस्वरूप में ही शांत रहता है।

संतदशा को प्राप्त करने के लिये भक्ति, विवेक और वैराग्य की पूरी रहनी चाहिये। और सद्‌गुरु दशा को निभाने के लिये भक्ति, वैराग्य, विवेक के साथ प्रतिभा की भी आवश्यकता पड़ती है, जिससे आश्रयीजनों को वह निभा सके।

अपना गला घोटने के लिये एक छोटी छूरी ही काफी है तथा दूसरे किसी फौज को मारने के लिये अपने पास फौज, बन्दूक, बम, वायुयान, जलयान आदि बहुत साधनों की आवश्यता है। इसी प्रकार सन्तदशा को प्राप्त कर अपना कल्याण करने में सरलता है; परन्तु गुरुदशा में ठहर कर बहुतों को आधार देने में बहुत प्रतिभा, सहनशीलता, त्याग, तप, शांति, विनम्रता आदि की आवश्यकता है।

संतदशा में निवृत्त जीवन होने से प्राणी-पदार्थों का संग्रह कम या नहीं के समान रहता है। इसलिये उनके सामने भूलने के साधन कम रहते हैं। गुरुदशा में प्रवृत्तजीवन होने से प्राणी-पदार्थों का अच्छा खाता संग्रह हो जाता है। यदि वे निष्काम संतदशा को प्राप्त किये बिना सद्‌गुरु बन बैठे हैं तो वे प्राप्त हुए प्राणी-पदार्थों के प्रलोभन में पड़कर विकारी बन कर राग-द्वेष के शिकार हो जाते हैं। इसीलिये पूरी योग्यता हुए विना गुरु बनना अपने लिये पतन का गड्ढा तैयार करना है।

इस प्रकार सन्त और गुरु दोनों निष्काम, स्वरूपस्थ, एक समान कल्याण रूप होते हैं; परन्तु संत निःभार होते हैं और सद्‌गुरु लोककल्याण के लिये भार स्वीकार करते हैं।

बन्दीछोर कृपाल गुरु, मर्दन काल कलेश।
काल अनेकन रूपते, जीवहिं देत विदेश ॥५३॥

शब्दार्थ — **मर्दन** = नाश करना। **काल** = कल्पना, विषयासक्ति। **विदेश** = पराया देश, अपने चेतन स्वरूप से पृथक कल्पना या जड़ देश।

भावार्थ — बन्धन छुड़ाने वाले कृपालु सद्गुरु कालजनित पीड़ा को नाश करने वाले हैं; और भूले हुए तथा स्व-पर के काल बने लोग अनेक रूपों से जीवों को जड़ विषयों एवं भ्रांतियों में लगाकर उन्हें स्वरूपज्ञान से दूर विदेश में ही रखते हैं ॥५३॥

विशेष — संसार, शरीर तथा मन से की हुई कल्पनायें सब विदेश हैं विदेश में रहने से जीव को कष्ट के सिवा अन्य कुछ नहीं मिल सकता। अतः जो जीव को विदेश की ओर लगाये वह काल है।

अपना चेतन स्वरूप ही अपना देश है उसमें स्थित होने से ही दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति होगी। इस स्वरूप-स्वदेश का जो पथनिर्देश करे वह दयालु है।

तातें हे शिष्य एकता, कैसे काल दयाल।
बंधन गुण हैं काल के, बन्दीछोर दयाल ॥५४॥

शब्दार्थ — **एकता** = समानता एकरूपता। **काल** = कष्टदायी।

भावार्थ — अतएव हे शिष्य! काल और दयाल की एकरूपता कैसे हो सकती है? अपने-पराये के लिये काल बने हुए लोगों का स्वभाव है अपने-पराये को अज्ञान के बन्धनों में बाँधना और दयाल का स्वभाव है बन्धनों से छुड़ाना ॥ ५४॥

जमा एक जीव स्वतःपद, बुद्धि भ्रांति से काल।
बुद्धि भ्रांति परखाय मेटै, सो गुरु दीन दयाल ॥५५॥

शब्दार्थ — **जमा** = अविनाशी। **स्वतःपद** = स्वयंस्वरूप।

भावार्थ — अविनाशी जीव स्वतः स्वरूप से सब एक समान हैं; परन्तु उनकी बुद्धि में भ्रांति पड़ने से वे अपने और दूसरे के काल बने हैं। जो व्यक्ति अपनी बुद्धि की भ्रान्ति को पारखी सद्गुरु द्वारा परखा कर उसे मिटा देता है, वही गुरुरूप हो जाता है और दूसरे अज्ञानबद्ध दीनों पर दया करके उनके भी भ्रम को मिटाने लगता है ॥५५॥

रोगी वैद्य कलेशते, छूटै भये निदान।
जो कलेश में पगि रहै, सोई रोगी जान ॥५६॥

शब्दार्थ — **रोगी** = अज्ञान रोग से पीड़ित जीव। **वैद्य** = चिकित्सक; तात्पर्य में गलत चिकित्सक या गलत गुरु। **निदान** = आदि कारण, कारण; रोग का कारण; रोग का निर्णय कि कौन रोग हुआ है; अंतः शुद्धि। **पगि** = निमग्न, शराबोर।

भावार्थ -- गलत चिकित्सक द्वारा प्राप्त होते हुए कष्ट से रोगी तभी बचता है; जब वह सही चिकित्सक से सम्पर्क स्थापित करके अपने रोग का कारण जाने। इसी प्रकार गलत गुरुद्वारा प्राप्त होते हुए बन्धनों एवं कष्टों से जीव तभी बचता है जब वह यथार्थ सद्गुरु की शरण लेकर अपने अज्ञान के मूल को समझे एवं अन्तःकरण को शुद्ध करे। और जो व्यक्ति गलत गुरुओं द्वारा दिये हुए भ्रांति एवं अज्ञान रूप क्लेश में ही निमग्न तथा शराबोर हैं उन्हीं को रोगी समझो ॥ ५६ ॥

रोगी एकता ब्रह्मपद, सृष्टि रोग विलास।
सो भासो पद जीव को, रोगिन संग विलास।।५७।।

शब्दार्थ — रोगी = अज्ञानग्रसित। एकता = नाना चेतन तथा अनन्त परमाणुओं के समूह अनेक तत्त्वों को एक मानना। विलास = व्यक्त होना; क्रीड़ा। भासो = भास; चमक; दीप्ति; कल्पना। विलास = चमकना, प्रभाव।

भावार्थ — अपने आपको जड़चेतन अभिन्न ब्रह्मस्वरूप मानना ही रोगी बनना है; क्योंकि ब्रह्म से सृष्टि रूपी रोग व्यक्त एवं प्रकाशित होता रहता हुआ मानते हैं। उपर्युक्त ब्रह्मस्वरूप की कल्पना अभिन्नवादी रोगियों की संगत के प्रभाव में जीव के मनमें खड़ी होती है ॥ ५७ ॥

एकता और अनेक पद, इहै रोग को मूल।
रहट खानि मों जीयरा, परै न सूझै भूल।।५८।।

शब्दार्थ — एकता = ब्रह्म। अनेकपद = अनेक स्वरूप जगत। रहट = रहँट, चक्कर।

भावार्थ — एक ब्रह्म से अनेक रूपों में जगत फूट कर निकलता है तथा प्रलय-काल में नाना नामरूपात्मक जगत एक ब्रह्म में लीन हो जाता और आगे भी यही क्रिया चालू रहती है—यह मान्यता ही रोग एवं अज्ञान की जड़ है। ब्रह्म-जगत के चक्कर में पड़कर सब जीव खानियों में पड़े भटकते हैं, उन्हें इस भूल की परख नहीं होती ॥ ५८ ॥

सूझै भूल जो जीयरहिं, शरण आवै तजि मान।
परखि कालगुण विलगि रहै, एक अनेक अनुमान।।५९।।

शब्दार्थ — कालगुण = कल्पना का स्वभाव; भुलानेवाले लोगों की प्रवृति। अनुमान = अटकल; भ्रम।

भावार्थ — जिस जीव को उपर्युक्त अपनी भूल परख में आ जाती है वह अपने सारे अहंकार तथा पूज्यतादि का अभिमान छोड़कर सच्चे पारखी सद्गुरु की शरण में

आजाते हैं ; और वे एक से अनेक तथा अनेक से एक अर्थात ब्रह्म से जगत तथा जगत से ब्रह्म होने के भ्रम को कल्पना का गुण जानकर उससे पृथक हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

सत्य निर्णय शब्द—१

हंसा ठहरि देखु थिति बाट । काहे भटको औघट घाट ॥ १ ॥
जहाँ जहाँ जाहु तहाँ तहाँ दूजा । तू हि काल उपराजा ॥ २ ॥
कियो कल्पना जग की आपै । चौरासी को साजा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — **हंस** = सुज्ञ मनुष्य । **थिति** = स्थिति; ठहराव; शांति । **बाट** = मार्ग; पथ । **औघट** = कठिन; दुर्गम । **घाट** = नदी तटका वह स्थान जहाँ से पार उतरा जाय; तात्पर्य में साधनामार्ग । **दूजा** = अपने स्वरूप से भिन्न जड़दृश्य, कल्पना । **काल** = कल्पना; अज्ञान । **साजा** = साज; सामग्री; साधन ।

भावार्थ — हे सुज्ञ जीव ! सावधान होकर शांतिपथ की खोज करो; तुम दुर्गम पथ में क्यों भटक रहे हो ॥ १ ॥ तुम अपने चेतन स्वरूप के भाव से वंचित होकर जहाँ-जहाँ भटकोगे वहाँ-वहाँ पृथक जड़दृश्य एवं कल्पना ही हाथ लगेगी । हे जीव ! तू ही अपनी भूलवश अपने लिये कष्टदायी कल्पना व अज्ञान उत्पन्न कर लिया है ॥ २ ॥ तू स्वयं अपने चेतन स्वरूप में जगत की कल्पना का आरोप कर लिया है, जो वस्तुतः चौरासी की सामग्री या साधन हैं ॥ ३ ॥

भये अनेक दुख बहु पाये । पुनि सो ब्रह्म कहावै ॥ ४ ॥
ब्रह्म भये थिति कतहुँ न पावै । जग इच्छा रहि जावै ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — **कतहुँ** = कहीं भी ।

भावार्थ — अपने चेतनस्वरूप को अनेक विषयों, गुण, कर्मों तथा मान्यताओं में फँसा कर तू अत्यन्त कष्ट उठाया, और फिर उन कष्टों से बचने के लिये तू जड़ चेतन मिश्रित ब्रह्म कहलाने लगा ॥ ४ ॥ परन्तु ब्रह्म बनने से तू कहीं भी शान्ति नहीं पा सकता; क्योंकि ब्रह्म में पुनः-पुनः जगत बनने की इच्छा शेष रह जाती है ॥ ५ ॥

ब्रह्म जगत दोउ धोखा जियरा । कल्पित तेरो होई ॥ ६ ॥
देखु दृष्टि गुरु बुद्धि परखपद । तू है को यह कोई ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — **धोखा** = भ्रम, जोखिम । **परखपद** = परखने की स्थिति; ज्ञानदशा ।

भावार्थ — हे जीव ! मनकी सृष्टि ब्रह्म तथा ठोस तत्त्वों की सृष्टि जगत दोनों तुम्हारे लिये भ्रम या जोखिम हैं; और तुम्हारी अपनी कल्पना से ही तुम्हारा और इनका सम्बन्ध है ॥ ६ ॥ तू गुरुबुद्धि की दृष्टि और परखने की स्थिति में सम्हल करके देख 'तू कौन है और ये कौन हैं ?' ॥ ७ ॥

विशेष — ब्रह्म शब्द बुरा नहीं; अपितु 'श्रेष्ठ' अर्थ का बोधक है 'बृहत्वाद् ब्रह्म' जो बड़ा हो वह ब्रह्म और वह जीव है। अर्थात जीव ही श्रेष्ठ है। परन्तु ब्रह्म की परिभाषा संसार में बहुत गलत ढंग से चल रही है। ब्रह्म को निराकार, निर्गुण, सर्वत्र व्यापक और निर्विकार कहकर उससे स्वभावतः जगत का उत्पन्न होना मानकर एक भ्रांतिखड़ी कर रखे हैं।

जगत का अध्यास जन्म-मरण का कारण है और ब्रह्मवाद की दृष्टि से ब्रह्म-जगत सर्वथा एक है। अतएव जो कल्याण चाहे उसके लिये ब्रह्म-जगत दोनों धोखा में डालने वाले खतरे की वस्तु हैं।

तू व्याप्य-व्यापक, कारण-कार्य, अंश-अंशी भाव से रहित तथा जड़तत्त्वों से सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन है, और ब्रह्म तुम्हारे मनकी कल्पना है और जगत जड़ परिवर्तनशील हैं। तू इन दोनों का द्रष्टा है।

आतमराम स्वतः पद पूरण। गुरु पारख ठहराई॥ ८॥
कहहिं कबीर ठहर पद अपने। दूजा काल कसाई॥ ९॥

शब्दार्थ — दूजा = दूसरा; कल्पना; वासना।

भावार्थ — भूल में पड़े हुए लोगों ने आत्माराम को स्वतःस्वरूप मानते हुए भी उसे सर्वत्रपूर्ण एवं चराचर व्यापक माना है; परन्तु सद्गुरुकबीर ने उसको भ्रांति रूप परखाकर सबसे पृथक चेतन पारखस्वरूप का बोध दिये हैं॥ ८॥ सद्गुरुकबीर कहते हैं कि सबकी कल्पना छोड़कर अपने चेतन स्वरूप में स्थित होओ और अन्य-कल्पनायें तो कष्टदायी तथा जीव के पतनकारक हैं॥ ९॥

विशेष — चेतन एक, व्यापक तथा जड़से अभिन्न नहीं हो सकता। चेतन अनेक हैं, उन सबके केवल स्वरूपतः गुण-धर्म एक हैं। चेतन व्यापक नहीं, अपितु सभी अलग-अलग तथा एक-एक देशी हैं। व्यापकवाद में जन्म-मृत्यु, बन्ध-मोक्ष आदि संभव ही नहीं हो सकता। चेतन एक और व्यापक है तब वह सर्वत्र की बात क्यों नहीं जानता? चेतन के व्यापक होते हुए भी शरीर मुर्दा क्यों हो जाता है? अतएव व्यापकवाद महाभ्रम है। चेतन, जड़ से अभिन्न नहीं; अपितु सर्वथा भिन्न हैं। बन्ध-मोक्ष किसी भी अवस्था में चेतन जड़ से सर्वथा पृथक स्वरूप है।

अतएव चेतन नाना और जड़ से सर्वथा पृथक हैं। जो जड़ाध्यास तथा कल्पना को छोड़ देगा वह प्रारब्धांत में जड़ के सम्बन्ध से सर्वथा मुक्त होकर अपने आप शांत रह जायगा।

९—बंधनों से मोक्ष की ओर प्रगति तथा स्वतः बोध होने की योग्यतायें

शिष्य प्रश्न—७

सोरठा—हे गुरु दीनदयाल, हंस स्वतः दातार पद।
मेटन यम को जाल, मंगल रूप गुरु साधु हो॥ ९॥

शब्दार्थ — हंस = मुमुक्षु; समझदार। स्वतः = अपना। दातार = देनेवाला। पद = स्थिति; दर्जा। यम = वासना।

भावार्थ — हे दीनों पर दया करने वाले संतगुरु ! आप मुमुक्षुओं को अपनी स्थिति का उपदेश करने वाले, मन की वासनाओं को नाश करने वाले तथा कल्याण स्वरूप हो ॥ ९ ॥

शंका रही चित एक, सो पूछत अति सकुच मोहि।
कहिये जथा विवेक, कैसे काल दयाल भौ ॥१०॥

शब्दार्थ — सकुच = संकोच; लज्जा; डर। जथा विवेक = विवेक के अनुकूल। भौ = हुआ।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! हमारे मन में एक संदेह उत्पन्न होता है, परन्तु उसको आपसे पूछने में मुझे बड़ा संकोच लग रहा है। हे गुरुदेव। जिस प्रकार विवेक से जंचे हमें बतलाने का कष्ट करें कि भूलवश अपने और दूसरे का काल बना हुआ जीव अपने और दूसरे के लिये दयालु कैसे बन गया या बन जाता है ? ॥ १० ॥

विशेष — काल का अर्थ समय होता है; परन्तु यहाँ कल्पना, अज्ञान, वासना एवं कष्टदायी है। इस प्रसंग तथा ग्रन्थ में अन्यत्र भी यत्र-तत्र काल उस व्यक्ति को भी कहा गया है जो अपने और दूसरे को बन्धन, भ्रम एवं कष्ट दे।

जीव अपने चेतनस्वरूप से शुद्ध है, न वह काल है न दयाल है। वह देहोपाधि में पड़कर भूलवश काल बनता है तथा भूल मिट जाने पर दयालु बन जाता है। परमत और स्वमत के आधार पर किसी को काल तथा दयाल नहीं कहा जा सकता। जो भूल में है वह पहले अपनी हानि करता है और पीछे दूसरे की। वह अपने भोलेपन के नाते ही अपने तथा पराये का काल बन जाता है। परन्तु उसी की भूल जब मिट जाती है और उसे जब यथार्थ ज्ञान हो जाता है तब वही अपने और दूसरे के लिये दयालु हो जाता है। शिष्य प्रश्न करता है कि सद्गुरु काल कैसे दयाल बन जाता है ?

सद्गुरु उत्तर-७

चौपाई—७

कल्पित इच्छा ब्रह्म कहावा। ब्रह्म की इच्छा माया गावा ॥ १ ॥
ताते त्रिगुण भये मन भाई। मन मानै चौरासी जाई ॥ २ ॥

शब्दार्थ — त्रिगुण = सत, रज, तम। चौरासी = मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज।

भावार्थ — मनुष्य की कल्पित इच्छा ही ब्रह्म कहलाती है; अर्थात् ब्रह्म मनुष्य की एक कल्पना है। कहते हैं कि ब्रह्म की इच्छा ही माया है ॥ १ ॥ हे भाई! उस माया से सत, रज और तम ये तीन तथा मन की उत्पत्ति मानते हैं। और उसी मनकी मान्यता तथा अहंता-ममता में पड़ कर जीव चारों खानियों में भटकते हैं ॥ २ ॥

विशेष — जब ब्रह्म स्वयं कल्पित है, तब उससे माया, त्रिगुण, मन, चौरासी आदि की उत्पत्ति भी कल्पित है। परन्तु उसी कल्पना में पड़कर लोग भटक रहे हैं। वस्तुत: जीव अनादिकाल से प्रकृति सम्बन्ध में उसकी आसक्ति में भटक रहे हैं।

कल्पित सृष्टि भयो विस्तारा। परे जीव सब ब्रह्म कि धारा ॥ ३ ॥
दुखित सुखित तेहि पद अनुरागी। जगै न मोहजनित बुद्धि लागी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अनुरागी = प्रेमी। जगै न = जाग्रत या सावधान नहीं होते।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से कल्पनासृष्टि का विस्तार किये और सब जीव कल्पित ब्रह्म मान्यता के प्रवाह में पड़े रहे ॥ ३ ॥ चाहे दु:ख मिले या सुख तथा बंधन हो या मोक्ष इसकी परवाह न करके वे उसी कल्पित ब्रह्मपद के प्रेमी बने रहे। ऐसे लोग अज्ञानजनित भ्रांतिबुद्धि में लगे रहने से सावधान नहीं होते ॥ ४ ॥

सुख मानै चौरासी खानी। भुगतै कष्ट न परै पहिचानी ॥ ५ ॥
ऐसेहि बहुत दिवस गै बीती। एकै जमा अनेकन रीती ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — एकै = एक ही समान, असंग, निराधार। **जमा** = अविनाशी। रीती = प्रकार।

भावार्थ — जीव चौरासी खानियों में दु:ख भोगते हुए भी भूलवश उनमें सुख मानते हैं। विषयों के फन्दे में कष्ट भोगते हुए भी उनको उस दु:ख की परख नहीं होती ॥ ५ ॥ इस प्रकार जीवों को भूल में पड़े-पड़े अनादिकाल का समय बीत गया। प्रत्येक चेतन अपने स्वरूप से अकेला, असंग एवं निराधार होते हुए भी अनेकों प्रकार से कष्ट भोगते रहे ॥ ६ ॥

देखि अनेक रीति अकुलाना। निज शोधन तब कियो सुजाना ॥ ७ ॥
सत्य विचार धीरता पाई। दया शील उर बसो सहाई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **रीति** = रिवाज, ढंग, प्रकार, नियम, स्वभाव, गति। **अकुलाना** = आकुल होना, घबड़ाना, विह्वल होना।

भावार्थ — अनेक नरजन्मों के शुद्धसंस्कार से जिनका अंत:करण दिव्य हो गया, वे इस संसार की अनेक रीतियाँ देख कर व्याकुल हो गये। तब वे प्रबुद्ध पुरुष अपने स्वरूप का यथार्थ शोध लगाये ॥ ७ ॥ इस स्वरूपशोधन में उनके हृदय में बसे हुए सत्य, विचार, धैर्य, दया और शील सहायक हुए ॥ ८ ॥

विशेष — जैसे कि पहले चर्चा कर आये हैं कि कभी-कभी ऐसे दिव्य पुरुष हो जाते हैं जो अपने स्वरूप का यथार्थ शोध किसी खास गुरु की अपेक्षा के बिना स्वयं कर लेते हैं। यद्यपि वे प्राप्त साहित्य, सत्पुरुष, जनसमाज एवं प्रकृति सबसे शिक्षा लेते तथा गुण ग्रहण करते हैं; तथापि मूलतः सत्य स्वस्वरूपशोधन में उनका कोई मुख्य मार्गदर्शक नहीं होता।

उसकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र होती है और वे अनन्त प्रतिभा के धनी होते हैं। वे जब देखे कि संसार के सब जीव स्वतंत्र चेष्टा करते हैं। संसार में नाना मत, मजहब हैं, ग्रन्थ, पंथ चलते हैं। ये सब मनुष्यों द्वारा चलाये जाते हैं। यदि ये किसी सर्वसमर्थ द्वारा चलाये जाते तो परस्पर विरुद्ध न होते। जड़ तत्त्व अनेक हैं उनमें चेतना नहीं है। इसलिये अपना स्वरूप जड़ से पृथक, चेतन तथा स्वतंत्र है। संसार में पेट भर पाप होता है उसको कोई सर्वसमर्थ नहीं रोकता, इसलिये ईश्वर एक कल्पना है। चेतन अनेक हैं, जड़ तत्त्व भी अनेक हैं। जड़-चेतन परस्पर भिन्न हैं। इस प्रकार अद्वैत व्यापकवाद भी भ्रम है। सबका परखने वाला मैं सबसे भिन्न पारख स्वरूप चेतन हूँ। इस प्रकार कोई मुज जीव अपने आप को शोधकर सबसे पृथक समझ लिया और उसी प्रकार सबसे अनासक्त होकर स्वयं मुक्त हो गया और अन्य को वह मार्ग बता गया। यही घटना सद्गुरु कबीर में घटी।

प्रेम गोहार स्वतः पद देखा। इन्हके लहत सब मिटै अलेखा ॥ ९ ॥
ठहरि यथारथ पारख कीन्हा। लहत प्रकाश स्वतः पद चीन्हा ॥ १० ॥

शब्दार्थ — प्रेमगोहार = प्रेम पुकार; आंतरिक तीव्र जिज्ञासा। अलेखा = अनगिनत; वृथा।

भावार्थ — उन पुरुष को दुःखनिवृत्ति की आन्तरिक प्रबल जिज्ञासा होने से वे अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर लिये। इस स्वरूपज्ञान के प्राप्त होते ही उनकी अगणित भ्रांतियाँ अथवा व्यर्थ की मान्यतायें मिट गयीं ॥९॥ वे सावधान होकर सबकी वास्तविक छानबीन एवं पारख करने लगे; और पारख का प्रकाश (यथार्थज्ञान) होते ही वे अपने आप स्वरूप को पहचान गये ॥ १० ॥

विशेष — यह चेतन जीव सबको जानता, पहचानता और परखता है, अपने आपको क्या पहचानेगा; क्योंकि अपना स्वरूप अपने से पृथक तो है नहीं। वस्तुतः दृश्य से अपनी दृष्टि का अपनी ओर घूम जाना ही अपने आपको पहचानना है। "मैं सबको जानता हूँ, पहचानता हूँ तो मैं सबसे पृथक एक स्वतंत्र-सत्ता हूँ।" बस यह ज्ञान ही अपने आपको पहचानना है। जो अनुभव करते ही बनता है, कहते नहीं।

स्वतः दृष्टि जब जेहि भई भाई। सोई गुरुपद ठहर परखाई ॥ ११ ॥
पारख में ठहरे बुद्धिवंता। देखि दशा निज नाहिन हंता ॥ १२ ॥

शब्दार्थ — गुरुपद = चेतनस्वरूप। पारख = ज्ञान। दशानिज = अपनी दशा; हंसदशा; शुभाचरणयुक्त स्वरूपस्थिति।

भावार्थ — हे भाई! जिसकी स्वतः विवेकदृष्टि खुल गयी, वही अपने चेतन स्वरूप में स्थित होकर अन्य को उसकी वास्तविकता परखाने लगा ॥ ११ ॥ सारे स्थूल-सूक्ष्म संस्कारों को परख करके छोड़ देना और अपने आप शांत रहना—यह पारख में ठहरना है। विवेकवान ही ऐसी दशा में स्थित होते हैं। उनको अपनी उच्च विवेक की दशा को देखकर अहंकार नहीं होता ॥१२॥

विशेष — अधूरे लोग ही मान, बड़ाई, पूज्यतादि का अहंकार करते हैं। स्वरूप-स्थिति में निमग्न पुरुष को उसका अहंकार किसी प्रकार भी नहीं होता। उनकी उच्च स्थिति से प्रभावित होकर लोग उनकी महिमा करते, उन्हें पूजते तथा श्रेष्ठ मानते हैं; परन्तु वे स्वयं उनसबों को स्वप्नवत समझ कर सबसे अनासक्त तथा सर्वथा निरहंकार होते हैं।

मन मायाकृत जे जे जाला। जीवहि दृष्टि निज दीन दयाला ॥ १३ ॥
ताते नाम दयाल कहाये। जीवहि निजुपद आपु लखाये ॥ १४ ॥

शब्दार्थ — दीन = दिया। निजुपद = अपना स्वरूप, अपनी स्थिति।

भावार्थ — मन और माया से उत्पन्न हुए जितने जाल हैं, दयालु सद्‌गुरु जीवों को अपनी परख दृष्टि देकर परखा दिये ॥१३॥ इसीलिये उनका नाम दयालु कहलाया; आपने जीवों को उनका स्वरूप तथा उनकी स्वरूपस्थितिकी दशा परखा दी ॥१४॥

लखै वचन ताके जो जीऊ। सो गुरु सो शिष्य साधु सो पीऊ ॥ १५ ॥
हंसन नाह साहेब गुरुदेवा। बन्दीछोर काल को भेवा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ — लखै = देखे, समझे। पीऊ = पीव, पति, स्वामी। नाह = नाथ, अधीश्वर। काल = कल्पना, अज्ञान। भेवा = भेद, रहस्य।

भावार्थ — उन महान सद्‌गुरु के पारखपूर्ण वचनों को जो व्यक्ति समझकर उसका उपयोग करता है; वही गुरु है, वही शिष्य है, वही साधु है तथा वही स्वामी है ॥ १५ ॥ वही कल्पना का रहस्य जान और उससे विरक्त होकर और स्वरूपस्थिति धारणकरके जिज्ञासुओं का अधीश्वर, साहेब, गुरुदेव तथा बन्दीछोर हो जाता है ॥१६॥

विशेष — बच्चा ही बाबा तथा पुत्र ही पिता बनता है, इसी प्रकार गुरु के वचनों को सुनकर उसका आचरण करने वाला ही गुरु बन जाता है। गुरुवचनों के अनुसार जो व्यक्ति अपना आचरण बनाकर निष्काम स्वरूपस्थिति को प्राप्त किया वही सतशिष्य, वही गुरु, संत, स्वामी, बन्दीछोर तथा सर्वोपरि है। उपर्युक्त पंक्तियों में ग्रन्थकर्ता का अत्यन्त उदारहृदय खुल गया है। यही वास्तविकता का धरातल है।

अशरण शरण ताहि को बाना। दीन उद्धारण हंस सुजाना ॥१७॥
उग्र प्रत्यक्ष गुरु गंभीरा । सुनु शिष्य सो दयाल पद थीरा ॥१८॥

शब्दार्थ — बाना = वेष । उग्र = उत्कट; उच्च । गंभीर = सोच-विचार कर बोलने तथा काम करने वाला; अन्तरमुखी ।

भावार्थ — उन गुरुदेव का शुद्ध साधुवेष अशरण को शरण लेने के लिये है । वे दीनों के उद्धारक, विवेकी तथा प्रवुद्ध होते हैं ॥ १७ ॥ हे शिष्य ! सुनो, वे प्रत्यक्ष बोधदाता गुरु, उच्च, अन्तरमुखी, दयालु तथा शांतस्वरूप होते हैं ॥ १८ ॥

सुन गुरुवचन ठहरे पद जोई। सो शिष्य स्थिर निजपद मैं होई ॥१९॥
परख परखावन जीवन केरा। यह व्यवहार यथार्थ निबेरा ॥२०॥

शब्दार्थ — निबेरा = निर्णय ।

भावार्थ — हे शिष्य ! सद्गुरु के वचनों को सुनकर जो उसमें ठहरता है, वह अपने स्वरूप में स्थित होता है ॥१९॥ स्वयं सारासार की परख करना तथा दूसरे व्यक्तियों को परखाना; साधु-गुरु का यह व्यवहार निर्णय से यथार्थ माना गया है ॥ २० ॥

विशेष — साधु-गुरु का काम है वे स्वयं सदैव सारासार का निर्णय करते रहें जिससे उनकी स्थिति की रक्षा रहे तथा अन्य मनुष्यों का कल्याण हो ।

सुनु शिष्य यह पद आहि दयाला। नाशक नष्टमई गुण काला ॥२१॥
परख जथारथ ज्योंलौं न आवै। तौलों कस दयाल पद पावै ॥२२॥

शब्दार्थ — नष्टमई = नष्टरूप; नष्ट करने वाला; विघातक । गुणकाला = काल के स्वभाव; अज्ञान; कल्पना; दुःख ।

भावार्थ — हे शिष्य ! सुनो, विघातक अज्ञान के स्वभाव का नाश करना ही दयालु का पद है ॥ २१ ॥ जब तक जिस व्यक्ति में सारासार की परख नहीं आती; तब तक वह दयालु का पद कैसे पा सकता है ? ॥ २२ ॥

कालकला ग्रंथन बहु गाया। सत्य शब्द गहि गुरु बताया ॥२३॥
परखहु काल कला यह जीया। परखि मेटो तासु गुण कीया ॥२४॥

शब्दार्थ — कालकला = कल्पना की हुनर या अक्लमंदी; भ्रांति; अज्ञान ।

भावार्थ — संसार के अनेक मतमतान्तरों के असंख्य ग्रन्थों में ग्रन्थकारों ने अज्ञान-पूर्ण काल्पनिक बातों के वर्णन में अपनी हुनर दिखाई है । परन्तु सद्गुरु कबीर या पारखी संत केवल सत्य निर्णय के शब्दों का ही आधार लेकर सारासार को परखाये हैं ॥ २३ ॥ अतएव हे शिष्य ! इसी जीवन में कल्पना की कला को परखो; और अनुमित, कल्पित तथा भ्रांतियुक्त वाणियों को परख करके उनका त्याग करो ॥ २४ ॥

दोहा—काल दयाल के उभय गुण , कहेउँ यथार्थ प्रसंग ।
अब जो शंका रही चित , पूछहु शिष्य निःशंक ॥ ॥६०॥

शब्दार्थ — उभय = दोनों ।

भावार्थ — काल और दयालु दोनों के गुणों को मैंने इस प्रसंग में यथार्थ रूप में कहा है। अब हे शिष्य ! जो शंका मनमें हो निर्भय होकर पूछो ॥ ६० ॥

१०—साधु और गुरु पर विचार

शिष्य प्रश्न—८

चौपाई—८

काल दयाल उभय गुण स्वामी । वर्णेहु जानेउँ अन्तरयामी ॥ १ ॥
काल जाल को बहु विस्तारा । तव मुख लखेउँ यथार्थ विचारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — कालजाल = कल्पना का जाल; भ्रांति; अज्ञान; बन्धन ।

भावार्थ -- हे अन्तरयामी गुरुदेव ! काल और दयाल दोनों के गुणों का आपने सविस्तार वर्णन किया और मैंने उसे ध्यान पूर्वक सुना ॥१॥ संसार में कल्पनाजाल का बहुत विस्तार है; परन्तु आपके मुखारविन्द से यथार्थ विचार की बातों को समझा ॥२॥

औरहु जाल गुप्त बहुतेरा । सो पूछब जस परै निबेरा ॥ ३ ॥
अब भाखहु प्रभु दुइकर भेदा । साधु गुरु दुइ एक कि छेदा ॥४ ॥

शब्दार्थ — निबेरा = निर्णय; छुटकारा । छेदा = छेद; भेद ।

भावार्थ — और भी अनेक बंधन ऐसे हैं जो गुप्त हैं, उन्हें भी पूछूँगा जिससे निर्णय होकर उनसे छुटकारा हो ॥ ३ ॥ अब हे प्रभु ! हमें इन दोनों का रहस्य बतलाओ कि साधु और गुरु ये दोनों कोई तात्विक भेद वाले स्तर के होते हैं कि समान स्तर के ? ॥ ४ ॥

यह साहेब कछु जानि न जाई । कहहु यथार्थ न्याव बिलगाई ॥ ५ ॥
हंस जीवपद दीनदयाला । नाशक नष्ट काल को जाला ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — बिलगाई = स्पष्ट । हंस = जिज्ञासु । जीवपद = स्वरूपज्ञान । नष्ट = विघातक ।

भावार्थ — हे स्वामी ! यह कुछ स्वयं नहीं जान मिलता; इसलिये यथार्थ निर्णय स्पष्ट रूप से कहिये ॥ ५ ॥ क्योंकि आप जिज्ञासुओं के लिये स्वरूपज्ञान के उपदेशक, विघातक काल के जाल को नाश करने वाले, दीनदयाल हैं ॥ ६ ॥

सद्गुरु उत्तर-८

दोहा—अस्मदादि जग भेष जो, खानि मनुष्य स्वरूप।
ते ते रूप सो साधु हैं, सुन शिष्य उत्तम रूप ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ — अस्मदादि = हमलोग; 'अस्मद' कहते हैं 'मैं' को और 'युस्मद' कहते हैं 'तुम' को। 'अस्मद' का बहुवचन है 'अस्मदादि' अर्थात 'हमलोग' या 'बहुतों का समूह।'

भावार्थ — इस खानि के मनुष्य स्वरूप में से नानामतों के जितने सामूहिक सदाचारी साधु वेषधारी हैं वे सभी साधु रूप हैं; परन्तु हे शिष्य! साधु या गुरु के उत्तम रूप सुनो ॥ ६१ ॥

विशेष — साधुवेष स्वतंत्र जीवनयापन के लिये है, जिससे वह अपना और समाज का कल्याण कर सके। संसार में केवल मनुष्य खानि ही एक ऐसी है जिससे लोग साधु या साधक बन सकते हैं। अतएव मनुष्यों में से ही कुछ लोग साधु का रूप या वेष धारण करते हैं। यदि साधु वेषधारी शुद्ध ब्रह्मचारी हैं, और घर-कुटुम्ब के मोह से रहित, पाखण्ड एवं दुर्व्यसन से मुक्त सद्गुणयुक्त हैं तो उनके द्वारा समाज का हित होता है। साधु किस सम्प्रदाय के हैं इसका कोई भेद नहीं है, उन्हें सदाचारी होना चाहिये, तो वे समाज के पूज्य हैं। परन्तु उनमें जो सर्वोच्च हैं उनका रूप सुनो—

गुरु बोधिक निज थीर पद, डोलै कतहुँ नाहिं।
आपु सुखी औरे सुखी, सद्गुरु कहिये ताहिं ॥६२॥

शब्दार्थ — बोधिक = बोधक; बोध या ज्ञान देने वाला।

भावार्थ — जो गुरु से प्राप्त हुए उपदेशों का दूसरे को बोध देते हैं और अपने स्वरूप में स्थित हैं, और उस स्थिति से कहीं चंचल नहीं होते, वे स्वयं तो वासनामुक्त होने से सुखी ही होते हैं अपने उपदेश व सम्पर्क मात्र से दूसरे को भी सुखी कर देते हैं; उनको सद्गुरु कहना चाहिये ॥ ६२ ॥

जाके लक्षण परख गुण, सुन शिष्य सब विस्तार।
साहु चोर तोहि लखि परै, ठहरिके करहु विचार ॥६३॥

शब्दार्थ — साहु = सच्चा। चोर = झूठा।

भावार्थ — जिन संतों में परख एवं छानबीन करने के गुण तथा लक्षण हैं, हे शिष्य! उनका सब प्रकार से विस्तार सुनो और स्थिर होकर विचार करो, फिर तुम्हें सच्चा और झूठा समझ में आ जायगा ॥ ६३ ॥

तोमर छन्द–२

सुन साधुन के गुण लक्ष शिष्य। कहै मुनीश्वर वेद ऋष्य ॥ १ ॥
जे जे मतन मा जे जे भेष। ते रूप धरें निर्वान देख ॥ १ ॥

शब्दार्थ — लत्त = लक्षण। मतन = मतों; सम्प्रदायों। निर्वान = निर्वाण; मुक्त; शांत।

भावार्थ — हे शिष्य! साधुओं के गुण और लक्षण सुनो। श्रेष्ठ मुनि, वेद तथा ऋषिगण भी सन्तों के लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥ जिन-जिन सम्प्रदायों में जितने प्रकार के लोग त्यागी साधुवेष धारण करते हैं, विचार करके देखो वे मोक्ष या परमशान्ति की प्राप्ति के लिये ही वह रूप धारण किये हैं ॥ २ ॥

ते रूप कहिये अस्मदादि। ते साधु रूप कहिये अनादि ॥ ३ ॥
काहे सो रूप प्रत्यक्ष पूज्य। तेहि रूप धरै गुरुरूप पूज्य ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अस्मदादि = बहुतों का समूह। रूप = साधुरूप; साधुवेष।

भावार्थ — उपर्युक्त षड्दर्शनी संतों को कहना चाहिये कि वे अनादिकालीन सामूहिक परम्परा के रूप में हैं ॥ ३ ॥ उनका वेष प्रत्यक्ष पूज्य क्यों है? क्योंकि वे जगउद्धारक सद्गुरु के पूज्य साधुवेष को धारण किये हुए हैं और— ॥ ४ ॥

तेहि लक्षण उत्तम उत्तम गोत। जग को बेकार नाशक परोत ॥ ५ ॥
बहु मतन माँहि जे जे लहंत। ते साधु कहावै मति महंत ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — गोत = गोत्र; वंश, कुल; गोत्रप्रवर्तक माने हुए ऋषियों की परम्परा; जैसे–गर्गगोत्र गर्ग मुनि का चलाया हुआ, तात्पर्य में उत्तम त्याग वेष की परम्परा। परोत = पराया, दूसरा या पड़ना। लहंत = लहने वाले, साधु गुण को ग्रहण करने वाले। महंत = मुखिया; महान; श्रेष्ठ।

भावार्थ — त्याग-वैराग्य से पूर्ण उन सभी मत के साधुओं के लक्षण उत्तम सदाचरणों से पूर्ण होते हैं और उत्तम गोत्र रूप उनकी त्यागमय शिष्यपरम्परा होती है। वे दूसरों के भी जगतविकारों के नाशक होते हैं ॥ ५ ॥ समस्त सम्प्रदायों की साधु-परम्परा में जो विशेष सद्गुण सम्पन्न होते हैं, वे संतजन मति के महान कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

विशेष — चाहे जिस मत के संत हो, यदि वे संतगुण भूषित हैं तो उनके द्वारा किसी न किसी प्रकार समाज का कल्याण होता है।

तेहि माँहि परख गुरु ठहर साध। आनंद लहरि के समुद्र अगाध ॥ ७ ॥
ते साधु पारखी पारखयुक्त। उत्तम क्रिया सत्यादि युक्त ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — अगाध = अथाह ।

भावार्थ — उन संतों की परम्परा में जो संत गुरुपारख एवं स्वस्वरूप चेतन में स्थित हो गये हैं, वे जीवन्मुक्ति सुख की लहरियों के अथाह समुद्र हैं ।। ७ ।। वे साधु सारासार के पारखी जीवनयात्रा में उत्तम आचरण बरतने वाले, सत्य, दया, शील, विचारादि के सहित परीक्षादृष्टि से सम्पन्न होते हैं ।। ८ ।।

यहि माँहि भेद बहुते अहंत । गुरुबुद्धि परख लहि लहहु संत ।। ९ ।।
बहु कालकेर जे जे महंत । ते परे नाम धारैं अनंत ।।१०।।

शब्दार्थ — यहि माँहि = साधुवेष की परम्परा में । अहंत = हैं । परे = दूर; पृथक; कल्पना, अनुमान एवं भ्रम में ।

भावार्थ — इस साधु परम्परा में बहुत भेद है; गुरुबुद्धि से उसे परखो और सच्चे सन्तों के लक्षण धारण करो ।। ९ ।। बहुत प्रचीन समय के जो महान अग्रेश्वर, मुखिया या आचार्य हुए हैं, वे अपने चेतन स्वरूप से पृथक किसी कल्पित वस्तु के अगणित नाम रखकर उसी का गीत गाये हैं ।। १० ।।

११—साधु और वेष में अंतर तथा साधु गुरु की एकता

शिष्य प्रश्न—९

छन्द—२

यह सुनत शिष्य मन भई है शंक । तब पूछै होय आरत निःशंक ।।११।।
का भेद आहि प्रभु दीनराय । सो कृपा करि दीजै लखाय ।।१२।।

शब्दार्थ — आरत = आर्त; पीड़ित । निःशंक = निर्भय । राय = राजा; सरदार, स्वामी ।

भावार्थ — 'इस साधु परम्परा में बहुत भेद है' यह बात सुन कर शिष्य के मन में शंका उत्पन्न हो गयी; फिर वह पीड़ित होकर तथा सद्गुरु का उदारहृदय जान निर्भय होकर पूछने लगा— हे प्रभु, दीनों के स्वामी ! साधु-परम्परा में क्या अन्तर है, वह कृपा करके हमें बतला दें ? ।। ११,१२ ।।

सद्गुरु उत्तर—९

दोहा—सुनहु शिष्य वृत्तांत यह, साधु भेष बहु भेद ।
भेष काज धारै अमित, साधु रहित जग खेद ।।६४।।

शब्दार्थ — वृत्तांत = घटना; वर्णन; विवरण; विषय ।

भावार्थ — हे शिष्य ! इस विषय को सुनो, साधु और वेष में बड़ा अन्तर है। साधुवेष तो बहुत कारणों से लोग धारण कर लेते हैं; परन्तु संत संसार के कष्ट से सर्वथा रहित होते हैं ॥ ६४ ॥

विशेष — सच्चा साधु तथा केवल साधु का वेष दोनों में महान अंतर है। साधुवेष धरने के कारण अनेक हो सकते हैं। कितने लोग केवल सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिये ही साधु का वेष धारण कर लेते हैं। कितने लोग अपनी त्रुटियों को छिपाने के लिये ही साधुवेष धारण कर लेते हैं। कितने हृदय के तो सच्चे हैं; परन्तु साधनावस्था होने से वे परिपक्व साधु या संत नहीं कहला सकते; किन्तु वे दोषी नहीं हैं। वे किसी दिन अवश्य उस पद को पा जायेंगे जो सर्वोच्च होता है।

जो सच्चा साधु या संत होता है वह सांसारिक मोह-शोक से मुक्त होता है। जिसमें आसक्ति का लेश न हो, वह संत है।

प्रथम कला कालके, दुखित भये बहु जीव।
कलिप बुद्धि अनुमान निजु, भेष धरै कोउ पीव ॥६५॥

शब्दार्थ — प्रथम = उत्तम, सर्वोच्च। कला = गुण, हुनर। काल = कल्पना, अज्ञान। पीव = पति, ईश्वर। अनुमान = अटकल।

भावार्थ — कर्मभूमि सर्वोच्च मानव जीवन में भूलवश कल्पना एवं अज्ञान के गुणों में पड़कर सब जीव दुखी हुए। उस दुःख को छुड़ाने वाला कोई होगा ऐसा अटकल करके अपनी बुद्धि से किसी ईश्वर की कल्पना किये; और उसको पाने के लिये साधुवेष धारण किये ॥ ६५ ॥

भेप त्याग प्रापति निमित, नाना मत परकाश।
रूप धरहि बहु जीयरा, भेष साधु सुबिलास ॥६६॥

शब्दार्थ — प्रापति = प्राप्ति, स्वर्ग, ईश्वर, लोकलोकान्तरों की प्राप्ति। सुबिलास = सुन्दर वस्तुओं में रमण, दया, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचारादि ही सुन्दर वस्तुयें हैं।

भावार्थ — कितने लोग स्वर्ग, ईश्वर देवलोक तथा नाना काल्पनिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये त्याग का वेष धारण करते हैं, और नाना सम्प्रदाय का प्रचार करते हैं। इस प्रकार मनुष्य भ्रांति में पड़कर अनेक रूप बनाता है; परन्तु साधु का वेष तो है भक्ति, दया, क्षमा, शील, विचार, सत्य, धैर्य, विवेक, वैराग्य, संतोष, शांति आदि सुन्दर वस्तुओं में रमण करने के लिये ॥६६॥

हे शिष्य ठहरै साधु वह, जे भेषनमें साँच।
दीन उद्धारण गुरु गनी, तेहि रूप धरि बाँच ॥६७॥

शब्दार्थ — ठह्रै = शांत हो । गनी = ग़नी, धनी, मालदार, बेपरवाह, संतुष्ट । गनी अरबी शब्द है ।

भावार्थ — हे शिष्य ! वेषधारियों में वही सच्चा साधु माना जाता है जो मन, वाणी तथा कर्मों की चंचलता छोड़कर अपने चेतन स्वरूप में शांत हो जाता है । अतएव केवल साधुवेष पहन कर नहीं, अपितु दीनों के उद्धारक, स्वरूप में सन्तुष्ट गुरुदेव के आन्तरिक रूप को धारण करके ही जीव दुःखों से बँच सकता है ॥६७॥

उत्तम दशा विरक्तता, प्राप्त बोधके रूप ।
अहै प्रत्यक्ष प्रमाण जग, स्वयं साधु गुरुरूप ॥६८॥

शब्दार्थ — विरक्तता = निवृत्ति का भाव, मोहमाया से मुक्ति ।

भावार्थ — स्वरूपबोध को यथार्थ रूप से प्राप्त करके मोह-माया एवं जगतप्रपंच से निवृत्त हो जाना मानव जीवन की सर्वोच्च स्थिति है । इसके लिये प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में संसार में वैराग्य-बोध-सम्पन्न सन्त-गुरु हैं ॥ ६८ ॥

भेप साधु बहु अन्तरे, द्रष्टा दृष्टि विचार ।
साधुरूपि गुरु प्रत्यक्ष हैं, भेप साधुता सार ॥६९॥

शब्दार्थ — द्रष्टा = देखने वाला, विचारक । दृष्टि = देखना, नेत्र, प्रकाश, मत, विचार । साधुता = उज्जवल चरित्र । सार = मूल, सत ।

भावार्थ — जैसे देखने वाला और जिस साधन से देखे वह अथवा जैसे द्रष्टा और दृश्य में अर्थात देखने वाला और देखी हुई वस्तु दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है, उसी प्रकार केवल साधु का वेष धरने वाले और आचरण सम्पन्न साधु में महान अंतर है । पूर्ण संतुष्ट सद्गुरु प्रत्यक्ष साधु स्वरूप ही हैं । वस्तुतः वेषधारण का सारतत्त्व है साधुता का धारण करना ॥ ६९ ॥

दीनदयाल भेप यह, धारो अतिप्रिय कीन्ह ।
तातें शिष्य समुदाय यह, मंगलमय को चीन्ह ॥७०॥

शब्दार्थ — धारो = धारण किये । चीन्ह = चिन्ह; लक्षण ।

भावार्थ — दीनदयाल निष्काम सद्गुरु जनों ने इस साधुवेष को अत्यंत प्रियकर समझ कर धारण किया है; अतएव हे शिष्य ! इस साधुसमुदाय के वेष को मंगलमयता का लक्षण समझना चाहिये ॥ ७० ॥

विशेष — वस्तुतः साधुवेष निवृत्तिपरक होने से मंगलमयता का चिन्ह है । यदि उसका कोई दुरुपयोग करता है तो वह स्वयं अपराधी है ।

मंगल मूरति साधु गुरु, लक्षण लक्षित अंग।
गुरु अधिकारी वस्तुके, दृष्टि है तिन संग ॥७१॥

शब्दार्थ — लक्षण = चिन्ह । लक्षित = चिन्ह वाला । अंग = अवयव; साधन । अधिकारी = अधिकार रखने वाला; हकदार । दृष्टि = देखने की शक्ति; लक्ष्य; समझ ।

भावार्थ — जिनके साधन संतलक्षण से सुशोभित हैं, वे कल्याणमूर्ति साधु और गुरु हैं । मुमुक्षु उन्हीं सद्‌गुरु की ज्ञानवस्तु के अधिकारी एवं हकदार हैं; उन्हीं की संगत में उसकी दृष्टि खुल सकती है ॥ ७१ ॥

विशेष — साधु और गुरु के जो लक्षण बताये जाते हैं वे लक्षण जिनमें हों वे ही संत-गुरु मानने योग्य हैं । उन्हीं की संगत तथा ज्ञान से जिज्ञासु एवं मुमुक्षु को ज्ञानलाभ एवं शांतिलाभ होगा ।

साधु गुरु को भेद यह, भेप साधु इमि भेद ।
किंचित दृष्टि प्रताप गुरु, बहु प्रकार कहे वेद ॥७२॥

शब्दार्थ — प्रताप = तेज; प्रभाव । वेद = वेद पुस्तक या अन्य पुस्तकें ।

भावार्थ — इस प्रकार साधु और गुरु का अन्तर बताया गया और वेष तथा साधु का भी अन्तर बताया गया है । वेदादि ग्रन्थों में जो बहुमुखी बातें कही गयी हैं, जिसका समझना सामान्य मनुष्य के लिये कठिन है; उसे सद्‌गुरु की ज्ञानदृष्टि के किंचित प्रभाव से ही, सरल ढंग से समझा जा सकता है ॥ ७२ ॥

विशेष — ज्ञान एवं साधनामार्ग की सारी दुर्गमतायें यथार्थ पारखी सद्‌गुरु की संगत में सुलझ जाती हैं । इसीलिये सद्‌गुरुशरण की महान आवश्यकता है ।

गुरु साधु अंतर नहीं, एकता बहुते येह ।
साधु भेप अन्तर कछुक, द्रष्टा दृष्टि करेह ॥७३॥

शब्दार्थ — येह = इनमें । द्रष्टा = देखनेवाला; चेतन । दृष्टि = देखने का साधन तात्पर्य में दृश्य, जो देखा जाय ।

भावार्थ — सद्‌गुरु और संत में कुछ अंतर नहीं है, प्रत्युत बहुत ही समानता है । परन्तु संत में तथा केवल संत के वेष में कुछ ही नहीं बहुत अंतर है जैसे द्रष्टा और दृष्टि अथवा देखने वाला और देखी हुई वस्तु ॥ ७३ ॥

विशेष — देखने वाला चेतन है तथा जो देखी जाय वह वस्तु जड़ है । इसी प्रकार संत गुण-लक्षण से सम्पन्न संत जानदार हैं और रहनी से रहित केवल वेषधारी बेजान के समान निरर्थक हैं ।

द्रष्टा ठहरै परख गुरु, अति प्रसन्न गुरु ज्ञान ।
संगी करै पाँच को, और पचीस सम जान ॥७४॥

शब्दार्थ — **द्रष्टा** = देखने वाला; परीक्षक; अनासक्त; उदासीन; चेतन। **परखगुरु** = गुरुपारख; चेतन। **पाँच** = सत्य, धैर्य, दया, शील और विचार। **पचीस** = पीछे ३२ से ३९ तक के दोहों में कहे गये शुद्ध २५ प्रकृतियाँ व सद्गुण-सदाचार। **सम** = निष्पक्ष; समतालु।

भावार्थ — कल्याणार्थी स्थूल सूक्ष्म सारे दृश्यों का द्रष्टा बनकर, सबसे उदासीन एवं अनासक्त रहकर पारखज्ञान में स्थित होता है। वह सदैव गुरुज्ञान एवं स्वरूपज्ञान में ही प्रसन्न रहता है। वह सत्य, धैर्य, दया, शील और विचार पाँच शुद्ध तत्त्वों तथा उसकी सद्गुणरूप पच्चीस प्रकृतियों को अपने साथ रखता है; और सबसे समताभाव में रहकर ज्ञानमार्ग में चलता है ।। ७४ ।।

तीनों गुण आचरण शुभ, औ रहस्य युत होय।
ठहरै रमिता भूमि पर, सुन शिष्य मानुष सोय ।।७५।।

शब्दार्थ — **तीनोंगुण** = विवेक, वैराग्य, भक्ति। **रहस्य** = भेद; शुद्धरहनी एवं सद्गुण-सदाचार। 'रहस्य' पारखसिद्धान्त का पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ सद्गुण सदाचार है। **ठहरै** = स्थित हो; एक जगह रहे। **रमिता** = रमता; भ्रमणशील।

भावार्थ — वह विवेक-वैराग्य तथा गुरु-सन्तों के प्रति भक्ति, जीवनयापन में शुभाचरण और समस्त सद्गुण तथा सदाचारों से सम्पन्न होता है। वह चाहे एक जगह किसी आश्रम पर स्थायी रूप से रहे या पृथ्वी पर भ्रमणशील हो; हे शिष्य ! सुनो, वह मनुष्य है ।। ७५ ।।

विशेष — "ठहरै रमिता भूमि पर" का अर्थ यह भी हो सकता है कि अपने रामभूमि एवं चेतनस्वरूप में स्थित हो। पूज्यग्रन्थकर्ता श्रीरामरहससाहेब के हृदय में 'मनुष्य' के लिये कितना महत्त्व है। वे कहते हैं जो दया, क्षमा, शील, सत्य, धैर्य, विचार, विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति आदि समस्त सद्गुण सदाचरणों से सम्पन्न है वह मनुष्य है। आप जीवन्मुक्त पुरुष के लिये भी मनुष्य पद ही पर्याप्त समझते हैं। वस्तुतः सच्चा मनुष्य वही है जो जीवन्मुक्त है।

विवेक-वैराग्यादि समस्त सद्गुणों एवं शुद्धरहनी से सम्पन्न होना चाहिये, फिर वह चाहे एक आश्रम पर ठहर कर जीवनयापन करे अथवा पृथ्वी पर भ्रमणशील हो। जिसकी जो प्रकृति, सुविधा तथा रुचि हो वैसा जीवन बिताये। नियम इतना ही होना चाहिये कि वह अपने आपको बंधनों में न बाँधे।

मानुष बुद्धि पाये बिना, मानुष कधी न होय।
मानुष भये बिना नहिं, लहै सु पारख सोय ।।७६।।

शब्दार्थ — **कधी** = कभी।

भावार्थ -- कोई व्यक्ति मानवबुद्धि की प्राप्ति के बिना मनुष्य कभी नहीं हो सकता और सच्चे अर्थ में मनुष्य हुए बिना वह सारासार की परख नहीं पा सकता ।।७६।।

परख लहै बिनु जियरहिं, प्रथमा दुख न मिटाय ।
दुख मिटै बिनु हंसपद, शिष्य सो कैसे कहाय ।।७७।।

शब्दार्थ — प्रथमा = प्रथम का अज्ञान; पहले की की हुई भूलें ।

भावार्थ — पारख की प्राप्ति हुए बिना जीव से की हुई प्रथम की भूलों का दुःख नहीं मिट सकता । और हे शिष्य ! बिना दुःखों से निवृत्ति हुए वह हंसपद एवं कल्याण-दशा को कैसे पा सकता है ? ।। ७७ ।।

विशेष — पूर्व से होते आये हुए भूलकृत कर्मों से मनुष्य का मन हर समय उलझा रहता है । उसके चित्त में राग-द्वेष की जलन बनी रहती है । इस दुःख का सर्वथा अंत तब तक नहीं होता जब तक उसे संसार की वास्तविकता की परख नहीं होती । और मानसिक दुःखों के धरातल से ऊपर उठे बिना कहाँ वह हंस हो सकता है ?

यह प्रकार दाया सहित, कहा वचन टकसार ।
गुरु बीजक मत प्रौढ़ शुभ, नाशक नष्ट पसार ।।७८।।

शब्दार्थ — टकसार = सत्संग, बीजक । नष्ट = समाप्त, नीच, अधम, विघातक । पसार = मायाजाल, प्रपंच ।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से सद्गुरु कबीर ने कृपापूर्वक संतों के सत्संग या बीजक में निर्णय वचन कहे हैं । सद्गुरु कबीर के बीजक के विचार अत्यन्त पक्के, कल्याणप्रद तथा विघातक मायाजाल के नाशक हैं ।। ७८ ।।

अशरण शरण दयाल प्रभु, बंदीछोर कबीर ।
मत प्रकाश शुचि विमल अति, हरण काल की पीर ।।७९।।

शब्दार्थ — काल = अज्ञान, कल्पना ।

भावार्थ — अज्ञानवश आश्रयहीन बने जीवों को आश्रय देने वाले, दयालु, अनुशास्ता, बन्धनछुड़ाने वाले सद्गुरु कबीर के अत्यन्त निर्मल विचारों का प्रकाश संसार में है, जो अज्ञान एवं कल्पना जनित पीड़ा को मिटाने वाले हैं ।।७९।।

१२--सब खानियों में मनुष्य की सर्वोच्चता

शिष्यप्रश्न--१०

सोरठा—हे गुरु दीनदयाल, तुम भाखेउ गुरु साधु गुण ।
जानेउँ सबै कृपाल, मर्म यथारथ उभय गुण ।।११।।

शब्दार्थ — मर्म = भेद । उभय = दोनों ।

भावार्थ — हे दीनदयालु गुरुदेव ! आपने साधु और गुरु के गुण-लक्षणों का वर्णन किया है । हे कृपालु ! मैं दोनों के गुणों के यथार्थ भेद को भलीभाँति जाना हूँ ॥११॥

अब कछु पूछन चाहै, मानुष के गुण लक्षयुत ।
चौरासी केहि आहि, निर्णय कहहु यथार्थ शुभ ॥१२॥

शब्दार्थ — चाहै = चाहता हूँ । आहि = है ।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! अब मैं कुछ अन्य प्रश्न करना चाहता हूँ, वह यह है कि वास्तविक गुण-लक्षणयुत मनुष्य और चौरासी खानि किसे कहते हैं ? इसका वास्तविक और कल्याणप्रद निर्णय करें ॥ १२ ॥

सद्गुरु उत्तर—१०

हे शिष्य सुनहु यथार्थ विचारा । चौरासी को जो व्यवहारा ॥ १ ॥
मन माया कृत ब्रह्म बनाया । चौरासी फन्दा निर्माया ॥ २ ॥

शब्दार्थ — व्यवहार = कार्य; स्थिति ।

भावार्थ — हे शिष्य ! जो चौरासी की स्थिति या कार्य है उसके विषय में वास्तविक विचार सुनो ॥ १ ॥ मनुष्यों ने अपने मन तथा वासनाओं से कल्पना करके एक ब्रह्म का स्वरूप निर्मित किया, और कहा कि चौरासी का जाल उसी ब्रह्म ने निर्माण किया है ॥ २ ॥

विशेष — मनुष्यों ने ऐसी कल्पना कर रखी है कि एक अनादि-अनंत ब्रह्म है । वही चौरासी जाल का निर्माण किया है । परन्तु इसका निराकरण इस उत्तर के आरम्भ में ही यह कहकर कर दिया गया है कि "मन माया कृत ब्रह्म बनाया" अर्थात ब्रह्म स्वयं मनुष्य के मन-वासना एवं कल्पना से बनाया हुआ कल्पित है ।

वस्तुतः मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज ये चारों खानियाँ अनादि हैं । इनको यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक समय ये उत्पन्न हुईं । क्योंकि विना कर्म के देह नहीं तथा विना देह के कर्म नहीं । इस प्रकार कर्म-देह का प्रवाह अनादि होने से सभी खानियाँ सदा से चली आयी हैं ।

चारि खानि मा बासा दीन्हा । द्वारा चौरासी को कीन्हा ॥ ३ ॥
सोई खानि चौरासी योनी । जीव कोटि प्रगटे बहु छोनी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — बासा = निवास, वासना । द्वारा = मार्ग । चौरासी = चार राशियाँ, ढेरियाँ, मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज । कोटि = श्रेणी, दर्जा, करोड़ की संख्या । छोनी = क्षोणी, भूमि ।

भावार्थ — असंख्य जीव उक्त चारों खानियों में वासनावश निवास करते हैं, और इन्हीं चारों खानियों को गमनागमन का द्वार बना रखे हैं ॥ ३ ॥ उपर्युक्त खानियाँ चार राशियाँ एवं चार ढेरियाँ हैं, जिसमें करोड़ों जीव अगणित प्रकार की देहें धारण करके पृथ्वीपर प्रकट होते हैं ॥ ४ ॥

उत्तम मध्यम गुणहु समूहा । खानि खानि बिच दीन्हेउ जूहा ॥ ५ ॥
यहि विधि चारि खानि चौरासी । बसै जहाँ तहाँ नष्ट प्रकाशी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — जूहा = जूह, यूथ, सजातीय जीवों का समूह, झुंड । खानि = उत्पत्ति स्थान । नष्ट = नाश, अधम ।

भावार्थ — उत्तम, मध्यम, अधम गुणों के समूह वाले जीव प्रत्येक खानि के बीच में झुण्ड-के-झुण्ड दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥ इस प्रकार मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज इन चार खानि या चार राशियों में जहाँ पर जीव निवास करते हैं वहाँ भूलवश अपने अधम कर्म का ही प्रकाश करते हैं ॥ ६ ॥

विशेष — मनुष्य से लेकर, पशु, पक्षी आदि समस्त खानियों में सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी जीव समूह-के-समूह निवास करते हैं । परन्तु बिना मानव शरीर तथा उसमें पारख विवेक प्राप्त हुए सब अधम कर्म में ही पड़े हैं, जो दुःखों का कारण है ।

पारख जीवन कष्टित देखी । खानि उग्र बोधित कै लेखी ॥ ७ ॥
चारि खानि द्रष्टा जब देखा । निर्णय खानि मनुष्य की पेखा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — उग्र = उत्कट, उच्च । बोधित = जिसे बोध कराया गया है, ज्ञानवान । लेखी = समझा । द्रष्टा = देखनेवाला, विवेकी पुरुष । पेखा = देखा ।

भावार्थ — विवेकियों ने चारों खानियों के जीवों को दुखी देखा, तब वे समझे कि सभी खानियों में सर्वोच्च मनुष्य खानि है जिसमें सबका ज्ञान होता है अर्थात मनुष्य सबका ज्ञान रखता है, वहीं से दुःख छूट सकता है ॥ ७ ॥ इस प्रकार विवेकी पुरुषों ने जब चारों खानियों की छानबीन की तब उन्होंने मनुष्य खानि को ही सारासार निर्णय करने की भूमिका समझी ॥ ८ ॥

बुद्धिवंता मानुष बुद्धि सारा । मानुष देह को किया विचारा ॥ ९ ॥
मानुष देह उत्तम जग खानी । स्थावर मिलि चारि ठहरानी ॥ १० ॥

शब्दार्थ — सारा = सार, मूल, महत्त्वपूर्ण । स्थावर = अचल, गतिहीन, निष्क्रिय, निर्जीव पत्थर, पर्वत, वृक्षादि ।

भावार्थ — बुद्धिमान पुरुष जब मनुष्य देह पर विचार करता है, तब उसमें वह मानवीयबुद्धि को ही महत्त्वपूर्ण समझता है ॥ ९ ॥ संसार के समस्त खानियों में मनुष्य-देह सर्वोतम है। अन्य लोगों ने स्थावर को सम्मिलित करके चार खानियाँ ठहराई हैं ॥ १० ॥

विशेष — पारख सिद्धान्त के अतिरिक्त लोगों ने पिण्डज, अण्डज, उष्मज और स्थावर—इस प्रकार चार खानियों का निर्धारण किया है। पिण्डज ही में मनुष्य और पशु दोनों सम्मिलित हैं। परन्तु विवेक से देखने पर पता चलता है कि वृक्ष, वनस्पति, पर्वत आदि में जीव नहीं हैं। इसका निर्णय मानुषविचार के भोजन सुधार में कर आये हैं।

खानि का अर्थ है उत्पत्ति स्थान व भण्डार। वृक्ष, पर्वत, कंकड़, धातु आदि भी उत्पन्न होते हैं। इसलिये इन्हें भी हम एक खानि यदि मान लें, तो कहना होगा कि ये निर्जीव खानि हैं। परन्तु भ्रमवश लोगों ने इन्हें भी जीवधारी मान रखा है। यहाँ तक कि शिवजी की बारात में पेड़, लता, गुल्म, नदी, नाले, पर्वत सब आये थे।

वृक्ष, कंकड़, पर्वतादि सर्वथा निर्जीव हैं इसलिये वे सचेतन खानि नहीं हैं। इस प्रकार विवेक करके देखा जाय तो पिण्डज, अण्डज और उष्मज तीन ही खानि सचेतन हैं। परन्तु पुरानी परम्परा के अनुसार खानियों की संख्या चार ही बनाये रखने के लिये पारखी सन्तों एवं विद्वानों ने मनुष्य को पशु से पृथक करके चार खानि को गिनाया है—मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज।

अंडज पिंडज उष्मज खानी। रूप ठहर मानुष बुद्धि जानी ॥११॥
अंडज अंड माँहि जो आया। पिंडज पिंड प्रगट सो जाया ॥१२॥

शब्दार्थ — जाया = उत्पन्न किया हुआ।

भावार्थ — अण्डज, पिण्डज और उष्मज खानि के नाम रूपों का निर्धारण करने वाली मनुष्य की बुद्धि को ही समझना चाहिये ॥११॥ अण्डज वे जीव कहलाते हैं जो पहले अण्डे में आकर, पीछे अण्डा के फूटने पर उनके शरीर प्रकट होते हैं जैसे पक्षी, सर्प आदि, और पिण्डज वे हैं जो पिण्ड से ही प्रकट हो जाते हैं जैसे मनुष्य, पशु आदि ॥ १२ ॥

उष्मज अंड पिंड संबंधी। स्थावर तत्त्व है उधमज संधी ॥१३॥
पाँच तत्त्व मा जासु प्रकाशू। तत्त्व स्थावर संबंधी बासू ॥१४॥

शब्दार्थ — उधमज = उत्पन्न। संधी = भेद। बासू = निवास, स्थिति।

भावार्थ — उष्मज खानि के जीव प्रायः अण्डज और पिण्डज खानियों के देह-धारियों के बीच में उत्पन्न होते हैं; और स्थावर–वृक्ष, वनस्पति, कंकड़, पत्थर आदि

जड़तत्वों के भेद से उत्पन्न होते हैं ।। १३ ।। जिनका प्रकाश या चमक-दमक पाँच तत्वों के भीतर में ही है; अर्थात वे निर्जीव हैं । स्थावर की स्थिति केवल जड़तत्वों के सम्बन्ध में ही है ।। १४ ।।

विशेष — उष्मजी जीव अण्डज-पिण्डज के सम्बन्ध में उत्पन्न होते हैं; इस कथन का अर्थ इतना ही है कि अण्डज-पिण्डज खानि के देहधारियों के देहों में अनेक प्रकार चीलर, जुँयें आदि उत्पन्न होते रहते हैं ; परन्तु यह भाव नहीं है कि उनसे पृथक नहीं उत्पन्न होते । प्रत्यक्ष ही जल, थल, फल, पत्ते में सर्वत्र उष्मजी जीव देह धरते रहते हैं ।

अंडज पिंडज उष्मज माँही । चेतन तत्त्व हंसा को आही ।।१५।।
उष्मज जैसे दुई अधारा । तैसे स्थावर तत्त्व पसारा ।।१६।।

शब्दार्थ — हंसा = मनुष्यचेतन । पसारा = विस्तार ।

भवार्थ — अण्डज, पिण्डज और उष्मज में मनुष्य के सजातीय चेतन जीव हैं, अर्थात जैसे मनुष्य में चेतन हैं, उसी समान अण्डज, पिण्डज तथा उष्मज में भी चेतन हैं ।।१५।। जैसे कहा गया कि उष्मज खानि के जीव अण्डज तथा पिण्डज खानि के देहों पर पसीने, मैल आदि में देह धर लेते हैं; वैसे ही स्थावर केवल जड़तत्त्वों का विस्तार हैं ।। १६ ।।

विशेष — उष्मज तथा स्थावर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'जैसे' और 'वैसे' अव्यय मूल में लगे देखकर यह भ्रम नहीं कर लेना चाहिये कि उष्मज तथा स्थावर की उत्पत्ति में समानता है या जैसे उष्मज जीव हैं वैसे स्थावर भी । ग्रन्थकर्ता ने स्थावर के साथ में उष्मज का प्रमाण एक सहज ढंग से दे दिया है । वस्तुतः उष्मज सचेतन खानि है; और स्थावर अचेतन, निर्जीव, केवल जड़तत्त्वों का विस्तार । ग्रंथकर्ता स्वयं अगली चौपाइयों में कहते हैं ।

जीवत भाव स्वतः तहाँ नाहीं । तत्त्व संयुक्त प्रकाश दिखाहीं ।।१७।।
निर्णय वचन विचारे येहा । गुणन सहित जड़ स्थावर देहा ।।१८।।

शब्दार्थ — देहा = देह स्वरूप ।

भावार्थ — यह स्वतः सिद्ध है कि वृक्ष, वनस्पति, गुल्म, लता, पर्वत, पत्थर, कंकड़ आदि स्थावर में चेतना का अस्तित्व नहीं है । उनमें जो हरापन, चिकनापन आदि चमक-दमक दिखते हैं सब पृथ्वी, जल आदि जड़तत्त्वों के गुण-धर्म हैं ।। १७ ।। इस निर्णय वचन का बारम्बार विचार करे और यह भली-भाँति समझ ले कि तत्त्वों के गुण-धर्म के युक्त ही जड़ स्थावर के स्वरूप हैं ।। १८ ।।

विशेष — यह प्रश्न हो सकता है कि वृक्ष, वनस्पति, पर्वत, पत्थरादि में बिना चेतन जीव के रहे ही कैसे इतनी चमक-दमक है ? इसका उत्तर ग्रंथकर्ता आगे स्वयं देते हैं ।

दोहा — चेतनहूँ ते गुण अधिक, जड़ स्थावर विस्तार।
बासा चेतन ताहि में, खानी उग्र अधार ॥८०॥

शब्दार्थ—बासा = निवास। ताहि में = जड़तत्त्वों के कार्यों में। उग्र = उत्कट; सर्वोत्तम।

भावार्थ — चेतन से भी अधिक गुण तथा स्वभाव जड़तत्त्वों में होते हैं, जिससे स्थावर का विस्तार है। कर्माध्यासवश चेतन जीव उन्हीं जड़तत्त्वों के नाना कार्यों में अपना निवास किये हैं। समस्त खानियों के निर्वाहका सर्वोच्च आधार जड़ तत्त्व ही है ॥ ८० ॥

विशेष — वृक्ष, वनस्पति, अन्न, लता, गुल्म, पर्वत, पत्थर, कंकड़, धातु आदि स्थावर का महत्वपूर्ण विस्तार तथा उनमें हराभरापन चमक-दमक एवं सौंदर्य देखकर जो यह मनमें संदेह उत्पन्न हो सकता है कि इनमें बिना चेतन के निवास हुए ये इतने चमकदमक पूर्ण कैसे हैं? इसका समाधान करते हुए ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि अस्थावर की जिन केवल जड़तत्त्वों से उत्पत्ति है उन पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु में चेतन से भी अधिक गुण हैं। चेतन में तो केवल ज्ञान गुण ही है; परन्तु अनेक जड़ तत्त्वों में अनेक विरोधी गुण-धर्म होने से उनके संयोग से एक विचित्र वस्तु की उत्पत्ति हो जाती है।

इन्हीं जड़तत्त्वों के नानाकार्यों में चेतन अनादिकाल से अपना निवास किये हैं। क्योंकि सभी खानियों की देहों की उत्पत्ति, रक्षा और विलय का सर्वोच्च आधार ये जड़तत्त्व ही हैं।

हंस बिहारन खानि जड़, उत्तम मध्यम कीन्ह।
बासा ता मध्ये राखि के, मानुष आपन पद दीन्ह ॥८१॥

शब्दार्थ — हंस = जीव। बिहारन = विहार; क्रीड़ा; उपभोग; निर्वाह। बासा = निवास, वासना। दीन्ह = दिया, गँवाया, पतित हुआ।

भावार्थ — जड़ स्थावर खानि जीवों के उपभोग व निर्वाह का स्थान है; अथवा पिण्डज, अण्डज और उष्मज सचेतन खानि की भी सारी देहें जड़ ही हैं और उन्हें जीवों ने भूलवश अपने क्रीड़ा-विहार के स्थान मान रखा है। उनमें भी मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज क्रमशः उत्तम, मध्यम, नीच आदि खानियाँ निर्धारित की गयी हैं। मनुष्य भूलवश इन्हीं में अपने निवास एवं वासना रखकर अपनी वास्तविक स्थिति को गँवा बैठा है ॥ ८१ ॥

निर्णय दयानिधान के, खानिन के गुण देख।
मानुष खानि ते भिन्न है, भ्रमवश खानिमें लेख ॥८२॥

शब्दार्थ — **मानुष** = मनुष्य, वास्तविक मनुष्य, जीवन्मुक्त । **लेख** = लेखा, हिसाब-किताब समझना ।

भावार्थ — कृपानिधान सद्गुरु के निर्णय को जानकर सभी खानियों के गुण-लक्षणों को समझो । अण्डज, पिण्डज, उष्मज इन भोग खानियों से मनुष्य सर्वथा पृथक है, वह अज्ञानवश अपने को भी भोग खानि में मानकर पशुवत आचरण करता है ॥८२॥

विशेष — मनुष्य शरीर कर्मभूमिका है यहाँ साधना एवं ज्ञानद्वारा कल्याण की प्राप्ति की जा सकती है । इसे अन्य खानियों में गिन लेना उचित नहीं ।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि मनुष्य के शरीर किसी खानि में नहीं पैदा होते, आकाश से टपक पड़ते हैं । मनुष्य के शरीर भी पिण्डज के अन्दर में ही आयेंगे । वे भी उत्पन्न होते हैं । यहाँ उपर्युक्त बात कहने का अर्थ यह है कि मनुष्य शरीर सर्वोच्च तथा कल्याण की भूमिका है, इसलिये उसे पिण्डज कहकर पशु में नहीं जोड़ लेना चाहिये; अपितु पिण्डज, अण्डज, उष्मज से पृथक मनुष्य सर्वोच्च है ।

अथवा जो सच्चा मनुष्य है, जीवन्मुक्त है; वह सभी खानियों से पृथक एवं मुक्त है । लोग भ्रमवश ही उसका शरीर देखकर उसे किसी खानि का जीव कहते हैं, वस्तुतः वह सर्वोत्तम पद को प्राप्त कल्याणरूप है ।

वाणी से खानी लखे, द्रष्टा मनुष्य स्वरूप ।
मानुप भये सुधरै सबै, निर्मल दृष्टि अनूप ॥८३॥

शब्दार्थ — **वाणी** = बोली, बातचीत । **खानी** = देह; व्यवहार । **दृष्टि** = लक्ष्य; अन्तःकरण । **अनूप** = उपमारहित, विलक्षण ।

भावार्थ — मनुष्यस्वरूप द्रष्टा को चाहिये कि वह किसी की बातचीत से उसके व्यवहार को समझने की कला सीखे । सच्चा मनुष्य बन जाने पर सब त्रुटियों का सुधार हो जाता है, उसकी दिव्य एवं विलक्षण दृष्टि हो जाती है ॥ ८३ ॥

विशेष — बोली से खानी का ज्ञान होता है । कुत्ता, बिल्ली, सियार, मोर, बतख, घोड़ा, हाथी आदि को हम उनकी बोली सुनकर आड़ से भी उन्हें पहचान लेते हैं । इसी प्रकार किसी की बातचीत सुनकर हम यह अन्दाज लगा सकते हैं कि उसका व्यवहार क्या होगा । यद्यपि कभी-कभी इसमें भी धोखा खाना पड़ता है और बहुत गढ़-छील कर बात करने वालों का भी व्यवहार अंततः बहुत गंदा मिलता है । परन्तु उसमें भी अपने ही समझने में कमी, असावधानी, शीघ्रता, अदूरदर्शिता, प्रलोभन आदि कारण रहते हैं । यह निश्चित है कि मनुष्य यदि सबकी सुने अधिक और स्वयं बोले कम, शीघ्रता न करे, प्रलोभन में न पड़े और किसी के बात को सुनकर उस पर अधिक विचार करे तो उसे धोखा बहुत कम उठाना पड़ेगा ।

साधक को अपनी रहनी उत्तेजना-रहित निर्विकार, निष्काम वासनाविहीन एवं शुद्ध बनाना चाहिये। इसप्रकार मनुष्य जब सच्चे अर्थों में मनुष्य बन जायगा, तब उसका सब प्रकार से कल्याण हो जायगा और उसका अन्तःकरण स्वच्छ, विलक्षण एवं शांतसागर बन जायगा।

सद्गुरु कबीर के समान ही श्रीरामरहस साहेब की दृष्टि में मनुष्य से बढ़कर कोई नहीं है। संत, गुरु, जीवन्मुक्त सब सच्चे मनुष्य के ही विशेषण हैं।

दृष्टि प्रकाशी सो परख गुरु, मानुष परखि के लीन्ह।
मानुष पारख लहतहीं, गुरु दृष्टिहि चित दीन्ह ॥८४॥

शब्दार्थ — दृष्टि प्रकाशी = प्रकाश दृष्टि वाला, ज्ञाननेत्रों वाला। गुरुदृष्टि = उच्च दृष्टि; स्वरूपज्ञान।

भावार्थ — वह पारखी सद्गुरु है जो ज्ञाननेत्रों वाला है; क्योंकि उसने अपने मानवीय गुण-लक्षणों को परख करके धारण कर लिया है। जब मनुष्य सारासार का पारख प्राप्त कर लेता है तब वह स्वरूपज्ञान में अपनेमनको एकाग्र कर देता है ॥ ८४ ॥

विशेष — अपना चेतन स्वरूप ही सार है, उससे पृथक जो कुछ भी है असार है; इस प्रकार परख हो जाने पर साधक असार दृश्य को त्यागकर सार स्वस्वरूप में ही एकाग्र हो जाता है।

मानुष गुरुमुख परख लही, सम हंसा पद थीर।
औरहि परखावन लग्यो, गुरुमत गुण गंभीर ॥८५॥

शब्दार्थ — सम = एकरस; निष्पक्ष, विरक्त। हंसापद = हंसपद, विवेक-भूमिका; चेतन स्वरूप। गंभीर = गहरा; ऊँचा, महान।

भावार्थ — जब मनुष्य गुरुमुख-द्वारा सारासार की यथार्थ परख प्राप्त कर लेता है, तब वह निष्पक्ष एवं विषयविरक्त हो शुद्ध आचरण पूर्वक अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो जाता है। और वही मनुष्य सद्गुरु के सद्गुण सम्पन्न सर्वोच्च सिद्धान्त को दूसरे को परखाने लगता है ॥ ८५ ॥

विशेष — अज्ञानी व्यक्ति सद्गुरु से ज्ञान पाकर ज्ञानी बन जाता है, और पुनः वही सद्गुरु होकर दूसरे का ज्ञानदाता हो जाता है।

मानुष देही पाँचकी, दशा साधु के रूप।
पंचाइत गुरु न्याव शुभ, अटल राज गुरु भूप ॥८६॥

शब्दार्थ — दशा = स्थिति। साधु = उत्तम। पंचाइत = सत्संग। न्याव = न्याय; निर्णय। अटलराज = स्वरूप स्थिति। भूप = राजा; श्रेष्ठ।

भावार्थ — इस कल्याण क्षेत्र मनुष्य शरीर में जो सत्य, धैर्य, दया, शील, विचार इन पाँच सद्गुणों की स्थिति और उत्तम साधना का रूप धारण करता है; और सत्संग में सद्गुरु के कल्याणकारी निर्णय को ग्रहण करता है; वह स्वयं श्रेष्ठ सद्गुरु बनकर जीवन्मुक्ति के अचलराज में विहरता है ॥८६॥

परम सुउज्ज्वल धर्म है, हे शिष्य लिये जो जाय ।
मानुष बचै यह जालसे, काल रहै पछिताय ॥८७॥

शब्दार्थ — यह जाल = खानी-वाणी । काल = मन, अज्ञान ।

भावार्थ — हे शिष्य ! उपर्युक्त जिस धर्म का मैं वर्णन किया हूँ अत्यन्त ज्ञान स्वरूप है ; यदि इसे धारण किया जा सके, तो मनुष्य इस खानी-वाणी तथा जन्म-मरण के जाल से बच जाय; और जो अनादि काल से उसे दुख एवं बंधन देते आया है वह मन पश्चाताप करते हुए सारे बंधनों के कामों को छोड़कर शांत हो जाय ॥८७॥

काल कला मानुष लखै, पशुते लखी न जाय ।
बोधित खानि औ बानि में, पशुवा रहै भुलाय ॥८८॥

शब्दार्थ — काल = अज्ञान; मन । कला = हुनर; गुण । मानुष = विवेकी-मनुष्य । पशु = अविवेकी या पक्षपाती मनुष्य । बोधित खानि औ बानि में = जो खानी-वाणी को ही सुख रूप समझते हों । खानि = धन, जमीन, मकान, परिवार, विषय भोग आदि । बानि = वाणी, वाणी से सुनकर देवी-देवता, भूत-प्रेत, ईश्वर-ब्रह्म, तथा अनेक कल्पित, भ्रामक कथायें, मान-बड़ाई आदि ।

भावार्थ — जो विवेकी मनुष्य है वही मन एवं अज्ञान के गुण, स्वभाव को समझ सकता है, अविवेकी व पक्षपाती नहीं समझ सकता । जो पशु सदृश अविवेकी या पक्षपाती मनुष्य हैं वे तो खानी-वाणी जाल को ही सुख रूप मानकर उसी में भूल रहे हैं ॥८८॥

१३—अपने विवेक तथा मानवीय लक्षणों से मनुष्य की विशेषता

शिष्य प्रश्न—११

चौपाई—१०

मानुष भिन्न कहेउ कस स्वामी । खानि बानि सो कहेउ प्रनामी ॥ १ ॥
कैसे भिन्न मानुष सुप्रकारा । निर्णय कहहु यथार्थ विचारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — प्रनामी = गुरु, ब्राह्मण आदि को प्रणाम करते समय दी जाने वाली दक्षिणा या भेंट; प्रणाम करने वाला ।

भावार्थ — हे स्वामी ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ और प्रश्न है कि आप समस्त खानियों तथा वाणी से भी मनुष्य को पृथक किस प्रकार कहे ? ॥१॥ मनुष्य कैसे सबसे भिन्न तथा उत्तम प्रकार वाला है ? हे गुरुदेव ! विचार पूर्वक यथार्थ निर्णय करें ॥२॥

मानुष चौरासी मा थापू । कहेउ महातम आपन आपू ॥ ३ ॥
सो केहि भाँति भिन्न बतलावा । दीन उद्धारण देहु लखावा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — थापू = स्थापन किया; निर्धारित किया, माना ।

भावार्थ — सभी मत-मतान्तर के लोगों ने मनुष्य को भी चौरासी के भीतर ही निर्धारित किया है । केवल आप ही ने स्वयं उसका इतना ऊँचा माहात्म्य किया है ॥३॥ अतएव हे दीनों के उद्धारक गुरुदेव ! आप किस प्रकार से मनुष्य को चौरासी से पृथक बतला रहे हैं, इसका रहस्य बताने का कष्ट करें ? ॥४॥

सद्गुरु उत्तर — ११

सोरठा—सुनहु शिष्य बृत्तान्त, चतुर खानि निर्णय लखहु ।
वेद शास्त्र वेदान्त, संत ऋषीश्वर मुनि मनुज ॥१३॥
सबन कीन्ह परमान, तेहि आचरण चलहीं सब ।
बन्दीछोर सुजान, निर्णय कीन्ह निज परखते ॥१४॥

शब्दार्थ — वृत्तांत = घटना; विषय; निर्णय; प्रसंग । चतुर = चार । वेदांत = उपनिषद् । परमान = प्रमाण, स्वीकार ।

भावार्थ — हे शिष्य ! इस विषय को सुनो और चारों खानियों का निर्णय समझो । वेद, शास्त्र, उपनिषद, संत, महान ऋषिगण, मुनिजन एवं मनुष्यजन सबने जो स्वीकार किया है, उसी के आचरण से लोग चल रहे हैं । परन्तु बन्दीछोर परम-ज्ञानी गुरुदेव कबीर साहेब अपनी परीक्षा के बल से निष्पक्ष निर्णय दिये हैं ॥१३, १४॥

विशेष — यहाँ का यह तात्पर्य नहीं है कि सद्गुरु कबीर की विचारधारा के अतिरिक्त लोगों ने मानव शरीर की विशेषता नहीं बताई है । अपितु वेद, शास्त्र उपनिषद, ऋषि-मुनि तथा सभी महापुरुषों ने मानव शरीर की विशेषता बतलायी है । अन्तर यह है कि अन्य लोगों ने मनुष्य के ऊपर भी कर्ता की कल्पना कर ली है, और सद्गुरु कबीर तथा उनके अनुयायी पारखी सन्तों ने मनुष्य को ही सर्वोपरि माना है । अंततः तात्विक दृष्टि से मनुष्य की आत्मा एवं उसका चेतन स्वरूप ही उसका मुख्य लक्ष्य है ।

चौपाई—११

चारिउ खानि निरंजन थापा। जमा सबन मों अपनी आपा॥ १॥
मैं कर्ता कहि सबन भुलाई। राखेउ निज सेवा अरुझाई॥ २॥

शब्दार्थ — निरंजन = मन। थापा = स्थापित किया। जमा = पूँजी, महत्त्व।

भावार्थ — मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज—इन चारों खानियों की बारम्बार स्थापना अनादिकाल से मन ही करता आया है। वह सभी खानियों में अपने आपका ही महत्त्व रखता है॥ १॥ "मैं स्वभाव से ही शरीर-संसार का कर्ता हूँ" ऐसा मानकर यह मन ही सबको भुला रखा है और सबको अपनी सेवा मे फँसा रखा है॥२॥

विशेष — मन एवं वासना के वश में ही यह जीव सब खानियों में भटकता रहता है। सभी खानियों में मनकी ही महत्ता चल रही है। स्वरूप से जीव प्रकृति से सर्वथा पृथक एवं शुद्ध है; परन्तु यह मन उसको भुलाकर उसे कर्ता-भोक्ता बनाता है। यह मन सबसे अपनी सेवा करवा रहा है। जो मनके चक्कर में पड़े हैं वे सब मनके दास हैं।

कालबली बल अति बलबंडा। राखेउ सबहीं स्वबल ब्रह्मंडा॥ ३॥
चारिउ खानि योनि चौरासी। जीव शीव थल नभचर बासी॥ ४॥

शब्दार्थ — कालबली = बलवान मन। बलबंडा = बलवंत, बलवान। स्वबल = अपनी शक्ति के भीतर। शीव = कल्याणरूप।

भावार्थ — कल्पना करने में शक्तिशाली, कल्पनाबल से युक्त यह मन अत्यंत बलवान है। यह चारों खानि, चौरासी योनि के थलचर, नभचर, जलचर ब्रह्माण्डवासी समस्त जीव जो स्वरूपतः शिव स्वरूप ही हैं उन्हें अपने बल के भीतर कर रखा है॥ ३, ४॥

विशेष — ज्ञान होने पर मन शक्तिहीन होकर शांत हो जाता है। और मनुष्य का कल्याण हो जाता है। परन्तु अज्ञानदशा में सर्वत्र मन का ही राज्य है। मन ही सब पर बलवान बना बैठा है।

पारख देखेउ खानि औ बानी। जीव कोटि ते कर नहिं हानी॥ ५॥
लहतहिं ताहि खानि फरियाई। चारिउखानि मनुष्य ते पाई॥ ६॥

शब्दार्थ — पारख = परखगुण संयुक्त विवेकी। खानि = मोटी माया। बानी = वाणी; झीनीमाया। कोटि = वर्ग; श्रेणी। लहतहिं = पारख प्राप्त होते ही। फरियाई = साफ हुआ; निर्णय हुआ।

भावार्थ — विवेकी पुरुषों ने खानी और वाणी दोनों को बन्धनरूप समझा और वे सोचे कि कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये कि ये जीववर्ग की हानि न कर सकें

अर्थात जीव इनके बंधनों से मुक्त हों ।। ५ ।। पारख एवं विवेक के प्राप्त होते ही सभी खानियों का स्पष्ट निर्णय हो गया कि चारों खानियों के नाम, रूप, गुण, स्वभाव, कर्म आदि का ज्ञान मनुष्य शरीर ही में प्राप्त होता है ।। ६ ।।

विशेष — वासना में लिपटे हुए चेतन ही जीवकोटि या जीव श्रेणी में कहे जा सकते हैं । खानी-वाणी के बन्धन उन्हीं को गाँसते हैं । जो विवेककोटि एवं पारखकोटि में पहुँच गये, उनकी हानि खानि-वाणी के बन्धन नहीं कर सकते क्योंकि वे इनको त्याग कर उनसे ऊपर उठ जाते हैं । इसीलिये ग्रन्थकर्ता ने कहा है कि विवेकियों ने सोचा कि ऐसा उपाय करना चाहिये कि खानि-वाणी बन्धनों से जीवकोटि की रक्षा हो ।

मनुष्य ही चारों खानियों का निर्णयता एवं पारखी है ।

मानुष रूप अति दुर्लभ भाई । जाते चारिउ लखै बनाई ।। ७ ।।
चारिउकर लक्षण व्यवहारा । लखै मनुष्य शुभ अशुभ विचारा ।। ८ ।।

शब्दार्थ — **मानुष रूप** = मनुष्य शरीर, सद्गुणयुक्त सच्चा मानव । **चारिउ** = चारों—मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज । **बनाई** = अच्छीतरह, भलीभाँति ।

भावार्थ — जिस मनुष्य शरीर से हम चारों खानियों को भलीभाँति समझते हैं हे भाई ! उस मनुष्य का सद्गुणयुत सच्चा स्वरूप प्राप्त करना अत्यंत दुर्लभ है ।। ७ ।। मनुष्य ही चारों खानियों के लक्षण और व्यवहार तथा मनुष्य में पाप-पुण्य, हित-अहित के विचार समझता है ।। ८ ।।

मानुप निर्णय आश्रित जोई । मानुप बुद्धि भली विधि सोई ।। ९ ।।
उत्तम मध्यम घीन औ छिन्ना । पशु खानी मानुप ते भिन्ना ।।१०।।

शब्दार्थ — **आश्रित** = अवलम्बित, अधीन । **घीन** = अधम । **छिन्ना** = क्षीण, नष्ट, अधमाधम । **उत्तम** = मनुष्य । **मध्यम** = पशु । **घीन** = अण्डज । **छिन्न** = उष्मज ।

भावार्थ — जो मनुष्य निर्णय विवेक का सहारा लेता है, उसी की भली प्रकार से मनुष्य की बुद्धि है ।। ९ ।। मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज इन चार पाशविक प्रवृत्ति वाली खानियों से सच्चा मनुष्य पृथक है ।। १० ।।

मिलित खानि सब एक अनेका । एकते अधिक एक नहिं एका ।।११।।
पशु लक्षण मानुप को रूपा । ऐसेहि आहि प्रत्यक्ष स्वरूपा ।।१२।।

शब्दार्थ — **मिलित** = युक्त, लगा हुआ, मिला हुआ । **प्रत्यक्ष** = बाह्य ।

भावार्थ — सब अनेक खानियाँ एक पशु लक्षण—भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा, मोह से समान रूप से मिले हुए एवं संयुक्त हैं । एक खानि दूसरी खानि से कुछ अधिक नहीं हैं, अपितु एक ही हैं ।। ११ ।। और अधिकांशतम मनुष्यों के लक्षण तो पशु के हैं और रूप मनुष्य के हैं । इस प्रकार उनके बाह्यस्वरूप ही मनुष्य के हैं ।

विशेष — इस प्रसंग में जो यह बात बताई गयी है कि मनुष्य सभी खानियों से पृथक है, लोग भ्रमवश उसे खानि में गिनते हैं; उसका अर्थ यह है कि यद्यपि मनुष्य आकारधारी भी एक खानि में है, परन्तु मानवता के विना वह मनुष्य नहीं अपितु पशु है। और जो मानव की पूर्ण बुद्धि युक्त है वह सभी खानियों से ऊपर कल्याणरूप है। तात्पर्य यह कि यहाँ मानवदेहधारी मात्र को खानि से बाहर नहीं माना गया है, अपितु मानवबुद्धिधारी को चारों खानियों से पृथक माना गया है। सचमुच तो, जिसके हृदय में खानि-वाणी की आसक्ति ही नहीं रह गयी, वह खानियों से पृथक है ही।

ऐसेहि कला विदित बहु ग्रंथा। लक्ष भक्ष वाचक मन मंथा ॥१३॥
पारख दृष्टि मनुष्य को चीन्हा। बानि खानि फरियावन लीन्हा ॥१४॥

शब्दार्थ — कला = विशेषता, गुण। लक्ष = लक्ष्य, उद्देश्य। भक्ष = भोजन, खाना, भक्षण। वाचक = शब्द, संकेत। मनमंथा = मन से मथन किया हुआ, मनमती, गलतमार्ग। चीन्हा = चिन्ह, लक्षण। फरियावन = साफकरना, निर्णय।

भावार्थ —संसार में ऐसी विशेषता से पूर्ण असंख्य ग्रंथ प्रसिद्ध हैं जिनमें ऐसे शब्द और संकेत मिलते हैं जो मनमती उद्देश्य एवं खानपान के परिचायक हैं॥ १३॥ मनुष्य का लक्षण तो विवेक दृष्टि की प्राप्ति है जिससे खानि और वाणी का स्पष्ट निर्णय होता है॥ १४॥

विशेष—धर्म के नाम पर बहुत से ग्रंथ हैं जिनमें नाच, गान, लोक-लोकान्तर की प्राप्ति आदि विषय भोग को ही अपना उद्देश्य मान लिया गया है। कितने धर्म के ग्रंथ कहलाने वाले मांस, मद्य, मैथुन सबकी विधि करते हैं। इस प्रकार धर्म के नाम पर काफी छलावा का फैलावा है।

षट संभाव कला चहुँ धारी। मानुष रूप तेई अधिकारी ॥१५॥
सो पारखबल तिन्हें परखाई। मानुष रूप अनुमान मिटाई ॥१६॥

शब्दार्थ--षट = षट्पशुकर्म—भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा, और मोह। **संभाव** = संभावन; विचारणा; परीक्षण; तर्क; विचार करना। **कला** = गुण। **चहुँ** = विचार, शील, दया और वीरता। **अधिकारी** = योग्य। **तिन्हें** = सच्चे मनुष्य को। **अनुमान** = अटकलबाजी; भ्रम।

भावार्थ—जो भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह इन षट् पशुकर्मों पर विचार एवं परीक्षण करके कल्याण में साधक का ग्रहण तथा बाधक का त्याग करता है और विचार, शील, दया तथा वीरता को पूर्णरूपेण धारण करता है, वही सच्चा मनुष्य का रूप है और पारखज्ञान का अधिकारी है॥ १५॥ सद्गुरु उस पारखबल एवं ज्ञानशक्ति को उन्हीं जिज्ञासुओं को देते हैं या कहना चाहिये वे ही जिज्ञासु प्राप्त

करते हैं जो उपर्युक्त प्रकार से उसके अधिकारी हो गये हैं। क्योंकि जो सच्चा मनुष्य का स्वरूप धारण कर लेता है, वही परखबल से सभी अनुमान, कल्पना एवं भ्रम को मिटा पाता है ॥ १६ ॥

विशेष—षटपशुकर्म सब सर्वथा छोड़े या ग्रहण नहीं किये जा सकते। मैथुन, मोह, भय छोड़े जा सकते हैं, परन्तु भोजन, छादन, निद्रा लेने पड़ेंगे। हाँ, विवेकी इन्हें भी सुधारकर सात्विक ढंग से स्वल्पमात्रा में अनासक्ति पूर्वक लेता है। इसीलिये कहा गया "षटसंभाव" अर्थात छह पशुकर्मों पर विचार एवं परीक्षण करो तथा बाधक का त्याग और साधक का ग्रहण करो। और "कला चहुँधारी" अर्थात चारों मुख्य सद्‌गुणों को सर्वथा धारण करो, वे हैं विचार, शील, दया और वीरता। इनका वर्णन मानुषविचार प्रकरण के आरम्भ में ही कर आये हैं।

जो छहपशुकर्मों का पूर्ण सुधार तथा विचार, शील, दया और वीरता का पूर्ण अवधारण कर लेता है, वही पारखबोध एवं यथार्थ ज्ञान का अधिकारी है

जहाँ अनुमान तहाँ यमको फंदा। परखो संतो आदि को संदा ॥१७॥
परखत रूप मानुष बुद्धिवंता। लहत मोद अनुमय ना संता ॥१८॥

शब्दार्थ—अनुमान = भ्रम। यम = मन। संदा = संद, छेद, बिल, धोखा। मोद = प्रसन्नता। अनुमय = अनुमान; भ्रम।

भावार्थ— जहाँ पर अपना लक्ष्य अपने चेतन स्वरूप से पृथक कहीं अनुमान, कल्पना एवं भ्रम में ले जाने की बात है, वहाँ मन का ही जाल है। ऐ सन्तो! पहले से चले आये हुए भ्रम एवं धोखा को परख कर त्याग करो ॥ १७ ॥ विवेकी मनुष्य वास्तविक स्वरूप की परख करता है और फलतः यथार्थ बोध को प्राप्त करके प्रसन्न होता है। सच्चे संत जन अनुमान कल्पना में नहीं भटकते ॥ १८ ॥

ब्रह्माकार रूप अनुमाना। मेटेउ जथारथ मनुष्य समाना ॥१९॥
मानुष बुद्धि है अतिसै भागी। लखै सुलक्षण गुरुमुख वारी ॥२०॥

शब्दार्थ—समाना = भीतर आना; अटना; वास्तविकता तक पहुँचना। वारी = वारि, वाणी।

भावार्थ—एक ब्रह्म सर्वत्र चराचर पूर्ण है या वह मैं हूँ यह ब्रह्मका कल्पित आकार केवल अनुमित है। जो वास्तविकता तक पहुँच करके यथार्थ मनुष्य बनता है वह इस भ्रांति को मिटा देता है ॥१९॥ मानवीय बुद्धि अत्यंत महान है, इसके सुन्दर लक्षण गुरुमुख वाणी से समझना चाहिये ॥ २० ॥

विशेष— एक ब्रह्म सर्वत्र चराचर पूर्ण है, यह एक भ्रम है। लोगों को यह भ्रम इसलिये होता है कि यदि ब्रह्म सर्वत्र भरा न हो तो अनन्त ब्रह्माण्ड कैसे चले। परन्तु

यदि ऐसे लोगों को जड़-चेतन का ठीक ज्ञान हो जाय तो वे समझ सकते हैं कि जड़ में स्वयं, स्वाभाविक वैसी शक्ति है जिससे अनंत ब्रह्माण्ड चलते हैं। सर्वत्र दुराचार, हिंसा, विरोध तथा ईश्वर को लेकर रक्तपात—ये सब स्वाभाविक ईश्वर की असिद्धि में प्रबल साक्षी देते हैं।

मैं ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण जड़-चेतन सब कुछ हूँ—यह ब्रह्माकार भाव भी अनुमान-कल्पना ही है। क्योंकि मैं चेतन जड़-प्रकृति से पृथक हूँ। मैं सर्वत्र व्यापक नही हूँ। 'मैं सर्वत्र व्यापक हूँ' ऐसा कथन केवल कुछ शास्त्रों के प्रमाण से लोग करते हैं। आनुभविक स्थिति एवं वास्तविकता से यह सर्वथा विरुद्ध एवं निरा भ्रम है।

शास्त्र, परम्परा गुरु आदि सभी पक्षों को छोड़कर निष्पक्ष विवेक एवं परख करना ही मानव की वास्तविक बुद्धि है, और इसकी बहुत बड़ी महत्ता है। इस स्वतंत्र परख बुद्धि से ही सारासार का विवेक होता है।

मन मानै संकल्प कहानी। मेटेउ रहट की ऐंचातानी ॥२१॥
मानुष कौन सुनहु शिष्य सोई। खानि-बानि निर्णय बुद्धि होई ॥२२॥

शब्दार्थ —रहट = रहँट; चक्कर। ऐंचातानी = खींचतान; अपनी-अपनी ओर खींचने की कोशिश।

भावार्थ — विवेकबुद्धि सम्पन्न मानव मनःकल्पित एवं संकल्पों से बनाई हुई तमाम कथाओं को और उनमें खींचतान करके झूठी बातों को सत्य सिद्ध करने के चक्कर को मिटा देता है॥ २१॥ मनुष्य कौन है? हे शिष्य! सुनो, वही मनुष्य है जिसमें मोटी और झीनी माया का निर्णय करके उसको त्यागने की बुद्धि है॥ २२॥

रूप मनुष्य जग देखहु सोई। सो जथारथ ते मनुष्य न होई ॥२३॥
मानुष लक्षण मानुष खानी। बिन पारख नहिं मानुष जानी ॥२४॥

शब्दार्थ— पारख = विवेक।

भावार्थ— जगत में जो आप मनुष्यों के रूप में अनेकों को देख रहे हैं, वे वास्तव में मनुष्य नहीं हैं॥ २३॥ मनुष्य के लक्षण और मनुष्य की खानि में बड़ा अन्तर है। जिनमें विवेक न हो उनको मनुष्य मत समझो॥ २४॥

विशेष — मनुष्य के रूप को लेकर मनुष्य खानि में पैदा होना अन्य बात है और मानव के गुण-लक्षण के सहित मनुष्य होना अन्य बात है। मनुष्यरूप की विशेषता तभी है जब मनुष्य के गुण-लक्षण उसमें आ जायँ।

सत्यशब्द टकसारः बीजक साखी १०६

साखी—मानुष होय के ना मुवा, मुवा सो डाँगर ढोर।
एकौ जीव ठौर नहिं लागा, भया सो हाथी घोर ॥८९॥

शब्दार्थ — डाँगर = डंगर; चौपाया, पशु (गाय-भैंसादि)। ढोर = पशु। ठौर = स्थिति ; शान्ति। घोर = घोड़ा।

भावार्थ — जीव को मनुष्य शरीर तो मिला, परन्तु सच्चे अर्थ में मनुष्य बनकर वह शरीर नहीं छोड़ा; प्रत्युत पशु बनकर शरीर छोड़ा। इसलिये एक जीव की भी स्थिति नहीं हुई और वे घोड़े-हाथी आदि खानियों में गये ॥ ८९ ॥

विशेष — अथवा जो सच्चा मनुष्य बना अर्थात विवेक बुद्धि से सारे परोक्ष-प्रत्यक्ष की आसक्ति को छोड़कर स्वस्वरूप में स्थित हुआ वह मरा नहीं, क्योंकि शरीर का मरना वह अपना मरना नहीं मानता। वह तो अजर-अमर स्वरूप में ही स्थित हो गया। मरते तो वे हैं जो पशु सदृश अपने को शरीर मानते हैं। ऐसे देहाभिमानी लोगों को मोक्ष नहीं मिलता और वे पुनः घोड़े-हाथी आदि खानियों में जाकर भटकते हैं।

दोहा—दया क्षमा अरु शीलता, पारख जथा विचार।
लहै चार लक्षण शुभहिं, मानुप गुरुबुद्धि सार ॥९०॥

शब्दार्थ — जथा = यथार्थ। सार = महत्त्वपूर्ण।

भावार्थ — दया, क्षमा, शील और यथार्थ पारख विचार—इन चार मंगलकारी लक्षणों को ग्रहण करे; क्योंकि मनुष्य में गुरुबुद्धि का होना ही महत्त्वपूर्ण है ॥९०॥

भोजन छाजन भय सहित, मैथुन निद्रा मोह।
षट विकार चहुँ खानि के, मानुप लहै न कोय ॥९१॥

शब्दार्थ — चहुँ खानि = मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज। लहै = लहना, पाना; आसक्त होना।

भावार्थ — भोजन, छादन, भय, मैथुन, निद्रा और मोह ये चारों खानियों में छह विकार हैं। वास्तविक मनुष्य इनमें आसक्त नहीं होता ॥ ९१ ॥

विशेष — विवेकी मनुष्य मैथुन, भय और मोह को सर्वथा छोड़ देता है, और भोजन, छादन तथा निद्रा को विवेक पूर्वक, शुद्धदृष्टि से अनासक्त होकर ग्रहण करता है।

सब आश्रित ये पटन के, बड़ खटखट पट केर।
खटखट पट के लखेते, पुनि खटखट नहिं फेर ॥९२॥

शब्दार्थ — आश्रित = अधीन; अवलंबित। खटखट = झमेला, झगड़ा, किचकिच।

भावार्थ — चारों खानियों के सब देहधारी जीव उपर्युक्त भोजन, छादन आदि षटकर्मों के अधीन हैं। इन छहों कर्मों के चक्कर में झगड़ा की परख करके इन्हें सुधार लेने पर पुनः लौट कर जीव संसार-किचकिच में नहीं पड़ता ॥ ९२ ॥

षट पंचाइत न्याव गुरु, संतन के सत्संग।
अशरण शरण की बुद्धि ते, षट को खटखट भंग ॥९३॥

शब्दार्थ — पंचाइत = पंचायत, संतसभा। न्याव = न्याय, निर्णय।

भावार्थ — संत गुरुजनों की सभा एवं सत्संग में उपर्युक्त छहों कर्मों का निर्णय करने से और अशरण को शरण देने वाले सद्गुरु की दी हुई विवेकवती बुद्धि के प्रयोग से षटकर्मों का झगड़ा मिट जाता है ॥ ९३ ॥

विशेष — उपर्युक्त छह कर्मों में कौन-कौन बिलकुल छोड़ देना है और कौन कितना लेना है इसका निर्णय सत्संग में जानकर तदनुसार वर्ताव करे। इसका विवरण मानुष विचार आरंभ में है।

यह प्रकार समिता लहै, गुरु पंचाइत न्याव।
उद्वेगन आरंभ तजि, मनन यथारथ भाव ॥९४॥

शब्दार्थ — समिता = समता, समत्व, निष्पक्ष का भाव। उद्वेगन = उलझन। आरम्भ = गुरु, प्रयत्न, इच्छा, अहंकार। भाव = मन से उत्पन्न दया, शील, सत्य, धैर्यादि गुण।

भावार्थ — इस प्रकार संत-गुरु की सभा एवं सत्संग में समत्व एवं निष्पक्षभाव पूर्वक निर्णय प्राप्त करे। मनोद्वेग, इच्छा एवं अहंकार का त्याग करे और वास्तविकता तक पहुँचाने वाले सद्गुण का मनन करे ॥ ९४ ॥

वर्तमान की भूमिका, ठहरै मनुष्य को रूप।
यथा वर्तै तेहि मगन मन, दुख सुख शांत स्वरूप ॥९५॥

शब्दार्थ — भूमिका = स्थान, कर्मभूमिका मनुष्य शरीर। ठहरै = टिके, स्वस्वरूप में स्थित हो। यथा = यथाप्राप्ति, जो मिल जाय।

भावार्थ—वर्तमान प्राप्त मनुष्य शरीर ही कर्मभूमिका होने से तत्काल हमें अपना कल्याण कर लेना चाहिये ऐसा समझ कर स्वस्वरूप में स्थित होना चाहिये। निर्वाह में जो प्राप्त हो प्रसन्न मन होकर उसको विवेक पूर्वक बरते और प्राप्त हुए दुःख-सुख में शांत होकर स्वरूपज्ञान में ही तृप्त रहे ॥ ९५ ॥

चौरासी की पत्रिका, अहै मनुष्य को रूप।
मानुप ही ते सब होत है, गहै अनेकन रूप ॥९६॥

शब्दार्थ — चौरासी = चार राशियाँ (ढेरियाँ) मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज। पत्रिका = चिट्ठी, लेखाजोखा का कागज, तात्पर्य में कर्म करने तथा उसे दग्ध करने का स्थान। मनुष्य को रूप = मनुष्य का शरीर।

भावार्थ — मनुष्य शरीर ही कर्म करके चारों खानियों में जाने की, तथा ज्ञान-द्वारा कर्मों को दग्ध करके चारों खानियों से मुक्त होने की भूमिका है। मनुष्य शरीर ही में बन्धन तथा मोक्ष के सभी काम होते हैं इसी शरीर में कर्म करके जीव अनेक खानियों में अनेक शरीरों को धारण करता है ॥ ९६ ॥

विशेष — मनुष्य शरीर जंक्शन है। यहीं से कर्म करके जीव नाना योनियों में जाते हैं। और यहीं ज्ञानद्वारा आसक्तिवीज को जलाकर वे मुक्त हो सकते हैं। इसीलिये ग्रंथकर्ता ने इस मनुष्य शरीर को चौरासी में जाने या उससे छूटने की पत्रिका कहा है। जैसे पत्रिका एवं वहीखाते में हिसाब-किताब रहता है। उसी से व्यापार आरम्भ व वन्द किया जाता है। इस प्रकार इसी मनुष्य शरीर से वन्ध-मोक्ष का काम होता है। मनुष्य को चाहिये कि वह वन्धन का काम न करके मोक्ष का करे।

यथा पटन निर्णय लखै, चारिउ पद गुण खानि।
वाणी सुधारै चारिउ विधि, होवै साँच गुरु बानि। ९७॥

शब्दार्थ — यथा = यथार्थ। पटन = भोजन, छादनादि। चारिउ = विचार, शील, दया और वीरता। पद = आधार, विषय, वस्तुयें। वाणी.........चारिउ = जीवमुख मायामुख, ब्रह्ममुख तथा गुरुमुख, वे ही हैं क्रमशः — काल, संधि, झाँई तथा सार। सुधारै = दोषप्रद का त्याग करके सत्य का ग्रहण करे।

भावार्थ — छह पशुकर्मों का यथार्थ निर्णय करके वन्धनदायी का त्याग तथा कल्याणदायी का ग्रहण करे और विचार, शील, दया तथा वीरता ये चारों वस्तुयें तो अन्य सद्गुणों के भी घर हैं, इन्हें सर्वथा धारण करे और काल, संधि, झाँई तथा सार अथवा जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुख इन चारों प्रकार की वाणियों में सार का ग्रहण करके असार का त्याग करे, वस्तुतः गुरुमुख वाणी ही सार या सच्ची होती हैं ॥ ९७ ॥

विशेष — "वाणी सुधारै चारिउ विधि" का तात्पर्य है कि जो उपर्युक्त चार प्रकार की वाणियाँ हैं उनका सुधार करे। सुधार करने का तात्पर्य होता है कि किसी वस्तु की बुराइयों को दूर करना। यहाँ चारों वाणियों का सुधार है अन्य वाणियों को परख करके त्याग देना तथा केवल सारशब्द एवं गुरुमुख वाणियों को लेना।

सत्य वचन सो साँचता, दया रूप अनुहार।
शील हंस समिता लखै, जीवन केर विचार ॥९८॥

शब्दार्थ — अनुहार = समानता। हंस = समझदार; विवेकी।

भावार्थ — सत्य वचन बोलना यही सच्चाई धारण करना है। विवेकी को चाहिये कि सच्चाई, दया, समानता, शील और सभी जीवों को सजातीय विचार कर
ण करे ॥ ९८ ॥

विशेष — "समिता लखै जीवन केर विचार" का अर्थ यह भी हो सकता है कि मनुष्यों के विविध अनमिल एवं विरोधी विचार होते हुए भी उन सबको समता की दृष्टि से देखे। क्योंकि विचारों की भिन्नता नहीं मिट सकती। विवेकी को चाहिये कि विचार भिन्न होते हुए भी दूसरे से समता रखे।

चारिउ विधि पूरण सोई, मानुष कहिये सोय।
षट त्यागे अनुमानता, सहज वृत्तिता होय।।९९।।

शब्दार्थ — वृत्तिता = वृत्ति-जीविका, वृत्तिता-जीविका वाला।

भावार्थ — जो विचार, शील, दया और वीरता इन चारों महान सद्गुणों से पूर्ण है वह मनुष्य कहलाने योग्य है। वह छह पशुकर्मों का सुधार कर लेता है; अनुमान-कल्पना को सर्वथा छोड़ देता है और जीवन निर्वाह के साधनों में सहजभाव रखता है; अर्थात यथाप्राप्त में संतोष रखता है।। ९९ ।।

अद्भुत रूप परिछिन्न शिष्य, इमि मानुष के लक्ष।
रूप मनुष्य बहु जगत के, सो मानुष यम भक्ष।।१००।।

शब्दार्थ — अद्भुत = अद्भुत; विचित्र। परिछिन्न = परिच्छिन्न; अंगभंग; बिखरा हुआ। लक्ष = लक्ष्य, उद्देश्य। यम = मन, वासना।

भावार्थ — हे शिष्य! संसार के बहुत से मनुष्यों के उद्देश्य ऐसे विचित्र एवं बिखरे हुए हैं, जिससे वे मन-वासना के ही भोजन बने हैं।। १०० ।।

विशेष — जिनका मन एक मोक्ष का उद्देश्य वाला नहीं है उनका मन नाना विषयों में हर समय उलझा रहता है। वे ही जीव वासना के मुखमें जाते हैं।

निर्णय गुरुमुख यथा लही, सुधरै मानुष खानि।
दया साधुमुख साँच कही, शील दयाकी बानि।।१०१।।

शब्दार्थ — यथा = यथार्थ। बानि = स्वभाव।

भावार्थ — विवेकी सद्गुरु से यथार्थ गुरुमुख निर्णय प्राप्त करके मनुष्य खानि में जीव का कल्याण होता है। संतों के मुख से दया और सत्य की बारम्बार प्रशंसा सुनी जाती है; वस्तुतः शील ही दया का स्वभाव है।। १०१ ।।

विशेष — सत्य लक्ष्य है और दया उस लक्ष्य तक पहुँचने का साधन है। दया का व्यवहारिक रूप है शील का वर्ताव। शील कहते हैं संकोची प्रकृति; सदाचार, मन, वाणी, कर्म की कोमलता, रागद्वेषहीनता, तटस्थता एवं शुद्ध चरित्र को। संत जन इन्हीं की प्रशंसा करते हैं। ये ही सत्य तक पहुँचाने वाले हैं।

चौरासीकी रहट सो, बाँचे हंसा सोय।
लहै आपन पद जीयरा, काल देखि रहे रोय।।१०२।।

शब्दार्थ — चौरासी = चार राशियाँ (ढेरियाँ) मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज। काल = मन।

भावार्थ — उपर्युक्त सत्य और शील को धारण करने वाला विवेकी मनुष्य ही चौरासी के चक्कर एवं जन्म-मरण से बचता है, और अपनी स्वरूपस्थिति को प्राप्त करता है। मानो ऐसे मुक्त हंस को अपने जाल से निकला हुआ देखकर मन दुखी होकर रोने लगा॥ १०२॥

हे शिष्य उत्तम खानि यह, मानुषते नहिं और।
मानुषभये शिष्य सुमति मति, छाड़ै कालकी दौर॥१०३॥

शब्दार्थ — और = अन्य, दूसरा। काल = मन, कल्पना।

भावार्थ — हे शिष्य! मनुष्य जैसी उत्तम खानि अन्य नहीं है। यदि वह सद्‌गुणयुत सच्चे अर्थ में मनुष्य हो जाय तो उसकी बुद्धि सुबुद्धि हो जाती है; और उसकी मनःकल्पना की दौड़ मिट जाती है॥ १०३॥

चौरासी निर्णय सहित, मानुष करै फरियाव।
कहेउँ जथारथ मति विमल, नहि अनुमान मिलाव॥१०४॥

शब्दार्थ — फरियाव = साफ, अलग करना। अनुमान = अटकलबाजी; मनगढ़न्त कल्पना।

भावार्थ — चार खानियों का निर्णय करके मनुष्य ही सबका अलग-अलग नाम, रूप, गुण, स्वभाव एवं कर्म निर्धारित करता है; अतएव मनुष्य सर्वोच्च है। हे शिष्य! यह सब वास्तविक और निर्मल मत की बातें कहा हूँ; इसमें कुछ कपोलकल्पना नहीं मिलायी गयी है॥ १०४॥

१४—मनुष्य की महानता तथा प्रसंगवश अन्य विषयों पर विवेचन

शिष्य प्रश्न—१२

गीतक छन्द—४

चारि चौरासीकी निर्णय भाखेउ, प्रभु लहेउँ तव सुख।
नाशि अनुमान अभू, त्याग दोउ दुख॥ १॥
बसन पुतरी एक अनेकन, त्यागि ब्रह्म कहानियाँ।
लहेउँ अंबुज चरण राउर, अभय पद कर दानियाँ॥ २॥
निर्णय जथारथ श्रवण अमृत, धार हृदय अघाइयाँ।
अब कहु कृपा निधान, इनकर रूप कौन कहाइयाँ॥ ३॥

बहु रूप चौरासी अहै, केहि रूप मानुष जानिये।
सो कहहु दाया दीन दुखहर, भिन्न भिन्न बखानिये ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अजहूँ = अब भी। बसन = वस्त्र। पुतरी = पुतली, गुड़िया। अंबुज = कमल। राउर = आपका, श्रीमान का। दानियाँ = दान करने वाला। अघाइयाँ = तृप्त हुआ।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! आपने चार खानि चौरासी योनियों का निर्णय किया और मैं आपके मुखसे उसको सुना। यदि अब भी मेरे मन के अनुमान-कल्पना एवं भ्रांति नष्ट हो जायँ तो खानि-वाणी एवं जन्म-मरण के दुःख दूर हो जायँ ॥ १ ॥ 'एक कपड़े से जैसे अनेक पुतलियाँ बना दी जाती हैं; वैसे एक ब्रह्म से नामरूपात्मक नाना जगत निर्मित है'—इस कल्पित ब्रह्म की कहानी को मैं छोड़ दिया हूँ और निर्भय पारखपद के देने वाले आपके चरणकमलों को पकड़ा हूँ ॥ २ ॥ आपके यथार्थ अमृत निर्णय को सुन तथा हृदय में धारण करके मैं तृप्त हो गया हूँ। अब हे कृपानिधान ! यह पुनः कहो कि कौन सच्चा मनुष्य का रूप है कौन कच्चा ॥ ३ ॥ चौरासी के अनेक रूप हैं, फिर उसमें किस रूप को मनुष्य समझा जाय ? अतएव हे दीनों के दुःख दूर करने वाले सद्गुरु ! कृपाकरके सबका भिन्न-भिन्न निर्णय कीजिये ॥ ४ ॥

विशेष — जैसे एक कपड़ा से अनेक पुतलियाँ बनती हैं वैसे एक ब्रह्म से नाम-रूपात्मक नाना जगत बना है। इस कथन से तो यही सिद्ध होता है कि ब्रह्मवादी पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु को ही ब्रह्म कहते हैं जिससे सभी कार्य पदार्थों का निर्माण है।

दोहा — तुम समान दुख मेटन, को है समरथ और।
दुखित काल के जाल में, जीवहि लायउ ठौर ॥१०५॥

शब्दार्थ — ठौर = स्थान; स्वरूपस्थिति।

भावार्थ — हे गुरुदेव आपके समान शक्तिशाली अन्य कौन है जो अज्ञानकृत दुःख मिटा सके। आपने मन के जाल में पड़े हुए दुखी जीवों को स्वरूपस्थिति में आने का उपदेश किया है ॥१०५॥

सद्गुरु उत्तर—१२

चौपाई—१२

सुनहु शिष्य मानुष को रूपा। चौरासी मध्ये मानुष भूपा ॥ १ ॥
चारि खानी और चहुँ बानी। ईश्वर ब्रह्म सृष्टि अरुझानी ॥ २ ॥

शब्दार्थ — भूपा = राजा; सर्वोच्च। चारिखानि = मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज। चहुँबानी = काल, संधि, झाँई और सार।

भावार्थ — हे शिष्य; मनुष्य के स्वरूप को पुनः सुनो। चारों खानियों के बीच में मनुष्य सर्वोच्च है ॥१॥ परन्तु यह चार खानि, चार वाणी, ईश्वरसृष्टि, ब्रह्मसृष्टि के अध्यास में उलझा हुआ है ॥ २ ॥

विशेष — यद्यपि सारशब्द निर्णय वचन को कहते हैं। वह उलझन को सुल्झाता है; परन्तु शास्त्रों में वह काल, संधि, झाँई वाणियों के साथ में ऐसा मिला हुआ है कि साधारण लोग उसको परख नहीं पाते हैं। या तो किसी को उच्च योग्यता के कारण स्वयं परम विवेक उत्पन्न हो जाय, या तो कोई विवेकी पारखी परखावें, तब वाणियों को परख सकते हैं।

ब्रह्मसृष्टि के जीव गनाऊँ। पंच देह प्रत्यक्ष बताऊँ ॥ ३ ॥
सो पाँचन ते बहु विस्तारा। पंच देह पंच तत्त्व सम्हारा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — **पंचदेह** = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य। **प्रत्यक्ष** = स्पष्ट। **सम्हारा** = सँभालना; ग्रहण करना।

भावार्थ — मैं पहले तुम्हें ब्रह्मसृष्टि के जीवों को गिना या बता दूँ। मैं स्पष्ट बतला रहा हूँ कि पंचदेह में जीव बंधे हैं ॥ ६ ॥ उन पंच देहों से बहुत बड़े प्रपंच का विस्तार है। ये पाँचों देह पृथ्वी जल अग्नि आदि पंचतत्त्वों को ग्रहण करके ही निर्मित हैं ॥ ४ ॥

विशेष — ब्रह्मसृष्टि के विषय में कहते हैं कि ब्रह्म पहले शुद्ध था। उसने संसार रचने की इच्छा प्रकट की; और वह स्वयं परिच्छिन्न होकर असंख्य जीवों के रूप में बिखर गया।

उपर्युक्त बातें मनुष्यों की एक कल्पना है। उस कल्पित ब्रह्म की प्राप्ति के लिये मनुष्यों ने पंचदेहों और उनके पंचकाण्डों की कल्पना की। स्थूलदेह का कर्म काण्ड (यज्ञदानादि), सूक्ष्मदेह का उपासनाकाण्ड, कारणदेह का योगकाण्ड, महाकारणदेह का ज्ञानकाण्ड एवं कैवल्यदेह का विज्ञानकाण्ड।

स्थूलदेह पृथ्वी आदि तत्त्वों से निर्मित है। सूक्ष्मदेह में तत्त्वों के सूक्ष्म अंश हैं तथा अन्य कारण, महाकरण तथा कैवल्य उन्हीं में कल्पित हैं।

सात्त्विक गुण देवादिक झारी। रज इन्द्री तम तत्त्व विकारी ॥ ५ ॥
मनमाया कल्पित ब्रह्मजाला। ब्रह्म सृष्टि में जीव बेहाला ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **देवादिक** = दश इन्द्रिय तथा चतुष्ट अन्तःकरण के कल्पित चौदह देवता। **झारी** = सबके सब चौदहों देवता। **बेहाला** = दुखी।

भावार्थ — ब्रह्म से सत, रज, तम ये तीन गुण उत्पन्न हुए और सत्वगुण से अंतःकरण तथा सबके सब चौदह देवता उत्पन्न हुए। रजगुण से दशइन्द्रियाँ और तमगुण से पंचविषय एवं विकारी पंचतत्त्व उत्पन्न हुए—इसप्रकार उनलोगों की

मान्यता है ।। ५ ।। वस्तुतः परख करके देखा जाय तो यह ब्रह्मजाल मन की माया (वासना) और कल्पित है । ब्रह्मसृष्टि की कल्पना करके जीव सदैव पीड़ित हैं ।। ६ ।।

विशेष — कहते हैं ब्रह्म से महतत्त्व (महानबुद्धि), महतत्त्व से त्रिगुण (सत, रज, तम)। सत से चतुष्ट अंतःकरण और चौदह देवता; रज से दश इन्द्रियाँ; तम से पाँच विषय एवं पुनः उनसे पंच तत्त्व उत्पन्न हुए । यह है ब्रह्मसृष्टि; जो केवल कपोल कल्पित है । वास्तव में यह प्रपंच सदा से इसी प्रकार है ।

ईश्वरसृष्टि सो अनगन खानी । चारि चौरासी मध्ये वानी ।।७।।
सो कौवार जाल गुण गूढ़ा । परहिं कहहिं मति ये अति मूढ़ा ।।८।।

शब्दार्थ — अनगन = असंख्य । वानी = वाणी; बोलना । कौवार = कौआरोर, कागारोल, हल्ला । गूढ़ा = गूढ़, दुर्गम । अतिमूढ़ा = अत्यन्त विमोहित ।

भावार्थ — ये असंख्य खानियाँ ईश्वर की सृष्टि हैं; जो चार खानि एवं चौरासी योनियों के बीच में कही जाती हैं ।। ७ ।। उपर्युक्त होहल्ला के जाल के गुण को अत्यन्त दुर्गम एवं सर्वोच्च मत कहकर ये अत्यन्त विमोहित मनुष्य उसमें पड़ते हैं ।।८।।

उत्तम मध्यम भुगते दोई । जीव परै दोउ सृष्टि बिगोई ।। ९ ।।
सूक्षम अहंकार सम्बन्धी । खान पान व्यवहारहुँ बंधी ।।१०।।

शब्दार्थ — उत्तम = ऊँच । मध्यम = नीच । बिगोई = बिगाड़कर । बंधी = बंधन ।

भावार्थ — जीव अनेक भ्रांतियों के वश ऊँच-नीच खानियों में भटक-भटक कर दुःख भोगते हैं । वे अपने आप की स्थिति को बिगाड़कर ब्रह्मसृष्टि तथा ईश्वरसृष्टि की कल्पना में पड़े हैं ।। ९ ।। यदि सूक्ष्म अहंकार का सम्बन्ध रखने वाले हों, तो खान, पान और शरीर व्यवहार जो आवश्यक हैं बन्धन के कारण बन जाते हैं ।।१०।।

विशेष — यहाँ यह महत्त्वपूर्ण बात बताई जा रही है कि मन की नाना दूर-दूर की कल्पनायें, विषयासक्ति आदि तो जीव के लिये बन्धनप्रद हैं ही; परन्तु जो जीवन-निर्वाह में अत्यन्त आवश्यक हैं, जिन्हें हम शरीर रहे तक छोड़ नहीं सकते; वे खान पान तथा मुख्य व्यवहार में भी यदि सूक्ष्म अहंकार तथा आसक्ति हो तो स्वरूपस्थिति नहीं हो सकती ।

अतएव बोधवान को चाहिये कि निर्वाह के अतिरिक्त वस्तुओं की तो इच्छा ही न करे । और निर्वाह की वस्तुएं भी जो विना खींचतान किये सहज प्राप्त हों, उन्हीं को अनासक्ति पूर्वक ग्रहण करे ।

शरीर नाशवान है । अतः इसके खान, पान तथा व्यवहार भी नाशवान हैं । ऐसा जानकर सदैव जागरूक एवं सावधान रहना चाहिये । जब सब कुछ नाशवान है तब किसका अहंकार एवं मोह किया जाय ।

उग्रदशा जीव नास्ति समाना । देखन रूप ब्रह्म परवाना ॥११॥

सो अनुमान कल्पि कियो ठाढ़ा । हे शिष्य परे बहुत यह गाढ़ा ॥१२॥

शब्दार्थ — उग्रदशा = उच्च स्थिति; मनुष्य देह । नास्ति = असत्य; शून्य; कल्पना । परवाना = प्रमाण, ठीक, सत्य । गाढ़ा = मोटा, ठस, कठिन, विकट ।

भावार्थ — जीव कल्याणभूमिका सर्वोच्च मानवदेह पाकर भी असत्य एवं भ्रांति में प्रविष्ट हुआ । और अपने से पृथक कल्पित ब्रह्म को सत्य समझकर उसके स्वरूप का साक्षात्कार करने का प्रयास करने लगा ॥११॥ परन्तु हे शिष्य ! वह अनुमान एवं भ्रम मात्र है, जीव ही ने कल्पना करके उसे खड़ा किया और इस प्रकार यह अपने को विकट भ्रम में डाल रखा है ॥१२॥

कल्पित कल्प नाश कियो वासा । कल्पना सहित ब्रह्म बिश्वासा ॥१३॥

ब्रह्मसहित हंता बुद्धि काला । काज होइ बहु कला सम्हाला ॥१४॥

शब्दार्थ — कल्प = कल्पना । नाश = पतन । वासा = वासना । काला = काल, कष्टदायी, मन, कल्पना, अज्ञान । सम्हाला = सम्हाला, बनाया ।

भावार्थ — जीव की कल्पित कल्पनायें एवं वासनायें ही इसका पतन करती हैं । जो अपने से पृथक ब्रह्म मानकर उसका विश्वास है कल्पना पूर्वक ही है ॥१३॥ 'मैं चराचर व्यापक ब्रह्म हूँ' यह अहंतापूर्वक बुद्धि कष्टदायी मन की अवस्था है । इस प्रकार मन कल्पना से पूर्ण होकर बहुत से बंधनदायी कलाओं एवं गुणों का निर्माण किया ॥१४॥

असित ग्रंथ भाखा सो महातम । ऋषि मुनि सनकादिक सो पुरातम ॥१५॥

छानि छानि बहु बाणिन बंधा । बाणिन बंध भया बहु अंधा ॥१६॥

शब्दार्थ — भाखा = कथन किया । छानि छानि = खोज ढूँढ़कर ।

भावार्थ — उन्हीं कल्पनाओं का माहात्म्य प्राचीन ऋषि, मुनि तथा सनकादिकों का प्रमाण दे-दे कर असंख्य ग्रंथों में कथन किया गया ॥१५॥ खोज ढूँढ़कर बहुत-सी वाणियाँ बनायी गयीं और उनमें अपने को बाँधा गया । इस प्रकार वाणियों में बँधकर यह मनुष्य विवेक से अत्यंत हीन हो गया॥१६॥

दोहा — सृष्टि कल्पना ते भई, कल्पित ब्रह्माकार ।
कल्पि बुद्धि अनुमान के, ऋषि मुये पचिहार ॥१०६॥

शब्दार्थ — पचि = दुःखी होकर ।

भावार्थ — समस्त भ्रान्तियों की सृष्टि कल्पना से हुई, चराचर व्यापक ब्रह्म का आकार भी कल्पित ही है । कल्पना तथा अनुमान की बुद्धि करके उसे खोजते-खोजते दुखी होकर ऋषिगण भी हार गये ॥१०६॥

भेद न पाये कल्पना, को हौं हौं को होहू।
अनुमानी अनुमान भौ, नेह कठिन दृढ़ छोहू ॥१०७॥

शब्दार्थ — होहू = होना, होंगे। नेह = प्रेम। छोहू = छोह, स्नेह।

भावार्थ — लोग कल्पना का मर्म नहीं जान सके। यह भी नहीं जान सके कि मैं कौन हूँ तथा क्या होऊँगा। अनुमानी लोग अनुमान कल्पना में ही कठिन प्रेम एवं दृढ़ स्नेह करने लगे ॥१०७॥

ताते हे शिष्य उभयता, कल्पित सृष्टि पसार।
भई कल्पना जाहि ते, सोई भयो खुवार ॥१०८॥

शब्दार्थ — उभयता = दोनों विधि। जाहि = चेतन जीव, मनुष्य। **खुवार** = ख्वार, परेशान।

भावार्थ — अतएव हे शिष्य ! ब्रह्म या ईश्वर दोनों से सृष्टि का विस्तार मानना कल्पित ही है। जिससे ईश्वर-ब्रह्म की कल्पना हुई, वह मनुष्य स्वयं उस भ्रम में पड़कर परेशान हुआ ॥१०८॥

ब्रह्म जीव ईश्वर जगत, ई सब अनुमित सैन।
निरुवारै ठहरै नहीं, भासै झाँईं बैन ॥१०९॥

शब्दार्थ — अनुमित = अनुमान किया हुआ, माना हुआ। **सैन** = संकेत, इशारा, निशान, परिचायक चिन्ह। **निरुवारे** = निर्णय करे। **झाँईं** = परिछाईं, धब्बा, भ्रम। **बैन** = वाणी।

भावार्थ — व्यापक ब्रह्म; उसमें अविद्या तथा अंतःकरणपरिच्छिन्न जीव; माया-परिच्छिन्न ईश्वर; रज्जु में सर्पवत जगत—यह सब केवल अनुमान कल्पना के संकेत या लक्षण हैं। क्योंकि निर्णय करने पर ये सब इस प्रकार नहीं ठहरते हैं। अतएव भ्रमपूर्ण वाणियों के जोर से ही उपर्युक्त प्रकार प्रतीत होते हैं जैसा कि वस्तुतः नहीं है ॥ १०९ ॥

विशेष — यहाँ पर ब्रह्म और ईश्वर के साथ में जीव और जगत को भी अनुमित माना गया है। इसका तात्पर्य ऊपर टीका में खुल गया है। अर्थात जिस प्रकार ब्रह्म-वादियों ने जीव और जगत का स्वरूप समझ रखा है, वह गलत है। वस्तुतः यह जगत रज्जु में सर्पवत नहीं वास्तविक है। जीव किसी का परिच्छिन्न, अंश नहीं, स्वतः स्वतंत्र चेतनद्रव्य है। जिसका स्पष्टीकरण अगले दोहे में हुआ है।

जाको है यह भासना, सोई पद सोइ रूप।
ताके गुरु निर्णय सहित, मनुष्य जथारथ भूप ॥११०॥

शब्दार्थ — भासना = प्रतीत होना। जथारथ भूप = सच्चा राजा; वास्तविक सर्वोच्च स्थिति।

भावार्थ — समस्त स्थूल-सूक्ष्म, पंचविषय से मनकी कल्पना तक जिसको प्रतीत होता है वह जीव ही वास्तविक स्वरूप चेतन पद है। वह चेतन गुरुनिर्णय पाकर मनुष्य शरीर में वास्तविक सर्वोच्च स्थिति पा जाता है॥ ११० ॥

मानुष रूप शुभ प्रथमा, इन्हते चारिउ खानि।
अरुझै जहाँ तहाँ फँद में, पारख लीन्ह पहिचानि ॥१११॥

शब्दार्थ — प्रथमा = प्रथम; श्रेष्ठ, सर्वोच्च।

भावार्थ — मनुष्य शरीर कल्याणसाधन का स्थल एवं सर्वोच्च है, यहीं से चारों खानियों का निर्णय, गमनागमन एवं विवेक होता है। मनुष्य शरीर ही कर्मभूमिका होने से भूलवश गलत कर्म करके वह जहाँ-तहाँ बंधनों में फँसता है; उसे जब यथार्थ ज्ञान मिल जाता है तब वह सबकी कसर-विकार परख कर सबसे अनासक्त होकर मुक्त भी हो जाता है॥ १११ ॥

सोई रूप यह जगतमें, धारे दीनदयाल।
भेष सुमंगल संत तन, निर्णय देहिं कृपाल ॥११२॥

शब्दार्थ — संत तन = संत रूप।

भावार्थ — इस संसार में वही मनुष्य का सचवा रूप दीनदयाल सद्गुरु ने धारण किया है। परम मंगलमय वेष से सुशोभित संतरूप कृपालु जिज्ञासुओं को निर्णय देते फिरते हैं॥ ११२ ॥

ताते हे शिष्य रूप है, मानुष प्रथमा नाम।
कल्पि कल्पि मति ब्रह्मलों, बसै और के धाम ॥११३॥

शब्दार्थ — और के धाम = अन्य के घर; मनकी कल्पना में। नाम = ख्याति; प्रसिद्धि।

भावार्थ — अतएव हे शिष्य ! मनुष्य शरीर सर्वोच्च है यह प्रसिद्ध है। परन्तु यह अपनी भूलवश भूत-प्रेत से लेकर ब्रह्म तक की कल्पना की उड़ाने भर-भर कर अपने चेतन स्वरूप से पृथक मनःकल्पना के धाम में ही निवास कर रहा है॥११३॥

चौरासी कल्पित भये, भच्छित एक अनेक।
पुनि सो बहुत विचार करि, ब्रह्म एक का एक ॥११४॥

शब्दार्थ — भच्छित = खाया हुआ। एक = ब्रह्म। अनेक = नानत्व जगत।

भावार्थ — (कुछ लोगों का कहना है) "ब्रह्म में ही चौरासी संसार कल्पित है; पुनः ब्रह्मद्वारा नानत्व जगत खा लिया जाता है। इस प्रकार फिर बहुत विचार के बाद वे मानते हैं कि ब्रह्म अद्वैत है और वह सदैव अद्वैत ही रहता है, नानत्व केवल भ्रम है ॥११४॥

ब्रह्म भये चौरासी गये, चौरासी मिटि ब्रह्म।
घायल घूमहिं जीयरा, उलटि पलटि इमि भर्म ॥११५॥

शब्दार्थ — घायल = चोट खाया हुआ; अज्ञान से दुखी।

भावार्थ — इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो ब्रह्म बना, वह चौरासी में गया; क्योंकि उनके मान्यतानुसार ब्रह्म ही बारम्बार नानत्व को प्राप्त होकर चौरासी या विश्व बनता है; और चौरासी या संसार का प्रलय होकर ब्रह्म हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म और जगत के भ्रमपूर्ण काल्पनिक चक्कर में जीव अज्ञान से चोट खाये हुए घूमते हैं ॥११५॥

ब्रह्म भरम माया मनहिं, भये अनेकन रूप।
याही के अनुमान शिष्य, ब्रह्माकार स्वरूप ॥११६॥

शब्दार्थ — माया मनहिं = मनमाया; संकल्प।

भावार्थ — 'एकाकी न रमते' अकेले में आनन्द नहीं आया, इसलिये ब्रह्म, भ्रम में पड़कर अनेक होने का संकल्प किया और अनेक रूप हुआ। हे शिष्य ! इसी अनुमान से लोग चराचर व्यापक ब्रह्मस्वरूप बनते हैं ॥११६॥

कल्पित याको ब्रह्म भौ, इच्छा माया भास।
मन माने मंतव्यता, चौरासी कियो वास ॥११७॥

शब्दार्थ — याको = मनुष्य को। इच्छा = वासना। माया = भ्रम। भास = प्रतीत।

भावार्थ — मनुष्य की ही कल्पना से ब्रह्म का रूप खड़ा हुआ; अतएव यह मनुष्य के ही मन की वासना, भ्रम एवं प्रतीति है। यह मत मनकी मान्यता मात्र है जिससे जीव चौरासी को अपना स्वरूप मानकर उसमें निवास करता है ॥११७॥

चौरासी चहुँखानि मन, कल्पित माया फेर।
ब्रह्म ईश जड़ देह महँ, लागै निजपद हेर ॥११८॥

शब्दार्थ — फेर = चक्कर। हेर = खोज, तलाश।

भावार्थ — जीव मनःकल्पित माया के चक्कर में पड़कर चौरासी एवं चारों खानियों में भटकता है; और वह ब्रह्म, ईश्वर तथा जड़ देह में अपने स्वरूप को खोजने लगता है ॥११८॥

विशेष — ब्रह्म-ईश्वर का जो लक्षण चराचर व्यापक लोग करते हैं वह तो कोई वस्तु नहीं; उसमें अपना स्वरूप खोजना भ्रम है । जड़देह की सारी सामग्री भी जड़विकारी है, इसलिये चेतन उसके लक्षण से विलक्षण ज्ञान स्वरूप है ।

चारिउ खानी चारिउ बानी , चारि रूप चहुँ देह ।
ब्रह्म ईश माया मनहूँ , चहुँ मध्ये वासा येह ॥११९॥

शब्दार्थ — **चारिउखानी** = मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज । **चारिउबानी** = परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी । **चारि रूप** = बाल, युवा, अधेड़ तथा वृद्ध । **चहुँ देह** = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण । **माया** = कल्पना ।

भावार्थ — चार खानी, चार वाणी, चार अवस्था, चार देह तथा ब्रह्म, ईश्वर, कल्पना और मन—इन चारों के बीच में इस जीव ने अपना निवास बना रखा है ॥११९॥

विशेष — अपने स्वरूप से पृथक जहाँ तक यह अपना लक्ष्य ले जायगा, सब इसकी स्थिति में बाधक ही होंगे ।

हे शिष्य ब्रह्माकार को , लक्षण ई गुण होय ।
कैसे चौरासी मिटै , कैसे रूप समोय ॥ १२० ॥

शब्दार्थ — **समोय** = समाना; तात्पर्य में स्थित होना ।

भावार्थ — हे शिष्य ! ब्रह्म के आकार का यह लक्षण एवं गुण है कि वही सारा विश्व चौरासी चक्कर है, वही सब कुछ है; अर्थात जगत ब्रह्म है और ब्रह्म जगत है । फिर उसी में स्थित होने से चौरासी का चक्कर कैसे मिटेगा ? और जीव अपने शुद्ध चेतन स्वरूप में कैसे स्थित होगा ? ॥१२०॥

विशेष — जब तक जीव सारे स्थूल-सूक्ष्म जगत को अपने चेतन स्वरूप से पृथक समझकर उसका द्रष्टा नहीं बनता तब तक वह अपने स्वरूप में कैसे स्थित होगा ?

ताते देखो सबन को, पारख कियो विचार ।
निर्णय कियो चहुँ खानि को, गुरुबुद्धि मानुष सार ॥१२१॥

शब्दार्थ — **पारख** = पारखी, विवेकी । **सार** = महत्त्वपूर्ण ।

भावार्थ — अतएव विवेकी पारखी पुरुष सबको देखकर विचार किये और चारों खानियों का निर्णय करके मनुष्य को श्रेष्ठ पाये और उसमें भी जिसकी गुरुबुद्धि है उसे सर्वोत्तम समझे ॥१२१ ॥

रूप मनुष्य सो सब भयो , चौरासी चहुँ खानि ।
वाणी यथार्थ विचार गुरु , मानुष रूपते जानि ॥१२२॥

शब्दार्थ — **रूप मनुष्य** = मनुष्य का आकार मात्र ।

भावार्थ — जिसमें केवल मानव का आकार ही है और भीतर से पशुत्व एवं वासना भरी है, उसी से चौरासी में जाने के कर्म होते हैं और वही जीव चारों खानियों में भ्रमण करता है। वास्तविक मनुष्यस्वरूप उसी को जानो जो गुरुमुख से वाणियों का विचार करता है। ॥१२२॥

ताते हे शिष्य चारिमा , मानुष प्रथमा नाम।
मानुषते सबही भयो , मानुष के गुण आन ॥१२३॥

शब्दार्थ — चारिमा = चार खानियों में। आन = अन्य, दूसरा।

भावार्थ — अतएव हे शिष्य ! चारों खानियों में सर्वोच्च नाम मनुष्य का ही है। मनुष्य ही से सारे ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल के कार्य होते हैं, परन्तु मनुष्य के गुण कुछ और ही हैं ॥१२३॥

विशेष — केवल भौतिक ज्ञान-विज्ञान एवं कला-कौशल ही मानवता की उन्नति नहीं है। उसकी सर्वोच्च उन्नति है स्वरूपज्ञान सदाचार धारण कर जीवनलक्ष्य परम-शांति की प्राप्ति।

मन माया सो कल्पना , ब्रह्माकार स्वरूप।
हे शिष्य सबै अनर्थपद , नहिं ताके ये स्वरूप ॥१२४॥

शब्दार्थ — अनर्थपद = उलटे अर्थ वाले शब्द, मूल्यहीन, निरर्थक। ताके = मनुष्य के।

भावार्थ — जो जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक ब्रह्म का स्वरूप माना है, वह मन का संकल्प एवं कल्पना ही है। हे शिष्य ! ये सभी शब्द अर्थहीन हैं, मनुष्य के वास्तविक स्वरूप ये नहीं हैं ॥ १२४ ॥

विशेष — बहुत लोगों का मत है कि चराचर व्यापक, जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्म ही मनुष्य की एवं विश्व की वास्तविकता है। परन्तु विवेक से देखा जाय तो ये शब्द अर्थहीन हैं। जड़-चेतन दोनों सर्वथा भिन्न धर्मी हैं, वे एक कभी नहीं हो सकते। चरा-चर व्यापक एक तत्त्व कोई नहीं है। जड़ में भी नाना तत्त्व हैं तथा एक तत्त्व में असंख्य परमाणु एवं इकाइयाँ हैं, और चेतन भी असंख्य एवं परस्पर भिन्न हैं। प्रत्येक चेतन अपने स्वरूप से अकेला, अद्वैत, असंग, निराधार कहा जा सकता है। परन्तु चेतन असंख्य, व्याप्य-व्यापक-रहित और एक दूसरे से पृथक हैं।

रूप सबै अरु कछु नहीं, रूपै रूप उपाय।
संकल्पित यह सृष्टि है, थिरता कहूँ न पाय ॥१२५॥

शब्दार्थ — रूप = सूरत, शक्ल, दृश्य पदार्थ, पंचविषय।

भावार्थ — जो कुछ विश्वप्रपंच है सब पंचविषय दृश्य है, और उसमें कुछ नहीं है। क्योंकि दृश्य-दृश्य पदार्थ से ही दृश्यवान पदार्थ बनते हैं, और ये चारों खानियों की सृष्टि तो जीवों के संकल्प एवं वासना से होती है, इसलिए उसमें पड़कर जीव को कहीं भी स्थिरता नहीं मिलती ॥ १२५ ॥

विशेष — प्रायः रूपवान पदार्थ वही कहलाता है जो नेत्र से ग्रहण हो; परन्तु यहाँ उसका अर्थ दृश्यमात्र है। शब्द कान का दृश्य है, गंध नाक का, रस जिह्वा का, स्पर्श त्वचा का और रूप नेत्र का। अतएव ये सब दृश्य हैं। दृश्यवान जगत या जगत पदार्थ चेतन ब्रह्म के रूपान्तर या मूल स्वरूप नहीं हो सकते। वे सर्वथा जड़ हैं। वे चाहे पत्थर, धातु, वृक्षादि हों और चाहे मनुष्यादि प्राणियों के शरीर हों, सब निरे जड़ हैं। अतएव वे केवल जड़-उपादान से निर्मित हैं। रहा प्राणियों के शरीरों के अतिरिक्त पदार्थ केवल जड़तत्त्वों के गुण-धर्म से ही निर्मित हैं और प्राणियों के जड़ शरीरों की रचना में जीवों की वासना भी कारण है।

नास्ति सनेही सब भये, अस्ति नास्ति लौलीन।
जीव भरोसे औरके, निजपद नाहीं चीन्ह ॥१२६॥

शब्दार्थ — नास्ति = असत्य, शून्य। अस्ति = सत्ता, जो हो, चेतन। लौलीन = ध्यानमग्न। और के = ईश्वर ब्रह्म आदि के। निजपद = स्वस्वरूप चेतन।

भावार्थ — सब जीव असत्य विषयसुख एवं कल्पित वस्तु के प्रेमी बने हुए हैं। सत्य चेतन असत्य कल्पना में ध्यानमग्न है। यह जीव दूसरे दैव-गोसैंया के विश्वास में पड़कर अपने शुद्ध चेतन स्वरूप को नहीं पहचानता ॥ १२६ ॥

विशेष — पंच विषय प्रत्यक्ष जड़ पदार्थ हैं, परन्तु उनका और जीव का सम्बन्ध सत्य नहीं है। अपने चेतन स्वरूप से पृथक दैव-गोसैंया एक दिवास्वप्न है, उनके भरोसे रहने वाले धोखा खायेंगे। अतएव प्रकृतिपार अपने चेतनराम स्वरूप को पहचानो और विषय की आसक्ति दूर करके उसमें स्थिति करो।

होना कछु न याको हतो, भये अनेकन रूप।
चौरासी औ चारिमा, मानुष प्रथमा रूप ॥१२७॥

शब्दार्थ — याको = जीव, चेतन को। हतो = था। अनेकन रूप = मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि।

भावार्थ — इस शुद्ध चेतन को कुछ बनने की आवश्यकता न थी तथा न आज इसे बनने की आवश्यकता है, परन्तु यह अपने स्वरूप को भूलकर अपने को देह मानता है और देहाध्यासवश अनेक योनियों में जाकर अनेक देहें धारण करता है। परन्तु चौरासी योनि एवं चार खानि में मनुष्य शरीर सर्वोच्च है। अतः इसमें स्वस्वरूपको पहचान करके भवबन्धनों से मुक्त हो सकता है ॥ १२७ ॥

प्रथम रूप से सब भयो. सो प्रथमा गौ भूल।
जीव प्रपंचे पंच के सहै घनेरी शूल ॥१२८॥

शब्दार्थ — प्रथम रूप = मनुष्य शरीर। पंच = पंचविषय, पंचकोश, पंचदेह, पंचकाण्ड। घनेरी = बहुत, अत्यन्त।

भावार्थ — मनुष्य शरीर से ही सभी खानियों एवं योनियों में जाने के लिये कर्म बनते हैं तथा यहाँ से सारी खानी-वाणी की कल्पनायें खड़ी होती हैं, परन्तु जीव उस सर्वोच्च मानव शरीर के महत्त्व को भूल गया, और पाँच विषयों एवं पंचकोषों के विस्तार एवं मोह में पड़कर अत्यन्त पीड़ा सहता है ॥ १२८ ॥

हे शिष्य देखु विचारि के निर्णय करहु यथार्थ।
सबके मत प्रत्यक्ष हैं. बानी में वेदार्थ ॥१२९॥

शब्दार्थ — वेदार्थ = वेद के अर्थ, तात्पर्य में नाना शास्त्रों के अर्थ या नाना प्रकार के ज्ञान के अर्थ, वेद का अर्थ ज्ञान और शास्त्र दोनों हैं।

भावार्थ — हे शिष्य! विचार करके देखो और यथार्थ निर्णय करो, सबके मत उनकी वाणियों से प्रत्यक्ष हो जाते हैं। यह नियम है कि वाणी में ही वेदार्थ होता है। अर्थात सभी वेद, शास्त्र, ज्ञानमत या सिद्धान्त के अथ उनकी वाणियों में खुल जाते हैं ॥ १२९ ॥

विशेष — मनुष्य को चाहिए कि वह किसी मत की खाईं में आँख मूँद कर न पड़े; अपितु उसकी वाणियों की परख करके ग्रहण तथा त्याग करे।

जीव संकल्पे जग भयो, मिटै संकल्प नशाय।
यह प्रमाण है वेद बुध, कहैं प्रत्यक्ष लखाय ॥१३०॥

शब्दार्थ — जीव = ब्रह्म; यहाँ जीव का अर्थ ब्रह्म ही प्रतीत होता है क्योंकि ब्रह्म के ही संकल्प से जगतसृष्टि तथा विकल्प से उसका विनाश वेद-वेदान्तादि में माना है। बुध = पंडित, विद्वान।

भावार्थ — ब्रह्म के 'एकोऽहम् बहुस्याम्' संकल्प करने से जगतसृष्टि होती है और जब वह विकल्प करता है अर्थात जब संकल्प नष्ट कर देता है तब सृष्टि लय हो जाती है; वेद के विद्वानों की यही मान्यता है। वे इसके विषय में दावा करके कहते हैं कि यह प्रत्यक्ष है ॥१३०॥

हे शिष्य ऐसे मतन महँ, जीवहि चैन न होय।
नष्ट सनेही नष्ट भौ, भ्रष्ट कल्पना सोय ॥१३१॥

शब्दार्थ —चैन = विश्रांति। नष्ट = समाप्त; असत्य; व्यर्थ।

भावार्थ — हे शिष्य ! उपर्युक्त प्रकार के मतों में जीव को विश्रांति नहीं मिल सकती। वह असत्य का प्रेमी, उसी कल्पना में पड़कर नष्टभ्रष्ट एवं पतित हो जाता है ॥१३१॥

विशेष — उनके मतानुसार ब्रह्म का स्वभाव है संकल्प करके स्वयं जगत बन जाना और विकल्प करके सबको अपने में समेट लेना और यह कार्य अनादिकाल से अनन्तकाल तक अविराम करते रहना। अब विचार कीजिये ऐसे मत में पड़कर अर्थात ऐसे ब्रह्म में स्थित होकर उत्पत्ति-प्रलय, जन्म-मरण से कैसे बच सकते हैं और जीव को कैसे विश्रांति मिल सकती है ?

ऐसे उपदेशन समुझि, जीव अबुध पतियाय।
क्षुधित पेट कहुँ नाम में, भोदू रखै बुलाय ॥१३२॥

शब्दार्थ — अबुध = नासमझ। पतियाय = विश्वास करता है। भोदू = भोला-भाला।

भावार्थ — उपर्युक्त जड़-चेतन अभिन्नता आदि के उपदेशों को सत्य समझ कर समझरहित व्यक्ति विश्वास कर लेते हैं। कोई पेट के भूखे हैं, कोई नाम-बड़ाई की इच्छा में हैं, कोई भोलेभाले हैं, ऐसे लोगों को मतवादी लोग लालच देकर अपने गलत मार्ग में बुलाकर रख लेते हैं ॥१३२॥

ब्रह्मराजमों माया रानी मन वजीर तन स्थान।
दुगदुग सबहिन चित्त महँ, हमको हमको आन ॥१३३॥

शब्दार्थ — माया = कल्पना। दुगदुग = संदेह। हमको हमको = हम कौन हम कौन ? हमारा-हमारा, अहंता-ममता। आन = अन्य, दूसरा, मर्यादा, गौरव, गर्व।

भावार्थ — ब्रह्म एक राज्य है, उसमें माया अर्थात कल्पना रानी है, और मन मंत्री है। यह सब शरीर स्थान में विराजते हैं। परन्तु सभी ब्रह्मवादियों के चित्तमें संदेह बना है कि हम कौन हैं ? ब्रह्म ही हैं कि अन्य हैं। अथवा सभी मतवादी को 'हमको श्रेष्ठ मानो, हमको श्रेष्ठ मानो' इसी की अहंता-ममता बनी है तथा अपनी-अपनी मान-मर्यादा में पड़े हैं ॥१३३॥

विशेष — इस शरीर रूपी स्थान में, अर्थात अंतःकरण में ब्रह्म की मान्यता है। उसमें मुखिया महारानी माया अर्थात कल्पना है और उस कल्पना को उत्तेजित करने वाले मन मंत्री हैं। तात्पर्य हुआ मनुष्य के अंतःकरण में मनकी कल्पना से ब्रह्म का काल्पनिक अस्तित्व है।

सभी ब्रह्मवादी अपने को एक ब्रह्म कहकर भी उपदेश करके द्वैत भ्रम में पड़ते हैं। सर्वत्रव्यापक मानकर भी दूसरी जगह की बात पत्र, तार, संदेशवाहक, पुस्तक से जानने

की चेष्टा करते हैं। अपने को जगतरूप मानकर भी उससे मुक्त होने के उपाय में लगते हैं। अतएव उन्हें सदैव अपने ब्रह्माकार में संदेह बना रहता है। सर्वथा अलीक बात केवल शब्दों के जोर पर कहाँ तक सत्य रूप मान कर चलायी जा सकती है।

ताते हे शिष्य देखु तैं. सो है कल्पित रूप।
अनुमानी अनुमान भौ, सहै घनेरी कूप ॥१३४॥

शब्दार्थ — अनुमानी = अनुमान करने वाला, चेतन मनुष्य। कूप = कूआँ; भ्रांति, खानियाँ।

भावार्थ — अतएव हे शिष्य ! तू विचार करके देख, ब्रह्म कल्पित रूप है। अनुमान करने वाले मनुष्य जीव ही से सब अनुमान खड़े हुए हैं और वह उन्हीं भ्रांतियों के कूएँ में पड़कर अत्यन्त कष्ट सहता है ॥१३४॥

मानुष बिन कछु ना भयो, प्रथमा मानुष नाम।
मानुष ते सबही भयो, ब्रह्म रूप अरु नाम ॥१३५॥

शब्दार्थ — कछु = कोई मत मतांतर।

भावार्थ — कोई मत-मतान्तर मनुष्य के बिना नहीं खड़ा हुआ; अतएव संसार में मनुष्य का स्थान सर्वोच्च है। ब्रह्म के स्वरूप और नाम आदि सभी का निर्धारण मनुष्य से ही हुआ है ॥१३५॥

विशेष — मनुष्य ने ही ब्रह्म के चराचर व्यापक रूपकी कल्पना की तथा उसके नाम को रखा। अतः ब्रह्म बड़ा नहीं, अपितु मनुष्य ही श्रेष्ठ है।

नामरूप गुणमय जगत, चौरासी को फेर।
मानुष भूले सब भयो, भूल मिटे नहिं फेर ॥१३६॥

शब्दार्थ — नाम = वह शब्द जिससे किसी व्यक्ति, वस्तु या समूह का बोध हो, वाचक शब्द, संज्ञा शब्द। रूप = आकार, आकृति। गुण = सत, रज, तम। फेर = चक्कर।

भावार्थ — यह जगत या चौरासी का चक्कर नाम, रूप तथा गुणमय है। मनुष्य इन्हीं में भूलकर चौरासी के चक्कर में भटकता है। जब उसकी भूल मिट जाती है, और वह उनकी वासनाओं को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, तब पुनः चक्कर में नहीं पड़ता ॥१३६॥

विशेष — जहाँ तक मूर्त-अमूर्त पदार्थ हैं सब नाम, रूप और त्रिगुण में आ जाते हैं। जो पदार्थ मूर्त हैं जैसे पृथ्वी, जल, पेड़, पत्थर, मकान, शरीर आदि इनमें रूप हैं ही, इनमें नाम भी हैं तथा निर्माण, पुष्टि तथा परिवर्तन रूपी रज, सत एवं तम ये तीन गुण भी विद्यमान हैं।

जो पदार्थ अमूर्त हैं जैसे चित, मन, दया, शील आदि इनमें रूप तो नहीं, किन्तु नाम हैं और इनमें भी त्रिगुण लगे हैं। एक दृष्टि से देखा जाय तो इनमें भी रूप हैं, क्योंकि जो इनके लक्षण बताये जाते हैं वही इनके अमूर्त ही रूप समझ लें। इस प्रकार नाम,रूप तथा त्रिगुण से पूर्ण संसार है। परन्तु इन सबका निर्धारण करने वाला चेतन मनुष्य है। वही सर्वोपरि है।

अथवा नाम, रूप एवं त्रिगुण सबका अधिष्ठान ब्रह्म है और वही जगत है ऐसा मानकर सब जीव विश्व को ही अपना स्वरूप मान रहे हैं। परन्तु जब उपर्युक्त भूल मिट जाती है और यह बोध हो जाता है कि मैं सबसे भिन्न और सबका द्रष्टा हूँ, तब वह सबसे मुक्त हो जाता है।

फेर परा नहिं अंगमों, नहिं इन्द्रियन माहिं।
फेर परा कछु बूझमें, सो निरुवारेउ नाहिं ॥१३७॥

शब्दार्थ — फेर = अन्तर, फर्क। अंग = अवयव। निरुवारेउ = निर्णय, सुलझाव।

भावार्थ — विवेकी और अविवेकी के सिर, ग्रीवा, पेट, पीठ आदि अवयवों में न अंतर है और न आँख, मुख, कान आदि इन्द्रियों में फर्क है। यदि कुछ अन्तर है तो समझ में; परन्तु उस समय का सुलझाव मनुष्य नहीं करता ॥ १३७ ॥

विशेष — मनुष्यों की उच्चता और नीचता का कारण केवल समझ एवं स्वभाव है। अतएव उसे चाहिये कि वह अपनी समझ यथार्थ एवं स्वभाव पवित्र तथा कोमल बनावे।

बूझो संतो ठहरि के, देखो ब्रह्माकार।
जीव भरोसे कौन के, बैठे करे पुकार ॥१३८॥

शब्दार्थ — भरोसे = भरोसा, पक्की आशा; विश्वास।

भावार्थ—हे संतो! सावधान होकर समझो और ब्रह्म के स्वरूप की परख करो। ये मनुष्य किसके भरोसे हाथ-पर-हाथ धरे बैठे अपनी रक्षा के लिये पुकार रहे हैं! ॥१३८॥

मानुष निर्णय यथा विधि, कहेउँ प्रथम है रूप।
या बासै चौरासी बासा, या निरुवार स्वरूप ॥१३९॥

शब्दार्थ — यथाविधि = जिस प्रकार होना चाहिये। बासै = वासना; मोह। बासा = निवास। निरुवार = निर्णय, सुलझाव।

भावार्थ — मनुष्य के स्वरूप का निर्णय जैसा होना चाहिये मैंने कहा कि वह सर्वोच्च स्वरूप है। वह जगत-वासना रखकर चौरासी निवास कर सकता है और वही वासनाओं का सुलझाव करके स्वस्वरूप चेतन में स्थित हो सकता है ॥१३९॥

बहु प्रकार वर्णन अहै, बहु प्रकार के बोध।
बहु प्रकार मति कल्पि के, निज कल्पित कियो शोध ॥१४०॥

शब्दार्थ — वर्णन = चित्रण, बयान; कथन । बोध = ज्ञान; जानकारी । शोध = शुद्धि, सफाई; गलत को सही एवं शुद्ध करने की क्रिया ।

भावार्थ — संसार में अनेकों प्रकार के कथन हैं, अनेकों प्रकार के ज्ञान हैं और अनेकों प्रकार के मतों की कल्पना करके लोग भूले हैं । परन्तु कोई-कोई अपने कल्पित मत का स्वयं शुद्धि करके असार का त्याग तथा सार का ग्रहण करते हैं, ऐसे उदार लोग भी हैं ॥ १४० ॥

रहित कल्पना ब्रह्म भौ, ब्रह्म की इच्छा जहान ।
कहै कल्पना रहित भई, मिथ्या बकै अयान ॥१४१॥

शब्दार्थ — कल्पना = कोई नया बात सोचना, उपज; मान लेना; मनके राग द्वेष, सुख-दुःख, संकल्प-विकल्प । जहान = संसार । अयान = अजान; वास्तविकता से अपरचित ।

भावार्थ — कहते हैं मन के संकल्प-विकल्प से ऊपर उठ जाने पर मनुष्य ब्रह्म हो जाता है; परन्तु उनके ही मतानुसार यह विश्व ब्रह्म की इच्छा से ही बारम्बार निर्मित होता है। फिर ब्रह्म बनकर कोई कल्पना से रहित कैसे हो सकता है। अतएव वास्तविकता से अपरचित रहने के कारण ही लोग ऐसा निरर्थक कथन करते हैं ।। १४१ ॥

विशेष — जब मनुष्य मन को जीत लेता है तब वह ब्रह्म हो जाता है यह बात तभी मानी जा सकती है जब ब्रह्मका अर्थ महान या श्रेष्ठ मात्र हो। परन्तु यदि ब्रह्म की परिभाषा संसार का मूलकारण हो तो वह एक रोग ही है जो मनुष्य के लिये बंधन है ।

उपदेशी सो नष्ट भौ, भ्रष्ट जीव हैरान ।
वन्दै चरण अबोध जीव, चाहै निज कल्यान ॥१४२॥

शब्दार्थ — उपदेशी = उपदेश देने वाला ।

भावार्थ — गलत एवं भ्रांतिपूर्ण बातों का उपदेश देने से उपदेष्टा तो पतित होता ही है श्रोता भी सत्य से दूर होकर कष्टित होते हैं। यह मनुष्य ज्ञानहीन लोगों की चरणवन्दना एवं भक्ति करके अपना कल्याण चाहता है, जो असंभव है ॥ १४२ ॥

ई नहिं जानै बावरे, मोर कल्पना आहि ।
हे शिष्य बिनु मानुष भये, चौरासी भरमाहि ॥१४३ ॥

शब्दार्थ — बावरे = पगले; विमोहित । आहि = है ।

भावार्थ — ये विमोहित मनुष्य यह नहीं जानते कि मेरे चेतन स्वरूप से पृथक जो कुछ भी है मेरी कल्पना है । हे शिष्य ! बिना सच्चा मानव बने जीव चौरासी में भटकता रहेगा ॥ १४३ ॥

विशेष — वही सच्चा मनुष्य है, जो देहाभिमान, विषयासक्ति को जीत कर अपने स्वरूपज्ञान में स्थित है।

१५—मनुष्य के गुण तथा सर्वोपरिता पर पुनः विवेचन

शिष्य प्रश्न—१३

छन्द—५

हे स्वामी यह निर्णय भाखेउ, अति सुख पायऊँ।
जन्म जन्म की तृषा नाशी, समुझि अमृत प्यायऊँ ॥१॥
अब कछु कहु दीन उद्धारण समरथ मानुष लक्षण गुण जथा।
केहि विधि करिये पहिचान मानुष भाखेउ परमारथा ॥२॥

शब्दार्थ — तृषा = प्यास; तीव्र इच्छा; लोभ। समरथ = समर्थ, बलवान। परमारथा = वास्तविकता।

भावार्थ — हे स्वामी! आपने जो उपर्युक्त निर्णय कहा है, उसे सुनकर मैं अत्यंत सुख पाया हूँ। आपके अमृतमय उपदेशों को समझ एवं ग्रहण करके हमारे जन्म-जन्मान्तर के विषय और कल्पना की तीव्र इच्छा नष्ट हो गयी॥ १॥ हे दीनों के उद्धारक समर्थ सद्गुरु! अब थोड़ा पुनः मनुष्य के जिस प्रकार गुण-लक्षण हों मेरे बोध की पुष्टि के लिये कहने की कृपा कीजिये। आपने मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को कहा है; परन्तु उसे किस प्रकार पहचाना जाय?॥ २॥

विशेष — यद्यपि सद्गुरु मनुष्य के गुण-लक्षण बहुत विस्तार से पूर्व में कह आये हैं; परन्तु शिष्य अपने बोध की पुष्टि के लिये गुरु से और भी कहलाना चाहता है। किसी चीज के अभ्यास के लिये पुनरुक्ति में दोष नहीं माना जाता है। कहा है :—

हर्ष मर्ष आकर्षण, अभय दीनता युक्त।
अथवा विद्याभ्यास में, दोष नहीं पुनरुक्त॥

सद्गुरु उत्तर—१३

छन्द—६

सुन शिष्य सुमति अनेक विधि, याके अनेकन अंग हैं।
पुनि ताहिमा जो प्रत्यक्ष गुणगन, परख बिनु कोइ न लहै॥ १॥
लहै जीव जे दृढ़ सो सतगुरु मुख, देखसत्य निर्णय कियो।
सो सुनहु शिष्य यह देहके गुण, जीवके गुणहू कह्यो॥ २॥

शब्दार्थ — अंग = भाग, विभाग। प्रत्यक्ष = स्पष्ट।

भावार्थ -- हे सुन्दर मति वाले शिष्य ! अनेक प्रकार से सुनो, मानवता के अनेक भाग-विभाग हैं। उनमें जो स्पष्ट हंसगुण समूह है उसे बिना पारख के कोई प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १ ॥ जो व्यक्ति उसे दृढ़तापूर्वक ग्रहण करते हैं वह सद्गुरु के मुख से ही। हे शिष्य ! सुनो और समझो, उसका वास्तविक निर्णय कर दिया गया है। इस शरीर के गुण तथा जीव के भी गुण कहे गये हैं, आगे भी कहा जाता है ॥२॥

विशेष -- किसी का हित कर देना, प्यासे को पानी और भूखे को भोजन दे देना, अपने दोषों को छोड़ देना, सद्गुणों को ग्रहण करना आदि मानवता के अनेक लक्षण हैं, परन्तु पूर्ण लक्षण है अबोध का त्याग होकर स्वस्वरूप का यथार्थ बोध हो जाना और समस्त विकारों का त्याग होकर समस्त सद्गुणों से सम्पन्न हो जाना। यह बिना यथार्थ सद्गुरु के परखाये होना अति कठिन है।

दोहा – चारि खानि का जीयरा, मानुष कधी न होय।
जाको गुरु पारख लही, मानुष कहावै सोय ॥१४४॥

शब्दार्थ — कधी = कभी। गुरुपारख = स्वस्वरूप बोध।

भावार्थ — मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज ये चार खानि के अभ्यासी जीव कभी वास्तविक मनुष्य नहीं कहला सकते। जिनको स्वस्वरूप का बोध प्राप्त हुआ हो, वही सच्चा मनुष्य कहलाता है ॥ १४४ ॥

यह लक्षण समुदाय गुण, कहा वचन टकसार।
गुरु पूरा जो होयगा, तो शिष्य उतारे पार ॥१४५॥

शब्दार्थ — समुदाय = समूह। टकसार = टकसाल; सत्संग; बीजक।

भावार्थ -- उपर्युक्त मानवता के लक्षण एवं मानवीयगुणों के समूह का वर्णन सद्गुरु कबीर ने बीजक की वाणियों में किया है। जो पूर्ण सद्गुरु होगा वह शिष्य को भ्रांतिसागर से पार उतार देगा ॥ १४५ ॥

चौपाई—१३

मानुष समुझै मानुष होई। गुण लक्षण मानुपते जोई ॥ १ ॥
क्षमा दया सत धीर विचारा। मानुष लक्षण सहित निरधारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — निरधारा = निर्धारण; निश्चय करना, तय करना।

भावार्थ — मनुष्य के गुण और लक्षणों को मनुष्य समझकर वास्तविक मनुष्य बन जाता है ॥ १ ॥ क्षमा, दया, सत्य, धैर्य और विचार जिसमें हों वह मनुष्य के गुण और लक्षणों के सहित है, ऐसा विवेकियों द्वारा निर्धारित किया गया है ॥ २ ॥

सदा एक सम बुद्धि प्रकाशा। भाखै वचन न कल्पित आशा ॥३॥
अस विवेक शिष्य जेहि घट आवा। सो गुण मानुष केर कहावा ॥४॥

शब्दार्थ — घट = देह; अंतःकरण ।

भावार्थ — जिसकी बुद्धि में सदैव एक समान पारख का प्रकाश रहता है, जो न तो कभी कल्पित वस्तु की चर्चा करता है और न उसकी आशा करता है ॥ ३ ॥ हे शिष्य ! जिसके अंतःकरण में ऐसा सर्वोच्च विवेक आ गया वह सच्चा मनुष्य है तथा यही मानवगुण है ॥ ४ ॥

मानुष गुण अवगुण को त्यागै । निर्णय वचन जथारथ पागै ॥ ५ ॥
अनुमानी गुण काल कहंता । नास्ति नष्ट के आदि न अंता ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — पागै = मग्न हो । अनुमानी = अनुमान करने वाला, भ्रम की बात करने वाला ।

भावार्थ — मनुष्य का यही मुख्य गुण है कि वह अवगुणों का त्याग करे, और यथार्थ निर्णय वचनों के विचारों में मग्न हो ॥ ५ ॥ अनुमान-कल्पना करने वाले तो अनुमान-कल्पना को ही गुण कहते हैं, जो वस्तुतः असत्य और शून्य रूप है तथा उस कल्पना का न आदि है न अंत ॥ ६ ॥

आदि अंत जाके जानि न जाई । सो अनुमान नास्ति है भाई ॥ ७ ॥
सो पशु खानि मानुष बुद्धि नाहीं । धोखाधार में गोता खाहीं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — जाके = कल्पना-अनुमान के । गोता = डुबकी ।

भावार्थ — जिसका आदि और अंत समझ नहीं मिलता; हे भाई ! वह अनुमान-कल्पना मात्र तथा असत्य है ॥ ७ ॥ ऐसे भ्रम में जो फँसा है वह एक प्रकार का पशुवत ही है, क्योंकि वह भ्रमधारा में डूब रहा है ॥ ८ ॥

निर्बचनी जो ब्रह्माकारा । सो अनुमान सृष्टि विस्तारा ॥ ९ ॥
सो निर्णय ते नास्ति कहावै । जो नहिं है तहाँ क्यों मन लावै ॥१०॥

शब्दार्थ — निर्बचनी = निर्वचनीय का अर्थ है जिसको समझाया जा सके, परन्तु निर्वचन का अर्थ मौन या चुप है । यहाँ निर्बचनी मौन तथा वाणी के परे के अर्थ में है ।

भावार्थ — जो ब्रह्मस्वरूप वाणी के परे है, उससे सृष्टि का विस्तार बतलाना अनुमान मात्र है ॥ ९ ॥ निर्णय विवेक से उसे असत्य ही कहा जायगा । जो वस्तु है ही नहीं, उसमें क्यों मन लगाया जाय ? ॥ १० ॥

कंचन काँच बराबर लेखै । सो बुद्धिमान औरको पेखै ॥११॥
ताते पारख किया विचारा । कल्पित नास्ति सृष्टि व्यवहारा ॥१२॥

शब्दार्थ — और को = अन्य को; भोले लोगों को । पेखै = दिखा देता है ।

भावार्थ — जो कंचन और काँच को एवं चेतन तथा जड़ को एक समान अपितु एक ही मानता है उसको भोले लोग ज्ञानी के रूप में देखते हैं ॥११॥ इसीलिये पारखी-

विवेकी पुरुष विवेक करके जड़-चेतन भिन्न परखाते हैं और कल्पित असत्य वस्तु से सृष्टि होने की मान्यता का खण्डन करते हैं । अथवा अपनी मानी हुई कल्पित सृष्टि का व्यवहार नाशवान बतलाकर उससे अनासक्त होने का उपदेश करते हैं ॥ १२ ॥

दोहा — उभय काल गुण दोषमय, कल्पित सृष्टि हं ।
नासै उपराजै बहुर, नाम क्षुधा वसी हं ॥१४६॥

शब्दार्थ — उभय = खानी और वाणी । काल = कल्पना; कष्टरूप । हं = अहंकार । नाम = प्रसिद्धि; मान-बड़ाई । क्षुधा = भूख; इच्छा । वसी = वश, विवश । हं = अहंकार ।

भावार्थ — कल्पित खानी और वाणी गुण और दोषमय हैं । मनुष्यद्वारा कल्पना करके जितनी सृष्टि रची जाती है उसके मूल में उसका अज्ञानजनित अहंकार ही है । प्रसिद्धि, मान-बड़ाई एवं भोग की इच्छा और अहंकार के वशीभूत होकर यह मनुष्य बार-बार अपनी सृष्टि और विनाश करता है ॥ १४६ ॥

विशेष — खानी और वाणी दोनों कष्ट स्वरूप हैं; परन्तु उनमें गुण और दोष दोनों हैं । मोटी माया खानी है । परन्तु उसके किसी अंश जैसे धन-दौलत से शुद्ध शरीरनिर्वाह चलता है, शरीर से साधना की जाती है । वाणी घेरा में भी सामान्य-जीवों के अन्तःकरण की शुद्धि के लिये साधन मिलते हैं । इसलिये खानी-वाणी दोनों में गुण भी हैं और विवेक छोड़कर उनका वर्ताव हो तो दोष हैं ।

मनुष्य जो कुछ भी अपना मानता है वह उसका नहीं है । उसका तो अपना चेतन स्वरूप ही है ।

मन संकल्पते जग बहू, मन विकल्पते नाश ।
रहट जीव बाँचे नहीं, धोखाधार विनाश ॥१४७॥

शब्दार्थ — संकल्प = इच्छा; निश्चय । विकल्प = अनिच्छा; अनिश्चय । रहट = रहँट; चक्कर ।

भावार्थ — जीव मन में इच्छा करके जगत में बहुत प्रपंच फैला लेता है, जब मनकी इच्छा उससे हट जाती है तब प्रपंच को समेट लेता है, इस प्रकार चक्कर में पड़ा जीव बिना सर्वथा जगत-इच्छा का परित्याग किये दुःखों से नहीं बच सकता; प्रत्युत भ्रमप्रवाह में पड़ा अपना पतन ही करता रहेगा ॥ १४७ ॥

गुण उत्तम लक्षण सहित निर्णय वचन यथार्थ ।
जो बर्तें सोई खरा, अनुमानी मिथ्यार्थ ॥१४८॥

शब्दार्थ — मिथ्यार्थ = मिथ्या + अर्थ; निष्प्रयोजन ।

भावार्थ — मानव के उत्तम गुण एवं लक्षणों के सहित यथार्थ निर्णय वचनों के अनुसार जो बोधभाव पूर्वक जीवन यापन करता है, वही शुद्ध शांत स्वरूप है। और अनुमान-कल्पना में पड़े हुए लोग निष्प्रयोजन बातों में भटकते हैं ॥ १४८ ॥

सत्यनिर्णय शब्द—२

संतों मानुष कोइ एक शूरा। जाहि मिलै गुरु पूरा ॥ १ ॥
बहुतक ब्रह्मधार के हंसा। बहुतक शिवगन भूता ॥ २ ॥
बहुतक विष्णु सोई जड़ होवें। बहुतक निरंजन पूता ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — सूरा = शूरवीर, जितेन्द्रिय। पूता = पुत्र; दास।

भावार्थ — हे संतो ! मनुष्यों में कोई विरला ही शूरवीर होता है जो सभी भ्रांतियों तथा विषयासक्तियों को त्यागता है; परन्तु यह तब होता है जब उसे पूर्ण विवेकी सद्गुरु मिल जायँ ॥ १ ॥ बहुत मनुष्य तो ब्रह्मकल्पना के प्रवाह में डूबते हैं। बहुत से शिव के गण एवं कल्पित भूत-प्रेतों की उपासना में लटके हैं ॥ २ ॥ बहुत लोग तो उन विष्णु के पूजने में लगे हैं जो पुराणानुसार अपने दुराचार के कारण वृंदा नारी से शापित होकर जड़ शालग्राम पत्थर बन गये थे। बहुत लोग अलख निरंजन की कल्पना में लटककर उनके दास बने हैं ॥ ३ ॥

बहुतक शिव शक्ति आराधैं। मदिरा पिये अचेता ॥ ४ ॥
खून करें बहु पूजि भरम जड़। रक्षा तन के हेता ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — आराधैं = आराधना, पूजा एवं उपासना करते हैं। खून करें = जीवहत्या करते हैं।

भावार्थ — बहुतलोग शिव तथा शक्ति की उपासना करते हैं और शराब पीकर अचेत हो जाते हैं ॥४॥ अपने तथा परिवार के शरीर की रक्षा के लिए अनेक जड़ देवी-देवताओं की पूजा में जीववध करते हैं ॥५॥

षट दर्शन पाखंड छियानवे। अपने अपने भावै ॥ ६ ॥
सबै सराहैं निज निज वाणी। परख कहाँते पावै ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — भावै = भावना में। सराहैं = प्रशंसा करते हैं।

भावार्थ — योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश और ब्राह्मण ये छह दर्शन तथा इनके छान्नवे भेद के लोग अपनी-अपनी भावना-कल्पना में पड़े हैं॥६॥ सब अपनी अपनी-अपनी पोथियों की वाणियों की प्रशंसा करते हैं, फिर निष्पक्ष हुए बिना उन्हें गुण-दोष, सार-असार एवं जड़-चेतन की परख कहाँ से मिले ॥७॥

धंदे बंदे अंधे भरमे। मिथ्या निजुकै थापा ॥ ८ ॥
कहहिं कबीर मानुष गुरुमुख लहु। मेटे काल कलापा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ — धंदे = धंधा एवं व्यवसाय में। बंदे = बंधन में बंधे लोग, गुलाम। अंधे = विवेकरहित। थापा = स्थापन। काल = कल्पना; अज्ञान। कलापा = कलाप, समूह।

भावार्थ — अज्ञान में बँधे हुए मन के गुलाम और विवेकरहित लोग अपने मिथ्या मत को स्थापित करके उसी के व्यवसाय में भ्रम रहे हैं ॥८॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वास्तविक मनुष्य गुरुमुख एवं सारवाणियों को ग्रहण करके सम्पूर्ण कल्पना एवं अज्ञान को नष्ट कर देता है ॥९॥

सत्यशब्द टकसारः बीजक साखी १६६

मानुष तेरा गुण बड़ा, मांस न आवै काज।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजन बाज ॥ १४९ ॥

शब्दार्थ — आभरण = आभूषण, गहना। त्वचा = चमड़ी।

भावार्थ — हे मनुष्य ! तेरे दयादि सद्गुण ही श्रेष्ठ हैं, तेरा मांस किसी काम में नहीं आता। न तेरी हड्डी का आभूषण बनता है और न चमड़ी का बाजा बनकर बजता है ॥१४९॥

१६—भूलका विस्तृत परिचय

शिष्य प्रश्न—१४

सोरठा—बन्दीजन उद्धार, कहेउ यथारथ मनुष्य गुण।
लक्षण लक्ष विचार, या पारखते लहेउँ प्रभु ॥१५॥

शब्दार्थ — बन्दीजन = कैदीलोग; बन्धनों में बँधे लोग। लक्षण = मनुष्य के गुण, लक्षण-पहिचान। लक्ष = लक्ष्य, उद्देश्य।

भावार्थ — हे प्रभो ! खानी-वाणी के बन्धनों में बँधे हुए लोगों के छुटकारा के लिये आपने मानव के वास्तविक गुण-लक्षणों का वर्णन किया है। अतएव आपके इस छान-बीन से मैं मनुष्य के गुण-लक्षणों तथा उसके चरमोद्देश्य का विवेक प्राप्त किया हूँ ॥१५॥

मानुष प्रथमा रूप, केहि कारण गुरुनिर्मयो।
कैसे गुरुयत भूप, पाये दुःख सुख सब गयो ॥१६॥

शब्दार्थ — प्रथमा = सर्वोच्च।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! यह समझ गया कि मनुष्य शरीर सर्वोच्च है; परन्तु ऐसे उत्तम शरीर में आकर भी जीव क्यों पुनः-पुनः चारों खानियों के दुःखरूपी शरीरों का निर्माण करता है;और हे सम्राट सद्गुरु ! गुरुविचार को पा जाने पर उसके दुःख-सुख के द्वन्द्व कैसे दूर भाग जाते हैं ? ॥१६॥

सद्गुरु उत्तर—१४

दोहा — हे शिष्य थीर जो अस्तिपद, हंस स्वतः आनंद।
निज अकाश को भर्म भयो, एकोहं स्वच्छंद ॥१५०॥

शब्दार्थ — थीर = स्थिर; नित्य। अस्तिपद = सत्यचतन। हंस = मनुष्य जीव। अकाश = आकाश; शून्य; अवकाश। एकोहं = एकोऽहं, एक मैं। स्वच्छंद = स्वतंत्र।

भावार्थ — हे शिष्य ! मनुष्य-जीव जिसका वास्तविक स्वरूप सत्य, चेतन एवं स्थिर है वह इस शरीर में जब अपनी एकाग्रता का आनन्द पाया, तब उसे अपने अवकाश एवं क्षणिक निर्वन्धता में परमोच्चता का भ्रम हो गया, और वह मान लिया कि मैं अद्वैत एवं स्वतंत्र हूँ ॥१५०।

विशेष — जो मनुष्य विषयविकार में फँसे हैं वे तो बारम्बार जन्म-मरण के चक्कर में घूमने के अधिकारी हैं ही; परन्तु जिनमें मानवता के बहुत लक्षण आ चुके हैं, जो सदाचार एवं वैराग्य से भी चलने लगे;वे भी शुद्ध स्वरूप पारख का बोध न होने से मनकी एकाग्रता में प्राप्त आनन्दवृत्ति में भूलगये। उन्होंने भ्रमवश यह मानलिया कि मै सर्वतंत्र स्वतंत्र अद्वैत ब्रह्म हूँ। यह विश्व मेरे से ही उत्पन्न है और अंततः मेरे में ही लीन हो जायगा। जगत मुझसे अभिन्न है। मेरे में जगत के उत्पत्ति-प्रलय स्वाभाविक हैं।

उपर्युक्त भ्रांतियों में पड़ जाने के कारण मानवीयगुण सदाचार-वैराग्य आदि धारण कर लेने पर भी जन्म-मरण का चक्कर नहीं मिटता। क्योंकि जन्म-मरण व समस्त प्रपंच को वे अपना स्वरूप समझ लेते हैं। वे ज्ञानी कहलाने वाले भी किस प्रकार भूल-भुलैया के चक्कर में पड़ते हैं उसका विवरण आगे दिया जा रहा है।

व्याप महामाया जनित, मन मनसा गुण नेक।
गुणन कल्पना तीन गुण, भयो प्रत्यक्ष विधेक ॥१५१॥

शब्दार्थ — व्याप = व्यापनीय, व्याप्य होने योग्य, जिसमें कुछ व्याप्त हो। नेक = अनेक, बहुत। विधेक = विध + एक, विध = प्रकार, किस्म, तरीका, एक = अद्वैत।

भावार्थ — जिसमें ब्रह्म व्याप्त है वह है उसकी व्याप्य, अनादि एवं अभिन्न शक्ति महामाया। उसके सम्बन्ध से मन संकल्प एवं अनेक गुण उत्पन्न हुए। माया-सबलित ब्रह्म में जब गुणों की कल्पना हुई तब सत, रज एवं तम ये तीन गुण उत्पन्न हुए। इस प्रकार एक ब्रह्म से प्रत्यक्ष प्रकार से सृष्टि हुई ॥१५१॥

सात्त्विक जाये चारिउ, अंतः चौदह देव।
रज दश इन्द्री देव की, कर्म ज्ञान के भेव ॥१५२॥

शब्दार्थ — चारिउ अंत = मन, बुद्धि, चित, अहंकार चतुष्टय अन्तःकरण। भेव = भेद, रहस्य।

भावार्थ — सात्त्विक गुण से चतुष्टय अंतःकरण और इनके तथा दशइन्द्रियों के चौदह देवता उत्पन्न हुए। रज गुण से दश इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं, जिसमें आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा पंच ज्ञानइन्द्रिय और हाथ, पैर, मुख, गुदा, शिश्न पाँच कर्म इन्द्रियों का भेद है ॥ १५२ ॥

विशेष — चौहद देवताओं का वर्णन इसी प्रकरण के प्रथम झूलना के शब्दार्थ में है।

तामस गुण हंकारयुत, जाये पाँचन पाँच।
पाँचों से पचीस भौ, चौरासी को नाच ॥१५३॥

शब्दार्थ — पाँचन = पंचविषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। पाँच = आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी। नाच = चक्कर।

भावार्थ — तामस गुण अहंकार संयुक्त है, इससे पंच विषय उत्पन्न हुए और उन विषयों से पाँच तत्त्व उत्पन्न हुए और उन पाँच तत्त्वों से पच्चीस प्रकृतियाँ उत्पन्न हुईं—इस प्रकार जीव चौरासी अंगुल के शरीर तथा चारों खानियों में पड़ कर चक्कर काट रहा है ॥१५३॥

विशेष -- पचीस प्रकृतियों का वर्णन समष्टिसार चौकड़ी १० में देखें।

पाँच विषयों से पाँच तत्त्वों की उत्पत्ति की कल्पना निरर्थक है। पाँच विषयों से तत्त्व उत्पन्न नहीं होते; अपितु तत्त्वों में पंच विषय अभिन्न रूप से विद्यमान हैं। आकाश अवकाश मात्र एवं शून्य है। उसमें शब्द विषय मानना अयुक्त है। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु ये चार तत्त्व द्रव्य हैं। पृथ्वी में गंध, जल में रस, अग्नि में रूप, चंचलवायु में स्पर्श और स्थिर वायु में शब्द विषय हैं।

ऊपर ब्रह्म और माया के संयोग से अहंकार, त्रिगुण, पंच विषय, पंचतत्त्व, दश इन्द्रियाँ, चतुष्टय अन्तःकरण, चौदह देवता आदि की उत्पत्ति बतलाई है,सब काल्पनिक है। वस्तुतः यहाँ ब्रह्मवादियों की मान्यता परखाई गयी है कि वे सारा विश्वप्रपंच अपने ब्रह्मस्वरूप से ही उत्पन्न हुआ मानते हैं। इसीलिए सर्वोच्च मानव तन पाकर सदाचारी बनकर तथा ज्ञानी कहला कर भी जीवका जन्म-मरण चक्कर नहीं छूटता।

चौरासी औ चारि को, कर्ता मानुष रूप।
कोहं इच्छा से भयो, कल्पित नाना रूप ॥१५४॥

शब्दार्थ — कोहं = कोऽहं = मैं कौन हूँ ?

भावार्थ — चार खानियों एवं चौरासी योनियों का कर्ता मनुष्य ही है; अर्थात मनुष्यशरीर ही में कर्म करके सभी खानियों में जीव जाता है। मैं कौन हूँ ? इस जिज्ञासा को लेकर मनुष्य नाना कल्पित रूप खड़ा किया ॥१५४॥

विशेष -- सात्त्विक अंतःकरण में यह जिज्ञासा स्वाभाविक उत्पन्न होती है कि मैं कौन हूँ ? मैं प्रकृति से भिन्न शुद्ध चेतन हूँ, व्याप्य-व्यापक, अंश-अंशीरहित हूँ—यह

विवेक लोगों में शीघ्र नहीं उत्पन्न होता। मैं जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्म हूँ, चाँद हूँ, सूर्य हूँ, सम्पूर्ण विश्व हूँ, देह हूँ, मन हूँ, वीर्य हूँ, शब्द हूँ, तेज हूँ, मेरे ऊपर कोई कर्ता-धर्ता, देव-पिशाच है—इस प्रकार भ्रमवश मनुष्य नाना कल्पित रूप खड़ा कर लिया।

चारि देह पंचम दशा, शब्दाकार अकाश।
जिमि अकाशते ही भये, चारिउ तत्त्व प्रकाश ॥१५५॥
तैसे ब्रह्मते माया, माया के गुण तीन।
कल्पित मानुपरूप को, मन मिलि व्यवरा कीन्ह ॥१५६॥

शब्दार्थ — चारिदेह = स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण। पंचम दशा = कैवल्य। व्यवरा = ब्योरा = विवरण, एक-एक बात को अलग-अलग करके कहना।

भावार्थ — जीव स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण—इन चार देहों की मानन्दी में फँसा है। कोई इन चारों से ऊपर उठकर पाँचवीं ब्राह्मी स्थिति कैवल्य दशा धारण करते हैं। फिर वे कहते हैं ब्रह्म या ॐ शब्द के आकार से आकाश उत्पन्न हुआ और उसी आकाश से ही अन्य चारों तत्त्व वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी क्रमशः उत्पन्न हुए ॥ १५५ ॥ उसी प्रकार ब्रह्म से माया उत्पन्न हुई तथा माया से सत, रज, तम तीन गुण उत्पन्न हुए। परन्तु वस्तुतः विवेक करके देखा जाय तो उक्त सारी सृष्टि मनुष्य की कल्पना है। उपर्युक्त सारा विवरण मनमें मिलकर एवं कल्पना करके किया गया है ॥ १५६ ॥

याको बहु विस्तारते, चारिउ पाँचों मत।
कहै वेद मुनि मनुज तन, व्यवरा कियो समस्त ॥१५७॥

शब्दार्थ — चारिउ = चार वेद। पाँचों = पाँचवाँ वेदान्त। मत = विचार, सिद्धांत। समस्त = सम्पूर्ण।

भावार्थ — उपर्युक्त सिद्धान्त—एक ब्रह्म से नानत्व जगत उत्पन्न हुआ; इसको चारों वेदों तथा पाँचवें वेदान्त में अनेक प्रकार से विस्तार करके समझाया गया है। मनुष्य-शरीरधारी ऋषि-मुनि गण वेद-शास्त्रों में अनुमान-कल्पना करके सम्पूर्ण खानी-वाणी का विवरण दिये हैं ॥१५७॥

विशेष — यहाँ ग्रंथकर्ता अद्वैतवादियों के कथनानुसार कहते हैं। वस्तुतः वेदों में ब्रह्म पर नहीं, कर्मकाण्ड पर जोर है।

अहै प्रत्यक्ष प्रमाण जग, विदित ग्रंथ बहु एक।
हे शिष्य पाये कसर कछु सो द्रष्टा बुद्धि देख ॥१५८॥

शब्दार्थ—कसर = त्रुटि ।

भावार्थ — हे शिष्य ! संसार में इसका प्रमाण प्रत्यक्ष है, अनेक ग्रंथों में ब्रह्म

से जगत तथा जगत से ब्रह्म होने की कल्पना की गयी है। वही व्यक्ति इसमें कुछ त्रुटि समझ पाता है, जो इसे केवल श्रद्धा की नहीं, द्रष्टा की बुद्धि से देखता है ॥१५८॥

विशेष — द्रष्टा उसे कहते हैं जो तटस्थ, उदासीन एवं निष्पक्ष होकर देखता है। जो व्यक्ति किसी वस्तु को केवल श्रद्धा की बुद्धि से देखता है वह उसकी त्रुटि को नहीं देख पाता। इसलिये उसके पल्ले गुण के साथ दोष भी पड़ते हैं। और जो किसी वस्तु को केवल तर्क की दृष्टि से देखता है वह उसमें केवल त्रुटि को देखता है तथा उसके सद्गुणों को नहीं देख पाता। और जहाँ द्रष्टाबुद्धि से देखा जाता है वहाँ वस्तु का सम्यक बोध होता है। द्रष्टाबुद्धि में श्रद्धा और तर्क का समन्वय रहता है।

एक, अखण्ड, सत्-चिद्-आनन्द, निरवयव, निराकार, निर्गुण, निरिच्छ ब्रह्म से अनेक, खण्ड, असत्-अचिद्-अ-आनन्द, सावयव, साकार, सगुण, ससंकल्प जगत का बन जाना उसी प्रकार का है जैसे वंध्या के पुत्र से शत्रु का मारा जाना या खरगोश के मस्तक पर सींग का होना। ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति की कल्पना सिद्धि में शब्द प्रमाण को छोड़कर न युक्ति है न अनुभव और न व्यवहार। जो अद्वैत ब्रह्मवादपरक शास्त्रों में अपनी श्रद्धा को बाँध दिये हैं वे ही इस बात को सत्य कह सकते हैं; परन्तु जो द्रष्टाबुद्धि वाला निष्पक्ष है, वह इस महाअवैज्ञानिक धारणा को कैसे स्वीकार कर सकता है।

द्रष्टाबुद्धि वाले विवेकीपुरुष पहले इसमें कुछ-कुछ त्रुटि समझ पाते हैं, फिर पूर्ण विवेक हो जाने पर इसके सारे भ्रम उनकी दृष्टि में आ जाते हैं। अतएव सत्य को समझने के लिये मनुष्य को निष्पक्ष विवेकी होना चाहिये।

सब अनुमाने ब्रह्म के, सूक्ष्म हंत जग होय।
निर्णय यथा परखि के, मनुष्य कल्पना सोय ॥१५९॥

शब्दार्थ — **अनुमाने**=अटकल करने। **यथा**=जैसे; यथार्थ।

भावार्थ — सभी ब्रह्मवादियों के अटकल से यही बात मान्य है कि ब्रह्म के "एकोऽहम् बहुस्याम्" स्वरूप सूक्ष्म अहंकार करने से संसार उत्पन्न होता है। परन्तु परख-विवेक के अनुसार यथार्थ निर्णय करने से यह मान्यता मनुष्यों की कल्पनामात्र सिद्ध होती है ॥ १५९ ॥

काहे हे शिष्य ब्रह्मते, इच्छा हंता रूप।
रूप बिना व्यापै नहीं, हंता माया कूप ॥१६०॥

शब्दार्थ—**काहे**=क्योंकि। **रूप**=साकार शरीरादि। **कूप**=कूआँ, खान।

भावार्थ—हे शिष्य ! ब्रह्म से जगत-निर्माण की इच्छा उचित नहीं प्रतीत होती है; क्योंकि इच्छा अहंकार का स्वरूप है और साकार शरीरादि तथा उसके साथ

अज्ञान एवं अविद्या हुए बिना माया तथा छलावा की खानिरूप अहंकार उसमें व्याप नहीं सकता ॥ १६० ॥

रूप बिना इच्छा नहीं, रूप बिना नहीं नाम ।
रूप बिना संकल्प को, कर्ता कौने ठाम ॥१६१॥

शब्दार्थ — रूप = साकार शरीर । इच्छा = संकल्प । नाम = संज्ञा । कर्ता = बनाने वाला । ठाम = स्थान ।

भावार्थ — साकार शरीर हुए बिना इच्छा नहीं उत्पन्न हो सकती और बिना साकार शरीर धारण किये नाम की कल्पना कौन करेगा ? साकार व्यक्ति ही मूर्त-अमूर्त पदार्थों के नामों की कल्पना करता है । अतएव बिना साकार शरीर हुए जगत रचने के संकल्पों का कर्ता किस आधार से मान्य होगा ? ॥ १६१ ॥

विशेष—साकार की भूमिका पर ही कोई कर्ता एवं रचयिता बन सकता है ।

ताते कल्पित सब भयो, मन माया अरु ब्रह्म ।
ईश गुणन संयुक्त बहु, चारि चौरासी भर्म ॥१६२॥

शब्दार्थ — गुणन = ज्ञान, श्री, ब्रह्माण्डता, यश, विद्या और बल—ये ईश्वर के षट्गुण माने जाते हैं ।

भावार्थ — अतएव मन, संकल्प और ब्रह्म तथा षट्गुणों के संयुक्त ईश्वर से चार खानि तथा चौरासी योनियाँ हुईं ये मान्यतायें केवल मनुष्य की कल्पना से ही हुई हैं ॥ १६२ ॥

रूप मनुष्य प्रथमा अहै. रूपकी झाँईं रूप ।
भासेउ दुतिया याहि को. सोहं ब्रह्म स्वरूप ॥१६३॥

शब्दार्थ — झाँईं = परिछाईं, प्रतिबिम्ब । भासेउ = प्रतीत हुआ । याहि को = मनुष्य को । सोहं = सोऽहं, वह मैं हूँ ।

भावार्थ — मनुष्य का स्वरूप सर्वोच्च है । उसने मन से ब्रह्म की कल्पना की, तो उसके संकल्प का प्रतिबिम्ब अन्तःकरण पर झलका । अतएव इस मनुष्य को जो वह दूसरा मनःप्रतिबिम्ब प्रतीत हुआ, उसी को 'मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ' कहने लगा ॥१६३॥

विशेष — उपर्युक्त दोहा का तात्पर्य यह है कि साकार शरीर में ही जीव संकल्प कर सकता है कि जगतरचयिता कोई ब्रह्म होगा । इस संकल्प से ही मन में ब्रह्मकी भावना दृढ़ हुई और "मैं चराचर व्यापक ब्रह्म हूँ" ऐसी कल्पना उसे हुई ।

अनबनी जतन नशाय के, कल्पो ब्रह्माकार ।
ब्रह्म भये बहु दीर्घ पद, ताते धोखाधार ॥१६४॥

शब्दार्थ — **अनबनी**=अनबन, बिगाड़; झगड़ा; विविध, अनेक, कर्मोपासनादि। यहाँ का तात्पर्य विविध या अनेक ही है। **दीर्घ**=बड़ा; जड़-चेतन अभिन्न सर्वत्र व्याप्त। **पद**=स्थिति। **धार**=धारा; जोर की वर्षा; गहरा स्थान।

भावार्थ — लोगों ने शाब्दिक यत्नों से अनेकता का नाश या लय करके या कर्मोपासनादि का त्याग करके एक सर्वत्र व्यापक ब्रह्म के आकार की कल्पना की। जब व्यक्ति ब्रह्म बना तब वह बहुत व्यापक स्थिति में पहुँच गया, सारा विश्व वही बन गया; अतएव वह प्रबलधार एवं गहरे धोखे में पड़ गया ॥ १६४ ॥

विशेष — अपना शुद्ध स्वरूप चेतन समस्त जड़ वर्ग तथा व्याप्य-व्यापक भाव से भिन्न है, फिर कल्पना करके उसे सारे जड़दृश्य में मिलाकर चराचर व्यापक मान लेना गहरे धोखे में पड़ जाना नहीं तो और क्या है ?

रूपहि रूप समोइके, रूपते उतपति रूप।
रूपहिते पुनि नास्ति है, रूपहि रूप अरूप ॥१६५॥

शब्दार्थ — **रूपहि**=रूप में, देह में; मन में। **रूप**=इच्छारूप। **समोइके**= समाकर, प्रवेश करके। **रूपते**=शरीर या मनरूप से। **रूप**=ब्रह्मरूप या नाना कल्पना के रूप। **नास्ति**=असत्य; नाश। **रूपहि रूप अरूप**=रूप ही रूप एवं दृश्य ही दृश्य में प्रेम करते-करते धोखे में एक दिन सब रूप छूटकर अरूप हो हो जाता है।

भावार्थ — शरीर या मन रूप में ब्रह्मखोज की इच्छा का रूप समाकर शरीर-अन्तःकरण रूप से कल्पना करके ब्रह्मरूप की उत्पत्ति होती है। और तन-मन रूप के नष्ट होते ही ब्रह्म भी कुछ नहीं है। इस प्रकार तनरूप, मनरूप या मनःकल्पनाब्रह्मरूप आदि दृश्यों में ही जीवनपर्यन्त प्रेम करते-करते धोखे में एक दिन अरूप देहरहित होने की अवस्था आ जाती है और जीव का कल्याण नहीं हो पाता।

अथवा—स्त्री और पुरुष एक दूसरे के शारीरिक रूप, रंग, गढ़न आदि के अध्यास को अपने मन में समा रखे हैं; इसलिये एक शरीररूप से दूसरे शरीररूप की उत्पत्ति होती है। पुनः शरीररूप के नष्ट होने पर अज्ञानी, देहाभिमानी लोगों के सारे सुख एवं भोग-ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार जीवनपर्यन्त शरीररूप के प्रति ही अध्यास रखते-रखते शरीर छूट जाता है और अध्यासी जीव पुनः योनियों में भटकते हैं ॥ १६५ ॥

हंस स्वतः आनन्दपद, सो मानुष धरि देह।
ब्रह्म कल्पि जग निर्भयो, चौरासी कियो गेह ॥१६६॥

शब्दार्थ — **हंस**=जीव, चेतन; विवेकी। **स्वतः**=अपने आप; अजन्मा; असंग। **आनन्दपद**=जीवन्मुक्ति सुख की स्थिति। **सो**=वह। **गेह**=घर; स्थिति।

भावार्थ — वह जो मनुष्यतन धारी हंस है, स्वयं जीवन्मुक्तिसुख की स्थिति का अधिकारी है; परन्तु अपनो मानवता एवं विवेक में न स्थिर रहकर ब्रह्म की कल्पना करके तथा उससे जगत होने का भ्रम करके चराचर चौरासी संसार अपना स्वरूपमानकर उसी में अपनी स्थिति की है ॥ १६६ ॥

भूलो अपने रूपको, सो प्रथमा गौ भूल ।
परेहु फंदा कालके, सहै घनेरी शूल ॥१६७॥

शब्दार्थ — अपने रूप = स्वतः चेतन स्वरूप । सो = वह । प्रथमा = सर्वोच्च मानवशरीर गौ = गया ।

भावार्थ — उसने, जो सर्वोच्च मानव शरीर में असावधानी की, वह अपने चेतन स्वरूप को भूल गया । वह कल्पना एवं अज्ञान के फंदे में पड़कर अत्यन्त कष्ट सहता रहता है ॥ १६७ ॥

विशेष — मानव शरीर सर्वोच्च है । यही जंक्शन है । यहीं से कालजाल और कल्याण दोनों की ओर जा सकते हैं । जो यहाँ अपने स्वरूप को भूल जाता है वह मन-काल के हाथों में पड़कर जन्म जन्मान्तर पिसता रहता है । अतएव सावधान होने की आवश्यकता है ।

१७–विवेकस्थल मनुष्य शरीर में आकर भी जीव के भूलने पर विचार

शिष्य प्रश्न–१५

दोहा — हंस स्वतः पद थीर जो, काहे मनुष्य स्वरूप ।
सो प्रसंग समझायके, कहहु सद्गुरु भूप ॥१६८॥

शब्दार्थ — हंस = चेतन । पद = स्वरूप । थीर = स्थिर ।

भावार्थ — जो चेतन स्वरूपतः स्वतः स्थिर स्वरूप है वह मनुष्य देह भी क्यों धारण करता है ? हे श्रेष्ठ सद्गुरुदेव ! इस प्रसंग को समझा करके कहने की कृपा करें ॥१६८॥

सद्गुरु उत्तर–१५

दोहा — हे शिष्य सुनहु प्रसंग शुभ, भाषौं यथा प्रमान ।
स्वतः अस्ति आनंदपद, जैसे भयो अयान ॥१६९॥

शब्दार्थ — यथाप्रमाण = प्रमाण के अनुकूल, वास्तविकता के अनुसार । आनंदपद = जीवन्मुक्ति सुख की स्थिति । अयान = अज्ञानी ।

भावार्थ — हे शिष्य ! उस मंगलमय प्रसंग को वास्तविकता के अनुसार कहता हूँ जिस प्रकार इस मनुष्यशरीर में स्वतः सत्य चेतन जीवन्मुक्ति सुख का अधिकारी होकर भी अज्ञानी बना हुआ पुनः देहों को धारण करता है ॥ १६९ ॥

विशेष -- ये देहधारी चेतन कभी कर्म तथा देह धरने के चक्कर से पृथक थे और भूल कर देह धर लिये ऐसी बात नहीं है। ये असंख्य अविनाशी चेतन अनादि-काल से देह धरते तथा छोड़ते आ रहे हैं। जैसे बिना अण्डा के मुर्गी नहीं तथा बिना मुर्गी के अण्डा नहीं हो सकते, इसलिये मुर्गी-अण्डा का क्रम अनादि है। वैसे बिना देह के कर्म नहीं और बिना कर्म के देह नहीं; इसलिये देह और कर्म का चक्र भी अनादि है। यदि कभी जीव कर्म और देह से सर्वथा मुक्त होते तो उन्हें देह में आने का कोई हेतु ही नहीं होता।

प्रश्न हो सकता है जो चेतनजीव जब कभी देह तथा कर्म के चक्कर से पृथक नहीं थे तब उनसे पृथक हो भी सकते हैं, इसका क्या विश्वास? उत्तर में समझना चाहिये कि चेतन जड़ प्रकृति से सर्वथा भिन्न हैं। उनका स्वरूप शुद्ध ज्ञान है। उनका तथा जड़ प्रकृति का सम्बन्ध केवल वासना-वश है। अतएव वासनाओं का त्याग कर देने पर वे शुद्धस्वरूप अपने आप में स्थित हो सकते हैं। जिसका अपने चेतन स्वरूप के अतिरिक्त देह गेह आदि कहीं भी दृश्य पदार्थों में किंचिन्मात्र भी मोह नहीं है वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। ऐसे पुरुष का जब प्रारब्ध शरीर छूट जाता है तब उसके साथ में लगा हुआ अनादिकालीन सूक्ष्म शरीर भी छूट जाता है; और वह चेतनमुक्त अपने आप रह जाता है।

चालू प्रसंग में यह भाव नहीं है कि चेतन जीव सर्वथा मुक्त था, और भूल कर मनुष्य देह धर लिया। विदेह अवस्था में भूल होने और चेत जाने की बात ही नहीं उठती। देह धरकर ही भूल होती है अतएव जीव कर्म-देह के चक्कर में अनादि से है।

हाँ, जब-जब जीव मनुष्य शरीर में आता है तब-तब मुक्त होने की भूमिका में रहता है; परन्तु वह भूलकर पुनः कर्म करता तथा उसके अनुसार देहों को धरता है। इन सब बातों का स्पष्टीकरण आगे ग्रंथकर्ता स्वयं करते गये हैं।

धीर आदि सब तत्त्वता, याके थे सब पास।
प्रतिबिंबित झाँईं लखी, अस्ति कियो तहाँ वास ॥१७०॥

शब्दार्थ — धीर आदि = धैर्य, दया, विचार, शील, सत्य आदि। याके = मनुष्य जीव के। अस्ति = चेतन। वास = निवास; वासना; अहंकार।

भावार्थ -- मनुष्य शरीर में जीव के पास धैर्य, दया, शील सत्य, विचार आदि शुद्ध तत्त्वों की भूमिका थी या है; परन्तु वह इनकी अवहेलना करके सुख का आधार कहीं अलग मानकर उसका ध्यान किया, तो अपने ही मनःकल्पना का प्रतिबिम्ब परि-छाईं कल्पित ज्योति आदि को देखकर चेतनजीव उसी में अपना निवास किया या उसी की वासना दृढ़ की ॥१७०॥

विशेष — नर-नारी एक दूसरे के शरीर तथा अपने शरीर के अध्यासरूप प्रतिविम्ब भी अपने-अपने अन्तःकरण में धारण करके उसके रागवश भटकते रहते हैं।

करत वास तहाँ अस्तिके, हंता भई प्रकाश।
दर्पण देखै प्राणि जिमि, जथा अहंता भास ॥१७१॥

शब्दार्थ — वास = निवास; मान्यता। भास = प्रतीत।

भावार्थ — उक्त अपनी ही कल्पना वासना के प्रतिविम्ब में निवास या उसकी मान्यता करते हो उसमें अहं-मम का प्रकाश हुआ। जैसे मनुष्य दर्पण में अपने माने हुए शरीर के चेहरे को देखकर उसमें भूलवश अहंकार करता है ॥१७१॥

विशेष — जैसे दर्पण में शरीर के चेहरे को देखकर उसमें अहंकार करना भूल एवं बन्धन है, वैसे अपने मनः कल्पना में ईश्वरत्व-ब्रह्मत्व का आभास करना भूल एवं बन्धन है।

सोहं ब्रह्माकार भौ, ब्रह्म कल्पि मन माया।
माया मनते सब भयो कल्पि कल्पि बहु पाया ॥१७२॥

शब्दार्थ — सोहं = सोऽहं, वह मैं हूँ। पाया = प्राप्त किया, स्वीकार किया।

भावार्थ — मनुष्य ने अपने कल्पित आभास को ही 'वह मैं हूँ' मान लिया, फिर तो ब्रह्माकार-चराचर व्यापक बना। इस प्रकार अपने विषय में ब्रह्मकी कल्पना करके तमाम मन-मानन्दी का विस्तार किया। उस मन-मानन्दी से ही सब वाणीजाल का विस्तार हुआ और यह मनुष्य कल्पना कर-करके बहुत बन्धन स्वीकार कर लिया ॥१७२॥

विशेष — उपर्युक्त १७०और १७२ दोहों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रंथकर्ता यह मानते हैं कि जीव पहले से शरीर में था, तभी उसके पास धैर्य, विचार, शील आदि सद्गुण थे। बिना शरीर के केवल शुद्ध चेतन के पास सद्गुण-दुर्गुण दोनों नहीं हो सकते; क्योंकि ये सब तन-मन के सम्बन्ध में ही धारण होते हैं।

सारभाव यह है कि यह जीव मोक्ष-साधन करने योग्य मनुष्य शरीर में आकर भी अपनी कल्पना एवं अध्यास में फँसकर पुनः शरीर धारण करने का अधिकारी बन जाता है। जो दया, शीलादि सद्गुणों का उपयोग तो करता है परन्तु शुद्ध बोध उसे नहीं होता और कल्पना में फँसा रहता है, वह पशु आदि योनियों में नहीं जाता; परन्तु मनुष्य शरीर को अवश्य धारण करता है। मनुष्य शरीर भी दुःखसे खाली नहीं है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए सभी खानियों में आना-जाना समाप्त होना चाहिये।

हे शिष्य हंसा मनुष्यपद, रूप भरमते जान।
अस्ति नास्ति मिलतही, भयो सृष्टि निर्मान ॥१७३॥

शब्दार्थ —मनुष्यपद=मनुष्य शरीर। अस्ति=सत्य, चेतना। नास्ति=असत्य;कल्पना-वासना।

भावार्थ— हे शिष्य! मनुष्य शरीर की प्राप्ति भी जीव को भ्रम में फँस जाने के कारण ही समझना चाहिये। सत्य चेतन जीव अपने आप में ही न स्थित रहकर असत्य भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना आदि में मिल एवं आसक्त हो जाता है, और ऐसा होने से ही बारम्बार शरीर धारण रूपी सृष्टि का निर्माण होता है ॥१७३॥

कल्पित झाँईंमा बसो, झाँईं सोई ब्रह्म।
कल्पित सोई कल्पना, जगतको भयो आरंभ ॥१७४॥

शब्दार्थ — झाँईं=प्रतिबिम्ब; धोखा।

भावार्थ — यह जीव अपने मनःकल्पित धोखास्वरूप प्रतिबिम्ब में निवास कर रखा है, वह प्रतिबिम्ब या भ्रम ही ब्रह्म है। वह कल्पित वस्तु ब्रह्म मनुष्य की कल्पना है जिससे जगतसृष्टि का आरम्भ मान रखा है ॥१७४॥

विशेष — एक कामवासना तथा दूसरी ब्रह्मवासना मुख्य दो जीव के बन्धन हैं। मोक्ष की प्राप्ति के लिए इन दोनों का त्याग आवश्यक है। क्योंकि काम-वासना से सृष्टि प्रत्यक्ष होती है—और ब्रह्म को भी वेदान्त में जगत की योनि या सबकी उत्पत्ति का कारण मान रखा है।

हे शिष्य हंसा मनुष्यतन, ऐसे लह्यो तू जान।
जैसे मद्यपी मद बसी, कियो आपनो हान ॥१७५॥

शब्दार्थ — मनुष्यतन=मनुष्य शरीर। मद्यपी=मदिरापीने वाला। मद=नशा।

भावार्थ — हे शिष्य! तू ऐसा समझ कि चेतन जीव मनुष्य शरीर भी उसी प्रकार ग्रहण करता है जैसे मदिरा पीने वाला नशा में पड़कर अपनी हानि करता है ॥१७५॥

विशेष — जैसे मदिरा पीने वाला अपने धन, तन की हानिकरके नाली में गिरता या दुःखभोगता है; वैसे यह जीव मनुष्य शरीर भी अज्ञानवश ही धारण करता है।

यह ठीक है कि मानवशरीर कल्याण-साधन करने की भूमिका होने से सर्वोच्च है; परन्तु इससे साधना एवं यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके कल्याण कर लेना ही सार है। सर्वोच्च मानकर हम बारम्बार मानव शरीर को ही धारण करने की वासना रखें तो यह भी भ्रम या अज्ञान ही है; क्योंकि दुःखभोग में मानवशरीर भी अपना स्थान कम नहीं रखता।

इस प्रसंग में सद्गुरु द्वारा यह बताया गया कि दया, शील, धैर्य आदि सद्गुण धारण करने वाले व्यक्ति भी पूर्णबोध के बिना पुनः मानवशरीर धारण करते हैं। अतएव आवश्यकता है पूर्णबोध एवं विवेक-वैराग्य को प्राप्त करके मोक्ष का अधिकारी बनने की।

१८–स्वस्वरूप भूल एवं उसका परिचय

शिष्य प्रश्न—१६

सोरठा — साहेब स्वतः प्रकाश, दीनबंधु करुणा भवन।
कैसेहि हंसन भास, झाँईंमा वासा कियो ॥१७॥

शब्दार्थ — भास=प्रतीत, कल्पना। झाँई=प्रतिबिम्ब, धोखा, भ्रम। वासा=निवास, वासना, मान्यता।

भावार्थ — हे स्वतःप्रकाश, दीनबन्धु एवं करुणालय सद्गुरुदेव ! चेतन जीव कैसे अपने से पृथक कल्पना में फँस कर भ्रम में निवास किया ? ॥ १७ ॥

झाँईं याही केर, तन बिनु झाँईं होत नहीं।
तन सो कौन प्रभु तोर, जब कछु नहिं तब कल्प कस ॥१८॥

शब्दार्थ — कल्प=कल्पना।

भावार्थ — इसी मनुष्य शरीर से ही प्रतिबिम्ब, धोखा या भ्रम खड़े होते हैं, क्योंकि शरीर के बिना प्रतिबिम्ब एवं भ्रम आदि विकार नहीं होते। अतएव हे प्रभु ! वह आपका बताया हुआ कौन-सा शरीर है जिससे झाँई खड़ी हुई ? यदि कहिये कोई शरीर नहीं था, तो उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि जब स्थूल-सूक्ष्म कोई शरीर जीव के पास नहीं था, तब उसको कल्पना कैसे खड़ी हुई ? ॥ १८ ॥

कहिये दीनदयाल, याके उत्तर यथाविधि।
हरहु कठिन उरसाल, निर्णय कहहु यथार्थ शुभ ॥१९॥

शब्दार्थ — यथाविधि=विधिपूर्वक। उरसाल=हृदयपीड़ा।

भावार्थ — हे दीनदयाल सद्गुरु ! इस प्रश्न का उत्तर विधिपूर्वक वर्णन करने की कृपा करें, और सत्य तथा कल्याणमय निर्णय कहकर हमारी कठिन हृदय पीड़ा को हरण कर लीजिये ॥ १९ ॥

सद्गुरु उत्तर—१६

चौपाई—१४

हे शिष्य सुमति यथार्थ सुनीजे। याके उत्तर चितमँह दीजे ॥ १ ॥
हंस स्वतः पद नहिं कछु लेशा। हंस न देह न गेह कलेशा ॥ २ ॥

शब्दार्थ — हंस = चेतन जीव। लेशा = लेश, अणु, सूक्ष्म अंश, अल्पता, थोड़ा।

भावार्थ — हे सच्चे सुबुद्धि शिष्य ! सुनो, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं देता हूँ उस पर तुम अपना ध्यान दो ॥ १ ॥ चेतन स्वतः स्वरूप है, उसमें थोड़ा भी विजाति तत्त्व नहीं है। चेतन के शुद्ध स्वरूप विषये देह-गेह इत्यादि के क्लेश नहीं हैं ॥ २ ॥

विशेष — स्वरूपतः चेतन जीव सबसे असंग, निराधार, अकेला तथा स्वतः है। उसमें किंचिन्मात्र भी जड़अंश नहीं है। उसके स्वरूप में स्थूल, सूक्ष्म, कारणादि देह नहीं है, और न उसके रहने के लिये किसी घर, मकान आदि की ही आवश्यकता है। उसमें अविद्या, अस्मिता (अहंकार), राग-द्वेष तथा अभिनिवेश (मृत्युभय) के क्लेश भी नहीं हैं। स्वरूपतः चेतन अतिशय शुद्ध है।

आदि अस्तिपद थीर यथारथ। निर्णयरूप प्रकाश प्रकाशक ॥३॥
धीरज आदि तत्त्व तेहि संगा। अहै प्रकाश विहार सुसंगा ॥४॥

शब्दार्थ—आदि = प्रथम, मानव तन। अस्तिपद = सत्यस्वरूप। तेहिसंगा = मानव अंतःकरण में। विहार = आनन्द, घूमना-फिरना। सुसंगा = सत्संग।

भावार्थ — सभी खानियों से प्रथम एवं सर्वोच्च मानव शरीर में जीव अपने सत्यस्वरूप में वास्तविक ढंग से स्थित हो सकता है, क्योंकि मानवहृदय सारासार का निर्णयरूप ज्ञान का प्रकाशक है ॥ ३ ॥ मनुष्य के अन्तःकरण में धैर्य, दया, विचार, शील, सत्य आदि शुद्ध कल्याणप्रद तत्त्व विद्यमान हैं, और सत्संग में विचरण करके उसका प्रकाश अधिक बढ़ जाता है ॥ ४ ॥

भास प्रकाश बिंब अनुकूला। रूप भासते झाँई भूला ॥५॥
स्वतः थीरपद झाँई बासा। भयो प्रत्यक्ष तहाँ फुरि आसा ॥६॥

शब्दार्थ — भास = दृश्य, प्रतीत। बिंब = झलक। झाँई = प्रतिबिम्ब, धोखा। फुरि = स्फुरित।

भावार्थ — सात्विक ज्ञानप्रकाश में सुख प्रतीत करके और शरीर को अनुकूल मानकर अथवा ध्यान में प्राप्त दृश्य प्रकाश एवं झलक को आनन्दप्रद समझकर उसी दृश्य रूप के प्रतीत से परिछाईं (अभ्यास-वासना) को देखकर जीव अपने स्वरूप को अनादिकाल से भूलता रहता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार स्वतःस्थिर स्वरूप जीव अपने तन-मन से कल्पित शारीरिक रूप-सौंदर्य तथा मनःकल्पित भास-अभ्यास में अहंता-ममता करता रहा, और उसे प्रत्यक्ष सुख मानकर उसकी आशा करता रहा ॥ ६ ॥

विशेष — शिष्य ने प्रश्न किया था कि यदि जीव शरीर रहित मुक्त था तो उसे कैसे वासना खड़ी हुई ? गुरु उत्तर दे रहे हैं कि यद्यपि जीव का शुद्ध स्वरूप चेतन,

असंग एवं तन-मन से सर्वथा पृथक तथा शुद्धज्ञान है, तथापि वह अनादिकाल से शरीर धरते छोड़ते आ रहा है। यह बात इससे सिद्ध होती है कि ग्रन्थकर्ता गुरु के उत्तर में यह बारम्बार कहलाते हैं कि हंस दया, क्षमा, धैर्यादि सद्गुणों के साथ था और ये सब बिना मानवशरीर के नहीं रह सकते हैं। अतएव ग्रन्थकर्ता प्रकारान्तर से यह स्वीकार करते हैं कि जीव अन्य खानियों में भटककर बारम्बार मनुष्य शरीर में आता है। और जब यह मनुष्य शरीर में आता है तब यह धैर्यादि सद्गुणों की भूमिका एवं विवेक के स्थान पर रहता है जहाँ बोध वैराग्य प्राप्त करके अपना सर्वथा मोक्ष कर सकता है। परन्तु भूलवश यह ऐसा न करके देह और मन के कल्पित भास-अध्यास, अनुमान, कल्पना में फँस कर कहीं देह को अपनास्वरूप मानकर विषयासक्त होता है और कहीं मनःकल्पना की प्रतिछाया को ईश्वर-ब्रह्म मानकर उसी से जगत उत्पत्ति आदि की अनगढ़ अटकलें करता है और कहीं अपने आपको ही समस्त विश्वस्वरूप मानकर भटकता है। इस प्रकार अपने स्वरूप-ज्ञान से विमुख बना भ्रमता रहता है।

आशा कोहं कल्पना भयऊ। होत ज्ञान मन इच्छा ठयऊ ॥ ७ ॥
इच्छाशक्ति सो माया नामा। माया मध्य सो मनको धामा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — कोहं = कोऽहं ? मैं कौन हूँ ? ठयऊ = दृढ़ निश्चय।

भावार्थ —सुख की आशा करके यह कल्पना उठी कि मैं कौन हूँ ? फिर यह माना कि मैं चराचर व्यापक ब्रह्म हूँ और यह ज्ञान होते ही मन में जगत की इच्छा दृढ़ निश्चय से ठान ली ॥७॥ इच्छाशक्ति का ही नाम माया है और माया के बीच में ही मन अपना घर बनाता है ॥८॥

विशेष —'मैं चराचर व्यापक ब्रह्म हूँ' यह मानकर सारा विश्व अपना ही रूप मान लिया जाता है। फिर ब्रह्म में जगत बनने की इच्छा होती है। इच्छा ही माया है। माया ही मन का निवास स्थान है। यह सब जीव के लिये भूल-भुलैया है।

मन माया दोउ युक्ति विचारी। कर्म विस्तारी स्थूल संचारी ॥ ९ ॥
ताते भया स्थूल पसारा। कर्म जाल को बहु विस्तारा ॥१०॥

शब्दार्थ — माया = कल्पनायें। संचारी = गतिशील; प्रवेशकरनेवाला; क्षणिक।

भावार्थ — मनुष्यों ने मन और मनकी कल्पनाओं—इन दोनों से अनेक विचार किया और यज्ञ, तीर्थाटन आदि क्षणिक, स्थूल-कर्मों का विस्तार किया ॥९॥ इसलिये संसार में स्थूल कर्मों के जाल का अधिक विस्तार हुआ ॥१०॥

हे शिष्य झाँई प्रथम बेकारा। ताते अस्ति नास्ति अनुसारा ॥११॥
अस्ति नास्ति संबंधी भयऊ। हे शिष्य ताते जग निर्मयऊ ॥१२॥

शब्दार्थ — प्रथम = मुख्य। बेकारा = विकार। अस्ति = सत्ता; सत्य चेतन। नास्ति = असत्ता; असत्य कल्पना, शरीरादि।

भावार्थ — हे शिष्य ! मुख्य विकार एवं त्रुटि है अपने चेतनस्वरूप से पृथक किसी भास-अध्यासरूप झाँई को अपना स्वरूप मान लेना । इसी से सत्यचेतन असत्य देह, भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना के अनुसार अपने को मानकर भटकता है ॥११॥ सत्य चेतन जीव, असत्य देह तथा देह के भास, अध्यासों का सम्बन्धी बना है। हे शिष्य ! इसीलिये वह अपना मनोमय जगत बनाता रहता है ॥१२॥

प्रथमा पदमों भयो विकारा । ताते ब्रह्म पदारथ सारा ॥१३॥
ब्रह्म भये ताते सुख नाहीं । नास्ति पदारथ नास्तिहि माहीं ॥१४॥

शब्दार्थ — प्रथमापद = मनुष्यशरीर । विकार = क्षोभ, रोग, भूल ।

भावार्थ — सर्वोच्च मानवशरीर में ही भूल एवं अज्ञान का रोग लगा है । इसी भूल से जीव कल्पित ब्रह्मपदार्थ को सार एवं सत्य मान रहा है ॥ १३ ॥ अतएव हे शिष्य ! ब्रह्म बनने से सुख नहीं है, क्योंकि असत्य पदार्थ असत्य ही रहेगा ॥ १४ ॥

विशेष — मनुष्य शरीर ही सर्वोच्च शरीर है । यही कर्मभूमिका है । इसलिये इसी शरीर में भूल होती है तथा इसी में चेत होता है ।

सो प्रत्यक्ष शिष्य जान विकारा । ब्रह्माकार नास्ति आधारा ॥१५॥
कल्पना वासा सो सब माहीं । मन वासे चौरासी जाहीं ॥१६॥

शब्दार्थ — नास्ति आधारा = असत्य आधार । वासा = वासना ।

भावार्थ — हे शिष्य ! ब्रह्म के आकार (चराचर व्यापक) की जो कल्पना की गयी है इसका आधार सर्वथा असत्य है, अतएव तू इसे प्रत्यक्ष दोष रूप समझ । ॥१५॥ क्योंकि जहाँ सारा विश्व अपना ही स्वरूप मान लिया गया है वहाँ सबकी कल्पना एवं वासना भी अपने में हर समय आरोपित होगी ही । यह नियम है कि मन की वासना से ही जीव चौरासी खानियों में जाता है; और जब यह मान लिया कि चौरासी मेरा ही स्वरूप है तब उससे छुटकारा कहाँ है ? ॥ १६ ॥

अनबनि जतन नास्ति को फाँसा । नास्ति सनेही नास्तिहि वासा ॥१७॥
हे शिष्य हंसा भरम भुलाना । झाँईमा वासा तेहि ठाना ॥१८॥

शब्दार्थ — अनबनि = अनबन; झगड़ा; बिगड़ाऊ; अनेक । जतन = यत्न; उद्योग; उपाय । ठाना = निश्चय किया ।

भावार्थ — ये सब सुख या ब्रह्मप्राप्ति के अनेक उपाय असत्य के जाल हैं । असत्य का प्रेमी असत्य की वासना रख कर असत्यभाव में ही निवास करता है ॥१७॥ हे शिष्य ! चेतनजीव भ्रमवश अपने आप को भूला है, इसलिए उसने मनःकल्पना और धोखे में अपना निवास करने का निश्चय कर रखा है ।

ताते यह पद नाहिंन थीरा । कल्पि कल्पि चौरासी फीरा ॥१९॥
हे शिष्य प्रथम देह हंसा की । तेहि देहते झाँईं झाँकी ॥२०॥

शब्दार्थ — यह पद = ब्रह्मपद । नाहींन = नहीं । फीरा = फिरा, फिरना । झाँकी = देखा ।

भावार्थ — अतएव ब्रह्मपद स्थिर नहीं है । उसकी कल्पना कर-करके तो जीव चौरासी में ही भटकेगा ॥१९ हे शिष्य ! जीव की जो सर्वोच्च मनुष्य की देह है, इसी से नाना कल्पना करके और अपनी कल्पना के प्रतिबिम्ब को देखकर जीव भटक रहे हैं ॥२०॥

विशेष — जब ब्रह्म जगत स्वरूप ही है, तब वह स्थिर कहाँ है ? ब्रह्म में तो सदैव उत्पत्ति-प्रलय की हलचल मानी गयी है ।

झाँईं बिंब देह की आभा । बसै तहाँ कोहं की दाभा ॥ २१ ॥
बिंबाकार भयो परचंडा । इच्छाते कीन्हों ब्रह्मंडा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ — बिंब = झलक । आभा = चमक; दृश्य । दाभा = दाभ; दर्भ; डाभ; अंकुरा । बिंबाकार = झलक, छाया ।

भावार्थ — मनुष्य जो कुछ ध्यान में देखता है वह अपनी ही कल्पना की परिछाईं, झलक एवं शरीर की चमक व दृश्य है । भूलवश उसी में 'मैं कौन हूँ' का अंकुर बसता है ॥२१॥ सूर्यमण्डल की आभा के समान यह बिंबाकार ज्योतिदर्शन प्रबल अज्ञान का कारण बना हुआ है । कहते हैं वह ब्रह्म ही अपनी इच्छा से ब्रह्माण्ड को रचा है ॥२२॥

विशेष — मनुष्य ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ध्यान धारण करता है। ध्यान में जो कुछ आता है सब तत्त्वों का प्रकाश एवं अपनी मनःकल्पना की प्रतिछाया व झलक है । परन्तु साधक सोचता है 'मैं कौन हूँ ?' क्या मैं वही ज्योति हूँ या शब्द हूँ ? "बसे तहाँ कोहं की दाभा" उसी दृश्य ही में मैं कौन हूँ का अंकुर बसता है । अर्थात उन्हीं दृश्यों को वह अपना स्वरूप मान लेता है ।

ध्यान में देखी गयी कल्पित ज्योति जो वस्तुतः विषय दृश्य है प्रबल ब्रह्म बनकर बैठी है ।

हे शिष्य याते ब्रह्माकारा । हंसदेह को प्रथम विकारा ॥ २३ ॥
सो प्रथमापद मिथ्या झाँईं । कैसे हंस दशाको पाई ॥ २४ ॥

शब्दार्थ — प्रथमापद = मनुष्य शरीर । प्रथम = मुख्य ।

भावार्थ — अतएव हे शिष्य ! मनुष्य देह में मुख्य दोष ब्रह्माकार की भावना है ॥२३॥ इस प्रकार सर्वोच्च मनुष्य शरीर में जीव मिथ्या धोखा एवं असावधानी में भूलता रहा, फिर वह विवेक की स्थिति को कैसे प्राप्त करे ॥२४॥

विशेष — मनुष्य देह ही कर्म भूमिका होने से यहीं से बंधन और मोक्ष के कार्य बन सकते हैं । जीव यहीं पर ब्रह्माकार या विषयाकार में अपने आप को भूलता है । विषयाकार में शरीर को अपना रूप समझता है तथा ब्रह्माकार में पूरा विश्व अपना रूप मानता है । ये दोनों भूल-भुलैया को छोड़कर जब सबका द्रष्टा सबसे भिन्न अपने चेतन पारख स्वरूप को समझ कर स्थित हो तभी हंसदशा की स्थिति मिल सकती है ।

१९—मनुष्य शरीर बंधन और मोक्ष दोनों की भूमिकायें हैं

शिष्य प्रश्न—१७

दोहा—ऐसे अमृतमय वचन सुनी शिष्य अति सुख पाय ।
बोले हो गुरु मर्म सब, जानेउँ तव प्रभाय ॥१७६॥

शब्दार्थ — प्रभाय = प्रभाव; शक्ति ।

भावार्थ — इस प्रकार सद्गुरु के अमृतमय वचनों को सुनकर शिष्य को अत्यंत सुख की प्राप्ति हुई; और वह बोला हे गुरुदेव ! आपके कृपाप्रभाव से मै सारा रहस्य जाना हूँ ॥ १७६॥

अब साहेब कछु शंका भई, कहो दीनप्रतिपाल ।
हंसदेह को बिंबते, झाँई संधि औ काल ॥ १७७॥

शब्दार्थ — हंसदेह = मनुष्य शरीर । बिंब = झलक; प्रतिबिंब । झाँई = ब्रह्म भावना । संधि = अपने से पृथक ईश्वरकी भावना । काल = कल्पना;देवी-देवता आदि ।

भावार्थ — हे दीनों के रक्षक स्वामी ! अब मेरे मन में कुछ शंका उठ खड़ी हुई है । उसका समाधान करने की कृपा करें । मनुष्य शरीर के प्रतिबिम्ब एवं झलक से ब्रह्मभावना, ईश्वरभावना तथा देवी-देवादि का भावनायें तथा कल्पनायें खड़ी हुई हैं ॥१७७॥

जेहि देहि की बिंबते, ये तो भये उपाध ।
सो अस्ति कैसे भयो, कहहु यथारथ साध ॥ १७८ ॥

शब्दार्थ — अस्ति = सत्य । साध = समाधान ।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! वास्तविक समाधान करके कहें, जिस मनुष्य शरीर से इतनी सारी उपाधियाँ खड़ो होती हैं, वह सत्यस्वरूप स्थिति का साधन कैसे हो सकता है ? ॥१७८॥

सदगुरु उत्तर—१७

दोहा—हे शिष्य अतिहि उपाधि जो, झाँई ते परकाश ।
दुतिया भासो याहिको, रूप बिंबकी आश ॥१७९ ॥

शब्दार्थ — दुतिया = दूसरा; ब्रह्म, ईश्वर। रूप = मनुष्य देह। बिंब = प्रतिबिंब; झलक।

भावार्थ — हे शिष्य ! जो झाँई एवं धोखा से अनेक काल्पनिक उपाधियाँ खड़ी हुईं; उसमें कारण है मनुष्यदेह में इस जीव को अपनी ही कल्पना के प्रतिबिम्ब एवं झलक में किसी ब्रह्म या ईश्वर का प्रतीत हुआ; इसी आशा में वह भटक गया ॥१७९॥

रूप है सो प्रतिबिंब नहीं, बसो सोई प्रतिबिंब।
ताते हे शिष्य रूप को, नाशिवंत है कीब ॥ १८० ॥

शब्दार्थ — रूप = मनुष्यदेह। बसो = मन में टिका; वासना हुई। नाशिवंत = नाशवान। कीब = की हुई; बनायी हुई।

भावार्थ — जो कल्याण साधना की भूमिका है वह मनुष्य शरीर प्रतिबिम्ब व धोखा नहीं है; अपितु उसमें जो वासना खड़ी हुई है वही प्रतिबिम्ब एवं धोखा है। अतएव हे शिष्य ! मनुष्य शरीर से उठी हुई एवं की हुई नाशवान कल्पनाओं को छोड़ो ॥१८०॥

विशेष—यद्यपि मनुष्य शरीर भी नाशवान है; तथापि उसका सदुपयोग किया जाय तो वह कल्याणप्रद है। परन्तु शरीर से उठे हुए भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना एवं भ्रम जीव के लिए बंधन है ! इन्हें त्यागना चाहिये।

शिष्य ने प्रश्न किया था कि जब मनुष्यशरीर से ही बंधनों की उपाधियाँ खड़ी होती हैं, तब वह कल्याणप्रद कैसे ? गुरु ने उत्तर दिया कि मनुष्यशरीर कर्म भूमिका होने से इसी में भूल और चेत दोनों के काम होते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्यशरीर का दुरुपयोग करना अर्थात उसके भास, अध्यास में फँसना बन्धन है। यदि उसका सदुपयोग किया जाय तो बन्धनों का विनाश होकर जीव का मोक्ष हो जाय।

अरिल छन्द—७

अस्ति हंस नास्ति रूप, उधमज प्रतिबिंब अहै।
झाँई संधि काल लै सो भ्रमको प्रकाश भौ ॥ १ ॥
ब्रह्मते विस्तार जगत, शिष्य सब जानहु तुम।
अस्ति बस्यो नास्ति माँहि ताते उजभास भौ ॥२॥
बिंब नास्ति झाँई नास्ति, संधि काल जगत नास्ति।
आदि मध्य अंत सर्व, नास्ति को तमास भौ ॥ ३ ॥
आशा बासा कल्पना सोऊ, नास्ति जानहु तुम।
सुबुद्धि शिष्य तेरी आशा बासा में, तू ही निरास भौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अस्ति = सत्य । नास्ति = असत्य । रूप = शरीर । उधमज = उत्पन्न । झाँई = धोखा । संधि = अपने से पृथक मान्यता । काल = कल्पना । उजवास = उपद्रव; दुःख । बिंब = झलक; ज्योति आदि । निरास = दूर करना; खंडन; विरोध अथवा निराश; हताश; दुखी ।

भावार्थ — चेतन सत्य है; शरीर नाशवान या असत्य है; ईश्वर, ब्रह्म, देवी, देवता तथा नाना कल्पना रूप प्रतिबिम्ब शरीर में मनःकल्पना से उत्पन्न हैं; और झाँई, संधि तथा काल को लेकर ब्रह्म की भावना खड़ी की है ॥ १ ॥ हे शिष्य ! तुम यह जानते हो कि कुछ लोगों ने ऐसी मान्यता बना रखी है कि 'जल से तरंग उत्पन्न होने के समान ब्रह्म से ही जगत उत्पन्न हुआ है ।' वस्तुतः सत्य चेतन अपने को भूलकर असत्य मनःकल्पना में निवास किया, इसीलिये यह भ्रम का उपद्रव हुआ ॥ २ ॥ वास्तव में बिम्ब, प्रतिबिंब, झाँई, संधि, काल रूप समस्त मानसदृश्य नाशवान या असत्य है और जगत की वस्तुयें भी नाशवान हैं । यह मनुष्य अपने जीवन के आरम्भ से मध्य और अंत तक सब असत्य का तमाशा या नाशवान मनोरंजन ही करता रहा ॥ ३ ॥ परन्तु चाहे शरीर, कुटुम्ब, ऐश्वर्य एवं भोगों की हो और चाहे अपने से पृथक कर्ता-धर्तादि या मान, बड़ाई की हो —आशा, वासना और कल्पनाओं को तुम व्यर्थ समझो । हे सुन्दर बुद्धिवाले शिष्य ! तू अपने से पृथक दृश्य-अदृश्य की आशा-वासना में पड़कर स्वयं अपने आप से दूर तथा दुखी हुआ है ॥ ४ ॥

कवित्त छन्द—८

समुझि देखु चित्त त्यागि नास्ति सुख जो अनित्य पागि ।
गुरु चरणन करु संगति, संत साधु की ॥ १ ॥
हो मिस्कीन, राखु निश्चय आकीन ।
तू तो जमापद बाकी, खर्च काहे अबादकी ॥ २ ॥
मन मनसा दोऊ, लौंडि निकारि डारो ।
मारो अहंकार तृष्णा कुबुद्धि कुवादकी ॥ ३ ॥
रूप हंस धार, ठहर कीजिये विचार ।
यार वफ़ादार दीनानाथ, दीनबंधु गुरु साधुकी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — पागि = आसक्त । मिस्कीन = कंगाल; अकिंचन; दीन; असहाय; तात्पर्य में विनम्र । आकीन = यकीन; विश्वास । जमापद = अविनाशि स्वरूप । बाकी = शेष; अपने आप । अबाद = आबाद; समृद्ध; निवास । मनसा = मन से उत्पन्न; इच्छा, संकल्प, कल्पना । लौंडि = लौंडी, दासी, टहलुई । कुवाद = गलत

कथन। यार=मित्र; प्रेमी; सहायक। वफ़ादार=वफ़ादार;वचनपालक; प्रीति, मित्रतादि का निर्वाह करने वाला; स्वामिभक्त।

भावार्थ — हे शिष्य ! समझो और देखो, जो तुम नाशवान अनित्य खानी-वाणी के सुखों में आसक्त हो रहे हो उसे हृदय से त्याग दो; और सद्गुरुचरणों में भक्ति तथा साधु-संतों की संगत करो ॥ १ ॥ सब स्थूल-सूक्ष्म भौतिक पदार्थों का अहंकार छोड़कर विनम्र हो जाओ, और निश्चय तथा विश्वास रखो तुम सबको छोड़ देने के बाद स्वतः शेष अविनाशी स्वरूप हो; फिर खर्च होने वाले मायिक नाशवान पदार्थों में तुम क्यों अपना निवास, अपनी समृद्धि या धन मानते हो ? ॥ २ ॥ मन की चंचलता तथा उसकी विषयइच्छा इन दो नौकरानियों को हृदयघर से निकाल दो; और अहंकार, तृष्णा, कुबुद्धि तथा गलत बातों को मार भगाओ ॥ ३ ॥ तत्पश्चात विवेकी का स्वरूप धारण करके तथा स्थिर होकर गंभीरता से सारासार का विवेक करो। मित्रता को निभाने वाले तुम्हारे परम मित्र, दीनों के नाथ, असमर्थों के बंधु सद्गुरु औरसंत हैं॥४॥

दोहा—शिष्य ब्रह्म सिद्धान्त मत, वेद बखाने सोय।
वेद मते जग सब चले, भले बुरे गुण जोय ॥ १८१ ॥

शब्दार्थ —मते = मत से, सिद्धांतानुसार।

भावार्थ — हे शिष्य ! जो ब्रह्म सिद्धान्त का मत है वेद उसी का वर्णन करते हैं। उसमें अच्छे या बुरे जो गुण हों वेदों के मत से ही जगत के सभी लोग प्रायः चलना चाहते हैं ॥ १८१॥

विशेष — यहाँ तो वेदों की बात है। इसी प्रकार बाइबिल, कुरान सभी तथाकथित ईश्वरीय नामधारी पुस्तकों के लिए समझ लेना चाहिये। इस विश्वास ने कि हमारी मूल पुस्तकों मे जो कुछ लिखा है सब शतप्रतिशत सत्य है समाज तथा व्यक्ति को बहुत पीछे धकेल दिया है। इसी अंधविश्वास के कारण लोग अपनी मान्य पुस्तकों की सड़ी-गली बातें भी छाती-पेटे लगाये रखना चाहते हैं; जो किसी प्रकार भी व्यक्ति तथा समाज के लिए हितकर नहीं हैं। यद्यपि यह भी बात सर्वथा गलत है कि पुरानी पुस्तकों में जो कुछ लिखा है, सब गलत है। मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी-परायी तथा नयी-पुरानी सभी पुस्तकों पर निष्पक्षता पूर्वक विवेक करे।

भलो होत है भलो लहि, ब्रह्मास्मि स्वरूप।
हे शिष्य देखु विचारिके, बिंबते हंता रूप ॥ १८२ ॥

शब्दार्थ — बिंब=प्रतिबिंब; आभा; झलक।

भावार्थ — मनुष्य की भलाई तो भली बातों को धारण करने में है। हे शिष्य ! विचार करके देखो, 'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ' जो यह माना है वह तो अपनी कल्पना की एक झलक या झाँई में 'मैं पना' का रूप धारण कर लिया है ॥१८२॥

चौकड़ी— १५

झाँई संधि काल का फेरा। बसै जीव निज नाहिंन हेरा ॥ १ ॥
मन मनसाके फंदे अरुझा। किंचित बिंब भास सों न सुरझा ॥ २ ॥

शब्दार्थ -- नाहिंन = नहीं। हेरा = खोजा। किंचित = थोड़ा; तुच्छ। सुरझा = सुलझा।

भावार्थ--जीव अपने स्वरूप के भूलवश झाँई, संधि तथा काल अर्थात धोखा, मानन्दी और कल्पना के ही चक्कर में वसते हैं; वे अपने स्वरूप की खोज नहीं करते ॥१॥ ये जीव मन तथा मनसे उत्पन्न वासना, मानन्दी एवं इच्छा में उलझे हुए हैं। अपने मनःकल्पित तुच्छ प्रतिबिम्ब एवं भास से सुलझ कर नहीं निकलते ॥२॥

दोहा — भासो जीवरूप तेहिं. बिंबते अनबनि रूप।
हे शिष्य प्रथमा चरण, नास्ति ब्रह्म सो भूप ॥१८३॥

शब्दार्थ -- जीवरूप = मनुष्य जीव। अनबनि = अनबन; झगड़ा; नाना; अनेक। प्रथमाचरण = मनुष्य देह। अन्य तीन चरण क्रमशः पशु, अण्डज और उष्मज हैं; सब मिलकर चौरासी का रूप है।

भावार्थ — मनुष्य जीव को ही अपनी मनःकल्पना के प्रतिबिंब व झलक ईश्वर, ब्रह्म, देवी, देवता, भूत, प्रेत अनेक रूपों में भासित हुए। हे शिष्य ! सर्वोच्च मानव जो ब्रह्म असत्य है उसे विश्वपति मान रखा है ॥१८३॥

प्रत्यक्ष गमनंत यह, नास्ति सनेही नास्ति।
वंदनिये सब जालके, हंस प्रगट पद आस्ति ॥१८४॥

शब्दार्थ -- गमनंत = गमन करता है, भटकता है। यह = मनुष्य। नास्ति = असत्य; झूठ। वंदनिये = वंदनीय; व सम्मान करने योग्य। आस्ति = अस्ति, है।

भावार्थ -- प्रकट है कि मनुष्य वासनावश भटकता है। यह झूठे का प्रेमी बन कर झूठा हो रहा है। वे ही पुरुष वंदना व सम्मान करने योग्य हैं जो विवेकी बन कर सब जालों को तोड़ डाले हैं और प्रत्यक्ष स्वरूपस्थिति में विराजमान हैं ॥१८४॥

सोरठा -- हे शिष्य अस्तिस्वरूप, नास्तिरूप गुणमय जगत।
छितराने सब रूप, ब्रह्म सनेही जीयरा ॥ २० ॥

शब्दार्थ—अस्तिस्वरूप = सत्यस्वरूप। नास्तिरूप = असत्य रूप; नाशवान। छितराने = बिखर गये।

भावार्थ — हे शिष्य ! चेतन सत्य स्वरूप है; और सत, रज, तम गुणों से पूर्ण संसार के पदार्थ नाशवान एवं परिवर्तनशील हैं। ब्रह्म के प्रेमी जीव अपने को ब्रह्म तथा जगत रूप में अपने को बिखरा हुआ मान लिये ॥२०॥

विशेष -- परिवर्तनशील संसार से चेतन पृथक तथा निर्विकारी है; परन्तु अपने आपको चराचर व्यापक ब्रह्म मानकर विकारी जगत का रूप बन गया।

२०-हंसरहनी एवं जीवन्मुक्ति स्थिति के आचरणों का विस्तृत वर्णन

शिष्य प्रश्न-१८

दोहा--साहेब दीनदयाल प्रभु, मैं जानेउँ तव भेव।
बिंब प्रगट झाँई भई, झाँई ते ब्रह्मदेव ॥ १८५॥

शब्दार्थ — भेव = रहस्य, मर्म। बिंब = प्रतिबिंब, छाया, झलक। झाँई = धोखा, असावधानी।

भावार्थ -- हे साहेब ! हे दीनों पर दयालु स्वामी ! मैंने आपके कथन का रहस्य समझा कि मनुष्य की अपनी कल्पना से मनमें एक प्रतिबिंब खड़ा हुआ और उसे देख कर मनुष्य को धोखा या असावधानी हुई तथा उसे ही वह ब्रह्मदेव मान लिया ॥१८५॥

करुणारवन कृपाल तन, जानि परो मोहि येह।
हंस रूप जानेउँ भले, मिथ्या मनको नेह ॥१८६॥

शब्दार्थ — करुणारवन = करुणारमण, करुणा में रमने वाले, करुणास्वभावप्रिय। कृपालतन = कृपा की देह, कृपास्वरूप, अतिशय कृपालु।

भावार्थ — हे करुणास्वभावप्रिय कृपामूर्ति गुरुदेव ! मुझको यह ज्ञान प्राप्त हो गया। मैंने अपने चेतन स्वरूप को भलीभाँति समझ लिया कि वह समस्त विश्वप्रपंच, जड़वर्ग से पृथक, व्याप्य-व्यापक, कारण-कार्य भाव से रहित शुद्ध है, और यह भी समझ लिया कि मन तथा मनसे उत्पन्न हुए सारे भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना का मोह व्यर्थ है। ॥ १८६ ॥

अब कहिये प्रभु हंसको, प्रथमा रूप विहार।
खानी वाणी कौनसी, कौनसी वस्तु अहार ॥१८७॥

शब्दार्थ —हंस = चेतन, विवेकी। प्रथमारूप = सर्वोच्च मानवशरीर। विहार = घूमना-फिरना, आनन्द, सुखप्रद या कल्याणप्रद आचरण। अहार = आहार, भोजन।

भावार्थ — हे प्रभु ! अब यह बतलाने की कृपा करें कि सर्वोच्च मानव शरीर में विवेकी पुरुषों का कल्याणप्रद आचरण किस प्रकार रहता है ? उनकी खानी और वाणी कौन-सी रहती है तथा वे कौन-सी वस्तु का आहार करते हैं ? ॥ १८७ ॥

विशेष — शिष्य यहाँ यह प्रश्न कर रहा है कि जो व्यक्ति अपने सर्वोच्च मानव-जीवन को सफल बना रहे हैं, जो हंसवत सारासार के विवेकी बनकर स्वरूपस्थिति की साधना में चल रहे हैं उनका व्यवहार कैसा रहता है ?

कबीरपंथ, मुख्यतः पारखसिद्धान्त के खानि और वाणी पारिभाषिक (लाक्षणिक) शब्द हैं, जो बंधन के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। खानि का अर्थ है उत्पत्ति स्थान या परिवार, धन, मकान, शरीरादि मोटी माया, और वाणी का अर्थ है मान-बड़ाई, मनसे कल्पित तथा केवल शब्दों से उच्चरित ईश्वर, ब्रह्म, देवी, देवता, भूत, प्रेतादि।

खानी और वाणी का स्वरूपतः त्याग जीवनपर्यन्त नहीं हो सकता। केवल उनके बन्धनप्रद अंशों का ही त्याग हो सकता है, और उन्हीं का त्याग करना अभिप्रेत भी है।

खानी और वाणी का सर्वथा त्याग इसलिये नहीं हो सकता कि अपना तथा साथियों के शरीर, भोजन, वस्त्र, द्रव्य, स्थान, मकान, मंदिर, जमीन आदि 'खानी' के भीतर हैं तथा शुद्ध व्यवहार एवं निर्णय के वचन भी 'वाणी' के भीतर हैं; और इनकी आवश्यकता जीवनपर्यन्त है। अतएव खानी और वाणी के बन्धनप्रद अंशों का त्याग करके कल्याण में सहायक अंशों को विवेकी भी ग्रहण करते हैं। इसीलिये शिष्य पूछता है कि विवेकवान पुरुष खानी और वाणी के किस अंश का उपयोग करते हैं तथा वे कौन आहार करते हैं। यहाँ आहार का अर्थ साधारण भोजन नहीं है, अपितु ज्ञान से है अर्थात वे कौन-सा ज्ञान ग्रहण करते हैं ?

सद्गुरु उत्तर–१८

सोरठा — सुन शिष्य हंसा देह, जीवरूप धीरता युक्त।
ताको व्यवरा येह, अहै यथा अनुक्रम शुक्त ॥२१॥

शब्दार्थ — **हंसा देह** = हंस की देह, विवेक की भूमिका, मानवशरीर। **व्यवरा** = ब्योरा, विवरण, एक-एक बात को अलग-अलग कहना। **अनुक्रम** = क्रमबद्ध, सिलसिलेवार।

भावार्थ — हे शिष्य ! उस विषय को सुनो जिस प्रकार सर्वोच्च मानवशरीर एवं विवेक की भूमिका में जीवस्वरूप चेतन धैर्य, दयादि संयुक्त विहरण करता है। यहाँ उसका विवरण यथार्थ और क्रमबद्ध है ॥ २१ ॥

दोहा — हंस अस्तिता निजमर्म, रूप तद्रस्याकार।
सेवक एक अनेकको, नहीं तहाँ संचार ॥१८८॥

शब्दार्थ — **हंस** = चेतन, विवेकी। **अस्तिता** = सत्यता। **मर्म** = भेद, रहस्य। **तद्रस्याकार** = तत् + रस्य + आकार, **तत्** = उस, चेतनस्वरूप, **रस्य** = रसपूर्ण, **आकार** = स्वरूप, इस प्रकार 'तद्रस्याकार' का अर्थ हुआ 'उस अपने चेतनस्वरूप के भावरस में पूर्ण'। **एक** = ब्रह्म। **अनेक** = देवी-देवादि। **संचार** = प्रवेश।

भावार्थ—वे विवेकी पुरुष अपनी सत्यता रूपी भेद को समझकर सदैव उस अपने चेतनस्वरूप के भावरस में ही पूर्ण रहते हैं। उस स्वरूपस्थिति एवं पारखस्थिति में उस

भाव का प्रवेश नहीं हो सकता जो किसी कल्पित ब्रह्म या देवी-देवता का दास बनाता हो ॥ १८८ ॥

विशेष — विवेकी पुरुष अपने स्वरूप के भेद को तत्त्वतः जानते हैं, वह है सत्यता। अर्थात अपना स्वरूप सत्य एवं एकरस है। उसी एकरस चेतनस्वरूप के भाव-रस में वे सदैव निमग्न रहते हैं। वे अन्य की अपेक्षा से रहित स्वयं पूर्णकाम एवं तृप्त होते हैं।

हंस अस्ति जो जमा विधि, जमा हंसपद थीर।
तेहि पद प्रेम प्रवाहते, तारण गुरुमत धीर ॥१८९॥

शब्दार्थ—जमा = अविनाशी। विधि = कथन, मन्डन। हंसपद = चेतन की स्थिति। तेहि पद = उस स्वरूपस्थिति। तारण = तारने वाला। धीर = धैर्यवान।

भावार्थ—उपर्युक्त कथनानुसार जो सत्य एवं अविनाशी चेतन है वह अपने अविनाशी स्वरूप में स्थित हो जाता है, अर्थात दृश्य को छोड़कर वह अपने आप शांत हो जाता है। उस स्वरूपस्थिति के अखण्ड प्रेमप्रवाह के सम्बल से वह धैर्यवान विवेकी पुरुष दूसरे को बन्धनों से छुड़ाकर उन्हें संसार सागर से तारता है और गुरुसिद्धान्त का उपदेश करता है ॥ १८९ ॥

जमा हंस बल थीर सो, बिंबसे भासै और।
और भासते ठौर गई, भूलि भटकि बहु दौर ॥१९०॥

शब्दार्थ — सो = विवेकी पुरुष। बिंब = प्रतिबिंब; भ्रम। ठौर = स्वरूप स्थिति।

भावार्थ — वह विवेकी पुरुष ज्ञानशक्ति से अपने अविनाशी चेतनस्वरूप में स्थित हो जाता है। परन्तु जिसको बोध नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भ्रमवश अपने मनःकल्पना के प्रतिबिम्ब एवं आभास से कुछ अन्य ही प्रतीत होता है। अन्य भास, चमक एवं दृश्य खड़ा होने से ही मनुष्य की अपनी स्वरूप स्थिति खो जाती है, और वह अपने स्वरूप को भूलकर भटकता तथा बहुत वासनाओं में दौड़ता रहता है ॥ १९० ॥

सो नाशक है कल्पना, कल्पित नाना जाल।
जाल मध्ये बेहाल जीव, भये अनेकन हाल ॥१९१॥

शब्दार्थ — सो = वह, उपर्युक्त कल्पना। बेहाल = अवदशा। हाल = दशा।

भावार्थ — वह कल्पना स्वरूपस्थिति का विध्वंसक है, ऐसे बहुत बंधनों की कल्पना जीव ने कर रखा है। उन्हीं जालों एवं बंधनों में जीव परेशान हो रहा है। अब तक उसकी अनेक दशायें हो चुकी हैं ॥१९१॥

जाल मध्ये बहुते जीया, त्राहि त्राहि बिलखंत।
सो गुरु पारख लहत ही, नाशक नास्ति लहंत ॥१९२॥

शब्दार्थ — **जीया** = जीव । **त्राहि त्राहि** = बचाओ-बचाओ । **बिलखंत** = बिलखना; रोना; पीड़ित होना । **नाशक** = नाशकरने वाला; अज्ञान; कल्पना । **नास्ति** = नष्ट । **लहंत** = प्राप्त; हो जाना ।

भावार्थ — असंख्य जीव अपनी कल्पना से बनाये हुए बन्धनों में बधे पड़े यत्र-तत्र बचाओ-बचाओ कहकर रोते-तड़फते हैं । परन्तु अधिकारी व्यक्ति को गुरुका यथार्थ पारख बोध प्राप्त होते ही स्वरूपस्थिति का नाशक वह अज्ञान एवं कल्पना-बन्धन स्वयं नष्ट हो जाते हैं ॥ १९२ ॥

सवैया छन्द—९

आनंद महल अवास सोहावन. भौन साधु समाज बिहारा ॥१॥
प्रेम प्रत्यक्ष सो स्वच्छ अलंकृत धीरज दया अरु शील विचारा ॥२॥
वीर स्वभावसों नष्ट प्रमाण सो वासक राम सो भूमि अधारा ॥३॥
ये गुण लक्षण लक्षित तेही, गुरुपद श्रेष्ठ न आन अचारा ॥४॥

शब्दार्थ — **अवास** = आवास, वासस्थान । **सोहावन** = सोहावना, सुन्दर । **भौन** = भवन, भाव, होना, उत्पन्न होना । **बिहारा** = विहार, आनन्द क्रीड़ा, कल्याण-प्रद आचरण । **अलंकृत** = अलंकार युक्त, भूषित । **नष्ट प्रमाण** = नष्ट सबूत, मिथ्या प्रमाण, मिथ्यामाप । **रामभूमि** = चेतन स्वरूप । **लक्षित** = लक्षणवाला, चिन्हवाला ।

भावार्थ — वे विवेकी पुरुष संसार के विषयों से विरक्त होकर संतसमाज में शुद्ध संस्कार रूपी नया जन्म ग्रहण करते हैं तथा स्वरूपस्थिति रूप अनन्दमहल के शोभायमान वासस्थान में विहार करते हैं ॥१॥ वे प्रत्यक्ष उपास्य संतगुरुजनों में प्रेम रखते हैं तथा स्वच्छ आभूषण धैर्य, दया, शील और विचार से सुशोभित होते हैं ॥२॥ वे त्रुटियों, दोषों, गल्तियों, अंधविश्वासों को दूर करने में वीरस्वभाव के होते हैं । वे मिथ्याप्रमाणों एवं गलत मापदण्डों की दोहाई नहीं देते । वे रामभूमि रूपी आधार में निवास करते हैं; अर्थात वे अपना आधार अपना चेतनस्वरूप ही समझते हैं और अपने आप में स्थित रहते हैं ॥ ३ ॥ जो उपर्युक्त गुण-लक्षण से सुशोभित हैं वही महान गुरुपद एवं स्वस्वरूप में स्थित है। उनका स्वरूपस्थिति को छोड़कर अन्य लक्ष्य नहीं होता॥४॥

ताहि जमामों थीर पद, बिंबते भिन्नाकार ।
बोध सोई पद गुरु है, अबोध शिष्य सो विहार ॥१९३॥

शब्दार्थ — **भिन्नाकार** = भिन्न आकार, भिन्नस्वरूप । **सो विहार** = उसआचरण ।

भावार्थ — उस अविनाशी पद में जीव की स्थिति होती है जो बिंब, प्रतिबिंब, आभास दृश्य से पृथक स्वरूपवाला है उस गुरु-शिष्य के आचरण में निर्णय यह है कि यथार्थज्ञान ही गुरुपद, गुरुस्थिति एवं गुरुदर्जा है और अज्ञानदशा शिष्यदर्जा है ॥१९३॥

विशेष — यहाँ यह बात मार्के की है कि अबोधदशा शिष्यत्व है और बोध दशा गुरुत्व है। यहाँ बोध का अर्थ केवल जानकारी नहीं है; अपितु राग-रहित स्वरूप स्थिति दशा है। भावार्थ यह हुआ कि जो सब आसक्तियों को त्यागकर स्व-स्वरूप में स्थित हो गया है वह गुरुरूप है, जब तक ऐसी स्थिति पर नहीं पहुँचा तब तक शिष्यत्व है। वैसे गुरु-शिष्य मर्यादा देह भाव में जीवनपर्यन्त रहता है।

गुरु शिष्य बोधित बोधना, हंसन दुःख मिटाव।
हंस लहै शिष्य सुख जोई, सुनिये सोई प्रभाव ॥१९४॥

शब्दार्थ — बोधित=बोधप्राप्त। बोधना=समझाना-बुझाना; जताना। हंसन=जिज्ञासु। प्रभाव=प्रताप; सामर्थ्य।

भावार्थ — गुरु वह है जो ज्ञान को प्राप्त है और शिष्य वह है जिसे गुरु बोध देते एवं सत्य समझाते हैं। इससे जिज्ञासुओं तथा मुमुक्षुओं का दुःख नष्ट होता है। हे शिष्य! जिससे व्यक्ति जीवन्मुक्तिसुख को प्राप्त करे उस महत्व की बात को सुनो ॥१९४॥

अस्ति आत्माराम यह, नास्ति सनेही दीन।
गुरुमुख मिटे सो दीनता, काल कला होय छीन ॥१९५॥

शब्दार्थ — अस्ति=सत्ता, सत्य। आत्मा=अपना, स्वयं। राम=चेतन। काल=कल्पना। कला=गुण।

भावार्थ — यह आत्माराम अर्थात स्वतः चेतन सत्य है; परन्तु यह असत्य व नश्वर पदार्थों का स्नेही बनकर विवश बना है। यह विवशता गुरुमुख वाणियों को सुन तथा ज्ञान को धारण कर मिट जाती है और कल्पना के गुण विनष्ट हो जाते हैं ॥१९५॥

कला काल छूटे जो सुख, सो सुख हंस विहार।
गुरु शिष्य को संवाद शुभ, सोई वाक्य विचार ॥१९६॥

शब्दार्थ — कला काल=कल्पना के गुण या स्वभाव।

भावार्थ—कल्पना के स्वभाव छूट जाने पर जो स्थिरवृत्ति का सुख होता है यही हंस आचरण या हंसविहार का सुख है। अतएव गुरु-शिष्य के कल्याणप्रद सम्वाद से निर्धारित यथार्थ वचन का विचार करो जिससे कल्पनाओं का अंत हो॥ १९६ ॥

विशेष — कल्पनारहित स्थिरवृत्ति ही जीवन्मुक्ति का सुख है। यही हंसविहार का आनन्द है।

गुरुसेवा अरु साधुकी, देहे शिष्य तेहि होय।
सोई कृपा विहार है, शिष्य लेहु भल जोय ॥१९७॥

शब्दार्थ—देहे=देह से, तन-मन से। शिष्य तेहि होय=उसी का नाम शिष्य है।

भावार्थ — जो अपने तन-मन से सद्‌गुरु और संतों की सेवा करता है, उसी का नाम शिष्य है। (जो बोध दे उसका नाम सद्‌गुरु है) शिष्य पर वही उनका कृपा का आचरण है। हे शिष्य ! उसको भलीभाँति धारण करो ॥ १९७ ॥

साधु समागम प्रेम विधि, कथन गुणन समूह।
निछावर करु कल्पना, ब्रह्म अहंता जूह ॥१९८॥

शब्दार्थ — निछावर=त्याग। जूह=यूथ, समूह, झुंड।

भावार्थ — संतों का सत्संग तथा उनसे विधिपूर्वक प्रेम करो, और उनके सारे कथन और सद्‌गुणों के समूह को धारण करो। और चराचर व्यापक ब्रह्म होने का अहंकार तथा कल्पनाओं के समूह का सर्वथा परित्याग करो ॥ १९८ ॥

ऐसे आहि तहाँ हंस गुरु, भाखत हंसन ज्ञान।
सो विहार गुरुशिष्य को, प्रत्यक्ष कियो बखान ॥१९९॥

शब्दार्थ — भाखत=भाषण करते हैं। विहार=आनन्द, आचरण।

भावार्थ — उपर्युक्त विवेक सम्पन्न पुरुष हंस एवं विवेकी और सदगुरु हैं। वे अन्य मुमुक्षुओं के उद्धार के लिये भी यथार्थ ज्ञान का भाषण करते हैं। यह ज्ञान का लेना-देना ही सद्‌गुरु और शिष्य का पारस्परिक आनन्द व शुभ्र आचरण है, जिसका स्पष्ट वर्णन मैंने कर दिया है ॥ १९९ ॥

मन माया कृत गुण गणन, श्वान विष्ठवत त्याग।
अप्रमेय सुख ब्रह्ममें, भूलि न इन्ह अनुराग ॥२००॥

शब्दार्थ — माया=धोखा। गणन=समूहों। अप्रमेय=जिसका माप न हो सके, बे-हद, बे-हिसाब, अनंत। अनुराग=प्रेम।

भावार्थ — मन और मन के धोखासे निर्मित कल्पना समूहों तथा मायावी भोगों को श्वानविष्ठवत त्याग करो, और कल्पित ब्रह्म में जो अनन्त-सुख मान रखा है भूलकर भी इसनें प्रेम न करो ॥ २०० ॥

विशेष — इस बात की कई बार सावधानी करा दी गयी है कि ब्रह्मवादियों के परिभाषानुसार ब्रह्म चेतनस्वरूप न रहकर चराचर व्यापक जड़-चेतन अभिन्न विकारी विश्व बन गया है ; अतएव ब्रह्म शब्द के मोह में पड़कर जो उसमें अनन्त सुखकी आशा करेंगे वे निराश ही होंगे।

हे शिष्य साधु समाजमें, अहै प्रत्यक्ष विहार।
अनुमानी बहु नास्ति मत, बहे घोर अंधार ॥२०१॥

शब्दार्थ — प्रत्यक्ष विहार=नजरो-नजर जीवन्मुक्तिसुख। अनुमानी=अनुमान या अटकल-बाजी करने वाले भ्रमिक।

भावार्थ -- हे शिष्य ! विवेकी संतों के समाज में धारणापूर्वक चलने से नजरो-नजर जीवन्मुक्ति सुख है। परन्तु जो अनेक अनगढ अटकलें लगाने वाले भूले लोग हैं वे असत्य मत के घोर अंधकार-धारा में बह रहे हैं ॥ २०१ ॥

शिष्य अस्तिपद प्रगट यह, गुरुमुख जानहु सोय ।
ध्यान अनुमाने ब्रह्म सुख, कहबे मात्रित होय ॥२०२॥

शब्दार्थ -- मात्रित = मात्र ।

भावार्थ — हे शिष्य ! सत्यस्वरूप तुम्हारा स्वयंप्रत्यक्ष चेतन है, उसे गुरुमुख वचनों द्वारा जानो। और अनुमान का ध्यान करके जो ब्रह्मसुख माना है, वह तो कहने मात्र का है॥ २०२ ॥

मंगल सूरति साधुगुरु, सो सब सुखकी खान ।
ताहि त्याग बहुतक बहे, ब्रह्मसिंधु सुख मान ॥२०३॥

शब्दार्थ — सबसुख = जीवन्मुक्तिसुख । खान = खजाना ।

भावार्थ — विवेकी संत-गुरु कल्याण की मूर्ति और जीवन्मुक्तिसुख के खजाना हैं। बहुत भोले लोग उनकी शरण को छोड़कर और कल्पित ब्रह्मसमुद्र को सुखरूप मानकर मनःप्रवाह में बह रहे हैं ॥ २०३ ॥

विशेष — तात्पर्य यह है कि विवेकी सद्गुरु संतजन जीवन्मुक्तिसुख में स्वयं विचरते हैं और अन्य अधिकारी जिज्ञासुओं को बोध देकर उस सुख प्राप्ति के योग्य बनाते हैं। परन्तु भोले लोग ब्रह्मको सुखसमुद्र मानकर भटकते हैं।

ये नहिं जानहि जीयरा, हौं को को यह आहि ।
साधु समागम त्यागिके, परे चौरासी माँहि ॥२०४॥

शब्दार्थ — समागम = संगति ।

भावार्थ — बहुत जीव यह नहीं जानते कि मैं कौन हूँ तथा यह दृश्य क्या है ? वे संतों की संगत छोड़कर चौरासी के कर्म जाल में पुनः जा पड़ते हैं ॥२०४॥

अनबनि जतन नसायके संग्रह ब्रह्म करेह ।
मन माया संयुक्त मिलि, धरे अनेकन देह ॥२०५॥

शब्दार्थ -- अनबनि = अनेक । नसाय के = लय करके । संग्रह = एकीकरण । मनमाया = मनःसंकल्प; अनेक होने का संकल्प ।

भावार्थ — यह भूला जीव अनेक यत्नोंसे सबका लय करके समस्त विश्व का ब्रह्म में एकीकरण किया; परन्तु अनेक होने के संकल्प से संयुक्त होने के कारण पुनः-पुनः एक से अनेक होकर देहें धारण करता रहा ॥२०५॥

ऐसो मत जग विदित है, बहु निर्णय यहिकेर।
लखै जो गुरुमुख धीर धरि, मिटै चौरासी फेर ॥२०६॥

शब्दार्थ — ऐसो मत = ब्रह्मवाद। निर्णय = कथन।

भावार्थ -- इसप्रकार ब्रह्मवाद का मत संसार में अधिकांशतः प्रकट है। इस मत का अनेक प्रकार से अनेक विद्वानों द्वारा कथन किया गया है। परन्तु जो व्यक्ति पारखी सद्‌गुरु की वाणियों को समझ कर और धैर्यधारण करके गंभीरतापूर्वक उक्त ब्रह्मवाद का निरीक्षण करेगा, उसका भ्रम उड़ जायगा; और चौरासी का चक्कर मिट जायगा॥ २०६॥

विशेष — अनेक विद्वान एक दूसरे की देखा-देखी पोथी-पर-पोथी रचते चले गये हैं कि एक ब्रह्म ही में जगत के उत्पत्ति, स्थिति और लय होते हैं। फिर उसी ब्रह्म में जीव को स्थित होने की भी बात बतायी है। उन सबों में यह किसी ने विचार नहीं किया कि जो ब्रह्म स्वाभाविक उत्पत्ति-प्रलय का स्वरूप है वह मुक्त का स्वरूप कैसे हो सकता है? अतएव मोक्षप्राप्ति के लिए जगत और ब्रह्म दोनों का अध्यास छोड़ना आवश्यक है।

हंस विहार सो साधु संग, गुरु निर्णय लौलीन।
कला काल लागै नहीं, पारख दृष्टि प्रवीन ॥२०७॥

शब्दार्थ -- हंस = जिज्ञासु या मुमुक्षु। विहार = आनन्द; ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य में निमग्नता। **प्रवीन** = प्रवीण, निपुण।

भावार्थ--जिज्ञासु एवं मुमुक्षु संतो की संगत में ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य में विहार करते हैं; वे सदैव सद्‌गुरु के निर्णय वचनों में ध्यानमग्न रहते हैं। उन परीक्षा-दृष्टि में निपुण हंसों को अज्ञान एवं कल्पना के विकार नहीं लगते॥ २०७॥

मन वच कर्म गुरु साधुकी, आज्ञासा समुहाय।
द्रव्य जुरै रक्षै तिन्हैं, वस्त्र अन्न जल प्याय ॥२०८॥

शब्दार्थ—समुहाय—समुहाना; सामने होना; आगे होना।

भावार्थ—जिज्ञासुओं तथा भक्तों का कर्तव्य है कि मन, वाणी और कर्म से सद्‌गुरुसंतों की आज्ञा का पालन करने में सदैव सामने रहे (मुख न छिपावे)। यदि अपने पास धन हो तो उसके द्वारा उन संत-गुरुजनों को वस्त्र, भोजन तथा जल देकर उनके शरीर की रक्षा करे॥ २०८॥

विशेष—मन, वाणी तथा कर्म से सद्‌गुरु-संतों की आज्ञा बजाने में सदैव आगे रहना चाहिये, मुख नहीं छिपाना चाहिये। यह बिलकुल सच है। परन्तु ध्यान रहे! इस उपदेश का दुरुपयोग करने वाले कितने ही गुरु-साधु नाम के वेषधारी हैं जो स्वयं गुरु और साधु के आचरण से रहित हैं; और वे हर प्रकार से अपने शिष्यों, भक्तों व

गृहस्थों से सेवा करवाना चाहते हैं। किसी के आनाकानी करने पर वे यही दोहाई देते हैं कि साधु-गुरु की आज्ञा बजानी चाहिये और उनकी हरप्रकार से सेवा करनी चाहिये। साधु-गुरु का काम है निष्काम रहना, और शिष्य-भक्त का काम है उनकी यथाशक्ति सेवा तथा आज्ञापालन करना।

हे शिष्य उत्तम शिष्य यह, जिन्ह कीन्हा परमान।
भक्ति सोई अधिकारपद, मानुष सो बुद्धिमान ॥२०९॥

शब्दार्थ — परमान=प्रमाण; विश्वास।

भावार्थ — हे शिष्य ! उत्तम शिष्य वही है जो उक्त निर्णयवचनों का महत्त्व समझता एवं उनपर विश्वास करता है। वही भक्तिपद का अधिकारी है और वही बुद्धिमान मनुष्य है॥ २०९॥

विशेष — वही सर्वोत्तम शिष्य, भक्तिपद का अधिकारी तथा बुद्धिमान मनुष्य है जो विवेक-वैराग्य सम्पन्न, निष्प्रपंची, निष्कामी सद्गुरु-संतों का मन, वाणी, कर्म से आज्ञाकारी, बोध-वैराग्यसम्पन्न तथा सेवा-परायण है।

हमहूँ हे शिष्य यह कर्म, कीन्हों गुरु अभ्यास।
सो तोही ब्यवरा भाखेउँ, हती वस्तु जो पास ॥२१०॥

शब्दार्थ — ब्यवरा=ब्योरा; विवरण। हती=थी। वस्तु=ज्ञान, भक्ति आदिका अनुभव।

भावार्थ — हे शिष्य ! मैं भी प्रथम सद्गुरु के पास रहकर उनके आज्ञा-पालन, सेवा, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि का अभ्यास दीर्घकाल तक किया हूँ। वह मेरे अपने जीवन में उतारा हुआ अनुभव जो मेरे पास था उसका विवरण मैं आज तुम्हारे लिये किया हूँ ॥२१०॥

विशेष — वस्तुतः आगे चलकर सच्चा सद्गुरु वही बनता है जो पहले अपने में सच्चे शिष्यत्व का आचरण उतारा हो।

वंदन चरणामृत गहन महाप्रसादी पाय।
मिष्ट वचन आनन्दयुत, पोषण विधि सब लाय ॥२११॥

शब्दार्थ — चरणामृत=वह जल जिसमें सत-गुरु के चरण के अंगूठे से स्पर्श कराया गया हो। गहन=ग्रहण। महाप्रसादी=वह बचा हुआ भोजन जो किसी संत-गुरु-द्वारा खाया गया हो। पोषण=पालन; सहायता देना।

भावार्थ — विवेक-वैराग्य-सम्पन्न संत-सद्गुरु की वन्दना, बन्दगी व प्रणाम करो, उनका चरणामृत ग्रहण करो तथा उनका महाप्रसाद पान करो और उनसे प्रसन्नता-पूर्वक मीठा वचन बोलो ये सभी अंग सब प्रकार से तुम्हारी भक्ति को सहायता देकर तुम्हारे परमार्थ मार्ग को दृढ़ करेंगे ॥२११॥

विशेष— वैष्णव, कबीरपंथ, वेदान्त आदि के नाना सम्प्रदायों में चरणोदक तथा महाप्रसाद का बहुत बड़ा महत्त्व माना जाता है। परन्तु अनेक सम्प्रदायों में इसका दुरुपयोग हो रहा है। कोई संत-गुरु आये तो उनके पैर धोकर तथा उनका जूठा भोजन लेकर लगे सबको बाँटने। तुम्हारे लिये जो चरणोदक हो सकता है वह दूसरे के लिये एक अंश आक्सीजन तथा दो अंश हाइड्रोजन मिला हुआ साधारण पानी है। जो एक के शारीरिक रोग के कीटाणुओं को दूसरे के शरीर में पहुँचाने वाला होने से उसे त्याज्य है। इसी प्रकार तुम्हारे लिये जो महाप्रसाद है वही दूसरे के लिये रोग बढ़ाने वाला त्याज्य जूठा है।

कितनी जगह तो साधुओं के भण्डारों में अच्छे संतों के साथ "ऐरे-गैरे-पच-कल्यानी" वेषधारियों के भी चरणोदक तथा जूठन बटोरते जाते हैं और उसे लोग बाँट करके खाते हैं जो सर्वथा अनुचित है। कितने समाज में तो साधु-गृहस्थ सबका चरणधोवन इकट्ठा करके सब बाँटकर पीते हैं।

कितने गुरु, साधु तथा महंत नामधारी लोग अपना चरणजल तथा जूठन को भक्तों, गृहस्थों तथा शिष्यों को पिलाने-खिलाने के लिये बे-ताब एवं आतुर रहते हैं। यदि कोई उनका चरणोदक व जूठन न ले तो वे दुखी हो जाते हैं तथा भक्त-जिज्ञासुओं को श्रद्धाभक्ति-हीन समझते हैं।

चरणामृत व महाप्रसाद मुख्यसद्गुरु या किसी महानसंतपुरुष का ही लिया जाना चाहिये, वह भी केवल व्यक्तिगत एवं अपने लिए उसे लेकर दूसरे को बाँटना सर्वथा गलत है। जो संतगुरु जिस समय चरणामृत या महाप्रसाद न दें तो श्रद्धालु को हठ नहीं करना चाहिये। जिनके शरीर में छूत का रोग हो उन्हें अपने चरणोदक तथा जूठन किसी को भी नहीं देना चाहिये।

वस्तुतः विवेकी सद्गुरु-संतों के चरणों में श्रद्धा रखना तथा उनका दिव्य आचरण अपने में धारण करना, यही उनका मुख्य चरणोदक लेना है तथा उनकी निर्णय वाणियों को स्वीकार करना उनका मुख्य महाप्रसाद लेना है।

(२१) शुभ लक्षण युत पारखस्थिति और द्रष्टा पर विस्तृत विवेचन

शिष्य प्रश्न--१९

सोरठा----कहेउ यथारथ भेव, हे साहेब अशरण शरण।
हंस विहारन देव, हंस कीन्ह तारण तरण ॥२२॥

शब्दार्थ — भेव = भेद; रहस्य। हंस विहारन = मुमुक्षु आचरण।

भावार्थ — हे आश्रयहीन को आश्रय देने वाले स्वामी! मुमुक्षु आचरण के

सारे भेद का यथार्थ स्वरूप बतला कर उन्हें दूसरे को तारने तथा स्वयं को तर जाने वाला देव बना दिये ॥ २२ ॥

अब गुरु कहिये विचार, हंस दृष्टिका मोहि प्रति ।
कैसे लक्ष संचार प्रगट पुहुमी गुरुरूप प्रभु ॥२३॥

शब्दार्थ — हंस दृष्टि = सारासार विवेक करने का व्यक्ति का साधन। लक्ष्य = दृष्टि, उद्देश्य । संचार = प्रवेश । पुहुमी = पृथ्वी ।

भावार्थ — इस पृथ्वी पर सद्गुरु रूप से प्रगट हुए हे स्वामी ! अब मेरे लिए नीर-क्षीर की निर्णयवतीदृष्टि का विचार कहें; और यह बतावें कि वही दृष्टि मेरे में कैसे प्रविष्ट हो ? ॥ २३ ॥

मो सम दीन न कोय, तुम समान साहेब गनी ।
करहु कृपा चित सोय, ताते पारख प्रौढ़ लही ॥२४॥

शब्दार्थ — गनी = गनी; धनी, मालदार, संतुष्ट । प्रौढ़ = दृढ़ ।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! हमारे समान कोई गरीब नहीं है और आपके समान कोई धनी एवं संतुष्ट नहीं है । अतएव वैसी ही हार्दिक कृपा कीजिये; जिससे ज्ञान दृढ़ हो जाय ॥ २४ ॥

सद्गुरु उत्तर--१९

दोहा---हे शिष्य उत्तम प्रश्न यह, मैं बहु हिये सुख मान ।
गुरु संगतके कियेते, फल प्रगट भये हिये आन ॥२१२॥

शब्दार्थ — फल = परिणाम, जिज्ञासा । हिये = हृदय । आन = आकर ।

भावार्थ — हे शिष्य ! यह तुम्हारा प्रश्न उत्तम है । इसे सुनकर मैं हृदय में बहुत सुख माना हूँ । वस्तुतः विवेकी सन्तों की संगत करने से तुम्हारे हृदय में परिणाम स्वरूप यह उत्तम जिज्ञासा उत्पन्न हुई है ॥ २१२ ॥

तोर मर्म जानेउँ भले, अति प्रसन्न सुन शिष्य ।
वेद मते बहु कल्पते, पै निर्णय सो दीख ॥२१३॥

शब्दार्थ — बहु कल्पते = बहुत कल्पनायें हैं । पै – परन्तु ।

भावार्थ — हे शिष्य ! सुनो, मैं तुम्हारे प्रश्न का रहस्य अच्छी तरह जान गया हूँ और अत्यन्त प्रसन्न हूँ । वेद-वेदान्तादि के मतों में बहुत कल्पनायें भरी हैं, परन्तु तुम उन्हें निर्णय पूर्वक समझो ॥ २१३ ॥

अनुमानी आसक्त को, कौन मतो परमान ।
लखेउ यथारथ गुरु सुमुख, कहौं सुनो धरि कान ॥२१४॥

शब्दार्थ — परमान = प्रमाण, सत्यता । **लखेउ** = तुम लखना-समझना ।

भावार्थ — जो अनेक प्रकार अनुमान-कल्पना करने वाला तथा स्वमतके ग्रंथ एवं मान्यता में आसक्त है उसके मत की सत्यता का क्या प्रमाण है ? इसलिये हे शिष्य ! तुम गुरुमुख वाणियों द्वारा वास्तविकता को समझना । उसे मैं कहता हूँ तुम कान देकर सुनो ॥ २१४ ॥

मन माया को फेर बहु, मंडो जाल अति गूढ़ ।
सो प्रपंचते भले लहु, जानि त्यागि तेहि मूढ़ ॥२१५॥

शब्दार्थ — मंडो = मढ़ा; जड़ा; पक्का किया हुआ । **गूढ़** = छिपा हुआ; गुप्त; समझने में कठिन । **लहु** = लहो; प्राप्त करो; पृथक करके निकाल लो । **प्रपंच** = विस्तार । **मढ़** = अज्ञान, अज्ञान का कार्य ।

भावार्थ — संसार में मन और माया का बहुत चक्कर है । उसको समझने में बहुत कठिन जाल चारों ओर मजबूती से फैला है । हे शिष्य ! उस विस्तार से अपने आपको भली-भाँति निकाल लो, और उसे अज्ञान का कार्य समझ कर सर्वथा त्याग दो ॥ २१५ ॥

हे शिष्य दृष्टि हंसकी, पारख सबहीं केर ।
ठहरै रमिता भूमिपर, तजि चौरासी फेर ॥२१६॥

शब्दार्थ—हंस = विवेकी । **पारख** = सार और असारको पृथक करने की शक्ति, ज्ञान । **रमिता** = रमता; भ्रमणशील । **फेर** = चक्कर; वासना ।

भावार्थ—हे शिष्य ! मानवमात्र को जो विवेकी बनना चाहे, सारासार समझने के लिये पारख ही दृष्टि है । उसे चाहिये कि वह चाहे पृथ्वी पर भ्रमणशील हो और चाहे एक आश्रम पर निवास करने वाला हो, वह चौरासी खानियों का चक्कर व वासना स्वरूप पंचविषयों की आसक्ति को दूर करता रहे ॥ २१६ ॥

पारख सबकी थीरपद, ठहरि रहै सत्संग ।
मन माया कृत गुणनको, देखै मिथ्या भंग ॥२१७॥

शब्दार्थ — पारख = ज्ञान; ज्ञानस्वरूप चेतन । **माया** = कल्पना; धोखा; छल, जड़पदार्थ । **गुणन** = विकारों को । **भंग** = नाशवान ।

भावार्थ—सभी मनुष्यों के लिये उनका अपना ज्ञानस्वरूप चेतन ही स्थिरपद है । अतएव मनुष्य को चाहिये कि संतों का सत्संग करते हुए अपने चेतन स्वरूप में स्थित होवे, और मन तथा माया से निर्मित विकारों को असत्य और नाशवान समझे ॥ २१७ ॥

विशेष — मनुष्य की अपनी स्थिति अपने से पृथक नहीं है । क्योंकि पृथक को सभी वस्तुयें छूटने वाली एवं नाशवान हैं । अपना पारखपद, चेतनपद एवं स्वस्वरूप ही

अपना स्थितिपद है। तात्पर्य यह है कि मुमुक्षु को चाहिये कि वह अपने से पृथक जो कुछ है सब का अध्यास त्यागकर अपने आप शांत हो।

गुरुमुख साधु समाज महँ. निर्णय लखै बनाय।
द्रष्टा हंसा परख लहि, सतसंगति बल पाय ॥२१८॥

शब्दार्थ — बनाय = बहुत ज्यादा, बिलकुल, भलीभाँति। हंसा = हंस, चेतन, विवेकी पुरुष। परख = परीक्षा।

भावार्थ — मुमुक्षु को चाहिये कि वह सन्तसमाज में यथार्थ वाणियों द्वारा भलीभाँति निर्णय करके वास्तविकता को समझे। इस प्रकार वह विवेकी पुरुष सत्संग की शक्ति पाकर और सभी स्थूल-सूक्ष्म वासनाओं का द्रष्टा बनकर सबकी परीक्षा प्राप्त कर लेगा, और अपने को सबसे मुक्त कर लेगा ॥ २१८ ॥

विशेष — जिसमें विषयों से वैराग्य, मोक्ष की तीव्र लालसा और विनम्रता है वह विवेकी संतों के सत्संग में रहकर मोक्ष के साधक और बाधक तत्वों को समझ लेता है। फिर वह सारे स्थूल पंचविषय दृश्य तथा मनोमय का द्रष्टा बनकर सबसे उदासीन एवं अनासक्त हो जाता है और अपने आप में तृप्त हो जाता है।

मैं मेरी संकल्प यह, सोई दुख की खान।
ताहि त्याग गुरुपरख लहै, द्रष्टा सोई सुजान ॥२१९॥

शब्दार्थ — सुजान = विवेकी।

भावार्थ — स्थूल-सूक्ष्म पंचविषयों तथा शरीर में 'मैं और मेरी' का निश्चय होना यही क्लेशों का उत्पत्ति स्थान है। वही विवेकी द्रष्टा है जो उसे त्याग करके श्रेष्ठ परीक्षा-दृष्टि धारण करता है ॥ २१९ ॥

विशेष — 'मैं शुद्ध चेतन पारखस्वरूप हूँ तथा मेरा स्वरूप ज्ञानमात्र है' — यह मैं और मेरा का निश्चय या संकल्प दुःखप्रद तथा बंधनप्रद नहीं है; अपितु यह निश्चय वास्तविक और मोक्षप्रद है। जहाँ कहीं भी 'मैं-मेरी' को बंधन रूप बताया जाता है वहाँ उसका तात्पर्य होता है शरीर, पंच विषय तथा मन-मानन्दी में मैं मेरी मानना। जैसे व्यवहार में अपनी वस्तुओं का उपयोग सब कोई करते हैं उसमें उन्हें कोई नहीं पकड़ सकता; परन्तु वे ही जब दूसरे की वस्तु को अपनी मानने लगते हैं, तब पकड़ कर बाँधे जाते तथा कारावास में भेजे जाते हैं। इसी प्रकार यदि कोई अपने स्वरूप को अपना मानता व कहता है तो वह उसके कल्याण का कारण बनता है; परन्तु यदि वह अपने स्वरूप से पृथक की वस्तुओं को अपना मानता या कहता है तो वह उसकी वासना में बँध कर जीवन पर्यंत दुःख पाता है तथा जन्मान्तर में भ्रमण करता है।

अपने चेतन स्वरूप से पृथक जो कुछ है देह, गेह, पंच विषय, मनवासना—सब पृथक की वस्तुयें हैं। इनमें मैं-मेरी का निश्चय सर्वथा त्याग करे और सभी का द्रष्टा बनकर अपने आप शांत हो।

पारखदृष्टि प्रताप बल, पायो द्रष्टा दृष्ट ।
श्रेष्ठ दुख बल परखते, होवै त्याग कनिष्ट ॥२२०॥

शब्दार्थ — द्रष्टा = देखने वाला । दृष्ट = दर्शन; अनुभूति; देखा हुआ; जाना हुआ विषय; प्रत्यक्ष; दृश्य । श्रेष्ठ दुख = सबसे बड़ा दुःख; ब्रह्मअध्यास । कनिष्ट = कनिष्ठ; छोटा; अल्प; तात्पर्य में छोटा दुःख विषयाध्यास ।

भावार्थ — पारखदृष्टि के तेज और शक्ति से द्रष्टा और दृश्य का भिन्न विवेक प्राप्त हुआ । उक्त परख एवं ज्ञान के बलसे महान दुःख ब्रह्माध्यास और लघुदुःख विषयाध्यास से जीव का सर्वथा मोक्ष हो जाता है ॥ २२० ॥

विशेष — वैसे देखा जाय तो विषयासक्ति ही महान दुःख है और ब्रह्माध्यासी व्यक्ति तो विषयासक्ति से निवृत्ति लेकर अन्तःकरण की शुद्धि की ओर ही चलते हैं; परन्तु ब्रह्म, जगत व पंच विषय से तत्वतः भिन्न न होने से ब्रह्मवादी का जगत अध्यास छूट नहीं सकता । ब्रह्म जगत का मूल होने से वह सभी विकारों का केन्द्र है । विषयाध्यास को सभी लोग बुरा समझते हैं; और प्रयास करके बहुत लोग उसे छोड़ देते हैं । परन्तु ब्रह्म को लोग भूलवश कल्याण का केन्द्र मानते हैं इसलिये उसकी कसर परख पाना अत्यन्त कठिन हो रहा है । इसलिये ब्रह्माध्यास कठिन दुःख व बंधन है और विषयाध्यास उसके आगे लघु दुःख व बंधन है । अन्ततः विवेकी को दोनों त्याज्य हैं । क्योंकि दोनों तत्वतः एक हैं ।

संकल्पे जग है भयो, मिटै संकल्प नशाय ।
एक अनेककी रहट यह, देखु दृष्टि बल पाय ॥२२१॥

शब्दार्थ — एक = ब्रह्म । अनेक = जगत । बल = पारख की शक्ति ।

भावार्थ — यह मान्यता कि ब्रह्मके संकल्प से संसार प्रकट हुआ है तथा उसके संकल्प मिटा देने से संसार का प्रलय हो जायगा । इस एक और अनेक के चक्कर को हे शिष्य ! पारखबल लेकर परखो ॥ २२१ ॥

चौरासीके मध्यमें, चारिउ खानि प्रचंड ।
तेहिमा मानुष रूपको, राखै दृष्टि अखण्ड ॥२२२॥

शब्दार्थ — चौरासी = चार राशियाँ, ढेरियाँ-मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज । चारों खानि = उक्त चारों राशियाँ । प्रचंड = तीव्र, भयंकर दुःख के स्थान हैं । अखण्ड = एकरस ।

भावार्थ — चौरासी योनियों के बीच में मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज ये चारों खानियाँ दुःख भोग के भयंकर स्थान हैं । उनमें मनुष्य शरीरधारी को ही कर्म करने का अधिकार होने से वही उक्त दुःखों से मुक्त होने का प्रयास कर सकता है । अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह सदैव ज्ञान की एकरस दृष्टि रखे ॥ २२२ ॥

विशेष — मानवशरीर में ही दुःखों से छूटने का सुनहला अवसर है। मनुष्य को चाहिये कि वह माया-मोह में न भूले, सदैव अखण्ड ज्ञानधारा में रमण करे।

सो प्रकाश प्रभुके लखेते, मानुष बुद्धि फरियाय।
मानुषते सब होत है, द्रष्टा मनुष्य पद पाय ॥२२३॥

शब्दार्थ — **फरियाय**=फरियाना; साफ होना; निर्णीत होना; दिव्य होना।

भावार्थ — सद्गुरुद्वारा वह ज्ञान तथा पारखप्रकाश प्राप्त हो जाने पर मनुष्य की बुद्धि दिव्य हो जाती है। मनुष्य से ही बन्धन तथा मोक्ष दोनों के कर्म होते हैं। जो सबका द्रष्टा बनकर सबसे अनासक्त हो जाता है वही सर्वोच्च मनुष्यपद एवं मानवता को प्राप्त करता है ॥ २२३ ॥

विशेष — अपना मोक्ष कर लेना ही मानवता को पाना है। जो अपना मोक्ष कर लेता है वही दूसरे का मोक्ष करता है।

ऐसे उज्ज्वल दृष्टिवल, मानुष रूपहि जान।
ताते पारख सुबुद्धि तव, होय यथारथ भान ॥२२४॥

शब्दार्थ — **भान**=सूर्य; ज्ञान; प्रकाश।

भावार्थ — उपर्युक्त शुद्ध पारखदृष्टि की शक्ति को प्राप्त हुए पुरुष को सच्चा मनुष्य स्वरूप समझो। अतएव हे सुन्दर बुद्धि वाले शिष्य ! पारख से ही तुम्हें वास्तविक प्रकाश एवं ज्ञान मिलेगा ॥ २२४ ॥

लखै दृष्टि बल परखते, मानुषरूप सो होय।
वंदनिये जेहि पद सोई, निश्चल घर सम होय ॥२२५॥

शब्दार्थ — **वंदनिये**=वन्दनीय, वन्दना करने योग्य; पूज्य। **निश्चलघर**= स्थायी मुकाम; स्वरूपस्थिति। **सम**=निष्पक्ष; उदासीन; विरक्त।

भावार्थ — वही सच्चा मानव का स्वरूप है जो सब समय सारे भूत-भौतिक स्थूल-सूक्ष्म पदार्थों को परीक्षादृष्टि की शक्ति से अर्थात उदासीन होकर देखता है। जो इस प्रकार विषयों से विरक्त होकर अपने स्थायी स्वरूपस्थिति धाम में स्थिर हो गया है उसी के चरण वन्दना करने एवं पूजने योग्य हैं ॥ २२५ ॥

हंस द्रष्टा पद थीर लही, परखाये सब जाल।
सदा सुखारी पारखी, नजरे नजर निहाल ॥२२६॥

शब्दार्थ — **नजरे नजर**=देखते-देखते; अतिशीघ्र; प्रत्यक्ष। **निहाल**=कृतार्थ; मुक्त।

भावार्थ — विवेकी पुरुष सभी वासनाओं का द्रष्टा बन तथा उसे त्यागकर स्थिति अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे स्वतः अनुभवी पुरुष ही अन्य मुमुक्षुओं को खानी-

वाणी एवं मन के सब बन्धनों की परख कराते हैं। ऐसे पारखी संत सदैव जीवन्मुक्ति सुख में विहरते हैं। वे प्रत्यक्ष कल्याणरूप हैं ॥ २२९ ॥

विशेष — सब समय सब कुछ को अपने से पृथक समझ कर और उनका मोह सर्वथा छोड़कर अपने आप शांत रहना द्रष्टा की दशा है। परन्तु एकान्तिक साधना की दृष्टि से इसकी एक विशेष अवस्था भी होती है। उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

आहार-विहार हल्का, स्वच्छ, सादा, शुद्ध,ब्रह्मचर्य, भक्ति, वैराग्य; ज्ञान, शम-दम आदि तैयारियाँ तो पहले होनी ही चाहिये। एकान्त में स्थिर आसन से बैठकर जहाँ तक सम्भव हो आँख भी मूँद ले और मन को देखे कि मन क्या कर रहा है। उस समय और कोई ध्यान नहीं होना चाहिये, केवल मन को ही देखना चाहिये। पहले तो मन कम पकड़ में आयेगा। कुछ काल अभ्यास के बाद पकड़ में अधिक आयेगा।

इस प्रकार द्रष्टा की शक्ति जब प्रबल हो जायगी, तब मन शांत हो जायगा; शांति मिल जायगी। यह अभ्यास नित्य करते रहने से सभी आसक्तियाँ क्षीण होकर जीव मुक्त हो जायगा। इसका परिणाम होगा कि वह जीवन पर्यन्त सबसे अनासक्त रह कर जीवन्मुक्त रहेगा। इस अभ्यास का वर्णन सद्गुरु श्री विशाल साहेब ने मुक्ति-द्वार के शांतिशतक पाठ के 'दृश्य अभाव' प्रसंग में सुन्दर ढंग से किया है। उसकी कुछ साखियाँ इस प्रकार है—

मनन प्रवाह को देखते, मनन त्याग के ध्येय।
देखन मात्रहि काम लै, और फिक्र तजि देय ॥ ११० ॥
मनन भुलावा जो बहुरि, छोड़ि ताहि वहि धारि।
ऊब न लावै ताहि में, करतव्य अपनि विचारि ॥ १११ ॥
शीघ्र शीघ्र पूरब छुटै, उत्तर देय लगाय।
बादि स्ववश व्है जाय वहि, जो करनो निजकाय ॥ ११२ ॥
मन देखत मन लीन नहिं, निज शक्ति लौटारि।
शक्ती जब पावै नहीं, तब सो क्षीण निहारि ॥ ११३ ॥
स्ववश भये शक्ती बढ़ै, जीतै मन की चाल।
आप आप ठहरै तबै, नशै बन्ध जग जाल ॥ ११४ ॥
प्रतिदिन समय निकारिके, करै यही अभ्यास।
होय सकल दुःख नाशि तब, ठहरै अचल निवास ॥ ११५ ॥
ना मिलने की चाहना, ना छुटने की सोच।
धन प्राणिन निर्वाह में, कहूँ न मन को रोच ॥ ११६ ॥

(मुक्तिद्वार, शांतिशतक)

हे शिष्य ऐसे मत कहै, गुरु पारख बल थीर।
सत्य शब्द टकसार विधि, पारख कहहिं कबीर ॥२२७॥

शब्दार्थ — गुरु पारख = गुरु का बनाया हुआ पारख एवं ज्ञान, श्रेष्ठ पारख। **सत्य शब्द** = गुरुमुख वाणी। **टकसार** = टकसाल, सत्संग, बीजक।

भावार्थ — हे शिष्य ! पारखी संत इस मत का वर्णन करते हैं कि श्रेष्ठ ज्ञान की शक्ति से ही जीव अपने आप में स्थिर होकर शांति पा सकता है। इस पारख सिद्धान्त का वर्णन सद्गुरु कबीर बीजक के गुरुमुख वाणियों में विधिपूर्वक किये हैं ॥ २२६ ॥

सो पारखके लहेते सबदुख तुरित मिटाय।
अनुमानी अनुमान महँ, बहुतक गये बौराय ॥२२८॥

शब्दार्थ — तुरित = तुरन्त, शीघ्र। **अनुमानी** = अनुमान कल्पना करने वाले भूले लोग। **बौराय** = बौरा जाना, पागल हो जाना, बहक जाना, भटक जाना।

भावार्थ — उस पारख ज्ञान के प्राप्त होते ही सारे मानसिक दुःखों का तुरन्त विनाश हो जाता है। परन्तु जो अनुमान-कल्पना में पड़े हुए भूले लोग हैं, ऐसे बहुत जीव भटक गये हैं ॥ २२८ ॥

विशेष — जहाँ यह विवेक हुआ कि अपने आप से पृथक सब कुछ नश्वर है, और अपना लक्ष्य मैं स्वयं हूँ वहाँ वह तुरन्त सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।

मानुप द्रष्टा पारखी, सबके पारख कीन्ह।
जमा आपनी राखि के, पारख बल गुरु चीन्ह ॥ २२९ ॥

शब्दार्थ — जमा = अविनाशी चेतन स्वरूप।

भावार्थ — मनुष्य ही सारासार विचार करके जगत का द्रष्टा एवं पारखी बनता है, वह सबकी परख करके कल्याण-पथ के भक्षक का त्याग तथा रक्षक का ग्रहण करते हुए सबसे अनासक्त रहता है। वह अपने अविनाशी स्वरूप में स्थिर रहकर और अपने पारख के बल से सद्गुरु की वास्तविकता को पहचानता है ॥ २२९ ॥

विशेष — मनुष्य ही सर्वोच्च द्रष्टा है। वही ज्ञानस्वरूप है। वही सत्य-असत्य को परख सकता है। जो शक्ति गुरु में है वही शक्ति शिष्य में भी है। वह शक्ति परख एवं ज्ञान ही है। परख बल से गुरु परखाते हैं तथा परखबल से शिष्य परखते हैं। पहले शिष्य सद्गुरु को एक साधारण मनुष्य समझता है। जितना ही उसमें ज्ञान चमकता जाता है वह गुरु की वास्तविकता को समझता जाता है। शिष्य अपने परख बल से ही गुरु की वास्तविकता को जान सकता है। शिष्य में पारख न हो तो गुरु के संकेत को वह कैसे समझ सकता है। जिसको नेत्रशक्ति बिलकुल नहीं होगी उसको दर्पण से क्या प्रयोजन ? अतः हर मनुष्य में ज्ञान का पूर्ण भण्डार है। सद्गुरु के संकेत से उसका उद्घाटन एवं प्रकाशन मात्र होता।

सब जीवनके मर्म को, जानै द्रष्टा सोय।
सोई द्रष्टा गुरु परख लहि, सुधरै मानुष जोय ॥२३०॥

शब्दार्थ — मर्म = भेद, रहस्य। द्रष्टा = देखने वाला; साक्षात्कार करने वाला।

भावार्थ — वही व्यक्ति सच्चे अर्थों में द्रष्टा है जो सब जीवों के स्वरूप, गुण, स्वभाव आदि भेद को जानता है। उसी तीव्र ज्ञानकी दृष्टि से सद्गुरु के पारखबोध को भी वह प्राप्त कर लेता है, जिससे उस मनुष्य का पूर्ण कल्याण हो जाता है ॥२३०॥

विशेष — जो एक जीव का मूलतः स्वरूप, गुण तथा स्वभाव है; वही सब जीवों का है। व्यक्ति का मूलस्वरूप जीव यानी चेतन ही है। अतएव जो अपना भेद पूर्ण रूप से जान लेता है उसके द्वारा सबका भेद जाना हुआ हो जाता है। इसी प्रकार व्यावहारिक दृष्टि से भी जो अपने मनका मर्म अच्छी तरह जान लेता है वह सबके मनको परख लेता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह सबके संकल्प-विकल्प को जान लेता है; अपितु सबके मनकी प्रकृति को जान लेता है। जीवका स्वरूप व्याप्य-व्यापक, अंश-अंशी, कार्य-कारण रहित शुद्ध चेतन है। उसका ज्ञान ही गुण तथा स्वभाव है।

हंतामा सबही परे, हंता देखै साध।
हंताते न्यारा रहै, गुरुमुख दृष्टि अबाध ॥२३१॥

शब्दार्थ — हंतामा = अहंकार में। देखै = देखना; परखना; त्यागना। अबाध = बाधारहित; निर्विघ्न; कष्टरहित।

भावार्थ — क्या गृहस्थ क्या वेषधारी सब अहंकार में पड़े हैं, संसार में एक संतपुरुष ही ऐसे हैं जो उसके द्रष्टा बनकर उसे त्यागते हैं। वे गुरुमुख निर्णयवचनों पर अपनी दृष्टि रखकर समस्त अहंकारों से सर्वथा पृथक तथा बाधारहित स्वतंत्र रहते हैं ॥ २३१ ॥

विशेष — गृहस्थों को अपने शरीर, परिवार, मित्र, धन, मकान, जमीन, विद्या, पद, अधिकार, वर्ण, जाति आदि का अहंकार है; तो वेषधारियों को अपने मठ, गद्दी, महंती, आचार्यत्व, मण्डलेश्वरत्व, धन, जमीन, शिष्य, शाखा, परम्परा, मान, बड़ाई, पुजापा आदि का गर्व है। कोई किसी से कम अहंकारी नहीं है। अंतर इतना है कि गृहस्थ वेषधारी—दोनों में कोई कम अहंकारी है कोई अधिक।

हाँ, बहुत संत ऐसे हैं जो सब अहंकार को धूल में मिलाकर सबसे उदासीन रहते हैं। वस्तुतः जो सब अहंकारों से पृथक हो, वही संत है।

देखन है बहु भाँति का, तामें निर्णय येह।
एक देखत है जगत सब, एक ब्रह्म सुख नेह ॥२३२॥

शब्दार्थ — देखन = देखना; समझना। नेह = प्रेम।

भावार्थ — मनुष्य के देखने के तरीके अनेक हैं; उसमें यह निर्णय है कि एक प्रकार के व्यक्ति तो संसार के सब पंचविषयभोगों को सुख रूप समझकर उन्हें देखते हैं और दूसरे प्रकार के व्यक्ति ब्रह्मसुख में प्रेम करते, अर्थात उसे उत्तम करके देखते हैं ॥ २३२ ॥

जगसुख अनित्य विचार बुद्धि, ब्रह्म सुखहि लौलीन ।
द्रष्टा दोऊ सुखन को, मिथ्या जानहु लीन ॥२३३॥

शब्दार्थ—बुद्धि=बुद्धिमान । लौलीन=ध्यानमग्न । लीन=लुप्त; लोप; अस्तित्वहीन ।

भावार्थ —बुद्धिमान पुरुष जगत पंचविषय सुख को अनित्य एवं नाशवान समझकर ब्रह्मसुख में ध्यानमग्न होते हैं। परन्तु वास्तविकता का द्रष्टा एवं पारखी पुरुष उक्त दोनों सुखों को मिथ्या एवं अस्तित्वहीन समझता है ॥ २३३ ॥

विशेष—हर मनुष्य का मूल स्वरूप पारखी है। सबके पास समझने एवं देखने की दृष्टि है। देखने के तरीके थोड़े पृथक-पृथक हैं। बुद्धिमान मनुष्य विषयों को नाशवान, क्षणभंगुर एवं दुखरूप समझकर उसका त्याग करता है और एक चराचर व्यापक या जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्म की कल्पना करके उसमें सुख मानता है तथा ध्यानमग्न होता है। परन्तु जिन्हें विवेक है कि अपने चेतन पारख स्वरूप से पृथक ब्रह्म-ईश्वर नाम की वस्तु कहीं नहीं है वह विषयसुख और ब्रह्मसुख दोनों की कल्पना त्यागकर स्वस्वरूप की स्थिति एवं निजसुख में ही निमग्न हो जाता है।

अपनी दृष्टि प्रताप बल, गुरु उपदेश विशेष ।
सत्संगति सुख नित्यप्रति, द्रष्टा पारखी देख ॥२३४॥

शब्दार्थ — अपनी दृष्टि=ज्ञानशक्ति; पारखदृष्टि। प्रताप=प्रभाव; तेज । विशेष=असाधारण; अधिक। नित्यप्रति=रोज-रोज, तात्पर्य में निरन्तर ।

भावार्थ — वास्तविकता के द्रष्टा एवं पारखी पुरुष अपनी पारखदृष्टि की तेजशक्ति से, गुरु के अधिक उपदेश से तथा सत्संग के प्रभाव से स्वरूपस्थिति एवं जीवन्मुक्ति का निरन्तर सुख देखते हैं ॥ २३४ ॥

विशेष — अपनी तीव्र ज्ञानदृष्टि, योग्य सद्गुरु का उपदेश तथा विवेकी संतों की संगत–इनतीनोंकी योग्यता प्राप्त होने पर व्यक्ति जीवन्मुक्ति सुखका अधिकारी होता है।

सोई पारख प्रगट गुरु, जहाँ नहीं अनुमान ।
सुख प्रत्यक्ष पूरण अमल, रहै यथारथ जान ॥२३५॥

शब्दार्थ — पारख=ज्ञान । प्रगट=प्रत्यक्ष; स्पष्ट; व्यक्त । अनुमान= अटकलबाजी; भ्रम । जान=समझना चाहिये ।

भावार्थ — उसी व्यक्ति में पारख एवं ज्ञान का पूर्ण प्रत्यक्षीकरण समझना चाहिये तथा उसे ही गुरुरूप समझना चाहिये जिसमें अनुमान, कल्पना एवं भ्रम नहीं है; और जिसमें मन की एकाग्रता एव चेतन स्वरूप के स्थिति विषयक प्रत्यक्ष, पूर्ण, निर्मल एवं वास्तविक सुख विद्यमान है ॥ २३५ ॥

हे शिष्य ऐसे हंसकी, दृष्टि स्वतः आनंद ।
ते आनंदकी प्राप्ति को, द्रष्टा लहै स्वच्छंद ॥२३६॥

शब्दार्थ—हंस = विवेकी । दृष्टि = लक्ष्य; मन; हृदय । आनंद = जीवन्मुक्ति सुख । स्वच्छंद = स्वतंत्र ।

भावार्थ — हे शिष्य ! ऐसे विवेकी पुरुष का लक्ष्य एवं हृदय स्वयं जीवन्मुक्ति सुख से पूर्ण रहता है । जो कोई भी व्यक्ति मन-वासनाओं का द्रष्टा बन जाता है, वह स्वतंत्रतापूर्वक उस जीवन्मुक्तिसुख को प्राप्त करता है ॥ २३६ ॥

ताते हे शिष्य साधु को, संग करहु निष्काम ।
गुरुमुख निर्णयके लखौ, धोखा मिटै तमाम ॥२३७॥

शब्दार्थ — निष्काम = कामनारहित । तमाम = कुल, सारा; समाप्त; खतम ।

भावार्थ— अतएव हे शिष्य ! हृदय से कामनारहित होकर संतोंकी संगत करो । फिर गुरुमुख निर्णय वाणियों को समझने से तुम्हारे मनके सब धोखा, छलावा एवं प्रवंचना समाप्त हो जायेंगे ॥ २३७ ॥

काल कला ब्रह्मास्मि जे, महावाक्य वेदांत ।
समुझहु बहुमत वेद विधि, नाशक के यह भ्रांत ॥२३८॥

शब्दार्थ — काल = मन । कला = कल्पना । ब्रह्मास्मि = मैं ब्रह्म हूँ । नाशक = नष्ट करने वाला; दूर करने वाला । भ्रांत = भूला हुआ; भूल ।

भावार्थ — वेदांत का महावाक्य है 'ब्रह्मास्मि' यह वस्तुतः मनःकल्पना है । ऐसे बहुत से मतों को समझो जो वेद तथा अन्य कई मूल मानी हुई ईश्वरीयपुस्तकों द्वारा सिद्ध किये गये हैं । वस्तुतः ये सब स्वरूपज्ञान से दूर करने वालों के भूलभूलैया के मत हैं ॥ २३८ ॥

विशेष — जब ब्रह्म चराचर व्यापक तथा जगत से अभिन्न है तब यह कहना कि मैं ब्रह्म हूँ भूलभुलैया तथा मनःकल्पना नहीं तो क्या है ?

चौपाई—१६

काल कला बहुतक परचंडा । जाकी डर कंपै ब्रह्मंडा ॥ १ ॥
सो गुरु पारख लहत नशाई । पारख लहै दृष्टि फरियाई ॥ २ ॥

शब्दार्थ — काल=मन । कला=कल्पना । ब्रह्मंडा=संसार; तात्प संसार के सारे जीव । गुरुपारख=यथार्थ ज्ञान । फरियाई=फरियाना;साफ होना ।

भावार्थ — मनकी कल्पनायें बहुत तीव्र हैं, जिसके भय से संसार के सारे जीव भयभीत हो रहे हैं ।। १ ।। परन्तु वह भय गुरु का यथार्थ बोध प्राप्त होते ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि पारख प्राप्त होते ही मनुष्य की बुद्धि शुद्ध एवं दिव्यदृष्टि हो जाती है ।। २ ।।

विशेष — मनुष्य अपने मन से कल्पना करके अनेक देवी, देवता, ईश्वर, ब्रह्म, भूत, प्रेत, शकुन, अपशकुन, ग्रह दशा तथा न जाने कितने भय खड़े कर लिये हैं। जिनके भय से समस्त जीव पीड़ित हैं। परन्तु जिनको पारखज्ञान की प्राप्ति होती है उनके सारे कल्पित भय, भ्रम दूर हो जाते हैं ।

अनबनि जगत करे यमराजा । मन माया प्रेरे करि साजा ।। ३ ।।
नाना मति करि भोरे जीवा । राखें सेवा निज वसि कीवा ।। ४ ।।

शब्दार्थ — अनबनि=अनबन; अनेक । यमराजा=मन, अज्ञान । साजा= साज, समूह । भोरे=भुलावे, बहकावे, ठगे । कीवा=करके ।

भावार्थ — अज्ञानपूर्ण मन अनेक यत्न करके और काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि माया के समूह को प्रेरित करके तथा नाना भ्रांत विचारों को उत्पन्न करके जीवों को भुला देता है और उन्हें अपने वश में करके अपनी ही सेवा में रखता है ।। ३, ४ ।।

विशेष — मन या यमराज कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है । वस्तुतः जीव की दृश्य वस्तु या कल्पना में आसक्ति ही मन का रूप धारण करती तथा जीव को परेशान करती है ।

सो द्रष्टा गुरु पारख पाई । तेहिके निकट भरम नहिं जाई ।। ५ ।।
तेहि जालते बाँचे साधू । मनमाया कल्पित मेटे व्याधू ।। ६ ।।

शब्दार्थ — व्याधू=व्याधि; मानसिक रोग ।

भावार्थ — वह जो मन तथा उसकी कल्पनाओं का द्रष्टा है, जिसने गुरु पारख की प्राप्ति कर ली है; उसके पास में किसी प्रकार का भ्रम नहीं जा सकता ।। ५ ।। खानी-वाणी के भ्रम जाल से पारखीसंत छूट जाते हैं, और वे मनःसंकल्प के कल्पित रोग को नष्ट कर देते हैं ।। ६ ।।

सुधरे गुरुसेवा शिष्य होई । परख लहै दृष्टि पारखी सोई ।। ७ ।।
पारखगुरु प्रतापपुनि जाना । ते पुनि द्रष्टा परख समाना ।। ८ ।।

शब्दार्थ — सुधरे=सुधरना; दोषों को दूर करके कल्याण करना । परख= छानबीन । समाना=लीन होना; तद्गत होना ।

भावार्थ — सद्गुरु की सेवा करते हुए जो अपना सुधार करता है वही शिष्य है। जो पारख की दृष्टि प्राप्त करता है; अर्थात जो सारासार की छानबीन करके असार को दूर करते हुए सार को धारण करता है, वह पारखी है ॥ ७ ॥ पुनः जो गुरु के पारखज्ञान के प्रभाव को जानते हैं वे सारासार के छानबीन में तत्पर हो जाते हैं॥८॥

ते द्रष्टा ते गुरुपद थीरा। ते द्रष्टा गुरु प्रगट शरीरा ॥ ९ ॥
ते द्रष्टा साधू जग मुक्ता। ते द्रष्टा शिष्य गुरुमुख युक्ता ॥१०॥

शब्दार्थ — ते = वे; वे लोग। गुरुपद = स्वस्वरूप चेतन। द्रष्टा = मन तथा मन के जाल को देखकर उन्हें दूर करने वाला।

भावार्थ — वे मनके द्रष्टा पुरुष स्वस्वरूप चेतन में स्थित होते हैं। वे मनको वश में रखने वाले प्रत्यक्ष गुरु के स्वरूप हैं ॥ ९ ॥ वे मन माया के जाल को देखकर उन्हें दूर करने वाले पुरुष संत हैं और संसार के बंधनों से मुक्त हैं। वे जो मनको अपने वश में रखते हैं सद्गुरु के सच्चे शिष्य हैं और वे ही गुरुमुख एवं गुरु के आज्ञानुसार चलने वाले हैं ॥ १० ॥

विशेष — जो मन-माया का द्रष्टा बनकर सबसे अनासक्त हो जाता है और अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है वही सच्चा शिष्य है, गुरुमुख है, संत है तथा स्वयं प्रत्यक्ष सद्गुरु है।

हे शिष्य गुरुपारख अपनावो। जाते ठहरि हंसपद पावो ॥११॥
एक अनेक त्यागि ब्रह्म झाँई। रहहु ठहरि पारख गुरु माहीं ॥१२॥

शब्दार्थ — गुरुपारख = स्वरूपज्ञान; परीक्षा दृष्टि। हंसपद = विवेकस्थिति, स्वरूपस्थिति।

भावार्थ — अतएव हे शिष्य ! सद्गुरु का पारखबोध ग्रहण करो, जिससे स्वरूप में स्थित होकर विवेकदशा की प्राप्ति हो ॥ ११ ॥ एक ब्रह्म से अनेकत्वपूर्ण जगत होने की कल्पना तथा ब्रह्मवाद की गाफिली का त्याग करो, और गुरुपारख अर्थात स्वस्वरूप में स्थित हो जाओ ॥ १२ ॥

सुनहु यथारथ गुरुमुख बानी। देखु दृष्टि निर्णय समुहानी ॥१३॥
निर्णय यथा जीवके संगा। होवै तबहीं काल गुण भंगा ॥१४॥

शब्दार्थ — समुहानी = समुहाना, सामने आना, सामने होना। काल = मन। गुण = कल्पना।

भावार्थ — गुरुमुख यथार्थ वाणियों को सुनो; और न्याय की दृष्टि से देखो तो सारी वास्तविकता तुम्हारे सामने दृश्य हो जायगी ॥ १३ ॥ जब व्यक्ति के साथ में यथोचित निष्पक्ष न्याय की दृष्टि होती है तब उसके मनकी कल्पनायें एवं अज्ञान नष्ट हो जाते हैं ॥ १४ ॥

काल संधि झाँई का फेरा। मिटै लखै गुरुमुखहिं सबेरा ॥१५॥
दीनबन्धु गुरु दीनदयाला। ताकी कृपा दृष्टि लखु जाला ॥१६॥

शब्दार्थ — सबेरा = प्रातः, शीघ्र।

भावार्थ — यदि मनुष्य पारखी सद्गुरु के निर्णय वचनों को समझ लेता है तो उसके काल, संधि तथा झाँई के चक्कर शीघ्र मिट जाते हैं॥ १५॥ अतएव हे शिष्य! दीनों के बन्धु एवं आश्रयहीनों पर कृपालु सद्गुरु की निर्णय रूपी कृपादृष्टि से समस्त खानी-वाणी जाल को परखो॥ १६॥

लखै जाल सो थीरपद पावै। फेर भिटै ना जुइनि भरमावै ॥१७॥
ताते पारख शरण सुखाला। लखहु सुलक्षण होहु निहाला ॥१८॥

शब्दार्थ — जुइनि = योनि; खानि। सुखाला = सुखदायक। निहाला = कृतार्थ; पूर्णतृप्त; जीवन्मुक्त।

भावार्थ — जो व्यक्ति खानी-वाणी जाल को परख कर उनसे विरक्त हो जाता है वह स्थिरपद पा जाता है। उसके बारम्बार जन्म-मरण के चक्कर मिट जाते हैं, वह पुनः योनियों में कभी नहीं आता॥ १७॥ अतएव हे मुमुक्षु! पारखी सद्गुरु की सुखदायक शरण में जाओ, और मानवता तथा जीवन्मुक्ति के उत्तम लक्षणों को पहचान कर धारण करो तथा जीवन्मुक्ति सुख में विहरण करो॥ १८॥

मन मनसा संकल्प मिटावो। काल कला लखि गुरुअपनाओ ॥१९॥
हे शिष्य हंसदृष्टि तब होई। गुरुमुख ठहरै हंस पद जोई ॥२०॥

शब्दार्थ — मनसा = मन से उत्पन्न; इच्छा, वासना। संकल्प = निश्चय; कल्पना; तात्पर्य में गलत निश्चय। कालकला = मन की कल्पना। हंस दृष्टि = विवेकदृष्टि; परखदृष्टि।

भावार्थ — मन, मन की इच्छा-वासनायें तथा गलत निश्चय को नष्ट करो; और मनकी कल्पनायें परख कर दूर करो और गुरु के पारखबोध को अपनाओ॥१८॥ हे शिष्य! तभी तुम्हारी हंसदृष्टि व पारखदृष्टि होगी। गुरुमुख निर्णय के अनुसार स्वरूपस्थिति ही हंसपद, विवेकी का पद एवं जीवन्मुक्तिदशा है॥ २०॥

२२—गुरु और शिष्य के स्वरूप और अंततः विनम्रतापूर्वक स्वस्वरूप में स्थित होने वाला ही गुरु है।

शिष्य प्रश्न—२०

दोहा—सुनि गुरु वानी अति सुहृदय, कहै शिष्य कर जोर।
साहेब दीनदयाल प्रभु, भाखेउ यथारथ ठौर ॥२३९॥

शब्दार्थ — सुहृदय = सुन्दर हृदयवाला; स्नेही। **भाखेउ** = कहा। **ठौर** = स्थिति।

भावार्थ — गुरु के अत्यन्त सुन्दर हृदय एवं स्नेही स्वभाव से निकली हुई निर्णय वाणियों को सुनकर शिष्य हाथ जोड़कर कहने लगा—हे साहेब ! हे दीनदयाल स्वामी ! मुझे आपने वास्तविक स्थिति बतलाया है ॥ २३९ ॥

मैं आयउँ राउर शरण, दीन गरीब निवाज।
शिष्य आहि लघौत पद, कैसे गुरुपद आज ॥२४०॥

शब्दार्थ — राउर = आपका; श्रीमान का। **निवाज** = दया करने वाला। **लघौत** = लघु, छोटा। **आज** = अभी, वर्तमान में।

भावार्थ — हे दीनों पर दया करने वाले सद्गुरु ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। प्रश्न होता है कि शिष्य की श्रेणी लघु एवं छोटी है फिर वह अभी कैसे गुरुस्वरूप हो जायगा ? ॥ २४० ॥

हंस पदारथ सार सो, कैसे पावै येह।
शिष्य भाव सादर्श होय, पद अछिन्न होय नेह ॥२४१॥

शब्दार्थ — हंस पदारथ = चेतन जीव को स्थिति। **सार** = महत्त्वपूर्ण। **सादर्श** = स + आदर्श; आदर्श सहित; आदर्श = दर्पण, आइना, मूल लेख, असल, नमूना, यहाँ का तात्पर्य है नमूना।

भावार्थ — वह जो चेतनस्वरूप की स्थिति है महत्वपूर्ण है, उसे यह दास कैसे प्राप्त करे ? और किस युक्ति से जीवनपर्यंत हमारा शिष्यभाव आदर्शपूर्ण रहे और सद्गुरु के चरणों में अखण्ड श्रद्धा बनी रहे ? ॥ २४१ ॥

जाते साहेब धर्मता, सिखापन न मिटाय।
रहै राउरी टहलते, हंस थीर पाय ॥२४२॥

शब्दार्थ — धर्मता = धर्म का भाव, कर्तव्य। **सिखापन** = शिक्षा उपदेश। **राउरी** = आपका। **हंस** = चेतन, जीव।

भावार्थ — हे सद्गुरु ! ऐसी युक्ति बतादें जिससे हमारा कर्तव्य तथा आपसे प्राप्त उपदेश नष्ट न हो, और आपकी सेवा करते हुए साधनामार्ग में चलकर यह जीव स्वरूपस्थिति को प्राप्त कर ले॥ २४२ ॥

यह अनुक्रम यथाविधि, दीजै मोहि बताय।
जाते मार्ग प्रत्यक्ष तव, हंता नहिं समुहाय ॥२४३॥

शब्दार्थ — अनुक्रम = क्रमबद्ध, सिलसिलेवार। **यथाविधि** = विधिपूर्वक। **तव** = तुम्हारे, आपके। **समुहाय** = समुहाना, सामने होना।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! ये सारी बातें क्रमबद्ध एवं विधिपूर्वक हमें बतला देने की कृपा करें, जिससे आपके बताये हुए कल्याणमार्ग में किसी प्रकार का अहंकार मेरे सामने न आवे ।। २४३ ।।

शिष्य गुरुपद नेहता दिन दिन बढ़ै दयाल ।
सहज ही बंधन मिटै, युक्ति कहो ततकाल ।।२४४।।

शब्दार्थ — गुरुपद = सद्गुरु के चरण, हंसदशा की शुद्ध रहनी, स्वस्वरूप चेतन की स्थिति । नेहता = प्रेम, श्रद्धा ।

भावार्थ — हे कृपालु सद्गुरु ! शीघ्र ऐसी युक्ति बतला दो कि इस दास के हृदय में सद्गुरु के चरणों में, शुभाचरणों में तथा स्वस्वरूप की स्थिति में दिनप्रतिदिन श्रद्धा बढ़ती जाय,और सरलता से समस्त बन्धन कटकर जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति हो।।२४४।।

स्वामी भाव मोरे हृदयते, कबहुँ न होय अभाव ।
युक्ति बताओ तौनसी लहै न काल को दाव ।।२४५।।

शब्दार्थ — स्वामीभाव = स्वामी का भाव । काल = मन । दाव = दाँव, चाल ।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! "आप हमारे मालिक हैं" यह भाव हमारे हृदय से कभी न जाय । हमें वही साधना बतलानेकी कृपा करें जिससे मन की चाल न लगे।२४५।

सद्गुरु उत्तर—२०

दोहा—हे शिष्य उत्तम बुद्धि तव भल सो पूछेहु मोहि ।
कहौं यथारथ साधु मत, प्रगट देखावों तोहि ।।२४६।।

शब्दार्थ — तव = तुम्हारा । प्रगट = प्रत्यक्ष, स्पष्ट ।

भावार्थ — हे शिष्य तुम्हारी बुद्धि उत्तम है । मुझसे तुमने अच्छा प्रश्न किया है । मैं वास्तविक संतमत के अनुसार कहकर तुम्हें स्पष्ट समझाता हूँ ।। २४६ ।।

साँच कही हंता लहै, जीव रूप विनसाय ।
विनसे चौरासी भये, ब्रह्म अस्मि कहाय ।।२४७।।

शब्दार्थ — साँचकही = सत्य कहता हूँ । जीवरूप = जीव का वास्तविक स्वरूप । विनसाय = विनष्ट हुआ, तात्पर्य में विस्मृत हुआ । ब्रह्म अस्मि = ब्रह्म हूँ ।

भावार्थ — मैं सत्य कहता हूँ कि जीव मिथ्या अहंकार के वश होकर और मैं ब्रह्म हूँ मानकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूला रहा और भूलवश चौरासी में भटकता रहा ।। २४७ ।।

एक एक वर्णन करौं, सुन शिष्य सावध होय ।
निर्णय शिष्य यथार्थ लहु, भरम त्यागि है सोय ।।२४८।।

शब्दार्थ — सावध = सावधान।

भावार्थ — मैं एक-एक बात का निर्णय करता हूँ। हे शिष्य ! तू उन्हें सुनकर सावधान हो जा। जो यथार्थ न्याय प्राप्त करेगा वही सभी भ्रांतियों से मुक्त होगा ॥ २४८ ॥

प्रथमापद सो नेकता, भयो यथाविधि सोय।
सो सब तुम जानेहु भले, लखेहु आपनो लोय ॥२४९॥

शब्दार्थ — प्रथमापद = मनुष्य शरीर। नेकता = अनेकता, अनेक होने का भाव। लोय = आँख; तात्पर्य में बुद्धि, समझ या विवेक।

भावार्थ — मनुष्य शरीर एवं मनुष्य के मन से ऐसी कल्पना उठी कि "एक ब्रह्म से ही अनेकत्वपूर्ण जगत हुआ है" इसकी कल्पना जिस प्रकार से हुई है हे शिष्य ! पूर्वमें इन सब बातों को तुम अच्छीतरह समझ लिये हो और अपने विवेक-नेत्रों से परख लिये हो ॥ २४९ ॥

कारण बढ़वत बहु बढ़ो, भये अनेकन रूप।
सो अनेकता एकमों, पुनि अनेक स्वरूप ॥२५०॥

शब्दार्थ — कारण = ब्रह्म।

भावार्थ — ब्रह्म ही सबका कारण है यह कल्पना बढ़ाते-बढ़ाते बहुत बढ़ गयी और बहुतों को यह भ्रम दृढ़ हो गया कि एक ब्रह्म से ही अनेकत्वपूर्ण जगत उत्पन्न हुआ है; और अनेकत्वपूर्ण जगत पुनः एक ब्रह्म में मिल जाता है और पुनः उससे उत्पन्न होकर अनेक रूप हो जाता है ॥ २५० ॥

बहै सो ब्रह्म अनेक होय, रचो जाल विस्तार।
पुनि सो आपै एक होय, करै अनेक संहार ॥२५१॥

शब्दार्थ -- बहै = बहना; नीचे जाना; अपने पद से पतित होना।

भावार्थ — लोगों ने ऐसी वाणियों का विस्तृत जाल रचा है कि वह सच्चिदानंद ब्रह्म अपने पद से पतित होकर और अनेकत्वपूर्ण जगत बनकर बह चला। फिर वह स्वयं सबको समेट कर एक हो जाता है ॥ २५१ ॥

तेहि जालमें जीयरा, परे पाय दुख भूरि।
जीव भरोसे चैनके, पर परी आँख में धूरि ॥२५२॥

शब्दार्थ —भूरि = बहुत। भरोसे = विश्वासमें। पर = परन्तु। धूरि = धूल।

भावार्थ — इस ब्रह्म और जगत के कल्पित जाल में पड़े-पड़े जीव अनादिकाल से अनन्त दुःख पाते रहे। कल्पित ब्रह्मानंद और विषयानन्द में जीव तो विश्रांति पाने के विश्वास में है, परन्तु वस्तुतः उनके विवेक के नेत्रों में धूलि पड़ी हुई है॥२५२॥

दुखित भये अकुलायके, ढूँढ़े निज कल्यान।
साँच धीरता उर बस्यो, देख्यो पद परवान ॥२५३॥

शब्दार्थ — अकुलायके = व्याकुल होकर। पद = स्वरूप, स्थिति। परवान = प्रमाण, सत्य, सीमा।

भावार्थ — इन असंख्य जीवों में से कोई अनेक नरजन्मों का शुद्धसंस्कारी जीव बहुत दुःखी एवं व्याकुल होकर दुःखों से छुटकारा रूप अपना कल्याण खोजने लगा। उसके इस विनम्र एवं सत्यान्वेषण के उद्देश्य से उसके हृदय में सत्य, धैर्य, विचार आदि सद्गुण निवास करने लगे। इस प्रकार उसकी दिव्यदृष्टि हो जाने से वह अपने चरम-सत्य चेतनस्वरूप एवं पारखपद को समझ लिया ॥ २५३ ॥

विशेष— उपर्युक्त घटना सद्गुरु कबीर में घटित हुई; तथा सम्पूर्ण योग्यता को प्राप्त हुए किसी पुरुष में यह घटना घट सकती है।

सो प्रमाण पद हंसको, एकोहं भ्रम जाल।
आनंदित भौ साँचमों, शिष्य सो प्रथम दयाल ॥२५४॥

शब्दार्थ — प्रमाण = वास्तविक। हंस = विवेकी। एकोहं = एकोऽहं; एक मैं। साँचमों = सत्यस्वरूप में।

भावार्थ — सत्य, धैर्य, विचारादि सद्गुण युक्त स्वस्वरूप पारख की स्थिति ही वास्तविक हंसपद है;और "मैं अद्वैत चराचर ब्रह्म हूँ" यह मान्यता मनका जाल है। हे शिष्य ! वही पुरुष प्रथम अपने और पराये के लिये कृपालु हुआ जो इस प्रकार मनकी कल्पनाओं को छोड़कर अपने सत्य स्वरूप की स्थिति में सुखी हुआ ॥ २५४ ॥

दुखिया सो सुखिया भयो, सो पद शिष्य तव आय।
बोधेउँ हंस जानि निजु, पद सो गुरू कहाय ॥२५५॥

शब्दार्थ — बोधेउ = बोध दिया; ज्ञानोपदेश किया। हंस = मनुष्य जीव; जिज्ञासु; विवेकी।

भावार्थ — उपर्युक्त कथनानुसार अबोध-वश दुखी जीव बोध पाकर सुखी हो गया। हे शिष्य ! वही दशा तुम्हारी भी है (अन्तर इतना ही है कि वह महापुरुष स्वतः पुरुषार्थ से बोध प्राप्त किया और तुम गुरु से प्राप्त करोगे। और दुखी से सुखी हो जाओगे।) वह बोधवान दयालु पुरुष अन्य मनुष्यों को पूर्ववत अपने समान दुखी एवं सजातीय जानकर उन्हें सत्य बोध देने लगा; इसलिये उसका दर्जा गुरु का कहलाने लगा। (इसी प्रकार तुम भी अपने बोध स्वरूप में पूर्ण स्थित होकर जब दूसरे को बोध देने लगोगे तब गुरुदर्जा को प्राप्त होकर गुरुरूप हो जाओगे) ॥२५५॥

विशेष — परमार्थतः गुरु व सद्गुरु वही है, जो अपने स्वरूप में स्थित है। यदि वह दूसरे को भी उपदेश देता है तो वह व्यवहारतः भी गुरु कहलाने लगता है।

जो स्वयं तृप्त हुए बिना दूसरे को बोध देने लगता एवं शिष्य बनाने लगता है वह व्यापारी है।

उपर्युक्त दोहे का भाव तो यह है कि जो व्यक्ति भ्रांति, कल्पना, विषयासक्ति तथा मनके जाल से मुक्त होकर और अपने चेतनस्वरूप का ठीक से बोध प्राप्त करके अपने आप में स्थित हो जाता है वही सद्गुरु स्वरूप है।

मन माया संकल्पको, निरसन भया अपार।
बोध हेतु दुख मिटनको, गुरुमत प्रगट विचार ॥२५६॥

शब्दार्थ — माया = धोखा, भ्रम। निरसन = खण्डन, निवारण।

भावार्थ — मन और मन के अपार भ्रमों तथा गलत निश्चयों का निवारण करके यथार्थ स्वरूपबोध की प्राप्ति और सर्व दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति के लिये संसार में गुरुमत एवं गुरुविचार प्रकट हुआ है ॥ २५६ ॥

गुरुमत लखै सो शिष्य है बोधे सो गुरुदेव।
तारण तरण सो आपु ही एकै हंसा भेव ॥२५७॥

शब्दार्थ — बोधे = ज्ञानोपदेश करे। हंस = विवेकी, स्वरूपस्थ। भेव = भेद, रहस्य।

भावार्थ — जो व्यक्ति सद्गुरु के विचारों एवं ज्ञानको समझता है वह शिष्य है, और जो उस ज्ञान को विधिवत समझाता है वह गुरुदेव है। फिर यथार्थ बोध की स्थिति में पहुँच कर वे दोनों स्वयं तारण-तरण हैं; अर्थात दूसरों को मुक्ति का उपदेश करने वाले तथा अपना मुक्तरूप हैं। क्योंकि सभी विवेकियों की स्थिति एक समान है ॥ २५७ ॥

विशेष — मिलान कीजिये कुछ वचनोंसे —

गुरु शिष्य पारख कहलाये। दोउ देह जब दूरि बहाये ॥
पारख में समता होय जाई। शिष्य भाव न रहै गुरुवाई ॥
देह भावते दास कहावै। पारख भावते एक होय जावै ॥
पारख में हम तुम हैं एका। देह भाव ते भिन्न विवेका ॥

(निर्णयसार ५८ दोहा के बाद)

सद्गुरु कबीर भी कहते हैं—

समझे की गति एक है, जिन समझा सब ठौर।
कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहि और कि और ॥

(बीजक, साखी १९०)

शिष्य ने प्रश्नारम्भ में पूछा था कि शिष्य पद लघु है, फिर वह गुरु कैसे हो सकता है? गुरु ने बताया कि कोई लघु तब तक है जब तक अबोध एवं अज्ञान के

कारण दुःखों में पड़ा है और जब अज्ञान दूर होकर दुःखरहित अपनी स्थिति पा गया तब वही गुरु हो जाता है ।

सत्य निर्णय शब्द—३

हंसा ऐसो गुरुमत भारी ॥ १ ॥
लखे ते भवमें आवत नाहीं, भवके वहोत बेगारी ॥२॥
शिष्य सिखापन गुरुकी माने, गुरु साधुनके आज्ञाकारी ॥३॥
तेई मुक्ति पदारथ पावै, यमते रहनि निन्यारी ॥४॥

शब्दार्थ — भव = जन्म; संसार । बेगारी = जबर्दस्ती । सिखापन = उपदेश; सीख । यम = मन तथा मनकी कल्पनायें ।

भावार्थ — हे समझदारो ! सद्गुरु का सिद्धान्त सर्वोच्च है ॥ १ ॥ जो व्यक्ति उसको ठीक से समझकर उसे अपने जीवन में उतार लेता है वह पुनः उस जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं आता; जिसमें विवशता पूर्वक अपार दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ २ ॥ अतएव जन्मादिक दुःखों से मुक्त होने के लिए मनुष्य का कर्तव्य है कि वह शिष्य बनकर सद्गुरु के सत्योपदेशों को ग्रहण करे और विवेकवान सद्गुरु तथा संतों का आज्ञाकारी बने ॥ ३ ॥ वही व्यक्ति अपने आचरणों को मनके जालों से पृथक करके मोक्षपदार्थ की प्राप्ति करता है ॥ ४ ॥

सत्य भेष सत्य रहनि साधुकी, संत दरश अविकारी ॥५॥
ते अधिकारी गुरु पारखके, निर्जिव धोख निवारी ॥६॥
गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद, बसै आनंद अटारी ॥७॥
प्रेम भाव साधुन सेवकाई, कहहिं कबीर पुकारी ॥८॥

शब्दार्थ — रहनि = रहने का ढंग; रहन-सहन; आचरण । निर्जिवधोख = जड़ को चेतन मान लेने का भ्रम । अटारी = कोठा; अट्टालिका ।

भावार्थ — संतों के वेष सत्यभाव के प्रेरक, सात्विक एवं उनके जीवन आचरण सत्यता से पूर्ण होते हैं । ऐसे संतों के दर्शन ही निर्मल होते हैं ॥ ५ ॥ वे ही सद्गुरु के पारखबोध पाने के योग्य होते हैं जिनके हृदय से जड़ में चेतन होने का भ्रम दूर हो गया है ॥ ६ ॥ गुरुमुख निर्णयवचनों के अनुसार रहनी-गहनी में चलने वालों का सुख अनुमान, कल्पना एवं भ्रमरहित स्थिति है । ऐसे पुरुष सदैव जीवन्मुक्ति सुख की अट्टालिका पर निवास करते हैं ॥ ७ ॥ सद्गुरु कबीर स्पष्ट कहते हैं कि सद्गुरु-संतों के चरणों में प्रेम, श्रद्धा एवं सेवा से उपर्युक्त जीवन्मुक्तिस्थिति का निष्कंटक सुख मिलता है ॥ ८ ॥

विशेष — "ते अधिकारी गुरु पारख के, निर्जिव बोख निवारी।" यह बात महत्त्वपूर्ण है। वही व्यक्ति पारखपद का ज्ञान प्राप्त कर सकता है जिसके मनसे जड़ पदार्थों में जीव या चेतन होने का भ्रम निकल गया है। लोग मान रखे हैं कि "एक चेतन सर्वत्र व्याप्त है। वही सूर्य को तपाता, वायु को चलाता, पानी को बहाता और अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करता है।" परन्तु यह सब केवल भ्रांति-ही-भ्रांति है। वस्तुतः ये सब जड़ हैं, और अपने गुण-धर्मों से चलते हैं। अद्वैतवाद में तो यहाँ तक मान लिया गया है कि "वस्तुतः जड़ नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। सब कुछ चेतन ही है। सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र, तारे, जल, अग्नि, वायु, आकाश, पर्वत, पत्थर सब कुछ चेतन है।" यह महत्तम भ्रांति है।

अतएव जब उपर्युक्त भ्रांतियों का सर्वथा अभाव हो जायगा, तभी पारखबोध हो सकता है। वास्तव में सारा दृश्य पंचविषय जड़ है और चेतन इनसे पृथक एवं नाना हैं।

दोहा—हे शिष्य निर्णय जो लखै, तेही भया निहाल।
तेई गुरु तेई शिष्य गुरु, तेई साधु दयाल ॥२५८॥

शब्दार्थ — शिष्यगुरु = सद्गुरु का शिष्य।

भावार्थ — हे शिष्य ! जो वास्तविक निर्णय को समझता तथा उसे धारण करता है, वही कृतार्थ हो जाता है। वही व्यक्ति सद्गुरु है, सद्गुरु का शिष्य है, संत है तथा अपने-पराये पर दयालु है ॥ २५८ ॥

निर्णय यथा प्रमाण जिन, लहै दृष्टि निज सोय।
ते शिष्य हंता क्यों परै, रहै अपन पद जोय ॥२५९॥

शब्दार्थ — हंता = अहंकार। जोय = जो।

भावार्थ — जो वास्तविकता के अनुसार निर्णय ग्रहण करता है वह अपनी पारखदृष्टि को प्राप्त करता है। हे शिष्य ! जो अपने चेतन स्वरूप की स्थिति में स्थिर हो गया वह शरीरादि किसी पदार्थ के अहंकार में क्यों पड़ेगा ? ॥ २५९ ॥

गुरुमत जाके उर वस्यो, निश्चल भयो सो जीव।
हे शिष्य अधिकारी अहै, साधुनके गुरु पीव ॥२६०॥

शब्दार्थ — गुरुमत = गुरुविचार; सद्गुरु का पारखसिद्धान्त। अधिकारी = हकदार; योग्य। पीव = प्रियतम; अत्यंत प्यारा।

भावार्थ — जिसके हृदय में गुरुका स्वरूपबोध बस जाताहै, वह व्यक्ति अविनाशी एवं अचल स्वरूप में शांत हो जाता है। हे शिष्य ! वही जीवन्मुक्तिसुख का हकदार है; वही सद्गुरु का स्वरूप है तथा वही साधुओं एवं साधकों का प्रियतम अर्थात अत्यंत प्यारा है ॥ २६० ॥

विशेष — जो सम्पूर्ण अहंकार को छोड़कर स्वस्वरूप में स्थित हो जाता है, ऐसा निर्मान जीवन्मुक्त पुरुष ही संत या सद्गुरु है और वह मुमुक्षुओं एवं साधकों का अत्यंत प्यारा होता है। क्योंकि उन सबके लिये वह आदर्श, प्रकाशस्तम्भ तथा दिशानिर्देशक है।

गुरु साधुहि सन्मानही, मिथ्या जालहि त्याग।
साँच हृदय दाया सहित, निज सुख गुरु अनुराग ॥२६१॥

शब्दार्थ — निजसुख = स्वरूपस्थिति जनित शांति।

भावार्थ — कल्याणइच्छुक व्यक्ति सद्गुरुसंतों का आदर-सत्कार करता है और व्यर्थ के मोह-ममताके बन्धनोंका त्याग करता है। उसका हृदय सत्यभाव एवं सत्यज्ञान से पूर्ण, दया संयुक्त, सद्गुरु भक्ति का अनुरागी तथा स्वरूपस्थितिजनित शांति से भरा होता है॥ २६१॥

दीनदयाल को मत लखै, शिष्य स्वतः पद थीर।
साधुन गुरुसम जानि के, सेवहिं मन वच धीर ॥२६२॥

शब्दार्थ — मत=विचार, सिद्धांत; पारख बोध। धीर=धैर्यवान।

भावार्थ — हे शिष्य! मुमुक्षु को चाहिये कि वह दीनों पर कृपा करने वाले सद्गुरु से पारखबोध की प्राप्ति करे और पुनः सदाचरण युक्त रहनी में चलकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाय। उस धैर्यवान को चाहिये कि वह विवेक-वैराग्य से चलने वाले संतों को भी सद्गुरु के समान ही जानकर यथाशक्ति मन, वचन तथा कर्म से उनकी सेवा करे॥ २६२॥

साधु भेष जग विदित है, तेई रूप गुरु कीन्ह।
सो प्रयत्क्ष पद छाड़िके, अनुमय काल अधीन ॥२६३॥

शब्दार्थ — अनुमय=अनुमित; माना हुआ; कल्पित। काल=मन; कल्पना।

भावार्थ — संतों का शुद्ध वेष संसार में मंगलमयता का चिन्ह प्रकट है। सद्गुरु ने साधु का ही रूप धारण किया है। कितने लोग ऐसे संत-सद्गुरु के प्रत्यक्ष पूज्यपद की उपासना को छोड़कर मन एवं कल्पना के अधीन पड़े हुए कल्पित पुरुष की उपासना में लटके हैं॥ २६३॥

साधुन को जल अन्नते, वस्त्र सहित करु रच्छ।
शक्ये यथार्थ अनुक्रमना, गुरु सेवक शिष्य स्वच्छ ॥ २६४॥

शब्दार्थ — शक्ये=शक्य, होने योग्य, साध्य, संभव; जहाँ तक अपनी शक्ति चले। अनुक्रमना = अनुक्रमण; क्रमपूर्वक आगे बढ़ना, अनुगमन।

भावार्थ — कल्याण इच्छुक भक्तों को चाहिये कि वे जल, अन्न, वस्त्र व जीवन-

धारणोपयोगी वस्तुओं से संतों के शरीर की रक्षा एवं सेवा करें। इस प्रकार जहाँ तक अपनी शक्ति चले भक्ति, सेवा, धर्म, वैराग्य मार्ग में धीरे-धीरे आगे बढ़ें। हे शिष्य ! विवेकी सद्गुरु-संतों की सेवा करने वाला व्यक्ति दिनप्रतिदिन पवित्र होता जाता है ॥ २६४ ॥

गुरु साधु पद दीर्घ जग, हे शिष्य सबन प्रमान।
त्रिविधि ताहि सेवन करै, आपु दासपद मान ॥२६५॥

शब्दार्थ — पद = दर्जा, श्रेणी, स्तर। दीर्घ = महान। त्रिविध = तीन प्रकार मन, वाणी तथा कर्म से। आपु दासपद मान = अपने आप को सेवक के दर्जे ही में माने।

भावार्थ — हे शिष्य ! यह सबने सत्य माना है कि संसार में वैराग्यवान सद्-गुरु तथा संतों का स्तर महान है। अतएव मन, वाणी तथा कर्म से उनकी सेवा करे; और अपने आप को दास के स्तर में ही माने ॥ २६५ ॥

विशेष — मनुष्य चाहे जिस दिशामें उन्नति करना चाहे उसे उसके लिये आदर्श की आवश्यकता पड़ती है। डॉक्टर बनने के लिये किसी योग्य डॉक्टर के आदर्श (नमूने) की आवश्यकता है। वकील और विद्वान बनने के लिये भी अच्छे वकील तथा उच्चविद्वान के आदर्श की आवश्यकता है।

इसी प्रकार परमशांति के इच्छुकों को शांतिप्राप्त संत-सद्गुरुजनों के आदर्श की आवश्यकता है। संसार के ताप से जलते हुए प्राणी को शीतलता प्राप्त हो वह एक शीतल छाया संत हैं। साधुवेष में तो कितने ही संसारी लोगों के समान तथा उनसे भी अधिक संसार के राग-द्वेष के ताप में जलने वाले लोग हैं। परन्तु यहाँ उनकी चर्चा की जा रही है जो सचमुच संत हैं। जिनके चित्त में न किसी के लिये राग है और न द्वेष। ऐसे संतों की मन, वाणी तथा कर्म से सेवा करना कल्याणइच्छुकों का कर्तव्य है।

अपने में सब प्रकार की योग्यता होने पर भी अपने को कभी यह नहीं मानना चाहिये कि मैं संत-गुरु हूँ। मुक्तिइच्छुक को चाहिये कि वह अपने आप को संत-गुरु का दास ही समझे। अपने को लघु मानना ही श्रेष्ठता का लक्षण है,और जो स्वयं को ही श्रेष्ठ मानने लगता है; अथवा दूसरों द्वारा अपने आपको बड़ा मनवाने की चेष्टा करता है वह बेचारा मनका गुलाम एवं दीन है।

जहाँ विवेक की कमी है वहाँ साधु वेषधारियों, गुरुओं, महंतों, आचार्यों, मण्ड-लेश्वरों एवं गद्दीधारियों में अहंकार-ही-अहंकार भर जाता है। वे परमार्थ से प्रायः शून्य होकर पैसा, जमीन, मकान, जनसमूह, शिष्य,पुजापा आदि को ही महत्वपूर्ण मान बैठते हैं जो नश्वर, क्षणिक, असावधान होने पर बन्धनप्रद हैं। अतएव "आपु दास पद मान।" यह पद बड़ा ही महत्वपूर्ण है।

सद्गुरु कबीर ने भी कहा है—

सबते लघुता भली, लघुता से सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, शीश नवै सब कोय॥ (बीजक, साखी ३२३)

हे शिष्य जे दासातने, हंताते ते भिन्न।
तेई गुरु पारख लहै, हंत कल्पना कीन्ह॥२६६॥

शब्दार्थ — दासातने=दासातन, दास होने का भाव, विनम्र। कीन्ह=कर देना; तात्पर्य में त्याग करना या नाश करना।

भावार्थ — हे शिष्य! जो व्यक्ति सेवापरायण एवं अत्यंत विनम्र, होता है, वह अहंकार से सर्वथा पृथक होता है। वही सद्गुरु द्वारा पारखबोधकी प्राप्ति करता है; और समस्त अभिमान एवं कल्पनाओं का विनाश कर देता है॥ २६६॥

तेई उत्तम पारखी, गुरुमत के अधिकार।
हंता नाशै शिष्य जो, हंस थीरपद सार॥२६७॥

शब्दार्थ — **गुरुमत**=गुरुसिद्धांत; पारखपद। **अधिकार**=हक, स्वत्व। **सार**=महत्वपूर्ण।

भावार्थ — वे ही उच्च पारखी हैं और पारखपद एवं स्वरूपस्थिति के अधिकारी हैं। हे शिष्य! जो शरीरादि सब अहंकारों का त्याग कर देता है, वही विवेकी पुरुष महत्त्वपूर्ण स्थितिपद को प्राप्त करता है॥ २६७॥

दास भाव सेवा सहित, भक्ति साधु गुरुकेर।
यह प्रकार हंसा वसै, सेवक को नहिं फेर॥२६८॥

शब्दार्थ — **हंसा**=विवेकी। **वसै**=निवास करे; स्वरूप में स्थित होवे। **फेर**=चक्कर।

भावार्थ — अपने में दास भाव एवं विनम्रता रखकर विवेकी संत-सद्गुरु की सेवा करते हुए उनमें श्रद्धा-भक्ति रखे। इस प्रकार विवेकी निष्कंटक स्वरूप-स्थिति में निवास करता है। क्योंकि जो अपने आप को सेवक, दास और लघु मानकर विनम्रता से चलता है, उसको कोई चक्कर नहीं पड़ता॥२६८॥

सत्यशब्द टकसार-४ : बीजक, शब्द ११२

झगरा एक बड़ो राजाराम। जो निरुवारे सो निर्वान॥ १॥
ब्रह्म बड़ा कि जहाँसे आया। वेद बड़ा कि जिन्ह उपजाया॥ २॥
ई मन बड़ा कि जेहि मन माना। राम बड़ा कि रामहि जाना॥ ३॥
भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदास। तीर्थ बड़ा कि तीर्थ का दास॥ ४॥

शब्दार्थ — **राजाराम** = श्रेष्ठ राम, मनुष्य। **निरुवारे** = निर्णय करे, सुलझावे। **निर्वान** = निर्वाण, शाँत, मुक्त। **जहाँ से आया** = जिससे उसकी कल्पना खड़ी हुई। **राम** = ईश्वर। **कबिरा** = भूला जीव।

भावार्थ — हे श्रेष्ठ मनुष्य ! एक बहुत झगड़ा बढ़ा हुआ है। जो व्यक्ति इसका सुलझाव करेगा, वही शांति पायेगा ॥१॥ ब्रह्म बड़ा है कि उसकी कल्पना जिस मनुष्य से खड़ी हुई है, वह मनुष्य बड़ा है ? वेद बड़े हैं कि जिन्होंने उनकी रचनायें की हैं, वे बड़े हैं ? ॥२॥ यह मन बड़ा है कि जो व्यक्ति मनको मानता है, वह बड़ा है ? ईश्वर बड़ा है कि अपने से पृथक ईश्वर की कल्पना करके, उसे श्रेष्ठ समझने वाला बड़ा है ? ॥३॥ भूले मनुष्य तीर्थों में मारे-मारे भटकते हैं; परन्तु तीर्थ बड़े हैं कि तीर्थों को मानने वाले उसके दास बड़े हैं ? ॥४॥

विशेष — वस्तुतः ब्रह्म की कल्पना करने वाले, वेदों के रचने वाले, मनको मानने वाले, ईश्वर का अनुमान करने वाले तथा तीर्थों की दासता करने वाले ये मनुष्य जीव ही श्रेष्ठ हैं। मनुष्य इन सबको न जानें, मानें तो ये कुछ भी नहीं हैं।

दोहा—यह दृष्टांत अनुक्रम, है व्यवहार विचार।
हंता मिटै तो दासपद, भिन्न आहि व्यवहार ॥२६९॥

शब्दार्थ — **दृष्टांत** = मिसाल; उदाहरण। **अनुक्रम** = सिलसिला; प्रसंगवश। **व्यवहार** = कार्य; विषय; स्थिति; सम्बन्ध; आचरण। **विचार** = विचार करने योग्य; निर्णय योग्य।

भावार्थ — उपर्युक्त बीजक के पद का उदाहरण तो प्रसंगवश दे दिया गया है, परन्तु इस शब्द का व्यावहारिक पक्ष विचार करने योग्य है। कथन का मुख्य उद्देश्य तो यह है कि जिसके जब सारे अहंकार विनष्ट हो जाते हैं तब वह वास्तविक दासपद पाता है। उसके व्यवहार उपर्युक्त शब्द के आशय से पृथक हैं ॥२६९॥

विशेष — 'झगरा एक बढ़ो राजाराम' शब्द का जो उदाहरण दिया गया है वह सर्वथा यहाँ नहीं घटता है। "ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया ...... तीर्थ बड़ा कि तीर्थ का दास।" आदि से यहाँ इतना ही लिया गया है कि ब्रह्म या तीर्थ बड़े नहीं हैं अपितु जो उनका दास बना है वह मनुष्य ही बड़ा है। 'दास ही बड़ा है' इतना ही इस प्रसंग से साम्य है। परन्तु इस बीजक शब्द का व्यावहारिक पक्ष कुछ दूसरा है और इस प्रसंग का दूसरा है।

इस बीजक शब्द का मूल आशय है कि कल्पना-मान्यता नहीं बड़ी होतीं, अपितु कल्पना करने, तथा मानने वाले मनुष्य बड़े होते हैं। और इस प्रसंग का आशय है कि जो सारे अहंकारों को छोड़ देता है वह दासपद पाता है जो जीवन्मुक्ति पदकी प्राप्ति में सहायक है। जैसे "हंता मिटै तो दासपद"।

शिष्य ने प्रश्न किया था कि "शिष्य आहि लघीत पद, कैसे गुरुपद आज।" अर्थात शिष्य का स्तर लघु है, फिर वह गुरुरूप कैसे हो सकता है? गुरुने बड़े विस्तार से यह बताया कि अज्ञान से लोग लघु हैं। जो अज्ञान छोड़ देता है वही दीर्घ एवं महान हो जाता है। वैसे व्यवहार में वे पुरुष सब अहंकार को त्याग कर विनम्र रहते हैं। यदि उन महापुरुष को व्यवहार में दूसरे द्वारा पूजा-सम्मान स्वीकार भी करना पड़े तो भी वे अन्दर से निर्मान होते हैं। वस्तुतः जो हृदय से दास-भाव वाला एवं विनम्र है, वही महान, वही गुरुस्वरूप है।

२३—दूसरे को उपदेश देने की शैली का वर्णन

शिष्य प्रश्न—२१

दोहा—हे प्रभु कृपानिधान गुरु, जानेउँ यह सब रीति।
अब कहिये मत विमल निज, गुरु उपदेश संप्रीति ॥२७०॥

शब्दार्थ — रीति = ढंग, नियम। संप्रीति = पूर्ण तुष्टि, प्रसन्नता, प्रेम, सद्भावना, मैत्री।

भावार्थ — हे कृपानिधान गुरस्वामी! आपने जो कुछ बताया वह सभी नियमावलियों को मैं समझ गया। कृपया अब आप इस विषय पर अपना निर्मल विचार प्रगट करें कि गुरु-द्वारा प्राप्त ज्ञान का दूसरों के प्रति कैसे उपदेश किया जाय जिससे जिसको उपदेश किया जाय उसे पूर्ण संतोष मिले तथा उसकी प्रसन्नता, सद्भावना और मैत्री भाव दृढ़ हो? ॥ २७० ॥

गुरुपद जानेउँ नीकि विधि, अनुक्रम कहु उपदेश।
जाते तव पद प्रीति अति, दिन दिन सरस सुहेत ॥२७१॥

शब्दार्थ — अनुक्रम = सिलसिला; शैली। सरस = रसपूर्ण, प्रेममय। सुहेत = उत्तम प्रयोजन, कल्याण।

भावार्थ — हे गुरुदेव! गुरुपद की स्थिति एवं स्वरूपबोध को मैं भलीभाँति जान गया हूँ; अब हमारे लिए दूसरों को उपदेश देने के लिए शैली बताने की कृपा करें, जिससे अपना उत्तम प्रयोजन कल्याण समझ कर आपके चरणों एवं बोध में दिन-प्रतिदिन अत्यंत रसपूर्ण प्रेम बढ़ता जाय ॥ २७१ ॥

सद्गुरु उत्तर—२१

चौपाई—१७

सुन शिष्य सावधान मत येहा। गुरुपद लखहु दीर्घ न संदेहा ॥ १ ॥
जो भाखेउँ तैं नीके जाना। साधु गुरु चरित्र विधि नाना ॥ २ ॥

शब्दार्थ — मत=विषय। दीर्घ=श्रेष्ठ, महान। नीके=भलीभाँति। चरित्र=आचरण।

भावार्थ — हे शिष्य! सावधान होकर इस विषय को सुनो, देखो! गुरुपद एवं चेतनस्वरूप की स्थिति महान है, इसमें संदेह नहीं है॥ १॥ संतगुरु के नाना प्रकार के दिव्य आचरणों को जो मैंने कहा, उसे तुम भलीभाँति समझ गये हो॥ २॥

अब सुन गुरु उपदेश बताऊँ। आपन रूप लखि कृपा कराऊँ॥ ३॥
शिष्य वासना जहाँ जहाँ होई। तहाँ तहाँ सहित यथारथ जोई॥ ४॥

शब्दार्थ —कृपा कराऊँ=तुम्हें सजाति जीवों पर कृपा कर उपदेश करने की सम्मति देता हूँ। वासना=आसक्ति, प्रेम।

भावार्थ — अब हे शिष्य! सुनो; गुरुसे प्राप्त ज्ञान का उपदेश करने की शैली बताता हूँ। मैं तुम्हें सम्मति देता हूँ कि तुम दूसरे मनुष्यों को अपना सजाति चेतन स्वरूप समझ कर तथा उन पर कृपा करके उन्हें कोमलता पूर्वक उपदेश देना॥३॥ हे शिष्य! जिस मनुष्य को उपदेश करना हो जहाँ-जहाँ उसकी आसक्ति हो उसकी वास्तविकता को ठीक से समझ ले॥४॥

विशेष — जिनके प्रति उपदेश करना हो उसके हृदय को पहले जानना आवश्यक है।

ऐसन विधि तेहि पारख देई। चित नहिं दुखै नीक करि लेई॥ ५॥
पहिले जहाँ बँधावा होई। ताहि सराहि मिले भल सोई॥ ६॥

शब्दार्थ — पारख=सारासार निर्णय करने की कला। नीक=उत्तम। बँधावा= मन का मोह।

भावार्थ — उसे इस प्रकार विनम्रता एवं युक्तिपूर्वक सारासार परखने की कला बतावे, जिससे उसके मनमें दुःख न हो, अपितु वह उपदेश को उत्तम ढंग से समझ ले॥ ५॥ हे शिष्य! जिस व्यक्ति का जिस मत या विचार में मोह हो, उपदेशक का काम है कि पहले उसी की प्रशंसा करके उसके विचारों में अपना विचार भली प्रकार मिला दे॥ ६॥

विशेष — किसी व्यक्ति के मन में बहुत दिनों से जमे हुए संस्कारों एवं मतों को तुरन्त खण्डित करके उसको अपना विचार नहीं समझाया जा सकता। तुम्हें जिसको उपदेश करना है पहले उसके मनमें प्रेम उत्पन्न करना चाहिये। तुम उसके मनमें प्रेम तभी उत्पन्न कर सकते हो जब तुम मनोविज्ञान से काम लोगे। कैसी बात करने से वह प्रसन्न हो सकता है पहले यह जानने की आवश्यकता है। किसी के मनके अनुकूल बात कह कर ही उसके मनको अपनी ओर घुमाया जा सकता है। संसार में जितने धर्म के मत हैं उनके मानने वालों का उनमें किसी-न-किसी प्रकार हित है,

इसलिए भी उनका सहसा खण्डन नहीं करना चाहिए। छोटी वस्तु का खण्डन तभी करना चाहिये जब उसके बदले में बड़ी वस्तु दे सके। यह सब तभी संभव है जब पहले परस्पर प्रेम व्यवहार हो जाय।

जब ताकर मत होय प्रऊढ़ा। मिलिके पारख लावै ऊढ़ा ॥ ७ ॥
जब परखै तब आप उचाटा। उड़ै थिति नहिं पावै बाटा ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — प्रऊढ़ा = प्रौढ़, पुष्ट। ऊढ़ा = उड़ा, टोटा, अभाव, तर्क, खण्डन। उचाटा = उचाट, विरक्ति, मन का न लगना। बाटा = बाट, मार्ग।

भावार्थ —जिसको उपदेश करना है उसके मत की पुष्टि करके जब उसके मनको प्रसन्न कर दिया जाय तब उसके विचारोंमें मिल करके उसके मत की त्रुटियों को धीरे से परखावे और उसके मत में रहे हुए भ्रमों का खण्डन करे ॥७॥ वह जब अपने मत की गल्तियों को परख लेगा तब उसे स्वयं उचाट होकर उसमें मन नहीं लगेगा। उसका भ्रमपूर्ण मत जब तर्क से उड़ जायगा तब उसको कहीं विश्रांति व रास्ता न मिलने से सत्यज्ञान के लिये बेचैन हो जायगा ॥ ८ ॥

थकित भये पछ छूटे तासू। तब निजमत पारख परकासू ॥ ९ ॥
निर्णय भूमि ताहि ठहराई। पारख दृष्टिकै ताहि बुझाई ॥१०॥

शब्दार्थ — पछ = पक्ष, मोह। निर्णयभूमि = निर्णय का अवलम्ब।

भावार्थ — जब उसके सारे भ्रांत विचार कट जाने से वह थक जायगा, तब उसके मनसे गलत बातों का मोह छूट जायगा। उसके निष्पक्ष होने के पश्चात उसको अपने पारख सिद्धान्त का उपदेश करो ॥ ९ ॥ उसको निर्णय की भूमिका पर स्थिर करो। अर्थात उसको यह समझा दो कि वह किसी मत, ग्रंथ एवं पुरुष का पक्ष न लेकर पारखदृष्टि-द्वारा निर्णय में ठहरी हुई बातें ही माने ॥ १० ॥

बूझत कछु जो कसर रहाई। पुनि सो जीव कालमुख जाई ॥११॥
कालकला तेहि नीकि दर्शावै। कसर खोट तेहि नीकि बतावै ॥१२॥

शब्दार्थ — कसर = त्रुटि। कालमुख = कल्पना में। कालकला = मनकी कल्पना। नीकि = नीक, अच्छी तरह।

भावार्थ — यदि उसे बोध लेते समय कुछ त्रुटि रह गयी तो वह व्यक्ति पुनः कल्पना-भ्रांति में ही पड़ा रह जायगा ॥ ११॥ अतएव मनकी कल्पनाओं के जाल को उसे अच्छी तरह परखना चाहिये। और उसकी कसर व बुराइयों को उसे भलीभाँति समझा देना चाहिए ॥ १२ ॥

रती रती दर्शाव करावै। अबुधके संग अबुध होय जावै ॥१३॥
ऐसे जानि आपन पद भाई। शिष्यहि लेइ आपन अपनाई ॥१४॥

शब्दार्थ — दर्शाव=दरसाना, दिखाना, बतलाना। अबुध=भोलाभाला। पद=स्वरूप।

भावार्थ — थोड़ी-थोड़ी बातों को भी अच्छी तरह खोल-खोलकर बतला दे। यहाँ तक कि भोले लोगों को समझाने के लिए आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी भोला-भाला सरीखा बन जाय ॥ १३ ॥ इस प्रकार हे भाई ! उन शिष्यों को अपना सजातीय चेतनस्वरूप समझ कर तथा उन्हें अपना बोध देकर अपने समान निर्भ्रान्त बना दे ॥ १४ ॥

विशेष — "अबुध के संग अबुध होय जावै" का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि उपदेष्टा सावधान रहे कहीं कोई मूर्ख व्यक्ति मिल जाय तो उसके साथ स्वयं मूर्ख न बने। विवादा के साथ स्वयं विवाद न करे।

कर्म जालको बहु विस्तारा। ताहिं भलीविधि देइ विचारा ॥१५॥
कर्महिं माँहि घीन अरु ऊँचा। ऊँचहु ऊँच नीच सो नीचा ॥१६॥

शब्दार्थ — कर्मजाल=पुत्र, धन, विजय, स्वर्गादि के लिये किये गये यज्ञादि कर्म। विचारा=तर्क। घीन=घृणित;तुच्छ।

भावार्थ — संसार में भ्रामक एवं बंधनदायी कर्मजालों का बहुत बड़ा विस्तार है; उसके विषय में विवेकपूर्ण तर्क देकर उसका सारासार परखावे ॥ १५ ॥ कर्मों में भी घृणित और उच्च तथा उच्च से उच्च और नीच से नीच हैं ॥ १६ ॥

विशेष—कममार्ग का जाल विकट है। उसमें भी अच्छे-बुरे तथा ऊँच-नीच हैं। वध, मेध, बलि, कुर्बानी आदि के नाम पर महाघृणित कर्म होते हैं। कहीं झूठे देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों को मानकर घृणित कर्म होते हैं। कहीं धन, पुत्र, विजय, स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिये कुछ शुभकर्म होते हैं। कहीं-कहीं निष्कामभाव पूर्वक भी शुद्ध कर्म किये जाते हैं। इस प्रकार कर्मजाल में अनेक विधियाँ हैं। उपदेष्टा का कर्तव्य है कि वह पहले घृणित कर्मों को दूर करने का उपदेश करे। पीछे-पीछे कल्पनाओं एवं भ्रांतियों को लेकर जो कर्म किये जाते हैं उनका त्याग करावे। फिर यथार्थ शुभकर्मों में लाकर टिका दे। एक साथ सभी कर्मों का खण्डन न करे। यह ध्यान रखे कि मनुष्य गलत एवं अज्ञानमार्ग को छोड़कर केवल शुभ एवं सत्यमार्ग पकड़ लें। ऐसा न हो कि दोनों तरफ से चले जायँ।

भलीभाँति लखै कर्म कहानी। मान महातम भरम निसानी ॥१७॥
ऐसे भाँति सो कर्म छुड़ावै। कर्म जालसों जीव बचावै ॥१८॥

शब्दार्थ — निसानी=लक्षण।

भावार्थ — अनेक ग्रंथों के भ्रामक यज्ञकर्मों की कथाओं की सारहीनता को भली-भाँति समझा दे। केवल मान-माहात्म्य के लिये किये गये कर्म अज्ञान के लक्षण

हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार बन्धनदायी कर्मों को छुड़ाकर उसके जाल से जीवों को बचा ले ॥ १८ ॥

कर्मजाल के बासी जीयरा । कर्म मिटै तो धर्म घनेरा ॥१९॥
धर्म साधि को बहु विस्तारा । धर्म रहट जीवन बहु सारा ॥२०॥

शब्दार्थ — धर्म = मत, सम्प्रदाय । यहाँ धर्म का अर्थ कर्तव्य या सद्गुण-सदाचार नहीं हैं; अपितु सम्प्रदाय या सम्प्रदाय की रूढ़ साधनायें हैं । घनेरा = बहुत । धर्मसाधि = धर्मसाधना; तात्पर्य में साम्प्रदायिक रूढ़ साधनायें । धर्मरहट = साम्प्रदायिक चक्कर ।

भावार्थ —प्रायः सब जीव भ्रामक कर्मजाल के वासनावशी हैं । यदि किसी का कर्मजाल छूटता है तो वह साम्प्रदायिक कल्पित साधनाओं में फँस जाता है ॥ १९ ॥ क्योंकि धर्म मानकर साम्प्रदायिक साधनाओं का जाल बहुत जीवों को पीड़ा दिया है॥२०॥

धर्म अंग बहु योग कमावै । थिति पावै सामीप रहावै ॥२१॥
तीरथ व्रत सेवा बहु लावै । ऋद्धि सिद्धि करामात मनावै ॥२२॥

शब्दार्थ — अंग = भाग-विभाग । सामीप = सामीप्य मुक्ति । ऋद्धि सिद्धि = सफलता; धन दौलत । करामात = चमत्कार; अचरजी बात । मनावै = मनाना; प्रार्थना करना ।

भावार्थ — धर्म माने हुए साम्प्रदायिक साधनों के कई भाग-विभाग हैं । कोई नेती-धोती आदि करके योग की साधना करता है, कोई सगुण भगवान आदि की कल्पना करके उसकी उपासना करता है और उसके फल में उसको विश्वास है कि हम स्वर्ग में भगवान के पास स्थान पाकर सामीप्य मुक्ति का लाभ उठायेंगे ॥ २१ ॥ कोई तीर्थ करता है, कोई व्रत करता है, कोई अष्टधातु प्रतिमाओं की सेवा करता है, कोई धन-दौलत, एवं मान-बड़ाई आदि की प्राप्ति के लिये योग साधना व कायाकल्प करता है तथा कोई चमत्कार एवं अचरजी बातों की सिद्धि के लिये किसी कल्पित देवी-देवता की प्रार्थना करता है ॥ २२ ॥

संयम नियम प्राण आकर्षण । योग धारणा हठ आकर्षण ॥२३॥
अनबनि चाल अनेक प्रकारा । धर्मजाल को जो अधिकारा ॥२५॥

शब्दार्थ — प्राण आकर्षण = प्राण को शरीर के सब हिस्सों से खींचकर ब्रह्माण्ड में एकत्र करना । धारणा = किसी कल्पित वस्तु में मन ठहराना । आकर्षण = मन खींचकर दूरस्थ व्यक्ति को बुला लेने का तांत्रिक प्रयोग । अनबनि = अनबन, झगड़ाऊ, अनेक । अधिकारा = स्वत्व, हक; कर्तव्य; स्थान; राज्य; विषय ।

भावार्थ — कोई जलाहार, फलाहार, दूधाहार आदि करके संयम करता है, कोई अनेक नियमों का पालन करता है, कोई शरीर के सर्व अंगों से प्राण को खींचकर

ब्रह्माण्ड में चढ़ाता है, कोई किसी कल्पित वस्तु में धारणा करता अर्थात मन ठहराता है, कोई हठयोग करके स्वयं एवं समाज को धोखा में डालता है तथा कोई दूसरे को अपने वश में करने के लिये तांत्रिक प्रयोग करता है ॥ २३ ॥ इस प्रकार धर्म माने हुए साम्प्रदायिक साधनाओं के जाल के जितने कर्त्तव्य, राज्य (फैलाव) व विषय हैं उनके विविध झगड़ाऊ व्यवहार हैं ॥ २४ ॥

आपु नसै पुनि और नसावै । नाटक चाटक विद्या लावै ॥२५॥
पुरुष राम सबहीं हैं नारी । ऐसो कहै रहै कहि भारी ॥२६॥

शब्दार्थ — नाटक = दिखावा करके रिझाना । चाटक = ठगो, विश्वास देकर धनादि हरण करना । भारी = महान, सर्वोच्चभक्ति ।

भावार्थ — ऐसे लोग अपने आपका पतन करते हैं और दूसरे का भी । धर्मनाम रखकर कितने लोग दिखावा करके दूसरे को रिझाते हैं, कितने ही मीठी बातों से विश्वास देकर धनादि ठगते हैं, और इन्हीं सबकी विद्याप्राप्ति करने में तत्पर रहते हैं ॥२५॥ कितने लोग "एक परमात्मा ही पुरुष है और संसार के सब जीव उसकी पत्नी हैं" ऐसा कहकर इसको सर्वोच्चभक्ति बतलाते हैं ॥२६॥

गुप्त कहानी हरिकी कहई । प्रत्यक्ष साधु गुरु मत न अचरई ॥२७॥
तेहिको पारख निजुकै जानै । तेहि सेवकसों प्रीति जो ठानै ॥२८॥

शब्दार्थ — गुप्त = अदृश्य; गूढ़ । तेहिको = उस भेदको । तेहि सेवक = उस भूले हुए भक्त ।

भावार्थ — संसार के लोग इतने भ्रमित हैं कि कल्पित ईश्वर की अदृश्य एवं गूढ़ कथायें कहते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष विवेकी संत-गुरु के कल्याणप्रद विचारों का आचरण नहीं करते ॥२७॥ परन्तु हे शिष्य ! उन भूले बन्धुओं की इन सब भ्रम मान्यताओं को अपने पारख-विवेक से पहले जान ले, और उन भूले भक्तों से प्रेम व्यवहार करे ॥२७॥

ठान प्रीति ताहि सम होई । सखी सैन लखि सखी समोई ॥२९॥
सैन बैन एकान्त करि पावै । कसर देखाय सुमति प्रगटावै ॥३०॥

शब्दार्थ — सम = एक ही, अभिन्न । सैन = संकेत, इशारा । समोई = अनुरक्त होना, प्रेम करना, समा जाना, समझ जाना । सैन बैन = संकेत-बात । एकान्त = अकेला, अलग, अत्यंत, निश्चित ।

भावार्थ — (उसको चेताने के लिये) उससे प्रेम करके उससे इस प्रकार अभिन्न हो जाय जिस प्रकार एक सखी का संकेत पाकर दूसरी सखी बात समझ जाती है ॥२९॥ इस प्रकार जब संकेत और बात करने का ढंग परस्पर एक और

निश्चित हो जाय तब उसकी भ्रम मान्यताओं में त्रुटि दिखलाकर उसमें निर्णयवती बुद्धि को उत्पन्न करे ॥३०॥

विशेष — जो ऐसे लोगों को चेताना चाहते हों उनके लिये यह विनम्र एवं समतापूर्ण नियम बताया जा रहा है, वैसे यह कोई आवश्यकता नहीं है कि किसी को इस प्रकार चेताने के लिये इतना झंझट मोल लिया जाय । हाँ, जिनको बोध देना हो नम्रता से ही देना चाहिये !

जबते जाइ कसर ठहराई । छोड़ै तुरित न नेरे जाई ॥३१॥
तब पारख निज मत प्रगटावै । ताको रूप प्रत्यक्ष लखावै ॥३२॥

शब्दार्थ — तुरित = शीघ्र । नेरे = निकट ।

भावार्थ — जिस समय से उसके मत में त्रुटि निश्चित हो जायगी वह उसे शीघ्र छोड़ देगा और पुनः उसके निकट नहीं जायगा ॥३१॥ तत्पश्चात उसे अपने दिव्य पारख सिद्धान्त का आदेश करे, और उसका सर्वाङ्ग स्वरूप स्पष्ट विवरण देकर उसे समझा दे ॥३२॥

लखौरूप रूप सो होई । ठहर रहै आपन पद जोई ॥३३॥
लखौ सुलक्षण आदि कहानी । जाते जीव होय निजु खानी ॥३४॥

शब्दार्थ — रूप = पारख सिद्धान्त का स्वरूप, स्वस्वरूप चेतन । सुलक्षण = उतमलक्षण दया, शील, धैर्य आदि । आदि कहानी = पहले की कल्पित कथायें, भ्रांतियाँ । निजु = अपने को । खानी = चार खानियाँ ।

भावार्थ — वह जब पारख सिद्धांत को समझ जायगा तब वही रूप हो जायगा, फिर जो मनुष्य का अपना चेतन स्वरूप है वह । उसी में स्थित हो जायगा ॥ ३३ ॥ वह उन्हें भी समझ जायगा जो सभी खानियों से पृथक मानवीय गुण-लक्षण दया, शील, विचार, धैर्य, सत्य आदि हैं; और वह पहले से चली आयी हुई उन अज्ञानपूर्ण कल्पित कहानियों, भ्रमों एवं विषयवासनाओं को भी समझ जायगा जिसके अभ्यासवश जीव अपने आप को चारों खानियों में अनादिकाल से भटकाता रहा है ॥ ३४ ॥

हे शिष्य धर्मजालको भाऊ । कहेउँ यथा उपदेश प्रभाऊ ॥३५॥
याहू ते अति ज्ञानि प्रचंडा । सुनहु शिष्य प्रगट ब्रह्मंडा ॥३५॥

शब्दार्थ — भाऊ = भाव, तात्पर्य । प्रभाऊ = प्रभाव, असर, परिणाम । ज्ञानि = ज्ञानी, तात्पर्य में ज्ञानमार्ग । ब्रह्मंडा = विश्व ।

भावार्थ — हे शिष्य ! धर्म के नाम पर फैलाये गये जाल का तात्पर्य मैंने कहा, और उनमें फँसे हुए लोगों को जैसे उपदेश देना चाहिये तथा उक्त कथनानुसार उपदेश देने से जो परिणाम या असर होगा यह सब बतला दिया ॥ ३५ ॥ हे शिष्य ! सुनो,

उपर्युक्त धर्मजाल से भी ज्ञान के नाम पर फैलाया गया जाल अत्यंत भयंकर एवं तीव्र है, जो संसार में प्रकट है ।। ३६ ।।

धर्म त्यागि बहु जीयरा, ज्ञानी स्वयं प्रकाश ।
ज्ञान मते मत प्रगट है, ब्रह्मास्मि पै वास ।।२७२।।

शब्दार्थ — पै=पर, ऊपर, में । वास=निवास ।

भावार्थ — बहुत से व्यक्ति उपर्युक्त धर्म के नाम पर फैले जाल एवं ईश्वरवाद को छोड़कर स्वयं प्रकाश स्वरूप ब्रह्मज्ञानी होते हैं । ज्ञानमार्ग से उनका सिद्धान्त संसार में प्रकट है और वे "मैं ब्रह्म हूँ" इस भावना में निवास करना ही अपना मत रखते हैं ।।२४ ।।

विशेष — 'मैं ब्रह्म हूँ' का अर्थ यदि 'मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं शुद्ध चेतन हूँ' इतना ही होता, जो शब्द का वास्तविक भाव होना चाहिए, तो सर्वोत्तम था, परन्तु उन्होंने इतना ही अर्थ नहीं रखा । वे यह मानने लगे कि मैं ही यह विश्व हूँ । मै चराचर व्यापक जड़-चेतन सब कुछ हूँ ।

ऐसो खानि कलेशता, पाये बहुतक जीव ।
स्वयं अस्मि हंता सहित, बसै और करि पीव ।।२७३।।

शब्दार्थ — स्वयं अस्मि=मैं स्वतः सारा विश्व हूँ । पीव=ईश्वर ।

भावार्थ — इस प्रकार मैं स्वतः सारा विश्व हूँ, इस मिथ्या अहंकार को लेकर असंख्य जीव चारों खानियों में भटक-भटक कर अपार दुःख सदा से उठाते रहे । कितने लोग अपने कल्पित स्वामी को अपने से पृथक किसो लोकान्तर में निवास करता हुआ मानकर तथा उसकी प्राप्ति के लिए भटक रहे हैं ।। २७३ ।।

तेहि उपदेशन कौन विधि, सुनहु शिष्य दै कान ।
ताही मत बासीन को, थापै गुरु के समान ।।२७४।।

शब्दार्थ — ताही मत=ब्रह्मवाद का मत । थापै=स्थापित करे, श्रेय दे ।

भावार्थ — हे शिष्य ! उन ब्रह्मवादियों को किस प्रकार उपदेश देना चाहिये उसे कान लगाकर सुनो । उस ब्रह्मवाद में रहने वाले ब्रह्मवादियों को गुरु के, समान श्रेय दे ।।२७४।।

शिष्य जानि मत देइ वह, अंतस अपनो रूप ।
मेल परस्पर किये ते, देखै मत सो अनूप ।।२७५।।

शब्दार्थ — रूप=विचार । अनूप=उपमारहित, विचित्र, बेढंगा ।

भावार्थ — वह तुम्हें अपना शिष्यवत समझकर अपने मत की बात एवं अन्तःकरण के अपने विचार तुमको बतायेगा । इस प्रकार परस्पर मेलमिलाप करने से उसके विचित्र मत तुम्हारे समझने में आ जायेंगे ।।२७५।।

देई बहुत स्याबासता, ताहि हर्ष बहुतेस।
पुनि शंका तापर करै, ताहि मताके देस ॥२७६॥

शब्दार्थ — स्याबासता = शाबाश; वाहवा, साधुवाद, प्रशंसा। बहुतेस = अधिक। तापर = तत्पश्चात। देस = देश, क्षेत्र।

भावार्थ — पुनः उसके ब्रह्मवादपरक उपदेशों पर उसकी प्रशंसा करे, फिर उसे बहुत हर्ष होगा। तत्पश्चात उसके सिद्धान्तक्षेत्र के भीतर किसी बात को लेकर शंका उपस्थित करे ॥२७६॥

शंका जौन प्रकार की, ब्रह्म एक बहु जीव।
एक ब्रह्मते जीव बहु, काहे भयउ को कीव ॥२७७॥

शब्दार्थ — को कीव = कौन कर दिया ?

भावार्थ — ब्रह्मवाद में जिसप्रकार शंकायें संभव हैं वह करे। जैसे ब्रह्म एक है और जीव बहुत हैं अद्वैत में ऐसा क्यों ? यदि एक ब्रह्म से ही बहुत जीव हो गये हैं तो ऐसा क्यों हुआ ? कौन कर दिया ? ॥२७७॥

आप स्वतः प्रकाश में, ब्रह्म हंत कर्तार।
जीव सृष्टि कौने किया, दुख सुख को दातार ॥२७८॥

शब्दार्थ — हंत = अहंकार। कर्तार = कर्ता।

भावार्थ — जब स्वयं ब्रह्म स्वतः प्रकाश स्वरूप है, तब 'एकोऽहंबहुस्याम्' अर्थात एक मैं बहुत हो जाऊँ ऐसा अहंकार लेकर जगत का कर्ता क्यों बना ? यदि वह कर्ता नहीं बना तो जड़-चेतन संयुक्त यह जीवों की सृष्टि किसने कर दी ? और पुनः इनको दुःख-सुख देने की उपाधि किसने ली ? ॥२७८॥

दुख सुख ब्रह्महि नहिं कहै, शिष्य कहहु तेहि पाहि।
जीव भूलते है सही, परसि ब्रह्म पद आहि ॥२७९॥

शब्दार्थ — तेहि पाहि = उसके पास; उससे। परसि = स्पर्श करके। आहि = है।

भावार्थ — ब्रह्मवादी कहते हैं कि ब्रह्म में दुःख-सुख नहीं है। तब हे शिष्य ! तुम उनसे पूछो कि दुःख-सुख किसमें है ? वे कहेंगे कि वस्तुतः दुःख-सुख जीव के अज्ञान से है और जब वह ब्रह्म स्वरूप का स्पर्श कर लेगा तब दुःख-सुखों से मुक्त हो जायगा। (इस पर तुम प्रश्न कर सकते हो कि क्या जीव ब्रह्म से अलग है जो उसका स्पर्श पाकर ब्रह्म बनेगा ? यदि ऐसा है तो कारण-कार्य रूप बनकर ब्रह्म-विकारी है ?) ॥२७९॥

भयो जीव यहि ब्रह्मते, पुनि ब्रह्महि लौलीन।
तिमि उपाधि सब मेटि के, जल अधार जस मीन ॥२८०॥

शब्दार्थ — लौलीन = तन्मय, मग्न। उपाधि = छल, धोखा, विशेष लक्षण। मीन = मछली।

भावार्थ — (उनके विचार से) यह जीव ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है। उसी प्रकार उसे चाहिये कि वह जीव आदि सारे विशेष लक्षणों को अपने से पृथक समझ कर उसे त्याग दे और ब्रह्म में उसी प्रकार तन्मय एवं मग्न हो जाय, जैसे जलमें मछली ॥२८०॥

विशेष — इस दोहे में 'उपाधि' शब्द का अर्थ छल या धोखा नहीं है केवल 'विशेष लक्षण' है। मिट्टी से घड़ा, दीवार आदि अनेक कार्य पदार्थ बनते हैं। घड़ा का कम्बुग्रीवादिवान आकार तथा दीवार का ऊँचा, चिपटा एवं लम्बा आकार एक उपाधि एवं विशेष लक्षण है। यदि इन विशेष लक्षणों को मनसे हटा दें तो वह केवल मिट्टी है। इसी प्रकार विविधतापूर्ण सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मसे उत्पन्न है यदि सबके विशेष लक्षणों को हटा दिया जाय तो एक ब्रह्म ही है।

संसार के समस्त पदार्थों में अस्ति, भाति, प्रिय, नाम तथा रूप—ये पाँच लक्षण हैं। अस्ति का अर्थ है सत्ता या सत्, भाति का अर्थ है चमकना या चेतन; प्रिय का अर्थ है आनन्द; नाम कहते हैं संज्ञा को तथा रूप कहते हैं आकार को। उक्त पाँचों में अस्ति, भाति, प्रिय ही सत, चिद् और आनन्द ब्रह्म है और नाम तथा रूप ये माया के भाग उपाधि या विशेष लक्षण हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि नदी, पर्वत, समुद्र, मिट्टी; पानी आदि कितने नाम लिये जायँ, सबके नाम और रूप की कल्पना छोड़ दी जाय, तो बस सब एक ब्रह्म ही है। यह है अद्वैत ब्रह्मज्ञान, भौतिकवाद का शुद्ध भाई।

ब्रह्म में से जगत का निर्माण होना तथा पुनः उसमें लीन होना जब स्वभाव है और जब ब्रह्म ही सब कुछ है तब कौन, किससे, कैसे मुक्त होगा? अद्वैत ब्रह्मवाद में मोक्ष असम्भव है। जहाँ जड़-चेतन तत्त्वतः एक माना गया है वहाँ पूर्ण अविद्या का राज्य है, फिर उसे ज्ञान मानना कि अज्ञान?

हे शिष्य अनंत दृष्टांत ते, मिलि बोधै तेहि फेर।
झाँई दृष्टि मिटै जब, स्वयं स्वरूप लखि हेर ॥२८१॥

शब्दार्थ — दृष्टांत = उदाहरण। फेर = पुनः। झाँई = परिछाईं; धोखा। हेर = खोज, तलाश।

भावार्थ — हे शिष्य! अनेकों उदाहरण देकर और उससे प्रेम, समता रखते हुए उसे पुनः-पुनः वास्तविकता समझाने की चेष्टा करे। जब उसकी चराचर

व्यापक तथा जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्म होने की धोखे की दृष्टि मिट जायगी, तो वह स्वयं वास्तविक चेतन स्वरूप की खोज कर लेगा ॥२८१॥

जब सो थके निज कसर लखि, धोखा सब मिटि जाय।
होय उच्चाट ब्रह्मजालते, हंता कल्पित भाय ॥२८२॥

शब्दार्थ — उच्चाट = उचाट, असन्तोष। हंता = अहंकार। भाय = भाई।

भावार्थ — हे भाई ! जब वह अपने ब्रह्मवाद में त्रुटि देखकर शिथिल हो जायगा और उस ब्रह्मवाद के जाल से उसे असंतोष हो जायगा जिसमें वह अपने आप को अहंभाव पूर्वक अखिल विश्व ब्रह्म मानता था, तब उसके सारे भ्रम विनष्ट हो जायेंगे ॥२८२॥

हे शिष्य तीनिउ जाल यह, तोहि कहेऊँ उपदेश।
मिलिहिलि निजमत प्रगट करि, मेटै काल कलेश ॥२८३॥

शब्दार्थ — तीनिउ जाल = कर्मजाल, धर्मजाल और ब्रह्मजाल। मिलिहिलि = हिलमिल, मिलजुल, समतापूर्वक। काल = अज्ञान, मन, कल्पना।

भावार्थ — हे शिष्य ! उपर्युक्त प्रकार से कर्मजाल, धर्मजाल तथा ब्रह्मजाल के ये स्वरूप हैं। उनमें फँसे हुये लोगों को उपदेश देने की शैली मैंने तुम्हें बतायी। इस प्रकार समता और प्रेम पूर्वक अपने पारख सिद्धान्त का उपदेश देकर जीवों के अज्ञान एवं कल्पनाजनित कष्टों को दूर करे ॥२८३॥

इन्ह तीनहु जालन ते अधिक, परमहंस मत आहि।
तेहि अनुरागी जीयरा, मन वच ब्रह्म कहाहि ॥२८४॥

शब्दार्थ — अनुरागी = विरही; प्रेमी।

भावार्थ — उपर्युक्त तीनों जालों से भी अधिक महत्तम जाल परमहंस मत का है। उसके विरही व्यक्ति मन-वचन, कर्म से ब्रह्म कहलाते हैं ॥२८४॥

ब्रह्म भरम ईश्वरहु भरम, जीव भ्रम वसि जोय।
ज्यों का त्यों बतलावहीं, व्याप नास्ति पद सोय ॥२८५॥

शब्दार्थ — व्याप = व्याप्त, सर्वत्र पूर्ण। नास्तिपद = असत्य स्वरूप।

भावार्थ — परमहंस लोग यहाँ तक कहते हैं कि "वाणी का विकार होने से ब्रह्म भ्रम है, ईश्वर भ्रम है तथा जीव भ्रम है, वस्तुतः जो जीव भ्रमवश है वही इन्हें सत्य मानता है।" वे यही बतलाते हैं कि "मैं ज्यों-का-त्यों सर्वत्र परिपूर्ण हूँ।" परन्तु विवेक से यह स्वरूप असत्य है ॥२८५॥

सुख में वासा जानिके, गये जीव तहाँ फूल।
ताको उपदेशन कठिन, वचन रचन कहै भूल ॥२८६॥

शब्दार्थ — सुख=आनन्द। फूल=अहंकारी। वचन रचन=भाषणक्रम, वाक्यविन्यास।

भावार्थ — भ्रमवश यह मानकर कि मैं अनन्तब्रह्माण्डस्वरूप आनन्दमय ब्रह्म मनुष्य अहंकारवश फूले नहीं समाते। उनको वास्तविकता का उपदेश कर पाना कठिन है; क्योंकि वे भाषणक्रम या वाक्यविन्यास को द्वैतविकार समझकर उसे अज्ञान पूर्ण कहते हैं ॥ २८६ ॥

हे शिष्य ताके शिष्यता, दासातन करु नीत।
कृपा करै निज मत कहै, ताहि देखु अति हीत ॥२८७॥

शब्दार्थ — नीत=नित्य। हीत=हितकर, प्रियकर।

भावार्थ — हे शिष्य ! (यदि तुम्हें किसी परमहंस को चेताने की बड़ी ही लालसा हो तो) पहले शिष्यवत बनकर नित्य उनकी सेवा करो। फिर तुम्हारी सेवा से प्रसन्न होकर और तुम्हारे ऊपर कृपा करके वे अपना अद्वैत ब्रह्म का मत कहेंगे और तुम उसे प्रियकर दृष्टि से देखकर सुनो ॥ २८७ ॥

हितके सेवा कियेते, सो हृदया न दुराव।
दुरै न तोरी दृष्टिते, पर उपदेश स्वभाव ॥२८८॥

शब्दार्थ — दुराव=छिपाव, भेदभाव। दुरै=छिपना।

भावार्थ — तुम्हारे हितभावपूर्वक (एवं उनके सच्चे कल्याण के लिए) सेवा करने से वे अपने हृदय के विचारों को तुमसे छिपायेंगे नहीं। अतएव उनका हृदयस्थ मत तुम्हारे नजरों से छिपा नहीं रहेगा, क्योंकि 'परउपदेश' करना मनुष्य का स्वभाव है ॥ २८८ ॥

विशेष — 'पर उपदेश स्वभाव' यह वाक्य बड़े मार्के का है। परोपदेश करना मनुष्य का स्वभाव है। अतः तुम्हारी निष्कपट सेवा देखकर परमहंस जी उपदेश रूप में अपना मत बता देंगे।

जब ताको निज मत लखै, शंका करै तेहि माँहि।
वह शंका मानै नहीं, निज मत अति तेहिआहि ॥२८९॥

शब्दार्थ — ताको=परमहंस का।

भावार्थ — जब उनका पूरा मत, विचार एवं स्वभाव अपने समझ में आ जाय; तब उसमें शंका करना चाहिये। परन्तु वे तुम्हारी शंका को कुछ नहीं मानेंगे; क्योंकि उन्हें अपना मत अत्यंत दृढ़ होता है ॥ २८९ ॥

निर्वचनी पद थीरता, सोहं हंसा एक।
सो अनेक कैसे भयो, पुनि कैसे सो एक ॥२९०॥

शब्दार्थ — निर्वचनी = निर्वचनीय, जिसको वचनों द्वारा समझाया जा सके; निर्वचन, मौन, चुप, तात्पर्य में जो वचन में न आवे। सोहं = ब्रह्म। हंस = जीव।

भावार्थ — यदि वाणी में न आने वाला अचल ब्रह्मस्वरूप और जीव एक ही है, तो वह अनेक कैसे हो गया ? और वह पुनः कैसे एक हो जायगा ? ॥ २९० ॥

याके बहु उत्तर करै, समझावै पुनि सोय।
हे शिष्य ते जानै भले, उत्तर प्रश्न समोय ॥२९१॥

शब्दार्थ — समोय = अनुरक्त होकर, प्रेमपूर्ण या सन्तुष्ट होकर।

भावार्थ — तुम्हारे उपर्युक्त प्रश्न का वे अनेक प्रकार से उत्तर देंगे और वे तुम्हें अपना मत समझायेंगे। हे शिष्य ! वह तुम पहले से ही अच्छी तरह जानते हो, अतएव प्रेमपूर्वक एवं सन्तुष्ट होकर उनके उत्तर में प्रश्न करते जाओ ॥ २९१ ॥

विशेष — किसी मतवादी को थकाने के लिये यह उत्तम युक्ति है कि अपना कोई मत स्थिर न करके केवल विपक्षी के मत में ही विनम्रतापूर्वक प्रश्न करते जाना। परन्तु शांतिइच्छुक को इससे दूर रहना चाहिये।

उत्तर प्रश्न अनेक विधि, निर्णय सहित यथार्थ।
उपदेशै तेहि मेल विधि, लखै आपनो अर्थ ॥२९२॥

शब्दार्थ — मेल विधि = प्रेम का नियम। अर्थ = प्रयोजन।

भावार्थ — इस प्रकार अनेक विधि से तथा यथार्थ निर्णयसहित उत्तर-प्रश्न चलावे। उन्हें प्रेम के नियम से चलकर ही उपदेश करे। इसी में अपना उपदेश देने का प्रयोजन हल होना समझे ॥ २९२ ॥

काहे ते शिष्य मेल विधि, उचटै नहीं सो जीव।
वह तू जमा सो एक ही, ताते मेलहु कीव ॥२९३॥

शब्दार्थ — उचटै नहीं = असंतुष्ट न हो। जमा = अविनाशी। कीव = करो।

भावार्थ — हे शिष्य ! मेलमिलाप सहित, प्रेमपूर्वक एवं समता से उपदेश क्यों करना चाहिए ? क्योंकि जिसको उपदेश देना एवं समझाना है वह व्यक्ति असंतुष्ट न हो। पुनः वह और तू एक ही समान अविनाशी सजातीय चेतनस्वरूप हो, इसलिये सबसे मेलमिलाप करना ही उचित है ॥ २९३ ॥

मिलि लखेते उचटै नहीं, एकता सुख की खानि।
सत्य शब्द टकसार विधि, निर्णय कही बखानि ॥२९४॥

शब्दार्थ — टकसार = टकसाल, बीजक।

भावार्थ — मिलकर समता से समझाने से जिसे समझाया जाता है वह असंतुष्ट नहीं होता है, वस्तुतः सबसे एकता, प्रेम एवं समता रखना—सुख का उत्पत्ति

स्थान है। बीजक के सारशब्दों में भी इसका निर्णय विधिपूर्वक वर्णन करके कहा है ॥ २९४ ॥

सत्यशब्द टकसारःबीजक, साखी ३२२

साखी — दादा भाई बाप के लेखो, चरणन होइहौं बंदा।
अबकी पुरिया जो निरुवारे, सो जन सदा अनंदा ॥२९५॥

शब्दार्थ — दादा = पिता का पिता, पितामह। लेखा = समझो। पुरिया = वासना।

भावार्थ — हे मनुष्यो ! पितामह, बन्धु और पिता के समान मान कर मैं तुम सबके चरणों की वंदना कर सकता हूँ; (परन्तु एक बात मान लो) आज उत्तम मानव शरीर में जो वासना की ग्रंथि को सुलझा लेगा, वह व्यक्ति सदैव के लिए कल्याणरूप हो जायगा ॥ २९५ ॥

विशेष — यहाँ सद्गुरु कितना विनम्र होकर समता से जनता को उपदेश कर रहे हैं।

ऊपर अनेक दोहों में यह बात बतायी गयी है कि जिसे उपदेश करना हो उस व्यक्ति के मत, विचार एवं स्वभाव को भलीभाँति जानकर तब उसको ऐसा प्रेम एवं समता से समझावे जिससे वह असंतुष्ट न हो; प्रत्युत संतुष्ट होकर सत्य बात को समझ जाय।

यहाँ एक प्रश्न उठ सकता है कि ऊपर की शैली का प्रयोग एक-दो व्यक्ति को समझाने में किया जा सकता है। परन्तु जहाँ अनेकों के बीच में एवं सभा में प्रवचन करना हो वहाँ की क्या शैली होनी चाहिये ?

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में यह समझना चाहिये कि सभा के प्रवचनमें उसी विषय की चर्चा करनी चाहिये जो मानव मात्र के लिये ग्रहण करने योग्य हो। मानवता का उपदेश ही समाज के लिये उपयोगी है। दार्शनिक पक्ष की बात एकान्त जिज्ञासु के ही लिये उपयुक्त हो सकती है। भण्डारी का कर्तव्य है कि वह इस प्रकार भोजन बनावे और पारस करे जिससे चौके पर उठे हुए लोगों में से कोई भूखा न जाय। इसी प्रकार सभा में बोलते हुए प्रवक्ता का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे ढंग से प्रवचन करे कि सबके कल्याणोपयोगी कुछ बातें आ जायँ। सार्वजनिक समाज में सरल, सर्वयोग्य, समतापूर्ण उपदेश देने चाहिये।

दोहा — ऐसी उपदेशन युक्ति, दीन्हीं तोहि बताय।
जाते उचटै नहीं सो, लहै हंसपद आय ॥२९६॥

शब्दार्थ — हंसपद = विवेकवतीस्थिति, स्वरूपस्थिति।

भावार्थ — उपदेश देने की मैंने ऐसी युक्ति तुम्हें बतला दी है, जिससे जिसको

उपदेश दिया जाना है वह असंतुष्ट न हो और प्रसन्न होकर निर्णय समझ ले तथा सत्संग में आकर विवेकवतीस्थिति एवं स्वरूपस्थिति प्राप्त कर ले ॥ २९६ ॥

ठहरावै तेहि पद निजु, सो कृपाल गुरुदेव ।
अनुमानी संकल्पना, नाश लहै बिनु भेव ॥२९७॥

शब्दार्थ — अनुमानी = अनुमान, भ्रम एवं कल्पना में पड़े व्यक्ति। भेव = भेद, रहस्य ।

भावार्थ — वही कृपालु सद्‌गुरु है जो भूले हुए जीवों को प्रेम, समता एवं मीठे वचनों से उपदेश देकर उन्हें उनके अपने स्वरूप में स्थिर करता है । अनुमान, कल्पना एवं भ्रम में पड़े हुए लोग वास्तविकता का रहस्य न जानने के कारण अनेक बन्धनप्रद संकल्पों में उलझकर पतन को प्राप्त होते हैं ॥२९७ ॥

गुरु उपदेशन अनुक्रम, तो कह दियें बताय ।
इहि अनुरागी जीयरा, निज पदमा ठहराय ॥२९८॥

शब्दार्थ — अनुक्रम = सिलसिला; शैली । इहि = इह; इस पारख बोध ।

भावार्थ — गुरु से प्राप्त ज्ञान का दूसरों के प्रति किस प्रकार उपदेश करना चाहिये, इस शैली को मैं तुम्हें बतला दिया हूँ । इस पारखबोध का प्रेमी व्यक्ति अपने पारख स्वरूप चेतन में स्थित हो जाता है ॥२९८॥

सुन शिष्य गुरुमत प्रगट यह, कहै सो बंदीछोर ।
दुखित जीव व्याकुल लखै, किये कृपा निज ओर ॥२९९॥

शब्दार्थ — बंदीछोर = बन्धन छुड़ाने वाला ।

भावार्थ — हे शिष्य ! सुनो, यह सद्‌गुरु का पारख सिद्धान्त प्रत्यक्ष है । जो इसे अपने जीवन में धारण करके दूसरों को इसका उपदेश करता है वह बन्धनों को छुड़ाने वाला बन्दीछोर है । सद्‌गुरु ने जीवों को दुखित देखकर अपनी ओर से अहेतुकी कृपा करके यह उपदेश दिया है ॥२९९॥

ऐसी विधि उपदेश की, परिपाटी यह आहि ।
गुरुमत करहु प्रत्यक्ष तुम, काल कला के माहिं ॥३००॥

शब्दार्थ — परिपाटी = सिलसिला; अनुक्रम; शैली; रीति, ढंग । काल = मन, अज्ञान । कला = कल्पना ।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से यह उपदेश देने की शैली है । हे शिष्य ! अज्ञान तथा अज्ञानजनित कल्पनाओं के विध्वंस के लिये तुम पारख सिद्धान्त का सर्वत्र प्रचार करो ॥३००॥

निर्णय मत अनुमान हत, लहै जीव सुख चैन ।
ब्रह्म ईश माया मनहु, बसै न इनकी ऐन ।।३०१।।

शब्दार्थ — हत=मारा हुआ, ध्वस्त, नष्ट । ऐन=अयन, मार्ग, गृह, निवास स्थान ।

भावार्थ — जब पारख सिद्धान्त का निर्णय विचार लोगों में समायेगा, तब उनके अनुमान, कल्पना एवं भ्रम सर्वथा विनष्ट हो जायेंगे, तब व्यक्ति को परम शांति एवं अचल विश्रांति की प्राप्ति होगी । फिर वह व्यक्ति कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, विषयासक्ति तथा मनःकल्पना के मार्ग या घर में नहीं रहेगा ।।३०१।।

गुरु अनुरागी जीयरा, तारण तरण उदार ।
भोंदू काल जंजाल के, सकलो सेवन हार ।।३०२।।

शब्दार्थ — तारण=दूसरे को तारने वाला । तरण=स्वयं तर जाने वाला । उदार=विशाल; नम्र; दूसरे में गुण देखने वाला । भोंदू=भोले-भाले, अज्ञानी । काल=अज्ञान । जंजाल=बंधन ।

भावार्थ — गुरुभक्त एवं वास्तविक स्वरूपबोध के विरही व्यक्ति दूसरों को तारने वाले, स्वयं तर जाने वाले तथा दूसरों के सद्गुणों का आदर करने वाले, नम्र एवं विशाल हृदय के होते हैं । परन्तु भोले लोग तो अज्ञान एवं मनःकल्पित सारे बन्धनों को ही धारण करने वाले होते हैं ।। ३०२ ।।

चौपाई—१८

काल कला सब गुरु समझावैं । निर्भय हंस परम पद पावैं । १ ।।
दृष्टि परै तब काल को जाला । सदा सुखारी परख निहाला ।। २ ।।

शब्दार्थ —हंस=जीव । परमपद=शांति, मोक्ष । दृष्टि परे=देखने में आता है; बंधनदायी समझ मिलता है । निहाला=निहाल; कृतार्थ; मुक्त रूप ।

भावार्थ — पारखी सद्गुरु जिज्ञासुओं को अज्ञान एवं कल्पना-भ्रांतियों की परख कराते हैं । उसका मनन, अवधारण एवं आचरण करके जीव निर्भय परमशांति पद एवं मुक्ति स्थिति को पाता है ।। १ ।। तब उसे मन, अज्ञान एवं अज्ञानकल्पित भ्रांतियाँ बन्धनप्रद समझ में आती हैं । इस प्रकार पारखबोध में विचरने वाला सदैव सुखी एवं कृतार्थ रूप हो जाता है ।। २ ।।

दोहा—अशरण शरण उपदेश ते, होवै मानुष येह ।
मानुष गुरु उपदेशते, देखै सबकी देह ।।३०३।।

शब्दार्थ — अशरण शरण=जिसको कहीं आश्रय एवं आधार न मिलता हो,

उसको आश्रय देने वाला । **सबकी देह**=सबकी वास्तविकता; चारों खानियों के देहों का बन्धन ।

भावार्थ — अनाश्रितों को आश्रय देने वाले सद्‌गुरु के उपदेश से यह व्यक्ति सच्चा मनुष्य हो जाता है । और जो सच्चा मनुष्य हो जाता है वह विवेकी सद्‌गुरु के उपदेश से बोध को पाकर जड़-चेतन सबके वास्तविक स्वरूप को या चारों खानियों की देहों को धारण करने के बीज स्वरूप अज्ञान को देखता है ॥ ३०३ ॥

विशेष — पहले सद्‌गुरु की शिक्षा सुनकर सत्पात्र व्यक्ति दुराचार त्याग कर और शुभाचार धारण कर पवित्र मानव बनता है । पुनः वह गुरुद्वारा यथार्थ स्वरूपबोध को पाकर दिव्य दृष्टि वाला हो जाता है । फिर वह "देखै सबकी देह" सबकी वास्तविकता को समझता है । अथवा वह चारों खानियों के सभी देहों में जाने की बीज वासना पाँचों विषयों तथा नर देह की आसक्ति को समझता है और वह यह जानता है कि पंच-विषयासक्ति तथा इस मानवदेह की आसक्ति छोड़ देने से चारों खानियों में जाने के लिये कोई बीज नहीं बच रहेगा ।

मुमुक्षु व्यक्ति के सामने मानव शरीर से पृथक अन्य खानियों के असंख्यों शरीर की आसक्तियाँ हैं जिनमें कि वह असंख्यों बार रह चुका है, आज नहीं हैं । वे आसक्तियाँ मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में अध्यास रूप में अवश्य हैं, परन्तु वृत्ति रूप में नहीं है । जब तक वृत्ति रूप में कोई अध्यास सामने न आये तब तक उसका मिटाया जाना संभव नहीं । फिर वे आसक्तियाँ कैसे मिटेंगी ? वस्तुतः वे सभी आसक्तियाँ पाँच विषयों की आसक्ति से पृथक नहीं हैं । अतएव वर्तमान में मनुष्यदेह तथा पंचविषयों की आसक्तियाँ मिट जायँ तो अन्य कोई आसक्ति नहीं रह जायगी । जिससे जीव को किसी खानि में जाकर देह धरना पड़े । अतः वह पुरुष "देखै सबकी देह ।" नरदेह तथा पंच विषयों की आसक्ति छोड़कर सब देहों का द्रष्टा बन जाता है, सबसे मुक्त हो जाता है ।

सो प्रकाश पूरण अमल, गुरुमुख पावै सार ।
तेही कर्म उपदेश शिष्य, महाजाल निरुवार ॥३०४॥

शब्दार्थ — प्रकाश=ज्ञान । सार=महत्त्वपूर्ण । कर्म=क्रम; शैली । महा-जाल=महान बंधन । निरुवार=निर्णय; सुलझाव, छुटकारा ।

भावार्थ—वह ज्ञान सर्वतोभावेन निर्मल एवं महत्त्वपूर्ण है, जिसे व्यक्ति गुरुमुख से प्राप्त करते हैं । हे शिष्य, उपदेशक्रम में वही शैली अपनानी चाहिये जिससे जीवों के अज्ञान का महान बन्धन छूट जाय ॥ ३०४ ॥

विशेष — सद्‌गुरु संक्षिप्त रूप से उपदेश देने की शैली का उल्लेख करते हैं कि उपदेश देने का वही ढंग अच्छा है जिसमें अधिक-से-अधिक लोगों का भवबंधन निवृत्त हो।

जाकी बुद्धि जहाँ मँढ़ी, तहाँ पावै विश्राम।
सो याके चितते उठै, उपदेशी को काम ॥३०५॥

शब्दार्थ — मँढ़ी = दृढ़, जमी हुई। उठै = दूर हट जाय; समाप्त हो जाय।

भावार्थ — जिस व्यक्ति की बुद्धि जिस विचार में जम गयी है, वह गलत क्यों न हो, वह व्यक्ति उसी में संतोष मानता है। उपदेशक का यही कर्तव्य है कि वह इस ढंग से उसको उपदेश दे कि उस व्यक्ति की वह गलत धारणा उसके हृदय से सर्वथा निकल जाय। ३०५॥

विशेष — मनुष्य के विचार गलत भले हों, परन्तु जब तक वह उसे उत्तम मान रखा है, तब तक उसे उसी में सुख या लाभ प्रतीत होता है। ध्यान रहे ! उस व्यक्ति की उस गलत धारणा का सीधे खण्डन कर देने से उसके मन से वह नहीं निकल सकती, प्रत्युत तुम्हारी बातों से उसे दुःख हो सकता है और तुम्हारे हितकारी उपदेशों से वह सदा के लिये दूर हो सकता है।

अतएव किसी के दिल को न दुखाकर प्रत्युत उसकी मान्यताओं को उसे मानने की छूट देकर पहले उसमें प्रेम उत्पन्न करने की आवश्यकता है। जब तुम्हारी बातों में उसे प्रेम व विश्वास होने लगेगा, तब वह स्वयं सत्य निर्णय को समझ कर अपनी गलत धारणाओं को सर्वथा छोड़ देगा।

ताको कहिये पारखी, बन्दीछोर दयाल।
तेई साधु तेई गुरु गनी, तेई शिष्य सो निहाल ॥३०६॥

शब्दार्थ — पारखी = परखने वाला, वह जिसमें परखने की शक्ति है; विवेकी। गनी = धनी; संतुष्ट।

भावार्थ — वे जो विवेक-वैराग्य सम्पन्न; अपने समान सबके हृदयको जान कर प्रेम, समता एवं मधुरता से उपदेश करने वाले पुरुष हैं; उन्हीं को कहना चाहिये सारासार को परखने वाले पारखी, बंधन छुड़ाने वाले बन्दीछोर और कृपालु। वे ही संत, वे ही सद्गुरु, वे ही ज्ञान के धनी एवं संतुष्ट, वे ही गुरु के सच्चे शिष्य तथा कृतार्थ रूप हैं॥ ३०६॥

विशेष — 'तेई शिष्य सो निहाल' का अर्थ यह भी हो सकता है कि वह शिष्य कृतार्थ होगा एवं कल्याण पायेगा जिनको ऐसे निर्मल, समदर्शी तथा वात्सल्य भाव पूर्ण हृदय वाले सच्चे सद्गुरु मिलेंगे।

सेवा लावै साधु गुरु, पूजै आठो जाम।
तीरथ चरणामृत गहन, वीरा अचल मुकाम ॥३०७॥

शब्दार्थ — जाम = याम, पहर, तीन घंटे का समय। आठोयाम से अर्थ हुआ

चौबीसों घंटे। तीरथ=तीर्थ, तारने वाला। बीरा=पान परवाना, गुरु द्वारा शिष्यों को दिया जाने वाला बताशे के सहित पान जिसे शिष्यगण बड़ी श्रद्धा से खाते हैं; वीर, जितेन्द्रिय।

भावार्थ — विवेकी संत-गुरु की सेवा करे तथा चौबीसों घंटे उनकी पूजा करे, सत्संग रूपी तीर्थ में निवास करे, संत-गुरु के स्वच्छ चरण में स्पर्श किये हुए जल रूप चरणामृत का पान करे, उनका दिया हुआ पानपरवाना ग्रहण करे अथवा वीर बनकर अपने मन इन्द्रियों को जीते तथा अविचलधाम स्वरूपस्थिति में विश्राम करे ॥ ३०७ ॥

विशेष — विवेक सम्पन्न संत-गुरु की सेवा करे यह बात तो समझ में आगयी; परन्तु चौबीसों घंटे उनकी पूजा करने का क्या भाव है ? यहाँ चंदन-फूल लेकर पूजने की बात नहीं है। क्योंकि चौबीसों घंटे चन्दन-फूल से न कोई पूजा कर पायेगा और न हो कोई पुजवा पायेगा। वस्तुतः विवेक-वैराग्य सम्पन्न संत-सद्गुरु के प्रति जिसके हृदय में अविचल श्रद्धा एवं उनके उपदेशानुसार स्वयं में विवेक-वैराग्य की रहनी का धारण है, वह मानों चौबीसों घंटे संतगुरु की पूजा करता है। या सब समय उनके प्रति आदर का भाव रखना चौबीसों घंटे पूजा करना है।

चरणामृत — मुख्य सद्गुरु तथा जिन विवेकवान संतों में अपनी सहज श्रद्धा और इच्छा हो उनके चरणोदक समय पर कभी लेना शिष्य और मुमुक्षु के लिये श्रद्धा-भक्ति के लिए ठीक है। वस्तुतः सद्गुरु संतों के चरणों में श्रद्धा होना व उनके दिव्य आचरणों को धारण करना ही मुख्य चरणोदक लेना है। इसका विवरण इस प्रकरण में पीछे २११ नम्बर के दोहे में कर आये हैं।

बीरा या पान परवाना — कबीरपंथ की कई शाखाओं में इसका प्रचलन आज भी है। मुख्य सद्गुरु या महंत पान पर बताशे रखकर शिष्यों को प्रसाद स्वरूप देते हैं। परन्तु पारखसिद्धान्त में इसका प्रचलन पहले रहा भी हो तो भी बहुत दिनों से बन्द हो चुका है।

बाना दीनदयाल को. छाप तिलक उर माल।
उपदेशे जीवन सदा, धारे रूप सो हाल ॥३०८॥

शब्दार्थ — बाना=वेष। छाप=चिन्ह। हाल=दशा; अवस्था।

भावार्थ — दीनदयाल सद्गुरु का वेष साधु का है। उनका श्वेत खड़ा तिलक न्याय का तथा हृदय पर माला धारण करना दया का चिन्ह है। इस प्रकार के रूप और दशा धारण करके जीवों को सदैव उपदेश देते रहते हैं ॥ ३०८ ॥

दीन उद्धारण अस्ति पद, साधु गुरू प्रत्यक्ष।
श्रवण करै ताके वचन. मनन निजु कै गुरु लक्ष ॥३०९॥

शब्दार्थ — अस्तिपद=सत्यचेतन स्वरूप। लक्ष=लक्ष्य, उद्देश्य।

भावार्थ — विवेकी सद्गुरु-संत जन दीनों के उद्धारक, स्वयं सत्य चेतन स्वरूप में स्थित तथा प्रत्यक्ष हैं। शिष्य एवं मुमुक्षु को चाहिये कि गुरु के पूर्ण लक्ष्य को समझते हुए श्रवण करे और अपने हृदय में मनन करे ॥ ३०९ ॥

अध्यासन साक्षातता, निर्णय यथा प्रमान।
साक्षातहु साक्षातता, अहै यथारथ ज्ञान ॥३१०॥

शब्दार्थ—अध्यासन=बैठना; आसन; स्थान; निरीक्षण करना; तात्पर्य में निदिध्यासन; जिसका अर्थ होता है अनवरत (लगातार) चिंतन। साक्षातता= साक्षात; प्रत्यक्ष; स्पष्ट; तात्पर्य में स्वयं प्रत्यक्ष स्वस्वरूप का बोध।

भावार्थ — यथार्थ निर्णय के अनुकूल अनवरत चिंतन करे फिर साक्षात एवं स्वस्वरूप का स्वयं प्रत्यक्ष बोध हो जायगा। अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान एवं स्थिति हो जाना ही साक्षात्कार से भी परम साक्षात्कार होना है ॥ ३१० ॥

भेद त्यागि इमि भक्ति गुरु, करै सोई जिज्ञास।
पावै शिष्य सो शांतपद, ठहरै गुरुमत ध्यास ॥३११॥

शब्दार्थ — जिज्ञास=जिज्ञासु; जानने का इच्छुक, खोजी। ध्यास=अभ्यास।

भावार्थ — जाति-पाँति, धनी-गरीब, विद्वान-अविद्वान, ऊँच-नीच आदि का भेदभाव छोड़कर जो विवेकी सद्गुरु की भक्ति करता है वही ज्ञान का सच्चा खोजी है। वही शिष्य, गुरुविचार के अनवरत अभ्यास से ठहर कर परम शांति पद को प्राप्त करता है ॥ ३११ ॥

उपदेशन की युक्तिता, गुरु शिष्य केर संदेश।
इमि उपदेशै शिष्य जग, सत्य शब्द उपदेश ॥३१२॥

शब्दार्थ — युक्तिता=युक्ति एवं तरीका होने का भाव। संदेश=संवाद।

भावार्थ — गुरु-शिष्य के संवाद के रूप में उपदेश करने की युक्ति बतला दी गयी। हे शिष्य ! उपर्युक्त प्रकार से संसार वालों को सत्यनिर्णय का उपदेश करना चाहिये ॥ ३१२ ॥

२४ — स्थिति पद पर विवेचन

शिष्य प्रश्न– २२

दोहा—हे प्रभु दीन्ही सीख तुम, उपदेशन की चाल।
सो मैं नीके ही लह्यों, साहेब दीनदयाल ॥३१३॥

शब्दार्थ — सीख=शिक्षा। चाल=ढंग।

भावार्थ — हे प्रभु ! दूसरों को उपदेश देने की अच्छी शिक्षा आपने दी। हे दीनदयाल स्वामी ! उसे मैं अच्छी तरह से प्राप्त किया ॥ ३१३ ॥

अब कहिये करुणारवन, थीर कौन पद आहि।
स्वतः हंस आनन्द पद, पावै केहि पद माँहि ॥३१४॥

शब्दार्थ — **करुणारवन**=करुणारमण, करुणा में रमने वाले; दयास्वभावप्रिय। **पद**=दर्जा; स्थिति; स्वरूप।

भावार्थ — हे दया स्वभावप्रिय गुरुदेव ! अब यह बतलाने की कृपा करें कि स्थिति का क्या स्वरूप है ? किस दशा में स्थिर होकर यह जीव अपने परमशांतिपद को पाता है ॥ ३१४ ॥

केहि पद पाये कृपा निधि, एक अनेक को भाव।
मिटै रहै ठहराय सुथिर, परख दृष्टि को पाव ॥३१५॥

शब्दार्थ — **एक**=ब्रह्म। **अनेक**=जगत।

भावार्थ — हे कृपानिधान ! किस स्थिति को पाकर कल्पित ब्रह्म और जगत की भ्रम मान्यतायें मिटकर शांत होकर ठहर रहेगा और पारख दृष्टि को पा जायेगा ? ॥ ३१५ ॥

सो साहेब विस्तार युत, कहिये यथा प्रमाण।
निर्णय सहित सो भाखिये, जाते होय कल्याण ॥३१६॥

शब्दार्थ — **यथा प्रमाण**=जैसे सत्य हो। **कल्याण**=मोक्ष।

भावार्थ — हे साहेब ! जैसा सत्य हो, उसे विस्तार पूर्वक और निर्णय युक्त कहिये, जिससे बंधन छूटकर जीव का मोक्ष हो ॥ ३१६ ॥

सद्गुरु उत्तर-२२

दोहा—सुन शिष्य हंस को थीर पद, जैसे जलको सेत।
सो कोई सिंधु कोई सरिता, वापी कूप घट पोत ॥३१७॥

शब्दार्थ — **हंस**=जीव। **सेत**=श्वेत रंग। **सिंधु**=समुद्र। **सरिता**=नदी। **वापी**=वापी, सीढ़ीदार कूआँ। **कूप**=कूआँ। **घट**=घड़ा। **पोत**=प्रोत, बँधा हुआ; भरा हुआ।

भावार्थ — हे शिष्य ! सुनो, जैसे जल का श्वेत एवं उजला रंग है वह भले ही किसी समुद्र, किसी नदी तथा किसी वापी, कूआँ और घड़ा में भरा हो; वैसे जीव हस्ती से चींटी एवं अत्यंत सूक्ष्म खानि तक कहीं भी हो अथवा मनुष्य शरीर में ही देहोपाधि तथा कर्मोपाधि से चाहे जिस स्वभाव वाला हो उसके धर्म, गुण, शक्ति, आकार एवं वर्ण 'ज्ञान' हैं। अतएव ज्ञानस्वरूप ही उसका स्थितपद है ॥ ३१७ ॥

विशेष — अन्य तत्त्वों एवं अनेक कार्य पदार्थों के संयोग से जल के रंग लाल, काला, पीला, हरा आदि कई हो जाते हैं; परन्तु उसका मूल रंग उजला है। इसीप्रकार

नाना योनियों, शरीरों, अवस्थाओं एवं गुणकर्मों में पड़कर जीव की चाहे जो ऊँची-नीची गति हो, परन्तु उसका मूल स्वरूप ज्ञान ही है। वह बंधनों में बँधे रहने पर भी ज्ञानीवदशा से पृथक नहीं होता। अतएव व्यक्ति की स्थिति ज्ञान में ही है। उसे चाहिये कि वह अपने ज्ञानस्वरूप में शांत हो क्योंकि उसका मूलस्वरूप ज्ञान ही है।

समुद्र खार सुतरंग युत, मेघ करे सो पान।
बुंद होय वर्षे धरणि, नदिन सहित समान ॥३१८॥

शब्दार्थ — मेघ = बादल। नदिन = नदियाँ।

भावार्थ—समुद्र का जल खारा तथा बहुत तरंगवाला है। उसे सूर्य की किरणें शोषित कर आकाश में चढ़ाती हैं। फिर वही बादल बनकर पृथ्वी पर बरसता है और नदी, तालाब, नाले आदि में समा जाता है ॥३१८॥

ठौर ठौरसों समेटि कै, बसै सो सागर खार।
तैसे हंसा ब्रह्म में, उपजै जीव विहार ॥३१९॥

शब्दार्थ — सागर = समुद्र। हंसा = जीव। विहार = क्रीड़ा; उपभोग; भ्रमण।

भावार्थ — उपर्युक्त नदी, नालों आदि स्थान-स्थान के जल सिमिट कर उसी खारे समुद्र में पुनः जाकर टिकते हैं। उसी प्रकार भूले लोगों ने मान रखा है कि ये असंख्य जीव ब्रह्मसमुद्र में उत्पन्न होते तथा भोग करते हुए भ्रमण करते हैं ॥ ३१९ ॥

पुनि सो प्रापत ब्रह्म जीव, जैसे सागर नीर।
रहट खानि यह फेर है, ठहरै नहिं सो नीर ॥३२०॥

शब्दार्थ— प्रापत = प्राप्त। नीर = जल।

भावार्थ — पुनः जैसे सब जल अंत में समुद्र में पहुँचते है, वैसे सब जीव अंततः ब्रह्म को प्राप्त होते हैं (यह उनकी मान्यता है)। इसलिये यह ब्रह्म से जीव तथा जगत और जीव तथा जगत से ब्रह्म होने का और नाना योनियों में जीव के भ्रमण करने का घुमावदार चक्कर है। दृष्टांत में जैसे समुद्र का जल नहीं स्थिर होता, वैसे ब्रह्म अभ्यासी जीव शांति नहीं पाते ॥ ३२० ॥

विशेष — जैसे समुद्र का जल वाष्प बनकर बादल बनता है और पुनः बर्षकर समुद्र में पहुँचता है; उसी प्रकार जो अपने आप को ब्रह्मसमुद्र का अंश मानते हैं वे बारम्बार ब्रह्म से जीव और जीवसे ब्रह्म होने के अभ्यास को स्वीकार करके सदा के लिये चंचल दशा में पड़े रहने का बीज बोते हैं। यदि कोई अपने आप को ब्रह्म मानता हो तो भी वह मुक्त नहीं हो सकता। ब्रह्म स्थिर पद है ही नहीं। क्योंकि उसका अनादि अनंत स्वभाव है जगत बनते रहना।

स्वाती नीर किंचित अहै, मिष्ट सुरस अरु शीत।
सो नहिं सागर मिलत है, नहिं मेघन की भीत ॥३२१॥

शब्दार्थ — स्वाती = स्वाति; २७ नक्षत्रों में से १५ वाँ जो शुभ माना गया है। कहते हैं समय के अनुसार चातक इसमें ही होने वाली वर्षा का जल पीता है और वही जल सीप के संपुट में पहुँच कर मोती और बाँस में बंशलोचन बनता है। सुरस = सुन्दर रस युक्त; मधुर। भीत = भय।

भावार्थ--स्वाति नक्षत्र का जल थोड़ा होता है, परन्तु वह मीठा, सुरस एवं शीतल होता है; और वह सीपी में मोती बनकर स्थायी हो जाता है। वह समुद्र में रहते हुए भी उसमें घुल मिल नहीं जाता; और न तो सूर्यकिरणों द्वारा शोषित होकर उसे बादल बनने का भय रहता है ॥ ३२१ ॥

तैसे हे शिष्य ठहर पद, अहै येह सब रूप।
द्रष्टा होवै सबन कर, अहंकार तजि स्वरूप ॥३२२॥

शब्दार्थ — येह सब रूप = जगत प्रपंच, पंच विषय।

भावार्थ — उसी प्रकार हे शिष्य ! स्थित पद अपना ज्ञान स्वरूप ही है। अतएव जगत प्रपंच, पंचविषय एवं सारे दृश्यों का द्रष्टा बनकर और उनमें लगी हुई अहंता-ममता का त्याग करके अपने ज्ञान स्वरूप में स्थित होओ ॥ ३२२ ॥

विशेष — जैसे स्वाति की बूँद मोती बनकर स्थिर हो जाती है; वैसे अपने स्वरूप में स्थिर होकर जीव मुक्त हो जाता है। स्वातिबूँद से मोती बनने का उदाहरण कविपरम्परा से प्राप्त धारणा के अनुसार दिया गया है।

सार इतना ही है कि ब्रह्म को जगत का स्वाभाविक कारण माने हैं, अतएव ब्रह्म के भ्रम में पड़े हुए जीव स्थिरता को नहीं पा सकते। स्थिति वही पायेगा जो सारे दृश्यों से अपने को पृथक समझ कर उनका मोह छोड़ देगा और अपने ज्ञानस्वरूप में स्थित हो जायगा, वह ब्रह्म की कल्पना में नहीं पड़ेगा।

वचन सतगुरु यथाविधि, कहैं सुमारग चाल।
अस्ति आत्माराम यह, कोहं कोहं जाल ॥३२३॥

शब्दार्थ — अस्ति = सत्ता; सत्य। आत्माराम = स्वत:जीव। कोहं = कोऽहं; मैं कौन हूँ।

भावार्थ — विवेकी सद्गुरु मनुष्य मात्र को उत्तममार्ग पर चलने के लिये निर्णयपूर्वक वचन कहते हैं। वह यह है कि हृदय में रमने वाला जीवस्वरूप राम ही आत्मा अर्थात अपना है यानी वही अपना स्वरूप और सत्य है; और मैं कौन हूँ ? ब्रह्म हूँ कि जीव हूँ कि जगत हूँ ? इस प्रकार सन्देह में पड़े रहना एक जाल है ॥ ३२३ ॥

विशेष — यह पहले चर्चा कर आये हैं कि पंचग्रंथी में आत्माराम, आत्मा, राम, आनन्द आदि शब्द विधिपरक मान करके भी कहा गया है।

मन माया पद देखिके, पारख द्रष्टा होय।
निर्णय यथा प्रमाण गुरु, लखहु ठहर पद सोय ॥३२४॥

शब्दार्थ — माया=कल्पना, मोह, शरीरादि पदार्थ । पद=स्वरूप । देखिके=समझ कर ।

भावार्थ — मन और माया के स्वरूप की वास्तविकता को भलीभाँति समझकर और मैं सबको परखने वाला पारखस्वरूप हूँ ऐसा जानकर सारे दृश्यों का द्रष्टा बन जाओ । और सद्गुरु के निर्णय प्रमाणानुकूल अपने स्वरूप में स्थित होकर उन बाह्य दृश्यों को अपने से पृथक देखो ॥ ३२४॥

सत्यनिर्णय शब्द—५

संतो ठहरिके करहु विचार । ठौर निज सुखदाई ॥ १ ॥
बिना विचार सकल जग जहँड़े । थिति कहु कौन कहाँ पाई ॥ २ ॥

शब्दार्थ — जहँड़े=ठगा गये । थिति=स्थिति ।

भावार्थ — हे संतो ! सावधान होकर अपने शांतिप्रद स्थान का विचार करो तुम्हारी स्थिति कहाँ है ? ॥ १ ॥ विचार न करने से संसार के सारे लोग मन-माया के फंदे में ठगा गये हैं । कहो भला, मनकी कल्पना में कौन व्यक्ति कहाँ स्थिति पायी है ? ॥ २ ॥

माथे व्याप संधि के घेरा । विष बौराने समुदाई ॥ ३ ॥
ज्ञानी भक्त योगी कहलावै । मर्म महातम भरमाई ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — माथे=मस्तक पर, सिर पर । व्याप=व्याप्त; ढकने वाला; आवरण । संधि=दरार; भेद, अपने चेतन स्वरूप से पृथक अपना लक्ष्य खोजना । घेरा=विस्तार । विष=कल्पना; विषय वासना । समुदाई=समूह । मर्म=भेद; गुप्त रहस्य ।

भावार्थ — लोगों के सिर पर एवं मन पर यह एक बहुत विस्तृत आवरण है कि हमारा लक्ष्य हमसे पृथक है, अर्थात हमें शांति या मुक्ति हमसे पृथक किसी दूसरी मानी हुई वस्तु में मिलेगी । इसीलिये संसार के समुदाय-के-समुदाय कल्पना एवं विषय के जहर से आक्रांत होकर उन्मत्त हो रहे हैं ॥ ३ ॥ यहाँ तक कि ज्ञानी, भक्त और योगी कहलाने वाले भी अपने मतों की कल्पित बातों को 'गुप्तरहस्य' कहकर और उनको बहुत बढ़ा-चढ़ा कर उनका माहात्म्य बढ़ाते हैं तथा उन्हीं में दूसरे लोगों को भी भ्रमाते हैं ॥ ४ ॥

त्रिदेवा अधिकारी जगतके । त्रिविधि भेष मन कुटिलाई ॥ ५ ॥
चीन्ह न परी घात मनुवाके । मृतक भये नर बौराई ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — त्रिदेवा = ब्रह्मा, विष्णु और शंकर। अधिकारी = अधिकार रखने वाले; शासक। घात = छल; विश्वासघात।

भावार्थ — लोगों ने कल्पना करके यह माना है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर प्राचीन काल के संसार के राज्यशासक तथा सब समय के धर्मशासक हैं। उनके तीन प्रकार के वेष माने हैं; परन्तु उनके मनमें भी टेढ़ापन था ॥ ५ ॥ वे भी अपने दगाबाज मन के विश्वासघात को समझ नहीं पाये। परन्तु उन्हीं के पीछे समूह-के-समूह मनुष्य मुग्ध होकर अज्ञान में चले जा रहे हैं ॥ ६ ॥

निर्णय तिलक लिलाट विराजै। राज काज विधि युक्ताई ॥ ७ ॥
सो प्रपंच विदित है जगमें। जहँड़े औरन जहँड़ाई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — तिलक = चंदन। लिलाट = ललाट, मस्तक। जहँड़े = ठगे गये।

भावार्थ — ब्रह्मा के मस्तक पर यथार्थ निर्णय का परिचायक तिलक विराजता है। वे राज-काज चलाने के कानून तथा युक्ति में निपुण माने जाते हैं ॥ ७ ॥ परन्तु उनका गलत आचरण भागवत आदि पुराणों से ही जगत में प्रसिद्ध है कि वे अपने मन को अपनी लड़की से भी नहीं रोक पाये। इस प्रकार स्वयं ठगा गये तथा दूसरे को भी ठग लिये ॥ ८ ॥

विष्णु दया के रूप कहावै। कंठी कंठे दिखलाई ॥ ९ ॥
सो विख्यात प्रगट हुए जगमें। विषय वैर संग कुशलाई ॥१०॥

शब्दार्थ — कंठी = माला। कंठे = गले में।

भावार्थ — कहा जाता है कि विष्णु जी महाराज दया के साक्षात स्वरूप हैं। उनके गले में दया का चिन्ह माला भी दिखाई देती है ॥९॥ वे संसार में बहुत प्रसिद्ध पुरुष माने गये हैं; परन्तु पुराणों के अनुसार वृंदा का सतीत्व नष्ट करने के लिये उन्होंने उससे गलत व्यवहार किया और विपक्षियों को दैत्य की संज्ञा देकर उनसे सदैव वैर-विरोध ही करते रहे; इसीलिये उन्होंने महान धर्मात्मा बलि के साथ महा-विश्वासघात किया। इस प्रकार विषय और वैर-विरोध में अपना हित समझने वाले विष्णु का चरित्र विदित है ॥ १० ॥

जतिको डिंभ जो हर को देखा। कामारी ढ़ फैलाई ॥११॥
खुली काँछ कामके माते। कहत न लागे सकुचाई ॥१२॥

शब्दार्थ — जति = यति; जितेन्द्रिय, विरक्त। डिंभ = दम्भ; पाखण्ड; दिखावा। हर = शंकर। कामारी = काम के शत्रु; कामनाशक। काँछ = काछ, पेड़ू और जाँघ का जोड़; धोती का छोर जिसे जाँघों के बीच में ले जाकर पीछे खोंसते हैं; लाँग।

भावार्थ — शंकर जी में जितेन्द्रिय एवं विरक्त होने का दिखावा एवं दम्भ देखा गया। वे कामारि एवं कामनाशक हैं—इस मान्यता का प्रचार उनके भक्तों

ने जोर-शोर से कर रखा है ।।११।। परन्तु जब वे मोहनी को देखे तो उनकी काछ खुल गयी और वे काम वासना में उन्मत्त हो गये, पुनः सती, पार्वती आदि अनेक पत्नियाँ उनकी मानी गयी हैं जिनके मर जाने पर उनके सिरों की वे माला ही बनाकर पहने रहते थे ऐसे आसक्त माने गये हैं। फिर भी उनको कामारि कहने में लोगों को संकोच नहीं लगता ।।१२।।

जैसा कहै करै पुनि तैसा । सत्य शब्दसों अटलाई ।।१३।।
फंदा टूटै तब जीव छूटै । बिन गुरु जाल न दर्शाई ।।१४।।

शब्दार्थ — फंदा = बंधन । दर्शाई = दिखाई देना; समझ पड़ना ।

भावार्थ — जैसा वचनों से कहे, पुनः वैसा आचरण करे; और निर्णयशब्दों पर अचल रहे ।। १३।। इस प्रकार समस्त बंधन टूट जायेंगे और जीव मुक्त हो जायगा । परन्तु बिना पारखी सद्गुरु के उपदेश पाये सब बंधन समझने में नहीं आता ।।१४।।

संत सदा सोई परमाणिक । जिन निज घरको सुधि पाई ।।१५।।
कहहिं कबीर चेतु नर बौरे । हो हुशियार दुख बिलगाई ।।१६।।

शब्दार्थ — परमाणिक = प्रामाणिक, जिसके लिए कोई प्रमाण हो, प्रमाणसिद्ध, विश्वासपात्र, वास्तविक, सच्चा । निजुघर = अपनी स्वरूपस्थिति मोक्षपद । सुधि = सुध, याद, होश, चेत, खबर ।

भावार्थ — वे ही संत सदैव सच्चे एवं परम विश्वासनीय हैं जिन्हें अपनी स्वरूपस्थिति की याद हो गयी ।।१५।। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे मुग्ध मानव ! तू भी अपनी स्वरूपस्थिति की याद कर, और मन-माया से सावधान होकर दुःखों से मुक्त हो जा ।। १६ ।।

विशेष — हो सकता है ब्रह्मा, विष्णु और शंकर सर्वथा अच्छे ही रहे हों और पुराण के लेखकों ने लिख-लिखकर इस प्रकार उनके स्वरूप को बिगाड़ दिया हो, परन्तु प्रस्तुत ग्रंथकर्ता तो पुराणों के प्रमाणानुसार ही उल्लेख किये हैं ।

उपर्युक्त शब्द में ब्रह्मादि त्रिदेवों के उल्लेख का इतना ही सार है कि जो स्वयं अपने आचरणोंसे इतना शिथिल हो, उसके नाम जपनेसे कोई क्या उन्नति कर सकेगा ? अतएव अपने आप का स्वयं उद्धार करो ।

उक्त शब्द की दोनों नीचे वाली पंक्तियाँ बड़ी ही हृदयस्पर्शी हैं "वही संत सच्चा है जो अपनी अविनाशी स्वरूपस्थिति को पा गया हो ।" हर मनुष्य का यही कर्तव्य है कि वह सारी माया की आसक्तियों को जीतकर अपने अविनाशी धाम स्वरूपस्थिति में अचल हो ।

दोहा— बंदीछोर कबीर गुरु कहा वचन टकसार ।
तेहि मत प्रगट पुनीत मन, राखै दुंद निवार ।। ३२५ ।।

शब्दार्थ — टकसार = टकसाल, बीजक । दुंद = द्वन्द्व,झगड़ा ।

भावार्थ — बन्धन छुड़ाने वाले सद्‌गुरु कबीर ने बीजक में सारासार निर्णय के वचन कहे हैं । उनका पारखसिद्धान्त बीजक में प्रत्यक्ष है । अतएव सब झगड़ों को दूर करके अपने पवित्र मनको उसी में रखो ॥३२५॥

हे शिष्य यह क्रमते करै, याको सदा विचार ।
अस्ति आत्माराम है, नास्ति जगत विस्तार ॥३२६ ॥

शब्दार्थ — अस्ति = सत्य । नास्ति = असत्य ।

भावार्थ — हे शिष्य ! इस बोध का इस सिलसिले से सदैव विचार करे कि अपना चेतन स्वरूपराम सत्य है तथा माना हुआ पंचविषय का विस्तार असत्य है ३२६

विशेष — संसार का विस्तार असत्य है का तात्पर्य है कि यह नाशवान एवं छूट जाने वाला है ।

नास्ति माँहि ये अस्ति जो, लागे तेहू नास्ति ।
याकी पारख ठहरिके, गुरुमुख लखै सो आस्ति ॥ ३ ७॥

शब्दार्थ — लागे = आसक्त हो । तेहू = वे भी । नास्ति = पतित हो जाना । आस्ति = अस्ति, सत्य, तात्पर्य में मुक्त ।

भावार्थ — नाशवान पदार्थों में आसक्त होने से यह सत्य चेतन भी पतित हो जाता है । अतएव जो इस सत्य-असत्य,अपने-पराये की परख सावधान होकर गुरुमुख वाणियों द्वारा करता है, वह अविनाशी मुक्ति को पाता है ॥३२७॥

संकल्पे जग है भयो, मिटै संकल्प नशाय ।
दोऊकी पारख करै, ठहरै दोऊ न कहाय ॥ ३ ८॥

शब्दार्थ — संकल्पे = ब्रह्म की इच्छा से ।

भावार्थ — ब्रह्मवादियों का जो यह कथन है कि ब्रह्मकी इच्छा से जगत की सृष्टि हुई है और जब वह इच्छा समेट लेगा तब संसार मिट जायगा । इन दोनों को परख की कसौटी से कसने पर ये सत्य नहीं ठहरते । अतएव अपने आपको न ब्रह्म कहलाने की चेष्टा करो न जगत ॥ ३२८ ॥

अस्तिसे देखै नास्ति को, व्यष्टि समष्टयाकार ।
समष्टि व्यष्टि दोऊ मेटै, गुरुमुख सो तदाकार ॥ ३२९॥

शब्दार्थ — अस्ति = सत्य, चेतन स्वरूप । नास्ति = असत्य, माया; काया, मन, कल्पना । समष्टयाकार = समष्टि का आकार; ब्रह्म । व्यष्टि = पृथक, जगत । समष्टि = सामूहिकता, सम्पूर्णता, ब्रह्म । तदाकार = तत् + आकार, उसका आकार, उसके समान, तात्पर्य में उसमें ध्यानमग्न ।

भावार्थ — कल्याणार्थी को चाहिये कि वह अपने चेतनस्वरूप की पारखदृष्टि से व्यष्टि, पृथक एवं नानत्व जगत को तथा समष्टि-आकार, माना हुआ समवेत सत्ता-रूप ब्रह्म को परिवर्तनशील, काल्पनिक और बन्धनरूप देखे, और व्यष्टि-समष्टि, पृथक-अपृथक, जगत-ब्रह्म इन दोनों को त्याग कर गुरुमुख सारशब्दों से निर्णीत स्वरूप चेतन में तन्मय एवं ध्यानमग्न हो ॥ ३२९ ॥

विशेष — कारण ब्रह्म तथा कार्य जगत दोनों का द्रष्टा अपना चेतन स्वरूप है। अतः उक्त दोनों को त्यागकर अपने आप शांत होओ।

तदाकार सो अस्तिपद, सोई है कर्तार।
कर्त्ता कल्पै सब भयो, ब्रह्म सृष्टि जग झार ॥३३०॥

शब्दार्थ — तदाकार = तन्मय; ध्यानमग्न। अस्ति = सत्य। पद = स्वरूप। कर्तार = कर्ता, श्रेष्ठ। झार = सब।

भावार्थ — जिसमें मैं तन्मय एवं ध्यानमग्न होने को कहता हूँ वही तुम्हारा सत्य स्वरूप चेतन है; और वही सबका कल्पनाकर्ता है। श्रेष्ठ कर्ता मनुष्यजीव की कल्पना से ही ब्रह्म, ब्रह्मसे सृष्टि तथा जगत की सारी मान्यतायें फैली है ॥ ३३० ॥

विशेष — जीव ही सर्वोपरि तत्त्व है वही सबकी कल्पना करता है। वही ब्रह्म की कल्पना करता है। ब्रह्म से सृष्टि होने की कल्पना करता है। संसार की अनेक अहंता-ममता की कल्पना करता है।

ब्रह्म अस्ति हंता सोई नास्तिरूप की खानि।
त्यागै गुरुमुख परख लही, परखै खानि औ बानि ॥३३१॥

शब्दार्थ — अस्ति = है। खानि = खजाना। खानि औ बानि = मोटी माया और झीनी माया।

भावार्थ — मैं समस्त विश्वप्रपंच का कारण ब्रह्म हूँ—यही अहंकार है; और असत्य स्वरूपों का खजाना—हजार झुठाइयों का केन्द्र है। अतएव गुरुमुखद्वारा परख-दृष्टि प्राप्त करके मोटी तथा झीनी दोनों मायाओं की परख करे और उन्हें त्याग करे ॥ ३३१ ॥

विशेष — मोटी माया है 'मैं देह हूँ' और झीनी माया है 'मैं विश्व का कारण ब्रह्म हूँ'—इन दोनों भावनाओं को त्याग कर अपने आप शांत होना चाहिये।

चौपाई १६

हे शिष्य हंसन निश्चय येहा। ठहरै गुरुपद सहित सनेहा ॥ १ ॥
बुरी बात जो दृष्टि समाई। तुरितहि त्यागे पक्ष न करई ॥ २ ॥

शब्दार्थ — हंसन = हंस का बहुवचन; विवेकियों। गुरुपद = स्वस्वरूप चेतन।

भावार्थ — हे शिष्य ! विवेकियों को ऐसा निश्चय रहता है कि श्रद्धा एवं उत्साहपूर्वक अपने स्वरूप में स्थित हो जायँ ॥ १ ॥ यदि कोई गलत बात अपने मनमें आ जाय या कोई अपने से गलत व्यहार हो गया हो; उसको गलत समझते ही तुरन्त त्याग कर दें, उसका पक्ष या मोह न करें ॥ २ ॥

निर्णय आश्रित जो जीव भयऊ । सो जीव निर्णय यथारथ ठयऊ ॥३॥
अनुमानी अनुमान अहंता । परे काल मुख लहे न समता ॥४॥

शब्दार्थ — ठयऊ = ठानना; निश्चय करना । अनुमानी = अनुमान, भ्रम एवं कल्पनामें पड़े लोग । काल = कल्पना ।

भावार्थ — जो व्यक्ति सम्प्रदाय, पंथ, पोथी, गुरु सबका पक्षपात छोड़कर न्याय का अवलम्ब लेता है वह व्यक्ति यथार्थ निर्णय करके सत्य का निश्चय करता है ॥ ३ ॥ परन्तु भ्रम, अनुमान एवं कल्पना में फँसे हुए लोग अपनी कल्पित बातों का ही अहंकार लिये बैठे रहते हैं । अतएव वे कल्पना, अज्ञान के मुख में पड़े हुए लोग समता पूर्वक विचार नहीं करते ॥ ४ ॥

विशेष — जो व्यक्ति यह समझता है कि केवल श्रद्धा ही सत्य की जननी नहीं है; श्रद्धा के साथ विवेक एवं निष्पक्ष न्याय की बड़ी आवश्यकता है; वह निष्पक्ष निर्णय द्वारा सत्य को प्राप्त करता है । परन्तु जो यह मानता है कि हमारी पुस्तक ईश्वरीय है, वह स्वतः प्रमाण है; हमारे इष्ट ईश्वर के अवतार हैं, वे जो कहें सब सत्य है; अपने मत के विरुद्ध बात करना पाप है आदि । ऐसे लोग सत्य नहीं प्राप्त कर सकते । उनमें समता नहीं आ सकती ।

कितने लोग तो जब इतना ही सुन लेते हैं कि अमुक व्यक्ति ईश्वर-ब्रह्म नहीं मानता, तो वे उसे नास्तिक, पापी सबकुछ कहने या मानने लगते हैं । फिर ऐसे लोगोंमें समता कैसे आ सकती है ? अपने चेतन स्वरूप से पृथक ईश्वर-ब्रह्म तो एक कल्पना है । उसे मानने और न मानने में कोई अन्तर नहीं पड़ता । यदि मनुष्य सदाचारी है तो ठीक है और सदाचारी नहीं है तो गलत है । ईश्वर-ब्रह्म मानना और न मानना अपना विचार है । ईश्वर-ब्रह्म मानने वाले ही उसे अपने-अपने विचारों के अनुसार क्यों तोड़ते-मोड़ते हैं ? जो लोग जीव को ही सर्वश्रेष्ठ या ईश्वर मानते हैं; वे पूरी सत्यता के धरातल पर हैं । यह न मान सकें तो यह मान लें कि उनका भी अपना एक विचार है । परन्तु जिनके मनमें पक्षपात है वे इस समता की बात को नहीं समझ सकते ।

दोहा — निश्चय पद के अनुक्रम, तो कहँ दियो बताय ।
गुरुमुख निर्णय अस्तिकी, जहाँको तहाँ ठहराय ॥३३२॥

शब्दार्थ — निश्चय = स्थिर । पद = स्वरूप । अनुक्रम = क्रमबद्ध; सिलसिला । अस्ति = सत्य । जहाँ का तहाँ = जहाँ था वहीं, अपनी जगह पर । ठहराय = स्थित हो ।

भावार्थ — मनुष्य का स्थिर स्वरूप या स्थिति दशा क्या है ? मैंने सिलसिलेवार तुम्हें बतला दिया है। गुरुमुख से यह निर्णय हुआ है कि मनुष्य का अपना चेतन स्वरूप ही सत्य है। अतएव उसे चाहिये कि वह अपनी जगह, अपनी भूमिका एवं अपने स्वरूप में स्थित हो ॥ ३२२ ॥

विशेष—३१४ तथा ३१५ दोहे में शिष्य ने पूछा था कि स्थिरपद क्या है ? यानी मनुष्य की अपनी मूलस्थिति क्या है ? गुरु ने इस बात को बड़े विस्तार पूर्वक समझाया। उन सबका सार यह है कि मनुष्य को चाहिये कि वह अपने चेतन स्वरूप में शांत हो; क्योंकि वह स्वयं सत्य, असंग एवं पूर्ण है।

सोरठा — अब कछु शंका होय, सो पूछहु शिष्य प्रसन्न चित।
कहौं यथाविधि सोय, निर्णय सहित यथार्थ सुपद ॥२५॥

शब्दार्थ — सुपद = उत्तम स्वरूप; उत्तम निर्णय; वाजिब।

भावार्थ — हे शिष्य ! अभी यदि तुम्हारे मनमें अन्य शंकायें हों तो प्रसन्न मन से पूछ सकते हो। मैं उन प्रश्नों का भी उत्तर विधिपूर्वक, न्यायसहित, वास्तविक एवं वाजिब रूप से देने की चेष्टा करूँगा ॥ २५ ॥

२५ – मनुष्य की शुद्ध रहनी, उत्तम गृहस्थ तथा विरक्त के आचरण और जीवन्मुक्ति की पूरी रहनी आजाने से सबका कल्याण

शिष्य प्रश्न—२३

सोरठा — साहेब गरीब निवाज, भाखेहु यथाविधि मोहिसों।
बलिजाउँ ये आवाज, जानेउँ अनुग्रह मैं सकल ॥२६॥

शब्दार्थ — निवाज = दया करने वाला। बलिजाउँ = निछावर कर दूँ; अपने आप को अर्पित कर दूँ। अनुग्रह = कृपा।

भावार्थ — हे दीनों पर कृपा करने वाले साहेब ! आपने मेरे प्रश्नों का उत्तर विधिपूर्वक दिया है। आपके इन उदार निर्णयवचनों पर मैं अपने आप को निछावर करता हूँ। आप के कृपाप्रसाद से मैंने सारी ज्ञातव्य बातें जान ली हैं ॥ २६ ॥

अब कहु बन्दीछोर, लक्षण प्राप्ति मनुष्यके।
काल कलाके ओर, कैसे आदरसन रहै ॥२७॥

शब्दार्थ — आदरसन = आदर्शन, दिखलाना, प्रदर्शित करना; आदर्शों, नमूनों।

भावार्थ — हे बन्दीछोर सद्गुरु ! अब यह बतलाइये कि मानवता प्राप्त हुए मनुष्य के लक्षण क्या हैं ? और मन तथा उसके अज्ञान एवं कल्पनाओं से बचकर मनुष्य कैसे अपने आदर्शों में स्थिर रहे ? ॥ २७ ॥

विशेष — जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसा उत्तम व्यहार करना जो दूसरों के लिये नमूना का काम करे, यही अपने-अपने आदर्शों में स्थिर रहना है। परन्तु यह कैसे हो ? यह शिष्य का प्रश्न है।

चौकड़ी—३

सब जानेउँ विधि पूर्व। ते सत साहेब धूर्व ॥ १ ॥
निर्णय कहहु व्यौहार। जेहि होय भरम संघार ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **पूर्व**=पहले प्रसगों में। **सत**=सत्य। **धूर्व**=ध्रुव, अचल, अटल। **व्यौहार**=व्यवहार, बर्ताव। **संघार**=संहार, विनाश।

भावार्थ — मैंने आपके प्रवचनों के पूर्वप्रसंगों में अन्य सब ज्ञातव्य बातें विधिपूर्वक जान ली हैं। हे साहेब ! वे सब अटल सत्य हैं ॥ १ ॥ अब आप कृपया व्यवहार में बरतने का निर्णय दें, जिससे हमारे मनके भ्रम दूर हों ॥ २ ॥

सद्गुरु उत्तर—२३

गीतक छन्द—१०

सुन शिष्य याके लक्ष जो, प्राप्त मनुष्य तन थीरके ॥१॥
जो अस्ति नास्ति विचार गहै, सत्य हंस जानहु हीरके ॥२॥
मानुष भये ते ठहरहिं. निज ठौर सह तदवीरके ॥३॥
जे सुनहिं गुरुमत निरखि निर्णय, वचन साहेब कबीरके ॥४॥

शब्दार्थ — **लक्ष**=लक्ष्य; उद्देश्य। **हीरके**=हीरे के समान ठोस या उत्तम। **सह**=सहित। **तदवीर**=उद्योग, यत्न, प्रयास; साधना।

भावार्थ — हे शिष्य ! सुनो, मनुष्य का जो लक्ष्य है वह है इस नरतन में स्थिति पद की प्राप्ति करना ॥ १ ॥ जो सत्य और असत्य का विवेक करता है, उसी को हीरे के समान ठोस सच्चा हंस समझना चाहिये ॥ २ ॥ जो व्यक्ति सद्गुरु कबीर साहेब के गुरुमत निर्णयवचनों को देखे और सुनेगा, वह निष्पक्ष सच्चा मनुष्य बनकर विवेक-वैराग्यादि साधनाओं के सहित अपनी स्वरूपस्थिति में स्थित हो जायेगा ॥३,४॥

तोमर छन्द—११

सुनु शिष्य कहौं समुझाय, तोहिं ठौर देहुँ बताय ॥१॥
तन लखहु मानुष येह, नहिं प्रापति दूजी देह ॥२॥

शब्दार्थ — **प्रापति**=प्राप्ति।

भावार्थ — हे शिष्य ! सुनो, मैं समझाकर कहता हूँ, और तुम्हें स्वरूपस्थिति की जगह बतलाता हूँ ॥ १ ॥ कल्याण प्राप्ति का साधन इस मनुष्य शरीर में ही हो सकता है; अन्य शरीरों में कल्याण मिलना असंभव है ॥ २ ॥

दोहा — देह अस्ति पद प्राप्तिको, मानुष तन अधिकार ।
मनुष्य लक्षणते सुनहु, सुन याको जो विचार ॥३३३॥

शब्दार्थ — अधिकार=शक्ति, हक्, स्थान ।

भावार्थ — सत्य स्वरूप की स्थिति प्राप्त करने के लिए मनुष्य देह ही स्थान है । वे मनुष्य के लक्षण और विचार सुनो ॥३३३॥

गीतक छन्द—१२

जे भये भ्रान्ति मनुष्य तन, अब सुनहु लक्षण तासुके ॥१॥
वाणी सबन की अहै प्रत्यक्ष, देखु प्रथमा भासके ॥२॥
सो सबनमा मत कहेऊँ बहु विधि, परख ताहि यथार्थहो ॥३॥
केहि हेतु भटकेहु अनेक धारन बके क्यों वेदार्थहो ॥४॥

शब्दार्थ — प्रथमा=मनुष्य शरीर । भास=चमक; दीप्ति, कल्पना । धारन= धारणा । वेदार्थ=वेद के नाना अर्थ ।

भावार्थ — बहुत से ऐसे लोग जो मनुष्य शरीर तो प्राप्त किये, परन्तु भूल में रहे हैं, अब उनके भी लक्षण सुनो ॥ १ ॥ उन सबकी वाणियाँ, अनेक शास्त्रों, पुराणों एवं पुस्तकों में प्रत्यक्ष हैं; जिनमें सार के साथ-साथ मानवीय अन्तःकरण की भ्रांतिपूर्ण कल्पनायें भरी हैं ॥ २ ॥ उन सभी के मतों का मैंने अनेक प्रकार से वर्णन किया है । और हे शिष्य ! उन्हें तुमने वास्तविक ढंग से परखा भी है ॥ ३ ॥ फिर अब अनेक धारणाओं में क्यों भटका जाय और मनमानी वेदों के अर्थ करके उनकी दोहाई क्यों दी जाय ? ॥ ४ ॥

विशेष — हम किसी बात को इसलिये न मान लें कि वह महान पूर्व पुरुषों द्वारा या महान ग्रन्थों में कही गयी है । हमें सब पर निष्पक्ष विचार करना चाहिये और विवेक से जो सिद्ध हो वही मानना चाहिये । क्योंकि प्राचीन मान्य पुरुषों एवं ग्रंथों के भी विचार परस्पर भिन्न-भिन्न यहाँ तक विरोधी भी हैं । ऐसी स्थिति में श्रद्धा से किस बात को मानें और किसको सर्वथा ठुकरावें । इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम सभी पर श्रद्धा तो रखें; परन्तु सबकी बातों में स्वतंत्र विचार करके सार को मानें और असार को छोड़ें । इस प्रकार करके ही हम अपने पूर्वजों की आन रख सकते हैं ।

चौपाई—२०

सार शब्द गुरु निर्णय जोई । लखै दृष्टि निज अनुमय खोई ॥१॥
होय जो विरक्त मति धीरा । होय निर्बन्ध लखै पद थीरा ॥२॥

शब्दार्थ — अनुमय = अनुमान किया हुआ, कल्पित। लखै = देखे, तात्पर्य में निमग्न हो जाना।

भावार्थ — सारशब्द जो गुरु का निर्णय बचन है उसका विचार करे और अपनी परखदृष्टि से सारे अनुमान-कल्पनाओं को विनष्ट कर दे ॥ १ ॥ जो साधु समस्त मायामोह से उदास तथा धैर्यबुद्धि का होता है वह सांसारिक बन्धनों से छूटकर अपनी स्वरूपस्थिति में निमग्न हो जाता है ॥ २ ॥

विशेष — ऊपर तो विरक्त साधु का लक्षण थोड़े में बताया गया। अब गृहस्थों के विषय में कहा जाता है।

जो मानुष गृहिधर्म युत, राखे शील विचार।
गुरुमुख वाणी साधु संग, मन वच सेवा सार ॥३३४॥

शब्दार्थ—शील = चरित्र, चाल-चलन, मनकी स्थायी वृत्ति, स्वभाव, सद्वृत्ति, शुद्ध चरित्र, सत्स्वभाव, रागद्वेषहीनता, तटस्थ व्यवहार, संकोची प्रकृति तथा सौंदर्य। सार = महत्व, फल।

भावार्थ — जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम में रहकर गृहस्थीधर्म के अनुसार चलता है, और बाहर-भीतर कोमलता, सदाचार रखकर विचार पूर्वक व्यवहार बरतता है और गुरुमुख निर्णय वचनों को आदर देता है, तथा संतों की संगत और मन, वाणी, शरीर से उनकी सेवा करता है, उसे समझो वह गृहस्थीधर्म का फल पा लिया है ॥३३४॥

विशेष — उपर्युक्त दोहा में बताया गया है कि गृहस्थीधर्म में उसी ने सफलता पायी है, जो शील, विचार, गुरुमुख वाणी, साधुसंग, साधुसेवा को अपने जीवन में स्थान दिया है।

शील का अर्थ बड़ा व्यापक है। शीलवान उसे कहते हैं जो मन, वाणी, कर्म से दूसरे को दुखाना नहीं चाहता, सर्वत्र कोमलता का व्यवहार बरतता है, पवित्र आचरण रखता है; संकोची स्वभाव का होता है। वस्तुतः शीलवान पुरुष सज्जनों का प्रेमास्पद बन जाता है।

विचार का भी महत्त्व बहुत बड़ा है। सारासार का विचार करना, किसी काम के करने तथा किसी बात के बोलने के पहले उसके विषय में विचार कर लेना, तथा हरसमय विचार को प्रधानता देने से मनुष्य धोखा नहीं खाता।

गुरुमुखवाणी एवं निर्णयवचनों का आदर करने से समस्त भ्रांतियों का अन्त होकर यथार्थ स्वरूपज्ञान एवं सब विषयोंमें वास्तविक बोध होता है।

साधुसंगत से माया मोह हटकर अपने चेतन देश की सुध होती है। साधुसंगत वह अभेद्य किला है जिसपर कामादिक शत्रु की दाल नहीं गल सकती।

मन, वाणी तथा कर्मों से सतों की सेवा करने से अपना धर्मांग पुष्ट होता है, अन्तःकरण पवित्र होता है तथा कल्याण की योग्यता एवं भूमिका तैयार होती है।

उपर्युक्त अंगों से सम्पन्न गृहस्थ उच्चतम गृहस्थ है।

सेवक भाव सादर्श रहै, अहं न आनै चीत।
निर्णय लखै यथार्थ विधि, साधुन को करै मीत ॥३३५॥

शब्दार्थ -- सादर्श = स + आदर्श; आदर्श पूर्वक; उच्चस्तर का। अहं = अहंकार मीत = मित्र।

भावार्थ — गृहस्थ भक्त का कर्तव्य है कि वह अपने 'सेवकभाव' का स्तर उच्चतम रखे, जिससे उसका आदर्श दूसरे लोग भी ग्रहण करें; वह अपने मनमें कभी किसी प्रकार का अहंकार न आने दे; वह वास्तविक न्याय को विधिपूर्वक समझने का प्रयत्न करे, और संतों से मित्रता करे ॥३३५॥

विशेष — सेवकपद ऊँचा है। सेवा करने वाला ही महान बनता है। सेवक का आदर्श तभी रहता है जब उसमें शरीर, सौंदर्य, जवानी, विद्या, जाति, वर्ण, धन, जमीन, परिवार, प्रसिद्धि, पूज्यता आदि प्राप्त पदार्थों का गर्व न हो। अहंकारी व्यक्ति आदर्श सेवक एवं भक्त नहीं हो सकता। जो भक्त संतों को भण्डारा, वस्त्र, द्रव्य आदि देकर पुनः उन्हीं को तुच्छ देखता है, उन्हीं से तू-तू,मैं-मैं करता है, वह आदर्श सेवक कैसे हो सकता है ? अतएव विनम्रतापूर्वक संतों की सेवा करना भक्तों का कर्तव्य है।

वह केवल सेवा ही न करता हो, अपितु सत्संग में यथार्थ निर्णय समझने का प्रयास भी करता हो। किसी मतवाद का पक्षपाती न बनकर सत्संग में सारासार का विचार भी करता हो।

मनुष्य के सच्चे मित्र विवेकी संत हैं। आप कहीं भी जाइये आप से यह कोई पूछने वाला नहीं होगा कि आपने दुर्व्यसनों एवं दुराचारों को छोड़कर अपना कल्याण साधन पकड़ा कि नहीं। एक संत ही ऐसे मित्र हैं जिनके पास जाने से वे आप के सुधार के विषय में चर्चा करेंगे, आप को ऊँचे उठने की राय देंगे और वे ही आपका कल्याण करेंगे। अतएव संतों से मित्रता करो, उन्हीं को अपना मित्र बनाओ।

सत्य शील दया सहित, वर्तै जग व्यवहार।
गुरु साधुनके आश्रिता, दीन वचन उच्चार ॥३३६॥

शब्दार्थ — आश्रित = आधार; अवलम्ब। दीन = विनम्र।

भावार्थ — सद्गृहस्थ एवं भक्त को चाहिए कि वह अपने सांसारिक व्यवहार में भी सत्य, शील तथा दया के सहित बर्ताव करे। वह सद्गुरु-संतों का आधार एवं सहारा लेकर चले और विनम्र वचन बोले ॥ ३३६ ॥

विशेष — जो लोग कहते हैं कि गृहस्थी में सत्यका पालन असम्भव है, वे गलत कहते हैं। गृहस्थी में रहकर भी सत्य का पालन किया जा सकता है। आप एक ही

बारगी सत्य पालन न कर सकें तो जितना बन सके सत्यपालन के लिये अभ्यास बढ़ाइये। सत्यपालन में जो सुख है वह कहीं नहीं है। सत्य के महत्त्व को चोर भी जानता है और वह चोरी के मालको सत्यतापूर्वक बाँटने की सलाह अपने साथियों को देता है। तुमसे कोई असत्य का व्यवहार करे तो तुम क्षमा नहीं करोगे, यदि क्षमा भी कर दोगे तो भी उसे बुरा तो समझोगे ही; अतएव सत्यपालन के लिए अभ्यास बढ़ाओ।

सर्वत्र शील का बर्ताव रखो और दया पालन करो। जितना बन सके छोटे-छोटे जीव को भी बचाने की चेष्टा करो। जो शक्ति के बाहर है उसमें विवशता है।

विवेकवान संतों एवं गुरुजनों के आधार लेकर, उनकी शरण ग्रहण करके रहो। उनसे कोई कड़ा वचन न बोलो, अपितु दीनता, विनम्रता एवं कोमलता पूर्वक वचन बोलो; और सबसे विनम्रभाषण करो।

बहु संग्रह विषयानको, चित्त न आवहि ताहि।
मधुकर यों सब जगतमें, घटि बढ़ि लखि बर्ताहि॥ ३३७॥

शब्दार्थ — **संग्रह**=पकड़ना, ग्रहण करना, इकट्ठा करना। **मधुकर** = भौंरा। **यों** = समान। **घटि** = कम। **बढ़ि** = अधिक।

भावार्थ — उस सद्गृहस्थ के मन में पाँचों विषयों के बहुत पदार्थों का संग्रह एवं उपभोग करने का भाव नहीं रहता। वह यह समझ कर कि जीवन में कभी कम और कभी विशेष अनुकूलता तथा प्रतिकूलता मिलती रहती है, भौंरेके समान सर्वत्र गुण ग्रहण करते हुए व्यवहार बर्तता है॥ ३३७॥

विशेष — भक्तिभाव सम्पन्न सद्गृहस्थ विषय पदार्थों का बहुत संग्रह करने की तृष्णा वाला नहीं होता। यद्यपि गृहस्थी आश्रम होने से उसे अपेक्षया अधिक पदार्थों का संग्रह करना पड़ता है, परन्तु उसकी वृत्ति भक्ति एवं आत्मकल्याण में होने से वह अपने तथा परिवार के शरीर का निर्वाह, सहज व्यवहार चल जाय और संत गुरुजनों की सेवा होती रहे, कुछ परोपकार में लगता रहे—बस इतना ही लक्ष्य रखता है। उसका अपनी इन्द्रियों के भोगों में ही अधिक प्रवृत्ति नहीं होती।

कितने लोग दो-चार दिन की यात्रा में निकलते हैं तब भी एक-दो पेटी कपड़ा साथ ले जाते हैं। कितने लोगों का घर आवश्यकता से बहुत अधिक वस्तुओं से भरा कूड़ाखाना बना रहता है। वे बहुत पदार्थों के संग्रह तथा उपभोग में ही सच्चा सुख मान रखे हैं। परन्तु यह कोरा भ्रम है। पदार्थ जनित सुख वास्तविकसुख न होकर क्षणिक एवं बन्धनप्रद है। वास्तविक सुख वैचारिक है, जो मनकी निर्मलता, स्वच्छता, स्वच्छन्दता एवं एकाग्रता में है। पदार्थों का उपयोग केवल निर्वाह के लिये होना चाहिये, सुखके लिये नहीं। जहाँ उनमें सुखका भ्रम किया जायगा जीव उसमें बँधता

जायगा। अतएव विवेकवान गृहस्थ विलासी न होकर संयमी होता है और यथासम्भव थोड़ी वस्तुओं में अनासक्ति पूर्वक अपना निर्वाह करता है।

वह यह जानता है कि जीवन में या संसार में सर्वत्र सब अनुकूल ही नहीं प्राप्त होता। संसार घट-बढ़ रूप है। कहीं किसी वस्तु की कमी है तो कहीं विशेषता है। साथियों के स्वभावों में भी घटी-बढ़ी रहती है अतएव वह भौंरा के समान सर्वत्र सद्गुणग्राही होता है। भौंरा काँटों के बीच में से फूल का रस लेकर उड़ जाता है। इसी प्रकार वह विवेकी पुरुष प्रतिकूल प्राणी, पदार्थ, अवस्था तथा परिस्थितियों में भी अपने कल्याणदायी सामग्रीको लेकर सबसे अनासक्त,उलझनरहित एवं निष्पक्ष रहता है।

चौपाई—२१

प्रीति सदा गुरु पारख करई। संगति सदा साधु आचरई ॥१॥
उत्तम मध्यम जग व्यवहारा। निर्णय सहित करै अनुसारा ॥२॥

शब्दार्थ — आचरई = आचरण करता है। अनुसारा = अनुकूल।

भावार्थ — सद्गृहस्थ एवं भक्त सद्गुरु-संतों एवं उनके पारखबोध में सदैव श्रद्धा रखते हैं। वे समय-समय पर सदैव संतों को संगत करते हुए उनके उपदेशानुसार अपना आचरण करते हैं ॥ १ ॥ जगत में उत्तम और मध्यम अनेक व्यवहार होते हैं, वे उनके अनुकूल तो करते हैं, परन्तु निर्णय के सहित ॥ २ ॥

विशेष—गृहस्थी में उत्तम-मध्यम अनेक व्यवहार होते हैं। जब तक जो व्यक्ति गृहस्थी में है तब तक उसे उससे निपटना पड़ता है। राजा, प्रजा, अधिकारी, नौकर, स्वामी, सेवक, बेटी, दामाद, भाई, बहन, पंडित, पुरोहित, नाई, धोबी आदि पौनी कितने नाम लिये जायँ इन सबसे लेना-देना, इन्हें मानना, खुश करना, इनसे काम निकालना आदि बड़े-बड़े खटपट हैं। सद्गृहस्थ को भी इनमें होकर गुजरना पड़ता है। परन्तु वह इनके साथ निपटते हुए भी विचार रखता है; और जितना उससे बन सकता है वह विचारपूर्वक बर्तने की चेष्टा करता है।

दोहा — गृही धर्म बड़ खटपटी, तामहँ रहै हुशियार।
लोक वेद की रीति सब, करै सहित सो विचार ॥ ३३८ ॥

शब्दार्थ—खटपटी = झगड़ा,अनबन। रीति = ढंग,चलन,रवाज,परिपाटी,नियम।

भावार्थ — गृहस्थीधर्म बड़े झगड़े का है; अतएव उसमें रहकर बहुत सावधान रहना चाहिये। लोक और वेद के सभी रवाज और नियम का पालन विचार पूर्वक करना चाहिये ॥ ३३८ ॥

विशेष — उपर्युक्त चौपाई की ही व्याख्या में बताया गया है कि गृहस्थीधर्म में उत्तम-मध्यम अनेक व्यवहार निपटाने पड़ते हैं। उसी भाव को लेकर इस दोहे में भी बताया जा रहा है कि गृहस्थीधर्म में बड़ा प्रपंच रहता है। यदि सावधानी, सहन-

शीलता, संतोष, कानून, शासन आदि सभी अंगों को लेकर न चले तो गृहस्थ अपनी गृहस्थी में असफल हो जायगा।

भिन्न-भिन्न गृहस्थ-समाजमें तमाम लोकरीतियाँ तथा तमाम वेदरीतियाँ एवं शास्त्र-रीतियाँ हैं। उन्हें विचारपूर्वक पालन करना चाहिये। हिंसा-घात-बलि एवं अपवित्रकर्म नहीं करने चाहिये। घर, गाँव, मोहल्ला, नाते-रिस्तेदार, समाज आदि में हमारे कारण उत्तेजना, वैमनस्य आदि न होने पावे इसका ध्यान रखकर हर गृहस्थको चाहिये कि वह लोक-वेद की रीति का विवेक पूर्वक पालन करे।

लोक-वेदकी रीति को विचार पूर्वक पालन करने का भाव यही है कि केवल लोक-वेद के पीछे वह न जाय। विवेक पूर्वक ही पालन करे।

मठधारी साधु-महंतों को भी सावधान होकर बर्ताव करना चाहिये। मठ में स्त्रियों को नहीं रखना चाहिये। स्थानधारी सावधान न रहने से पूरा गृहस्थ के रूप बनने लगते हैं।

जीव घात आदिक कर्म, करै न कबहूँ भूल।
सो रच्छा जीवन करै, प्रेम सहित अनुकूल ॥ ३३९ ॥

शब्दार्थ—घात = हत्या।

भावार्थ — सद्गृहस्थ जीवहिंसा, व्यभिचार, चोरी आदि कर्म भूलकर भी कभी न करे। वह जीवों की रक्षा करे और सबके साथ प्रेमपूर्वक एवं अनुकूल व्यहार बर्तने की चेष्टा करे॥ ३३९॥

विशेष—'भूलकर भी हिंसादि न करे' का तात्पर्य यह है कि जहाँ तक बन सके जीवहिंसा बचावे। जो शक्ति के बाहर है उसमें विवशता है।

वाणी अप्रिय कहै नहीं, कहै सबन उपकार।
ठहरै पद बोधित गुरु, लावै भक्ति गोहार ॥ ३४० ॥

शब्दार्थ — बोधित = जिसे बोध कराया गया हो; बोधप्राप्त। **गोहार** = सहायता के लिये पुकार।

भावार्थ — कभी कठोर वचन न बोले, अपितु सबके हितकी बात कहे। गुरु के बोध कराये हुए अपने स्वरूप में स्थित होवे; और निर्विघ्न कल्याण की प्राप्ति के लिये भक्तिभाव पूर्वक गुरु संतों से प्रार्थना करे॥ ३४०॥

विशेष -- 'लावै भक्ति गोहार' का तात्पर्य है कि मनुष्यके कल्याणसाधनाके रक्षक संत-गुरु ही हैं; इसलिये उन्हें ही श्रद्धा-भक्ति पूर्वक पुकारे। पुकारने का अर्थ हल्ला करना नहीं है; अपितु मौन श्रद्धा-भक्ति रखना है।

चारि खानि बहु जीयरहिं, दुखदाई जो होय।
जुरै तो रच्छै जीव कहँ, असक रहै चुप सोय ॥ ३४१ ॥

शब्दार्थ — जुरै=अपने पास वस्तुयें हों। असक=शक्ति के बाहर।

भावार्थ — मनुष्य,पशु,अण्डज और उष्मज—इन चार खानियोंमें बहुत देहधारी जीव हैं; इनको यदि कोई दुःख देता हो या वे स्वयं किसी कारणवश दुखी हों तो शक्ति चले तक उन्हें बचाना चाहिये। यदि अपने पास वस्तुयें या शक्ति हो तो उनकी रक्षा करना चाहिये; और यदि शक्ति के बाहर हो तो वहाँ चुप रहकर हट जाना चाहिये ॥ ३४१ ॥

विशेष—शक्ति चले तक मनुष्य को चाहिये कि वह दूसरे दुखी जीवों की रक्षा करे। शक्ति के बाहर हो तो वह क्या करेगा। उसे कोई दोष नहीं।

यह प्रकार गृहिधर्मके, लक्षण दिये बताय।
अब शिष्य विरक्त धर्मके, लक्षण सुनहु बनाय ॥३४२॥

शब्दार्थ — बनाय=अच्छी तरह।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से मैंने गृहस्थी धर्म के लक्षण बतला दिये। अब हे शिष्य ! विरक्त धर्म के लक्षण अच्छी तरह से सुनो ॥ ३४२ ॥

विरक्त बोधै देह निज, मैथुन त्यागै अष्ट।
ठहरै रमिता भूमिपर, बोधि कालता कष्ट ॥ ३४३ ॥

शब्दार्थ -- बोधै=ज्ञानकरे, शांतकरे। देह=शरीर; मन। मैथुन...अष्ट= अष्ट मैथुन—विषय वार्ता सुनना,विषयों का स्मरण, विषय चर्चा करना, कामुकदृष्टि से देखना, विषयभोग के लिये गुप्त वार्ता, कामभोग के लिये दृढ़ संकल्प, विषयभोग के लिये उद्योग करना तथा प्रत्यक्षभोगक्रिया। रमिता=रमता, भ्रमणशील। भूमि= पृथ्वी। बोधि=समाधि; शांति। कालता=काल का, कल्पना एवं अज्ञान का। कष्ट=दुःख।

भावार्थ — घर-गृहस्थी से उदासीन विरक्त संत को चाहिये कि वह अपने शरीर को कठोर एवं सहनशील बनावे, मनको ज्ञान द्वारा समझाता या संतुष्ट करता रहे; अष्ट-मैथुनों का बाहर-भीतर त्याग करे, पृथ्वी पर यत्र-तत्र ठहरते हुए भ्रमण करता रहे, और अज्ञानकाल के दुःखों से निवृत्त होने के लिए मनोनिग्रह रूपी समाधि का अभ्यास करे ॥३४३॥

विशेष — पहले घर-गृहस्थी में रहकर भक्ति, वैराग्य पुष्ट कर ले। शीघ्रता से घर न छोड़े। मन के मोह-माया जब अच्छीतरह मिट जायँ तब घर छोड़ना चाहिये। कुछ काल घर में रहकर भक्ति-वैराग्य करने से आस-पास वालों में भक्ति, धर्म बढ़ जाते हैं। इसलिये अच्छी तरह समझ-बूझ कर वैराग्य के लिये पैर बाहर निकाले।

विरक्त का वेष लेकर फिर कोमल सुखों का अभ्यासी न बने, अपितु साधन, तितिक्षा में अपने शरीर को कसे। मनको सारे अभ्यासों एवं मोह से पृथक करे। सदैव मनको बोध देता रहे कहीं खानी-वाणी में लालच न करे।

विरक्त साधु में अष्ट मैथुनों के त्यागपूर्वक शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके विना साधु का वेष धरना अपने और समाज को धोखा देना है।

विरक्त साधु को भ्रमणशील होना चाहिये। एक जगह बँधकर रहने से खटपट है। परन्तु इसमें बहुत बात विचारणीय हैं। आरम्भिक जिज्ञासु या मुमुक्षु का स्वतंत्र विचरना उनका पतन पथ है। उन्हें तो किसी वैराग्यवान संत-सद्गुरु के साथ रहना चाहिये या किसी ऐसे आश्रम में रहना चाहिये जहाँ धार्मिक ग्रंथों की पढ़ाई-लिखाई होती हो, जहाँ अच्छे साधु-संत रहते हों।

एकदम अकेला विचरण करना परम वैराग्यवान पुरुष या किसी अच्छे समझदार एवं गम्भीर पुरुष के लिए ही ठीक है। अन्य संतों को दो व्यक्ति एक साथ अवश्य रहना चाहिए। वैसे उच्च संत भी एक मूर्ति संत या साधक साथमें रखें तो अच्छा है।

'ठहरै रमिता भूमिपर' का अर्थ यह भी हो सकता है कि चाहे पृथ्वी पर कहीं आश्रम पर स्थायी रूप से रहे और चाहे भ्रमणशील हो, खास बात है बोध-वैराग्य से युक्त हो। दोनों विधि से कल्याण हो सकता है, यदि सावधानी से चले तो, और सावधानी से न चले तो दोनों में पतन है।

'ठहरै रमिता भूमिपर' का अर्थ आध्यात्मिक भी हो सकता है। अर्थात अपने रमैया राम चेतन स्वरूप की ज्ञानभूमि पर ठहरे एवं स्थित होवे।

अज्ञान काल के कष्ट से मुक्त होने के लिए बोधि एवं समाधि का अभ्यास करे। अर्थात मनका द्रष्टा बनकर सारे स्मरणों को शांत करे। स्मरणों के झकझोर से रहित हो जाने पर साधक परमशांति को प्राप्त करता है। यह साधु-संत का मुख्य कर्तव्य है।

कष्ट करै विषयानको, नष्ट न कतहूँ होय।
भ्रष्ट बुद्धि त्यागे भले, अष्ट याम लखु जोय ॥ ३४४ ॥

शब्दार्थ — **अष्टयाम** = आठ पहर, चौबीसों घंटे। **जोय** = जो व्यक्ति।

भावार्थ — विषयों की आसक्ति जीतने के लिये कष्ट का सहन करे, कहीं अपने पद से मन, वाणी, कर्म से पतित न हो। जो व्यक्ति चौबीसों घंटे सावधानी से अपने मन-इन्द्रियों पर देख-रेख रखता है, वह प्रथम की रही भ्रष्ट विषयासक्ति बुद्धि को सर्वथा त्याग देता है ॥ ३४४ ॥

विशेष — विषयासक्ति, विषयभोग और विषयइच्छा में अधिक कष्ट है, अपितु कभी अंत न होने वाला कष्ट है। और विषयों से मनको घुमाक उसे स्ववश करने में थोड़ा और कुछ समय के लिये कष्ट है। फिर जब मन निर्विषय, अनासक्त और एकाग्र हो जायगा तब हर समय शांति-ही-शांति रहेगी। इसलिए विषय-वासनाओं को जीतने के लिये साधना में कष्ट उठाना उत्तम है।

गुप्त-प्रकट कभी मन, वाणी तथा कर्म से विषयों में नहीं गिरना चाहिये। जान-बूझ करके ऐसा कोई कर्म नहीं करना चाहिये जिससे मन मलीन हो और वीर्य क्षय हो। साधु को खानी-वाणी के किसी अभ्यास में कभी न पड़कर भक्ति, विवेक और वैराग्य से ही चलकर सदैव दृढ़ बोध में स्थित होना चाहिये।

निरन्तर सावधानी ही साधना है। जो हर समय अपने मन तथा इन्द्रियों पर निगरानी रखता है, वह सब प्रकार की मलीनताओं से ऊपर उठकर अमृतस्वरूप में स्थित हो जाता है।

अहंकार आनै नहीं, मैं उत्तम यह नीच।
एकत्व सबहीं सम लखै, मानुप खानिके बीच ॥ ३४५ ॥

शब्दार्थ — **एकत्व**=एकता का भाव। **सम**=बराबर; एक समान।

भावार्थ — (साधु को चाहिए कि) वह अपने मन में यह अहंकार न आने दे कि मैं उत्तम हूँ तथा दूसरे लोग नीच हैं। मनुष्य खानि के बीच में सबमें एकत्व भाव रखते हुए सबको एक समान समझे॥ ३४५॥

विशेष — साधु वेष मान्य और पूज्य है। इसलिये उसे वही धारण करे जो उसके योग्य हो। क्योंकि जितना ही अपने में उथलापन, वैराग्यहीनता एवं अविवेक रहेगा उतना ही वह मान-पूजा को पाकर अहंकार की मूर्ति बन जायगा।

पुराना साधुवेषधारी होने का; विद्या, प्रवचन, प्रलेखन की शक्ति होने का; गद्दी, महंती, आचार्यत्व, मठ, शिष्य-शाखा वृद्धि, धन, पूज्यतादि होने का; पैसा न छूने, वैराग्य, तितिक्षा से रहने आदि का; और न जाने किन-किन मिथ्या वस्तुओं का अहंकार लेकर साधुवेषधारी अपने तथा अपने समाज, स्थान, शिष्यपरम्परा को श्रेष्ठ तथा अन्य को तुच्छ समझने का घोर पाप करते हैं।

उदारमना पूज्य सद्गुरु श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि साधु को चाहिये कि वह मनुष्य मात्र को अपने समान समझ कर सबके प्रति अपने मन को पवित्र रखे। यद्यपि व्यवहार में कुछ तारतम्य निश्चित है; तथापि हृदय में सबके प्रति समताभाव होना चाहिये।

साधु, संत, महंत, आचार्य, गुरु कोई भी हो; वे अपने आपको स्वयं पूज्य एवं मान्य न समझें। उन्हें दूसरे लोग पूजें, मानें यह पूजने-मानने वालों के हित में ठीक है। साधुवेष पहनकर भी यदि अहंकार नहीं गया तो उससे अच्छा सद्गृहस्थ रहना था। वस्तुतः सारे अहंकारों को दूर करने के लिये साधुवेष मृतकचिन्ह है।

६—सत्यशब्द टकसार : बीजक, शब्द ३२

हंसा हो चित चेत सवेरा, इन्ह परपंच कैल बहुतेरा ॥ १ ॥
पाखण्ड रूप रच्यो इन्ह तिरगुण, तेहि पाखंड भूलल संसारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ -- हंसा=हंस; मनुष्य। चित=चेतन; चित्त। सकेरा=शीघ्र। तिरगुण=सत, रज, तम; सत से कल्पित भक्ति, रज से नाना कर्मकाण्ड तथा तम से अज्ञानपूर्ण हठयोगादि।

भावार्थ — हे विवेकी मनुष्य ! अपने मनमें शीघ्र सावधान हो। इन भूले गुरुओं ने बहुत प्रपंच फैला रखा है ॥ १ ॥ इन्होंने पाखण्डरूपी त्रिगुणात्मक प्रपंच रच रखा है और उसी पाखण्ड में संसार के सभी जीव भूल गये हैं ॥ २ ॥

घरके खसम बधिक वै राजा, परजा क्या धौं करै विचारा ॥ ३ ॥
भक्ति न जानै भक्त कहावै, तजि अमृत विष कैलिन सारा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — खसम=मालिक। धौं=भला। अमृत=स्वरूपज्ञान; सदाचरण। विष=कल्पना; दुराचार। सारा=सारतत्त्व।

भावार्थ — घरका स्वामी एवं देश का राजा यदि बधिक का रूप धारण करके सबको मारने-मरवाने लगे, तो घर के कुटुम्बी एवं प्रजा बेचारी क्या करेगी ? इसी प्रकार धर्म के ठेकेदार एवं मुक्तिदाता गुरुलोग ही पाखण्ड, वैमनस्य एवं अज्ञान में स्वयं घिर कर दूसरों को भी वही थोपने लगें तो जनता बेचारी क्या करेगी ? ॥ ३ ॥ लोग यथार्थ सद्गुरु एवं स्वस्वरूप की भक्ति तो जानते नहीं और भक्त कहलाते हैं वे अमृतस्वरूपविचार छोड़कर विषय एवं कल्पना को ही सारतत्त्व समझ रखे हैं ॥ ४॥

आगे बड़े ऐसेहि बूड़े, तिनहुँ न मानल कहा हमारा ॥५॥
कहा हमार गाँठि दृढ़ बाँधो, निशि बासर रहियो हुशियारा ॥६॥

शब्दार्थ — आगे=भूतकाल में।

भावार्थ — पहले के बड़े-बड़े कहलाने वाले भी इसी प्रकार कल्पना एवं विषय समुद्र में डूब गये हैं। वे भी हमारे कथन रूप वास्तविक ज्ञान को नहीं जान-मान सके थे ॥ ५ ॥ हे जिज्ञासुओ ! हमारे कथन को अपने हृदय में दृढ़ता की गाँठ में बाँध लो; और रात-दिन सावधान रहो ॥ ६ ॥

ये कलि गुरू बड़े परपंची डारि ठगौरी सब जग मारा ॥७॥
वेद कितेब दोउ फंद पसारा, तेहि फंदे परु आप बिचारा ॥८॥
कहहिं कबीर ते हंस न बिसरे, जेहि मामिले छुड़ावनहारा ॥९॥

शब्दार्थ — कलि=पाप। ठगौरी=ठगाई विद्या। बिसरे=भूले। छुड़ावनहारा=पारखी गुरु।

भावार्थ -- ये कलियुगी गुरु बड़े झंझटी हैं। इन्होंने अपनी ठगाई विद्या का जाल डाल कर उसमें फँसा कर संसार के सारे लोगों को मार डाला अर्थात अज्ञानी बना रखा है ॥ ७ ॥ इन्होंने वेद और कितेब (कुरान, बाइबिल आदि) दो जाल

फैला रखा है। उस जाल में वे बेचारे स्वयं पड़े हैं (और दूसरे को भी डालते हैं) ॥ ८ ॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वे निर्णयी जिज्ञासु नहीं भूलेंगे और इनके जाल में नहीं पड़ेंगे, जिनको छुड़ाने वाले विवेकी-पारखी गुरु मिल गये हैं ॥ ९ ॥

विशेष — वेद, कुरान, बाइबिल आदि कोई भी पुस्तक हो, जहाँ उसे ईश्वरीय होने की घोषणा की गयी वहाँ वह लोगों के लिये खाईं और वैमनस्य का कारण बनेगी। क्योंकि उसपर विचार करना अपराध होगा। जो उसको सिरे से नहीं मानेगा वह काफर, नास्तिक तथा अपवित्र कहा जायगा। एक पुस्तक को ईश्वरीय मानने से उसके प्रति व्यर्थ अंधश्रद्धा तथा दूसरी पुस्तकों के प्रति अनादर बढ़ेगा। अतएव विश्व के सभी धर्मपुस्तकों को अपनी मानो और उनमें श्रद्धा भी रखो; परन्तु सत्य की खोज के लिये सबपर स्वतंत्र विचार करो।

७—सत्यशब्द टकसार : बीजक, शब्द-८०

बंदे करिले आपु निबेरा ॥१॥
आपु जीयत लखु आपु ठौर करु, मुये कहाँ घर तेरा ॥२॥
यह औसर नहिं चेतहु प्राणी, अंत कोई नहिं तेरा ॥३॥
कहहिं कबीर सुनो हो संतो, कठिन काल को घेरा ॥४॥

शब्दार्थ — बंदे = बन्दा, दास, पराधीन। निबेरा = निर्णय, छुटकारा। घर = स्थिति। काल = मन, कल्पना, मृत्यु। घेरा = जाल, धावा, आक्रमण।

भावार्थ — अपने भूलवश पराधीन हुए हे चेतन मनुष्य ! तू अपने आपका छुटकारा करले ॥१॥ जीते जी—शरीर में रहते-रहते अपने को परखो कि मैं कौन हूँ ? और अपनी स्थिति करो; शरीर छुटने के पश्चात तुम्हारी स्थिति कहाँ होगी ? इसका विचार करो ॥ २ ॥ हे मनुष्य ! यदि इस उत्तम समय में नहीं सावधान हुआ, तो अंत में तुम्हारा कोई साथी नहीं होगा ॥ ३ ॥ सद्गुरु कहते हैं, हे संतो ! काल का जाल एवं आक्रमण बड़ा भयंकर है ॥ ४ ॥

दोहा — मन्मथ बुद्धिको ज्ञान जो, काल जाल परचंड।
ताहि लखै गुरुबुद्धिते, नहिं विरक्त गृहि दंड ॥३४६॥

शब्दार्थ — मन्मथ = मन को मथन करने वाला या मनसे मथन किये हुए काम, कल्पना। गुरुबुद्धि = पारख। दंड = दमन; दुःख।

भावार्थ — जो ज्ञान काम और कल्पना की बुद्धि से उत्पन्न है, वह अज्ञान काल का भयंकर जाल है। सद्गुरु की पारखदृष्टि से परख कर जो उसे त्याग देता है वह चाहे विरक्त साधु हो तथा चाहे घर-गृहस्थी भक्त हो, वह उसके दमनचक्र से बच जाता है ॥ ३४६ ॥

विशेष — कामवासना के वश होकर विषयों में सुख खोजना और अनुमान, कल्पना तथा भ्रांति के वश होकर अपने स्वरूप से पृथक मोक्ष खोजना प्रबल अज्ञान है। इन दोनों से बच कर जो अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है वह कल्याणरूप है; फिर वह चाहे साधुवेष में हो तथा चाहे गृहस्थवेष में हो।

दोय प्रकार मन्मथ धर्म, गृहस्थाश्रम अरु साध।
दोउनको लाजीम है, गुरुमुख होहु अबाध ॥३४७॥

शब्दार्थ — लाजीम = लाज़िम, फर्ज, आवश्यक कर्तव्य। अबाध = बाधारहित; निर्विघ्न; कष्टरहित।

भावार्थ — गृहस्थाश्रमी और साधुसमाज दोनों में काल्पनिक धर्म का बोलबाला है अतएव दोनों का परमकर्तव्य है कि वे पारखी सद्गुरु के गुरुमुख वचनों के श्रवण-मनन-द्वारा सारेभ्रम एवं आसक्तियों को त्यागकर निर्विघ्न एवं कष्टरहित होवें ३४७

विशेष — गृहस्थाश्रमी लोग अनेक कल्पना, विषयासक्ति तथा भ्रांति में फँसे हैं। दिखता हुआ विस्तृत साधुसमाज भी कम अधंकार में नहीं है। जो साधुनामधारी विषयवासना में आसक्त हैं, वे तो साधु हैं ही नहीं। जो विषय से विरक्त हैं, वे ही साधु हैं। परन्तु वे भी अनेक सम्प्रदाय के अनेक षटकर्म, पक्षपात, अहंकार, अनुमान, कल्पना, भ्रांति, अंधविश्वास आदि घोर अंधकार में पड़े हैं।

अतएव गृहस्थ और विरक्त दोनों के परमावश्यक कर्तव्य हैं कि वे सच्चे पारखी सद्गुरु की खोज करके उनकी शरण लें। उनसे सत्संग करके सत्य निर्णय को प्राप्त करें; और सारे बन्धनों से मुक्त होकर,परमपद के भागी बनें।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, शब्द — ५६

नरको नहिं परतीत हमारी ॥१॥
झूठा वनिज कियो झूठे सो पूँजि सबन मिलि हारी ॥२॥
षट दर्शन मिलि पंथचलायो त्रिदेवा अधिकारी ॥३॥
राजा देश बड़ो परपंची, रैयत रहत उजारी ॥४॥

शब्दार्थ — वनिज = व्यापार। पूँजि = जमा। अधिकारी = मालिक; स्वत्वधारी। रैयत = प्रजा, जीव। उजारी = निर्जन।

भावार्थ — संसारी मनुष्योंको मेरा विश्वास नहीं है ॥१॥ झूठे लोग झूठे गुरुओं से वाणी का झूठा व्यापार करते हैं,इसीलिये सब लोग अपना जमा (जीव) पद हार गये हैं ॥ २ ॥ योगी, जंगमादि षड्दर्शनी मिलकर नाना सम्प्रदाय प्रचलित किये हैं, उनमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीनों श्रेष्ठ स्वत्वधारी एवं राजा हुए हैं ॥३॥ इन राजाओं के उपदेश रूपी देश बड़े प्रपंची हैं; इसलिये ये अपने शिष्य रूपी प्रजा को निर्जन अर्थात कल्पना में रखते हैं ॥ ४ ॥

इत ते उत उत ते इत रहहू, यम की साँड़ सवारी ॥५॥
ज्यों कपि डोर बाँधु बाजीगर, अपनी खुशी परारी ॥६॥

शब्दार्थ — यम = मन । साँड = साँड़िया; तेज चलनेवाला ऊँट; तात्पर्य में वासना । कपि = बन्दर । परारी = दूसरे के हाथ; मनके वश ।

भावार्थ — जीव मन-वासना रूपी साँड़िया की सवारी पर इधर से उधर तथा उधर से इधर जन्ममृत्यु के चक्कर में घूमते हैं ॥ ५ ॥ जैसे चना के लोभवश बाजीगर के हाथ में फँसा हुआ बंदर रस्सी में बँधकर घर-घर नाचता है; वैसे विषय और कल्पना के लोभवश अपनी प्रसन्नता से जीव मनके हाथ में पड़े हुए नाच रहे हैं ॥ ६ ॥

इहै पेड़ उत्पति परलय का, विषया सबै विकारी ॥७॥
जैसे श्वान अपावन राजी, त्यों लागी संसारी ॥८॥

शब्दार्थ — उत्पति परलय = जन्म-मरण । श्वान = कुत्ता । अपावन = अपवित्र, गंदा । राजी = प्रसन्न ।

भावार्थ — कामना और कल्पना ये ही जन्म-मरण वृक्ष के कारण हैं । विषय तो सभी दोषजनक हैं वे चाहे खानी के हों चाहे वाणी के ॥ ७ ॥ जैसे कुत्ता अपवित्र हड्डी चूसने में प्रसन्न रहता है, वैसे संसारासक्त लोग विषयों में ही प्रसन्न हैं ॥ ८ ॥

कहहिं कबीर यह अद्बुद ज्ञाना, को मानै बात हमारी ॥९॥
अजहूँ लेउँ छुड़ाय काल सो, जो करै सुरति सँभारी ॥१०॥

शब्दार्थ — अद्बुद = अद्भुत; विचित्र; प्रपंचपूर्ण । काल = बन्धन । सुरति = सुरत; ध्यान ।

भावार्थ — सद्गुरु कबीर कहते हैं कि संसार का ज्ञान बड़ा विचित्र एवं प्रपंचपूर्ण है उसी में लोग पड़े हैं, फिर हमारी बात मानने वाला कौन है ? ॥९॥ हाँ, यदि कोई अपने ध्यान को प्रपंच से हटाकर सम्भाल ले तो मैं उसे आज भी सब बंधनों से छुड़ा लूँ ॥ १० ॥

विशेष — उपदेष्टा का ज्ञान व्यक्ति में तभी प्रवेश करेगा जब वह अपने मन को चारों ओर से समेट करके उपदेश में लगायेगा । जो एकाग्रमन से गुरुउपदेश में लग जायगा वह निश्चय ही अपना कल्याण कर लेगा।

दोहा—अस विचार गुरुबोधको, जा घट होय प्रकाश ।
ते गृही गुरु रूप हैं, तरै तारु अन्यास ॥३४८॥

शब्दार्थ — गृही = गृहस्थ, घरबार वाला । अन्यास = अनायास, आयास-श्रम, कठिनाई का अभाव, आसानी से ।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से गुरुज्ञान के दिव्य विचारों का प्रकाश जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में हो जायगा; वह गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी गुरुरूप है; वह सहज ही स्वयं भववंधनों से तर जायेगा तथा दूसरों को तार देगा ॥ ३४८ ॥

विशेष — मोक्ष किसी अमुक प्रकार के वेषधारियों के अधिकार में नहीं होता। निरन्तर विवेक-वैराग्य के पुरुषार्थ से जिस व्यक्ति के हृदय में पूर्ण बोध का प्रकाश हो जाय; जिसके बाहर, भीतर कामवासना-क्रिया, अष्टमद छुट जायँ, वही मुक्त है। वह चाहे साधुवेष में हो और चाहे गृहस्थ वेष में हो। जो लोग यह मानते हैं कि केवल ज्ञान हो जाना चाहिये, फिर विषय भोग करते हुए भी मोक्ष हो जायगा, वे महाभ्रम में हैं। विरक्त-गृहस्थ दोनों को काम-वासना-क्रिया, कल्पना-भ्रांति; अष्टमद आदि सब छोड़ने पड़ेंगे।

प्रश्न हो सकता है कि जब गृहस्थी में रहते हुए मोक्ष हो सकता है तब उसे छोड़ कर साधुवेष धारण करने की क्या आवश्यकता है? उत्तर में समझना चाहिए कि गृहस्थी में खटपट अधिक है, इसलिए वहाँ साधना में अवरोधक तत्त्व विशेष हैं, और विरक्त दशा में बहुत प्रपंचसहज ही मिट जाते हैं। आगे अपने मन-वासनाओं को मिटाना पड़ता है। परन्तु यह भी है कि साधुवेष में यदि सावधान न रहे तो मान-बड़ाई तथा निरयत्न शरीर निर्वाह के साधन पाकर गिरने के भी कारण उपस्थित हो जाते हैं। जो विनम्र और सावधान रहेगा वही सरलता से अपना कल्याण कर सकेगा।

जो विवेकवान पुरुष गृहस्थी आश्रम में रहकर अपने प्रापंचिक व्यवहार को कम कर दिये हैं, और तृष्णा छोड़कर निर्वाह मात्र के लिए व्यवहार रखते हैं। और शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए संतसंग, सेवा-भक्ति, उपासना, स्वाध्याय, मनोनिग्रह आदि सद्साधनाओं से चलते हैं और देहादि सभी अहंकारों को दूर करके विवेक-वैराग्य में तत्पर, हैं, उनके जीवन्मुक्त होने में कोई संदेह नहीं है।

'ते गृही गुरुरूप हैं' का तात्पर्य है कि वे गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी श्रेष्ठरूप, दिव्यरूप एवं मुक्त रूप हैं। यहाँ यह तात्पर्य नहीं है कि वे दूसरों को शिष्य बनाकर स्वयं गुरुवायी करने लगते हैं। ऐसा करने से उनके गिरने का भय है तथा मर्यादा का उल्लंघन है। यह काम साधुवेष सम्पन्न विवेकवान संतो पर ही छोड़ देना चाहिये। यद्यपि उनके द्वारा जितने लोगों का हित होगा उनकी दृष्टि में वे गुरुरूप ही रहेंगे; परन्तु उन्हें चाहिए कि यदि वे गृहस्थाश्रम में हैं, यानी साधुवेष में नहीं हैं, तो वे किसी को मंत्र-दीक्षा देकर शिष्य न बनावें यह काम संतों से कराते रहें।

मूल दोहे में कहा गया है 'तरैं तारु अन्यास' अर्थात आश्रमधारी विवेकी पुरुष आसानी से अपने और दूसरे का कल्याण करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उनका साधुवेष न होने से उन्हें किसी से अपने आप को पुजवाना, गुरु मनवाना तथा श्रेष्ठ कहलवाना नहीं है। इसलिए सावधान न रहने पर पूज्यता तथा श्रेष्ठता में जो अहंकार,

ईर्ष्या, मान-बड़ाई की भावना, इच्छा, द्वेष आदि साधुवेष में उत्पन्न होते हैं, वे विकार उनमें नहीं होते। इसलिए वे सहज ही अपने मन को जीत लेते हैं।

दूसरे का कल्याण करने में भी उनको सरलता रहती है; क्योंकि किसी को खींचकर अपना शिष्य बनाना तथा अपने शिष्य को कोई दूसरा ले लिया, तो उससे द्वेष करना आदि मायामोह उनके सामने नहीं रहता। वे हित की बात कह दिये जो मान लिया अच्छा है, नहीं माना तो कोई चिंता नहीं। क्योंकि उनसे उन्हें न तो पूजा, मान-बड़ाई रुपये-पैसे पाने हैं और न अन्य कोई वस्तु।

वैसे विवेकवान वेषधारी संत-गुरुजनों द्वारा धर्म एवं बोध का अधिकतम प्रचार होता है; क्योंकि उसके लिए वे स्वतंत्र विचरणशील होते हैं। उस विवेकवान गृहस्थ के कल्याण में भी सहायक साधु-वेषधारी निर्मलसंत ही हैं।

गृहस्थाश्रम में रहने वाले विवेकवान साधक को सावधान रहना चाहिए कि वह अभिमान से रहित हो। वह यह न सोचले कि "जब परम पारखी सद्गुरु श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि 'ते गृही गुरु रूप हैं' तब तो मैं भी गुरुरूप हूँ। मैं संत-गुरु से क्या कम हूँ ? इत्यादि।" यदि ये भावनायें आईं तो वह अपने पद से गिर जायगा। यहाँ तो यह बताया गया है कि जो केवल साधुवेष नहीं लिये और गृहस्थाश्रम में रहता है, परन्तु विवेक-वैराग्यादि समस्त सद्गुणों से सम्पन्न है और उसके हृदय में बोध का प्रकाश एवं स्वरूपस्थिति हो गयी है तो वह मुक्त रूप ही है। जब अहंकार करने से साधु गुरु की दशा में होकर भी लोग गिर जाते हैं, तब वह क्यों नहीं गिर जायगा ? आगे गृहस्थाश्रमी और साधु की मर्यादा का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—

चौपाई—२२

गृहीको है लाजिम सेवा। साधूको है त्यागको लेवा ॥१॥
गृही सेवै गुरु औ साधू। दोहुन को है धर्म अबाधू ॥२॥

शब्दार्थ — लाजिम = आवश्यक कर्तव्य। धर्म = कर्तव्य। अबाधू = निर्विघ्न

भावार्थ — गृहस्थी आश्रम में रहने वाले चाहे साधारण गृहस्थ हों और चाहे विवेकी पुरुष हों, उनका परम कर्तव्य है कि सद्गुरु, साधु एवं संतों की तन, मन, धनादि से सेवा करें। और साधु का परम कर्तव्य है कि वे हर प्रकार से त्यागवृत्ति से रहें ॥१॥ इस प्रकार गृहस्थाश्रमी विवेकी गुरु-साधु की सेवा करें। फिर साधुवेषधारी विवेकी संत तथा गृहस्थाश्रमी विवेकी व्यक्ति दोनों का मोक्षकर्तव्य निर्विघ्न पूर्ण हो जायगा ॥२॥

विशेष — संत-महात्माजन लोक-कल्याण के लिए विचरते हैं; इसलिये गृहस्थों एवं मठाधीशों का भी कर्तव्य है कि वे उनकी सेवा करें तथा उन्हें आवश्यक आर्थिक सहयोग दें; और संतों का कर्तव्य है कि वे अपने को हर प्रकार अगर्ज, निष्काम एवं आसक्तिरहित रखें।

निर्णय जो गुरुमुखहिं सूना । ताहि मनन साक्षातहु गूना ॥३॥
प्रेम लगावै अस्तिपद माँहीं । ठहरे पंचाइत गुरु पाहीं ॥४॥

शब्दार्थ — सूना = सुना । गूना = गुनना; विचार करना । अस्तिपद = सत्य-स्वरूप चेतन । पंचाइत = सभा; सत्संग । पाहीं = पास, निकट; में ।

भावार्थ — मुमुक्षु का कर्तव्य है कि जो निर्णय गुरुमुख से सुना हो, उसका मनन, विचार एवं साक्षात्कार करे ॥३॥ पुनः सबका फल यह है कि सत्यस्वरूप चेतन में समाधिनिष्ठ हो। और इनसब कार्यों की सिद्धि के लिए गुरु-संतों के सत्संगमें निवास करे॥४॥

दोहा — पंचाइत गुरुन्यावकी, याको होय सहाय ।
तब कछु ग्रहण साधुपद, सोई गुरुपद आय ॥३४९॥

शब्दार्थ — पंचाइत = सत्सग । कछु = धीरे से । साधुपद = सन्मार्ग, स्वरूप विवेक, विषयासक्तिरहित स्वरूपस्थिति । आय = है ।

भावार्थ — मुमुक्षु की कल्याण- साधना में गुरुनिर्णययुक्त सत्संग सहायक होता है । तत्पश्चात धीरे से विषयासक्तिरहित स्वरूपस्थिति की प्राप्ति होती है, वही गुरुपद है ॥ ३४९ ॥

सत्यशब्द टकसारः बीजक, रमैनी-८४

ये जियरा तैं अपने दुखहि सम्हार । जेहि दुख व्यापि रहा संसार ॥१॥
माया मोह बँधा सब लोई । अल्प लाभ मूल गौ खोई ॥२॥

शब्दार्थ — लोई = लोग ।

भावार्थ — हे जीव ! जो दुःख संसार में फैला हुआ है, उससे तू अपने आपको बचा ले ॥ १ ॥ सब लोग माया-मोह में बँधे हैं; उसमें क्षणिक लाभ प्रतीत होता है, परन्तु मूलस्वरूप विचार एवं मानवता नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

मोर तोर में सबै बिगुर्चा । जननी गर्भ बोद्रमा सूता ॥३॥
बहुतक खेल खेलें बहुरूपा । जन भँवरा अस गये बहूता ॥४॥

शब्दार्थ — बिगुर्चा = बिगूचन, उलझन ,धोखा ।

भावार्थ — अपने-पराये के राग-द्वेष में पड़कर सब जीव उलझन में पड़े हैं। इसी से वे बारम्बार जननी की जठरज्वाला में सोते हैं ॥३॥ बहुत लोग अनेक वेष बनाकर अनेक साधनायें करते हैं ;परन्तु भँवरा जैसे कमलपुष्प में बन्द होकर आसक्तिवश हाथीद्वारा मारा जाता है, वैसे वे लोग विषय और कल्पना में पड़कर जड़ाध्यासी होते हैं ॥ ४ ॥

उपजि विनशि फिर जुइनी आवै । सुखको लेश सपनेहु नहिं पावै ॥५॥
दुख संताप कष्ट बहु पावै । सो न मिला जो जरत बुझावै ॥६॥

शब्दार्थ — जुइनी = योनि; खानि ।

भावार्थ — ये अज्ञानी जीव (पुनः-पुनः) जन्मते हैं, मरते हैं, और उत्पत्ति-स्थान-योनि में आते हैं । इस प्रकार ये स्वप्न में भी किंचित सुख नहीं पाते ॥ ५ ॥ बल्कि देहोपाधिजनित नानादुःख, मानसिक संताप एवं अन्य प्राणियों द्वारा कष्ट पाते रहते हैं । वह ज्ञान इनको नहीं मिलता जिससे इनकी जलती हुई कल्पना एवं विषय की आग बुझ जाय ॥ ६ ॥

मोर तोर में जरै जग सारा । धृग स्वारथ झूठा हंकारा ॥७॥
झूँठी आश रहा जग लागी । इन्हते भागि बहुरि पुनिआगी ॥८॥
जेहि हितके राखेउ सब लोई । सो सयान बाँचा नहिं कोई ॥९॥

शब्दार्थ — धृग = धिक्, धिक्कार ।

भावार्थ — संसार के सारे प्राणी राग-द्वेष में जलते हैं, उनकी स्वार्थपरता तथा मिथ्या अभिमान को धिक्कार है ॥ ७ ॥ जीवों को जो सांसारिक भोगों की आशा लगा है, व्यर्थ ही है । इनसे कोई भागकर बचना चाहा तो कल्पना एवं भ्रांति की आग में वह पुनः जलता है ॥८॥ जिस मोक्ष की प्राप्ति के लिये सब लोगों ने अपने ऊपर अन्य की कल्पना कर रखी है; वे कोई भी बुद्धिमान बंधन से बचे नहीं (क्योंकि कल्पित वस्तु उन्हें बंधनों से नहीं छुड़ा सकती है) ॥ ९ ॥

साखी — आपु आपु चेते नहीं , कहौं तो रुसवा होय ।
कहहिं कबीरजो आपुनजागै, निरास्तिअस्तिनहोय॥३५०॥

शब्दार्थ — रुसवा = रोष, क्रोध । निरास्ति = असत्य । अस्ति = सत्य ।

भावार्थ — संसारी लोग स्वयं माया-मोह से सावधान होते नहीं, यदि मैं सावधान होने के लिये कहता हूँ, तो वे क्रोध प्रकट करते हैं । सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वे स्वयं नहीं सावधान होते तो भी जिसके पक्ष में वे पड़े हैं, वह कल्पित एवं असत्य वस्तु सत्य नहीं हो सकती ॥ ३५० ॥

दोहा — अब सुनु शिष्य समान चित, निर्णय युत गुरुज्ञान ।
उपदेशै जीवन सदा, आपु न हंता मान ॥३५१॥

शब्दार्थ — समान चित = शांत मन ।

भावार्थ — अब, हे शिष्य ! निर्णय सहित गुरुका ज्ञान शांतमन से सुनो और धारण करो । और अपने में किसी प्रकार का अहंकार मान-बड़ाई न लाकर अन्य अधिकारी जिज्ञासुओं को सदैव उसका उपदेश करो ॥ ३५१ ॥

प्राप्ति जीव इच्छा नहीं, केवल हंत छुड़ाव ।
निज स्वरूप लखि दयायुत, दीन जानि अपनाव ॥३५२॥

शब्दार्थ — हंत = अहंकार ।

भावार्थ — मुक्ति-इच्छुक जीवको कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये; उसे केवल मन में लगे हुए अहंकार को दूर करना चाहिये । और दूसरे जीवों को अपने समान समझ कर तथा उन्हें विनम्र देखकर कृपापूर्वक सत्यका ज्ञान देकर अपने सदृश बना लेना चाहिये ॥३५२॥

विशेष — जो व्यक्ति मुक्ति चाहता हो, उसे अन्य कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं होनी चाहिये । क्योंकि अपना चेतन स्वरूप तो नित्य प्राप्त अपना आप ही है । स्थित अपने आप में ही होना है । अतएव केवल अहंकारको दूर करना चाहिये । सब कुछ का अहंकार छोड़ देने पर अपने आप शेष चेतनतत्त्व रह जायगा, वही अपना पारखपद है ।

दूसरे जीव भी अपने समान एवं सजाति हैं । उनका भी कल्याण हो यह भावना होनी चाहिये, और जिनको विनम्र, मुमुक्षु देखे उन्हें भी सन्मार्ग पर चलने की सम्मति देना उचित है ।

हे शिष्य जीव अबोध बहु, परे कालके जाल ।
तेहि दया निज ओर करि, बोधे सो दीनदयाल ॥३५३॥

शब्दार्थ — निजओर = अपनी तरफ से; निःस्वार्थभावपूर्वक । बोधे = ज्ञानोपदेश करे ।

भावार्थ — हे शिष्य ! ज्ञानरहित असंख्य मनुष्य अज्ञान के बंधनों में पड़े हैं । उनके ऊपर निःस्वार्थभावसे कृपा करके जो ज्ञानोपदेश करे वह दीनदयालु सद्गुरु है।३५३।

गृहि साधु गुण लक्षयुत, काल कलाकी फाँस ।
बाँचै जेहि उपदेश करि, गृहि विरक्त भ्रम नाश ॥३५४॥

शब्दार्थ — गृहि = गृहस्थ । लक्ष = लक्षण ।

भावार्थ — गृहस्थो आश्रम में रहता हुआ व्यक्ति हो या साधुवेषधारी; उसे मोक्षरहनी के गुणलक्षणयुत होना चाहिये । विवेकी सद्गुरु के उपदेश से गृहस्थ-विरक्त दोनों अज्ञान एवं कल्पना के बंधनों से बच जाते हैं; और उनके भ्रम नष्ट हो जाते हैं।३५४।

प्राप्ति पदारथ कारने, गृही कोई कोइ साध ।
गुरुमुख प्राप्ति भयो जहाँ, ठहरे तेहि अबाद ॥३५५॥

शब्दार्थ — पदारथ = मोक्ष, शांति । अबाद = निर्विवाद, आबाद, बसा हुआ, खुशहाल, संपन्न, फलता-फूलता; प्रसन्न ।

भावार्थ — मोक्ष एवं शांति की प्राप्ति के लिये कोई गृहस्थी में साधना करता है तथा कोई गृहस्थी-प्रपंच को छोड़कर और साधुवेष धारण करके विचरते हुए साधना

करता है। परन्तु जिसको गुरुमुख से यथार्थ बोध एवं वैराग्य प्राप्त हो जाता है, वही निर्विवाद एवं प्रसन्न होकर स्वस्वरूप में स्थित हो जाता है ॥ ३५५ ॥

सुन शिष्य गुरुमत विमल अति, पावै गुरुसम होय।
गृह बाधा तेहि ना करै, रहै अपन पद जोय ॥३५६॥

शब्दार्थ — सम = सदृश, समान। बाधा = विघ्न, अड़चन। जोय = जो व्यक्ति।

भावार्थ — हे शिष्य ! सुनो, गुरुविवेक एवं स्वरूपज्ञान अत्यंत निर्मल है, उसे जो व्यक्ति वैराग्यादि सद्गुणयुक्त धारण कर लेगा वह गुरु के समान ही जीवन्मुक्त हो जायेगा। जो व्यक्ति विषयों से विरक्त, सद्गुणयुक्त एवं विनम्र होकर स्वस्वरूप में स्थित हो जायेगा उसे साधुवेषरहित गृहस्थाश्रम में रहना मात्र मोक्ष में विघ्न नहीं कर सकता ॥ ३५६ ॥

और विरक्त बुद्धिमान जो, पावे गुरुमत स्वच्छ।
ताहि न माया लूटि हैं, पारख में सब लच्छ ॥३५७॥

शब्दार्थ — लच्छ = लक्ष्य; ध्येय।

भावार्थ — और जो पवित्र स्वरूपबोध को प्राप्त हुए विवेकवान विरक्त संत हैं, उनको माया नहीं ठग सकती, क्योंकि उनका सब समय पारखस्थिति में ही ध्येय बना रहता है ॥ ३५७ ॥

अनुमानी दोऊ दिशा, चौरासी बसै नित्त।
ब्रह्म रहट संकल्पना, परे सोई छिन चित्त ॥३५८॥

शब्दार्थ — अनुमानी = अपने स्वरूप से पृथक अपनी लक्ष्यप्राप्ति का अनुमान करने वाला; भ्रमिक। दोऊ दिशा = गृहस्थी-विरक्ती। छिन चित्त = क्षणिक वृत्ति।

भावार्थ — भूले लोग चाहे गृहस्थी में हों या साधुवेष में उनके मनमें सदैव चौरासी के कर्मसंस्कार एवं सांसारिक वासना ही निवास करती है। कोई उत्पत्ति-प्रलय रूप चक्करदार ब्रह्म के संकल्प एवं कल्पना में पड़ा है, और कोई जन्म-मरण के कारण रूप क्षणिक विषयवृत्ति में पड़ा है ॥ ३५८ ॥

विशेष — 'ब्रह्म रहट संकल्पना, परे सोई छिन चित्त।' का अर्थ यह भी हो सकता है कि जिस समय व्यक्ति रहँट चक्कर उत्पत्ति-प्रलय वाले ब्रह्म का संकल्प किया कि मैं वही हूँ, उसी क्षण वह चित्त अर्थात उतान होकर गिर पड़ा। मुख ऊपर करके पीठ की तरफ गिरना चित्त गिरना कहा जाता है और यह पहलवानी में हार माना जाता है। ब्रह्म नाम रखकरके जगत ही को अपना स्वरूप मानना हार जाना या भूल जाना नहीं तो क्या है ? इसीलिये आगे ग्रंथकर्ता बीजक प्रमाण देकर ब्रह्मवाद की कसर दिखलाते हैं।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, शब्द-९४

कहो हो निरंजन कौने बानी ॥ १ ॥
हाथ पाँव मुख श्रवण जिभ्या नहीं, का कहि जपहु हो प्रानी ॥२॥
ज्योतिहि ज्योति ज्योति जो कहिये, ज्योति कौन सहिदानी ॥३॥
ज्योतिहि ज्योति ज्योति दै मारै, तब कहु ज्योति कहाँ समानी ॥४॥
चारवेद ब्रह्मा जो कहिया, उनहुँ न या गति जानी ॥५॥
कहहिं कबीर सुनो हो संतो, बूझो पंडित ज्ञानी ॥६॥

शब्दार्थ — निरंजन = निर्दोष, अदृश्य ब्रह्म । बानी = वाणी (परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी), लक्षण । सहिदानी = पहिचान । गति = दशा ।

भावार्थ — हे भाई ! अदृश्य ब्रह्मका क्या लक्षण है, किस वाणी से उसकी व्याख्या करते हो ? (क्योंकि उसको मन, बुद्धि, वाणी से परे कहते हैं) ॥१॥ उस ब्रह्म के हाथ, पैर, मुख, श्रवण, जिह्वादि कोई अंग-आकार आदि नहीं हैं । फिर हे मनुष्यो ! उसको क्या कहकर जपते हो ? ॥२॥ यदि यह कहिये वह ब्रह्म स्वयं ज्योति स्वरूप मुझ जीव ज्योति का प्रकाशक है तो उसके स्वयं प्रकाशक होने तथा अन्य को प्रकाश पहुँचाने में क्या प्रमाण व क्या पहिचान है ? ॥३॥ ज्योति-ही-ज्योति कहते-कहते ज्योति की कल्पना ही में जब शरीर नष्ट हो जायगा, तब कहो भला ! वह तुम्हारी कल्पित ब्रह्म ज्योति कहाँ समायेगी ? (तात्पर्य यह है कि वह तो तुम्हारे मन की कल्पना है अतः तुम्हारे मन ही में समायेगी, मन के बाहर तो उसका कोई स्वरूप ही नहीं है) ॥४॥ चारों वेदों को कथन करने वाले जो श्रीब्रह्मा-जी थे, वे भी उस कल्पित ब्रह्मज्योति की वास्तविकता को नहीं जान सके ॥ ५ ॥ सद्गुरु कहते हैं हे सन्तो ! सुनो, इन पण्डित और ज्ञानियों के भ्रम को समझो और समझकर उसका त्याग करो तथा अपने आप पारखस्वरूप में स्थिति करो; अथवा हे सन्तो तथा पण्डित ज्ञानियो ! सत्य-असत्य को परखो ॥ ६ ॥

दोहा—बन्दीछोर सुजान गुरु, अशरण शरण दयाल ।
गुरु हंसन उद्धार हित, भाखेउ स्वपद कृपाल ॥३५९॥

शब्दार्थ — स्वस्वपद = स्वस्वरूपज्ञान ।

भावार्थ — बन्धन छुड़ाने वाले, विवेकी, आश्रयहीन को आश्रय देने वाले, कृपालु सद्गुरु मुमुक्षुओं के कल्याण के लिए स्वरूपज्ञान का उपदेश किये ॥३५९॥

ऐसी रहनी जो रहैं, तेई साधुगुरु रूप ।
आप तरै तारै और, क्या विरक्त गृहि भूप ॥३६०॥

शब्दार्थ — रहनी = आचरण ।

भावार्थ — उपर्युक्त स्वरूपज्ञान की स्थिति के आचरण में जो रहता है वही संत तथा सद्गुरु के रूप हैं वे स्वयं अपना उद्धार कर लेते हैं और दूसरा साधु, गृहस्थ, राजा, रंक कोई भी हो यदि उसमें जिज्ञासा एवं मुमुक्षुता है तो उसका भी उद्धार कर देते हैं ॥३६०॥

गृहि विरक्त दोउ रूप है, निर्णयते एकै आहि ।
गुरुमत अदल प्रकाश को, है प्रगट जेहि माँहि ॥३६१॥

शब्दार्थ — गुरुमत = गुरुविवेक, स्वरूपज्ञान । अदल = अद्ल; (अरबी शब्द है) न्याय, इंसाफ ।

भावार्थ — कल्याणइच्छुकों के दो प्रकार होते हैं, एक गृहस्थ और दूसरे साधुवेषधारी; परन्तु जिनके हृदय में गुरुविवेक के न्याय का प्रकाश उदित हो गया है, अर्थात जो स्वरूपज्ञान में स्थित हो गये हैं वे निर्णय से एक ही प्रकार है॥३६१॥

विशेष — तात्पर्य यह है कि कल्याण इच्छुकों में कोई अचला-लँगोटी पहन करके साधुका वेष धारण कर लिया है और कोई साधुवेष न पहन कर गृहस्थों जैसा वेष पहनता है । इस प्रकार बाहरी दृष्टि से उनके दो रूप हैं, परन्तु विवेक करके देखा जाग जिसके मन में विवेक-वैराग्य होगा वही कल्याण प्राप्त कर सकेगा । केवल अचला-लँगोटी मोक्ष नहीं दे सकती और अचला-लँगोटी के बिना न तो मोक्ष में बाधा ही पड़ सकती है । वस्तुतः जिनके हृदय से सारी आसक्तियाँ दूर हो गयीं और वे स्वरूपज्ञान में स्थित हो गये वे सब एक समान कल्याण स्वरूप हैं चाहे साधुवेष में हों और चाहे गृहस्थवेष में हों ।

तेई हंस प्रमाण युत, दीनबंधु निर्धार ।
वंदनिये ताके चरण, सुन शिष्य सहित विचार ॥३६२॥

शब्दार्थ — प्रमाणयुत = सत्य की कसौटी पर कसे हुए । निर्धार = निर्धारण, निर्णय; निश्चय । वन्दनिये = वन्दनीय, वन्दना करने योग्य ।

भावार्थ — हे शिष्य ! विवेक पूर्वक सुनो । जिनके चरण वंदना करने योग्य हैं, ऐसे दीनवंधु सद्गुरु ने निर्णय एवं निश्चय कर दिया है कि वे ही विवेकी सत्य की कसौटी पर कसे हुए मुक्तरूप हैं (जो पूर्ण वैराग्य से सम्पन्न तथा स्वरूपज्ञान में स्थित हैं) ॥३६२॥

सत्य भेष सत्पद सहित, ठहरै अस्ति स्वरूप ।
ते अधिकारी पारखी, साँचे गुरुमत भूप ॥३६३॥

शब्दार्थ — सत्यभेष = साधुवेष, सात्विक वेष, वह सादा वेष जिससे शरीरा-

भिमान दूर होकर मनकी एकाग्रता में सुविधा हो। सत्पद = सदाचरण। अस्ति = सत्य चेतन।

भावार्थ — जो सात्विक वेष एवं सदाचरण पूर्वक अपने सत्स्वरूप चेतन में स्थित हो जाता है वह पारखी है और सद्गुरु के सच्चे सिद्धान्त का हकदार एवं उसका सर्वतंत्र स्वतंत्र सम्राट है ॥३६३॥

विशेष — कल्याणसाधना करने वाले मुमुक्षु एवं स्वरूपस्थ ज्ञानी पुरुष के वेष सात्विक एवं सादा होने चाहिये जिससे देहाभिमान दूर होने एवं मनोनिग्रह करने में सुविधा हो। इसलिये साधक या सिद्ध को तड़कीले-भड़कीले एवं बहुमूल्यवान वेष का उपयोग नहीं करना चाहिये। अपितु सदैव सादा, मध्यवर्तीय एवं सात्विक वेष धारण करना चाहिये। यहाँ साधुवेष का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है।

ग्रंथकर्ता कहते हैं कि सद्गुरु के सिद्धान्त का अधिकारी, मालिक, मुखिया, बादशाह व पारखी वही है जो सादापन, सदाचार और सद्गुणसंयुक्त रहकर स्वरूपज्ञान में स्थित हो। यह बात बारम्बार मनन करने योग्य है:

खेद है, भूले लोग अपने माने हुए धन, मठ, गद्दी, शिष्य-शाखा, पूज्यता, मान-बड़ाई आदि नाशवान मायावी पदार्थों के अहंकार के बल पर धर्म के मुख्य उत्तराधिकारी, मालिक व राजा बनते हैं और इस नशा में वे एक दूसरे को छोटा देखते हैं। परन्तु परमार्थमार्गमें भौतिक पदार्थों का महत्त्व नहीं है। यदि इसीका महत्त्व है तो बड़े-बड़े राजा, सेठ लोग सबसे बड़े मुक्तिदाता हैं। अतः कल्याणमार्ग में वही सर्वोपरि है जो सदाचार तथा सद्ज्ञान से सम्पन्न एवं त्यागवैराग्य से पूर्ण है।

रहनि गहनि सत्य भेष के, हंस दशा शुद्ध होय।
गुरु वाणी निर्णय सहित, लखै अपन पद जोय ॥३६४॥

शब्दार्थ — रहनि = रहन-सहन, आचरण। गहनि = ग्रहण करने की शक्ति, धारणा। हंसदशा = विवेक की स्थिति। अपनपद = स्वस्वरूप चेतन। जोय = जो व्यक्ति।

भावार्थ — जो व्यक्ति निर्णयपूर्ण गुरुवाणियों द्वारा अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसके आचरण, धारणा, वेष सभी सत्य से पूर्ण हो जाते हैं, और वह शुद्ध विवेक की स्थिति को प्राप्त हो जाता है॥ ३६४॥

ब्रह्म ईश माया जनित, मन उपाधि गुण खान।
ते उपाधि हंता सहित, हे शिष्य लेहु पहिचान ॥३६५॥

शब्दार्थ — माया = धोखा; अविद्या; मोहकारिणी शक्ति; भ्रम। उपाधि = छल, धोखा; विशेष लक्षण। खान = उत्पत्तिस्थान; खजाना; भण्डार।

भावार्थ — अपने स्वरूप से पृथक जहाँ तक ब्रह्म, ईश्वरादि की कल्पनायें हैं, सब अविद्या, छलावा एवं भ्रम से उत्पन्न हैं। मन अनेक विशेष लक्षणों वाला तथा

अनेक गुणों का भण्डार है। हे शिष्य! यह परख लो कि वे सभी विशेष लक्षण एवं गुण अहंकार पूर्ण हैं ॥ ३६५ ॥

विशेष — यह मन ही विशेष लक्षणों वाला ईश्वर, ब्रह्म, देवी, देवता, भूत, प्रेत आदि स्वयं बनता या उन्हें बनाता है। यह मन ही माता-पिता, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, मित्र वैरी आदि नाना विशेष लक्षणों वाला एवं उपाधियुत बन जाता है या उसकी कल्पना करता है, अतएव यह मन अनेक कल्पनारूप गुणों का उत्पत्ति स्थान व खजाना है। और यह मन जहाँ तक बनता या बनाता है सब अहंकारोपाधि है। अथवा ये सारी उपाधियाँ विशेष लक्षण एवं मायावी ऐश्वर्य अहंकारपूर्ण हैं। अतएव इन्हें परखकर त्याग करना चाहिये; और स्वस्वरूप में स्थित होना चाहिये।

प्राप्ति मत प्रगट सुयह, गुरुगम होवै नेर।
ब्रह्म जगत संशय सबै, मिटै चौरासी फेर ॥३६६॥

शब्दार्थ — गुरुगम = गुरु + गम, गम = पहुँच; गुजर; प्रवेश; गमन; सड़क; राह; इसप्रकार गुरुगम का अर्थ हुआ गुरुमार्ग। नेर = निकट। फेर = चक्कर।

भावार्थ — सद्गुरु द्वारा प्रकट किया हुआ उपर्युक्त सुन्दर विचार जिनको प्राप्त हो जाता है, उनको गुरुमार्ग निकट या संक्षिप्त एवं सरल हो जाता है; क्योंकि उनके ब्रह्म, जगत आदि के सभी संदेह एवं चौरासी के चक्कर मिट जाते हैं ॥ ३६६ ॥

सुन शिष्य मानुष तने तू, अतिशय हेतु बढ़ाव।
यही रूपते सिद्धता, प्राप्ति होत ठहराव ॥३६७॥

शब्दार्थ — हेतु = कारण; लक्ष्य; हेत, प्रेम।

भावार्थ — हे शिष्य! सुनो, इस मनुष्य शरीर को ही तुम मोक्ष का कारण एवं एकमात्र स्थान समझकर; अथवा इस शरीर का लक्ष्य मोक्षप्राप्ति समझकर कल्याण-साधना, सत्संग आदि में अत्यंत प्रेम बढ़ाओ। इसी मनुष्य शरीर में विवेक-वैराग्यादि पुरुषार्थ करने से मोक्ष की सिद्धि एवं स्वरूपस्थिति की प्राप्ति होती है ॥ ३६७ ॥

ठहरै बुंद समुद्रता, दुई उपाधि मिटि जाय।
गुरुमत न्याव प्रत्यक्ष शिष्य, निर्णय लखहु बनाय ॥३६८॥

शब्दार्थ — उपाधि = विशेष लक्षण; प्रयोजन, झंझट। बनाय = अच्छी तरह।

भावार्थ — स्वातिबूंद सीपी में प्रविष्ट होकर मोती बन जाती है और वह पुनः वाष्प बनकर ऊपर जाने तथा बारिस द्वारा नीचे आने इन दो विशेष लक्षणों एवं झंझटों से छुट्टी पा जाती है। इसी प्रकार हे शिष्य! गुरुविचार के प्रत्यक्ष निर्णय को अच्छी तरह समझकर अपने पारखस्वरूप चेतन में स्थित हो जाओ, तो ब्रह्म और जगत इन दोनों के चक्कर से मुक्त हो जाओगे ॥३६८॥

या रहस्य युत जे जिया, ते उर दया लहंत।
धीर विचार औ शील गुण, हंसहिं बोध करंत ॥३६९॥

शब्दार्थ—रहस्य = गुप्तभेद, सद्गुण और सदाचार। भाषा एवं व्याकरण की दृष्टि से 'रहस्य' शब्द का अर्थ है 'गुप्तभेद' या 'गोपनीय विषय'। परन्तु 'रहस्य' पारखसिद्धान्त का पारिभाषिक (लाक्षणिक) शब्द है; जिसका अर्थ सद्गुण तथा सदाचार है।

भावार्थ— जो व्यक्ति उपर्युक्त गुप्तभेद के मर्मज्ञ अथवा सद्गुण तथा सदाचार संयुक्त हैं; वे हृदय में दया धारण करके जिज्ञासुओं को धैर्य, विचार, शील आदि सद्गुण संयुक्त स्वरूपज्ञान का उपदेश करते हैं ॥३६९॥

साधुनके बहु भेषता, गृहिनके बहु चाल।
गुरुमत एक अदल है, करैं सो उभय निहाल ॥३७०॥

शब्दार्थ — अदल = अद्ल, न्याय। उभय = दोनों, गृहस्थ और साधु। निहाल = कृतार्थ; कल्याण।

भावार्थ — साधुओं के अनेक मतके अनेकों प्रकार के वेष हैं; और गृहस्थों के भी अनेक रस्म, रवाज, चाल,ढंग आदि हैं। परन्तु गुरविचार का यथार्थ निर्णय एक सत्य है, जो दोनों का कल्याण करता है ॥३७०॥

विशेष — जैसे एक पृथ्वी पर अनेक पथ, सड़क आदि बने रहते हैं, वे समय-समय पर बदलते रहते हैं, परन्तु पृथ्वी वैसी-की-वैसी ही रहती है।

इसी प्रकार नागा, निरबानी, वैष्णव, वेदांती, जैनी, कबीरपंथी, उदासी, संन्यासी आदि मतों के अनेक वेष,मान्यता एवं सिद्धान्त हैं और गृहस्थों के अनेक नियम, परिपाटी, जाति-पाँति तथा चाल-चलन हैं। परन्तु सभी के कल्याण के लिए न्याय एक है उसे आप गुरुमत या सत्य कह सकते हैं। पंथ, वेष, चाल-ढाल आदि बदलते हैं, परन्तु सत्य नहीं बदलता। वह सबके लिये सब समय कल्याण का कारण रहता है।

पारख गुरु टकसार की, निर्णय कही तमाम।
गुरु अभ्यासन जो करै, भाखेउँ सो विश्राम ॥३७१॥

शब्दार्थ — टकसार = टकसाल के समान प्रामाणिक स्थान सत्संग; बीजक ग्रंथ। तमाम = कुल; सम्पूर्ण, सारा, समाप्त, खतम। विश्राम = शांति, आराम की जगह, अंत, विराम।

भावार्थ — मैंने सत्संग तथा बीजक से प्रामाणित सद्गुरु के पारखसिद्धान्त का सम्पूर्ण निर्णय कह डाला है, और मैं उसी नित्यशांति स्थान स्वरूपस्थिति का प्रवचन किया हूँ जिसको जो व्यक्ति प्रबल अभ्यास करेगा, वह पायेगा ॥३७१॥

जो रहस्य गुरुबोधकी, जानै ठहरै जीव।
सोई गुरु पारख लहै, पंचाइत गुरु कीव ॥३७२॥

शब्दार्थ — रहस्य = गुप्तभेद, दिव्याचरण। गुरुबोध = यह प्रकरण, स्वरूप-ज्ञान। ठहरै = सावधान होना।

भावार्थ — जो व्यक्ति इस प्रकरण अथवा स्वस्वरूप का गुप्तभेद तथा दिव्याचरण जानकर सबसे, सावधान हो जाता है, वही सत्संग करके और सद्‌गुरु से पारखबोध की प्राप्ति करके जीवन्मुक्त होता है ॥३७२॥

गुरु शिष्य संभाषण अहै, युक्ति धरिया रीति।
कहंता को सुनंता मिलै, तबहिं वचन लागै प्रीति ॥३७३॥

शब्दार्थ — संभाषण = बातचीत, वार्तालाप। युक्ति = उपाय, तरीका। रीति = ढंग, कायदा।

भावार्थ — यह गुरुबोध प्रकरण गुरु शिष्य का वार्तालाप या कथनोपकथन है; वस्तुतः जिज्ञासु एवं मुमुक्षुओं को समझाने का यह एक उपाय तथा ढंग अपनाया गया है। क्योंकि कहने वाले को जब श्रद्धालु सुनने वाला मिलता है, तभी चर्चा करने में प्रेम उत्पन्न होता है ॥३७३॥

निर्णय पंचाइत सुमत, जमा यथार्थ निबेर।
शिष्य ठहरावै सर्व में, गुरु सम कल्पनाके नेर ॥३७४॥

शब्दार्थ — जमा = अव्यय, अविनाशी चेतन जीव। निबेर = निर्णय, सुलझाव सम = सम्मुख। नेर = निकट; पास।

भावार्थ — सत्संग में निर्णय करके वास्तविक अविनाशी स्वरूपज्ञान का सुलझाव और सुन्दर मत का प्रकाश होता है। पहले शिष्य तो अबोधवश अपने स्वरूप को सारे जड़चेतन एवं विश्व में व्याप्त ठहराता है; परन्तु गुरु विचार के सम्मुख होने पर वे बातें कल्पना एवं भ्रांति के ही समीप सिद्ध होती हैं, अर्थात सर्वथा गलत सिद्ध होती हैं ॥३७४॥

मर्यादा जेहि जौन विधि, वर्तै तौन प्रमान।
जमा माहिं कछु फेर नहिं, उज्ज्वल धर्म अरुज्ञान ॥३७५॥

शब्दार्थ — मर्यादा = सीमा, सदाचार।

भावार्थ — विवेकवान का काम है कि जहाँ पर जिस प्रकार की मर्यादा हो, वहाँ उसी प्रकार व्यवहार में बरत दें। इससे अपने अविनाशी स्वरूप में या उसके बोध, विचार एवं धारणा में कुछ अन्तर नहीं पड़ता प्रत्युत; धर्म और ज्ञान दोनों शुद्ध ही रहते हैं ॥३७५॥

विशेष — गुरु सेव्य है, शिष्य सेवक। दोनों की मर्यादा जीवन पर्यन्त रहती है; और इस मर्यादा के पालन कर देने से दोनों के आचरण और स्वरूपस्थिति उज्ज्वल ही रहते हैं।

संसार में गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी, छोटे-बड़े की अनेक प्रकार की मर्यादायें हैं; उनका यथावत पालन करने से ही व्यवहार में निर्मलता रहती है।

यदि हम कहीं जायँ तो वहाँ की मर्यादा का पालन करें; यदि पालन करने की क्षमता न हो तो वहाँ जायँ ही न।

जितनी मर्यादायें हैं, मनुष्यों की बनायी हुई हैं; इसलिये देश-कालानुसार उनमें परिवर्तन भी होते हैं। जो नियम एक देश व काल के लिये मर्यादा है वही दूसरे देश व काल के लिये अमर्यादा है। संसार में एक ही बात के लिए अनेक नीति व मर्यादायें हैं, इसलिए किसीमें तत्काल संदेह नहीं करना चाहिये।

निर्विघ्न या जीवन्मुक्ति स्थिति व्यतीत करने के लिए यह उत्तम सूत्र है कि जहाँ की जैसी मर्यादा हो वहाँ उसी प्रकार बर्ताव कर देना चाहिए। इसमें अपने स्वरूप में तो कुछ फेरफार होगा ही नहीं। धर्म अर्थात सदाचरण और ज्ञान में भी फर्क नहीं पड़ेगा, प्रत्युत वे उज्ज्वल ही रहेंगे।

सारशब्द निर्णय सहित, गुरुमुख मत सुप्रमान।
अहै यथर्थ संवाद शुभ, है विलासकी खान ॥३७६॥

शब्दार्थ — सुप्रमान = उच्च प्रमाण। विलास = आनन्द, जीवनमुक्ति सुख।

भावार्थ — यह गुरुबोध प्रकरण सारशब्द, न्याययुक्त, गुरुमुख, उच्च प्रामाणित विचार और जीवन्मुक्ति सुख के खजाना का निर्देशक तथा यथार्थ और कल्याणमय गुरु-शिष्य का सम्वाद है ॥३७६॥

हे शिष्य तुम गुरु साधुमा, अधिक प्रेम करु संग।
विमल बुद्धि सूझै तुझे, मन माया को रंग ॥३७७॥

शब्दार्थ — रंग = भाव।

भावार्थ — हे शिष्य ! तुम विवेकवान सद्गुरु तथा संतों में अधिक श्रद्धा तथा उनकी निरन्तर संगत करो। फिर तुम्हारी मति निर्मल हो जायगी और तब मन और मन के छल, कपट, भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना सब परखने में आयेंगे ॥ ३७७ ॥

हे शिष्य गाफिल न रहो, हंत कल्प ना लेव।
सदा दृष्टि निर्मल करो, साधुन गुरुपद सेव ॥३७८॥

शब्दार्थ — हंत = अहंकार। कल्प = कल्पना।

भावार्थ — हे शिष्य ! किसी प्रकार असावधान मत होओ, और अहंकार तथा कल्पना मत करो। प्रत्युत सदैव अपना लक्ष्य पवित्र रखो, और सद्गुरु-संतों के चरणों की सेवा करो ॥ ३७८॥

गुरुबोधित गुरुबोध यह, पाये शिष्य विश्राम ।
रामरहस गुरु की दया, भौ गुरुबोध तमाम ॥३७९॥

शब्दार्थ —गुरुबोधित = गुरुद्वारा बोध कराया हुआ । विश्राम = शांति । तमाम = समाप्त ।

भावार्थ -- यह 'गुरुबोध' प्रकरण गुरुद्वारा शिष्य को बोध कराया गया है; फलस्वरूप शिष्य को परमशांति मिल गयी । सद्गुरु श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि गुरुकी कृपा से यह गुरुबोध प्रकरण समाप्त हो गया ॥ ३७९ ॥

गुरु शिष्य को संवाद यह, बहु विधि कहा विचार ।
याकी पूरण परख करि, यथाभक्ति उर धार ॥३८०॥

इति गुरुबोध पारख विचार रामरहस साहेबकृत
गुरु की दया से संपूर्ण

शब्दार्थ — यथा = जैसे, उसी प्रकार, यथाशक्ति; यथार्थ ।

भावार्थ — यह 'गुरुबोध' प्रकरण गुरु और शिष्य का सम्वाद है, जिसमें अनेक प्रकार से विचार करके समाधान की बातें कही गयी हैं । अतएव इसकी पूर्ण छानबीन करके सत्य के लिये हृदय में यथार्थ श्रद्धा धारण करो ॥ ३८०॥

—❀—

सारशब्द निर्णय

दया गुरुकी ॥ अथ लिख्यते ग्रंथ सारशब्द निर्णय ॥

२६—मनुष्य के उत्तमगुणों का विवेचन

साखी—सारशब्द पाये विना, जीवहि चैन न होय।
फंद काल जाते लखि परै, सार शब्द कहिये सोय ॥ १ ॥

शब्दार्थ — सारशब्द = निर्णयवाणी ।

भावार्थ — सारशब्द को प्राप्ति हुए बिना मनुष्य की उलझनें नहीं मिट सकतीं तथा वह शांति नहीं पा सकता। सारशब्द उन्हीं निर्णय वचनों को कहते हैं जिसके द्वारा मन एवं अज्ञान के बन्धन समझने में आते हैं ॥ १ ॥

विशेष — सारशब्द न तो कोई गुप्तभेद है और न ईश्वर-परमात्मा है और न कोई छू मन्तर है जिसे हमें कुछ लोग द्राविड़प्राणायाम द्वारा समझानेकी चेष्टा करते हैं सारशब्द का अर्थ है निर्णय एवं न्याय के वचन। जिसका स्पष्टीकरण ग्रंथकर्ता स्वयं आगे करते हैं।

सारशब्द निर्णय को नामा। जाते होय जीव को कामा ॥ १ ॥
सारशब्द कहिये टकसार। त्रिविध शब्द को परख विचार ॥ २ ॥

शब्दार्थ — टकसार = टकसाल, जैसे टकसाल से निकले हुए सिक्के सभी प्रामाणित मानते हैं, उसी प्रकार जिस वाणी को कोई नहीं काट सके वह निर्णय वाणी टकसार को है। त्रिविधशब्द = काल, संधि, झांई वैसे ही जीवमुख, मायामुख तथा ब्रह्ममुख।

भावार्थ — जिसके श्रवण, मनन एवं चिंतन से जीव बंधनों से छूट कर कल्याण को प्राप्त हो, उस निर्णय वाणी का नाम ही सारशब्द है ॥ १ ॥ सारशब्द को प्रामाणित टकसालवत न्यायपूर्ण कहना चाहिये, जिससे काल, संधि, झांई तथा जीवमुख, मायामुख एवं ब्रह्ममुख वाणियों की परख एवं विवेक किया जाता है ॥२॥

सारशब्द को अंग विचार। दूजे शील तीजे दृढ़ सार ॥ ३ ॥
चौथे दया धरै चित माँहिं। विना दया कारज कछु नाहिं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अंग = भाग विभाग। दृढ़ = धैर्य। सार = महत्वपूर्ण।

भावार्थ — सारशब्द से निर्णीत जीवन में धारण करने योग्य ये अंग हैं—पहला विचार, दूसरा शील, तीसरा महत्त्वपूर्ण धैर्य ॥ ३ ॥ चौथे दया जिसे मन में धारण करना चाहिये। क्योंकि बिना दया धारण किये कोई शुभ कार्य नहीं बन सकता ॥४॥

पहिले त्यागे पशुव्रत धर्म । जाते मिटै त्रिविधको भर्म ॥ ५ ॥
पहिले आहि विचार को अंग । सो सुनि लेहु यथार्थ प्रसंग ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — त्रिविध = पशु, अण्डज तथा उष्मज खानियाँ। भर्म = भ्रम, वासना।

भावार्थ — मनुष्य को प्रथम भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह इन छह कर्मों का सुधार करके पशुव्रत स्वभाव छोड़ देना चाहिये; जिससे पशु, अण्डज और उष्मज इन तीन खानियों में ले जाने वाली वासनाओं का अन्त हो ॥ ५ ॥ विचार, शील, धैर्य और दया इनमें विचार पहला है। अतएव विचार के प्रसंग को ठीक ढंग से पहले सुनो ॥ ६ ॥

साँच झूठ जो है संसार । साँच आतमा झूठ पसार ॥ ७ ॥
साँच कियो झूठा महँ वास । क्रम क्रम त्यागै झूठ की आश ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — आतमा = अपना, स्वयं, चेतन जीव। पसार = फैलाव; माया-जाल, प्रपंच। वास = निवास; वासना, मोह।

भावार्थ — संसार में सत्य और असत्य दोनों हैं। अपना चेतन स्वरूप सत्य है और अपने से पृथक मैं-मेरा माना हुआ मायाजाल का पसारा असत्य है ॥ ७ ॥ सत्य चेतन जीव असत्य शरीर, धन, परिवार, मान-बड़ाई, विषय, कल्पना आदि में निवास या मोह कर रखा है। अतएव धीरे-धीरे असत्य पदार्थों की आशा-वासना का त्याग करे ॥ ८ ॥

विशेष — आतमा शब्द यहाँ निषेधपरक नहीं, अपितु विधिपरक है। यहाँ ग्रन्थकर्ता के सहज उद्‌गार से जीव के लिये आतमा शब्द निकला है। हम आतमा शब्द का हर जगह इसलिये तिरस्कार नहीं कर सकते कि ब्रह्मवादी उसका लक्षण व्यापक करते हैं। वैसे वे तो चेतन शब्द का भी अर्थ व्यापक करते हैं तथा जीव शब्द का अर्थ प्रतिबिम्ब, अंश, प्रतिभास, मिथ्या आदि तक करते हैं। फिर उनके डर से हम चेतन और जीव शब्दों का प्रयोग भी कैसे छोड़ दें ? ग्रंथकर्ता ने आतमा शब्द का प्रयोग इस ग्रंथ में विधिपरक भी किया है और निषेधपरक भी। वह प्रसंगानुसार स्पष्ट है। वस्तुतः ग्रंथकर्ता के विधिपरक आतमाशब्द का अर्थ व्याप्य-व्यापकरहित शुद्ध चेतन ही है।

संसार अनादि तथा अनंत है। यह असत्य नहीं है; परन्तु इसका और जीव का सम्बन्ध असत्य है। वस्तुतः सारा विश्व हमारा बंधन नहीं बनता, अपितु मेरे माने हुए प्राणी, पदार्थ एवं शरीरादि ही बन्धन के कारण हैं। ये ही हमारे लिये मायाजाल हैं; बल्कि इनके प्रति जो हमारे मनमें मोह है वही बंधन है; और वह असत्य है। अत-

एव चेतनजीव असत्य में अहंता-ममता कर रखा है, वही बंधन का कारण है। इसलिये धीरे-धीरे उसीका त्याग करना आवश्यक है।

जीव अजीव को करै विचार। खान पान उत्तम व्यवहार ॥ ९ ॥
अस्ति नास्ति का निर्णय करै। पक्का सौदा हृदय धरै ॥ १०॥

शब्दार्थ — सौदा=माल; ज्ञान।

भावार्थ — जीव और निर्जीवपदार्थों का विचार करे; और खान-पान में अपना व्यवहार उत्तम रखे ॥ ९ ॥ सत्य और असत्य का निर्णय करके वास्तविक ज्ञान को ही हृदय में धारण करे ॥ १० ॥

विशेष — जीव और निजर्वी का विचार तथा खान-पान के उत्तम व्यवहार के विषय में पीछे मानुषविचार प्रकरण के भोजनसुधार प्रसंग में विधिवत वर्णन है; अतः वहीं देखें।

दूजे शील को वर्णन गूने। कर्कश वचन कहे न सुने ॥११॥
जामें होय जीव सुख काज। सोई करै होय निरव्याज ॥१२॥

शब्दार्थ — निरव्याज=व्याजरहित; शुद्ध जमा चेतन मात्र।

भावार्थ — दूसरा शील का वर्णन करता हूँ, उसका मनन करो। कटुशब्द न तो कभी दूसरे को कहो और न सुनो ॥११॥ जिस काम के करने से जीव का कल्याण हो वही करो। इस प्रकार मायोपाधिरहित शुद्ध चेतन मात्र रह जाओ ॥ १२ ॥

विशेष — 'होय निरव्याज' व्याज कहते हैं जो जमाधन से अधिक बढ़ता जाय। जमाधन की तो सीमा होती है, परन्तु व्याज निरन्तर बढ़ता ही जाता है। व्याज एक विकार है। इसी प्रकार जमाधन अविनाशी चेतन स्वरूप है; और अपने स्वरूप से पृथक नाम, रूप गुणमय पसारा प्रपंच सब व्याज है। वस्तुतः जीव ही जमा है जो घटता-बढ़ता नहीं; और वासना व्याज है जो घटती-बढ़ती है। यह वासना विकार है। अतएव मोक्ष की प्राप्ति के लिये निरव्याज एवं वासनामुक्त बनो।

बिना शील कछु बनै न काज। शील बिना काल को साज ॥१३॥
मैं मेरी में सब जग भूल। खानी क्लेश शील बिन फूल ॥१४॥

शब्दार्थ — शील=उत्तम चरित्र; सद्वृत्ति; कोमलता; राग-द्वेष-हीनता; तटस्थ व्यवहार; संकोची स्वभाव। साज=सदृश। 'साज' शब्द पद्य में 'सदृश' के लिये प्रयुक्त होता है।

भावार्थ — उत्तम चरित्र, कोमलता एवं राग-द्वेष-हीन हुए बिना व्यवहार-परमार्थ का कुछ काम बनने वाला नहीं है। जो व्यक्ति शील से रहित है, वह काल के सदृश है ॥ १३ ॥ अहंता-ममता में संसार के सारे मनुष्य भूले हैं। शील का आचरण न करने से ही दुःखों के खजाना अज्ञान एवं दुराचरण फूलते-फलते हैं ॥ १४ ॥

विशेष — अपने स्वरूप को न समझकर शरीर, रूप, बल आदि को ही 'मैं' मानकर तथा धन, परिवार, मठ-मन्दिर, मान-बड़ाई को 'मेरा' मानकर सब जीव भूले हैं। संसार में अभिमानरहित सावधान लोग बहुत कम हैं; इसीलिये कहा गया है कि "सब जग भूल"। शील न होने से अर्थात शुद्ध आचार-विचार, राग-द्वेष से विमुक्ति, कोमलता, तटस्थता आदि दिव्य आचरण न होने से ही सब जीव राग-द्वेष में फँसकर पाप-पर-पाप करते हैं और उनका दुःखों का खजाना फूलता-फलता रहता हैं।

अथवा शील एवं विवेक न होने से मनुष्य भौतिक पदार्थों एवं मतवादों का ही अहंकार लेकर फूला-फूला फिरता है; और उसके परिणाम में दुःख भोगता है।

तीजे दृढ़ता धारै चित्त। आतम सत्य सब जगत अनित्य ॥१५॥

पक्का होय के सौदा लेय। धोखाधार में चित्त न देय ॥१६॥

शब्दार्थ —दृढ़ता = धैर्य या वीरता। आतम = अपना चेतन स्वरूप। पक्का = अच्छी तरह जाँचा-परखा हुआ, सुदृढ़। सौदा = माल, ज्ञान। धोखाधार = छलावा का डाका, आक्रमण।

भावार्थ — तीसरा मानवगुण एवं सारशब्द का अंग है धैर्य या वीरता। मनुष्य को दृढ़ धैर्यवाला, दृढ़निश्चयो एवं अपने दुर्स्वभावों को जीतने के लिए वीर बनना चाहिये। यह खूब समझ लेना चाहिये कि अपना चेतन स्वरूप अविनाशी तथा सत्य है; और संसार के 'मैं-मेरे' माने हुए सारे प्राणी-पदार्थ, अवस्था-परिस्थिति, नाम-रूप, गुण-स्वभाव, स्थान-पदवी, मान-मर्यादा आदि अनित्य, नाशवान एवं छूट जाने वाले हैं ॥१५॥ कल्याणार्थी को चाहिये कि वह खूब सुदृढ़ होकर एवं जाँच-परख कर ज्ञानसौदा ग्रहण करे। कहीं भावुकता, श्रद्धा, अंधविश्वास एवं पक्षपात में पड़कर ऐसे मतवाद में मन न लगाये जहाँ लोग छलकरके डाका पड़ते हैं ॥१६॥

काल कलाते डर न सोय। मिथ्या जानि आपन पद जोय ॥१७॥

वीर सरिस निजपद महँ लीन। साहनसाही तखत नसीन ॥१८॥

शब्दार्थ — काल = मन, अज्ञान। कला = कल्पना। जोय = जो व्यक्ति। निजपद = स्वस्वरूप चेतन। लीन = तन्मय, ध्यानमग्न। साहनसाही तखत = शाहंशाही सिंहासन, राजाधिराज अर्थात राजाओं के राजा-सम्राट का तख्त-सिंहासन। नसीन = नशीं-नशीन-बैठने वाला। इस प्रकार 'साहनसाही तखत नसीन' का शाब्दिक अर्थ हुआ 'सम्राट की गद्दी पर स्थित।'

भावार्थ — जो व्यक्ति मन तथा अज्ञान और उससे उत्पन्न कल्पना-भ्रांतियों को मिथ्या समझ करके और उन्हें त्याग करके अपने स्वरूप में स्थित हो गया है वह उनसे भयभीत व पीड़ित नहीं होता ॥१७॥ वह तो शूरवीर के समान समस्त वास-

नाओं एवं दुर्गुणों को नष्ट करके अपने चेतन स्वरूप में तन्मय एवं सर्वतंत्र, स्वतंत्र जीवन्मुक्ति पद में स्थित रहता है ॥१८॥

विशेष — घुँघुची से सोना तौला जाता है, भार में दोनों की बराबरी होती है, परन्तु दोनों के मूल्य में महान अन्तर रहता है। इसीप्रकार व्यवहार में सम्राट सर्वोच्च है, परमार्थ में जीवन्मुक्त सर्वोच्च है। परन्तु वस्तुतः बेचारा सम्राट तो दीन है, वह जीवन्मुक्त पुरुष का पदरज भी नहीं है।

चौथे दयाको निर्णय येह। करै विचार अदेही देह ॥१९॥
आत्मा सबमहँ एक निहार। मन वच कर्म प्रतिपाल विचार ॥२०॥

शब्दार्थ — अदेही = वृक्ष, वनस्पति आदि जो जीवों की देह नहीं हैं, अपितु वे स्वाभाविक जड़ हैं। देह = मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज खानि की जीवधारी देहें। आत्मा = जीव। एक = एक समान।

भावार्थ — चौथे मानवीय गुण 'दया' का यह न्याय है कि जीवरहित वृक्ष, वनस्पति, फल, अन्न, साग, सब्जी आदि तथा देहधारी चलते-फिरते प्राणियों का विचार करे; और निर्जीव अन्न, सब्जी आदि को शुद्धता पूर्वक खाये और जीवधारियों की रक्षा करे ॥१९॥ मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज खानि के सभी देहधारियों में एक समान सजाति जीव समझे। इसलिए मन, वाणी, कर्म से उनको सुख देने को सोचे, दुःख देने को नहीं ॥२०॥

काल जालते जीव उबार। दया धरै चित दया अधार ॥२१॥
नाम दयाल कहाये सोय। दया धरै चित ऐसे होय ॥२२॥

शब्दार्थ — काल = अज्ञान।

भावार्थ — अज्ञान के बंधनों से मनुष्यों को बचाओ। मन में दया धारण करो और सदैव दया का सहारा लो ॥२१॥ उसी को लोग दयालु के नाम से पुकारते हैं जो अपने मन में दया धारण करता है और उसी प्रकार अपनी रहनी रखता है ॥२२

पशुवत धर्मको करिये त्याग। करै विचार सहित अनुराग ॥२३॥
छाजन भोजन मैथुन येह। भय निद्रा मोह षट देह ॥२४॥

शब्दार्थ — धर्म = स्वभाव; कर्म।

भावार्थ — पशु के समान अपने मन में पड़े हुए स्वभाव को त्याग करे; और प्रेमपूर्वक सारासार का विवेक करे ॥२३॥ शरीर में छह पशुकर्म हैं, वे हैं आच्छादन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह ॥२४॥

यह षट अंशी जगत उपाय। पशु मानुष एकै सम आय ॥२५॥
है आसक्त षट मध्ये सोय। पशु आसक्त मानुष ले जोय ॥२६॥

शब्दार्थ — उपाय = उत्पन्न, जन्म । आय = है । जोय = जो व्यक्ति ।

भावार्थ — उपर्युक्त छह पाशविक अंशों की आसक्तिवश जगत में जीव बारम्बार जन्म ग्रहण करते हैं । वस्तुतः जो इन छहों में आसक्त है वह मनुष्य पशु के सदृश है ॥२५॥ जो व्यक्ति उपर्युक्त छह पशुकर्मों में आसक्त है वह पाशविक आचरणग्रस्त, मानव का केवल आकार ही ग्रहण किये हैं ॥२६॥

पशुवत धर्मको करै विचार । सो मानुष बुद्धि गुरुमुखसार ॥२७॥
भेष अमंगल काल दुराय । नष्ट ज्ञान नहिं ताहि समाय ॥२८॥

शब्दार्थ — नष्टज्ञान = जिसका नाम ज्ञान तो हो, परन्तु वह लोगों की बुद्धि नष्ट कर देता हो, भ्रमपूर्ण ज्ञान, वह ज्ञान जिसका परिणाम नाशवान है, भौतिक ज्ञान ।

भावार्थ —उपर्युक्त छह पशुकर्मों पर विचार करे और जो सर्वथा त्यागने योग्य हैं जैसे मैथुन, मोह और भय इनका सर्वथा त्याग करे; और जिन्हें ग्रहण किये बिना न चले, जैसे भोजन, आच्छादन (कपड़ा-घर आदि) तथा निद्रा इनका अनासक्ति-पूर्वक शुद्ध रीति से ग्रहण करे । ऐसा करने वाला ही मानव बुद्धिधारी तथा गुरुमुख सार वाणियों के अनुसार चलने वाला है ॥२७॥ वह अशुद्ध वेष अर्थात चाम, हड्डी, बड़े-बड़े नख-शिख आदि मलीन वेष और नाना अज्ञान, कल्पना एवं भ्रांतियों को दूर कर देता है । उसके मनमें भ्रांतिज्ञान तथा मायिक क्षणिक कला का मोह नहीं प्रवेश कर सकता ॥२८॥

गुरु पूजा संतन सनमान । गुरु संत एकै सम जान ॥२९॥
प्रत्यक्ष देव संत गुरु मान । मान महातम भरम भुलान ॥३०॥

शब्दार्थ — सनमान = सम्मान; आदर, प्रतिष्ठा ।

भावार्थ — विवेक-वैराग सम्पन्न सद्गुरु की पूजा करो; विवेकी संतों का सम्मान करो । सद्गुरु संतों को एक ही समान जानो ॥२९॥ प्रत्यक्ष देवता संत-गुरु को समझो । अन्य कल्पित देवी-देवताओं का मान-माहात्म्य एक भ्रमभुलावा है ॥३०॥

विशेष — यह बात बारम्बार बतायी गयी है कि बोधदाता सद्गुरु तथा विवेकी संतोंमें कुछ फर्क नहीं है । इसलिये दोनों एक समान पूज्य एवं आदरणीय हैं। वस्तुतः सद्गुरु और संत परमार्थ में दो ही पूज्य हैं । इनके अतिरिक्त पद मानना भ्रमभुलावा है । गुरु-संत के अतिरिक्त श्रेष्ठ पद नहीं है ।

जा मुख निर्णय लखै विशेष । ते गुरुसम न और कोइ लेख ॥३१॥
साहेब गुरु दास शिष्य होय । भक्ति तेई अधिकारी सोय ॥३२॥

शब्दार्थ — विशेष = अधिक ।

भावार्थ — जिन संतपुरुषके मुखसे अधिक निर्णय एवं ज्ञान समझने में आया हो; उनके समान सद्गुरु अन्य किसी को भी मत समझो ॥३१॥ ऐसे बोधदाता स्वामी ही सद्गुरु हैं और उनसे बोध पाया हुआ व्यक्ति दास व शिष्य है। उसे उन्हीं बोधदाता की उपासना करनी चाहिए; फिर वह कल्याण का हकदार हो जायगा ॥ ३२ ॥

विशेष — मुमुक्षु किनसे दीक्षा एवं साधुवेष लिया है। इसका महत्त्व नहीं है, अपितु इसका महत्व है कि वह किनसे यथार्थ बोध पाया है। व्यक्ति को जिस महापुरुष से यथार्थ बोध एवं सब बातों में पूर्ण संतोष मिला हो वही उसका वास्तविक सद्गुरु है। देखा भी जाता है कि कितने ही मुमुक्षु नामालूम कहाँ-कहाँ से भक्ति वेष या साधुवेष लिये रहते हैं; परन्तु उनको उन गुरुओं से न यथार्थ बोध मिलता है और न संतोष। परन्तु दूसरे रहनी-बोध-सम्पन्न संत पुरुषों से उनको बोध व हर प्रकार संतोष मिल जाता है। अतएव वे ही उनके यथार्थ सद्गुरु होते हैं। यद्यपि उसे जहाँ पहले वेष मिला हो और उनसे कुछ उपकार हुआ हो उनका उपकार मानना चाहिये।

साखी—धन्य धन्य सोई जीव है , जिन परखा संसार ।
तेई बंदीछोर हैं , तारण तरण उदार ॥ २ ॥

शब्दार्थ — उदार = ऊँचे दिल वाला, विशाल।

भावार्थ — वे ही व्यक्ति प्रशंसनीय हैं, जिन्होंने संसार एवं जड़-चेतन की वास्तविकता को परख लिया है। वे ही बन्धन छुड़ाने वाले, दूसरों को मोक्षोपदेश करने वाले, स्वयं मुक्त हो जाने वाले तथा विशाल हृदय के हैं ॥ २ ॥

रामरहस गुरु परख लहि , केते सुधरे जीव ।
काल कला नहिं तेहि लगै , सत्संगति गुरु कीव ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — केते = कितने ही; बहुत से लोग।

भावार्थ — पूज्य सद्गुरु श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि सद्गुरु कबीर का पारखबोध प्राप्त करके बहुत जीव कल्याण को प्राप्त हो गये। उनको अज्ञानजनित कल्पना भ्रांतियाँ बाँध नहीं सकतीं; क्योंकि वे सदैव संत-गुरु का सत्संग करते रहते हैं ॥ ३ ॥

सारशब्द को निर्णय , देखु संत चित लाय ।
जेहि अनुरागे जीव जग , परख लहै दुख जाय ॥ ४ ॥

इति सारशब्द निर्णय ग्रंथ श्री रामरहस साहेब कृत
गुरुकी दया से संपूर्ण ॥

शब्दार्थ — अनुरागे = प्रेमकरने से।

भावार्थ — हे संतो ! सारशब्द के उपर्युक्त लक्षण मन लगाकर समझो। जिसमें प्रेम करने से संसार के मनुष्यों को यथार्थ पारखस्वरूप का बोध होगा; और अज्ञान-जनित सारे दुःख दूर हो जायेंगे ॥ ४ ॥

सद्गुरवे नमः

पंचग्रंथी

पंचम प्रकरण

टकसार

दया गुरुकी ॥ अथ लिख्यते ग्रंथ सत्यशब्द टकसार ॥

१— वंदना

दोहा—साहेब दीनदयाल गुरु, सो पर और न कोय ।
शरण आय यम सों बचै, आवागवन न होय ॥ १ ॥

शब्दार्थ — सोपर = उनसे श्रेष्ठ । यम = मन, वासना ।

भावार्थ — बोध-वैराग्यनिष्ठ दीनदयाल सद्गुरु साहेब से कोई श्रेष्ठ नहीं है। आपकी शरण एवं आश्रय में आकर मनुष्य मन-वासनाओं के जाल से बच जाता है; फिर उसके जन्म-मरण नहीं होते ॥ १ ॥

दया करन अवगुण हरण, तारण तरण उदार ।
अशरण शरण बंदौं चरण, तुम बिन नहिं निस्तार ॥ २ ॥

शब्दार्थ — उदार = विशालहृदय । निस्तार = कल्याण ।

भावार्थ — जिज्ञासुओं पर कृपा करने वाले, उनके दोषों को दूर करने वाले, ज्ञानोपदेश देकर दूसरों को मुक्त करने वाले, स्वयं मुक्त रूप, विशाल हृदय, आश्रय हीन को ज्ञानका आश्रय देने वाले हे सद्गुरु ! आपके चरणों की वंदना करता हूँ; आप की शरण के बिना जीवका कल्याण नहीं है ॥ २ ॥

देखि अधमता आपनी, परवश यमके हाथ ।
त्रसित गहेउँ साहेब शरण, भव भय हारि सनाथ ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — यम = अज्ञान; वासना । भव = जन्म; संसार; वासना । सनाथ = कृतार्थ ।

भावार्थ — मैंने अज्ञान एवं वासनाओं के हाथों में आसक्तिवश पड़ा हुआ अपनी नीचता देखी; और पीड़ित होकर सरकार के आश्रय में आया। अतएव हे गुरुदेव ! जन्मादिमूलरूप संसारवासनाओं को दूर करके हमें कृतार्थ कर दीजिये ॥ ३ ॥

प्रभु सब लायक पारखी, हौं भरमिक अज्ञान।
लोहा कनक पारस करै, साहेब शरण समान ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — लायक=योग्य। हौं=मै।

भावार्थ — गुरुदेव सब प्रकार के योग्य और सारासार के पारखी हैं; और मैं अज्ञान में भटका हुआ हूँ। परन्तु कविकुल प्रमाणानुसार जैसे पारस पत्थर लोहा का स्पर्श करते ही उसे सोना बना देता है, उसी प्रकार सद्गुरु की शरण में जाते ही वे जिज्ञासु को अपने समान बना लेते हैं ॥ ४ ॥

वंदौ चरण सब दुख हरण, प्रभु प्रसाद दुख भूरि।
दया करी दुख सब हरी, संसृत शूल भौ दूरि ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — प्रसाद=निर्मलता, स्वच्छता; अनुग्रह, कृपा। भूरि=बहुत, प्रचुर, ज्यादा; बड़ा। संसृत=संसृति, आवागमन, जन्ममरण की परम्परा; प्रवाह; संसार।

भावार्थ — जिन सद्गुरु की कृपा से बहुत एवं सभी दुःख दूर हो जाते है; उन सभी दुःखहारी सद्गुरु के चरणों की वंदना करता हूँ। आपने कृपा करके सम्पूर्ण अज्ञान हरण कर लिये; अतः हमारी संसारजनित पीड़ा दूर हो गयी ॥ ५ ॥

बहे बहाये जात थे, भवसागर के माँहि।
दया करी परखाय सब, शरणाये गहि बाँहि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — बहाये=खींचे; आकृष्ट होकर। शरणाये=शरण में लिये; आश्रय में रखे।

भावार्थ — हे गुरुदेव ! हम संसार-सागर में वासनाद्वारा आकृष्ट होकर बहे जा रहे थे। आपने कृपा करके मेरे हाथों को पकड़ कर अपनी शरण में लगा लिये; और सारे जड़-चेतन का भेद परखा दिये ॥ ६ ॥

संतत अभय गुरुके चरण, सदा परख परकाश।
समन सबै भवजाल तम, रामरहस सुख वास ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — संतत=लगातार, निरन्तर। सदा=एकरस। समन=शमन, शांति; शांत करना; बुझाना; दूर करना, दबाना, समाप्ति।

भावार्थ — गुरु के चरणों में जिज्ञासु को निरन्तर निर्भय और एकरस ज्ञान प्रकाश पद मिलता है। ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि उसके संसार के सारे बंधन शांत हो जाते हैं, और वह जीवन्मुक्तिसुख में स्थित हो जाता है ॥ ६ ॥

सर्वोपर गुरुके चरण, जो हारी भव खेद ।
परम उदार सागर दया, थाह न पावै वेद ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — सर्वोपर = सर्वोपरि, सबसे ऊपर, सबसे बढ़कर । खेद = दुःख ।

भावार्थ — सद्गुरु के चरण सबसे बढ़कर पूज्य हैं अथवा गुरु का बोध सर्वोच्च है; वह संसारजनित दुःखों को दूर करता है । जिसका पता वेद नहीं पाते, कृपासागर परम विशालहृदय गुरुदेव उस स्वरूपज्ञान के दाता हैं ॥ ८ ॥

चारि वेद जग विदित हैं, ब्रह्मा कीन्ह प्रकाश ।
चारि रूप सो जानिये, चारि अवस्था भास ॥९॥

शब्दार्थ — चारिअवस्था = जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्यगा । भास = चमक, कल्पना, भ्रम ।

भावार्थ — संसार में प्रकट है कि ब्रह्मा ने चारों वेदों का प्रकाशन किया है । उन चारों वेदों के चार स्वरूप हैं, वस्तुतः उन वेदों में ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुर्यगा इन चार अवस्थाओं की कल्पनायें या उन अवस्थाओं के अध्यास से उठे हुए भ्रम हैं ॥ ९ ॥

विशेष — कुछ विद्वानों का विचार है कि चारों वेदों के रचयिता ब्रह्मा हैं । कुछ का कहना है कि अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चारों ऋषियों ने वेदों को रचा और ब्रह्मा को पढ़ाया तब ब्रह्मा ने उनका प्रकाशन किया । कुछ का कहना है कि वेद-मंत्र ईश्वर के भेजे हैं ऋषियों ने उसे केवल लिख दिया है । खैर, यह तो प्रायः बहुत मतवादी मानते हैं कि हमारी पुस्तक ईश्वरवाणी है । परन्तु यह श्रद्धातिरेक के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।

वस्तुतः चारों वेद हजारों वर्षों के दौरान में अनेक महर्षियों के द्वारा बने हैं । ऋग्, यजु तथा साम इन तीन वेदों का ही पहले अधिक महत्त्व था । ये वेदत्रयी के नाम से पुकारे जाते थे । पीछे अथर्ववेद बना है । तब से चार वेद हो गये ।

वेदों में देशभक्ति, सदाचार, चेतन पक्ष पर चिंतन तथा अनेक ज्ञातव्य बातें हैं । वेदों में प्राचीनकाल के इतिहास एवं वस्तुस्थिति की झलक है । ये सब होते हुए भी उनमें ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो भ्रांतिपूर्ण हैं और उनकी परख करना आवश्यक है ।

२—चारों वेदों के भिन्न विचार

सत्य निर्णय का शब्द—१

संतो दुविधा कहाँ ते आया ॥ १ ॥
नाना भाँति विचार करत हो, कौने मति बौराया ॥ २ ॥

शब्दार्थ — दुविधा = संशय, संदेह, असमंजस । कौने = किसने ।

भावार्थ — हे संतो ! ये अनिश्चित स्वरूप संदेह की बातें कहाँ से प्रगट हुईं ? ॥ १ ॥ हे संसार के लोगो ! तुम लोग अनेक प्रकार के विचार करते हो, कहो भला, तुम लोगों की बुद्धि को किसने पगली बना दी है ? ॥ २ ॥

तुर्या रूप

ऋगु कहै निराकार निर्लेपित, अगम अगोचर साईं ॥ ३ ॥
आवै न जाय मरै नहिं जीवै, रूप बरण कछु नाहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — निर्लेपित=निर्लिप्त, अनासक्त, उदासीन; निःसंग; निष्पाप। अगम=अगम्य; मन-बुद्धि के परे, अपार, अथाह। अगोचर=इन्द्रियों के ज्ञान से परे, अतीन्द्रिय। साईं=ब्रह्म, परमात्मा। बर्ण=रंग।

भावार्थ — ऋग्वेद कहता है ब्रह्म एवं परमात्मा निराकार, अनासक्त, मन-बुद्धि से परे तथा अतीन्द्रिय है ॥ ३ ॥ वह न कहीं आता है और न जाता है, न जन्मता है तथा न मरता है; उसके रूप, रंग भी कुछ नहीं हैं ॥ ४ ॥

सुषुप्ति रूप

अथर्वण कहै प्रपंचहि दीसै, सत्य पदारथ नाहीं ॥ ५ ॥
जो उठि जाय बहुरि न आवै, मरि मरि कहाँ समाहीं ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — प्रपंचहि=प्रपंच ही; विस्तार; जगत। दीसै=दिखाई देता है।

भावार्थ — अथर्ववेद कहता है यह जो संसार दिखाई देता है, वास्तविक वस्तु नहीं है ॥ ५ ॥ जो मर गया वह लौट कर नहीं जन्मता, मर-मर करके भी लोग कहाँ लीन होंगे ? इसलिये सब केवल भ्रम है ॥ ६ ॥

स्वप्नरूप

यजुर कहै सगुण परमेश्वर, दश औतार धराया ॥ ७ ॥
गोपिनके संग रहस रम्यो है, बहु प्रकारसे गाया ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — रहस=आमोद-प्रमोद, आनन्द। रम्यो=रमण किया, क्रीड़ा-विलास किया।

भावार्थ — यजुर्वेद कहता है परमेश्वर निर्गुण होने के साथ-साथ सगुण भी है, और उसने राम-कृष्णादि मुख्य दश (तथा गौण चौदह) अवतारों के रूप में प्रकट हुआ है ॥ ७ ॥ वही कृष्णावतार में गोपियों के साथ नाच-गान, आमोद-प्रमोद तथा क्रीड़ा-विलास किया है; इस प्रकार अनेक पुराण तथा भाषा के ग्रंथों में भी कथन किया है ॥ ८ ॥

जागृतिरूप

साम कहै यह ब्रह्म अखंडित, दुतिया और न कोई ॥ ९ ॥
आपै आप रमै परमेश्वर, सत्य पदारथ सोई ॥१०॥

शब्दार्थ — दुतिया = दूसरा; द्वैत ।

भावार्थ — सामवेद कहता है कि यह ब्रह्म अखण्ड मण्डलाकार सर्वत्र सब कुछ के रूप में व्याप्त है; उससे भिन्न द्वैत कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ वह परब्रह्म अपने आप में रम रहा है । वही सत्य पदार्थ है ॥ १० ॥

सत्यवेद का मसला

यह प्रमाण सबन मिलि कीन्हा, ज्यों अँधरेकी हाथी ॥ ११ ॥
आदि बापको मर्म न जाने, पूत होत नहिं साखी ॥ १२ ॥

शब्दार्थ — प्रमाण = सत्य । आदि = मूल । बाप = जीव, मनुष्य । पूत = ईश्वर, ब्रह्म । साखी = गवाह, साक्षी ।

भावार्थ — उपर्युक्त अपने-अपने मत को सब उसी प्रकार सत्य मान रखे हैं जैसे कई अंधे हाथी के एक-एक अंग टटोल कर उसी एक-एक अंग ही को हाथी मान लिये । जिसने कान टोया वह कहा हाथी सूप जैसा जिसने पैर टोया उसके ध्यान से हाथी खम्भा जैसा, पूँछ छूने वाले को लाठी तथा पेट छूने वाले को हाथी दीवार के रूप में समझ पड़ा ॥ ११ ॥ सबको कल्पना करने वाला, सब ज्ञान-विज्ञान का आदि मूल पिता मनुष्य जीव है, परन्तु भूले लोगों में यह रहस्य कोई नहीं जानता । और मनुष्य का मानस पुत्र रूप ईश्वर या ब्रह्म अपने अस्तित्त्व के विषयमें गवाही या साक्षी देने नहीं आता ॥ १२ ॥

विशेष — मनुष्य ही सर्वोच्च ज्ञान स्वरूप है । सारे वेद, शास्त्र, मत, पथ, ईश्वर, ब्रह्म उसी की कल्पना हैं । इसलिए मनुष्य सभी का बाप है; और ब्रह्म उसका मानसपुत्र है । परन्तु प्रायः मनुष्य उलट कर न तो ऐसा समझ पाता है और न तो जिसे सर्वोपरि ब्रह्म माना है वह आकर अपना प्रमाण ही देता है । इसलिये सब उसके विषय में झगड़ते हैं ।

अँधरेकी हाथी साँच है, साँचे हैं सगरे ॥ १३ ॥
हाथनकी टोई कहैं, आँखिन के अँधरे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ — सगरे = सब ।

भावार्थ — अंधों द्वारा वर्णित हाथी यद्यपि सत्य है; और कहने वाले भी सच्चे हैं ॥ १३ ॥ परन्तु वे सब अपने-अपने हाथों से टोये हुए एक-एक अंग का वर्णन करते हैं, सम्पूर्ण का वर्णन वे कर नहीं सकते; क्योंकि आँखों के अंधे हैं ॥ १४ ॥

विशेष —यहाँ ग्रंथकर्ताका यह भाव नहीं है कि जैसे हाथी का सम्पूर्ण अंग मिलाकर सत्य है, वैसे ब्रह्म के सगुण, निर्गुण आदि सभी अंग मिलाकर वह सत्य है। उनका भाव तो इतना ही है कि यह जड़-चेतनमय जगत सत्य है, परन्तु लोग विवेक सम्पन्न न होने से उसे यथार्थ रूप से नहीं समझ पाते। अपितु टटोल-टटोल करके अटकलपच्चू कल्पनायें करते हैं।

निर्णय मसला

शब्दातीत शब्दते पाइन, बूझै बिरला कोई ॥ १५ ॥
कहँ कबीर सतगुरु की सैना, आप मिटै तब वोई ॥ १६ ॥

शब्दार्थ — पाइन=पा गये। सैना=सैन, संकेत, इशारा। वोई=ब्रह्म।

भावार्थ — इस भ्रम को कोई बिरला पारखी परखेगा कि ब्रह्मवादीलोग शब्द से परे बतलाते हुए ब्रह्म को शब्द से कैसे पा गये ॥१५॥ ब्रह्मवादी गुरुओं का यह संकेत है कि जैसे बुन्द अपना अस्तित्त्व जब समुद्र में मिला देती है तब बुन्द न रहकर केवल समुद्र ही रह जाता है इसी प्रकार व्यक्ति जब अपना अस्तित्त्व समष्टि में खो देता है, तब बस वही ब्रह्म ही रह जाता है ॥ १६ ॥

विशेष — बुन्द-समुद्र दोनों अनेक परमाणुओं के ढेर, विकारी तथा परिवर्तनशील हैं इसलिए उनका परस्पर मिलकर एक होना और पुनः भाफ बनकर आकाश में उड़ जाना और पुनः बुन्द बनकर समुद्र में गिरना सम्भव है। परन्तु जीव अविनाशी, अखण्ड एवं शुद्ध चेतन होने से न किसी में मिलेगा और न उसका अस्तित्त्व मिट सकता है। जब वह प्रकृति का मोह छोड़कर स्वस्वरूप में स्थित हो जायगा तब निःसंग एवं निराधार रह जायगा। अतएव अपने चेतन स्वरूप से पृथक ब्रह्म की कल्पना करना महाभ्रम है और अपना अस्तित्त्व खो देने की कल्पना करना पागलपन एवं घोर नास्तिकता है।

साखी — ब्रह्मादिक सनकादि ले, मुनिवर आदि पर्यंत।
बिन गुरु मोह निशा शयन, सुख सपने न लहंत ॥ १० ॥

शब्दार्थ — पर्यन्त=तक। लहंत=प्राप्त होना।

भावार्थ — ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार से लेकर श्रेष्ठ मुनिगण तक जैसे महानपुरुष भी बिना यथार्थ सद्गुरु से बोध प्राप्त किये अज्ञान की रात्रि ही में सोते हैं; और स्वप्न में भी वास्तविक सुख नहीं पाते ॥ १० ॥

विशेष — यहाँ पर यथार्थ सद्गुरु की सर्वोपरिता बतलाई गयी है।

गुरुके गुण गावैं सभी, सत्य सही बिनु लक्ष।
मायाके उपदेश अज, हरि हर कालके भक्ष ॥ ११ ॥

शब्दार्थ — लच्छ = लक्ष्य, उद्देश्य, निशाना।

भावार्थ — यथार्थ सद्गुरु की प्रशंसा तो सब करते हैं, परन्तु वास्तविक उद्देश्य एवं निशाना स्थिर हुए बिना मायावी उपदेशों के प्रभाव में पड़कर ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव जैसे महापुरुष भी काल के कवल हो जाते हैं ॥ ११ ॥

कर्म धर्म मति तीनिले, अज हरि हर समुदाय।
गावहिं ध्यावहिं ताहि कहँ, जेहि सब जीव नशाय ॥ १२ ॥

शब्दार्थ — कर्म = प्रापंचिक कर्म। धर्म = भ्रमपूर्ण उपासना। मति = भ्रमपूर्ण ज्ञान।

भावार्थ — ब्रह्मा, विष्णु, महादेव पूरा जनसमूह ही प्रापंचिककर्म, भ्रमपूर्ण उपासना एवं भ्रमपूर्ण ज्ञान लेकर उसी कल्पित पुरुष के जप तथा ध्यान करते हैं, जिसमें पड़कर सब जीव अपने स्वरूप ज्ञान से पतित हो रहे हैं ॥ १२ ॥

कहनेको चूके नहीं, जेती जिसकी दौर।
सबै शब्द सहिदान हैं, परख शब्द सों ठौर ॥ १३ ॥

शब्दार्थ — चूके = चूकना, असावधान होना। दौर = धाक; प्रभाव; शक्ति। सहिदान = पहिचान, चिन्ह; लक्षण। ठौर = स्थिति।

भावार्थ — जिसकी जितनी शक्ति है कोई ज्ञानकथन में असावधान नहीं होना चाहता, अर्थात सभी लोग यथाशक्ति ज्ञान की बातें कहते हैं। सबकी वाणियाँ उनके सिद्धान्त एवं वस्तुवर्णन के लक्षण को बताती हैं, परन्तु विवेक करके देखिये तो पारख शब्द ही वास्तविक स्थिति का स्वरूप बतलाता है ॥ १३ ॥

षट शास्त्र षट मुनि कहैं, शाखा मूल सो वेद।
बहुत भाँति झगरन लगे, बिन गुरु पाये भेद ॥ १४ ॥

शब्दार्थ — षट = छह। शाखा = डगाली।

भावार्थ — कपिल, जैमिनि, कणाद, गौतम, पतंजलि तथा व्यास ये छह ऋषि जन क्रमशः सांख्य, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग और वेदांत छह शास्त्रों की रचनायें किए हैं। ये छह डगालियाँ चारों वेद रूपी जड़ से निकली हुई मानी जाती हैं। यथार्थ पारखी सद्गुरु से जड़ चेतन की वास्तविकता का भेद न जानने से इन छहों तथा इन जैसे अन्य अनेक विचारों को लेकर अनेक प्रकार से लोग झगड़ा करने लगते हैं ॥ १४ ॥

३—छह शास्त्रों के भिन्न विचार

सत्य निर्णय का झूलना—१

मिमांसा कहै सब कर्महीं है, वैशेषिक समय को ध्यावता है ॥१॥
न्यायवादी कर्तार ठानै, पातंजली योग बखानता है ॥२॥

सांख्यवादी नित्यानित्य कहै, वेदांती ब्रह्म अनुमानता है ।।३।।
कहहिं कबीर ये दुंद चहूँदिश मची, सो दुंद ही को सब गावता है ।।४।।

शब्दार्थ — ध्यावता है=ध्यान करता है, मानता है। कर्तार=ईश्वर। पातंजली=पतंजलि सम्बन्धी; योगदर्शन। दुंद=द्वन्द्व, झगड़ा।

भावार्थ -- मीमांसा शास्त्र कहता है कि सब प्रकार से कर्म ही सत्य है, और वैशेषिक शास्त्र समय को श्रेष्ठ मानता है ।।१।। न्याय दर्शन के मानने वाले ईश्वर को श्रेष्ठ निश्चय करते हैं, और पतंजलि का योगशास्त्र को सर्वोच्च सिद्ध करता है ।। २ ।। सांख्यवादी लोग नित्य पुरुष तथा अनित्य प्रकृति का विवेक करना सर्वोच्च समझते हैं, और वेदांती लोग सबकुछ ब्रह्म है यह अटकल लगाते हैं ।।३।। गुरु कबीर कहते हैं कि यह और इसी प्रकार अन्य अनेक मतवाद के झगड़े चारों ओर हो रहे हैं, और सभी लोग झगड़े की ही बात करते हैं ।। ४ ।।

विशेष -- मीमांसा का यह विचार है कि कर्म ही प्रधान है। अपने कर्मों से ही मनुष्य ऊँचा-नीचा होता है। अवतारादि कहलाने वाले राम-कृष्णादि भी अपने कर्मों का फल पाये हैं, इसलिए कर्म श्रेष्ठ हैं। वैशेषिकवादी कहते हैं समय प्रधान है क्या युवा समय का कर्म भी बालपन में होगा ? समय पाकर कर्म भी होते हैं। समय के परिवर्तन से बड़े-बड़े लोग भी दीन हो जाते हैं। इसलिए समय श्रेष्ठ है। अथवा वैशेषिक दर्शन कहता है कि 'अदृष्ट' ही प्रधान है। यह अदृष्ट जीव के पूर्व कर्म हैं।

न्यायवादी कहते हैं ईश्वर श्रेष्ठ है। कर्म, समय तथा अदृष्ट सब ईश्वर के अधिकार में हैं। योगदर्शन कहता है ईश्वर न जगत का रचयिता है और न कर्म-फलदाता। वह केवल मुक्त विशेष है। अर्थात वह कर्म (पाप-पुण्य), क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश), आशय (कर्मसंचित) तथा विपाक (प्रारब्ध भोग) इन चारों से मुक्त है। वह मुमुक्षुओं का आदर्शमात्र है। अतएव योगाभ्यास करके समाधि लाभ प्राप्त करो।

सांख्यवादी कहते हैं कि प्रकृति परिणामी होने से अनित्य है और पुरुष अर्थात चेतन अपरिणामी होने से नित्य है। इसका विवेक प्राप्त करो और प्रकृति को छोड़कर अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो जाओ; यह तो ठीक है, परन्तु सांख्यवादी चेतन पुरुष को सर्वत्रपूर्ण मानते हैं तथा अन्य भी अनेक भ्रांतियाँ इस मत में हैं। वेदान्ती कहते हैं जड़-चेतन अभिन्न एक ब्रह्म है। इसके अतिरिक्त एक ब्रह्मवाद में भी अनेक मत हैं।

इसप्रकार सत्य और शांति के पथ में नाना मत हैं। सभी में कुछ सत्यता तथा कुछ भ्रांतियाँ हैं। जिज्ञासु एवं मुमुक्षु को चाहिये कि वह किसी मत या शास्त्र का पक्षपाती न बने, प्रत्युत वह परखदृष्टि लेकर विवेक करे और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करे।

सभी शास्त्रकार ऋषिगण श्रद्धेय हैं तथा सभी शास्त्र आदर करने योग्य हैं। अब विचार यह है कि शास्त्रों एवं शास्त्रकार ऋषियों के विचारों में केवल भिन्नता ही नहीं, अपितु विरोध भी है। सांख्यदर्शन में अद्वैतब्रह्मवाद का खुलकर खण्डन है तथा ब्रह्म सूत्रों (वेदान्त) में सांख्यादि शास्त्रों का नाम लेकर खण्डन किया गया। ऐसी स्थिति में किसको माने और किसको न माने ? अतएव निष्पक्ष विचार का निर्वाह तभी हो सकता है कि जब हम सबके प्रति श्रद्धा रखते हुए भी किसी के अंधश्रद्धालु न बनें। सबके सारासार की परख करके सार को लें और असार को छोड़ें।

साखी — भरम जाल जो जगतके, ताके अंग अनेक।
एक एक अंग दृढ़ इष्टकै, गावहिं निज निज टेक ॥१५॥

शब्दार्थ — अंग = भाग। इष्ट = प्रिय, पूज्य। टेक = पक्ष।

भावार्थ — जो संसार में भ्रमबन्धन हैं, उनके अनेक भाग-विभाग हैं। भूल में पड़ा हुआ हर व्यक्ति भ्रम बंधन के किसी-न-किसी जाल को प्रिय या पूज्य मान रखा है और उसका पक्ष पकड़कर गुणानुवाद गाता है॥ १५॥

चिदाकाश महाशून्य जो, लोकवेद परवान।
मायाखानि तासु गुण, जीव विवश हैरान ॥१६॥

शब्दार्थ — चिदाकाश = चिद् + आकाश; चेतन आकाश; आकाशवत चेतन ब्रह्म।

भावार्थ — जिसकी प्रामाणिकता का कोलाहल लोक और वेद दोनों में है वह आकाश के समान माना हुआ चेतनब्रह्म महाशून्य ही है। और जिस जगत के बंधनों में बँधकर जीव पीड़ित हैं, उस मायिक संसार की उत्पत्ति करते रहना उसका स्वभाव है॥ १६॥

विशेष — लोक-वेद की धारा में बहने वाले बन्धु कहते हैं कि ब्रह्म आकाशवत है। इसका तात्पर्य आकाश जैसे शून्य है वैसे वह शून्य है। फिर शून्य की सेवा करने वालों को क्या मिल सकता है। फिर उसी शून्य ब्रह्म को दुःखपूर्ण जगत का कारण बतलाते हैं। जो दुःखका कारण हो वह कल्याण का कारण कैसे बन सकता है ?

त्रिगुण मत संसारके, परमारथ स्वारथ ज्ञान।
यथारथ बिन पारख नहीं, परखै मान अमान ॥१७॥

शब्दार्थ -- परमारथ = परमार्थ = उपासना मार्ग। स्वार्थ = कर्ममार्ग। ज्ञान = ज्ञानमार्ग। मान = जगत। अमान = ब्रह्म।

भावार्थ — संसार के तीन गुण वाले मत उपासना, कर्म एवं ज्ञान इनकी यथार्थ परख तब तक नहीं होती, जब तक पारख न प्राप्त हो। अतएव गुरुपारख द्वारा जगत और ब्रह्म की परख करे॥ १७

विशेष — अन्तःकरण शुद्ध करने वाले पवित्र कर्म, गुरु, संतों एवं स्वस्वरूप की उपासना तथा स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ये कर्म, उपासना एवं ज्ञान कल्याणप्रद हैं। परन्तु प्रपंच एवं अंधविश्वासपूर्ण कर्म, कल्पित उपासना एवं भ्रमपूर्ण ज्ञान बंधनप्रद हैं।

परमारथ पतिव्रत व्रत, स्वारथ निज संसार।
ज्ञान असि एकता जबै, चिदाकाश निर्धार ॥१८॥

शब्दार्थ — असि = है, तात्पर्य में जीव-ब्रह्म या जगत-ब्रह्म की एकता। निर्धार = निर्धारण; निश्चित।

भावार्थ — किसी कल्पित पुरुष (ईश्वर) को मानकर पतिव्रता के समान एक निष्ठा से उसकी उपासना करना यह परमार्थ है; अपने लोक-परलोक संसारी स्वार्थ के लिये यज्ञादि करना स्वार्थ या कर्ममार्ग है; और जीव, जगत, ब्रह्म सबकी एकता होकर आकाश के समान चेतन ब्रह्म है, यह निश्चय हुआ तब ज्ञान — ऐसी उनलोगों की मान्यता है ॥ १८ ॥

चिदाकाश युग पद मिलै, संधि न सूझै सोय।
परखावै संसार यह, जो गुरु पूरा होय ॥१९॥

शब्दार्थ — युग = दो। पद = शब्द। संधि = भेद, रहस्य, धोखा, दरार।

भावार्थ — तत् और त्वम्, वह और तू, ईश्वर और जीव तथा जगत और ब्रह्म—ये दो पद मिलकर आकाशवत शुद्ध चेतन ब्रह्म होता है--इसके भेद एवं दरार लोगों को नहीं दिखते। इस संसार के जाल को वही परीक्षा करायेगा जो पूर्ण पारखी सद्गुरु होगा ॥ १९ ॥

विशेष — जीव और ईश्वर तथा जगत और ब्रह्म कुछ भी हो जहाँ दो मिलेंगे वहाँ संधि एवं भेद तो रह ही जायगा। अपने चेतन स्वरूप से पृथक ब्रह्म, ईश्वर, जगत कुछ भी बनना संधि है, दरार एवं धोखा है। जहाँ किसी से मिलना नहीं, अपितु सबको छोड़कर शेष अपने आप शुद्ध चेतन पारखस्वरूप है वही शुद्ध अवस्था है। परन्तु इसका बोध कराने वाला वही होगा जो पूर्णसद्गुरु होगा। गुरु अनेक प्रकार के होते हैं। उसका विवरण आगे देखें।

४ — सात गुरुओं तथा आठवें सद्गुरु का वर्णन

चौपाई—१

पहिला गुरु है माता पिता। रक्त बिंदके जो हैं दाता ॥१॥
दूजे गुरु है मन की दाई। गर्भ माँहि जिन युक्ति बनाई ॥२॥

शब्दार्थ — रक्त = रज। बिंद = वीर्य। मन की दाई = मन लगाकर सेवा करने वाली दाई; अथवा नारी के शरीर का भेद जानने वाली दाई, नर्स, धाय।

भावार्थ — पहले गुरु माता-पिता हैं जो रज-वीर्य देकर बच्चे की शरीररचना की नींव डालते हैं ॥ १ ॥ दूसरा गुरु नारी के भेद को जानने वाली दाई है जो शिशु के जन्म होते समय माता के अंग को सम्हाल कर युक्ति पूर्वक बच्चे को पैदा करने में सहायता पहुँचाती है, तथा पैदा हो जाने पर बच्चे के अंगों को साफ करके उसे दूध पिलाती है ॥ २ ॥

तीजे गुरु जिन धरिया नाउँ । ले ले नाम पुकारत गाउँ ॥ ३ ॥
चौथे गुरु जिन विद्या दीन्हा । जगत प्रमाण रीति सो कीन्हा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — नाऊँ = नाम ।

भावार्थ — तीसरा गुरु वह है, जो बच्चे का नाम रखा; उसी नाम को लेकर गाँव, मोहल्ले, शहर तथा आस-पास वाले पुकारते हैं; और वही नाम मृत्युपश्चात भी कम-विशेष दिन लोगों के चलते हैं ॥३॥ चौथा गुरु वह है जिसने लोकविद्या सिखाई; और जगत के मान्यतानुसार रस्म, रवाज, रीति, नीति बर्तने का तरीका सिखाया ॥४॥

पंचयें गुरु जिन दीक्षा दीन्हा । राम कृष्ण को सुमिरण कीन्हा ॥ ५ ॥
छठयें गुरु जिन भ्रमगढ़ तोरा । सबसों तोरि एकसों जोरा ॥ ६ ॥
सतयें गुरु जिन सत्य लखाया । जहाँ को था तहाँ पहुँचाया ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — एक = ईश्वर ।

भावार्थ — पाँचवाँ गुरु वह है जिसने राम, कृष्ण, ॐ, शिव आदि के मंत्र कान में सुनाकर दीक्षा दी तथा राम-कृष्ण आदि के नामजप की राय दी ॥ ५ ॥ छठवाँ गुरु वह है जो अनेक कर्म, तीर्थ, व्रत, पूजा, हवन आदि के भ्रमकिला को तोड़कर और सबसे मनको छुड़ाकर एक ईश्वर में लगाने की राय दी ॥ ६ ॥ और सातवाँ गुरु वह है जो जगत को मिथ्या बतलाकर यह उपदेश दिया कि अपना स्वरूप ही ब्रह्म है, सत्य है । यह जीव ब्रह्म से ही निकला था और पुनः उसे ब्रह्म में ही मिल जाना चाहिये ॥ ६ ॥

साखी — येते गुरु जहानमें, चेला सब संसार ।
गुरु सदा सो वंदिये, जो संधि परखावनहार ॥ २० ॥

शब्दार्थ — संधि = भेद; कसर ।

भावार्थ — उपर्युक्त सात गुरु संसार में होते हैं और सभी मनुष्य उनके चेले हैं; परन्तु सदैव वही गुरु वन्दना करने योग्य है जो सबकी कसर परखाकर उससे जीव को मुक्त करता है ॥ २० ॥

संधि मिटावै जीवकी, काटै यमका फंद ।
साहेब दीनदयाल सो, संशय खंडै दुंद ॥ २१ ॥

शब्दार्थ — संधि = कसर; भूल । दुंद = द्वन्द्व, झगड़ा ।

भावार्थ — वह दीनों पर दया करने वाला सद्गुरु है जो जीव की भूल मिटाकर मन का बन्धन काट देता है तथा संदेह और दुविधा के झगड़े को दूर कर देता है॥२१॥

सात गुरु जो जगतमें, नष्ट सवनको ज्ञान।
धोखा ताप न जेहि रहै, सो परख प्रकाश गुरु जान॥ २२॥

शब्दार्थ — धोखा = छलावा, अज्ञान। ताप = मनकी पीड़ा, भ्रम।

भावार्थ — माता-पिता, दाई, नामकरण करने वाला, विद्यादाता, दीक्षादाता, ईश्वरोपदेशदाता तथा अद्वैत ब्रह्म का उपदेश देनेवाला—ये सात गुरु संसार में हैं;परन्तु इन सबका ज्ञान नाशवान भौतिक वस्तुओं तथा मनःकल्पित मान्यताओं तक है जो सब छूटने वाले, नश्वर एवं बंधनप्रद हैं। जिसके उपदेश पाकर शिष्य में धोखा भ्रम भूल तथा मनःसंदेह एवं शोक न रहे, वह गुरु पारखबोध का प्रकाश करने वाला सद्गुरु है॥ २२॥

निज स्वभाव ठहरै नहीं, नास्ति होय किमि सार।
सत्य शरण पारख विना, वहै धार अंधार॥ २३॥

शब्दार्थ — नास्ति = असत्य। सार = सत्य। अंधार = अधंकार।

भावार्थ — संसार की वस्तुयें अपने क्षणभंगुर स्वभाव से स्वयं स्थिर नहीं रह सकतीं। अथवा अपने स्वरूप से पृथक जो कुछ ईश्वर-ब्रह्म माना है, वह स्वभावतः सिद्ध नहीं होता। असत्य कैसे सत्य हो सकता है? परन्तु पारखी सद्गुरु तथा सत्य का आश्रय लिये विना मनुष्य घोर अधंकार की धारा में बहते हैं॥ २३॥

विशेष — यथार्थ सद्गुरु तथा यथार्थ ज्ञान के विना लोग भ्रममान्यता एवं विषयासक्ति की धारा में बहते हैं।

५—सत्संग तथा सच्चे सद्गुरु की खोज के लिये जोर

१—सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी–४४, ७५, २३

कबहुँ न भयउ संग औ साथा। ऐसेहि जन्म गमायउ आछा॥१॥
बहुरि न पैहौ ऐसो थाना। साधु संगति तुम नहिं पहिचाना॥२॥
अब तोर होइहैं नर्क महँ वासा। निशिदिन वसेउ लबारके पासा॥३॥

शब्दार्थ — थाना = स्थान; मानवशरीर। लबार = झूठा; गप्पी; मन-इन्द्रियाँ।

भावार्थ — हे मनुष्य! तू कभी विवेकी संतों का सत्संग नहीं किया; ऐसे उत्तम जन्म को व्यर्थ ही खो दिया। अथवा जिन प्राणी-पदार्थों को तू अपना मान रखा है, वे कभी तुम्हारे साथ चलनेवाले नहीं हैं;तू व्यर्थ ही इनके मोह में अपने मोक्षप्रद मानव-जीवन को खो रहा है॥ १॥ तू शीघ्र ऐसे मनुष्य चोला को नहीं पायेगा; फिर भी ऐसा सुनहला अवसर पाकर संतों के सत्संग में तू अपने आप को नहीं पहचाना है॥२॥

अब तुम्हारा पुनः गर्भवास व निम्नयोनियों में ही निवास होगा; क्योंकि तू रात-दिन झूठे लोगों एवं मन-वासनाओं के साथ में ही रहा है ॥ ३ ॥

साखी — जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार ।
चेतवा होय तो चेति ले, नहिं तो दिवस परतु है धार ॥२४॥

शब्दार्थ — धार = डाका ।

भावार्थ — सद्गुरु कबीर स्पष्ट कहते हैं कि मैं सबको भ्रम में जाते देखता हूँ । हे मनुष्य ! सावधान होना हो तो सावधान हो जाओ; अन्यथा मानवशरीर रूप दिन ही में डाकू मन-वासनायें डाका डालती हैं ॥ २४ ॥

२—रमैनी-७५

तेहि साहेब के लागहु साथा । दुइ दुख मेटि के होहु सनाथा ॥१॥
दशरथ कुल अवतरि नहिं आया । नहिं लंका के राव सताया ॥२॥
नहिं देवकी के गर्भहिं आया । नहीं यशोदा गोद खेलाया ॥३॥
पृथ्वी रवन-धवन नहिं करिया । पैठि पताल नहीं बलि छलिया ॥४॥
नहिं बलिराजा सो माँड़ल रारी । नहिं हरणाकुश बधल पछारी ॥५॥
वराह रूप धरणी नहिं धरिया । क्षत्री मारि निक्षत्री नहिं करिया ॥६॥
नहिं गोवर्धन कर गहि धरिया । नहिं ग्वालन संग बन बन फिरिया ॥७॥
गण्डुकी शालिग्राम नहिं कूला । मच्छ कच्छ होय नहिं जलडोला ॥८॥
द्वारावती शरीर नहिं छाड़ा । ले जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा ॥९॥
साखी — कहहिं कबीर पुकारि के, वै पन्थे मति भूल ।
जेहि राखेउ अनुमानके, सो थूल नहीं अस्थूल ॥ २५ ॥

शब्दार्थ — साहेब = स्वामी । दुइदुख = खानी-वाणी, जन्म-मरण । सनाथा = सनाथ, कृतार्थ । राव = राजा, रावण । रवन = रमण । धवन = दौड़-धूप । कूला = तट । मच्छ = मत्स्यावतार । कच्छ = कच्छपावतार । द्वारावती = द्वारिका ।

भावार्थ — ऐसे स्वामी की संगत में लगो, जो दृढ़ विवेकी, जगत-प्रपंच से विरक्त, खानी-वाणी जाल से मुक्त निर्मल संत हों, और खानी-वाणी की आसक्ति रूपी दोनों दुःखों को मिटाकर कृतार्थ (मुक्त) हो जाओ ॥ १ ॥ वह श्रेष्ठ साहेब, यथार्थ बोधकर्ता, उद्धारक, उपास्यदेव दशरथ के कुल में राम होकर अवतार नहीं लिया । न लंका के राजा रावण को ही सताया है ॥ २ ॥ न वह कृष्ण के रूप में देवकी के गर्भ में आया और न यशोदा ने उसे अपनी गोद में खेलाया है ॥ ३ ॥ उसने पृथ्वी से न रमण किया है और सेना साजकर एवं दौड़-धूपकर न उसने युद्ध किया है, न

वामन रूप धारण कर तथा पाताल में घुसकर राजा बलि को ही छला है ॥ ४ ॥ न रामचन्द्र बनकर राजा बालि से युद्ध ठाना और न नरसिंह बनकर हिरण्यकश्यपु को ही पछाड़ कर मारा ॥ ५ ॥ न शूकरावतार धारण करके पृथ्वी को उठाया और न परशुराम बनकर क्षत्रियों को इक्कीस बार मारकरके पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन ही किया ॥ ६ ॥ कृष्ण बनकर न गोबर्धन पर्वत को अपने हाथों से पकड़ कर धारण किया और न ग्वाल-ग्वालिनियों के साथ जंगलों में फिरा ॥ ६ ॥ न विष्णु बन कर शाप-वश गण्डकी१ नदी के तट में शालग्राम पत्थर ही हुआ, और न तो मत्स्यावतार तथा कच्छपावतार धारण करके जल में डोलता ही फिरा ॥ ८ ॥ न कृष्ण रूप धरकर द्वारिका में शरीर ही त्यागा और न लूला रूप से जगन्नाथ में अपना पिण्ड ही स्थापन करवाया ॥ ९ ॥

सद्‌गुरु कवीर साहेब स्पष्ट कहते हैं कि उपर्युक्त भ्रामक पन्थों में मत भूलो! जिसको तुमने अनुमान करके अपने ऊपर मान रखा है, वह जगतकर्ता-ईश्वर न स्थूल है न सूक्ष्म है (प्रत्युत तुम्हारे मन की कल्पना-भावनामात्र है) ॥ २५ ॥

विशेष — इस रमैनी का तात्पर्य यह है कि जिन उपास्यदेव की शरण में लगने से जीव का कल्याण होता है । वे उपास्यदेव श्रीराम, श्रीकृष्ण, नरसिंह, वराह,परशुराम, श्रीविष्णु आदि नहीं हैं । क्योंकि ये लोग प्रत्यक्ष ही विषय, मोह, युद्ध, हिंसा, छल-कपट करने वाले थे । ये लोग भी अपने कल्याणार्थ अपनी-अपनी सूझ-बूझ के अनुसार सन्त-गुरु की सेवा किये ।

ये लोग दुष्टों को मारकर, साधु-सज्जनों की रक्षा किये । राजनीति की दृष्टि से यह ठीक है । ये लोग प्रतापवान-धर्मवान राजा एवं बलवान धर्मरक्षक थे, न कि मोक्ष दाता सद्‌गुरु ।

ध्यान रहे ! मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी आदि हमारे पूर्वज हैं, हमारे भारतीयसंस्कृति की एक निधि हैं । अतएव आदर के साथ स्मरणीय हैं ।

हाँ ! कल्याण की प्राप्ति के लिये वैराग्यवान प्रत्यक्ष विवेकी सद्‌गुरु की शरण लेनी चाहिये । विवेकी साधु-गुरु के समान जीव का अन्य कोई उद्धारक नहीं ।

इस रमैनी के चौथी चौपाई में आया है 'पृथ्वी रवन' अर्थात उसने पृथ्वी से रमण नहीं किया । इसका अभिप्राय यह है कि देवीभागवत के नवम स्कन्ध में लिखा है कि वराह भगवान जब हिरणाक्ष्य को मार कर पृथ्वी को ऊपर लाये, तो उसे देखकर वराह

१-(गंडक) यह एक नदी का नाम है, यह हिमालय से निकलकर नेपाल में होती हुई और पथ में मिली हुई अनेक छोटी-छोटी नदियों को लेती हुई पटना के पास गंगा में मिल जाती है । इसमें काले रंग के पत्थर मिलते हैं वृन्दा के शाप से विष्णु ही ये काले पत्थर के रूप में हो गये हैं, ऐसी पौराणिकों की कल्पना है ।

का मन मोहित हो गया। अतः उन्होंने पृथ्वी के साथ एक दिव्य वर्ष तक विषय-विलास एवं रमण किया। फिर तभी पृथ्वी से मंगल नामक ग्रह जन्म लिया।

पृथ्वी मिट्टी का पिण्ड होने से उससे वराह का रमण नहीं बन सकता। अतएव यह गाथा यद्यपि महामिथ्या, मन-गढ़न्त है, तथापि उन्हीं के मतानुसार सद्गुरु कहते हैं कि भाई ! जो जीव-उद्धारक विवेकी हैं; वह इस प्रकार पृथ्वी आदि किसी के विषय-विलास में नहीं भूलता, वह तो विरक्त रहता है।

६– विषय वासनाओं का निरास

३–रमैनी–२३

अल्प सुख दुख आदिउ अन्ता। मन भुलान मैगर मै मन्ता ॥ १ ॥
सुख बिसराय मुक्ति कहाँ पावै। परिहरि साँच झूठ निज धावै ॥ २ ॥
अनल ज्योति डाहै एक संगा। नैन नेह जस जरै पतंगा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — मैगर = हाथी। मै (मय) = समान। मन्ता = उन्मत्त। सुख = स्वरूपस्थिति (जीवन्मुक्ति-) सुख। धावै = दौड़ते, ध्यान करते।

भावार्थ — विषय भोगों में थोड़ा सुख है और दुःख आदि से अन्त तक है। परन्तु उन विषय-भोगों में उन्मत्त हाथी के समान मन मस्त होकर भूला है ॥ १ ॥ स्वरूपस्थिति का (सन्तोष) सुख एवं जीवन्मुक्ति-सुख को छोड़कर कोई दुःखों से मोक्ष कैसे पायेगा ? लोग सत्य स्वरूप-सन्तोष-सुख को त्याग कर, झूठे देह-गेह-भोगादि को अपना सुख-साधन मानकर दौड़ते हैं या उन्हीं में ध्यान रखते हैं ॥ २ ॥ अग्नि की ज्योति में एक रूप होकर, नेत्र के रूप विषयक मोह में, जैसे पतंगे जल मरते हैं (वैसे मनुष्य स्त्री-पुत्र-धन आदि के मोह में जल मरते हैं) ॥ ३ ॥

करहु विचार जो सब दुख जाई। परिहरि झूठा केर सगाई ॥ ४ ॥
लालच लागी जन्म सिराई। जरा मरण नियरायल आई ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — सगाई = मोह-मिताई। जरा = वृद्धावस्था।

भावार्थ — जड़-चेतन का भिन्न विवेक करो, जिससे सब (जन्म-मरणादि के) दुःखों का नाश हो जाय। झूठे देह-गेह, धन-स्त्री-पुत्रादि एवं मनःप्रसूत कल्पनाओं का मोह छोड़ दो ॥ ४ ॥ इसी में लालच लगे-लगे तुम्हारा नर-जन्म बीता जाता है। वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ रही है ॥ ५ ॥

साखी — भरम का बाँधा ई जग, यहि विधि आवै जाय।
मानुष जनम पायके, नर काहे को जहँड़ाय ॥२६॥

शब्दार्थ — आवै जाय = जन्मै-मरै। जहँड़ाय = खराब कर रहा है।

भावार्थ — भ्रम में बँधे ये जगत के जीव इस प्रकार जन्म-मरण में आते-जाते रहते हैं। ऐ मनुष्यो ! उत्तम नर जन्म पाकर, तू क्यों उसको विषयों में खराब कर रहा है ? ॥ २६ ॥

७— ब्रह्मवाद निरास

साखी — साँचा शब्द कवीर का, प्रगट कहा जग माहिं ।
जैसेको तैसा कहै, सो तो निंदा नाहिं ॥२७॥

शब्दार्थ — प्रगट = प्रत्यक्ष ।

भावार्थ — सद्‌गुरु कवीर की निर्णय वाणी संसार में स्पष्ट कह दिया है । इसमें यदि किसी के मत का खण्डन हो रहा हो तो कोई दोष नहीं है । क्योंकि जो जैसा है उसको वैसा कहना निंदा नहीं कहलाती ॥ २७ ॥

मूढ़ सबै ज्ञानी भये, आपै ब्रह्म कहाय ।
ब्रह्मादि सनकादिलों, सुर नर मुनि समुदाय ॥२८॥

शब्दार्थ — सुर = देवता, सतोगुणी । नर = रजोगुणी । समुदाय = समूह ।

भावार्थ — ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार से लेकर सतोगुणी, रजोगुणी मनुष्य एवं मुनिगण—सब विमोहित अपने को ब्रह्म कहला कर ज्ञानी बने ॥ २८ ॥

ब्रह्म होय शीतल भये, शीतल तृप्तीरूप ।
अनल समानी ताहि जल, परे भरम तम कूप ॥२९॥

शब्दार्थ — अनल = अग्नि; जगत बनने का अहंकार ।

भावार्थ — ज्ञानी लोग अपने आपको ब्रह्म मानकर स्वयं को शीतल और संतुष्टरूप मान लिये । परन्तु उस ब्रह्मज्ञान रूपी शीतल जल में 'एकोऽहम् बहुस्याम्' रूप जगत बनने की अहंकाराग्नि समाई हुई है । अतएव वस्तुतः वे ब्रह्म बनकर भ्रम अँधियारी के कूयें में पड़ गये ॥ २९ ॥

निर्विकार माया परे, तेहि कहैं वेद पुरान ।
पुनि प्रपंच सब ताहि के, उदकहि आगि समान ॥३०॥

शब्दर्थ — उदकहि = उदक में, जल में ।

भावार्थ — उस ब्रह्मको वेद और पुराण विकारहीन एवं माया से सर्वथा परे बतलाते हैं । फिर कहते हैं कि उसी ब्रह्म से जगत प्रपंच उत्पन्न होता, अथवा वह ब्रह्म ही जगत है; इस दृष्टि से जल में ही आग समायी है, ब्रह्म में ही जगतविकार भरा है ॥ ३० ॥

विशेष — जब ब्रह्म ही में से जगत निकलता है अथवा ब्रह्म ही जगत है, तब ब्रह्म मुक्त रूप कहाँ है ?

जीव विवश व्याकुल फिरै, चाहे निज कल्यान।
कहै अकाम अनन्य होहु, विन पारख पिसिमान ॥३१॥

शब्दार्थ — अनन्य = एकनिष्ठ। पिसिमान = मन-मानन्दी में पीसा जाना।

भावार्थ — जीव भ्रम के वश और व्याकुल होकर भटकते हैं और उसी भ्रम में पड़कर अपना कल्याण चाहते हैं। ज्ञानी लोग मुमुक्षुओं से कहते हैं कि तुम संसार से निष्काम होकर ब्रह्म में एकनिष्ठ हो जाओ; परन्तु ब्रह्म और जगत जब एक है तब ब्रह्म को ग्रहण करके जगत का त्याग करना उसी प्रकार है, जैसे गुड़ खाना और गुलगुले से परहेज करना। वस्तुतः ऐसे लोग विवेकदृष्टि न होने से मन-मानन्दी में पीसे जा रहे हैं ॥ ३१ ॥

लखि न परै तेहि वशि परै, छिन छिन भ्रम मत देत।
अज्ञानी ज्ञानी करै, ज्ञानिहि करै अचेत ॥३२॥

शब्दार्थ — भ्रममत = भ्रांति विचार।

भावार्थ — लोगों को ब्रह्मवाद की कसर नहीं समझ पड़ती, इसलिये उसी के वश में पड़े हैं। ब्रह्मवाद उनको क्षण-क्षण अपना भ्रांत विचार देता है; और अज्ञानी देहाभिमानी को देह से भिन्न चेतन बतलाकर उन्हें ज्ञानी बनाता है; और ज्ञानी को यह बतला कर उन्हें बदहोश बनाता है कि शरीर और जगत तुमसे भिन्न नहीं है ॥ ३२ ॥

विशेष — वेदांत साधारण लोगों को यह उपदेश करता है कि तुम देह नहीं, शुद्ध चेतन हो; और ज्ञानकी उच्च स्थिति में पहुँचे हुए लोगों को यह बतलाता है कि देह से लेकर सारा विश्व तुम्हारा स्वरूप है। अतः

"अज्ञानी ज्ञानी करै। ज्ञानिहि करै अचेत"

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-२२८

पैठा है घट भीतरे, बैठा है साचेत।
जब जैसी गति चाहै, तब तैसी मति देत ॥३३॥

शब्दार्थ — घट = अंतःकरण। साचेत = सचेत, सावधान। गति = चाल, दशा, आचरण। मति = बुद्धि।

भावार्थ — मन शत्रु सबके हृदय में घुसा है, और सावधान होकर बैठा है। वह जब जिस प्रकार चाल चलाना चाहता है तब उसी प्रकार जीव की बुद्धि फेरकर उससे अपने अनुकूल कर्म करा लेता है ॥ ३३ ॥

विशेष — मन कोई जीवके ऊपर स्वतंत्र वस्तु नहीं है जो जीवको विवश करदे। वस्तुतः जीव विषयों का अध्यासी है। जिस विषयका अध्यास प्रबल है उसी में मनकी प्रबलता है। इसलिये मन को जीतना चाहिये।

स्वभाव जीव जीवै सही, यम संतत रस लेत।
ज्ञान रूप विलसै सोई, हंस दुसह दुख देत ॥३४॥

शब्दार्थ — जीवै = जीव ही, चेतना ही। सही = वस्तुतः। यम = मन। संतत = निरन्तर। विलसै = आनन्दमग्न हो, जीवन्मुक्ति सुख में रमण करे।

भावार्थ — वस्तुतः जीव का स्वभाव चेतना एवं ज्ञान ही है, यदि वह ज्ञानस्वरूप में ही स्थित हो तो जीवनपर्यंत जीवन्मुक्ति सुख में ही रमण करे। परन्तु जीव के असावधानी से मन सदैव विषय का ही रस लें रहा है और जीव को न सहने योग्य इच्छा, वासना एवं जन्मादि का दुःख दे रहा है ॥३४॥

महासंधि धोखा सोई, झाँई आपा ओट।
लहतहिं दुंदज ज्ञान भौ, पूरण संशय खोट ॥३५॥

शब्दार्थ — महासंधि = महान भूल। झाँई = धोखा; असावधानी। आपा = अपनास्वरूप; अपनी सत्ता। ओट = परदा। दुंदज = द्वन्द्व + ज; झगड़ा से उत्पन्न। खोट = नकली।

भावार्थ — चराचर व्यापक ब्रह्म रूपी झाँई एवं परिछाईं स्वरूपज्ञान पर परदा है और वह महानभूल एवं धोखा है। जड़-चेतन मिश्रित ब्रह्म को स्वीकार करते ही झगड़े के ज्ञान में जीव पड़ जाता है, जो संदेहपूर्ण एवं नकली है ॥३५॥

इच्छा कर्म स्थूल ले, प्रगटे जग समुदाय।
विविधि रूप बहु कष्टमय, रहा संतत जहँड़ाय ॥३६॥

शब्दार्थ— जहँड़ाय = ठगाय।

भावार्थ — स्थूलभोगों की इच्छा और उसके कर्म संस्कारों को लेकर संसार के प्राणीसमूह जन्म-मरण में घूमते हैं। महान कष्टमय अनेक देहों को धारण करके जीव अपने को मन-इन्द्रियों से निरन्तर ठगा रहाहै ॥३६॥

नाना मत उदवेगके, सब घट करैं कलोल।
जीव भरोसे चैनके, पचहिं सो डामाडोल ॥३७॥

शब्दार्थ — उदवेग = उलझन। कलोल = कल्लोल; क्रीड़ा। डामाडोल = संदेहपूर्ण।

भावार्थ — सभी मनुष्यों के अन्तःकरणों में नाना मतवादों की उलझनें क्रीड़ा करती हैं। हर व्यक्ति अपने साम्प्रदायिक मान्यताओं द्वारा मोक्ष की पक्की आशा रखता है; किन्तु उसकी ज्ञानदशा देखो तो वह संदेहपूर्ण बना दुखी होता एवं भटकता है ३७।

विषके माते जीयरा, विकल चहै दुख जाय।
बिन गुरु तापर औषधी, विषहर डसि डसि जाय ॥३८॥

शब्दार्थ — विष = विषय; कल्पना। विषहर = विषधर; सामान्य भाषामें धर का अर्थ हर हो जाता है।

भावार्थ — विषय और कल्पना रूपी विष से प्रभावित एवं उन्मत्त मनुष्य दुखी हैं। वे यह चाहते हैं कि हमारे दुःख सर्वथा दूर हो जायें। परन्तु बिना यथार्थ सद्गुरु के गलत उपदेश रूपी औषधि का सेवन करते हैं। फलतः विषधर मन एवं मन के रूप बने नर-नारी उन्हें बारम्बार कल्पना एवं विषय के डंक मारते रहते हैं ॥ ३८ ॥

अव्यक्त रूप सोई ज्ञान है, माया गुण विख्यात।
पंचकोश परपंच सब, महा कठिन यम घात ॥३९॥

शब्दार्थ — अव्यक्त = अप्रकट; अदृश्य; अज्ञेय; अज्ञात; अनिश्चित। परपंच = प्रपंच; विस्तार। घात = छल।

भावार्थ — ब्रह्मज्ञान का स्वरूप अनिश्चित है; क्योंकि यह संसार में प्रसिद्ध है कि ब्रह्म शुद्ध चेतन भी है और माया अर्थात जगत उसी का गुण एवं स्वभाव भी है। जब ब्रह्म से जगत पृथक नहीं है, तब पंचकोशों के विस्तार से मुक्त होनेकी बात करना उनके मन का एक भयंकर छलावा ही है अथवा पंचकोशों की सारी वाणियाँ मन का भ्रम ही है ॥ ३९ ॥

विशेष — पंचकोशों का विस्तार प्रथम प्रकरण 'पंचकोश' में देखें।

ब्रह्म जीव ईश्वर जगत, ई सब अनमिल सैन।
निरुवारै ठहरै नहीं, भासै झाँई बैन ॥४०॥

शब्दार्थ — सैन = संकेत; बात। झाँई बैन = भ्रम एवं धोखे की बातें।

भावार्थ — ब्रह्मवादियों द्वारा कथित सर्वत्र चराचर व्यापकब्रह्म, अविद्याविशिष्ठ एवं प्रतिबिंब स्वरूप जीव, मायोपाधि ईश्वर तथा रज्जु में सर्पवत ब्रह्म में मिथ्या प्रतीति रूप जगत– ये सब बे-मेल बातें हैं। निर्णय करने से ये बातें इस प्रकार नहीं ठहरतीं। ये तो मनुष्य के भ्रम एवं भास-अध्याससे निकली हुई धोखे की बातें हैं।४०॥

विशेष — जीवसे पृथक ब्रह्म-ईश्वरकी कल्पना केवल भ्रांतिपूर्ण ही है। रहा जीव वह अविद्याविशिष्ठ, प्रतिबिम्ब, अंश, भास आदि नहीं है। वह सत्य, अजर, अमर परम स्वरूप है। जगत अनादि तथा अनन्त और परिवर्तनशील होते हुए भी नित्य है। वह मिथ्या नहीं है।

आदि अंत ये कहत हौं, शिष्य मुख्य है अनुहार।
जेहि अनुरागे जीव जग, परख होय टकसार ॥४१॥

शब्दार्थ — आदि = जगत । अंत = ब्रह्म । अनुहार = भेद, प्रकार; आकृति; समानता; तात्पर्य में प्रकार । अनुरागे = विरह या मोह में पड़ने से । टकसार = सत्संग; बीजक ।

भावार्थ — जिनके मोहबंधन में जगत के जीव पड़े हैं, हे शिष्य ! मैं कहता हूँ उनके मुख्य दो प्रकार हैं, जगत और ब्रह्म । इनकी परख एवं छानबीन सत्संग तथा बीजक में होती है ॥ ४१ ॥

विशेष — ब्रह्मवादी लोग जगत को ब्रह्म से बारम्बार आदि अर्थात आरम्भ होना, सृष्ट होना माने हैं इसलिये 'जगत' को आदि कहा जाता है । और जगत का अंत एवं प्रलय होना ब्रह्म में मानते हैं इसलिए ब्रह्मको अंत कहा जाता है ।

जिन परखा संसार यह, तिनकहँ नहिं अंदेश ।
महाकठिन भ्रमजालके, अरुझनहार उपदेश ॥४२॥

शब्दार्थ — अंदेश = अंदेशा; चिंता; आशंका; हानि; दुबिधा; खतरा ।

भावार्थ — जिन्होंने जड़-चेतनमय संसार की वास्तविकता को भिन्न-भिन्न परख लिया है; उनको महान भयंकर धोखे के जाल में उलझाने वाले भ्रमोपदेशकों की चिंता, आशंका, हानि एवं खतरा नहीं है ॥ ४२ ॥

विशेष — पारखी पर किसी का गाँस-फाँस नहीं लगता ।

आदि अंत है जगतके, परखहु मान अमान ।
भटका है परिचय बिना, देश ज्ञान विज्ञान ॥४३॥

शब्दार्थ — आदि = आरम्भ । मान = 'मैं एक से अनेक बन जाऊँ' की मान्यता । अमान = जगत को अलग न मानकर उसे अपने में लय कर लेना । देश = क्षेत्र ।

भावार्थ — ब्रह्मवादियों के विचारानुसार जगत का आरम्भ ब्रह्म की इस मान्यता में है कि 'मैं एक से अनेक बन जाऊँ' और उसका अन्त ब्रह्म की इस अमान अवस्था में है कि ' जगत मुझसे पृथक नहीं है । इस प्रकार जड़-चेतन की वास्तविक परख न होने से ब्रह्मवादपरक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य भटक रहे हैं ॥ ४३ ॥

अधिष्ठाता जे ज्ञानके, महासंधि माकाश ।
सोई ब्रह्म विज्ञानमय, ज्ञान उपजै चिदाकाश ॥४४॥

शब्दार्थ — अधिष्ठाता = नियामक; अध्यक्ष; मुखिया । महासंधि = महान-भूल । माकांश = महाकाश, महत् आकाश, अनंत आकाश । चिदाकाश = चेतनाकाश आकाशवत चेतन ।

भावार्थ — जो ब्रह्मज्ञान के अध्यक्ष गुरुजन हैं वे कहते हैं कि ब्रह्म अनन्त आकाशवत व्यापक है । वही विज्ञानमय ब्रह्म है और उसी आकाशवत चेतन से सारे

ज्ञान उत्पन्न होते हैं; परन्तु परख करके देखा जाय तो उक्त मान्यता महान भूल है ॥ ४४ ॥

विशेष — जो लोग एक चेतन आकाशवत सर्वत्र व्यापक मानते हैं; उनको यह भ्रम है कि "यदि चेतन सर्वत्र व्यापक न हो तो इस अनन्त ब्रह्माण्ड का संचालन, इनमें हलचल, सृष्टि, स्थिति एवं विलय कैसे हो। व्यापक चेतन की प्रेरणा ही से जड़ प्रकृति में परिवर्तन होते हैं।" परन्तु जब वे यह समझ लेंगे कि प्रकृति में ऐसे स्वयं गुणधर्म हैं जिससे जगत के कार्य सम्पादित होते रहते हैं तथा होते रहेंगे; और असंख्य, परस्पर भिन्न चेतन अपने कर्म-संस्कारवश ज्ञानकला युक्त सृष्टि करते ही हैं; तब उनके व्यापक चेतन होने का भ्रम उड़ जायगा।

इच्छा तेहि अज्ञान कही, त्रिगुण जाल समुदाय।
अस विचार गावै तेही, मान अमान दृढ़ाय ॥४५॥

शब्दार्थ -- अज्ञान = अविद्या, माया। त्रिगुण = सत, रज, तम। जाल = बंधन, विस्तार।

भावार्थ — त्रिगुणात्मक विस्तार समूह जगत उस ब्रह्म की इच्छा से उत्पन्न हुआ है, उसी इच्छा को अविद्या व माया भी कहते हैं। ब्रह्मके 'एक मैं बहुत हो जाऊँ' की मान्यता से जगत निर्मित होता है तथा 'विविधतापूर्ण जगत मेरे में लीन हो जाय' इस अमान एवं विकल्प से जगत का अंत हो जाता है—इस प्रकार लोगों को निश्चय कराकर इसी विचार का वे सदैव कथन करते हैं ॥ ४५ ॥

अस्ति यह चिद आतमा, नास्ति सोई माकाश।
मिलतहिं धोखा संधिके, महाजाल भौ वास ॥४६॥

शब्दार्थ — अस्ति = है, सत। चिद = चिद्, चेतन। आतमा = आत्मा, स्वयं, अपने आप। नास्ति = असत्य। माकाश = महत् आकाश, अनन्त आकाशवत चेतन। संधि = भूल।

भावार्थ — ये पृथक-पृथक चेतन आत्मा यानी जीव सत्य एवं विवेक सिद्ध हैं; और वह चेतन असत्य है जो अनन्त आकाश के समान सर्वत्र व्यापक मान रखा है। इस व्यापकवाद के धोखा एवं भूल में प्रवेश करते ही मनुष्य महान मायाजाल में निवास करने लगता है। अर्थात विकट बंधन में फँस जाता है ॥ ४६ ॥

दुंदज सत्य असत्यके, जहाँ नहीं कछु लेश।
सो प्रकाश गुरु परख है, मेटत सकल कलेश ॥५४॥

शब्दार्थ —दुंदज = द्वन्द्वज, द्वन्द्व - ज, झगड़ा से उत्पन्न। लेश = किंचित।

भावार्थ — जहाँ पर सत्य और असत्य के झगड़े से उत्पन्न किंचिन्मात्र कष्ट नहीं है, वहाँ ही गुरुपारख का प्रकाश एवं यथार्थ ज्ञान होना समझिए। यह पारख-ज्ञान सारे कष्ट का अन्त करने वाला है ॥ ४७ ॥

विशेष — जहाँ सत्य और असत्य का संघर्ष नहीं है; अपितु असत्य का सर्वथा त्याग होकर सत्यस्वरूप में स्थिति हो गयी है; वहाँ किसी प्रकार के कष्ट रहने का प्रश्न ही नहीं हो सकता।

८—मनःकल्पना छोड़ कर स्वरूपज्ञान की ओर प्रेरणा

चौकड़ी—१

साहेब सो जो आवै न जाय। सदा सनातन नहिं विनशाय ॥१॥
स्वर्ग पताल नहीं दिग बोध। वारपार बुद्धि संधिक शोध ॥२॥

शब्दार्थ — साहेब = श्रेष्ठ, महान। सनातन = नित्य। दिग = दिशा। वार-पार = इधर से उधर तक; तात्पर्य में सर्वत्र व्याप्त। संधिक = संधि का; भूल का। शोध = खोज।

भावार्थ — महान वह है जो वर्तमान में संसार-शरीर की आसक्ति को दूर करके ऐसी अचल स्वरूपस्थिति को प्राप्त कर लेता है, जिससे उसे पुनः आना-जाना एवं जन्मना-मरना न पड़े। अपना चेतन स्वरूप तो सदा रहने वाला एवं नित्य है, वह कभी विनष्ट होने वाला नहीं है ॥१॥ ऊपर तथा नीचे या कल्पित स्वर्ग एवं पाताल एवं दिशाओं तथा किस दिशा में कौन लोक-लोकांतर है इन सबका ज्ञान करना-कराना और व्यापकबुद्धि से भूलजनित कल्पित वस्तुओं की खोज करना कल्याणार्थी का प्रयोजन नहीं है ॥ २ ॥

विशेष — कल्याणार्थी का प्रयोजन इसमें नहीं है कि वह भौतिक वस्तुओं के ज्ञान-विज्ञान के मोह तथा कल्पित लोक-लोकांतरों एवं ईश्वर-ब्रह्म की खोज में पड़ा रहे। उसे चाहिये कि वह दुःखपूर्ण जन्म-मृत्यु चक्कर से स्वयं मुक्त होने का पुरुषार्थ करे और दूसरे को उस मुक्ति की ओर प्रेरित करे।

परख प्रकाश स्वभाव असंध। बिनु तेहि जीव परे हैं बंध ॥३॥
हंसा अस्ति स्वभाविक ज्ञान। आपा ओट नास्ति पहिचान ॥४॥

शब्दार्थ — असंध = अखण्ड, स्वतंत्र। आपा = स्वरूपभाव, अहंभाव। ओट = परदा।

भावार्थ — चेतन जीव का स्वभाव परखप्रकाश एवं ज्ञान और अखण्ड है। इस प्रकार स्वरूपज्ञान के बिना जीव बंधनों में पड़े हैं ॥ ३ ॥ चेतन को स्वाभाविक सत्य स्वरूप समझो। परन्तु अपने स्वरूपज्ञान पर परदा होने से अथवा अहंभाव का आवरण होने से वह असत्य व्यापक स्वरूप में मिल रहा है, अतएव हे जिज्ञासुओ ! उसे परखो।४

धोखा नास्ति भया अभ्यास। हंसा उलटै सोहं वास ॥५॥
एकोहं वहुस्यामि उद्वेग। संधि एक सो भया अनेक ॥६॥

शब्दार्थ — अध्यास = भ्रम, मोह । हंसा = विवेकी । सोहं = सोऽहं; वह मैं हूँ, सारा विश्व मैं हूँ । संधि = भूल,दुर्बलता, कसर ।

भावार्थ — जीव को धोखाधड़ी एवं असत्य बातोंका ही मोह हो गया है । जड़-चेतन का भिन्नत्व करने वाला स्वाभाविक विवेकसंपन्न मानव उलट कर मैं चराचर ब्रह्म हूँ, मैं जगत हूँ इत्यादि भ्रमपूर्ण मान्यताओं में निवास करने लगा ।।५।। 'मैं अद्वैत ब्रह्म बहुत हो जाऊँ' की उलझनि एवं कसर से वह अपने को एकसे अनेक होना मान लिया ।। ६ ।।

चाहै चैन न सूझै संध । जतन सोई जो दोहरी बंध ।। ७ ।।
अधिष्ठाता सोई संधि निवास । ज्ञान अज्ञान उद्वेग विलास ।। ८ ।।

शब्दार्थ — चैन = शांति । संध = संधि, कसर, भूल । अधिष्ठाता = अध्यक्ष, ब्रह्म । ज्ञान = ईश्वर । अज्ञान = जीव । उद्वेग = क्षोभ,घबराहट । विलास = क्रीड़ा ।

भावार्थ — लोग चाहते तो शांति हैं, परन्तु उन्हें अपनी कसर नहीं समझ पड़ती । वे मुक्तिके लिये वही उद्योग करते हैं जो उलट करके दोहरा बंधन हो जाय।७। जिसके क्षोभ एवं इच्छा से जीव और ईश्वर की सृष्टिक्रीड़ा होना मानते हैं, उस अधिष्ठान ब्रह्म की मान्यता ही मुख्य भूल में निवास करना है ।। ८ ।।

कर्म स्थूल भया परचंड । नाना पिंड खंड ब्रह्मंड ।। ९ ।।
ब्रह्मंड समष्टि ईश परवान । देह अभिमानी व्यष्टि बखान ।।१०।।

शब्दार्थ — परचंड = प्रचण्ड, तीव्र । पिंड = शरीर । खंड = भौतिक वस्तुओं के टुकड़े । ब्रह्मंड = ब्रह्माण्ड, विश्व । समष्टि = सामूहिकता, समवेत सत्ता, संयुक्त, मिला हुआ । व्यष्टि = समष्टि का एक स्वतन्त्र अंश, पृथकत्व ।

भावार्थ — कहते हैं ब्रह्म से जगत निर्मित होते समय तीव्र रूप से स्थूलक्रियायें होने लगीं, और ब्रह्माण्ड तथा उनमें नाना प्राणियों के शरीर और भौतिक वस्तुओं के टुकड़े निर्मित हुए ।। ९ ।। अनन्त ब्रह्मांडों की जो समवेत एवं संयुक्त सत्ता है वही प्रामाणिक ईश्वर है; और देहाभिमानी आत्मा व्यष्टि एवं इकाई है ।। १० ।।

ईश्वर अंश दुहुँ मिटे मिटाय । अधिष्ठाता माकाश रहाय ।।११।।
सोहं उलटै हंसा होय । पावै पारख पारखि सोय ।।१२।।

शब्दार्थ — अंश = जीव । मिटे = मिटे हुए, असत्य । अधिष्ठाता = तात्पर्य में अधिष्ठान, सबका आधार । माकाश = महद एवं अनंत आकाश । सोहं = सोऽहं, वह चराचर व्यापक मैं हूँ ।

भावार्थ — (उनका कहना है कि) ईश्वर और जीव दोनों के स्वरूप असत्य हैं, अतः उन्हें लय करके मिटा दो; फिर महदाकाश एवं अनन्त आकाश रूप चराचर व्यापक अधिष्ठान ब्रह्म शेष रह जायगा ।। ११ ।। (सद्गुरु कहते हैं कि) जब 'मैं चरा-

चर व्यापक हूँ' का भाव पलटकर 'मैं चराचर का द्रष्टा, व्याप्य-व्यापक, कारण-कार्य, अंश-अंशी सबसे पृथक हूँ' यह भाव आता है तब मनुष्य हंस एवं विवेकी होता है। इस प्रकार जब व्यक्ति सार-असार की परख पा जाता है तब वही पारखी है ॥१२॥

विशेष — ब्रह्मवाद की दृष्टि से आकाशवत एक ब्रह्म व्यापक है। ब्रह्म में जगत बनने की इच्छा से जगत निर्माण होता है। ब्रह्म तो सर्वत्र है, परन्तु माया उसके एक अंश में है। ये विस्तृत असंख्य ब्रह्माण्ड मायामय हैं। ब्रह्म का जितना हिस्सा माया से घिरा है उतना हिस्सा शुद्ध ब्रह्म न कहलाकर मायासबलित ब्रह्म, कार्यब्रह्म, ईश्वर, मायोपाधि चेतन आदि नामों से जाना जाता है; और जितना अंश अविद्या एवं अंतःकरण से घिरा है उतना जीव कहलाता है। इस प्रकार शुद्ध ब्रह्म के ईश्वर और जीव दोनों अंश हैं। और दोनों मायोपाधि तथा अविद्योपाधि होने से असत्य हैं। अतएव माया और अविद्या के हट जाने पर ईश्वर और जीव की पृथक सत्ता समाप्त हो जाती है और एक ब्रह्म शेष रह जाता है।

महद् एवं अनंत आकाश सर्वत्र परिपूर्ण है जितना आकाश मठ (मकान) में घिरा है वह मठाकाश है और जितना आकाश घट में घिरा है वह घटाकाश है। मठ और घट को दूर कर देने पर एक महादाकाश एवं अनन्त आकाश है। इसी प्रकार माया और अविद्या को हटा देने पर एक ब्रह्म रह जाता है।

अब उपर्युक्त ब्रह्मवाद की परख कीजिये। एक व्यापक ब्रह्म के होने में शब्दप्रमाण को छोड़कर न कोई सत्य प्रमाण है और न युक्ति। इस बात की चर्चा पहले की गयी है कि ब्रह्माण्ड की व्यवस्थित क्रियाओं को देखकर लोगों को उन सबमें एक ब्रह्म के व्यापक होने का भ्रम होता है कि उसी के सर्वत्र रहने से जड़ब्रह्माण्ड में क्रियायें हो रही हैं। परन्तु इस विचार में कोई सार नहीं है : क्योंकि जड़ तत्त्वों एवं ब्रह्माण्डों में स्वाभाविक गुण, धर्म, क्रियायें एवं शक्तियाँ हैं जिससे वे स्वाभाविक एवं व्यवस्थित चलते रहते हैं।

व्यापक चेतन एवं ब्रह्म में माया तथा अविद्या दो उपाधियाँ हैं जिससे ईश्वर और जीव का भिन्नत्व प्रतीत होता है। इन दोनों के हट जाने पर ईश्वर तथा जीव मिटकर ब्रह्म रह जायगा। परन्तु विचार यह है कि माया को कोई मिटा ही नहीं सकता। क्या ये असंख्य ब्रह्माण्डों को कोई ब्रह्मसे अलग लेजाकर रख आयेगा ? वह कौन-सा स्थान होगा जहाँ ब्रह्म नहीं है ? इस माया एवं जगत को मिथ्या नहीं कह सकते; क्योंकि यह प्रत्यक्ष है। पारखसिद्धान्त की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि चेतन में जड़ न होने से तथा चेतन से जड़की सर्वथा पृथक सत्ता होने से चेतन में जड़ एवं जगत मिथ्या है। अर्थात अपने चेतन स्वरूप में जगत नहीं है। परन्तु वह अपने स्थान पर अनादि एवं नित्य है।

ब्रह्मवाद में तो यह भी नहीं कह सकते कि जड़ जगत ब्रह्मसे पृथक है; क्योंकि

ऐसा मानने से द्वैत सिद्ध हो जायगा। और ब्रह्मवादी को द्वैत खतरनाक है। अतएव अद्वैतब्रह्मवाद की दृष्टि से माया, जगत या प्रपंच ब्रह्म से कभी पृथक नहीं हो सकते; प्रत्युत जैसे जल और उसके तरंग, पृथ्वी और उससे बने बर्तन तत्त्वतः एक हैं, वैसे ब्रह्म तथा जगत तत्त्वतः एक हैं।

अविद्या एवं अन्तःकरण से घिरे हुए ब्रह्मांश अज्ञानी जीव हैं। इस दृष्टि से अन्तःकरण जहाँ-जहाँ खिसकता जाता होगा वहाँ-वहाँ का ब्रह्म भी अज्ञानी होता जाता होगा। कोई व्यक्ति पुरुषार्थ करके अपने अविद्याअन्तःकरण को भले मिटा दे; परन्तु ये असंख्य अन्तःकरणों के बने रहने से ब्रह्म कभी मुक्त नहीं हो सकता।

जब ब्रह्महो अविद्या, माया आदि यावत प्रपंचों का अधिष्ठान है, तब वह अपने अधिष्ठेय से कैसे मुक्त हो सकता है? क्या समुद्र अपने तरंगों को अपने से पृथक कर सकता है? इसीप्रकार क्या ब्रह्म इस नानात्व जगत को अपने से पृथक कर सकता है? अतएव अद्वैत ब्रह्मवाद में जगत रोग असाध्य है। वह ब्रह्म में नित्य रहेगा। इसीलिए ब्रह्म और जगत दोनों के अध्यासों को छोड़कर अपने शुद्धस्वरूप चेतन में स्थित होना चाहिये।

सो दयाल साहेब गुरुदेव। भक्षक भोंदू सोहं भेव ॥१३॥
पावै परख झाँई मिटि जाय। नास्ति ज्ञान नहिं ताहि समाय ॥१४॥

शब्दार्थ — भक्षक = खाने वाले; तात्पर्य में भ्रमाने वाले। भोंदू = भोलाभाला। भेव = भेद, रहस्य। झाँई = धोखा।

भावार्थ — ब्रह्म-जगत के अध्यासों को छोड़कर स्वरूप में स्थित होने वाला पुरुष ही दूसरे का उद्धारक दयालु है, श्रेष्ठ है तथा यथार्थ सद्गुरु है। और 'मैं वह सर्वत्रव्यापक जड़-चेतन-अभिन्न ब्रह्म हूँ' का रहस्य भोलेभाले लोगों को भ्रम में डालने वाला है॥१३॥ जिसको सत्य और असत्य की परख हो जाती है उसके मन से ब्रह्मवाद आदिका समस्त धोखा मिट जाता है फिर उसके मनमें असत्य एवं भ्रांतिजन्य ज्ञान नहीं प्रवेश करते ॥ १४ ॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी—५७

साखी — साहेब पारस रूप है, लोह रूप संसार।
पारस सो पारस भया, परख भया टकसार ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ — साहेब = जीवन्मुक्त पारखी संत। पारस = वह पत्थर जिसमें लोहे के छू जाने से उसका सोना बन जाना माना जाता है। टकसार = टकसाल = सिक्के ढलने का स्थान, तात्पर्य में सत्संग व बीजक ग्रंथ।

भावार्थ — जीवन्मुक्त संत पुरुष पारस के समान हैं और संसार के लोग लोह के समान हैं। दृष्टांत में पारसपत्थर लोहे को केवल सोना बनाता है; परन्तु यहाँ तो

'पारस सो पारस भया' अर्थात संत या सद्गुरु जिज्ञासु रूप में आये संसार के मनुष्यों को भी संत या सद्गुरु के रूप में बना देते हैं। वास्तविकता की परख सत्संग एवं बीजक में होती है ॥ ४८ ॥

विशेष — उक्त साखी में 'साहेब पारस रूप है,' और पारस रूपी जीव है'— इतना पाठान्तर है।

गुरु प्रकाश निज ओटते, झाँईं सदा झहराय।
अंतर दुबिधा संधि सो, बिन पारख बिलटाय ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ — ओट=पर्दा, आवरण; अज्ञान। झाँईं=धोखा, भ्रम। झहराय=कमजोर होकर गिर पड़ना। बिलटाय=उलटा होकर गिर जाना।

भावार्थ — अपने स्वरूपज्ञान के आवरण से निर्मित धोखा, गुरुज्ञान के प्रकाश से सदा के लिये निर्बल होकर गिर जाता है। परन्तु यदि मनुष्य के हृदय में संदेह और भूल है तो वह विवेक के न रहने के कारण स्वयं उलट कर पतन के गड्ढे में चला जाता है ॥ ४९ ॥

चिद्वशिष्ट नित्य सत्य है, चितवत धोखा ओर।
अमिक भये माकाशमें, सो स्वभाव कहै मोर ॥ ५० ॥

शब्दार्थ — चिद्वशिष्ट=चिद्+अवशिष्ट; चिद्=चेतन, अवशिष्ट=बचा हुआ; शेष। माकाश=महद् आकाशवत चेतन।

भावार्थ — समस्त भाव एवं क्रिया को छोड़ देने के पश्चात बचा हुआ चेतन नित्य और सत्य है; परन्तु वह भूलवश मिथ्या मान्यता की ओर दृष्टि जमा रखा है। लोग अनन्त आकाशवत चेतन को मानकर भ्रम में पड़े हैं और कहते हैं कि मैं वही व्यापक स्वभाव वाला चेतन हूँ ॥ ५० ॥

बहु इच्छा उद्वेग तेही, सोई शक्ति परवान।
तीनि सुवन तेहि अंगमें, नाम रूप गुण जान ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ — तेहि=ब्रह्म। शक्ति=माया। परवान=प्रमाण। सुवन=पुत्र।

भावार्थ — (ब्रह्मवादानुसार) ब्रह्म में जगत बनने की बहुत इच्छा तथा उद्वेग उत्पन्न हुए; वही वेदान्त प्रमाण से मुख्य माया है। उस माया के अंग से तीन पुत्र उत्पन्न हुए नाम, रूप और गुण ॥ ५१ ॥

विशेष — संसार की हर वस्तु में नाम, रूप और गुण हैं। जैसे शक्कर को ले लो। 'शक्कर' नाम है,उसका रवादार और उजलापन रूप है तथा मिठास गुण है। इसी प्रकार हर वस्तु में समझ लें।

नाम रूप गुणमय जगत, धरिया विविध स्वरूप।
छितराने जहाँ तहाँ सोई, सत्रै दास वै भूप ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ — सोई = ब्रह्म। वै = माया।

भावार्थ — उपर्युक्त विवरण-अनुसार संसार के समस्त पदार्थ नाम, रूप और गुणमय हैं। और वह ब्रह्म ही यत्र-तत्र बिखर कर जड़-चेतन के अनेकों स्वरूप धारण कर लिया है। इस प्रकार ब्रह्म बहुत रूपों वाला होकर गुलाम बना और माया उसके ऊपर अधिष्ठान बन बैठी ॥ ५२ ॥

अहंकार मद राजबल, बहुत कलेश अपार।
सत्रै भुलावा अंश कही, शून्य होय तदाकार ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ — तदाकार = उसके आकार का; तन्मय।

भावार्थ — साम्प्रदायिक राज्यशक्ति के अहंकार तथा मद में पड़ने से लाभ तो कुछ नहीं, अनन्त कष्ट है। प्रायः सभी सम्प्रदायवादी जीव को 'तू अंश है' कहकर उसे भुलावा में डाल रहे हैं; और अपने कल्पित अंशी शून्य ब्रह्ममें तन्मय होने को उपदेश कर रहे हैं ॥ ५३ ॥

विशेष — किसी मत का यदि अधिक प्रचार हो गया हो तो उसका जोश लेकर अभिमान नहीं करना चाहिये; अपितु विनम्र बनकर सबको सारासार निर्णय करने की छूट देनी चाहिये।

जीव किसी का अंश है यह मानना और कहना महाभूल है। जीव अविनाशी तथा स्वतः है। उसे चाहिये सभी वासनाओं को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित हो न कि शून्य में ध्यान लगाये।

इन्हमें जो गुरु परख लही, मेटेउ झाँईं त्रास।
पारख में सो स्वभाव सुख, अचल अशंक विलास ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ — त्रास = दुःख। विलास = रमण।

भावार्थ — इन मनुष्यों में जिन्होंने यथार्थ सद्गुरु से पारखबोध की प्राप्ति की है, वे भ्रांति से उत्पन्न हुए दुःखों को नष्ट कर दिये। वे अपनी पारखस्थिति के निश्चल, निःशंक और स्वाभाविक जीवन्मुक्ति सुख में रमण करते हैं ॥ ५४ ॥

जाहि दया गुरु परख लहि, मेटैं सब भवजाल।
रक्षक वंदीछोर सो, साहेब दीन दयाल ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ — वंदीछोर = बंधन छुड़ाने वाले।

भावार्थ — जिनकी कृपा से श्रेष्ठ पारख पद की प्राप्ति होती है, और संसार के सारे बन्धन कटते हैं; वे जिज्ञासु के रक्षक, बन्धन छुड़ाने वाले, स्वामी, दीनदयाल सद्गुरु हैं ॥ ५५ ॥

आपु दुखी परजा दुखी, भक्षक भोंदू काल ।
नष्ट सनेही भ्रष्ट है, कष्ट सबै भवजाल ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ -- आपु = अनेक मतवाद के गुरुजन । परजा = शिष्य । काल = अज्ञान, कल्पना, मन ।

भावार्थ — अनेक मत के गुरुजन अबोधवश स्वयं दुखी हैं और उनके शिष्य भी दुखी हैं; क्योंकि अज्ञानकाल भोलेभालों को निगल रहा है । जो असत्य का प्रेमी है निश्चित ही पतित हो जाता है । भवबंधन सभी कष्टदायी हैं चाहे मोटी माया के हों या झीनी माया के ॥ ५६ ॥

चाहै सुख भवजालमें, सूझै नहिं निज भूल ।
विविध फंद फरफंद रचि, रहा जाल मद फूल ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ — फंद = बंधन । फरफंद = छलकपट; फरेब; दाँवपेच, नखरा ।

भावार्थ — संसार के बंधनों में पड़ा-पड़ा जीव सुख चाहता है उसे अपना अज्ञान अपनी परख में नहीं आता । अनेक बंधन, छल-कपट एवं नखरा बनाकर उसी भवजाल के ही अहंकार में फूला-फूला फिरता है ॥ ५७ ॥

परख समाधि लहै बिना, धोखेहि रहै समाय ।
कर्म धर्म मति तीनि ले, भोंदू रखें भुलाय ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ — कर्म = कर्ममार्ग । धर्म = उपासनामार्ग । मति = ज्ञानमार्ग ।

भावार्थ — परखसमाधि की प्राप्ति हुए बिना सब मनुष्य झूठी बातों में आसक्त हो रहे हैं । कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीन मार्गों को बिगड़ा हुआ रूप देकर भोले-भाले जीवों को लोग उन्हीं के भूलभुलैया में डाल रखे हैं ॥ ५८ ॥

विशेष — परख-परख करके सब वासनाओं को छोड़ देना और अपने आप शांत रहना—यही परख या पारखसमाधि है ।

धर्म समाधि तत् है, कर्म समाधि त्वं ।
सहज समाधि असि लहै, तत्त्वमसि तिहु अंग ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ — धर्म = उपासना । तत = वह; ईश्वर; ब्रह्म । कर्म = कर्म । त्वं = तू; जीव । सहज = ज्ञान । असि = है; ब्रह्म ।

भावार्थ — ईश्वर में उपासना करके समाधि में लीन होना 'तत्' पद की स्थिति है; यज्ञादि कर्म करते-करते उनमें तन्मय हो जाना 'त्वं' पद की स्थिति है और सर्वत्र ब्रह्म समझकर ज्ञानसमाधि में लीन होना असि की स्थिति है । इस प्रकार उपासना, कर्म तथा ज्ञान तीनों की पूर्णता से तत्त्वमसि की सिद्धि है ॥ ५९ ॥

विशेष — वेदान्त के मान्यतानुसार 'तत्' पद अर्थात ईश्वर को मानने का व्याव-

हारिकपक्ष है उसकी उपासना करना; 'त्वं' पद अर्थात जीव को मानने का व्यावहारिकपक्ष है कर्म करना तथा दोनों की एकता 'असि' अर्थात जीव ही ईश्वर है इस मान्यता का व्यावहारिकपक्ष है ज्ञान में निष्ठ हो जाना। उनका ज्ञान है जड़-चेतन की एकता।

पारखसिद्धांत में जीवदयादि पवित्र कर्तव्य वही कर्म, गुरु-संतों के प्रति श्रद्धा वही उपासना तथा स्वरूप में निष्ठा वही ज्ञान है।

शब्द ब्रह्म अज जानिये, सगुण ब्रह्म हरि होय।
हर सों शून्य समाधि है, नाम रूप गुण सोय॥ ६०॥

शब्दार्थ — शब्द ब्रह्म = वेद; ॐ। अज = ब्रह्मा।

भावार्थ — ॐ की उपासनापूर्वक वेदों के द्वारा कर्मकाण्ड करना-कराना ब्रह्मा का सिद्धान्त है, सगुण-साकार रूप धारणकरके उपासना करना-कराना विष्णु का सिद्धान्त है और निर्गुण ब्रह्मज्ञान की कल्पना करके उसमें शून्यसमाधि लगाना या उसी का उपदेश करना महादेव का सिद्धांत है। परन्तु ये तीनों मान्यतायें जीवों की कल्पित होने से नाम, रूप और गुणमय हैं; अर्थात स्वस्वरूप से भिन्न भास-अध्यास हैं॥६०॥

नाम रूप गुण लीन होय, महाकाल ज्यों त्यों लहे।
बिनु पारख छूटैं नहीं, उदय अस्त धोखे रहे॥ ६१॥

शब्दार्थ — महाकाल = ब्रह्म का प्रलयंकारी रूप। ज्यों त्यों = जैसे तैसे; किसी तरह। उदय = प्राकट्य। अस्त = लीन।

भावार्थ — ब्रह्मवादी लोग जिस किसी तरह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह नाम, रूप तथा गुणमय जगत ब्रह्म के प्रलयंकारी अवस्था में लीन हो जाता है। इस प्रकार वास्तविकता की परख हुए विना वे कल्पित ब्रह्म से जगत का प्राकट्य तथा उसी में उसके लीन होने के धोखे में ही रहते हैं॥ ६१॥

४—सारशब्द टकसार : बीजक, रमैनी २८

वज्रहुँते तृण खिनमें होई। तृणते वज्र करै पुनि सोई॥१॥
निझरू नीरु जानि परिहरिया। कर्मका बाँधा लालच करिया॥२॥

शब्दार्थ — खिन = क्षण। निझरू = निर्झर, प्रपात, झरना, बहता हुआ। नीरु = पानी, पानी के समान गतिशील चंचल जगत। परिहरिया = त्याग किया।

भावार्थ — (ईश्वरवादी कहते हैं–) "उस ईश्वर की कृपा से क्षण ही में वज्र से तृण हो जाता है और पुनः वही तृण से वज्र भी कर देता है॥ १॥" यह सुनकर मनःप्रसूत ईश्वर की प्राप्ति के लिये झरना या पानी के समान बहने वाले चंचल जगत भोगों का मनुष्य त्याग किया, और कर्म-प्रपंचों में बँधा, कल्पित स्वर्गादि की लालच करने लगा॥ २॥

विशेष — चंचल जगत-भोगों का त्याग किया यह तो अच्छा है; परन्तु मत-वादियों की रोचक वाणियों में पड़कर ईश्वर-स्वर्ग एवं सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्य मुक्ति के लालच-लोभ में जीव पड़ा और नाना कर्म करने लगा; और जो इससे आगे बढ़े, उनकी दशा और अधिक बिगड़ गयी, आगे देखिये—

कर्म धर्म मति बुधि परिहरिया । झूठा नाम साँच ले धरिया ॥३॥
रजगति त्रिविध कीन्ह परकाशा । कर्म धर्म बुधि केर विनाशा ॥४॥

शब्दार्थ — मति = मन की वह शक्ति जिससे भविष्य के विषय में निर्णय किया जाय । बुधि = बुद्धि, मन की वह शक्ति जिससे वर्तमान के विषय में निर्णय किया जाय । रजगति = रज्जूसर्प न्याय । त्रिविधि = तीन प्रकार, अस्ति-भाति-प्रिय ।

भावार्थ — जड़-चेतन सब कुछ ब्रह्म ही है ऐसा मानकर अद्वैतवादी जन शुभा-शुभ कर्मों में विधि-निषेध, धर्म-अधर्म एवं जड़-चेतन की निर्णयवती विवेक-बुद्धि का परित्याग कर दिये । जो ब्रह्म झूठा है, केवल नाम-ही-नाम है, उसको सत्य मानकर धारण कर लिये ॥ ३ ॥ ब्रह्मवादियों ने रस्सी में सर्प की भ्रांति सदृश ब्रह्म में जगत को प्रतिभास मात्र मिथ्या बतला कर पुनः तीन प्रकार (अस्ति-भाति-प्रिय) के उपदेश का प्रकाश करके मानो कर्म-धर्म और बुद्धि का विनाश ही कर दिया ॥ ४ ॥

विशेष — अस्ति (सत्) भाति (चिद्) प्रिय (आनन्द) अर्थात सत्-चिद्-आनन्द संसार के हर पदार्थों का स्वरूप है । यह 'घट' प्रिय भासता है । अतः इसमें भी सद्-चिद्-आनन्द एवं अस्ति-भाति-प्रिय लक्षण हैं । प्रिय ही 'आनन्द' है भासता ही 'चिद्' या भाति है और 'घट है' ही 'सद' है-इस प्रकार कथन करके अद्वैत वेदान्ती सारे विश्व को ब्रह्म रूप कहते हैं। अतः इसमें कर्म-धर्म, विधि-निषेध कुछ न रहा, जड़-चेतन की विवेकवती बुद्धि भी गयी, सब एक हो रहा अब तो 'वेश्या सती की गति एक चाही ।'

तात्पर्य यह कि "ब्रह्म के जो सद्-चिद्-आनन्द लक्षण हैं, वह जगत के हर एक जड़-चेतन पदार्थों में अस्ति-भाति-प्रिय रूप में विद्यमान हैं । इसलिये सारा जड़-चेतन—संसार ब्रह्म ही है ।"— इस दृष्टि से जड़-चेतन, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्यादि के विवेक-विचार ही समाप्त हो गये ।

रवि के उदय तारा भौ छीना । चर वीहर दोनों में लीना ॥५॥
विष के खाये विष नहिं जावै । गारुण सो जो मरत जियावै ॥६॥

शब्दार्थ — रवि = अद्वैतज्ञान । तारा = द्वैत । चर = चेतन । वीहर = जड़ । गारुण = विष झाड़ने वाले, विवेकी पारखी ।

भावार्थ — (अद्वैतवादी कहते हैं —) अद्वैत ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होते ही द्वैत रूपी तारागणों का प्रकाश नष्ट हो जाता है । फिर तो वह ब्रह्म जड़-चेतन दोनों में

लीन है, (बल्कि जल-तरंग न्याय जड़-चेतन सब ब्रह्म ही है) ॥ ५ ॥ (सद्गुरु कहते हैं—) जहर के खाने से जहर नहीं जाता* । विष झाड़ने वाला वह है, जो मरते हुए को जिला ले ॥ ६ ॥

विशेष — सब जीव विषय-भोग एवं जगत अध्यास रूपी विष तो यों ही खाये हैं, अब पुनः उन्हें उपदेश दिया गया कि सारा जगत तुम्हारा ही स्वरूप है । तुम इससे पृथक नहीं हो । तो बात वही रही । अज्ञान-दशा में जिसे जगत कहा जाता था, ज्ञान-दशा में उसे ब्रह्म कहा जाने लगा । विषयानन्द ब्रह्मानन्द में अन्तर ही क्या रहा ? जब सारा जगत अस्ति-भाति-प्रिय रूप अर्थात सच्चिदानन्द है ।

जड़-चेतन की भिन्न दृष्टि न होने से अद्वैतवाद में जड़ाध्यास-जड़वासना का सर्वथा त्याग नहीं हो सकता । अद्वैतवाद में त्याग-ग्रहण, विधि-निषेध कुछ है ही नहीं । विष खाने से जैसे विष नहीं दूर होता, इसी प्रकार अद्वैतज्ञान से जड़ाध्यास नहीं दूर हो सकता । जड़ से चेतन को सर्वथा भिन्न मानने वाले विवेकियों का ज्ञान ही कल्याणप्रद है ।

साखी — अलख जो लागी पलक में, पलकहिं में डसि जाय ।
विषहर मंत्र न माने, तो गारुण काह कराय ॥६२॥

शब्दार्थ — अलख = ब्रह्म । विषहर = विष हरने वाला । मन्त्र = उपदेश । गारुण = विषझाड़ने वाले विवेकीगुरु ।

भावार्थ — यह जीव जो अलख ब्रह्म में पलक (ध्यान) लगाया है, सो वह पलक ही में जीव को डँस लिया । विषय-कल्पना रूपी विष को उतारने वाले पारख-उपदेश को अध्यासी जीव मानता नहीं, तो विवेकी-पारखी गुरु क्या करें ॥ ६२ ॥

विशेष — अलख ब्रह्म की कल्पना जीव ने की, वही कल्पना जीव के लिये बन्धन हुई । इस कल्पना में जीव का इतना प्रेम हो गया है कि इसके आगे विवेकपूर्ण वचनों को नहीं मानता । कोई निष्पक्षी पुरुष ही निष्पक्ष विचार करते हैं ।

५—रमैनी—८२

सुख के वृक्ष एक जगत्र उपाया । समुझि न परलि विषय कछु माया ॥१॥
छौ क्षत्री पत्री युग चारी । फल दुइ पाप-पुण्य अधिकारी ॥२॥
स्वाद अनन्त कछु वर्णि न जाई । करि चरित्र सो ताहि समाई ॥३॥
जो नटवट साज साजिया । जो खेलै सो देखै बाजिया ॥४॥
मोहा बापुरा युक्ति न देखा । शिव शक्ती विरंचि नहिं पेखा ॥५॥

---

* ग्रह गहीत पुनि बात वश, पुनि तेहि बीछी मार ।
ताहि पियाइहि वारुणी, कहो कौन उपचार ॥ (रामायण)

साखी — परदे परदे चलि गई, समुझि परी नहिं बानि ।
जो जानै सो बाँचिहैं, नहिं तो होत सकल की हानि ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ — वृत्त = ब्रह्म या विषय । जगत्र = जगत । उपाया = उत्पन्न किया, आरोपण किया । छौ छत्री = छह चक्रवर्ती सहोत्र, नहुष, मरुत, मान्धाता, शिवि एवं पृथु । पत्री = पत्रा (वेद शास्त्र) बाँचने वाले ब्राह्मण । अधिकारी = योग्य । चरित्र = आचरण, साधना । ताहि = ब्रह्मानन्द, विषयानन्द । साज = सामग्री । बाजिया = बाजी, दाँव । बापुरा = बेचारा । पेखा = देखा । परदे = आवरण-भ्रम । बानि = वाणीजाल या स्वभाव ।

भावार्थ — संसार में लोगों ने ब्रह्मानन्द एवं विषयानन्द को एक सुख का वृक्ष मानकर आरोपित किया । परन्तु लोगों के समझने में यह नहीं आया कि जहाँ तक इन्द्रिय-मन-गोचर आनन्द हैं, सब विषय रूप एवं मायाकृत हैं ।।१।। (साधारण की तो बात ही क्या ?) छह चक्रवर्ती, क्षत्रिय राजादि एवं वेद-शास्त्रादि के अध्ययन-अध्यापन करने वाले ब्राह्मण, ऋषि, मुनि आदि चारों युगों से पाप रूप विषयानन्द एवं पुण्यरूप ब्रह्मानन्द —इन दो फलों के अधिकारी बने हैं ।।२।। खानी-वाणी के जीव उपर्युक्त दोनों आनन्दों के स्वादों को अनन्त कहते हैं, (उनका विचार है कि) 'इसका वर्णन नहीं हो सकता' । उपर्युक्त दोनों वर्गों के लोग अपना-अपना आचरण साधना करके उपर्युक्त विषयानन्द एवं ब्रह्मानन्द में लीन हो रहे हैं ।। ३ ।। जो नटस्वांग न्याय हठयोग, वज्रोली-अमरोली एवं अनेक आसनादि तथा विषय-वासना की सामग्री साजते हैं, और जो विषयानन्द एवं ब्रह्मानन्द के लिए साधना करते हैं, वे अपनी-अपनी बाजी लगी हुई समझते हैं ।। ४ ।। परन्तु ये बेचारे माया में मोह गये, भ्रम-वाणी एवं मन का दाँव न समझ पाये । यह नहीं समझ पाये कि विषयानन्द-ब्रह्मानन्द के विरही शिव, शक्ति एवं ब्रह्मा आदि सब माया के वश हैं ।। ५ ।।

भ्रम के आवरण ही में ये विषयानन्द एवं ब्रह्मानन्द का जाल फैलता जा रहा है । लोगों को नाना मतों की कल्पित वाणियों की परख नहीं हुई । अथवा अपना नीच स्वभाव नहीं परख पाये । जो पारखी इस वाणी-जाल, खानी-जाल, एवं निज स्वभाव के भेद को जानेंगे, वे इससे बचेंगे । नहीं तो सबकी हानि हो रही है ।।६३।।

साखी — कालचक्र घूर्मत सदा, जीवहिं चैन न देत ।
पंचकोश होय जीव के, जीवन धन हरि लेत ।। ६४ ।।

शब्दार्थ — कालचक्र = समय का चक्कर, अज्ञान का चक्कर । घुर्मत = घुर्णित, घूमता हुआ । जीवन धन = जीवन की मुख्य संपत्ति = स्वरूपज्ञान; शांति, मोक्ष ।

भावार्थ — मनुष्य के मन में अज्ञान का चक्कर सदैव घूमता है; यह जीव को विश्रांति नहीं लेने देता । वह अज्ञान जीवों के ऊपर पाँच आवरण होकर उसके जीवन की मुख्य संपत्ति रूप स्वरूपज्ञान, शांति एवं मोक्ष को छीन लेता है ।। ६४ ।।

कालचक्र चक्की चलै, सदा दिवस औ रात।
सगुण अगुण दुई पाटला, तामें जीव पिसात॥ ६५॥

शब्दार्थ — कालचक्र = अज्ञान एवं कल्पना का चक्र। सगुण अगुण = सगुण-निर्गुण; साकार-निराकार; खानी-वाणी।

भावार्थ — मनुष्य के मन में अज्ञान एवं मनःकल्पनाचक्र की चक्की रात-दिन एवं सदैव चलती रहती है। जिसमें सब जीव पीसे जा रहे हैं। उस चक्की के दो पाट हैं, उसके नाम है सगुण और निर्गुण॥ ६५॥

विशेष — स्वरूपज्ञान न होने से मनुष्य अपना लक्ष्य एवं उद्देश्य अपने से पृथक खोजता है, यही अज्ञान है। अपने से पृथक किसी मनगढ़न्त वस्तु के विषय में सोचते रहना कल्पना है। बस यह अज्ञान एवं कल्पना की चक्की है जो मनुष्य के मन में सदैव चलती है।

स्वरूप का ज्ञान न होने से कोई सगुण की कल्पना करता है और कोई निर्गुण की; कोई साकार को पाना चाहता है कोई निराकार के लिये रट लगाये हैं। ये सब भ्रांतियों के पाटलों के बीच में एवं मन-मानन्दो में सब जीव पीसे जा रहे हैं। जब तक स्वरूप-ज्ञान एवं स्वरूपस्थिति नहीं होती तब तक मनुष्य को शांति कैसे मिल सकती है?

चक्की चलती देखिके, दिया कबीरा रोय।
दुइ पाट भीतर आयके, साबुत गया न कोय॥ ६६॥

शब्दार्थ — कबीरा = मुमुक्षु जीव। साबुत = साबूत, अखण्ड, समूचा, सकुशल।

भावार्थ — हर मनुष्य के मन में अज्ञान एवं कल्पना की चक्की चलती हुई देखकर मुमुक्षु जीव दुःखों से रो दिये। सगुण-निर्गुण एवं खानी-वाणी इन दो पाटों के बीच में आकर कोई कुशलपूर्वक नहीं गया॥ ६६॥

९ — पंचकोशों का संक्षिप्त वर्णन

आकार कालचक्र को पंचकोश

अंश पृथ्वी - १

पिंड। विश्व अभिमान। अवस्था जागृति।
विलास स्थूल। भूमिका छिप्रा। मुक्ति सालोक॥ १॥

शब्दार्थ — पिंड = स्थूल देह। छिप्रा = क्षिप्र, तेज, शीघ्रगामी।

भावार्थ — पहला कालचक्र या दुःख का चक्कर यह देह है जो अधिकांश पृथ्वी के अंश से निर्मित है यही अन्नमय कोश है। इस शरीर में 'मैं-मेरा' करके ही विश्व अभिमान होता है। इसकी अवस्था जागृति है। इसमें स्थूल इन्द्रियों से पाँचों

विषयों के भोग-विलास होते हैं। इसमें कर्मों की भूमिका छिप्रा यानी तीव्र है। इसमें कर्मकाण्ड का विस्तार होता है। इसके परिणाम में कर्मी लोग सालोक मुक्ति की प्राप्ति मानते हैं ॥ १ ॥

विशेष — स्थूलशरीर में अहंता करने से ही विश्व अभिमान होता है। शरीर, रूप, यौवन, बल, धन, परिवार, मान-बड़ाई, पूज्यता, मठ-मंदिर, शिष्य-शाखा, राज-काज, शासन आदि का अहंकार होना विश्व अभिमान है।

स्थूलशरीर की अवस्था जागृति होने से इसी में इन्द्रियों से पाँचों विषयों के ग्रहण तथा भोग-उपभोग होते हैं। जागृति अवस्था की भूमिका छिप्रा अर्थात अधिक गतिशील है। जागृति अवस्था में कर्म तेजी से होते हैं। कर्मकाण्डी लोगों का मत है कि यज्ञादि कर्मों की पूर्णता होने से भगवान के लोक में निवास मिलता है।

अंश चौरासी—२

हिरण्यगर्भ। तैजस अभिमान। अवस्था स्वप्न।
विलास सूक्ष्म। भूमिका गतागत। मुक्ति सामीप ॥ २ ॥

शब्दार्थ — हिरण्यगर्भ = हिरण्य + गर्भ, हिरण्य = सोना, चमकता हुआ तेजवान पदार्थ, गर्भ = भीतरी भाग; तात्पर्य हुआ जिसके भीतर चमकते हुए पदार्थ हों, सूक्ष्मशरीर धारण करने वाली आत्मा। **तैजस अभिमान** = चमकीले एवं तेजोमय सूक्ष्मशरीर का अहंकार। गतागत = आना-जाना, जन्म-मरण।

भावार्थ — प्राणमय कोश, सूक्ष्मशरीर का आकार हिरण्यगर्भ एवं पंचविषय तथा चतुष्टय अंतःकरण रूप तेजोमय है। इसलिये इसका अभिमान भी तैजस है। इसकी अवस्था स्वप्न तथा विलास सूक्ष्म—देखे-सुने का अध्यास संस्कार है। इस सूक्ष्मशरीर की भूमिका अर्थात कार्यक्षेत्र गमनागमन है। इस प्राणमयकोश के घेरे में उपासना-काण्ड माना है जिसकी पूर्णता में सामीप्य मुक्तिप्राप्ति की कल्पना कर रखी है ॥ २ ॥

अंश मूलप्रकृति—३

शून्य अज्ञान। प्राज्ञ अभिमान। अवस्था सुषुप्ति।
विलास आनंद। भूमिका सौलेष्टता। मुक्ति सारूप ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — प्राज्ञ = बुद्धिमान, चतुर, दक्ष; जीवात्मा। **सौलेष्टता** = अच्छी तरह से लिपटा हुआ, एकीकरण, एकाग्रता।

भावार्थ — मनोमयकोश, कारणदेह का वृत्तिरहित शून्य तथा अज्ञान आकार है। अपने आपके लिये ब्रह्मांश एवं व्यष्टि होने का अहंकार है। अवस्था सुषुप्ति है। विलास आनन्द है। भूमिका एकाग्रता की है। मार्ग योग है। योगाभ्यास द्वारा विष्णु आदि देवताओं के रूपवाला बनकर स्वर्ग में निवास करना, यह सारूप्य मुक्ति है ॥ ३ ॥

विशेष — कारणदेह अज्ञान को कहते हैं। इसमें मनोमय कोश है। इस दशा

में व्यक्ति अपने आपको व्यष्टि स्वरूप तथा ब्रह्म का अंश मानता है। कारणदेह में शून्यवृत्ति रहने से सुषुप्ति अवस्था है। सुषुप्ति अवस्था में सूक्ष्मशरीर लीन हो जाता है, केवल कारण रहता है। सबका अभाव होने से सौलेष्टता एवं एकीकरण भूमिका है। इस समय अन्य विलास या भोग संभव नहीं। इसे आनन्द विलास माना है; क्योंकि यह दशा वृत्तिरहित है। योगी लोग योगाभ्यास द्वारा भी इस अवस्था को प्राप्त करते हैं, और इसके फलमें सारूप्य मुक्ति की प्राप्ति होना मानते हैं।

अंश सर्वसाक्षिणी—४

ज्ञान। अवस्था तुर्या। प्रत्यगात्मा अभिमान।
भोग आनंदाभास। भूमिका सुलीनता। मुक्ति सायुज्य ॥४॥

शब्दार्थ — तुर्या=तुरीय; वेदांत के अनुसार वह अवस्था जिसमें जीव का ब्रह्म में लीन हो जाना माना है। प्रत्यगात्मा=सूत्रमणि न्याय सबमें व्यापक और सबसे भिन्न आत्मा या ब्रह्म; यहाँ 'प्रत्यक्' का अर्थ है भीतर; अर्थात वह आत्मा जो सारे विश्व के भीतर हो। सुलीनता=अच्छी तरह लीन हो जाने का भाव। सायुज्य= एक में मिल जाना।

भावार्थ — महाकारण देह का आकार ज्ञान माना है और इसका कोश भी ज्ञानमय है। अवस्था तुरीय है जो ब्रह्म की साक्षी दशा है। सर्वत्र व्याप्त का अहंकार है। भोग है आनन्द का आभास। भूमिका जीव का ब्रह्म में विलीन हो जाना है। फलतः सायुज्य मुक्ति है॥ ४॥

विशेष — ज्ञानी तुरीय अवस्था में पहुँचकर अपने को सबके भीतर व्याप्त मानता है। इस समय विशेष आनंद वृत्ति नहीं, किंतु आनंद का आभासमात्र होना माना है। इस अवस्था में पहुँचकर जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है; और उसे सायुज्य मुक्ति मिल जाती है ऐसी कल्पना है।

अंश संधि महाकाश—५

तुर्यातीत। मान अमान रहित। अभिमान हीन।
भूमिका हीन। आरोप हीन। सो जीवन्मुक्ति है॥ ५॥

शब्दार्थ — मान=जगत। अमान=कारण ब्रह्म। आरोप=एक पदार्थ में दूसरे के गुण, धर्म की कल्पना; लगाना; न्यास, संस्थापन; इलजाम; तात्पर्य में कुछ सिद्ध करना।

भावार्थ — कैवल्यदेह की अवस्था तुरीयातीत है। इसका विज्ञान या आनन्द-कोश है। यह जगत तथा कारणब्रह्म रहित, अभिमानहीन, भूमिकाहीन, जहाँ कुछ न सिद्ध किया जा सके वह ज्यों-का-त्यों ब्रह्म की स्थिति जीवन्मुक्ति मानी है॥ ५॥

विशेष — कैवल्य तथा तुरीयातीत दशा में पहुँच कर ब्रह्मवादी बाल, मूक, पिशाच, जड़, उन्मत्त आदि दशा धारण करते हैं। कहते हैं उन्हें न कोई अहंकार है, न उनकी कोई भूमिका है और न उन्हें कुछ सिद्ध करना है। कहना-सुनना भी वे मिथ्या मानते हैं। उनकी दृष्टि में सब कुछ ब्रह्म है यह उनकी जीवन्मुक्ति दशा है।

ऊपर पंचकोशों का वर्णन ब्रह्मवादानुसार है। विवेकी का कर्तव्य है कि इनके दोषों को परख करके त्याग करें और सार ग्रहण करें।

सत्यनिर्णय छन्द—१

अन्नमय अरु प्राणमय, तीजे मनोमय जानिये।
ज्ञानमय विज्ञानमय, सोई पंचकोश बखानिये ॥
तत् त्वं असि त्रिविधि बानि, सबै पहिचानिये।
कठिन सो त्रिदोष कारण, परमपद किमि मानिये ॥ १ ॥

शब्दार्थ — तत्=वह, ईश्वर। त्वं=त्वम्, तू; जीव। असि=है; ब्रह्म।

भावार्थ — अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय तथा विज्ञानमय (आनन्दमय)—ये पंचकोश कहे जाते हैं। त्रिविधि तत्वमसि की सभी वाणियों की परख करो। यह कठिन त्रिदोष बंधनों का कारण है। इसे परमपद या परमपददायक कैसे माना जाय? ॥ १ ॥

विशेष — कोश का अर्थ यहाँ आवरण या परदा है। जीव के ऊपर अन्नमयादि पाँच परदे हैं। इनका विवरण ग्रंथ के आरम्भ में पंचकोश के वर्णन में देखें।

तत्, त्वम्, असि का अर्थ है 'वह तू है'। इसको सीधेसादे ढंग से इसी अर्थ में रखा जाता कि जिस ईश्वर, मोक्ष या परमलक्ष्य को तू खोजता है वह तू ही है, तो बड़ा उत्तम होता। परन्तु वह तू है इस शब्दलालित्य के भीतर बड़े दोष भरे हैं। इसका अर्थ यह मान रखा है कि हे अंश जीवात्मा! तू सर्वत्र व्यापक, जड़-चेतन अभिन्न परमात्मा एवं ब्रह्म है। ब्रह्म, परमात्मा ये सभी शब्द सुहावने हैं, परन्तु इनके लक्षण चराचर व्यापक तथा जड़ से अभिन्न मानकर इन्हें जड़रूप ही कर डाला गया है।

ऊपर वर्णित पंचकोश तथा तत्वमसि की परिभाषा को समझकर उनके दोषों से मुक्त होने का प्रयास करना विवेकी का कर्तव्य है।

१०—शुद्ध रहनी सहित पारखस्वरूप की स्थिति का वर्णन

साखी—पशुवा लोक अरु वेदके, मोह अंध संसार।
वह लादै खेदै आपको, यह अपनी चहत उबार ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ — पशुवा=पशु; पक्षपाती। लोक=संसार; खानी। वेद=कोई धर्मपुस्तक; वाणी। आपको=अपने स्वार्थ के लिये। यह=मनुष्य।

भावार्थ — संसार के लोग अज्ञान में विवेकहीन होकर सांसारिक भोगों तथा धर्म के काल्पनिक मान्यताओं के पक्षपाती बने हैं। विषयी नर-नारी तथा साम्प्रदायिक पक्षपाती भूले गुरुजन अपने स्वार्थ या मतवाद के लिये मनुष्यों पर मोह और भ्रम का बोझा लादकर उन्हें खानी और वाणी चक्कर में खदेड़ते हैं; और ये भोले मनुष्य उनके बंधनों को न परख पाने से उन्हीं से अपना उद्धार चाहते हैं ॥ ६७ ॥

भरमचक्र यमजाल सो, विन गुरु कैसे लखाय।
पारख पाये जानिये, आदि अंत समुदाय ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ — **आदि अंत** = शुरू से आखीर तक; सम्पूर्ण। **समुदाय** = समूह।

भावार्थ — यह भ्रमका चक्कर मनुष्यों के मनका जाल है। बिना यथार्थ पारखी सद्गुरु के मिले वह कैसे समझ में आवे ? पारख की प्राप्ति होने पर ही भ्रम एवं अज्ञान के संपूर्ण समूह को जानकर उनका त्याग किया जा सकता है ॥ ६८ ॥

प्रभु सुखदाई पारखी, दुष्ट दुसह दुख खान।
परवश जीव विकल फिरै, पारख बिना अयान ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ — **दुसह** = न सहने योग्य। **अयान** = अज्ञानी।

भावार्थ — सारासार के पारखी विवेकी संतोंका ज्ञान सुखप्रद है; और मनुष्य का मन दुष्ट है तथा असहनीय दुःखों को देने वाला है। इसीलिये अज्ञानी मानव मन के वश में पड़ा हुआ दुखी होकर भटकता है ॥ ६९ ॥

जो जीव पावै पारख, सो लहै अचल विश्राम।
प्रीति प्रतीति अनुछिन बढ़ै, धोखा मिटै तमाम ॥ ७० ॥

शब्दार्थ — **अनुछिन** = अनुक्षण; प्रतिक्षण। **तमाम** = बहुत; तात्पर्य में सब।

भावार्थ — जो व्यक्ति सारासार की परख पा जाता है; वह असार को त्याग कर परम शांति की प्राप्ति करता है। सत्यस्वरूपज्ञान के प्रति प्रतिक्षण उसके श्रद्धा और विश्वास बढ़ते जाते हैं ॥ ७० ॥

रामरहस गुरु पारख में, सदा विलास भ्रम नास।
चहुँ प्रलय संधिक कला, रहा न ताके गाँस ॥ ७१ ॥

शब्दाथ — **चहुँ प्रलय** = चार प्रलय; नित्यप्रलय, नैमित्तिकप्रलय, विश्वप्रलय तथा महाप्रलय। **सधिक** = संधि का; भूल का; त्रुटि का। **कला** = कल्पना। **गाँस** = रुकावट; फंदा; तीर का फल (नोक); बंधन।

भावार्थ — ग्रंथकर्ता पूज्य श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि जो व्यक्ति स्वरूप ज्ञान में सदैव रमण करता है, उसके सम्पूर्ण अज्ञान नष्ट हो जाते हैं। उसके मनमें चार प्रलय तथा अनेक भूलजनित कल्पनाओं के बंधन नहीं रहते ॥ ७१ ॥

विशेष — चार प्रलय के वर्णन इस प्रकार हैं—

नित्यप्रलय — मनुष्य कुछ समय के लिये रोज सो जाता है। सो जाने पर उसको सारा संसार यहाँ तक अपना शरीर भी भूल जाता है। यह नित्यप्रलय है।

नैमित्तिकप्रलय — एक प्रकार का वह माना हुआ प्रलय जिसमें क्रमशः सौ वर्षों तक वृष्टि नहीं होती, बारहों सूर्य तीनों लोकों को दग्ध करते हैं और अंत में पुष्करावर्तक आदि मेघ अनवरत सौ वर्षों तक बरसकर विश्व को जलमग्न कर देते हैं। पुष्करावर्तक मेघों का एक अधिपति माना गया है।

विश्वप्रलय — किसी एक विश्व का प्रलय हो जाना।

महाप्रलय — ब्रह्मा की आयु समाप्त होने पर होने वाला सम्पूर्ण विश्व का नाश।

नित्यप्रलय रोज सो जाना है यह ठीक है; परन्तु नैमित्तिक आदि तीन प्रलय काल्पनिक हैं। हाँ, अधिक वृष्टि, भूचाल तथा अति अवर्षण से बहुत प्राणियों की मृत्यु, किसी भूखण्ड का दब जाना या जलमग्न हो जाना नैमित्तिकप्रलय कह सकते हैं। शरीर का छूट जाना विश्वप्रलय कह सकते हैं तथा जीव के मुक्त हो जाने पर उसके लिये संसार का महाप्रलय कह सकते हैं। यद्यपि कल्पना करने वालों ने महाप्रलय के बाद पुनः सृष्टि होना माना है; परन्तु मुक्त जीव सदा के लिये सृष्टि से छुट्टी पा जाता है।

पारखबोध यथार्थ रूप से हो जाने पर व्यक्ति सृष्टिकर्ता, प्रलयकर्ता तथा काल्पनिक प्रलय आदि के भ्रमों से मुक्त हो जाता है।

चार अवस्था फंद है, फंद बीच बहु फंद।
बिनु पारख छूटै नहीं, काल जाल मतिमंद ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ — फंद = बंधन। काल = कल्पना; अज्ञान। मतिमंद = मंदबुद्धि; कमसमझ।

भावार्थ — जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय इन चारों अवस्थाओं के अज्ञानकृत अनेक बंधन हैं। इन बंधनों के बीच में अन्य अनेक मान्यताकृत बंधन हैं। कमसमझ के लोगों का यह अज्ञानकृत बंधन बिना गुरुद्वारा परीक्षादृष्टि पाये नहीं छूट सकता।७२।

विशेष — जागृति, स्वप्न तथा सुषुप्ति के अनेक अध्यासकृत बंधन हैं; और तुरीयावस्था में चराचर व्यापक की मान्यता होने से वह भी बंधन है।

जीव दुखी चाहै छूटन, चीन्है नाहीं काल।
आशा देवै निवृत्तिका, भोरे भवके जाल ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ — काल = अज्ञान। निवृत्ति = छुटकारा; विश्राम; मुक्ति। भोरे = भुलाये, बहँकाये।

भावार्थ — दुखी मनुष्य बंधनों से छूटना चाहते हैं; परन्तु वे अपने अज्ञान को नहीं परख पाते। संसार के भुलाने वाले लोग मोक्ष की आशा देकर भोले लोगों को जगज्जाल में भ्रमा देते हैं॥ ७३ ॥

त्रिविधि भेष बनायके, कीन्ह कपट उतपात।
बाना गही उबारने, लाई कला यम घात ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ — त्रिविधि भेष = लंगोटी, माला और तिलक। उतपात = उपद्रव। बाना = भेष। यम = मन; वासना; अज्ञान। घात = छल।

भावार्थ — कितने लोग गुरु के तीन प्रकार के वेष—माला, तिलक और लंगोटी धारण करके और भीतर से अनेक प्रकार के अज्ञान और बुराइयों को भरकर संसार में उपद्रव करते हैं। इस प्रकार एक ओर अपने और दूसरे के उद्धार के लिये शुद्ध साधु-गुरु का वेष बना रखे हैं और दूसरी ओर पूरे मन, वासना एवं अज्ञान के रूप बने धोखाधड़ी की कला फैलाये हुए हैं ॥ ७४ ॥

यतिके चिन्ह लंगोट है, दया चिन्ह उर माल।
राज तिलक है अदलका, शोभै परगट भाल ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ — यति = त्यागी। अद्‌ल = अद्‌ल, न्याय। परगट=प्रत्यक्ष। भाल = मस्तक।

भावार्थ — त्यागी का वाह्य वेष लंगोटी है, दया का वेष हृदय पर माला धारण करना है और जो मस्तक पर प्रत्यक्ष राजतिलक शोभायमान हो रहा है, वह न्याय का वेष है ॥ ६५ ॥

विशेष — जीवनपर्यन्त सच्ची त्यागवृत्ति से रहने के लिये गुरु द्वारा लंगोटी ली जाती है। जो लंगोटी लेकर विषयविकार में लिपटते हैं उनका रौरव नरक में भी ठिकाना नहीं होगा। इसलिये शीघ्र त्याग का वेष लेना नहीं चाहिये; और जबसे ले तबसे पक्का त्यागी होना चाहिये।

दया एवं अहिंसाव्रत का लक्षण है गले में माला या हीरा पहनना; और जो मस्तक में एक खड़ा तिलक लगाते हैं उसका तात्पर्य है न्याय में पक्का होना।

महादुष्ट जीवहिं ठगे, भेष कपट किये काल।
भेष देखि निवृत्तिका, अपनाये सो दयाल ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ — निवृत्ति=मोक्ष; त्याग।

भावार्थ — कितने महान दुष्टलोग भी साधु-गुरु का कपट वेष बना कर मनुष्यों को ठगते हैं और काल बनकर दुःखदायी काम करते हैं। परन्तु उस साधुवेष को मोक्ष में सहायक समझ कर सच्चे दयालु पुरुष भी अपनाते हैं ॥ ७६ ॥

विशेष — साधुवेष निवृत्ति में सहायक है। उसका दुष्ट लोग दुरुपयोग करते हैं तथा सज्जनपुरुष सदुपयोग करते हैं।

भेष अमंगल नष्ट गुण, जेते त्रिविधि फाँस।
अदल चलाई कालपर, सो त्रिदोषहि नाश ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ — त्रिविधि फाँस = तीन प्रकार के बंधन—काल, संधि, झाँई—कल्पना, भूल, धोखा । अदल = न्याय ।

भावार्थ — जहाँ तक काल, संधि एवं झाँई के बंधनों का पसारा है उनके वेष भी अकल्याणकर तथा गुण भी पतन करने वाले हैं । जो कल्पना एवं अज्ञान को दूर करके न्याय निर्णय का बर्ताव करता है, वह काल, संधि, झाँई के दोषों को नष्ट कर देता है ॥ ७७ ॥

अदल चलाई सत्यका, साहेब बंदीछोर ।
पारख छोरै जीवको, यमके हाथ मरोर ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ — अदल = अद्ल, न्याय । यम = मन; वासना; अज्ञान ।

भावार्थ — बन्धन छुड़ाने वाले सद्गुरु कबीर साहेब ने सत्य का न्याय चलाया । वस्तुतः पारखविचार ही अज्ञान के हाथों को मरोड़ कर उसके बंधनों से जीव को छुड़ाता है ॥ ७८ ॥

रीति प्रीति सोइ सत्य है, सही सत्य सो भेष ।
झूठे को शोभे नहीं, निर्णय करिके देख ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ — रीति = व्यवहार; रवाज; चलन; नियम । प्रीति = श्रद्धा ।

भावार्थ — नियम, श्रद्धा और वेष वे ही सत्य हैं जो मनुष्य को सत्य की ओर प्रेरित करें । अथवा जो सत्यनिष्ठ है, उसी के नियम तथा उसी के वेष का आदर हो सकता है; और उसी में श्रद्धा टिकाई जा सकती है । निर्णय करके समझो, झूठे व्यक्ति को उज्ज्वल गुरु-साधु के वेष नहीं शोभा देते; न उसके प्रति श्रद्धा ही बन सकती है; और न उससे सज्जन पुरुष का व्यवहार ही निपट सकता है ॥ ७९ ॥

सीत प्रसाद क्षुधा हरै, चरणोदक हरै प्यास ।
बीरा पान दयालका, मेटत यमके त्रास ॥ ८० ॥

शब्दार्थ — सीतप्रसाद = संत-गुरु के खाने से बचा हुआ भोजन । चरणोदक = उनके चरण के स्पर्शित जल । बीरापान = पानपरवाना । यम = मन; वासना; अज्ञान ।

भावार्थ — विवेकवान संत-गुरु के शीतप्रसाद एवं महाप्रसाद और उनके चरणोदक ग्रहण करने से मन की भूख प्यास-आशा-तृष्णा मिट जाती है । और दयालु सद्गुरु-संतों का पानपरवाना ग्रहण करने से अज्ञान के दुःख समाप्त हो जाते हैं ॥८०॥

विशेष — वस्तुतः संत-गुरु का सत्योपदेश ही शीतप्रसाद, उनके दिव्याचरण ही चरणोदक तथा उनका जितेन्द्रियत्व बीरापान व पानपरवाना है । उसको ग्रहण करना चाहिए । बाह्य स्थूल शीतप्रसाद, चरणोदक एवं पानपरवाना आदि सामान्य भक्ति, उपासना आदि के दृष्टिकोण से कथन है । वह विवेकपूर्वक ही होना चाहिये । मुख्य

ज्ञान तथा सदाचरण से ही मनुष्य का कल्याण है। इस विषय में गुरुबोध प्रकरण के २११ तथा ३०७ दोहे की व्याख्या पढ़ें।

बंदे सन्मुख पारखी, सीस भेंट धरि हाथ।
वचन उचारो बंदगी, सत्य प्रेमके साथ ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ — बंदे = वन्दना करना चाहिये।

भावार्थ — सम्मुख विराजमान पारखी संतों की इस प्रकार वन्दना करो—अपने सिर को अपने हाथ की अंजुलि में ले जाते हुए सच्चे प्रेम के साथ बंदगी शब्द का उच्चारण करो ॥ ८१ ॥

विशेष — पारखी संतों एवं सद्गुरु के सम्मुख होने पर हाथ-पैर स्वच्छ करके उपस्थित होना चाहिये। पुनः अंजुलि को पृथ्वी पर रखकर या थोड़ा ऊपर ही रखकर उनके दर्शन करते हुए और साहेब बंदगी शब्द का उच्चारण करते हुए सिर को अंजुलि तक ले जाय।

साहेब बन्दगी का अर्थ है स्वामी! वन्दना करता हूँ। तीन बार करने का अर्थ है हमारे मन, वाणी, कर्म शुद्ध हों तथा तीनों पाप दूर हों। अंजुलि में सिर ले जाने का तात्पर्य है अपने सिर को अपने हाथ में रखकर संत-गुरु को उसे समर्पित करना। सिर समर्पित करने का अर्थ है सर्वस्व समर्पण एवं विनम्रता-स्वीकृति।

दया दयाल पारख लहै, सुधरै सब भ्रमजाल।
अदल चलै तब सत्यका, शिर धुनि रोवै काल ॥ ८२ ॥

शब्दार्थ — अदल = न्याय। काल = अध्यासी मन।

भावार्थ — दयालु सद्गुरुप्रदत्त पारखबोध के प्राप्त होने पर सारे भ्रमबन्धन दूर होकर जीव का कल्याण होता है। तब उस व्यक्ति के जीवन में सर्वत्र सत्य के न्याय का व्यवहार चलता है। इसलिये अध्यासी मन अपनी दाल न गलती देखकर सिर पटक कर रोता है ॥ ८२ ॥

विशेष — मुमुक्षु के हृदय में यथार्थ ज्ञान का प्रकाश होते ही वह सत्य में रम जाता है; और मन की चाल नहीं लगती। तब मानो मन विवश-सा होकर शांत हो जाता है।

प्रथमें शब्द सुधारिके, टारे त्रिविधि जाल।
झाँई मेटत संधिको, ऐसो शरण दयाल ॥ ८३ ॥

शब्दार्थ — सुधारी = सुधार कर; दोष को दूर करके सार ग्रहण करना। त्रिविधि = तीन प्रकार की वाणी के बन्धन—काल, संधि और झांईं।

भावार्थ — पहले शब्दों का सुधार करके काल, संधि और झांईं के बन्धनों को दूर करे। कृपालु पारखी सद्गुरु की शरण का ऐसा महत्त्व है कि वे काल, संधि, झाँईं को मिटा देते हैं ॥ ८३ ॥

पारख गुरु सुखवास है, जहाँ न फंदा काल।
सो बिनु जीव विनाश है, चौरासीके जाल ॥ ८४ ॥

शब्दार्थ — **पारखगुरु** = गुरुपारख; स्वस्वरूप चेतन। **काल** = अज्ञान।

भावार्थ — जहाँ अज्ञानकृत बन्धन नहीं है उस स्वस्वरूप चेतन की स्थिति में अनन्त सुख विराजता है। उस स्वरूपस्थिति की प्राप्ति के बिना चौरासी के बंधनों में फँस कर जीव का घोर पतन है ॥ ८४ ॥

साहेब साँचा पाइके, नहिं कीन्हो दृढ़ नेह।
काल फंद भुगतै सोई, चौरासीके खेह ॥ ८५ ॥

शब्दार्थ — **साहेब** = स्वामी; सद्गुरु। **भुगतै** = भोगना; सहना। **खेह** = धूल, राख।

भावार्थ — वैराग्यादि शुद्ध रहनी और ज्ञान से सम्पन्न सच्चे पारखी सद्गुरु को पाकर भी यदि मनुष्यों ने उनमें सच्ची एवं प्रगाढ़ श्रद्धा नहीं की तो वह वासनाओं के जाल में पड़ा हुआ और चौरासी चक्कर की धूल फाँकता हुआ अनन्त दुःख सहता रहेगा ॥ ८५ ॥

विशेष — जो व्यक्ति सच्चे सद्गुरु में श्रद्धा करेगा, वह निश्चित ही अपने आप का कल्याण कर लेगा।

नारी पुरुषके भाव तजि, साहेब साँचा सेइये।
लाज कपट सब छाड़िके, अभय परमपद पाइये ॥ ८६ ॥

शब्दार्थ — **भाव** = राग; आसक्ति।

भावार्थ — मैं स्त्री हूँ या मैं पुरुष हूँ—यह आसक्ति, अभिमान, राग, लज्जा, कपट आदि सब छोड़कर विनम्रता पूर्वक सच्चे सद्गुरु की सेवा करो। फिर गुरु के वे ही विवेक-वैराग्यादि शुद्ध गुण धारण करके निर्भय परमपद—स्वरूपस्थिति की प्राप्ति करो ॥ ८६ ॥

विशेष — उक्त साखी का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। यह ठीक है कि जीव न स्त्री है और न पुरुष; और यह भी ठीक है कि स्त्री और पुरुष को अपने-अपने शरीराभिमान को नष्ट करना चाहिये। और सचमुच इसी लक्ष्य को लेकर उक्त साखी कही भी गयी है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यवहार में भी किसी को स्त्री-पुरुष न मानकर सबसे अभेद वर्ताव किया जाय।

कितने साधु, भक्त और ज्ञानी नामधारी इस मिथ्या दम्भ के आड़ में अपनी मनोवासना की पूर्ति करते हैं कि स्त्री-पुरुष का भाव छोड़ कर सबसे समान व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि सब एक समान चेतन हंस हैं। सब एक समान चेतन हंस

हैं, यह सच है; परन्तु स्त्री-पुरुष का शरीरगठन, दोनों की मानसिक दशायें एवं योग्यतायें एक नहीं हैं। यदि वे दोनों अभेद बर्ताव करेंगे तो गिर कर रहेंगे। अतएव व्यवहार में अलग-अलग मर्यादा पूर्वक रहते हुए अपने-अपने देहाभिमान को मिटाकर नर और नारी को अपना-अपना कल्याण करना चाहिये।

जो रहस्य युत पारखी, साहेब साँचा सोय।
तरे तारे भव जाल सोई, काल देखि रहै रोय॥ ८७॥

शब्दार्थ — रहस्य = सद्‌गुण तथा सदाचार। काल = अज्ञानी मन।

भावार्थ — जो विवेक-वैराग्यादि सद्‌गुण तथा शुद्ध सदाचार संयुक्त पारखी संत हैं, वे ही सच्चे सद्‌गुरु हैं। वे संसार-सागर से स्वयं तर जाते हैं तथा दूसरे को तार देते हैं। यह देखकर मानो अज्ञानी मन अपनी चलती न समझकर रोने लगता है अर्थात हताश होकर शांत हो जाता है॥ ८७॥

विशेष — ८६ साखी में आया था कि देहाभिमान, लज्जा, छल, कपट आदि छोड़कर सच्चे सद्‌गुरु की सेवा करो। प्रश्न हो सकता है कि सच्चा सद्‌गुरु कौन है? उसका उतर ग्रंथकार इस साखी में देते हैं कि सच्चा सद्‌गुरु वह है जिसके सारे भ्रम दूर हो गये हैं। जो वास्तविक पारख का बोध प्राप्त कर लिया है। परन्तु उसमें इसके साथ दिव्य आचरण हों। अर्थात जिसकी रहनी और बोध दोनों ठीक हों, वह सच्चा सद्‌गुरु है।

दृढ़ पारख जे जन भये, काल फंद सब देख।
सत्य स्वरूप सोई सदा, रीति सत्य सत भेष॥ ८८॥

शब्दार्थ — कालफंद = मनके बंधन।

भावार्थ — जो व्यक्ति पारखस्वरूप का दृढ़ बोध प्राप्त कर लेता है, वह मनके सारे बंधनोंको तत्त्वतः जानकर उन्हें त्याग देता है। वह सदैव अपने सत्य चेतन स्वरूप में स्थित रहता है। उसके सारे व्यवहार सत्यतापूर्ण तथा वेशभूषा सदाचार प्रेरक होते हैं॥ ८८॥

साखी—धन्य धन्य सो जीव है, काल जाल सब टाल।
झाँईं संधि मिटावहीं, नजरे नजर निहाल॥ ८९॥

शब्दार्थ —झाँईं = धोखा; असावधानी। संधि = भूल। नजरे-नजर = देखते-देखते; शीघ्र। निहाल = कृतार्थ।

भावार्थ — वे व्यक्ति प्रशंसाभाजन हैं जो अज्ञानके सारे बंधनों को दूर कर दिये हैं। वे समस्त असावधानी एवं भूलों को मिटाकर अत्यंत शीघ्र मुक्त हो जाते हैं॥८९॥

११– वेष और आचरण की असमानता अनुचित है

सत्यनिर्णय का शब्द – २

संतौ ! ठहरिके करहु विचार । ठौर निज सुखदाई ॥ १ ॥
बिना विचार सकल जग जहँड़े । स्थिति कहु कौन कहाँ पाई ॥ २ ॥
माथे व्याप संधिके घेरा । विष बौराने समुदाई ॥ ३ ॥
ज्ञानी भक्त योगी कहलावै । मर्म महातम भरमाई ॥ ४ ॥
त्रिदेवा अधिकारि जगतके । त्रिविधि भेष मन कुटिलाई ॥ ५ ॥
चीन्ह न परी घात मनुवाके । मृतुक भये नर बौराई ॥ ६ ॥
निर्णय तिलक लिलाट विराजै । राज काज विधि युक्ताई ॥ ७ ॥
सो परपंच विदित है जगमें । जहँड़े औरन जहँड़ाई ॥ ८ ॥
विष्णु दयाके रूप कहावें । कंठी कंठे दिखलाई ॥ ९ ॥
जत्त सत्त सब टार बहाई । विषय विकार सो कुशलाई ॥१०॥
यतिके डिम्भ जो हरको देखा । कामारी दृढ़ फैलाई ॥११॥
खुली काँछ कामके माते । कहत न लागै सकुचाई ॥१२॥
जैसा कहै करै तैसा जो । सत्य शब्दसों अटलाई ॥१३॥
फंदा टूटै तब जीव छूटै । बिन गुरु जाल न दरशाई ॥१४॥
सन्त सदा सोई परमाणिक । जिन निज घरकी सुधि पाई ॥१५॥
कहहिं कबीर चेत नर बौरे । हो हुशियार दुःख बिलगाई ॥१६॥

उक्त शब्द का अर्थ गुरुबोध, प्रकरण ३२४ दोहे के बाद कर आये हैं; अतएव वहाँ देखें ।

साखी—साधु साधु सबही बड़े अपनी अपनी ठौर ।
शब्द विवेकी पारखी, ते माथेके मौर ॥ ९० ॥

शब्दार्थ — ठौर = जगह, स्थल । माथे के मौर = सिरमुकुट; सर्वोच्च ।

भावार्थ — शुद्ध ब्रह्मचर्य और सदाचार से रहने वाले सभी सम्प्रदाय के सभी साधु अपने-अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं; परन्तु उनमें जो शब्दों के विवेकी तथा पारखी हैं, वे सर्वोच्च हैं ॥ ९० ॥

विशेष — पूज्य ग्रंथकर्ता श्रीरामरहस साहेब का विशाल हृदय ऐसे स्थानों पर अधिक खुल गया है । वे कहते हैं कि जो साधु हो वह अपने स्थान पर श्रेष्ठ है । साधु

वह है जो अपने मन-इन्द्रियों को साध कर, सम्हालकर एवं स्ववश करके रखता हो। और इन्द्रियजयी सदाचारी साधु चाहे जिस सम्प्रदाय के हों सब अपनी-अपनी जगह पर श्रेष्ठ हैं और पूज्य भी। परन्तु उन सब में वह सर्वोच्च है जो इन्द्रियजयी होने के साथ काल, संधि, झाँई तथा सार एवं रोचक, भयानक तथा यथार्थ वाणियों की निष्पक्ष छानबीन करता है, और जो सबको परख कर और असार को छोड़कर अपने पारख (ज्ञान) स्वरूप चेतन में ही निवास करता है।

१२ — जँतसारी रूपक में काल (कल्पना) चक्को का वर्णन

चौपाई—२

बंदीछोर शरण सुखदाता। मेटनहार मोह जीव त्राता ॥ १ ॥
महाकठिन यमजाल मिटाई। अपनाय न तो जात नशाई ॥ २ ॥

शब्दार्थ — त्राता = रक्षक, = बचाने वाला। यमजाल = वासना एवं अज्ञान का बंधन।

भावार्थ — बन्धन छुड़ाने वाले पारखी सद्गुरु का आश्रय जीवन्मुक्ति सुख देने वाला, अज्ञान को नष्ट करने वाला तथा जीव को संसार सागर से बचाने वाला है ॥१॥ गुरुदेव मेरे अज्ञानकृत महान बन्धनों को मिटाकर मुझे अपनी शरणों में लगा लिये, नहीं तो मैं कालजाल में पड़कर पतित हो जाता ॥२॥

परवश काल जीव सब रोवैं। दुस्सह दरेर दुःख जीवन खोवैं ॥ ३ ॥
आपु अव्यक्त उपरौटा लाई। इच्छा सगुण तरौटा बनाई ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — दुस्सह = असहनीय। दरेर = दरेरा, रगड़, जोर का धक्का, धावा। अव्यक्त = अप्रकट, अदृश्य, अज्ञेय, अनाविर्भूत, अनिश्चित। उपरौटा = ऊपर का पल्ला। तरौटा = तरौंटा, चक्की का निचला पत्थर।

भावार्थ — सब मनुष्य अज्ञान के वश में पड़े दुखी होकर रोते हैं, और असहनीय दुःखों के धक्के में वे अपने जीवन को नष्ट कर रहे है ॥३॥ स्वरूपभूल की एक चक्की है, जिसमें अज्ञेय एवं अनिश्चित ब्रह्म का ऊपरी पल्ला है, और जगत इच्छा पूर्वक सगुण ब्रह्म का निचला पल्ला है ॥४॥

विशेष — स्वरूप के अज्ञानवश जीव दुखी हैं। यहाँ ग्रन्थकर्त्ता ने अज्ञान का रूपक चक्की में आरोपित किया है। अज्ञान एवं कल्पना भी एक चक्की है, जिसमें निर्गुण, अव्यक्त, अनिश्चित ब्रह्म ऊपर का तथा जगत को उत्पन्न करने की इच्छावाला सगुण या सबल ब्रह्म नीचे का पल्ला है। उसके अन्य अंगों का वर्णन आगे है।

कीला एकता सुमेर अखंड्ड। छिद्र तरौटा लाइ प्रचंड्ड ॥ ५ ॥
हथरा तीन मेख जड़ दीन्हा। चक्की चलत निसुबासर कीन्हा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **कीला**=जाँते की वह खूँटी जो दोनों पल्लों के आरपार जाकर जमीन में गड़ी रहती है। **सुमेर**=सुमेरु, वह काल्पनिक पर्वत जो पुराणों के अनुसार इलावृतवर्ष में अवस्थित है और सोने का बना हुआ है। **छिद्र**=छेद। **हथरा**=जाँत में लगी वह सबसे बड़ी लकड़ी जिसे पकड़ कर पीसा जाता है। **तीन**=तत्, त्वम्, असि। **मेख**=मेख, वे खूँटियाँ जो हथड़ेको जाँत के ऊपरी पल्ले में जड़े रहती हैं।

भावार्थ — कहते हैं जैसे सुमेरु पर्वत पृथ्वी और पातालके आरपार स्थित होकर उन्हें स्थिर रखता है, इसी प्रकार इस अज्ञानकृत जाँत में सगुण-निर्गुण, जगत-ब्रह्म की एकता रूपी अटूट खूँटा लगा है, और इस जाँत के सबल ब्रह्म रूपी तरौंटा में जगत उत्पन्न करने की प्रबल इच्छा रूपी छिद्र है ॥५॥ उस जाँत में मोह का हथरा (हैंडिल) लगा है, जिसमें तत्,त्वम्, और असि की खूँटियाँ जड़ी हैं। यह चक्की रात-दिन चलती है ॥६॥

विशेष — अपने स्वरूप को ठीक से न जानना अज्ञान है। यही जाँत है जिसमें सब जीव पिस रहे हैं। इसमें निर्गुण ब्रह्म उपल्ला, सगुण ब्रह्म तरल्ला, इन दोनों तथा जगत-ब्रह्म की एकता खूँटा, मोह का हथरा तथा तत्त्वमसि की खूँटियाँ हैं। यह जाँत रात-दिन चलता है। इसमें जीव पिसते हैं।

तात्पर्य हुआ अपने चेतनस्वरूप के विषय में निर्गुण-सगुण, जगत-ब्रह्म की कल्पना करना अज्ञान है। सारी कल्पनाओं का कर्ता अपना चेतनस्वरूप सबसे भिन्न है।

पीसत संतत जीवहि डारी। भोग करत यम जीव खुवारी ॥ ७ ॥
छिनछिन जीव विकल तेहि माहीं। रक्षक जानि कीला तर जाहीं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **यम**=वासना, कल्पना। **खुवारी**=ख्वारी, बेइज्जती, खराबी, बरबादी।

भावार्थ — जीव की ही भूल जीव को इस अज्ञानकृत चक्की में डालकर पीसती है। जितना ही जीव वासना एवं कल्पना के अनुसार पिंड-ब्रह्मांड के भोगों का उपभोग करता है उतनी ही उसकी बरबादी होती है ॥७॥ इस चक्की में पड़े हुए जीव प्रतिक्षण दुखी हैं और वे जगत-ब्रह्म की एकता रूपी कीला को अपना रक्षक जानकर उसके पास जाते हैं ॥८॥

विशेष — पिसते समय अन्न के जितने दाने कीला के पास जाते हैं, वे तत्काल बचते हुए दिखलाई देते हैं। परन्तु कुछ समय में घूम-फिर कर वे पुनः दोनों पाटों के भीतर आकर पिस जाते हैं। क्योंकि कीला का उद्देश्य पिसने से बँचाना नहीं किंतु पीस डालना है। इसी प्रकार अद्वैत ब्रह्म को अपना रक्षक समझ कर जीव उसकी शरण में जाते हैं कि वह जन्म-मरण में पिसने से हमें बँचा लेगा। तत्काल बचते हुए से वे प्रतीत भी होते हैं। परन्तु ब्रह्मकी शरण में जाने से बचने का कोई हेतु ही नहीं है। क्योंकि ब्रह्मका उद्देश्य जीवों को मुक्त करना नहीं, अपितु सृष्टि करना है।

तहँवाँ आदि पतनको रंधू। जीवहिं चीन्ह परे नहिं संधू ॥ ९ ॥
कारण कीला पिसवै केरा। चक्की घुरमत ताहि दरेरा ॥१०॥
बिनु रक्षकको लेइ बचाई। कीला चक्की सब बिलगाई ॥११॥

शब्दार्थ — आदि = आरंभ; सृष्टि। रंधू = रंध्र, छेद, दोष। संधू = संधि, त्रुटि, मूल। घुरमत = घूमता है।

भावार्थ — उस अद्वैत ब्रह्म में जगत उत्पन्न होने की इच्छा रूपी छिद्र या दोष है जो जीव को पुनः सृष्टि में पतित करने का कारण है। परन्तु ब्रह्मवाद की यह त्रुटि लोग नहीं समझ पाते ॥९॥ ब्रह्मरूपी कीला जीवों को बचाने का कारण नहीं, किंतु पीसने का कारण है। अतएव यह अज्ञानचक्की जीवों को रगड़ते हुए पीसती जाती है ॥१०॥ जो इस अज्ञानकृत चक्की और उसके कीला आदि को तोड़-फोड़कर उसे दूर करदे ऐसे विवेकी पारखी संतरूपी रक्षक के बिना इस भयंकर चक्की से जीवको कौन बचा सकता है? ॥ ११ ॥

साखी—चक्की कठिन संसार जो, सदा रहै घुरमाय।
निज झाँईं भरमायके, चूर भया समुदाय ॥ ९१ ॥

शब्दार्थ — घुरमाय = घूर्णन, घूमना, चक्कर खाना। चूर = चूर्ण, डूबा हुआ, बेसुध, पस्त।

भावार्थ — मनुष्य के मनमें अज्ञान की भयंकर चक्की सदैव घूमती रहती है। अपनी ही कल्पना के प्रतिबिंब में असावधानी से भ्रमकर संसार के प्रायः सब लोग बेसुध हो रहे हैं ॥ ९१ ॥

एक अनंत निज भूलमें, कारण संधि न सूझ।
शब्दातीत चिद गावहीं, परख बिना नहिं बूझ ॥ ९२ ॥

शब्दार्थ — शब्दातीत = शब्द से परे। चिद = चिद्, चेतन।

भावार्थ — अपने स्वरूप की भूल के कारण एक ब्रह्म से अनेकात्मक जगत का उत्पन्न होना अथवा अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि एक-अनेक के भ्रम फैले हैं। परन्तु इन कल्पनाओं का कारण स्वरूपभूल ही है, यह त्रुटि मनुष्य नहीं समझ पाता। लोग अपने स्वरूप से पृथक कोई तथाकथित सर्वाधार चेतन का वर्णन करते हैं जिसे शब्दों से परे बतलाते हैं। परीक्षादृष्टि न होने से उन्हें यह नहीं समझ पड़ता कि जिसका हम वर्णन करते हैं वह शब्दमय ही है, और जो शब्द से परे है वह मैं ही हूँ ॥ ९२ ॥

सो प्रकाश जो कसर नहीं, धोखा काहि समाय।
चिदानंद अनुमान नहीं, बिनु गुरु नहीं बुझाय ॥ ९३ ॥

शब्दार्थ — कसर = त्रुटि, दोष। धोखा = भुलावा, भूल।

भावार्थ — वह ज्ञान का अखण्ड प्रकाश है जहाँ किसी प्रकार त्रुटि नहीं है,

फिर ऐसे पुरुष में भूल कैसे प्रवेश करेगी ? उनको अपने स्वरूप से पृथक किसी कल्पित चेतनानन्द का अनुमान एवं कल्पना नहीं रहती। परन्तु बिना यथार्थ पारखी सद्गुरु की शरण पाये ऐसी बातें समझ में आना कठिन है ॥ ९३ ॥

जतसारी लगनियाँ–१

धरती अकाश बनल दोनों जतवा।
किलवा सुमेरु बिच लागल रेकी ॥ १ ॥

शब्दार्थ — जतवा*जाँत या जाँता। किलवा = कील, खूँटा।

भावार्थ — पृथ्वी और आकाश इन दोनों पल्लों के जाँत में सुमेरु पर्वत का खूँटा लगा है ॥१॥

विशेष — पृथ्वी में बीज पड़कर उगता है और आकाश से वर्षा द्वारा उसका सिंचन होता है। इस दृष्टि से वीर्य धारण कर संतान को जन्म देने वाली नारी नीचे का पाट तथा वीर्यसिंचन करने वाला पुरुष ऊपर का पाट इन दोनों से संसार की चक्की है, जिसमें परस्पर कामवासना का खूँटा लगा है, जो खानीभाग में है।

सगुण नीचे का पाट और निर्गुण ऊपर का पाट। या हठयोग नीचे का पाट और राजयोग ऊपर का पाट। अथवा वाममार्ग नीचे का पाट और दक्षिणमार्ग ऊपर का पाट लगकर वाणी एवं कल्पना की चक्की बनी है। इनमें पक्का निश्चय ही कील है।

केहु दिहल गेहुँवा केहु रे दौरिया।
केहुरे पठावल जतसारि रेकी ॥ २ ॥

---

* टिप्पणी :—धरती-आकाश दोनों जाँता बने हैं। जिसमें सुमेरु पर्वत की कील लगी हुई है ॥ १ ॥ किसने गेहूँ दिया, किसने टोकरी दो तथा किसने गाने का गीत बताया ? ॥ २ ॥ सासु ने गेहूँ दिया, ननद ने टोकरी दी तथा कुल गोत्र वाले गोत गाने को सिखाया ॥ ३ ॥ जल्दी-जल्दी झींका डालकर गेहूँ पीस लो, क्योंकि देवर भूखा है और भैया पहुना आये हैं ॥४॥ परन्तु हाय ! जाँता नहीं चलता; मकरी नहीं गड़ती, अतः कामिनी हथड़ा को पकड़कर रोने लगी ॥५॥ परदेश गया हुआ उसीका पति घोड़ा पर चढ़कर आया और पूछने लगा कि किसकी पत्नी रोती है ? ॥ ६ ॥ कामिनी अपने पति को पहिचानकर और उसे उलाहना देते हुए कहने लगी कि तुम्हारे जाँघ थक गये बाँहमें घुन लग गये। तुम्हारे होते हुए मैं रोती हूँ ॥७॥ तब वह पुरुष अपनी पत्नी को पहिचानकर घोड़ा से उतरा और उसे अपने जाँघोंपर बैठाकर वह अपने दुपट्टे से उसके आँसू पोछने लगा ॥ ८ ॥ कामिनी ने कहा हे स्वामी ! आप का दुपट्टा मोटा होने से दरदरा है अतः गड़ता है, इसलिये हमारी साड़ी के अँचरे से हमारा आँसू पोछिये ॥ ९ ॥ संसारी लोग इस प्रकार प्रेम दिखाये, तो कामिनी ने कहा अब ऐसा भारी जाँता नहीं पीसूँगी॥१०॥

शब्दार्थ— गेहुँवा = गेहूँ, तात्पर्य में ईश्वर का ज्ञान। दौरिया = दौरा, दौरी, टोकरी, तात्पर्य में प्रेम। जतसारि = जँतसर या जँतसारी, वह गीत जो चक्की पीसते समय स्त्रियाँ गाती हैं, तात्पर्य में कर्म करने की सीख।

भावार्थ — किसने गेहूँ दिया और किसने टोकरी दी तथा किसने गीत गाने का तरीका बताया ? अर्थात किसने ईश्वर का ज्ञान दिया, किसने उसमें प्रेम लगाने की प्रेरणा दी तथा किसने कर्म करने की सीख दी ?॥ २॥

सासु दिहल गेहुँवा ननदी दिहल दौरिया।
गोतनी पठावल जतसारि रेकी ॥ ३॥

शब्दार्थ — सासु = संशय लगाने वाले भूलेगुरु। ननदी = वे भक्त जिनका नेह-प्रेम ईश्वर में लगा है। गोतनी = गोत्र या वंश परम्परा वाले।

भावार्थ — संशय लगाने वाले भूले-गुरुओं ने ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान दिया, और ईश्वर के प्रेमी भक्तों ने उसके लिये प्रेम उत्पन्न किया तथा कुल-गोत्र वाले सात्विक मनुष्य अन्तःकरण की शुद्धि के लिये यज्ञ, दान, तीर्थाटन आदि कर्म करने की सीख दिये॥ ३॥

चोखे चलु जतुवा झमकि लेहु झिकवा।
देवरा भुखल भैया पाहुन रेकी ॥ ४॥

शब्दार्थ — चोखे = तेज। जतुवा = जाँत। झमकि = चमाचम, जल्दी-जल्दी। झिकवा = झींका, अन्न की वह मात्रा जो पीसने के लिये चक्की में एक बार डाली जाय। देवरा = साधारण देवता; देवर, पति का छोटा भाई।

भावार्थ — (कर्मी गुरु उपदेश करते हैं) जाँता को तेज चलाओ और जल्दी-जल्दी ईश्वर के नामजप का झींका डालो। देवता या ईश्वर केवल भाव का भूखा है; अतः तुम अपना भाव प्रदर्शित करो। हे भैया ! तुम इस नरतन में दो दिन के लिये पहुना के समान आये हो। शीघ्र भजन कर लो॥ ४॥

जतवो न चलई मकरीवो न रवई।
हथड़ा धईले कामिनि रोवै रेकी ॥ ५॥

शब्दार्थ — मकरीवो = मकरी, जाँते की कील के ऊपर लगायी जानेवाली एक लकड़ी। रवई = गड़ जाना। हथड़ा = जाँत में लगी वह लकड़ी जिसे पकड़कर पीसते हैं। कामिनि = ईश्वर की कामना रखने वाले भक्त।

भावार्थ — यज्ञादि कर्म का जाँता भारी होने से वह नहीं चलता; और उस जाँते में चित्त रूपी मकरी नहीं दृढ़ होती। फलतः ईश्वर के आकांक्षी भक्त कर्म रूपी हथड़ा को पकड़कर बैठे रोते हैं॥ ५॥

घोड़वा चढ़ल रामा करहिं पुछरिया ।
केकरि तिरिया रोवै जतसारि रेकी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — रामा = कर्मीगुरु । तिरिया = स्त्री, कामिनि; तात्पर्य में भक्त ।

भावार्थ — कर्म के घोड़ा पर बैठे हुए कर्मी गुरु आये और पूछने लगे कि तुम किसके भक्त व शिष्य हो ? और क्यों रो रहे हो ? ॥ ६ ॥

जाँघ तोर थाकेउ बहियाँ घुन लागेउ ।
तोहरे अछत रोवै कामिनि रेकी ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — जाँघ = ऊरु; ज्ञानबल । बहियाँ = हाथ; उपदेश ।

भावार्थ — (भक्त ने कहा) हे गुरुमहाराज ! आपके ज्ञानबल शिथिल हो गये और उपदेश दुर्बल हो गये । आपके रहते हुए मेरी यह दुर्दशा है ॥ ७ ॥

विशेष — ऐसा संयोग कि उन गुरुमहाराज का ही वह कर्मी भक्त शिष्य था । उसने उन्हें उलाहना दिया कि महाराज ! आपके कर्ममार्ग में चलते हुए भी हमें कोई लाभ नहीं हुआ । आपके रहते हुए हमारी यह दुर्दशा है ।

घोड़वा से उतरि रामा जँघिया बइठावल ।
अपने पटुकवा लोरवा पोछहि रेकी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — पटुकवा = दुपट्टा; चद्दर । लोरवा = आँसू ।

भावार्थ — गुरु महाराज कर्म के घोड़ा से उतरकर भक्त को अपने ज्ञानरूपी जाँघ पर बैठा लिये और अपने उपदेश के चद्दर से शिष्य के आँसू पोछने लगे ॥ ८ ॥

विशेष — गुरुमहाराज ने देखा कि भक्त का हृदय कर्म करते-करते शुद्ध हो गया है अतः उसे आत्मा-परमात्मा की एकता का ज्ञान दिया ।

तोहरा पटुकवा प्रभु दरदरवरिया ।
हमरे अचरवा लोरवा पोछहु रेकी ॥ ९ ॥

शब्दार्थ — दरदरवरिया = दरदरा, कड़ा । अचरवा = स्त्री की साड़ी का ओढ़ने का भाग ।

भावार्थ — (शिष्य या भक्त ने कहा) हे गुरुमहाराज ! आप ईश्वर तक पहुँचे हुए पुरुष हैं, इसलिये आपका ज्ञान खरा है, वह तत्काल हमारे योग्य नहीं है । इसलिये हमारी योग्यता के अनुसार हमें उपदेश दो । धीरे-धीरे या क्रमशः आत्मा-परमात्मा की एकता का उपदेश करो ॥ ९ ॥

दास कबीर यह गावल लगनियाँ ।
बहुरि न आइब जतसारि रेकी ॥१०॥

शब्दार्थ — दास कबीर = कर्मी गुरु-चेले ।

भावार्थ — कर्मी गुरु-चेले मिलकर यह ईश्वर से मिलने का कर्मगीत गाये; और कहने लगे कि अब हम पुनः संसार में कर्म करने नहीं आयेंगे; अपितु भगवान के धाम में चले जायेंगे ॥ १० ॥

विशेष — उपर्युक्त लगनियाँ में कर्ममार्ग का वर्णन हुआ है । अगली लगनियाँ में उपासनामार्ग की चर्चा करते हैं ।

जतसारी लगनिया—२

रुइया ओटि ओटि कइले गुनावन ।
घर नहिं खरचि दोबरी धुनावन ॥ १ ॥

शब्दार्थ — रुइया* = रूई,कपास । ओटि = ओटना,कपास के बिनौले (उसके बीज) को अलग करना, (इसके लिये चरखी होती है); तात्पर्य में पढ़ना । गुनावन = चिंतन । घर = अंतःकरण । खरचि = खर्च , शुद्धि, ज्ञान-भक्ति आदि । दोबरी = दुबारा । धुनावन = रूई धुनना, वाणी विचार ।

भावार्थ — उपासकों ने प्रेमलक्षणा भक्ति की वाणी को पढ़-पढ़ कर उनका मनन किया, और अंतःकरण की शुद्धि तथा भगवत्प्राप्ति के सम्बल पाने के लिये गुरुओं के पास दुबारा उपासनापरक वाणी के विचार के लिये गये ॥ १ ॥

---

* एक स्त्री रूई को ओटकर घर के खर्च के लिए सोचकर उसे धुनाने ले गयी ॥ १ ॥ उसने सोचा कि यदि यह सब नहीं करेंगी तो कैसे कपड़े पहनने को मिलेंगे तथा कैसे दिन कटेंगे ॥ २ ॥ उसने एक टका का चरखा बनाया । तथा एक पैसा का तकली तथा चमरख लाया और एक अधेला का धुनने और माँजने (साफ करने) का साधन लाया ॥ ३, ४ ॥ वह महिला अच्छी तरह रूई धुनाकर सरलता से पिउनी बना ली ॥ ५ ॥ पुनः चुटकी से सम्हालकर उसने सूत काता और सूत में एक भी गाँठ नहीं पड़ने दी ॥ ६ ॥ पुनः कपड़ा बुनने लगी, उसने एक तागा डाला तो दूसरा टूट गया । इतने में उसे चीलर या चीलड़ काट लिया वह चौंक पड़ी ॥ ७ ॥ तब वह धुनिया को गाली देने लगी कि उसने रूई ठीक से धुना नहीं, वह कच्ची रह गयी है ॥ ८ ॥ धुनिया ने कहा—मेरा दोष नहीं, अपितु तेरा दोष है; क्योंकि एक तो तू थोड़ी उम्र की होने से अनुभवहीन है, पुनः आरामतलब होने से आलसी है और तीसरे सफाई न रखने से तेरे कपड़ों एवं सिर में चीलरढीलो हैं, तू उन्हीं से खेल कर रही है । उनके काटने से तू चौंक कर तागा तोड़ डाली है ॥ ९ ॥ अतः सावधान होकर अपना आचरण सुधारती नहीं हो, दूसरे को क्यों गाली देती हो ? ॥ १० ॥

कैसेकै लुगरवा पहिरव ।
कैसेकै दिन खेपव रेकी ॥ २ ॥

शब्दार्थ — लुगरवा = लुगरा, साड़ी; प्रेमलक्षणा भक्ति की साड़ी । खेपव = खेपना, बिताना ।

भावार्थ — (उपासक अपने गुरु से पूछता है) हे गुरुमहाराज ! हम प्रेमलक्षणा की साड़ी कैसे पहनेंगी ? और जब तक भगवान के दर्शन नहीं हों तब तक हम किस प्रकार विरहभावना से दिन बितायेंगी ? ॥ २ ॥

विशेष — उपासक गुरु ने शिष्य को समझा दिया कि भगवान को अपना पति मानकर स्वयं को उनकी पत्नी समझो । इस प्रकार उपासकगुरु रूप धुनियाद्वारा वाणी का कपास धुना गया । अब उपासक उसकी साड़ी बनाने की चेष्टा करेगा ।

एक टकाके चरखा बनावल ।
ढेगुवहि टेकुवा चमरख लावल ॥ ३ ॥
एक अधेला के धुनामल्हे माजवरेकी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — टका = चाँदी का पुराना सिक्का, रूपया; दो पैसे के बराबर ताँबे का सिक्का; तात्पर्य में ईश्वर या ब्रह्म । ढेगुवहि = ढेउआ, पैसा; धन; तात्पर्य में एक ईश्वर । टेकुवा = टेकुआ, तकला या तकली, सूत कातने और लपेटने के काम में आने वाली चरखी से लगी लोहे की सलाई, तात्पर्य में टेक, हठ, पक्ष । चमरख = चमड़े के दो पट्टे में टेकुआ को बैठाये रहते हैं, तात्पर्य में प्रेम और विरह । अधेला = पैसे का आधा, तात्पर्य में अर्धमात्रा, ब्रह्म । धुनामल्हे = धुनने और माँजने के साधन, धुन में मल्हराना, चुमकारना, स्नेह से हाथ फेरना तात्पर्य में प्रेमलक्षणा भक्तिपूर्वक ईश्वर का आलिंगन करना ।

भावार्थ — ब्रह्म एक टका के समान है, जिसमें परा-अपरा प्रकृतियाँ अर्थात चेतन एवं जड़ दो पैसे के समान हैं । इस मान्यता का एक वाणी रूपी चरखा बना है, जिसे सब उपासक कातते हैं और ईश्वर का पक्ष पकड़कर उसके प्रेम तथा विरह में निमग्न हैं ॥ ३ ॥ और प्रेमलक्षणा भक्ति पूर्वक अर्धमात्रा स्वरूप ईश्वर या ब्रह्म के आलिंगन में तत्पर हैं ॥ ४ ॥

विशेष — एक ब्रह्म की वाणीका चरखा बनाया, जिसमें जड़-चेतन मिश्रित हैं । ब्रह्मरूपी एक पैसे का पक्षरूपी तकला और प्रेम तथा विरह रूपी चमरख लाकर एवं अर्धमात्रा ब्रह्म या परमात्मा का चिंतनरूपी माँजनी देकर सूत कातने की तैयारी करने लगे जिसकी प्रेमलक्षणाभक्ति की साड़ी बनेगी ।

उलटि पलटि धनी रुइया धुनावल ।
सहज स्वरूपी पिउरी बटावल ॥ ५ ॥

चुटकी सँवारि सूत कातल ।
ऐठनौ न लागल रेकी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **धनी**=धनि, युवती, वधू , तात्पर्य में अपने को भगवान की पत्नी मानने वाला उपासक । **रुइया** =कपास, वाणी । **पिउरी** =पिउनी, पूनी, धुनी हुई रुई की मोटी वत्ती जो सूत कातने के काम में आती है, तात्पर्य में भगवान की ज्योतिर्मूर्ति । **बटावल**=बनाया । **चुटकी**=किसी वस्तु को उठाने के लिये अँगूठे और तर्जनी उँगली को सटाना, तात्पर्य में चतुष्टय अंतःकरण । **सँवारि** =सँवारना, सजाना, ठीक करना । **सूत**=धागा, तात्पर्य में ध्यान । **ऐठनौ**=ऐंठन, घुमाव, गाँठ, तात्पर्य में अहंकार ।

भावार्थ — पिया परमात्मा की विरहिनी उपासक ने अपने गुरु से प्रेमलक्षणा वाणी को भलीभाँति कथन कराके मनन कर लिया, और निरन्तर अभ्यास द्वारा सहजस्वरूपी ज्योतिर्मयपरमात्मा की मूर्ति मनमें निर्धारित करली ॥ ५ ॥ तदनन्तर अंतःकरण को शुद्ध करके उसमें ध्यान लगाया और थोड़ा भी अहंकार नहीं आने दिया ।६।

विशेष — भक्ति की वाणी का कपास धुना गया । उसकी भगवत्मूर्ति रूपी पूनी बनायी गयी, और अहंकार गाँठरहित ध्यानरूपी सूत काता गया ।

एक तगवा नौलो दूसर गैल टूटी ।
चिलरे काटल उठल टिहूकी ॥ ७ ॥
तब धुनियहि गरियावल ।
मोरि रुइया काचल रेकी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — **तगवा**=तागा, तात्पर्य में ईश्वरध्यान । **चिलरे**=चिल्लड़ तात्पर्य में काम, क्रोधादि । **टिहूकी**=टिहुक, चमक, चौंकना । **धुनियहि**=कपास धुनने वाला धुनिया, तात्पर्य में उपासक गुरु । **गरियावल**=गाली दी, उलाहना दिया ।

भावार्थ — एक भगवान का ध्यान करने से दूसरा संसार का ध्यान टूट गया; अतः कुछ प्रेममग्नता आयी । इतने में कामादि वृत्तियों ने उत्तेजना कर दी और उपासक ध्यान से चौंक गया ॥ ७ ॥ तब वह गुरु के पास जाकर उन्हें उलाहना देने लगा कि आपने मेरी ईश्वरविषयक भक्ति का ज्ञान या उपदेश कच्चा रखा है, तभी मैं ध्यान से गिर जाता हूँ ॥ ८ ॥

विशेष — प्रेमलक्षणा की साड़ी बीनते समय भगवद्-ध्यान का तागा डाला तो संसार का तागा टूट गया और साड़ी बनने लगी । इतने में कामादि वृत्तियाँ उत्तेजित करके साढ़ी बनाने में विघ्न उपस्थित करदीं अतः साधक गुरुउपदेश की दुर्बलता समझ कर उन्हें उलाहना देने लगा । इस प्रकार उलाहना सुनकर उपासक गुरु कहते हैं —

एक तूहि नारि अलप सुकुमारी।
चिलरे ढिलवासो रचल धमारी ॥ ९ ॥
अपनी रहनिया नहिं चेतहु।
केहु गारी पारहु रेकी ॥१०॥

शब्दार्थ — नारि = अपने को भगवान की पत्नी मानने वाला उपासक। अलप = अल्प, कम उम्र की, तात्पर्य में नया साधक। सुकुमारी = कोमलांगी, तात्पर्य में आरामतलब। चिलरे = चिल्लड़, कपड़े में पड़ने वाला कीड़े। ढिलवा = ढील, जूँ, बाल में पड़ने वाला कीड़ा, चिलरे-ढिलवा का तात्पर्य काम-क्रोधादि। धमारी = धमाचौकड़ी (उछलकूद) मचाने वाला, होली की क्रीड़ा, तात्पर्य में विषयानंद। रहनिया = रहनी, रहन-सहन, आचरण। पारहु = देते हो।

भावार्थ — एक तो तुम थोड़े समय के साधक हो, दूसरे आरामतलब होने से आलसी हो तथा तीसरे काम-क्रोधादि में क्रीड़ा करने में आनन्द मानते हो ॥ ९ ॥ इस प्रकार अपना आचरण तो सुधारते नहीं हो, फिर हमें क्यों उलाहना देते हो ? ॥ १० ॥

दास कबीर यह लगनी गावल।
साधु संत सबके मन भावल ॥११॥
अहो साधो लेहु न विचारि।
परमपद पावल रेकी ॥१२॥

शब्दार्थ — दासकबीर = उपासक गुरु-चेले। लगनी = लगन-प्रेम का गीत।

भावार्थ — उपासक गुरु-चेलों ने ईश्वर की प्राप्ति के लिये तथा प्रेमलक्षणा भक्तिद्वारा उनको रिझाने के लिये यह प्रेमगीत गाया है, जो भगवद्विरही सभी साधु-संतों के मन को अच्छा लगता है ॥ ११ ॥ हे विवेकी-पारखी संतो ! विचार करलो, ये उपासक लोग यही परमपद पाना मानते हैं ॥ १२ ॥

विशेष — ग्रंथकर्ता का आशय है कि अपने चेतन स्वरूप से पृथक एक कल्पित मूर्ति में मन मुग्ध करके अपने आपकी स्थिति से दूर हो जाना परमपद नहीं है। परमपद तो अपना निर्विकार शुद्ध चेतन स्वरूप है जिसमें स्थिति तब होती है जब समस्त बाह्य अध्यास छोड़ दिये जायँ।

उक्तपद में उपासनामार्ग का वर्णन हुआ, आगे योगमार्ग का वर्णन आता है।

जतसारी लगनिया—२

रामनामके इहै जतसरिया।
अहो सजनी पीसि लेहु बाट की साँभर रेकी ॥ १ ॥

तन करु जतवा मन करु किलवा।
गुरु के शब्द करु हाथड़ रेकी ॥ २ ॥

शब्दार्थ — जतसरिया = जँतसर, जँतसारी; गीत। बाट = मार्ग, ईश्वरप्राप्ति का पथ। साँभर = संवल, पाथेय—वह भोज्य वस्तु जिसे पथिक राह में खाने के लिये अपने साथ ले जाता है; राहखर्च, तात्पर्य में योगाभ्यास।

भावार्थ — राम नाम या सोहं का श्वास के साथ में जप करना योगमार्ग की जँतसारी या गीत है। हे सज्जनो! ईश्वर प्राप्ति के पथ का पाथेय योगाभ्यास की पिसान पीस लो ॥ १ ॥ पिण्ड-ब्रह्माण्ड को मिलाकर शरीर को जाँता बनालो और मन को खूँटा तथा योगी गुरुके उपदिष्ट सोहं शब्द को हथरा (हैंडिल) कर लो। तात्पर्य यह कि पिण्ड से वायु को ब्रह्माण्ड में चढ़ाकर मनकी दृढ़ता से सोहं में ध्यान लगाओ ॥ २ ॥

चित करु गेहुँवा प्रेम की दौरिया।
समुझि समुझि झिकवा नावहु रेकी ॥ ३ ॥
अररि दररि जो पिसलेगे सजनी।
अहो सजनी होयबेहु पिया की सोहागिनि रेकी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — दौरिया = टोकरी। अररि दररि = जिसकिसी प्रकार। सोहागिनि = सुहागिन—वह स्त्री जिसका पति जीता हो, सधवा, सौभाग्यवती।

भावार्थ— प्रेम की टोकरी में चित्त रूपी गेहूँ भर लो और प्रति श्वास में सोऽहं मंत्र को समझ-समझ कर चित्त का झींका डालो ॥३॥ हे सज्जनो ! जिस किसी प्रकार भी श्वासा में सोऽहं का पिसान पीस लोगे, तो पति परमात्मा की सौभाग्यवती पत्नी का स्थान ग्रहण करोगे ॥४॥

मन भर पिसलेहु सहज उठावलेहु।
गुरुके शब्द करु चालन रेकी ॥ ५ ॥
दास कबीर यह गावल लगनियाँ।
अहो सजनी गुरु के चरण चित लावहु रेकी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — चालन = चालना, छानना; आचरण में चलना।

भावार्थ — मन भर गेहूँ पीस कर उसे सहज ही उठा लिया गया और उसे गुरुके शब्द रूपी चलनी से चाल डाला गया। तात्पर्य यह कि योगाभ्यास द्वारा श्वासा में सोऽहं की सिद्धि करके मनको पूरा एकाग्र कर लिया और साधक अपने आप को सहज समाधि तक उठा लिया। इस प्रकार योगी गुरु के उपदेशों के अनुसार चल कर व्यक्ति परमात्मा को पा गया ॥५॥ योगी गुरु-चेले यह योगद्वारा परमात्मा में लगन का गीत

गाये हैं; और वे परस्पर कहते हैं कि योगी-गुरु के चरणों में मन लगाओ जिससे योग की सिद्धि हो ॥६॥

विशेष — ऊपर योगमार्ग का वर्णन हुआ अब आगे ज्ञानमार्ग का वर्णन करते हैं।

जतसारी लगनिया–४

सुरत मकरिया गाड़ लेंगे सजनी।
अहो सजनी दुनों रे नैन ज्योतिया लावहुरेकी ॥
मनघुर मनघुर मनघुर सजनी।
अहो सजनी एक दिन चाँद छिपावल रेकी ॥ २ ॥

शब्दार्थ — सुरत = याद, ध्यान। मकरिया = मकरी, जाँते की कील के ऊपर लगाये जाने वाली एक लकड़ी। दुनों नैन = दोनों नेत्र विवेक-विचार। मनघुर = मन घूमने वाला एवं भ्रमणशील है। चाँद = मन; चन्द्रमा; मनका देवता चंद्रमा माना है, इसलिये यहाँ चाँद से मन का अर्थ है। छिपावल = छिप जायगा; शांत हो जायगा।

भावार्थ — हे सज्जनो! ध्यान रूपी मकरी को ज्ञानमार्ग की चक्की पर गाड़ लो और विवेक-विचार रूपी नेत्रों से ब्रह्म-ज्योति के दर्शन करो ॥१॥ सज्जनो! यह मन रज, सत एवं तम वृतियों में घूमने वाला बड़ा चंचल है; परन्तु निरन्तर साधना से एक दिन यह अवश्य शांत हो जायगा ॥२॥

विशेष — ब्रह्मज्ञानी गुरु-द्वारा ज्ञानरूपी चक्की पर ध्यान की मकरी गाड़ कर ज्ञान चक्की को चलाने का आदेश है।

संगहि अछत पिया भरम भुलैलू।
अहो सजनी मोरे लेखे पिया परदेशहि रेकी ॥ ३ ॥
दिन दश रजनी सुख करु सजनी।
अहो सजनी ऐसन समैया नहिं पायबरेकी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अछत = रहते हुए। पिया = परमात्मा। रजनी = रात; अज्ञान; मोह।

भावार्थ — (ब्रह्मज्ञानी साधक परस्पर कहते हैं) सर्वत्रपूर्ण परमात्मा साथ में होते हुए भी हम भ्रमवश भूले थे। अहो, हे सज्जनो! अज्ञानदशा में हमारी समझ में परमात्मा किसी लोक-लोकान्तर में था ॥३॥ हे मित्रो! दश दिन के जीवन में अज्ञान-रात्रि को दूर करके ब्रह्मानन्द में विहार करो। ऐसा समय पुनः मिलना कठिन है ॥४॥

नौ दश नदियाँ अगम बहै सोतिया।
अहो सजनी बीच में पुरइन दह लागल रेकी ॥ ५ ॥

फूल एक फुलल अनूप फूल है सजनी ।
अहो सजनी तेहि फूल भँवरा लोभायल रेकी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — नौ = व्याकरण के नौ भाग-सारस्वत, कौमुदी, चन्द्रिका, मनोरमा, भाष्य, शेखर, मंजूषा, भूषण और शब्दरत्न । दश = चार वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्ववेद; छः शास्त्र-सांख्य, मीमांसा, वैशेषिक, योग, न्याय तथा वेदान्त । सोतिया = स्रोत; अठारह पुराण, उपपुराण, ब्राह्मणग्रंथ, उपनिषद, महाभारत, कुरान, बाइबिल आदि अपार वाणी विस्तार । पुरइन = कमल; तात्पर्य में पुराण पुरुष चेतन-जीव । दह = नदी का वह भाग जहाँ पानी बहुत गहरा हो । फूल = ब्रह्म । अनूप = विलक्षण । भँवरा = मन ।

भावार्थ — व्याकरण, वेद, शास्त्र, पुराण, उपपुराण, उपनिषद, महाभारत, कुरान, बाइबिल आदि अपार वाणी रूपी पानी की बड़ी-बड़ी नदियाँ व असंख्यों स्रोत संसार में बहते हैं; और इसकी गहरी भ्रांति में जीव गोता लगा रहे हैं ॥ ५ ॥ इस पुराण पुरुष चेतन की कल्पना में एक ब्रह्म फूल खिला है जो तथाकथित स्वजाति, विजाति एवं स्वगतभेद रहित होने से विलक्षण है । बड़े बड़े ज्ञानियों के भी मनभँवरे उसी में विमुग्ध हैं ॥ ६ ॥

सब सखियाँ मिलि एक घर जायब ।
अहो सजनी समुद्र के लहरि समायब रेकी ॥ ७ ॥
दास कबीर यह गावल लगनियाँ ।
अहो सजनी कब धौं पिया घर जायब रेकी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — एकघर = ब्रह्म । धौं = भला ।

भावार्थ — (ब्रह्मवादी जन परस्पर कहते हैं) सभी जड़-चेतन एक में मिलकर एक ब्रह्म में मिल जायेंगे; और जैसे असंख्यों लहरियाँ समुद्र में समा जाती हैं वैसे हम सब ब्रह्म में लीन हो जायेंगे ॥ ७ ॥ ब्रह्मज्ञानी गुरु-चेले यह ब्रह्मज्ञान का गीत गाते हैं कि हे मित्रो ! भला, वह दिन कब होगा जब हम सब पति परमात्मा में जाकर घुलमिल जायेंगे ! ॥ ८ ॥

साखी— लगनियाँ गावहिं साधुजन, अपनी खबरि न जान ।
कूट छाँट कोई अनकुटे, सब जीव भये पिसान ॥९४॥

शब्दार्थ— लगनियाँ = अपने से पृथक किसी ईश्वर-परमात्मा से मिलने का गीत ।

भावार्थ — प्रायः सभी सम्प्रदाय के साधु अपने से पृथक किसी पति-परमात्मा से मिलने का गीत गा रहे हैं । उन्हें अपने आप की वास्तविकता का पता नहीं है । इस प्रकार सब लोग कल्पना एवं अज्ञान की चक्की में कोई कूट-छाट करके तथा कोई

अनकुटे ही डाल दिये गये हैं और सब पिस करके पिसान हो गये हैं । तात्पर्य है कि कोई तो स्वयं अपनी भ्रांति के वश होकर और कोई दूसरे के कहाकुही में पड़कर अज्ञान चक्की में पड़े पीसे जाते हैं ॥ ९४ ॥

चौपाई—३

अस जतसारि विकट सो चाला । जीव विकल तेहि मध्य बेहाला ॥१॥
परख यथारथ प्रभु परकासू । कठिन महातम काल विनासू ॥२॥

शब्दार्थ — जतसारि = जाँते की गीत; अज्ञानचक्की की बात । कठिन = कष्ट । काल = अज्ञान; कल्पना ।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से अज्ञान एवं कल्पना की चक्की की बात है जिसके सभी ढंग दुखदायी हैं । उसके बीच में पड़े हुए सभी जीव दुखी हैं ॥ १ ॥ प्रभु कबीर ने तो यथार्थ पारख का प्रकाश किया है जो खरा न्याय है; और अन्य अज्ञान तथा कल्पना-जनित माहात्म्य की बातें तत्त्वतः कष्टदायी तथा पतनकारी हैं ॥ २ ॥

विशेष — सद्गुरु कबीर का पारखज्ञान निष्पक्ष न्याय पर टिका है । उसमें उलूल-जुलूल कल्पना तथा लम्बा चौड़ा माहात्म्य नहीं है; अपितु सीधा सादा वास्तविक तथ्य है ।

कालचक्र चक्की कठिनाई । पारख पाये जात विलाई ॥३॥
पारखबल बहियाँ भौ जेही । सब विधि चीन्ह परा खल द्रोही ॥४॥

शब्दार्थ — बहियाँ = बाँह, हाथ ।

भावार्थ — अज्ञान एवं कल्पनाचक्र की चक्की दुखदायी है; परन्तु सारासार की परख प्राप्त होते ही वह उड़ जाती है ॥ ३ ॥ जिसे निज पारख का बल तथा विवेकी सद्गुरु के बाहों का सहारा मिला, वह अज्ञान से ऊपर उठ जाता है; और उसे यह परखने में आ जाता है कि अज्ञान एवं विकारी मन सब प्रकार से दुष्ट तथा मनुष्य के शत्रु हैं ॥ ४ ॥

सुरत समान रही जेहि फांसा । उचटत ताहिं मिटत यम त्रासा ॥५॥
शरणागत प्रभु आये जोई । कालचक्रते बाँचे सोई ॥६॥

शब्दार्थ — फाँसा = बंधन । उचटत = उचट जाना; छूटना; मनका हट जाना यम = वासना; अज्ञान । त्रासा = त्रास, कष्ट ।

भावार्थ — पहले जिन खानी-वाणी बन्धनों को सुखरूप एवं कल्याणप्रद मानकर उनमें अपना ध्यान लगा था तथा आसक्ति बनी थी, पारखज्ञान पाने से उससे मन सर्वथा हट जाता है और उस व्यक्ति के अज्ञानकृत कष्ट समाप्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥ जो व्यक्ति पारखी सद्गुरु की शरण में आता है, वही कल्पना एवं भ्रांति के चक्कर से छूट जाता है ॥ ६ ॥

महाशून्य शून्य औ श्वासा। धरती सो सब काल विलासा॥ ७॥
चीन्हहु अंश अवस्था चारी। तुरियातीत कला सो भारी॥ ८॥

शब्दार्थ—महाशून्य = ज्ञानमार्ग; आकाश के समान ब्रह्म को महाशून्यवत मानकर उपासना करना। शून्य = योगमार्ग; वृत्ति को शून्य करके अचेती अवस्था या कल्पित ज्योति आदि में लीन होना। श्वासा = श्वास, उपासनामार्ग; श्वास के साथ भगवन्नामजप आदि करना। धरती = पृथ्वी, पार्थिव शरीर का कर्म मार्ग, यज्ञादि करना। काल = कल्पना। अवस्थाचारी = तुरीय, सुषुप्ति, स्वप्न तथा जागृति। कला = कल्पना।

भावार्थ—आकाशवत चेतन को मानकर उपासना करना, योगनिद्रा के तत्त्वों के प्रकाश में लीन होकर शून्यवृत्ति धारण करना, श्वास में नामजप आदि करना तथा स्थूल शरीर से हवन-यज्ञादि करना—ये सब कल्पना के विलास एवं क्रीड़ा हैं॥ ७॥ इनको क्रमशः तुरीय, सुषुप्ति, स्वप्न एवं जागृत अवस्था के अंश व अध्यास समझो। और इनके आगे जो तुरीयातीत दशा जलतरंगन्याय जड़-चेतन सब ब्रह्म होना माना है, वह और महान कल्पना है॥ ८॥

तत्त्वमसि ले बारह बानी। ग्रासन हेतु काल सहिदानी॥ ९॥

शब्दार्थ—बारहबानी = बारह वाक्य-क्षर, अक्षर, निःक्षर; जहत्-अजहत्, जहद-जहत्; तत्, त्वम्, असि तथा जीव, ईश्वर, ब्रह्म। काल = कल्पना। सहिदानी = लक्षण, पहिचान।

भावार्थ—तत्त्वमसि के सहित जितनी बारह वाणियाँ मानी गयी हैं; सब जीव के वास्तविक स्वरूप को ढँकने के काल्पनिक लक्षण हैं। अर्थात महा भुलावन वन हैं॥ ९॥

विशेष—क्षर कहते हैं नाशवान को, क्षर का अर्थ अज्ञान तथा ईश्वर भी करते हैं। यहाँ क्षर का अर्थ जीव, अक्षर का ईश्वर तथा निःक्षर का ब्रह्म करना उपयुक्त होगा।

जहत् लक्षणा उसे कहते हैं जिसमें पद या वाक्य वाच्यार्थ का त्यागकर उससे सम्बद्ध दूसरा अर्थ प्रकट करता है। अजहत् वह लक्षणा है जिसमें वाच्यार्थ का त्याग किये बिना अन्य अर्थ का बोध होता है। जहदजहत लक्षणा उसे कहते हैं जिसमें कुछ अर्थों या विषयों का त्याग कर किसी एक को ग्रहण किया जाता है।

साखी—पृथ्वी स्वासा शून्य जो, महाशून्य मन मान।
फँसे जीव व्याकुल फिरैं, पुनि पुनि सोई परवान॥ ९५॥

शब्दार्थ—परवान = प्रमाण; सत्य।

भावार्थ—कर्म, उपासना, योग तथा ज्ञान के काल्पनिक रूपों को ही लोगों का

मन स्वीकार कर लिया है। इनमें फँसकर मनुष्य दुखी होकर भटकते हैं और बारम्बार उन्हीं को ठीक समझ रहे हैं ॥ ९५ ॥

विशेष — पृथ्वी, श्वास, शून्य तथा महाशून्य इनके कर्म, उपासना, योग तथा ज्ञान अर्थ ऊपर वर्णन कर आये हैं। यों सत्कर्म, गुरु-सन्तों की उपासना, मनोनिग्रह रूप योग तथा स्वस्वरूप का यथार्थज्ञान उपादेय एवं ग्रहणीय हैं। यहाँ इनके काल्पनिक तथा हानिकारी रूपों का निरास किया गया है।

बिनु शरणागत परख गुरु, नहिं जीवन निस्तार।
सर्वोपर गुरु परख है, लहै तो होय उबार ॥ ९६ ॥

शब्दार्थ — **परख गुरु**=पारखी एवं निष्पक्ष विवेकी गुरु। **परख**=छानबीन एवं निर्णय करने की शक्ति, ज्ञान। **निस्तार**=पार पाना; पार जाना; छुटकारा, मुक्ति, उद्धार।

भावार्थ — यथार्थ पारखी सद्गुरु के सर्वतोभात्या शरणागत हुए बिना मनुष्यों का उद्धार नहीं हो सकता। गुरुपरख एवं पारखबोध सर्वोच्च है, यदि मनुष्य इसको प्राप्त करे तो उसका भ्रांतियों एवं बन्धनों से अवश्य छुटकारा हो जाय ॥ ९५ ॥

छन्द— २, ३

भवपार सब उतरन चहै, पुनि पुनि गहै यमजाल हो ॥
सुरति समानी जाहि तेरी, सोई परगट काल हो ॥
विश्वरूप निरंजन दुखद, खानी दुष्ट कराल हो ॥
महाशून्य शून्य औ स्वासा, पृथिवी कठिन फन्दा काल हो ॥ २ ॥

शब्दार्थ — **यमजाल**=मन एवं वासना के बन्धन। **सुरति**=सुरत, ध्यान, लक्ष्य। **निरन्जन**=ब्रह्म। **खानी**=विषय-भोग। **दुष्ट**=दोषपूर्ण। **कराल**=भयंकर।

भावार्थ — सब मनुष्य संसारसागर एवं जन्म-मृत्यु से पार होकर मुक्त होना चाहते हैं; परन्तु वे भूलवश बारम्बार मन एवं वासनाओं के बन्धनों को ही ग्रहण करते हैं। हे मनुष्य! अपने चेतनस्वरूप से पृथक जहाँ कहीं तुम्हारा ध्यान फँसा है अर्थात राग बना है वही तुम्हारे लिए प्रत्यक्ष दुःखदायी काल का जाल है। ब्रह्म विश्वरूप है ऐसा मानकर संसार का अध्यास ग्रहण करना एक ओर दुःखों का कारण है तो दूसरी ओर स्थूल विषयभोग एवं काम-वासना में फँसकर गृह, धन, परिवार, शरीर आदि में आसक्त होना दोषपूर्ण एवं दुखमय बन्धन है। पुनः चेतन को व्याप्त महाशून्य मानकर ज्ञानमार्ग, तत्वों की झलक में शून्यवृत्ति करके योगमार्ग, अपने स्वरूप से पृथक ईश्वर मानकर उसका प्रतिश्वास जप करना उपासनामार्ग एवं लोक-परलोक के भोगों की

प्राप्ति के लिए यज्ञादि करना कर्ममार्ग — ये सब कल्पना एवं अज्ञानजनित भयंकर बन्धन हैं ॥ २ ॥

बहु फंद अवस्था चारिपन, चहुँपहर चहुँ युग में फँसा ।
नाना विकट बन्धन तेहि है, समुझ तेरो दृढ़ गँसा ॥
चाहै छूटन तो परखि ले, यमजाल की जैसी दशा ।
सब मूरचा भरम खोइकै, शुद्ध होय जब संशय नशा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — अवस्था = जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय । चारिपन = बाल, कुमार, युवा, वृद्ध । चहुँ पहर = चार पहर, तीन घण्टे का एक पहर तथा चार पहर का दिन और चार पहर की रात । चहुँ युग = सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग । दृढ़ = गाढ़ । गँसा = गँसना, जकड़ना, कसना, बन्धन । मूरचा = मोरचा; जंग, अध्यास, आसक्ति ।

भावार्थ — जीव बहुत बन्धनों में बँधा है । चार अवस्थायें, चारपन, चारपहर चारयुग — इन सबके बीच में जीव के लिये नाना भयंकर बन्धन हैं । हे मनुष्य ! समझ, इन सब में तू गाढ़ रूप से बँधा हुआ है । यदि तू इनसे छूटना चाहता है तो इन अज्ञानकृत बंधनों की जैसी स्थिति है उसे ठीक से परख ले । जब तू सब भ्रम आसक्तियों तथा संदेहों का नष्ट कर देगा तब शुद्ध हो जायगा ॥ ३ ॥

विशेष— अवस्था, पन, पहर, युग आदि में ही वर्तमान रहकर अनेक मोह एवं भ्रमकृत बंधन जीव के सामने आते हैं । वस्तुतः इन सब में कोई अपने स्वरूप में नहीं है । अपने मूल चेतन स्वरूप से पृथक मोह करना ही स्वरूप स्थिति से पतित हो जाना है । अतएव— मुमुक्षु का कर्तव्य है कि वह सबका द्रष्टा रहकर सबसे अनासक्त हो जाय ।

१३— काल-जाल से छुड़ाकर स्वरूपज्ञान के लिये प्रेरणा

चौपाई— ४

प्रभु प्रसाद पारख दृढ़ पाये । विकट कला यमजाल छुड़ाये ॥ १ ॥
एक एक परखायव फाँसा । सो संक्षेप करौं परकासा ॥ २ ॥

शब्दार्थ— प्रसाद = निर्मलता, स्वच्छता; कृपा । दृढ़ = अविचल ।

भावार्थ— जो व्यक्ति पारखी सद्गुरु की कृपा से अविचल पारखपद पा जाते हैं, वे वासनाओं के जाल के भयंकर गुण से अपने आप को छुड़ा लेते हैं ॥१॥ हे जिज्ञासु ! उन बंधनों को एक-एक करके तुम्हें परख कराऊँगा और उनका संक्षिप्त स्वरूप दिखलाऊँगा ॥२॥

सो जीव बाँचि बाँचि यमत्रासा । शरणागत दृढ़ परख विलासा ॥ ३ ॥
भक्ति भाव प्रेम अधिकाई । परख लहत बल काल नशाई ॥ ४ ॥

शब्दार्थ— यमत्रासा = वासना एवं अज्ञान जनित कष्ट । शरणागत = शरण में आया हुआ । काल = अज्ञान, कल्पना !

भावार्थ— जो व्यक्ति रहनी सम्पन्न पारखी सद्गुरु की शरण एवं आश्रय में आकर अविचल पारख चेतन स्वरूप मे रमण करते हैं, वे वासनाजनित दुःखों से छूट-छूट कर मुक्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥ यथार्थ सद्गुरु, संत एवं स्वरूपज्ञान में श्रद्धा भाव एवं प्रेम की प्रगाढ़ता होने से परख की प्रबल शक्ति प्राप्त हो जाती है और अज्ञान नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

काल कला नहिं पावै ताके । भक्ति भाव गुरु पारख जाके ॥ ५ ॥
जाते उचाट होय घिन जानी । सुरति न जाय ताहि पहिचानी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ— उचाट = विरक्ति, उदासी । घिन = घृणा । सुरति = सुरत, ध्यान, लक्ष्य ।

भावार्थ— जिनके हृदय में वैराग्यवान सद्गुरु, संतों एवं पारखबोध में दृढ़ श्रद्धाभक्ति है, उनको मनकी कल्पनायें एवं अज्ञान नहीं बाँध सकते ॥ ५ ॥ हे मुमुक्षुओ ! उन विषयों तथा संसार के स्वप्नवत प्राणी-पदार्थों के सम्बन्ध की मलीनताओं को परख लो जिससे उनसे घृणा होकर विरक्ति हो जाय और उधर ध्यान न जाय ॥ ६ ॥

होय विराग फाँस यम देखी । प्रभु के पद दृढ़ प्रेम विशेषी ॥ ७ ॥
परम पारखी जीवन्मुक्ता । नहिं पावैं तेहि काल के उक्ता ॥ ८ ॥

शब्दार्थ— उक्ता = उक्त, कहा हुआ, कथित ।

भावार्थ— मन के मलीन वासनाजनित बंधनों को देख लेने पर उनसे पूर्ण वैराग्य हो जाता है और निष्काम एवं निर्मानमूर्ति सद्गुरु के चरणों में या स्वरूपस्थिति में दृढ़ एवं अत्यधिक प्रेम हो जाता है ॥ ७ ॥ जो सर्वोच्च पारखी एवं जीवन्मुक्त पुरुष हैं, वे केवल कल्पना से कही हुई बातों में नहीं फँसते ॥ ८ ॥

काल स्वभाव फंद विस्तारा । पकरत खात हंसन बेचारा ॥ ९ ॥
अपनी भक्ति अरुज्ञान दृढ़ाई । दुष्ट सोई साहेब कहलाई ॥ १० ॥

शब्दार्थ — काल = भ्रमित मन । हंसन = जीवों को । बेचारा = लाचार, विवश । साहेब = स्वामी ।

भावार्थ — भ्रमित मन का स्वभाव ही है बन्धन फैलाना और उसी में जीवों को फँसाकर तथा उन्हें विवश करके उनसे अपने अनुसार कराना ॥ ९ ॥ यह मन अपने

में ही भक्ति निश्चय कराता है, अर्थात जीव से अपनी भक्ति कराता है और अपना कल्पित प्रपंच ही कल्याणकर ज्ञान है ऐसा जीव की बुद्धि में दृढ़ करता है। अतः यह दुष्ट मन स्वयं सर्वोपरि स्वामी बन बैठा है।

वेद किताब कुरान पुराना। अनबनि भाँति रहा जहँड़ाना ॥११॥
मृत्यु सनेही मृत्यु स्वरूपा। महाजाल मद भूप अनूपा ॥१२॥

शब्दार्थ — अनबनि = अनबन, नाना, अनेक, झगड़ा। जहँड़ाना = ठगाना। मृत्यु = जड़। भूप = राजा। अनूपा = उपमारहित, विलक्षण, बेढंगा।

भावार्थ — मनुष्य वेद बाइबिल कुरान, पुराण आदि झगड़ाऊ विवादों तथा अनेक प्रकार की भ्रम मान्यताओं में अपने को ठगा रहा है॥११॥ यह जीव जड़पदार्थों का मोही बनकर अपने को जड़ शरीर रूप ही मान रहा है और महान बन्धनों की वस्तुओं का अहंकार लेकर बेढंगा राजा बनता है॥ १२॥

विशेष — मनुष्य मोह एवं अज्ञान में बेभान है। जो सांसारिक मोह उसके लिये फाँसी के समान है उसी का वह चौधरी बनता है। मैं बड़ा सुन्दर हूँ, बलवान हूँ, विद्वान हूँ, धनवान हूँ, कीर्तिवान हूँ, प्रसिद्ध हूँ, अनेकों का स्वामी हूँ—इन तथा इन जैसी अन्य धारणाओं में अपना मन रखना बालबुद्धि नहीं तो क्या है ? यही प्रबल बन्धन है। विवेकवान को चाहिये कि उसके सामने जो कुछ उचित कर्तव्य हो उसको वह अनासक्ति पूर्वक करता जाय और सबके मोह तथा अहंकार से सर्वथा रहित रहे।

जीवन जीवन्हि निशिदिन हरहीं। त्रिविधि राज सदा सो करहीं ॥१३॥
व्यष्टि समष्टि नहीं कछु भेदा। अंश ईश्वर धोखा है वेदा ॥१४॥

शब्दार्थ — जीवन = जीवनधन, जिंदगी, विवेकादि। जीवन्हि = जीवहि—जीवों का। त्रिविधि = तीन प्रकार-सत, रज, तम। सो = अज्ञानी मन। व्यष्टि = भिन्नत्व, नानात्व; जगत। समष्टि = समवेतसत्ता; सबका एकरूप; ब्रह्म।

भावार्थ — यह अज्ञानी मन जीवों के विवेकादि जीवनधन को रात-दिन छीन कर सदैव त्रिगुणात्मक संसार का ही राज करता है। अर्थात जीवों को विषयों में ही रखता है॥ १३॥ कहते हैं "जीव ईश्वर का अंश है और जीव, ईश्वर, जगत, ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है, तत्वतः सब एक ही है।" इस मतके प्रतिपादक वेदादि कोई भी ग्रन्थ हो, यह धारणा एक मन का छलावा ही है कि जड़-चेतन सब एक है॥१४॥

एकै जथा रहा जहँड़ाई। व्यष्टि समष्टि पद होय बिलगाई ॥१५॥
कहूँ ब्रह्म कहूँ ईश कहावै। कहूँ जीव होयके पछतावै ॥१६॥
जाहि बेकारते होहु अनेका। दुर्मति सोइ जो करै विवेका ॥१७॥

शब्दार्थ— एकै = एक ही, निराधार; अकेला; असंग; एकरस। जथा= यथार्थ, सत्य। बिलगाई = पृथक होना। बेकार = विकार।

भावार्थ— प्रत्येक चेतन जीव अपने स्वरूप से अकेला, असंग, निराधार, एकरस ज्ञानस्वरूप एवं सत्यस्वरूप है। परन्तु वह अपने स्वरूपभाव से पृथक होकर नानत्व और एकत्व की कल्पना के झमेले में पड़ा है ॥१५॥ कहीं तो वह अपने को सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म मानता है, कहीं मायासबलित ईश्वर कहलाना चाहता है और कहीं अपने को अंश एवं प्रतिबिंब स्वरूप जीव मानकर पश्चाताप करता है ॥१६॥ जिस अद्वैत ब्रह्म के अहमविकार से अनेकत्व पूर्ण जगत उत्पन्न होने की कल्पना करते हैं; उसी दुर्बुद्धिपूर्ण धारणा में स्थित होने का विचार करते हैं ॥१७॥

साखी— आपु बेकारी मूल जग, निर्विकार पुनि आप।
जीव भुलावै अंश कही, भोजन करै मिलाप ॥ ९७ ॥

शब्दार्थ— बेकारी = विकारी, परिवर्तनशील, विकारयुक्त। मूल =कारण। भोजन करै = खा लेना, अपने में लय कर लेना। मिलाप = एकता, जड़-चेतन की अभिन्नता।

भावार्थ— मनुष्य मनके बहकावे में पड़कर कहता है कि ब्रह्म जगतउत्पत्ति का कारण होने से स्वयं विकारपूर्ण है और पुनः वह निर्विकार भी है। और अविनाशी जीव को अंश या प्रतिबिंब कहकर उसे भुलावे में डालते हैं, और सब को लय करके जड़-चेतन की एकता सिद्ध करते हैं ॥९७॥

विशेष— चेतन ब्रह्म से जड़ जगत का उत्पन्न होना कहना, पुनः उसे निर्विकार भी मानना, अविनाशी जीव को नश्वर अंश कहना तथा अंततः जड़-चेतन का एक में लय होना कहना—यह सब सत्यता से सैकड़ों कोस दूर, मन की कल्पना तथा केवल भ्रम है।

१४— पारखी सद्गुरु की विशेषता तथा स्वतः बोध की ओर संकेत

चौपाई— ५

महाशून्य सो धुंद अँधेरा। कारण लहत न सूझत पारा ॥१॥
रोगी रोग विवश अकुलाई। सुखके जतन चाह अधिकाई ॥२॥

शब्दार्थ— महाशून्य = ब्रह्म। धुंद = धुंध, आकाश में बहुत अधिक गर्द छा जाने से होने वाला अंधियारा; तात्पर्य में संशय।

भावार्थ— वह माना हुआ सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म एक महाशून्य, संशयपूर्ण एवं अंधियारी कल्पना है। उसी को अपना तथा जगत का कारणस्वरूप मानकर मनुष्य को वास्तविकता नहीं सूझती ॥ १ ॥ सब जीव अज्ञानरोग से ग्रस्त होकर दुःख से घबरा रहे हैं;

और सुखकी इच्छा तथा अनेक यत्न भी कर रहे हैं. परन्तु परख बिना वन्धनों में ही रहते हैं ॥ २ ॥

परपंची दुखमय सो भूपा । परजन कष्ट अनेक स्वरूपा ॥ ३ ॥
खेती करै यम देश बनाई । तीन लोक चौथे सो राई ॥ ४ ॥

शब्दार्थ— भूपा=भूप, राजा, मन या मनकी कल्पना में पड़े हुए मनुष्य । यम=मन, वासना । देश=क्षेत्र; मान्यता, कल्पना । राई=राजा; ब्रह्म ।

भावार्थ— यह मनराजा बड़ा प्रपंची तथा दुःखपूर्ण है, मनुष्यों को अपनी प्रजा बनाकर उन्हें अनेकों प्रकार से दुःख देता है ॥ ३ ॥ यह अपनी कल्पना का क्षेत्र बनाकर उसी में खेती करता है अर्थात उसी का मनन, चिंतन करता है । यह मन पृथ्वी, स्वर्ग और अंतरिक्ष लोकों की कल्पना करके चौथे ब्रह्मलोक की कल्पना करता है, जिसमें ब्रह्मराजा का स्थान चुन रखा है ॥ ४ ॥

जोति बोइ उपराजै पाली । काटि मीजि कोठी में घाली ॥ ५ ॥
बिहनहार अंश जुक्तावै । औसर पाय ताहि उपजावै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ— पाली=पालना, रक्षा करना । कोठी=बखारी । घाली=डालना; रखना । बिहनहार=बोने योग्य । जुक्तावै=युक्तिपूर्वक सुरक्षित रखना ।

भावार्थ— किसान लोग खेत जोतते हैं, उसमें बीज बोते हैं, उनके अंकुरित होने तथा फलने-फूलने में उचित उपचार करते हैं और कीड़े तथा पशुवादि से उसकी रक्षा करते हैं । तदनन्तर फसल पक जाने पर उसे काट-मीज कर और दाना साफ करके बखारी में रख देते हैं ॥ ५ ॥ पुनः बोने योग्य बीज के भाग को युक्ति पूर्वक सुरक्षित रखते हैं, और समय पाकर उसे पुनः उसी ढंग से बोकर फसल उत्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥

उपर्युक्त प्रकार से ही यह मन किसान है । यह शरीर रूपी खेत में वासना की जोताई करता है, कामादिक बीज बोता है, संस्कार उत्पन्न करता है; पुनः उसकी रक्षा करता है । पुनः काटिमीज रूप शरीर के नष्ट हो जाने पर उन सारे कर्मबीजों को सूक्ष्मशरीर रूपी बखारी में डाल देता है ॥ ५ ॥ पुनः शरीर को उत्पन्न करने वाले कर्म सूक्ष्मशरीर में सुरक्षित रहकर समय-समय पर नाना स्थूल शरीरों में ले जाते हैं ॥६

विशेष— जीव वासना के वश होकर ही नानाकर्म करता तथा तद्नुसार फल पाता है ।

जीव विकल वश कालके फंदा । सेवहिं परख बिना तेहि अंधा ॥ ७ ॥
दीनदयाल दयानिधि साँईं । सर्व ऊपर जेहि संधि नशाई ॥ ८ ॥

शब्दार्थ— काल=अज्ञान; वासना । संधि=भूल ।

भावार्थ— जीव अज्ञान एवं वासनाओं के वश में पड़े हुए दुखी हैं; परन्तु वे सब परखदृष्टि न होने से अविवेकी बने उन्हीं विषयों का सेवन करते हैं जो दुःखपूर्ण हैं ॥७॥

निबंन्ध एवं सुखी वही होता है जिसकी भूल को दीनदयालु दयासागर सर्वोच्च पारखी सद्गुरु ने मिटा दी है ॥ ८ ॥

आवत परख प्रकाश आनंदा । नासत सकल काल के फंदा ॥ ९ ॥
पंचकोश जिन लाँघा जाई । दुगदुग अन्तर रहा समाई ॥ १० ॥

शब्दार्थ— दुगदुग = संदेह ।

भावार्थ— जिसके हृदय में पारखप्रकाश जनित जीवन्मुक्तिसुख उपस्थित हो गया, उसके अज्ञानजनित सारे बंधन विनष्ट हो गये ॥ ९ ॥ पारख की प्राप्ति बिना यदि किसी ने अपने स्वरूप को पंचकोशों से पृथक भी समझा तो भी उसके मनमें यह संदेह बना रहता है कि मैं एकदेशी हूँ या सर्वदेशी, जड़ से सर्वथा पृथक हूँ कि उससे अभिन्न इत्यादि ॥ १० ॥

छूटै न रोग रहा ठहराई । साँचा होय प्रेम गोहराई ॥ ११ ॥
प्रेम पुकार उलटि सो देखा । प्रकाश लहत निज मूलहिं पेखा ॥ १२ ॥

शब्दार्थ— गोहराई = रक्षा के लिये पुकारना । निजमूलहिं = अपने शुद्ध चेतन स्वरूप को । पेखा = देखा; समझा ।

भावार्थ— परखदृष्टि न होने से अज्ञानरोग छूटता नहीं, किन्तु हृदय में स्थिर रह जाता है । इन अगणित मनुष्यों में अनेक जन्मों के किसी शुद्ध संस्कारी पुरुष का हृदय निष्पक्ष एवं शुद्ध हो गया और स्वस्वरूप के वास्तविक बोध की प्राप्ति के लिये उनकी अन्तरात्मा की प्रेम पुकार उठी मैं कौन हूँ ? ॥ ११ ॥ मैं कौन हूँ की भावना लेकर वह अपने आप पर लक्ष्य घुमाया तो पारखप्रकाश के प्राप्त होते ही अपने मूल चेतन स्वरूप को तत्त्वतः समझ गया ॥ १२ ॥

विशेष— कोई निष्पक्ष, शुद्ध अंतःकरण वाला व्यक्ति संसार के नाना मतों को देखा कि कोई तो इस जीव को प्रतिबिम्ब कहता है, कोई अंश; कोई चराचर व्यापक बताता है तो कोई जड़-चेतन एक कहता है । अतएव उसका हृदय इन असम्बद्ध बातों से उपराम हो गया ।

वह विवेक किया कि चेतन और जड़ दोनों एक दूसरे से सर्वथा पृथक हैं, क्योंकि दोनों सर्वथा भिन्नधर्मी हैं । इसलिये चेतन अविनाशी है । वह व्यापक नहीं हो सकता; क्योंकि व्यापक में गमनागमन, जन्म-मरण, बंध-मोक्ष तथा अनेक नहीं हो सकता; और ये सब प्रत्यक्ष हैं । अतएव चेतन अनेक हैं । वे सब समान ज्ञानधर्मी हैं । व्याप्य-व्यापक, कारण-कार्य, अंश-अंशी रहित हैं । उनका स्वरूप पारख अर्थात ज्ञान है ।

जिस भूमिका जिस द्रव्य में मैं का प्रश्न होता है, वह ज्ञान रूप चेतन ही मैं हूँ । मैं ज्ञान स्वरूप हूँ, इसका आभास सबको होता है; परन्तु मैं सर्वत्र व्यापक हूँ इसका

आभास किसी को नहीं होता है। यह केवल रसनारंभन का ही विषय है। अतएव वह विवेकी सारी भ्रांतियों को दूर करके स्वरूपज्ञान को प्राप्त हो गया।

झाँईं संधि सब गई बिलाई। फंदा काल सबै लखि पाई ॥१३॥
निजपद जानि दया सो कीन्हा। बंधन जीव छोड़ावै लीन्हा ॥१४॥

शब्दार्थ— झाँईं = परिछाईं; धोखा; ब्रह्मवाद का भ्रम। संधि = भूल; ईश्वर की कल्पना। काल = कल्पना। निजपद = निजस्वरूप, सजाति।

भावार्थ— उनको अपने स्वरूप से पृथक ब्रह्म, ईश्वरादि की सारी मानन्दियाँ विलीन हो गयीं। और उन्हें कल्पना के सारे बंधन समझने में आ गये ॥१३॥ वे स्वयं मुक्त होकर तथा दूसरे जीवों को भी अपना सजाति जानकर उनपर कृपा करके उनके भ्रमबंधनों को छोड़ाने लगे ॥ १४ ॥

विशेष— ऊपर सद्गुरु कबीर साहेब का संकेत है। उन्होंने स्वतः बोध प्राप्त किया। ऐसा कोई बिरला ही दिव्य पुरुष हो सकता है।

देखि दुसह दुख जीवन केरी। दया कीन्ह पारख प्रभु प्रेरी ॥१५॥
पारख उदय भया तेहि पासा। संधि जीव परपंच न आशा ॥१६॥

शब्दार्थ— संधि = त्रुटि; भूल।

भावार्थ— सद्गुरु ने जीवों के अज्ञानजनित असहनीय दुःख देखकर उनपर कृपा की और उनको पारखज्ञान का उपदेश किया ॥ १५ ॥ उक्त सद्गुरु का पारखज्ञान जिसके हृदय में प्रकट हो जाता है उस व्यक्ति की भूल मिट जाती है तथा उसे पुनः संसार के भोगों की आशा नहीं रह जाती ॥ १६ ॥

उपजै सबै बेकारके प्रेरे। परख लहै न रहै यम घेरे ॥१७॥
सन्मुख प्रभुके आज्ञाकारी। पारख गुरु तेई अधिकारी ॥१८॥

शब्दार्थ— बेकार = विकार; दोष; कल्पनाकाम आदि। यम = वासना; अज्ञान। अधिकारी = स्वत्वाधिकारी; हक़दार; योग्य।

भावार्थ— खानी-वाणी के अभ्यासपूर्वक मनोविकार से प्रेरित होकर ही सब जीव बारम्बार जन्म धारण करते हैं। परन्तु पारख के प्राप्त होते ही वासनायें समाप्त हो जाती हैं; उसे वासनायें नहीं बाँध सकतीं ॥ १७ ॥ जो व्यक्ति राग-द्वेष से विमुक्त तथा वैराग्यादि रहनी सम्पन्न पारखी सद्गुरु के सम्मुख सदैव आज्ञा बजाने में तत्पर है, वह सत्शिष्य ही श्रेष्ठ पारखपद पाने के योग्य है ॥ १८ ॥

विशेष— पहले शिष्य का सद्गुरु की स्थूल सेवादि करना ही आज्ञा बजाना है। पुनः विवेक-वैराग्यादि धारण करना आज्ञा का पालन है; अंततः स्वरूपस्थिति को प्राप्त करना मुख्य आज्ञा बजाना है। अतः जो व्यक्ति स्वतः स्वरूप की स्थिति को धारण

करके चलता है वह गुरु का, सर्वोच्च आज्ञाकारी शिष्य है। क्योंकि इसी के लिये परमार्थ मार्ग का सारा उपक्रम है।

जो परपंचहिं करहि प्रऊढ़ा। काल स्वरूप सो जानहु मूढ़ा ॥१६॥
एक माते विष रहा तमाई। अंधकार तेहि रहा समाई ॥२०॥
पारखी सोई दीनदयाला। मेटत तुरित सबै भवजाला ॥२१॥

शब्दार्थ— परपंचहिं = प्रपंच; जगतजंजाल; भवबंधन। प्रऊढ़ा = प्रौढ़, पुष्ट : तमाई = तवाई; गरमी; चक्कर।

भावार्थ— जो व्यक्ति भवबंधनों में पड़े रहने की ही सम्मति देता है, उसे दुःखदायी तथा विवेकहीन समझो ॥१९॥ एक तो मनुष्य वैसे ही कल्पना और विषय के विष में उन्मत्त होकर चक्कर खा रहे हैं, और उनके हृदय में घोर अज्ञान अंधकार समा रहा है (दूसरे उसी को पुष्ट करने वाले उपदेष्टा भी मिल जाते हैं) ॥२०॥ दीनों पर कृपा करने वाला पारखी वही है जो मुमुक्षुओं के सारे सांसारिक बंधनों को तुरंत मिटा देता है एवं उनकी वास्तविकता परखा देता है ॥२१॥

साखी— सर्वरूप जगजीव जत, देही देह समान।
अधिकारी सो पारखी, परम उदार सुजान ॥ ९८ ॥

शब्दार्थ— सर्वरूप = सभी शक्लें, सभी आकृतियाँ — मनुष्य, पशु, अण्डज, ऊष्मज। जत = जितने। देही = देह धारण करने वाले चेतनजीव। समान = सदृश। उदार = विशालहृदय। सुजान = श्रेष्ठज्ञानी।

भावार्थ— संसार में चारों खानियों की आकृतियों में देह धारण किये हुए जितने जीव हैं, सब स्वरूपतः एक सदृश गुण, धर्म, आकार वाले हैं— इसका जिसे ठीक बोध है, वह अत्यन्त विशाल हृदय का श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष ही यथार्थ पारखी बनने का हकदार है ॥९८॥

विशेष— ग्रन्थकार का विशाल हृदय यहाँ फूट पड़ा है। वे कहते हैं कि केवल मानव ही नहीं, हस्ती से सूक्ष्म कीट तक सभी जीवों को अपने समान समझ कर जो सबका हित सोचता है, जिसका प्राणी मात्र से प्रेम है, वह यथार्थ का पारखी बनने का हकदार है। यथार्थ पारखी वही है जो परम उदार, विशाल हृदय एवं दूसरे के गुणों को देखने वाला है।

सभी खानियों में रहने वाले चेतन स्वरूपतः समान हैं। केवल देहोपाधि से घटबढ़ है।

१५— पारख के प्रकाश से सब भ्रमों का नाश

चौपाई— ६

जब प्रगटै पारख प्रभु आई। काल फाँस सब तुरित लखाई ॥१॥
करि न सकै परपंच प्रवेशू। मिटा विकट यम जाल कलेशू ॥२॥

शब्दार्थ— यमजाल = अज्ञान एवं वासनाकृत बंधन ।

भावार्थ— जब सद्गुरु से उपदेश पाकर व्यक्ति के हृदय में पारख का प्रकाश होता है, तब अज्ञानकृत सारे बंधन तुरन्त समझने में आ जाते हैं ॥१॥ उनके मनमें भवजाल नहीं प्रवेश कर सकते; क्योंकि उनके भयंकर वासनाबंधन के दुःख समाप्त हो गये हैं ॥२॥

विकट कलेश जीवन के देखी । कीन्ह प्रकाश सो परख विशेषी ॥३॥
केतिक पारख प्रभु के पाये । जरामरण यमजाल मिटाये ॥४॥

शब्दार्थ— विशेषी = पृथक, भिन्न; होड़ करने वाला; आगे बढ़ जाने वाला ।

भावार्थ— सद्गुरु कबीर ने जीवों के अज्ञानजनित असहनीय कष्टों को देखा; अतएव उन्होंने आगे बढ़कर अपने निराले पारख ज्ञान का प्रकाश किया ॥३॥ कितने ही मुमुक्षु सद्गुरु के पारखबोध को पाकर वासना बंधन एवं जरामरण से छूटकर मुक्त हो गये ॥४॥

यहि विधि हंस छुड़ाय अनेका । बधिक कला नहिं लागे एका ॥५॥
बधिक निराश धुनहिं शिर अपना । हंस छुटत तेहि होत कल्पना ॥६॥

शब्दार्थ— हंस = जीव । बधिक = अज्ञानी मन । कला = चातुरी ।

भावार्थ— इस प्रकार सद्गुरु का पारख बोध असंख्य जीवों को भवबंधनों से छुड़ा लिया । उनके ऊपर अज्ञानी मन की एक भी चातुरी तथा छल-कपट नहीं लगता ॥ ५ ॥ फलतः विषयों का अभ्यासी मन निराश होकर अपना सिर पीटता है; उसे जीवों को भवबंधनों से मुक्त होते देखकर यह कल्पना होती है कि अब विषय भोग नहीं मिलेंगे ॥६॥

विशेष— जब जिज्ञासु त्याग मार्ग में बढ़ता है तब उसका अभ्यासी मन दुखी होता है, और अनादिकाल से भोगे गये विषयों की याद करके बेचैन होता है, परन्तु जब साधक साधना-मार्ग में बढ़ता ही जाता है, तब धीरे-धीरे मन निर्विषय होकर शांत और साधक के अनुकूल हो जाता है ।

ममता राज मोह दल भारी । छाड़े अधम न होय सुखारी ॥७॥
आपु नष्ट पुनि सबहिं नशावै । भरम का राज विलास बढ़ावै ॥८॥

शब्दार्थ— विलास = आनंद ।

भावार्थ— ममता का पसारा तथा मोह की भारी फौज को न नीच मन छोड़ता है और न सुखी होता है ॥ ७ ॥ अतएव जो व्यक्ति मनके वश में है वह स्वयं पतित होता है और सब साथी-सहपाठी को भी पतित करता है । वह भ्रम एवं अज्ञान के राज्य में ही आनन्द की वृद्धि मानता है ॥ ८ ॥

इन्ह परपंच जे छूटन चहहीं । तापर राजदंड बहु करहीं ॥ ९ ॥
जिन्ह जिव परख लहै प्रभु केरा । महाजाल यमजाल निबेरा ॥१०॥

शब्दार्थ — राजदंड = साम्प्रदायिक धमकी ।

भावार्थ— जो व्यक्ति इन खानी-वाणी के बंधनों से छूटकर पारखी सद्गुरु की शरण में आना चाहता है, उसपर उस सम्प्रदाय के गुरुजन साम्प्रदायिक धमकी देते हैं (कि तुम हमारे मत को छोड़कर दूसरे मत में जाओगे तो गुरुद्रोही तथा नास्तिक होकर नरक में जाओगे) ॥ ९ ॥ परन्तु जो व्यक्ति सद्गुरु कबीर का पारखबोध ठीक रीति से प्राप्त कर लेता है वह महान साम्प्रदायिक बंधनों तथा वासनाओं के जाल से अपने आप को छुड़ा लेता है। (उस पर किसी का शाप और कोप का असर नहीं पड़ता) ॥ १० ॥

आपु छुटै पुनि और छुड़ावै । देखि सो हंस काल पछितावै ॥११॥
तब यम बहुत प्रपंच पसारा । धोखा टाटि मध्य में डारा ॥१२॥

शब्दार्थ— काल = अज्ञानी मन । यम = वासना; अज्ञान; अज्ञान के वशीभूत व्यक्ति ।

भावार्थ— दृढ़ पारख को प्राप्त मनुष्य स्वयं तो भवबंधनों से छूटते ही हैं, दूसरों को भी छुड़ाते हैं। ऐसे निर्बन्ध विवेकी को देख कर मनके गुलाम बने साम्प्रदायिक लोग पश्चाताप करते हैं ॥ ११ ॥ और वे अज्ञान के वशीभूत लोग खानी-वाणी के बहुत बंधन फैलाते हैं, और धोखे की टट्टी में जिज्ञासु एवं मुमुक्षु को डालना चाहते हैं ॥ १२ ॥

शर बहु भाँति कर्म के लाई । आशा काँप भालसा बनाई ॥१३॥
छिन छिन जीवन लेत बझाई । पारख मिलै तो परै लराई ॥१४॥

शब्दार्थ— शर = वाण, तीर । काँप = लचीली तीली; तीन तीलियों (पतली लकड़ियों) का वह छोटा यंत्र जिसके बीच में लासा लगा रहता है उसमें पक्षी फँस जाता है।

भावार्थ — जो बेचारे स्वयं भूले हैं वे दूसरों को भी भूल में फँसाने के लिये अनेक प्रकार के बंधनदायी कर्मों के वाण लेकर उसकी काँप या काँपा बनाते हैं और उसमें लौकिक तथा स्वर्गिक सुखप्राप्ति की आशा का लासा लगा देते हैं ॥ १३ ॥ फिर वे अपने भ्रमपूर्ण कर्मप्रपंचों के जाल में लोगों को क्षण-क्षण फँसाते रहते हैं। यदि कोई इनके जालों की वास्तविकता की परख करने वाला मिल जाय और वह भ्रांतियों को परखा कर मुमुक्षुओं को उस जाल से छुड़ाने लगे, तो ये लड़ाई-झगड़ा करने पर तत्पर हो जाते हैं ॥१४॥

जे अजान नहिं जानहिं फँदा । लेत बझाय जालसो गंदा ॥१५॥
पछ दोइ तोरि आँखि दोउ सीया । जीवहि बधिक झोरिमो लीया ॥१६॥

शब्दार्थ— पछ = पंख । सीया = सिलदिया । झोरि = झोली; जाल ।

भावार्थ— जो व्यक्ति विवेकहीन है तथा खानी-वाणी को बंधन रूप नहीं समझता है; उसको वह अपने मलीन जाल में फँसा लेता है ॥ १५॥ फिर वह उस मुमुक्षु के ज्ञान-वैराग्य के दोनों आंखें अज्ञान, पक्षपात एवं मोह के तागे से सिल देता है और उसे अपनी अधीनता रूपी झोली में डाल लेता है ॥ १६ ॥

विशेष— जो लोग खानी और वाणी जाल में फँसे हैं दूसरों को भी उनसे निकलता हुआ देख कर उन्हें उन्हीं जालों में फँसाने की चेष्टा करते हैं। जो व्यक्ति दूसरों को भवबंधनों की ओर ढकेलता है वह व्याध ही बन जाता है। यह बात कहने में कठोर है, परन्तु वस्तुतथ्य है। यह बात अवश्य है कि वह भूला है। यदि भूला न होता तो वह स्वयं क्यों बंधनों में बंधा होता तथा क्यों दूसरों को उसी में डालता ? जो भूला हुआ है वह क्षमा-दया का पात्र है। विवेकी का कर्तव्य है कि उसको घृणा की दृष्टि से न देख कर, किन्तु उससे स्नेह करके उसे सन्मार्ग पर लावें। यदि वह सन्मार्ग पर न आवे तो उस पर दयादृष्टि पूर्वक त्रास ही खाना चाहिये, उससे घृणा नहीं करना चाहिये।

साखी— जिन जिन पारख पाये, तिन तिन लागि न फाँस।
अज्ञ जीव परवश परे, समुझि परी नहिं गाँस ॥९९॥

शब्दार्थ— गाँस = तीर का फल; फंदा।

भावार्थ— जिन-जिन व्यक्तियों को यथार्थ पारखबोध की प्राप्ति हो गयी, उन-उन लोगों को किसी का बंधन नहीं लगा। परन्तु अज्ञानी जीव जिन्हें फंदा समझने में नहीं आया, वे उसमें फँसकर परवश पड़े हैं ॥ ९९ ॥

ज्यों ज्यों लसा छोड़ावहीं, त्यों त्यों लपटत जाय।
अधम बधिक सब हंसन, पकरि बझाये खाय ॥१००॥

शब्दार्थ— बधिक = वध करने वाला; मन; मनवशी लोग।

भावार्थ— अज्ञानी मनुष्य जैसे-जैसे बंधन रूपी लासा को छुड़ाते हैं वैसे-वैसे वह अधिक लिपटता जाता है। नीच मन सब जीवों को विषयों एवं भ्रमभूलों में आसक्त करके उन्हें निगल रहा है ॥ १०० ॥

विशेष— भ्रम और विषयासक्ति में फँसा हुआ मन बधिक हैं। ऐसे मन के युक्त व्यक्ति अपने और दूसरे के लिये बधिक बन जाते हैं।

१६– संसार का गहन अज्ञान और पारख (ज्ञान) द्वारा छुटकारा

विलाप हंस अज्ञानी : शब्द–३

चल मोरे नैहर हंसा, अमरापुर बासी।
टटियाके ओटवे व्याधा, लगवले गले फाँसी ॥ १ ॥
पर दूनों तोरे व्याधा, सीयले दूनों आँखी।
मोरे लेखे अहो व्याधा, दिनवा भई राती ॥ २ ॥
मैं तोहि पूछो रे व्याधा, कहहु सत्य मोही।
कौनि नगरिया व्याधा, बेचवेले मोही ॥ ३ ॥

अमरापुर पट्टन हंसा, बसत निरमोही।
वोहिरे नगरिया हंसा, बेचबोले तोही॥ ४॥
कहहिं कबीर हंसा, सुनहु नर लोई।
ऐसे व्याधा के वशि हंसा, परहु मति कोई॥ ५॥

शब्दार्थ— अमरापुर=कल्पित अमरलोक। ओटवे=आड़में। लेखे=विचारानुसार, समझने में। पट्टन=शहर। लोई=लोगों।

भावार्थ— 'हे मनुष्यों! जहाँ हमारा-तुम्हारा नैहर अर्थात जन्म स्थान है, जहाँ से बिछुड़कर हमलोग यहाँ आ पड़े हैं उस अमरलोक में चलकर वहाँ के निवासी बनों'—इस प्रकार मोक्ष देने के आड़ में भ्रममें फँसाने वाले लोग मनुष्य के गले में भ्रम की फाँसी लगा दिये॥ १॥ फिर उनके ज्ञान और वैराग्य के पंखे तोड़ दिये और विवेक तथा विचार की आँखें अज्ञान तागे से सिल दिये। (फिर वे बँधे हुए मनुष्य कहने लगे) हे गुरुमहाराज! हमारे समझने में तो आप का बताया मोक्षमार्ग रूपी दिन ही रात तुल्य अंधकारमय हो गया है॥ २॥ हे गुरुमहाराज! हम आपसे पूछते हैं और हमसे आप सत्यतापूर्वक कहिये कि किस शहर में आप हमें बेचेंगे? ॥ ३॥ (वे भूले गुरुजी कहने लगे) हे हंसो! अमरलोक रूपी शहर में निर्लिप्त भगवान निवास करता है। हे हंसो! उसी शहर में मैं तुम लोगों को बेचूँगा॥ ४॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं हे हंसो! तथा हे मनुष्यों! ऐसे भ्रमजाल में फँसाने वाले भूले लोगों के वश में कोई मत पड़ो॥ ५॥

विशेष— कोई ऐसा लोक नहीं है जहाँ जाकर अमरता मिलती हो। मोक्ष के आड़ में लोक-लोकान्तरों की आशा देने वाले बेचारे स्वयं भूले हैं तथा दूसरों को भुला रहे हैं। वे कहते हैं कि एक अमरलोक है। वहाँ अविनाशी निर्लिप्त भगवान रहता है। उससे अलग होकर हम लोग अंशरूप में यहाँ आ गये हैं। अब हमारा कर्त्तव्य है कि पुनः वहीं चलकर अचल हो जायँ। परन्तु यह सब मनकी कल्पना ही है।

वस्तुतः जीव स्वयं अमर है। उसे मोक्ष की प्राप्ति के लिये सारे दृश्यों का मोह छोड़कर अपने आप शांत होना चाहिये। लोक-लोकान्तरों में कहीं भगवान नहीं है। पवित्र मनुष्य स्वयं सबसे बड़ा भगवान है।

चौपाई— ७

काल कला विदित संसारा। बिरले जन कोई बाँचनहारा॥१॥
आपु गुप्त टाटीके ओटा। गुण माया सो जग विख्याता॥२॥

शब्दार्थ— काल = अज्ञानी मन। कला = कल्पना। आपु = स्वयं; मन या मनवशी भ्रमाने वाले।

भावार्थ— अज्ञानी मनकी कल्पना की बातें संसार में प्रत्यक्ष हैं। परन्तु इससे कोई बिरला व्यक्ति ही बँचता है ॥१॥ यह मन स्वयं मोक्ष या परमसुख रूपी टाटी के आड़ में छिपा रहता है और जो इसके मायावी गुण हैं जगत में फैले रहते हैं ॥२॥

विशेष— मन या मनवशी लोग मोक्षदायी रूप बनाकर जीवों को ठगते हैं।

तीन कांप शर माँह लगाई। तामें आशा लासा लाई ॥३॥
रात दिवस यम घात लगावै। पकरि हंस बहु नाच नचावै ॥४॥

शब्दार्थ— तीन शर = तीनबाण— काम, क्रोध और लोभ। कांप = तीन लकड़ी का छोटा यंत्र जिससे पक्षी फँसाते हैं।

भावार्थ— काम, क्रोध और लोभ इन तीन वाणों का कांप या काँपा बनाकर और उसमें विषयसुख आशा का लासा लगाकर मन रात-दिन जीवों को फँसाने के लिए दाँव-पेंच लगाता है और उन्हें फँसाकर संसार का नाच नचाता है ॥३,४॥

जिन चतुरा परखा यमजाला। चहै बचावन हंस बेहाला ॥५॥
हंस सो देखि बधिक अकुलाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई ॥६॥

शब्दार्थ— चतुरा = विवेकी। अकुलाई = घबराना, विह्वल होना। प्रभुताई = अधिकार।

भावार्थ— जिन विवेकियों ने मन तथा खानी-वाणी के सारे बंधनों की वास्तविकता को ठीक से परख लिया है, वे (स्वयं तो उससे छूट ही जाते हैं) बंधन में बँधे हुए दुःखी जीवों को भी छुड़ाना चाहते हैं ॥५॥ जीवों को भवबंधनों से छूटते हुए देखकर मन घबराता है, परन्तु वह उन पर अपना कुछ अधिकार नहीं जमा पाता ॥६॥

विशेष— विषयासक्ति के कारण ही मन मुमुक्षु के मार्ग में रोड़ा बनता है; परन्तु मुमुक्षु की दृढ़ता से वह कुछ कर नहीं पाता।

अनेकहि कला ताहि पर डारे। सक भरि दुष्ट लरे पुनि हारे ॥७॥
पारखबल नहिं पावै सोई। प्रीति प्रतीति अभयपद जोई ॥८॥

शब्दार्थ— कला = हुनर; फंदा। प्रीति = श्रद्धा। प्रतीति = विश्वास।

भावार्थ— अनादिकाल का विषयाध्यासी दुष्ट मन साधक पर अनेक मोहक फंदा डालता है और शक्ति चले तक लड़ता तथा पुनः हारता है ॥७॥ जिनको निर्भय

स्वरूपज्ञान में श्रद्धा तथा विश्वास है उनकी प्रबल पारखशक्ति से उनका वह कुछ नहीं कर पाता है ॥८॥

जहाँ कछु संधि अपनी पावै । तो यम पकरि ताहि अपनावै ॥ ९ ॥
जग यम देश लहिं जीव ठेकाना । नाहक भटकत रहत अयाना ॥१०॥

शब्दार्थ— संधि = जगह । यम = मन । यमदेश = मनोराज्य । ठेकाना = स्थान । नाहक = व्यर्थ ।

भावार्थ— जिस साधक के हृदय में यह विकारी मन अपनी थोड़ी भी जगह पा जाता है उसे पकड़कर अपना दास बना लेता है ॥९॥ संसार के भूले जीव मनोराज्य में ही अपना स्थान बना रखे हैं । इस प्रकार भोले जीव व्यर्थ ही में भवबंधनों में भटकते हैं ॥ १० ॥

साखी— जो चाहो कल्याण निज, गहहु परख टकसार ।
सुरति सम्हारि अडिग होय, तजहू यम विस्तार ॥१०१॥

शब्दार्थ— टकसार = सत्संग । सुरति = सुरत, ध्यान । यम विस्तार = मनः कल्पना का फैलावा ।

भावार्थ— हे मनुष्य ! यदि तू अपना कल्याण चाहता है, तो सत्संग में पारखपद को ग्रहण कर, और मनः कल्पना के फैलावा को छोड़कर तथा दृश्य विषयों से ध्यान सम्हाल कर अपने उक्त पारख स्वरूप में अविचल स्थित हो जा ॥१०१॥

सुरति सम्हारि परखले, रक्षक भक्षक भाव ।
दृढ़ प्रेम बहियाँ गहै, काटै यम के दाव ॥ १०२ ॥

शब्दार्थ— भाव = आशय; व्यवहार ; उपदेश; ढ़ंग । यम = मन । दाव = दाँव-पेंच ।

भावार्थ— हे साधक ! अपने ध्यान को सम्हाल करके अपने कल्याण के रक्षक और भक्षक के अभिप्राय और व्यवहार की परख करो । और अपने कल्याण के लिये अविचल श्रद्धारूपी बाँहको पकड़ो तथा मनके विघातक दाँव-पेंचको काटते रहो ॥१०२॥

४– सारशब्द टकसार : शब्द–३२

हंसा हो चित चेतु सकेरा, इन्ह परपंच कैल बहुतेरा ॥ १ ॥
पाखण्ड रूप रच्यो इन्ह तिरगुण, तेहि पाखण्ड भूलल संसारा ॥ २ ॥

शब्दार्थ— चित = चैतन्य, चित्त । सकेरा = शीघ्र । इन्ह = भ्रमिकों ने । तिरगुण = सत, रज, तम; सतसे कल्पित भक्ति, रजसे नना कर्मकाण्ड, तमसे अज्ञानपूर्ण हठ योगादि ।

भावार्थ — जड़-चेतन, सार-असार के विवेक करने वाले ऐ मनुष्यो ! तुम चैतन्य हो, शीघ्र सावधान हो जाओ । इन भ्रमिकों ने बहुत प्रपंच फैला रखा है ॥१॥ इन्होंने पाखण्डरूपी त्रिगुणात्मक प्रपंच-कल्पित पुरुष की भक्ति, प्रापंचिक एवं हिंसापूर्ण कर्मकाण्ड तथा अविवेकपूर्ण योगादि रचकर खड़ा किया है इन्हीं के पाखण्ड में संसार के सब लोग भूल गये हैं ॥२॥

विशेष — श्री कृष्ण जी भी गीता में कहते हैं—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।। (२।४५)

'हे अर्जुन ! सब वेद तीनों गुणों के कार्य रूप संसार को विषय करने वाले हैं अर्थात प्रकाश करने वाले हैं । इसलिये तू असंसारी अर्थात निष्कामी और सुख-दुखादि द्वन्द्वों से रहित, नित्य वस्तु में स्थित, तथा योग-क्षेम को न चाहने वाला और आत्मपरायण हो ।'

घर के खसम बधिक वै राजा, परजा क्या धौं करै विचारा ॥३॥
भक्ति न जाने भक्त कहावै, तजि अमृत विष कैलिन सारा ॥४॥

शब्दार्थ — धौं = भला । अमृत = स्वरूप-ज्ञान, सदाचरण । विष = कल्पना, दुराचरण । सारा = सार तत्त्व ।

भावार्थ — घर का स्वामी एवं देश का राजा यदि बधिक का रूप धारण करके सबको मारने-मरवाने लगे, तो घर के कुटुम्बी एवं प्रजा बेचारे क्या करेंगे ? इसी प्रकार धर्म के ठेकेदार एवं मुक्ति के दाता गुरु लोग ही यदि नाना पाखण्ड, स्वार्थ, अज्ञान-कल्पना, हिंसायुक्त कर्मकाण्ड एवं वैमनस्य इत्यादि में स्वयं घिरकर और वही अज्ञान मनुष्यों पर थोपने लगें, तो जनता बेचारी क्या करेगी ॥३॥ भक्ति का वास्तविक स्वरूप तो जानते नहीं, परन्तु भक्त कहलाते हैं, अमृत त्यागकर विष को ही सारतत्त्व एवं अमृत मान लिये हैं ॥४॥

विशेष — स्वार्थी गुरुओं की सदैव भरमार रही है । इनसे जनता की बहुत बड़ी हानि होती है । जनता को चाहिये इनसे सावधान हो ।

राम, रहीम, खुदा-ईश्वर तो दुनिया कहती है । ठग, चोर, हत्यारा, व्यभिचारी सभी ईश्वर को पुकारते हैं । यह कोई भक्ति नहीं है । वास्तव में विषय-वासनाओं, बुराइयों, हिंसा-चोरी-व्यभिचार आदि दुराचरणों से भागना ही भक्ति है । दूसरे पहलू में—

'पूजेष्वनुरागो भक्तिः'

पूज्य के प्रति प्रेम होना ही भक्ति है । माता-पिता, बड़े-बूढ़े, गुरु, सद्गुरु-सन्त ये सब पूज्य हैं । परन्तु मोक्षप्रद सर्वश्रेष्ठ पूज्यवर विवेक-वैराग्यसम्पन्न सद्गुरु-सन्त ही हैं । भक्ति का उच्च उत्कर्ष है—

'स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते'

अर्थात अपने स्वरूप का अनुसंधान (चिन्तन) ही भक्ति है। इस प्रकार की भक्ति को लोग जानते नहीं, और भक्त कहलाते हैं। स्वरूपज्ञान एवं सदाचरण रूपी अमृत को त्यागकर अज्ञान, कल्पना, दुराचरण एवं विषय-भोग रूपी विष को सार मान रहे हैं।

आगे बड़े ऐसेहि बूड़े, तिनहुँ न मानल कहा हमारा ॥५॥
कहा हमार गाँठि दृढ़ बाँधो, निशिबासर रहियो हुशियारा ॥६॥

शब्दार्थ — आगे = भूतकाल में।

भावार्थ — पहले के बड़े-बड़े कहलाने वाले इसी प्रकार कल्पना एवं विषय-समुद्र में डूब गये हैं। वे भी हमारे कथन रूप सत्य पारख-बोध को नहीं जान-मान सके थे ॥५॥ हे जिज्ञासुओ ! हमारे कथन को अपने हृदय में दृढ़ता की गाँठ में बाँध लो; और रात-दिन सावधान रहो ॥६॥

ये कलि गुरु बड़े परपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा ॥७॥
वेदकितेब दोउ फन्द पसारा, तेहि फन्दे परु आप बिचारा ॥८॥
कहहिं कबीर ते हंस न बिसरे, जेहिमा मिले छुड़ावन हारा ॥९॥

शब्दार्थ — कलि = पाप (कल्पना-विषय आदि)। ठगौरी = ठगाई विद्या, वाणी जाल। बिसरे = भूले। छुड़ावनहारा = पारखी गुरु।

भावार्थ — ये कल्पना-अज्ञान एवं विषय-वासना को धारण करने वाले कलियुगी गुरु बड़े प्रपंची हैं। इन्होंने ठगाई-विद्या का जाल-डालकर जगत के सब जीवों को फँसाकर, अज्ञानी बना रखा है ।७॥ वेद और कितेब (कुरान बाइबिल आदि) रूप दो फन्दा फैलाया है, उन्हीं फन्दों में बेचारे स्वयं पड़े हैं (और दूसरे को भी डालते हैं) ॥८॥ सद्गुरु कहते हैं, वे विवेकी हंस (जिज्ञासु) उपयुक्त फंदे में नहीं पड़ेंगे, जिनको छुड़ाने वाले विवेक-वैराग्य-सम्पन्न पारखी गुरु मिल गये हैं ॥९॥

उपर्युक्त निर्णय का यह अभिप्राय नहीं है कि वेद, बाइबिल, कुरान आदि में कुछ सार नहीं है; उनमें बहुत कुछ सार है। परन्तु सार-असार वाणी मिली होने से उनका पारख एवं विवेक कर पाना सबको कठिन है। इसलिये पारखी गुरु की शरण लेने की आवश्यकता है जिससे सबके सारासार की परख हो।

५ बीजक, शब्द— ५६

नर को नहिं परतीत हमारी ॥ १ ॥
झूठा बनिज कियो झूठे सो, पूँजी सबन मिलि हारी ॥ २ ॥

शब्दार्थ— बनिज = व्यापार। पूँजी = जमा।

भावार्थ — संसारी मनुष्यों को मेरा विश्वास नहीं है ॥ १ ॥ झूठे लोग झूठे गुरुओं से वाणी का झूठा व्यापार करते हैं। इसी से सब लोग अपना जमा (जीव) पद हार गये हैं ॥ २ ॥

षट दर्शन मिलि पन्थ चलायो, तिरदेवा अधिकारी ॥ ३ ॥
राजा देश बड़ो परपंची, रैयत रहत उजारी ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — अधिकारी = मालिक; स्वत्वधारी। रैयत = प्रजा, जीव। उजारी = निर्जन।

भावार्थ — योगी-जङ्गमादि षट्दर्शनी मिलकर नाना पन्थ चलाये। तिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महादेव—ये तीनों श्रेष्ठ स्वत्वधारी एवं राजा हुए ॥ ३ ॥ इन राजाओं के उपदेश (एवं सिद्धांत) रूपी देश बड़ा प्रपंची है। ये मोहक श्रुतियों का उपदेश करके अपने पथ के पथिक रूपी प्रजा को शून्य एवं कल्पित स्वर्ग तथा ब्रह्म रूपी निर्जन ही में बसाते हैं ॥ ४ ॥

विशेष— अपने से पृथक् ब्रह्म की खोज करना, निर्जन वन में व्यर्थ भटकना है। मैं के रूप में विराजमान चेतन तत्त्व ही सर्वोपरि स्वपद है। यही परमपद एवं परम-धाम है, इसी का नाम पारखपद है।

इत ते उत उत ते इत रहहू, यम की साँड़ सवारी ॥ ५ ॥
ज्यों कपि डोर बाँधु बाजीगर, अपनी खुशी परारी ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — यम = मन। कपि = बन्दर। परारी = दूसरे के हाथ, मन के वश।

भावार्थ — उपर्युक्त श्रुतियों के स्वर्ग विधायक प्रपंचोपदेश सुनकर और नाना कर्म करके जीव इधर मनुष्य शरीर से उधर पशु आदि में तथा उधर पशु आदि से इधर मनुष्य शरीर में मन एवं वासना रूपी साँड़ की सवारी पर आता जाता रहता है—नाना खानियों में भटकता रहता है; अथवा अद्वैत की माया में पड़कर, जगत से ब्रह्म और ब्रह्म से जगत (कल्पना मात्र) बनता रहता है ॥ ५ ॥ जैसे चना के लोभ से बाजीगर के हाथ में फँसा हुआ बन्दर रस्सी में बँधकर घर-घर नाचता है; वैसे विषय-कल्पना के लोभवश अपनी प्रसन्नता से पराये (मन के) हाथ में बँधा हुआ जीव नाच रहा है ॥ ६ ॥

इहै पेड़ उत्पति परलय का, विषया सबै विकारी ॥ ७ ॥
जैसे श्वान अपावन राजी, त्यों लागी संसारी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ — उत्पति परलय = जन्म-मरण। श्वान = कुत्ता। अपावन = अपवित्र, गन्दा। राजी = प्रसन्न।

भावार्थ — विषयों की वासना और नाना कल्पित भावना अर्थात खानी-वाणी जाल—यही जन्म-मरण का वृक्ष है। विषय तो सभी दोष-जनक हैं चाहे खानी के

हों या वाणी के ।। ७ ।। जैसे कुत्ता अपवित्र नीरस हड्डी को नोचता है और उसी में प्रसन्न रहता है; इसी प्रकार संसारी लोग अपवित्र नीरस विषयों में लगे हैं। इसी प्रकार नीरस कल्पना में भी जीव लगे हैं ।। ८ ।।

कहहिं कबीर यह अदबुद ज्ञाना, को मानै बात हमारी ।। ९ ।।
अजहूँ लेउँ छुड़ाय काल सो, जो करै सुरति सँभारी ।। १० ।।

शब्दार्थ— काल = खानी-वाणी जाल, मन, दुर्गुण-दुर्वासना, कल्पना, बन्धन।

भावार्थ— सद्गुरु कहते हैं कि उक्त त्रिदेवों का ज्ञान अद्‌भुत प्रपंचयुक्त हैं, उसमें भोग-मोक्ष साथ-साथ मिल जाते हैं। दिखाऊ शोभायुत अद्वैत ब्रह्मवाद की उसमें लालिमा है। अतएव उसको छोड़कर हमारी बात को कौन मानता है ? (विरले ही निष्पक्ष पुरुष निर्मान होकर विचारेंगे और समझेंगे) ।। ९ ।। परन्तु यदि कोई विषय-वासना एवं वाणी-जाल से अपने लक्ष्य को रोक ले, तो मैं आज भी उसको खानी-वाणी-जाल एवं कल्पना-बन्धन से बचा लूँ ।। १० ।।

विशेष — यह जीव अनादिकाल से प्रत्येक मत, पथ, मजहबों में घूमता रहा। अतएव कहीं का पक्ष लेना उपयुक्त नहीं है। किसी के भी निष्पक्ष विचार को सादर सुनकर धारण करना चाहिये।

'अपने लक्ष्य को सम्हाल कर जो मेरे ज्ञान की ओर दे, उसे मैं अभी ही काल से छुड़ा लूँ'—निष्पक्ष मुमुक्षुओं के लिये सद्गुरु कबीर का यह कितना बड़ा बल प्रदान है !

१७—सद्गुरु की महानता

६—शब्द अष्टपदी गुरुस्तुति

प्रभु जो तुम बिन कौन छुड़ावै ।।१।।
महाकठिन यमजाल फाँस है, तासों कौन बचावै ।।२।।
नाना फाँस फँसाय जीव को, आपन रूप छिपावै ।।३।।
पंचकोश होय परगट ग्रासै, तेहि को कौन लखावै ।।४।।

शब्दार्थ — यमजाल = मन के बन्धन।

भावार्थ — हे सद्गुरु ! आप के अतिरिक्त भवबन्धन छुड़ाने वाला कौन है ? ।।१।। मनके जाल एवं बन्धन महान भयंकर हैं, आपके बिना उससे जीव को कौन बचा सकता है ? ।।२।। यह मन जीव को नाना बन्धनों में बाँध कर अपना स्वरूप गुप्त एवं रहस्यमय रखता है ।।३।। अन्नमयादि पंचकोश जीवके प्रत्यक्ष आवरण हैं, इनकी परख गुरु बिना कौन करावेगा ? ।।४।।

आपुहि एक अनेक कहावै, त्रिविधि रूप बनावै ॥५॥
सैनपाट होय दुष्ट नष्ट सो, परलय अंत दिखावै ॥६॥
विषय विकार जगत अरुझावै, जहाँ तहाँ भटकावै ॥७॥
योग ध्यान बिगुर्चन भारी, ताहि सुरति अटकावै ॥८॥

शब्दार्थ — त्रिविधि = तीन प्रकार—सत, रज, तम। सैनपाट = सैन + पाट, सैन-सेना, पाट-पीढ़ा, आधार—कामादिक सेना का आधार। बिगुर्चन = बिगूचन, उलझन, असमंजस; कठिनाई।

भावार्थ — यह मनही स्वयं एक ब्रह्म बनता है तथा उससे अनेकत्वपूर्ण जगत की कल्पना करता है। यह मन कभी सतोगुणी, कभी रजोगुणी तथा तमोगुणी रूप बनाता है ॥५॥ यह दुष्ट मन ही कामादि सेनाओं का आधार बनकर मानवीय गुणों को नष्ट करता है तथा अन्ततः मनुष्य को घोर पतन के दर्शन कराता है ॥६॥ यह जीवको विषयोंके विकार तथा संसार में फँसा कर यत्र-तत्र भटकाता रहता है ॥७॥ (यदि जीव परमार्थ मार्ग में भी चलता है तो उसे) योग तथा ध्यान द्वारा कल्पित जड़ भास, अध्यास के भारी उलझन में डाल कर दृश्य में ही लक्ष्य को फँसा देता है ॥८॥

आश नाम नौका बैठावै, भव के धार बहावै ॥ ९ ॥
तत्त्वमसि कहि ताहि डुबावै, अंत कोई नहिं पावै ॥१०॥
चार मुक्ति जोइन चौरासी, तेहि मिलि हेतु बढ़ावै ॥११॥
नेम धरम पूजा औ संयम, बहु विधि लाग लगावै ॥१२॥

शब्दार्थ — जोइन = योनि। चौरासी = चार राशियाँ—मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज। हेतु = प्रेम। लाग = सम्बन्ध, लगाव, प्रेम, सहारा; धुन; उपाय।

भावार्थ — यह मन 'लोक-परलोक में सुखभोग मिलेंगे'—ऐसी आशा की नावका पर जीव को बैठा कर संसार की धारा में उसे बहा देता है ॥९॥ जो चराचर व्याप्त है, जो जगत है, वही तू है; ऐसा कहकर यह मन ही सत्य जीव को काल्पनिक ब्रह्मसमुद्र में डुबा देता है; और इस कल्पना की सीमा को विना पारख कोई लाँघ नहीं पाता ॥१०॥ सालोक्य, सामीप्य, सारुप्य तथा सायुज्य—इन चारों मुक्तियों का विचार किया जाय तो ये चौरासी योनियों-जैसी पंच विषय रूप लगती हैं; परन्तु भूले लोगों का मन उन्हीं कल्पनाओं में मिल कर उन्हीं में प्रेम बढ़ा रहा है ॥११॥ और उन्हीं काल्पनिक तथा बालविनोदमय चारों मुक्तियों की प्राप्ति के लिये नियम, धर्म, पूजा और संयम आदि करके अनेक प्रकार से उपाय लगा रहा है ॥१२॥

भेष अलेख करे को पावै, जीवहि चैन न आवै ॥१३॥
चारि वेद षट अष्टदशौं ले, शून्यहि शून्य समावै ॥१४॥

कालचक्र वसि उतपति परलय, जीव दुसह दुख पावै ॥१५॥
साहेब दया कीन्ह परखाये, रामरहस गुण गावै ॥१६॥

शब्दार्थ — अलेख = अदृश्य, निराकार ब्रह्म। षट = छः शास्त्र या छः दर्शन। अष्टदशौं = अठारह पुराण। कालचक्र = कल्पना-वासना का चक्कर।

भावार्थ — वेष बनाकर जप-तप करने से अदृश्य ब्रह्म, जो केवल मन की कल्पना है, कौन पायेगा ? फलतः स्वस्वरूप ज्ञान को छोड़कर कल्पना में पड़े रहने से मनुष्य को विश्रांति नहीं मिल सकती ॥१३॥ चार वेद, छः दर्शन तथा अठारहों पुराणों को लेकर सारे वैदिक-अवैदिक साहित्य प्रायः अपने से पृथक शून्य ही में लीन होने का संकेत करते हैं ॥१४॥ इस प्रकार मनकी कल्पना व वासना के चक्कर में पड़े हुए जीव जन्म-मरण में घूमते तथा असहनीय दुःख पाते हैं ॥१५॥ सद्गुरु कबीर साहेब कृपा करके मन के सब बन्धनों को परखा कर मुक्त होने की भूमिका पर कर दिये हैं; अतएव 'रामरहस दास' आप का गुणगान कर रहा है ॥१६॥

विशेष — कुछ शास्त्र ऐसे हैं जो अपने स्वरूप से पृथक शून्य में स्थिति होने का उपदेश करते हैं और कुछ, ऐसे हैं जो बतलाते तो यही हैं कि अपने स्वरूप में स्थित होओ, परन्तु वह अपना स्वरूप चराचर व्यापक या जड़ से अभिन्न है। अतएव इन उपदेशों से घुमघुमाकर स्वरूपस्थिति से जीव दूर ही हो जाता है। बिना यथार्थ पारख प्राप्त हुए भूल नहीं मिट सकती।

साखी—कपट चतुरता काल बसि, सन्मुख प्रभुके नहिं होय।
भ्रमहारी साहेब शरण, निश्चय भया बिलोय ॥१०३॥

शब्दार्थ — बिलोय = मथन; छानबीन; परख।

भावार्थ — भूले लोग कपट चतुरता तथा मन के वश में पड़कर विवेक सम्पन्न सन्त-सद्गुरु के सम्मुख उपस्थित नहीं होते। परन्तु जिन्होंने छानबीन करके वास्तविकता का निश्चय कर लिया है वे समझ गये हैं सद्गुरु का आश्रय ही सभी भ्रमों को दूर करने वाला है ॥ १०३ ॥

१८— कल्पना के जाल का वर्णन

चौपाई—८

सदा काल निज जाल पसारा। नित्य प्रलय परलय विस्तारा ॥१॥
लेत सकेलि जाल एक बारा। महाप्रलय सो विदित संसारा ॥२॥

शब्दार्थ — काल = मन। सकेलि = समेट।

भावार्थ— मन सदैव अपना कल्पनाजाल फैलाता रहता है। नित्य, निमित्तिक प्रलय आदि अनेक प्रलयों की कल्पनाओं का भी विस्तार कर रखा है ॥१॥ ब्रह्म,

एकबार अनन्त ब्रह्माण्ड रूप जाल समेट लेता है, यह संसार में महाप्रलय के नाम से प्रकट है ॥२॥

पिंड ब्रह्मांडके एक स्वभाऊ । प्रलय चार सो काल के दाऊ ॥३॥
नित्य प्रलय सो नित पर बीते । प्रलय मरण जलामय कीते ॥४॥

शब्दार्थ— काल के दाऊ = मन के छल-प्रपंच ;कल्पना । कीते = कहते हैं ।

भावार्थ— कहते हैं स्थूल शरीर और ब्रह्माण्ड विश्व का एक ही स्वभाव है, जैसे पिण्ड में अवस्थायें होती हैं वैसे ब्रह्माण्ड में प्रलय आदि रूप अवस्थायें होती हैं । परन्तु जो चार प्रलय माना है उनमें बहुत कुछ मनकी कल्पनायें ही हैं ।।३।। नित्यप्रलय वह सुषुप्ति अवस्था है जो प्राणियों पर रोज-रोज बीतती है । और प्राणी की मृत्यु को जलामय प्रलय कहते हैं; अर्थात मृतक शरीर सड़कर जलमय हो जाता है ॥४॥

एकांतिक प्रलय ब्रह्मज्ञाना । महाप्रलय महाशून्य समाना ॥५॥
अत्यंता नहिं मान अमाना । चहुँ प्रलय महाकाल समाना ॥६॥

शब्दार्थ—एकांतिक = पक्का, निश्चित । अत्यंता = अत्यंताभाव, आकाश-कुसुम के समान अत्यन्त अभाव । मान = जगत । अमान = ब्रह्म । महाकाल = अनंत काल; शिव का संहारकारी रूप ।

भावार्थ—सब कुछ ब्रह्म ही है, यह ज्ञान हो जाना एकांतिक प्रलय अर्थात निश्चित प्रलय माने हैं । महाशून्य ब्रह्म में लीन हो जाना अथवा सारे विश्वका लय होकर महान शून्य हो जाना महाप्रलय माना है ।।५।। उक्त चारों प्रलय पाँचवें अनन्त कालमें विलीन हो जाते हैं, जहाँ यह निश्चय हो जाता है कि न जगत है और न ब्रह्म है, सब कुछ क आकाशकुसुम वत अत्यंताभाव है ॥६॥

अस बाजी बाजीगर केरा । सोई कलंदर बंदर जियरा ॥७॥
बाजी झूठ बाजीगर साँचा । परवश जीव विकल भौ नाचा ॥८॥

शब्दार्थ— बाजी = बाजी, खेल, करतब, तमाशा, दाँव, बारी, धोखा, चालाकी । बाजीगर = जादूगरी करने वाला, भ्रमाने वाला व्यक्ति । कलंदर = बंदर-भालू नचाने वाली जाति का व्यक्ति ।

भावार्थ—भ्रमिकों का ऐसा तमाशा है, वे ही साधारण जीव रूपी बंदरों को नचाने वाले कलंदर बने हैं ।।७।। यह कल्पना का तमाशा तो झूठा है, परन्तु भूलवश भ्रामक बने लोगों का अपना मूल चेतन स्वरूप सत्य है। परन्तु वे अपने मनके वश में पड़े हुए संसार चक्कर में नाचते और दुःखी होते हैं तथा दूसरों को भी भ्रमाते हैं।।८।।

बाजीगर बड़ चतुर सयाना । ठगि ठगि जीव सेवा निज ठाना ॥९॥
जेहि जेहि भाँति चहै सो नचावै । मोहडोरि बहु फेर घुमावै ॥१०॥

शब्दार्थ—ठगि-ठगि = दगाबाजी कर-करके ।

भावार्थ—दूसरों को भ्रांति में डालकर उन्हें नचाने वाले लोग बड़े चालाँक तथा तेज बुद्धि के होते है । वे व्यक्तियों से दगाबाजी कर-करके गलत-सही अपनी सेवा करवाने के लिये उन पर जोर देते हैं ॥९॥ वे जब किसी को अपने वश में कर पाते हैं तब जिस प्रकार चाहते हैं उसे मोह की डोरी में बाँधकर अनेक चक्कर में घुमाते हैं ॥१०॥

साटी नर्क डेराइ डेराई । लोभ स्वर्ग चारा देखलाई ॥११॥
जीवहि नाच नचावत काला । भाव अनेक कठिन जंजाला ॥१२॥

शब्दार्थ— साटी = छड़ी, डंडा । चारा = भोग । भाव = विकार ।

भावार्थ—चालाँक बने हुए लोग नरक की छड़ी से डरा-डरा कर तथा स्वर्ग सुख के भोगों की प्राप्ति का लोभ दिखाकर जीवों को नाना कल्पित कर्मों के चक्कर तथा अनेक भयंकर बंधनविकारों में नचाते हैं ॥११, १२॥

साखी— नाच नचावै यम सदा, भाँति भाँतिके भाव ।
कबहुँ चढ़ावै पोहनी, जब जैसी सो दाव ॥१०४॥

शब्दार्थ — यम = मन । भाव = विकार । पोहनी = काठ का मोढ़ा जिस पर मंदारी बन्दर को बैठा देता है, तात्पर्य में ऊँचा स्थान देना । दाव = दाँव, अवसर ।

भावार्थ—इस प्रकार यह मन मनुष्य को अनेक विकारों में डालकर जब जैसा अवसर पाता है कभी तो दुःखों में नचाता है और कभी मधुरिम कल्पना के उच्च-शिखर पर पहुँचा देता है ॥१०४॥

विशेष — जो लोग दूसरे लोगों को भ्रम में डालकर उन्हें अज्ञान में फँसाते हैं वे भी तो स्वयं मन के भुलावा में हैं, तभी अपनी और दूसरे की हानि करते हैं । अतएव भूला मनही सबका काल या यम है । इसे ही ठीक करना चाहिये ।

भूषण बहुत पहिनायके, बहुरि लेत छिटकाय ।
बाजीगरके विलासमें, जीव बन्दर पछताय ॥१०५॥

शब्दार्थ — छिटकाय = बिखेर देना, तात्पर्य में निकाल लेना । विलास = क्रीड़ा; आनन्द ।

भावार्थ — बाजीगर बन्दर को अनेक आभूषण पहना कर उसे नचाता है, और पीछे आभूषणों को उतार लेता है । इसी प्रकार मन अनेक स्वर्णिम कल्पनाओं से जीव को मोहकर उसे भवचक्र में नचाता है, पुनः स्थिरताजनित सारा सुख छीन कर उसे अन्धकार में धकेल देता है । इस प्रकार मन-बाजीगर की कल्पना-क्रीड़ा में पड़ कर जीव-बन्दर को अनादिकाल से पश्चाताप ही हाथ में लग रहा है ॥१०५॥

७—सत्यशब्द टकसार : बीजक, शब्द–७८

अब हम जानिया हो, हरि बाजी को खेल ।।१।।
डंक बजाय देखाय तमाशा, बहुरी लेत सकेल ।।२।।
हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े, माया चाटक लाया ।।३।।
घर में डारि सकल भरमाया, हृदया ज्ञान न आया ।।४।।
बाजी झूठ बाजीगर साँचा, साधुन की मति ऐसी ।।५।।
कहहिं कबीर जिन जैसी समुझी, ताकी गति भई तैसी ।।६।।

शब्दार्थ — हरि = माया, भ्रमोपदेशक। बाजी = बाजीगरी, इन्द्रजाल; कल्पना । डंक = डंका, डमरू, ढोल। सुर नर मुनि = सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी । जहँड़े = खराब हुए। चाटक = लालसा, चाहना, इन्द्रजाल । घरमें = अपने कल्पित मत में ।

भावार्थ — हे भाई ! माया एवं भ्रमोपदेशकों के इन्द्रजाल का खेल अब मैंने जान लिया है ।।१।। इन्द्रजाल करने वाला जैसे डंका या डमरू-ढोल बजाकर और तमाशा दिखलाकर पुनः समेट लेता है, वैसे भूले गुरु लोग अपनी कल्पना का इन्द्रजाल फैला कर, और सबका मन उसमें फँसा कर पुनः समेट लेते हैं ।।२।। इस माया-कल्पना के इन्द्रजाल में सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी सब खराब हो गये, क्योंकि माया ने चार मोक्ष, स्वर्ग और ऋद्धि-सिद्धि आदि की लालसा सबके मन में लगा रखी है, अथवा अपनी कल्पना का इन्द्रजाल फैला रखा है ।।३।। यह माया अपने कल्पित मत में डाल कर सबको भ्रमा रखी है; इसीलिये लोगों के हृदय में शुद्ध पारख ज्ञान शीघ्र नहीं बैठता ।।४।। जीवद्वारा की गयी कल्पना रूपी बाजीगरी सब झूठी है और उसका करने वाला जीव सत्य है—यह सन्तों का मत है ।।५।। सद्गुरु कहते हैं, कि जो जैसा समझ लिया, उसकी वैसी ही बुद्धि हो गयी ।।६।।

विशेष — जिसकी बुद्धि में जैसा आया, वह वैसा ही सत्य मान लिया । कोई जगत का रचयिता कल्पना करके खड़ा किया । कोई विवर्तवाद; कोई दृष्टि-सृष्टिवाद, कोई परिमाणवाद, कोई आरम्भवाद इत्यादि ।

साहेब कहते हैं अब मैंने माया की बाजीगरी का खेल समझ लिया है अब इसका दाँव हमसे नहीं चलेगा ।

जीव अपने शुद्ध चेतन स्वरूप को भूलकर अपने से पृथक ईश्वर-ब्रह्म, देवी-देवतादि की कल्पना करता है, यह कल्पना ही माया है । विषय-वासनायें माया हैं हीं; परन्तु समस्त कल्पनायें-वासनायें असत्य हैं और कल्पना करने वाला जीव सत्य है— यह सन्तों का सर्वोच्च सिद्धान्त है । अतएव मन की समस्त कल्पनायें छोड़कर स्वस्वरूप में ही रमण करना चाहिये ।

१९–मोह बन्धन और पारख द्वारा उसकी निवृत्ति

चौपाई—८

डोरी मोह न छूटै सोई। यम वशि जीव सदा रहै रोई ॥१॥
बाजी बनाय देखाय तमाशा। लेत सकेलि सो करत विलासा ॥२॥

शब्दार्थ — यम = मन, वासना। विलासा = क्रीड़ा।

भावार्थ — वह मोह की रस्सी नहीं टूटती जिस वासना के वश में जीव सदैव दुःख से विलाप कर रहे हैं ॥१॥ मन अनेक छलावा करके जीव को रात-दिन रोचक तथा भयानक कल्पनाओं का तमाशा दिखाता और पुनः समेटता है, इस प्रकार वह दुःखपूर्ण क्रीड़ा करता है ॥२॥

जाके स्वभाव दया सो दयाला। देखि सके नहिं जीव बेहाला ॥३॥
जब जब बाजी काल पसारे। तब तब प्रभु पारख विस्तारे ॥४॥

शब्दार्थ — प्रभु = स्वामी; जितेन्द्रिय।

भावार्थ — जिसके स्वभाव में ही दया है वह दयालु है वह जीवों के दुःखों को नहीं देख सकता। (अर्थात् वह उन्हें भवबन्धनों से छुड़ाने की चेष्टा करता है) ॥३॥ (क्योंकि वह हर समय अपने मन पर अधिकार रखता है) उसके हृदय में जब-जब मन वासनाजाल का धोखा फैलाता है; तब-तब वह जितेन्द्रिय पुरुष मन-वासना का पारखी एवं द्रष्टा बनकर उन्हें मिटा देता है ॥४॥

होय उदय यमजाल छुड़ावै। अभय अच्युतपारख शरणावै ॥५॥
जब जीव पारख प्रभु के पावै। डोरि मोह सो तुरित तोरावै ॥६॥

शब्दार्थ — अच्युत = अचल; निर्विकार; स्थिर। तुरित = तुरन्त, शीघ्र।

भावार्थ — जिसके हृदय में वास्तविक ज्ञान का उदय हो जाता है वह अपने आपको मनके बन्धनों से छुड़ा लेता है, वह निर्भय तथा निश्चल पारखस्वरूप चेतन में स्थित हो जाता है ॥५॥ व्यक्ति जिस समय सद्‌गुरुद्वारा पारखबोध प्राप्त कर लेता है, वह मोह की रस्सी तुरन्त तोड़कर निर्बन्ध हो जाता है ॥६॥

प्रभु शरणागत रहत समाई। काल डरत तेहि निकट न जाई ॥७॥
यहि विधि जीव परमपद पावै। देखि काल तेहि बहु पछितावै ॥८॥

शब्दार्थ — समाई = लीन, तद्‌गत। परमपद = मोक्ष।

भावार्थ — जो व्यक्ति बोध-वैराग्यनिष्ठ सद्‌गुरु की शरण में तद्‌गत रहता है, अज्ञान उससे डरता है तथा पास नहीं जाता ॥७॥ इस प्रकार यथार्थ सद्‌गुरु की शरण

द्वारा जीव मोक्ष पद की प्राप्ति करता है। उसकी ज्ञान-वैराग्यमय स्थिति को देखकर अध्यासी मन बहुत पश्चाताप करके रह जाता है ॥८॥

सक भरि चहत वझावै सोई। ऐसा अधम मूढ़ यम होई ॥९॥
जो पारख यमजाल मिटावै। तापर काल कला किमि पावै ॥१०॥

शब्दार्थ — सक भरि=शक्ति चले तक। यम=विषयीमन। कालकला=मन की कल्पना व अज्ञान।

भावार्थ — विषयी मन ऐसा नीच तथा मूढ़ है कि शक्ति चले तक यह साधक को मोह में फँसाकर गिराना चाहता है ॥९॥ जो पारखज्ञान मन-वासनाओं के बंधनों को नष्ट करने वाला है, उसे जिसने प्राप्त कर लिया है, उस पर मन की कल्पनाओं का अधिकार कैसे कर सकता है ? ॥१०॥

साखी—पारख तोरे भरमगढ़, खीझै काल कराल।
करि न सकै कछु प्रभुता ऐसो शरण दयाल ॥१०६॥

शब्दार्थ— गढ़=किला। खीझै=खीजना; झुँझलाना, क्रुद्ध होना। प्रभुता= अधिकार।

भावार्थ— पारखज्ञान भ्रम के किला को तोड़ देता है, इससे भयंकर विषयाध्यासी मन क्रुद्ध होता है। परन्तु दयालु सद्गुरु का ऐसा आश्रय है कि उसपर वह अपना किंचिन्मात्र भी अधिकार नहीं कर सकता ॥१०६॥

सत्य शरण प्रभु पावते, टूटि मोह की डोर।
अभय भक्त पारख सदा, कला न लागै चोर ॥१०७॥

शब्दार्थ — भक्त=श्रद्धालु। चोर=मन। कला=हुनर, गुण; दाँव।

भावार्थ — सच्चे सद्गुरु की शरण पाते ही अज्ञान का बंधन टूट जाता है। पारख ज्ञान का श्रद्धालु सदैव निर्भय होता है, उसके पास मनचोर का दाँव नहीं लगता ॥१०७॥

२०—कल्पना जालका विस्तार पूर्वक वर्णन

चौपाई—१०

रचना आदि जाल सो कहऊँ। प्रभु पारख प्रसाद सो लहऊँ ॥१॥
सुनहु सभन भवचक्र कहानी। आदि अंत परे पहिचानी ॥२॥

शब्दार्थ — आदि=मूल। प्रसाद=कृपा। भवचक्र=संसार या अज्ञान का चक्कर।

भावार्थ — मैं उस भवबंधन की रचना का मूल कहता हूँ, जिसका ज्ञान मुझे पारखी सद्गुरु की कृपा से हुआ है ॥१॥ सब लोग संसार एवं अज्ञान के चक्कर की कथा को सुनो, जिससे उसके कारण और निदान समझ में आये ॥२॥

महाअस्ति परकाशक सारा । महा नास्ति सो दुंदाकारा ॥३॥
दुंदाकार कछु वस्तु न भाई । झाँई अस्ति भास दृढ़ पाई ॥४॥

शब्दार्थ — महाअस्ति = महान सत्य; चेतन जीव । परकाशक = प्रकाशक; ज्ञान करने वाला । महा नास्ति = केवल मनकी कल्पना । दुँदाकारा = द्वन्द्व-आकार, झगड़ा का स्वरूप । झाँई = धोखा । अस्ति = सत्य; जीव ।

भावार्थ — सबका ज्ञान करके निर्धारण करने वाला महान सत्य यह चेतन जीव है । जीव अपने से पृथक जहाँ तक कल्पना कर रखा है वह महान असत्य तथा झगड़े का स्वरूप है ॥३॥ हे भाई ! वह कल्पित झगड़े वाली वस्तु स्वरूपतः कुछ नहीं है । जीव ने धोखा से दृढ़ भास खड़ा कर लिया है ॥४॥

भास अध्यास होत अकुलाई । ज्ञानहिं महँ अज्ञान समाई ॥५॥
इच्छा सुख दुख सूझत नाहीं । कर्म द्रव्य बहु विधि प्रगटाहीं ॥६॥

शब्दार्थ — भास = चमक; कल्पना । अध्यास = मिथ्या ज्ञान, भ्रांति । अकुलाई = घबराना, व्याकुल होना ।

भावार्थ -- मन में कल्पना एवं भ्रांति के खड़ी होने पर सुज्ञजीव व्याकुल होते हैं; परन्तु जीव की ज्ञानवृत्ति में अज्ञान मिश्रित हो जाने से पारख विना उसे लाँघ नहीं सकते ॥५॥ लोग विषयों से सुखप्राप्ति की इच्छा करते हैं, परन्तु उनको यह नहीं समझ पड़ता कि दुःख का कारण यही है । प्रत्युत पाप-पुण्यादि अनेक कर्म करके उचित-अनुचित धन पैदा करके भोगों में ही तत्पर रहते हैं ॥६॥

एक अनेक सोई परवाना । नीचा नीच कर्म लपटाना ॥७॥
तेई निरंजन अटपट चाला । सुखके जतन महा जंजाला ॥८॥

शब्दार्थ -- परवाना = प्रमाण, सत्य । निरंजन = मन ।

भावार्थ—लोग एक सत्कर्म के आड़ में अनेक दुष्कर्म करके उन्हें ही सत्य एवं सुखप्रद मान रहे हैं । इस प्रकार लोग नीच से नीच कर्मों में लिपटे हैं ॥७॥ ये सभी कर्म मन की बेढंगी चालें हैं । वस्तुतः लोग सुख प्राप्ति के चक्कर में पड़कर महान भवबन्धनों में ग्रसित हो जाते हैं ॥८॥

अनबनि चाल रहा जहँड़ाई । भूल स्वाभाविक आपै साँई ॥९॥
द्रव्य कर्म इच्छा अरु ज्ञाना । मेटि मिटाय लहै विज्ञाना ॥१०॥

शब्दार्थ— अनबनि = अनबन = झगड़ा; अनेक । जहँड़ाई = जहँड़ाना; ठगाना ।

भावार्थ — मनुष्य अनेक चाल चलकर अपने को ठगा रहा है। वह कहता है कि मैं स्वयं ब्रह्म हूँ और जगत-उत्पत्ति रूपी भूल हमारे में स्वाभाविक अनादि-अनन्त है ॥९॥ फिर तो सांसारिक धन, कर्म, इच्छा और ज्ञान मेट-मिटाकर तथाकथित विज्ञान अवस्था को प्राप्त करता है, जो वस्तुतः जड़-जगत से पृथक नहीं है ॥१०॥

आपु अनंतसो परजा भाई। एक सो मायापति अन्याई ॥११॥
आपै चोर साहु सो आपै। भरमिक भरम विवश तेहि थापै ॥१२॥

शब्दार्थ — आपु = स्वयं, ईश्वर। मायापति = ईश्वर। भरमिक = भ्रमिक। थापै = स्थापित करना; सिद्ध करना।

भावार्थ — (कोई कहता है कि) 'ईश्वर स्वयं अनन्त स्वरूप है और हे भाई! हम सब उसकी प्रजा हैं। वह ईश्वर एक है, माया का अधीश्वर है।' परन्तु विवेक करके देखा जाय तो वह न्याय विरुद्ध है ॥११॥ क्योंकि भ्रम में भूले लोग उसको इस प्रकार सिद्ध करते हैं कि वह स्वयं चोर और स्वयं साहु हो जाता है ॥१२॥

विशेष — ईश्वरवादी का कथन है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वत्र, सर्वज्ञ, सर्वान्तरयामी और कृपालु है। फिर भी जीवों के लिये दुःख रूपी जगत वही बनाया है। कहते हैं उसकी इच्छा के बिना एक तृण भी नहीं हिलता। इसका तात्पर्य है संसार में जितने पाप-पुण्य हो रहे हैं वही करा रहा है। इसलिए वह स्वयं चोर बना तथा स्वयं ही साहु बना; और दुःख रूपी जगत बनाकर वह जीवों के साथ अन्याय किया।

ईश्वरवाद के नानामत खड़ा करके लोग आये दिन परस्पर खूनखराबा करते हैं; और अनेक लोगों ने एकता के लिये ईश्वर से प्रार्थनायें भी की हैं और यह नाटक ईश्वर अनादिकाल से चुपचाप देखता-सुनता जाता है; परन्तु न उसकी आँखों में शील आता है तथा न उसके कान पर जूँ रेंगते हैं। आज तक ईश्वर न सबमें एकता करा सका और न यह बता सका कि मेरी पुस्तक वेद, बाइबिल तथा कुरान में कौन है।

अतएव स्वयंप्रत्यक्ष चेतनस्वरूपज्ञान को छोड़कर ईश्वरवाद जैसी अत्यंत दुर्बल धारणा में पड़ना सचमुच महाभूल है।

ममता राज अधिक अधिकाई। विविध भर्मकी लागी काई ॥१३॥
सन्मुख संधि रहा लौ लाई। आपा ओट नाहिं परखाई ॥१४॥

शब्दार्थ — ममता = अपने चेतन स्वरूप से पृथक वस्तुओं को दृढ़ करके अपना मान लेना। काई = पानी या सील में रहने वाले पत्थर आदि या जमीन पर जमने वाली बारीक रोयें जैसी घास; मैल। संधि = भूल। आपा = अहंकार।

भावार्थ — स्वप्नतुल्य सांसारिक प्राणी-पदार्थों को अपना मानकर मनुष्य ममता का बहुत बड़ा पसारा कर लिया है। और इसके मन में अनेक भ्रांतियों की मैल जमी

हुई है ॥ १३ ॥ मन के सामने जो भूलजनित वासनायें रहती हैं मनुष्य उन्हीं में सदैव ध्यानमग्न रहता है। परन्तु अहंकार का परदा होने से ये सब बातें परखने में नहीं आती हैं ॥ १४ ॥

पलकहि भरि जो प्रभु पद हेरे । तुरतहि झाईं संधि निबेरे ॥१५॥
जो सहि सन्मुख प्रभुके न होई। चाहै मूलपै शून्य बिगोई ॥१६॥

शब्दार्थ — पद=स्वस्वरूपज्ञान; पारखपद । हेरे=हेरना, देखना, परखना, खोज करना । सहि=कष्ट सहन करके । मूल=सत्य । बिगोई=खो देना ।

भावार्थ — कोई थोड़ा ही समय लगा कर पारखी सद्गुरु की शरण में स्वरूप-ज्ञान की खोज करे या अपने स्वरूप को परख ले, तो वह शीघ्र ही सारे धोखा एवं भूल का निर्णय करके निर्बन्ध हो जाय ॥ १५ ॥ जो थोड़ी साधना एवं भक्ति जनित कष्ट उठाने के डर से सच्चे सद्गुरु के सम्मुख नहीं जाता है, वह भले ही सत्य स्वरूप में स्थित होना चाहता हो, परन्तु अपने को वह मिथ्या में खो देता है ॥ १६ ॥

साखी—एक बातकी बात है, बहु विधि कहा बनाय ।
भारी परदा बीचका, ताते लखा न जाय ॥१०८॥

शब्दार्थ — बनाय=अच्छी तरह; समझाकर । परदा=आवरण ।

भावार्थ — वैसे तो बहुत प्रकार से समझा करके कहा गया है; परन्तु इस एक ही बात में उक्त सैकड़ों बातें हैं कि मन के बीच में अहंता-ममता का जो भारी परदा है, उसी से सत्य क्या है और असत्य क्या है यह समझने में नहीं आता ॥ १०८ ॥

चौपाई—११

निर्विकारके करनि बेकारा । दुर्मति राज न सूझै पारा ॥१॥
एक अनंत जीव बिलखाई । अटपट चाल दो विधि जहँड़ाई ॥२॥

शब्दार्थ — करनि=करनी, कर्म । दोविधि=दो प्रकार खानी और वाणी ।

भावार्थ — स्वरूपतः निर्विकार जीव से भूलवश विकारपूर्ण कर्म हो रहे हैं । इस दुर्बुद्धि के राज्य में पड़कर उसे पार पाने का मार्ग नहीं दिखाई देता ॥ १ ॥ एक ब्रह्म और अनेकत्व पूर्ण जगत की कल्पना में पड़कर जीव भ्रमवश व्याकुल होकर भटकता है । इस प्रकार मनुष्य टेढ़ी चाल चलकर खानी और वाणी दोनों प्रकार के बंधनों में पड़ा अपने को ठगा रहा है ॥ २ ॥

प्रथमा सोई स्वरूप विराजै । संधि स्वरूप चहुँ विधि गाजै ॥३॥
दूजे विविधि भरम सोई जाला । घट घट ज्ञान होय बैठे काला ॥४॥

शब्दार्थ — प्रथमा=पहला खानी जाल । विराजै=विराजना, शोभना;

रहना । चहुँ विधि = चार प्रकार—मनुष्य, पशु, अण्डज, उष्मज । गाजै = गाजना, गरजना । दूजै = दूसरा वाणी जाल । काता = कल्पना ।

भावार्थ — बंधन का वह प्रथम स्वरूप खानी का है जो भूलस्वरूप मनुष्य, पशु, अण्डज तथा उष्मज—इन चारों खानियों के दुःख जीव पर गरजते हैं ।। ३ ।। दूसरा बंधन वाणीजाल है जिसमें विविध परोक्ष भ्रांतियाँ हैं और जिसमें कल्पना ही ज्ञान का वेष बनाकर घट-घट में बैठी है ।। ४ ।।

संधि ज्ञान सो भोंदू रचना । राज हेतु जीव विविध कल्पना ।।५।।
पारख प्रभु भवजाल छोड़ावै । झाँई संधि सब तुरित मिटावै ।।६।।
रक्षक भक्षक जेहि लखि परहीं । बिन परिश्रम भवसरिता तरहीं ।।७।।

शब्दार्थ — संधि ज्ञान = भ्रमपूर्ण ज्ञान । भोंदू रचना = मूर्ख मन की कल्पना ।

भावार्थ — जो अज्ञान मिश्रित ज्ञान है वह मन की कल्पना है । भूले व्यक्ति सांसारिक राज-काज एवं ऐश्वर्य-मान के लिये अनेक कल्पनायें करते हैं ।। ५ ।। सद्गुरु का पारखबोध संसार के बंधनों से जीवों को छुड़ाता है और सारे धोखा, भ्रम एवं भूलों को शीघ्र नष्ट कर देता है ।। ६ ।। जिस व्यक्ति को यह भलीभाँति परखने में आ जाता है कि हमारी शांति एवं मोक्षमार्ग का कौन रक्षा करने वाला है तथा कौन उसमें रुकावट एवं विघ्न डालने वाला है, वह विघ्नों को निर्ममतापूर्वक हटाकर तथा रक्षकों को साथ लेकर बिना अधिक परिश्रम किये ही संसार सागर को पार कर जाता है ।। ७ ।।

साखी—गुरु तो ऐसा चाहिये, ज्यों सिकलीगर होय ।
जन्म जन्म का मूरचा, गुरु पल में डारे खोय ।।१०९।।

शब्दार्थ — सिकलीगर = हथियार तेज करने वाला; चमक लाने वाला । मूरचा = मोरचा, अभ्यास, भूल, आसक्ति ।

भावार्थ — सद्गुरु तो ऐसा दिव्य होना चाहिये जैसे हथियार में चमक लाने-वाला सिकलीगर । यथार्थ सद्गुरु जन्म जन्मान्तरों की भूलों को क्षणमें नष्ट कर देता है ।। १०९ ।।

२१—पारख ज्ञान से सब अज्ञानों का अन्त

चौपाई—१२

सर्व परे प्रभु दीनदयाला । नीचे नीच सो काल कराला ।।१।।
जीवै जीव मध्य सो वासा । बिनु पारख सो काल गरासा ।।२।।

शब्दार्थ — कालकराला = भयंकर काल-विषयी मन ।

भावार्थ -- दीनदयालु सद्‌गुरु सर्वोपरि हैं; परन्तु यह भयंकर दुःखदायी मन अधम-से-अधम है (दोनों के बीच में मुमुक्षु है, जिसकी सम्मति मानना चाहे माने) ॥ १ ॥ उस भ्रामक मन का निवास हर व्यक्ति में है इसलिये जो उसकी परख नहीं करता है वह उसका ग्रास बन जाता है ॥ २ ॥

दया स्वभाव दया प्रभु केरा । परख प्रकाश न लेश अंधेरा ॥३॥
सो बिनु पारख जीव नशाना । कालकला घट ताहि समाना ॥४॥

शब्दार्थ -- लेश = अल्प, थोड़ा, । कालकला = मन की कल्पना ।

भावार्थ -- सद्‌गुरु का स्वभाव है जीवों पर दया करना, इसलिये वे दया करते हैं । उनके द्वारा प्राप्त जहाँ यथार्थ पारख का प्रकाश है वहाँ किंचिन्मात्र भी अज्ञान की अंधियारी नहीं है ॥ ३ ॥ उस पारख ज्ञान की प्राप्ति बिना व्यक्ति पतित होता है, क्योंकि उसके हृदय में मन की कल्पनायें एवं अनेक प्रकार अज्ञान प्रविष्ट हैं ॥ ४ ॥

विशेष—चेतन गुणी है, पारख उसका गुण है । पारख का अर्थ है ज्ञान । सारासार को छानबीन करना, परख करना है । नाना मतवादी अपनी पुस्तक ही मुख्य प्रमाण मानते हैं, वे कोई बात क्यों मानते हैं, क्योंकि वह बात उनकी पुस्तक में लिखी है । परन्तु सद्‌गुरु कबीर पारख को प्रमाण मानते हैं । वे कोई बात क्यों मानते हैं, क्योंकि उसकी छानबीन एवं परख कर ली गयी है ।

अतएव पारख ही निष्पक्ष हो सकता है । जिनके सिद्धांत का वस्तु निर्धारण किसी पोथी, पैगम्बर या अवतार की दोहाई देकर नहीं, अपितु जाँच-परख पर है; वही निर्भ्रान्त, निष्पक्ष एवं वास्तविक ज्ञान है ।

काल कराल सो दुष्ट स्वभाऊ । महाजाल भव ताके दाऊ ॥५॥
तामस तम स्वरूप विराजै । सदा दुष्ट महा दुर्मत छाजै ॥६॥

शब्दार्थ — दाऊ = दाँव, छल, धोखा ।

भावार्थ — इस भयंकर मन का दुष्ट स्वभाव है । संसार के महाजाल में फँसा देना ही इसका छलपूर्ण कर्तव्य है ॥ ५ ॥ यह सत और रज की अपेक्षा अंधकारमय तमोगुण में ही विराजता है । यह मन महान दुष्ट है और सदैव दुर्बुद्धि का ही श्रृंगार करता है ॥ ६ ॥

मूल पेड़ फल तीनि फलाई । पंच रंग पल्लव फूल फुलाई ॥७॥
कटु अरु मीठ चुवै रस ताही । भँवर होय जिव लुब्धै जाही ॥८॥

शब्दार्थ -- मूल = जड़; अज्ञान । पेड़ = वृक्ष, शरीर । तीन = सत, रज, तम । पंच = पाँच विषय । फूल = वासना । कटु = दुःख । मीठ = सुख । लुब्धै = मोहित होना ।

भावार्थ — अज्ञान जड़ है, शरीर वृक्ष है, पंचविषय के पल्लव और उसकी वासनाये फूल हैं तथा सत, रज, तम—ये तीन गुण फल हैं और उनके सुख और दुःख के रस हैं जो अनुभव पात्र में चूते हैं। भूले जीवभँवरे इन्हीं में मोहित होकर अंधकार में जाते हैं ॥ ७, ८ ॥

साखी—अव्यक्त मूल जग पेड़ सो, तामस रूप दुख खान।
लासा मोह विकट तेहि, पर हंसन अरुझान ॥११०॥

शब्दार्थ — अव्यक्त = अदृश्य, अज्ञात, अनिश्चित । मूल = जड़; कारण । लासा = गोंद । पर = पंख ।

भावार्थ — ब्रह्मवादी लोग जो ब्रह्म अज्ञात एवं अनिश्चित है उसी को उस विश्ववृक्ष का कारण बतलाते हैं जो अन्धकाररूप एवं दुःखों की खानि है। और उसका मोहलासा ऐसा भयंकर है जिसमें मनुष्यों के विवेक-विचार रूपी पंखे उलझे हैं ॥११०॥

विशेष—जब संसार प्रत्यक्ष अन्धकारमय एवं दुःखमय है, जिससे उससे मोक्ष लेने की आवश्यकता पड़ती है, तब उस संसार का कारण कैसा होगा इसका विवेकी स्वयं विवेक करें। क्योंकि शास्त्र कहता है—

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणोदृष्टः ।

(वैशेषिक.........)

अर्थात कारण के गुण के अनुसार ही कार्य में गुण देखे जाते हैं।

सत्यशब्द टकसार : वीजक, साखी–१४४

तामस केरे तीन गुण, भँवर लेइ तहाँ बास।
एकै डारी तीन फल, भाँटा ऊख कपास ॥१११॥

शब्दार्थ—तामस = तमः प्रधान माया । तीन गुण = सत, रज, तम । भँवर = अध्यासी जीव । डारी = माया । भाँटा = तमोगुण । ऊख = सतोगुण । कपास = रजोगुण ।

भावार्थ — तमः प्रधान माया के सत, रज, तम–तीन गुण हैं। इन्हीं में अध्यासी जीव सुगन्धी ले रहे हैं। एक ही डगाली में परस्पर विरुद्ध धर्म वाले तीन फल-भाँटा, ऊख, और कपास लगे हैं; अर्थात एक ही माया में सत, रज, तम—तीनों गुणों का विकास है ॥१४४॥

विशेष—अभिप्राय यह है कि तीनों गुण माया के भीतर हैं। अपने से पृथक ईश्वर मानकर, उसकी उपासना करना और ब्रह्मज्ञान की साक्षी दशा यह सब सतोगुण के कार्य हैं।

नाना देवी-देवता-स्वर्गादि मानकर, उनकी प्राप्ति के लिये अथवा लौकिक सुख के लिये, नाना यज्ञ-कर्म का आचरण करना—यह सब रजोगुण के कार्य हैं।

नाना भूत-प्रेत, काली-भवानी मानकर, अपनी इष्ट-सिद्धि के लिये उनकी मिट्टी-पत्थर की मूर्ति-पिण्डी बनाकर, पूजा करना और बकरा-भेड़ा-सूअर मारना आदि—तमोगुण के कार्य हैं।

तीनों गुणों के कार्यों का जो फल होता है; उसे गीता बतलाती है—

ऊर्ध्वंगच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥

(गीता १४।१८)

अर्थ—सतोगुणी उच्च गति को, रजोगुणी मध्य गति को और तमोगुणी अधोगति को प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त तीनों गतियाँ माया के भीतर एवं जन्म-मरण के अन्तर्गत हैं।

तेल, बत्ती, अग्नि—तीनों परस्पर विरोधी होने पर भी एक साथ मिलकर ज्योति अर्थात प्रकाश रूपी कार्य का सम्पादन करते हैं। इसी प्रकार सत, रज, तम—परस्पर विरोधी होते हुए भी एक साथ रहकर मायावी कार्य का सम्पादन करते हैं। आवश्यकता है तीनों गुणों से ऊपर उठने की।

चौपाई—१३

प्रथम निरंजन शून्य स्वरूपा। जेहि विधि रचा महाभवकूपा॥१॥
जीवन जीव देखि ललचाना। संधि अबुध ताहि लपटाना॥२॥

शब्दार्थ — निरंजन = मन। जीवन = जिंदगी; जिंदगी के ऐश्वर्य। संधि = भूल; भूल की बातें।

भावार्थ — मन पहले शून्य रूप ही रहता है। पीछे से इच्छा प्रकट करके जिस प्रकार महान भवबन्धन बनाता है वह इस प्रकार है॥१॥ जीव मनके कहने में पड़कर जीवन के क्षणिक चमक-दमक एवं ऐश्वर्य को देखकर उधर लोभ-मोह उत्पन्न करता है। फिर अज्ञानी उन्हीं स्वप्नतुल्य पदार्थों एवं भूली बातों में आसक्त हो जाता है॥१॥

ज्ञान रूप सो अंतर वासा। जीव स्वभाव जीवन परकाशा॥३॥
एक अनंत होय करै परकाशा। काल कराल पलहि पल ग्रासा॥४॥

शब्दार्थ — अन्तर = हृदय। वासा = वासना; बस जाना।

भावार्थ — उपर्युक्त कथित वासनायें ज्ञान-स्वरूप जीव के अन्तःकरण में बस जाती हैं। और जीव अपने भूल स्वभाववश उन्हीं वासनाओं का अपने जीवन में प्रकाश करता है; अर्थात वासनानुसार ही कार्य करता है॥३॥ यह एक जीव भूलवश अनन्त वासनाओं का स्वरूप धारण करके तदनुसार कर्मों का प्रकाशन करता है। इस प्रकार भयंकर मन-काल इसे क्षण-क्षण अपना ग्रास बनाता है॥४॥

सो बन्धन जीव सुनहु अपाना । अनन्त रूप होयके अरुझाना ॥५॥
कारण विश्व अव्यक्त बेकारी । जीवन हरै सोई जाल पसारी ॥६॥

शब्दार्थ—अव्यक्त = अज्ञेय ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वह अपने बन्धनों के स्वरूप को सुनो । तुम स्वयं अनन्त वासनाओं के स्वरूप धारण करके दृश्यों में उलझे हुए हो ॥५॥ तुम स्वयं विश्वका कारण अज्ञेय विकारी ब्रह्म को मानकर उसी को अपना स्वरूप भी मान रखे हो; और इन्हीं मान्यताओं के जालों को फैलाकर जीवन को खो रहे हो ॥६॥

तामस रूप निरंजन राया । सोई अगुण सगुण होय आया ॥७॥
थाना चारि आपु निर्माई । कला अनन्त जीव भरमाई ॥८॥

शब्दार्थ — तामस = अन्धकार । निरंजन = मन । राया = राजा । थाना = स्थान; अवस्था; काण्ड । कला = हुनर, गुण; कल्पना ।

भावार्थ — यह मनराजा सदैव अन्धकार रूप बना रहता है । वही निर्गुण तथा सगुण रूप धारण करके आता है, अर्थात सगुण-निर्गुण उसी की कल्पना है ॥७॥ यह स्वयं मन ही चार अवस्थाओं के चार काण्ड बनाया है; और अनेक कल्पनाओं में जीव को भटका दिया है ॥८॥

प्रथमें तुरिया ज्ञान कहावै । दूजे शून्य सुषोप्ति धावै ॥९॥
तीजे स्वासा सपन बनाई । चौथे पृथिवी जग बिटमाई ॥१०॥

शब्दार्थ—शून्य = योग । स्वासा = उपासना । पृथ्वी = कर्म । बिटमाई = बनाया ।

भावार्थ — पहला तुरीय अवस्था का ज्ञानकाण्ड कहलाता है । दूसरा सुषुप्ति अवस्था का योगकाण्ड है ॥९॥ तीसरा स्वप्न अवस्था का उपासनाकाण्ड है तथा चौथा जागृति अवस्था का कर्मकाण्ड बनाया है ॥१०॥

विशेष — जागृति अवस्था के अभ्यास से कर्मकाण्ड है । अर्थात जागृति ही में यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत आदि किये जाते हैं । स्वप्न अवस्था का अभ्यास उपासना है । अर्थात कल्पित ईश्वरादि की स्वप्नवत उपासना लोग करते हैं और स्वास में नामादि जपते हैं । सुषुप्ति अवस्था का अभ्यास योग है । अर्थात हठयोगादि करके सुषुप्ति वत योगी लोग अचेत बनते हैं । तुरीय अवस्था का अभ्यास ब्रह्मज्ञान है ।

ध्यान रहे ! यह बात स्थल-स्थल पर बता दी गयी है कि कर्म, उपासना, योग तथा ज्ञान के काल्पनिक अंश ही त्याज्य हैं, उनके स्वस्थ एवं कल्याणप्रद अंश ग्रहणीय हैं । पवित्रकर्म, गुरुउपासना, मनोनिग्रहयोग तथा स्वरूपज्ञान ग्रहण करने योग्य हैं ।

साखी—जीव फँसे तेहि जाल में, सूझे वार न पार ।
त्राहि त्राहि निशिदिन करै, साहेब लेहु उबार ॥११२॥

शब्दार्थ — त्राहि त्राहि = बचाओ-बचाओ । साहेब = स्वामी; भगवान ।

भावार्थ — मनुष्य उपर्युक्त भवबन्धनों में फँसे हैं, उन्हें छुटकारा का रास्ता नहीं सूझता । वे रात-दिन यही पुकारते हैं कि हे स्वामी ! हे भगवान ! हमें बचाओ, उबारो ॥११२॥

साहेब को जाने नहीं, हाकिम चोर प्रचंड ।
यम ठाकुर यम देश में, खंड पिंड ब्रह्मंड ॥११३॥

शब्दार्थ — हाकिम = हुक्म करने वाला; हुकूमत करने वाला; शासक; मालिक । यम = मन । ठाकुर = मालिक । यमदेश = मनका देश, मनोराज्य । खंड = भाग, हिस्सा । पिंड = देह । ब्रह्मांड = विश्व ।

भावार्थ — मनुष्य रूप में विवेकी सन्त पुरुष ही जीवों को भवबन्धनों से बचाने वाले साहेब हैं—यह बात लोग नहीं जानते । क्योंकि भयंकर चोर मन ही सब जीवों पर शासक बना हुआ है । मनोराज्य में मनही राजा है, और विश्व के सभी हिस्सों और देहों में मनोराज्य है ॥११३॥

विशेष — लोग मनसे कल्पना किये हुए कल्पित पुरुष को ही अपना उद्धारक मानते हैं । परन्तु वस्तुतः मनुष्य का कल्याण मनुष्य से ही होने वाला है । हाँ, वह ऐसा मनुष्य होना चाहिये जो सत्य-ज्ञानी तथा निर्दोष-जीवन हो ।

२२—माया और ब्रह्म से जगत-उत्पत्ति की कल्पना

चौपाई—९४

जीवहि ग्रासि एक तन भयऊ । दुविधा कला तबै निर्मयऊ ॥१॥
कारण पुरुष एक रूप सँवारी । इच्छा दुतिया कारण नारी ॥२॥

शब्दार्थ — एकतन = एक स्वरूप । दुविधा = अनिश्चितता । कला = अंश । सँवारी = बनाया ।

भावार्थ — मनुष्य ने अनिश्चितता का अंश तभी उत्पन्न किया जब वह यह मान लिया कि जीव और जगत ब्रह्म में लीन होकर सब एक रूप हो जाते हैं ॥१॥ उसने कल्पना करके यह भी मान्यता खड़ी की कि संसार का कारण एक ब्रह्म पुरुष है; और दूसरा कारण उसकी अनेक होने की इच्छा है जो माया रूप है ॥२॥

चिदाकाश सो पुरुष स्वरूपा । शक्ति सगुण मायाके रूपा ॥३॥
अर्धंगी सोइ नारि कहावै । मेल मिलाप परस्पर भावै ॥४॥

शब्दार्थ— चिदाकाश = चिद्+आकाश—आकाशवत चेतन। अर्धंगी = अर्द्धांगिनी, पत्नी।

भवार्थ — (कहते हैं) वह आकाशस्वरूप सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म पुरुष रूप है और माया उसकी अभिन्न शक्ति तथा गुणवती है ॥३॥ नारी पुरुष का आधा अंग कहलाती है, वैसे माया ब्रह्म का आधा अंग व अभिन्न रूपा है। जैसे नर-नारी परस्पर मिलना-जुलना आनन्दकर मानते हैं, वैसे ब्रह्म माया से क्रीड़ा करने में आनन्द समझता है ॥४॥

पवन थीर अंधेरी झाँई । सदा विलास भर्म तेहि माँई ॥५॥
एक जीव दुई रूप समाना । बिनु पारख न परे पहिचाना ॥६॥

शब्दार्थ — पवन थीर = माया। अंधेरी = काली। झाँई = छाया। माँई = माँहीं, में।

भावार्थ — (कहते हैं) माया ब्रह्म की काली छाया है। ब्रह्म उसमें सदैव क्रीड़ा करता है, इसलिये उसे उसमें द्वैत का भ्रम होकर जगत की कल्पना होती है ॥५॥ इस प्रकार एक जीव माया और ब्रह्म इन कल्पना के स्वरूपों में समाया है। बिना निष्पक्ष पारख-बोध हुए यह धोखा परखने में नहीं आता ॥६॥

नारि पुरुष दोउ कीन्ह मिलापा । शून्य स्वरूप सुषुप्ति व्यापा ॥७॥
चिदाकाश दूजे थीर पौना । युगल शरीर मिला जीव तौना ॥८॥

शब्दार्थ — मिलापा = सम्बन्ध। व्यापा = ढँकलेना। चिदाकाश = आकाशवत ब्रह्म। थीर पौना = माया।

भावार्थ — जब नारी और पुरुष दोनों सम्बन्ध करते हैं तब वे बाह्यवृत्ति से शून्य हो जाते हैं और उनके मनमें एक प्रकार बदहोशी का आवरण पड़ जाता है ॥७॥ उक्त जैसे स्त्री-पुरुष—दोनों शरीरों के मिलने से अन्धकार उदय होता है (कहते हैं) वैसे चिदाकाश ब्रह्म तथा माया के संगम में संसारसृष्टि रूपी अन्धियारी प्रकट होती है ॥८॥

कारण युगल खानि सोइ कीन्हा । प्रगट पिंडज अंकुरज चीन्हा ॥९॥
कारण अनन्त ताहि बिटमाया । मध्य मध्य तेहि जीव समाया ॥१०॥

शब्दार्थ -- युगल=दोनों। चीन्हा=पहचाना। बिटमाया=बनाया।

भावार्थ — (कहते हैं) वे ही ब्रह्म और माया दोनों कारण मिलकर सचैतन्य तथा अचैतन्य दो खानियाँ बनाये, जो क्रमशः पिण्डज आदि तथा अंकुरज आदि के रूप में प्रत्यक्ष पहचान जाते हैं ॥९॥ फिर वे कारणस्वरूप ब्रह्म तथा माया अनन्तरूपवाले एवं विविधिता पूर्ण जगत का निर्माण किये, जिसके बीच-बीच में अविद्याविशिष्ट जीव प्रवृष्ट हुए ॥१०॥

साखी–नारि पुरुषके मिलापते, अदबुद बीज उपाय।
पृथक पृथक बहु रूप सो, प्रगट भये समुदाय ॥११४॥
चिदाकाश सो पुरुष है, नारी सो थिर पौन।
बीज परे उपजै सोई, खेत अंधेरी जौन ॥११५॥

शब्दार्थ — अदबुद = अद्भुत । चिदाकाश = ब्रह्म । थिरपौन = माया । खेत अंधेरी = अन्धकारमय तम:प्रधान मायाक्षेत्र; मायायोनि ।

भावार्थ — स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध से रज-वीर्यद्वारा अद्भुत रूप वाले बच्चों की उत्पत्ति होती है । उनके मनुष्य, पशु,पक्षी आदि भिन्न-भिन्न रूपों के समूह संसार में प्रकट हैं ॥११४॥ (कहते हैं) उसी प्रकार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति में कारण स्वरूप वह आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त चेतन ही पुरुष है, और उसकी अभिन्न रूप अनादि शक्ति माया ही नारी है । जो तम:प्रधान मायाक्षेत्र है उसमें ब्रह्म के इच्छाबीज पड़ने से यह विशाल ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है ॥११५॥

विशेष — ग्रन्थकर्ता का माया के लिये थीरपौन पारिभाषिक (लाक्षणिक) शब्द है ।

२३– माया तथा ब्रह्मसे ब्रह्माण्ड एवं पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्ति, पाँचों के रंग देवतादि वर्णन

चौपाई—१५

करत मिलाप आकर्षण जोई। तेज अंश उतपानी सोई ॥१॥
प्रेरिक बीज पाय वपुधारी। रचना नेह जलतत्त्व सँवारी ॥२॥

शब्दार्थ — प्रेरिक = प्रेरित । वपु = देह । नेह = स्नेह ।

भावार्थ — (कहते हैं) आकाशस्वरूप चेतन ब्रह्म तथा थीर पवन रूप माया का सम्बन्ध होने पर जो दोनों में आकर्षण हुआ उससे अग्नि अंश की उत्पत्ति हुई ॥१॥ ब्रह्म से प्रेरित इच्छाबीज पाकर माया ब्रह्माण्ड रूपी शरीर को धारण कर ली; अर्थात माया से विश्व का निर्माण हुआ । उसमें जलतत्त्व प्रकट होकर विश्व की रचना में स्नेह, चिकनापन एवं पिण्ड बाँधने का कार्य किया ॥२॥

शक्ति अंश पृथिवी परवाना। आपन रूप शून्य परधाना ॥३॥
उपजी थीर पौन भई श्वासा। पाँच कला पाँचों परकाशा ॥४॥

शब्दार्थ — शक्ति = माया । परवाना = प्रमाण; मानना; सत्य । थीरपौन = थीरपवन; माया । स्वासा = श्वास; वायु । पाँच = पाँच तत्त्व । कला = भाग । परकाशा = प्रकट हुए ।

भावार्थ—(कहते हैं) माया के विशेष अंश से पृथ्वी उत्पन्न हुई मानी जाती है, और ब्रह्म अपना मुख्य रूप आकाश रखा ॥३॥ और थीरपवन रूप माया से ही वायु की उत्पत्ति हुई जो श्वास के रूप में भी प्राणियों में चलता है। इस प्रकार विश्व के मुख्य पाँच भाग—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश हैं; ये पाँचों ब्रह्म और माया से प्रकट हो गये ॥४॥

गगन समीर अनल जल धरती । पाँचों पाँच रंग होय बरती ॥५॥
गगन स्याम आपु बपु धारी । हरा पवन सो हर अधिकारी ॥६॥

शब्दार्थ — बरती = व्यवहार करते हैं। आपु = ब्रह्म। हर = महादेव।

भावार्थ — (कहते हैं) आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों तत्त्व पाँच रंगों वाले बनकर संसार में व्यवहार करते हैं ॥५॥ आकाश नीला रंग है, जिसे ब्रह्म अपने शरीर के रूप में स्वीकार किया है। वायु हरा है उसके अधिष्ठाता महादेव हैं ॥६॥

अनल लाल विष्णु गुण गाजै । श्वेत नीर ब्रह्माको छाजै ॥७॥
पृथिवी पीत शक्ति होय आई । पाँचों पाँच कला निर्माई ॥८॥

शब्दार्थ — गाजै = गरजना, प्रसिद्ध होना। छाजै = शोभता है। कला = भाग, अंश।

भावार्थ -- (कहते हैं) अग्नि लाल है, यह विष्णु का गुण प्रसिद्ध है। जल उजला है जिसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं ॥६॥ पृथ्वी पीला रंग है जिसकी अधिष्ठात्री माया शक्ति है। इस प्रकार शुद्ध ब्रह्म, महादेव, विष्णु, ब्रह्मा और आदि शक्ति इन पाँचों के अंश से क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—प्रकृति के इन पाँच भागों का निर्माण हुआ ॥८॥

विशेष -- कुछ विचारकों की यह भी मान्यता हो सकती है कि आकाश ही ब्रह्म है, वायु ही महादेव है, अग्नि ही विष्णु तथा जल ही ब्रह्मा है, और पृथ्वी ही आदि शक्ति है।

आकाश निराकार है और ब्रह्म को भी लोग निराकार मानते हैं, इसलिये आकाश ही ब्रह्म है। वायु अदृश्य है और प्रलय होने पर सब कुछ अदृश्य हो जाता है तथा महादेव प्रलय के अधिष्ठाता हैं, इसलिये वायु ही महादेव है। अग्नि प्रकाशक है और सतोगुण विष्णु का धर्म है प्रकाश व पालन करना, इसलिये अग्नि ही विष्णु है। वीर्य जलमय है और वीर्य से ही सृष्टि होती है, ब्रह्मा सृष्टिकर्ता है, इसलिये जल ही ब्रह्मा है। पृथ्वी सबकी जननी है 'सबकी उत्पति धरती' और आदि शक्ति भी सबकी जननी है, इसलिये पृथ्वी ही आदि शक्ति है।

आकाश ब्रह्म का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार वायु महादेव का, अग्नि वष्णु का, जल ब्रह्मा का तथा पृथ्वी आदि शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

वस्तुतः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी--ये पाँच तत्त्व अनादि हैं। आकाश अवकाश मात्र एवं शून्य है; इसलिये उसमें कोइ गुण-धर्म नहीं है। और अन्य चारतत्वों में गुणधर्म हैं। जिससे सृष्टि अनादि है। उक्त जड़ पंचतत्वों को ही आप देवता कह लें। इन्हीं में सृष्टि होती है। इनसे पृथक अगणित चेतन जीव हैं जो अपने कर्मवश देह धरते-छोड़ते हुए प्रत्यक्ष भटकते हैं। जो व्यक्ति स्वरूपज्ञान प्राप्त करके वासनाओं का त्याग कर देता है वह सदा के लिए अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है और जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। इससे ईश्वर-ब्रह्म की कल्पना करना और उससे सृष्टि का होना मानना एक भ्रम है।

ऊपर ब्रह्म से सृष्टि का होना, जो कहा है वह पूर्वपक्ष के मत का स्वरूप दर्शाया गया है, वह ग्रन्थकार का अपना मत नहीं है। ऐसा प्रसंग इसमें बारम्बार आया है। पाठक सावधानी से मनन करें।

ऊपर जो आकाश का रंग श्याम या नीला तथा वायु को हरा कहा गया है, यह भी पूर्वपक्ष की मान्यता का ही दिग्दर्शन है। आकाश शून्य को कहते है। शून्य में कोई रंग नहीं होता। जो आकाश में नीलिमा है वह पृथ्वी, जल तथा अग्नि के परमाणुओं घनाकारत्व से उत्पन्न रंग है। अथवा हमारे नेत्र की ज्योति जितनी दूरी से आगे के क्षेत्र में नहीं प्रवेश कर पाती वहाँ रंगदार परदा-सा प्रतीत होता है। वायु भी रूपरहित होने से रंगहीन है। क्योंकि रंग रूप में होता है। इसलिये उसमें कोई रंग नहीं है। हाँ, पृथ्वी, जल तथा अग्नि रंगदार हैं।

न्यारे न्यारे चाल स्वभाऊ। बैर परस्पर कालके दाऊ ॥९॥
एकन एक सोई रखवारा। पुनि सो एकन एक संघारा ॥१०॥

शब्दार्थ — काल के दाऊ=समय की योग्यता। रखवारा=रक्षक; सहायक; पुष्टिकर। संघारा—संहार करना, नष्ट करना।

भावार्थ — आकाश तो शून्य होने से गुण, धर्म, क्रियादि से रहित है। परन्तु चार तत्त्वों में भिन्न-भिन्न क्रिया तथा स्वभाव हैं। सभी तत्त्वों में परस्पर गुण-धर्मों का विरोध है। समय की अनुकूल तथा प्रतिकूल योग्यता पड़ने पर वे एक-दूसरे के संयोजक तथा विभाजक बन जाते हैं ॥९, १०॥

विशेष — पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु इन चार तत्त्वों में छः भेद हैं; जिनके नाम धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, मेल तथा आकार हैं। पृथ्वी का धर्म कठोर, जल का शीतल, अग्नि का गर्म व प्रकाश तथा वायु का कोमल है। पृथ्वी का गुण व विषय गन्ध, जल का रस, अग्नि का रूप तथा वायु के स्पर्श और शब्द हैं। पृथ्वी के परमा-

णुओं में क्रिया है जिससे वृक्ष, पत्थर आदि अनेक कार्य पदार्थ बनते हैं, जल में अधोगमन, अग्नि में उर्ध्वगमन तथा वायु में तिरछीगमन क्रिया है। फलतः सभी तत्त्व क्रियवान हैं। पृथ्वी की शक्ति धारणा, जल की रसायना, अग्नि की दाह्य तथा वायु की तोड़ने-जोड़ने आदि की हैं। चारों तत्त्व परस्पर मिले रहते हैं। पृथ्वी, जल स्थूलाकार तथा अग्नि, वायु सूक्ष्माकार हैं।

समय की योग्यता से एक तत्त्व दूसरे के संयोजक तथा विभाजक होते हैं। प्रेरक वायु से पानी बरसता है और ध्वंसक वायु से बादल छिन्न-भिन्न होकर जलवृष्टि बन्द हो जाती है। सामान्य वायु पाकर अग्नि जलती है तथा अधिक वायु पाकर बुझ जाती है। पानी से पिण्ड बंधता है, परन्तु अधिक पानी से पिण्ड फूट कर बह जाता है इत्यादि।

उपर्युक्त तत्त्व अनादि हैं। उनमें उक्त छः भेद भी अनादि हैं। उनसे भिन्न अविनाशी चेतन जीवों के कर्म-वासना तथा देह का प्रवाह भी अनादि है। इस प्रकार जड़-चेतन के सम्बन्ध से सृष्टि अनादि है। इसमें अन्य ईश्वर ब्रह्म के कारणत्व की कल्पना निरर्थक है।

साखी—वैर भाव सो पाँचमें, पुनि एक भाव मिलाप।
दुख सुख कारण विदितसो, अगम बुद्धि परताप ॥११६॥

शब्दार्थ — अगम = अगम्य; समझ में न आने वाली बात। परताप = प्रताप, तेज, प्रभाव।

भावार्थ — उपर्युक्त पाँचों तत्वों के स्वरूप में भी विरोध है ही, किन्तु आकाश को छोड़कर अन्य चारों तत्वों के गुण, धर्म आदि सभी में विरोध है, फिर एक-दूसरे में मिलाप भी है। इस प्रकार इन तत्त्वों के गुण-धर्मादि के विरोध तथा मिलाप से अनेक कार्य पदार्थों का निर्माण एवं विनाश होता है और ये ही व्यक्ति के भूल-वश या देहोपाधि-वश जीव के अनेक दुःख-सुखों के कारण बनते हैं। परन्तु ये सब बातें साधारण लोगों के लिये बुद्धि से परे हैं। कोई तीक्ष्णबुद्धि वाला विवेकी ही समझ सकता है ॥११६॥

विशेष — तत्त्वों में परस्पर गुण-धर्मों का विरोध है। विरोध होने से ही एक दूसरे से मिलकर अनेक कार्य पदार्थ बनते हैं। जब वे योग्यता से अधिक या कम हो जाते हैं तब विनाशक हो जाते हैं। वस्तुतः समान गुण-धर्म वाले तत्त्वों से पदार्थ नहीं बन सकते; अपितु विरोध ही में बनते हैं। जैसे तेल, बत्ती, आग, हवा परस्पर विरोधी गुण-धर्म वाले हैं, परन्तु उनसे ज्योति बनकर प्रकाशन कार्य होता है। जब वे सीमा के बाहर विरोधी हो जाते हैं तब कार्य का ध्वंस हो जाता है।

प्रकृति स्वयं गुणवती है उसमें सारे कार्य स्वतः सम्पादित होते रहते हैं। अविनाशी जीव भूल एवं देहोपाधि से उनमें दुःख-सुख उठाता है। वह भूलको त्यागकर

तथा देहोपाधि से मुक्त होकर दुःखों से सर्वथा छूट सकता है । ये सब बातें सर्वसाधारण लोग नहीं समझते । वे तो हर जगह भगवान-भवानी की दोहाई देते रहते हैं । उक्त रहस्य को कोई विवेकी, पारखी ही समझेगा ।

रंग वर्ण सो पाँचके, न्यारे न्यारे चाल ।
भाग पाँचसो पाँच गुण, महा विकट यमजाल ॥११७॥

शब्दार्थ — वर्ण = भेद । चाल = क्रिया । गुण = विषय ।

भावार्थ — उपर्युक्त भिन्न-भिन्न रंग, भेद, क्रिया, हिस्से और गुणों के संयुक्त पंचतत्त्वों की उत्पत्ति जो एक ब्रह्म से मानी है, यह महान भयंकर मनःकल्पना का जाल है ॥११७॥

विशेष — यह ऊपर बता दिया गया है कि शून्य आकाश तथा धर्म-गुणादि षट भेदों से संयुक्त अन्य चार तत्त्व एवं जड़-दृश्य अनादि एवं स्वतः हैं । ये किसी से उत्पन्न नहीं हुए ।

२४—इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा और उनके देवतादि का वर्णन

चौपाई—१६

तीनि पौन तीनि नाड़ि बनाई । माया अंश सोई प्रगटाई ॥१॥
इंगला पिंगला सुषमना सोई । अज हरि हर तेहि मध्य समोई ॥२॥

शब्दार्थ — पौन = पवन, वायु । इंगला = इडा । समोई = स्थान ग्रहण किये ।

भावार्थ — (कहते हैं) जैसे बाहर शीतल, मन्द तथा सुगन्ध तीन वायु हैं, वैसे इस भौतिक अंश से निर्मित शरीर में भी तीन नाड़ियाँ बनी हुई चलती हैं ॥१॥ वे हैं इडा, पिंगला, तथा सुषुम्णा जिस पर क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महादेव निवास करते हैं ॥२॥

नाशक नेह सुषुम्णा कीन्हा । श्वासा नेह पिंगला रचि लीन्हा ॥३॥
इंगला अपनी अंश उपाई । त्रिविधि होय माया प्रगटाई ॥४॥

शब्दार्थ — श्वासा = पालन । माया = कल्पना ।

भावार्थ — महादेव के संरक्षण में चलने वाली सुषुम्णा नाड़ी नाश एवं प्रलय करने से स्नेह रखती है, विष्णु की देख-रेख में चलने वाली पिंगला नाड़ी पालन में स्नेह रखती है तथा ब्रह्मा के अपने अंश से उत्पन्न हुई इडा नाड़ी उनके तत्त्वावधान में रहकर सृष्टि करने में प्रेम रखती है । इस प्रकार इन तीनों नाड़ियों के पीछे लोगों ने ब्रह्मादि त्रिदेवों की कल्पना जोड़ रखी है ॥४॥

चंदा रजगुण अज हितकारी । पालन सूर्य विष्णु अधिकारी ॥५॥
सुषमना परलय शंभु निवासा । त्रिगुण होय शक्ति तेहि फाँसा ॥६॥

शब्दार्थ — चंदा = इडा नाड़ी । सूर्य = पिंगला नाड़ी । शक्ति = माया; कल्पना ।

भावार्थ — इडा नाड़ी रजोगुण प्रधान है इसलिये वह ब्रह्मा के अनुकूल है। पिंगला नाड़ी पालन करने में सहायक है इसलिये उसके स्वामी विष्णु हैं ॥५॥ सुषुम्णा नाड़ी प्रलय में प्रेम रखने वाली है, इसलिये उसमें शिव का निवास है। इस प्रकार मनकी कल्पना ने तीन गुणों वाले श्वासों का निर्धारण करके जीवों को बन्धन में बाँधा है ॥६॥

उपजा खेत श्वास तरु पौधा । काल अनंत तेहि भीतर शोधा ॥७॥
पाँच श्वास तिहुँ नाड़ि समाई । भिन्न भिन्न सो अदल चलाई ॥८॥

शब्दार्थ — तरु = वृक्ष । पौधा = नया पेड़ । कला = गुण, हुनर । शोधा = खोज किया । अदल = अद्‌ल, न्याय ।

भावार्थ — इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा इन श्वास रूपी खेतों में योग के अनेक पौधे एवं पेड़ उत्पन्न हुए; और उस योग के भीतर मनुष्यों ने अपने हुनर से असंख्य ऋद्धि-सिद्धियों की खोज की ॥७॥ कहते हैं योग द्वारा प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान —ये पाँच पिण्ड के प्राण अथवा कृकिल, धनंजय, नाग, कूर्म और देवदत्त ये पाँच ब्रह्माण्ड के प्राण उक्त तीनों नाड़ियों में लीन हो जाते हैं और अंततः इडा-पिंगला भी सुषुम्णा में लीन होकर शून्य दशाकी प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार मत-वादियों ने अपना पृथक-पृथक न्याय चलाया है ॥८॥

श्वासा वास जीव भये जबहीं । चंचलता बहु उपजी तबहीं ॥९॥
तीन शरीर जीव तब पाई । तुर्या सुषुप्ति सपन अरुझाई ॥१०॥

शब्दार्थ — तुर्या = तुरीय अवस्था का ज्ञानमार्ग । सुषुप्ति = योग की अचेती अवस्था । सपन = अपने से पृथक इष्ट की स्वप्नवत उपासना ।

भावार्थ — जीव जब गर्भाशय से श्वास और शरीर संयुक्त निवास करते हुये प्रकट होता है, तभी उसको अनेक चंचलतायें उत्पन्न होती हैं ॥९॥ वह कल्पित ज्ञान, योग तथा उपासना में उलझ कर जड़ाध्यासवश स्त्री, पुरुष और नपुंसक या मनुष्य, पशु, अण्डजादि शरीर को प्राप्त करता है ॥१०॥

विशेष — प्रकृति भिन्न स्वरूपज्ञान तथा ठहराव ठीक से न होने पर योग, ज्ञान उपासनादि करते हुये जीव मुक्त नहीं होता। अतएव उसे देह में आना पड़ता है। यदि अपने शुभकर्म के जोर से इतर खानियों में जीव न भी जाये तो मनुष्य खानि के स्त्री, पुरुष, नपुंसक में से किसी देह को पायेगा। जो लोग अपने आपको किसी कल्पित पति की पत्नी मानकर उपासना करते हैं वे स्त्री यदि न हुए तो भी नपुंसक होना ही चाहिये ।

साखी—तुर्या सुषुप्ती सपन ले, पाये तीन शरीर ।
ज्ञान अंधेरी चंचलता, काल फाँस गंभीर ॥११८॥

शब्दार्थ — कालफाँस = अज्ञान बन्धन ।

भावार्थ — काल्पनिक ज्ञान, योग तथा उपासना के अभ्यासवश जीव मुक्त न होकर उपर्युक्त त्रिविध शरीरों को प्राप्त करता है । जिसका केवल नाम ही ज्ञान है और वस्तुतः वह अन्धकार रूप और चंचल है वह अज्ञान का कठिन बन्धन है ॥११८॥

कारण उष्मज खानिके, सोई कीन्ह प्रकाश ।
आशा सोई कहावई, वासा जहाँ विलास ॥११९॥

शब्दार्थ — उष्मज = बिना माँ-बाप के उत्पन्न । बासा = वासना ।

भावार्थ — (आसक्ति वश जैसे जीव पिण्डज तथा अण्डज खानि में जाते हैं वैसे) उष्मज खानि में जाने का भी कारण वही जगत आशा ही बतलायी जाती है । आशा वही कहलाती है जहाँ भोग-विलास के लिये वासना बनी हो ॥११९॥

२५—पिण्ड-ब्रह्माण्ड के विषय में अनेक कल्पनायें और उनको आगे कहने की प्रतिज्ञा

चौपाई — १७

सोई श्वास लिंगम तन धारी । तैंतिस कोटि योनि विस्तारी ॥१॥
खानी तीन लिंगम प्रति कीन्हा । पिंडज अंकुरज उष्मज दीन्हा ॥२॥

शब्दार्थ — लिंगम = सूक्ष्म ।

भावार्थ — (कहते हैं) जैसे इस पृथ्वी पर प्राणधारी जीव हैं वैसे अंतरिक्ष या अन्य लोकों में वायु रूप सूक्ष्म शरीर धारी तैंतीस करोड़ देवताओं की योनियों का विस्तार है ॥१॥ सूक्ष्म शरीर धारियों के प्रति भी देवता, सिद्ध और भूत इन तीन खानियों की कल्पना की गयी है; और संसार में पिण्डज, अंकुरज, अण्डज तथा उष्मजी खानियों का विस्तार बताया ॥२॥

विशेष — अंकुरज केवल जड़ है । उसमें अलग से देहधारी जीव होते हैं । इसका विवरण मानुष के भोजन सुधार प्रसंग में बताया गया है । या 'अंकुरज' का वर्णन पूर्वपक्ष के द्वारा है । यहाँ का प्रायः सारा वर्णन ही पूर्वपक्ष का है । कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जैसे पिण्डज, अण्डजादि में शरीरधारी होते हैं, वैसे सिद्ध देवता तथा भूतगण होते हैं । अन्तर इतना ही है कि पिण्डजादि जीवों की देह केवल स्थूल होती है और देवादि स्वतंत्रता पूर्वक जब चाहें स्थूल-सूक्ष्म बदल सकते हैं । ऐसा मान रखा है ।

पाँच तत्त्व त्रिगुण संचारी। नारी पुरुष दुई रूप सँवारी ॥३॥
सात स्वर्ग श्वासा बिच कीन्हा। तैंतिस कोटि वासा तहाँ दीन्हा॥ ४॥

शब्दार्थ — संचारी = संलग्न।

भावार्थ — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँच तत्त्व तथा सत, रज और तम ये तीन गुण—आठों संलग्न होकर स्त्री-पुरुष के दोनों शरीरों की रचना हुई ॥३॥ जैसे बाहर भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तप तथा सत्यलोक माने हैं वैसे सुषुम्णा श्वास के बीच में भी सात स्वर्गों की कल्पना कर रखी है, और वहाँ तैंतीस कोटि देवताओं के निवास की कल्पना कर रखी है ॥४॥

विशेष — सुषुम्णा में सात स्वर्गों की कल्पनाओं का विस्तार तथा छः चक्रों की वेधनक्रिया भी आगे ५६वीं चौपाई में देखें।

सो रचना विस्तार बनाई। जोतिष दृष्टि सब परे लगाई ॥५॥
जोतिष श्वास ब्रह्मांड दरसावै। श्वास पिंड सरोदै गावै ॥६॥

शब्दार्थ — श्वास = सूक्ष्म। सरोदै = स्वरोदय, श्वास भेद से शुभाशुभ फल जानने की विद्या।

भावार्थ — उपर्युक्त पिण्ड और ब्रह्माण्ड के विषय में लोगों द्वारा विस्तृत कल्पना कर रखी गयी है। वह सब ज्योतिष विद्या के द्वारा समझ में आता है ॥५॥ ज्योतिष ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म बातों का ज्ञान करता है तथा कहा जाता है कि स्वरोदय से पिण्ड एवं शरीर की सूक्ष्म बातों का ज्ञान होता है ॥६॥

विशेष — ज्योतिषद्वारा गणना करके ब्रह्माण्ड की बातें सूर्य-चन्द्र ग्रहण आदि जानी जाती हैं। कुछ बातें गलत भी हो जाती हैं। स्वरोदय से शरीर के विषय में जानने की बातें तो बहुत कुछ भ्रांतिपूर्ण ही हैं।

सोई थूल ब्रह्मांड अरु पिंडा। अगम कला बुद्धि परचंडा ॥७॥
सो सब कला कहब कछु आगे। परख प्रताप जगाये जागे ॥८॥

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म। अगम = अगम्य, पहुँच के बाहर। कला = गुण, हुनर। परचंडा = तीव्र।

भावार्थ — उपर्युक्त ब्रह्माण्ड और पिण्ड के विषय में, पहुँच के बाहर समझी जाने वाली सूक्ष्म बातों के शोधन एवं कल्पना में तीव्रबुद्धि वाले मनुष्यों ने जो हुनर एवं गुण दिखलाया है ॥७॥ उन सब कलाओं को हम कुछ आगे कहेंगे। पारखी सद्-गुरु ने पारख तेज के बल से जगा दिया तो हम भी जाग गये ॥८॥

विशेष — ग्रन्थकर्ता का आशय है कि पहले हम भी इन्हीं दृश्य एवं कल्पना-

प्रपंचों में सोये थे। पारखी सद्गुरु-संतों ने पारखज्ञान के बल से जगाया तो हम भी जाग गये हैं।

कारण सब सूक्षम यम जाला। प्रगट लखाये दीनदयाला ॥९॥
महा अन्धतम कर्मकी खाई। नाचत हते प्रभु लीन्ह छोड़ाई ॥१०॥

शब्दार्थ — यमजाला = मन जनित कल्पना का बन्धन।

भावार्थ — दीनदयाल पारखी सद्गुरु ने मन के सारे सूक्ष्म बंधनों के कारण रूप अज्ञान को प्रत्यक्ष करके समझा दिया ॥९॥ हम अज्ञानजनित कर्म के महान अन्धकार-पूर्ण खाईं में गिरे हुए भटक रहे थे; परन्तु पारखी प्रभु ने उससे उबार लिया ॥१०॥

साखी—रामरहस गुरुकी दया, छूटा कठिन भ्रमजाल।
भये अशंक शंका नहीं, पारख मिले दयाल ॥१२०॥

शब्दार्थ — पारख = तात्पर्य में पारखी।

भावार्थ — श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि गुरु की कृपा से भयंकर भ्रमबंधन छूट गया। पारखी सद्गुरु मिल गये हैं अब मैं निःशंक हो गया हूँ, किसी प्रकार का संदेह नहीं रह गया ॥१२०॥

साखी—पिंडजाल वर्णन करौं, सुनो संत चितलाय।
लोक वेद विख्यात है, विरले परख लगाय ॥१२१॥

शब्दार्थ — पिंडजाल = शरीर रचना तथा उसके विषय में विविध कल्पना।

भावार्थ — हे सन्तो ! ध्यान देकर सुनो, मैं स्थूल शरीर-रचना तथा उसके विषय में लोगों-द्वारा की हुई नाना कल्पनाओं के सम्बन्ध में कहता हूँ। यद्यपि ये बातें संसार तथा शास्त्रों में प्रकट हैं, परन्तु इसका सारासार विरले पुरुष ही परखते तथा परखाते हैं ॥१२१॥

२६—शरीर की उत्पत्ति का प्रकार

चौपाई—१८

श्वासा गरजि घटा होय आया। पूरण जल अस्थूल उपाया ॥१॥
सो जल अंड अकार प्रमाना। त्रिगुण पाँचों तत्त्व समाना ॥२॥

शब्दार्थ — श्वासा = श्वास; प्राणवायु; वायु; वासना। घटा = बादल; काम की अन्धियारी। जल = वीर्य। प्रमाना = अनुसार।

भावार्थ — जैसे ब्रह्माण्ड में प्रेरक वायु के जोर से बादल बनकर गरजते हैं और जल बरस कर पृथ्वी को भर देते हैं, तब स्थूल रूप में वृक्ष, तृण आदि उत्पन्न होते हैं; वैसे नर-नारी वासना से प्रेरित होते हैं और उनके अन्तःकरणों में काम-

अन्धियारी के बादल गरजने लगते हैं, और पुरुष के प्राणवायु की प्रेरणा से पूर्ण रूप से वीर्य नारीक्षेत्र में सिंचित होकर स्थूल शरीर बनने का हेतु होता है ॥१॥ वह वीर्य नारी के रज में मिलकर पहले अण्डा के आकार के सदृश बनता है। उसमें सूक्ष्मरूप में सत, रज, तम तीन गुण तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश (पोल) ये पांच तत्त्व मिले रहते हैं ॥२॥

विशेष — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तो हर पदार्थ में रहते ही हैं, वैसे रज-वीर्यमय गर्भ में भी रहते हैं। उसमें आकाश भी रहता ही है। क्योंकि तत्त्व परमाणुओं के मेल एवं सन्धि में गुण-धर्म-रहित निष्क्रिय आकाश अपने आप रहता है। रज, सत, तम ये तीन गुण हैं जो हर भौतिक पदार्थ में हैं। रज से निर्माण होता है, सत से पालन एवं पुष्टि होती है तथा तम से संहार एवं परिवर्तन होता है।

फोकचा मध्ये कमल दल साजा। ताहि कमल एकरूप उपराजा ॥३॥
अंड फूटि अस्थूल उपाना। चारि अवस्था में प्रगटाना ॥४॥

शब्दार्थ — फोकचा = फोका-बुदबुदा; गर्भाशय। कमलदल = गर्भकमल। साजा = सँवारा; निर्मित हुआ।

भावार्थ — गर्भाशय या गर्भकमल में शरीर की रचना हुई; अथवा गर्भकमल के बीच में रज-वीर्य का बुदबुदा उठकर शरीर बनने लगा और उसी में नर, नारी, नपुंसक लक्षण वालों में से किसी एक रूप की उत्पत्ति हुई ॥३॥ पुनः अण्डाकार से विकसित होकर स्थूल शरीर गर्भ के बाहर प्रकट हुआ और बाल्य, कुमार, युवा तथा वृद्ध इन चारों अवस्थाओं में वर्तमान करने लगा ॥४॥

जैसे स्वासा लिंगम भयऊ। वैसेहि पिंड जाल रचि दियऊ ॥५॥
नाड़ी तीनि श्वासामें राजै। तैसेहि तीन पिंडमें गाजै ॥६॥

शब्दार्थ — स्वासा = प्राण; तात्पर्य में वासना। लिंगम = लिंग, सूक्ष्म। राजे = राजना; विराजना। गाजे = गर्जना।

भावार्थ — जीव के अपने कर्मानुसार जैसे सूक्ष्मवासनायें रहती हैं, उसी प्रकार स्थूल शरीर के स्वरूप की रचना होती हैं ॥५॥ जैसे ब्रह्माण्डस्थित श्वास में इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा तीन नाड़ियाँ विराजती हैं, वैसे पिण्डाण्ड में कफ, पित्त तथा वात ये तीन नाड़ियाँ गर्जती एवं अपना काम करती हैं ॥६॥

वात पित्त कफ तीहुँमें धावै। त्रिविधि अपनी राज जनावै ॥७॥
पाँच तत्त्व ले पिंड प्रकाशा। पाँचों पाँच अंश सुख बासा ॥८॥

शब्दार्थ — तिहुँ = तीनों। राज = प्रभुत्व।

भावार्थ — वात, पित्त तथा कफ ये तीनों सूक्ष्मरूप में रहकर शरीर में भ्रमण

करते हैं और भिन्न-भिन्न समयों में ये तीनों अपना मुख्य प्रभाव शरीर पर प्रकट करते हैं ॥७॥ पंच तत्त्वों के अंशों को लेकर स्थूल शरीर की रचना होती है। इसलिये पाँचों तत्त्वों के पांच विषयों में भूलवश मनुष्य की सुखवासना रहती है ॥८॥

विशेष—यहाँ पर जितना वर्णन हो रहा है सब वेद-वेदान्त के मान्यतानुसार है। ग्रन्थकर्त्ता ने पहले कह दिया है कि—

पिंड जाल वर्णन करौं, सुनो संत चितलाय ।
लोक वेद विख्यात है, बिरले परख लखाय ॥

लोगों ने शब्द गुण आकाश का माना है। आकाश शून्य और निष्क्रिय है, इसलिये उससे शब्द मानना अनर्गल है। पृथ्वी का गन्ध, जल का रस, अग्नि का रूप, वायु के स्पर्श तथा शब्द गुण एवं विषय हैं।

आपु हरि हर ब्रह्मा माया। त्रिगुण शक्ति बनी सो काया ॥९॥
पिंड शक्तिको अंश बनाई। रूप कला होय आपु समाई ॥१०॥

शब्दार्थ — आपु = ब्रह्म, परमात्मा। कला = अंश।

भावार्थ — (कहते हैं) स्वयं परमात्मा, विष्णु, महादेव, ब्रह्मा तथा माया इन पाँचों के नियमन में रहने वाले पाँच तत्त्व तथा सत, रज, तम ये तीन गुण की शक्ति से यह शरीर बना है ॥९॥ यदि संक्षिप्त में कहा जाय तो शरीर को माया के अंश ने बनाया है. और स्वयं परमात्मा अंश रूप (जीव) होकर उसमें प्रविष्ट हुआ है ॥१०॥

पन सोई चार अवस्था कीन्हा। चारों लक्ष चहुँ बीच दीन्हा ॥११॥
बालापन तुरियाके रूपा। चेरिक भरमिक शून्य स्वरूपा ॥१२॥

शब्दार्थ — चेरिक = कुमारपन या तरुणाई। भरमिक = भूले लोग।

भावार्थ — बाल, कुमार, युवा तथा वृद्ध इन चार पनों में क्रमशः तुरीय, सुषुप्ति, स्वप्न और जागृति अवस्थाओं को बाँटा गया। इन्हीं चारों पनों के बीच में ज्ञान, योग, उपासना तथा कर्म का लक्ष्य भी आरोपित किया गया है ॥११॥ भूले लोगों ने माना है---बालपन तुरीय स्वरूप शुद्ध है और कुमारपन में कमबुद्धि रहने से वह सुषुप्ति अवस्थावत है ॥१२॥

चंचल युवा स्वास अधिकारी। पृथिवी बिरधाई संचारी ॥१३॥
जन्म शक्ति सो आदि जनावै। मरण शक्ति सो ब्रह्म कहावै ॥१४॥

शब्दार्थ — स्वास = स्वप्न। पृथिवी = जागृति। बिरधाई = वृद्धपन। संचारी = संलग्न। आदि = माया। जनावै = बतलाते हैं।

भावार्थ — चंचल युवापन स्वप्नावस्था का प्रतिनिधित्व करता है; क्योंकि इस अवस्था में स्वप्नवत अनेक वासनायें उठती रहती हैं और वृद्धपन जागृति अवस्था से

संलग्न हैं; क्योंकि इसमें जीवनपर्यन्त का अनुभव इकट्ठा रहने से मनुष्य सावधान रहता है ॥१३॥ बतलाते हैं जन्म देने की शक्ति माया में है; और मृत्यु करने की शक्ति ब्रह्म में; क्योंकि मायासबलित होने से ब्रह्माण्ड की सृष्टि होती है और एक ब्रह्म में ही सबका अंत है ॥१४॥

साखी—तीन अंश महाशून्यके, अज हरिहर वपुधार ।
मायाके गुण तीन सो, नारी पुरुष विचार ॥१२२॥

शब्दार्थ — महाशून्य = ब्रह्म । बपु = शरीर ।

भावार्थ — ब्रह्म के तीन अंश से ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव ने शरीर धारण किया है । माया के भी तीन अंश से सावित्री, लक्ष्मी तथा पार्वती ने शरीर धारण किया । इस प्रकार वे लोग यही विचार रखते हैं कि ब्रह्म के अंश से सब पुरुष तथा माया के अंश से सब नारियाँ उत्पन्न हुई हैं ॥१२२॥

त्रिगुण फाँस बहु भाँति के,मध्य किया परकाश ।
आदि रूप माया भई, अंत आपु सो नाश ॥१२३॥

शब्दार्थ—त्रिगुण = सत, रज, तम । मध्य = संसार में । आपु = ब्रह्म ।

भावार्थ — मन की कल्पना ने संसार में तीन गुणों वाले या अनेक प्रकार के त्रिपुटी युक्त बंधन फैला रखा है । कहते हैं सबके उत्पन्न होने का मूल कारण माया है और सबका पर्यवसान स्वयं ब्रह्म में होता है ॥१२३॥

विशेष — सत, रज, तम; काम, क्रोध, लोभ; काल, सन्धि, झाँई; स्त्री, पुरुष, नपुंसक तथा इसी प्रकार अनेक त्रिविधि बन्धन हैं ।

२७–पंच तत्त्वों के स्थान, द्वार, देवता व आहार का वर्णन

चौपाई—१९

पाँच तत्त्व अस्थान विशेषा । पृथक पृथक त्रिगुणके लेखा ॥१॥
मेरु शिखर पर आपु विराजे । शब्द अनाहद बहु विधि बाजे ॥२॥

शब्दार्थ — लेखा = हिसाब; विचार । मेरुशिखर = मेरुदण्ड के ऊपर ब्रह्माण्ड; भ्रमर-गुफा । अनाहद = अनाहतनाद; विना चोट किये हुए निकलती हुई ध्वनि जिसे दुन्दुभी, भेरी, शंख, घंटा, सहनाई, सितार, मृदंग, झाँझ, वीणा और बाँसुरी इन दस रूपों में मानते हैं; ओम्-ध्वनि ।

भावार्थ — पाँच तत्त्वों के विशेष स्थान, आहार, द्वार, देवतादि का पृथक-पृथक वर्णन करता हूँ जो तत्त्वतः तीन गुणों के विचारों के भीतर हैं ॥१॥ मेरुदण्ड के शिखर स्थान अर्थात सिर में भ्रमरगुफा माना है । वह आकाश का विशेष स्थान है । वहाँ

स्वयं ब्रह्म विराजता है। उसमें दश अनाहत शब्द या ओम्-ध्वनि होती है वही आहार है, उसका द्वार कान है ॥२॥

विशेष — आकाश का विशेष स्थान भ्रमरगुफा, देवता परमात्मा, आहार अनाहत नाद तथा द्वार कान है।

धरती कलेजा मुख जेहि द्वारा। खान पान सोइ करै अहारा ॥३॥
लिंग द्वार जल भाल निवासी। मैथुन अहार सोई सुखबासी ॥४॥

शब्दार्थ — कलेजा = यकृत, जिगर। भाल = मस्तक।

भावार्थ — पृथ्वी का विशेष स्थान कलेजा, देवता आदि शक्ति, आहार जो कुछ खाया जाय, द्वार मुख है ॥३॥ जल (वीर्य) का विशेष स्थान मस्तक, देवता ब्रह्मा, आहार मैथुन तथा द्वार जननेन्द्रिय है। इसके सुखाध्यासी जीव इसी अन्धकार में पड़े रहते हैं ॥४॥

विशेष — भक्ष्य (खाने योग्य रोटी, भात आदि), लेह्य (चाटने योग्य चटनी आदि), चोष्य (चूसने योग्य ईख, आम आदि) तथा पेय (पीने योग्य दुग्ध, शर्बत आदि) ये आहार हैं जो मुखद्वारा ग्रहण होता है और ये शुद्ध एवं सात्त्विक रहे तो मनुष्य का कलेजा परिपुष्ट एवं शुद्ध होता है और गलत आहार रहा तो कलेजा बिगड़ कर स्वास्थ्य गिर जाता है।

मैथुनकर्म गृहस्थों को पत्नी के ऋतुमती होने के बाद केवल संतानप्राप्ति के लिये ही करना चाहिये। विषयासक्तिवश पचते रहने से शरीर, हृदय, मस्तिष्क, भक्ति, धर्म सबका विनाश है। ब्रह्मचारी तथा साधु को तो शुद्ध ब्रह्मचर्यदशा से रहना चाहिये।

पावक विष्णु पित्त सो बासा। द्वारा नैन रूप को आशा ॥५॥
पवन नाभि शिव बास कराई। नाशा द्वार गंध सो लहई ॥६॥

शब्दार्थ—पावक = अग्नि। नाशा = नाक।

भावार्थ—अग्नि का विशेष स्थान पित्त है, देवता विष्णु, आहार रूप-सौंदर्य जिसकी आशा भूलवश मनुष्यों में बनी रहती है तथा द्वार नेत्र हैं; अर्थात नेत्र द्वार से नाना प्रकार रूप ग्रहण होते हैं ॥५॥ वायु का विशेष स्थान नाभि है, देवता महादेव, आहार गंध तथा द्वार नाशिका है जिससे गंध ग्रहण होता है ॥६॥

बायें कोठी अनल बनाई। दहिने जल कोठी निर्माई ॥७॥
बाइ गिरह नाभी बिच दीन्हा। तीन कला माया को कीन्हा ॥८॥

शब्दार्थ—कोठी = बखारी; कुण्ड। बाइ = वायु। गिरह = गाँठ। कला = भाग।

भावार्थ — शरीर में बायीं ओर अग्नि का कुण्ड है तथा दाहिनी ओर जल का कुण्ड बना है ॥७॥ और वायु की गाँठ—नाभि (पेट के बीच में) बनायी गयी है—ये

तीनों भाग माया ने रच दिया है। अथवा पित्त, कफ और बात या इडा, पिंगला, सुषुम्णा मायारचित हैं ॥८॥

आपु निरंजन मन होय आये। तीन अंश तहवाँ निर्माये ॥९॥
चित बुधि अहं अज हरि हर रूपा। अंतःकरण शक्ति अनुरूपा ॥१०॥
पाँच पाँच पुनि पाँच उपाना। एकनि एक वैर विधि नाना ॥११॥

शब्दार्थ — आपु निरंजन = स्वयं ब्रह्म। अनुरूपा = अनुरूप, सदृश; उपयुक्त; स्वरूप।

भावार्थ — (कहते हैं) परमात्मा स्वयं मन का रूप धारण करके शरीर में आया तथा तीन अंशों का निर्माण किया ॥९॥ वे हैं चित्त, बुद्धि और अहंकार जो क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा तथा महादेव के स्वरूप हैं; और इन सबका आधार अन्तःकरण माया का स्वरूप है। १०॥ पाँच तत्त्वों से पुनः पाँच-पाँच प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई, जो परस्पर अनेक विधि से विरोधी हैं ॥११॥

विशेष — मन से ही चित्त, बुद्धि तथा अहंकार की उत्पत्ति है। वस्तुतः मन के चिंतन करने से चित्त, निर्णय करने से बुद्धि तथा स्वीकार करने से अहंकार नाम पड़ जाते हैं।

साखी—पाँचसे पुनि पचीस भौ, भिन्न भिन्न सो दाव।
विवश परे तेहि जाल में, जीव दुसह दुख पाव ॥१२४॥

शब्दार्थ — दाव = दाँव, अवसर; स्थान। दुसह = न सहने योग्य।

भावार्थ — भिन्न-भिन्न स्थलों में पाँच तत्त्वों से पचीस प्रकृतियाँ उत्पन्न हुई। इसी तत्त्व-प्रकृति के जाल में जीव विवश होकर पड़े हैं और असहनीय कष्ट पा रहे हैं ॥१२४॥

वर्णन गुण प्रकृति सो, सुनिये संत सुजान।
रामरहस गुरु परखते, मेटा सब अज्ञान ॥१२५॥

शब्दार्थ -- वर्णन = कथन; विवरण। परख = परीक्षादृष्टि; स्वरूपज्ञान।

भावार्थ — हे समझदार सन्तों ! गुण और प्रकृति का विवरण सुनो। श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि सद्गुरु द्वारा प्राप्त पारख-बोध से सभी अज्ञान को मुमुक्षु मिटा डालता है ॥१२५॥

विशेष — उपर्युक्त देवी-देवताओं की सारी बातें काल्पनिक हैं। ये सारा क्रम ही प्रायः दूसरे मतों की कल्पना का वर्णन है।

२८–पचीस प्रकृति और उनके देवताओं का वर्णन

चौपाई—२०

पाँच पचीस कीन्ह विस्तारा। तीन शक्ति नौ रूप सँवारा ॥१॥
नाड़ी चाम हाड़ कच मासू। पृथिवी प्रकृति पाँच सो वासू ॥२॥

शब्दार्थ — तीन शक्ति = तीन मुख्य नाड़ियाँ—इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा। नौरूप = नौ नाड़ियां, इनका वर्णन आगे २१ वीं चौपाई में देखें। नाड़ी = नस। कच = बाल। मासू = मांस।

भावार्थ — पाँच तत्त्वों से पचीस प्रकृतियों का विस्तार हुआ; और तीन मुख्य नाड़ियों—इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा से नौ नाड़ियों की रचना या वृद्धि हुई ॥१॥ नस, चाम, हाड़, बाल और मांस-पृथ्वी की पाँच प्रकृतियाँ शरीर में निवास करती हैं ॥२॥

माया नाड़ी शिव रोम निवासी। चाम विष्णु अज मासु प्रकाशी ॥३॥
हाड़ निरंजन आपु कहावै। अनन्त फाँस जीवहि भरमावै ॥४॥

शब्दार्थ — अज = ब्रह्मा। निरंजन = ब्रह्म।

भावार्थ — नस में माया, बाल में महादेव, चाम में विष्णु तथा मांस में ब्रह्मा प्रकाश या निवास करने वाले हैं ॥३॥ हाड़ में स्वयं ब्रह्मका निवास कहलाता है। इस प्रकार भ्रमपूर्ण मान्यता फैलाकर और अनेक बन्धनों में जीवों को बाँध कर लोग उन्हें भटकाते हैं ॥४॥

रक्त पित्त कफ बिंद पसेवा। जल प्रकृति सोइ पाँच उपेवा ॥५॥
रक्त शक्ति माया को छाजै। पित्त विष्णुके अंश विराजै ॥६॥

शब्दार्थ — बिंद = वीर्य। पसेवा = पसीना। छाजै = छाजना, शोभा देना।

भावार्थ — खून, पित्त, कफ, वीर्य और पसीना वस्तुतः जलकी प्रकृति हैं और जल से उत्पन्न हैं ॥५॥ खून पर मायाशक्ति निवास करती है और पित्त विष्णु का अंश होने से उस पर वे ही विराजते हैं ॥६॥

विशेष — यहाँ खून, वीर्य तथा पसीना के साथ पित्त और कफ आये हैं। कहीं-कहीं इनकी जगह पर लार तथा मूत्र का वर्णन आता है।

कफ ब्रह्माके अंश उपाई। शंभु पसेव बिंद सो राई ॥७॥
भूख प्यास आलस जंभुवाई। निद्रा पाँच अनल उपाई ॥८॥

शब्दार्थ — राई = राजा; ब्रह्म। उपाई = उत्पन्न किया।

भावार्थ — कफ ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न होने से उस पर ब्रह्मा का निवास है; और महादेव के अंश से पसीना उत्पन्न होना मानते हैं, अतः उस पर महादेव का

ही निवास है; और वीर्य पर तो महाराजाधिराज ब्रह्म स्वयं रहते हैं ॥७॥ भूख, प्यास आलस्य, जम्हाई और निद्रा ये पाँच प्रकृतियाँ अग्नि से उत्पन्न हुई मानी जाती हैं ॥८॥

ते पाँचों सोइ पाँच कहावै । भूख शक्ति माया देखलावै ॥९॥
तृषा शक्ति ब्रह्माको शोभा । आलस लक्ष विष्णुको आभा ॥१०॥
जंभुवाई शिवके विस्तारी । नींद निरंजन आपु सँवारी ॥११॥

शब्दार्थ — तृषा = प्यास । आभा = चमक, छाया ।

भावार्थ — उपर्युक्त भूख आदि पाँचों प्रकृतियों के घूम-फिर कर वे ही पाँचों देवता कहलाते हैं । जैसे कि आदि माया भूख की शक्ति उत्पन्न करती है ॥९॥ ब्रह्मा के अंश से प्यास का जोर होता है इसलिये उस पर वे ही शोभते हैं; और आलस्य का लक्ष्य होना यह विष्णु की प्रतिछाया है; अतः आलस्य में विष्णु निवास करते हैं ॥१०॥ जम्हाई का विस्तार महादेव से है तथा निद्रा को ब्रह्म ने स्वयं रचा है; अतः ये उनके देवता हैं ॥११॥

साखी—अस प्रपंच सब कालके, भटका रहत अयान ।
बिनु शरणागत पारखी, किमि पावै कल्यान ॥१२६॥

शब्दार्थ — प्रपंच = भवचक्र, छल-बल । काल = कल्पना, अज्ञान । अयान = अज्ञानी ।

भावार्थ — इस प्रकार सब अज्ञान एवं कल्पना के भवचक्र एवं छल-बल हैं । इसमें अज्ञानी लोग भटक रहे हैं । भला, बिना पारखी सद्गुरु-संतों के आश्रय में गये जीव का ऐसे खानी-वाणी जाल से कैसे उद्धार होगा ? ॥१२६॥

विशेष — रोम, नाड़ी आदि प्रकृतियाँ तत्त्वों से निर्मित हैं यह ठीक है; परन्तु जो हर जगह इन पर देवताओं का बोझा लाद दिया गया है वह निरर्थक कल्पना है । इतने देवता शरीर पर रहते हैं; परन्तु कोई व्यक्ति मनुष्य को पीटने लगता है तब उन सारे महारथी देवताओं का पता नहीं लगता । इसलिये ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि इन भ्रांतियों की समाप्ति तभी होगी जब पारखी गुरु की शरण मिल जायगी ।

अन्य प्रकृतियों का वर्णन आगे देखें ।

चौपाई—२१

बोलन धावन बल परधाना । पसारन संकोच वायु परवाना ॥१॥
सोई पाँच पुनि पाँच कहावै । बोलन शक्ति माया देखलावै ॥२॥
बल सो विष्णु पसारन अजके । धावन शंभु संकोच सहजके ॥३॥

शब्दार्थ — बल = शक्ति दिखाना, बल करना । **परवाना** = प्रमाण, सीमा । **सहज** = ब्रह्म ।

भावार्थ — बोलना, चलना या दौड़ना कोई काम करने में शक्ति देकर शरीर को प्रेरित करना, अंगों को फैलाना तथा समेटना—ये वायु की सीमा के भीतर अर्थात उनकी प्रकृतियाँ हैं ॥१॥ उक्त पाँचों के वे ही जाने-समझे पुराने देवता कहलाते हैं। जैसे कि बोलने की शक्ति माया द्वारा संचालित होती है, अतः उसकी वे ही अधिष्ठात्री हैं ॥२॥ बल करना विष्णु के अंश से, पसारना ब्रह्मा के अंश से, चलना या दौड़ना महादेव के अंश से तथा संकोच करना साक्षात प्रपंचाधिष्ठान ब्रह्म के अंश से माने हैं, अतः इन सबके ये ही देवता अधिष्ठाता हैं ॥३॥

विशेष — बोलने, चलने आदि में वायु सहायक है, परन्तु चेतन जीव की सत्ता से ही यह सब होता है।

काम क्रोध लोभ मद मोहा। पाँच प्रकृति गगनके सोहा ॥४॥
तहाँ मोह मायाके रूपा। हरी काम अज लोभ स्वरूपा ॥५॥
क्रोध महादेव मद सो आपू। कला अनेक काल परतापू ॥६॥

शब्दार्थ — गगन = आकाश। सोहा = शोभता है। कला = गुण, हुनर, कल्पना। काल = अज्ञान।

भावार्थ — काम, क्रोध, लोभ, मद तथा मोह—ये पाँच प्रकृतियाँ आकाश की शोभती हैं ॥४॥ उनमें मोह आदि शक्ति माया का रूप है, काम विष्णु का, लोभ ब्रह्मा का, क्रोध महादेव का तथा मद (अहंकार) स्वयं ब्रह्म का स्वरूप है। (ग्रन्थ-कर्ता कहते हैं) ये सभी कल्पनायें अज्ञान के प्रताप से फैली हैं ॥६॥

विशेष — आकाश निष्क्रिय एवं शून्य होने से उसकी प्रकृति कामादि नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त यदि कामादि प्रकृति हैं तो उनका छूटना भी असम्भव है। अतएव कामादि प्रकृति नहीं किन्तु मनोविकार हैं, और वे विवेक से समाप्त हो जाते हैं।

कुछ लोग तो यह मान लेते हैं कि यदि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद शरीर में रहें और उनके व्यवहार भी होते रहें तो भी हमें उससे कोई हानि नहीं है; क्योंकि वे आकाश की हैं। इसीलिये किसी ने यह दोहा लिखा है :—

काम क्रोध अरु शोक है, भय व मोह सहभाग।
नभ की पाँचों जानिये, नहिं चित में कछु लाग ॥

यह ठीक है कि कामादि अपने स्वरूप में नहीं है, परन्तु यदि उनका त्याग न हुआ तो बंधन निश्चित है।

कामादि पाँचों को छोड़कर उपर्युक्त अन्य बीसों प्रकृतियाँ जड़ हैं। वे इस शरीर में चेतन के रहने से काम करती हैं। यदि चेतन जीव निकल जाय, तो वे बेकार हो जाती हैं।

२९—तीन तथा नौ नाड़ियों का वर्णन ।

तीनि शक्ति नौ नाड़ी कीन्हा । इंगला पिंगला सुषुमना चीन्हा ।।७।।
शिव सनकादिक दंड रचिधारी । गणेशनि पयस्विनि मूलसँवारी ।।८।।
हस्तिनी पुहुखा पचयें गंधारी । इमि संतन नाड़ी निरधारी ।।९।।
अलंबुखा अरु कुहू कहावै । वारुनि शंखिनि यहि नौ गावै ।।१०।।

शब्दार्थ — तीन शक्ति = तीन मुख्य नाड़ियाँ । दंड = दमन ।

भावार्थ — इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा—ये तीन मुख्य नाड़ी शक्ति और इनकी सखियाँ नौ नाड़ियाँ जिनका आगे वर्णन होगा इनको पहचान कर इनका भेद पहले से सन्तों-विद्वानों ने किया है ।।७।। शिव तथा सनक, सनंदन, सनातन एवं सनत्कुमार ने मन और इन्द्रियों के दमन के लिये तथा योगमार्ग की सिद्धि के लिये इनका विभेद किया है । नौ नाड़ियाँ ये हैं—गणेशनी, पयस्विनी, हस्तिनी, पूहखा, गंधारी, अलंबुषा कुहू, वारुणी तथा शंखिनी । सन्तों ने इस प्रकार नौ नाड़ियों का निर्धारण किया है ।

विशेष — नौ नाड़ियों का निवास इस प्रकार माना है—गणेशनी बायें हाथ में, पयस्विनी दाहिने कान में, हस्तिनी दाहिने नेत्र में, पूहखा बायें कान में, गंधारी बायें नेत्र में, अलम्बुषा मुख में, कुहू लिंग में, वारुणी दाहिने हाथ में तथा शंखिनी गुदा में निवास करती हैं ।

तेहि नेह नौ द्वार उपानी । त्रिविधि होय माया प्रगटानी ।।११।।
दशयें भग माया होय आई । लिंगरूप निरंजन राई ।।१२।।

शब्दार्थ — नेह = स्नेह, आसक्ति । राई = राजा; ब्रह्म ।

भावार्थ — (कहते हैं) उपर्युक्त नौ नाड़ियों की आसक्ति-वश दो नेत्र दो कान, नाक, मुख, गुदा तथा शिश्न—ये नौ द्वार उत्पन्न हुये । इस प्रकार माया ही सत, रज एवं तम तीन प्रकार के रूप धारण करके सर्वत्र प्रकट हुई ।।११।। दशयें भग माया का रूप तथा शिश्न ब्रह्म का रूप मान रखा है ।।१२।।

पुरुष अंश बीज होय धावै । अष्टांगी रज अंश मिलावै ।।१३।।
पाँच तत्त्व त्रिगुण होय आई । अष्टांगी तेहि भाँति बनाई ।।१४।।
अष्ट अंग तेहि नेह उपाना । नारी पुरुष होयके अरुझाना ।।१५।।

शब्दार्थ — धावै = दौड़ना, गति करना, संचालित होना । अष्टांगी = माया । अरुझाना = बन्धन में फँसा ।

भावार्थ — (कहते हैं) पुरुष या ब्रह्म का अंश वीर्य बनकर संचालित होता है और अष्टांगी माया का अंश रक्त होकर वीर्य में मिल जाता है, जिससे सृष्टि होती

है ॥१३॥ वस्तुतः पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व और सत, रज, तम तीन गुण मिलकर अष्टांगी माया एवं प्रकृति का रूप निर्मित है ॥१४॥ इन्हीं आठ अंगों के मोह-वश जीव जन्मादि धारण करता है, और स्त्री तथा पुरुष का रूप ग्रहण कर बन्धनों में फँसता है ॥१५॥

विशेष — आकाश शून्य है। पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु द्रव्य है। इनमें सृजन, संरक्षण एवं समापन होते रहने का स्वभाव है। यही क्रमशः रज, सत, तम गुण हैं। इन प्राकृतिक वस्तुओं में मोह कर जीव शरीर धरने छोड़ने के दुःखद चक्रों में घूमता है।

नारि समानी पुरुषमें, पुरुष समाना नारि।
युगल अंश षट लायके, रचा जाल विस्तारि ॥१२७॥

शब्दार्थ — युगल = जोड़ा, दोनों। षट = भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा तथा मोह। लायके = अपने को आसक्त करके।

भावार्थ — नारी शरीर की आसक्ति पुरुष के हृदय में तथा पुरुष शरीर की आसक्ति नारी के हृदय में समायी हुई है। ये दोनों भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह इन छः पाशविक अंशों में अपने को आसक्त करके महान बन्धन बना डाले हैं ॥१२७॥

विशेष — सबको भूलवश अपने-अपने माने हुए शरीर की आसक्ति तो है ही; नर-नारी को एक दूसरे के शरीर की भी दृढ़ आसक्ति है। इधर छः पशुकर्मों में भी दृढ़ आसक्ति है। इनका भी सुधार नहीं करते। अतएव मनुष्य के जीवन में केवल उलझन ही देखने को मिलती है।

छन्द—४, ५

परपंच पाँच पचीस भौ, अनमिल सबै निज दाव को।
संग एकन्हि एकमें, उतपात अनेकन्हि ताहि सो॥
बहु रोग शूल देखाय जीवहि, चैन नहिं एकछिन दियो।
नित घुर्म घुर्मित कालचक्र, दरेरि तेहि घायल कियो ॥४॥

शब्दार्थ — दाव = दाँव, अवसर; चेष्टा। घुर्म = घूर्ण, घूमना, चक्कर खाना। घुर्मित = घूर्णित, घूमता हुआ। कालचक्र = समय का चक्र; अज्ञान का चक्र। दरेरि = रगड़ के साथ धक्का देना; तीव्र आघात।

भावार्थ — पाँच तत्त्व, पाँच विषय, पंच ज्ञान इन्द्रियाँ, पचीस प्रकृतियाँ—ये सब भूले जीव के लिये महाभवबन्धन के रूप में बने हुए हैं। ये सभी एक दूसरे से अनमिल तथा अपनी-अपनी चेष्टा की ओर जीव को खींचने वाले हैं। इनमें से एक-

एक के साथ में पड़ने से जीव के लिये अनेक उपद्रव खड़े हो जाते हैं। यह शरीर जीव को अनेक रोग, अनेक संताप अनुभव कराता रहता है। एक क्षण इसको विश्रांति नहीं लेने देता। इस प्रकार जीव के स्वरूपभूल से उसके मनमें निरन्तर अज्ञान का चक्कर घूमता है और उसी में जीव चक्कर काटता है। इस प्रकार अज्ञान ने जीव पर प्रबल आघात करके उसे घायल बना दिया है ॥४॥

बहु व्याधि खानि सो पिंड औ, ब्रह्मांड पिंजर सों बसो।
प्रीति औ प्रतीति सो दिनदिन, जाल यमसों दृढ़ गसो॥
हंस चहै आनंद तेही सों, फंद है जिसमें फँसो।
व्याधा शरण सब ताकहीं, बुद्धि देखि पारखी हँसो॥५॥

शब्दार्थ — पिंड = देह। ब्रह्माण्ड = विश्व; वाणी जाल। यम = मन; वासना। हंस = जीव, मनुष्य। व्याधा = मलिन मन। शरण = आश्रय। पारखी = विवेकी; परीक्षक।

भावार्थ—अनेक व्याधियों से ग्रसित चारों खानियों के स्थूल देहों, ब्रह्माण्ड के अनेक प्राकृतिक उपद्रवों और वाणीजाल के पिंजड़े में जीव निवास करता है। उन्हीं में दिन-प्रतिदिन आसक्ति और सुखप्राप्ति का विश्वास करता जा रहा है, इसलिये उत्तरोत्तर वासना के कठोर बंधनों में बंधता जा रहा है। यद्यपि जीव जिसमें फँसा है वह उसके लिये बंधन है, तथापि व्यक्ति उसी में आनन्दप्राप्ति की कल्पना करता है। प्रायः सब जीव विषयी मन के आश्रय में रहने में ही सुख मान रहे हैं। यह उलटी बुद्धि देखकर विवेकी को हँसी आ जाती है ॥५॥

साखी—परवश हाथ बधिकके, हंस चहै आनंद।
हेत अटल पारख सोई, उचटि जाय यम फंद ॥१२८॥

शब्दार्थ — बधिक = अशुद्ध मन।

भावार्थ — अशुद्ध मन के हाथों में परवश होकर जीव कल्याण चाहता है, यह कितनी भूल है? वही व्यक्ति जब मन के फंदे को दूर करके अविचल या पारख स्वरूप के बोध में श्रद्धा करता है तब मनके बंधनों से विरक्ति हो जाती है ॥१२८॥

३०—शरीर में सात कमल, पर्वत, समुद्र आदि का वर्णन

चौपाई—२२

सात कमल औ सायर साता। पिंड ब्रह्मांड एक सम बाता ॥१॥
सात स्वर्ग श्वासा अनुसारा। घेरा सात सायर के डारा ॥२॥
स्वर्ग सात सायरको आशा। कमल प्रबंध पिंड परकाशा ॥३॥

शब्दार्थ — कमल = चक्र, पहाड़। सायर = समुद्र। बाता = बातचीत। प्रबंध = रचना; निबंध; वाणी। पिंड = देह।

भावार्थ — योगी लोग ऐसी बात करते हैं कि ब्रह्माण्ड तथा शरीर में सात पर्वत और सात समुद्र एक समान है ॥१॥ (उन्होंने) श्वाससाधना के अनुसार शरीर के भीतर सात स्वर्गों की कल्पना की है; और सात समुद्रों का भी घेरा डाल रखा है ॥२॥ जैसे कर्मी तथा उपासक लोग भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक में पहुँच कर सुख पाने की आशा करते हैं; वैसे योगी लोग शरीर में सात स्वर्ग, सात कमल रूप पर्वतों की कल्पना करके उनसे सुख प्राप्ति की आशा करते हैं तथा उनके विधायक वाणियों की रचना करके प्रचार कर रखे हैं ॥३॥

दल सहस्र एक कमल उपाई। मेरु शिखर ऊपर उरमाई ॥४॥
सहस्र श्वासा तेहि माँहविलासा। आपु निरंजन कीन्हा वासा ॥५॥

शब्दार्थ — उपाई = उत्पन्न किया; कल्पना किया। मेरु = मेरुदण्ड, रीढ़ उरमाई = उरमाना, अटकाना, झुलाना।

भावार्थ — योगियों ने मेरुदण्ड के शिखर स्तर (सिर) पर एक सहस्रदल कमल की कल्पना करके उसे लटका दिया ॥४॥ उसमें एक हजार श्वास का भोग-विलास या जप माना और यह कल्पना किया कि उसमें स्वयं परब्रह्म निवास करता है ॥५॥

दुई दल त्रिकुटी माँह बनाई। सहस्र श्वास ज्योति फैलाई ॥६॥
सहस्र वास शारदा नेहा। कमल षोड़श दल कंठ उरेहा ॥७॥

शब्दार्थ — त्रिकुटी = दोनों भौंहों के बीच। नेहा = स्नेह, प्रेम, निवास। उरेहा = चित्र या नक्शा बनाया, कल्पना किया।

भावार्थ — त्रिकुटी में दो दलकमल की कल्पना की, उसमे एक हजार श्वास का भोग-विलास या जप और विष्णु देवता का निवास माना और कहा कि ध्यान करने से यहाँ ज्योति प्रकाशित होती है ॥६॥ कंठस्थान में सोलह दल के कमल की कल्पना की, वहाँ भी एक हजार श्वासका भोग-विलास व जप तथा शारदा देवीका निवास माना ॥७॥

विशेष — कहते हैं त्रिकुटी में 'हं, क्षं' इन दो अक्षरों की तथा कंठ में 'अ से अः' तक सोलह स्वरों की उत्पत्ति होती है। इसी के आधार में दोदल तथा षोड़सदल कमल की कल्पना करते हैं।

द्वादश दल हृदय अस्थाना। अनहद चक्र श्वेत परमाना ॥८॥
षट सहस्र श्वासा बंधाना। पारवती शंभू के थाना ॥९॥

शब्दार्थ — परमाना = प्रमाण, मानना। बंधाना = नियम बाँधना, कल्पना करना।

भावार्थ -- हृदयस्थान में बारह दल के कमल की कल्पना की है उस चक्र का नाम है अनाहत । उसे सफेद रंग का मानते हैं ।।८।। उसमें छः हजार श्वासों के भोग-विलास तथा जपकी कल्पनाकी है और उसमें पार्वती तथा महादेवका निवास माना है ।।९।।

विशेष -- इस चक्र से 'क से ठ' तक बारह वर्णों की उत्पत्ति तथा तद्नुसार द्वादश दल कमल की कल्पना की है ।

दशदल कमलनील रंग कीन्हा । कमला विष्णुको बासा दीन्हा ।।१०।।
षट सहस्र श्वासा अनुहारी । विलसे दोय पुरुष औ नारी ।।११।।

शब्दार्थ — **अनुहारी** = अनुहारक, नकल या सदृश कार्य करने वाला, तात्पर्य में अनुसार ।

भावार्थ -- (कहते हैं) नाभिस्थान में मणिपुर चक्र का दशदल कमल है, इसका रंग नीला है, इसमें लक्ष्मी और विष्णु के निवास की कल्पना कर रखी है । इसमें भी उपर्युक्त अनाहतचक्र के अनुसार छह हजार श्वासों का भोग-विलास या जप है । कहा जाता है कि यहाँ लक्ष्मी और विष्णु दोनों नारी-नर विलास करते हैं ।।११।।

विशेष — इस चक्र से 'ड से फ' इन दश वर्णों की उत्पत्ति मानकर दशदल कमल की कल्पना की है ।

षष्ट कमल दल पीत सँवारी । पेड़ू नाभी तले पसारी ।।१२।।
षट सहस्र श्वासा संचारी । अज सावित्री बास विचारी ।।१३।।

शब्दार्थ — **सँवारी** = बनाया; कल्पना की । **संचारी** = संलग्न ।

भावार्थ — नाभि के छह अंगुल नीचे पेड़ू में स्वाधिष्ठान चक्र माना है जो छह दलों का पीला कमल है ।।१२।। वहाँ पर भी छह हजार श्वासों का भोग-विलास व जप संलग्न कर दिया है; और उसमें ब्रह्मा तथा उनकी धर्मपत्नी सावित्री का निवास मान रखा है ।।१३।।

विशेष—इस चक्र में 'ब से ल' तक छह अक्षरों की उत्पत्ति तथा तद्नुसार षट्-दल कमल की कल्पना की है ।

मूलचक्र कमल दल चारी । तेहि बिच गणपति बास सँवारी ।।१४।।
लाल रंग तहँ छौसै श्वासा । सात स्वर्ग सोइ पिंड प्रकाशा ।।१५।।

शब्दार्थ — **प्रकाशा** = कल्पना करके फैलाना ।

भावार्थ — गुदास्थान में मूलाधार चक्र चार दलकमल का माना है । उसमें पवित्र गणेश जी महाराज को ला बैठाया है ।।१४।। इस कमल या चक्र का रंग लाल माना है; और छह सौ श्वासों का भोग-विलास व जप माना है । उपर्युक्त सातों

कमल या चक्र को ही शरीर के भीतर सात स्वर्ग मानकर योगियों ने उसका प्रचार किया है ॥१५॥

विशेष—इस चक्र में व, श, ष, स—इन चार अक्षरों की उत्पत्ति तथा तदनुसार चतुर्दल कमल की कल्पना कर रखी है।

साखी–प्रति प्रति कमल गाँठि दृढ़, सोई पहाड़ रचि लीन्ह।
तेहि पास सागर रचा, भिन्न-भिन्न गुण कीन्ह ॥१२९॥

शब्दार्थ—सागर = समुद्र।

भावार्थ — उपर्युक्त सातों चक्रों के प्रत्येक कमल में कहते हैं नसों की पक्की गाँठे लगी हैं। उसी को पहाड़ मान रखा है; और उसके पास में सात समुद्रों की कल्पना कर रखी है जिनके मीठे-खारे आदि भिन्न गुण बतलाते हैं ।।१२९॥

कारण सब सूक्ष्म भये, कारज है विस्तार।
प्रगट अवनी औ पिंड में, विरला समुझनहार ॥१३०॥

शब्दार्थ — अवनी = अवनि, पृथ्वी; ब्रह्माण्ड। पिंड = शरीर। समुझनहार = समझने वाला पारखी।

भावार्थ — (उन लोगों की मान्यता है) सभी कारण सूक्ष्म होते हैं इस दृष्टि से सबका मूल कारण ब्रह्म तथा माया ये सूक्ष्म हैं और इनसे समस्त कार्य पदार्थों का विस्तार हुआ है। वह सब कार्य ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड के रूप में प्रत्यक्ष हैं। परन्तु इसका भेद कोई एक पारखी ही समझेगा ॥१३०॥

विशेष — यह पारखी ही समझते हैं कि माया और ब्रह्म मनुष्य के मन की कल्पना है। जड़-चेतन अनादि तथा संसार अनादि है।

चौपाई—२३

कमल सात सोई सात पहारा। गाँठि कटोरी घेरा डारा ॥१॥
सोई प्रति कमल पहाड़ कहावै। देव पारचक्र वैकुंठ बतावै ॥२॥
कैलाश हेमवान हेमवंत सुमेरा। सायर सात तेहिके घेरा ॥३॥

शब्दार्थ — सायर = समुद्र।

भावार्थ — उपर्युक्त सात कमल ही सात पहाड़ हैं; जो कटोरीदार घेरा डाल करके नसों की गाँठे हैं ॥१॥ उसी प्रतिकमल को योगी लोग पहाड़ बतलाते हैं, जैसे :- देवपर्वत, पारचक्र पर्वत, वैकुण्ठ पर्वत, कैलाशपर्वत, हेमवान पर्वत, हेमवंत पर्वत तथा सुमेरु पर्वत। इन्हीं सातों के घेरों के भीतर सात समुद्रों की भी कल्पना की है जिसका वर्णन आगे है ॥२, ३॥

लोन अपछ औ क्षीर सुधारा । मदिरा घृत अरु दधि जलधारा ॥४॥
शिखर सुमेर शुद्ध जल जोई । जोगी अमिरस चाखैं सोई ॥५॥

शब्दार्थ — लोन = लार, खार। अपछ = मीठा समुद्र। सुधारा = सुन्दर धारा।

भावार्थ — खारसमुद्र, मीठा या मधु समुद्र, सुन्दर धारावाला क्षीरसमुद्र, मदिरासमुद्र, घृतसमुद्र दधिसमुद्र तथा जल समुद्र ये सात समुद्र हैं ॥४॥ शिखर स्थान भ्रमर गुफा में जहाँ सुमेरु पर्वत माना है। वहीं शुद्ध जल का समुद्र बतलाते हैं। योगी लोग उसी को अमृतरस मान कर चखते हैं ॥५॥

विशेष — शुद्ध जलका समुद्र ब्रह्माण्ड में माना है। यहाँ ही कौंच द्वीप की कल्पना करते हैं। योगी लोग जिह्वा को लम्बिका योग द्वारा लम्बी करके उलटा गले में ले जाते हैं, और ऊपर से टपकते हुए लार को चाटकर अमृत पीना मानते हैं, जो महाभ्रम है।

घृत सायर हेमवंत निवासा । दुइ दल कमल ज्योति परकाशा ॥६॥
हेमवान दल षोडश कहिये । सायर दधि ताहि ढिग लहिये ॥७॥

शब्दार्थ — षोड़श = सोलह। सायर = समुद्र।

भावार्थ — दो दलकमल त्रिकुटी में जहाँ योगी लोग काल्पनिक ज्योति प्रकाश के दर्शन करते हैं और जहाँ हेमवंत पर्वत की कल्पना कर रखी है, वहीं घृतसागर का वर्णन करते हैं ॥६॥ कंठस्थान, विशुद्धिचक्र सोलह दलकमल में जहाँ हेमवान पर्वत माना है वहीं दधि का समुद्र है ॥७॥

विशेष — त्रिकुटी में शंखद्वीप तथा कंठ में कुशद्वीप माना है। त्रिकुटी (नाक के ऊपर) में जो नाक का गाढ़ा जल एवं मल का जमाव होता है उसी को घृतसमुद्र तथा कंठ में जो खार या थूक का जमाव है उसी को वे दधिसमुद्र कहते हैं।

द्वादश कमल कैलाश उरमाई । सुरा समुद्र तेहि तीर बनाई ॥८॥
दश दल सोई बैकुण्ठ कहावै । सायर क्षीर तहाँ उपजावै ॥९॥

शब्दार्थ — उरमाई = उरमाना, लटकाना। तीर = निकट। उपजावै = उपज करना, कल्पना करना।

भावार्थ — हृदयस्थान, अनाहतचक्र में जहाँ बारह दलकमल लटका रखा है और जहाँ कैलाश पर्वत का वर्णन करते हैं, उसके पास ही सुरा समुद्र की कल्पना करते हैं ॥८॥ और नाभिस्थान मणिपूरचक्र दशदलकमल में जहाँ बैकुंठ पर्वत की कल्पना है, उसके पास ही क्षीर सागर का होना मानते हैं ॥९॥

विशेष — हृदय में शाल्मलि द्वीप तथा नाभि में पुष्करद्वीप माना है। हृदय में

रही हुई पित्त की नली को सुरासमुद्र एवं मदिरा का समुद्र और स्त्री के कंठ से नाभि तक फैली हुई दूध की नली को लक्ष रखकर नाभि में क्षीर समुद्र मान रखा है।

पारचक्र षष्ठ दल सोई। सायर अपछ ताहि ढिग होई ॥१०॥
कमल चारि दल मुग्ध बनाई। सायर लोन तहाँ निर्माई ॥११॥

शब्दार्थ — षष्ठ = छह। अपछ = मीठा। मुग्ध = विमोहित।

भावार्थ — पेडू स्थान, स्वाधिष्ठान चक्र, छह दलकमल में जहाँ पारचक्र पर्वत माना है उसी के पास मीठा समुद्र का होना माना है ॥१०। और गुदास्थान, मूलाधार चक्र चारदलकमल में जहाँ देवलोक पर्वत माना है, बिमोहित योगियों ने वहाँ पर ही खारसमुद्र की कल्पना की है ॥११॥

विशेष — पेडू स्थान में श्वेतद्वीप तथा गुदा स्थान में जम्बुद्वीप मान रखा है। नर-नारी के सम्पर्क से उत्पन्न हुआ पेडू के पास का क्षणिक आनन्द तथा मल-मूत्र के त्याग से पेडू में उत्पन्न हुई स्वच्छता व हल्कापन से पेडू में मीठा समुद्र होने की कल्पना की है। गुदास्थान के पास मूत्र की थैली को खार समुद्र मान रखा है।

हाड़ तीनसै साठ उपराजा। कसनी बहत्तर कोठी साजा ॥१२॥
सोई प्रतिकमल कला अनुहारी। नाड़ी संगम कोठि सँवारी ॥१३॥

शब्दार्थ — हाड़ = हड्डी। कसनी = बंधन। कोठी = कोठा, घेरा; गाँठ। कला = हुनर। अनुहारी = अनुहार, भेद, प्रकार, आकृति।

भावार्थ — (कहते हैं) शरीर में तीन सौ साठ हड्डियाँ उत्पन्न होती हैं, और बहत्तर हजार नाड़ियों से वे कसकर बहत्तर गाँठों में सजाई रहती हैं ॥१२॥ उन्हीं गाठों में से सात मुख्य गाठों के प्रत्येक में कमल, पर्वत, समुद्र आदि अनेक भेदों से योगियों ने कल्पना की हुनर दिखाई है; क्योंकि नाड़ियों के संगम में गाँठे बनी ही हैं ॥१३॥

साखी—रग जो बहत्तर सहस्र ले, मेल जहाँ तहाँ कीन्ह।
कोठी बहत्तर विदित सो, हंस अरुझावन दीन्ह ॥१३१॥

शब्दार्थ — रग = नस, नाड़ी। हंस = जीव।

भावार्थ — जो बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं, उनको लेकर हड्डियों में जहाँ-तहाँ मिलाकर प्रकृति द्वारा कसी गयी हैं। उन नस-नाड़ियों की बहत्तर गाँठे बहत्तर कोठी या कोठा के नाम से प्रसिद्ध हैं; इनमें योगियों ने अनेक यौगिक कल्पनायें करके जीवों को फँसने का जाल रच दिया है ॥१३१॥

और अनेकनि जाल जो, सबै सुनहु बिलगाय।
दश औ तीन प्रकारके, वायु सो तहाँ उपाय ॥१३२॥

शब्दार्थ — बिलगाय = अलग-अलग।

भावार्थ — अन्य भी जो अनेक जाल हैं उन सबको अलग-अलग ध्यान देकर सुनो। दश और तीन प्रकारके शरीरमें वायु उत्पन्न होने की बात बतायी गयी है १३२

२१–शरीरस्थ प्राणादि दश व तीन वायुयों तथा षट उर्मियोंका वर्णन

चौपाई—२४

दश वायु दश बाजा बाजै। शब्द अनाहद सोई गाजै ॥१॥
झीनी पाँच सो पुरुष सनेही। मोटी पाँच मायाकी देही ॥२॥

शब्दार्थ — अनाहद = अनाहत; बिना चोट पहुँचाये होती हुई ध्वनि। गाजै = गरजना।

भावार्थ — प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान ये पाँच पिण्ड के स्थूल वायु तथा कृकल, नाग, देवदत्त, कूर्म तथा धनंजय ये पाँच ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म वायु हैं। इनके कारण ब्रह्माण्ड में भेरी, शंख, झाँझ, सहनाई, दुंदुभी, मृदंग, वीणा, सीतार, सहनाई और बाँसुरी यें दश प्रकार के बाजे बजना मानते हैं। उसी को अनाहतनाद की गर्जना अथवा ओम्-ध्वनि कहते हैं ॥१॥ जो पिण्ड के पाँच सूक्ष्म वायु हैं वे ब्रह्मसे सम्बन्ध रखने वाले हैं तथा जो पिण्ड के स्थूल पाँच वायु हैं वे माया के स्वरूपसे उत्पन्न माने जाते हैं ॥२॥

प्राण अपान औ व्यान समाना। पचयें वायु है सोइ उदाना ॥३॥
हृदय प्राण है गुदा अपाना। नाभि समान कंठ उदाना ॥४॥
सर्व शरीर व्यापै सो व्याना। पाँचों पाँच तहाँ परधाना ॥५॥

शब्दार्थ — परधाना = प्रधान, श्रेष्ठ।

भावार्थ — प्राण, अपान, व्यान, समान और पाँचवाँ वायु उदान है ॥३॥ हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान और पूरे शरीर में फैला हुआ व्यान है। ये पाँचों अपने-अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं ॥४, ५॥

विशेष — प्राण हृदय में रहकर रात-दिन श्वासगति को चलाता है। कहते हैं रात-दिन में स्वस्थ व्यक्ति इक्कीस हजार छह सौ श्वास लेता छोड़ता है। अपान गुदा में रहकर मल-मूत्र त्याग कराता है। समान नाभि में रहकर अन्न-जल को पचाता है। उदान कण्ठ में रहकर कहते हैं खाये-पीये अन्न जल को अलग-अलग करता है। व्यान सारे शरीर में रहकर जोड़ों को घुमाता तथा रक्तसंचार करता है।

अज अपान है हरि उदाना। शिव समान माया सो व्याना ॥६॥
प्राण निरंजन आपु कहावै। पाँच थूल वायु निरमावै ॥७॥

शब्दार्थ — अज = ब्रह्मा। थूल = सूक्ष्म।

भावार्थ — अपान में ब्रह्मा, उदान में विष्णु, समान में शिव, व्यान में माया तथा प्राण में निरंजन कहलाने वाले स्वयं ब्रह्म निवास करते हैं। पाँच सूक्ष्म वायु भी निर्मित हैं उसको आगे बताते हैं ।।६, ७।।

कूर्म नाग किंकिरा धनंजै । देवदत्त सोई पाँच भनीजै ।।८।।
वायु नाग उदगार स्वभाऊ । वायु कूर्म नेत्रके दाऊ ।।९।।

शब्दार्थ — भनीजै = कहते हैं। उदगार = उद्गार, डकार।

भावार्थ — कूर्म, नाग, किंकिरा, धनंजय तथा देवदत्त ये पाँच ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म वायु कहे जाते हैं ।।८।। नाग वायु का स्वभाव है डकार लाना, कूर्म वायु का काम है नेत्र को खोलना-मूँदना ।।९।।

किंकिरा सो चमकावन करई । देवदत्त जेहि बल पशु धरई ।।१०।।
धनंजय बल साधनके पावै । काया विगुर्चन बहुविधि लावै ।।११।।

शब्दार्थ -- विगुर्चन = विगूचन, उलझन, कठिनाई।

भावार्थ — किंकिरा वायु छींक लाता तथा शरीर को चमका देता है, देवदत्त वायु पैर में शक्ति देता है जिससे मनुष्य चलता-फिरता है तथा इससे जम्हाई भी आती है ।।१०।। धनंजय, वायु योगसाधना में शक्ति देता तथा मृतक शरीर को फुलाता है इस प्रकार इस उलझनपूर्ण शरीर में अनेक भेद-प्रभेद हैं तथा इसमें लोगों ने नाना मनगढ़ंत कल्पनायें भी कर डाली हैं ।।११।।

साखी—बल विशेष सम साधना, आपु धनंजय सोय।
जतन विविधि तेहि लाइके, योग अभ्यासी होय ।।१३३।।

शब्दार्थ — सम = समान, सदृश, तात्पर्य में एकाग्रता। आपु = स्वयं ब्रह्म का रूप।

भावार्थ — (कहते हैं) एकाग्रता की साधना करने में जो स्वयं परब्रह्मका रूप धनंजय वायु है विशेष शक्ति प्रदान करता है। अतएव योगी लोग अनेक साधनाओं से उसे स्ववश करके योग के अभ्यासी होते हैं ।।१३३।।

बड़ उतपात उतपाति के, कला लखै नहिं जीव।
सदा रहैं लौलीन तेहि, कब धौं मिलहिंगे पीव ।।१३४।।

शब्दार्थ — उतपात = उत्पात, उपद्रव, खुराफात। उतपाति = उत्पाती, उपद्रवी, खुराफाती। कला = कल्पना। लौलीन = ध्यानमग्न, आसक्त। धौं = भला।

भावार्थ — उपद्रवियों के बड़े-बड़े उपद्रव हैं। इनके उपद्रव की कलाबाजी बिना पारख लोग समझ नहीं पाते। लोग योगादि करके किसी कल्पित परमात्मा में ही ध्यानमग्न रहते हैं और कल्पना करते रहते हैं कि भला पति परमात्मा कब मिलेगा ?१३४

विशेष — मनकी एकाग्रता ही योग है। इसका फल होना चाहिये दृश्य का अहंकार दूर होकर अपने आप शांत हो जाना न कि अलग दृश्य-भास से परमात्मा की कल्पना करके भटकते रहना।

चौपाई—२५

आपन आपन भाग देखावै। जहाँ तहाँ पाँच कला होय धावै ॥१॥
ब्रह्मा नाग हरि कूर्म होई। किंकिरा हर चमकावै सोई ॥२॥
देवदत्त माया परधाना। धनंजय रूप आपु भगवाना ॥३॥

शब्दार्थ — भाग = अंश। कला = अंश।

भावार्थ — सभी वायु अपना-अपना अंश स्वरूप प्रदर्शित करते हैं। उपर्युक्त प्रकार वायु पाँच अंशों में विभक्त होकर शरीर में यत्र-तत्र गति करता है ॥१॥ नाग वायु पर ब्रह्मा, कूर्म पर विष्णु, जो शरीर में चमक या छींक उत्पन्न करता है उस किंकिरा पर महादेव, देवदत्त पर मुख्य माया तथा धनंजय वायु पर स्वयं परब्रह्म परमात्मा निवास करते हैं ॥२, ३॥

तीन शक्तिकी अंशी बाई। पूरक रेचक कुंभक लाई ॥४॥
लेत कछु पूरक गहि लेई। अज हितकारी कहावै तेई ॥५॥
रेचक सो जो छोड़े बाई। विष्णु आप तेहि माँह समाई ॥६॥
कुंभक सो जो गहिके रहई। सुषुमना अंश शंकर सो लहई ॥७॥
चहत कहत पुनि ताहि नशावै। होत प्रगट तेहि तहाँ छुपावै ॥८॥

शब्दार्थ — शक्ति = माया। बाई = वायु।

भावार्थ — जो इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा ये तीन वायु हैं माया शक्ति के अंश हैं। उक्त तीनो नाड़ियों में ही रेचक, पूरक तथा कुंभक क्रियायें करके प्राणायाम की साधना की जाती है ॥४॥ इडा एवं बाईं नाक से वायु को ऊपर चढ़ाना पूरक कहलाता है। इसके अधिष्ठाता ब्रह्मा कहलाते हैं ॥५॥ रेचक उसे कहते हैं जो पिंगला एवं दायें नाक से वायु धीरे-धीरे छोड़ा जाता है। इसमें स्वयं विष्णु का वासा माना है ॥६॥ कुंभक वह है जो सुषुम्णा द्वारा वायु को मस्तक में रोक कर रखा जाता है। इसे महादेव का अंश मानते हैं ॥७॥ योगी लोग कहते हैं कि यदि मनुष्य योगसिद्धि चाहता है तो मनोवृत्ति का पुनः-पुनः नाश करे। वृत्तियाँ जब उदित हों तब उन्हें वहीं समाप्त कर दें अथवा ब्रह्माण्ड में छिपा दे ॥८॥

विशेष — मनोवृत्ति रोकना तो ठीक है; परन्तु उसे स्वरूप में न लगाकर दृश्य-भास में लगाना गलत है।

प्रगटत पालन अंत नशावै । तीन तीन अंश युगल देखावै ॥९॥
षट सो कला जगत परचारी । तीनि तीनि अंश पुरुष औ नारी ॥१०॥

शब्दार्थ — युगल = दो, ब्रह्म और माया । षट = छह । प्रचारी = प्रकट होना ।

भावार्थ — योगी लोग दर्शाते हैं माया के अंश तीन—इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा और ब्रह्म के अंश तीन—रेचक, पूरक और कुम्भक और इन छहों में रज, सत, तम रूप से ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर का निवास है जो उत्पत्ति, पालन और संहार के अधिष्ठाता हैं ॥९॥ उपर्युक्त छह अंश जो तीन माया और तीन ब्रह्म के हैं, संसार में प्रकट हैं ॥१०॥

साखी—षट उर्मी षट रस पुनी, षट दर्शन षट कर्म ।
षट शास्त्र षट ऋतु सो, षट ब्रह्माके धर्म ॥१३५॥
षट दक्षिणायन सोई कला, उत्तरायण षट मास ।
षट सब भेषहि जानिये, युगल अंश परकाश ॥१३६॥

शब्दार्थ — षट उर्मी = छह ऊर्मि—सुख, दुख, भूख, प्यास, हर्ष और शोक । **षटरस** = छह रस—मधुर, खट्टा, तीखा, कड़वा, कषाय और खारा । **षटदर्शन** = छह दर्शन—योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेस, और ब्राह्मण । **षटकर्म** = छह कर्म—यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना तथा विद्या पढ़ना और पढ़ाना । **षटशास्त्र** = सांख्य, योग, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय और वेदांत । **षटऋतु** = वसंत ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर । **षट ब्रह्मा के धर्म** = स्नान, संध्या, पूजा, तर्पण, जप और हवन । **दक्षिणायन** = दक्षिण + अयन; अयन का अर्थ है मार्ग या चलना, पूरा अर्थ हुआ दक्षिण की ओर गया हुआ; सूर्य की विषवतरेखा की ओर से मकर रेखा की ओर गमन; आधे सावन से आधे माघ इन छह महीनों का समय जिसमें सूर्य विषवत रेखा से दक्षिण की ओर रहता है । **उत्तरायण** = उत्तर की ओर गया हुआ; सूर्य का मकररेखा से उत्तर कर्क रेखा की ओर जाना; आधे माघसे आधे सावन का वह छह महीने का समय जब सूर्य की गति उत्तर की ओर रहती है । **षटभेष** = षटदर्शनों के छह प्रकार के वेष । **युगल** = दो ।

भावार्थ — छह ऊर्मियां, छह रस, छह दर्शन, छह कर्म, छह शास्त्र, छह ऋतुयें ब्राह्मणों के छह धर्म, दक्षिणायन के छह महीने का समय, उत्तरायण के छह महीने का समय तथा छह दर्शनों के छह प्रकार के वेष—कहते हैं ये समस्त माया और ब्रह्म के अंश से प्रकट हुए हैं ॥१३५, १३६॥

विशेष — वाणीजाल की मान्यता का ही दिग्दर्शन कराया जा रहा है । वाणीजाल कितना बड़ा है ।

३२—शरीरस्थ अष्ट अंग तथा उनमें लोकों की कल्पना

चौपाई— २६

यह खटखट सोई षटके होई । परखै छूटै बिरला कोई ॥१॥
बहु परपंच पिंड ब्रह्मंडा । नहिं सुख दुख कलेश प्रचंडा ॥२॥

शब्दार्थ—खटखट = झमेला, षटराग; झगड़ा, किचकिच । प्रचंडा = प्रचंड, तीव्र ।

भावार्थ — उपर्युक्त अनेक छहों के बड़े झगड़े हैं । कोई बिरला ही इन्हें परख कर इनके बंधनों से छूटता है ॥१॥ इस शरीर और संसार में बड़े-बड़े झंझट हैं । यहाँ सुख तो है ही नहीं; प्रत्युत सर्वत्र तीव्र वेदना तथा क्लेश हैं ॥२॥

रचि अस्थूल कला बहु भारी । अष्ट अंगको भेद सँवारी ॥३॥
मस्तक आप निरंजन राया । अंग सात सोई प्रति माया ॥४॥

शब्दार्थ — कला = चित्रकारी । अष्ट अंग = आठ अंग—सिर, हृदय, नाभि, पीठ, हाथ, पेडू, घुटना और पैर ।

भावार्थ — वासना द्वारा स्थूल शरीर का बहुत बड़ा चित्र बनाया गया है, उसमें आठ अंग के भेद हैं; जो सुन्दर ढंग से सजाये गये हैं ॥३॥ पहला अंग सिर है, जिसमें स्वयं निरंजन भगवान विराजते हैं । उसके बाद के सात अंग माया से सम्बन्धित हैं ॥४॥

अतल वितल सुतल निर्माई । तलातल रसातल तल प्रगटाई ॥५॥
सतयें सो पाताल बनाई । पारवती मारग उरमाई ॥६॥

शब्दार्थ — उरमाई = उपदेश किया ।

भावार्थ — शरीर में अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, तल तथा सातवें पाताल की कल्पना कर रखी है । पाताल गुदा स्थान है, जिसमें पार्वती द्वारा मार्ग-दर्शन कराये हुए गणेशजी निवास करते हैं ॥६॥

शंकर पीठ तेहि तल नामा । नारी पुरुष दोउ ढिग विश्रामा ॥७॥
अतल हरि सो बाहु कहावै । तलातल पगु लक्ष्मीको धावै ॥८॥

शब्दार्थ — ढिग = पास, निकट । बाहु = हाथ ।

भावार्थ — पीठ तल है, उस पर महादेव तथा पार्वती का निवास है ॥७॥ हाथ अतल है जिस पर विष्णु रहते हैं और जिससे चला जाता है वह पैर तलातल है, उसमें लक्ष्मी जी का निवास है ॥८॥

छाती वितल सो अज परवाना । पेट सुतल सावित्री थाना ॥९॥
पेडु रसातल आदि भवानी । पृथिवी सात सोई परवानी ॥१०॥

शब्दार्थ — परवाना = प्रमाण; मानना । थाना = स्थान ।

भावार्थ — छाती अतल है उसमें ब्रह्मा का निवास माना जाता है, पेट सुतल है उसमें सावित्री देवी का स्थान है ॥९॥ पेड़ू रसातल है उसमें आदि माया निवास करती हैं । इसी प्रकार अतल, वितल आदि सात बाहर पृथ्वी पर भी कल्पना करके मान रखा है ॥१०॥

साखी—पेड़ू रसातल ताहि में, लिंग पुरुष परधान ।
नारि विशेषन मोहनी, भग अकार निर्मान ॥१३७॥

शब्दार्थ — परधान = प्रधान; मुख्य ।

भावार्थ — पेड़ू में जो रसातल माना है उसी में पुरुष के मुख्य लक्षण वाला अंग तथा विशेष मोहक स्त्रीके लक्षण की आकृति कर्मवासना द्वारा निर्मित हैं ॥१३७॥

नारी मोहै पुरुष को, पुरुष वशी सो होय ।
बड़ी परस्पर लाग है, जीव विकल रहै रोय ॥१३८॥

शब्दार्थ — लाग = सम्बन्ध; मोह; आसक्ति । विकल = पीड़ित ।

भावार्थ — स्त्री हाव-भाव दिखाकर पुरुष को मोहित करती है; और वह भी पुरुष के रूप-सौंदर्य में मोहित होकर उसके वश हो जाती है । इस प्रकार दोनों की एक दूसरे में प्रबल आसक्ति है; फलतः स्त्री-पुरुष दोनों पीड़ित होकर रोते हैं ॥१३८॥

विशेष — न तो पुरुष का काल स्त्री है और न स्त्री का काल पुरुष है । वस्तुतः उन दोनों की भूलें ही अपने और दूसरे के लिये काल रूप बनी हैं । शरीर तो मल-मूत्रों का पात्र है । विवेक द्वारा शरीर के चाम को हटा दो तो उसके भीतर जो भरा है उसे विचार कर आपका मन घृणा से भर जायगा । कामासक्ति एक भ्रम है, पागलपन है ।

एक सुन्दर मानी हुई स्त्री को देखकर पुरुष मोहित होता है और उसमें सुख की कल्पना करता है । परन्तु यदि उसके शरीर में सुख होता तो उसे लेकर वह तृप्त रहती । परन्तु वह अतृप्त बनी सुन्दर माने हुए पुरुष के शरीर में आकर्षित होती है और उसमें सुख समझती है । परन्तु वह भी वैसे ही भ्रम में है ।

विषयासक्ति एवं विषय-क्रिया से नर-नारी दोनों परतंत्र, मलीन, निर्बल, दुखी एवं चिताग्नि में जलते हैं । उनका मन एकाग्र होगा ही नहीं, फिर उन्हें शांति कहाँ है ? अतः दोनों को विषयासक्ति त्यागना चाहिये ।

३३—स्त्री-पुरुष का आसक्ति दोष वर्णन

चौपाई—२७

नारी होय पुरुष लौ लावै । पुरुष सदा नारी को धावै ॥१॥
मिलहिं परस्पर सुख अनुमानी । कठिन कलेश परे नहिं जानी ॥२॥

शब्दार्थ — लौ = लाग; आसक्ति। धावै = ध्यावे, ध्यान करना।

भावार्थ — स्त्री भ्रमवश होकर पुरुष में हर समय आसक्त रहती है तथा पुरुष सदैव स्त्री का ध्यान करता है ॥१॥ वे एक दूसरे से सुख मानकर मिलते हैं। परन्तु मोहवश उनको यह पता नहीं है कि इसका परिणाम घोर दुःख है ॥२॥

गाँस भास दृढ़ रूप समाई। दुर्मति छिन छिन जीव बिलखाई ॥३॥
विरह वियोग सतावै भारी। कोउ विन पुरुष कोउ विन नारी ॥४॥

शब्दार्थ — गाँस = फंदा; तीर का फल; प्रबल आसक्ति। भास = सुख प्रतीत; भ्रम। विरह = जुदाई, वियोग।

भावार्थ — सकामी स्त्री-पुरुष के मन में विषय की प्रबल आसक्ति और सुखभ्रम प्रगाढ़ रूप से समाये रहते हैं। इस दुर्बुद्धि में पड़कर वे प्रतिक्षण विलखते एवं दुखी होते हैं ॥३॥ विषयासक्त स्त्री और पुरुष को परस्पर क्षणमात्र की जुदाई बहुत खटकती है। संसार में कोई बिना पुरुष के है तथा कोई बिना स्त्री के है ॥४॥

विशेष — स्त्री और पुरुष के मन में एक-दूसरे के प्रति रूप, सौंदर्य, स्वभाव, स्वास्थ्य सब में प्राय: कमी का अनुभव होता रहता है। थोड़ा अनुकूल मिलने पर एक-दूसरे में अत्यन्त आबद्ध हो जाते हैं। फिर उनको एक क्षण का वियोग भी वर्ष के समान प्रतीत होता है। अधिकांश पुरुष न मनोनुकूल स्त्री पाते हैं तथा अधिकांश स्त्रियाँ न इच्छानुसार पुरुष पाती हैं। मिलकर के भी वियोग, मरण आदि हो जाता है। कोई-कोई तो जीवन भर इच्छा करते हुए भी उन्हें भोग नहीं मिलते। इस प्रकार महाभ्रमपूर्ण काम के चक्कर में पड़कर मनुष्य दीन बने हैं।

पुरुष चहै अपने बसि नारी। नारी अपनी दाव विचारी ॥५॥
कठिन उतपात अनेकन्हि भाँती। परखहु ताहि नहीं कुशलाती ॥६॥

शब्दार्थ — दाव = दाँव; पेंच; छलने की चाल।

भावार्थ — पुरुष मनोनुकूल स्त्री को पाकर चाहता है कि यह हमारे वश में रहे, और स्त्री पुरुष को छलने की चाल में रहती है कि यह हमारे वश में रहे ॥५॥ इस प्रकार विषयासक्ति में अनेक भाँति के भयंकर उपद्रव हैं। हे कल्याणार्थियो! इसको परख करके त्याग करो, इसमें जीव का हित नहीं है ॥६॥

नारी पुरुष होय कौन समाना। परखहु तेहि सुजु संत सुजाना ॥७॥
नारी पुरुषके भाव मेटाई। सकुच चतुरता कपट नशाई ॥८॥

शब्दार्थ — सकुच = संकोच, लज्जा। चतुरता = चालाँकी।

भावार्थ — हे ज्ञानी संतो! स्त्री और पुरुष बनकर शरीरों में कौन प्रविष्ट है; अर्थात क्या जो शरीर में निवास करनेवाले चेतन हैं वे स्त्री तथा पुरुष हैं? यदि नहीं,

तो इस बात को सुनो तथा इसकी परख करो ॥७॥ और अपने को शुद्ध चेतन समझ कर हम स्त्री हैं या पुरुष इस भावना को मिटा दो तथा देह स्वभाव कृत लज्जा, चालाँकी तथा कपट को दूर कर दो ॥८॥

विशेष -- यहाँ यह भाव नहीं है कि व्यवहार में स्त्री-पुरुष एक मानकर अभेद बर्ताव करें या शुद्ध लज्जा का नर-नारी त्याग कर दें। इन सबकी तो जीवन-पर्यन्त आवश्यकता है। भाव है कि बोध-भाव से यह समझो कि तुम स्त्री-पुरुष नहीं शुद्ध चेतन हो। अतएव देहाभिमान को दूर करो। शरीर के मलीन स्वभावकृत लज्जा को छोड़ दो। शुद्ध लज्जा रखो।

'मैं शुद्ध चेतन हंस हूँ' इस आध्यात्मिक ज्ञानका दुरुपयोग करके स्त्री-पुरुष का अभेद बर्ताव करना मनकी चालाँकी है; जो गड्ढे में ले जाने वाली है। इसका त्याग करो।

शरणागत प्रभुके दृढ़ गहहू। पारख पाय अभय पद लहहू ॥९॥
बिरला जे साहेब अनुरागी। मोह नींद सोवत उठि जागी ॥१०॥

शब्दार्थ — शरणागत = शरण + आगत = शरण एवं आश्रय में आया हुआ।

भावार्थ — पारखी सद्गुरु का आश्रय दृढ़ता से पकड़ो, फिर स्वरूपज्ञान एवं स्वरूपस्थिति को पाकर निर्भय पद पा जाओगे ॥९॥ जो विरक्त सद्गुरु के चरणों के प्रेमी हैं, ऐसे कोई बिरले हैं। वे सोते हुए मोहनिद्रा से सर्वथा जाग उठे हैं ॥१०॥

साखी—हंस न नारी पुरुष है, ये सब काल को फंद।
गाँस भास सो मेटिके, साहेब शरण आनंद ॥१३९॥

शब्दार्थ — हंस = जीव। गाँस = आसक्ति।

भावार्थ — जीव न स्त्री है न पुरुष; यह देह तो वासना काल का जाल है। अतएव नर-नारी की देहों की आसक्ति तथा भ्रमको मिटाकर सद्गुरु के ज्ञान में परम शांति प्राप्त करो ॥१३९॥

विशेष — कितने वाचकज्ञानी उपर्युक्त उच्चभावपूर्ण साखी का दुरुपयोग करते हुए कहते हैं कि जीव स्त्री-पुरुष नहीं है। अतः एक साथ साधू-साधुनी, महंत-महंतिनि को रहने में कोई नुकसान नहीं। परन्तु कल्याणार्थी नर-नारी यदि परस्पर अभेद बर्ताव करेंगे तो वे बिना गिरे नहीं रह सकते। साखी का भाव है कि तुम अपने को स्त्री-पुरुष न मानकर शुद्ध चेतन समझो; और देहकी आसक्ति से रहित होकर मुक्त हो जाओ। इसी प्रकरण के ८६ वीं साखी में इसके विषय में देखें।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-साखी ५०

नारी रचंते पुरुषा, पुरुष रचंते नार।
पुरुषहि पुरुषा जो रचै, ते बिरले संसार ॥१४०॥

शब्दार्थ — रचंते = प्रेम करते । पुरुषहिपुरुषा = केवल-चैतन्य ही चैतन्य-स्वरूप । रचै = प्रेम करै ।

भावार्थ — स्त्रीपुरुष से प्रेम करती है, और पुरुष स्त्री से प्रेम करता है, (यह स्त्री-पुरुष की पारस्परिक आसक्ति ही जन्मादिक दुःखों का कारण है) । परन्तु केवल चेतन पारख स्वरूप में ही जो प्रेम करता है, वैसे पुरुष संसार में विरले हैं (वे ही मुक्त रूप हैं) ॥१४०॥

विशेष — स्त्री पुरुष के चर्ममय देह की आसक्ति का सर्वथा परित्याग करके, स्व-स्वरूप चैतन्य में प्रेम करो । सद्गुरु श्रीविशाल साहेब कहते हैं—

राग द्वेष भय फिक्र तजि, छोड़ि कामना भागु ।
आप आपमें प्रेम करि, छोड़ि और अनुरागु ॥
अबलामें सुख प्रेम तजि, रूप शब्द स्पर्शु ।
यहि से मनहिं छोड़ाय ले, मिटै जगत दुख भर्सु ॥

(मुक्तिद्वार ६।१९–२०)

बीजक, साखी—२६८

जो तू चाहै मूझको, छाँड़ सकल की आस ।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास ॥१४१॥

शब्दार्थ — सब सुख = निर्वासना-जनित-जीवन्मुक्ति सुख ।

भावार्थ —यदि तुम मेरे सदृश स्वस्वरूप चैतन्य में स्थित होकर जीवन्मुक्ति-सुख चाहते हो; तो सम्पूर्ण संसार की आशाओं को छोड़ दो, और मेरे समान ही निराश प्रारब्ध वर्तमान में सन्तुष्ट होकर, स्वस्वरूप में स्थित हो जाओ; फिर वासना-रहित जीवन्मुक्ति-सुख तुम्हारे पास ही है ॥ १४१ ॥

विशेष — सद्गुरु कहते हैं कि यदि तुम हमारे सदृश स्वतंत्र-निश्चिन्त स्थिति चाहते हो तो अन्य सबकी आशा परित्याग कर दो । संसार में किसी के आशाबद्ध होने के समान दुःख नहीं है । यह जीव आशाबद्ध होकर ही बाहरी ओर मन लगाये रहता है और उसके परिणाम में क्षण-क्षण अभाव का अनुभव करता है । संसार की समस्त भौतिक वस्तुयें जीव से सर्वथा पृथक हैं; अतएव उनका और जीव का नित्य सम्बन्ध न होने से, उनमें मन रखने से अभाव का अनुभव होगा ही । यह अभाव का अनुभव पदार्थों के संयोग से नहीं मिट सकता, प्रत्युत संयोग में वियोग का भय अधिक खटकता है । अतः वाह्य वस्तुओं से मन हटा लेने—मोह छोड़ देने से ही अभाव का दुख मिट सकता है । इसीलिये कहा जाता है कि साधक को चाहिये वह समस्त वाह्य आशाओं को छोड़कर स्वस्वरूप में ही स्थित हो । जब तक सुख की आशा करोगे, तब दुःख होंगे, सुख की आशा छूट जाने पर जीव मंगलमय है ।

जब तक सुख की आशा, तब तक दुख की फाँसा ।
जब सुख से भई निराशा, तब दुख सकल विनाशा ॥
आशा दुख को रूप है, सुख स्वरूप नैराश ।
यथा पिंगला मैथली, सुख सोई तजि आश ॥

३४—नर-नारी के अंग, चिन्ह आदि लक्षणों से ज्योतिष जाल वर्णन

चौपाई—२८

सुनहु काल कला बहुतेरा । जीवन जीव लुटै तेहि घेरा ॥१॥
पुनि अस्थूल दुइकला प्रकाशा । नारी पुरुष दोय अंग निवासा ॥२॥

शब्दार्थ — काल = मन । कला = रचना; कल्पना । कला = अंश ।

भावार्थ — सज्जनो ! सुनो, मन की बहुत-सी कल्पनायें हैं । वे मनुष्यों को घेर कर उनके जीवनधन ज्ञान-विवेकादिको लूट लेती हैं ॥१॥ मन की कल्पना ने पुनः माया के दो स्थूल अंश प्रकट किये । मनुष्य के दाहिने और बायें दोनों अंगों पर पुरुष और स्त्री का निवास माना ॥२॥

दहिने पुरुष बाँयें सो नारी । विविधि भाँति यम जाल पसारी ॥३॥
रेषा लक्षण रचि रचि दीन्हा । चीन्ह चक्र सोइ छापा कीन्हा ॥४॥

शब्दार्थ — यम = वासना । रेषा = रेखा, हाथ, पैर तथा मस्तक आदि की टेढ़ी-सीधी रेखायें जिन्हें देखकर ज्योतिषी लोग भाग्य का निर्धारण करते हैं ।

भावार्थ — दाहिने अंग में पुरुष का अंश तथा बाँयें अंग में नारी का अंश माना है; इस प्रकार अनेक भाँति से मन ने कल्पना का जाल फैला रखा है ॥३॥ लोगों ने स्त्री-पुरुषों के हाथ, पैर तथा मस्तकादि में बनी हुई टेढ़ी-सीधी रेखाओं, चिन्हों, चक्रों तथा छापों आदि का लक्षण घटाकर भाग्याभाग्य का निर्णय कर रखा है ॥४॥

तेहि बिच कला अनंत सँवारी । लेखा कर्म धर्म अनुहारी ॥५॥
कर्म भोग जीवहिं भुगतावै । पल पल सो सब लेखा लावै ॥६॥

शब्दार्थ — लेखा = हिसाब । धर्म = स्वभाव । अनुहारी = अनुहार, भेद, प्रकार, आकृति ।

भावार्थ — उक्त लक्षणों एवं ज्योतिषजाल के बीच में असंख्य बुद्धिमानी लगा रखी है । ज्योतिषी लोग मनुष्यों के स्वभाव एवं आकृति को देखकर उनके कर्मभोगों का हिसाब लगाते हैं ॥५॥ जीव के बनाये हुए जो शुभाशुभ कर्म हैं सुख-दुःख भोग तो देंगे ही । परन्तु मनुष्यों पर घटते हुए उन क्षण-क्षण कर्मभोगों का वे हिसाब लगाने का साहस करते हैं ॥६॥

विशेष — बुद्धिमान सूक्ष्मदर्शी लोग मनुष्यों की आकृति, स्वभाव आदि देखकर उनकी मनःस्थिति का प्रायः बहुत कुछ पता लगा लेते हैं; परन्तु किसी व्यक्ति का ज्यों-का-त्यों कर्मफल भोग जानने का दावा करना साहसमात्र है। वसिष्ठ, विश्वामित्र, सतानंद जैसे मूर्द्धन्य विद्वान श्रीराम एवं सीता के कर्मभोगों को नहीं जान सके तो अन्य पण्डितों की क्या हस्ती है। कितने महान कहलाने वाले ज्योतिषियों एवं पण्डितों की लड़कियां विधवा हो जाती हैं और वे पहले से यह नहीं जानते कि वे विधवा हो जायेंगी।

तासु लक्ष सामुद्रिक कीन्हा । विद्या रची प्रगटकै दीन्हा ॥७॥
बहुत भाँतिके कर्म्म बौराई । दुर्मति शुभ अरु अशुभ बनाई ॥८॥

शब्दार्थ — लक्ष=लक्षण। सामुद्रिक=देहचिन्ह संबंधी; वह विद्या जिसके सहारे देह-चिन्हों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

भावार्थ — लोगोंने शरीर के चिन्हों के लक्षणों का वर्णन सामुद्रिक विद्या के शास्त्रों में किया है। ऐसी पुस्तकों की रचना होकर वे प्रकाशित हैं ॥७॥ पण्डितों ने कल्पित ग्रहबाधा प्रेतबाधा आदि का डर देकर तथा उनसे छूटने के लिये ऐसे नानाप्रकार के कर्मजाल फैलाकर जनता को मूढ़ बना रखा है जिससे उनको धनलाभ हो। उन्होंने वास्तविकता पर न ध्यान देकर असावधानी से पाप-पुण्य का भी निर्धारण किया है ॥८॥

विशेष — पंडितों ने पाप से छूटने के लिये ऐसे नुसखे बना दिये हैं जो पाप को बढ़ानेवाले हो गये हैं। प्रमाण थोड़ा ही पर्याप्त है—

यद् रात्रो कुरुते पापं ब्राह्मणः स्त्रीगणैर्वृतः ।
महाभारतमाख्याय पूर्वां संध्यां प्रमुच्यते ॥

अर्थ—ब्राह्मण रात्रि में स्त्रियों के झुंडों से घिर कर जो पाप करता है वह प्रातः-काल की संध्या के समय महाभारत का पाठ करने से छूट जाता है ॥

(महाभारत, स्वर्गारोहण ५।४४॥)

अन्हा यदेनः कुरुते इन्द्रियैर्मनसापि वा ।
माहाभारतमाख्याय पश्चात् संध्यां प्रमुच्यते ॥

अर्थ—मनुष्य अपनी इन्द्रियों तथा मन से दिन भर में जो पाप करता है, वह सायंकाल की संध्या के समय महाभारत का पाठ करने से छूट जाता है ॥

(महाभारत, स्वर्गारोहण ५।४३॥)

ये सब श्लोक के भाव आचरण के लिये कितने खतरनाक हैं ?

आपै बहु विधि नाच नचावै । दोष लगाय जीवहिं सतावै ॥९॥
कबहूँ अकर्म सो वै रीझै । कबहूँ सुकर्म करत बहु खीझै ॥१०॥

शब्दार्थ — रीझै = प्रसन्न होना। खीझै = क्रुद्ध होना।

भावार्थ - ज्योतिषी-पंडित कहलाने वाले स्वयं जनता को धर्मभीरु बनाकर अनेक नाचों में उन्हें नचाते हैं; और उनको दोष लगाकरके उनसे धन-वंचन करते तथा उन्हें कष्ट देते हैं ॥९॥ वे कभी तो वध, पूजा आदि के नाम पर जनता द्वारा पापकर्म किये जाने पर भी प्रसन्न होते हैं और कभी तो संत-सेवा-सत्संगादि करते देखकर लोगों पर क्रुध हो जाते हैं ॥१०॥

विशेष — किसी के बच्चा पैदा हुआ। पंडितजी ने कहा लड़का मूलगढ़न्त या सत्तइसा में पड़ गया है। ब्राह्मणोंसे इतना पूजा कराओ, दान दो तब उद्धार होगा; नहीं बच्चे के पिता पर खतरा है। नवजात बच्चा बेचारा शुद्ध है; परन्तु पण्डित जी उसे भी दोषी सिद्ध करके अपनी आमदनी का जरिया बना लिये। कहीं ग्रहबाधा, प्रेतबाधा बतलाकर, कहीं कुछ कह कर जनता से कुछ निकालने की चेष्टा करते रहते हैं। इसी प्रकार किसी के मरने पर भी पिण्डदान, तेरही, सोरही एवं अनेक चक्रों में जनता को डालकर दुःख देते हैं।

सच्चे पण्डित उपर्युक्त प्रपंच नहीं करते। वस्तुतः विवेकी पुरुष ही सच्चा पण्डित है।

साखी—बहुत कुकर्मी राज दै, धर्मिक को दुख भूरि।
कर्म सुकर्म मिलायके, अंत मिलावै धूरि ॥१४२॥

शब्दार्थ — धर्मिक = धर्मवान; पवित्र व्यक्ति। भूरि = बहुत।

भावार्थ — लोग अपने सम्प्रदाय के कुकर्मी लोगों को भी उच्च आसन, सम्मान आदि देकर उन्हें कल्याण का अधिकारी मानते हैं, और दूसरे सम्प्रदाय के धर्मवान, सदाचारी एवं पवित्र व्यक्ति को भी नास्तिक, काफिर कहकर कभी-कभी उन्हें बहुत दुःख देने की चेष्टा करते है। ऐसी स्थितिमें वे पाप-पुण्य एक में मिश्रितकर अंत में सारी मानवताको धूल में मिला देते हैं।

अथवा संसार के लोग भी भोले हैं। वे बहुत-से ऐसे अधकर्मी लोगों को ही सम्मान देते हैं जो लोगों को ऋद्धि-सिद्धि आदि देने का ढकोसला करते हैं। और सच्चे न्यायी विवेकी संतों से द्रोह करते हैं। ऐसे लोग हिताहित विचार से शून्य होकर अन्ततः अपने को गड्ढे में डाल देते हैं ॥१४२॥

राजा कुटिल प्रपंची रानी, दुष्ट भाव सब फौज।
चैन न परजा जीवको, सब चाहैं अपनी मौज ॥१४३॥

शब्दार्थ — राजा = मन। रानी = कल्पना व कल्पित वाणी; वासना। दुष्ट-भाव = कामादि बुरी भावनायें। मौज = आनन्द; कल्याण।

भावार्थ — यह मन राजा टेढ़ा है, वासना, कल्पना व कल्पित वाणी रूपी रानी प्रपंची है। मन की सेना कामादि दुष्ट स्वभाव के हैं। इस प्रकार मन के राज्य में रहकर सब जीव कल्याण तो चाहते हैं, परन्तु उनको शांति नहीं मिलती ॥१४३॥

विशेष — मन के राज्य में रहकर कल्याण नहीं है। अतएव मन को एकाग्र करके शांति लो।

३५–कर्मवासनाओं की प्रबलता और चारों खानियों में जीवों के जन्म

चौपाई — २८

घटघट काल करे घनघोरा। मारे लुटे खाय चहुँ ओरा ॥१॥
उपजी खेती अनवनि भाँती। भाव जीव ग्रासे उतपाती ॥२॥

शब्दार्थ — घट = शरीर; अंतःकरण। काल = कल्पना; वासना। घनघोरा = घनघोर, बहुत घना; जबर्दस्त; गहरा, डरावना। खेती = फसल; कर्मवासनायें। अनवनि = अनेक। भाव = जन्म, उत्पत्ति। ग्रासे = ग्रासना, खाना; ढँकना। उतपाती = उपद्रवी वासनायें।

भावार्थ — प्रत्येक अन्तःकरण में कल्पनायें तथा वासनायें डरावने चेहरे धारण करके चारों ओर जीवों को मारती, लूटती और खाती हैं ॥१॥ भूले मनुष्यों के अन्तः-करणों में अनेकों प्रकार से कर्मवासनाओं की फसलें पैदा होती हैं। वे ही उपद्रवी कर्मवासनायें जीवों को नये-नये जन्म दे-देकर उन्हें अज्ञान में ढँके रखती हैं ॥२॥

विशेष — वासनाओं का जीवों को जड़ाध्यासी बनाना उन्हें मारना है; उनके विवेक को नष्ट करना उन्हें लूटना है तथा उन्हें जन्मादि देना उन्हें खाना है। इस प्रकार जीव ही के स्वरूपभूलवश वासनायें जीवों को मारती, लूटती और खाती हैं।

चारि खानि सोइ आपु विराजे। संमक कला सबहीको साजे ॥३॥
चारि खानि जेहि भाँति उपाई। चारि कला सो प्रगट देखाई ॥४॥

शब्दार्थ—आपु = चेतन जीव। संमक = सम्यक, पूर्णरूप से। उपाई = पैदा होना, उत्पन्न होना। चारि कला = जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय।

भावार्थ — चारों खानियों में यह जीव स्वयं विराजता है। जीव की कर्म-वासनाओं ने सभी खानियों को पूर्ण कलाओं से साज दिया है ॥३॥ जिस कारण से जीव चारों खानियों में जाकर शरीर धारण करते हैं उन चारों अवस्थाओं के कर्म-संस्कारों का भेद आगे स्पष्ट रूप से दिखलाते हैं ॥४॥

विशेष — जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय इन चारों अवस्थाओं के अभ्यास-वश जीव चारों खानियों में जाते हैं। यह ग्रन्थकर्ता का आशय है।

पिंडज तुर्याके अंश स्वरूपा। अंकुरज सो है शून्य स्वरूपा ॥५॥
श्वासा नेह उखमज उतपानी। पृथिवी सनेही अंडज खानी ॥६॥

शब्दार्थ -- तुर्या = तुरीय, ज्ञान। शून्य = सुषुप्ति। श्वासा = सूक्ष्म शरीर; स्वप्नावस्था। पृथिवी = स्थूल देह, जागृति अवस्था।

भावार्थ — ज्ञानसंस्कार के अंश से जीव पिण्डज खानि के उत्तम मनुष्य शरीर में आते हैं। सुषुप्तवत जड़ता एवं मूढ़तापूर्ण कर्म करने से जीव अंकुरज के पत्र, पुष्प, फल आदि में देहधारण करते हैं ॥५॥ स्वप्नवत अनेक चंचलवासनाओं को ग्रहण करने से जीव उष्मज खानि में जन्मधारण करते हैं। और जाग्रतवत अनेक बुद्धिपूर्ण किन्तु अज्ञानमय कर्म करने से अण्डज खानि में जीव देह धारण करते हैं ॥६॥

विशेष — जिस व्यक्ति को जड़से सर्वथा पृथक, व्याप्य-व्यापकरहित शुद्ध चेतन स्वरूप का बोध और स्थिति हो जाती है वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। परन्तु जिनका जड़भास नहीं छूटता है ऐसे ज्ञानी मुक्त न होनेसे पुनः मानव शरीर में आते हैं।

ग्रंथकर्ता ने अंकुरज सचेतन खानि नहीं मानी है। इसका स्पष्ट निर्णय मानुष-विचार प्रकरण के भोजन सुधार प्रसंग में कर आये हैं। उनका अभिप्राय यहाँ यह प्रतीत होता है कि अत्यंत मूढ़कर्मी जीव वृक्ष-वनस्पतियों में बाहर से शरीर धारणकर लेते हैं।

पिंडज आपु अधार उपावै। जड़ता शून्य स्वरूप बनावै ॥७॥
श्वासा चंचलता अधिकारी। आशा धरती अंड सँवारी ॥८॥

शब्दार्थ — आपु = स्वयं मनुष्यगुण।

भावार्थ — (उपर्युक्त बातें पुनः दोहराते हैं)— पिण्डज के उत्तम मानव शरीर में जाने के लिए मनुष्य के स्वयं के मानवीय गुणही कारण हैं। पिण्डज में पशु आदि में जाने के लिये मानवके मोटे गुण एवं पाशविकता कारण है। जड़तापूर्ण कर्मसे वृक्ष-लतादि के फूल, फल, पत्रादि में जीव देह धारण कर लेते हैं जो शून्यस्वरूप अर्थात बुद्धि से शून्य होते हैं ॥७॥ स्वप्नवत अनेक चंचलकर्म वासना वाले जीव उष्मज शरीर के अधिकारी हैं; और जाग्रतवत अधिक बुद्धिपूर्ण कर्म करने वाले तथा लोक-लोकांतर की आशा रखने वाले अण्डज खानिमें जन्म लेकर तथा पक्षी आदि बनकर आकाश में उड़ते रहते हैं ॥८॥

आशा उतपति कारण जाना। सोई अधिकार चाल विधि नाना ॥९॥
वासा चारि खानि परवाना। ताकर भेद सुनु संत सुजाना ॥१०॥

शब्दार्थ — आशा = वासना। अधिकार = पात्रता, योग्यता। चाल = कर्म। परवाना = प्रमाण; सत्य।

भावार्थ — जन्म का मुख्य हेतु जगत की आशा-वासना समझो। यही देह धरने की योग्यता है, परन्तु उसके नाना प्रकार के कर्म हैं ॥९॥ हे बुद्धिमान संतो ! चार खानियों में जीवों का निवास करने का प्रमाण पूर्वक भेद सुनो ॥१०॥

साखी—आशा पिंडज तुरीया, धरती जान विलास।
जर लागी महाशून्य में, जड़ता दीन्ह निवास ॥१४४॥

शब्दार्थ —पिंडज = पिंड से उत्पन्न; तात्पर्य में मुख्य मानव शरीर। तुरिया = तुरीय, ज्ञान। जड़ = मूल; कारण।

भावार्थ — जो सांसारिक पदार्थों के भोग-विलास में लगे हैं, जिनके मनमें यह कल्पना है कि सारे जड़-चेतन का कारण कोई महाशून्य सत्ता है, इस प्रकार जो अपनी मनोवृत्ति को जड़ता में स्थिर कर रखे हैं; उनको समझो कि वे ज्ञानी कहलाकर भी जड़-चेतन के भिन्नत्व एवं यथार्थ ज्ञान से रहित और बाहर आशा-वासना रखने वाले हैं। अतएव वे मुक्त न होकर पुनः उतम मनुष्य शरीर में आ जायेंगे, और यदि उनमें स्थूल विषयासक्ति रही तो पशु आदि में जायेंगे ॥१४४॥

अंकुरज कारण थीर पौन, पृथिवी प्रगटे आय।
जुगल शून्य जड़ रूप सो, चेतनता न लखाय ॥१४५॥

शब्दार्थ — थीर पौन = माया, जड़तत्त्व। युगल = जागृति-स्वप्न।

भावार्थ — वृक्ष-वनस्पति आदि अंकुरज का कारण केवल जड़तत्त्व है। इसी से वे पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं। वृक्षादि तो जागृति-स्वप्न दोनों अवस्थाओं से रहित होने से उनमें चेतनता नहीं दिखती। इसलिये ये निर्जीव हैं ॥१४५॥

विशेष — जहाँ जागृति तथा स्वप्न नहीं हैं वहाँ सुषुप्ति अवस्था अपने आप असिद्ध है। ये तीन अवस्थाओं का होना देहधारी जीवों का मुख्य लक्षण है। अंकुरज इन अवस्थाओं के न होने से वे निर्जीव हैं। हाँ, उनमें बाहर से कीड़ों के रूप में जीव उत्पन्न हो जाते है।

चौपाई—३०

लिंगम कारण उखमज केरा। उपजन अनल अस्थूल सबेरा ॥१॥
पवन विलास आश तेहि आगी। तेहिते खानि कछुक सो जागी ॥२॥
अमित स्वभाव विशेष बनाई। उपजी नाश बहु देर न लाई ॥३॥

शब्दार्थ — लिंगम = सूक्ष्म। सबेरा = शीघ्र। पवन = वासना। आगी = आगे, भविष्य।

भावार्थ — जीव को उष्मज खानि में जाने के लिये अनेक मलीन सूक्ष्म अभ्यास हैं। उनके स्थूल शरीर तत्वों की उष्णता से शीघ्र पैदा हो जाते हैं ॥१॥ उन कर्मी

जीवों का वासनाओं में विलास होता है तथा उन्हें पहले नर देह में रहकर भविष्य में अनेक भोगों की आशा होती है, इसलिये इस खानि में आकर कुछ विशेष चंचलता रहती है ।।२।। ये जीव वासनाओं के साथ में अपना स्वभाव विशेष भ्रमित बना रखे हैं। अतएव इनके शरीर बनने और विनष्ट होने में बहुत देर नहीं लगती ।।३।।

अंडज कारण धरती कीन्हा । पवन विलास मनोरम दीन्हा ।।४।।
उखमजते चेतन अधिकाई । अंडज श्वास विलास बनाई ।।५।।

शब्दार्थ — धरती = स्थूलशरीर, जागृति अवस्था। मनोरम = मन लुभाने-वाला, सुन्दर।

भावार्थ--अंडज खानि में जाने का कारण जागृतावस्थावत विशेष चैतन्य कर्म हैं। अधिकांश अंडज पक्षी आदि सुन्दर कोमल वायु में विहार करते रहते हैं ।।४।। उष्मज खानि से अंडज में अधिक चैतन्यता है। अंडज के शरीर भी उष्मज से भारी तथा उनमें प्राण की गति भी अधिक जोर देखी जाती है ।।५।।

उलटि पलटि कै रची उपाधा । महाकठिन उतपात वियाधा ।।६।।
चारि खानि जोइनि परवाना । लख चौरासी किया बंधाना ।।७।।

शब्दार्थ — उपाधा = उपाधि, झंझट। वियाधा = व्याधि; रोग।

भावार्थ — मनुष्य के भुलक्कड़ मन ने उलट-पलट करके अनेक झंझट, भयंकर उपद्रव तथा मानसिक-शारीरिक व्याधि बना डाले हैं ।।६।। चार खानियों का निर्धारण करके उनमें चौरासी लाख योनियों का निश्चय किया है ।।७।।

बिच बिच कला अनेक पसारा । नारि पुरुष दुइ रूप सँवारा ।।८।।
जेहि विधि चारि खानि निर्माई । प्रतिप्रति खानि सोइ चारि समाई ९।।
जुई ढील अंडज उपराजा । अंकुरज रोम सो पिंड विराजा ।१०।

शब्दार्थ — कला = कल्पना, चित्रकारी। जुई ढील = सिर के बालों में गंदगी के कारण पैदा हुआ छोटा कीड़ा।

भावार्थ — मनुष्य कुछ सत्य सूत्रों का आधार लेकर बीच-बीच में अनेक कल्पित बातें भी गढ़ रखी हैं। प्रायः प्रत्येक खानि में स्त्री-पुरुष एवं नर-मादा दो रूपों में निर्मित हैं ।।८।। जिस प्रकार चारखानियों की रचना है वह चारों खानियाँ प्रत्येक खानि में भी समाये हुए हैं ।।९।। जैसे मनुष्य का शरीर पिंडज ही है, उसके सिर में जूँ-ढील पैदा हो गये वे अंडज हैं, और शरीर में रोयें एवं बाल उत्पन्न हो गये वे अंकुरज हैं ।।१०।। तथा—

साखी—कीड़ा उखमज लादमें, अनेकन भाँति स्वरूप ।
पिंडज भाव उतपति भये, विलग विलग गुण रूप ।।१४६।।

शब्दार्थ — लाद=पेट, आँत ।

भावार्थ — पेट एवं आँत में अनेक आकार-प्रकार के कीड़े हो जाते हैं उन्हें उष्मज समझो । इस प्रकार एक पिंडज देह में ये सब उत्पन्न हुए और सबके स्वभाव तथा आकार पृथक-पृथक रहे ॥१४६॥

देखहु फंद सो काल के, प्रगट कह्यों परचार ।
रामरहस गुरुके शरण, परख शब्द टकसार ॥१४७॥

शब्दार्थ — काल=अज्ञान । परचार=स्पष्ट । टकसार=सत्संग; बीजक ।

भावार्थ — मैंने स्पष्ट करके कह दिया है, उस अज्ञान के बंधन को समझो । श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि पारखी सद्गुरु की शरण में सत्संग के द्वारा सारासार शब्दों की परख करो ॥१४७॥

३६–स्त्री और पुरुषों के चार भेद, कोकशास्त्र निरास ।

चौपाई—३१

रचि खानी बहु कला सँवारी । कला कालको भेद निवारी ॥१॥
उत्तम मध्यम लघुता कीन्हा । निकृष्ट चारि खानि में दीन्हा ॥२॥

शब्दार्थ — निवारी=निर्णय; निवारण, दूर करना, त्यागकरना । निकृष्ट=नीच ।

भावार्थ — वासनावश खानियों में अनेक विचित्रतापूर्ण रचना होती है । मुमुक्षु को चाहिये कि वह अज्ञान जनित मान्यताओं का भेद जानकर उसका त्याग करे ॥१॥ चारों खानियों में उत्तम, मध्यम, अधम तथा अधमाधम—ये चार वर्ग के प्राणी होते हैं ॥२॥

एक एकसे उत्तम होई । एक एकसो मध्यम सोई ॥३॥
पुनि लघुता एकन सो एका । एकते एक निकृष्ट विशेषा ॥४॥

शब्दार्थ — विशेषा=अधिक ।

भावार्थ — हर खानि में शरीर के गठन, सौंदर्य, स्वभाव आदि में एक से एक बढ़कर उत्तम हैं और एक से एक मध्यम भी हैं ॥३॥ फिर एक से एक अधम तथा एक से एक अधमाधम हैं ॥४॥

नारी चारि पुरुष सो चारी । चार खान सो कला पसारी ॥५॥
पदमिनि चित्रिनि शंखिनि कीन्हा । हस्तिनी चौथे रचिके दीन्हा ॥६॥

शब्दार्थ — कला=अंश, रूप ।

भावार्थ — जैसे चार खानियों में अनेक रचनायें फैली हैं वैसे मनुष्य में नारी

और पुरुष के चार-चार रूप बताया है ।।५।। पद्मिनी; चित्रनी; शंखिनी तथा हस्तिनी ये चार नारियों का भेद बताया है ।।६।।

विशेष — उपर्युक्त स्त्रियों के शरीर के अलग-अलग लक्षण तथा स्वभाव होते हैं। परन्तु मुमुक्षुओं के लिये वह अनुपयोगी समझकर उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है।

भेद चाल गुण न्यारे न्यारे। भोग भावको कलोल पसारे ।।७।।
शशा मृग घोड़ा खर राचा। चारि कला सो पुरुषमें साँचा ।।८।।

शब्दार्थ — कलोल = क्रीड़ा। राचा = रचना; प्रेम करना; फबना।

भावार्थ — उक्त चारों के अंग भेद, चाल, आचरण, गुण, स्वभाव पृथक-पृथक हैं। लोगों ने भोग की भावनायें करके क्रीड़ा-भोग का जाल फैला रखा है ।।७।। शशा, मृग, घोड़ा तथा गधा—ये चार भेद पुरुषों में सत्य मानकर लोग विषयों में आसक्त होते हैं ।।८।।

विशेष — पद्मिनी का शशा, चित्रनी का मृग, शंखिनी का घोड़ा तथा हस्तिनी का खर जोड़ा माना है।

आसन बहु विधि काम प्रसंगा। व्यापि रहा बहु रंग तरंगा ।।९।।
अनेकन्हि जतन सो कला पसारी। विद्या कोक लक्ष सो डारी ।।१०।।

शब्दार्थ — रंग तरंगा = विषय-वासना की कल्पनायें। कोक = कामशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य पं० कोकदेव का रचा कोकशास्त्र।

भावार्थ — जैसे योग के चौरासी आसन योगियों ने बनाया है वैसे भोगियों ने भोग के चौरासी आसनों की कल्पना की है। इस प्रकार काम प्रसंग के अनेक आसन तथा विषय-वासनाओं की कल्पनायें सर्वत्र व्याप्त हैं ।।९।। इस प्रकार कोकशास्त्र रच कर अनेक उपायों से कामकला का विस्तार कर रखा है और संसार के नर-नारी इसी मलीन काम-भोग में अपने मन को फँसा रखे हैं ।।१०।।

साखी—विद्या कोक परगट किये, मानुष उत्तम होय।
भोग होत बहु भाँति सो, चले अपनपौ खोय ।।१४८।।

शब्दार्थ — अपनपौ = अपनापन; आत्मीयता, अपना स्वरूप, होश, सुध-बुध।

भावार्थ — कल्याण-साधन करने योग्य उत्तम मानव शरीर पाकर भी काम-वासना की विद्या प्रकट किये। इस प्रकार मनुष्य अनेक भाँति से कामभोग में फँसकर स्वरूपज्ञान तथा अपना मानवीय सुध-बुध खो दिये ।।१४८।।

जो नहिं जानहिं कोकविधि, पशुवा ताहि बखान।
अपने उत्तम मानिके, ऐसो अधम अज्ञान ।।१४९।।

शब्दार्थ -- कोकविधि = कामवासना के अनुसार भोगों का प्रकार।

भावार्थ — जो व्यक्ति कोकशास्त्र के अनुसार मैथुनभोग करना नहीं जानता उसको सर्वोच्च विषयी लोग पशु कहते हैं, और स्वयं को उसका पंडित मानकर उत्तम बनते हैं; लोग ऐसे नीच तथा अज्ञानी हैं ॥१४९॥

विशेष — सब जीव तो स्वाभाविक विषय वासनाओं से अन्धे बने हैं ऊपर से कामशास्त्रों की रचना करके लोग जनता को और मूढ़ बना रहे हैं और आज का समय तो और भी भयंकर होता जा रहा है, कामशास्त्रों की एक बाढ़ सी आ गयी है। एक विद्वान ने अच्छा ही कहा है :--

सवैया— राग उदै जग अन्ध भयो, सहजहि सब लोगन लाज गमाई।
सीख बिना सब सीखत हैं, विषयान के सेवन की चतुराई॥
तापर और रचे रस काव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अंध असूझन की अँखियान में, झोंकत है रज राम दोहाई॥

३७—रंग, रूप तथा गढ़न आदि की सारहीनता वर्णन

चौपाई—३२

रंग रूप कोई गोरा श्यामा। गोहमन कारो चार परमाना ॥१॥
बवना नाटा और मझोला। लंबा सोई चार प्रतिकूला ॥२॥

शब्दार्थ -- श्याम = साँवला। गोहमन = गेहूँ के रंग वाला। कारो = काला। परमाना = माना है।

भावार्थ — मनुष्यों के रंग तथा रूप भी चार प्रकार माना है; वे हैं गोरा, साँवला, गेहुँवन तथा काला ॥१॥ मनुष्यों के चार प्रतिकूल आकार या कद माना है वे हैं बवना, नाटा, मझोला तथा लम्बा ॥२॥

गढ़न अस्थूल भेद सो चारी। बहु सुंदर सम शुद्ध सँवारी ॥३॥
मध्यम निर्घिन कीन्हा सोई। अनंत कला तेहि मध्य समोई ॥४॥

शब्दार्थ — गढ़न = बनावट, आकृति, गठन। सम = साधारण। निर्घिन = घृणित।

भावार्थ — नर-नारियों के शरीरों की आकृति भी चार मानी है, वे हैं बहुत सुन्दर, साधारण सुन्दर, मध्यम तथा घृणित, उनमें भी अनेक रचनाओं का भेद है ॥३, ४

देखिये सुंदर एकते एका। एक देखि एक लागत फीका ॥५॥
जेती कला काल प्रगटावे। अवस्था चारिसो जुगत देखावे ॥६॥

शब्दार्थ — जुगत = युक्ति, संभव।

भावार्थ — संसार में देखा जाय तो एक से एक रूप-रंग में सुन्दर हैं, एक को

देख कर दूसरा फीका लगता है ।।५।। मन जितनी कल्पनायें उत्पन्न करता है, सब जागृतादि चार अवस्थाओं के अध्यासों से संभव दिखते हैं ।।६।।

जहाँ जहाँ चारि कीन्ह निस्तारा । चारि अवस्था कारण सारा ।।७।।
कारण एक कारज सो अनेका । परखहु संत जीव करहु विवेका ।।८।।

शब्दार्थ — कारण सारा = मूल कारण ।

भावार्थ — नर-नारी के चार भेद, काल, संधि आदि चार वाणी, कर्म, उपासनादि चार काण्ड, चार खानि आदि जितने चार अंगोंकी माया का विस्तार है सब के मूलकारण हैं जागृतादि चार अवस्थाओं के अध्यास ।।७।। हे संतो ! एक कारण से अनेक कार्य होते हैं । अन्ततः सभी कारण-कार्य जड़ हैं, चेतन उनसे पृथक और अपना स्वरूप है, इसका विवेक करो ।।८।।

विशेष — जागृति, स्वप्न; सुषुप्ति, और तुरीय ये चार अवस्थायें हैं । इनके चार शरीर हैं स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण । उपर्युक्त चारों के चार काण्ड हैं कर्म, उपासना, योग तथा ज्ञान । मनुष्य गलत कर्म करके, गलत मान्यतावश, गलत उपासना करके, गलत योग तथा गलत ज्ञान धारण करके अनेकों अध्यास बनाकर खानी-वाणी में भटकता है । जब उसे सत्य का ज्ञान होगा, सत्य मनोनिग्रह रूप योग होगा, सत्य के प्रति उपासना होगी तथा सत्य कर्म होंगे तभी उसका कल्याण होगा ।

जस जस परखहु फीका होई । व्यापै न काल कला पुनि सोई ।।९।।
पारख पाय कला नहिं लागे । ऐसी शरण न गहहिं अभागे ।।१०।।

शब्दार्थ—कालकला = मनकी कल्पना, भ्रम, वासना । कला = कल्पना, अज्ञान ।

भावार्थ — हे मुमुक्षु ! तुम जैसे-जैसे बंधनों को परखते जाओगे बंधनदायी भोग कर्म, संगत सब नीरस होकर छूटते जायेंगे । इस प्रकार ठीक से त्याग हो जाने पर पुनः मन की कल्पनायें, भ्रम एवं वासनायें तुम्हारे मन में नहीं समायेंगी ।।९।। मन, प्राणी, पदार्थ सबकी यथार्थ परख हो जाने पर कोई बंधन जीव को पकड़ नहीं सकता । परन्तु भाग्यहीन लोग जहाँ से ऐसी स्थिति मिल सके ऐसे वैराग्य प्रवर पारखी सन्तों का आश्रय नहीं पकड़ते ।

साखी—पारख पाय फीका परे, उचटि जाय यम जाल ।
भक्तिभाव दृढ़ शरण जो, सोई सदा खुशियाल ।।१५०।।

शब्दार्थ — यमजाल = अज्ञानकृत बंधन; मनका मोह । खुशियाल = प्रसन्न; कृतार्थ ।

भावार्थ — संसार की वास्तविकता को परख लेने पर खानी-वाणी के सारे बंधन तुच्छ एवं त्याज्य हो जाते हैं और साधक का मन अज्ञानकृत बंधनों तथा माया-

मोह से विरक्त हो जाता है। यह निश्चित है कि जो व्यक्ति वैराग्यवान रहनी सम्पन्न पारखी सद्गुरु की शरण लेकर अनन्य श्रद्धा-भक्ति में निश्चल हो जायगा वह सारासार की यथार्थ परख पाकर सदा के लिये कृतार्थ हो जायेगा ॥१५०॥

कला काल सब परखले, जेते हैं सब फाँस ।
बिन पारख सोई बीज है, जन्म मरणके गाँस ॥१५१॥

शब्दार्थ — फाँस = बंधन। गाँस = फंदा, बंधन।

भावार्थ — मन की कल्पनायें और जितने बंधन हैं सब परख लो। इनकी परख-कर इनका त्याग किये बिना ये जन्म-मरण स्वरूप बंधनों के कारण हैं ॥१५१॥

चौपाई—३३

काल फंद रचा बहुताई । फंद बीच बहु फंद उपाई ॥१॥
बहिरा अंधा काना गूँगा । नकबैठा लूला औ पंगा ॥२॥

शब्दार्थ — काल = वासना। उपाई = उत्पन्न किया।

भावार्थ — कर्मवासनाओं ने जीवके लिये अनेक बंधन तथा बंधनों पर बंधन बना रखा है ॥१॥ (शरीर बंधन में पड़कर जीव दुखी हैं) कोई बहरा है, कोई अंधा, काना, गूँगा, नकबैठा, लूला तथा पंगुला है ॥२॥

विशेष — मन या वासना कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है जो जीव को बलात बंधनों में डाल सके। वस्तुतः जीव ही अपनी भूलवश भूलावेग न्याय कर्मवासनाओं को बना कर उनके वश में नाचता है।

कुबजा अष्टावक्र बनाई । आपु घीन पुनि आपु घिनाई ॥३॥
जाल प्रतिजाल न्यारे न्यारे । तामें विकल रहे जीव विचारे ॥४॥

शब्दार्थ — कुबजा = कुब्ज, जिसकी पीठ टेढ़ी हो। अष्टावक्र = सिर, हृदय; नाभि, पीठ, हाथ, पैर, घुटना और पेड़ू आठों अंगों से टेढ़ा।

भावार्थ — जीव की कर्मवासनायें ही व्यक्ति को कुब्ज, आठों अंगों से टेढ़ा बना देती हैं। यहाँ तक कि कितने व्यक्तियों का ऐसा कुद्रूप, रोगी और मलीन शरीर हो जाता है कि वे स्वयं इतने घृणित हो जाते हैं कि उन्हें अपने शरीर से ही घृणा हो जाती है ॥३॥ इस प्रकार भिन्न-भिन्न अनेक दुःखदायी बंधन हैं जिनमें सम्पूर्ण जीव रात-दिन दुखी हैं ॥४॥

उतपति पालन और संहारा । त्रिगुण जहाँ तहाँ सोई विस्तारा ॥५॥
खानि रोगके पूरण अंगा । बहुत भाँति उपजावै शोगा ॥६॥

शब्दार्थ — त्रिगुण = सत, रज और तम।

भावार्थ — सृष्टि, संरक्षण और विनाश ये यत्र-तत्र-सर्वत्र जड़प्रकृति में निहित

रज, सत तथा तमगुणके कार्य हैं ।।५।। यह सर्वांग शरीर रोगों की खान तथा भूलवश अनेक प्रकार से शोक उत्पन्न करने वाला है ।।६।।

केहु निहारे तन सुन्दरताई । केहु देखि मन बहु पछिताई ।।७।।
रहै न सुन्दरता अरु घीना । छिन छिन औरहि औरे कीन्हा ।।८।।

शब्दार्थ — निहारे = देखते हैं । घीना = घृणित, गंदा; कुरूप ।

भावार्थ — कोई तो अपने माने हुए शरीर की सुन्दरता को बारम्बार देखकर प्रसन्नता में फूलता रहता है, और कोई अपनी कुरूपता को देखकर मनमें बहुत पछतावा करता है ।।७।। अन्ततः न तो सुन्दरता रह जाती है और न कुरूपता; क्योंकि ये सब दृश्य पदार्थ क्षण-क्षण बदलकर दूसरे रूप में हो जाने वाले हैं ।।८।।

धूरि मिलावै राखै नहिं चीन्हा । ताहि मगन पछतावन दीन्हा ।। ९ ।।
घात परस्पर जोइन सोई । एकन्हि एक जहाँ तहाँ खोई ।।१०।।
जीवन हान करै जीव केरा । परखहु बाँचहु हंस सबेरा ।।११।।

शब्दार्थ — चीन्हा = चिन्ह । जोइनि = योनि, खानि । सबेरा = शीघ्र ।

भावार्थ — काल तो एक दिन शरीर को धूल में मिला देगा और इसका चिन्ह भी नहीं रह जायगा । ऐसे मिथ्या शरीर को लेकर हर्ष और शोक करना कितनी भूल है ।।९।। सभी खानियों के प्राणियों में अपने-अपने स्वार्थ के लिये एक-दूसरे से छल करना और एक दूसरे को मिटाने पर तुल जाना आदत है ।।१०।। इस प्रकार मनुष्य का अपना ही अज्ञान उसके जीवनधन विवेक-विचार का नाश करता है । अतएव हे विवेकियो ! उसको परख कर उसके बंधनों से शीघ्र मुक्ति लो ।।११ ।

साखी—प्रभुके शरण सहाय बिनु, कैसे होय उबार ।
अधम काल ग्रासै सबै, अपनी जाल पसार ।।१५२।।

शब्दार्थ — अधमकाल = नीच विषयीमन ।

भावार्थ — विवेकी सद्गुरु की शरण और सहायता के बिना जीव का उद्धार कैसे हो ? नीच विषयीमन अपना भवबंधन फैला कर जीव को उसमें ग्रसित करता एवं बाँधता है ।।१५२।।

विशेष — यह स्थल-स्थल पर बताया गया है कि मन या वासना कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है । वह मनुष्य की केवल गलत आदत है जिसको मनुष्य ने स्वयं बनाकर पुनः उसी के वश में हो गया है । उसे चाहिये कि वह गलत स्वभाव को जीते ।

और अनेकन जो कला, कीन्हा काल परचंड ।
ग्रासै जीव बहु भाँति सो, थूल अस्थूल ब्रम्हांड ।।१५३।।

शब्दार्थ — कला = कल्पना । काल = मन । परचंड = प्रचंड; तीव्र; भयंकर । ब्रह्मांड = ब्रह्माण्ड, संसार ।

भावार्थ — इस भयंकर मन ने अन्य भी अनेक कल्पनायें कर रखी हैं । संसार के उन्हीं सूक्ष्म-स्थूल बंधनों में जीव अनेक प्रकार से बँधे हैं ॥१५३॥

३८—भूत-प्रेत योनियों का खण्डन

चौपाई—३४

भूत प्रेत जोइन विस्तारी । थूल अस्थूल मध्य तेहि डारी ॥१॥
घोर कष्ट सो जोइन कीन्हा । दुइके संग में वासा दीन्हा ॥२॥

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म । अस्थूल = स्थूल । दुइ = दो स्थूल-सूक्ष्म ।

भावार्थ — लोगों ने मन के भ्रम-वश भूत और प्रेत की योनियों की कल्पनाओं का भी खूब विस्तार कर रखा है । उन्हें बताया है कि वे स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों से प्रकट होकर क्रियायें करते हैं ॥१॥ प्रेत-योनि के विषय में ऐसी कल्पना कर रखी है कि उसमें घोर कष्ट होता है; और इन भुलक्कड़ गुरुओं ने भूत-प्रेतों का निवास स्थूल-सूक्ष्म दोनों शरीरों के साथ में बताया है ॥२॥

विशेष — भ्रांत लोग कहते हैं कि भूत-प्रेतों की योनि होती है । वे कभी प्रकट होकर स्थूल शरीर से क्रिया करते हैं और कभी अदृश्य होकर सूक्ष्म शरीर से क्रिया करते हैं । वे बहुत कष्ट पाते हैं; क्योंकि उनके पेट कुआँ के बराबर तथा मुख सूई के छेद बराबर होते हैं । वे सब चीज खा-पी भी नहीं सकते । सब पर देवताओं की रखवारी रहती है ।

पाँच तीन झीना औ स्थूला । अष्टवायु सो जोइन मूला ॥३॥
आपु काल समय बनि आवै । आपुहि बीचै माँह नशावै ॥४॥

शब्दार्थ — झीना = सूक्ष्म । काल = कष्टदायी भयंकर रूप ।

भावार्थ — (कहते हैं) देवदत्त, धनंजय, नाग, कूर्म और कृकल ये पाँच तथा इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा ये तीन सूक्ष्म वायुओं का तथा प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान ये पाँच तथा कफ, पित्त, वात ये तीन स्थूल वायुओं का—ये पिण्ड ब्रह्मांड के आठ वायु ही प्रेतयोनि के कारण हैं । अर्थात प्रेत का स्वरूप प्रायः सूक्ष्म वायु रूप रहता है ॥३॥ (कहते हैं) वह समय से स्वयं महाभयंकर काल का रूप धारण करके लोगों पर टूट पड़ता है, और स्वयं बीच ही में लुप्त हो जाता है ॥४॥

मृत्यु अकाल विनाशै देही । प्रेत जोइनमें राखहि तेही ॥५॥
भूत प्रेत आशा उपजावै । जोइन भूत ताहि भरमावै ॥६॥

शब्दार्थ — अकाल = असमय, जीवन का समय पूरा हुए बिना। आशा = वासना, संस्कार।

भावार्थ — (कहते हैं) जीवन के समय पूरा हुये बिना जल में डूबकर, विष खाकर, पेड़-पहाड़ से गिरकर कोई मर गया तो वह प्रेतयोनि में जाता है ।।५।। इस प्रकार भ्रमिक लोग भोले लोगों के मन में भूत-प्रेत का संस्कार उत्पन्न कर देते हैं, फिर यह प्रेतयोनि का भ्रम उन मनुष्यों को समय-समय पर भटकाता रहता है ।।६।।

विशेष — अकाल मृत्यु कहना गलत है। काल आने पर ही प्राणी की मृत्यु होती है। जहाँ बहुत से प्राणियों का एक-ही बार मृत्यु होना देखा जाता है वहाँ उन प्राणियों के वैसेहि कर्मभोग रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रेतयोनि एक कल्पना है। जीव बिना स्थूल शरीर धारण किये कोई स्थूल क्रिया नहीं कर सकता। यदि वह क्षणमात्र भैंसा, भालू आदि का शरीर बना लिया तो क्षण ही में उसका शरीर कहाँ चला गया? अतएव प्रेतयोनि एक भ्रम है।

प्रेत उसे कहते हैं जो जीव शरीर को छोड़ कर चला गया है। कुछ समय के बाद वही भूत हो गया। भूत कहते हैं बीते हुए समयको। भूतका अर्थ जड़तत्त्व भी है।

मिथ्या भूतों का भ्रम लोगों द्वारा दृढ़ाने से बच्चों के मनमें संस्कार बन जाता है और वह संस्कार समय-समय पर कष्ट देता रहता है। अतएव इस भ्रमका त्याग करना आवश्यक है।

सो जोइनिके हेतु प्रपंचू। बहुत कलेश जीवहिने संचू ।।७।।
तेहि जोइन सो कला प्रकाशा। विनशै देह आशा सोइ बासा ।।८।।

शब्दार्थ—प्रपंचू = प्रपंच, छल, धोखा। संचू = संचय, संग्रह। कला = कल्पना।

भावार्थ — उस प्रेतयोनि की सिद्धि के लिये सोखा, ओझा लोग नाना छल-धोखा करते हैं। इस प्रकार जीव ने अज्ञानकृत अनेक दुःखों का संग्रह कर लिया है ।।७।। लोगों ने भूत-प्रेतों की कल्पना करके उसका अभ्यास अपने हृदय में दृढ़ कर रखा है। इसलिये वर्तमान शरीर समाप्त होने पर इन जैसी मलीन वासनाओं के कारण जीव पुनः कृमि-कीटादि खानियों में निवास पाकर दुःख भोगेंगे ।।८।।

विशेष — "विनशै देह आशा सोइ बासा।" का तात्पर्य यह नहीं लगाना चाहिये कि जो लोग भूत-प्रेत की मान्यता रखते हैं वे शरीर छोड़ने पर भूतयोनियों में निवास पायेंगे। क्योंकि ग्रंथकर्ता यहाँ भूत-प्रेत की मान्यता को गलत सिद्ध किये हैं तब उस कल्पित योनिमें जाने की बात कैसे कहेंगे। उनका तात्पर्य यह है कि ऐसे भ्रमिक लोग भ्रमवासना में पड़कर नीच योनियों में दुःख पायेंगे।

साबर मंत्र यंत्र उपराजा। प्रेत लक्ष ताहि बिच साजा ।। ९ ।।
तामस गुण सो शिव अधिकारी। विद्या धनी पुरुष औ नारी ।।१०।।

शब्दार्थ — **साबर**=एक मंत्र जो शिवका बनाया मानते हैं। **यंत्र**=अंक या अक्षरों से युक्त विशेष आकार या कोष्ठ जिनमें देवताओं का निवास मानते हैं। **लच्छ**=लक्ष्य, उद्देश्य। **साजा**=सजाया।

भावार्थ — मनुष्य ने कल्पना करके साबरमंत्र तथा यंत्र आदि को प्रकट किया और इन्हीं कल्पित मान्यताओं की वाणियों में भूत-प्रेत को सिद्ध करने का उद्देश्य सफल किया और उनमें भूत-प्रेत की कल्पनायें सजा-सँवार करके रख दीं ॥९॥ (कहते हैं) शिवजी तामसगुण युक्त भूत-प्रेतों के अधिष्ठाता हैं। वे स्त्री और पुरुष अर्थात पार्वती और महादेव दोनों इस विद्या के धनी हैं ॥१०॥

साखी—बहु प्रकारके रूप धरि, काल करे घनघोर।
सोई ठाकुर सब जीवके, जे स्वतः कुटिलता चोर ॥१५४॥

शब्दार्थ — **काल**=कल्पनायें। **घनघोर**=डरावना। **ठाकुर**=स्वामी, तारक।

भावार्थ — जीव की कल्पनायें अनेक डरावनी सूरतें धारण करके जीव को ही छलती हैं। और वे मनुष्यों को भटकाने वाले भ्रमिक लोग ही समाज या देश के स्वामी तथा तारक बनते हैं जो स्वयं क्रूर और मनुष्यों के विवेक धन को चुरानेवाले हैं।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी – १८१

साहेब साहेब सब कहैं, मोहि अंदेशा और।
साहेब से परिचय नहीं, बैठोगे केहि ठौर ॥१५५॥

शब्दार्थ — **साहेब**=स्वामी, सद्गुरु। **अंदेशा**=आशंका; चिंता; हानि; दुविधा। **ठौर**=स्थान।

भावार्थ — स्वामी-स्वामी तथा सद्गुरु-सद्गुरु सब कहते हैं; परन्तु मुझे तो इसमें कुछ अन्य ही आशंका व खतरा दिखता है; क्योंकि इन लोगों को तो सच्चे सद्गुरु से परिचय है नहीं, फिर ये किस भूमिका में स्थित होंगे ? ॥१५५॥

विशेष — संसार में सद्गुरु कहलाने वाले बड़े-बड़े लोग हैं जिनकी विद्या, मान-महात्म्य एवं पूज्यता का थाह नहीं है; परन्तु वे साधारण भूत-प्रेत तथा देवी-देवता तक की कल्पना में भूले हैं, फिर सूक्ष्म भ्रांतियों में तो हैं ही। अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह ऐसे सद्गुरु की खोज करे जो सर्वतोभात्या निर्भ्रान्त एवं सच्चा पारखी हो।

३९– विश्वउत्पत्ति के विषय में कल्पनाओं का दिग्दर्शन

चौपाई—३५

और सुनहु ब्रह्मांड पसारा। सूक्ष्म पिंड सो है विस्तारा ॥१॥
जेहि विधि लिंगम पिंड सँवारा। सम सोई कला ब्रह्मांड प्रचारा ॥२॥

शब्दार्थ — ब्रह्मांड = विश्व, संसार। लिंगम = लिंग, सूक्ष्म।

भावार्थ — पिण्डउत्पत्ति तथा उसके अनेक भेदों का विवरण पीछे दे चुके हैं, अब आगे संसार के विस्तार के विषय में सुनो। जैसे जीव के सूक्ष्म संस्कारों से उनके स्थूल शरीर बनते हैं, (कहते हैं) वैसे ब्रह्म की सूक्ष्म इच्छा से विश्व की रचना होती है ॥१॥ जिस प्रकार सूक्ष्मवासनाओं ने स्थूल शरीर बना दिया, वैसे विश्व की रचना में ब्रह्म की इच्छा कारण जानिये ॥२॥

विशेष — ब्रह्मवादी तथा ईश्वरवादियों ने संसार की रचना में जो मान्यता रखी है उसी का यहाँ दिग्दर्शन कराया जा रहा है। वैसे उत्तरपक्ष में जगत अनादि और अनन्त माना जाता है। जिसमें सृष्टि उत्पत्ति की कल्पना ही नहीं की जाती।

पिंड ब्रह्मांड भाव नहिं दूजा। अंडरूप सबै होय उपजा ॥३॥
गोल अकार चक्र है जोई। सर्व रूप सोई परगट होई ॥४॥

शब्दार्थ — भाव = जन्म, उत्पत्ति। गोल अकार = मनुस्मृति के अनुसार गोलाकार अण्डा से ब्रह्मा तथा विश्व की उत्पत्ति।

भावार्थ — (कहते हैं) शरीर और संसार की उत्पत्ति दो प्रकार से नहीं है। एक अण्डे से ही सबकी उत्पत्ति हुई है ॥३॥ पहले ब्रह्म के वीर्य से जो एक गोल आकार का चक्र उत्पन्न हुआ उसी से जड़-चेतन सर्व रूपों की उत्पत्ति हुई ॥४॥

विशेष — गुरुबोध प्रकरण के २४वें दोहे के बाद दूसरी चौकड़ी की बारहवीं चौपाई में मनुस्मृति का वह उदाहरण दिया गया है जिसमें अंड से जगत की उत्पत्ति बताई गयी है।

सोइ अंड ब्रह्मांड कहावै। सर्व बीज सोई रूप उपजावै ॥५॥
पृथक पृथक ब्रह्मांड नियारा। गनत गनत कोइ पावै न पारा ॥६॥

शब्दार्थ — अंड = सृष्टि के आदिमें माना हुआ अण्डा। उपावै = उत्पन्न किया।

भावार्थ — वह ब्रह्म की सत्ता से बना अण्डा ही फूटकर विश्व कहलाया। वह ब्रह्मवीर्य स्वरूप अण्ड ही विविधतापूर्ण सर्वरूपों को उत्पन्न किया ॥५॥ पृथक-पृथक अनेक ब्रह्मांड हैं, जिनकी गणना करके कोई अन्त नहीं पा सकता ॥६॥

ओर छोर महाशून्य है जाके। खोजि बेअंत बतावहिं ताके ॥७॥
ब्रह्मांड रचना विस्तारा। प्रगट पिंड ताके आधारा ॥८॥

शब्दार्थ — ओर छोर = आदि अन्त। जाके = ब्रह्मके। ब्रह्मांड = संसार। पिंड = चार खानियों की देहें।

भावार्थ — जो महाशून्य ब्रह्म है उसके आदि-अन्त का पता लगाने के लिए अनेक लोग चले, परन्तु खोज कर लेने के बाद उसको बेअन्त कह कर रह गये ॥७॥

पहले विस्तार पूर्वक ब्रह्मांड की रचना हुई, फिर उसी ब्रह्मांड एवं जगत में चारों खानियों के शरीरों की उत्पत्ति हुई ॥८॥

चिदाकाश सोई पुरुष कहाई। ताके मध्य शून्य निर्माई ।९॥
शून्य मध्य श्वासा उपराजा। श्वासा बीच धरतिको साजा ॥१०॥

शब्दार्थ -- चिदाकाश = चेतनाकाश, आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त शून्य चेतन। श्वासा = प्राण, वायु। साजा = तैयार किया।

भावार्थ -- जो आकाश के समान शून्य और सर्वत्र व्याप्त चेतन ब्रह्म है वही पुरुष कहलाता है। उसी के बीच में आकाश की उत्पत्ति हुई ॥९॥ और आकाश में वायु उत्पन्न हुआ तथा वायुमण्डल के बीच में पृथ्वी का निर्माण हुआ ॥१०॥

विशेष — उपनिषदों में भिन्न-भिन्न प्रकार से सृष्टि उत्पत्ति मानी है। कहीं ब्रह्मसे कहीं जल से तथा कहीं तेज से इत्यादि। इसी प्रकार उपर्युक्त मान्यता भी एक अपना स्थान रखती है। वस्तुतः ये सभी मान्यतायें भ्रम हैं।

चिदाकाश सो तुरिया झाँईं। सुषुप्ति सोई शून्य परिछाँईं ॥११॥
झाँईं श्वासा सपन कहावै। छाया पृथिवी जागृत लावै ॥१२॥

शब्दार्थ — तुरिया = ब्रह्मज्ञान की साक्षी अवस्था। झाँईं = प्रतिबिम्ब, धोखा असावधानी, भास।

भावार्थ -- जो आकाश के समान व्यापक चेतन माना है वह वस्तुतः कुछ नहीं केवल तुरीयावस्था का भास एवं मनःप्रतिबिम्ब व कल्पना है। जो ब्रह्म से शून्य-स्वरूप आकाश की उत्पत्ति मानी है उसे सुषुप्ति अवस्था का अध्यासरूप परिछाईं समझिये ॥११॥ जो आकाश से वायु की उत्पत्ति मानी है वह स्वप्नावस्था का मनः प्रतिबिम्ब व अध्यास है, तथा जो वायु से पृथ्वी की उत्पत्ति कही है वह जागृतावस्था की मनःछाया है ॥१२॥

विशेष — इस ग्रन्थ में जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय मनुष्य की इन चार अवस्थाओं के अध्यासों से सभी कल्पनाओं की उत्पत्ति बताई गयी है। जागृतावस्था में कर्म होते हैं, स्वप्नावस्था का तात्पर्य है स्वप्नवत कल्पित ईश्वरादि की उपासना करना; सुषुप्ति अवस्था का तात्पर्य है सुषुप्तवत जड़ता रूप योग दशा को प्राप्त करना तथा तुरीय से तात्पर्य है सर्वत्र व्यापक ब्रह्म भावना की परिपक्वता। उपर्युक्त चारों अवस्थाओं के अध्यास रूप भ्रमपूर्ण कर्म, उपासना, ज्ञान तथा योग के घेरे में सारी कल्पनायें उत्पन्न हुई हैं। ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु तथा वायु से पृथ्वी की उत्पत्ति भी मानों चारों अवस्थाओं के अध्यासजनित कल्पनायें हैं।

साखी—ब्रह्मांड विस्तार सो, पिंड अंश आधार।
गाँस भास सोई चारिके, अवस्था लखहु विचार ॥१५६॥

शब्दार्थ — ब्रह्मांड = संसार । गाँस = फंदा; आसक्ति । भास = सुखप्रतीत; चमक, मोह ।

भावार्थ — चारखानियों के शरीर तथा नाना कार्य पदार्थ विस्तृत ब्रह्मांड के अंश हैं तथा उसी के आधार में रहते हैं । विचार करके देखो, जागृतादि चार अवस्थाओं में वर्तमान करते हुए उन्हीं अपने-पराये शरीरों तथा पंचविषय कार्य पदार्थों की आसक्ति तथा मोह में पड़े सब जीव बद्ध हैं ॥१५६॥

विशेष — विस्तृत जगत अनादि है । सभी कार्य पदार्थ भी उन्हीं में रहकर प्रवाह रूप अनादि हैं । जीव जागृतादि अवस्थाओं में विषयों का व्यवहार करते हुए विषयासक्त रहते हैं ।

तुर्यातीत एकता जबै, भेद बुद्धि नहिं चार ।
पँचयें आपै आप सो, असै जीव परचार ॥१५७॥

शब्दार्थ — तुर्यातीत = विज्ञानदशा, विधि-निषेध से परे । पँचयें=विज्ञानदशा ।

भावार्थ — (कहते हैं) जब ज्ञानी जागृतादि चारो अवस्थाओं तथा कर्मादि चारो काण्डों में भेदबुद्धि न रखकर तुरीयातीत; जड़-चेतन की अभिन्नावस्था को प्राप्त कर लेता है, तब वह अपने आप पंचम विज्ञान अवस्था में पहुँच जाता है । लोग इस भ्रममान्यता का प्रचार करके मनुष्यों को भ्रम में डालते हैं ॥१५७॥

विशेष — जड़-चेतन सब कुछ को एक मानना वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता । नाना चेतन जड़ से सर्वथा पृथक हैं ।

चौपाई—३६

महाकारण सो आपुहि राई । दोय स्वरूप तहाँ प्रगटाई ॥१॥
इच्छा शक्ति सो माया छाजै । पुरुष ब्रह्म आपु होय गाजै ॥२॥

शब्दार्थ — राई = राजा, ब्रह्म । छाजै = शोभना, अच्छा लगना । गाजै = गर्जना, आधिपत्य रखना ।

भावार्थ — (कहते हैं) स्वयं ब्रह्म संसार का महान कारण है । जब वह संसार बनाना चाहता है तब दो स्वरूप प्रकट करता है ॥१॥ एक स्वरूप है जगत बनाने की उसकी इच्छा शक्ति; जो माया के रूप में होकर गोरे शरीर में काले तिल के समान उसमें शोभा देती है । उसका दूसरा स्वरूप है, सबलब्रह्म या पुरुषब्रह्म जो 'एकोऽहं बहुस्याम' की गर्जना करते हुए अपने आप अनन्त ब्रह्माण्ड पर आधिपत्य करता है ॥२॥

दुतिया सोई शून्य विस्तारा । तासु नाम कारण परचारा ॥३॥
करत मिलाप पुरुष औ नारी । कारण अनेक रूप विस्तारी ॥४॥

शब्दार्थ — शून्य = ब्रह्म । कारण = कारण ब्रह्म । पुरुष = सबल या कारण ब्रह्म । नारी = माया, इच्छा ।

भावार्थ — जो दूसरी माया है वह शून्य ब्रह्म की इच्छा का विस्तार है । उसी के सम्पर्क में पड़ कर वह कारण या सबल ब्रह्म के नाम से विख्यात हुआ ॥३॥ माया और ब्रह्म के मिलते ही ये दोनों कारण अनेकत्वपूर्ण जगत की रचना कर दिये ॥४॥

बीज अनेक पुरुषके अंशा । उपजी दुतिया खेत भौ वंशा ॥५॥
पाँच तत्त्वके कारण कीन्हा । पाँच श्वास उपजाई लीन्हा ॥६॥

शब्दार्थ — पुरुष = ब्रह्म । खेत = माया । बंशा = बंश, सृष्टि ।

भावार्थ — ब्रह्म के अंश से अनेक बीज उत्पन्न हुए और वे दूसरे कारण माया रूपी खेत में पड़कर जड़-चेतनमय सृष्टि की उत्पत्ति हुई ॥५॥ अनेक कार्य-पदार्थों के कारण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश को बनाया; और शरीरों में प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान ये पाँच प्राण उत्पन्न कर दिये ॥६॥

मिलत आकर्षण अनल प्रकाशी । रचना हेतु बीज जल राशी ॥७॥
प्रेरिक बल सब कारण धाई । दुतिया खेतमें रहा समाई ॥८॥

शब्दार्थ — प्रेरिक = प्रेरक । दुतिया = माया ।

भावार्थ — माया और ब्रह्म के परस्पर मिलने से अग्नि की उत्पत्ति हुई और समस्त बीजों की उपज के लिये पानी की खूब वर्षा हुई ॥७॥ ब्रह्म की प्रेरणा की शक्ति पाकर सृष्टि उत्पत्ति के सभी कारण माया रूपी क्षेत्र में एकत्र हो गये ॥८॥

सोई कारण वायू केरे । तीनों पुत्र रायके चेरे ॥ ९ ॥
आपुहि कारण शून्य स्वभाऊ । पृथिवी थीर पवनके दाऊ ॥१०॥

शब्दार्थ — सोई = वही, ब्रह्म । आपुहि = ब्रह्म । चेरे = दास, अंश । थीर पवन = माया । दाऊ = दाँव, सुयोग ।

भावार्थ — आकाशवत ब्रह्म ही प्रथम वायु का कारण बना, फिर अग्नि, जल, पृथ्वी ये तीन पुत्र वायु से क्रमशः प्रकट हुए जो ब्रह्म के अंश हैं ॥९॥ स्वयं ब्रह्म सबका कारण और शून्य स्वभाव वाला निर्गुण है और सब बीजों को धारण करने वाली पृथ्वीवत माया है जिसके सुयोग से सृष्टि होती है ॥१०॥

विशेष — कुछ सृष्टिवादी मानते हैं कि ब्रह्म से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी क्रमशः उत्पन्न होते हैं । ब्रह्म निर्गुण तथा माया गुणवती है, और दोनों के सम्पर्क से जगत बनता है ।

साखी—कारण शून्य है श्वासके, महाकारण सो आप ।
अनल आकर्षण बीज जल, प्रेरिक वायू थाप ॥१५८॥

शब्दार्थ—शून्य = आकाश। श्वास = वायु। आप = ब्रह्म। थाप = स्थापन।

भावार्थ — वायु का कारण आकाश है और आकाशादि सबका महाकारण स्वयं ब्रह्म है। सृष्टि के पहले प्रेरक वायु तथा अग्नि का परस्पर आकर्षण हुआ और सृष्टिजल की वृष्टि हुई फिर उसमें सभी बीजों का स्थापन हुआ ॥१५८॥

विशेष — सृष्टिवादी कहते हैं कि पहले ऐसे जलकी वृष्टि हुई जिसमें सृष्टि हो सके। उस जलका प्रसिद्ध नाम 'कारणवारि' है, जिसे हम सृष्टिजल कह सकते हैं।

कारण पृथिवी खेत सो, थीर पवन विख्यात।
पाँच तत्त्व कारज भये, परगट बड़ उतपात ॥१५९॥

शब्दार्थ — खेत = क्षेत्र। थीरपवन = माया। उतपात = उपद्रव।

भावार्थ -- जगत का मूल कारण ब्रह्म तो है ही परन्तु विशेष व्यावहारिक रूपसे पृथ्वी एवं क्षेत्रवत माया है जो थीरपवन के नामसे प्रसिद्ध है इस ब्रह्म तथा मायाके ही पाँच तत्त्व कार्य हैं—इस प्रकार मतवादियों ने कल्पना का बहुत बड़ा उपद्रव पैदा कर लिया है ॥१५९॥

विशेष — बीज सूक्ष्म तथा खेत स्थूल होता है। ब्रह्म बीज स्वरूप तथा माया खेत स्वरूप है। इस ग्रंथ में माया का एक नाम थीर पवन भी है। कहते हैं पाँचतत्त्व और सारा विस्तार ब्रह्म और मायाके कार्य हैं।

वस्तुतः ये सब कुछ एक महाकल्पना है। ब्रह्म और माया ये दोनों कल्पित हैं। आकाश शून्य है। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु अनादि गुण-धर्म युक्त जड़तत्त्व हैं। इनका अन्य कोई कारण नहीं। चेतन अनेक हैं। वे अनादि से भूलवश जन्म-मरणके प्रवाह में वह रहे हैं। वासना त्यागसे व्यक्ति अपने स्वरूपमें स्थित होकर मुक्त हो जाता है।

४०—ब्रह्माण्ड की काल्पनिक उत्पत्ति, चंद्र-सूर्य ग्रहण तथा नौ नाड़ी और नौ ग्रह आदि का वर्णन

चौपाई—३७

पाँच कला जो कारण साजा। पाँच श्वास लिंगम उपराजा ॥१॥
आपुहि शून्य निरंजन धाये। पृथिवी महाशक्ति निरमाये ॥२॥

शब्दार्थ — कला = रचना। लिंगम = सूक्ष्म। निरंजन = ब्रह्म।

भावार्थ — (कहते हैं) जिस कारण ब्रह्म ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश की रचना करके उन्हें व्यवस्थित किया उसी ने ब्रह्मांड में सूक्ष्म पाँचवायु—थीर, चंचल, आकर्षक, प्रेरक तथा शोषक को उत्पन्न किया; अथवा उसीने शरीर में

सूक्ष्म पंचवायु—कृकल, धनंजय, देवदत्त, नाग तथा कूर्म को रचा ॥१॥ स्वयं ब्रह्म शून्यरूप आकाश बन गया; और महाशक्ति मायाने पृथ्वी को निर्मित किया ॥२॥

प्रेरिक बल अंशी सो बाई । अनल अकर्षण सो उपजाई ॥३॥
उतपति कारज रचना चीन्हा । एकन एक आश सो दीन्हा ॥४॥

शब्दार्थ — अंशी = जिसके कई अंश या अवयव हों; सामर्थ्यवान । बाई = वायु । चीन्हा = समझो ।

भावार्थ — (कहते हैं) उस सामर्थ्यवान वायु की प्रेरक शक्ति ने अपने आकर्षण एवं संवर्षण से अग्नि को उत्पन्न की ॥१॥ जो कार्य रूप में उत्पन्न हो वह सब रचना या सृष्ट है । (संसार के भूले लोगोंने प्राकृतिकसृष्टि को स्वाभाविक न जान-कर) इनके मूल में एक न एक देवी-देवता या ईश्वर-ब्रह्मकी कल्पना कर रखी है । और उसीसे कल्याण प्राप्ति की भी आशा जीवों को देते हैं ॥४॥

रचना नेह जलसो कीन्हा । उपजै खेत सब कारण चीन्हा ॥५॥
कारज प्रगट भये विस्तारा । पाँचहु चाल न्यारा न्यारा ॥६॥

शब्दार्थ — देह = स्नेह; चिकनाहट; पिण्ड बाँधने की शक्ति । खेत = क्षेत्र; माया । चीन्हा = समझ; विचार ।

भावार्थ — स्नेहमय जल से पिंड पदार्थों की रचना की । इस प्रकार उनके विचार से कारणब्रह्म और मायासे सबकी उत्पत्ति हुई ॥५॥ संसार में विस्तृत रूपसे कार्यपदार्थ प्रकट हुये । पाँच तत्वों के स्वभाव भी पृथक-पृथक प्रकट हुए ॥६॥

तीन पुत्र दोइ पितु अरु माता । बैर विरोध परस्पर घाता ॥७॥
पुरुष अंश सो तीन उपाये । तीन अंश माया प्रगटाये ॥८॥

शब्दार्थ — तीन पुत्र = अग्नि, जल, पृथ्वी । माता = थीरपवन, वायु । पितु = आकाश ।

भावार्थ — पिता आकाश, माता वायु तथा पुत्र अग्नि, जल तथा पृथ्वी—इन पाँचों में सदैव वैर-विरोध रहता है और एक-दूसरे को दवाने के लिये अपना प्रभाव डालते हैं ॥७॥ (योगमार्ग को लेकर) ब्रह्म के अंश से रेचक, पूरक तथा कुम्भक ये तीन उत्पन्न हुए और माया के अश से इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा ये तीन प्रकट हुईं ।

विशेष — आकाश ब्रह्म रूप है इसलिये वह सबका पिता है । पीछे वायु उत्पन्न हुई वह ब्रह्म की अर्धाङ्गिनी बनी । उसके पश्चात वायु से अग्नि, जल तथा पृथ्वी उत्पन्न हुए अतएव ये तीन पुत्र हुए । यह सब एक कल्पना है । वस्तुतः ये सभी तत्व उत्पत्ति रहित नित्य हैं ।

योग मार्ग को लेकर कुछ लोगों ने यह कल्पना कर रखी है कि रेचक, पूरक, कुंभक ब्रह्म के अंश से तथा इडा, पिंगला और सुषुम्णा मायाके अंश से प्रकट हैं ।

अंशी पुरुष तीनि सो छौना । माया कला तीन घर पौना ॥ ९ ॥
तीनहुँ घर सो नाड़ि बनाई । चंद्र सूर्य तेहि मध्य समाई ॥१०॥

शब्दार्थ — छौना = बच्चे; पुत्र । पौना = पवन, वायु । चंद्र = इडा, नाक के बायें छिद्र का वायु । सूर्य = पिंगला, नाक के दायें छिद्र का वायु ।

भावार्थ — सामर्थ्यवान ब्रह्म के तीन पुत्र रेचकादि हैं, और माया की रचना में वायु के तीन स्थान इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा हैं ॥९॥ नाक के दायें-बायें छिद्र तथा दोनों में एक साथ चलने वाली इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा को स्थिर किया । अंततः इडा तथा पिंगला ये दोनों सुषुम्णा में लीन हो जाती हैं ॥१०॥

सुषमना तहाँ राहु संचारी । अज हरि हर सोई बपु धारी ॥११॥
तीनों तीन कला विस्तारी । समय तीन सोई अनुहारी ॥१२॥

शब्दार्थ — राहु = ग्रसने वाला । संचारी = गमन करना ।

भावार्थ — वहाँ सुषुम्णा राहुरूप होकर इडा-पिंगलारूप चंद्र-सूर्य को ग्रहण करने के लिये गमन करती है । इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा ये तीनों क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के रूप धारण करके रहती हैं ॥११॥ ब्रह्मादि तीनों देवताओं के रज, सत, तम तीन गुण फैलते हैं, और उसी के अनुसार क्रमशः वर्षा, शिशिर तथा गर्मी के तीन समय होते हैं ॥१२॥

दक्षिणायन उत्तरायन जोई । इंगला पिंगला विलसै सोई ॥१३॥
कबहुँ सूर्य घर चंदा जाही । चंदा कबहुँ सूर्य घर माही ॥१४॥

शब्दार्थ — दक्षिणायन = सूर्य का विषवत रेखा की ओर से मकर रेखा की ओर गमन, छह महीनों का समय जिसमें सूर्य विषवत रेखा से दक्षिण की ओर रहता है, दक्षिण की ओर गया हुआ । उत्तरायन = उत्तरायण; सूर्य का मकर रेखा से उत्तर कर्करेखा की ओर जाना; वह छह महीने का काल जब सूर्य की गति उत्तर की ओर रहती है । सूर्य = पिंगला । चंद्र = इडा ।

भावार्थ — जैसे सूर्य छह महीने दक्षिणायन रहता है तथा छह महीने उत्तरायण वैसे छह घंटे इडा नाड़ी चलती है तथा छह घंटे पिंगला ॥१३॥ इसी प्रकार जैसे चन्द्रमा कभी सूर्य की ओर तथा सूर्य चन्द्रमा की ओर चला जाता है वैसे कभी इडा पिंगला की ओर तथा पिंगला इडा की ओर चली जाती है । (परन्तु पुनः अपने-अपने स्थान पर आ जाती है) ॥१४॥

साखी—जस जस चंदा सूर्य घर, तस तस होवै छीन ।
जस जस बल घर आपना, बढ़ै कला होय पीन ॥१६०॥

शब्दार्थ — पीन = स्थूल, मोटा, परिपुष्ट, वृहत, भारी, भरा-पूरा ।

भावार्थ — चन्द्रमा जैसे-जैसे घूमते-घूमते सूर्य की ओर जाता है वैसे-वैसे उसका प्रकाश क्षीण हो जाता है और जैसे-जैसे अपनी ओर लौट आता है वैसे-वैसे अपनी राशि की शक्ति पाकर उसकी कलायें बढ़ने लगती हैं और वह अंततः पूर्णमासी का भरा पूरा रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार इडा नाड़ी जैसे-जैसे पिंगला की ओर चलती जाती है वह क्षीण होती जाती है और जब अपनी ओर लौट आती है तब पूर्ण हो जाती है। (इन नाड़ियों का शोधन करके योगी लोग योगाभ्यास करते हैं)। १६०॥

विशेष — चन्द्रमा सूर्य की ओर जैसे-जैसे जाता है सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा के उस हिस्से पर पड़ना घटता जाता जो हमारी ओर है। इसी को कृष्णपक्ष कहते हैं। अमावस्या को सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा की उस ओर बिलकुल नहीं पड़ता जो हमारी ओर है। पुनः चन्द्रमा सूर्य से जैसे-जैसे दूर होता जाता है वैसे-वैसे चंद्रमा के हमारी ओर वाले हिस्से पर सूर्य का प्रकाश पड़ते जाता है और पूर्णमासी को पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

पंद्रह तिथि परवान सो, अपने अपने पच्छ।
जब जब तीनिहुँ एक घर, करै काल सो भच्छ ॥१६१॥

शब्दार्थ — **परवाना** = प्रमाण, मानना।

भावार्थ — प्रतिपदा (परिवा) से लेकर पंद्रह दिन का शुक्लपक्ष तथा इसी प्रकार पंद्रह दिन का कृष्णपक्ष माना जाता है। शुक्लपक्ष चंद्रमा का तथा कृष्णपक्ष सूर्य का है। जब सूर्य, चंद्र एवं पृथ्वी एक सिधाई में आ जाते हैं तब चंद्र या सूर्य का ग्रहण लगता है। इसी प्रकार इडा, पिंगला जब सुषुम्णा में आ जाती हैं तब उसी में दोनों लीन हो जाती हैं। सुषुम्णा में योगी लोग अभ्यास करते हैं ॥१६१॥

विशेष — जब वह पृथ्वी, चंद्र तथा सूर्य एक सिधाई में आ जाते हैं तब पूर्णिमा को चंद्र ग्रहण तथा अमावस्या को सूर्यग्रहण लगता है।

चौपाई—३८

अपने घर चंदा बल पावै। तहवाँ ताहि राहु सतावै ॥१॥
अपने घर सूरज बलवाना। केतु होय यम तहाँ समाना ॥२॥

शब्दार्थ — **अपनेघर** = अपनी राशि; मण्डल; घेरा; मार्ग; वृत्त। **यम**=वासना, कल्पना।

भावार्थ — अपनी राशि एवं घेरा में रहने से चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश का बल पाकर प्रकाशित होता है, परन्तु, किसी-किसी पूर्णिमा को चंद्र और सूर्य के बीच में पृथ्वी आ जाने से सूर्य का प्रकाश चंद्रमा पर पूर्ण या आंशिक कुछ समय नहीं पड़ता इसको चंद्रग्रहण कहते हैं। परन्तु भूले लोग मानते हैं कि राहु चंद्र को निगल गया है ॥१॥ इसी प्रकार सूर्य भी अपनी राशि एवं मण्डल में बलवान प्रकाशस्वरूप है। परन्तु किसी-किसी अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के बीच में चंद्रमा के आ जाने से चंद्रमा का

आंशिक या पूर्ण रूप से आड़ा हो जाता है, इसे सूर्य ग्रहण कहते हैं। परन्तु भोले लोगों की कल्पना है कि उसे केतु ग्रहण करता है ॥२॥

विशेष — योगी लोगों का विचार है कि इडा द्वारा प्राण कुण्डलिनी को प्राप्त होता है तब चन्द्रग्रहण और जब पिंगला द्वारा प्राण कुण्डलिनी को प्राप्त होता है तब सूर्य ग्रहण कहलाता है। यह चंद्र-सूर्य-ग्रहण शरीर के भीतर मान रखा है।

औसर आप आप जो गावै। तीनिहुँ तीन कला होय धावै ॥३॥
उपजन पोषण अंत नशाना। लिंगम ब्रह्मांड सोई परवाना ॥४॥

शब्दार्थ — गावै = कहते हैं। तीनिहुँ = इडा, पिंगला, सुषुम्णा अथवा रज, सत, तम। लिंगम = सूक्ष्म, पिण्ड। ब्रह्मांड = विश्व।

भावार्थ — कहते हैं कि पिण्ड तथा ब्रह्मांड दोनों में एक समान अपने-अपने समय के अनुसार क्रमशः इडा, पिंगला, सुषुम्णा तथा रज, सत, तम गतिशील होकर उत्पत्ति रक्षण एवं विनाश करते हैं ॥३, ४॥

विशेष — शरीर में इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा श्वासों के उत्पत्ति, पालन तथा विनाश के कारण हैं और ब्रह्मांड में रज, सत, एवं तम गुण उत्पत्ति, पालन तथा विनाश के कारण हैं।

तीनि नाड़ि नौ रूप बनाई। सोई नौ ग्रह होय प्रगटाई ॥५॥
तैंतीस कोटि योनि विस्तारा। सोई तारागण औतारा ॥६॥

शब्दार्थ — तीनि नाड़ि = इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा।

भावार्थ — इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा ने अपना रूप नौ नाड़ियों में विभक्त किया जिनके नाम हैं—पुहुखा, गंधारी, गणेशनी, पयस्विनी, हस्तिनी, वारुणी, अलंबुषा, कुहू तथा शंखिनी। इसी प्रकार आकाश में भी नौ ग्रहों का प्रकट होना बतलाया गया, जिनके नाम हैं—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु तथा केतु ॥५। मनुष्यों ने तैंतीस कोटि देवताओं की योनियों की भी कल्पना कर रखी है। कहते हैं वे आकाश में दृश्यमान तारों के रूप में अवतार ग्रहण किये हैं ॥६॥

सात स्वर्ग तिनके अस्थाना। तामें अनेक कला विधि नाना ॥७॥
आपु अपवर्ग सातके मूला। सोई श्वास लिंगम प्रतिकूला ॥८॥

शब्दार्थ — सात स्वर्ग = भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, जनलोक, तपलोक, महर्लोक तथा सत्यलोक। कला = भोगवस्तुओं की रचनायें। आपु = ब्रह्म। लिंगम = सूक्ष्म।

भावार्थ — उन देवताओं के रहने के स्थान सात स्वर्ग हैं, जिनमें अनेक प्रकार से दिव्यभोगों की रचनायें तथा देवताओं के क्रीड़ा-विलास होना मान रखा है ॥७। और स्वयं ब्रह्म जो स्थूल भौतिकता के प्रतिकूल तथा सूक्ष्म और विश्व का प्राण स्वरूप है वह सातों स्वर्गों के मूल स्थान आठवें अपवर्ग में रहता है ॥८॥

नवयें थीर पवन ब्रह्मंडा । कारण उतपति प्रलय प्रचंडा ॥ ९ ॥
नारि पुरुष दुइ रूप परवाना । देवयोनि सो कला निर्माना ॥१०॥

शब्दार्थ—थीरपवन = महामाया ।

भावार्थ—(कहते हैं) उक्त आठोंके ऊपर नवाँ महामाया है जो अनंत ब्रह्मांडों के उत्पत्ति-प्रलय का महान कारण है ।.९॥ यहाँ स्त्री और पुरुष दो रूपों को देखकर देवयोनि में भी नर-नारि की कल्पनायें की गयीं ॥१०॥

साखी—पाँच श्वास गुण तीन ले, श्वास लिंग ब्रह्मंड ।
सात स्वर्ग अपवर्गके, भिन्न भिन्न सो खंड ॥१६२॥

शब्दार्थ — लिंग = सूक्ष्म । अपवर्ग = मोक्ष; तात्पर्य में कल्पित मुक्तिलोक । श्वास = सूक्ष्म शरीर । लिंग = पिंड, देह ।

भावार्थ — कृकल, धनंजय, देवदत्त, नाग तथा कूर्म ये पाँच सूक्ष्म वायु तथा इडा, पिंगला और सुषुम्णा को लेकर सूक्ष्म शरीर सहित स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है। और पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व तथा रज, सत, तम तीन गुण को लेकर ब्रह्मांड की उत्पत्ति मानो हैं । सात स्वर्ग तथा आठवाँ अपवर्ग ये भिन्न-भिन्न खण्डों में ब्रह्मांड में तथा शरीर में भी मान रखा है ॥१६२॥

रूप अनेकन ताहिमें, तारागण परवान ।
सोई सब देव कहावहीं, ब्रह्मंड थूल है जान ॥१६३॥

शब्दार्थ — परवान = प्रमाण; सत्य । थूल = सूक्ष्म ।

भावार्थ — ब्रह्मांड में अनेक आकार वाले जो तारागण हैं । उन्हीं सबको लोग सूक्ष्म स्वरूपधारी देवता मानते हैं ॥१६३॥

४१—रात-दिन, संध्या तथा भिन्न दिशाओं में योगिनी का वर्णन

चौपाई—३४

राति दिवस जो पलकन भाना । लगत अँधेरी खुलत जग भाना ॥१॥
परकाशिक सब घटपट रूपा । थीर पवन झाँईं तम कूपा ॥२॥

शब्दार्थ — भाना = सूर्य; प्रकाश । परकाशिक = प्रकाश करने वाला । घट = शरीर; घड़ा आदि । पट = कपड़ा आदि समस्त जड़पदार्थ । थीरपवन = माया । झाँईं = छाया ।

भावार्थ — (भूले लोग कहते हैं) जो रात और दिन होते हैं वह परब्रह्म परमात्मा के पलकों के गिरने तथा उठने से । जब पलक गिर जाती है तब अँधेरी रात हो जाती है और खुल जाती है तब जगत में प्रकाश हो जाता है ॥१॥ वह ब्रह्म ही

घटपटादि समस्त जड़-चेतन पदार्थों का प्रकाशक है; और जो माया है वह ब्रह्म की परिछाईं अंधकाररूप है ॥२॥

चन्दादिक परकाशिक थूला । जागृत सूर्य देखि जिव भूला ॥३॥
राति दिवस सोई परवाना । एक नारि एक पुरुष कहाना ॥४॥

शब्दार्थ — थूला = सूक्ष्म ।

भावार्थ — सूर्य, चंद्र, तारागणादि विशाल प्रकाशपुंजों को तथा सूक्ष्म वायु आदि को जागृतावस्था में देखकर व्यक्ति इस भ्रम में पड़ गया कि इनका कोई प्रकाशक परमात्मा है ॥३॥ उसी कल्पित परमात्मा की पलकें गिरने-उठने से रात-दिन होना मान लिया; और उनमें से रात को स्त्रीरूप माया का गुण तथा दिन को पुरुषरूप ब्रह्म का गुण कहा ॥४॥

विशेष — सूर्य, चंद्र, तारागणादि सब स्वतः प्रकाशस्वरूप अनादि जड़ पिंड हैं। उनको कोई ईश्वरादि नहीं प्रकाश करता है। रात-दिन पृथ्वी की दैनिक क्रिया से तथा वर्षा-शीतादि वार्षिक क्रिया से होते हैं। इन सबका द्रष्टा, परीक्षक चेतन मनुष्य है।

तेहिमें तीन कला निर्माया । संझा तीनि तेहि प्रगटाया ॥५॥
आदि अंत एक मध्य प्रमाना । ता बिच लगन कला बिधि नाना ॥६॥

शब्दार्थ — तेहि में = रात-दिन में । आदि = प्रातः । अंत = सायं । मध्य = दोपहर । कला = भाग; गुण, हुनर ।

भावार्थ — मनुष्यों ने रात-दिन के बीच में संध्या के रूप में तीन भाग निर्धारित किया ॥५॥ प्रातःकाल को आदिसंध्या, दोपहर को मध्यसंध्या तथा सायं को अंतसंध्या माना; और इन रात-दिनों के बीच में लग्न, मुहूर्त सम्बन्धी अनेक ज्योतिष के गुण दिखाया ॥६॥

दश द्वारा दश दिशा बनाई । अष्टांगी तेहि माँहि समाई ॥७॥
योगिनी होय बहु कला देखावै । सन्मुख दहिने आसन धावै ॥८॥
पाछे बायें रक्षक सोई । ज्योतिष दृष्टि लक्षण सब होई ॥९॥

शब्दार्थ — दशद्वारा = दश इन्द्रियाँ या शरीर के दश मुख्य छिद्र—दो आँख, दो नाक, दो कान, मुख, गुदा, शिश्न तथा कपालकुहर का एक माना हुआ छिद्र । **दशदिशा** = पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, ईशान, वायव्य, अधः तथा उर्ध्व । **योगिनी** = एक कल्पित शक्ति ।

भावार्थ — जैसे शरीर में दश इन्द्रियाँ या दश छिद्र हैं वैसे ब्रह्माण्ड में पूरब, पश्चिम आदि दश दिशाओं की कल्पना की गयी है । इन समस्त पिंड-ब्रह्मांडों में पंच-

तत्व तीनगुण का समूहरूप अष्टांगी माया समायी हुई है ॥७॥ (भूले लोग कहते हैं)— माया योगिनी बनकर अपना अनेक गुण दिखाती है। यदि वह व्यक्ति के सामने या दाहिने पड़ती है तो उसकी हानि करती है ॥८॥ वही योगिनी जब बायें तथा पीछे रहती है तब मनुष्य की रक्षा करती है। ये सब ज्योतिषदृष्टि से लक्षण बताया जा रहा है जो एक कल्पना है ॥९॥

विशेष — कहते हैं कि जब व्यक्ति किसी काम के लिये चले तब उसे यह विचार कर लेना चाहिये कि योगिनी उसके दाहिने व सामने न पड़े। यदि वह दाहिने या सामने पड़ेगी तो मनुष्य की हानि करेगी और यदि बायें तथा पीछे पड़ेगी तो मनुष्य की रक्षा करेगी। प्रश्न होता है कि मनुष्य कैसे जाने कि किस दिन को योगिनी किधर रहती है ? ग्रन्थकर्ता स्वयं आगे बतलाते हैं।

परिवा नौमी पूरब बासा । उत्तर दुतिया दशमि नेवासा ॥१०॥
तीज एकादशि आग्नेय रहाई। वायव्य चौथ द्वादशि धाई ॥११॥
पंचमी त्रयोदशि दक्षिण विराजै। षष्टी चतुर्दशी पश्चिम गाजै ॥१२॥
सप्तमी पूर्णिमा नैऋत्य रहनैई । अष्टमी अमावस ईशान्य विहरई ॥१३॥

शब्दार्थ — परिवा = प्रतिपदा। आग्नेय = दक्षिण-पूर्व का कोण। वायव्य = पश्चिम-उत्तर का कोण। नैऋत्य = दक्षिण-पश्चिम का कोण। ईशान्य = उत्तर-पूर्व का कोण।

भावार्थ — प्रतिपदा तथा नौमी को योगिनी पूरब रहती है, दुतिया और दशमी को उत्तर निवास करती है ॥१०॥ तीज तथा एकादशी को आग्नेय, चौथ एवं द्वादशी को वायव्य ॥११॥ पंचमी और त्रयोदशी को दक्षिण, षष्टी तथा चतुर्दशी को पश्चिम ॥१२॥ सप्तमी और पूर्णिमा नैऋत्य तथा अष्टमी और अमावस्या को ईशान में रहती है ॥१३॥

विशेष — जो लोग उपर्युक्त मान्यता रखते हैं वे उपर्युक्त तिथि तथा योगिनी का विचार करते हैं। उन्हें जब कहीं चलना होता है तब जान लेते हैं कि आज कौन-सी तिथि है तथा योगिनी किधर है। योगिनी सामने व दाहिने न होना चाहिये अपितु पीछे तथा बायें होना चाहिये। परन्तु उपर्युक्त सारी बातें एकदम झूठी हैं। न कहीं योगिनी है न उसका प्रभाव।

साखी—जब सो चाल चलावै, चलै विविधि सो चाल।
न्यारे न्यारे दोष गुण, विदित कला है काल ॥१६४॥

शब्दार्थ — सो = भ्रमिक लोग। कला = रचना; कल्पना। काल = मन।

भावार्थ — भ्रमिक एवं भूले लोग जिन चालों में मनुष्यों को चलाना चाहते हैं

उन्हें उन्हीं गलत-सही अनेक चालों में चलना पड़ता है। लोगों ने दिन, तिथि, लग्न, मुहूर्त आदि निर्धारित करके उनके पृथक-पृथक गुण-दोषों की कल्पना कर रखी है। संसार में मनःकल्पित बातों का बड़ा बोलबाला है ॥१६४॥

विशेष — ऊपर जो योगिनी तथा भिन्न-भिन्न तिथियों में उसका निवास बताया गया है, एकदम भ्रम एवं केवल कल्पना है।

दशा सबै सो थूलके, जोतिष दृष्टि लखाय।
रचना है ब्रह्मांडकी, बहु पसार समुदाय ॥१६५॥

शब्दार्थ — **दशा**=ज्योतिष के अनुसार ग्रहविशेष का भोग्यकाल; अवस्था; स्थिति। **थूल**=सूक्ष्म। **रचना**=कल्पना। **ब्रह्मांड**=खोपड़ी, मस्तिष्क।

भावार्थ — किस ग्रह, दशा, तिथि आदि में किस व्यक्ति को क्या भोग मिलता है यह सब सूक्ष्मबंधन वाणी जाल का विस्तार है जिन्हें लोग ज्योतिष दृष्टि से समझने की चेष्टा करते हैं। वस्तुतः ये मानवमस्तिष्क की कल्पनायें हैं जिनके समूह-के-समूह संसार में फैले हुये हैं ॥१६५॥

विशेष -- उक्त साखी के 'थूल' शब्द का अर्थ सूक्ष्म किया गया है। थूल शब्द कविता में बहुधा स्थूल के लिये प्रयुक्त होता है। यदि यहाँ भी स्थूल अर्थ माना जाय तो अर्थ होगा कि ज्योतिषदृष्टि से निर्धारित ग्रह, दशा आदि स्थूल भौतिकीय हैं जो सूक्ष्म स्वरूपज्ञान से बहुत दूर तथा काल्पनिक भी है। परन्तु वस्तुतः इस ग्रन्थ में प्रायः 'थूल' सूक्ष्म के लिये ही प्रयुक्त हुआ है।

४२—पिण्ड में ब्रह्मांड की कल्पना

चौपाई—४०

सात स्वर्गके सात बंधाना। सोई पहाड़ लिंगम परवाना ॥१॥
सायर सात सातके पासा। सोई सूक्ष्म कारण परकाशा ॥२॥

शब्दार्थ — **बंधाना**=बंधा हुआ क्रम। **लिंगम**=लिंग, सूक्ष्म। **परवाना**=प्रमाण, सत्य मानना। **सायर**=समुद्र।

भावार्थ — लोगों ने आकाश में सात स्वर्गों की कल्पना कर रखी है। उन्हीं सातों के बँधे हुए क्रमसे शरीर की रीढ़ में भी हड्डियों की सात गुरियों को पहाड़ मानकर उन्हें सूक्ष्म स्वर्ग माना है ॥१॥ उन सातों स्वर्गों के पास सातसमुद्र माना है; और उनके प्रति यह धारणा प्रकट की है कि ये ही योग सम्बन्धी समस्त सूक्ष्म कार्यों के कारण हैं ॥२॥

विशेष—सात समुद्रादि का पिंड में वर्णन पीछे २२ तथा २३ चौपाइयों में देखें।

धरती सो स्थूल कहाई। तेहिमें कारज होय प्रगटाई ॥३॥

पुरुष अंश होय जल सोइ धाई । लिंग मथी सोइ बीज उपाई ॥४॥
पूरण प्रथमें अंड परवाना । सो फोकचा ब्रह्मांड बखाना ॥५॥

शब्दार्थ — स्थूल = शरीर ।

भावार्थ — यह शरीर ही पृथ्वी कहलाती है, जिसमें अनेक शुभाशुभ कर्म रूप कार्य होते हैं ॥३॥ (इस शरीर की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—) पुरुष का अंश स्वरूप जलमय वीर्य नारी क्षेत्र में जाकर पहले पूर्ण रूप से मांस का लोथड़ा बनता है उसे अंड समझिये; वही शरीर रूपी ब्रह्मांड बनने का फोकचा ,फोका या आरंभिक रूप है ॥४,५

विशेष — फोका कहते हैं बुदबुदा को उसी को या गर्भ के मांसल रूप को फोकचा कह सकते हैं । फोकचा का अर्थ गर्भाशय भी लगाया जाता है । तात्पर्य इतना ही है कि यह शरीर ही ब्रह्मांड है, जिसकी उत्पत्ति नर-नारी से होती है । इसी को देखकर विश्वब्रह्मांड को भी किसी कल्पित ब्रह्म और माया से उत्पन्न होना मान रखा है, जो कल्पना है ।

फोकचा पृथिवी सोई ब्रह्मंडा । तामें बहु विधि रूप प्रचंडा । ६॥
अंत रूप सब धूरि मिलाई । देखि देखि जीव बहु पछताई ॥७॥

शब्दार्थ — प्रचंडा = प्रचंड, तेजस्वी ।

भावार्थ — इस शरीर रूपी पृथ्वी व ब्रह्मांड की उत्पत्ति उसी गर्भ रूप फोकचा से होती है जिसमें विविध तेजस्वी रूप प्रकट होते हैं ॥६॥ अंततः तो मंद-तेजस्वियों के सभी शरीर एवं उनके ऐश्वर्य मिट कर धूल में मिल जाते हैं । ऐसी स्थिति आने पर अर्थात बिगड़ते हुए अपने माने हुए शरीर तथा ऐश्वर्यों को देखकर मनुष्य बहुत पश्चाताप करता है ॥७॥

जोई बीज पुनि सोइ रज होई । दुई देह धरि प्रगटे सोई ॥८॥
पाँच तत्त्व सोई कारज रूपा । रहा समाय सो सबै स्वरूपा ॥९॥
एक एक व्यापिक सब ठौरा । इन्ह परपंच जीव भौ बौरा ॥१०॥

शब्दार्थ — दुई देह = स्त्री-पुरुष ।

भावार्थ — शरीर का कारणस्वरूप जो पुरुष का जलमय वीर्य है वैसे स्त्री का जलमय रज है । वे रज-वीर्य दो देह धारियों से प्रकट होकर स्त्री के गर्भाशय में शरीर बनाते हैं ॥८॥ यह शरीर पाँच तत्त्वों का कार्य रूप है । वस्तुतः सभी पंच विषय के कार्य इन पृथ्वी आदि तत्त्वों से ही बनकर उन्हीं में लीन होते रहते हैं ॥९॥ एक तत्त्व के परमाणु दूसरे तत्त्वों में मिलकर सब जगह फैले हैं और उनके गुण-धर्मों से जगत के नाना पदार्थ बनते हैं । इन्हीं जड़ पदार्थों के विस्तार को देखकर और उनका अभिमान करके अविनाशी जीव अपने स्वरूप को भूलकर प्रमत्त हो रहे हैं ॥१०॥

विशेष — कितने स्थूल बुद्धि वाले तो यह समझते हैं कि केवल रज-वीर्य के समिश्रण से शरीर बन जाता है उसमें चेतन जीव भिन्न सत्ता नहीं है। परन्तु चेतन एक ऐसा पदार्थ है जिसका चेतनागुण जड़ प्रकृति में है ही नहीं। अतएव चेतन जड़ से सर्वथा पृथक, नाना, स्वतन्त्र तथा अविनाशी हैं।

कितने लोग शरीरादि स्थूल पदार्थों के ही अहंकारी बने रहते हैं। परन्तु यह सब नाशवान तथा छूटने वाले हैं।

तीनि नाड़ि त्रिवेनी कीन्हा। गंगा यमुना सरस्वति रचि लीन्हा ॥११॥
शिखर सुमेर सो प्रगटी धारा। तीनों तीन लोक परचारा ॥१२॥
दीप दीप प्रति संगम कीन्हा। पुनि सो भिन्नभिन्नकै दीन्हा ॥१३॥

शब्दार्थ—तीनि नाड़ि = इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ। दीप=द्वीप।

भावार्थ — योगियों ने इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा इन तीन नाड़ियों को कमला गंगा; यमुना और सरस्वती के रूप में निर्धारित किया है ॥११॥ जैसे गंगादि नदियाँ हिमालय के शिखरों की गुफाओं से निकल कर धारा रूप में प्रकट हुईं और (कल्पित मान्यतानुसार) तीनों तीन लोक में चली गयीं; गंगा स्वर्गलोक, यमुना मृत्युलोक तथा सरस्वती पाताल को। वैसे इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा शिखरसुमेरु अर्थात ब्रह्मरंध्र की गुफाओं से निकलकर श्वासधारा के रूप में प्रकट हुईं और तीनों धारायें अर्ध, उर्ध मध्य समा गयीं; अर्थात शरीर में फैल गयीं ॥१२॥ जैसे गंगादि नदियाँ अनेक प्रदेशों में अनेक अन्य नदियों का संगम करते हुए भिन्न-भिन्न नामों वाली होती हुई भी समुद्र में समा जाती हैं। वैसे इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा शरीर के विभिन्न जोड़ों में संगम करके गुजरती हुई पुनः भिन्न-भिन्न मार्गों में होकर शरीर में समा जाती हैं ॥१३॥

विशेष — ग्रंथकर्ता यहाँ यही बतलाना चाहते हैं कि किस प्रकार लोगों ने ब्रह्मांड की कल्पना पिण्ड (शरीर) में कर रखी है।

साखी—प्रति प्रति दीप संगम करी, पुनि तेहि दीन्ह छिटकाय।
सो त्रिवेनी राज है, प्रजा नदी समुदाय ॥१६६॥

शब्दार्थ — दीप = द्वीप, स्थल का वह भाग जिसके चारों ओर पानी हो, तात्पर्य में परदेश।

भावार्थ — गंगा, यमुना तथा सरस्वती नदियाँ हिमालय से निकल कर और पथ में मिले प्रत्येक प्रदेशों का संगम करती हुई और पुनः अलग बहती हुई प्रयाग में तीनों मिलकर त्रिवेणी का रूप धारण कर लीं जो रानी के समान मानी गयी और शेष सामूहिक नदियाँ प्रजा रूप में समझी गयीं। इसी प्रकार इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ ब्रह्मरंध्र खोपड़ी) से निकल कर तथा शरीर में विचरती अनेक स्थलों का संगम करती हुई और पुनः अलग अलग घूमती हुई त्रिकुटी में तीनों मिल गयीं। यह

त्रिकुटी में तीनों नाड़ियों का संगम ही त्रिवेणी है और यह अन्य सभी नाड़ियों की रानी है तथा अन्य नाड़िसमूह इसकी प्रजायें हैं ।।१६६।।

जब जब करै जलामयी, गड़बड़ सम्यक होय ।
सूक्ष्म हेतु जो गावहीं, बहुरि प्रगटत है सोय ।।१६७।।

शब्दार्थ — जलामयी = जलमय, प्रलय । गड़बड़ = अस्तव्यस्त, प्रलय ।

भावार्थ — कहते हैं जब-जब ईश्वर संसार को जल में डुबाकर उसका प्रलय करता है, तब-तब पूर्ण रूप से इसका लय हो जाता है । केवल सबके सूक्ष्म बीज रह जाते हैं । जो सृष्टि के आरम्भ में पुनः प्रकट होते हैं । इसी प्रकार जब-जब प्राण छूट कर शरीर जलमय हो जाता है, तब-तब वह पूर्णरूप से नष्ट हो जाता है; परन्तु शरीर संसार की सूक्ष्म बीज-वासना रहने से जीव को पुनः शरीर प्राप्त होता है ।।१६७।।

विशेष — शरीर का नाश होते देखकर विश्व के प्रलय की भी कल्पना लोगों ने की है जो निरर्थक है । पूर्ण संसार की न कभी उत्पत्ति होती है न प्रलय । यह अनादि अनंत है । हाँ, अविनाशी जीव कर्म वासनावश बारम्बार शरीर को प्राप्त होते तथा छोड़ते हैं । इसलिये मुक्तिइच्छुकों को कर्म वासना एवं मोहबीज को नष्ट करना चाहिये । यहाँ तो लोगों द्वारा की गयी पिण्ड में ब्रह्माण्ड की कल्पना है ।

चौपाई—४१

नदी जहाँ तहाँ संगम कोठा । पारख बिना भये सब खोटा ।।१।।
सायर सात सोई परवाना । नौ नाड़ी नौ खंड निशाना ।।२।।

शब्दार्थ — खोटा = दोषपूर्ण ।

भावार्थ — कहते हैं शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं जो नदियों के रूप में हैं । जैसे बाहर नदियाँ मिलकर बड़ा रूप धारण करती हैं और वहाँ लोग तीर्थादि मानने लगते हैं, वैसे कहते हैं शरीर में एक-एक हजार नाड़ियों की गाँठ बनकर बहत्तर हजार नाड़ियों के बहत्तर कोठे बने हैं वे ही संगम हैं । परन्तु यदि यथार्थ स्वरूपज्ञान न हो तो उपर्युक्त सारे सूक्ष्म कहे जाने वाले ज्ञान दोषपूर्ण हैं ।।१।। उन्हीं बहत्तर कोठों में से मुख्य सातकोठों को सात समुद्र मान रखा है । और जैसे पृथ्वी पर नौ खण्ड मान रखा है उसी लक्षण का शरीर में नौ नाड़ियाँ माना है ।।२।।

विशेष — सात समुद्रों का परिचय पीछे इसी प्रकरण के २३ चौपाई में और नाड़ियों का परिचय २१ चौपाई में देखें ।

पृथ्वी पर के नौ खंडों के नाम ये हैं —इन्द्र, नाग, वरुण, गभीस्त, ताम्र, ब्रह्म' भरत, सौम्य तथा कसेरु ।

सात पहाड़ सात सोइ दीपा । सोइ पहाड़ अस्थिके रूपा ।।३।।
धरती मासु रक्त सो नीरा । अंकुरज रोम सो है शरीरा ।।४।।

शब्दार्थ — अस्थि = हड्डी । नीरा = नीर, जल ।

भावार्थ — जो शरीर में सात पहाड़ माना है वे ही सात द्वीप हैं, वे पहाड़ हड्डी के रूप में मेरुदण्ड की सात गाँठें हैं या अन्य हड्डियाँ हैं ।।३।। शरीर रूपी ब्रह्मांड में पृथ्वी के स्थान पर मांस, जल के स्थान पर रक्त तथा अंकुरज वृक्ष वनस्पतियों के स्थान पर रोम एवं बाल हैं ।।४।।

विशेष — सात पहाड़ों के नाम पीछे २३वीं चौपाई में देखें । सात द्वीप ये हैं— जंबू, प्लक्ष, कुश, क्रौंच, शाक, शाल्मलि और पुष्कर ।

दीपवंद खंड ब्रह्मांड सँवारी । रचनामें रचना विस्तारी ।।५।।
सो अस्थूल ब्रह्मांड कहावै । अष्टांगी होयके दिखलावै ।।६।।

शब्दार्थ — दीपवंद = द्वीपों की परिपाटी एवं क्रम । ब्रह्मांड = विश्व ।

भावार्थ — जैसे पृथ्वी में सात द्वीप और नौ खण्डों की कल्पना की गयी हैं वही परिपाटी शरीर में भी रखी गयी है । इस प्रकार स्थूल रचना में दूसरी और काल्पनिक रचना की गयी है ।।५।। पृथ्वी जलादि पाँच तत्त्व तथा तीन गुण ये आठ अंगों से दृश्यमान स्थूल ब्रह्मांड कहलाता है और ये ही आठों से शरीर की भी रचना हुई है ।।६।।

एक सुमेर सो शीश बनाई । सात अंग धरती निर्माई ।।७।।
सोई सात धरती परवाना । ऊँचा नीचा अंग ठेकाना ।।८।।

शब्दार्थ — सुमेर = सुमेरु, एक कल्पित सोने का पर्वत जो इलावृत वर्ष में स्थित मानते हैं; सिर ।

भावार्थ — सिर को सुमेरु पर्वत माना तथा ग्रीवा, कंठ, छाती, हाथ, नाभि, पीठ तथा पैर इन सात अंगों को धरती माना ।।७।। वस्तुतः शरीर के ऊँचे नीचे अंगों के स्थानों को ही सात प्रकार की पृथ्वी मान रखा है ।।८।।

रचि ब्रह्मांड कला बहु भारी । सोई अंश सब पिंड सँवारी ।। ९ ।।
उतपति आदि प्रलय सो अंता । मध्य मध्य तेहि कला अनंता ।।१०।।

शब्दार्थ — कला = कल्पना ।

भावार्थ — ब्रह्मांड के विषय में मनुष्यों ने अनेक लम्बी-लम्बी कल्पनायें कर रखी हैं; और शरीर में भी वही ब्रह्माण्ड की रचनायें आरोपित कर रखी हैं ।।९।। कहते हैं ब्रह्मांड के उत्पत्ति और प्रलय होते है तथा शरीर के भी आदि तथा अन्त होते हैं । इस प्रकार ब्रह्मांड तथा पिण्ड (शरीर) के बीच में मनुष्यों ने नाना कल्पनायें की हैं ।।१०

विशेष — शरीर की उत्पत्ति तथा उसका नाश भी होता है; परन्तु ब्रह्मांड के उत्पत्ति-प्रलय कहना एक भ्रम है ।

साखी—अष्ट धातु बहु खानिके, उपजा जग विस्तार।
नितप्रति पालन नाशन, रहै न एक करार ॥१६८॥

शब्दार्थ — **अष्टधातु**=सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा; पाँच तत्त्व तीन गुण। **करार**=करार, ठहराव, स्थिरता।

भावार्थ — (कहते हैं) पाँच तत्त्व और तीन गुण संयुक्त विस्तृत संसार उत्पन्न हुआ। अथवा अष्टधातुओं की अनेक खानियों सहित संसार प्रकट हुआ। उसी प्रकार रस, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि, वीर्य तथा त्वचा सहित यह शरीर प्रकट हुआ। परन्तु इनमें हरक्षण निर्माण, पुष्टि तथा विनाश सहित परिवर्तन बना रहता है, दृश्य पदार्थों में स्थिरता नहीं दिखती ॥१६८॥

नित उपजै अरु नित खपै, निश्चय नष्ट सो मूल।
परखहु काल कला सबै, देखि जगत मति भूल ॥१६४॥

शब्दार्थ — **खपै**=लीन। **मूल**=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु। **कालकला**=मन की कल्पनायें।

भावार्थ — संसार के सारे कार्य पदार्थ नित्य उत्पन्न तथा लीन होते हैं। निश्चय ही सब कार्यपदार्थ परिवर्तित होकर अपने मूल तत्त्वों में समा जाते हैं। अतएव हे मुमुक्षु ! अपने मन की मिथ्या कल्पनाओं को परखो और उन्हें छोड़ो। इस संसार के क्षणिक चमक को देखकर मत भूलो ॥१६९॥

विशेष — संसार के कार्य पदार्थों में हर समय परिवर्तन होता है। वह परिवर्तन ही एक साथ निर्माण तथा विनाश दोनों हैं। बच्चे के शरीर में परिवर्तन होने से कुमारपन आ जाता है उसमें बालपन का नाश तथा कुमारपन की उत्पत्ति हो जाती है। इसी प्रकार का हरक्षण परिवर्तन होता है।

४३—अनस्थिर संसार का हिंडोला रूप कथन

चौपाई—४२

चलै नित्य सो जगत कहावै। ठहरै नहिं नितनव प्रगटावै ॥१॥
अस्थिरता अपना ले जीवा। अस्ति ताहिमें भास करीवा ॥२॥

शब्दार्थ — **नव**=नया, नूतन। **अस्थिरता**=चंचलता। **अस्ति**=सत्ता, भाव, विद्यमानता। **भास**=भ्रम।

भावार्थ — 'संसरति इति संसारः' जो नित्य गति करता रहे, बदलता रहे उसको कहते हैं संसार। संसार कभी स्थिर नहीं होता, अपितु उसमें नित्य नवीन कार्य पदार्थ उत्पन्न होते तथा पुराने बदलते रहते हैं ॥१॥ अविनाशी जीव अपनी

मनोवासनाओं की चंचलता को लेकर उन्हीं दृश्य पदार्थों में भ्रमवश अपनी स्थायी सत्ता मानता तथा उन्हीं के साथ में बहता है ॥२॥

चलायमान सब पिंड ब्रह्मंडू । बड़ अचरज हिंडोल परचंडू ॥३॥
आवत जात गहै पै ताहीं । बैठि जीव डोरी गहि माहीं ॥४॥

शब्दार्थ — पिंड ब्रह्मंडू = शरीर-संसार । पै = परन्तु ।

भावार्थ — सारे पिंड-ब्रह्मांड क्रियाशील हैं । इस प्रकार यह विशाल संसार अत्यन्त अद्भुत हिण्डोला एवं झूला है ॥३॥ इसी संसार-हिंडोले के अध्यास में पड़कर जीव बारम्बार जन्मता-मरता है; परन्तु वह भूलवश मोह की डोरी पकड़कर कर्मकी पटरी पर बैठा रहता है ॥४॥

परम अधार हिंडोला ताके । महाशून्य नाशक गुण जाके ॥५॥
पाप पुण्य खंभा दोइ लाई । कर्म पटरी सब जीव बैठाई ॥६॥

शब्दार्थ — ताके = भूले जीव के ।

भावार्थ — इस महाभ्रमणशील, दुःखपूर्ण संसार हिण्डोला को वही व्यक्ति अपना श्रेष्ठ आधार व सुखरूप मानता है जो विवेक से अत्यन्त शून्य है और जिसमें सद्गुण विनाशक अज्ञान है ॥५॥ सब जीव भूलवश पाप और पुण्य इन दो खम्भों पर पड़े हुए इस झूले में कर्म की पटरी पर बैठे हैं ॥६॥

माया मोह जेवरि दृढ़ बाँधी । डंडी सुख दुख परम अगाधी ॥७॥
भरमिक भरमदिवस औ राती । केहि विधि कहहु जीव कुशलाती ॥८॥

शब्दार्थ — जेवरि = जेवर, रस्सी । अगाधी = अगाध, अपार ।

भावार्थ — इस संसार हिण्डोला में मायामोह की मजबूत रस्सी बँधी है; और महान अपार दुःख-सुख की डंडी है ॥७॥ यह रात-दिन भ्रमणशील है और जीव इसीमें भ्रमते हैं । फिर हे मनुष्य ! इसी में पड़कर तू किस प्रकार अपना कल्याण होना कहता है ? ॥८॥

तजी आश निज पारख पाये । झूला बहुरि न ताहि झुलाये ॥ ९ ॥
तजहु आश यहि झूला केरा । गहहु परख प्रभु शरण सबेरा ॥१०॥

शब्दार्थ — झूला = वासना या जन्म-मरण का चक्कर । सबेरा = शीघ्र ।

भावार्थ — जो व्यक्ति अपने चेतनस्वरूप का ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह इस संसार झूला की आशा को सर्वथा छोड़ देता है । फिर उस निर्बन्ध पुरुष को संसार झूला पुनः नहीं झुला सकता ॥९॥ अतएव हे मुमुक्षुओ ! इस संसार-झूला की आशा तथा मोह छोड़ो और शीघ्र वैराग्यसम्पन्न पारखी सद्गुरु की शरण ग्रहण करो

साखी—बिरले बाँचहि सुजन जन, जाहि परी पहिचान।
साहेब के परचय बिना, झूला सबै झुलान ॥१७०॥

शब्दार्थ — साहेब = स्वामी, सच्चे सद्गुरु।

भावार्थ — जिस व्यक्ति को संसार झूले की वास्तविकता एवं इसकी दुःखरूपता की पूर्ण परख हो गयी है, ऐसे कोई बिरले ही पुरुष इससे बचते हैं। अन्यथा सच्चे सद्गुरु द्वारा जड़-चेतन की पूर्ण परख हुए बिना सब जीव संसार झूले में झूल रहे हैं ॥१७०॥

झूला झूलत कल नहीं, विकल दिवस औ रैन।
आश हिंडोला गायके, चहहिं जीव सुख चैन ॥१७१॥

शब्दार्थ — कल = शांति। रैन = रात। गायके = गायन, कथन या प्रशंसा, करके।

भावार्थ — जीव जन्म-मरण का झूला झूलते हैं, उसमें उन्हें शांति तो है ही नहीं उल्टे वे रात-दिन बेचैन हैं। भूले मनुष्य खानी-वाणी रूप संसार हिंडोले की प्रशंसा करके एवं उसमें सुख मानकर विश्रांति चाहते हैं जो असंभव है ॥१७१॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक हिण्डोला–१

भरम हिण्डोला झूले सब जग आय ॥१॥
पाप पुण्य के खम्भा दोऊ, मेरु माया माँहि ॥२॥
लोभ भँवरा विषय मरुवा, काम कीला ठानि ॥३॥
शुभ अशुभ बनाये डाँड़ी, गहे दूनों पानि ॥४॥
कर्म पटरिया बैठिके, को को न झूले आनि ॥५॥

शब्दार्थ — मेरु = दोनों खम्भे के बीच की लकड़ी जिसमें झूला पड़ता है। भँवरा = लोहे या लकड़ी की भँवरकली, जिसके आधार से झूला स्वतंत्रता पूर्वक घूमता है। मरुआ = लकड़ी के बड़े-बड़े लट्टू। पटरिया = जिस पर बैठ कर झूला जाता है।

भावार्थ — भ्रम के हिण्डोले पर आकर संसार के सब कोई झूलते हैं ॥१॥ (वह हिंडोला किस प्रकार बना है उसे आगे कहते हैं) पाप और पुण्य[1] के दो खम्भे हैं। माया ही बीच की बल्ली है ॥२॥ लोभ की भँवर-कली (झूले को घुमाने वाली)

१—पाप कर्म बन्धन हैं ही, विषयासक्ति युत पुण्य भी बन्धनरूप है। अतः विवेकी पुरुष पापकर्म तो करते ही नहीं और उनसे पुण्य कर्म होते हैं वे विषयासक्ति से रहित होकर ही।

है, विषयों के बड़े-बड़े लट्टू लगे हैं; और काम की काँटियाँ ठोंकी हैं ॥३॥ शुभ-अशुभ दोनों कर्मों की दोनों डाँड़ी बनाकर उसे मनुष्य दोनों हाथों से पकड़ रखा है ॥४॥ कर्म की पटरी है, इस झूले पर आकर कौन-कौन नहीं झूला ? (अर्थात सभी कर्माभ्यासी जीव झूल रहे हैं) ॥५॥

विशेष — जैसे खम्भे, मेरु, मरुआ, भँवरा, काँटी, पटरी आदि के बिना बाहरी झूले का रूप नहीं खड़ा होता। इसी प्रकार इस जन्म-मरण के चक्कर में झूलने के लिये पाप-पुण्य कर्म, माया का मोह, सांसारिक पदार्थों का लोभ एवं तृष्णा, विषयों की आसक्ति, काम एवं नाना कल्पनायें, शुभ-अशुभ की वासनायें और नाना कर्म—ये ही सब कारण हैं। इन्हीं के चक्कर में पड़कर, सब जीव बारम्बार नाच रहे हैं।

जो स्थूल विषय मोटी माया को छोड़ते हैं, वे सूक्ष्म विषय झीनी माया से नहीं निकलते। ब्रह्म से जगत और जगत से ब्रह्म, यह झूला सदैव चला करता है। जो ब्रह्म बनेगा, वह जगत में अवश्य आयेगा, क्योंकि अन्ततः ब्रह्म-जगत एक है। अतः कल्याणार्थी को ब्रह्म-जगत दोनों त्यागने योग्य है।

इस हिंडोला की दूसरी पंक्ति में पाप-पुण्य खम्भे के रूपक में आये हैं, और चौथी पंक्ति में शुभ-अशुभ डाँड़ी के रूपक में। पाप-पुण्य तथा शुभ-अशुभ में एकाएक अन्तर नहीं प्रतीत होता; परन्तु सूक्ष्म अन्तर है। शुभ-अशुभ वासना के रूप में प्रथमतः मन में रहते हैं, जब वे क्रिया के रूप में स्थूल हो जाते हैं तब पाप-पुण्य कहलाते हैं पाप-पुण्य के शक्तिशाली खंभे हैं जिसमें जन्म-मरण का झूला पड़ा है। शुभाशुभ वासनाओं को पकड़ कर और कर्म की पटरी पर बैठ कर जीव झूलता है। अर्थात शुभाशुभ वासना द्वारा ही कर्म रचता है और कर्मों के आधार से ही चक्कर काटता है।

झूलत गण गन्धर्व मुनिवर, झूलत सुरपति इन्द्र ॥६॥
झूलत नारद शारदा, झूलतव्यास फणिन्द्र ॥७॥
झूलत बिरंचि महेश शुक मुनि, झूलत सूरज चन्द्र ॥८॥
आप निर्गुण सगुण होय, झूलिया गोविन्द ॥९॥

शब्दार्थ — शारदा = सरस्वती। फणिन्द्र = शेषजी। सूरज = ज्ञानी। चन्द्र = योगी। गोविन्द = गो-पालक, कृष्णजी।

भावार्थ — उपर्युक्त झूले में शिव के गण, गन्धर्व, बड़े बड़े मुनि, देवताओं के राजा इन्द्र ॥६॥ नारदजी, सरस्वतीजी, व्यास जी, शेष जी ॥७॥ ब्रह्माजी, महादेवजी शुकदेव मुनि, ज्ञानी, योगी सब झूल रहे हैं ॥८॥ यहाँ तक कि स्वयं श्री कृष्णजी सगुण-निर्गुण होकर इस खानी-वाणी या जन्म-मरण के भ्रमहिंडोले में झूल रहे हैं ॥९॥

विशेष — कोई खानि-वाणी दोनों झूले पर झूलता है। कोई केवल वाणी के झूले पर झूलता है। नारद-शुकदेवादि त्यागी पुरुष वाणी के भ्रम-हिंडोले में तथा ब्रह्मादि सब खानी-वाणी दोनों के हिंडोले में झूलते हैं।

छौ चारि चौदह सात एकईस, तीनिउ लोक बनाय ॥१०॥
खानी वानी खोजि देखहु, अस्थिर कोइ न रहाय ॥११॥
खण्ड ब्रह्मांड खोजि देखहु, छूटत कितहूँ नाहिं ॥१२॥
साधु संगति खोजि देखहु, जीव निस्तरि कित जाहिं ॥१३॥

शब्दार्थ — छौ = छह शास्त्र। चारि = चार वेद। चौदह = चौदह विद्यायें। सात = सात स्वर्ग। एकइस = इक्कीस भुवन। खानि = मोटी माया। वानी = वाणी, झीनी माया। निस्तरि = मुक्त होकर।

भावार्थ — छह शास्त्र, चार वेद, चौदह विद्यायें बनाकर तथा सात स्वर्ग, इक्कीस भुवन एवं तीन लोकों की कल्पना करके—सब जीव भ्रम-हिंडोले पर झूल रहे हैं ॥१०॥ खोज करके देखो, खानी-वाणी के अभ्यास में पड़े हुए कोई जीव स्थिर नहीं हैं, ॥११॥ नवों खण्ड एवं पूरे ब्रह्मांड में खोज करके देखो (स्व-स्वरूप-बोध के अतिरिक्त) कहीं छूटने का स्थान नहीं है ॥१२॥ सन्तों की संगत में सत्संग करके देखो, जीव मुक्त होकर कहाँ रहेगा ? ॥१३॥

विशेष — सारा संसार भ्रम-हिंडोले के अन्तर्गत है। अतएव जीव मुक्त होकर कहाँ रहेगा ? यह प्रश्न उठता है। इसका उत्तर आगे देते हैं :—

शशि सूर रैनि शारदी, तहाँ तत्त्व परलय नाहिं ॥१४॥
काल अकाल परलय नहीं, तहाँ सन्त बिरले जाहिं ॥१५॥
तहाँ के बिछुरे बहु कल्प बीते, भूमि परे भुलाय ॥१६॥
साधु संगति खोजि देखहु, बहुरि न उलटि समाय ॥१७॥

शब्दार्थ — शारदी = शरद काल की ऋतु आदि। काल-अकाल = अच्छा-बुरा समय।

भावार्थ — चन्द्रमा, सूर्य, रात, शरद आदि किसी प्रकार की ऋतु; जड़तत्त्व प्रलय आदि अपने पारख चेतन स्वरूप में कुछ नहीं है ॥१४॥ जहाँ अच्छा-बुरा समय एवं प्रलय आदि कुछ नहीं है, उसे अपने आप चेतन स्वरूप में बिरले सन्त स्थित होते हैं ॥१५॥ इस अपने आप चेतन-स्वरूप के ज्ञान से वियुक्त होकर; संसार में भूलते-भटकते अनन्तों कल्प एवं अनादि काल का समय बीत चुका है ॥१६॥ अतएव अब विवेकी संतों की संगत में सत्संग करके अपने वास्तविक स्वरूप को परखो और विवेक-

वैराग्यादि का कूक भरकर इस प्रकार स्वरूप-स्थिति में दृढ़ होओ कि जिससे पुनः उलटकर संसार (गर्भवास) में न लीन होना पड़े; अर्थात उपर्युक्त झूले पर नहीं चढ़ना पड़े ॥१७॥

विशेष — पहले प्रश्न उठा था कि जीव मुक्त होकर कहाँ रहेगा ? उत्तर में बताया गया कि मुक्त होकर जीव को कहीं कल्पित लोक-लोकान्तरों में जाने की आवश्यकता नहीं है। सर्व-वासना के अन्त होने पर जीव मुक्त होकर अपने आप शांत स्थित रहेगा। क्योंकि उसके स्वरूप में कुछ परिणामी पदार्थ तत्त्व-प्रकृति नहीं है।

जिसमें कारण-कार्य का सम्बन्ध होता है, उसमें आधार-आधेय का सम्बन्ध होता है। जीव न किसी का कारण है और न कार्य। अतएव मुक्त होने पर न वह किसी का आधार रहेगा, और न आधेय रहेगा। वह स्वतः निराधार रहेगा।

जियत न तरेहु मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै। (बीजक)

अर्थात—जो शरीर रहते-रहते नहीं मुक्त हुआ, वह मर जाने पर क्या मुक्त होगा। जिसकी समस्त जड़ासक्तियाँ समाप्त हो गयी हैं, जो हर क्षण मनोविकारों से ऊपर उठा हुआ स्व-स्वरूप चेतन में स्थित रहता है, जिसको हानि-लाभ की वृत्तियाँ नहीं झकझोर पातीं, जो निर्द्वन्द्व-निर्मल स्वरूप-रत पुरुष है, वही मुक्त-स्वरूप है। ऐसे पुरुष का शरीर रहते-रहते सर्वकामना-आसक्ति समाप्त रहने से शरीरांत होने पर वे आने-जाने, जन्मने-मरनेके चक्करसे रहित मात्र स्वरूप में ही शांत रह जाते हैं।

कतहुँ मुक्ति को धाम नहीं, जहाँ बसत कोइ गाँव।
भव बंधन से छूटिबो, यही मुक्ति को नाँव ।।

ये झूलबे को भय नहीं, जो होय सन्त सुजान ॥१८॥
कहहिं कबीर सत सुकृत मिलै, तो बहुरि न झूलै आन ॥१९॥

शब्दार्थ — सुजान=ज्ञानी। सत=पारख। सुकृत=पुण्य, सत्कर्म, दान-दयादि; भाग्यवान-पुण्यवान।

भावार्थ — उपर्युक्त भ्रम-हिण्डोले का भय विवेक-वैराग्य सम्पन्न ज्ञानी संतों को नहीं है ॥१८॥ सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं कि सर्व मलीनताओं को त्याग कर पुण्यवान उत्तम जीव यदि सत्य पारखस्वरूप का बोध प्राप्त करके उसमें स्थित हो जाय, तो पुनः आकर उक्त हिंडोले पर नहीं झूलेगा ॥१९॥

विशेष — जन्म-मरण के झूले से तभी छुटकारा मिलेगा जब 'सत-सुकृत' मिले। सत्य के साथ सुकृत की भी महान आवश्यकता है। सत उसे कहते हैं जो तीनों काल में रहे। ऐसे पदार्थ दो हैं एक जड़ दूसरा चेतन। जड़ में भी अनेक तत्त्व तथा उनके असंख्य परमाणु हैं, वे सब सत हैं; परन्तु जिस सत की प्राप्ति से मोक्ष मिलता

है वह सत जड़ नहीं है। तो चेतन सत पर विचार कीजिये; चेतन भी एक नहीं, असंख्य हैं; परन्तु उन सभी चेतनों से भी मोक्ष में प्रयोजन नहीं। केवल अपने आप मैं चेतन हूँ और सत हूँ। सत्रहवीं शताब्दी में पाश्चात्य दार्शनिक डेकार्ट ने भी कहा था—

"यदि यह निश्चय हुआ कि मुझे संशय है तो यह भी निश्चय है कि मैं सोचता हूँ। क्योंकि संशय करना एक प्रकार सोच या विचार है। पर जो वस्तु है ही नहीं वह कैसे कुछ विचार कर सकती है। इसलिए यदि मैं विचार करता हूँ तो मैं अवश्य हूँ—I think therefore I am इससे यह निःसन्देह सिद्ध हुआ कि मैं हूँ"।

(यूरोपीय दर्शन)

तात्पर्य यह कि 'मैं सत हूँ' इसमें कोई कोर-कसर नहीं, इसके साथ-साथ मैं चेतन हूँ' यह भी निर्विवाद है; मैं एकदेशी हूँ, सर्वत्र व्यापक नहीं—यह ईमानदारी की बात है। यदि मैं सर्वत्र होता तो विलायत की बात वहाँ के अन्तःकरणों के माध्यम से जान लेता, परन्तु सर्वत्र की बात मैं नहीं जानता, इसलिये मैं व्यापक नहीं हूँ। मनोविकार के सम्बन्ध में ही मैं विकारी बनता हूँ अन्यथा उसे हटाकर मैं निर्मल हूँ, अर्थात मैं स्वरूप से सर्वथा शुद्ध हूँ। चेतन विलक्षण वस्तु है, इसलिये वह जड़ से बना हुआ नहीं, अपितु अजन्मा है, इसलिये वह किसी का अंश भी नहीं, क्योंकि अंश का नाश हो जाता है। वह अंशी भी नहीं, क्योंकि अंशी विकारी होता है, तभी उसमें अंश बनते हैं। अतएव मैं व्याप्य-व्यापक, अंश-अंशी तथा जड़ से सर्वथा पृथक सद्-चिद्-शान्त हूँ—इस प्रकार ठीक से समझ लेना ही सत की प्राप्ति है। सत मैं ही हूँ, अपने आप को ठीक समझकर अपने आप में ही स्थित हो जाऊँ, बस सत मिल गया।

उपर्युक्त सत का बोध प्राप्त करके उस सत में स्थित होना तब तक सम्भव नहीं जब तक 'सुकृत' को न प्राप्त कर लें। जैसे जब तक खेत को कई बार जोत न लिया जाय, उसमें खाद-पानी डालकर उसे उर्वर न बना लिया जाय, तब तक उसमें बीज डालना बेकार है। इसी प्रकार जब तक सुकृत का संचय न कर लिया जाय तब तक न सत का बोध होगा न उसमें स्थित।

प्रश्न होता है कि सुकृत क्या है ? उत्तर में समझना चाहिये समस्त पुण्य-आचरण ही सुकृत है। पहले तो चोरी, हिंसा, व्यभिचार, अभक्ष्यभोजन तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि विकारों को छोड़ दिये जायँ, पुनश्च अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, दया पवित्राचार लोक-सेवा, प्राणिरक्षा, विवेकी सन्त-गुरु की सेवा आदि किये जायँ। यह मन-इन्द्रियों का उत्तम-निर्मल व्यवहार ही सुकृत है। इसका आचरण करने वाला ही भगवान है। अपने भाग्य के विधाता हम स्वयं हैं।

अच्छा, तो इस प्रकार उत्तम आचरण वाले व्यक्ति का हृदय कमाये हुए खेत की भाँति उर्वर (उपजाऊ) होता है और उसमें ज्ञान का बीज पड़ते ही उग आता है

और थोड़े ही दिनों में लहलहा कर परमार्थ का वृक्ष सर्वांग हो जाता है और मुक्ति का उत्तम फल लग जाता है। इसीलिये तत्त्वदर्शी गुरु-कबीर ने कहा है कि —

"कहहिं कबीर सत सुकृत मिलै, तो बहुरि न भूलै आन।"

अर्थात पुण्याचरणयुत निर्मल मन वाले व्यक्ति को जब सत-स्व-स्वरूप का बोध तथा स्थिति प्राप्त हो जाती है, तब वह पुनः जन्म मरण या माया के भूले में नहीं आता।

मुमुक्षु का परम कर्तव्य है कि वह विवेकी सन्तों के सत्संग में स्व-स्वरूप को ठीक से जाने और खानी-वाणी का अभ्यास त्याग कर स्वस्वरूप में स्थित होवे, जिससे यह दारुण-दुःखद हिण्डोले से पिण्ड छूटे।

४४—स्वर-व्यंजनों की उत्पत्ति, उनके स्थान तथा देवतादि का वर्णन

चौपाई—४३

पुनि परपंच जो जग परचारा। सुनहु संत सो सब विस्तारा ॥१॥
अनन्त रूप आपुहि बिटमाई। एक विशेष दूसर होय आई ॥२॥

शब्दार्थ — परपंच = जंजाल। आपुहि = ब्रह्म। बिटमाई = निर्माण किया। विशेष = असाधारण, असामान्य, अधिक, महान ब्रह्म। दूसर = माया।

भावार्थ — हे सन्तो! भूले मनुष्यों द्वारा संसार में जो कल्पित जंजाल का प्रचार किया गया है उन सबको आप लोग विस्तार पूर्वक सुने ॥१॥ (कहते हैं) स्वयं परब्रह्म ही इस संसार के अनन्त जड़-चेतन रूपों का निर्माण किया है। जगतरचना में एक तो महान परब्रह्म स्वयं ही है, दूसरी उसके जगत रचने की इच्छा है जो माया रूप होकर प्रकट हुई है ॥२॥

धर्मराय सो थूल स्वरूपा। दुतिया नारी अर्धंग अनूपा ॥३॥
जो विशेष लिंगम निर्माई। सोई कला अस्थूल बनाई ॥४॥

शब्दार्थ — धर्मराय = परब्रह्म। थूल = सूक्ष्म। अर्धंग = अर्धांगिनी, आधा अंग। अनूपा = विलक्षण, उपमारहित; अद्भुत। विशेष = महानब्रह्म। लिंगम = सूक्ष्म।

भावार्थ — जो परब्रह्म है वह सूक्ष्म स्वरूप है, और जगत का जो दूसरा कारण है वह अद्भुतमाया है जो ब्रह्मकी अर्धांगिनी है ॥३॥ जो परब्रह्म है वह किसी वस्तु की सूक्ष्म रचना करता है और माया उसी की स्थूल रचना कर देती है ॥४॥

विशेष — कुछ लोगों का मत है कि ब्रह्म किसी वस्तु की रचना करने के लिये केवल संकल्प करता है और माया उसकी स्थूल रचना कर देती है।

धर्म केल करै संग नारी । रचना कछुक और विस्तारी ॥५॥
कर्ता आपु श्वास गहि लीन्हा । मुख माया अर्धंगी दीन्हा ॥६॥

शब्दार्थ — धर्म = धर्मराय, परब्रह्म । नारी = माया । केल = केलि क्रीड़ा । कर्ता = ब्रह्म ।

भावार्थ — (कहते हैं) परब्रह्म माया के साथ खिलवाड़ करता हुआ कुछ अधिक रचना का विस्तार किया ॥५॥ स्वयं परब्रह्म तो श्वास का स्थान ले लिया और अपनी अर्धांगिनी माया को मुख का स्थान दिया ॥६॥

विशेष — आगे स्वर-व्यंजनों की उत्पत्ति का वह क्रम कहने जा रहे हैं जिसे कुछ लोगों ने मान रखा है । उपर्युक्त चौपाइयाँ इस प्रसंग की एक भूमिका हैं । यहाँ ग्रन्थकर्ता यह कहना चाहते हैं कि स्वर-व्यंजनों की उत्पत्ति मुख में श्वास टकरा कर होती है । इसमें श्वास प्रमुख है तथा मुख का दूसरा स्थान है । जिस प्रकार कुछ लोगों ने कल्पित ब्रह्म और माया को हर जगह घुसेड़ रखा है, वही नियम उन लोगों ने स्वर-व्यंजनों की उत्पत्ति में भी अपनाया है । उनलोगों ने माना है कि स्वर-व्यञ्जनों के कारणभूत श्वास ही ब्रह्म है तथा मुख ही माया है ।

अक्षर चौंतिस कीन्ह पसारा । एक शून्य सबहीते न्यारा ॥७॥
शून्याशून्य निरंजन नेही । चौंतिस सो मायाके देही ॥८॥

शब्दार्थ — अक्षर चौंतिस = क से क्ष तक चौंतीस व्यञ्जन । एकशून्य = ॐ या ब्रह्म । शून्याशून्य = शून्य-ही-शून्य, '०' ।

भावार्थ — श्वास और मुख के संघर्षण से चौंतीस अक्षरों का विस्तार होता है । और एक जो शून्य अर्थात विन्दु '०' है वह ब्रह्म है, वह सबसे पृथक है ॥७॥ ब्रह्म केवल शून्य ही शून्य का प्रेमी है । और जो क से क्ष तक चौंतीस अक्षर हैं वे माया के स्वरूप हैं ॥८॥

विशेष—पूर्वपक्ष का कथन है कि श्वास और मुख से अर्थात ब्रह्म और माया से सभी अक्षर प्रकट होते हैं । उसमें शून्य एवं विंदु '०' ब्रह्मस्वरूप है और अन्य चौंतीस अक्षर माया स्वरूप हैं ।

चिदाकाश श्वासा अनुमाना । दुतिया कंठ खेत परवाना ॥९॥
परत बीज तहाँ उपजी बानी । अक्षर थूल भई सहिदानी ॥१०॥

शब्दार्थ—चिदाकाश = चेतनाकाश; आकाश के समान व्याप्तचेतन एवं ब्रह्म । अनुमाना = अटकल लगाया । दुतिया = माया । कंठ = गला । बीज = इच्छा, वासना । थूल = सूक्ष्म । सहिदानी = पहिचान ; चिन्ह ।

भावार्थ—लोगों ने अटकलबाजी की कि मनुष्य का श्वास ही चिदाकाश ब्रह्म है । और स्वर-व्यंजनों का उत्पत्तिस्थान कंठक्षेत्र ही माया है ॥९॥ श्वासब्रह्म का

इच्छाबीज मायारूप कंठक्षेत्र में पड़ते ही वाणी उत्पन्न हुई। ये उत्पन्न हुए सूक्ष्म अक्षर ही समस्त वाणीविस्तार के चिन्ह या कारण हुए ॥१०॥

साखी—चिदाकाश श्वासा भया, कंठ सो दुतिया खेत।
उपजै अक्षर थूल सो, अपनी कला सचेत ॥१७२॥

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म। सचेत = सावधान, चेतनायुक्त।

भावार्थ—(कहते हैं) आकाशवत चेतन ब्रह्म श्वास हुआ और कंठक्षेत्र माया हुई। इस प्रकार ब्रह्म के अपने सचेतन गुणों से सूक्ष्म अक्षरों की उत्पत्ति हुई ॥१७२॥

सात स्वर्ग सो खेतमों, खंड खंड परवान।
पाँच तत्त्व गुण तीन ले, अक्षर सब प्रगटान ॥१७३॥

शब्दार्थ — सात स्वर्ग = सात वर्ग—क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, य वर्ग तथा श वर्ग। खेत = क्षेत्र, कंठ, माया। खंड-खंड = पृथक-पृथक। परवान = प्रमाण, मानना। पाँचतत्त्व = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। गुण तीन = तीनगुण सत, रज तथा तम।

भावार्थ — वाणी की दृष्टि से कंठ में सात स्वर्ग माना है। भाव यह है कि माया-रूपी कंठक्षेत्र में कवर्ग आदि सातवर्ग पृथक-पृथक माना है। इस प्रकार पांच तत्त्व तथा तीन गुणों के संयुक्त मानवशरीर से सभी अक्षर प्रकट होते हैं ॥१७३॥

विशेष — कोई अ, उ, म, अर्ध चन्द्र '˘' और बिंदु '०' ये पाँच तथा तत्, त्वम, असि ये तीन सब आठों से वाणी की उत्पत्ति मानता है।

किसी कल्पित ब्रह्म तथा माया को श्वास और मुख बतला कर उनसे अक्षरों की उत्पत्ति कहना एक भ्रम है। वस्तुतः श्वास और मुख दोनों जड़ हैं। अविनाशी चेतन जीव शरीर में रहकर और श्वास तथा मुख में अपनी सत्ता देकर अक्षरोंका उच्चारण करता है। चेतनजीव के निकल जाने पर अक्षरों का उच्चारण नहीं हो सकता। इसलिए प्रमुखता चेतनजीव की है।

चौपाई—४४

अवर्ग कवर्ग चवर्ग टवर्गा। तवर्ग पवर्ग यवर्ग शवर्गा ॥१॥
सात स्वर्ग अपवर्ग स्वर मानो। षोड़श कला ताहि पहिचानो ॥२॥

शब्दार्थ — अवर्ग = अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। कवर्ग = क ख ग घ ङ। चवर्ग = च छ ज झ ञ। टवर्ग = ट ठ ड ढ ण। तवर्ग = त थ द ध न। पवर्ग = प फ ब भ म। यवर्ग = य र ल व। शवर्ग = श ष स ह क्ष। ताहि पहिचानो = इनकी कसौटी करो।

भावार्थ—अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग'। यवर्ग तथा शवर्ग—ये आठ वर्ग हैं ॥१॥ कवर्ग से शवर्ग तक सात स्वर्ग रूप मायिक हैं; अवर्ग सोलह स्वर को

अपवर्ग यानी मोक्षकारण समझो । अ आ आदि सोलह स्वर षोड़श कलायुक्त ब्रह्म ही है । परन्तु विवेकियों को चाहिये कि इनकी कसौटी करें ॥२॥

विशेष — पूर्वपक्ष की मान्यता है कि सातस्वर्ग जैसे नाशवान हैं और उसमें गये लोग संसार में लौट आते हैं ; परन्तु आठवाँ अपवर्ग ब्रह्मधाम हैं जहाँ पर जाकर जीव कभी नहीं लौटता । उसी प्रकार कवर्ग से शवर्ग तक सात वर्ग मायामय सातस्वर्ग के तुल्य हैं और अवर्ग पवर्ग के समान ब्रह्मरूप है । देखा भी जाता है कि क से क्ष तक चौंतीसों अक्षरों पें जब सोलह स्वर मिलते हैं तभी उनका पूर्ण उच्चारण होता है । स्वरों के न मिलने पर अक्षर अधूरे ही उच्चारण होते हैं जैसे क् ख् आदि । अतएव चौंतीस अक्षर माया है और सोलह स्वर ब्रह्म रूप ।

परन्तु कसौटी एवं परख करने से उपर्युक्त मान्यता भ्रमपूर्ण है । ग्रन्थकर्ता ने लोगों की मान्यता परखाने के लिये ही उनके स्वरूपों का वर्णन किया है । बस्तुतः सभी स्वर-व्यंजन मायिक तथा चेतन मनुष्यकी कलायें हैं ।

अठवें आठ कला विस्तारा । दो विध कला नर नारि सँवारा ॥३॥
नवयें श्वास अर्धचन्द्र देखावै । दशये निःअक्षर आपु कहावै ॥४॥

शब्दार्थ -- कला = रचना; कल्पना । नवयें = नौ के अंक–१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ ।

भावार्थ — आठवें अवर्ग में भी आठ लघु तथा आठ दीर्घ की अलग-अलग कल्पना करके दोनों को नर तथा नारी के रूप में निर्धारित किया है । अर्थात अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ तथा अं ये लघु तथा नारी रूप हैं और आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ ऐ, औ तथा अः दीर्घ तथा पुरुष रूप हैं ॥३॥ १ से ९ की संख्या तक को श्वास के साथ अर्धचन्द्र '‿' रूप माया में बतलाते हैं; और दसवाँ विंदु '०' या जीरो को स्वयं निःक्षर ब्रह्मरूप कहते हैं ॥४॥

विशेष — गणना करने के लिये अंक केवल १ से ९ तक नौ ही होते हैं (इसके आगे विन्दु '०' होता है । ये ही दस घूमघूम कर करोड़ों – अरबों की गणना में काम आते हैं । कहते हैं १ से ९ अंक तक माया रूप है तथा दसवाँ विंदु '०' ब्रह्मरूप है । इस प्रकार पूर्वपक्षी ने कल्पित ब्रह्म तथा माया को सब जगह ला खड़ा किया है ।

शून्याशून्य निःअक्षर माना । अक्षर श्वासा अर्धबखाना ॥५॥
छव वानी छव भास शरीरा । पारस अमी कहावै नीरा ॥६॥

शब्दार्थ — छव वानी = छह वाणी, छह प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि; या छह दर्शनों की वाणियाँ । छवभास = योगी जंगमादि के छह सिद्धांत (मानुष विचार के अंत षड्दर्शन वर्णन में देखें) पारस =

वह कल्पित पत्थर जिसमें लोहा छू जाने से सोना हो जाता हो; तात्पर्य में बहुत लाभकर पदार्थ। अमी = अमृत; अमर। नीरा = पानी; वाणी।

भावार्थ — शून्य-ही-शून्य को अक्षरातीत ब्रह्म माना है; और श्वास से प्रकट अक्षरों को माया रूप कहा है। अथवा मस्तक में शून्य विंदु '०' रूप ब्रह्मकी और नाभि में 'अर्धचन्द्र '˘' रूप माया की कल्पना कर रखी है ॥५॥ प्रत्यक्षादि छह प्रमाण योगी, जंगमादि छह दर्शनों की वाणियाँ तथा उनके सिद्धांत सब मानवशरीर एवं मन के भास एवं कल्पनायें हैं। जो अपने-अपने सिद्धांत को लोग कल्याणकर एवं अमृततुल्य मान रहे हैं, उसमें बहुत कुछ केवल कल्पित वाणी का ही बोल-बाला है॥६॥

विशेष — मानव के मन और तन से ही सारी वाणियाँ बनती हैं। इसलिये सारी वाणियाँ उसी के भास, चमक, प्रतीत व कल्पनायें हैं। परन्तु उनमें से कुछ ऐसी होती हैं जो सत्यबोध कराने का माध्यम बनती हैं और बहुत ऐसी होती हैं जो भ्रम में ले जाती हैं। संसार की सारी वाणियाँ न त्याज्य हैं न ग्राह्य। त्याग-ग्रहण विवेक पूर्वक ही उचित है।

आकाश सातके लक्ष बनाई। भिन्न भिन्नके प्रगट देखाई ॥७॥
नासा कंठ अरु सुलभ उचारा। ऊर्ध तालबंध दंत विस्तारा ॥८॥
ओठ समेत सो सात कहावै। अष्टम निःअक्षर श्वास देखावै ॥९॥

शब्दार्थ — तालबंध = तालु। ओठ = ओष्ठ।

भावार्थ — आकाश में सात स्वर्ग हैं यह कल्पना करके अक्षरों की उत्पत्ति के लिये भी सात स्थानों का निर्धारण किया है। उनको आगे पृथक-पृथक स्पष्ट करके दिखाते हैं ॥७॥ नासिका, कंठ, सुलभ, ऊर्ध, तालु, दंत तथा ओष्ठ अक्षरों के उच्चारण के ये सात स्थान कहलाते हैं; और इन सबसे पृथक आठवाँ अक्षरातीत श्वास स्वरूप ब्रह्म को बतलाते हैं ॥८,९॥

विशेष — किन स्थानों से किन अक्षरों का उच्चारण होता है। इसका विवरण देखें—

नासिका से	—	ङ, ञ, ण, न, म।
कण्ठ से	—	क, ख, ग, घ।
सुलभ	—	य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष।
ऊर्ध	—	ट, ठ, ड, ढ।
तालु	—	च, छ, ज, झ।
दंत	—	त, थ, द, ध।
ओष्ठ	—	प, फ, ब, भ।

तीन अवस्था तेहि विस्तारा । तुरिया सुषुप्ति थूल सँवारा ॥१०॥
तुरिया श्वासा नासा शूँन । कंठ इत्यादिक लिंगम धूँन ॥११॥

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म; स्वप्न । शूँन = शून्य; सुषुप्ति । धूँन = हिलाया हुआ; कँपाया हुआ; प्यास या तापसे ग्रस्त; तात्पर्यमें अनेक मनोभावों से चंचल स्वप्न ।

भावार्थ — इसमें भी तुरीय, सुषुप्ति और स्वप्न—इन तीन अवस्थाओं की कल्पना की गयी ॥१०॥ श्वास को तुरीय, नासिका को सुषुप्ति तथा कंठ इत्यादि को सूक्ष्म शरीर की स्वप्न अवस्था मानी गयी है ॥११॥

परा पश्यंती मध्यमा बानी । चारि अवस्था वेद बखानी ॥१२॥
रूप सँवारी मात्रा लाई । अनबनि बानि तहाँ प्रगटाई ॥१३॥

शब्दार्थ — बानी = वैखरी । वेद = वाणी । अनबनि = अनबन; अनेक; झगड़ा ।

भावार्थ — जैसे जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ये चार अवस्थायें हैं; वैसे वाणी की परा, पश्यंती, मध्यमा तथा वैखरी ये चार अवस्थायें कही जाती हैं ॥११॥ लोगों ने मात्रा, वर्ण, संधि आदि करके तथा व्याकरण द्वारा शब्दों एवं वाक्यों को सुधार कर अनेक झगड़े की वाणियाँ रची हैं ॥१३॥

विशेष — एक ही शब्द मूलाधार, नाभि, हृदय तथा कंठके संयोग से क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—इन चार नामों से कहा है ।

अक्षर पाँच पाँच प्रति स्वर्गा । सात स्वर्ग आपु अपवर्गा ॥१४॥
सोई अक्षर प्रगटे चौंतीसा । आपुहि शून्य भये पैंतीसा ॥१५॥

शब्दार्थ — स्वर्गा = स्वर्ग, वर्ग । आपु = ब्रह्म

भावार्थ — क से श तक के प्रति वर्ग में पाँच-पाँच अक्षर हैं (केवल य वर्ग में चार है) । ये सात वर्ग मायिक स्वर्ग तुल्य हैं और स्वयं ब्रह्म अपवर्ग एवं मुक्त रूप है ॥१४॥ उन सात वर्गों में चौंतीस अक्षर प्रकट हुए हैं और स्वयं परब्रह्म शून्य एवं विंदु रूप पैंतीसवाँ है ॥१५॥

सुनहु सो अक्षर महा प्रपंचू । रचना कला काल सब कंचू ॥१६॥
श्वासा आपु एकला राई । बीच सातके भाग देखाई ॥१७॥

शब्दार्थ — प्रपंचू = प्रपंच, भवजाल । कला = कल्पना । काल = मन । कंचू = कच्चा, थोथा । राई = राजा । बीच = मध्य, माया ।

भावार्थ — सज्जनो ! सुनो, उन अक्षरों की समूह रूप वाणियाँ महान भवजाल बन गयीं । जो सत्य के आधार से रहित केवल मनःकल्पनाओं से ही बनीं वे सब वाणियाँ थोथी एवं असत्य हैं ॥१६॥ जिससे वाणियाँ बनती हैं उस श्वास को स्वयं

सम्राट अद्वैत ब्रह्म मान लिया गया; और क वर्गादि सात वर्गों को माया का अंश बताया गया ।।१६।।

विशेष — कितने लोग शब्द ही को ब्रह्म मानकर उसकी उपासना करते हैं। उनकी दृष्टि से तो शब्दों का सारासार विवेचन किया ही नहीं जा सकता। इस प्रकार बड़े-बड़े भुलावन में जीव पड़ा है।

साखी— अपनी अपनी भाग ले, करहिं सवै विलास।
एकनि एक मिलायके, अंत करै सो नाश ।।१७४।।

शब्दार्थ — विलास = क्रीड़ा।

भावार्थ — अपने-अपने मतों की सिद्धि के लिये अक्षरों को लेकर तथा वर्ण, मात्रा, संधि आदि एक दूसरे से यथायोग्य मिलाकर सब मतवादी वाणी-विलास कर रहे हैं। परन्तु शरीर छूटते-छूटते विद्वता के सभी मद समाप्त हो जाते हैं ।।१७४।।

विशेष — वाणी केवल वस्तुओं को समझने-समझाने के लिये है। अतएव सत्य-ज्ञान तथा सदाचार विना सब थोथी है।

श्वासासों स्वर ऊपजे, स्वरसे होय चौंतीस।
तेहि अक्षर बहु वानी बनी, शून्याशून्य पैंतीस ।।१७५।।

शब्दार्थ — स्वर = आवाज। शून्याशून्य = शून्य-ही-शून्य, केवल शून्य।

भावार्थ — श्वास से स्वर उत्पन्न होता है वही स्वर ओष्ठ, दंत, तालु आदि में टकरा कर चौंतीस अक्षरों के रूप में बदल जाता है। उन्हीं चौंतीस अक्षरों से सार असार सभी वाणियाँ बनती हैं; और केवल शून्यको पैंतीसवाँ --ब्रह्म मानते हैं ।।१७५।।

चौपाई—४५

नासा आलंभन शूना कीन्हा। ओठ भाग माया तेहि दीन्हा ।।१।।
सुलभ अस्थान विशेप सनेही। नौ अक्षरमें थूल उरेही ।।२।।

शब्दार्थ — नासा = नासिका। आलंभन = पकड़ना, छूना, उखाड़ना, वध; तात्पर्य में ग्रहण करना। शूना = शून्य; आकाश, ब्रह्म। थूल = सूक्ष्म। उरेही = उरेहना, चित्र खींचना, तात्पर्य में अक्षरों का उच्चारण।

भावार्थ — नासिका से ग्रहण या उच्चारण किये जाने वाले अक्षर ङ, ञ, ण, न, म का देवता शून्य निरंजन ब्रह्म हैं; और ओष्ठ भाग से उच्चारित अक्षर प, फ, ब, भ का देवता माया है, मनुष्यों ने ऐसी कल्पनायें की हैं ।।१।। सुलभ स्थान का देवता अत्यन्त प्रेमी परब्रह्म है, जिसने सम्पूर्ण वाणी जाल का य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष — इन नौ अक्षरों में चित्र खींच दिया है ।।२।।

विशेष — कहते हैं क से म तक पचीसों अक्षरों का मूल य से क्ष तक नौ अक्षर ही हैं। उक्त पचीस माया स्वरूप तथा नौ कारण ब्रह्म स्वरूप हैं।

ब्रह्मा कंठ शंभु दंतारी। हरिके ऊर्ध अस्थान सँवारी ॥३॥
तालबंध अक्षर माया प्रतिकूला। सो तालु सबहिनके मूला ॥४॥

शब्दार्थ — तालबंध = तालु। प्रतिकूला = विरुद्ध, कटु। तालु = ऊपर के दाँतों और कौवे के बीच का गड्ढा।

भावार्थ — ब्रह्मा जी महाराज कंठ में, शिव दंत में, विष्णु ऊर्ध स्थान में तथा जो तालु सभी अक्षरों के उच्चारण करने का मूल आधार है। उसमें ब्रह्मविरोधिनी कटु माया निवास करती है॥ ३, ४॥

कला युक्ति अक्षर उच्चारा। अक्षर चौंतिस एक नियारा ॥५॥
अक्षर पचीस समाना जाई। वासा पाँच तहाँ निर्माई ॥६॥

शब्दार्थ — कला = गुण, हुनर। युक्ति = उपाय। एक = ॐ, ब्रह्म।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से अनेक कला और युक्ति से चौंतीस अक्षरों के उच्चारण का निर्धारण किया और एक शून्य ब्रह्म उससे पृथक रखा ॥५॥ कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग—इन पाँच वर्गों में क से म तक पचीसों अक्षर समाये हुए हैं, और इन पाँचों वर्गों में पाँच देवताओं के निवास की कल्पना कर रखी है ॥६॥

पाँच पाँच होय सोई प्रगटाना। पुनि सोई शून्या माँहि समाना ॥७॥
प्रथम अज दूजे हरि आया। तीजे शंभु चौथेसो माया ॥८॥
पँचये आपु निरंजन राया। पाँच पाँच यहि विधि निर्माया ॥९॥

शब्दार्थ — शून्या = ब्रह्म।

भावार्थ — कवर्ग से पवर्ग तक पांचों वर्ग पाँच-पांच अक्षरों वाले हैं और ये पाँच देवताओं से प्रकट हुए हैं और अंततः सब शून्य ब्रह्म में लीन हो जाते हैं ॥७॥ कवर्ग के देवता ब्रह्मा, चवर्ग के विष्णु, टवर्ग के शिव, तवर्ग के माया और पवर्ग के स्वयं सम्राट ब्रह्म देवता हैं। इस प्रकार ये पाँचों देवता पाँच-पांच अक्षरों को प्रकट किये ॥८, ९॥

छठयें सुलभ नौ अक्षर नेहा। सोइ नौ तत्त्व लिंगमके देहा ॥१०॥
पचीस कारज अक्षर अस्थूला। नौ सो कारण परगट थूला ॥११॥
शून्याशून्य होय सबै बिलाना। पुनि सो चौंतिसके उतपाना ॥११॥

शब्दार्थ — नेहा = प्रेम; सम्बन्ध। लिंगम = सूक्ष्म। अस्थूला = स्थूल, मोटा। थूला = सूक्ष्म। शून्याशून्य = केवल शून्य।

भावार्थ — उपर्युक्त पंचवर्गों से आगे छठाँ सुलभ स्थान से सम्बन्धित जो य से क्ष तक नौ अक्षर हैं वे मानो उपर्युक्त पचीस अक्षर रूपी स्थूल शरीर को प्राणवान बनाये रखने के लिये नौ तत्त्व की सूक्ष्म देह हैं ।।१०।। क से म तक ये पचीस अक्षर उक्त नौ के कार्य व स्थूल काया रूप हैं; और य से क्ष तक ये नौ उनके कारण सूक्ष्म देह हैं ।।११।। (कहते हैं) अंत में केवल शून्य ब्रह्म में सब विलीन हो जाते हैं, और पुनः उसी से चौंतीसो उत्पन्न होते हैं ।।१२।।

विशेष — क से म तक पचीस अक्षर पचीस प्रकृतियुक्त स्थूल शरीर के सदृश हैं, और य से क्ष तक नौ अक्षर पंचविषय तथा चतुष्टय अंतःकरण रूप नौ तत्व की सूक्ष्म देह के सदृश हैं । नौ कारण तथा पचीस को कार्य माना है ।

साखी—उपजावै खपावै अक्षर, अनेकन्हि बानि प्रकाश ।
परा पश्यंती मध्यमा, चारि अवस्था भास ।।१७६।।

शब्दार्थ — खपावै = लीन करना, मिटा देना । चारि अवस्था = जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय ।

भावार्थ —मनुष्य ही अक्षरों का उच्चारण करता, उसे लिखता तथा अनेक वाणियों का प्रकाशन करता है, और पुनः उन्हें काट कर या चुप होकर मिटा देता है । इस प्रकार वाणी के रूप में परा, पश्यंती, मध्यमा तथा वैखरी ये चारो अवस्थाओं के भास अध्यास हैं ।।१७६।।

विशेष — सभी वाणियाँ मनुष्य की कल्पना से निर्मित हैं, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सब त्याज्य हैं, अपितु सारासार पर विवेक करना आवश्यक है । एक काँटा गड़ जाता है और दूसरे काँटे से उसे निकाला जाता है । हैं दोनों काँटे ही । अंत में दोनों छोड़ दिये जाते हैं । इसी प्रकार असार वाणी का त्याग तथा सार का ग्रहण करना चाहिये । अंततः देह के साथ सब छूट जाती हैं ।

नाभि परा पश्यंती हृदय, कंठ मध्यमा सोय ।
उच्चारे सोइ वैखरी, स्वर आलंभ सो होय ।।१७७।।

शब्दार्थ — आलंभ = पकड़ना, ग्रहण, आधार ।

भावार्थ — परा नाभि में, पश्यंती हृदय में, मध्यमा कंठ में तथा वैखरी वाणी मुख में रहती है । और इनके उच्चारण के केवल अ-आ आदि सोलह स्वर ही आधार हैं।

विशेष — परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के स्थान "वृहत् हिंदी कोश" में क्रमशः मूलाधार, नाभि, हृदय और कंठ दिया है । यहाँ नाभि, हृदय, कंठ और मुख दिया है । दोनों में कोई खास अंतर नहीं है ।

४५–सोहं (सोऽहम्) शब्द की उत्पत्ति का वर्णन

चौपाई—४६

अक्षर रचि कन्या प्रगटाई । प्रथमें सोहं शब्द बनाई ॥१॥
सोहं शब्दको सुनहु प्रकारा । जाहि भाँति से तेहि उच्चारा ॥२॥

शब्दार्थ — कन्या = वाणी । सोहं = सोऽहम्, वह मैं हूँ ।

भावार्थ — मनुष्यों ने चौंतीस व्यंजन तथा सोलह स्वर बनाकर पीछे से अनेक वाणियाँ रचीं । बहुत पहले सोऽहम् शब्द की कल्पना की गयी ॥१॥ सोऽहम् शब्द का वह भेद सुनो जिस प्रकार उसका उच्चारण होता है ॥२॥

श्वासा आपुहि खैंची जबहीं । सकार अक्षर अनुमानी तबहीं ॥३॥
तीन कला तेहि मध्य निवासा । ससा अकार तीजे सो श्वासा ॥४॥

शब्दार्थ — कला = अंश, भाग । ससा = 'स' अक्षर । अकार = 'अ' स्वर ।

भावार्थ — योगियों ने जब स्वयं श्वास को खींचा, तब 'सो' अक्षर का अटकल किया ॥३॥ उसमें तीन अंशों का निवास होना माना 'स' अक्षर, 'अ' कार तथा तीसरा श्वास वायु ॥४॥

विशेष — किसी भी अक्षर के पूर्ण उच्चारण में अ मिला रहता है । अ के बिना अक्षर का लघु रूप में उच्चारण होता है । 'स' में भी अ मिला है । 'स' में अ न रखे तो उच्चारण होगा 'स्' । अतएव 'स' में अकार मात्रा है ।

श्वासा अर्धचंद्र अनुहारी । सूर अकार मात्रा बिस्तारी ॥५॥
ससा गूँज एक रूप सँवारी । तीन कला ले सो उच्चारी ॥६॥

शब्दार्थ — अर्धचन्द्र = 'ँ' । अनुहारी = अनुहार, आकृति । सूर = सूर्य, प्रकाशस्वरूप । ससा = स, स ।

भावार्थ — श्वासा ब्रह्मरूप है और वह अर्धचन्द्र की आकृति में नाभि में रहता है; और 'स' में जो अकार मात्रा मिली है उसका विस्तार सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप है ॥५॥ उक्त अर्धचन्द्राकार श्वास तथा प्रकाशस्वरूप आकार मात्रा को लेकर स, स का एक समवेत सत्ता रूप सुन्दर स्वर गूँजता है । इस प्रकार 'सो' या 'स' तीन भागों को लेकर उच्चरित होता है ॥६॥

आपु श्वास सुर इच्छा गाजै । ससा सोई संसार बिराजै ॥७॥
सोई आदि उतपति परवाना । परलय अंत दूजा संधाना ॥८॥

शब्दार्थ — आपु = ब्रह्म । सुर = स्वर । गाजै = गर्जना करना; आधिपत्य-करना । संधाना = अनुसंधान, खोज ।

भावार्थ — श्वास या स्वर स्वयं ब्रह्म है, वह जगत बनाने की इच्छा करके गर्जना किया, फिर संसार रच कर वह 'स' या सो के रूप में विश्व में अवस्थित हो गया ॥७॥ वही सबका आदि तथा जगत को उत्पन्न करने वाली मुख्य सत्ता है। संसार का प्रलय करने वाली दूसरी सत्ता की भी योगियों ने खोज की तो उसे 'हम्' के रूप में पाया ॥८॥

विशेष — 'सो' से सृष्टि तथा 'हम्' से विनाश की कल्पना कर रखी है। 'हम्' की उत्पत्ति का भी प्रकार सुन लीजिये।

छोड़त श्वास बिलानी जबहीं। हं अक्षर उपराजी तबहीं ॥९॥
हंकार अक्षर अस्थूल सनेहा। अंत नास्ति शून्या अस्नेहा ॥१०॥

शब्दार्थ — हं=हम्, ऽहम्। अस्थूल=स्थूल; मोटाभाग।

भावार्थ — (पहले श्वास खींचने पर 'सो' अक्षर की उत्पत्ति बनायी गयी थी) जब उस श्वास को छोड़ा जाता है और 'सो' अक्षर विलीन होता है, तब 'हम्' अक्षर की उत्पत्ति होती है ॥९॥ 'हम्' आकार का अक्षर स्थूल भौतिक पदार्थों का अहंकार लेकर उसी से स्नेह रखता है। अन्ततः तो वह शून्य में स्नेह करने वाला सबका नाशक बन जाता है ॥१०॥

हंकार अक्षर प्रगट अस्थूला। नाना स्वाभाविक नष्ट सो मूला ॥११॥
थूल सकार अस्थूल हंकारा। शून्याशून्य परलय तर डारा ॥१२॥

शब्दार्थ — स्वाभाविक=स्वभाव से। थूल=सूक्ष्म। सकार='स' या 'सो'। अस्थूल=स्थूल। शून्याशून्य=केवल शून्य।

भावार्थ — ऽहम् शब्द स्वभाव से ही नाना स्थूल पदार्थों को जड़ से समाप्त कर देता है; अर्थात हम या ऽहम् प्रलय का अधिष्ठाता है ॥११॥ 'सो' सूक्ष्म है और जगत उत्पत्ति का कारण है; और 'ऽहम्' स्थूल है तथा विश्व को प्रलय में डाल कर सब कुछ शून्य कर देने वाला है ॥१२॥

उतपति पालन परलय कीन्हा। पाँच कला तीन गुण सब दीन्हा ॥१३॥
आदि अंत सों करहिं विचारा। सोहं शब्द उठै गुंजारा ॥१४॥

शब्दार्थ — पाँच कला=पाँच भाग या अंश—सोऽहम्—स+ो+ऽ+ह+म्। तीनगुण=सो+ऽ+हम्—'सो' स्त्रष्टा, 'ऽ' पालक तथा 'हम्' नाशक।

भावार्थ — 'सोऽहम्' शब्द से उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय की कल्पना की गयी। 'सोऽहम्' में पाँच भाग तथा तीन भाग त्रिगुण रूप में विभाजित किये गये ॥१३॥ संक्षिप्त में 'सो' से उत्पत्ति तथा 'ऽहम्' से प्रलय का विचार करते हैं। इस प्रकार योगी लोग 'सोऽहम्' शब्द सबका मूल मानकर उसमें ध्यान लगाते हैं और उनकी नाभि से ब्रह्मरंध्र तक 'सोऽहम्' शब्द गूंजता है ॥१४॥

दुई रूप तेहि माँहि प्रकाशा । नारी अंग पुरुष सोई श्वासा ॥१५॥
यहि विधि सोहं शब्द बनाई । उपजन विनशन रहटा लाई ॥१६॥

शब्दार्थ — नारी = माया । अंग = देह, अवयव, सोहंका स्थूल अक्षर - मात्रा का स्वरूप । रहटा = रहँट, चक्कर ।

भावार्थ — 'सोऽहम्' में दो रूपों का विभाजन किया गया एक नारी दूसरा पुरुष । 'सोऽहम्' का अक्षर-मात्रा संयुक्त स्थूल आकार नारी व माया का भाग है तथा उसमें रहा हुआ श्वास पुरुष एवं ब्रह्म रूप है ॥१५॥ इस प्रकार मनुष्यों ने अपनी कल्पना से 'सोऽहम्' शब्द बनाकर उससे उत्पत्ति तथा प्रलय का चक्कर माना है ॥१६॥

सो सोहं नाशक के बैना । अजपा जपहिं शंभु अनुमाना ॥१७॥
सो परचित बोला औ चाला । शून्या तजि सहज प्रतिपाला ॥१८॥

शब्दार्थ -- नाशक = विध्वंसक । बैना = बैन, बात । परचित = परिचित । चाला = चलना; आचरण करना; अभ्यास करना । शून्या = योगनिद्रा । सहज = ब्रह्मज्ञान ।

भावार्थ — वह 'सोऽहम्' शब्द विवेकविध्वंसक कल्पना की बात है । शिव जी ने पहले सोऽहम् को अजपा जप में जपा था; यह अनुमान करके आज भी योगी लोग उसे जपते हैं ॥१७॥ उस सोऽहम् शब्द का पहले परिचय प्राप्त किया गया या उसका रूप निर्धारित किया गया, पुनः मुखसे बोलकर उसका प्रचार किया गया; तदनन्तर उसपर लोग अभ्यास करने लगे । कितने योगी लोग सोऽहम् शब्द का जप करके शून्य समाधि में लीन होते हैं और कितने लोग योग को त्याग कर सहज ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करते हैं और वे लोग सोऽहम् का अर्थ करते हैं 'वह (ब्रह्म) मैं हूँ' ॥१८॥

जो उलटि पलटाये बानी । परमहंस अजपा अनुमानी ॥१९॥
श्वासा खैंचि मिलाये मूला । नाभी अर्ध अंग प्रतिकूला ॥२०॥

शब्दार्थ — मूला = मूल; ब्रह्मरंध्र, खोपड़ी । अर्ध = अर्धचन्द्र '˘' रूप माया । प्रतिकूला = विरोधिनी ।

भावार्थ — जो परमहंस लोग होते हैं वे 'सोहं' को उलट करके 'हंसों' में बदल देते हैं और श्वास के साथ अजपाजप में ब्रह्म का अनुमान करके अभ्यास करते हैं ॥१९॥ वे नाभि में स्थित ब्रह्मकी विरोधिनी अर्धचन्द्राकार रूप माया से श्वास को खींचकर ब्रह्मरंध्र या त्रिकुटी में स्थित विंदु रूप ब्रह्म में मिला देते हैं ॥२०॥

लै जो पावै शून्य रहि जाई । परमहंसके चाल दृढ़ाई ॥२१॥
बंध मोक्षके चाल दिखावै । दुहुँ विधि शून्यहि माँहि समावै ॥२२॥

शब्दार्थ — लै = लय, लीन । चाल = आचरण, ढंग ।

भावार्थ — यदि वृत्ति में संसार का लय होकर केवल ब्रह्म ही रह जाये तो यह परमहंस की निश्चित रहनी या स्थिति है ।।२१।। इस प्रकार परमहंस लोग एकदेशी योग को बंधन का कारण बतला कर सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म में निमग्न ही मोक्ष की रहनी बताते हैं । परन्तु विवेक करके देखा जाय तो योगी लोग अचेती अवस्थारूपी शून्य में लीन होते हैं और ब्रह्मज्ञानी परमहंस लोग शून्य ब्रह्म में लीन होते हैं । अतएव अन्ततः दोनों स्वस्वरूप ज्ञान को छोड़कर शून्य में ही मस्त होते हैं, जो एक भ्रम है ।।२१।।

साखी—सोहं अजपा जाप है, शंभु रहे लौलाय ।
अर्थ विचारत आपुही, प्रगटे सब घट आय ।।१७८।।

शब्दार्थ — सोहं = 'सोऽहम्', वह मैं (हूँ) । अजपा जाप = बिना जप किये जिसका जप स्वयमेव हो । लौ = ध्यान, प्रेम ।

भावार्थ — (कहते हैं) 'सोऽहम्' का श्वास के साथ स्वयमेव जप होता है, इसमें शिवजी ध्यानमग्न रहते थे । इसका अर्थ विचार करने से मनुष्य स्वयं सभी शरीरों तथा संसार में व्याप्त हो जाता है ।।१७८।।

विशेष — 'सोऽहम्' यह वेदांत दर्शन का वाक्य है । इसका अर्थ होता है 'वह मैं हूँ' अर्थात जो ब्रह्म मैं अलग खोजता हूँ वह मैं ही हूँ । यदि इतना तक ही इसका अर्थ रहने दिया जाय तो ठीक ही नहीं सर्वोच्च है, परन्तु इसके भीतर बहुत कल्पनाओं का अंधकार भरा है । वह है कि मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ, मैं जड़-चेतन सब कुछ हूँ । अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश और चंद्र, सूर्य, नक्षत्रादि सब कुछ मैं ही हूँ । यह अनंत ब्रह्मांड मेरे में उत्पत्ति, स्थिति और लय को प्राप्त होता है । जैसे जल तथा उसका तरंग एक है वैसे मैं ब्रह्म और जगत एक है इत्यादि ।

अतएव 'वह ब्रह्म मैं हूँ' इस अत्यन्त सुहावने शब्द में जड़-चेतन की अभिन्नता, सर्वव्यापकता रूप महा अविद्यान्धकार भरा है ।

जिस परमतत्त्व, परमशांति एवं परमपद को मैं खोजता हूँ वह मैं ही हूँ 'सोऽहम्' शब्द का अर्थ यदि इतना ही किया जाय तो उत्तम है । परन्तु 'सोऽहम्' वालों को अपने आपको विना सर्वत्र व्याप्त जड़ तथा चेतन अभिन्न सिद्ध किये कहाँ चैन है जिसका कि केवल कुछ शब्द प्रमाण को छोड़कर न अनुभव प्रमाण है न युक्ति प्रमाण । मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ । इसका अनुभव कभी किसी को नहीं होता । अतएव सुहावने 'सोऽहम्' शब्द के पीछे बड़े-बड़े भ्रम एवं भूल हैं ।

सोहं अस्मि वाक्य है, सो त्रिदोषक जान ।
ग्रासहिं परलय रूप होय, सोई विदित ब्रह्मज्ञान ।।१७९।।

शब्दार्थ — सोहंअस्मि = सोऽहमस्मि, वह मैं हूँ । त्रिदोषके = उत्पत्ति, पालन और संहार रूप तीन दोष वाला । ग्रासहिं = निगल जाना, खा जाना ।

भावार्थ — जो सोऽहमस्मि वाक्य है इसका अर्थ संसार के उत्पत्ति, पालन और संहार रूपी तीन विकारों से पूर्ण समझो। सोऽहमस्मि का लक्ष्य तो संसार को अपने आप में निगल कर उसका प्रलय कर देता है और जगत-ब्रह्म, जड़-चेतन एक हो जाता है। यह जड़-चेतन की अभिन्नता ही ब्रह्मज्ञान के नाम से प्रख्यात है ॥१७९॥

विशेष — जड़-चेतन की अभिन्नता मानना ही मुख्य अज्ञान है। मुमुक्षु को चाहिये कि वह जड़ को अपने चेतन स्वरूप से पृथक समझ कर उसके अध्यास को छोड़ दे और अपने स्वरूप में स्थित हो।

४६–ॐ की उत्पत्ति तथा गायत्री का वर्णन

चौपाई—४७

रचना सोहं बहु विधि कीन्हा। ॐकार दूजे रचि लीन्हा ॥१॥
तेहिमें पाँचों कला सँवारी। शून्य अर्धचंद्र अनुहारी ॥२॥
अ उ म अज हरिहर रूपा। ॐ अंग पाँच कला अनुरूपा ॥३॥

शब्दार्थ — कला = अंश, भाग। अनुहारी = अनुहार, भेद, प्रकार; आकृति।

भावार्थ — सोऽहम् की रचना एवं उसके पीछे लगायी गयी कल्पनाओं का ऊपर अनेक प्रकार से वर्णन हुआ है। दूसरा ॐ की भी रचना मनुष्यों ने की है ॥१॥ ॐ को पाँच अंशों से सजाया है, उनकी आकृतियाँ हैं शून्य '०', अर्धचंद्र '◡', अ, उ तथा म। अ, उ, म क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के रूप माने जाते हैं (और अर्धचंद्र '◡' माया तथा शून्य '०' ब्रह्म कहलाता है)। इस प्रकार पाँच अंशों का रूप लेकर ॐ बनाया गया है ॥२,३॥

तीन शक्ति सोई प्रगटाई। उतपति पालन अंत देखाई ॥४॥
दुई भागके रूप दरशाया। ॐ सो पुरुष अंग सो माया ॥५॥

शब्दार्थ — सोई = अ, उ, म। ॐ = उच्चारण रूप स्वर। अंग = ॐ की आकृति।

भावार्थ — अ, उ, म से क्रमशः तीन शक्तियाँ उत्पन्न होकर उत्पत्ति, पालन तथा संहार करती हैं ॥४॥ ॐ में मुख्य दो भाग करके उसका स्वरूप बताया है। ॐ स्वर-स्वरूप उच्चारण पुरुष एवं ब्रह्म है तथा जो उसका पंचमात्राओं से निर्मित स्थूलकाय शब्द है, वह माया रूप है ॥५॥

सो ॐकार जाप है अजके। जागृत नेही कला सहजके ॥६॥
महाकारण सोई शून्य विराजै। अर्धचंद्र कारण होय गाजै ॥७॥

शब्दार्थ — अज = ब्रह्मा। जागृतनेही = जागृति अवस्था के कर्ममार्ग में प्रेम रखना। शून्य = विंदु '०'।

भावार्थ — ॐ कर्मकाण्डी ब्रह्मा का जप है और सहज ब्रह्म में ध्यान तथा कर्मकाण्ड में स्नेह रखने वाले ब्राह्मणों का भी यही जप है ॥६॥ ॐ में जो बिंदु '˙' है उसी को जगत का महाकारण पर ब्रह्म माना है तथा अर्धचन्द्र '˘' माया रूप द्वितीय कारण है ॥७॥

तीन पुत्र त्रिगुणमय नारी । सोई षट अंशी सृष्टि पसारी ॥८॥
अर्थ विचारहिं ताहि समाई । करत कलोल कालमुख जाई ॥९॥

शब्दार्थ — तीनपुत्र = रज, सत,तम;ब्रह्मा,विष्णु, महादेव । कलोल = क्रीड़ा ।

भावार्थ — (कहते हैं) ॐ से त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव तीन पुत्र और ब्रह्माणी, लक्ष्मी तथा पार्वती तीन नारियाँ; अर्थात तीनगुणयुक्त पुरुष तथा तीन गुण युक्त स्त्री इन छह् अंगों से प्राणियों की सृष्टि उत्पन्न हुई ॥८॥ लोग ॐ का अर्थ विचारते हुए उसी में लीन होने की चेष्टा करते हैं; और इस प्रकार कल्पनाविलास करते हुए स्वरूपज्ञान बिना मृत्युमुख में चले जाते हैं ॥९॥

उलटि पलटिके राह चलावै । सगुण अगुणके भास दृढ़ावै ॥१०॥
सो परणव गायत्री मूला । जपहिं जपावहिं जानु न शूला ॥११॥
जो जानहिं जीव शूल अपाना । धोखक शब्द न करै परवाना ॥१२॥

शब्दार्थ — भास = दृश्य; मनःकल्पना । परणव = प्रणव, ॐ । धोखक = धोखा के ।

भावार्थ — नाना मतवादी, मनुष्यों को उलट-पलट कर अनेक मार्गों में चलाते हैं और अपने स्वरूप से पृथक किसी सगुण-निर्गुण कर्ता का भ्रम निश्चय कराते हैं ॥१०॥ उक्त प्रणव (ॐ) को ही गायत्री का मूल बतलाते हैं । उसी को स्वयं जपते हैं तथा दूसरों को जपने का आदेश देते हैं । दुःखों का कारण क्या है तथा उसका अन्त कैसे होगा इसका भेद नहीं जानते ॥११॥ जो व्यक्ति अपने दुखों का निदान जानते हैं, वे धोखे के शब्दों में न विश्वास करके वास्तविकता की खोज करते हैं ॥१२॥

विशेष — कहते हैं मनुष्य की नाभि में माया रूपी अर्धमात्रा '˘'; हृदय में महादेव रूपी 'म' कार; कंठ में विष्णु रूपी 'उ' कार; त्रिकुटी में ब्रह्मा रूपी 'अ' कार और मस्तक में परब्रह्म रूपी बिंदु '०' का निवास है । यह सब लेकर ॐ का स्वरूप है ।

साखी — प्रणव अजके जाप है, गायत्रीके मूल ।
पंचीकरण ताके कला, रहै जगतमें भूल ॥१८०॥

शब्दार्थ — प्रणव = ॐ । पंचीकरण = अ, उ , म, अर्धचन्द्र '˘' और बिन्दु '०' । कला = अंश ।

भावार्थ — कर्मकाण्डी ब्रह्मा या ब्राह्मणों का ॐ का जप है, और इसी को गायत्री का मूल बताया गया है। इसमें पंच अंश विभक्त किये जाते हैं। इसमें बहुत से संसारी जीव भूले पड़े ॥१८०॥

मायामयी सब पुरुष हैं, पुरुषमयी सब नारि।
नितप्रति गावहिं ध्यावहिं, शक्तिमता अनुसारि ॥१८१॥

शब्दार्थ — शक्तिमता = शक्ति और मत, बल और बुद्धि।

भावार्थ — संसारी सभी पुरुष स्त्रियों में आसक्त हैं तथा स्त्रियाँ पुरुषों में आसक्त हैं। वे अपने बल तथा बुद्धि के अनुसार घूम-फिर कर विषय के ही गीत गाते तथा विषय के ही ध्यान करते हैं।

अथवा — सभी जीव वाणी कल्पना रूपी माया में आसक्त हैं और सभी कल्पित वाणियाँ पुरुषमयी अर्थात ईश्वर रूप बन बैठी हैं। जीव अपने बल तथा बुद्धि के अनुसार उन्हीं कल्पित वाणियों का गीत गाता तथा उन्हीं का ध्यान करता है ॥१८१॥

चौबीस अक्षर मिलायके, गायत्री अस्थूल।
विधि बहुविधि महिमा जपै, परखै नहीं यम हूल ॥१८२॥

शब्दार्थ — अस्थूल = स्थूल, मोटारूप। यम = मन; कल्पना। हूल = वेदना, कष्ट; हल्ला-गुल्ला।

भावार्थ — चौबीस अक्षर मिलाकर स्थूल गायत्री का मंत्र बनाया है। उसकी अनेक प्रकार से लम्बी चौड़ी महिमा बढ़ा रखी है। अज्ञानकृत मनका दुःख कैसे मिटेगा इसकी परख लोग नहीं करते ॥१८२॥

विशेष — ॐ मनुष्यों का कल्पित एक शब्द है। ॐ कुछ लोगों का एक प्रतीकात्मक उपासना का आधार-बिंदु बन सकता है; परन्तु उसको परब्रह्म या संसार का मूलकारण मान लेना एक भ्रम है। ॐ से मनुष्य श्रेष्ठ है जो उसे बनाने तथा मिटाने में स्वतंत्र है। मनुष्य की आत्मा से बढ़ कर कोई नहीं है।

चौबीस अक्षरों का गायत्री मंत्र बनाया गया है; और उसे मूलतः सूर्य की उपासना में हमारे पूर्वजों ने प्रयुक्त किया था। पीछे से उसमें ॐ जोड़कर उसका अर्थ ईश्वर परक बनाया गया है। गायत्री कुछ शब्दों का एक मंत्र है। परन्तु लोगों ने उसकी महिमा इतनी बढ़ा रखी है कि गायत्री माता ही मनुष्य को सारी ऋद्धि-सिद्धि देने वाली हैं। जड़शब्द गायत्री को माता कहकर उसके आड़ में पुजाने-खाने वाले उसकी इतनी बे-सिर-पैर की महिमा गाते हैं गायत्री की उपासना करने से ही सब कुछ मिल जायगा। यह ठीक है कि कुछ समय मनको एकाग्र करने के लिये गायत्री आदि कोई अच्छे मंत्र का जप सहायक हो सकता है; परन्तु कृत्रिम शब्द को सर्वेसर्वा नहीं बनाया जा सकता।

अपने अखण्ड, शुद्ध-बुद्ध तथा शांत स्वरूप चेतन का बोध न होने से मनुष्य खानी-वाणी के नाना कल्पनाओं में भटकता है। इसी से वह दुःख भोगता है। जब वह मन की सभी कल्पनाओं को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है तब उसके दुःखों का अंत हो जाता है।

गायत्री मंत्र का विवरण इस प्रकार है—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

(ऋग्वेद, मंडल ३, सूक्त ६२, मंत्र १०)

तत् = वह। सवितुः = सूर्य। वरेण्यम् = वरण करने योग्य, उत्तम। भर्गो = तेज। देवस्य = देव का। धीमहि = ध्यान धरता हूँ। धियो = बुद्धि को। यो = जो। नः = हमारी। प्रचोदयात् = प्रेरित करे।

अर्थ :—उस सूर्यदेव का मैं ध्यान धारण करता हूँ, जो वरण करने योग्य तेजोमय है। वह हमारी बुद्धि को प्रेरित करे।

ऋग्वेद के तद्स्थल को देखने पर गायत्री में 'ॐ भूर्भुवः स्वः' शब्द नहीं मिलते; अतएव वहाँ वेदकार केवल सूर्य की उपासना करते हुए प्रतीत होते हैं।

उक्त मंत्र के कटे अक्षरों को छोड़ देने से समूचे अक्षर चौबीस हैं।

४७—'राम' शब्द की उत्पत्ति तथा उसका स्वरूप वर्णन

चौपाई—४८

भू पृथ्वीसे जपै जपावै। कर्म समाधि जग भरमावै ॥१॥
रचि ॐ कार कला बहुभारी। राम शब्दको कला सँवारी ॥२॥

शब्दार्थ — भू = भूः भुवः स्वः जनः तपः महः सत्यम्—सात लोक मानकर और उसमें ॐ जोड़कर जपते हैं जिसमें पहले भूः यानी पृथ्वी से आरम्भ होता है। कर्मसमाधि = कर्म करने में तन्मय हो जाना ही समाधि है। कला = गुण, हुनर।

भावार्थ — भूः या भू का अर्थ पृथ्वी है। पृथ्वी से तात्पर्य है लौकिक सुख। अतएव लौकिक सुख की प्राप्ति के लिये ॐ शब्द को ब्राह्मण लोग स्वयं जपते तथा दूसरे को जपने की राय देते हैं। और यह कहकर लोगों को भ्रम में डाल देते हैं कि नित्य, नैमित्तिक और यज्ञादि कर्मों के करने में इतना तन्मय रहो कि उसमें सबकुछ भूल जाय, वही कर्मसमाधि है ॥१॥ लोगों ने बड़े हुनर से 'ॐ' शब्द की रचना की है जिसका विवरण ऊपर दिया गया है। 'राम' शब्दको भी बड़ी कला से सजाया गया है, उसे सुनें—॥२॥

विशेष — कर्मी लोग कहते हैं कि भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्यके चक्कर में मत पड़ो। नित्य, नैमित्तिक कर्म एवं यज्ञादि खूब करो। इसी को कर्म समाधि कहते हैं। इससे इस लोक में सुखी रहोगे तथा अंत में स्वर्ग प्राप्त करोगे।

स्नान, संध्या, तर्पण, हवन आदि नित्यकर्म हैं। पुत्र, धन, नीरोग्यादि किसी कामना की सिद्धि के लिये किये जाने वाले पूजा, यज्ञादि नैमित्तिक कर्म हैं। इन्हीं सबमें कल्याण बताना समाज को भ्रम में डालना है।

रेफ अकार मकार प्रमाना। हरि ब्रह्मा शिव सोई परधाना ॥३॥
त्रिगुण रूप थूल अभिमानी। राम शब्द कला उतपानी ॥४॥

शब्दार्थ — रेफ = 'र्'। अकार = अ, ा। मकार = 'म्'। प्रमाना = प्रमाण, सीमा; माप। थूल = सूक्ष्म। कला = गुण, हुनर।

भावार्थ — 'राम' शब्द की उत्पत्ति में 'र्' ा तथा म् इन तीनों का माप बनाया अथवा इन्हीं तीनों की सीमा में 'राम' शब्द का निर्धारण किया। उनमें 'र' में विष्णु की, 'ा' में ब्रह्मा की तथा 'म' में महादेव की प्रधानता बतलायी ॥३॥ इस प्रकार वाणी के सूक्ष्म अभिमानी मनुष्यों द्वारा सत, रज, तम त्रिगुण रूप में 'राम' शब्द की कलात्मक उत्पत्ति की गयी है ॥४॥

विशेष — 'र्' सत है, 'ा (अ)' रज है तथा 'म्' तम है। अथवा 'र्' विष्णु का, 'अ्' ब्रह्मा का तथा 'म्' महादेव का प्रतिनिधित्व करता है।

पुनि दुइ रूप होय के बिलगाना। ररा ममा सोई प्रगटाना ॥५॥
ररा अर्धचंद्र होय धावै। ममा शून्य स्वरूप देखावै ॥६॥

शब्दार्थ — ररा = रा; पुरुष; चेतन। ममा = म; माया; अचेतन। अर्धचंद्र = ँ; माया। शून्य = ०; ब्रह्म।

भावार्थ — पुनः वही 'राम' शब्द ररा और ममा यानी 'रा' और 'म्' इन दो रूपों में विभक्त होकर प्रकट हुआ ॥५॥ पुरुष या ब्रह्म स्वरूप 'रा' माया के सहवास से उसी के रूप में परिवर्तित-सा होकर गति करने लगा। और माया शून्य स्वरूप ब्रह्म का सहवास पाकर उसी के रूप में प्रदर्शित होने लगी ॥६॥

विशेष — "ररा अर्धचंद्र होय धावै। ममा शून्य स्वरूप देखावै।" का तात्पर्य यह भी जाना जा सकता है 'अ' तो 'ॐ' बन गया और 'र्' रेफ (र्‍) बन कर अर्धचंद्र 'ँ' हो गया तथा 'म' शून्य '०' बनकर ॐ का प्रतिनिधित्व करने लगा।

जबहीं कामिनी ररा होई। महाशून्य ममा तहाँ सोई ॥७॥
रेफ भाव ररा तहाँ लावै। ममाशून्य होय तहाँ धावै ॥८॥

शब्दार्थ — कामिनी = जगत-उत्पन्न करने की कामना रखने वाली माया। महाशून्य = ब्रह्म। रेफ = 'र्' अक्षर; 'र' का किसी वर्ण के पहले आने पर मस्तकस्थ रूप 'र्‍' (जैसे—दर्प, धर्म, कर्म आदि में)। धावै—गति, हल-चल या विकार उत्पन्न करना।

भावार्थ — ब्रह्मस्वरूप 'ररा' या 'रा' जभी जगत की रचना कामना वाल बनता है, वह मायारूप हो जाता है; और वह माया ब्रह्मरूप बनकर उसके ऊ सवार हो जाती है ॥७॥ 'र' रेफ '‍र्' के भाव में बदलकर मायामय अर्धचंद्र 'ँ' ब जाता है और 'ममा' रूप माया वहाँ महाशून्यरूप '०' ब्रह्म बनकर जगतोत्पत्ति हलचल उत्पन्न करती है ॥८॥

विशेष — कहते हैं ब्रह्म के विग्रह (मूर्ति) राम तथा कृष्ण हैं और माया विग्रह सीता और राधा हैं। ब्रह्म शक्तिमान तथा माया शक्ति है जो जल और शीत व परस्पर अभिन्न होने से दोनों में प्रगाढ़ प्रेम है। अतएव प्रेमवश जब कृष्ण राधा ब जाते हैं तब राधा कृष्ण बन जाती हैं। ऐसे राम सीता तथा माया ब्रह्म के विषय समझना चाहिये। ये वस्तुतः एक तत्त्व हैं।

आपै पुरुष आप सोइ नारी। बहु अचरज यम जाल पसारी ॥९॥
ररा शब्द विष्णु सो देवा। थूल अभिमानी करै सब सेवा ॥१०

शब्दार्थ — आपै = स्वयं ब्रह्म ही। यम = मन। थूल = सूक्ष्म।

भावार्थ — ब्रह्म और माया शक्तिमान तथा शक्ति के न्याय से ब्रह्म स्वयं पुर है और स्वयं ही स्त्री है। इस प्रकार मनुष्यों के मन ने अद्‍भुत कल्पना करके वाणी जाल फैला रखा है ॥९॥ 'राम' शब्द में अंततः 'र' का ही सर्वोच्च महत्व है; औ 'र' के विष्णु देवता हैं या कहिये 'र' स्वयं विष्णु ही है। इस प्रकार वाणी के सूक्ष्म अभिमानी लोग 'र' या 'राम' शब्द का जप करते हैं ॥१०॥

कामिनीरूपी भक्ति दृढ़ाई। भग मस्तक अपने अपनाई ॥११॥
विश्वरूप शिलाके पूजा। आपु अनंत भाव नहिं दूजा ॥१२॥

शब्दार्थ — भग = ईश्वर की छह विभूतियाँ-सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पू यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्य[1]। शिला = पत्थर; शालग्राम। आपु = ब्रह्म।

भावार्थ — (कहा जाता है) विष्णु ने षट् ऐश्वर्य रूप भग को अपने सिर पर स्वीकार करके लोगों को ऐसी भक्ति का निश्चय कराया जिसमें भक्त अपने आपको भगवान की पत्नी मानकर निरन्तर उसी की कामना करता है ॥११॥ विष्णु भगवान विश्वरूप हैं और उनका प्रतीक शालग्राम शिला है—ऐसा मानकर लोग उसकी पूजा करते हैं और कहते हैं भगवान स्वयं अनन्त रूपों में प्रदर्शित हैं। उनको छोड़कर दूसरे का अस्तित्व नहीं है ॥१२॥

---

१. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ नारद पुराण ४६।१७॥

विशेष — कहते हैं सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य से विष्णु जी पूर्ण हैं। परन्तु कसौटी करने पर यह बात ठीक नही जँचती। हिंदू समाज को छोड़कर मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि में विष्णु की न कोई कीर्ति है न महत्त्व। उनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य होता तो बलि को छलने की क्या आवश्यकता थी ? उनके धर्म तथा ज्ञान का वहीं पता चलता है जहाँ एक पतिव्रता नारी वृन्दा को चारित्रिक धोखा देते हैं। उनके वैराग्य की कसौटी तो उनकी अर्धाङ्गिनी लक्ष्मी स्वयं है।

साखी—कामिनीरूपी सोई कला, विष्णु किया विस्तार।
समा विरह वियाधते, होय शून्य भरतार ॥१८३॥

शब्दार्थ — कला = रचना, हुनर, गुण, कल्पना। समा = माया, अज्ञान। विरह = वियोग, वियोग जनित व्याकुलता। वियाध = व्याधि, रोग, कष्ट। भरतार = कांत, पति, स्वामी।

भावार्थ — विष्णु ने उस कल्पना का प्रचार किया जिसमें भक्त पतिपरमात्मा को पाने के लिये स्वयं कामिनीरूप बन कर अपने में स्त्रियत्व धारण करता है। इस प्रकार जीव अज्ञानवश अपने से पृथक किसी तथाकथित पति की कल्पना करके और उसके वियोगजनित व्याकुलता एवं अनुराग के रोग से पीड़ित होकर शून्य को अपना स्वामी मान लिया ॥१८३॥

माया गुण नहिं लखि परे, रहै कला सोइ भूल।
विरह बाण घायल करै, लाये अनेकन्हि हूल ॥१८४॥

शब्दार्थ — माया = भ्रम, अज्ञान। गुण = स्वभाव, प्रभाव। कला = रचना, कल्पना। हूल = पीड़ा, वेदना, शूल।

भावार्थ — लोगों को सहज रूप से यह नहीं जान मिलता कि उपर्युक्त सोऽहं, ॐ एवं राम आदि जड़ शब्द भ्रमस्वभाव से उत्पन्न हुए हैं; अपितु उक्त कल्पना में ही लोग भूले पड़े हैं। यह कल्पित पति का वियोग बाण भक्तों को आहत करके उनके हृदय में अनेक वेदना एवं शूल उत्पन्न कर रहा है ॥१८४॥

श्वासा सो सोहं भया, सोहंसे ॐकार।
ॐकारसे ररा भया, पंडित करो विचार ॥१८५॥

शब्दार्थ — सोहं = सोऽहं, वह मैं हूँ। ररा = र या राम।

भावार्थ — जब श्वास खींचा गया तब 'सो' और जब उसे छोड़ा गया तब 'हं' इस प्रकार श्वास की गति में 'सोऽहम्' शब्द की उत्पत्ति हुई। यही श्वास स्वरूप 'सोऽहम्' मस्तक, नाभि, हृदय, कंठ और त्रिकुटी में टकराकर ॐ का रूप धारण किया। साधना की सूक्ष्मता से यह ॐ आगे बढ़कर ररा बन गया। अर्थात योगी लोग ब्रह्म-

रंध्र में अनाहतनाद रूप रं रं व रा रा ध्वनि का अनुभव करके अनाहतनाद सुनते हैं। ऐ विवेकियो ! इस पर विचार करो ॥१८५॥

विशेष — श्वास से 'सोऽहम्' की उत्पत्ति तो पाठक समझ गये होंगे। परन्तु 'सोऽहम्' से ॐ की उत्पत्ति कैसे हुई यह कुछ रहस्यात्मक है। कहते हैं नाभि में अर्धचंद्र 'ँ'; हृदय में 'म'; कंठ में 'उ्'; त्रिकुटी में 'अ्' और मस्तक में विंदु '०' के रूप में क्रमशः माया, महादेव, विष्णु, ब्रह्मा और परब्रह्म निवास करते हैं। इन स्थलों में 'सोऽहम्' शब्द रूप श्वास के टकराने पर ॐ शब्द की उत्पत्ति होती है।

जब साधक की साधना सूक्ष्म हो जाती है तब वह ॐ आदि शब्दों का बिना जप किये ही अजपाजप में निमग्न हो जाता है। वह है ब्रह्मरंध में उठता हुआ नाद जो रं रं या रा रा—के रूप में या घंटा, भेरी आदि दश वाजा के रूप में कल्पना करते हैं। उसी को राम शब्द के रूप में बाहर कल्पना करते हैं।

योगी या ब्रह्मवादी लोग 'सोऽहम्' जपते हैं; कर्मी एवं ब्राह्मण लोग ॐ जपते हैं और उपासक तथा भक्त लोग 'राम' जपते हैं। 'सोऽहम्' महादेव का अंश, ॐ ब्रह्मा का तथा 'राम' विष्णु का है।

ग्रंथकर्ता ने 'सोऽहम्' 'ॐ' तथा 'राम' शब्दों की उत्पत्ति का प्रकार वतला कर पण्डितों एवं विवेकियों पर छोड़ दिया है कि इसका आप लोग विचार करें—"पंडित करहु विचार।" वस्तुतः जड़श्वास रूप वायु के ही कार्य 'सोऽहम्' ॐ तथा 'राम' शब्द हैं। इनके द्रष्टा चेतन इनसे भिन्न शुद्ध स्वरूप हैं। विवेकी का कर्तव्य है कि वह जड़ शब्द के अभ्यास को छोड़कर अपने चेतन स्वरूप राम में रमण करे।

४८– व्याकरण तथा पिंगल विषयक विचार

चौपाई — ४६

तीन शब्द रचि कला अपारा। सोहं प्रणव कला प्रचारा ॥१॥
पुनि चौंतीस मात्रा लाई। पिंड समान रचना निरमाई ॥२॥

शब्दार्थ — तीन शब्द = सोऽहम्, ॐ तथा राम। कला = कल्पना। पिंड = देह।

भावार्थ — मनुष्यों ने सोऽहम्, ॐ तथा राम — इन तीन शब्दों की रचना करके अपार कल्पनाओं की सृष्टि की तथा उनका प्रचार कर रखा है ॥१॥ पुनः क से क्ष तक चौंतीस सादे अक्षरों एवं व्यंजनों में अ, आ आदि मात्राओं एवं स्वरों को मिला कर उसी प्रकार स्थूल भाषा की रचना की गयी जैसे सूक्ष्मवासनाओं से चारों खानियों की देहें बनती हैं ॥२॥

विशेष — जैसे पहले सूक्ष्म वासनाओं के होने से ही स्थूल शरीर का निर्माण होता है; उसी प्रकार वाणी सूक्ष्म परा, पश्यंती तथा मध्यमा का रूप लेकर ही स्थूल वैखरी के रूप में अवतरित होती है।

रचिसो थूल बहु वाचा कीन्हा । भास अनेक योनि रचि दीन्हा ।।३।।
एक सो एक मिलै नहिं कोई । भिन्न भिन्न योनी सो होई ।।४।।

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म । भास = आसक्ति । योनि = खानि ।

भावार्थ — जैसे अनेक विषयों की सूक्ष्म आसक्तियों में पड़कर जीव नाना योनियों में स्थूल शरीर की रचना करता है, वैसे सूक्ष्मवासनायें लेकर मनुष्यों ने अनेक वाणियों एवं भाषाओं की रचना किये हैं ।।३।। जैसे वे भिन्न योनियाँ एक दूसरे से नहीं मिलतीं; अर्थात पशु, पक्षी, कृमि आदि के भिन्न आकार, गुण एवं कर्म होते हैं; उसी प्रकार लोगों की वाणियाँ एवं विभिन्न भाषायें भी एक दूसरी से नहीं मिलतीं ।।४।।

प्रति प्रति योनी कला अपारा । विदित जहाँ तहाँ सोइ पसारा ।।५।।
विशेष एक देववाच कहावै । कला माँह बहु कला समावै ।।६।।

शब्दार्थ — कला = रचना; कल्पना । देववाच = देववाणी, संस्कृत ।

भावार्थ — प्रत्येक योनि में अनेक रचनायें हैं; जैसे एक पशुखानि में अनेक भेद । इसी प्रकार एक मूल भाषा के क्षेत्र में अनेक बोलियाँ हैं। यत्र-तत्र-सर्वत्र इन्हीं भाषाओं का प्रचार है ।।५।। कहते हैं विश्व में सर्वोच्च भाषा देववाणी संस्कृत है । कम-से-कम भारत में सर्वोच्च है ही । इस भाषा की रचना के भीतर अन्य भाषाओं तथा कम-से-कम भारत की सभी भाषाओं की रचना समाहित है ।।६।।

विशेष — विश्व का प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है; और वह संस्कृत (वैदिक) भाषा में है; अतएव विश्व की प्राचीनतम तथा सर्वोच्च भाषा संस्कृत कही जाय तो स्यात दोष न होगा ।

प्रायः भारतीय भाषायें संस्कृत से निकली हुई मानी जा सकती हैं । भारत के संविधान में १५ भाषायें स्वीकृत हैं—असमिया, बंगला, गुजराती, हिन्दी, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तामिल, तेलगू, सिंधी तथा अंग्रेजी । इनमें अंग्रेजी, उर्दू आदि संस्कृत से नहीं जोड़ी जा सकतीं । नेपाली संस्कृत से ही मानी जायगी । उर्दू में भी क्रिया हिन्दी की है तथा शब्द हिन्दी के बहुत हैं ।

विदेशीय भी बहुत सी भाषायें हैं जैसे अंग्रेजी, अरबी, फारसी, रूसी, चीनी आदि । विश्वमें कुल २७९६ भाषायें व्यवहृत हैं जिनमें १३ अति प्रसिद्ध हैं और उनमें प्रथम तीन में हिन्दी का तीसरा स्थान है । सम्पूर्ण संसार में अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या अनुमानतः—३० करोड़ है जब कि केवल भारतमें हिन्दी बोलने वालों की संख्या २५ करोड़ है ।

शुद्ध अशुद्ध विचारन लागे । विद्या वैयाकरण अनुरागे ।।७।।
शब्द निरूपण अनबनि भाँती । तर्क शास्त्र कीन्ह उतपाती ।।८।।

शब्दार्थ — वैयाकरण=व्याकरण जानने वाला; व्याकरण संबंधी। निरूपण=ढूँढना, जाँचना, अन्वेषण; किसी विषय को इस रूप में रखना कि वह साफ-साफ समझ में आजाय। अनवनि=अनेक।

भावार्थ — भाषाविकास-संदर्भ में लोग शुद्ध-अशुद्ध का विचार करने लगे और व्याकरणसंबंधी विद्या में रुचि उत्पन्नकर अनेक प्रकार से शब्दों की छानबीन तथा स्पष्टीकरण करने लगे। पुनः शब्दों के निर्धारण के लिये तर्कशास्त्र की रचना की ॥७,८॥

विशेष — संसार की सभी भाषाओं के व्याकरण होते हैं जिससे उन भाषाओं की शुद्धि होती है और उनके माध्यम से हृदय का भाव स्पष्ट प्रकट कर दिया जाता है। भारत की समृद्धतम भाषा संस्कृत के निर्धारण के लिये व्याकरण के नौ भाग हैं—कौमुदी (लघु, मध्य, सिद्धांत), सारस्वत, चंद्रिका, मनोरमा, शब्दरत्न, शेखर, मंजूषा, भूषण और भाष्य।

भाषा के माध्यम से हृदय के भाव को व्यक्त करने के लिये भाषा का सुधार किया गया और उसमें कर्ता, कर्म, क्रिया; भूत, वर्तमान, भविष्य तथा स्त्रीलिंग, पुंलिंग, नपुंसकलिंग वाचक, संधि, विच्छेद, अन्वय, समास, विशेष, शब्दार्थ, भावार्थ, व्यंगार्थ आदि अनेक कलायें रची गयीं।

छंद प्रबंध कीन्ह बंधाना। चाल भाव कविताई नाना ॥९॥
गन अरु अगन तहाँ बिलगाई। विद्या कावर चाल चलाई ॥१०॥

शब्दार्थ — छंद प्रबंध=छंदरचना। बंधाना=बँधा हुआ क्रम परिपाटी। गन=गण, छंदशास्त्र में तीन वर्णों का समूह भगण, यगण आदि। अगन=अगण; पिंगल के चार गण—जगण, तगण, रगण, सगण—जो छंद के आदि में अशुभ माने जाते हैं। कावर=काव्य; पिंगल शास्त्र।

भावार्थ — लोगों ने छंद रचना तथा नाना प्रकार की कविताई करने की पिंगल-शास्त्र रच कर परिपाटी बनायी है तथा कविता में भाव व्यक्त करने का ढंग बताया है ॥९॥ वहाँ पर गण तथा अगण के शुभाशुभ स्वरूप का भी पृथक निर्धारण किया है। इस प्रकार पिंगल विद्या का नियम चलाया है ॥१०॥

विशेष — अक्षर के तीन प्रकार बताये जाते हैं—लघु, गुरु और प्लुत। पिंगल एवं काव्य में लघु और गुरु ही काम आते हैं। प्लुत संगीत में अधिक काम देता है। अ, इ, उ, ऋ तथा क से ह तक सब लघु हैं और आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—ये सब गुरु हैं।

महाराज राघव साहेब अपनी टीका में बताये हैं —"शब्द के मध्य अथवा अंत में संयुक्त अक्षर आ जाने से उस संयुक्ताक्षर का पूर्व गुरु हो जाता है; जैसे 'सत्य' का 'स' लघु है, परन्तु 'त्य' के बल से वह गुरु माना जायगा। इसी प्रकार 'धर्म' का 'ध' तथा

'प्रबंध' का 'ब'। संयोगी अक्षर अपने पूर्व को गुरु करता है और आप लघु है तो लघु ही रहता है, गुरु है तो गुरु ही।"

गुरु अक्षर का चिन्ह 'ऽ' और लघु का '।' है।१

साखी—हाव भाव रस भेद ले, कविताई परचार।
बंधे जीव बहु भाँति सो, चीन्है नहीं लबार ॥१८६॥

शब्दार्थ — हाव भाव=नाज-नखरा, चोचला। रस=नौरस—शृङ्गार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स, रौद्र तथा शांत। लबार=झूठा, गप्पी, बक्की।

१—महाराज साहेब का कोष्टक और टिप्पणी यहां उधृत किये जाते हैं—

(अष्ट गणों का कोष्टक)

संख्या	स्वरूप	गणनाम	उदाहरण	देवता
१ तीनों गुरु	ऽऽऽ	मगण	म – माताजी	भूमि
२ आदि लघु	।ऽऽ	यगण	य – यशोदा	वरुण (जल)
३ मध्य लघु	ऽ।ऽ	रगण	र – रामजी	अग्नि
४ अंत गुरु	।।ऽ	सगण	स – सरिता	वायु
५ अंत लघु	ऽऽ।	तगण	त – तातार	आकाश
६ मध्य गुरु	।ऽ।	जगण	ज – जटायु	सूर्य
७ आदि गुरु	ऽ।।	भगण	भ – भारत	चन्द्रमा
८ तीनों लघु	।।।	नगण	न – नगर	नाग

मो भूमिः श्रियमातनोति य जलं वृद्धि र वन्हिर्मृतिम्।
सो वायुः परदेश दूरगमनं त व्योम शून्यं फलम्॥
जः सूर्योभयमाददाति विपुलं भेन्दुर्यशोनिर्मलम्।
नो नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानांबुधाः॥

अर्थात—मगण के भूमि देवता हैं, लक्ष्मी फल है। यगण के जल देवता हैं, आयु की वृद्धि फल है। रगण के अग्नि देवता हैं, मरण फल है। सगण के वायु देवता हैं, दूर विदेश गमन फल है। तगण के आकाश देवता हैं, शून्य फल है। जगण के सूर्य देवता हैं, रोग व भय फल है। भगण के चन्द्रमा देवता हैं, निर्मल यश फल है। नगण के स्वर्ग या नाग देवता हैं, सुख फल है। ऐसा वर्णन श्रुति बोध नामक ग्रंथ में किये हैं।"

(प्रथम संस्करण सटीक पंचग्रंथी, पृ० ६२१)

भावार्थ — लोगों ने नाज-नखरा के सहित श्रृङ्गारादि नवों रसों में कविता का प्रचार किया है, और उनमें अनेक प्रकार से सब जीव आसक्त होकर बंधे हैं; परन्तु गप्प मारने वाले लोग इस बात को नहीं समझते ॥१८६॥

लबरीमों लबरा फँसा, लबरी लबरा माँहि ।
जीव सुख मानहिं ताहिमों, जहाँ काल बाँधे गहि बाँहि ॥१८७॥

शब्दार्थ — लबरी = वाणी जाल । लबरा = भ्रमवाणी का विलासी व्यक्ति । काल = कल्पना, अज्ञान ।

भावार्थ — वाणी विलासी मनुष्य भ्रमवाणी में फँसा है और भ्रमवाणी उसके हृदय में घर कर गयी है । भूला व्यक्ति उसी में सुख मानता है जहाँ उसे अज्ञान हाथ पकड़ कर बाँध लेता है ॥१८७॥

विशेष — यह ठीक है कि भाषा विज्ञान की आवश्यकता है जिससे मनुष्य ज्ञान का आदान-प्रदान कर सके । परन्तु बिना विवेक केवल शब्द जाल में ही जीवनपर्यन्त भटकते रहना और सारासार विचार छोड़कर उसी में बँध जाना अत्यन्त अज्ञान तथा बंधन का कारण है । अतएव श्री विशाल देव की उक्ति चरितार्थ होती है कि—

जानि जनावन होय जेहि, सोइ भाषा निज हेत ।
और न तेहि से काम कुछु, नहीं ठगाव सचेत ॥

(मुक्तिद्वार, स्वतंत्र जीवशतक २९)

४९—लिपि तथा गणित विषयक विचार

चौपाई—५०

कलम मसी मसियानी लाई । शब्द थूल स्थूल बनाई ॥१॥
कला युक्ति अक्षर औ मंत्रा । प्रगटे रूप धरती लै पत्रा ॥२॥

शब्दार्थ — मसी = स्याही । मसियानी = दावात । थूल = सूक्ष्म । पत्रा = पत्र, कागज, पुस्तक ।

भावार्थ — मनुष्यों ने लेखनी, स्याही तथा दावात लाकर कागज पर लिखा । इस प्रकार अपने मनःस्थित या मुख उच्चरित सूक्ष्म शब्दों को स्थूल रूप दिया ॥१॥ लिखने की हुनर और युक्ति से अक्षर और मात्रा जोड़ कर मनुष्यों ने इस पृथ्वी पर भाषा व्यंजक लिपिबद्ध पुस्तकें तैयार की ॥२॥

शब्द उच्चार सो थूल कहावै । रूपमान अस्थूल देखावै ॥३॥
सोई पिंड पत्रा ब्रह्मंडा । विदित कला सो सब प्रचंडा ॥४॥

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म । रूपमान = लिखा हुआ । कला = कल्पना । प्रचंड = प्रचंड, भीषण ।

भावार्थ — उच्चरित शब्द सूक्ष्म कहलाता है और कागज पर लिखा हुआ रूपवान शब्द स्थूल प्रदर्शित होता है ॥३॥ लिखित अक्षरों को पिंड तथा कागज को ब्रह्मांड समझ लो। इस वाणीजाल की सभी भीषण कल्पनायें संसार में प्रसिद्ध हैं ॥४॥

बहुविधि रूप अस्थूल बनाई। अनबनि भाँति सो रहा छितराई ॥५॥
अंग भंग कहुँ बाचो न जाई। पृथक पृथक कहुँ सुन्दरताई ॥६॥

शब्दार्थ — अनबनि = अनेक। छितराई = फैला हुआ।

भावार्थ — भाषा की स्थूलरूप लिपियाँ अनेक प्रकार की बनायी गयी हैं, उनके स्वरूप बहुत हैं तथा वे संसार में फैली हुई हैं ॥५॥ कहीं तो घसीट लिखावट में अक्षरों के अंगों का भंग होने से या अपरिचित लिपि होने से वह पढ़ने में नहीं आती है; और कहीं सुन्दर सुवाच्य अक्षरों में सांगोपांग पृथक-पृथक स्पष्ट लिखा रहता है ॥६॥

सो जागृत सब शुद्ध कहावै। लिखना पढ़ना शब्द दृढ़ावै ॥७॥
चतुस्त कुतसित वाक्य अनेका। बहु प्रपंच का वर्णौं तेका ॥८॥

शब्दार्थ — चतुस्त = कर्ता, कर्म, क्रिया तथा शब्दविन्यास–चारों से ठीक। कुतसित = कर्ता, कर्म, क्रियादि नियमों से भ्रष्ट, भद्दा। तेका = उसका।

भावार्थ — वह जागृत भाषा कहलाती है जो सब प्रकार से शुद्ध होती है। विद्वान लोग उसी का आधार लेकर अन्य को लिखना-पढ़ना सिखलाते हैं और शुद्ध शब्दों का निश्चय कराते हैं ॥७॥ कर्ता, कर्म, क्रिया तथा शब्दविन्यास—इन चारों से पूर्ण सुन्दर वाक्य तथा इन नियमों से रहित भद्दे वाक्य अनेक प्रकार से होते हैं। भाषा की शुद्धि-अशुद्धि के विषय में बड़ा प्रपंच है। उनका सर्वांग वर्णन कौन कर सकता है ? ॥८॥

विशेष — भाषाविज्ञान में बड़ा प्रपंच है। भाषा सर्वथा शुद्ध कभी नहीं होती। समय आगे सरकता है और पीछे की रचनाओं में हमें त्रुटियाँ देखने में आती हैं।

वेदों में पुनरुक्ति, दुरुक्ति, अनावश्यक शब्दों के प्रयोग होने से आचार्य वृहस्पति जैसे विद्वान उसकी आलोचना कर दिये थे। उपनिषद् भी इन दोषों से खाली नहीं हैं अन्य शास्त्रों में भी विद्वान त्रुटि निकालते हैं। गीता जैसी लोकप्रिय पुस्तक में भी भाषासंबंधी अनेक त्रुटियाँ प्रदर्शित होती हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी जिनके नाम से हिंदीसाहित्य का एक युग ही 'द्विवेदी युग' के नाम से प्रसिद्ध है कि भाषा भोड़ी कही जाती है। इसलिये ग्रंथकर्ता ठीक ही कहते हैं कि "बहु प्रपंच का वर्णौं तेका।" बस, इतना ही हो सकता है कि वर्तमान में हमसे जितना सम्भव हो भाषा-शुद्धि पर ध्यान दें। मुख्य बात है वस्तुवर्णन; वह ठीक होना चाहिये।

लिखि सिटि जग व्यवहार अरुझाना। विविधि विधि जहाँ तहाँ जहँड़ाना९
नौ विधि अंक कला परवाना। दशयें एक शून्य प्रगटाना ॥१०॥

शब्दार्थ -- जहँड़ाना = ठगा जाना । अंक = १, २ आदि ।

- भावार्थ — मनुष्य अनेक विषय तथा कल्पना की बातों को लिख-पढ़कर उनमें मरता-मिटता है तथा संसार प्रपंच में फँसा रहता है और अनेक प्रकार से यत्र-तत्र अपने आप को ठगाता रहता है ॥९॥ मनुष्य गणित विद्या के विकास के लिये नौ अंकों ,१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ की प्रामाणिक रचना की और दशयें एक बिंदु '०' शून्य प्रकट किया ॥१०॥

शून्याशून्य दश गुण बढ़ि आई । एक अनेक सो शून्य समाई ॥११॥
गिनती एकते करहिं अनेका । लेखा तामध्य विविधि विवेका ॥१२॥
विद्या लेखा अनेक स्वभाऊ । परखहु सो सब कालके दाऊ ॥१३॥

शब्दार्थ — लेखा = हिसाब, गणना । काल = कल्पना । दाऊ = दाँव, उपाय ।

भावार्थ -- १, २ आदि किसी अंक में ० लगाते जाने से उसकी गणना दश गुणा बढ़ती जाती हैं । इस प्रकार एक से अनेक संख्या शून्य में समाई है ॥११॥ लोग एक से अनेक तक की गणना करते हैं । गणना करने की शैली में अनेक भिन्न-भिन्न विचार हैं ॥१२॥ गणित विद्या के अनेक लक्षण हैं । परख करने से मालूम होती है कि वे सब कल्पित उपाय हैं ॥१३॥

विशेष — १ में ० लगा दें तो १० और एक शून्य ० और रख दें १०० हो जाता है । इस प्रकार अंक की बाईं ओर बिंदु रखते जाने से दश गुणा गणना बढ़ती जाती है । एक, दश, सौ, हजार, दशहजार, लाख, दशलाख, करोड़ दश करोड़, अरब दश अरब, खरब दश खरब, नील दश नील, पद्म दश पद्म, शंख दश शंख आदि ।

साखी—काल कला अरुझावहीं, अधम अनेक व्यौहार ।
रार परस्पर जीवन्हीं, कहै हमार तोहार ॥१८८॥

शब्दार्थ — कालकला = अज्ञान कल्पित बंधन । रार = झगड़ा ।

भावार्थ — अधम लोग अनेक प्रापंचिक व्यवहार करके जीवों को अज्ञानकल्पित बंधनों में बाँधते हैं; और सब जीव राग-द्वेष करके परस्पर झगड़ा करते हैं ॥१८८॥

मोर तोर सब कालके, ताहि लेखे अतिभूल ।
आशा लेखामों बँधा, पाउ घनेरी शूल ॥१८९॥

शब्दार्थ — लेखे = विचारानुसार, समझ में । लेखा = हिसाब, गणना ।

भावार्थ — भौतिक पदार्थों के विषय में मेरा-तेरा करके राग-द्वेष करना सब कल्पना के गुण हैं । हे मनुष्य ! उस समझ में तू मत भूल । ज्योतिष से हिसाब-किताब लगाकर शरीर को बहुत दिन जीवित रखने की आशा में बंधे रहना महान अज्ञान है ।

यह जीव अपने स्वरूप से विमुख हो और जड़दृश्य में आसक्त होकर अनन्त कष्ट पाता है ।।१८९।।

संगीत विषयक विचार

चौपाई—५१

वाचा रचि बहु कला सँवारी । राग रागिनी सृष्टि पसारी ।।१।।
विद्या सो संगीत कहाई । विशेष प्रीति ताहि दृढ़ लाई ।।२।।

शब्दार्थ — वाचा=वाणी ।

भावार्थ — मनुष्यों ने वाणी की शुद्धि के लिए व्याकरण की रचना करके गायन-कला का सृजन किया और छह राग तथा छत्तीस रागिनियों की सृष्टि फैलायी ।।१।। वह गायनकला संगीत विद्या कहलाती है, उसमें लोग अधिक प्रेम करते हैं ।।२।।

विशेष — राग छह हैं—श्री, बसंत, पंचम, भैरव, मेघ और नर-नारायण । ये पुरुष रूप में माने जाते हैं । इनके नामों में भिन्न-भिन्न स्थलों पर मतभेद पाया जाता है । जैसे कि भैरव, मालकोष, हिंडोल, दीपक, मेघराज और श्री । इन छहों रागों की पत्नी रूप में छत्तीस रागिनियाँ हैं ।

भिन्न-भिन्न ऋतु में भिन्न-भिन्न राग-रागिनी बजायी जाती है । जैसे—

ऋतु	राग	रागिनी
वर्षा	मेघराज	टँकीका, मल्लारी, गुर्जरी, भोपाली, देशकार ।
शरद	मालकोष	टोड़ी, गौरी, गुणकली, खंभावती, कुकुभ ।
हेमंत	दीपक	देश, कामोद, नट, केदार, कान्हरा ।
शिशिर	श्री	भारवा, धनाश्री, वसन्त, मालश्री, आसावरी ।
वसन्त	हिंडोल	रामकली, देशाख, ललित, बिलावल, परमंजरी ।
ग्रीष्म	भैरव	भैरवी, वैराटी, माधवी, सिंध, बंध ।

उपर्युक्त राग-रागिनियों में भी बड़ा मतभेद है ।

तीनि ग्राम सोइ नारि विराजै । स्वर सो सात स्वर्ग सोइ छाजै ।।३।।
शब्द अलाप सो थूल सँवारी । पुरुष सो राग रागिनी नारी ।।४।।

शब्दार्थ — ग्राम=एक षड्ज से दूसरे षड्ज तक का स्वर समूह—सा, म, नी । अलाप=आलाप, सा, रे, ग, म, प, ध, नी इन सात स्वरों का व्यायाम । थूल=सूक्ष्म ।

भावार्थ -- संगीत में सा, रे, ग, म, प, ध, नी--ये सप्तस्वर हैं। इनमें सा, म तथा नी तीन ग्राम हैं जहाँ स्वर ठहराते हैं, जो कि नारी रूप हैं और रे, ग, प, ध पुरुष हैं। इन सात स्वरों को सात स्वर्ग के समान सुखदायी मान रखे हैं।।३।। सप्त स्वरों का आलाप सङ्गीत का सूक्ष्म स्वरूप है। छह राग पुरुष हैं और छत्तीस रागिनियाँ नारी रूप में मानी गयी हैं।।४।।

विशेष -- स्वर षड्ज इसलिये कहलाते हैं कि जिह्वा, दंत, तालु आदि छह स्थानों से टकरा कर निकलते हैं।

कला ताल गति नाच उपाई। सो स्थूल ले प्रगट देखाई।।५।।
चाल अनेक योनि सो कीन्हा। बाजा अनवनि वासा दीन्हा।।६।।

शब्दार्थ — ताल = संगीत में नियत मात्राओं पर ताली बजाना; एक नृत्य। चाल = ढंग; नाच। वासा = वासना।

भावार्थ — कलात्मक ढंग से ताली बजा कर, मटकाकर और अनेक प्रकार से नाचकर संगीत का स्थूल रूप प्रकट एवं प्रदर्शित किया जाता है।।५।। अनेक प्रकार के नाच-गान मानों जीवों को भटकने की योनियाँ हैं और हारमोनियम, ढोल आदि अनेक प्रकार के बाजे तथा स्वर योनियों में भटकाने वाली वासनायें रची गयी हैं।।६।।

अपने अपने समय सोहाई। अंग भंग सुनिके घिनियाई।।७।।
शुभ अरु अशुभ मिलाइ प्रसंगू। काम कलाके बहुत तरंगू।।८।।

शब्दार्थ — सोहाई = सुहाना, अच्छा लगना। घिनियाई = घृणा करना; अप्रसन्न होना।

भावार्थ — गीत अपने-अपने समय के ही अच्छे लगते हैं। उनमें अंगभङ्ग तथा असमय होने पर सङ्गीत जानने वाले घृणा करते हैं।।७।। सङ्गीत में यह भी देखना पड़ता है कि वर्तमान समय शुभ है या अशुभ। जैसे पुत्रजन्मोत्सव, विवाह, यज्ञ आदि शुभ तथा मरण, श्राद्ध आदि अशुभ समयों में उचित प्रसंग मिलाना पड़ता है। और संगीत में शृंगाररसपूर्ण कामकला के अपार उमंगों के तरंग तो हैं ही।।८।।

विशेष -- गीत अपने समय के ही अच्छे लगते हैं जैसे भैरव राग गरमी में, हिंडोल बसन्त में, मालकोष शरद में, दीपक हेमन्त में, मेघराज वर्षा में, श्री शिशिर में। प्रभाती, भैरवी आसावरी आदि प्रातः। इसी प्रकार सायं आदि के लिये भी स्वर रसिकों ने रागों का निर्धारण कर रखा है। इन सब में अङ्गभङ्ग होने पर तथा स्वर-बाजा न मिलने पर उन्हें अरुचि हो जाती है।

विरह हर्ष अरु शोक बधावा। शोभा बहुतक विविधि बनावा।।९।।
बहु विस्तार रची सो फंदा। होय रहै जिव परवश अंधा।।१०।।

शब्दार्थ — विरह = वियोगजनित मनःवेदना। हर्ष = आनन्दानुभव। शोक = प्रिय की मृत्यु से होने वाला घोर मनस्ताप। बधावा = बधाई; मंगलाचार; खुशी के मौके पर का गाना बजाना; हर्षप्रकाश, मुबारकबाद; पुत्रजन्म आदि के अवसर पर भेजा जाने वाला उपहार। शोभा = नगर आदि सजाने का वर्णन। अंधा = विवेक हीन।

भावार्थ — रागरसिक जन विरह, हर्ष, शोक, बधावा तथा शोभा वर्णन में अनेक गीत, काव्य, ग्रन्थ बनाकर उन्हीं में लीन रहते हैं ॥९॥ इस प्रकार संगीत आदि का बहुत विशाल बंधन बना कर और उन्हीं में आसक्त होकर जीव परतंत्र, मनवश एवं विवेकहीन हो रहे हैं ॥१०॥

विशेष — तात्विक दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि जीव अपने चेतन स्वरूप से पृथक चाहे जहाँ कहीं भी मोह-ममता करता है वह उसके लिये बंधन ही है। क्योंकि वह मनको चंचल बनाने का ही कारण बनता है।

राम कहानी सुने न काना। मस्त रागके भये दिवाना ॥११॥
विविधि चाल बाजा दरशावै। पिंड ब्रह्मांड में शब्द समावै ॥१२॥

शब्दार्थ — राम = स्वरूपज्ञान विषयक चर्चा।

भावार्थ — स्वर-संगीत में आसक्त लोग रामकथा एवं स्वरूपज्ञानविषयक चर्चा नहीं सुनते। वे राग-रागिनियों में ही रात-दिन मस्त होकर दीवाने बने रहते हैं ॥११॥ बाजे तथा उनको बजाने के ढंग भी अनेक प्रकार से दिखलाई देते हैं। सभी प्रकार के शब्द मनुष्य के मस्तिष्क तथा ब्रह्माण्ड के वातावरण में गूँजते हैं जो जीवको चंचल बनाने वाले हैं ॥१२॥

साखी—अपने अपने जालमें, सबै फँसावा जाल।
बहुत भाँति उपजायके, ग्रासै काल कराल ॥१९०॥

शब्दार्थ — काल कराल = भयंकर काल अर्थात अज्ञान।

भावार्थ — सब जीव अपने-अपने बनाये हुए अहंता-ममता के जाल में फँसे हुए हैं। जीव की अपनी भूलसे उत्पन्न हुआ भयंकर अज्ञान अनेक प्रकार से जड़ दृश्योंका कल्पित राग उत्पन्न करके उसी में जीव को ढँकता है ॥१९०॥

तबका चेतहु बावरे, जब मुख परिहो काल।
यहि औसर है परख ले, छूटहु महा भव जाल ॥१९१॥

शब्दार्थ — बावरे = पगले। भवजाल = संसारबंधन।

भावार्थ — हे पगले ! उस समय क्या सावधान हो सकोगे जब कि तुम मृत्यु के

मुख में चले जाओगे वर्तमान का समय उत्तम है। इसमें सारासार परखकर महान भवबंधनों से छूट जाओ ॥१९१॥

५१—काल (समय) विषयक विचार

चौपाई—५२

रचि अनेक विद्या विधि नाना। लौन पला का कीन्ह बंधाना ॥१॥
सोई आशा निश्चय धागा। भास दृष्टि सेवन दृढ़ लागा ॥२॥
दृष्टिबंद बाजी देखलाई। फंद फरफंद बहुते अरुझाई ॥३॥

शब्दार्थ — लौन=तीन श्वास का समय। पला=दो लौन का समय। धागा=डोरा, सूत, रस्सी, बंधन। दृष्टिबंद=नजरबंदी। बाजी=बाजी, खेल, तमाशा; धोखाधड़ी। फंद=बंधन। फरफंद=छल-कपट, दाँव-पेंच, नखरा।

भावार्थ — मनुष्यों ने अनेक प्रकार के विद्याओं का सृजन किया है, लौन पल आदि का भी नियम बाँध रखा है ॥१॥ वस्तुतः स्वस्वरूप से पृथक विषय दृश्य की ममता, आशा और उसमें सुख प्राप्ति का निश्चय यही दृढ़ बंधन है। भासविषयों में मनुष्यों का लक्ष्य फँसा होने से वे दृढ़ता पूर्वक उन्हीं का सेवन करते हैं ॥२॥ संसार में बहुत से ऐसे लोग हैं जो दूसरों के विवेकनेत्रों पर परदा डाल कर अपने धोखाधड़ी की बातको सत्य करके प्रदर्शित करते हैं; और लोगोंको छल-कपट के बंधनों में अनेक प्रकार से फँसा देते हैं ॥३॥

विशेष—साधक को चाहिये कि वह उन लोगों से सावधान रहे जो भ्रमजनित बातें करके मनुष्यों को भ्रमाने वाले हैं।

तीन श्वास त्रिगुण अनुरूपा। एक लौनको किया स्वरूपा ॥४॥
दुई लौन मिलि मेष बनाई। सोई मेष पला उपजाई ॥५॥
साठि पला एक ठाईं कीन्हा। तेहि परवान दंड रचि लीन्हा ॥६॥

शब्दार्थ—अनुरूप=समान,सदृश। परमान=प्रमाण,अवधि। दंड=घड़ी।

भावार्थ — इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ क्रमशः रज, सत तथा तम रूप हैं। इन्हीं की सादृश्यता लेकर तीन श्वासों का एक लौन का स्वरूप माना गया है ॥४॥ और दो लौन को मिलाकर एक मेष बनाया गया है उसी को ध्वनित करने के लिये पला या पल शब्द की उत्पत्ति की गयी है ॥५॥ और साठ पला एकत्र करके उसकी अवधि को दंड या घड़ी का विधान किया गया है ॥६॥

विशेष — स्वस्थ व्यक्ति के तीन बार श्वास चलने में जो समय लगे वह लौन, दो लौन का एक पला या पल तथा साठ पला का एक दंड या घड़ी माना है। ढाई

घड़ी (दंड) का एक घंटा होता है। रात-दिनमें साठ दंड (घड़ी) होता है जिसमें चौबीस घंटे होते हैं।

साठ दंड सो दिन औ राती। चारि चारि तेहि पहर उतपाती ॥७॥
चार पहर चौ कला उपाई। बाल कुमार युवा वृद्धाई ॥८॥

शब्दार्थ —पहर = ढाई घड़ी व तीन घंटे का समय। कला = अंश, भाग।

भावार्थ — साठ दंड व घड़ी के दिन और रात होते हैं। वे रात-दिन चार-चार पहरों में बटे हैं ॥७॥ चार पहर दिन या रात के चार भागों में बटे हैं; जैसे दिन के चार पहर—प्रातः ७ बजे से ९ बजे तक पहला पहर; १० से १२ बजे तक दूसरा पहर; १ से ३ बजे तक तीसरा पहर और ४ से ६ बजे तक चौथा पहर। इसी प्रकार रात में समझ लें। उपर्युक्त प्रकार से जीवन रूपी दिन में बालकपन पहला पहर, कुमारपन दूसरा पहर, जवानी तीसरा पहर तथा वृद्धता चौथा पहर है ॥८॥

चार पहर एक रूप उपाना। आठ पहर दुइ होय अगटाना ॥ ९ ॥
छौसै सहस एकईस परवाना। दिन औ रात श्वास अनुमाना ॥१०॥

शब्दार्थ — उपाना = उत्पन्न हुआ। परवाना = प्रमाण, माप, परिमाण, मात्रा।

भावार्थ — चार पहर एक दिन के रूप में प्रकट है, और दूसरा चार पहर जिसे मिला देने पर आठ पहर होते हैं रात के रूप में विदित हैं ॥९॥ रात और दिन (साठ दंड या चौबीस घंटे) में स्वस्थ मनुष्य के इक्कीस हजार छह सौ (२१६००) श्वास चलने का अनुमान किया गया है ॥१०॥

साखी—नारि पुरुषके भाव दुई, राति दिवस परवान।
श्वासा सहस एकईस अरु, छौ से लेखा मान ॥१९२॥

शब्दार्थ — परवान = प्रमाण, अवधि। लेखा = हिसाब, गणना।

भावार्थ — रात की अवधि को नारी तथा दिन की अवधि को पुरुष—इन दो भावों से रात और दिन माने गये हैं; और उनमें इक्कीस हजार छह सौ श्वासों के चलने की गणना की गयी है ॥१९२।

स्थूल पिंड ब्रह्मांडके, कारण लिंगम सोय।
संतत वर्तत विविधि विधि, कारण कारज होय ॥१९३॥

शब्दार्थ — पिंड = देह। ब्रह्मांड = विश्व। लिंगम = सूक्ष्म। संतत = निरंतर।

भावार्थ — जैसे विश्व के कारण षट्भेदयुक्त मिट्टी, जल, अग्नि तथा वायु के सूक्ष्मतम अंश—परमाणु हैं; वैसे स्थूलदेह का कारण श्वास वायु का सूक्ष्मतम अंश वासनामयसूक्ष्म शरीर है। इस प्रकार कारणसे कार्य बन कर अनेक विधि से निरन्तर व्यवहृत हो रहा है ॥१९३॥

विशेष — स्थूल विश्व के मुख्य कारण पृथ्वी आदि चतुर्भूत के सूक्ष्मतम अंश हैं। और शरीर निर्मित होने में वे तत्त्व तो उपादान कारण हैं ही; किंतु मुख्य कारण सूक्ष्म शरीर में स्थित वासनायें हैं। इस प्रकार सूक्ष्म कारण से स्थूल कार्य निरन्तर होते और बर्तते हैं। विवेक प्राप्त होने पर मनुष्य वासनाओं का अभाव करके मुक्त हो जाता है।

चौपाई—५३

सात बार सोइ स्वर्ग अनुरूपा। तामिच लगन कला बहूरूपा ॥१॥
चौदह भुवन एक अपवर्गा। पंद्रह तिथि पंद्रह परसंगा ॥२॥

शब्दार्थ — सात बार = रवि, सोम, मंगल, बुद्ध, गुरु, शुक्र तथा शनि ये सातदिन। अनुरूपा = अनुरूप; समान रूप वाला, सदृश; अनुसार। चौदहभुवन = चौदहलोक—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक—ये ऊपर के तथा अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल ये सात लोक नीचे के। एक अपवर्गा = मुक्तिलोक। परसंगा = प्रसंग, संबंध; प्रकरण; अवसर, मौका।

भावार्थ — रविवार से शनिवार—इन सात दिनों की मान्यता के अनुसार मनुष्यों ने आकाश में सात स्वर्गों की कल्पना की है। अथवा इन सातों दिनों को स्वर्ग सदृश मान रखा है। इन सातों दिनों के बीच में अनेकों लग्न, मुहूर्त आदि के भाग निर्धारित किये हैं ॥१॥ चौदह लोक और एक मुक्तिलोक—इन पंद्रहों को प्रतिपदा से अमावस्या या पूर्णिमा तक पंद्रह तिथियों में संबंधित किया है ॥२॥

विशेष — ये पंद्रहों तिथियाँ मानो चौदह लोक और एक अपवर्ग है। अमावस्या को पुरुष का तथा पूर्णिमा को स्त्री का अपवर्ग मान रखा है।

अनेक कला तेहि पंद्रह समाना। वदी सुदी होयके प्रगटाना ॥३॥
दोऊ पक्ष दोऊ सो अंगा। दक्षिणायन उत्तरायण लिंगा ॥४॥

शब्दार्थ — कला = भाग, अंश। अंगा = अंग, भाग। लिंगा = लिंग, चिन्ह।

भावार्थ — उन पंद्रह तिथियों में अनेक शुभाशुभ ग्रह, लग्न, योग आदि समाये हुए हैं। फिर ये कृष्णपक्ष तथा शुक्लपक्ष होकर भी विदित हैं ॥३॥ ये दोनों पक्ष महीने के दो भागों में विभक्त हैं। वर्ष के भी दो भाग दक्षिणायन और उत्तरायण के लक्षणों से जाने जाते हैं। छह महीने जब सूर्य दक्षिण तरफ गति करता है दक्षिणायन माना जाता है और जब छह महीने उत्तर तरफ गति करता है उत्तरायण माना जाता है ॥४

दुइ पंद्रहको मास कहावै। चार मास एक समय समावै ॥५॥
तीन समय सो तीहु तरंगा। कफ पित वात अज हरि हर अंगा ॥६॥

शब्दार्थ — दुइ पंद्रह = दो पखवारे।

भावार्थ — दो पखवारों का एक महीना कहलाता है। चार महीने का एक समय होता है—चार मास वर्षा, चार मास ठंढी तथा चार मास गरमी ॥५॥ उक्त तीनों समयों में क्रमशः वर्षा, ठंढी तथा गरमी की तरंगे रहती हैं और वर्षा को कफ, ठंढी को पित तथा गरमी को वात भी कहा जाता है जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के भाग हैं ॥६॥

तीन समय छौ ऋतु कर डारी। पुरुष तीन तीन सो नारी ॥७॥
बारह मास एक संवत कहाई। तीनसै साठ दिन रात खपाई ॥८॥

शब्दार्थ — संवत = वर्ष। खपाई = समा जाना।

भावार्थ — वर्षा, शीत तथा गरमी—इन तीन समयों में छह ऋतुयें होती हैं—वर्षा में वर्षा और शरद, शीत में हेमंत और शिशिर तथा गरमी में वसंत और ग्रीष्म। इनमें ग्रीष्म, शरद तथा शिशिर क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश की और वसन्त, वर्षा तथा हेमन्त क्रमशः सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती की अध्यक्षता में बर्तती हैं ॥७॥ बारह महीने का एक वर्ष कहलाता है जिसमें तीन सौ साठ दिन-रात समा जाते हैं ॥८॥

सो संवत अस्थूल बनाई। बारम्बार नाशै उपजाई ॥ ९ ॥
एक साठिका पल ब्रह्मंडा। सोई विदित ब्रह्मांडको दंडा ॥१०॥

शब्दार्थ — साठि = साठ (६०) वर्ष। दंड = घड़ी।

भावार्थ — सूक्ष्म पल-विपलों का विधान करते-करते समय का स्थूल रूप संवत का निर्धारण किया गया। वह वर्ष आदि का समय बारम्बार नष्ट तथा उत्पन्न होता रहता है ॥९॥ मनुष्य के साठ (६०) वर्षों का ब्रह्मांड का एक पल होता है तथा वैसे साठ पलों का उसकी एक घड़ी होना माना है ॥१०॥

युग अरु कल्प कीन्ह बंधाना। प्रलय महाप्रलय उतपाना ॥११॥
सूक्ष्म अवध पिंड ब्रह्मंडा। महा विस्तार अवध प्रचंडा ॥१२॥

शब्दार्थ — बंधाना = निश्चय, निर्धारण। अवध = अवधि, समय की सीमा।

भावार्थ — मनुष्यों ने युगों तथा कल्पों का निश्चय किया और प्रलय तथा महाप्रलय की कल्पनायें की ॥११॥ मानव शरीर के समय की अवधि छोटी है; परन्तु विश्व की अवधि महान विस्तार से कल्पना की गयी ॥१२॥

विशेष — चारों युगों की अवधि मनुष्य के वर्षों में निम्न प्रकार माना है :—

कलियुग	—	४,३२,००० वर्ष।
द्वापरयुग	—	८,६४,००० वर्ष।
त्रेतायुग	—	१२,९६,००० वर्ष।
सत्युग	—	१७,२८,००० वर्ष।

कल्प—ब्रह्मा का एक दिन। एक हजार महायुग। मनुष्य के चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष। प्रलय।

वस्तुतः जगत अनादि तथा अनन्त है इसकी न कभी सर्वथा सृष्टि होती है और न सर्वथा प्रलय।

आयु अवध आपु रचि लीन्हा। थिर नहिं औरहि औरे कीन्हा ॥१३॥
तेहि प्रतीति कौन विधि कीजै। छिन भंगी चित कबहुँ न दीजै ॥१४॥

शब्दार्थ — अवध=अवधि। प्रतीति=विश्वास।

भावार्थ — मनुष्य गणना करके ज्योतिष विद्या द्वारा अपने शरीर की आयु निर्धारित करता है; परन्तु वह शरीर स्थिर नहीं है क्षण-क्षण और-का-और ही होता जाता है ॥१३॥ फिर उसका विश्वास किस प्रकार किया जाय? अतएव शरीरादि क्षणभंगुर वस्तुओं में अपने मन को कभी न आसक्त करो ॥१४॥

साखी—लेखा भाव शुभ अशुभ लै, ज्योतिष दृष्टि बनाय।
नित्य प्रलय प्रलय तेही, महाप्रलय माँहि समाय ॥१९४॥

शब्दार्थ — लेखा = गणना।

भावार्थ — लोग ज्योतिष विद्या से गणना करके मनुष्य के कर्म, आयु, धन, विद्या, उपलब्धि, मरण आदि का निर्धारण और शुभ तथा अशुभ का निश्चय करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड की आयु का भी काल्पनिक हिसाब लगाकर नित्यप्रलय, प्रलय और अन्ततः महाप्रलय में सब कुछ का लीन होना बतलाते हैं ॥१९४॥

विशेष — सो जाना नित्यप्रलय है, ब्रह्मा का एक दिन अर्थात एक कल्प (चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष) बीत जाने पर प्रलय माना है और ब्रह्मा का उनके अपने वर्षों से सौ वर्ष जीकर उनके मर जाने पर महाप्रलय माना है जो एक कोरी कल्पना है।

मनुष्य के चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। इसमें सृष्टि रहती है। जब इतना समय बीत जाता है तब ब्रह्मा की रात आ जाती है और वे सो जाते हैं। फिर वे चार अरब बत्तीस करोड़ मनुष्य-वर्ष तक सोते रहते हैं। इस अवधि में पृथ्वी पर सृष्टि नहीं होती। जब वे जागते हैं सृष्टि करते हैं और पुनः अपने पूरे दिन (चार अरब बत्तीस करोड़ मानव-वर्ष तक) सृष्टि करते हैं। ऐसे उनके तीन सौ साठ वर्ष का एक वर्ष बीतता है। पुनः उनके वर्षों से सौ वर्ष बीतने पर उनकी मृत्यु हो जाती है। तब महाप्रलय होता है। यदि ब्रह्मा का वर्ष ३६० दिन का माने तो उनके दिन-रात के अनुसार उसमें इकतीस खरब, दश अरब, चालीस करोड़ (३१,१०,४०,००,००,०००) मानव वर्ष होता है। इसमें सौ (१००) का गुणा करने से इकतीस नील दश खरब, चालीस अरब (३१,१०,४०,००,००,००,०००)

मानव-वर्ष होता है। इतना दिन जीकर उनके मर जाने पर महाप्रलय की कल्पना कर रखी है।

कहा जाता है इतनी लम्बी आयु वाले हजारों ब्रह्मा के मर जाने पर विष्णु की एक घड़ी होती है और ऐसे हजारों विष्णु के मर जाने पर रुद्र का एक पल होता है। जब झूठ बोला ही जाय तब थोड़ा क्या बोला जाय ?

सत्य प्रीति परतीत दृढ़, राखे जीव अटकाय।
नाशक नाशे ताहिमें, अनबनि विधि भटकाय ॥१९५॥

शब्दार्थ — अटकाय = फँसा कर। नाशक = नाश करनेवाला, पतित करनेवाला। अनबनि = अनेक।

भावार्थ — स्वयं भूले लोगों ने मिथ्या मान्दो में सच्चा प्रेम और विश्वास निश्चय कराकर जीवों को फँसा रखे हैं। वे मनुष्यों को कल्पनाओं में पतित करने वाले अनेक प्रकार से उन्हें अपने मायाजाल में भटका कर नष्ट करते हैं ॥१९५॥

५२—ज्योतिष, भविष्यज्ञान, सिद्धि आदि पर विचार

चौपाई—५४

यहि विधि कला अनेक प्रकाशा। लक्ष स्वभाव अगम विश्वासा ॥१॥
विद्या अगम लक्ष स्वभावा। सिद्ध कला सो प्रगट देखावा ॥२॥

शब्दार्थ — लक्ष = लक्ष्य, निशाना; उद्देश्य; अनुमान का विषय। अगम = आगम, होनहार; आनेवाला समय; आगमजानी—भविष्य को समझने वाला। विद्या अगम = भविष्यज्ञान की विद्या।

भावार्थ — मनुष्यों ने उपर्युक्त प्रकार से अनेक कलाओं का विकास किया है। इसके आगे लोगों को भविष्य वक्ताओं के भविष्य ज्ञान पर भी विश्वास है कि वे मनुष्य के लक्ष्य एवं उद्देश्य तथा स्वभाव को देखकर उनके भविष्य में होने वाली होनी को कह देते हैं ॥१॥ कुछ चतुर लोग मनुष्यों के लक्ष्य और स्वभाव को देखकर अनुमान से उनके भविष्य के विषय में कुछ कह देते हैं और वह बात कहीं-कहीं उतर जाती है। लोगों ने उसी को सिद्ध कला के रूप में प्रचारित व प्रदर्शित कर रखा है ॥२

पाँच तत्त्व त्रिगुण निर्माई। लक्ष सोई अगम प्रगटाई ॥३॥
पाँच तत्त्वको पाँच स्वभावा। तीनों गुण तेहि संग लगावा ॥४॥

शब्दार्थ — लक्ष = लक्ष्य; उद्देश्य। अगम = आगम, होनहार।

भावार्थ — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँच तत्त्व और सत, रज, तम ये तीन गुण से पिंड-ब्रह्मांड की रचना है। अतएव इनमें लक्ष्य लगाकर संयम कर लेने से पिंड-ब्रह्मांड की सारी बातें योगी को जान मिल जाती हैं और वह सब

होनहार को पहले से प्रकट करके कह देता है (इस प्रकार लोगों ने कल्पना कर रखी है) ॥३॥ पाँचों तत्वों के पाँच भिन्न स्वभाव हैं और उनके साथ लगे हुए तीनों गुणों के स्वभाव भी पृथक-पृथक हैं ॥४॥

विशेष — पृथ्वी कठोर स्वभाव वाली तथा गंधवती है, जल शीतल एवं रस युक्त है, अग्नि उष्ण तथा रूपगुण युक्त है, वायु कोमल तथा स्पर्श एवं शब्द गुण वाला है और आकाश केवल शून्य और गुण-क्रिया रहित है। इसी प्रकार तीनों गुणों में भी स्वभाव की भिन्नता है। रजगुण क्रियाशील एवं उत्पादक है, सतगुण रक्षक और तमगुण नाशक है। कहते हैं जब योगी इन समस्त विरोधी मूलद्रव्यों में संयम कर लेता है तब पिंड-ब्रह्मांड की समस्त भावी होनी को जान लेता है। इसका विवरण प्रकार-भेद से पतंजलि ने योगदर्शन के विभूतिपाद में किया है। जैसे—

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥२७॥
चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥२८॥
ध्रुवे तद्गति ज्ञानम् ॥२९॥

अर्थात सूर्य में संयम कर लेने से विश्व का ज्ञान हो जाता है ॥२७॥ चन्द्रमा में संयम कर लेने से तारासमूह का ज्ञान हो जाता है ॥२८॥ ध्रुव में संयम कर लेने से तारागणों की गति का ज्ञान हो जाता है। २९॥

संसार की समस्त वस्तुयें पाँच तत्व तथा तीन गुणों से बने हैं; अतएव योगी लोग मानते हैं कि इन आठों में संयम कर लेने से पिंड-ब्रह्मांड—सबका ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

एकन एक विरोध मिलापा। फल तेहि दुख सुख बहु विधि थापा ॥५॥
थूल अस्थूल सकल ब्रह्मंडा। पूरण कला सोई परचंडा ॥६॥

शब्दार्थ — थापा = थापना, स्थापित करना; निर्धारित करना, निश्चय करना। थूल = सूक्ष्म। अस्थूल = स्थूल।

भावार्थ — तत्वों में एक दूसरे के गुण-धर्मों में विरोध है तथा वे एक दूसरे में मिश्रित भी रहते हैं। जीवों को अपने किये हुए पाप-पुण्य कर्मों के फल इन्हीं तत्वों एवं इनके कार्यों से मिलते हैं; परन्तु लोग भूलवश दुःख-सुख दाता कहीं भिन्न मान कर उसकी अनेक भाँति की स्थापना करते हैं ॥५॥ सूक्ष्म, स्थूल, पिंड और ब्रह्मांड समस्त प्रपंच की सारी रचनायें तीव्र क्रियाशील जड़तत्वों की ही हैं (चेतन तो निर्विकार ज्ञान स्वरूप हैं) ॥६॥

वाक्य विचार अक्षर निहारी। वर्तमान जाने सब सारी ॥७॥
देह स्वभाव दिशा प्रभाऊ। भिन्न भिन्न विलगी सब दाऊ ॥८॥

शब्दार्थ — निहारी = देखकर। प्रभाऊ = प्रभाव; असर। दाऊ = दावँ, कार्यसिद्धि का उपयुक्त अवसर; कपटपूर्ण युक्ति, छलने की चाल।

भावार्थ — ओझा सिद्ध तथा ज्योतिषियों के पास जब कोई अपने भविष्य ज्ञान की प्राप्ति के लिये जाता है तब वे उसके प्रश्न के वाक्य के अक्षरों की गणना करके या विचारकर, और अपनी पोथी के अक्षरों को देखकर या प्रश्नकर्ता की उँगली मंत्र के किस अक्षर पर रखी है इसको देखकर। प्रश्नकर्ता का शरीर तथा उसके अंग किस ढंग के हैं, उसका स्वभाव कैसा है, किस दिशा से आया है और आकर किस दिशा में तथा किधर मुख करके बैठ गया है—इन सब के प्रभाव अलग-अलग मानते हैं तथा अन्य भी अनेक चालबाजियों के सहित तेजबुद्धि वाले सिद्ध नामधारी प्रश्नकर्ता की कुछ बातों को बता देते हैं। उनकी कुछ बातें सही उतर जाने से मूढ़ जनता कहती है कि बाबा वर्तमान में ही भविष्य की सारी बातें जान जाते हैं ॥७,८॥

सोई स्वभाव दाव लखि लेई। होनीहार परगट कै देई ॥९॥
मनके दाव लखै सो होई। निर्णय करि देखै जो कोई ॥१०॥
बिनु तेहि साधै सिद्धि न पावै। काल चरित्र विविधि विधि गावै ॥११॥

शब्दार्थ — दाव = चालबाजी। होनीहार = भवितव्य। काल = कल्पना।

भावार्थ—ओझा, ज्योतिषी तथा सिद्ध नामधारी लोग प्रश्नकर्ता के स्वभाव, अंग आदि देखकर तथा अन्य अनेक चालबाजियों से भूतपूर्वमें घटी तथा भविष्य में होने वाली कुछ बातों को प्रत्यक्ष करके कह देते हैं ॥९॥ यदि कोई निर्णय करके देखे तो उसे पता चल सकता है कि वे ही लोग सिद्धयी के ढकोसले में प्रवीण हो सकते हैं जो मनकी अनेक चालबाजियों के पण्डित तथा तेजबुद्धि के हैं ॥१०॥ चाहे कोई कितना ही कल्पित चरित्र का गुणगान करे; परन्तु बिना मनकी छल-चतुरता में प्रवीण किये सिद्धि नहीं पा सकता ॥११॥

विशेष — अथवा मनका संयम करने से सब प्रकार की सिद्धि की प्राप्ति होना योगी लोग बतलाते हैं। यह ठीक है कि मनका संयम एवं उसे एकाग्र करके ही किसी दिशा में सफलता मिल सकती है; परन्तु यह एक मिथ्या धारणा है कि मन को एकाग्र कर लेने पर वह सबके भविष्यको या कौन वस्तु कहाँ गड़ी है यह सब जान लेता है।

साखी—मनके दाव जो लखि परै, सबै होय परकाश।
पुनि थिर नाहीं ताहिके, अंत होय सो नाश ॥१९६॥

शब्दार्थ — मनके दाव = मनकी चालबाजियाँ।

भावार्थ — (योगी लोग कहते हैं) यदि मनकी सब चालबाजियाँ समझ में आजायँ; अर्थात मनको स्ववश किया जा सके तो सभी सिद्धि की प्राप्ति हो जाय।

(अथवा) वस्तुत: वही सिद्धि का प्रदर्शन कर सकता है जो मनकी सारी चालाकियों का पण्डित होता है। परन्तु झूठ-फुर मिला कर प्राप्त की गयी ये सारी सिद्धियाँ स्थिर रहने वाली नहीं हैं; अंतत: सब नष्ट हो जाती हैं ।।१९६।।

विशेष :— गणितज्ञ ज्योतिषी लोग एकाग्र मन से प्रकृति का अनुसंधान करके खगोल, भूगोल तथा तारागणादि की क्रियायें, स्वरूप आदि बहुत बातों का आंशिक या यथावत पता लगा लेते हैं। वैज्ञानिकों ने मनोयोग पूर्वक प्रकृति का विश्लेषण करके उसके अनेक गूढ़तत्त्वों का पता लगा लिया है तथा अनेक यंत्रों का निर्माण कर डाला है जिससे दूर श्रवण, दूरदर्शन एवं दूरभ्रमण आदि किये जा रहे हैं। ये बातें वैज्ञानिक हैं। परन्तु केवल आँख मूँदकर छू मंतर से प्राकृतिक जगत में सिद्धि की प्राप्ति की चेष्टा निरर्थक है।

सिद्धि का अर्थ है परिपक्वता या सफलता। व्यक्ति पहले भाषण नहीं दे पाता है। जब वह निरन्तर भाषण देनेका प्रयास करता रहता है तब किसी दिन धुरन्धर प्रवक्ता बन जाता है। जल में तैरते-तैरते लोग तैराक हो जाते हैं। जो व्यक्ति मनका सूक्ष्म अध्ययन करता तथा अपने मनका द्रष्टा बन जाता है वह दूसरे व्यक्तियों की भी बहुत कुछ मन:स्थिति को जान लेता है। यहाँ का तात्पर्य यह नहीं है कि वह दूसरे के संकल्प-विकल्पों को जान लेता है; अपितु मन:स्थिति को जान लेता है।

पतंजलिजी ने सिद्धि प्राप्ति के पाँच कारण बतलाये हैं :—

जन्मौषधि-मन्त्र-तप:-समाधिजा: सिद्धय: ।।४।१।।

अर्थात—जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि से सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं।

अनेक जन्मों के संस्कारी पुरुष जन्म से ही प्रतिभावान होते हैं; और "प्रातिभाद्वा सर्वम्" ।।३।३४।। अर्थात प्रतिभा की शक्ति से भी सब दिशाओं में सफलता मिलती है।

औषधि अर्थात रसायन विद्या से अनेक कार्यों में सफलता मिलती है। आज रासायनिक (कैमिकल्) विद्या ने वैज्ञानिक उत्पादन में अद्भुत चमत्कार दिखा रखा है।

मन्त्र से भी सफलतायें मिलती हैं। 'मननात् मन्त्र:' जो मनन से अर्थात एकाग्र चिंतन से सिद्ध हो वह मन्त्र की सफलता है। वैज्ञानिक वेधशालाओं तथा विज्ञानशालाओं में कितने एकाग्र मन से चिंतन करके अद्भुत अनुसंधान प्रस्तुत करते हैं। वैज्ञानिक मन्त्र तथा मनन द्वारा ही यह निर्धारण करते हैं कि अमुक वस्तु अमुक द्रव्य में मिलाने से अमुक हरकत होगी तथा अमुक वस्तु बन सकेगी। इस प्रकार मनन, चिंतन रूप मन्त्र भी किसी सफलता की प्राप्ति में योगदान करता है। केवल कुछ शब्दों का बनाया पद्य रट देने से किसी प्रकार की सफलता मिल जाने की आशा करना महाभ्रम है।

तप से भी सफलता पाने के लिये मनुष्य को मानापमान, सुखदुख, हानिलाभ, शरदी-गरमी आदि सहना ही पड़ता है। जो जितना ही सहनशील होता है वह उतना ही अपनी दिशा में सफल होता है।

समाधि एवं मन की एकाग्रता से सफलता मिलना निश्चित ही है। चंचल मनवाला व्यक्ति स्थिर होकर कुछ कर ही नहीं सकता। एकाग्रमन वाला ही दीर्घ-काल तक अपने उद्देश्यपथ में लगा रहता है।

इस प्रकार सिद्धि का अर्थ वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक सफलता है, जिसके कारण जन्म (पूर्वसंस्कार), औषधि (रासायनिक-तत्व), मन्त्र (मनन-चिंतन-अध्यवसाय), तप (सहनशक्ति), तथा समाधि (मनकी एकाग्रता) है। जो अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियों का वर्णन है कि हनुमानजी अपना शरीर सौ योजन बढ़ा लिये फिर मच्छड़ बनकर निकल गये, यह सब कोरी कल्पना है। या इसका अलंकारिक अर्थ मानकर यह कहा जा सकता है कि पहले हनुमान जी अपना बल दिखाकर विरोधी को नम्र कर दिये और पुनः स्वयं भी नम्र होकर निकल गये। अतएव जो सफलतायें विवेकपूर्ण है वही वास्तविक सिद्धि है; शेष मनगढ़न्त कल्पनायें हैं।

लाख कोश को भूत बतावे, करोर कोशको सिद्ध।
गाड़े कुँवा को अजय बतावै, तैयो यमका फंद ॥१९७॥

शब्दार्थ — कोश = कोस, दो मील की दूरी। करोर = करोड़, सौ लाख। अजय = ज्योतिषी। यम = मन, वासना, कल्पना।

भावार्थ — (कहते हैं) जो व्यक्ति भूत-प्रेत सिद्ध कर लेता है वह लाख कोस की दूरी की बात बता देता है, और जो अष्टसिद्धियों को प्राप्त कर लेता है वह—करोड़ कोसकी दूरी की भी बात बता देता है; और ज्योतिषी लोग कुँआ-जैसी गहरी जगह में गड़ी हुई सम्पत्ति को भी बता देते हैं। (ग्रन्थकर्ता कहते हैं) तो भी यह सब मन का ही जाल है ॥१९७॥

विशेष —भूत-प्रेत नाम की संसार में न खानि है और न उनका अस्तित्व है, फिर उनको सिद्ध करने की बात ही व्यर्थ है। अष्ट सिद्धियों का भी अवैज्ञानिक रूप निरर्थक ही है जो कुछ वैज्ञानिक है वही ठीक है। ज्योतिषी लोग गड़ी वस्तु बता देते तो वे पृथ्वी में से गुप्त रत्नों को खोदकर स्वयं मालामाल हो जाते। हाँ, भौमिकी या भूगर्भ विद्या से तथा वैज्ञानिक उपकरणों से पृथ्वी के भीतर रही हुई धातुओं व अन्य वस्तुओं का पता लगाया जाता है।

वैसे सिद्धियाँ काल्पनिक हैं; और उनमें किसी अंश में कुछ वैज्ञानिक ढंग वाली सही भी हों तो भी वह भौतिक क्षेत्र तक ही मनुष्य के लिये उपयोगी हैं। परमशान्ति की प्राप्ति के लिये उज्ज्वल चरित्र, मनकी एकाग्रता, विवेक, वैराग्यादि ही सहायक हैं।

सत्य शब्द टकसार : बीजक, साखी २२२

सिद्ध भया तो क्या भया, चहुँ दिशि फूटी बास।
अंतर वाके बीज है, फिर जामन की आस ॥१९८॥

शब्दार्थ — बास = सुगन्धी, वासना। अन्तर = भीतर, हृदय।

भावार्थ — व्यक्ति अपने को ब्रह्म मानकर सिद्ध बना तो इससे क्या लाभ हुआ ? सारे संसार को अपना स्वरूप मानकर उसकी वासनायें चारों ओर फूट पड़ीं। उसके हृदय में संसार की बीज-वासना बनी रह जाती है; इसलिये ब्रह्माध्यास पुनः जन्म लेने का कारण है ॥१९८॥

५३–गणित तथा फलित ज्योतिष और श्वास स्वरोदय का फलाफल विचार

चौपाई—५५

लिगम जो ब्रह्मांड निहारै। भिन्न भिन्नके कला विचारै ॥१॥
ज्योतिष दृष्टि रहै लौलाई। तीक्ष्ण बुद्धि नहिं चूक गनाई ॥२॥

शब्दार्थ — लिंगम = सूक्ष्म। चूक = असावधान। गनाई = गणना।

भावार्थ — (कहते हैं) जो लोग सूक्ष्मदृष्टि से ब्रह्माण्ड का निरीक्षण करते हैं, वे भिन्न-भिन्न अनेक गुणों, रचनाओं, अंशों तथा विशेषताओं पर विचार करते हैं ॥१॥ वे ज्योतिष की दृष्टि में सदैव ध्यानमग्न रहते हैं और ऐसे तीव्र बुद्धि वाले ज्योतिष सम्बन्धी गणना में असावधान नहीं होते ॥२॥

सो होनी ब्रह्मांड जनावै। साधन करै सिद्धि सो पावै ॥३॥
धातु मूल जिव लगन विचारे। मन मुष्टिका भेद सँवारे ॥४॥

शब्दार्थ — होनी = होनहार, भविष्यमें होने वाली घटना। धातु मूल = पदों की प्रकृति, शब्दों का मूल रूप--जैसे 'भाव' की भू, 'कर्ता' की कृ आदि; तात्पर्य में प्रश्नकर्ता के नाम के पहला अक्षर से राशि आदि निर्धारण करना। मुष्टिका = मुट्ठी।

भावार्थ — जो व्यक्ति ज्योतिष की साधना करता है वह उसमें सिद्धि पा लेता है, और वह ब्रह्माण्ड में होने वाली आगामी घटनाओं को बतला देता है (यह तो गणित ज्योतिष हुआ। फलितज्योतिष के विषय में आगे कहते हैं--) ॥३॥ ज्योतिषियों के पास जब कोई अपनी दशा पूछने आता है तब वे उसका नाम पूछकर उसकी राशिका निर्धारण करते हैं, पुनः लग्न आदि का विचार करके तथा अनेक प्रकार से गणना करके प्रश्नकर्ता की शुभाशुभ दशायें बताते हैं। कोई तो मन में कोई बात सोचकर ज्योतिषी से पूछते हैं और कोई हाथ की मुट्ठी में किसी वस्तु को लेकर

पूछते हैं कि हमारे मन व मुट्ठी में क्या है ? ज्योतिषी लोग अनुमान करके चतुरता से कुछ उत्तर देते हैं । संयोग से कोई उत्तर ठीक उतर जाता है और कोई गलत हो जाता है ॥४॥

विशेष — ग्रह-नक्षत्रों की गति, स्थिति आदि का विचार करने वाला शास्त्र गणितज्योतिष है और ग्रह-नक्षत्रों आदि के शुभाशुभ फल बताने आला शास्त्र फलित ज्योतिष है । गणितज्योतिष ठीक है और फलितज्योतिष काल्पनिक है ।

श्वासा लिंगम पिंड निहारे । साधनयुत जो ताहि सँभारे ॥५॥
आगम भेद सबै सो पावै । सिद्ध स्वरोदय विद्या गावै ॥६॥

शब्दार्थ — लिंगम=सूक्ष्म । पिंड=शरीर । आगम=भवितव्य, होनहार । स्वरोदय=श्वासभेद से शुभाशुभ फल जानने की विद्या ।

भावार्थ — जो व्यक्ति शरीर में सूक्ष्म श्वास का निरीक्षण करता है; और स्वरोदय के साधनापूर्वक श्वास का संयम करता है ॥५॥ वह भविष्य में होने वाले फलाफल को बता देता है, इस प्रकार स्वरोदय विद्या में सिद्ध पुरुष दृढ़ता से कहते हैं ॥६॥

विशेष — उपर्युक्त कथन का कुछ भेद आगे मूलकार स्वयं बताते हैं :--

सुषुमना गगन सो कारण नाशा । वायु अनल पिंगला सुखबासा ॥७॥
इंगला जल पृथिवी हितकारी । दुनहुँ अंग बेप्रीति सँवारी ॥८॥

शब्दार्थ — सुषुमना=सुषुम्णा, नाक के दोनों छिद्रों में चलता हुआ सम वायु । पिंगला=नाक के दायें छिद्र का वायु । इंगला=इडा, नाक के बायें छिद्र का वायु । बेप्रीति=विपरीत ।

भावार्थ — किसी के प्रश्न करते समय यदि उसकी सुषुम्णा नाड़ी चलती है तो उसमें आकाश तत्त्व प्रवेश होने से उसके कार्यों का वह नाशक है । जैसे आकाश शून्य है वैसे उसके सब कार्य शून्य हो जाते हैं । और वायु तथा तेजतत्त्व युक्त पिंगला नाड़ी के चलते समय किया गया प्रश्न सुख में निवास कराता है ॥७॥ जल तथा पृथ्वी युक्त इडा नाड़ी के चलने पर प्रश्न करने से वह हित करने वाला होता है । यदि पिंगला तथा जल, पृथ्वी आदि तत्त्वों की विपरीत स्थिति में हो तो भी कार्य में विघ्न पड़ता है । अथवा इडा-पिंगला के विपरीत आकाशतत्त्वयुक्त सुषुम्णा की स्थिति में किया गया प्रश्न नाशक है ही ॥८॥

दहिने अंग पुरुषके दाऊ । चर कारज तेहि माँहि बनाऊ ॥९॥
अर्धंगी बायें सो नारी । थिर कारज तेहि मध्य सँवारी ॥१०॥
अपनी अपनी राज सँवारै । बेप्रीति परस्पर काज बिगारै ॥११॥

शब्दार्थ — दाऊ = दावँ, अवसर, कार्य करने का समय। चर = चल, अस्थिर, चंचल। थिर = स्थाई। राज = राज्य, मंडल; देश; घेरा। बेप्रीति = विपरीत।

भावार्थ — नाक के दाहिने छिद्र से चलने वाली पिंगला नाड़ी पुरुष अंश की है। इस अवसर पर लड़ाई, शास्त्राभ्यास, विद्याध्ययन, वादविवाद, स्नान, भोजन आदि चंचल कार्य करने से उनकी सफलता होना माना है ॥९॥ नाक के बायें छिद्र की इडा नाड़ी नारी का अंश है। इसके चलने पर वस्त्राभूषण धारण करना, घर बनाने के लिये आरम्भ करना, कुँआ-बावड़ी बनवाना, खातापुस्तक लिखने आदि स्थायी कार्य करने से उनकी सफलता होना माना है ॥१०॥ दोनों में अपने-अपने घेरा के अनुकूल कार्य करने से तो हित होता है, और परस्पर विपरीत करने से काम बिगड़ जाता है, (ऐसा मान रखा है) ॥११॥

साखी—कारण चंचल पुरुषके, थिर कारण सो नार।
पथिक चले पथ नाथके, कारज सो विस्तार ॥१९९॥

शब्दार्थ — पुरुष = पिंगला नाड़ी। नार = नारी, इडा नाड़ी। नाथके = स्वामी के, गुरुओं के।

भावार्थ — पुरुषअंशी पिंगला नाड़ी चंचल कार्य की सहायिका है तथा नारी अंशी इडा नाड़ी स्थिर कार्य की सहायिका है। इस प्रकार स्वरोदय विचारने वाले गुरुओं के पथ में संसार के पथिक मनुष्य चलते हैं और उनकी मान्यता के कार्यों का विस्तार करते हैं ॥१९९॥

थिर पृथिवी स्थूल सो, चंचल लिंगम स्वास।
युगल एकत्र वर्तत रहै, विरह परस्पर नाश ॥२००॥

शब्दार्थ — लिंगम = सूक्ष्म। युगल = दोनों।

भावार्थ — जैसे पृथ्वी स्थिर और मोटी होती है वैसे माया अंशी इडा नाड़ी स्थूल तथा स्थिर कार्य करने में सहायिका होती है। और जैसे वायु सूक्ष्म और चंचल होता है। उसी प्रकार पुरुषअंशी पिंगला नाड़ी चंचल कार्य में सहायिका होती है। यदि इडा और पिंगला दोनों एकत्र होकर सुषुम्णा की स्थिति में होकर उसका वर्तमान होने लगे और उसी समय में कोई कार्य आरम्भ करे तो परस्पर में वियोग या नाश आदि दुर्घटना उपस्थित होगी। इस प्रकार सुषुम्णा की स्थिति में कोई कार्य नहीं आरम्भ करना चाहिये, (ऐसा मान रखा है) ॥२००॥

तर अरु ऊपर आपुही, दुइ दुइ भाग विस्तार।
कठिन काल परपंच है, परखहु होय उबार ॥२०१॥

शब्दार्थ — तर = पिंड। ऊपर = ब्रह्मांड। आपुही = स्वयं मनुष्य ही। काल = कल्पना।

भावार्थ — स्वरोदय विद्या वाले नीचे पिण्ड में इडा-पिंगला को नारी-नर रूप दो भागों में विभक्त कर उनका विस्तार कर रखे हैं जिससे फलित ज्योतिष का निर्धारण करते हैं; और गणित विद्या वाले ऊपर ब्रह्माण्ड में चंद्र-सूर्य को मापदंड बना कर गणित ज्योतिष का निर्धारण करते हैं। अथवा मनुष्य स्वयं पिंडब्रह्मांड में माया और ब्रह्म इन दो भागों की मान्यता का विस्तार कर रखा है। वस्तुतः यह सब भयंकर कल्पना का जंजाल है। सत्संग विवेकद्वारा परख करके इनका त्याग करो तभी उद्धार सम्भव है ॥२०१॥

विशेष — गणित ज्योतिष भौतिक क्षेत्र में आवश्यक है और वह वैज्ञानिक भी है; परन्तु फलित ज्योतिष भ्रमपूर्ण तथा अनावश्यक है। मोक्षार्थी को तो सबसे अनासक्त होना चाहिये।

५४-योगाभ्यास से शरीर को अमर बनाने की दुराशा पर विचार

चौपाई—५६

श्वासा साधन युक्ति बनाया। योग अभ्यास कर्म अरुझाया ॥१॥
शनै शनै श्वासाको साधै। संयम बहुविधि चित्त दृढ़ बाँधै ॥२॥

शब्दार्थ — युक्ति = उपाय। शनै शनै = धीरे-धीरे।

भावार्थ — योगियों ने श्वाससाधना का उपाय किया, और वे योगाभ्यास के कर्म में फँस गये ॥१॥ वे धीरे-धीरे श्वास रोकने-छोड़ने का अभ्यास करते हैं; और अनेक प्रकार से संयम करके अपने मन को दृढ़ता से एकाग्र करते हैं ॥२॥

विशेष — श्वास को धीरे-धीरे खींचना पूरक है तथा मस्तिष्क में रोक रखना कुंभक है और उसे धीरे-धीरे छोड़ते जाना रेचक है। इन तीनों को मिला कर एक प्राणायाम कहलाता है। इस काम के पूर्ण करने के लिए वे लोग काफी संयम रखते हैं; जैसे सात्विक तथा अल्पाहार करना, कम बोलना, भीड़भाड़ से दूर रहना, योग-मार्ग के अतिरिक्त साहित्य न पढ़ना आदि।

अपनी वशि जब पावै बाई। सूर्त अष्टांग योगमें लाई ॥३॥
चौरासी आसन परवाना। एकनि एक करै विधि नाना ॥४॥

शब्दार्थ — बाई = वायु, श्वास। सूर्त = सुरत, ध्यान। परवाना = प्रमाण, मानना।

भावार्थ — योगी लोग जब श्वास वायु की साधना पूर्ण करके उस पर स्ववशता प्राप्त कर लेते हैं, तब वे ध्यान पूर्वक अष्टांगयोग की साधना करते हैं ॥३॥ योग के

लिये चौरासी आसन का निर्धारण कर रखा है, वे लोग उन नाना प्रकार के आसनों को एक-एक करके साधते हैं ॥४॥

विशेष — उपर्युक्त दोनों चौपाइयों में अष्टांगयोग तथा चौरासी आसन उल्लेखनीय है। पतंजलि जी ने अष्टांगयोग के विषय में योगदर्शन में कहा है :—

यम–नियमासन–प्राणायाम-प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–
समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥२,२९॥

अर्थात्—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि–ये योग के आठ अंग हैं।

यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह (अधिक संग्रह का त्याग)।

नियम—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर की शरणागति।

आसन—'स्थिरसुखमासनम्'—जिस ढंग से अधिक समय तक सुखपूर्वक बैठा जा सके वही आसन है।

प्राणायाम—पूरक, कुंभक, रेचक करके श्वास को सूक्ष्म करना।

प्रत्याहार—इन्द्रियों के विषयों से चित्त को हटाकर उसे निर्विकार करना।

धारणा—'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' किसी पदार्थ में चित्त को रोकना धारणा है।

ध्यान—'तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम्' ज्ञान में नैरन्तर्य एवं एकतानता।

समाधि—संकल्पों का सर्वथा अभाव। उपर्युक्त अष्टांगयोग में गुणग्राह्य दृष्टि से देखने पर बहुत उपयोगी वस्तुयें हैं। इन्हें गलत उद्देश्य से साधने पर उत्तम फल नहीं है।

दृढ़कै मूल दुवारा बाँधै। उलटी पवन ऊर्ध को साधै ॥५॥
बेधि चक्र छौ मेरुहि जाई। शब्द अनाहद सो लौ लाई ॥६॥

शब्दार्थ — मूल दुवारा = गुदाद्वार। चक्र छौ = छह चक्र—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञा चक्र। मेरुहि = मेरुदण्ड, पीठ की रीढ़।

भावार्थ — योगी लोग दृढ़तापूर्वक मूलबंध आसन करके और वायु को उलट कर ऊपर ब्रह्मांड में ले जाने की साधना करते हैं ॥५॥ और छह चक्रों को वेधकर ऊपर मेरुदण्ड शिखरस्तर पर पहुँचते हैं, और वहाँ के अनाहतनाद में ध्यानमग्न हो जाते हैं ॥६॥

विशेष —मूलबंधमुद्रा—गुदाद्वार पर बायें पैर का गुल्फ (ऐड़ी के ऊपर की गाँठ) रखकर योनि आकुंचनपूर्वक मेरुदण्ड में नाभिग्रन्थिको दबाकर, पुनः शिश्न के मूल पर दाहिने पैर का गुल्फ दृढ़ रूप से जमा देने से मूलबंधमुद्रा की साधना होती है। (गुदा और शिश्न के बीच का स्थान 'योनि' कहलाता है)।

पट्चक्र-विवरण तथा वेधन-क्रिया

१. मूलाधारचक्र—

यह चक्र गुदा स्थान में माना है, यह चतुर्दल कमलयुक्त है। यह रक्त वर्ण है तथा इसका लोक 'भू' माना है। यहाँ से 'व, श, ष, स' इन चार वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहाँ के द्विरण्ड नामक सिद्ध और डाकिनी देवी अधिष्ठात्री तथा गणेश देवता माना है। यहाँ छह सौ श्वासों का जप माना है।

इस मूलाधार चक्र को वेधने के लिये पहले गणेशक्रिया करके गुदा साफ करते हैं। फिर जलवस्ति करते हैं। नाभि तक डूबे हुए जल में बैठकर उत्कट-आसन-द्वारा गुदा को आकुंचन-प्रसारन करके जल को ऊपर खींचते हैं। इसी को जलवस्ति कहा जाता है। इस प्रकार तीनबार जल को ऊपर खींचकर छोड़ देने से यह कार्य सिद्ध होता है। तब इस चतुर्दल कमलयुक्त मूलाधारचक्र को वेधकर वायु ऊपर चढ़ाते हैं।

ऊपर जो उत्कट-आसन कहा है। उसका लक्षण यह है—पैर के दोनों अंगुष्टों द्वारा मृतिका का स्पर्श करते हुए दोनों गुल्फों—(ऐड़ी के ऊपर की गाँठों) को निरालम्ब भाव से रखकर, उनपर गुदा-द्वार को स्थापना करने से उत्कटासन कहलाता है।

२ स्वाधिष्ठानचक्र—

यह चक्र नाभि से छह अंगुल नीचे पेडू स्थान, शिश्न के मूल में माना है। यह छह दलकमल युक्त है। यह सिंदूर वर्ण है तथा इसका लोक 'भुवः' है। यहाँ से 'ब, भ, म, य, र, ल' इन छह वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहाँ वाण नामक सिद्ध और राकिणी देवी अधिष्ठात्री तथा ब्रह्मा देवता माना है। यहाँ छह हजार श्वासों का जप माना है।

इस स्वाधिष्ठानचक्र को वेधने के लिये गजक्रिया करते हैं। लोह या शीशे का बारह अंगुल का पतला गज बनाकर, शिश्न में प्रवेश करके उसे साफ करते हैं फिर शिश्न से क्रमशः जल, दूध और शहद खींचते हैं। शहद खींचने पर यह क्रिया सिद्ध होती है। तब गुदाद्वार से अपानवायु को चढ़ाकर स्वाधिष्ठान चक्र वेधते एवं अपान वायु को समान वायु में मिलाते हैं।

३ मणिपूरचक्र—

यह चक्र नाभि स्थान में माना है। यह दशदल कमल युक्त है। यह नीलवर्ण है तथा इसका लोक 'स्वः' है। यहाँ से 'ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ' वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहाँ रुद्रनामक सिद्ध और लाकिनी देवी अधिष्ठात्री एवं विष्णु देवता माना है। यहाँ भी छह हजार श्वासों का जप माना है।

इस मणिपूरचक्र को वेधने के लिये 'धोति-क्रिया' करते हैं। अर्थात रेशम आदि के कोमल वस्त्र की चार अंगुल चौड़ी और पन्द्रह हाथ लम्बी धोती को सायंकाल मीठे रस में डुबा देते हैं। उसे प्रातःकाल मुख से निगलते (लीलते) हैं। उसका

एक कोना पकड़े रहते हैं और खड़े होकर नाभि को पृष्ठ भाग में आकुंचन करके पुनः बाहर निकालते हैं। ऐसा तीन बार करने से यह क्रिया सिद्ध होती है। फिर नाभि से वायु उठाकर मणिपूरचक्र वेधते हैं और अपान-समान वायु को हृदयस्थ प्राण-वायु में मिलाते हैं।

४. अनाहतचक्र—

यह चक्र हृदय स्थान में माना है। यह द्वादशकमल युक्त है। यह अरुण वर्ण है तथा इसका लोक 'महः' है। यहाँ से 'क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ' इन बारह वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहाँ पिनाकी सिद्ध और काकिनी देवी अधिष्ठात्री एवं महादेव देवता माना है। यहाँ भी छह हजार श्वासों का जप माना है।

इस अनाहतचक्र को वेधने के लिये 'कुंजल क्रिया' करते हैं। पेट भर जल पीकर और सवा हाथ रस्सी की दातून को मुख में डालकर चलाते हैं। फिर जल को गिरा देते हैं। इस प्रकार तीन बार करने पर यह क्रिया सिद्ध होती है। फिर अनाहत चक्र वेधते हैं, और अपान, समान, प्राण को उठाकर कंठस्थ उदान-वायु में मिलाते हैं।

५. विशुद्धिचक्र—

यह चक्र कण्ठस्थान में माना है। यह षोडसदल कमल युक्त है। यह धूम्र वर्ण है तथा इसका लोक 'जनः' है यहाँ से 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः' इन सोरह स्वरों की उत्पत्ति मानी है। यहाँ छगलांड सिद्ध और शाकिनी देवी अधिष्ठात्री एवं जीवात्मा देवता माना है। यहाँ एक हजार श्वासों का जप माना है।

इस विशुद्धि चक्र को वेधने के लिये 'लम्बिका योग' करते हैं। इसमें दूध-आहार करते, बोल-चाल-संगत सबका संयम करते, मक्खन और सेंधा नमक से जिह्वा की तली रगड़ते, प्रातःकाल जिह्वा दोहन करते, लोह यन्त्र से भी दोहन करके जिह्वा को बढ़ाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर जिह्वा के नीचे चाम को काट देते हैं इस प्रकार जिह्वा को बढ़ाकर और उलट कर उर्ध्वद्वार में लगाते हैं। ऊपर से खोपड़ी का एक जलीय विकार चूता है, उसे अमृत मानकर पीते हैं, जिससे शरीर में स्फूर्ति बढ़ती है। तब वायु को उठाकर विशुद्धि चक्र को वेधते हैं।

६. आज्ञाचक्र—

यह चक्र भृकुटिस्थान (दोनों भौंहों के बीच) में माना है। यह द्विदल कमल युक्त है। यह श्वेत वर्ण है तथा इसका लोक 'तपः' है। यहाँ से 'ह, क्ष' इन दो वर्णों की उत्पत्ति मानी है। यहाँ महाकाल सिद्ध और हाकिनी देवी अधिष्ठात्री एवं परमात्मा देवता माना है। यहाँ एक हजार श्वासों का जप माना है।

इस आज्ञाचक्र को वेधने के लिये 'नेति-क्रिया' करते हैं। अर्थात नाक में एक बीता वत्ती (सूत्र) चलाकर, उसे साफ करते हैं। फिर कण्ठस्थ विशुद्धि चक्र के उदान वायु

को उठाकर आज्ञाचक्र वेधते हैं। यानी रेचक-पूरक-कुम्भक (प्राणायाम) करके आज्ञाचक्र को वेधकर वायु को ऊपर ले जाते हैं। जब वायु ऊपर पहुँच जाता है। तब जिह्वा को उलटकर उर्ध्वद्वार में लगा देते हैं। जिससे वायु लौट न आये।

इस प्रकार षट्चक्र एवं तत्र स्थित षट्कमलों को वेधकर दशमद्वार१ सहस्रार (सत्यलोक) में जाकर ज्योति प्रकाश कर देते हैं। अर्थात वहाँ वायु का निरोध होने से जो अग्नि का प्रकाश होता है, उसी को ब्रह्म का स्वरूप मानकर योगी लोग बेभान होते हैं। इस स्थान का भी एक हजार श्वासों का जप माना है।

मुख्य इन छह चक्रों के अतिरिक्त आज्ञाचक्र के ऊपर सहस्रार या सहस्रदल कमल माना है और उसके ऊपर भी आठवाँ 'सुरति कमल' माना है। इस प्रकार कहीं-कहीं अष्टकमल का वर्णन होता है।

इसमें वर्णित सिद्ध, अधिष्ठात्री देवी एवं देवतादि सब कल्पित हैं। वर्णों का उच्चारण भी कंठ-तालू ओष्ठादि से होते हैं, जो प्रत्यक्ष हैं। ये सब हठयोगियों का जाल है। जिसमें फँसकर जीव कल्याण-साधन से दूर पड़ जाता है। उपर्युक्त प्रकार से समाधि लगाने पर यदि कुछ काल काम-क्रोधादि से छुट्टी भी रहे, तो क्या ? समाधि से जागने पर वे पुनः आ धरेंगे। क्योंकि कामादि का बीज तो जागृत अवस्था के विवेक-ज्ञान से ही नाश होगा। अतएव उपर्युक्त जालों को त्याग कर सत्संग में स्वस्वरूप का विवेक करो।

सोई सिद्ध योगी कहलावै। नाश समय सूर माँह लखावै ॥७॥
समय जानि सो जाहि पराई। आशा जीवन देइ बौराई ॥८॥

शब्दार्थ — सूर=स्वर, स्वरोदयज्ञान ; पराई=भाग जाना।

भावार्थ — जो उपर्युक्त प्रकार से षट्चक्रों का वेधन करके प्राणवायु को पूर्ण रूप से स्ववश कर ब्रह्मांड में स्थित हो जाता है वह सिद्ध योगी कहलाता है। (कहते हैं) उसको स्वर के ज्ञान से अपनी मृत्यु का समय पहले से ही ज्ञान मिल जाता है ॥७॥ अतएव मृत्यु की घड़ी आती हुई पहले से जानकर योगी लोग श्वास को लेकर ब्रह्मांड में भागकर समाधिस्थ हो जाते हैं। इस प्रकार उनको बहुत दिन जीने की आशा ने पागल बना दिया है ॥८॥

विशेष — षट्चक्र वेधन करके अचेती अवस्था में जाने से कोई इस शरीर को मृत्यु से बचा नहीं सकता। शरीर जितने दिन में छूट जाना है उससे आगे ठहर नहीं

१—दो नाक, दो कान, दो आँख, मुख, गुदा और शिश्न—ये नौ द्वार (बड़े-बड़े छिद्र) हैं और दशवाँ द्वार शिर के तालु में माना है जहाँ बच्चों का तालु लप-लप करता है।

सकता चाहे कोई कितना ही प्रयत्न करे। अतएव योगबल से बहुत दिन जीने की आशा एक प्रकार का पागलपन ही है।

कछुक काल सो खेल खेलाई। नाशै अंत न रहै सिद्धाई ॥९॥
जैसे सर्पहि गरुड़ खेलावै। भोजन करै बहु विधि नचावै ॥१०॥

शब्दार्थ — काल=समय। खेल=साधना।

भावार्थ — शरीर से अमर होने की आशा में योगी लोग कुछ समय तक उक्त साधना के खेल में खेलते-खेलाते हैं; परन्तु अंततः शरीर नष्ट हो ही जाता है और उसके साथ उनकी सिद्धियाँ भी समाप्त हो जाती हैं ॥९॥ जैसे गरुड़ सर्प को पकड़ कर उसे खेलाता, पटकता, छोड़ता और पुनः पकड़ता है, परन्तु उसे अनेक प्रकार से नचाकर खा जाता है। इसी प्रकार मनुष्य की मृगतृष्णा उसको नाना नाच में नचाकर अंत में उसे समाप्त कर देती है ॥१०॥

नेती धोतीके षट कर्मा। संयम यतन अनेकनि धर्मा ॥११॥
योग युक्ति छिनमाँह नशाई। काल बली कछु नहीं बसाई ॥१२॥

शब्दार्थ — षटकर्मा=नेती, धोती, बस्ती, गज, गुंजल, लंबिका। बसाई=वश या शक्ति चलना।

भावार्थ — योगी लोग शरीर से अमर होने के लिये नेती-धोती आदि षटकर्म करके काफी कायाकष्ट करते हैं; तथा अनेक प्रकार संयम और प्रयत्न करके अपना योगसहायक कर्तव्य पालन करते हैं ॥११॥ परन्तु ये सब योग की युक्तियाँ मृत्यु आने पर क्षण ही में नष्ट हो जाती है। बलवान काल से किसी का वश नहीं चलता है ॥१२॥

विशेष — नेती-धोती आदि का वर्णन षटचक्रों के वेधन में आ गया है।

साखी—केते साधहिं योग सो, रच्छा करन शरीर।
नाशै अंत बाँचै नहीं, जतन घनेरी पीर ॥२०२॥

शब्दार्थ — केते=कितने लोग। घनेरी=बहुत। पीर=कष्ट।

भावार्थ — कितने लोग शरीर को बहुत दिन सुरक्षित रखने के लिये उपर्युक्त प्रकार से योगकी साधनायें करते हैं। परन्तु योग सम्बन्धी अनेक प्रयत्न तथा कष्ट उठाने के पश्चात भी प्रारब्धभोग पूरा होने पर शरीर नष्ट हो जाता है, बचता किसी का नहीं ॥२०२॥

संपूरण चूसे सोई, जीव लखै नहिं ताहि।
कष्ट अनेक लहै सदा, करै त्राहि त्राहि ॥२०३॥

शब्दार्थ — सोई=अज्ञान। त्राहि=त्राहि, बचाओ।

भावार्थ — मनुष्य का अपना ही अज्ञान उसके विवेक-विचार को सम्पूर्ण रूप से चूस कर उसे निकम्मा बना देता है। परन्तु मनुष्य उस अज्ञान को परख नहीं पाता इस प्रकार जीव अपने अज्ञान के हाथों में पड़ा हुआ सदैव कष्ट का अनुभव करता है और चारों ओर बचाओ-बचाओ की पुकार करता है ॥२०३॥

सत्य शब्द टकसार : बीजक, साखी-४२, ४३

झिलमिल झगरा झूलते, बाकी छुटि न काहु।
गोरख अटके कालपुर, कौन कहावै साहु ॥२०४॥

शब्दार्थ — झिलमिल = हिलता हुआ ज्योति-प्रकाश। अटके = फँसे, बंधन में पड़े। कालपुर = कल्पना के नगर में। साहु = साधु-विवेकी।

भावार्थ — प्राण-रोध एवं त्राटकादि मुद्रा करके झिलमिल ज्योति देखने के झगड़े में पड़कर, सभी योगी इस भ्रम-झूले में झूलते हैं। इससे कोई बाकी नहीं बचा। गोरक्षनाथ भी इसी कल्पना के नगर में फँस गये; फिर कौन योगी, विवेकी कहलायेगा? ॥२०४॥

विशेष — सब ज्योतियाँ जड़ अग्नि के प्रकाश हैं। मुद्रा-द्वारा ज्योति इत्यादि देखना, जड़ाध्यास का ग्रहण करना है। यह विवेक का लक्षण नहीं है। विवेकी वह है, जो समस्त दृश्यों को त्यागकर अपने आप चेतन द्रष्टा स्वरूप में स्थित होता है।

त्राटक लक्षण

निमेषोन्मेषको त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
यावदश्रूणि मुञ्चन्ति त्राटकं प्रोच्यते बुधैः॥
(हठयोग संहिता, ४।४३)

जब तक नेत्रों से अश्रुपात न हो, तब तक अनिमेष पूर्वक किसी सूक्ष्मपदार्थ की ओर देखते रहने को बुधजन त्राटक योग कहते हैं।

गोरख रसिया योगके, मुये न जारी देह।
मांस गली माटी मिली, कोरो माँजी देह ॥२०५॥

शब्दार्थ -- रसिया = रसिक, प्रेमी। कोरो = हड्डी। माँजी = साधना से चमकने लगी।

भावार्थ — गोरक्षनाथ जी योगाभ्यास के बड़े रसिक थे। उन्होंने योगसाधना में इसलिये देह जलायी कि शरीर मरे नहीं। योग-साधना के बल से उसका मांस गलकर मिट्टी में मिल गया। अभिप्राय है कि योग-साधना से मांस को गला डाला, और उनकी देह की हड्डियाँ मँजे हुए बर्तन के समान चमकने लगीं ॥२०५॥

विशेष — योग-साधन से या काया-कल्प करके कितने योगी लोग शरीर को

सदैव युवक और जिन्दा बनाये रखना चाहते हैं, परन्तु यह मन का मोह मात्र है। परिणामी काया का अवश्य परिवर्तन होगा।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, शब्द-२

सन्तो जागत नींद न कीजै ॥१॥
काल न खाय कल्प नहिं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै ॥१॥
उलटी गंग समुद्रहि सोखै, शशि औ सूरहिं ग्रासै ॥३॥
नौग्रह मारि रोगिया बैठो, जल में बिम्ब प्रकासै ॥४॥

शब्दार्थ — जागत = जाग्रत, सावधान। कल्प = कल्पना या समय की एक अवधि जो चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की मानी है। देह = स्वरूप। गंग = कल्पना-वाणी। समुद्र = जीव। शशि = योगी। शूर = ब्रह्मज्ञानी। नौग्रह = नौद्वार (दो आँख, दो नाक, दो कर्ण, मुख गुदा एवं शिश्न), पंच विषय चतुष्टय अन्तःकरण। रोगिया = योगी-ज्ञानी। जल = वीर्यमय देह या वाणी।

भावार्थ — ऐ सन्तो ! माया से सावधान रहो, असावधानी की निद्रा न लो ॥१॥ तुम्हें काल नहीं खा सकता न तुम्हारे में कल्पना व्याप्त हो सकती है एवं तुम्हारे अनादि-अनन्त स्वरूप विषै अनेकों कल्प भी किस कोने में हैं। तुम्हारे शुद्ध स्वरूप चेतन पारख को जरा अवस्थादि क्षीण नहीं कर सकतीं। क्योंकि तुम शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप अविनाशी चेतन हो ॥२॥ तुम्हीं से कल्पित की हुई कल्पना-वाणी उलट कर तुम्हारा ही शोषण कर रही है, और योगी तथा ब्रह्मज्ञानी को भी ग्रसित कर रही है ॥३॥ अतएव कल्पना में पड़कर आँख, कान आदि उपर्युक्त नौ द्वारों को बन्द करके, अज्ञान रोग से ग्रसित योगी लोग मुद्रा साधने एवं समाधि लगाने बैठते हैं; तो जलरूप वीर्यमय शरीरस्थ ब्रह्माण्ड में मनःकल्पित ईश्वर रूप बिम्ब का प्रकाश देखते हैं (श्वास रोकने से ब्रह्माण्ड में जो गर्मी होती है, उसी को भ्रमवश परमात्मा का प्रकाश या परमात्मा ही मानते हैं)। अथवा पंच विषय चतुष्टय अन्तःकरण रूपी नौग्रह को मारकर (जलतरंग न्याय जगतब्रह्म की एकता रूपी रोग से ग्रसित) अद्वैतवादी अद्वैतसमाधि में बैठते हैं और वे कल्पितवाणी रूपी पानी में ब्रह्मरूपी बिम्ब का प्रकाश देखते हैं। अर्थात वेद-वेदान्त के वाक्य-प्रमाण से अद्वैत मानते हैं ॥४॥

बिनु चरणन को दहुँदिश धावै, बिनु लोचन जग सूझै ॥५॥
संशय उलटि सिंह को ग्रासै, ई अचरज कोई बूझै ॥६॥
औंधे घड़ा नहीं जल बूड़े, सीधे सो जल भरिया ॥७॥
जेहि कारण नर भिन्न भिन्न करें, सो गुरु प्रसादै तरिया ॥८॥

शब्दार्थ — सिंह = जीव। औंधेघड़ा = ब्रह्म। जल = वाणी, विचार।

भावार्थ — यह कल्पित वाणी एवं मनोवृत्ति बिना पैरों के ही दशों दिशाओं में दौड़ लगाती है, बिना चैतन्य-नेत्र के ही इसे सारा संसार दिखता है; (अर्थात लोग कहते हैं कि हमारी पोथी जो कहती है वह सत्य है। यह नहीं समझते कि पोथी ज्ञाननेत्र से रहित है, उस पर हमें स्वयं विचार करना चाहिये; अथवा विवेक-रहित मनोवृत्ति में स्फुरित कल्पनाओं को ही सत्य मान लेते हैं, पारख नहीं करते) ॥५॥ कल्पित वाणी एवं मनोवृत्ति रूपी संशय-भ्रम, सिंहस्वरूप ज्ञानसबल जीवको ग्रसित कर रहे हैं, इस आश्चर्यमय बात को कोई पारखी ही समझेगा ॥६॥ औंधे घड़े में पानी नहीं भरता, सीधे घड़े में ही भरा जा सकता है। इसी प्रकार कल्पित ब्रह्म किसी वाणी की कल्पना या विचार नहीं कर सकता न कोई मत-पथ सिद्ध कर सकता है। सत्य चैतन्य जीव ही सब कल्पनाओं का कर्ता, नाना मत-पथों का स्थापक है, 'सीधे सो जल भरिया' जीव ही 'सर्वत्र ब्रह्म' की कल्पना रूपी जल भरा ॥७॥ (और कहने लगा कि) "जिस मोक्ष-हेतु भिन्न-भिन्न ईश्वर, देवी-देवादि की लोग उपासना करते हैं, सो वेदान्ती गुरु की कृपा से अद्वैत ब्रह्म बोध पाकर हम सहज ही तर गये।" (यह नहीं समझते कि व्यापक अद्वैत ब्रह्म में कौन किससे तर कर कहाँ जायेगा ?)॥८॥

बैठि गुफा में सब जग देखै, बाहर किछउ न सूझै ॥९॥
उलटा बाण पारधिहिं लागै, शूरा होय सो बूझै ॥१०॥
गायन कहै कबहुँ नहिं गावै, अनबोला नित गावै ॥११॥
नटवट बाजा पेखनि पेखै, अनहद हेत बढ़ावै ॥१२॥

शब्दार्थ -- बाण = कल्पना, वाणी। पारधिहिं = ज्ञानी, योगी को। शूरा = पारखी। गायन कहै = वाणी कहने वाला जीव। अनबोला = ब्रह्म। नटवट = नटवत चौरासी आसन लगाना। बाजा = दश अनाहतनाद। पेखनी = दश मुद्रायें। अनहद = हदरहित ब्रह्म। हेत = प्रेम।

भावार्थ — हठ योगी लोग, योग-समाधि में बैठकर एवं ब्रह्मज्ञानी लोग ब्रह्म समाधिमें बैठकर सम्पूर्ण जगत को अद्वैत ब्रह्मरूप देखते हैं। परन्तु नेत्र खोलने पर बाह्य जगत ज्यों-का-त्यों अपने से पृथक और जड़ है। अतएव अनुमित अद्वैती समाधि के बाहर अद्वैत का एक भी लक्षण नहीं दिखता। (क्योंकि नाना चेतन और उससे पृथक पृथ्वी आदि जड़ प्रत्यक्ष हैं) ॥९॥ अतः यह अद्वैत कल्पना का वाणी रूपी बाण उलट कर बाण चलाने वाले पारधी ज्ञान-योगी ही को लगा; अर्थात वे अद्वैत के भ्रम में पड़कर धोखा खाये—इस बात को कोई वाणी का पक्ष त्याग करने में जो वीर-पारखी होगा, वही समझ सकेगा ॥१०॥ वेद, बाइबिल, कुरान आदि समस्त वाणियों के कहने-बनाने वाले जीव को कोई नहीं गाता (उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता)। परन्तु जो कभी कुछ बोलने वाला नहीं है, किसी प्रकार भी अपनी प्रत्यक्षता सिद्ध

करने वाला नहीं है, उसी कल्पित ब्रह्म, ईश्वर, खुदा के गीत (प्रशंसा) सब गा रहे हैं ।।११।। चौरासी आसन लगाकर, ब्रह्माण्ड में कल्पित शंख, भेरी, सहनाई आदि का अनाहतनाद सुनकर एवं खेचरी, भूचरी, चाँचरी, अगोचरी तथा अलक्ष मुद्राओं को देखकर, उसी कल्पित व्यापक ब्रह्म में प्रेम बढ़ा रहे हैं ।।१२।।

विशेष — उपर्युक्त पाँच मुद्राओं के लक्षण निम्न हैं ।

खेचरी--जिह्वा के नीचे की नस काटकर और जिह्वा में मक्खन लगाकर उसे कुछ काल खींचकर लम्बिका द्वारा बढ़ावे । पुनः जिह्वा को दोनों भौंहों के बीच भीतर ले जाकर कपाल कुहर (छिद्र) में लगावे । फिर खुले नेत्रों से भृकुटी मध्य देखना । इसमें मोती झड़ती हुई प्रतीत होती है ।

भूचरी--दोनों नेत्रों को नासिकाग्र पर रखते हुए नाभि स्थल या पृथ्वी पर देखना । इसमें प्रकाश दिखता है ।

चाँचरी--हाथ की उँगुलियों से दोनों नेत्रों के पलकों को दबाकर खोलने पर चम-चम दिखता है ।

अगोचरी--बाह्य जगत-भावना त्याग कर लक्ष्य को हृदय में एकाग्र करने से श्वास डण्डायमान होकर प्रकाश दिखता है ।

अलक्ष्य--अंगुष्ट मात्र ज्योति का हृदय में ध्यान करते-करते शरीर का भान भूल जाना ।

ये सभी मुद्रायें यौगिक जाल हैं । जड़-चेतन का भिन्न विचार करके स्वस्वरूप में स्थित होना ही सर्वोत्तम है ।

कथनी बदनी निजु कै जोवै, ई सब अकथ कहानी ।।१३।।
धरती उलटि अकाशहिं बेधै, ई पुरुषन की बानी ।।१४।।
बिना पियाला अमृत अँचवै, नदी नीर भरि राखै ।।१५।।
कहहिं कबीर सो युग युग जीवै, जो राम सुधारस चाखै ।।१६।।

शब्दार्थ — **कथनी** = कथन की हुई, वाणी । **बदनी** = निश्चय या वन्दना । **जोवै** = जानता है । **अकथ कहानी** = मिथ्या प्रलाप । **धरती** = पृथ्वी के जीव । **अकाशहिं** = शून्य ब्रह्मांड को । **पुरुषन** = ब्रह्मादिक । **पियाला** = पात्र । **अमृत**=जल, अविनाशी । **अचवै** = पीते हैं । **युग-युग जीवै** = सदैव के लिए अमर स्थिति प्राप्त कर लेगा ।

भावार्थ — कल्पना से कथित वाणी को ही अपना निश्चित सिद्धान्त जानता है और उससे सिद्ध अनेक कर्ता-देवी-देवादि की वन्दना करता है, परन्तु यह सब मिथ्या प्रलाप मात्र है ।।१३।। ब्रह्मा, मुहम्मद, मसीह आदि बड़े-बड़े पुरुषों की कल्पित वाणियों को सुनकर, पृथ्वी के जीव आकाश में ध्यान लगाने लगे या पिण्ड से प्राण उलटा कर

योगी लोग ब्रह्मांड में वेधने लगे ।।१४।। विना पात्र (विवेक) के ही कल्पित वाणी रूपी जल को अमृत मानकर पीते हैं; अथवा बिना पात्र (आधार) के ही कल्पित अविनाशी ईश्वर का ध्यान करते हैं। यद्यपि सत्संग रूपी नदी में विवेक-विचार एवं सत्य-ज्ञान रूप जल भरा है। (परन्तु अपनी पोथी का पक्ष त्याग कर उधर ध्यान नहीं करते) ।।१५।। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि सदैव के लिये अमर स्थिति तो वही प्राप्त करेगा, अर्थात मुक्त वही होगा, जो स्वस्वरूप रामकी स्थिति रूपी अमृतरसको चखेगा।

विशेष — यह चेतन देव अपने आप ही राम है। जब देहासक्ति को ध्वंस करके स्वरूप राम में रमण हो जाता है, तब सारे क्लेशों का अन्त हो जाता है, यही बनाना मानव मात्र का परम कर्तव्य है।

बीजक, शब्द—६३

मैं कासों कहौं को सुने को पतियाय, फुलवाके छुवत भँवर मरिजाय ।।
जोतिये न बोइये सींचिये न सोय, बिनु डार बिनु पातफूलएकहोय ।।

शब्दार्थ — फुलवा = ब्रह्म। भँवर = मन, या मनवशी जीव। मरिजाय = जड़ाध्यासी हो जाता है, अज्ञान में पड़ जाता है।

भावार्थ — मैं किससे कहूँ, कौन सुनेगा और कौन विश्वास करेगा ? कि फूल को छूते ही भँवरा मर जाता है ।।१।। जोता नहीं गया, बोया नहीं गया और न उसे सींचा ही गया, बिना डगाली-पत्ते के एक फूल उत्पन्न हुआ ।।२।।

विशेष — फूल में भँवरा आनन्दित रहता है, परन्तु यहाँ फूल को छूते ही भँवरा मर जाता है। इसलिये साधारण लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते। तात्पर्य यह कि योगियों ने अनुमान करके ब्रह्मांड में एक सहस्रदल कमल की कल्पना की है, उसमें ब्रह्म रूपी फूल को खिला हुआ मानते हैं। परन्तु उस फूल को छूते ही, अर्थात उसमें समाधिस्थ होते ही, इन ज्ञानियों का मन-भँवरा जड़ाध्यासी हो जाता है; अर्थात स्व-स्वरूप बोध से पतित होकर एक मनःकल्पित प्रतिभास में जीव लटकता है। बिना जोते-बोये-सींचे, बिना डारपात के एक कल्पना से उस ब्रह्मरूपी फूल को स्थिर किया है।

गगन मंडल विच फूल एक फूला, तर भौ डार ऊपर भौ मूला ।।३।।
फुल भल फुलल मलिनि भल गाँथल, फुलवा विनशिगौ भँवरनिरासल ४
कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई, पण्डितजन फुल रहल लुभाई ।।५।।

शब्दार्थ — डार = सुषुम्णा श्वास। मलिनि = मलिनि, वृत्ति।

भावार्थ — ब्रह्माण्ड१-स्थित आकाशमण्डल में सहस्रदल कमल के अन्तर्गत ब्रह्मरूपी एक फूल फूला है। सुषुम्णा रूपी उसकी डगाली नीचे उदरस्थ कुण्डलिनी में हैं (योगी

१—सिर या खोपड़ी।

लोग इसी कुण्डलिनी को प्रदीप्त कर सुषुम्णाद्वारा प्राण को ऊपर चढ़ाकर उस ब्रह्म-कमल में वृत्ति लय करते हैं) उस ब्रह्म फूल की जड़ ऊपर-ब्रह्माण्ड ही माना है ॥३॥ वह ब्रह्मरूपी फूल अच्छा फूला, चित्तवृत्ति भली-भाँति उसको गूँथ कर माला पहनी (अर्थात उसमें लय हुई) परन्तु शरीर के नष्ट होते समय इन योगियों का सहस्रदल कमल तथा उसमें कल्पित ब्रह्म-फूल भी सब-के-सब नष्ट हो गये, तब यह मन, अर्थात मन-वशी जीव रूपी भँवरा निराश होकर पुनः गर्भवास में गया ॥४॥ सद्गुरु कहते हैं कि ऐ भाई सन्तो ! सुनो, साधारण की बात क्या, इस कल्पित ब्रह्म-फूल में बड़े-बड़े विद्वान लुभा रहे हैं ॥५॥

विशेष — योगाभ्यास करके और श्वास रोककर मस्तिष्क या नेत्र आदि में गर्मी एवं प्रकाश देखते हैं; और ब्रह्माण्ड में ब्रह्मादि की कल्पना करते है। यह सब शरीर और मन के विकार, कल्पना तथा भ्रांतियाँ हैं। शरीर के साथ इन सभी का नाश हो जायगा। अतएव इन दुर्भासों को हृदय से त्यागकर, अजर-अमर स्वस्वरूप पारख चेतन में स्थित होना विवेकी का कार्य है। उपर्युक्त शब्द का अन्य अर्थ यह है—

मैं किससे कहूँ, कौन सुनेगा और कौन विश्वास करेगा कि विषय-भोग रूपी फूल को छूते ही, मनवशी जीव रूपी भँवरा जड़ाध्यासी हो जाता है ॥१॥ बिना जोते-बोये-सींचे तथा बिना डाली-पत्ते के काम रूपी एक फूल फूलता है ॥ २॥ ब्रह्माण्ड के बीच में वह फूल खिला है (कहते हैं वीर्य का विशेष स्थान ब्रह्माण्ड में ही है) वहाँ काम की वासना प्रफुल्ल हुई और उस ब्रह्माण्ड-मूल से नीचे डगाली रूपी शिश्न-द्वारा आकर वीर्य स्खलित हुआ ॥३॥ कामी जीवों की काम-वासना रूपी फूल खूब खिला और चित्त-वृत्ति रूपी मालिनि उसे भली-भाँति गूँथी। परन्तु जब फूल विनष्ट हो गया (शक्ति स्खलित हो गयी) मन-वशी जीव रूपी विषयी भँवरा निराश हुआ पश्चाताप करने लगा। अथवा शरीर रूपी फूल के नष्ट हो जाने पर जीव निराश होकर गर्भवास में गया ॥४॥ सद्गुरु कहते हैं कि साधारण की कौन बात चलावे, बड़े-बड़े पण्डित; विद्वान भी इस विषय-फूल में लुब्ध हो रहे हैं ॥५॥

बीजक, साखी— ६

शब्दै मारा गिर परा, शब्दै छोड़ा राज।
जिन्ह जिन्ह शब्द विवेकिया, तिनका सरिगौ काज ॥२०६॥

शब्दार्थ — गिर परा = पतित हुआ। सरिगौ = बन गया।

भावार्थ — विषयासक्तिपूर्ण एवं भ्रामक शब्दों ने ऐसी चोट मारी कि उस चोट में घायल होकर कितने मनुष्य अपनी मानवता या कल्याणपद से पतित हो गये। परन्तु एक विवेक-वैराग्यपूर्ण शब्द सुनकर, राज्य तक की आसक्ति त्याग कर सुज्ञ जन

विरक्त हो जाते हैं। अतएव जिन-जिन लोगों ने सत-असत शब्दों का विवेक करके, सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग किये, उनका कल्याण बन गया ॥२०६॥

विशेष — किसी के विषय-गीत सुनते ही (यदि विवेक न हो तो) विषय के संकल्प होने लगते हैं, और वैराग्य के गीत सुनकर, मनमें वैराग्य की भावना आ जाती है। अतएव मनुष्य के बिगड़ने-बनने में शब्दों का मुख्य महत्त्व जानकर असार शब्दों का त्याग, और सार-शब्दों का चुनाव करना परम आवश्यक है। आजकल के अश्लील संगीत, नाटक, उपन्यास, प्रपंच-पत्रिकादि का त्याग करके सद्ग्रन्थ पढ़ना चाहिये।

बिन पारख वाणी सुनैं, धावै ताके साथ।
घायल अनेकनि भावसों, तजहिं न पटकहिं माथ ॥२०७॥

शब्दार्थ — पारख = परीक्षा। घायल = आहत, चोट खाया हुआ।

भावार्थ — मनुष्य को सारासार की परीक्षादृष्टि न होने से चाहे जिस प्रकार की वाणी सुनता है उसके पीछे वह दौड़ने लगता है। इस प्रकार भूला मानव अनेक भ्रांत भावनाओं द्वारा चोट खाया हुआ जगह-जगह अपना सिर पटकता है; परन्तु मोहवश उन्हें छोड़ता नहीं ॥२०७॥

५५—योग तथा ब्रह्मवाद पर विचार

चौपाई—५७

बहु विधि साधन योग पसारा। कोइ उत्तम कोइ मध्यम सँवारा ॥१॥
मुद्रा पाँच तत्त्व सो होई। त्रिगुण शक्ति मंत्र है सोई ॥२॥

शब्दार्थ — उत्तम = राजयोग। मध्यम = हठयोग। मुद्रा पाँच = खेचरी, भूचरी, चाँचरी, अगोचरी तथा सर्वसाक्षिणी ये पाँच मुद्रायें हैं जो बाह्य मानी जाती है; आन्तर मुद्रायें ये हैं—सन्मुखी, उन्मीलिनी, शाम्भवी, आत्मबोधिनी तथा पूर्ण-बोधिनी। मंत्र = सोऽहम्, ॐ, राम; अथवा ऐं, ह्रीं, क्लीं।

भावार्थ — योगियों ने योग के अनेक साधनों का विस्तार कर रखा है। कोई तो राजयोग रूप सरल एवं उत्तम साधन करता है और कोई हठयोगरूप कठिन तथा मध्यम साधन करता है ॥१॥ जैसे पिण्ड-ब्रह्माण्ड में पाँच तथा तीन गुण का विस्तार है वैसे योग में खेचरी आदि पाँच मुद्रायें ही पाँच तत्त्व हैं तथा सोऽहम् ॐ और राम के जप ये ही तीनगुणों की शक्तियाँ हैं ॥२॥

तप संताप जे सृष्टि बनाई। योनी योग अनेक देखाई ॥३॥
तेहि योनिमें जो जीव डारे। बहुत कष्ट ताहि दै मारे ॥४॥

शब्दार्थ —संताप = पीड़ा। दै = देकर।

शब्दार्थ — पंचमुद्रा रूपी पंचतत्त्व तथा सोऽहम्, ॐ, राम तीन जप रूप तीन

गुणों को लेकर योगियों ने जलशयन, अग्नितापन आदि घोर तपस्या की पीड़ा रूपी सृष्टि का निर्माण किया; और अनेक प्रकार के योग रूपी योनियों का प्रदर्शन किया ।३।। उक्त योग रूपी योनि में वे जिस व्यक्ति को डाल पाते हैं, उसको बहुत कष्ट देकर पीड़ित करते व जड़ाध्यासी बनाते हैं ।।४।।

विशेष — विवेकरहित अनेक प्रकार के योग मानो अनेक योनियाँ हैं। इनमें घोर तपस्या रूपी कष्ट की सृष्टि है। इस योनि तथा सृष्टि के मूल तत्त्व पंचमुद्रायें और सोऽहम् आदि तीन जप हैं।

योग विवश तप बंधन बंधा। करहिं लड़ाई मति के अंधा ।।५।।
चहत छुटन तेहि दंड देखावै। बहुत महातम चौकी लावै ।।६।।

शब्दार्थ — दंड = कष्ट। चौकी = रखवाली का स्थान; रखवाली।

भावार्थ — योगी लोग योगमार्ग के वश में पड़ कर उसकी तपस्या के बंधन में बँधे हैं। मंदबुद्धि लोग उसमें भी वाक्युद्ध करते हैं कि हमारा योग बड़ा तथा तुम्हारा छोटा अथवा योग की कसर बताओ तो उसपर निष्पक्ष विचार न करके युद्ध करते हैं ।।५।। जो व्यक्ति योग की कसर को जानकर उसजाल से छूटना चाहता है उसको वे लोग धमकाते हैं कि तुम्हारा नरक होगा। योग का बहुत माहात्म्य बढ़ा कर मानो उसे रखवाली के लिए बैठा रखे हैं कि इस माहात्म्य के लोभ में पड़कर कोई बाहर न जाय ।।६।।

लोभ डोरि दृढ़आशा बाँधी। नाश उपाय विविधिविधि साधी ।।७।।
रज सत तमगुण तीनिहुँ डोरी। जेवरि प्रौढ़ बाँधि जिव भोरी ।।८।।

शब्दार्थ — जेवरि = जेवर, रस्सी, बंधन। भोरी = भुलाना।

भावार्थ — योगियों ने योग करने वालों को ऋद्धि-सिद्धि प्राप्ति के लोभ और स्वर्गादि तथा सायुज्यादि मुक्ति प्राप्ति की आशा की डोरी में मजबूती से बाँध रखा है। ऐसा करके मानो (अनजान में) अपने आप और दूसरे के पतन के ही अनेक साधन साधा है ।।७।। रज, सत, तम—इन तीन गुणों की जबर्दस्त डोरी में जीवों को दृढ़ता से बाँधकर उन्हें भुला दिया है ।।८।।

निकसि न सकहिं फँसे जिव रहहीं। तीनिहुँ भाँति राजदंड सहहीं ।।९।।
बंदीखाना तीन प्रकारा । तेहिमें चार आश्रम विस्तारा ।।१०।।

शब्दार्थ — राजदंड = विवेकरहित धर्म का कष्ट। तीनिहुँ = कर्म, उपासना, योग। चार आश्रम = ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास।

भावार्थ — लोग भयवश भ्रम के बंधनों से निकल नहीं पाते, प्रत्युत उन्हीं में फँसे रहते हैं; और विवेकरहित धर्म के घेरे का कष्ट सहते हैं ।।९।। विवेक रहित कर्म,

उपासना तथा योग ये तीन प्रकार के कैदखाने हैं। इन्हीं की सिद्धि के लिये चार आश्रमों का भी विस्तार कर रखा है ॥१०॥

विशेष — यहाँ ग्रंथकर्ता का यह भाव नहीं है कि कर्म, उपासना, योग सर्वथा त्याज्य हैं और न तो यही कहा जा सकता है कि चार आश्रमों का विधान सर्वथा गलत है। ये सभी ठीक और मनोविज्ञान से ओतप्रोत हैं। परन्तु इनमें जो कल्पित बातों का अधिक अंश मिश्रित है यही व्यक्ति तथा समाज को भटकाने वाला है।

पँचयें नाशक आपुहि आपा। परमहंस ऊँचा पद थापा ॥११॥
प्रथमें एकोहं बहुस्यामा। अनंत भाँति भव खेती जामा ॥१२॥
बारह बानी भोजन हेतू। अभय परमपद कहहिं अचेतू ॥१३॥

शब्दार्थ -- भव = जन्म; संसार। बारह बानी = तत्, त्वम्, असि; क्षर, अक्षर, निःअक्षर; जहद, अजहद, जहदाजहद; जीव, ईश्वर, ब्रह्म। भोजन = खा लेना, लय कर देना।

भावार्थ — चार आश्रमों के ऊपर पाँचवाँ परमहंस दशा है, जिसे सर्वोच्च पद मानकर स्थापित किया है; परन्तु उसमें मनुष्य अपने आप को विनष्ट कर देता है; अर्थात अपने आपको शून्य ब्रह्म में खो देता है ॥११॥ (वे यह मानते हैं कि) पहले ब्रह्म ने संकल्प किया कि "मैं एक हूँ, अतएव अनेक रूपों में होकर फैल जाऊँ।" फिर वह अनेक रूपों में होकर अनन्त प्रकार संसार रूपी खेती का स्वरूप लेकर उग आया ॥१२॥ ब्रह्मवादियों ने जो बारहवाणियों की कल्पना कर रखी है वह तो भाग-त्याग लक्षणा पूर्वक पहले कुछ विवेक-जैसी बातों का नाट्य करके अन्ततः सारे विश्व का अपने आप में लय करके हजम कर जाने के लिये है। असावधान लोग इस जड़-चेतन की अभिन्नता रूपी ब्रह्मज्ञान को निर्भय परम पद कहते हैं ॥१३॥

विशेष—जो लोग यह मानते हैं कि जीव ब्रह्म में विलीन हो जाता है वे अपने आपका नाशक ही हुए।

जब ब्रह्म ही जगत के रूप में प्रस्तुत हो गया तब त्याग-ग्रहण, बंध-मोक्ष किसका रहा ?

जब सारा विकारी संसार ब्रह्म के भीतर ही है तब ब्रह्म को परमपद और निर्भय-पद कहना असावधानी ही है।

बारहवाणी इसी प्रकरण की तीसरी चौपाई में देखें।

साखी — बंदी शोभा विविधि विधि, दुसह कलेश अपार।
पहरा चौकी महिमा, आशा फाँसी डार ॥२०८॥

शब्दार्थ — बंदी = कैद, बंधन, कारावास।

भावार्थ — न सहने योग्य अपार क्लेश मय खानी-वाणी रूपी भवबंधनों को लोगों ने सजा-सँवार रखा है। विषय सुख और स्वर्ग सुख की आशा रूपी फाँसी मनुष्यों के गले में डालकर उन्हें संसार कूँये में लटका रखा है तथा उससे वे निकल न भागें इसके लिये उन बंधनों की महिमा मानो पहरा देने के लिये चौकी बैठा रखा है ॥२०८॥

विशेष — खानी-वाणी बंधन ऊपर से सुहावना है परन्तु वस्तुतः घोर पीड़ाप्रद है। उसकी झूठी महिमा उसमें बँधे जीवों की रखवाली करती है जिससे वे निकल न भागें। लोग विषय और स्वर्गसुख की फाँसी पर लटके हैं।

जहाँ तहाँ त्रिदोष ले, तत्त्वमसि परचंड।
बारह बानी चारि तिथि, नाशक हेतु अखंड ॥२०९॥

शब्दार्थ — परचण्ड = प्रचण्ड, प्रबल; बड़ा। चार तिथि = चार महावाक्य— प्रज्ञानम् ब्रह्म, अहम् ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म तथा तत्त्वमसि।

भावार्थ — यत्र-तत्र तीन दोषों को लेकर जीव बँधे हैं; जैसे रज, सत, तम; संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण; काम, क्रोध, लोभ; स्त्री, पुरुष नपुंसकादि। इसी प्रकार बड़ी भूल तत्, त्वम् तथा असि आदि बारह अवांतर वाक्य तथा चार महावाक्य अविनाशी अखण्ड जीव के नाशक हो रहे हैं ॥२०९॥

विशेष — वैसे चार महावाक्यादि के अर्थ सीधे-सादे रूप में ठीक हैं, जैसे— ज्ञान ही ब्रह्म है, मैं ही ब्रह्म हूँ, यह आत्मा ही ब्रह्म है, तथा वह तू ही है आदि। परन्तु इस ब्रह्म को केवल श्रेष्ठ चेतन ही न रहने देकर उसे सर्वत्र व्यापक, जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनाकर उसका स्वरूप ही सर्वथा भ्रष्ट कर दिया गया है। इसलिये ये वाक्य मूल रूप में ठीक होते हुए भी भ्रमात्मक हैं।

सत्य शब्द टकसार : बीजक, साखी–२५०

साखी—प्रथम एक जो हौं किया, भया सो बारह बान।
कसत कसौटी ना टिका, पीतर भया निदान ॥२१०॥

शब्दार्थ — हौं = मैं, ब्रह्म। बारहबान = एक प्रकार का बहुत अच्छा सोना। निदान = अन्त में।

भावार्थ — एक ब्रह्म मानकर पहले जो अहंकार किया, वह बड़ा उत्तम सोना प्रतीत हुआ; परन्तु पारख की कसौटी पर जब कसा गया, तब वह सही नहीं ठहरा, अन्त में पीतर सिद्ध हुआ ॥२१०॥

बीजक, रमैनी—८

तत्त्वमसी इनके उपदेशा। ई उपनिषद कहैं सन्देशा ॥१॥

ई निश्चय इनके बड़भारी । वाहिक वर्णन करैं अधिकारी ।।२।।
परमतत्त्व का निज परमाना । सनकादिक नारद शुक माना ।।३।।
याज्ञवल्क्य औ जनक सम्वादा । दत्तात्रेय वोहि रस स्वादा ।।४।।
वोहि बात राम वशिष्ठ मिलि गाई । वोहि बात कृष्ण उद्धव समुझाई ।।५।।
वोहि बात जो जनक दृढ़ाई । देह धरे विदेह कहाई ।।६।।

शब्दार्थ — तत्त्वमसि = तत्वमसि, वह तू है (तत् = वह, त्वम् = तू, असि = है) । इनके = अद्वैत वेदान्तियों के । अधिकारी = योग्यपात्र । परमतत्त्व = ब्रह्म । परमाना = सत्य । वही = अद्वैतब्रह्म ।

भावार्थ — अद्वैत वेदान्तियों का यही उपदेश है कि वह ब्रह्म तू ही है । छान्दोग्यादि उपनिषद यही सन्देश कहती हैं ।।१।। वेदान्तियों को यह सिद्धान्त अत्यन्त निश्चय है । इसलिये अपने अनुकूल जिज्ञासु को देखकर, उसी तत्वमसि का उपदेश करते हैं ।।२।। ब्रह्म को ही श्रेष्ठ तत्त्व मानकर, उसी को अपना प्रमाणित सिद्धान्त सिद्ध करते हैं । सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार, नारद, शुकदेव—सब इसी सिद्धान्त को माने हैं ।।३।। वृहदारण्यक उपनिषद् चतुर्थ अध्याय में याज्ञवल्क्य और जनक का सम्वाद इसी विषय पर हुआ है । दत्तात्रेयजी भी श्रीमद्भागवतादि में इसी अद्वैत ब्रह्मवाद का रसास्वादन किये हैं ।।४।। योगवासिष्ठ ग्रन्थ मे श्री राम जी और श्री वशिष्ठ जी भी बत्तीस हजार श्लोकों में इसी का गायन किये हैं । भागवत आदि पुराणों में इसी 'तत्त्वमसि' को श्रीकृष्ण जी उद्धव जी को समझाये हैं ।।५।। अष्टावक्र जी ने यही बात जनक को निश्चय कराया है । इमीलिये वे देह धारण किये हुये भी विदेह कहलाये हैं ।।६।।

विशेष — 'तत्त्वमसि इनके उपदेशा' कहकर साहेब यह सूचित करते हैं कि यह मेरा सिद्धान्त नहीं है । यह अद्वैत वेदान्तियों का है । 'वह (ब्रह्म) तू है' बात तो बहुत बढ़िया है । परन्तु फिर अपने को व्यापक अद्वैत सिद्ध करके जल-तरंग-न्याय जगत से अभेद होते हैं । तत्वमसि एवं अद्वैतवाद में (१) अद्वैतता । (२) व्यापकता और (३) जगत से अभिन्नता—ये तीन प्रबल दोष हैं ।

(१) बन्ध-मुक्त, रागी-विरागी, सुखी-दुखी, नाना मत-विरोधों को धारण करने वाले जब भिन्न-भिन्न नाना चेतन जीव प्रत्यक्ष अनुभव में आते हैं, तब अद्वैत केवल बलात्कार सिद्ध करना है ।

(२) अद्वैत कट जाने से व्यापकवाद अपने आप कट जाता है । सर्वत्र हिंसा, गोवधी, चोरी, व्यभिचार, हत्या, युद्ध, विरोध आदि सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ व्यापक ब्रह्म के उपहास्य रूप हैं । शरीर से जीव के निकल जाने पर तो शरीर मुर्दा हो जाता है । परन्तु व्यापक ब्रह्म उस मृतक शरीर को सड़ने से बचा नहीं पाता । कुछ लोग यह

शंका करते हैं कि यदि ब्रह्म सर्वत्र व्यापक न हो तो विश्व के कण-कण गतिशील कैसे हों ? यह शंका जड़-चेतन का ठीक भेद न जानने से होती है। चेतन में चैतन्य-धर्म है, और जड़ में जड़त्वधर्म है। जड़-तत्त्वों में धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, आकार और मिलाप ये छह भेद होने से जड़-सृष्टि का कार्य उससे स्वत: सम्पादित होता रहता है। अत: चेतन व्यापक नहीं।

(३) अद्वैत में तीसरा प्रबल दोष जड़-चेतन की एकता है। जगत-रोग का अद्वैत चेतन ही जल-तरंग न्याय अधिष्ठान है। अत: जड़ विकारी जगत से ब्रह्म कभी पृथक नहीं हो सकता। अतएव मोक्ष-प्राप्ति के लिये उपर्युक्त मत त्यागना ही होगा। प्रिय अद्वैत वेदान्ती भाई इस पर विनम्र विचार करें।

हमारे भारतीय महर्षि, सन्त-महात्मा सदैव सत्य के खोजी उदार एवं सदाचारी रहे हैं। सनकादिक महापुरुष हमारे पूर्वज और आदरणीय एवं पूज्यनीय हैं। परन्तु सत्य की परख के लिये किसी का संकोच करना असत्य रूप महापाप का आश्रय लेना है।

साखी—कुल मर्यादा खोय के, जीवत मुवा न कोय।
देखत जो नहिं देखिया, अदृष्ट कहावैं सोय ॥२११॥

शब्दार्थ — अदृष्ट = नेत्ररहित अन्धा, अविवेकी।

भावार्थ — केवल कुल की मर्यादा त्याग देने से कोई जीते जी मुर्दा (विदेह) नहीं हो सकता। देखते हुए जो नहीं देखता है, वह अन्धा कहा जाता है ॥२११॥

विशेष — कहते हैं 'कुल जाति की मर्यादा एवं अहंकार त्याग कर ब्रह्म में स्थित हो जाने पर उसे देह का भान नहीं रहता। इसी प्रकार जनक को भी देह का भान नहीं था।' जब जनक जी देह युक्त थे, तब विदेह कैसे ? वास्तव में उनके कुल में 'विदेह' नाम की पदवी थी। अद्वैतवादी कहते हैं, जगत तीनों काल में है ही नहीं। प्रत्यक्ष जगत को देखते और उसके सुख-दुःख भोगते हुए कहते हैं यह नहीं है। देखते हुए अनदेख करना, विवेक के विरुद्ध है, यह केवल अद्वैत सिद्ध करने का दुराग्रह है।

अद्वैत की दृष्टि से जब तीनों कालों में जगत है ही नहीं, तब ब्रह्म को उसका अधिष्ठान कहना वैसे है जैसे किसी के पास राज्य तो न हो, परन्तु उसे राजा कहा जाय। जब जगत है ही नहीं तब जीव, ईश्वर, पुनर्जन्म, बन्ध, मोक्ष, वेद, गुरु, उपदेश सब मिथ्या हुए। फिर यह सिद्धान्त ही मिथ्यावादी हो गया। वेदान्तियों ने सब कुछ मिथ्या कहते हुए वेद-गुरु को भी मिथ्या कहा है। फिर मिथ्या वेद-गुरु का सिद्धान्त सत्य कैसे हो सकता है ?

वास्तव में नाना अविनाशी चेतन नित्य हैं और इनसे सर्वथा पृथक् पृथ्वी, जल,

अग्नि, वायु आदि जड़-तत्त्वयुत जगत भी प्रत्यक्ष और नित्य हैं। अद्वैतवाद और जगत विषयक मिथ्यावाद विवेक अनुकूल नहीं।

५३—ब्रह्मवाद निरास

चौपाई—५८

बहुत रहे यमजाल फँसाई। लालच लागी बड़ी बड़ाई ॥१॥
सबहिं बड़ाई यमके हाथा। लहहिं दुसह दुख धुनहिं ॥२॥

शब्दार्थ — यमजाल = अज्ञानबन्धन।
यम = मन, वासना, अज्ञान; मृत्यु। दुसह = असह्य।

भावार्थ — संसार के अधिकांश लोग अज्ञान के बंधनों में बँधे हैं। वे झूठे मान-माहात्म्य के लालच में लग कर उसकी बड़ी महिमा हाँक रहे हैं ॥१॥ परन्तु संसार की सारी महिमायें मृत्यु के हाथों में हैं; अर्थात प्राण छूटते ही सब छूट जाती हैं। अथवा बहुत महिमा हुई तो क्या यदि व्यक्ति अज्ञान के हाथों में पड़ा है। अतएव ऐसी महिमा में फूले जीव नाना योनियों में असह्य पीड़ा भोगते हैं और सिर पटक-पटक कर रोते हैं ॥२॥

पाया चढ़ावै ज्ञान विज्ञाना। सात भूमिका लाइ निशाना ॥३॥
सोई तहाँ सात स्वर्ग अनुमानी। पहुँचत ठौर भये विज्ञानी ॥४॥

शब्दार्थ — पाया = नींव; सीढ़ी, दर्जा। निशाना = निशान, चिन्ह; पता, ठिकाना, स्थान।

भावार्थ — लोग ज्ञान से विज्ञान की ओर सीढ़ी-प्रति-सीढ़ी-चढ़ते-चढ़ाते हैं फिर सातवीं भूमिका तुर्यगा पर अपना स्थान स्थिर करते हैं ॥३॥ उन्ही सात भूमिकाओं के विषय में सात स्वर्गों की कल्पना की है। कहते हैं कि अंतिम भूमिका तुर्यगा में पहुँचते ही साधक विज्ञानी हो जाता है ॥४॥

विशेष — ब्रह्मज्ञान साधना की सात भूमिकायें मानी गयी हैं; वे हैं—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावना और तुर्यगा। इसका विवरण समष्टिसार ११वीं चौकड़ी की २३वीं चौपाई में देखें।

महाशून्य अंधकार स्वरूपा। परहिं जीव ताहि तम कूपा ॥५॥
आपु अकेला ब्रह्म कहावै। तेहि अंधकार कोइ लखि नहिं पावै ॥६॥

शब्दार्थ — अंधकार = अज्ञान। तमकूपा = अविद्याकूप।

भावार्थ — महाशून्य रूप ब्रह्म अज्ञान का स्वरूप तथा अविद्या का कुँआ है, उसकी मान्यता में कितने ही व्यक्ति पड़े हैं ॥५॥ कहते हैं; ब्रह्म स्वयं अखिल विश्व रूप अद्वैत है; इस अज्ञान अंधकार को कोई पारख बिना समझ नहीं पाता ॥६॥

विशेष — जहाँ पर जड़-चेतन का ठीक विवेक न हो वह अविद्या का स्वरूप ही है।

जीवहिं धरि धरि करै अहारा। महिमा बड़ी जगत विस्तारा ॥७॥
करत विषय नहिं शंका मानी। आपै पुरुष विदित ब्रह्मज्ञानी ॥८॥

शब्दार्थ — धरि धरि = पकड़-पकड़ कर। विदित = प्रसिद्ध।

भावार्थ — ब्रह्म सबको अपने में लय कर लेता है, यह तो जीवों को पकड़-पकड़कर खा लेना हुआ। इसी ब्रह्मज्ञान की महिमा संसार में बहुत फैला रखी है ॥७॥ कितने ब्रह्मज्ञानी काम भोग करने में भी नहीं हिचकते; क्योंकि ब्रह्मज्ञानी स्वयं निर्लिप्त परब्रह्म के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥८॥

विशेष — उनके लक्ष्य से ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है; अतएव वे जो कुछ करते हैं सब ब्रह्म रूप ही है। अथवा ब्रह्म असंग है उसको कुछ छू नहीं जाता। निश्चल दासजी विचार सागर पंचम तरंग में कहते है :—

भोगै युवति सदा संन्यासी, शिष्य लहि यह अद्भुत संवाद ॥
निज विषयन में इन्द्रिय वर्ते, तिनते मेरो नाहीं संग ॥
मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रिय नहिं, मैं साक्षी कूटस्थ असंग ॥
त्यागहु विषय की भोगहु इन्द्रिय, मोकूं लगै न रंचक रंग ॥
यह निश्चय ज्ञानी को जातै, कर्ता दीखै करै न संग ॥

महा अंध सूझै नहिं पारा। भटकहिं बहुविधि भरम अपारा ॥९॥
आतमवादि आपुहि आपा। बहुतक सहहिं भरम संतापा ॥१०॥

शब्दार्थ — अंध = अविवेक। आतमवादी = चेतन को व्यापक तथा जड़ से अभिन्न मानने वाले।

भावार्थ — अतएव जड़-चेतन अभिन्न स्वरूप ब्रह्मवाद महाअविवेकपूर्ण है। उसमें पड़ जाने से किनारा नहीं दिखता, प्रत्युत व्यक्ति अनन्तभ्रमों में अनेक प्रकार से भटकता रहता है ॥९॥ व्यापकवादी लोग अपने आपको सर्वत्र फैला हुआ मानते हैं; जीव अवस्था में तो वे एक ही शरीर के सुख-दुःख सहते थे, अब भ्रमवश व्यापक बनकर संसार के असंख्य शरीरों के अनन्त सुख-दुःखों को सहने के अधिकारी बन गये।

बिन पारख गुरु कौन लखावै। महाकठिन यमजाल बचावै ॥११॥
अज्ञ तज्ञ दुहुँ भाग डुबाये। कैसे छूटैं बिनु पारख पाये ॥१२॥

शब्दार्थ — पारख गुरु = पारखी गुरु; सत्यासत्य का विवेकी गुरु। अज्ञ = अज्ञानी। तज्ञ = ज्ञानी।

भावार्थ — सारासारविवेकी सद्गुरु के बिना उक्त महान भयंकर भवबंधनों की

परख कराकर उनसे कौन छुड़ा सकता है ? ॥११॥ समाज के दोनों हिस्से अज्ञानी तथा ज्ञानी कहलाने वाले क्रमशः खानी और वाणी के समुद्र में डूबे हुए हैं। बिना पारख की प्राप्ति हुए इस भवजाल से वे कैसे मुक्त हो सकते हैं ? ॥१२॥

साखी—सूझि परै नहिं जाल सो ज्ञान करहिं बहु भाँति।
आँधर भये तम कूपमें, वर्णन करहिं सो शांति ॥२१२॥

शब्दार्थ — आँधर=विवेकरहित। तमकूप=अविद्या का गर्त।

भावार्थ — यद्यपि लोग अनेक प्रकार से ज्ञान की बातें करते हैं; परन्तु उन्हें उपर्युक्त भवबंधन समझ नहीं पड़ता। लोग अविद्या के गर्त में पड़े हुए विवेकरहित हो गये हैं; परन्तु वे उसे शांति रूप ही बतला रहे हैं ॥२१२॥

जीव न पावै मर्म सो, पुनि पुनि उठै अकुलाय।
अगम अपार अथाह कहि, शिर धुनि धुनि पछिताय ॥२१३॥

शब्दार्थ — अकुलाय=अकुलाना, घबड़ाना।

भावार्थ — मनुष्य वास्तविकता का भेद न पाकर बारम्बार घबड़ा उठता है; और भ्रमवश आने से पृथक किसी ब्रह्मकी कल्पना करके और उसे अगम्य, अपार तथा अथाह कह कर और उससे वंचित रहनेसे सिर पटक-पटक कर पश्चाताप करता है ॥२१३

५७—झीनी माया की परख

चौपाई—५८

अज हरि हर त्रिगुण त्रैलोका। चौथे शोकमें आपु अशोका ॥१॥
भिन्न भिन्न तेहि अदल प्रमाना। चौकी बंधन जीव विधि नाना ॥२॥

शब्दार्थ — अदल=अद्ल, न्याय; विधान। प्रमाना=प्रमाण, सीमा। चौकी=रखवाली।

भावार्थ — ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर के रज, सत तथा तम प्रतिनिधित्व करते हैं और उनके क्रमशः कर्म, उपासना और योग ही लोक हैं। चौथा ब्रह्मज्ञान है जो जड़-चेतन अभिन्न तथा जगत का स्वाभाविक कारण होने से वस्तुतः शोक एवं दुःखपूर्ण है; परन्तु लोग भ्रमवश उसी मान्यता को धारण करके अपने आपको शोकरहित होना मानते हैं ॥१॥ कर्म, उपासना, योग तथा ब्रह्मज्ञान के पृथक-पृथक, नियम-कानून एवं सीमायें हैं। इन्हीं घेरों में मनुष्यों को रखने के लिये वे लोग अनेक प्रकार की रखवाली करते हैं ॥२॥

विशेष — विवेकपूर्ण कर्म, उपासना, योग तथा ज्ञान का आदर होना चाहिये। यहाँ इनके अविवेकपूर्ण अंगोंका त्याग बताया जाता है।

अपने स्वभाव चहै जिव जीया । गोहरावै निशिदिन पिय पिया ॥३॥
तोरन चहहिं फंद यम केरा । महा कलेश योग अरुझेरा ॥४॥

शब्दार्थ — पिय = पति, परमात्मा । यम = वासना, मोह ।

भावार्थ — जीव का स्वरूप अविनाशी है, अतः वह अविनाशित्व स्वभाव से भ्रमवश शरीर को भी सदा जीवित रखना चाहता है । जब वह शरीर तथा शरीर सम्बन्धी प्राणी-पदार्थों की परिवर्तनशीलता को देखता है तब घबड़ाकर उसके रक्षानिमित्त रात-दिन ईश्वर-ईश्वर पुकारता है ॥३॥ यदि मनुष्य कर्ता-धर्तादि की वासना रूपी बंधनों को तोड़ना भी चाहते हैं तो उनमें से कितने ही महानकष्टप्रद हठयोगादि में उलझ जाते हैं ॥४॥

विशेष — ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रंथकार के युगमें योगमार्गियों की भी प्रबलता थी, इसीलिये उसकी कसर उन्होंने जगह-जगह दिखाई है ।

बंदी तेहि कारण निर्माया । घायल कसकहिं वहु अंत न पाया ॥५॥
जन जोगाय अंत सो नासै । तत्त्वमसि त्रिदोष सो ग्रासै ॥६॥

शब्दार्थ — बंदी = कैद, बंधन । कसकहिं = कसकना, पीड़ा होना, सालना । जन = लोग । जोगाय = जोगावना, रक्षा करना ।

भावार्थ — उपर्युक्त अज्ञानके कारण ही मनुष्यों ने बंधनों को बना रखा है । अज्ञान से जीव आहत और उसके मनमें संदेह एवं अध्यास के काँटे पीड़ा देते हैं और उसका अंत नहीं पाता ॥५॥ भवबंधनों में पड़े हुए लोगों में से जो जीव के रक्षक एवं मुक्तिदाता बनते हैं वे उसके कल्याण के नाशक होते हैं; क्योंकि उनका स्वयं का ही कल्याण नहीं हुआ है । 'वह तू है' का भावव्यंजक तत्त्वमसि मनोहर वाक्य त्रिदोषयुक्त सन्निपात के सदृश स्वरूपज्ञान से भटका देने वाला है (क्योंकि इसमें जड़-चेतन का विवेक नहीं है) ॥६॥

सो विस्तार जाल केहि भाँती । बिन पारख गुरु जीव कुशलाती ॥७॥
आश कुशल दृढ़ फाँसी लावै । जेवरि बंधे जीव यमपुर धावै ॥८॥

शब्दार्थ — जेवरि = जेवर, रस्सी; बंधन । यमपुर = गर्भवास ।

भावार्थ — बिना पारखी सद्गुरु की शरण प्राप्त हुए उपर्युक्त महा विस्तृतजाल से मनुष्य किस प्रकार छुटकारा एवं कल्याण पा सकता है ? ॥७॥ भवबंधनों में पड़े-पड़े अपनी कुशल मंगल की आशा करना कठिन फाँसी है । ऐसे जीव ही बंधनों में बँधकर गर्भवास में जाते हैं ॥८॥

जे जीव तजहिं जाल यम मोटी । तेहि दृढ़ झीना फाँसी खोटी ॥ ९ ॥
भोरे आश उबारन जिवके । औषध विष फल कहत अमीके ॥१०॥

शब्दार्थ — **मोटा जाल**=परिवार, धन, जमीन, मकान, आदि। **झीना जाल या झीनी फाँसी**=अपने चेतनस्वरूप से पृथक कर्ता-धर्ता, देवी-देवता, भूत-प्रेत, ऋद्धि-सिद्धि, मान-बड़ाई, गुरुवाई-महंती का मद आदि। **भोरे**=भुलाये। **अमी**=अमृत।

भावार्थ — जो व्यक्ति स्त्री, पुत्रादि मोटी माया को छोड़ता है वह कर्तादि कल्पना व मान-बड़ाई रूपी झीनी माया में दृढ़ता से फँस जाता है, वस्तुतः वह भी बुरी है ॥९॥ नाना मतवादी लोग मनुष्यों को कल्याण की आशा देकर भुलावा में डाल देते हैं। वे उपदेश रूपी औषध तो देते हैं विषवत भ्रमपूर्ण और कहते हैं कि इसका फल अमृतमय मोक्ष होगा (जो कि असंभव है) ॥१०॥

खाय खाय विष जीव बौराना। अपने मरणकी खबर न जाना ॥११॥
चाहै कुशल कुशल यम फाँसी। विविधि भाँति यम जीवहिं गाँसी ॥१२॥
गाँस न सूझै अपन पौ न बूझै। भला कहत उलटा जिव खीजै ॥१३॥

शब्दार्थ — **विष**=विषय, भ्रमोपदेश। **यम**=वासना, मोह। **गाँस**=फंदा। **अपन पौ**=अपना चेतन स्वरूप।

भावार्थ — संसार के मनुष्य विषयों को भोग-भोग कर तथा नाना मतों के भ्रमोपदेशों को सुन-सुनकर उन्मत्त हो गये हैं। उन्हें अपने पतन की सुध नहीं है ॥११॥ ऐसे लोग भी चाहते तो अपना कल्याण हो हैं; परन्तु उनका कल्याण न होकर उनके वासना तथा मोह की फाँसी ही मजबूत होती है। इस प्रकार मनुष्य का अपना बनाया अज्ञान ही उसे अनेक विधि से घेर लिया है ॥१२॥ भूले मनुष्यों को न मोह की फाँसी दिखाई पड़ती है और न उन्हें अपने चेतन स्वरूप का बोध होता है। यदि ऐसे मनुष्य को कल्याण की बात बतायी जाय तो वह उलटा उपदेष्टा पर ही अपना क्रोध प्रकट करता है ॥१३॥

साखी – गाँस फाँस बहुविधि रचा, झीना लखा न जाय।
नाशे नाशक रूप सो, त्रिगुण होय समुदाय ॥२१४॥

शब्दार्थ — **झीना**=झीनी माया। **त्रिगुण**=सत, रज, तम।

भावार्थ — मनुष्यों ने अपनी भूल से अपने ही लिये अनेकों प्रकार से बंधनों की फाँसी रच ली है। मोटी माया स्त्री-धनादि तो मनुष्य शीघ्र छोड़ भी देता है; परन्तु झीनी माया शीघ्र परखने में नहीं आती। ये मोटी-झीनी सभी माया तीनों गुणों के समूह के भीतर हैं। ये कल्याण के विध्वंसक हैं और सावधान न रहने पर विध्वंस करते हैं ॥२१४॥

टकसार

मोटी माया सब तजे, झीनी तजी न जाय ।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सबको खाय ॥२१५॥

शब्दार्थ — पीर = गुरु । पैगम्बर = ईश्वरदूत, अवतार । औलिया = सिद्ध पुरुष ।

भावार्थ — परिवार, धनादि मोटी माया तो बहुत लोग छोड़ देते हैं; परन्तु अपने चेतन स्वरूप से पृथक कर्तादि कल्पनायें एवं मान, बड़ाई, महन्ती, गुरुवाई आदि का मद रूपी झीनी माया का त्याग बहुत कम लोगों से होता है । अनेक गुरु, अवतार, ईश्वरदूत तथा सिद्धपुरुष नामधारी सबको झीनी माया रूपी राक्षसी चूस रही है ॥२१५॥

विशेष — कोई विरला ही मोटी और झीनी दोनों माया की आसक्ति को दूर करके स्वरूपस्थ होता है ।

१०—शब्द टकसार

भरोसे अनुभवके भूले ॥१॥
जीव दो दो साखी जोरि, जुगत के फीरे ज्ञानके फूले ॥२॥
कर्ता काल नहीं पहिचाना, जिन्ह जेर किया जग सबहीं ॥३॥
अंतकाल यह काम न आवै, पछतैहैं सब तबहीं ॥४॥

शब्दार्थ — अनुभव = प्रयोगसिद्ध ज्ञान । जुगत = युक्ति, चतुराई । कर्ता = जगतकर्ता ईश्वर । काल = कल्पना । जेर = जैर, नीचे; कमजोर, दबा हुआ ।

भावार्थ — मनुष्य गलत ज्ञान को भी प्रयोगसिद्ध एवं यथार्थ ज्ञान मानकर उसी के विश्वास में भूल गये ॥१॥ व्यक्ति दो-चार साखी-शब्द श्लोक-दृष्टांत जोड़कर उसी की चतुरता तथा ज्ञानमद में फूला-फूला फिरता है ॥२॥ जिस भ्रम ने संसार के सारे लोगों का मानस दुर्बल करके उन्हें दबा दिया है उस जगतकर्ता को लोग नहीं परख पाते कि यह केवल कल्पना है ॥३॥ मृत्यु समय में तो चाहे धन-परिवार हो और चाहे माना हुआ कर्ता-धर्तादि हो कोई जीव का साथी नहीं है । यदि मनुष्य अपना कर्म नहीं सुधारा और जड़ पदार्थों की आसक्ति नहीं छोड़ी तो वह पश्चाताप करके दुखी होगा ॥४॥

त्रिकुटी ध्यान धरै योगी सब, उन्मनी तारि लावै ॥५॥
अजपा जपै शून्य मन राखै, मूल भेद नहिं पावै ॥६॥

शब्दार्थ — त्रिकुटी = दोनों भौंहों के बीच। उन्मनी = हठ योग की पाँच मुद्राओं में से एक। तारि = तारी, ध्यान, समाधि। मूल भेद = स्व-स्वरूपज्ञान।

भावार्थ — सब योगी जन त्रिकुटी में ध्यान धरकर उन्मनी मुद्रा द्वारा समाधि लगाते हैं ॥५॥ और श्वास में 'सोऽहम्' आदि का अजपा जप करते हुए अपने मन को कल्पित शून्य ब्रह्म में रखते हैं; परन्तु इतना करने के पश्चात भी स्व-स्वरूप का यथार्थ भेद नहीं पाते ॥६॥

नित उठि ज्ञान करै चरचा सब, कथनीमों लपटाने ॥७॥
निर्गुण सर्गुण दोनों धोखा, मूल भेद नहिं जाने ॥८॥

शब्दार्थ — निर्गुण = शुद्ध शून्य ब्रह्म। सर्गुण = मायासबलित ब्रह्म।

भावार्थ — सब ज्ञानी लोग नित्य प्रातःकाल से उठकर ही ज्ञान की चर्चा करते हैं; और रहनी-करनी पर न ध्यान देकर केवल कथनी में लिपटे हुए हैं ॥७॥ ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूप मनःकल्पित होने से धोखा हैं। निर्गुण-सगुण के चक्कर में रहनेवाले लोग स्वस्वरूप के रहस्य को नहीं समझ सकते ॥८॥

वोहं सोहं महाकाल है, ररा तेज रहै सोई ॥९॥
निशिदिन नाम निरंजन सुमिरै, तो जिव पार न होई ॥१०॥

शब्दार्थ — महाकाल = निरी कल्पना। ररा = राम। निरंजन = ॐ।

भावार्थ — अपने चेतनस्वरूप से पृथक वोऽहम्, सोऽहम् निरीकल्पना है। ररा या राम-राम जप का चमत्कार भी उसी प्रकार कल्पित है ॥९॥ चाहे रात-दिन कोई निरंजन या ॐ-ॐ जपा करे, तो भी जीव भवबन्धनों से पार नहीं पा सकता ॥१०॥

विशेष — किसी नामजप मात्र से कल्याण होने वाला नहीं है। इसके लिए स्वस्वरूपज्ञान तथा विषयनिवृत्ति होनी चाहिये।

आगे खोज करो भाई संतो, बानी बूझ लखु मेरी ॥११॥
इहै काल महा दुखदाई, अंत लेयँगे घेरी ॥१२॥

शब्दार्थ — काल = कल्पना, वासना, अज्ञान। अंत = मृत्यु समय।

भावार्थ — हे प्रिय संतो! इसके आगे सत्य की खोज करो और हमारी वाणियों को समझो (इसका दुरुपयोग न करना) ॥११॥ ये अज्ञान, वासना एवं आसक्ति रूपी काल महान पीड़ाप्रद हैं। ये यदि पहले न मिटाये गये तो मृत्युवेला में जीव को घेर कर पुनः चौरासी में डाल देंगे ॥१२॥

कहैं कबीर कहा करि भाखों, जिभ्या कहो न जाई ॥१३॥
अपरंपार पारके पारा, सबसों न्यार रहाई ॥१४॥

शब्दार्थ — कहैं कबीर = परमतवादी कहते हैं। सूचना—कहैं कबीर परमत सूचक है और कहहिं कबीर स्वमत सूचक है।

भावार्थ — परमतवादी कहते हैं कि कैसे कहा जाय वह जिह्वा से कहा नहीं जा सकता ।।१३।। वह ब्रह्म अपरम्पार और पार के भी पार सबसे पृथक है ।।१४।।

साखी—जिभ्या पर आवै नहीं, श्वास आश नहिं होय।
अलख लखावहिं आपु कहँ, झरी सतगुरु कहि सोय ।।२१६।।

शब्दार्थ — आश = वासना, मन। झरी = झरना, सोता, तात्पर्य में ज्ञान का निर्झर एवं अखण्ड स्रोत।

भावार्थ — (पूर्वपक्ष का कथन है) वह ब्रह्म जिह्वा पर नहीं आता, वह न श्वास से पकड़ा जा सकता है न मन में आ सकता है। उस अलख ब्रह्म को जो 'अपना ही स्वरूप है' कहकर लखा देता है उस ज्ञान के निर्झर एवं अखण्ड स्रोत को सद्गुरु कहना चाहिये ।।२१६।।

विशेष — यह बात कई बार दोहराई गयी है कि 'परमतत्व या ब्रह्म अपना ही स्वरूप है' यह भाव ठीक है, परन्तु जब अपना स्वरूप चराचर व्यापक जड़-चेतन अभिन्न न माना जाय। अपितु अपना स्वरूप सबका द्रष्टा सबसे भिन्न समझा जाय। परन्तु ब्रह्म की परिभाषा व्यापक तथा जड़ से अभिन्न होने से विवेकी उसका निरास करते हैं।

शून्य मरै अजपा मरै, अनहद भी मर जाय।
सूर्त मरै अरु निरत भी, तब जीव कहाँ समाय ।।२१७।।

शब्दार्थ — शून्य = ब्रह्म। सूर्त = सुरत, ध्यान। निरत = तत्पर, लीन।

भावार्थ — शरीर छूटते समय शून्य ब्रह्म मन की कल्पना होने से समाप्त हो जाता है; श्वास के साथ अजपा जप तथा कपाल में होता हुआ अनाहतनाद भी नष्ट हो जाते हैं; भासदृश्य ज्योति आदि में ध्यान की तत्परता भी नष्ट हो जाती है; फिर ऐसी अवस्था में जीव कहाँ स्थित होगा ? ।।२१७।।

विशेष — उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर अगली साखी में दिया जा रहा है।

नित पारख परकाश में, सोई निज घर जान।
बिनु घर पाये आपना, परै न यम पहिचान ।।२१८।।

शब्दार्थ — पारख = ज्ञानस्वरूप चेतन। घर = स्थिति। यम = मनःकल्पना।

भावार्थ — नित्य ज्ञान स्वरूप चेतन ही अपनी स्थिति की भूमिका समझो; उस स्व-स्वरूप स्थिति रूपी अपने घर को पाये बिना समस्त स्थूल-सूक्ष्म वासनायें परखने में नहीं आतीं ।।२१८।।

विशेष — जो व्यक्ति अपने चेतन स्वरूप से भिन्न किसी भास में अपना मन रखेगा उसकी स्थिति न होकर उसे बारम्बार संसार में आना-जाना पड़ेगा; और जो समस्त दृश्यों से अनासक्त एवं उदासीन हो अपने आप चेतन स्वरूप में ही स्थित हो जायगा वह मुक्त हो जायगा। अतएव अपना स्थायी घर अपना स्वरूप ही है।

५८—सावरमंत्र, यंत्र, भूत-प्रेत, सिद्धि आदि का निरास

चौपाई—६०

और कला सावर जो सिरजा। तम गुण अधिकारी हर गिरिजा ॥१॥
मोहन उच्चाटन मारन तीन्ही। रज सत तम अज हरिहर कीन्ही ॥२॥

शब्दार्थ — **सावर**=एक मंत्र जो शिव का बनाया माना जाता है। **मोहन**=बेसुध करने वाला मंत्र। **उच्चाटन**=मंत्र-यंत्रादि से किसी के मनमें उचाट, बेचैनी उत्पन्न करने का प्रयास। **मारण**=शत्रु नाश के लिये किया जाने वाला मंत्र-तंत्र का अनुष्ठान।

भावार्थ — मनुष्यों ने और भी अपनी हुनर दिखाई और कल्पित भूत-प्रेतादि की सिद्धि के लिये सावर मंत्र की रचना की और यह बताया कि यह शिव का बनाया है तथा उसके अधिष्ठाता तमोगुणी महादेव और पार्वती हैं ॥१॥ मोहन, उच्चाटन और मारण ये मुख्य तीन तांत्रिक और मंत्र प्रयोग कि विद्यायें रचीं। कहते हैं त्रिगुणी त्रिदेव इसके रचयिता वा अधिष्ठाता हुए ॥२॥

विशेष — मोहन, मारण, उच्चाटन, जारण, वशीकरण, आकर्षण और स्तंम्भन (जड़ या कुंठित कर देना) ये सात कुविद्यायें हैं जिनमें पहले वाली तीन मुख्य हैं।

वस्तुतः मंत्र बिलकुल झूठे हैं। कुछ शब्दों के संयोजित वाक्य या वाक्यसमूह रूप मन्त्र किसी को कुछ नहीं कर सकते हैं। हाँ, चालांक लोग कुछ भावुक तथा भोले व्यक्तियों को अपने हाव-भाव तथा बातचीत की शैली में सम्मोहित व मूढ़ बना देते हैं। परन्तु किसी मन्त्र जपने से कोई बदहोश, उद्विग्न, आकर्षित, मूढ़ आदि हो जाय या मर जाय—यह सब मान्यतायें सर्वथा झूठी हैं।

तैंतीस कोटि देवता परवाना। बीजनाम सकलो परधाना ॥३॥
सोई नाम ले मंत्र बनाई। तैंतीस कोटि देव अरुझाई ॥४॥

शब्दार्थ — **परवाना** = प्रमाण, सीमा। **बीज** = मन्त्र का बीज रूप; अक्षर या ध्वनि; मन्त्र का मूल भाग। सात महाबीज मंत्र माने हैं—ॐ, श्रीं, रं, सों, ऐं, ह्रीं, क्लीं।

भावार्थ — मनुष्यों ने देवताओं की तैंतीस कोटि या करोड़ में सीमा बाँधी। और सभी प्रधान देवताओं के नामके आरम्भ अक्षर को बीज मंत्र माना ॥३॥ और

उन्हीं अक्षरों को लेकर उन देवताओं के नाम से मन्त्रों की रचना की। इस प्रकार कल्पित तैंतीस कोटि देवताओं की भ्रममान्यता में जनता को उलझा दिया ॥४॥

विशेष — ऋग्वेद के शतपथ ब्राह्मण के अनुसार देवता तैंतीस हैं—आठ वसु (धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अग्नि, वायु, प्रत्यूष तथा प्रभास); ग्यारह रुद्र (हर, बहुरूप, अम्बक, अपराजित, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, वृषाकपि, शम्भु, शर्व तथा कपाली); बारह आदित्य (धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र विवस्वान, पूषा, क्रतु, अंशु, भग, त्वष्टा तथा विष्णु); इन्द्र एवं प्रजापति।

बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार अग्नि, पृथ्वी, वायु, अंतरीक्ष, सूर्य, देवलोक, चन्द्रमा और नक्षत्रगण—ये आठ वसु हैं। दस इन्द्रियाँ (या दश प्राण) तथा मन—ये ग्यारह रुद्र हैं। बारहों महीने आदित्य हैं। गरजने वाला बादल इन्द्र है और यज्ञ प्रजापति है। ये ही तैंतीस देवता हैं। कोटि का अर्थ श्रेणी भी होता है, अर्थात तैंतीस श्रेणी के देवता।

उपर्युक्त शतपथ ब्राह्मण वाले देवताओं में तो कुछ जानदार मालूम होते हैं और बृहदारण्यक उपनिषद् वाले तो सारे देवता निरे जड़ हैं। इनमें एक-एक देवता के पीछे निन्नानवे लाख निन्नानवे हजार, नौ सौ, निन्नानवे की संख्या अधिक जोड़कर तैंतीस के बदले लोगों ने तैंतीस करोड़ देवताओं की कल्पना कर रखी है।

पुनि सोई यंत्र तैंतीस करोरी। महाजाल रचिके जिव भोरी ॥५॥
यंत्र स्थूल मंत्र सो थूला। देखि रूप बहु विधि जिव भूला ॥६॥

शब्दार्थ — यंत्र = कागज, वस्त्र, धातु आदि पर लिखे या खुदे हुए अंक या अक्षरों से युक्त विशेष आकार या कोष्ठ जिनमें देवताओं का वासा मानते हैं। भोरी = भुलाया। थूला = स्थूल। थूल = सूक्ष्म।

भावार्थ — उन्हीं तैंतीस करोड़ देवताओं के नाम पर अनेक यंत्र बनाये गये। इस प्रकार ठग लोगों ने वाणी का महामिथ्या जाल रचकर मनुष्यों को भुला रखा है॥ यंत्र पदार्थमय होने से स्थूल हैं और मन्त्र केवल शब्दमय होने से सूक्ष्म हैं। इन कल्पित यंत्र-मन्त्रों के रूपों को देखकर संसारी मनुष्य भूले पड़े हैं ॥६॥

योनी लाख चौरासी जोई। नाम नेह बाँधे सब कोई ॥७॥
जोइ जोइ नाम मंत्र उपराजा। यंत्र विविधि भाँति तेहि साजा ॥८॥

शब्दार्थ — नेह = प्रेम, मोह। उपराजा = कल्पना किया; बनाया। साजा = सँवारा, रचा।

भावार्थ — जो प्रत्यक्ष चारों खानियों की चौरासी लाख योनियाँ मानी गयीं हैं; इनके दुःखों से छूटने के लिये अनेक देवी-देवताओं के नाम-स्मरणादि के मोह में सब जीव बँधे हैं। अथवा अनेक कल्पित नाम, मन्त्र, यन्त्र, तंत्रादि की आसक्तिवश

जीव चौरासी योनियों में बँधे हैं । ७।। जिन-जिन देवताओं के नाम से लोगों ने मन्त्र बनाया है उन्हीं के नाम से अनेक प्रकार के यन्त्रों को भी सजा रखा है ।।८।।

प्रेतयोनि मंत्र बहु भाँती । सबहिं विशेष महा उतपाती ।। ९ ।।
विद्या अनंत रचा विस्तारा । साँच झूठ मिश्रित सो सारा ।।१०।।
बहुत झूठ साँचा कोइ कोई । दृढ़ विश्वास भरम जिव सोई ।।११।।

शब्दार्थ — सारा = सम्पूर्ण ।

भावार्थ — कल्पित भूत-प्रेत योनि की सिद्धि के लिये अनेक प्रकार से मंत्र बनाये गये जो सभी महान मूढ़ता और उपद्रव के कारण हैं ।।९।। ज्योतिष आदि अनेक विस्तृत विद्यायें रची गयीं । वे सभी सत्य और असत्य से मिश्रित हैं ।।१०।। उनमें झुठाइयाँ तो बहुत हैं, परन्तु कुछ बातें सत्य भी हैं । उन कुछ सत्य बातों के कारण मनुष्यों को यह भ्रम हो जाता है कि सब सत्य हैं; अतएव वे सब पर दृढ़ विश्वास कर लेते हैं ।।११।।

विशेष — किसी विद्या या शास्त्रों की कुछ बात सत्य होने से सब सत्य नहीं हो सकतीं । विवेकी को परख करके ग्रहण करना चाहिये । देवी-देवता, भूत-प्रेतादि सब बिलकुल झूठे हैं । इसी प्रकार मंत्र, तंत्र, यंत्र आदि सर्वथा असत्य हैं ।

साखी—चटक मटक बाजीगरी, झूठ साँच फैलाय ।
अनबनि विद्या को गनै, राखै जीव अरुझाय ।।२१९।।

शब्दार्थ — चटक = चेटक, इन्द्रजाल । मटक = मटकाने का भाव; हाथ, पैर, भौं तथा नाना अंगों को चंचल करके लोगों को रिझाना; भाँडपन । बाजीगरी = बाजीगर का काम, धोखा, चालाँकी । अनबनि = अनेक ।

भावार्थ — भ्रमिकों ने इन्द्रजाल, भाँडपन, धोखा-चालाँकी रूपी बाजीगरी तथा थोड़ी सी सत्यता लेकर बहुत सी झूठी बातों का जाल फैला रखा है । इन सब अनेक प्रापंचिक विद्याओं का कौन बड़ी व्याख्या करे जिनमें भ्रमिकों ने जनता को बेवकूफ बनाकर उन्हें फँसा रखा है ।।२१९।।

विशेष — जादू, मन्त्र नाम की कोई वस्तु नहीं है । जो लोग कुछ-का-कुछ चमत्कार-जैसी वस्तुयें या घटनायें दिखा देते हैं, वे जादू-मन्त्र का केवल दिखावा ही करते हैं । वस्तुतः वस्तु की बनावट, दवाई, हाथ और बात की सफाई तथा अनेक छल-चतुरता से वह सब दिखलाते हैं । अतएव जादू, मन्त्र, तन्त्र, यंत्र आदि सब झूठे हैं ।

अश्मशान सिद्धि सबै, इंद्रजाल माया रची ।
ठगहारी चोरी कपट, भेदपिशाची छल रची ।।२२०।।

शब्दार्थ—इन्द्रजाल = जादूगरी, हाथ की सफाई आदि, छल-बल। भेद = फूट डालना। पिशाची = पिशाच विद्या; पिशाच को एक निम्नकोटि का देवयोनि मान रखा है। रची = दूती; गुप्तचरी विद्या।

भावार्थ — भ्रमिक लोग मरघट में या मुर्दे की छाती पर बैठकर कल्पितमन्त्रों का जप करके सब प्रकार की सिद्धि का पाना मानते हैं। उन लोगों ने मायाबी एवं धोखाधड़ी रूपी इन्द्रजाल, ठगाई, चोरी, कपट, फूट डालने, पैशाचिक, छल एवं गुप्तचरी आदि की विद्यायें तथा चालाँकियाँ बना रखी हैं ॥२२०॥

५९—सांसारिक प्रपंचों का निरास

चौपाई—६१

डाका घात कुटिलता कीन्हा। वैर परस्पर योनी दीन्हा ॥१॥
योनी मानुष उत्तम होई। तेहिमें बहुत प्रपंच समोई ॥२॥

शब्दार्थ — घात = विश्वास घात। प्रपंच = भवजाल।

भावार्थ — अज्ञानवश मनुष्य डाका डालता, विश्वासघात करता, क्रूरव्यवहार करता और आपस में शत्रुता करके कुकर्म करता तथा इन सबके परिणाम में अपने आपको नानायोनियों में डाल देता है ॥१॥ मनुष्य शरीर सर्वोच्च तथा कल्याण-साधन का स्थल है; परन्तु उसमें भूलवश जीव अनेक भवजाल का बन्धन बनाता है ॥२॥

एकहि एक करै वशि अपना। राज काजके कलह कल्पना ॥३॥
हाकिम हुकुम बड़ी प्रभुताई। अनबनि योनि भरम दृढ़ाई ॥४॥

शब्दार्थ — कलह = झगड़ा। हाकिम = हुक्म करने वाला, हुकूमत करने वाला, शासक; राजा; अधिकारी। हुकुम = हुक्म, आज्ञा; हुकूमत, अधिकार। अनबनि = अनेक।

भावार्थ — राजकाज के झगड़े और उसके उपभोग की कल्पना में पड़कर लोग एक दूसरे को अपने वश में करने का भरसक प्रयत्न करते हैं ॥३॥ मैं बहुत बड़ा शासक हूँ, मेरा शासन क्षेत्र इतना है—इत्यादि मानकर तथा बहुत बड़ी प्रभुता और महिमामें आसक्त होकर मनुष्य के मन में अनेक भ्रान्तियाँ दृढ़ हो जाती हैं; अतएव वह नाना योनियों में जाकर भटकता है ॥४॥

बनिज बैपार कृषी बहु कर्मा। टहलू टहल अनेकनि धर्मा ॥५॥
ईर्षा लाज भाव मर्यादा। रार परस्पर लाइ विषादा ॥६॥

शब्दार्थ — टहलू = टहलुआ, सेवाकर्म करने वाला, नौकरी वाला। टहल = चाकरी, नौकरी। भाव = प्रेम। रार = झगड़ा। विषादा = विषाद, उचाट, उत्साहहीनता।

भावार्थ — संसार में लोगों को पेट पालने के लिये दूकानदारी, बड़े-बड़े व्यापार, खेती, नौकर बनकर नौकरीपेशा ऐसे अनेक कर्म व कर्तव्य करने पड़ते हैं ।।५।। उन्हें ईर्ष्या, लज्जा, प्रेम, मर्यादा, आपसी झगड़े, विषाद, उचाट, उदासीनता आदि के बीच में होकर गुजरना पड़ता है ।।६।।

कारण सब कारज प्रगटाई । जालहि जाल रखा अरुझाई ।।७।।
बधिक बियाध सबै निर्माई । परखहु काल कला बहुताई ।।८।।

शब्दार्थ — कारण = विषयासक्ति; सुख भोगने की लालसा । बधिक = मलीन मन । बियाध = व्याधि, रोग, काम, कल्पनादि ।

भावार्थ — विषयासक्ति ही जीवन के अनेक प्रापंचिक कार्यों का कारण है । यह विषयों के सुख भोगने की लालसा ही जीवों को अनेक बन्धनों में उलझा रखती है ।।७।। बधिक रूप इस मलीन मन ने ही काम, कल्पनादि समस्त मानसिक व्याधियों की उत्पत्ति की है । अतएव हे मुमुक्षुओ ! मन की अनेक कल्पनाओं की परख करके उनका त्याग करो ।।८।।

विशेष — जीवन-निर्वाह के लिये तो कर्म सबको करने हैं; विषयासक्तिजनित कर्म छोड़ने चाहिये ।

विषय विकारमई संसारा । आपुहि रूप जगत विस्तारा ।।९।।
तामस रूप विकार कराला । धोखा जीव न देइ दयाला ।।१०।।
परम दयाल के अस नहिं करनी । नष्ट रूप परमपद बरनी ।।११।।

शब्दार्थ — विकार = परिवर्तन । आपुहि = ब्रह्म ही । कराला = भयंकर । नष्टरूप = शून्य रूप, मिथ्या । बरनी = वर्णन किया ।

भावार्थ — (कहते हैं) ब्रह्म अपने को ही जगत के रूप में फैला दिया है; परन्तु संसार को देखते हैं तो वह पंचविषयों का समूह, परिवर्तनमय, अंधकारपूर्ण एवं भयंकर विकारी है । इस प्रकार दयालु सदगुरु का यह काम नहीं है कि वह मनुष्यों के साथ छलावा की बातें करे ।।९, १०।। परमदयालु पुरुष का यह कर्तव्य नहीं होता कि वह शून्य को ही परमोच्च स्थिति बतलाये ।।११।।

विशेष — यहाँ ग्रन्थकर्ता का ब्रह्मवादियों पर अत्यन्त मीठा और करारा व्यंग है । वे कहते हैं कि जब जगत ब्रह्म रूप है तब वह परिवर्तनशील, जड़, पाप-ताप से भरा एवं क्लेश रूप क्यों है ? ब्रह्मवादी जब परमकारुणीक एवं जीवों के उद्धार के निमित्त उन पर कृपा करने वाले हैं तब वे ऐसी झूठी एवं छलपूर्ण बातें क्यों करते हैं ? वे दयालु नहीं हैं यह तो नहीं कह सकते, हाँ, दयालु होते हुए भी अपने भोलापन से उलटी-पलटी बातें करते हैं । शून्य के सेवन से किसको शांति मिली है ?

साखी—महा अघट करनी यम, घट घट रहा समाय ।
जीव न चीन्हैं ताहि को रहहिं सदा लौलाय ॥२२१॥

शब्दार्थ — अघट = जो घटे नहीं; जो एक-सा बना रहे; बेमेल, अयोग्य; न होने योग्य, कठिन । यम = अज्ञानी मन; वासना; आसक्ति । घट = अंतःकरण । लौ = ध्यान ।

भावार्थ — अज्ञानी मन के कर्म महान अयोग्य, कठिन एवं समाप्त न होने वाला है; और धूर्त मन हर व्यक्ति के अन्तःकरण में प्रविष्ट है । परन्तु भूला जीव उसके विघातक स्वरूप को नहीं पहचान पाता, अतएव वह सदैव उसी के प्रापंचिक कार्यों में ध्यानमग्न एवं विभोर रहता है ॥२२१॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-३२६

पैठा है घट भीतरे, बैठा है साचेत ।
जब जैसी गति चाहै, तब तैसी मति देत ॥२२२॥

शब्दार्थ — घट = अन्तःकरण । साचेत = सचेत, सावधान । गति = चाल, दशा, आचरण । मति = बुद्धि ।

भावार्थ — मन-शत्रु सबके हृदय में घुसा है और सावधान होकर बैठा है, जब जिस प्रकार चाल चलना चाहता है, तब उसी प्रकार जीव की बुद्धि फेर कर उससे अपने अनुकूल कर्म करा लेता है ॥२२२॥

विशेष — जीव-द्वारा अनादिकाल से विषयों की पूजा पाते-पाते यह मन बहुत बलवान हो गया है । यद्यपि मन कोई स्वतन्त्र नहीं, मानन्दी मात्र है; परन्तु जिन विषयों में जीव की अत्यन्त आसक्ति हो गयी है, वहाँ यह आकर विराजमान हो गया है और दृढ़ डेरा जमा लिया है । इसी मन के अधीन होकर लोग सारा अनर्थ करते हैं । अतएव मन पर विजय करना परम आवश्यक है ।

"देखो मन काल जाल बरियारा ॥टेक॥
करे मित्रता जीव से ऐसी, मानो दुख निरुवारा ।
चेतन काज में आलस लावे, निज के हित हुशियारा ॥"
"सजग रहो अपने मन के बीच ।
इत उत धावै तुमहिं भुलावै, लैके डारे कठिन के बीच ।
दै विश्वास दगा करि जावै, जीव न जानै नीच ।" (भवयान, इच्छापरीक्षा)

६०—भ्रम निरास एवं सत्यार्थी को उद्बोधन

चौपाई—६२

भानु होय कला बहु कीन्हा । आपुहि आप कलामय चीन्हा ॥१॥
सर्व कला सो आपु विराजै । परख विलास लहै तम भाजै ॥२॥

शब्दार्थ — भानु = सूर्य; ज्ञान । आपु = स्वयं । परख विलास = ज्ञानबीन की दृष्टि, ज्ञानसाधना, ज्ञानमें तन्मयता । तम = अज्ञान ।

भावार्थ — जीव ज्ञान स्वरूप होने से ही अनेक कल्पनायें, रचनायें, एवं हुनर प्रकट किया है । परन्तु वह स्वस्वरूप की भूल से अपने आपको उन्हीं कृत्रिमों का रूप मान लिया है (उनसे अपने आपको भिन्न न कर सका) ॥१॥ जीव अपनी ही सभी कल्पनाओं एवं कृत्रिमों में अहंता-ममता कर बैठा है । परन्तु जब पारखी सद्गुरु से उसको एकरस ज्ञान की दृष्टि मिल जाती है तब उसके सब अज्ञान अंधकार दूर भाग जाते हैं ॥२॥

तामस नीच लपटि जिव माहीं । नित्य जीवन धन हरि हरि खाहीं ॥३॥
तामस विवश अंध होय डोलै । जीव दुसह दुख काल कलोलै ॥४॥

शब्दार्थ — तामस = अज्ञान अंधकार । जीवनधन = ज्ञान, भक्ति, वैराग्यादि सद्गुण । काल = अज्ञान, विकारी मन । कलोलै = कलोल, क्रीड़ा, केलि ।

भावार्थ — अधम अज्ञान अंधकार जीव के अन्तःकरण में अनादिकाल से लिपटा है । वह कल्याणकारी गुणों को छीन-छीन कर नष्ट करता है ॥३॥ जीव अज्ञान अंधकार के वशीभूत होकर विवेकहीन बना भटकता है । इस अज्ञान क्रीड़ा में जीव को असह्य कष्ट होते हैं ॥४॥

नाशक एक जीव पुनि एका । परवश आदि काल के भेषा ॥५॥
चीन्हहु ताहिं गहहु प्रभु चरणा । सो प्रकाश पारख तम हरणा ॥६॥

शब्दार्थ — आदि = प्रधान । काल = अज्ञान । वेषा = वेष, परिधान, पहनाव ।

भावार्थ — बन्धनों का प्रधान कारण अज्ञान है, उसी के परिधान में लिपटे हुए सब जीव एक दूसरे को बन्धन देकर परस्पर विघातक हो रहे हैं ॥५॥ हे मुमुक्षु ! उस बन्धन को परख कर त्याग करो और विवेकी सद्गुरु की शरण ग्रहण करो । उनसे तुम्हें पारख का प्रकाश मिलेगा जो अज्ञान-अन्धकार का विनाशक है ॥६॥

भूलहु मति अब यमके फेरे । परखहु दुसह दुख तेहिके घेरे ॥७॥
यतन अनेक बझावन तोही । दहुँ दिश फाँस परोहै वोही ॥८॥

शब्दार्थ — यम = यम, अज्ञान । घेरे = घेरा, स्थान, फैलाव, विस्तार ।

भावार्थ — हे मुमुक्षु ! अब अज्ञान एवं मन के चक्कर में मत भूलो; प्रत्युत उसके विस्तार में असहनीय कष्ट समझो ॥७॥ तुम्हें बन्धनों में फँसाने के लिये उसके अनेक यत्नपूर्ण दशोदिशाओं में जाल पड़े हुए हैं ॥८॥

परै न लख बिनु पारख प्रीती । बिनु पारख को यम को जीती ॥ ९ ॥
जति सति तपसी सिद्ध भुलाई । गाँठि न खुलहिं रहहिं अकुलाई ॥१०॥

शब्दार्थ — यम = मन, वासना, अज्ञान । जति = यति, त्यागी । सति = सत्य सती, साध्वी । अकुलाई = घबड़ाना ।

भावार्थ — यथार्थ ज्ञान में श्रद्धा किये बिना भवबन्धन की परख नहीं होती। बिना पारख के प्राप्त हुए मन-वासनाओं पर कौन विजय कर सकता है ? ॥९॥ त्यागी, सत्यव्रतधारी, साध्वी, तपस्वी, सिद्ध आदि तक मन के माया में भूलकर मूढ़ बन जाते हैं; उनकी अज्ञानग्रन्थी नहीं खुलती और वे व्याकुल हुए भटकते हैं ॥१०॥

ठाढ़ेश्वरी दिगम्बर मौनी ऊर्धबाँही । छाँदे बाँधे यमपुर जाहीं । ११॥
हित बानी नहिं सुनहिं अयाना । धोखे माँह रहैं बौराना ॥१२॥

शब्दार्थ — ठाढ़ेश्वरी = दिन रात खड़े रहने वाले साधु । दिगंबर = दिशाओं को ही वस्त्र मानने वाले—नंगे साधु । मौनी = रात-दिन चुप रहने वाले साधु । ऊर्धबाँही = रातदिन ऊपर हाथ करके रहने वाले । छाँदे बाँधे = बंधन में जकड़े हुए ।

भावार्थ — ठाढ़ेश्वरी, दिगम्बर, मौनी, ऊर्ध्वबाहु—ये सब बिना विवेक बंधनों में बंधे हुए गर्भत्रास में जाते हैं ॥११॥ भोले लोग कल्याण की बातें नहीं सुनते, वे शरीर, जवानी, धनादि के अहंकार और धोखे में उन्मत्त बने रहते हैं ॥१२॥

साखी—महिमा केरी घमंड में, रहहिं जीव सब भूल ।
यतन करहिं अरुझहिं सदा, दृढ़ गाँठी नहिं खूल ॥२२३॥

शब्दार्थ — दृढ़ = मजबूत । गाँठी = गाँठ, अज्ञान ।

भावार्थ — सब मनुष्य अपने-अपने मत-पंथ के माहात्म्य के अहंकार में पड़कर भूले हुए हैं । वे यद्यपि छूटने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु उलटी बुद्धि होने से सदा बंधनों में ही उलझे रहते हैं; अतएव उनकी मजबूत अज्ञानग्रन्थि नहीं खुलती ॥२२३॥

पाँच तत्त्व गुण तीनकी, आय परी है गाँठ ।
याहीमें भूला फिरै, महापुरुषकी बाँट ॥२२४॥

शब्दार्थ — गाँठ = आसक्ति । महापुरुष = अनेक शास्त्रों तथा मतों के रचयिता व संस्थापक । बाँट = बाट, मार्ग ।

भावार्थ — खानी भाग में पृथ्वी आदि पाँच तत्त्व तथा सत, रज, तम, तीन गुणों के संयुक्त इस शरीर की आसक्ति रूपी गाँठ मनुष्य के हृदय में पड़ गयी है; और वाणी भाग में अनेक दार्शनिकों तथा संप्रदायाचार्यों के विविध मार्ग हैं—इन्हीं में यह जीव भूला-भूला फिरता है ॥२२४॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी ३८

चन्दन सर्प लपेटिया, चंदन काह कराय ।
रोम रोम विष भीनिया, अमृत कहाँ समाय ॥२२५॥

शब्दार्थ — चन्दन = चेतन मनुष्य।

भावार्थ — चेतन मनुष्य को पंच विषयासक्ति एवं पंच अभिमान रूपी सर्प ने लपेट रखा है; फिर वह बेचारा क्या करे? उसके रोम-रोम में तो विषयासक्ति भिन गयी है; फिर अमृत (पारख-ज्ञान) का प्रवेश कहाँ से हो ? ॥२२५॥

विशेष — शब्दादिक पाँच विषय तथा विश्व आदि पाँच अहंकार सर्प हैं, इनके वश में जीव अत्यन्त विषयासक्ति एवं अहंकारी बने हुए हैं। मनुष्य के रोम-रोम में अहंकार समाया हुआ है, फिर बोध-विचार का प्रवेश कहाँ से हो ?

उपर्युक्त साखी का अभिप्राय यह भी है कि जैसे शीतल चन्दन पर सर्प के लिपटे रहने पर भी, सर्प के रोम-रोम में विष रहने से उसमें चन्दन की शीतलता इस प्रकार नहीं प्रविष्ट होती, कि जिससे उसका विष दूर हो जाय इसी प्रकार अत्यन्त दुष्ट जन यदि सत्संग ही में नित्य बसे रहें, तो भी उनके अत्यन्त अहंकार रूपी विष होने के कारण, उनमें ज्ञान-विचार नहीं समाते।

पाँचों अभिमानों के स्वरूप

विश्व अभिमान — विश्व कहते हैं स्थूल संसार को। भूमण्डल, चाँद, सूर्य, वन, पर्वत, समुद्र एवं सारी प्रकृति में या स्त्री, पुत्र, मित्र आदि प्राणियों में एवं घर धनादि भोग पदार्थों में अहन्ता ममता करना—यह विश्व अभिमान है।

तैजस अभिमान — तेज से उत्पन्न होने वाले पदार्थों को तैजस कहते हैं। योग-क्रिया द्वारा मस्तिष्क की गर्मी से उत्पन्न हुई ज्योति दर्शन को पाकर तथा अन्य यौगिक उपलब्धियों एवं चमत्कारों में अहं-मम होना—तैजस अभिमान है।

प्राज्ञ अभिमान — प्राज्ञ का अर्थ बुद्धिमान, चतुर, दक्ष तथा महामूर्ख भी है। शास्त्रार्थ में बुद्धिमानी दिखाना, अपने स्वरूप से पृथक ईश्वर-ब्रह्म, देवी-देवतादि की कल्पनायें करना और इसी के अहंकार में फूलकर स्वरूप-शोधन न करना—प्राज्ञ अभिमान है।

प्रत्यक् आत्मा अभिमान — प्रत्यक् कहते हैं भीतर को आत्माका अर्थ अपने आप चेतन है। चराचर सारे विश्व के भीतर अपने को व्याप्त मानकर अहन्ता-ममता करना—प्रत्यक् आत्मा अभिमान है।

निरंजन अभिमान — निरंजन कहते हैं ब्रह्म को। स्वर्ण-भूषण, घट-मृतका तथा जल-तरंग जैसे एक है, उसी प्रकार सारा चराचर अर्थात जड़-चेतन सब ब्रह्म और ब्रह्म मैं ही हूँ। मैं ही भूमण्डल हूँ, मैं ही चाँद, सूर्य, आकाश आदि हूँ, मेरे से पृथक कुछ भी नहीं है; इस प्रकार व्यर्थ अहन्ता-ममता होना—निरंजन अभिमान है।

उपर्युक्त पाँचों अहंकार जीव के कठिन बन्धन हैं। इन पाँचों अहंकारों का साक्षी या द्रष्टा चेतन है, वह सबसे पृथक शुद्ध पारख है। सब अहंकारों को त्याग कर स्व-स्वरूप में स्थित होना ही परमकर्तव्य है।

६१—वैद्यक, चिकित्सा, शास्त्र, सामुद्रिक आदि का वर्णन

चौपाई—६३

औरों कला अनेक प्रचारा। वैद्यक रसक्रिया अनुसारा ॥१॥
कफ पित्त वात नाड़िका तीनी। चाल स्वभाव भिन्न कर दीन्ही ॥२॥

शब्दार्थ — वैदक = चिकित्सा शास्त्र। रसक्रिया = रसकर्म, पारे द्वारा रस तैयार करने की क्रिया; रस = धातु भस्म।

भावार्थ — आगे चिकित्साशास्त्र की निपुणता का प्रचार हुआ, जिसके अनुसार धातुओं के भस्म व औषधियाँ बनायी गयीं ॥१॥ शरीर में कफ, पित्त और वात—ये तीन नाड़ियाँ हैं; इनकी चालें तथा स्वभाव भिन्न-भिन्न करके निर्धारण किया गया ॥२॥

विशेष — कफ, पित्त तथा वात के क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महादेव अधिष्ठाता माने गये हैं।

जब कबूतर तथा हंस की चाल में नाड़ी चले तब कफ विकार समझना चाहिये, जब मेढक तथा काक की गति में नाड़ी चले तब पित्त विकार समझना चाहिये और जब जोंक तथा सर्प की चाल में चले तब वातविकार समझना चाहिये। वैद्य-हकीम नाड़ी की परख करके तदनुसार औषधि देते हैं।

पचीस प्रकृति पाँचतत्त्व केरा। विविधि उपाधि ताहि बौंडेरा ॥३॥
बैर परस्पर रोग उपाई। वैदक ताके लक्ष बनाई ॥४॥

शब्दार्थ — बौंडेरा = बवंडर, आँधी-तूफान।

भावार्थ — पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वों की पचीस प्रकृतियाँ मानी गयी हैं। उन प्रकृतियों में घट-बढ़ होने तथा आहार, विहार एवं व्यवहार के बिगड़ने से शरीर में आँधी-तूफान के समान अनेक रोगों की उपाधियाँ उठ खड़ी होती हैं ॥३॥ इस प्रकार असंयम से प्रकृति में परस्पर विरोध हो जाने से रोग उत्पन्न होते हैं। उन्हीं के निवारण का लक्ष्य लेकर चिकित्सा शास्त्र एवं औषधि-विज्ञान की रचना एवं खोज की गयी है ॥४॥

एक जड़ी एक नाशहि घाता। रसक्रिया सोई यमविख्याता ॥५॥
एक एकके मारन जानी। समन रोग औपधी ठानी ॥६॥

शब्दार्थ — यम = संयम। समन = शमन, नाश। ठानी = निश्चय।

भावार्थ — जड़ी बूटियाँ असंख्य है। एक जड़ी रोग दूर करती है तो दूसरी रोग बढ़ा देती है। अथवा एक जड़ी दूसरी औषधि के दोषों को नष्ट करती है; जैसे किसी औषधि के रस, क्वाथ आदि में औषधि चूर्ण, भस्म आदि शोधकर बनाया जाता है। संसार में यह भी विख्यात है कि संयम करने से रोग दूर होते हैं ॥५॥ वैद्य लोग

कौन रोग किस औषधि से नाश होगा इसको भलीभाँति जानकर रोग के शमन के लिए औषधि देने का निश्चय करते हैं ॥६॥

कहुँ झूठा कहुँ होवै फूरा । मिथ्या सत्य चिकित्सा पूरा ॥७॥
बाँचन चहहिं जतन बहु करहीं । त्रिदोषक सब अंत ग्रासहीं ॥८॥

शब्दार्थ -- चिकित्सा = नाड़ी, मल, मूत्र, जिह्वा, नेत्रादि की परीक्षा, रोग निवारण का उपाय, इलाज; औषधोपचार । त्रिदोषक = कफ, पित्त, वात के विकार ।

भावार्थ — चिकित्सा कहीं झूठी हो जाती है और कहीं सत्य उतरती है । इस प्रकार वह भी सत्य तथा झूठ से पूर्ण है ॥७॥ मनुष्य रोगों से सर्वथा बचना चाहता है, उसके लिये अनेक प्रयत्न भी करता है, परन्तु उसे अन्त में कफ, पित्त तथा वात घेर कर समाप्त ही कर देते हैं ॥८॥

विशेष — शरीर में पंचान्नबे प्रतिशत रोग तो आहार, विहार तथा व्यवहार के बिगाड़ से होते हैं । खाने-पीने में सावधानी तथा हल्का रखने से और जीवन को संयमित रखने से स्वास्थ्य अपने आप ठीक होता है । जब लोग प्रकृति के साथ अन्याय करते हैं तब वह भी बदला लेती है । यदि कभी रोग हो तो यथासम्भव उसकी प्राकृतिक-चिकित्सा करनी चाहिये ।

औषध करना कोई बुरा नहीं है । परन्तु एकदम औषधि के पीछे पागल होना निरर्थक है । रोगों का वेग भी होता है । उसका शमन हुए बिना औषधि नहीं लगती ।

छोड़ै न काहु खेल खेलाई । फाँसी अनवनि विधि गरे लाई ॥ ९ ॥
आशा लागि अरोग शरीरा । रोग मूल पावहिं बहु पीरा ॥१०॥

शब्दार्थ — अनवनि = अनेक । रोग मूल = रोगों की जड़ ।

भावार्थ -- अंततः तो संयम और औषधि करते हुए भी प्रारब्धिक रोग किसी को छोड़ता नहीं, वह दुखों का खेल खेलाता ही है । इस प्रकार प्रारब्धभोग अनेक रोगों की फाँसी मनुष्य के गले में लगा देता है ॥९॥ मनुष्यों को तो हर समय यही आशा लगी रहती है कि शरीर सर्वथा निरोग रहे, परन्तु यह शरीर रोगों की जड़ है, इससे जीव को सर्वत्र असंख्य पीड़ा मिलती रहती है ॥१०॥

विशेष — विवेकवान शरीर के रोग-नीरोग को सर्वथा अपने वश में न जानकर उनसे उदासीन एवं सम रहते हैं ।

जहाँ तहाँ तीर्थ स्थान उपाई । पाप पुण्य कर्म लपटाई ॥ ११॥
जल तरना बहु चाल उपाना । अंत डुबावै जतन विधि नाना ॥१२॥

शब्दार्थ — उपाई = बनाया, माना । जतन = यत्न, उद्योग ।

भावार्थ — रोग, दुःख आदि अनिष्ट दूर करने के लिये मनुष्यों ने यत्र-तत्र

तीर्थस्थानों की मान्यता कर रखी है; और वहाँ जाकर मूर्तियों के दर्शन तथा नदियों में स्नान करने से पाप का नाश तथा पुण्य की वृद्धि होकर दुःखों का नाश माना है। इस प्रकार अविवेक ढंग से लोग पाप-पुण्य की मान्यता में लिपटे हैं ॥११॥ पुनः पानी में तैरने की भी अनेक कलायें प्रकट की गयी हैं, उनमें निपुण तैराक लोग घंटों तैरते रहते हैं। किन्तु बाह्य नाना कला-कौशलों में निपुण होकर भी वे अंत में अज्ञानसागर में डूब जाते हैं ॥१२॥

विशेष—मनके सागर में तैरने की कला सीखनी चाहिये जिससे जीव भवसमुद्र से पार हो।

बाहन बाजी अनेक प्रकारा। एक विवश एक जीवहिं डारा ॥१३॥
जतन रतनके चाल चलाई। तिल जव रति मासा परखाई ॥१४॥
गनत गनत कोई पार न पावै। फैल फैलाय अंबूह देखावै ॥१५॥

शब्दार्थ — बाहन=वाहन, सवारी। बाजी=वाजी, घोड़ा। रतन=रत्न, मुख्य रत्न नौ हैं—माणिक, नीलम, लहसुनिया, हीरा, पन्ना, पुखराज, मूँगा, मोती, गोमेंद। तिल=तेलहन का एक छोटा दाना। जव=यह छह राई के बराबर माना जाता है। रति=रत्ती, यह ढाई जौ के बराबर माना जाता है। माशा=यह आठ रत्ती के बराबर तथा तोले का बारहवाँ भाग माना जाता है। अंबूह=अंबुनिधि समुद्र।

भावार्थ — मनुष्यों ने घोड़े आदि को अपने वश में करके उनको अपना वाहन बना रखा है तथा उन्हें चाल चलाने के लिये भी अनेक कलायें रची हैं। इस प्रकार एक प्राणी दूसरे पर अपना फंदा डालकर उसे अपने वश में कर रखा है ॥१३॥ यत्न पूर्वक अनेक रत्नों को परखने और उनको मूल्यवान मानकर उनका क्रय, विक्रय तथा उपयोग करने का भी मनुष्यों ने प्रचलन कर रखा है। तौल, माप के लिये तिल, जौ, रत्ती, माशा, तोला, छटाक, सेर, पसेरी, मन आदि का भी विधान बना रखा है ॥१४॥ इस प्रकार संसार की अपार कलाओं, ज्ञान-विज्ञानों की गणना करते-करते कोई उसका पार नहीं पा सकता है। उनका इतना विस्तार है कि वह समुद्रवत ही प्रतीत होता है ॥१५॥

साखी—वैर विरोध मचायके, रचा अनेक हथियार।
धनुर्विद्या गावै तेई, कारण सोई संघार ॥२२६॥

शब्दार्थ—धनुर्विद्या=वाण चलाने कीविद्या, तीरंदाजी। संघार=संहार, विनाश।

भावार्थ — मनुष्यों ने स्वार्थ, विषयासक्ति और अहंकार के वशीभूत होकर परस्पर शत्रुता एवं तनाव करके अनेक हथियारों का निर्माण किया है। इसमें धनुष-वाण चलाने की विद्या को मुख्य कहते हैं जो कि विनाश का कारण है ॥२२६॥

विशेष — जिस समय ये चौपाइयाँ बनी थीं उस समय के लिये धनुर्विद्या ही संहारक अस्त्र-शस्त्रों की विद्याओं में श्रेष्ठ थी। परन्तु आज उसका बहुत कम या कहना चाहिये कुछ भी मूल्य नहीं है। आज तो बड़े-बड़े टैंक, जल, स्थल तथा आकाश से लड़ने वाले बड़े-बड़े यान, यंत्र तथा अणु बम, परमाणु बम आदिका निर्माण हो चुका है जिसमें सहज ही सृष्टि को तहस-नहस किया जा सकता है।

रेखा लक्षण भेदसो, सामुद्रिक रचि दीन्ह।
चतुराई बहु भाँतिके, कला प्रगट सब कीन्ह ॥२२७॥

शब्दार्थ — सामुद्रिक = देह चिन्ह सम्बन्धी; वह विद्या जिसके सहारे देहचिन्हों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

भावार्थ — सामुद्रिक विद्या से मनुष्य के हाथ, पैर, मस्तकादि के रेखालक्षणों द्वारा शुभाशुभ का निर्धारण किया गया। इस प्रकार अनेक चतुरता से मनुष्यों ने सारी कलाओं का सृजन किया ॥२२७॥

६२—ब्रह्म और मायाका वर्णन

चौपाई—६४

जेहि प्रकार अनंत होय आई। विद्या तेहि भाँति निर्माई ॥१॥
चौदह तामें विशेषण गाँठी। अष्टांगी प्रति वोई आँटी ॥२॥

शब्दार्थ — गाँठी = गठरियाँ। अष्टांगी = माया; पाँच तत्त्व तथा तीन गुण। प्रति = प्रत्येक। आँटी = लच्छे; जैसे सूत के लच्छे।

भावार्थ — जिस प्रकार कलाओं की असंख्य शाखायें फैल सकें मनुष्यों ने उसी प्रकार अगणित विद्याओं की उपज की ॥१॥ उनमें चौदह विद्याओं की बड़ी गठरियाँ हैं। और वस्तुतः वे सभी विद्यायें एवं कलायें माया के ही लच्छे-गुच्छे हैं।

विशेष—चौदह विद्याओं का वर्णन आगे ७९ वीं चौपाई में देखें।

अष्टंगी सब कला अपारा। सिद्धि सिखाय विविधि परकारा ॥३॥
एक मोहनी रूप सोहाये। कल बल छल तेहि विविधि लगाये ॥४॥

शब्दार्थ — सोहाये = अच्छा लगना। कल = कौशल, चतुरता। बल = बलात्कार, जबर्दस्ती।

भावार्थ — संसार में जो अनेक प्रकार की सिद्धियाँ सिखाई जाती हैं वह सब अपरमित कलायें मायास्वरूप हैं ॥३॥ ये कलासमूह मनको अच्छी लगने वाली एक मोहनी का स्वरूप है जो मनुष्यों में अनेक प्रकार के कौशल तथा छल-बल लगा देता है ॥४॥

विशेष — यह भी मान्यता है कि अष्टांगी नाम की एक महिला थी; जो सर्व

कलाओं में निपुण थी। उसी ने अनेक कलाओं का प्रचार किया है। परन्तु विवेक से यह सिद्ध होता है कि संसार की सभी कलायें एवं विद्यायें अनादिकालीन प्रवाहमय संसार के असंख्यों मनुष्यों के मस्तिष्कों की परम्परया उपज हैं जो उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहीं और समय के चक्कर से लुप्त भी होती रहीं और पुनः उदित होकर बढ़ती रहीं।

धर्मराय अष्टांगी नारी। बहु विधि कैल करै जग भारी ॥५॥
त्रिदेवा अस्थूल उपाने। तबहिं धर्म महाशून्य समाने ॥६॥

शब्दार्थ — धर्मराय = निरंजन, ब्रह्म, मन। अष्टांगी = एक तथाकथित महिला; पंचतत्त्व तथा तीनों गुण; माया। कैल = क्रीड़ा; मनोविनोद।

भावार्थ — ब्रह्म और माया ये दोनों इस संसार में अनेक प्रकार की महान विशाल क्रीड़ा किये ॥५॥ तब ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के स्थूल स्वरूप प्रकट हुए। फिर परब्रह्म अपना कार्य पूरा हुआ जानकर महाशून्य में समा गया ॥६॥

विशेष — कहते हैं पहले ब्रह्म माया से क्रीड़ा करके त्रिदेवों को अपने प्रतिनिधि के रूप में प्रकट कर दिया और अपना स्वयं शून्य एवं निर्गुण रूप होकर स्थित हो गया।

अनंत कलाके जीवहि फाँसी। आपु महाशून्य अचल अविनाशी ॥७॥
सब घट जीवन जीव चोरावै। आपु चोरावै आपु छिपावै ॥८॥

शब्दार्थ — घट = अंतःकरण। जीवन जीव = जीव का जीवन—विवेक। आपु = ब्रह्म।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से भूले लोगों ने भ्रममान्यता फैलाकर अनंत कल्पनाओं में मनुष्यों को फँसा रखा है। कहते हैं ब्रह्म महाशून्य, अचल तथा अविनाशी है ॥७॥ इस प्रकार सब जीवों के अंतःकरणों का विवेकधन चुरा लिया है। यह जीव से पृथक ब्रह्मकी कल्पना ने ही मानो जड़-चेतन के भिन्न विवेक को स्वयं चुरा कर अभिन्न अद्वैत के अंधकार में छिपा दिया है ॥८॥

शीश छिपावै देह देखावै। ताते चोर चीन्ह नहिं पावै ॥९॥
धड़ सो माया कला प्रकाशी। आपु निरीह अव्यक्त सुखराशी ॥१०॥

शब्दार्थ — धड़ = सिररहित शरीर। निरीह = इच्छारहित। अव्यक्त = अप्रकट।

भावार्थ — ब्रह्मकल्पना रूपी चोर ऐसा है कि वह अपने सिर को छिपा लेता है, केवल अपना स्थूल शरीर ही दिखलाता है। इसलिये वह पहचानने में नहीं आता ॥९॥ उसका धड़ एवं स्थूलशरीर है अनेक कलाओं से प्रकाशित दृश्यमान माया और शिर है स्वयं अप्रकट, इच्छारहित, सुखस्वरूप ब्रह्म ॥१०॥

विशेष — माया स्थूल और दृश्यमान है; इसलिये वह प्रत्यक्ष है। परन्तु ब्रह्म को शून्यरूप अदृश्य कहते हैं। इसलिये लोग उसकी परख नहीं कर पाते। चेतन जीव माया दृश्य का भी द्रष्टा है और कल्पित शून्य ब्रह्म का भी द्रष्टा है। उसे चाहिये दोनों का अध्यास छोड़कर अपने आप में स्थित हो।

निर्विकार निर्लिप्त अमाया। धोखा प्रगट कला सो गाया ॥११॥
ऐसो भरम बिगुर्चन कीन्हा। सोई काल जीव आशा लीन्हा ॥१२॥
अस ठग जो ठगै दिन राती। कहहु कुशल जीव कौने भाँती ॥१३॥

शब्दार्थ — बिगुर्चन = विगूचन, उलझन। काल = कल्पना; अध्यास; अज्ञान।

भावार्थ — कल्पित ब्रह्म की विशेषतायें जो इस प्रकार की उघाड़कर कही गयी हैं कि वह विकाररहित, निर्लिप्त तथा मायातीत है, एक भ्रम है ॥११॥ मनुष्य ने जो इस प्रकार भ्रम और उलझन खड़ा किया है और उससे मोक्ष पाने की आशा कर रखी है वही उसके लिये अज्ञान या अध्यास है ॥१२॥ इस प्रकार जीवके साथ ही में लगा हुआ अज्ञानठग जो रात-दिन उसे ठग रहा है, उसमें पड़कर कहो भला जीव का किस प्रकार कल्याण होगा ? ॥१३॥

साखी—प्रीति करै जो ताहि सों, जे ठगहारो धन लेत।
दर्द न बूझैं जीवका, चूसि चूसि दुख देत ॥२२८॥

शब्दार्थ — ठगहारी = ठगपना, ठगाई का। चूसि चूसि = निचोड़ निचोड़ कर, शोषण करके।

भावार्थ — जो मनका अज्ञान (सुखाध्यास) छल करके जीवों का विवेकधन छीनता है, जीवों की पीड़ा को न समझ कर, प्रत्युत उनके ज्ञान तथा सदाचरणों का शोषण करके उन्हें दुःख देता है, उस (अज्ञान) से जो प्रेम करता है (वह कितना भूला है ?) ॥२२८॥

विशेष — दुःखदायी अज्ञान से ही मनुष्य प्रेम करता है। आवश्यकता है उससे बचने की।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-१२८

तीन लोक चोरी भई, सबका सर्बस लीन्ह।
बिना मूड़का चोरवा, परा न काहू चीन्ह ॥२२९॥

शब्दार्थ — तीन लोक = सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी। चोरवा = मन।

भावार्थ — त्रिगुणी जीवों के हृदय में चोरी हो गयी। चोर ने सबका सर्वस्व चुरा लिया, वह चोर बिना सिर के है, अतएव उसे कोई पहचान न सका ॥२२९॥

विशेष — मनुष्य को पहचानने का मुख्य अंग मुख ही है, जिसके शिर ही नहीं

है उसके मुख कहाँ ? जब मुख नहीं तो उसे पहचानना कठिन है। इसी प्रकार यह मन चोर है। इसका कोई एक ही मुख्य चेहरा नहीं है कि झट पहचान लो, यह कई रूपों में आकर जीव को लूटता है। इसीलिये सद्गुरु बीजक में कह दिये हैं कि—

ई मन चंचल ई मन चोर, ई मन शुद्ध ठगहार।
मन मन करते सुर नर मुनि जहँड़े, मन के लक्ष दुवार ॥ (बीजक, साखी ९६)

ध्यान धरहिं बहु भाँति सो, निरखहिं शोभा ईश।
आभा झलकी देहकी, मृत्यु समय विनु शीश ॥२३०॥

शब्दार्थ — आभा = चमक; झलक; छाया।

भावार्थ — लोग अनेक प्रकार से ध्यान धारण करके ईश्वर की शोभा देखना चाहते हैं; उनके ध्यान में शब्द, ज्योति आदि की जो चमक या छाया दिखाई पड़ती है वह सब शरीर और शरीर के जड़ अंगों की झलक है। अतएव ऐसे लोग अभी से ही धोखे में हैं और मृत्यु समय में भी बिना सिर-पैर की कल्पना के भ्रम में पड़े योनियों में जायेंगे ॥२३०॥

विशेष -- ध्यान करने से अनाहतनाद, ज्योति आदि के श्रवण-दर्शन होते हैं तथा चित्र-मूर्ति देखकर या मनःकल्पना का निरन्तर ध्यान करते-करते उसकी छाया मनमें आती है जो सब दृश्य, जड़, चंचल एवं नाशवान हैं। इसके भरोसे पड़े रहना महा अविद्या है। अतएव सभी दृश्योंका राग त्यागकर स्वस्वरूप चेतन में ही सन्तुष्ट होना चाहिये; तभी संसृति का अंत होगा।

६३–त्रिदेवों का परब्रह्म के लिये प्रश्न

चौपाई—६५

त्रिदेवा त्रयगुण अधिकारी। बहुविधि रूप कला वपु धारी ॥१॥
तीन पुत्र जननीके पासा। विद्या बुद्धि करै परकाशा ॥२॥

शब्दार्थ — अधिकारी = शासक। कला = विशेषता।

भावार्थ — ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव क्रमशः रज, सत, तम एवं सृष्टि, स्थिति और प्रलय के शासक माने जाते हैं। ये अनेक विशेषताओं को लेकर शरीर धारण किये हैं ॥१॥ उक्त तीनों पुत्र अष्टांगी माता के पास रहकर विद्या-बुद्धि का विकास करने लगे ॥२॥

जननी और कला सब जाने। जीव ठगौरी नहिं पहिचाने ॥३॥
चितवत अस्ति नास्तिके ओरा। तामस तमके रूप घनघोरा ॥४॥

शब्दार्थ — जननी = माता। ठगौरी = ठगाई विद्या; स्वरूपावरण। अस्ति = सत्य, जीव। नास्ति = असत्य, कल्पना।

भावार्थ — अष्टांगी माता भौतिक ज्ञान-विज्ञान की सारी बातें जानती थी, जिनकी सीख तो तीनों पुत्रों को दे दी; परन्तु वह जीव के स्वरूप पर जो मुख्य अज्ञान आवरण है नहीं जानती थी; अतएव स्वरूपभूल की निवृत्ति का उपदेश नहीं दे सकी ।।३।। इसीलिये त्रिदेवादि समस्त जो सत्य चेतन स्वरूप हैं अपने आपको भूलकर उस असत्य एवं कल्पना की ओर दृष्टि लगाये जो घनघोर अंधकारमय है ।।४।।

वेकार भाव इच्छा उतपानी । नाम रूप गुणमय प्रगटानी ।।५।।
तेहि भग लिंग अनंत उपाना । आपुहि जहाँ तहाँ छितराना ।।६।।

शब्दार्थ — गुण = सत, रज, तम । छितराना = विखर जाना ।

भावार्थ — (कहते हैं) प्रथम ब्रह्म ने विकारभाव को लेकर जगत बनाने की इच्छा प्रकट की; फिर नाम, रूप और त्रिगुणमय जगत प्रकट हो गया ।।५।। पुनः उस ब्रह्म ने असंख्य नारी-नरों को उत्पन्न किया और कहना चाहिये वह स्वयं यत्र-तत्र असंख्य ब्रह्माण्ड के रूप में विखर गया ।।६।।

साहेब आपु और सब दासा । जीवनधन पूजा निज गाँसा ।।७।।
महा विकारी दुखिया आपू । निज सुख हेतु प्रजा संतापू ।।८।।

शब्दार्थ — आपु = स्वयं ब्रह्म । जीवनधन = विवेक । गाँसा = गांस, फंदा; शासन, अधिकार । प्रजा = जनता ।

भावार्थ — (कहते हैं) ब्रह्म स्वयं सबका अधिपति है और सब जीव उसके दास हैं । इस प्रकार भ्रम कल्पना ने जीवों के ऊपर अपना अधिकार जमाकर उनका विवेकरूपी जीवन धन अपनी पूजा में ले लिया—विवेक छीन लिया ।।७।। वस्तुतः ब्रह्म जगत रचने की इच्छा वाला होने से स्वयं महाविकारी और दुखी है । फिर वह अपने मनोरंजन के लिये सृष्टि रचकर जनता को भी महान कष्ट दिया है ।।८।।

राजके हेतु ठगौरी लाई । कर्म धर्म मत जीव बौराई ।। ९ ।।
इच्छारूप सो प्रगटी नारी । नहिं जाने राजा ठगहारी ।।१०।।

शब्दार्थ — राज = मत प्रचार । कर्म = कर्मकाण्ड । धर्म = कल्पित उपासना । मत = भ्रमपूर्ण योग ।

भावार्थ — मतवादियों ने अपने मत के प्रचार के लिये नाना छलपूर्ण वाणियों का प्रचार किया है और कल्पित कर्म, उपासना एवं योग में मनुष्यों को भ्रमा दिया है ।।९।। मनुष्य के मनमें ब्रह्मप्राप्ति की इच्छारूपी नारी प्रकट हुई । वे यह नहीं जाने कि यह मतवादियों की उलझनपूर्ण वाणियाँ हैं ।।१०।।

त्रिदेवा पूछै महतारी । कैसे सृष्टि भया अधिकारी ।।११।।
धर्मराय प्रथम उपदेशा । पुरुष अरूप शून्यमें बासा ।।१२।।

शब्दार्थ — अधिकारी = पुरुष- सृष्टिकर्ता । धर्मराय = ब्रह्म ।

भावार्थ — ब्रह्मादि तीनों देवता माता से पूछे कि किस पुरुष से सृष्टि हुई ? ॥११॥ ब्रह्मके विषयमें यह उपदेश-निदेश पहले से चला आ रहा था कि वह रूपरहित है और उसका निवास शून्य-आकाश में है ॥१२॥

सोई पुरुष जगत निर्माई । यह उपदेश कीन्ह तेहि माँई ॥१३॥
शून्य समाधि लगावहु जाई । दर्श पुरुष तबहीं प्रगटाई ॥१४॥

शब्दार्थ — माँई = माता । पुरुष = ब्रह्म ।

भावार्थ — उसी पुरुष ने जगत का निर्माण किया है, उन्हें यह उपदेश माता ने किया ॥१३॥ और पुनः कहा कि तुम लोग समाधि लगाकर वृत्ति को शून्य करो, तभी वह ब्रह्म प्रकट होगा और तुम लोगों को उसके दर्शन होंगे ॥१४॥

जेहि प्रकार माया उपदेशा । हींड़त ढूँढत फिरत उदासा ॥१५॥
खोजत पुरुष चहत सुख मूरी । सो नहिं जाने देइहैं सूरी ॥१६॥

शब्दार्थ — हींड़त ढूँढ़त = खोज करते । मूरी = जड़, मूल । सूरी = सूली, पीड़ा ।

भावार्थ — उपर्युक्त माता का उपदेश जिस प्रकार हुआ ब्रह्मादि तीनों उसकी खोज में उदास होकर घूमने लगे ॥१५॥ वे उस कथित ब्रह्म को खोजते हैं और उससे सुख का मूल—मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं; परन्तु वे यह नहीं जानते कि यह भ्रम हमें पीड़ा ही देगा ॥१६॥

साखी—शून्य समाधि लगायके, रहै प्रीति लौलाय ।
झलकी बिंब शरीरकी, मगन भये तिहुँ भाय ॥२३१॥

शब्दार्थ — बिंब = आभा, झलक, छाया ।

भावार्थ — वे शून्य में समाधि लगाकर कल्पित ब्रह्म के प्रेम में ध्यानमग्न हो गये । उन लोगों को अपने ही तन-मन के प्रतिबिम्ब दिखायी दिये और उन्हीं में तीनों भाई प्रसन्न हो गये ॥२३१॥

जब पूँछहिं प्रतिबिंब सो, कहै न कोई भेव ।
मोह अंध व्याकुल भये, भटकी थके त्रिदेव ॥२३२॥

शब्दार्थ — भेव = भेद, मर्म, रहस्य ।

भावार्थ — जब वे उस अपने कल्पित प्रतिबिम्ब से सत्य के विषय में कुछ पूछने लगे तब वह जड़भास होने से कुछ रहस्य वता न सका । अतएव वे तीनों देवता अपने को ठगा हुआ समझ कर और मोह में विवेकहीन तथा व्याकुल होकर चकरा कर हार गये ॥२३२॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-३४६ से ३४८

ब्रह्मा पूछै जननी से, कर जोरे शीश नवाय ।
कौन वर्ण वह पुरुष है, माता कहु समुझाय ॥२३३॥

शब्दार्थ — जननी = माता ।

भावार्थ — ब्रह्माजी अपनी माता गायत्री से हाथ जोड़कर और शिर झुकाकर पूछते हैं कि वह परब्रह्म परमात्मा किस वर्ण (रंग-रूप) का है ? हे माता ! यह हमें समझाकर कहो ॥२३३॥

विशेष — अगली साखी में गायत्री उत्तर देती है—

रेख रूप वै है नहीं, अधर धरी नहिं देह ।
गगन मंडलके मध्यमें, निरखो पुरुष विदेह ॥२३४॥

शब्दार्थ — अधर = अ-धर (धड़रहित) शरीर-रहित । गगन मँडल = ब्रह्माण्ड, खोपड़ी ।

भावार्थ — उस ब्रह्मके चिन्ह-रूप कुछ नहीं हैं । वह शरीर-रहित है, उसने शरीर नहीं धारण किया है । हे वत्स ! ध्यान धारण करके ब्रह्माण्डमण्डल के बीच में उस विदेह पुरुष के दर्शन करो ॥२३४॥

विशेष — उपर्युक्त प्रकार से माया ने कल्पित उपदेश किया; फिर ब्रह्मा-विष्णु महादेव—तीनों ध्यान लगाने चले ।

धरै ध्यान गगन के माँही, लाये बज्र किंवार ।
देखि प्रतिमा आपनी, तीनिऊँ भये निहाल ॥२३५॥

शब्दार्थ — प्रतिमा = प्रतिबिम्ब ।

भावार्थ — बज्रकिवाँड़ लगाकर, एवं सर्व इन्द्रियों को बन्द करके ब्रह्माण्ड में ध्यान लगाये । फिर अपनी मनःकल्पित प्रतिछाया को देखकर, ब्रह्मा-विष्णु-शिव तीनों प्रसन्न हो गये ॥२३५॥

विशेष — ब्रह्मादि ने जो कुछ ध्यान-समाधि में देखा, वह उन लोगों की मान्यता का प्रतिबिम्ब मात्र था; अर्थात भावना मात्र थी । परन्तु उसी अपनी कल्पना रूप दृश्य-मनोभास को ब्रह्म माना ।

ये मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्मज्ञान ।
जेहि बसन्दर जग जरै, सो पुनि उदक समान ॥२३६॥

शब्दार्थ — बसन्दर = वैश्वानर, अग्नि । उदक = जल, पानी ।

भावार्थ — यह मन तो शीतल हो गया, जब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हुआ; परन्तु जिस

ब्रह्मज्ञान की अग्नि में जगत के लोग जलते हैं; वह फिर पानी के समान क्या शीतल हो सकता है ? ॥२३६॥

विशेष — "ये मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्मज्ञान ॥" यह पंक्ति ब्रह्मवादियों पर व्यंग है । 'इनका मन शीतल हो गया, जब इनको ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हुआ ।' इसकी व्यंगता का स्पष्टीकरण निचली पंक्ति में और हो जाता है कि जिस आग में दुनिया जलती है, वह क्या पानी के समान शीतल हो सकता है ? अर्थात नहीं हो सकता ।

इसकी व्यंगता की स्पष्टता में आगे-पीछे की साखियाँ भी हैं । पहले कह आये हैं कि 'देखि प्रतिमा आपनी, तीनिउ भये निहाल ।' आगे कहेंगे कि 'जासो नाता आदि का, बिसरि गया सो ठौर । इत्यादि ।

"जिस ब्रह्मज्ञान की अग्नि में दुनिया जल रही है, वह क्या पानी के तुल्य शीतल हो सकता है ? नहीं हो सकता ।" ऐसा क्यों कहा गया ?

ब्रह्मवादी सुन्दरदास जी कहते हैं—

कवित्त

तोहि में जगत यह तूहूँ है जगत माहि,
तो में अरु जगत में भिन्नता कहाँ रही ।
भूमि ही ते भाजन अनेक विधि नाम रूप,
भाजन विचार देख उहै एक है मही ॥
जल के तरंग फेन बुदबुदा अनेक भाँति,
सोऊ तो विचार एक उहै जल है सही ।
जेते महापुरुष हैं सबको सिद्धान्त एक,
सुन्दर अखिल ब्रह्म अन्त वेद यूँ कही ॥

अर्थात—'तेरे में जगत है और जगत में तू है, तेरे और जगत में भिन्नता कहाँ है ? जैसे मृतका से घड़ा सिकोरा आदि अनेक बर्तन बनते हैं, परन्तु वे सब अन्ततः मृतका ही हैं । जलसे उत्पन्न हुए फेन, बुदबुदा, तरंग इत्यादि विचार कर देखो वही जल ही है । इसी प्रकार जितने ब्रह्मवादी महापुरुष हैं, सबका सिद्धान्त एक है—सारा विश्व—जड़-चेतन ब्रह्म ही है ।'

उपर्युक्त ब्रह्म-जगत की एकता पर लक्ष्य करके यह साखी कही गयी है कि—

ब्रह्म जगत का बीज है, जो नहिं ताको त्याग ।
जगत ब्रह्म में लीन है, कहहु कौन वैराग ॥३२४॥

(कबीर परिचय)

उपर्युक्त भ्रम से दूर होना विवेकियों का कर्तव्य है ।

लोभ मोह काम क्रोध, माया गागरि फूटि ।
कहैं कबीर हरिहूँ मिले, दुग दुग नाहीं छूटि ॥२३७॥

शब्दार्थ — गागरि = घड़ा । दुग दुग = संदेह ।

भावार्थ — निरन्तर वैराग्यादि अभ्यास के बल पर काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा माया के घड़े फूट गये—यानी इनकी निवृत्ति हो गयी और उनके मान्यतानुसार उनको ईश्वर या ब्रह्म भी मिल गया तो भी उनके मनका संदेह बना रहा कि मैं ब्रह्म हूँ कि जीव हूँ कि जगत इत्यादि ॥२३७॥

विशेष — बिना यथार्थ पारख प्राप्त हुए मनुष्य के मनका सब भ्रम नहीं मिट सकता ।

चौपाई — ६६

कला अनंत पावै नहिं पारा । निश्चय बोलै अगम अपारा ॥१॥
पुनि माता सो पूछत भयऊ । जननी केहि विधि जग विटमयऊ ॥२॥

शब्दार्थ — कला = रचनायें; प्रकृति की विचित्रता । विटमयऊ = बनाया ।

भावार्थ — संसार की अनन्त रचनाओं को देखकर मनुष्य उनका पार नहीं पाता है; अतएव उनके रचयिता की कल्पना करके उसे अगम अपार कहकर उसकी महिमा करता है ॥१॥ इसी सिलसिले में ब्रह्मादि ने पुनः माता से पूछा कि हे जननी ! किस प्रकार से जगत का निर्माण हुआ, इसे किसने बनाया ? ॥२॥

कस भये हम कहाँ ते आये । केहि कारण यह जगत उपाये ॥३॥
खोजत खोजत अंत न पाया । माता ढूँढ़त दहुँ दिश धाया ॥४॥
जेहि विधि जीवन होय हमारी । सोई कहहु मैं शरण तुम्हारी ॥५॥

शब्दार्थ — दहुँ दिश = दशों दिशायें ।

भावार्थ — हम कैसे उत्पन्न हुए, कहाँ से आये और किस कारण को लेकर किसने इस जगत का निर्माण कर दिया ? ॥३॥ हे माता ! हम जगतकर्ता को खोजते-ढूँढ़ते दशों दिशाओं में चक्कर लगाये; परन्तु उसका कहीं पता न लगा ॥४॥ हे माता ! हम तुम्हारी शरण में हैं; जिस प्रकार हमारे जीवन का निर्माण हुआ हो, वह कहो ॥५॥

पुत्र प्रऊढ़ युवा जब देखा । ऊपजी कामके कला विशेषा ॥६॥
कहा भोग तुम हमसो ठानो । काहु बात शंका मति मानो ॥७॥

शब्दार्थ — प्रऊढ़ = प्रौढ़, योग्य । काम = इच्छा, परमेश्वर । भोग = अनुभव, ध्यान ।

भावार्थ — माता ने जब देखा कि इनको निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो

रहा है और ये युवा हो जाने से इनकी बुद्धि प्रौढ़ हो गयी है; तब उसके मनमें पुत्रों को दूसरे प्रकार से ईश्वर प्राप्त कराने की इच्छा उत्पन्न हुई ।।६।। और उसने तीनों पुत्रों से कहा कि तुम लोग किसी प्रकार की शंका न मानकर और हमें ही वह ब्रह्म समझकर कि जिसने संसार रचा है हमारा ध्यान-चिंतन करो ।।७।।

विशेष — ऊपर की दो चौपाइयों तथा आगे की चार चौपाइयों का जो सीधा (भौतिक) अर्थ है वह उन्हें पढ़ते ही स्पष्ट हो जाता है। मैने दूसरा आध्यात्मिक अर्थ किया है जिस पर लोगों की सहज दृष्टि नहीं पड़ सकती थी। यहाँ भोगका अर्थ ब्रह्मभोग एवं ब्रह्ममें रमजाना किया गया है। ब्रह्मवाद के मान्यतानुसार ब्रह्म और माया में शक्ति तथा शक्तिमान के रूप में अभिन्नता है। कहते हैं ब्रह्म निर्गुण है अतएव उसका साक्षात्कार होना असंभव है अतएव माया यानी आदि शक्ति जो सगुण है और वस्तुतः ब्रह्मरूप ही है साधक को चाहिये कि उसी की उपासना करे। फिर साधक ब्रह्मको पा लेगा। देवीभागवत में कहा है—

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्यच ।
योऽसौ सहमहं योऽसौ भेदोऽस्तिमतिविभ्रमात् ।।

(श्री राघव साहेब पं० टी०)

"अर्थात (गायत्री नामक माता बोली) मुझ में और चेतन में सदा एकता रहती है। इससे जो मैं हूँ वह ब्रह्म है और ब्रह्म है वह मैं हूँ। जो भेद मालूम होता है वह बुद्धि कृत भ्रम से है।"

भोग करत सकुचाने ब्रह्मा। हरि सो सोई कीन्ह अरंभा ।। ८ ।।
विष्णुहु जब नहिं मानी बैंना। तब शिव भोग करत भौ चैंना ।। ९ ।।
देखि भोग शिव बहु ललचाने। विषय भोग झगरा सो ठानै ।।१०।।
साझा तीहुँ भाई मिलि कीन्हा। लाज मिटाय विषयरस लीन्हा ।।११।।
पूछहिं तीनों कहहु सब मोही। शरण गहेउँ दृढ़ माता तोही ।।१२।।

शब्दार्थ — दृढ़ = निश्चय ।

भावार्थ — ब्रह्मा को सगुण शक्ति की उपासना करने में संकोच लगा, तो विष्णु को वही उपदेश दिया गया ।।८।। परन्तु विष्णु ने भी बात नहीं मानी, तब शिव जी को वह उपदेश जँच गया और वे शक्ति की उपासना में निमग्न हो गये ।।९।। फिर शिव की उपासना पद्धति देखकर ब्रह्मा-विष्णु भी उधर आकृष्ट हुए और तीनों, शक्ति रूपी ब्रह्म विषयक उपासना के लिये विवाद करने लगे ।।१०।। फिर तीनों भाइयों का एक मत हो गया और निर्गुण का हठ छोड़कर तीनों शक्तिकी उपासना में लग गये ।।११।। पुनः तीनों देवता कहने लगे कि हे माता ! हम तुम्हीं को ब्रह्मस्वरूप

समझकर तुम्हारी शरण में हैं हमें वह सारा वृत्तांत सुनाओ जिस प्रकार संसार की उत्पत्ति हुई है ? ॥१२॥

साखी—सुनतहि वाणी पुत्रकी, विषय चाट उपदेश ।
सर्व जलामय रूप है, कही अस्थूल संदेश ॥२३८॥

शब्दार्थ — चाट=चसका, लत, वासना । अस्थूल=खानीजाल, मोटी माया ।

भावार्थ — पुत्रों की वाणी सुनकर माता ने स्थूल शरीर की उत्पत्ति का हाल बताया और उपदेश किया कि बच्चो ! सब जीव विषय-वासना वश नर-नारी के रज-वीर्य से शरीर धारण करते हैं; अतएव सर्व शरीर रजवीर्यमय होने से जलमय हैं ॥२३८

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-२

जीव रूप एक अन्तर वासा । अन्तर ज्योति कीन्ह परकासा ॥१॥
इच्छा रूपि नारि अवतरी । तासु नाम गायत्री धरी ॥२॥

शब्दार्थ — जीवरूप=मनुष्य । नारी=वाणी ।

भावार्थ — [सुख चाहते हुए दुःख मिलते रहने के कारण] मनुष्य के हृदय में एक वासना खड़ी हुई कि हमें सुख-दुख दाता कोई दूसरा अवश्य है । अतः दुःखों से त्राण पाने के लिये ध्यान, योग आदि द्वारा उसकी खोज करने लगा । योग क्रिया-द्वारा श्वासा को ब्रह्माण्ड में रोक कर जब समाधि लगायी, तब तत्त्वों का प्रकाश एवं गर्मी ज्योति रूप से प्रतीत हुई या अन्य प्रकार से कल्पना करके माना कि ईश्वर के दर्शन हो गये और उसी को बाहर प्रकाशित करने लगा (कहने लगा) ॥१॥ फिर इच्छा करके एक वाणी प्रकट की, जिसका नाम गायत्री रखा ॥२॥

विशेष — गायत्री–उपासक, गायत्री को चारों वेदों का सार रूप मानते हैं । गायत्री रूप गागर ही में चारों वेद रूपी सागर भरे हुए हैं, यह उनका मत है । गायत्री मंत्र सहित पीछे ४७ वीं चौपाई में देखें ।

तेहि नारी के पुत्र तीनि भयऊ । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊँ ॥३॥
फिर ब्रह्मैं पूछल महतारी । को तोरपुरुष केकरि तुम नारी ॥४॥
तुम हम हम तुम और न कोई । तुमहि से पुरुष हमें तोरि जोई ॥५॥

शब्दार्थ — पुत्र=दास । पुरुष=मालिक । नारी=दासी ।

भावार्थ — उस गायत्री के मुख्य तीन दास (उपासक) हुए, जिनके नाम ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं ॥३ । रजोगुणी क्रियाशील होने से ब्रह्मा ने गायत्री से पूछा कि तुम्हारा मालिक परम पुरुष परमात्मा, जिसे तुम सिद्ध करती हो, वह कौन है और तुम किसकी दासी हो, अर्थात किसके सिद्ध करने में व्यस्त हो ? ॥४॥

गायत्री ने उत्तर दिया—तुम चैतन्य,हम माया, हम माया, तुम चैतन्य, तीसरा और कोई नहीं है। तुम चैतन्य सरीखे ही वह चैतन्य है (अंतर इतना ही है कि तुम अंतःकरणविशिष्ट जीव हो, और वह मायाविशिष्ट ईश्वर है) अतएव हम तुम्हारे ही भोग-मोक्ष के लिये होने से तुम्हारी ही दासी हैं ।।५।।

विशेष — गायत्री इत्यादि वाणी तो जड़ हैं, वे बोल तो सकती नहीं। वास्तव में यह वेदान्तियों का सिद्धांत है, जो वेद गायत्री या उपनिषदों द्वारा कहते-कहलाते हैं।

साखी—बाप पूत की एकै नारी, एकै माय बियाय।
ऐसा पूत सपूत न देखा, जो बापहिं चीन्हें धाय ॥२३९॥

शब्दार्थ — बाप=ईश्वर। पूत=जीव। नारी=भोग्या, पिण्ड-ब्रह्माण्ड के ऐश्वर्य। माय=माया। धाय=दौड़कर-शीघ्र।

भावार्थ — (माया गायत्री कहती है—) ईश्वर और जीव की भोग्या एक ही माया है, पिण्ड का ऐश्वर्य जीव के लिये और ब्रह्माण्ड का ऐश्वर्य ईश्वर के लिये है, और एक ही माया ने दोनों को जन्म दिया है, अविद्या एवं अंतःकरण-विच्छिन्न जीव है और विराट माया विच्छिन्न ईश्वर है। परन्तु ऐसा योग्य जीव देखने में नहीं आता कि शीघ्र साधन करके, ईश्वर का परिचय प्राप्त करे ।।२३९।।

विषय मूल माया लगी, कीन्हें ताहि प्रऊढ़।
बड़े विवेकी तिहुँ लोकमें, परखहु मतिके मूढ़ ॥२४०॥

शब्दार्थ — प्रऊढ़=प्रौढ़।

भावार्थ — माया तो पंचविषय का मूल स्वरूप है, जिसकी आसक्ति मनुष्यों के मन में लगी है। परन्तु हे संतो ! तीनों लोक में जो बड़े विवेकी कहलाते है वे ब्रह्मादि त्रिदेव उसी को ब्रह्मरूप मान लिये। अतएव परख करके देखो माया के उपदेश में उनकी बुद्धि विमुग्ध हो गयी ।।२४०।।

६४—रज-वीर्यमय सृष्टि और अष्टांगी का महादेव को उपदेश

चौपाई—६७

विषय संदेश दूजे उपदेशा। अस्थूल कला को दिया संदेशा ॥१॥
बीजरूप तेहि भगवाना। विषय विकार जगत अरुझाना ॥२॥

शब्दार्थ — संदेश=आदेश।

भावार्थ — अष्टांगी ने ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर दूसरा स्थूल विषय मोटी माया का उपदेश दिया ।।१।। उसने कहा—परमब्रह्म संसार का बीजरूप है, संसार वीर्य से उत्पन्न हुआ होने से वह विषय विकार में उलझा हुआ है ।।२।।

दृष्टि पसारि देखु जग माहीं । बीजरूप दूसर कछु नाहीं ॥३॥
सोई बीज तुमहिं तन धारी । माया रज हमहीं सो नारी ॥४॥

शब्दार्थ — बीज = ब्रह्म बीज है, खेत में पड़े हुए बीज हैं, मन में वासना बीज है, शरीर में वीर्य है ।

भावार्थ — दृष्टि खोल कर देखो, जगत में सब कुछ वीर्यमय है, सृष्टि का कारण दूसरा कुछ नहीं है ॥३॥ हे पुत्रो ! उसी वीर्य से तुम लोग भी शरीर धारण किये हो । संक्षिप्त में समझो रज-वीर्य से सबकी उत्पत्ति है । वह तुम जैसे पुरुषों का वीर्य है और हम-जैसी नारियों का रज है ॥४॥

तुम सो मूल हमहिं अर्धंगी । मेल परस्पर भये बहु रंगी ॥५॥
नौ नाड़ी चौकला है जोई । छतीस नीर पहिचानहु सोई ॥६॥

शब्दार्थ — मूल = ब्रह्म । नौ नाड़ी = पूहुखा, पयस्वनी, गंधारी, हस्तिनी, अलम्बुषा, गणेशिनी, वारुणी, कुहू तथा संखिनी । चौ कला = चार कलायें—जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय । छत्तीस = पचीस प्रकृति, पंच प्राण, पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा एक मन ।

भावार्थ — मानो तुम्हीं ब्रह्मस्वरूप जगत के मूल हो और हम ब्रह्मका आधे अंग वाली माया हैं । इस प्रकार ब्रह्म और माया तथा नर और नारी के परस्पर सम्बंध से चित्र-विचित्र जगत उत्पन्न हुआ है ॥५॥ इस शरीर को पहचानो । नौ नाड़ी, चार अवस्था, पचीस प्रकृति, पंचप्राण, पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा मन—इन सबको लेकर यह शरीर वीर्यमय ही है ॥६॥

पवन पचासी श्वासा माहीं । कोटि उनचास कला दरशाहीं ॥७॥
श्वासा पेड़ सार सो मूला । विविधि डार पत्र फल फूला ॥८॥

शब्दार्थ — पवन पचासी = पचासीपवन—बहत्तर वायु तथा प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, कृकिल, धनंजय, कूर्म, नाग, देवदत्त, इडा, पिंगला और सुषुम्णा । सार = सोहं । मूला = मूल, नाभि ।

भावार्थ — शरीरस्थ श्वास के घेरे में पचासी वायु हैं; और स्वरोदयभेद जानने वाले उनचास वायुयों का सूक्ष्म अंश शरीर में मान कर उनकी उनचास करोड़ कला का वर्णन करते हैं ॥७॥ शरीर में श्वास एक वृक्ष है और उसकी जड़ नाभि में है तथा उसका सार 'सोऽहम्' है । उसमें ॐ की पाँच मात्राओं तथा छत्तीस वर्णादि की कल्पना करके वाणी की विविध शाखायें, पत्र, पुष्प और फल उत्पन्न हुए । अर्थात वेद, शास्त्र, पुराणादि और उनकी साधनाओं से स्वर्गादि प्राप्ति की कल्पनायें की गयी है ॥८॥

निवृत्ति कला जो चहहू ताता । दृढ़कै गहहु सार मम बाता ॥ ९ ॥
श्वासा उलटि के नाभि समावो । परमहंस के चाल चलावो ॥१०॥

शब्दार्थ — निवृत्ति = छुटकारा, वैराग्य । सार = महत्त्वपूर्ण ।

भावार्थ — हे पुत्रो ! यदि तुम लोग निवृत्ति भाग की साधना करना चाहो तो मेरी महत्त्वपूर्ण बातों को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करो ॥९॥ श्वास को उलटा कर नाभि में वृत्ति लीन करो; और अगजग ब्रह्मरूप समझकर विधि-निषेध-रहित परमहंस की रहनी से स्वयं चलो और दूसरों को वही उपदेश करो ॥१०॥

मूलहि समेटि रहहु अकामा । उलटहु सोहं वोहं रामा ॥११॥
जो प्रवृत्ति कला तोहि भावै । पूर विलास सदा सुख पावै ॥१२॥

शब्दार्थ — मूल = नाभि ।

भावार्थ — पुनः नाभि से वायु को समेट कर ब्रह्माण्ड में ले जाओ और समाधि-मग्न होकर निष्काम हो जाओ । उत्थानकाल में 'सोऽहम्, ॐ तथा राम नाम के जपको बारम्बार फेरते रहो ॥११॥ यदि तुम लोगों को प्रवृत्तिभाग एवं गृहस्थी अच्छी लगती है तो उसका पूर्ण विलास करते हुए सदैव चैन से रहो ॥१२॥

विशेष — माया ने महादेव को सोऽहम्, ब्रह्मा को ॐ तथा विष्णु को राम जपने का उपदेश दिया ।

पंच मकार अमी जीव जानो । मर्म उपदेश हमारी मानो ॥१३॥
दूनहु कला तुम्हारी ताता । खंडित काहे लहहु कहै माता ॥१४॥

शब्दार्थ — पंचमकार = वामाचार के अन्तर्गत वे पाँच वस्तुयें जिनके नाम का प्रथम अक्षर 'म' है— मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन । अमी = अमृत ।

भावार्थ —हमारे रहस्यमयी उपदेशों को मानो मद्यादि पंच मकारों का सेवन जीव के लिये अमृतवत व कल्याणप्रद समझो ॥१३॥ अष्टांगी माता कहती है कि हे पुत्रो ! तुम लोग विशेष कलाधारी होने से प्रवृत्ति तथा निवृत्ति मार्गों के एक साथ अधिकारी हो, अतएव उनमें से एक ही भाग को क्यों अपनाओ । अतः एक साथ दोनों मार्गों का अनुसरण करो ॥१४॥

सुनिगुनि मगन भये त्रिदेवा । विषय भोग जननी के सेवा ॥१५॥
माया मत अरुढ़ जो कीन्हा । तासु लक्ष परगट कै दीन्हा ॥१६॥

शब्दार्थ — आरूढ़ = दृढ़ । लक्ष = लक्षण ।

भावार्थ — माता के उपदेश श्रवण-मनन करके ब्रह्मादि तीनों प्रसन्न हो गये । और वे निश्चय कर लिये कि गृहस्थीरूप में रहकर तथा माता की सेवा करते हुए ज्ञान

प्राप्त करेंगे ॥१५॥ माया ने जो विशेष प्रवृत्ति-मार्ग का उपदेश दृढ़ किया था, उसके लक्षण ब्रह्मादि तीनों में प्रकट हो गये (वे गृहस्थ बनकर रहने लगे) ॥१६॥

लिंग रूप शंकर निर्माई। भग जलहरि सेवा अधिकाई ॥१७॥
भग औ लिंग थापि एक ठौरी। विषय मस्त एकताई बौरी ॥१८॥

शब्दार्थ — जलहरि = जलहरी, शिवलिंग स्थापित करने का अर्घा।

भावार्थ — कहा जाता है शिव ने अपना लिंग रूप उत्पन्न किया और भगाकार जलहरी में स्थापित कर दिया, जिसकी हिन्दू जनता अधिक पूजा करती है ॥१७॥ इस प्रकार भग और लिंग एक जगह स्थापित करके पूजा का आदर्श बिगाड़ दिया गया और इसका उदाहरण लेकर योग तथा भोग की एकता मानकर लोग विषयों में ही उन्मत्त होते हैं ॥१८॥

विशेष — लिंग कहते हैं चिन्ह को। शिवलिंग शिव का स्मरण कराने वाला एक चिन्ह है। उसको भावुक व्यक्तियों को पूजने के लिये उसके चारों ओर अर्घा बना देते हैं जिससे जल इधर-उधर बहकर मन्दिर को खराब न करे। अतएव अर्घा कोई भग नहीं है। उसको पूजने वाले शिव का स्मरण करते हैं न कि भग-लिंग का। परन्तु इसके साथ जो दूषित मान्यता चली आ रही है—ग्रन्थकर्ता उसी का दिग्दर्शन कराये हैं।

प्रथम भोग के कारण नाहा। महादेव तामस औगाहा ॥१९॥

शब्दार्थ — नाहा = पति, अधीश्वर। औगाहा = अवगाहन, छानबीन, ग्रहण करना।

भावार्थ — अधीश्वर महादेवजी का सांसारिक भोगों में प्राथमिक स्थान होने से वे तमोमय मार्ग का ग्रहण किये ॥१९॥

विशेष — संसार में यही हो हल्ला है कि वाम मार्ग व भूत-प्रेत-पिशाच आदि पूजने, सिद्ध करने आदि का मार्ग महादेव ने ही चलाया है। वस्तुतः महादेव तम है और जो वाममार्गादि चलाये हैं वह तमःपूर्ण है।

साखी—एकता ज्ञान विषयमई, भोजन पंच मकार।
प्रगट अघोरी कर्म सो, शंभु कला विस्तार ॥२४१॥

शब्दार्थ — भोजन = ग्रहण, सेवन। अघोरी कर्म = घृणित कर्म।

भावार्थ — योग और भोग की एकता तथा पंच मकारों का सेवन यह प्रत्यक्ष घृणित कर्म हैं। यह सबका विस्तार महादेव की कल्पना से माना जाता है ॥२४१॥

विशेष — कहते हैं महादेव ने ही वाममार्ग, अघोरी पंथ आदि चलाया है।

ब्रह्मा गुप्त त्रिविधि कला, रखहिं निरंतर जनवास।
पंच मकारी शक्ति गुण, शिवके अधिक विश्वास ॥२४२॥

शब्दार्थ — निरंतर = सदा। जनवास = सभा, समाज।

भावार्थ — ब्रह्मा की त्रिगुणात्मक कर्म-काण्डों में विशेषता है, जो सदैव समाज में रखने की वस्तु है और उनके दोष गोपनीय हैं। परन्तु शिव को अधिक विश्वास पंच-मकारसेवन तथा शाक्तमार्ग में है, जो असामाजिक है ॥२४२॥

६५—विष्णु और ब्रह्मा के मार्ग

चौपाई—६८

अंडरूप शिलाके सेवा। हिरण्यगर्भ सो हरिके भेवा ॥१॥
विश्वरूप अंड परधाना। सोई सो अंश शिला उतपाना ॥२॥

शब्दार्थ — अंड = ब्रह्माण्ड; गोला; ॐ। हिरण्यगर्भ = ब्रह्मा (सोने के अण्डे से उत्पन्न होने के कारण); जिसके गर्भ में समस्त देदीप्यमान जगत हो; विष्णु; यहाँ का तात्पर्य विष्णु ही है। भेवा = भेद, रहस्य।

भावार्थ — शालग्राम पत्थर को विश्वभगवान व हिरण्यगर्भ का स्वरूप मान कर उसकी पूजा-सेवा करना यह विष्णुमार्ग का रहस्य है ॥१॥ कहते हैं यह विश्व महान ॐ का स्वरूप है, और उसी के अंश रूप से शालग्राम पत्थर उत्पन्न हुआ है ॥२॥

आपु नारि होय ध्यावहिं ताहीं। भग अकार लिलाटे माहीं ॥३॥
सदा धोय अमृत रस अँचवै। कामिनी रूप दहुँदिश नचवै ॥४॥

शब्दार्थ — लिलाटे = ललाट, मस्तक। कामिनी रूप = अपने को भगवान की पत्नी मानकर भक्ति करने वाले।

भावार्थ — कितने मनुष्य अपने को भगवान की स्त्री मानकर और मस्तक में भगाकार चन्दन लगाकर उस कल्पित पति का ध्यान करते हैं ॥३॥ वे लोग शालग्राम पत्थर को नित्य धोकर और उसे मुक्तिदायी अमृत मानकर पीते हैं; और अपने को भगवान की पत्नी मानकर उसको रिझाने के लिये हर तरफ नाचते और कीर्तन करते घूमते हैं ॥४॥

सात्त्विकभाव विरह विधि नाना। संयम ताहि हेतु परवाना ॥५॥
अंत सबनके एकै मूला। विषय विकार मई जिव भूला ॥६॥

शब्दार्थ — परवाना = प्रमाण, मर्यादा।

भावार्थ — विष्णुमार्ग में सात्त्विक भाव पूर्वक पति परमात्मा को पाने के लिये नाना प्रकार से विरह उत्पन्न करना माना गया है और इसके लिये अनेक संयम की

मर्यादायें बाँधी गयी हैं ॥५॥ अंततः तो इन सभी का मत एक है कि जड़-चेतन सब कुछ परमात्मा का रूप मानकर योगानंद-भोगानंद को समान मान लेना। इस प्रकार सब कुछ ब्रह्म मान कर जीव विषयविकार में भूल गया है ॥६॥

जलसाई नारायण गावै। बहु विधि ब्रह्मा गाइ सुनावै ॥७॥
तासो कमल नाल उतपानी। कमलासन सोइ आपु वखानी ॥८॥

शब्दार्थ — जलसाई = जलशायी, जल में सोने वाला। नारायण = विष्णु। कमलनाल = कमल की डंडी। कमलासन = कमल + आसन, कमल पर आसन।

भावार्थ — ब्रह्मा अनेक प्रकार कथन करके सुनाये हैं कि नारायण विष्णु क्षीर-सागर में शेष पर सोते थे ॥७॥ उनकी नाभि से कमल उत्पन्न हो गया, और ब्रह्मा ने कहा कि उस कमल पर मैंने अपना आसन जमाया ॥८॥

विशेष — कहते हैं इसी समय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ दो दैत्य पैदा हुए जो ब्रह्मा को सताने लगे। तो ब्रह्मा के आग्रह करने पर विष्णु ने पहला मत्स्यावतार धारण करके मधु-कैटभ को मारा और वेदों को बचाया। फिर उन्हीं दो दैत्यों के अस्ति-मांस से पृथ्वी, पहाड़ बने तथा ब्रह्मा ने सृष्टि की। यह अच्छा एक मनोरंजन है।

सोई रूप विधि पुजै पुजावै। सदा शक्ति को ध्यान लगावै ॥ ९ ॥
पंचमकार सो भोजन गुप्ता। शक्तिधर्म अज माया भक्ता ॥१०॥
तीहुँ कलामें रूढ़ प्रचंडी। विद्या बुद्धि अहं घमंडी ॥११॥

शब्दार्थ — अज = ब्रह्मा। रूढ़ = दृढ़, स्थित।

भावार्थ — कमलासन आसीन ब्रह्मा पूजे जाते हैं, और ब्राह्मण लोग विशेषतर उनके इसी रूप की पूजा करने का उपदेश करते हैं ॥९॥ ब्रह्मा भी यज्ञादि में पशु मरवाकर किसी न किसी रूप में पंचमकार के सेवन का व्यवहार करते-कराते रहे और एक प्रकार से शाक्तधर्म के अनुयायी बनकर माया के भक्त बने रहे ॥१०॥ कर्म, उपासना तथा योग इन तीनों कलाओं में ब्रह्मादि तीनों महान दृढ़ थे; और विद्या-बुद्धि के स्वाभिमानी थे (इसीलिये पुराणानुसार परस्पर समय-समय से लड़ा करते थे) ॥११॥

साखी—तीनिहुँ तीन प्रकारसे, विषय सनेही ज्ञान।
विदित किया संसारमें, भटके बहुत अयान ॥२४३॥

शब्दार्थ — अयान = अज्ञानी।

भावार्थ — ब्रह्मादि तीनों कर्म, उपासना तथा योग इस प्रकार तीन मार्ग के अनुगामी थे; परन्तु उनका ज्ञान-विषय-वासना युक्त था, अर्थात वे निर्विषय न थे। वे

अपने विचारों को संसार में प्रचारित किये और उसमें पड़कर कितने ही भोले-भाले भटक गये ॥२४३॥

हरि पतिवर्ता कामिनी, ब्रह्मा पुरुषमय रूप ।
हर एकत्र सिद्धांत है, परे विषयके कूप ॥२४४॥

शब्दार्थ — हरि = विष्णु । हर = महादेव ।

भावार्थ — विष्णु ने अपने भक्तों को कहा कि स्वयं को भगवान की पत्नी मानकर उसी की कामना करो और पतिव्रतावत अनन्य भक्ति करो; ब्रह्मा ने अपने भक्तों को कहा कि अपने को ब्रह्मपुरुष मानकर उपासना करो तथा महादेव ने स्त्री-पुरुष के चिन्ह-एकत्र स्थापित कर अपना विचित्र मार्ग चलाया । इसलिये इन मार्गों का अनुसरण करके लोग विषय के ही कूयें में गिरते हैं ॥२४४॥

विशेष — उक्त आलोचनायें केवल दूषित अंशों को दृष्टि में रख कर ही की गयी है । वस्तुतः कर्म, उपासनादि मार्गों में कितने ही विरक्त पुरुष भी होते हैं और विषय-विरक्ति का विचार भी ।

६६–अष्टांगी का ब्रह्मादि को सावित्री आदि को देना

चौपाई—६८

उपदेशी नारी सो अकेली । तीन पुत्र चेला कोइ चेली ॥१॥
भोग करत तीन पुत्री जाये । सूक्ष्म कारण सोई उपाये ॥२॥

शब्दार्थ — उपदेशी = उपदेश करने वाला गुरु । जाये = उत्पन्न किये ।

भावार्थ — वह अष्टांगी माया ही एक उपदेशक गुरु बनी और ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव ये तीन उसके शिष्य और सावित्री, लक्ष्मी एवं पार्वती शिष्या हुईं ॥१॥ अष्टांगी माया ने मानसभोग से सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती —इन तीन पुत्रियों को जन्म दिया, इस प्रकार इन तीनों को सूक्ष्मवायु रूप कारण से उत्पन्न किया; जैसे–॥२॥

पारवती सो सुषमना नेहा । शंभु विहार करै सो देहा ॥३॥
लक्ष्मी पिंगला अंश उरेही । विष्णु विहार करै सो देही ॥४॥
सावित्री इंगला अधिकारी । ब्रह्मा जासों रचा धमारी ॥५॥

शब्दार्थ — नेहा = वासना, संबंध । उरेही = उरेहना, चित्र बनाना; तात्पर्य में उत्पन्न करना । धमारी = राग रंग ।

भावार्थ — अष्टांगी की सुषुमणा नाड़ी के सम्बन्ध से तमः प्रधान पार्वती उत्पन्न हुई; जिससे जीवन पर्यंत शिव निर्वाह करते रहे ॥३॥ लक्ष्मी, अष्टांगी के पिंगला अंशसे प्रकट हुई जो सतप्रधान हुई, जिसके साथ विष्णु ने जीवन व्यतीत किया ॥४॥ रजोगुणी सावित्री इंगला से प्रकट हुईं जिससे ब्रह्मा जी रागरंग करते रहे ॥५॥

विशेष — उपर्युक्त उत्पत्ति काल्पनिक है। वस्तुतः अष्टांगी व्यक्तिरूप में स्वयं काल्पनिक है। पंचतत्त्व और तीन गुण को अष्टांगी माया कहते हैं। इसी से सतोगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी तीनों प्रकार के प्राणियों की शरीर रचना होती है। और सभी प्राणियों का शरीरनिर्वाह भी उसी माया के क्षेत्र में होता है। इस प्रकार ब्रह्मादि के व्यक्ति रूप माता का सहगामित्व आदि दोष काल्पनिक सिद्ध होते हैं। ये सब प्रसंगों में पुराण मान्यता या लोक मान्यता का चित्रण करके उसका निरास किया गया है। यह ग्रन्थकर्ता का स्वपक्ष नहीं है।

गुरु उपदेश बहुत दृढ़ कीन्हा। त्रिदेवा माथे गहि लीन्हा ॥६॥
तीनि शक्ति सोइ रूप हमारी। सौंपी जानि तुम्हें अधिकारी ॥७॥
प्रथम नाम हमारा गावो। पाछे नाम पुरुष बतलावो ॥८॥

शब्दार्थ — सौंपी=समर्पित की।

भावार्थ — अष्टांगी माता रूप गुरु ने सब प्रकार के उपदेशों को खूब निश्चय करा दिया और ब्रह्मादि ने उसे सादर स्वीकार कर लिया ॥६॥ अष्टांगी ने त्रिदेवों से कहा—सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती ये तीनों शक्तियाँ हमारे ही स्वरूप हैं यानी सुयोग्य नारियाँ हैं; अतएव तुम लोगों को इनके योग्य देखकर मैं इन्हें तुमको समर्पित कर रही हूँ ॥७॥ यह सदा ध्यान रखना कि पहले हमारा नाम कहना तब पीछे पुरुषवर्ग का नाम लेना ॥८॥

विशेष — वस्तुतः पितासे माता का स्थान ऊँचा है; क्योंकि संतान को माता की देन अधिक है। इसीलिये नीति है कि माता-पिता दोनों की उपस्थिति में पहले माताका नमस्कार करना चाहिये। इसी प्रकार यहाँ बताया गया कि पहले 'सीता' तब 'राम' पहले 'माता' तब 'पिता' इत्यादि कहना। शास्त्र में "मातृदेवोभव" पहले कहा तब कहा "पितृदेवो भव।"

त्रिदेवा कर जोरि ठाढ़े। प्रीति परस्पर पल पल बाढ़े ॥ ९ ॥
छोभित माता कीन्ह सहाई। सूक्ष्म गति सब दीन्ह लखाई ॥१०॥
जेता झीना मोटा भेवा। माया प्रसाद शिष्य त्रिदेवा ॥११॥
शिष्य सब दुखको मर्म न जानी। तीनों पुत्र विषय अभिमानी ॥१२॥

शब्दार्थ — छोभित=क्षोभित, क्षोभयुक्त; खलबली या व्याकुलता में पड़ा हुआ। प्रसाद=कृपा।

भावार्थ — ब्रह्मादि तीनों देवता हाथ जोड़कर माता के सामने खड़े हो गये; और उनका पारस्परिक प्रेम क्षण-क्षण बढ़ता गया ॥९॥ वे परस्पर कहने लगे कि हम जिज्ञासा से व्याकुलों को माता ने सहायता दी और शंका की सारी सूक्ष्म बातें बता

दी ॥१०॥ इस प्रकार संसार का जितना मोटा और झीना भेद था माता के कृपाप्रसाद से तीनों देवता शिष्य रूप धारण करके समझ गये ॥११॥ ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि तीनों शिष्यों को माता का उपदेश तो हुआ, परन्तु त्रिदेव यह नहीं जान सके कि यह उपदेश दुःखों से छुटकारा न दिला कर प्रत्युत दुःख देने वाला है। अतएव तीनों पुत्र कर्म, उपासना, योग के आड़ में विषयों के ही अभिमानी बने रहे ॥१२॥

साखी–रचना सूक्षम हेतु जो, दीन्हीं सबै चिन्हाय।
अधिकारी प्रति आपनी, तीन्हों लीन्ह बिलगाय ॥२४५॥

शब्दार्थ — अधिकारी = हकदार; योग्य। बिलगाय = पृथक करना।

भावार्थ — अष्टांगी ने जगत-रचना का सूक्ष्मकारण सब प्रकार से समझा दिया। और तीनों पुत्र अपने योग्यतानुसार उसे पृथक-पृथक रूपमें समझनेकी चेष्टा किये।२४५।

अपनी घरनी राजमें, तीनों करहिं विलास।
कबहुँ परस्पर भटकि भटकि, रचहिं सो विघ्न विनाश ॥२४६॥

शब्दार्थ — घरनी = गृहणी, पत्नी। राज = शासन; सत्ता; संप्रदाय।

भावार्थ — त्रिदेव अपनी-अपनी पत्नी को लेकर अपने-अपने राज्य व सम्प्रदाय में आनन्दमग्न रहने लगे। यदि कभी तीनों परस्पर में टकरा जाते तो एक दूसरे के कार्यों में बाधा या विनाश करने लगते थे ॥२४६॥

विशेष — वस्तुतः तीनों गुण अपने-अपने क्षेत्र में अपना-अपना काम करते हैं और जब तीनों गुण किसी मनुष्य के मन में एकत्र तथा सम हो जाते हैं तो उसके मन में गुणवृत्तिविरोध दुःख उत्पन्न हो जाता है।

६७–अष्टांगी का जगत कारण विषयक उपदेश तथा त्रिदेवों का राज्य बँटवारा

चौपाई—७०

अव्यक्तरूप सहज परकाशी। निर्विकार पूरण अविनाशी ॥१॥
पराक्रम पुरुष सो भारी। सोई कारण इच्छा हम नारी ॥२॥

शब्दार्थ — अव्यक्त = अप्रकट। पराक्रम = सामर्थ्य; विष्णु।

भावार्थ — वह महान सामर्थ्यवान परम पुरुष अप्रकटरूप, सहज, विश्व का प्रकाशक, निर्विकार, सर्वत्र व्याप्त और अविनाशी है; वह और उसकी इच्छासे प्रकट मैं (माया)—बस ये दो ही जगत के कारण हैं ॥१, २॥

हम इच्छा हम सो संसारा। अनंत कलाको पावै पारा ॥३॥
अंश पुरुष तुम तीन उपाये। पुत्री तीनि हमहिं निर्माये। ४।

शब्दार्थ — कला = रचना । उपाये = उत्पन्न हुए ।

भावार्थ — (माया कहती है) मैं ब्रह्म की इच्छा का मूर्तिमान स्वरूप हूँ, अतएव मुझसे ही संसार की उत्पत्ति हुई है । मेरी अनन्त रचनाओं का कौन पार पा सकता है ? ॥३॥ ब्रह्म पुरुष के अंश से तुम तीनों—ब्रह्मा, विष्णु, शंकर उत्पन्न हुए हो; और हमने अपने अंश से सावित्री, लक्ष्मी तथा पार्वती—इन तीन पुत्रियों को रचा है ॥४॥

विशेष — उपर्युक्त जगत का कारण जो ब्रह्म और माया बताया है वह पूर्वपक्ष की बात है । ग्रन्थकर्ता के स्वपक्ष में जगत अनादि है ।

जो झीना सोई मोटा भेवा । एक सम पिंड ब्रह्मांड उरेहा ॥५॥
पिंड ब्रह्मांड राज मिलि करहू । ब्रह्मज्ञान हृदयमों धरहू ॥६॥

शब्दार्थ — उरेहा = बनाया । पिंड = देह, इहलोक; खानी । ब्रह्मांड = अनंतलोक; वाणी ।

भावार्थ — (माया कहती है) जो रहस्य सूक्ष्म (पिण्ड) रचना का है वही स्थूल (ब्रह्माण्ड) रचना का है । मैंने पिण्ड और ब्रह्माण्ड को एक सदृश ही बनाया है ॥५॥ अतएव हे पुत्रो ! तुम तीनों मिलकर इहलोक तथा अनन्तलोकों का या खानी व वाणी का अथवा अर्थ और धर्म का निष्कंटक राज्य करो और ब्रह्मज्ञान को हृदय में धारण करो ॥६॥

राज पाट बाँटि सो दीन्हा । तीनों तीन लोक सो लीन्हा ॥७॥
मृत्युलोक ब्रह्मा अधिकारी । कर्म भूमिका भवजल भारी ॥८॥

शब्दार्थ — पाट = विस्तार, फैलाव, चौड़ाई । सो = अष्टांगी । भवजल = संसार सागर ।

भावार्थ — अष्टांगी माया ने विश्व के राज्य की चौड़ाई का विभाग कर दिया; फिर वे तीनों तीन लोक अलग-अलग स्वीकार कर लिये ॥७॥ मृत्युलोक जो कर्मका क्षेत्र है तथा महान संसार समुद्र है उसके शासक ब्रह्मा हुए ॥८॥

स्वर्गलोक विष्णुहि स्वीकारी । भोग अभोग कर्म विस्तारी ॥ ९ ॥
शून्य पाताल सो शंकर राजा । पुनि प्रतिलोकमें तीहुँ विराजा ॥१०॥

शब्दार्थ — भोग अभोग = भोग-त्याग, दुष्टों का दलन तथा देवताओं की रक्षा का कर्म ।

भावार्थ — विष्णु ने स्वर्ग लोक को स्वीकार किया, और उन्होंने एक साथ भोग-त्याग तथा दया-निर्दयताका कम फैलाकर उपासना मार्ग चलाया ॥९॥ विरल आवादी

वाली सूनसान जगह पाताल को शंकर लेकर उस पर राज करने लगे। इस प्रकार प्रत्येक लोकों में वे रहने लगे ॥१०॥

अपने अपने गुणके राऊ। कहत गुण अवगुण सब दाऊ॥११॥
अवगुण गर्भ घमंड अधिकाई। बिनु पारख बूड़ी चतुराई॥१२॥

शब्दार्थ — गुण = निपुणता, असर, प्रभाव। राऊ = राजा। दाऊ = दावँ, अवसर; छल।

भावार्थ — वे तीनों अपने-अपने प्रभाव एवं गुण के राजा थे। कहते तो उसे गुण हैं; परन्तु वस्तुतः अवसर आने पर सब दुर्गुण के काम करते थे ॥११॥ इस प्रकार अवगुणों के संयुक्त रहकर उसी के विशेष मानमद में चूर्ण थे। अतएव बिना यथार्थ पारख प्राप्त हुए मनुष्य की सारी बुद्धिमता डूब जाती है ॥१२॥

विशेष — देवासुर संग्राम की कथा पुराणों में आती है और इसकी झलक वेदों में भी मिलती है। वस्तुतः हमारे पूर्वज आर्य अपने वर्ग को देवता कहते थे तथा दूसरे वर्गको दैत्य। जैसे मुसलमान अपने को दीनदार तथा गैरमुसलमानों को काफर कहते हैं।

देवता बड़े अच्छे होते थे और दैत्य बुरे यह बात नहीं है। दोनों में अच्छे और बुरे होते थे। परन्तु सबको अपने-अपने वर्ग का पक्षपात होता था। बलि जैसा धर्मात्मा राजा जो तथाकथित दैत्यवंशी था उससे हमारे पूर्वज आर्यश्रेष्ठ महाराज विष्णु ने इसलिये छल किया कि उसका महत्त्व बढ़ता जाता था तथा विष्णु को अपने वर्ग के महालम्पट और क्रूर इन्द्र की राजगद्दी को सुरक्षित रखना था। जिस सुरा, सुन्दरी, मांसभक्षण एवं हिंसा के नाते दैत्यों को हम बुरा कहते हैं उससे देवता नामधारी सब बचे नहीं थे और सब दैत्यनामधारी इससे युक्त नहीं थे।

विष्णु का वृंदा को छलना भी कम आपत्तिजनक नहीं है। इसी प्रकार महादेव तथा ब्रह्मा के भी लचर आचरण पुराणों में प्रसिद्ध हैं। इनको कोई गुण भले कहे परन्तु निष्पक्ष व्यक्ति दोष ही मानेगा।

साखी—औगुण रूप त्रिगुण सबै, नाशक जाके मूल।
विदित कहावै गुण सोई, खानि घनेरी शूल॥२४७॥

शब्दार्थ — त्रिगुण सबै = सत, रज, तम, तीनों गुण वाले तीनों देवता। नाशक = नाश करने वाला; दूर करने वाला। खानि = उत्पत्ति स्थान; ब्रह्म।

भावार्थ — तीनों देवताओं की त्रिगुणात्मक मान्यतायें अवगुण रूप हैं; क्योंकि उनकी जड़ ही शून्य ब्रह्म का सिद्धान्त है जो विवेक को दूर करने वाला है। परन्तु संसार में वही उत्तम कह कर पुकारा जाता है जो वस्तुतः महानकष्टप्रद सबका उत्पत्ति स्थान है ॥२४७॥

विशेष —कहते हैं ब्रह्म ही सबकी उत्पत्ति का कारण है फिर वह मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है ? अतएव ब्रह्मवाद से दूषित जितने मत हैं वे मोक्षार्थियों को उपयुक्त नहीं हैं। मोक्ष के लिये तो यथार्थ पारख एवं स्वरूपज्ञान की आवश्यकता है।

पृथक पृथक अनबनि कला, प्रीति जवै त्रिदोष।
प्रगट करै पद आपनी, नाशक तहाँ सरोष ॥२४८॥

शब्दार्थ — अनबनि = अनेक। त्रिदोष = तीन दोष, सन्निपात; असाध्यभ्रम। नाशक = विवेक को दूर करने वाला। सरोष = जोश पूर्वक, अभिमानपूर्ण।

भावार्थ — तीनों गुणों से उत्पन्न पृथक-पृथक अनेक भाग, अंश एवं निपुणतायें हैं; परन्तु जब तीनों गुण एकत्र होकर जड़-चेतन-ब्रह्म सब एक रूप मानकर विवेक को दूर करने वाले इसी मत को स्वाभिमान पूर्वक एवं जोश के सहित अपना स्वरूप तथा वस्तुतथ्य कहा जाने लगता है, तब असाध्य मानसिक बीमारी हो जाना समझिये ॥२४८॥

६८—तीनों देवताओं के राज्य तथा कर्म, जप और अष्टांगी के अन्तर्धान आदि का वर्णन

चौपाई—७१

राज मगन मन तीनिहुँ भाई। जहाँ जे गुण तीनिहुँ बिलगाई ॥१॥
बहु विधि ब्रह्मा कर्म उपावै। कर्म सुकर्म विष्णु बिलगावै ॥२॥
शंभू शून्य समाधि लगाई। योग ज्ञानके मता चलाई ॥३॥

शब्दार्थ — राज = राज्य, मत, विचार। मगन = मग्न, प्रसन्न। बिलगाई = पृथक करना।

भावार्थ — तीनों भाई उन अपने-अपने मत व विचारों में प्रसन्नतापूर्वक तत्पर हो गये। जहाँ से तीनों के गुणों की पृथकता होती है वह इस प्रकार है—॥१॥ ब्रह्मा अश्वमेध, गोमेध आदि यज्ञपरक अनेक कर्म करने-करवाने लगे। और विष्णु अकर्म, कर्म, सुकर्म आदि का विचार करके शुद्ध उपासना मार्ग का प्रचार करने लगे ॥२॥ और महादेव जी शून्य समाधि में सन्नद्ध हो गये। इस प्रकार वे योग और ज्ञान का मत चलाये ॥३॥

ॐकार ब्रह्मा के जापा। ररं शब्द हरिके परतापा ॥४॥
सोहं शब्द शंभु परवाना। तीनि वाक्य मत एकहि जाना ॥५॥

शब्दार्थ — परवाना = प्रमाण किया, माना। मत = विचार; सिद्धान्त।

भावार्थ — ब्रह्मा का जप ॐ का है; प्रतापवान विष्णु का जप रं रं या 'राम'

है तथा महादेव ने 'सोऽहम्' जप को माना है। इस प्रकार तीनों की उपासनापद्धति के वाक्य तीन हैं; परन्तु उनका मत एक-जड़-चेतन अभिन्न अद्वैत ब्रह्म है ॥४, ५॥

एक बात माया नहिं भाखी। तीनिहुँ पुत्रते गुप्तहिं राखी ॥६॥
धर्मरायके कहै उपभेवा। विषय मगन भये त्रिदेवा ॥७॥

शब्दार्थ —माया= अष्टांगी। धर्मराय = अष्टांगी का पति, तीनों देवताओं के पिता; ब्रह्म। उपभेवा = उपभेव, साधारण या गौण भेद।

भावार्थ —अष्टांगी ने यह एक यथार्थ बात नहीं कही कि "जगत अन्य कारण-सहित अनादि तथा स्वतः है। जड़-चेतन अनादि हैं। जीव के अपने स्वरूप से पृथक ईश्वर-ब्रह्मादि कल्पित हैं, इत्यादि।" यह बात तीनों पुत्रों से छिपा रखी। क्योंकि इसका ज्ञान उसे स्वयं नहीं था ॥६॥ वह तो ब्रह्म की सामान्य चर्चा करती रही कि उसी ने सृष्टि रची है। अतएव तीनों देवता यथार्थ ज्ञान बिना मन के विषयरूप कल्पना को ही ब्रह्म मानकर उसी में मस्त हो गये ॥७॥

विशेष — उपर्युक्त चौपाइयों का यह भी अर्थ हो सकता है कि अष्टांगी ने एक बात पुत्रों से छिपाकर गुप्त रखी और यह नहीं कही कि धर्मराय तुम लोगों के पिता थे। उन्हीं के नाम में ब्रह्म जोड़ कर यह सब प्रपंच मैंने फैलाया है। वस्तुतः जगत अनादि हैं। तुम्हारे पिता तथा मैं तो इस अनादि जगत में किसी माता-पिता से पैदा हुए एक लघु कड़ी हैं इत्यादि।

कहा जाता है धर्मराय और अष्टांगी ये पति-पत्नी थे। त्रिदेवों के पैदा होने के बाद धर्मराय का शरीर छूट चुका था। बच्चों के बड़े होने पर अष्टांगी ने धर्मराय का प्रचार हर्ता-कर्ता के रूप में किया। उसके पीछे त्रिदेवों ने उसे बढ़ाकर ब्रह्मसिद्धान्त के रूप में स्थापित किया, इत्यादि कल्पना है।

जहाँलों त्रिगुणी फाँस बनाई। लिंग पिंड ब्रह्मांड अरुझाई ॥ ८ ॥
राजपाट त्रिदेवा दृढ़ाई। महाशून्य जननी सुर्ति लाई ॥ ९ ॥
रूप प्रगट अस्थूल नशानी। अपने पदमें रही समानी ॥१०॥

शब्दार्थ — त्रिगुणी = सत, रज, तम; कल्पित कर्म, उपासना, योग। लिंग= लक्षण। पिंड = शरीर। ब्रह्मांड = विश्व। सुर्ति = सुरत, ध्यान। अपने पद = ब्रह्मस्थिति।

भावार्थ — (यथार्थ स्वरूपज्ञान से रहित) जहाँ तक कल्पित कर्म, उपासना तथा योग के बंधन बनाये गये हैं; उनके लक्षणों में पिण्ड-ब्रह्माण्ड की समस्त मान्यतायें उलझी हुई हैं ॥८॥ माता ने तीनों देवताओं को भौतिक और धार्मिक राज्य का विस्तार एवं भाग-विभाग बतलाकर महाशून्य ब्रह्म में ध्यानमग्न हो गयी ॥९॥ अतः

कुछ काल में उसका प्रत्यक्ष स्थूल शरीर नष्ट हो गया, और वह अपने मान्यतानुसार शून्य स्वरूप में लीन हो गयी ॥१०॥

गये बिलाय रहे त्रिदेवा । राजपाटको ठानिन भेवा ॥११॥
हरि कमला ब्रह्मा ब्रह्मानी । उमा महेश करहिं रजधानी ॥१२॥

शब्दार्थ — बिलाय = नष्ट । ठानिन = ठानना, करने का दृढ़ निश्चय करना । भेवा = भेव, भेद ।

भावार्थ — माता अष्टांगी का शरीर नष्ट होने के पश्चात ब्रह्मादि तीनों देवता शेष रहे; और वे भौतिक तथा धार्मिक राज्यविस्तार का भेद जानकर उसे सम्हालने का दृढ़ निश्चय किये ॥११॥ विष्णु जी लक्ष्मी को, ब्रह्मा जी सरस्वती को तथा महादेव जी पार्वती को लेकर अपनी-अपनी राजधानीमें रहकर राज्य करने लगे ॥

साखी—अपने अपने राज में, सबै भये परचंड ।
सोई धूम जो मचि रहा, सात दीप नौ खंड ॥२४९॥

शब्दार्थ — राज = राज्य, मान्यता, कर्म, उपासना, योग । परचंड = तीव्र, महान । धूम = हल्ला गुल्ला; प्रसिद्ध ।

भावार्थ — तीनों अपनी मान्यताओं में तीव्र या महान हुए । उसी की प्रसिद्धि आज भी सात द्वीपों तथा नौवों खण्डों में—सर्वत्र है ॥२४९॥

चारि वेद परगट किये, गुण सो तीनहुँ मिलाय ।
सोई श्वास भगवानके, ब्रह्मा रची फैलाय ॥२५०॥

शब्दार्थ — गुण = सत, रज, तम । फैलाय = प्रख्यात ।

भावार्थ — त्रिगुणात्मक कर्मकाण्डमय या कर्म, उपासना, योग (ज्ञान) की मान्यता को लेकर अनेक ऋषियों ने हजारों वर्षों के दौरान में चारों वेदों की रचना की है । उसी को ब्रह्मा ने संकलित करके प्रख्यात किया है । उन्हीं वेदों के विषय में यह मान्यता फैली हुई है कि वे भगवान के श्वास से प्रकट हुए हैं ॥२५०॥

६९—चारों वेद तथा उनकी मान्यताओं का दिग्दर्शन

चौपाई—७२

चारि वेद ब्रह्मा अनुसारी । तामें चारि मता अनुहारी ॥१॥
प्रथमें ऋग् तुरियाके नेहा । नहिं जहाँ थूल अस्थूली देहा ॥२॥
साक्षी हेतु सत्य प्रतिपाला । अवस्था तीन भरममय जाला ॥३॥

शब्दार्थ — अनुसारी = अनुसारक, खोज करने वाला । अनुहारी = अनुहारी, मुखाकृत, चेहरा, स्वरूप । नेहा = प्रेम, सम्बन्ध । थूल = सूक्ष्म । हेतु = कारण ।

भावार्थ — अनेक ऋषियोंद्वारा हजारों वर्षों में रचे गये वेद मंत्रों की ब्रह्मा ने खोज करके उनका चार भागों में सम्पादन किया। उन्होंने उनमें चार सिद्धान्तों का स्वरूप प्रकट किया ॥१॥ प्रथम वेद 'ऋग्' है जो तुरीय अवस्था के ज्ञान के सम्बन्ध में विशेष ओत-प्रोत है। उस ज्ञान में सूक्ष्म-स्थूल किसी देह का अस्तित्त्व नहीं है ॥२॥ वह ब्रह्म सबका साक्षी, कारण, सत्य और विश्व का प्रति पालक है। इस तुरीय स्वरूप ब्रह्मज्ञान की दृष्टि से जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनों अवस्थायें भ्रमजालरूप हैं ॥३॥

विशेष — ऋग्वेदीय ऐतरेय उपनिषद् (३।१।३) में कहा है 'प्रज्ञानंब्रह्म' अर्थात ज्ञान ही ब्रह्म है।

दूजे अथर्वण संश्रित रूपा। शून्य सनेह सो कीन्ह स्वरूपा ॥४॥
वर्णन शून्य जो इस्थिर पौना। सत्र परपंच विदित है जौना ॥५॥

शब्दार्थ — संश्रित = संयुक्त, समवेत सत्ता। शून्य = माया, सुषुप्ति। इस्थिर पौना = माया। परपंच = प्रपंच, जगत।

भावार्थ — दूसरा वेद 'अथर्व' है जो सबका संयुक्त स्वरूप एवं समवेतसत्ता को ब्रह्म मानता है। इस सिद्धान्त का स्वरूप योगमार्ग की सुषुप्ति या शून्य से सम्बन्ध रखता है ॥४॥ इस शून्य का वर्णन स्थिर पौन अर्थात माया के नाम से इस ग्रंथ में यत्र-तत्र हुआ है जिससे इस प्रसिद्ध जगत की उत्पत्ति होना माना है ॥५॥

विशेष — अथर्ववेद इस सामूहिक विश्व को ही ब्रह्म मानता है जो माया से उत्पन्न हुआ माना जाता है।

तीजे यजुर लिंगम अस्नेही। सगुण अवतार विष्णुके देही ॥६॥
असुरन मारि संघारे गोसाँईं। पालन कर्म बधिककी नाईं ॥७॥

शब्दार्थ — लिंगम = सूक्ष्म, स्वप्न। अस्नेही = सम्बन्धवाला। गोसाँईं = ईश्वर।

भावार्थ — तीसरा वेद 'यजुर' है, जो स्वप्नावस्था के उपासनामार्ग से सम्बन्धित है। इसका सिद्धान्त है विष्णुके विग्रह रूप में सगुण चौबीस अवतारों की उपासना ॥६॥ (यह सिद्धान्त मानता है) भगवान विष्णु ने दैत्यों को मार कर उनका संहार किया है। इस सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाय तो विष्णु का पालनकर्म वधिक वत ही है ॥७॥

विशेष — वधिक पहले पशुओं को पालता है; पुनः उनको मारता है। इसी प्रकार कहते हैं विष्णु सबको पालते हैं, फिर वे ही प्रतिकूलों को मारते हैं। जब वे सर्वसमर्थ हैं तब दुष्टों का मन पवित्र क्यों नहीं कर देते ? मारते क्यों हैं ?

अशुभ संघारन पालन शुभके। प्रगटत कारण कारज हरिके ॥८॥
निश्चरकर्म अशुभ वहु भाँती। हरि शुभकर्म परस्पर घाती ॥९॥

शब्दार्थ — अशुभ = पाप । निश्चर = निश + चर, रात—पाप में चलने वाले । घाती = विरुद्ध, नाशक ।

भावार्थ — पाप और पापियों का नाश तथा पुण्य और पुण्यवानों का पालन करना यही विष्णु अवतार रूपी कार्य का प्रत्यक्ष कारण है ।।८।। दुष्ट कर्म में विचरने वाले राक्षसों के कर्म अनेक प्रकार से पापपूर्ण होते हैं और विष्णु का काम है शुभकर्म का स्थापन करना, अतएव ये परस्पर एक-दूसरे के नाशक हैं (इसलिये विष्णु पाप का नाश करके पुण्य की प्रतिष्ठा करते हैं) ।।९।।

जहाँ देखहिं सो कला प्रगटाये । निश्चय कारज हरि होय आये ।।१०।।
सोई अवतार निश्चर संघारी । कहुँ कला थोरे कहुँ कहुँ भारी ।।११।।
यजुर कला सोई परवाना । विष्णु अवतार विदित जग जाना ।।१२।।

शब्दार्थ — कला = अवतार ।

भावार्थ — विष्णु ने जहाँ पापियों को देखा वहाँ अपना अवतार प्रगट कर दिया । अर्थात इस कार्य को बनाने के लिये विष्णु स्वयं आ गये ।।१०।। वही अवतार दैत्यों का नाश किया । विष्णु की ये कलायें मत्स्य, कच्छप, सूकर आदि अवतारों में थोड़ी रहती हैं और राम, कृष्णादि में अधिक रहती हैं ।।११।। यही 'यजुर्वेद' की प्रामाणिक कल्पना है जो जगतप्रसिद्ध विष्णु अवतार हैं ।।१२।।

विशेष — जिसकी सत्तासे अनन्त ब्रह्माण्ड का चलना माना जाय उसको मच्छर सदृश एक-दो व्यक्ति को मारने के लिये अवतार धारण करना पड़े यह उसका कितना बड़ा मखौल है ।

कहते हैं जब पाप अधिक बढ़ जाता है तब अवतार होता है और यह भी बताते हैं कि सत्युग में एकदम पाप नहीं था । चारों चरण पुण्य से पूर्ण था । त्रेता में एक चरण पाप था, द्वापर में दो चरण पाप तथा कलियुग में तीन चरण पाप है । इस दृष्टि से कलियुग में तीन अवतार; द्वापर में दो; त्रेतामें एक होना चाहिये और सत्युग में एक भी अवतार नहीं होना चाहिये । परन्तु कल्पना उसके उलटो है । कहते हैं सत्युग में चार अवतार—मत्स्य, कच्छप, बराह तथा नृसिंह हुए; त्रेता में तीन—वामन, परशुराम और राम हुए; द्वापर में दो—कृष्ण और बुद्ध तथा कलियुग में केवल एक—कल्कि होंगे ।

कहते हैं जहाँ पाप अधिक होता है वहीं भगवान अवतार लेते हैं । और चौबीसों अवतार भारत में होना मानते हैं, फिर भारत को धर्मदेश कैसे कह सकते हैं ? हिंदुओं के ख्याल से विदेश में एक भी अवतार नहीं हुआ है । अतएव विदेश पुण्य से पूर्ण हैं । वहाँ दुष्ट हैं ही नहीं कि उनको मारने के लिये भगवान को आना पड़े । यह तो भारत

ही निशाचरों का देश है जहाँ भगवान को उन्हें मारने के लिये आना पड़ता है। इन सब विचारों से अवतारवाद अपने आप में जर्जरित हैं।

साखी—समय समय प्रगट भये, कला विशेष समान।
यजुर करै वर्णन तेहो, थूल मता परमान ॥२५१॥

शब्दार्थ — समान = साधारण। थूल = सूक्ष्म, स्वप्न, उपासना।

भावार्थ — विष्णु जी समय-समय पर विशेष या साधारण कलाओं के सहित संसार में अवतार लिए—इस प्रकार उपासना मार्ग के मान्यतानुसार यजुर्वेद वर्णन करता है ॥२५१॥

चौथे साम कहै मता, जागृति रूप दृढ़ाय।
कारण जलामय सत्य है, कारज जग समुदाय ॥२५२॥

शब्दार्थ — जागृति रूप = जागृति अवस्था के अभ्यास; चेतन रूप। दृढाय = मजबूती के साथ। **समुदाय** = समूह।

भावार्थ — चौथा वेद 'साम' है वह अपना मत मजबूती के साथ कहता है कि ब्रह्म चेतन रूप है। और जैसे फेन, बुदबुदा, लहर, बादल, बर्फ आदि का वास्तविक कारण जल है और उक्त पदार्थ सब जलमय हैं; वैसे ब्रह्म जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है और संसार का विशाल समुदाय उसका कार्य है। इस प्रकार सारा विश्व ब्रह्ममय है ॥२५२॥

विशेष — सामवेद के उक्त सिद्धान्त का ग्रन्थकार अगली चौपाई में स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं।

७०—सामवेद के सिद्धान्त का स्पष्टीकरण, वर्णव्यवस्था, चित्रगुप्त तथा कर्मजाल का वर्णन

चौपाई—७३

चौथे साम बीज भगवाना। अस्ति भाति प्रियको परवाना ॥१॥
नाम रूप कारज सो उपाधी। कंचन भूषण भेद सो साधी ॥२॥

शब्दार्थ — अस्ति = है, सत्ता, सत्य। भाति = चमक, दीप्ति; ज्ञान। प्रिय = सुखकर; आनन्द। **परवाना** = प्रमाण, सीमा; नियम। **नाम** = संज्ञा। रूप = आकार उपाधी = उपाधि = विशेष लक्षण। **सो** = वे, वेदांतीजन। **साधी** = सिद्ध करने वाला।

भावार्थ — चौथे सामवेद का मत है कि परब्रह्म जगत का बीज या उपादान कारण है। इसमें अस्ति, भाति और प्रिय के नियम से अखिल जगतप्रपंच सच्चिदानन्द रूप है ॥१॥ कार्यपदार्थ के नाम और रूप ये विशेष लक्षण वाले होनेसे मायिक हैं।

और वे सिद्ध करते हैं कि जैसे स्वर्ण और उसके आभूषण में तत्त्वतः कोई भेद नहीं है, वैसे ब्रह्म-जगत में कोई भेद नहीं है ॥२॥

विशेष — सामवेद या अद्वैत वेदान्त का मत है कि संसार के समस्त पदार्थों में अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप—ये पाँच लक्षण हैं। किसी वस्तु का होना अस्ति व सत् है; उसका प्रतीत होना भाति या चिद् है तथा उपयोगी होना प्रिय व आनन्द है। इस प्रकार अस्ति ही सत्, भाति ही चिद् तथा प्रिय ही आनन्द है। ये तीनों लक्षण संसार की सभी वस्तु में हैं। इसलिए सारा विश्व सच्चिदानंद ब्रह्म है। विष में भी अस्ति, भाति के साथ प्रिय भी है; क्योंकि जीवन से घबराया मनुष्य विष खाने में आनन्द मानता है। इस प्रकार विश्व की सभी वस्तुओं में उक्त तीनों लक्षण हैं। परन्तु नाम-रूप व्यभिचारी हैं। अर्थात एक-दूसरे से भिन्न हैं। पट घट नहीं घट पट नहीं। न हम कपड़े की जगह पर घड़ा का उपयोग कर सकते हैं और न घड़े को कपड़ा कहकर पुकार सकते हैं। अतएव नाम-रूप मायिक हैं। परन्तु अस्ति, भाति, प्रियरूप से साराविश्व सच्चिदानन्द ब्रह्म है।

अब इस पर विचार करना चाहिये। संसार की कोई वस्तु अस्ति अर्थात 'सत' रूप में है, ठीक है; परन्तु वह हमें भास होती है तो वह चेतन नहीं। यदि पुस्तक हमें भासती या प्रतीत होती है तो वह चेतन नहीं हो सकती; अपितु मुझे भासती है इसलिए मैं चेतन हूँ। संसार की सभी वस्तु प्रिय व आनन्द हैं तो क्लेश कहाँ है ? फिर समस्त शास्त्रों में संसार को दुःखरूप क्यों कहा है ? गीताकार भी कहते हैं—"दुःखालयम् अशाश्वतम्" संसार दुःखपूर्ण और नाशवान है। जब स्वर्ण-भूषण न्याय जगत-ब्रह्म एक है तो जड़-चेतन का भिन्न विवेक खो गया और अविद्या की स्थिति आ गयी। फिर ब्रह्म भी स्वर्णके समान विकारी हुआ। इसके अतिरिक्त ब्रह्मवाद में जगतका अस्तित्व ही नहीं मानते तब जगतके पदार्थों स्वर्ण-भूषण, घट-मृतका आदि मिथ्या वस्तुओंका प्रमाण देकर ब्रह्मको सिद्ध करना भी अनुचित है। जलतरंग न्याय जगत-ब्रह्म एक है—यह मान्यता का सिद्धान्त भौतिकवाद का शुद्ध भाई बिरादर है।

घट मृतिका दृष्टांत दिखावै। कारण नाम रूप समुझावै ॥३॥
सत्य हेतु कारज भ्रमजाला। सामवेदके यही हवाला ॥४॥

शब्दार्थ — घट=घड़ा। मृतका=मिट्टी। दृष्टांत=उदाहरण। हेतु=कारण। हवाला=पता, निशान, उल्लेख, वर्णन; कथन।

भावार्थ — अद्वैतवादी लोग मिट्टी और घट का उदाहरण देकर यह बतलाते हैं कि जैसे मिट्टी से घड़ा, सिकोरा, नाँद आदि बने हुए वस्तुयें मिट्टी रूप हैं; इसी प्रकार अभिन्न निमित्तोपादान कारणब्रह्म से बना नाम रूपात्मक विश्व ब्रह्मरूप ही है ॥३॥ जगत का कारण ब्रह्म सत्य है और जगत कार्यमय भ्रमजालमात्र है; सामवेद का यही कथन है ॥४॥

पुनि प्रति वेद कर्म दृढ़ कीन्हा। धर्म योगके मत लिखि दीन्हा ॥५॥
बहु विधि कर्म भरम फैलाई। चारि वर्णके चाल चलाई ॥६॥

शब्दार्थ — धर्म = उपासना। चाल = रीति, रवाज; ढंग, प्रकार; आचरण।

भावार्थ — पुनः प्रत्येक वेद में कर्मकाण्ड का अत्यंत विस्तारपूर्वक मजबूती से वर्णन किया गया है और उपासना तथा योग का मत भी यत्र-तत्र लिखा गया है ॥५॥ वेदों में बहुतायत यज्ञ कर्मों के जाल का ही भ्रम फैलाया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णों का विभाजन करके उनकी रीति भी चलायी गयी है ॥६॥

विशेष —मूलमें कर्म के साथ भ्रम शब्द जोड़ा गया है। अमुक यज्ञ से पुत्र की प्राप्ति होगी, अमुक यज्ञ से शत्रु पर विजय होगी, अमुक यज्ञ से स्वर्ग मिलेगा यह सब भ्रम का ही फैलाना है। यज्ञ करवाना कुछ लोगों का निर्वाहधंधा है उससे पुत्रादि का मिलना यजमान के लिये एक मिथ्या प्रलोभन है।

हाँ, यज्ञ के आधार में कुछ ज्ञान तथा सदाचरण की शिक्षा दी जाय तो उतना जनकल्याण के लिये ठीक है। शेष मेवे, घी तथा अनेक मांगलिक द्रव्यों को आग में फूंक देना भ्रममूलक तथा आर्थिक दृष्टि से अहितकर है। प्रकृति वातावरण को स्वयं शुद्ध करती है। तुम घर-द्वार साफ रखो तथा अपने घर में गूगर-अगरबत्ती आदि थोड़ा जलाया करो इतना काफी है। ढेरों घी-मेवे फूंकना भोलापन है।

मुख के कर्म आपु गहि लीन्हा। बाहु कर्म क्षत्री सो कीन्हा ॥७॥
कर्म चातुरी वैश्य बखानी। पगुके कर्म शूद्र उतपानी ॥८॥

शब्दार्थ — आपु = ब्राह्मण। चातुरी = व्यापार।

भावार्थ — ब्राह्मणों ने मुख के कर्म स्वयं स्वीकार किया; तथा हाथ के कर्म क्षत्रियों के सुपुर्द किया ॥७॥ व्यापारकर्म वैश्यों को बताया; और पैर के कर्म शूद्रों को करने को कहा ॥८॥

विशेष — ऋग्वेद संहिता के पुरुष-सूक्तों में एक मंत्र आया है जिसमें विराट पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, हाथसे क्षत्रिय, जंघासे वैश्य तथा पैरसे शूद्र का पैदा होना माना है।[1] वह एक आलंकारिक कथन है। उसका तात्विक अर्थ इस प्रकार हो सकता है—

विराट के मुख से ब्राह्मण, हाथ से क्षत्रिय, पेट से वैश्य तथा पैर से शूद्र होने का अभिप्राय वैज्ञानिक है। मुख के लक्षणवाला मनुष्य ब्राह्मण, हाथ के लक्षण वाला क्षत्रिय, पेट के लक्षण वाला वैश्य तथा पैर के लक्षण वाला शूद्र है। हम शरीर भर में कपड़ा पहनते हैं, किन्तु मुख में नहीं। फिर भी मुख शरीर के अन्य अंगों से अधिक चमकता है; इस प्रकार तपस्वी होकर जो प्रसन्न रहे। मुख में तथा उसके आस पास ही जीभ,

---

१. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ (ऋग्वेद १०।९०।१२)

आँख, नाक, कान, मस्तिष्क आदि ज्ञान के साधन तथा ज्ञान के भंडार हैं; इस प्रकार जो ज्ञान का भण्डार हो। मुख से ही ज्ञान दान होता है; अतः जो ज्ञानदाता हो। मुख खाता है केवल अपने ही लिये नहीं, अपितु सारे शरीर के लिये, अतएव जो परोपकारी हो। और मुखस्थलीय सिर ही दूसरे लोगों के सामने शिष्टाचार में झुकता है; इसलिये जो विनम्र हो—वह ब्राह्मण है। जो स्वाभाविक तपस्वी, ज्ञान भंडार, ज्ञानदाता, परोपकारी तथा विनम्र हो—वह ब्राह्मण है।

कोई हमारे ऊपर चोट पहुँचाये या कीड़े आदि काटे तो हमारा हाथ तुरन्त रक्षा के लिये उठ पड़ता है। हाथ ही दुष्ट कुत्ते आदि जन्तुओं को लाठी से भगा देता है; इस प्रकार जो दुष्टों का दमन कर्ता तथा समाज रक्षक हो। हाथ से सेवा की जाती है; अतः जो पराये की सेवा करता हो। हाथ से ही दान किया जाता है, अतः जो दाता हो। हाथ दूसरों के अभिवादन में उठता है, अतः जो विनयी हो—वह क्षत्रिय है।

जो कुछ खाओ उन सबका संग्रह पेट कर लेता है, वह बड़ा संग्रही है; परन्तु वह वेईमान नहीं है। वह संग्रह किये हुए समस्त खाद्य सामग्री का रस बनाकर शरीर के समस्त अंगों में भेज देता है, साथ-साथ स्वयं भी पलता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति देश-देशान्तर से जीवन-धारणोपयोगी वस्तुओं का संग्रह करता है और उन्हें उचित मुनाफा पर वेचकर समाज का हित करता है तथा उसी में स्वयं भी जीवन रक्षा करता है—वही वैश्य है।

सारा शरीर पैर पर स्थित है। पैर न हो तो शरीर कहाँ स्थिर रहे। इसी प्रकार सारा समाज कर्मठों पर स्थिर है। अतएव जो समाज की सेवा करता है—वह शूद्र है। शूद्र का मतलब कोई घटिया कोटि का प्राणी नहीं, अपितु समाज का आधार स्तम्भ है।

गीता (१८।४१-४४) में भी चारों वर्णों के विषय में इस प्रकार वर्णन है—

ब्राह्मण क्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के कर्म, उनके स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के अनुसार पृथक-पृथक हैं ॥४१॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥४२॥

शांति, इन्द्रिय संयम, तपस्या, पवित्रता, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान तथा धर्म में श्रद्धा—ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं ॥४२॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥४३॥

वीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध से न भागना, दान करना तथा नेतृत्व—ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं।

कृषिगौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचरियात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४॥

खेती, गौपालन तथा व्यापार वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं तथा शूद्रों के स्वाभाविक कर्म हैं तीनों वर्णों की सेवा करना।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध हुआ कि जिसमें स्वाभाविक ब्राह्मणकर्म हों वह ब्राह्मण है तथा स्वाभाविक क्षत्रियकर्म वाला क्षत्रिय, वैश्यकर्म वाला वैश्य तथा शूद्रकर्मवाला शूद्र है। इस नीति से ब्राह्मण का लड़का शूद्र तथा शूद्र का लड़का भी अपने कर्म से ब्राह्मण हो सकता है। इस सिद्धान्त की पुष्टि भागवत के निम्न श्लोक से हो जाता है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ (भागवत ७।११।३५)

अर्थात—जिस प्रकार के वर्ण को बतलाने वाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्ण वाले में भी मिले, तो उसे भी उसी वर्ण का समझना चाहिये।

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि वर्णों का विभाजन हो तो वह ठीक है। उसमें न अहमहीनत्व भावना की गुंजाइश है और न अकारण किसी को अछूत कहने की। परन्तु यह दृष्टि न रहकर वर्तमान में वर्णव्यवस्था हिंदू समाज का एक कोढ़ मात्र है।

चारि वर्णमें रचना लीन्हा। चित्रगुप्त एक परगट कीन्हा ॥९॥
लेखा गुप्त कर्म पटवारी। लिखै हिसाब सँवार सँवारी ॥१०

शब्दार्थ — चित्रगुप्त = यम के दरबार के लेखक जो सब मनुष्यों का पाप-पुण्य लिखा करते है और जो कायस्थ जाति के आदि पुरुष माने जाते हैं। लेखा = हिसाब।

भावार्थ — चारों वर्णों के अथवा प्राणी मात्र के कर्मों के लेखा-जोखा रखने के लिये एक चित्रगुप्त की कल्पना की गयी जो कल्पित यमराज के मुख्य क्लर्क माने जाते हैं ॥९॥ वह चित्रगुप्त नाम का पटवारी प्राणियों के गुप्त कर्मों को विवरणपूर्वक लिख कर उनका हिसाब-किताब रखता है ॥१०॥

विशेष — यम कहते हैं मन या वासना को। मनुष्य जो कर्म करता है उनका चित्र या संस्कार गुप्त रूप से मन में स्वयं छप जाता है। अतएव यह गुप्त कर्मसंस्कार ही चित्रगुप्त है।

और अनेक जो कर्म लगाई। जोई कर्म सोई खोम कहाई ॥११॥
और अनेकनि दुर्मति लाई। जाति भिन्न भिन्न बिलगाई ॥१२॥

शब्दार्थ — खोम = झुंड; जाति, कौम।

भावार्थ — और अनेक कर्मों में से जिस कर्म में जो व्यक्ति लगा उसकी एक अलग समूह या जाति बन गयी ॥११॥ उसमें अनेक दुर्बुद्धियाँ उत्पन्न की गयीं और जिससे एक जाति में भी भिन्न-भिन्न जातियाँ निकली ॥१२॥

विशेष — लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई, लोहा, सोना, कपड़ा तथा सब्जी के काम करने वाले क्रमशः लोहार, सोनार, दर्जी तथा मुराव कहलाये। परन्तु इतना तक ही नहीं रहा। एक-एक जाति में भी अनेक जातियाँ बनीं और उनमें छोटे-बड़े की दीवार खड़ी की गयी, जिनका आधार मिथ्या दंभ के अतिरिक्त कुछ नहीं है। ब्राह्मणों में भी सरवरिया (उत्तम) ब्राह्मण और धाकर (मध्यम) ब्राह्मण कहलाने वाले हैं; परन्तु यह कोई बात नहीं है कि सरवरिया नामधारी सब उत्तम आचरण वाले हों तथा धाकर नामधारी मध्यम। कितने सरवरिया नामधारी शराब, मांस, व्यभिचार में लिप्त हैं तथा धाकर उज्ज्वलचरित्र के हैं। अतएव जाति प्रतिजाति बनकर हिंदू-समाज तहसनहस हो गया।

साखी— उत्तम मध्यम कर्म ले, रचिया वर्ण बियाध।
राखा सबै अरुझायके, अपनी अपनी बाँध ॥२५३॥

शब्दार्थ — बियाध = व्याधि, रोग। बाँध = मर्यादा।

भावार्थ — कुछ लोगों द्वारा उत्तम और मध्यम कर्मों के आधार पर वर्ण-व्यवस्था रूपी रोग तैयार किया गया; और सब अपने वर्णकर्मों की मर्यादा के अनुसार चलो ऐसा कहकर सबको भ्रम तथा विवशता में उलझा रखा गया ॥२५३॥

विशेष — चारों वर्णों के जो कर्म बतलाये गये, उनमें से जिनकर्मों से जो व्यक्ति युक्त हो उसको उस वर्ण वाला मानना चाहिये। परन्तु ऐसा न करके यह किया गया कि एक शूद्र का लड़का तप नहीं कर सकता। क्योंकि उसे ऐसा ऊँचा कर्म करने का अधिकार नहीं है। यह अधिकार तथाकथित भगवान के मूड़ से पैदा हुए केवल ब्राह्मणों का ही है। शूद्र का लड़का पढ़ नहीं सकता, वेद मंत्रों को पढ़ ले तो उसकी आँखें तक फोड़ देने की बात बतायी गयी। कहा गया तुम शूद्र हो, तुम्हारा कर्म मध्यम है, तुम उत्तम कर्म नहीं कर सकते; अतएव अपनी मर्यादा में रहो, नहीं तो नरक में जाओगे। इस प्रकार मानवता के विकास का मार्ग ही रोक दिया गया। ऐसी वर्ण-व्यवस्था रोग नहीं तो क्या है ?

कहना चाहिये कि ब्राह्मण का लड़का भी शूद्रकर्म करे तो वह शूद्र माना जाय और शूद्र का लड़का ब्राह्मणकर्म करे तो वह ब्राह्मण माना जाय। यद्यपि ऐसी आवाज उठाने वाले महापुरुष ब्राह्मणों में ही हुए जिसकी झलक वेद, उपनिषद, पुराण, गीता सर्वत्र मिलती है परन्तु इन उदारचेता पुरुषों की आवाज स्वार्थी तथा अहंकारी तत्त्वों ने दबा दी; क्योंकि ऐसे तत्त्वों का ही सदैव बोलबाला रहा है।

कर्म कमाई सबन पर, राज दाम परवान।
जन्मत मरत न छोड़हीं, विविधि कर्मके खान ॥२५४॥

शब्दार्थ -- राजदाम = कर, लगान, दक्षिणा। परवान = प्रमाण, सीमा। खान = भंडार।

भावार्थ — जैसे कमाई हुई वस्तुओं पर सरकार टैक्स या लगान लेती है, वैसे हर सम्प्रदाय में कुछ बुद्धिमान लोग होते हैं वे मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों के अवसर पर दक्षिणा की सीमा बाँध रखते हैं। वह दक्षिणा वे मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक वसूल करते हैं। उसके लिये उन्होंने जन्मकर्म, संस्कार कर्म, विवाहकर्म, प्रेतकर्म, श्राद्धकर्म, मंगलकर्म आदि कर्मों का एक भंडार ही बना लिया है ॥२५४॥

विशेष — उपर्युक्त साखी का गौण अर्थ यह भी माना जा सकता है कि "कर्म की कमाई सबको भोगने पड़ते हैं। क्योंकि कर्मफलभोग की वासना द्वारा एक सीमा निर्धारित हो जाती है। वे जन्म से मृत्यु तक तथा मरणान्तर भी जीव का साथ तब तक नहीं छोड़ते जब तक फल भोगने का अवसर नहीं पड़ता। वस्तुतः मनुष्य शरीर कर्मों का भंडार है और यहीं से कर्मों की समाप्ति भी की जा सकती है।"

७१–कर्मजाल का दिग्दर्शन

चौपाई—७४

नित्यप्रति सबहीं कर्म दृढ़ावै। विषय विकार जगत अरुझावै ॥१॥
राजदंड दाम भरि लेई। जन्मत मरत न छूटी देई ॥२॥

शब्दार्थ — राजदंड = दक्षिणा। भरिलेई = पूरा ले लेते हैं।

भावार्थ — कर्मकाण्डी लोग सदैव सबको भ्रमपूर्ण कर्म करने पर जोर डालते हैं; और उसका फल लौकिक-पारलौकिक विषयसुख बतलाकर भवबंधनों में फँसा देते हैं ॥१॥ वे अपने यजमानों से भरपूर दक्षिणा लेने के लिये प्रयत्न करते हैं। उन्हें जन्म से मृत्यु तक छुट्टी नहीं देते हैं ॥२॥

बहुविधि उपजा खेत करावै। राज काज अपना फैलावै ॥३॥
जन्म कर्म शुभ सगुन सगाई। वर्णभ्रष्ट बहु कर्म लगाई ॥४॥

शब्दार्थ — खेत = खेती, कर्मकाण्ड का प्रचार। सगाई = मँगनी, विवाह का ठहराव; विवाह। सगुन = शकुन, शुभलक्षण।

भावार्थ — कर्मकाण्डी लोग अनेक प्रकार से कर्मकाण्ड का प्रचार कर-कराकर धनोपार्जन करते हैं और अपनी यजमानी व सम्प्रदाय का विस्तार करते हैं ॥३॥ बच्चे के जन्म पर जन्मकर्म करवाना, समय-समय यजमानों को शुभ शकुन दिखाना,

सगाई या विवाह कर्म करवाना, किसी को वर्णभ्रष्ट व जातिभ्रष्ट बतलाकर उसके प्रायश्चित के लिये गलत तरीके से धन वंचन करना ॥४॥

ग्रहण अमावस पूर्णिमा गावै । दक्षिणा दान जेवनार बनावै ॥५॥
देवी देवता भूत पुजावै । होम यज्ञ जीव वधहि करावै ॥६॥

शब्दार्थ — जेवनार = भोजन; निमंत्रण ।

भावार्थ — अमावस्या तथा पूर्णिमा को सूर्य और चन्द्रग्रहण होने पर सब को दोष लगना बतलाकर दक्षिणा व दान लेना, यजमानों के यहाँ जेवनार बनाकर कल्पित प्रेतों को चढ़ाना ॥५॥ कल्पित देवी, देवता और भूत पुजवाकर और हवन तथा यज्ञ कराना, और जीव वध तक करा देना ॥६॥

पिंड श्राद्ध मृतुकके नाऊँ । उपजा अनबनि कर्म के गाऊँ ॥७॥
कर्मगाँव जे बसै न कोई । तेहिपर राजा आकुल होई ॥८॥

शब्दार्थ — अनबनि = अनेक । गाऊँ = ग्राम, बस्ती, समूह, सम्प्रदाय । राजा = कर्मकाण्डी ।

भावार्थ — मरे हुए लोगों के नाम पर पिण्डदान और श्राद्ध करवाना । इस प्रकार कर्म के अनेक रूप उत्पन्न होकर उनका एक बहुत बड़ा समूह खड़ा हो गया है ॥७॥ जो व्यक्ति उपर्युक्त कर्मों में से कुछ नहीं करना चाहे उसके ऊपर कर्मकाण्डी लोग क्रोधातुर हो जाते हैं ॥८॥

त्रिविधि भाँति कर्मके शोभा । यज्ञ करहिं देई बहु लोभा ॥ ९ ॥
लुब्धहि जीव न जानहिं लासा । कर्मके नाना भाँति तमाशा ॥१०॥

शब्दार्थ — त्रिविधि = तीन प्रकार का, सत, रज, तम युक्त ।

भावार्थ — सारे कर्मकाण्डों की शोभा त्रिगुणात्मक तथा प्रपंचपूर्ण है । वे लोग यज्ञ करने का उपदेश देते हैं और उसके फल में पुत्र, धन, निरोगयता, विजय, यश, स्वर्गादि-प्राप्ति के बहुत से लालच दिखलाते हैं ॥९॥ साधारण मनुष्य उसी में विमोहित हो जाते हैं, वे यह नहीं जानते कि ये लालचों का ढेर फँसाने के लिये एक लासा है । इस प्रकार कर्मकाण्ड के नाना प्रकार के तमाशा हैं ॥१०॥

त्रिगुण जेवरी कर्म बनाई । महिमा महातम में अरुझाई ॥११॥
सो जेवरि डारि गरमाहीं । चहहिं उबार जीव मुढ़ताहीं ॥१२॥

शब्दार्थ — जेवरी = रस्सी, बंधन ।

भावार्थ — उन्होंने त्रिगुणात्मक कर्मकाण्डों की रस्सी बनाकर उसी के महिमा-माहात्म्य में लोगों को फँसा रखा है ॥११॥ उसी कर्मरस्सी को अपने गले में फँसा कर जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहते हैं, वे भोले हैं ॥१२॥

धीमर चारा लोभ देखावै। बनशी मर्म सो मीन न पावै ॥१३॥
धाई गहहिं पाछे पछताई। तलफहिं बहुविधि छूट न जाई ॥१४॥

शब्दार्थ — धीमर = मछली मारने वाला। **चारा** = मछली फँसाने के लिये बंसी (कँटिया) में लगाया जाने वाला गीला आटा आदि। **बनशी** = बंसी, मछली फँसाने की काँटिया। **मीन** = मछली।

भावार्थ — धीमर बंसी में चारा लगाकर मछली को लालच देता है। मछली को यह रहस्य मालूम नहीं कि चारा के भीतर हमारे फँसने का काँटा है ॥१३॥ अतएव वह दौड़कर उसे मुख में निगल जाती है और काँटा उसके गले में फँस जाने से वह पीछे पश्चाताप करती है। वह अनेक प्रकार से दुःख में तड़फड़ाती है, परन्तु उससे छूटती नहीं। इसी प्रकार जीव विषय के लालच वश कर्म की बंसी में फँस कर दुःख पाता है ॥१४॥

साखी—बहु कर्महि अरुझाय जिव, डोरी अपने हाथ।
नाच नचावै यम सदा, कारण कारज साथ ॥२५५॥

शब्दार्थ — यम = मन, वासना। **कारण** = लोभ। **कारज** = कार्य, नाच, कर्म।

भावार्थ — मनुष्य के मनकी विषयासक्ति रूपी वासना उसे अनेक कर्मों में फँसा कर उसे सर्वदा अनेक नाचों में नचाती है और उसकी रस्सी अपने हाथों में रखती है। नाच रूपी कार्य का कारण विषय लोभ है, वह सदैव जीव के साथ रहता है ॥२५५॥

चहहिं जो निस्तरनको, इन्ह कर्मन छुटकाय।
तेहि तीहुँ फाँस ले धावहीं, बंदी देहिं दृढ़ाय ॥२५६॥

शब्दार्थ — निस्तरन = निस्तरना, छुटकारा पाना। **बंदी** = कैद।

भावार्थ — जो व्यक्ति उपर्युक्त बंधनदायी कर्मप्रपंचों से छूटकर संसार से निवृत्ति चाहते हैं, उनको अनेक भ्रामक लोग त्रिगुणात्मक कर्मबंधन लेकर फँसाने दौड़ते हैं और उनके मन में कर्मों का बंधन दृढ़ करके उन्हें बंदी बना देते हैं ॥२५६॥

चौपाई—७५

जो कोई जीव इन्हते अकुलाना। चाहै अपना निज कल्याना ॥१॥
बहु प्रकार तेहि सासत देई। जीवन धन दोऊ हरि लेई ॥२॥

शब्दार्थ — सासत = कष्ट, दुःख।

भावार्थ — यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त अत्यन्त स्थूल कर्मों से घबरा कर और उनका त्याग कर अपना कल्याण चाहता है तो भूले लोग उसे बड़ा कष्ट देते हैं और उसके जीवन तथा धनको छीन लेना चाहते हैं ॥१,२॥

संयम जतन दृढ़ बरत करावै । जहाँ तहाँ तीरथ दौरावै ॥३॥
कष्ट अनल तन देवै वासा । ब्रह्मचर्य आश्रम परकाशा ॥४॥

शब्दार्थ — यतन = साधना । परकाशा = प्रकाश करना, कथन करना ।

भावार्थ — विचाररहित संयम, साधना तथा कई दिन के उपवास आदि रूप कठोर व्रत करवाते हैं और पापनाश, स्वर्ग या मोक्ष की आशा देकर यत्र-तत्र तीर्थों में भटकाते हैं ॥३॥ किसी को कायाकष्ट करने से मोक्ष बतलाकर जलशयन या अग्नि-तापन आदि का उपदेश देते हैं । कितने तो ब्रह्मचर्याश्रम का विधान बतलाकर बलात ब्रह्मचारी बनने का उपदेश करते हैं ॥४॥

मैथुन अष्ट जितावन लागे । विरह नारि दुख सहहिं अभागे ॥५॥
लिखहिं चक्र करहिं तेहि सेवा । दुसह कलेश फले सो मेवा ॥६॥

शब्दार्थ — विरह = वियोग । चक्र = भोजपत्र आदि पर चिन्ह-चक्र लिखकर उसमें देवताओं का निवास मानना ।

भावार्थ — बलात किसी से अष्टमैथुनों को जिताने का प्रयास कराते हैं; और वे हृदय-मन से विषयी अभागे लोग स्त्री-वियोग-जनित पीड़ा सहते हैं ॥५॥ कितने भोज पत्रादि पर चिन्ह-चक्र आदि लिख कर और उसमें देवी-देवताओं का निवास मानकर उनकी पूजा-सेवा करते हैं । वे कहते हैं कि इस साधनाजनित असहकष्ट का फल स्वर्गादि प्राप्ति रूप अमृतफल मिलेगा ॥६॥

विशेष — ग्रंथकार का मंतव्य यह नहीं है कि संयम, ब्रह्मचर्यादिकापालन करना गलत है । इस ग्रंथ में वे स्वयं सर्वत्र विषय निरास तथा ब्रह्मचर्यप्रकाश ही किये हैं और ग्रंथकार स्वयं आजीवन ब्रह्मचारी, त्यागी एवं विरक्त संत रहे हैं । उनका अर्थ यह है कि यह सब अज्ञानपूर्वक, अस्वाभाविक तथा गलत ढंग से नहीं होना चाहिये ।

सो बंदी अजके विस्तारा । बंधुवन कष्ट अनेक प्रकारा ॥७॥
ग्रासै लोभ नहिं जानहिं शूला । बहुविधि कर्मबाण यम हूला ॥८॥

शबदार्थ —बंदी = कैद; कारावास; बाँधना । अज = ब्रह्मा, रजोगुण । यम = वासना । हूला = बेधना ।

भावार्थ —उपर्युक्त बंधन रजोगुण का विस्तार है । इसमें जो व्यक्ति बँधे हैं उन्हें अनेक दुःख है ॥७॥ लोगों को भ्रमकृत लोभ ढँक रखा है, उसके परिणाम में होने वाले कष्ट को वे नहीं समझ पाते । इस प्रकार मनुष्य के मन ने ही उसे अनेक कर्मबाणों से वेध डाला है ॥८॥

घायल घूमहिं घाव अनेका । आगिल आशा करहिं विवेका ॥ ९ ॥
पालहिं जहर चहहिं फल भोगू । छुवत मरहिं तेहि आश अरोगू ॥१०॥

जप तप नेम कलेश अपारा। बूड़हिं बहुत मोह भवधारा ॥११॥

शब्दार्थ — मोह = अज्ञान। भवधारा = संसार समुद्र।

भावार्थ — उपर्युक्त लोग अज्ञान की अनेक चोट खाये हुए दुःखी होकर भटकते हैं। वे भविष्य में मुक्ति पानेकी आशा का विचार करते हैं ॥९॥ कोई विषवृक्ष का पालन करके अमृतफल भोगना चाहे और जिसके छूने मात्र से मृत्यु होना संभव होवे उसे ग्रहण कर नीरोग बनने की आशा करे तो भूल ही है ॥१०॥ लोग विवेक विरुद्ध जप, तपस्या तथा अनेक नियमों का पालन करके अत्यंत कष्ट उठाते हैं; और अनेक प्रकार अज्ञानकृत धारा में डूबते हैं ॥११॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-६

बाँधे अष्ट कष्ट नौ सूता। यम बाँधे अंजनी के पूता ॥१॥
यम के वाहन बाँधे जनी। बाँधे सृष्टि कहाँ लौं गनी ॥२॥

शब्दार्थ — अष्ट = योग के आठ अंग (लय, तारक, अमनस्क, सांख्य, लंबिका, राज, कुण्डली तथा हठ) या आठ सिद्धि (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, दर्शितव तथा वशित्व)। कष्ट = तप (पंचाग्नि तापन आदि)। नौ = नवधा-भक्ति (श्रवण, कीर्तन, नाम-स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास भाव, सखा-पन तथा आत्मनिवेदन)। सूता = सूत, जीव। यम = मन, वासना या खानी-वाणी के बन्धन देने वाले नारी-नर। अंजनी = माया। पूता = दास आसक्त। वाहन = हाथों। जनी = राधाभाव धारण करने वाले भक्त।

भावार्थ — अष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिये योग के आठ अंगों तथा कष्टदायी अयुक्त तपस्यादि में और सालोक्यादि चार मुक्तियों के लिये नवधा-भक्ति में यह सत्य चैतन्य जीव बाँधा गया। माया की दासता करने वाले जीवों को यम ने बांध लिया ॥१॥ यम (मन) के हाथों से राधाभाव धारण करने वाले भक्त बांधे गये, जो अपने को श्रीकृष्ण की स्त्री मानते हैं। कहाँ तक गिनाया जाय सृष्टि के सब जीव मन-वासनाओं के द्वारा बाँधे गये ॥२॥

बाँधेउ देव तैंतीस करोरी। सम्वरत लोह बन्द गौ तोरी ॥३॥
राजा सम्वरे तुरिया चढ़ी। पन्थी सँवरे नाम ले बढ़ी ॥४॥
अर्थ विहूना संवरे नारी। परजा संवरे पुहुमी झारी ॥५॥

शब्दार्थ — सम्वरत = स्मरण-भजन। लोहबन्ध = कठिन बन्धन। राजा = ब्रह्मज्ञानी। तुरिया = ज्ञान अवस्था। पन्थी = योगी। अर्थ विहूना = निष्काम। नारी = भक्त। पुहुमी = पृथ्वी। झारी = झाड़-पोछ, लीप-पोत कर अथवा समस्त।

भावार्थ— उपर्युक्त कथित यम ने तैंतीस करोड़ देवताओं को भी बाँध लिया।

(परन्तु सामान्य जीव कहते हैं कि--) भगवान का नाम स्मरण करते ही हमारा कठिन बन्धन टूट गया ॥३॥ अद्वैत की ज्ञान अवस्था (तुरिया) पर चढ़कर ब्रह्म-वादी 'अहमब्रह्मास्मि' का स्मरण कर रहे हैं। योगी लोग अजपाजप या ॐ नाम स्मरण करते हुए आगे बढ़ रहे हैं ॥४॥ नारी भाव धारण करने वाले भक्त लोग धनादि की कामना1 से रहित होकर स्मरण करते हैं। और साधारण अज्ञानी प्रजा (जनता) धन-पुत्रादि के लिये पृथ्वी की चौरी-चौरा पाट कर और उसे झाड़-पोछ, लीप-पोतकर उसी की उपासना-पूजा कर रहे हैं या काली-भवानी आदि रूप कल्पित देवी-देवताओं का ही नाम स्मरण कर दुखों से छूटना चाहते हैं। अथवा पृथ्वी पर की समस्त सामान्य जनता कल्पित कर्ता का स्मरण करके दुःखों से छूटना चाहती है ॥५॥

विशेष — पीछे ६० वीं चौपाई में तैंतीस देवताओं का वर्णन आया है।

साखी– बन्दि मनावै ते फल पावै, बन्दि दिया सो देय।
कहैं कबीर सो ऊबरै, जो निशिवाशर नामहिं लेय ॥२५७॥

शब्दार्थ — बन्दि = वन्दना। फल = अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष। बन्दि = बन्धन। कहैं कबीर = उपासक जन कहते हैं।

भावार्थ — (उपासकों का कथन है—) वन्दना-उपासना करके जो भगवान को मनायेगा, वही चारों फल पायेगा। क्योंकि जो बन्धन दिया है वही मोक्ष भी दे सकता है—"तू ही ने दर्द दिया, तू ही दवा देना"। अतएव संसार-सागर से वही बचेगा जो रात-दिन भगवान का नाम लेगा ॥२५७॥

विशेष — ऊपर उपासकों का मत बताया गया है, वह स्व-सिद्धान्त नहीं है। विवेकी सन्तों की सत्संग-सेवा और स्वरूप-विचार से ही कल्याण है।

बंदीखाना जो परे, तेहि राजा खुशियाल।
लोभ गरासे जीवको, सूझै नहिं भवजाल ॥२५८॥

शब्दार्थ — बंदीखाना = कारावास, बंधन। राजा = मतवादी।

भावार्थ — जो व्यक्ति जिस संप्रदाय की मान्यतारूप कारावास में पड़े हैं उसकी महिमारूपी लोभ उन्हें जकड़ रखा है और उनको उसके भवजाल का बंधन नहीं दिखता; परन्तु उस सम्प्रदाय के अग्रसर लोगों को इसी में प्रसन्नता है ॥२५८॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी–७०, १३३

जहर जिमी दै रोपिया, अमी सींचे सौबार।
कबीर खलक ना तजै, जामें जौन बिचार ॥२५९॥

१—अर्थ न धर्म न काम रुचि, पद न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म सिय राम पद, यह बरदान न आन॥

शब्दार्थ — जहर = विष; विषय, कल्पना। जिमी = पृथ्वी, अन्तःकरण। रोपिया = लगाया। अमी = अमृतमय उपदेश। खलक = संसारी जीव।

भावार्थ — कोई अपनी जमीन में जहर का वृक्ष लगाले और उसे सैंकरों बार अमृत से सींचे, तो भी वह जहर ही रहेगा। तात्पर्य यह कि मनुष्यों ने अपने अन्तःकरण में विषय-कल्पना रूपी विष-वृक्ष का रोपण कर लिया है। सद्गुरु कहते हैं, अब उसे कितना ही अमृतमय स्वरूप-बोध का उपदेश करो, परन्तु जिसमें जो उल्टे-सीधे विचार धँस गये हैं; उसे संसारी मनुष्य नहीं त्यागना चाहते ॥२५९॥

विशेष — जिस मत की जिस भ्रान्ति में मनुष्य पड़ा है, एक तो उसे सत्य मान रखा है, इसलिये उसके संस्कार उससे निकलने नहीं देते। दूसरे सत्संग-द्वारा यदि सत्य को वह कुछ समझ भी ले तो भी जब तक गुरु, पोथी, महापुरुष तथा मत का पक्ष नहीं टूटेगा, तब तक वह, उस भ्रान्ति को न छोड़ सकता है न सत्य ग्रहण कर सकता है।

विष के बिरवे घर किया, रहा सर्प लपटाय।
ताते जियरहिं डर भया, जागत रैनि विहाय ॥२६०॥

शब्दार्थ — विष = विषय, कल्पना। घर = निवासस्थान। सर्प = खानी-वाणी का अहंकार। विहाय = व्यतीत होता है।

भावार्थ — कल्पना और विषय रूपी विष-वृक्ष के नीचे, जीव ने अपना निवासस्थान बनाया है; जिसमें अहंकार रूपी सर्प लिपटे हुए हैं। इस देहाभिमान से शरीर और शरीर सम्बन्धी भौतिक पदार्थों के छूटने का भय जीव को लगा रहता है। इसी चिन्ता में जागते ही रात बीतती है, (फिर दिन की तो बात ही क्या ?) ॥२६०॥

विशेष — विषय विष के तुल्य हैं, विषयासक्ति से अहंकार की उत्पत्ति होती है। सांसारिक पदार्थों एवं शरीर के अहंकार में पड़कर, उनकी रक्षा वृद्धि की चिन्ता में मनुष्य के रात-दिन कटते हैं, उसे माया प्रपंचवश सुख से सोने का भी बदा नहीं होता।

अथवा 'जागत रैनि विहाय' सावधानता पूर्वक अज्ञान रूपी रात्रि को समाप्त कर दो, जिससे तुम्हारा कल्याण हो।

७२—उपासना की अविवेकता का दिग्दर्शन

चौपाई—७६

जो कोइ जीव विचक्षण लोई। बंदी फाँस अज बाँचा सोई ॥१॥
विष्णु फाँस तेहि ऊपर डारे। धर्म भक्तिको कला सँवारे ॥२॥

शब्दार्थ — विचक्षण = बुद्धिमान। लोई = लोग। अज = ब्रह्मा, रजोगुण। विष्णुफाँस = सतोगुणी बंधन। कला = युक्ति।

भावार्थ — यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति होता है वह रजोगुणी कर्मकाण्ड से

निवृत्ति ले लेता है ॥१॥ तो उसके ऊपर सतोगुणी जाल पड़ जाता है जो धर्म और भक्ति के नाम से युक्ति पूर्वक रचा गया है ॥२॥

विशेष — ग्रंथकर्ता का मूल उद्देश्य भक्ति-धर्म का उच्छेदन नहीं; अपितु उसका सुधार है। उत्तम कर्म, मानवधर्म तथा यथार्थ सद्गुरु की उपासना करनी चाहिये।

बंदी गृह आश्रम दृढ़ कीन्हा। कामिनी फाँस गले तेहि दीन्हा ॥३॥
सेवा शिला सुमिरन हरिनामा। भक्ति सोई जो करै अकामा ॥४॥

शब्दार्थ — गृह आश्रम = गृहस्थाश्रम। अकामा = निष्काम।

भावार्थ — यहाँ गृहस्थी आश्रम को मानो एक कारावास बना दिया और मनुष्य अपने गले में कामिनी रूपी फाँसी डाल ली ॥३॥ शालग्राम शिला की पूजा करते, हरि का नाम स्मरण करते, इसी को भक्ति मानते हैं और निष्काम होकर करने में इसकी उच्चता समझते हैं ॥४॥

संयम जप तप नेम अचारा। भजन प्रसंग हरि विषय विकारा ॥५॥
ध्यान रूप मानसके पूजा। चौदह भुवन महातम राजा ॥६॥

शब्दार्थ — राजा = विष्णु जी।

भावार्थ — (आवश्यकता से अधिक, कष्टसाध्य) संयम, जप, तप, नियम, आचार, भजन, कीर्तन आदि करते हैं; परन्तु विषय-विकारों से दूर नहीं हो पाते; प्रत्युत पौराणिक वैषयिक कथा भी कहते हैं ॥५॥ चौदहों भुवनों में महान विष्णु की महिमा फैली हुई मानकर उनके रूप का ध्यान तथा मानसपूजा करते हैं ॥६॥

विरह अनलको कीन्ह प्रकाशा। परगट विष्णु फाँसमों फाँसा ॥७॥
छिन भर चैन न आवै तेई। हित के मति दे दुशमन जेई ॥८॥

शब्दार्थ — विरह = व्याकुलता। हित = विवेक।

भावार्थ — इष्ट से मिलने के लिये शरीर में विरहाग्नि का उद्दीपन करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति प्रत्यक्ष ही सतोगुणी बंधन में बँधे हैं ॥७॥ कल्पित पुरुष की प्राप्ति की आशा में उनको क्षणमात्र विश्रांति नहीं मिलती। जो उन्हें हित की राय दे, विवेक-विचार की बातें सुझाये, वह उन्हें शत्रु के समान लगता है ॥८॥

बाउर होय दहुँ दिश धावै। और जीवको धोखा लावै ॥९॥
सन्मुख घाव सहै नहिं धाजै। महिमा महातम चौकी गाजै ॥१०॥
बूड़हिं माँझधार भवजाला। करक करेजा विरह बेहाला ॥११॥

शब्दार्थ — बाउर = बावला। चौकी = रखवाली। गाजै = गर्जना, कहना। करक = टीस, वेदना।

भावार्थ — कितने लोग इष्ट के न मिलने के कारण बावला बनकर दशो दिशाओं में दौड़ते हैं, और दूसरे व्यक्तियों को भी वही भ्रम लगा देते हैं ।।९।। 'सम्मुख दुःख सहते हुए भी उपासना मार्ग से भागना नहीं चाहिये' इस प्रकार के माहात्म्य को फैला कर मानो उसकी रखवाली करने की गर्जना करते हैं ।।१०।। इस प्रकार मनःकल्पना रूपी भवजाल के मध्यधारा में लोग डूबते हैं । कल्पित पति को पाने की वियोगजनित वेदना ने उनके कलेजे को वेधकर उन्हें व्याकुल कर दिया है ।।११।।

साखी—विरही अनल जलावहीं, प्रगट हरी सो रूप ।
दाह न देखै आपनी, आश परा तमकूप ।।२६१।।

शब्दार्थ—प्रगट हरी सो रूप = प्रत्यक्ष सतोगुणका मार्ग । दाह = जलन, कष्ट ।

भावार्थ — विरही लोग विरह की अग्नि में अपने शरीर-मन को रात-दिन जलाते हैं; और इसी को सतोगुण का मार्ग मानते हैं । वे अपने तन-मन के कष्टों को नहीं देखते, कल्पित पुरुष की आशा में वे अंधकार कूप में पड़े हैं ।।२६१।।

तिन्ह आँखिन पथरा दिये, समुझ दिये भ्रमजाल ।
छिन छिन जीवन जीव को, भोगे काल कराल ।।२६२।।

शब्दार्थ — पथरा = पत्थर, जड़ता का परदा । जीवनजीव = जीवका जीवन, स्वरूपज्ञान । भोगे = हरण करता । काल कराल = भयंकर अज्ञान काल ।

भावार्थ — ऐसे लोगों के विवेक नेत्रों पर जड़ता का परदा और समझदारी पर भ्रम जाला पड़ जाता है । भयंकर अज्ञानकाल ऐसे व्यक्तिको क्षण-क्षण मलिन बनाता है ।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-१२, साखी-६८

माटिक कोट पषाणको ताला । सोइक बन सोई रखवाला ।।१।।
सो बन देखत जीव डेराना । ब्राह्मण वैष्णव एकै जाना ।।२।।

शब्दार्थ -- माटिक = पृथ्वी आदि जड़ तत्त्वों का । कोट = किला, शरीर । पषाण = पाषाण, पत्थरवत बुद्धि । सोइक = मन का । बन = वाणी जाल । एकै जाना = एक ही प्रकार समझो ।

भावार्थ — जीव के निवास-स्वरूप पृथ्वी आदि जड़-तत्त्वों के शरीर में जड़-बुद्धि का ताला लगा है । मन से बनाये हुए वाणी जाल रूप वन का, मन ही रक्षक है ।।१।। वेद पुराणादि वाणी-जाल रूप वन को देखकर जीव भयभीत हुआ, कि "इसके किंचित भी विपरीत स्वतन्त्र विचार एवं सत्संग करूँगा, तो नास्तिक होकर नरक में जाऊँगा ।" अतः सभी लोग श्रुति-स्मृति प्रतिपादित कल्पित स्वर्ग विधायक मोहक कर्मकाण्ड में पड़ गये । जैसे ब्राह्मण कर्मकाण्डी हैं वैसे वैष्णव भी कर्मकाण्डी हैं, अतः दोनों को एक रूप ही समझो ।।२।।

विशेष — अथवा मन से रचित इस शरीर का मन ही रक्षक बना। शरीर तथा शरीर सम्बन्धी प्राणी-पदार्थों को देखकर उसके नाश होने या छूटने के डर से जीव भयभीत हो गया; और उनके रक्षार्थ ब्राह्मण-वैष्णव (भक्तादि) देव गोसैंया की कल्पना एवं मान मनौती करने लगे।

ज्यों किसान किसानी करई। उपजे खेत बीज नहिं परई ॥३॥
छाड़ि देहु नर झेलिक झेला। बूड़े दोऊ गुरु औ चेला ॥४॥

शब्दार्थ — बीज = दाने, ज्ञान। झेलिक झेला = वाणी-जाल का बन्धन।

भावार्थ — जैसे किसान खेती करे, खेत में फसल के डंठल तो बहुत उत्पन्न हों; परन्तु दाने न पड़ें, (इसी प्रकार नाना मतवादी मत-प्रचार बहुत करते हैं, उनके चेले चेलियाँ भी खूब होते हैं, परन्तु यथार्थ स्वरूप-ज्ञान न उन मतवादी गुरुओं को है, न शिष्य को दे सकते हैं) ॥३॥ ऐ मनुष्यो ! वाणी-जाल का बन्धन (अपनी मोटी पोथी का पक्षपात) छोड़ दो; (पक्षपात में पड़कर) गुरु-चेला दोनों डूब गये हैं ॥४॥

तीसर बूड़े पारथ भाई। जिन बन डाहे दवाँ लगाई ॥५॥
भूँकि भूँकि कूकुर मरि गयऊ। काज न एक सियार से भयऊ ॥६॥

शब्दार्थ — पारथ = पारधी, शिकारी (प्रमाण "उल्टा बाण पारधी लागे" "पारथ ओटा लेई" बीजक)। बन = संसार। डाहे = जलाये। दवाँ = आग, कल्पना। कूकुर = वाचिक ज्ञानी। सियार = कायर, डरपोक, आचरणहीन।

भावार्थ — ऐ भाई ! तीसरे, चेला चाटियों पर कल्पित-भ्रामक वाणी रूपी बाण मार कर, शिकार करने वाले वे स्वार्थी उपदेशक भी डूब गये, जिन्होंने कल्पना-भ्रम पक्षपात, हिंसा, विषय, ऊँच-नीच के अहम्-हीनत्व की आग लगाकर, संसार को जला डाला ॥५॥ वाचक ज्ञानी, भ्रमिक कथक्कड़ी बक-बक के मर गये। परन्तु आचरण-हीन लकीर-के-फकीर इन कायरों से एक भी कार्य न हुआ (कल्याण का एक अंग भी न सध सका), अथवा सियार को देखकर जैसे कुत्ते भूँकते हैं, इसी प्रकार अयुक्त, असम्भव कल्पित वाणियों को देखकर वंचक वक्ते बक-बक करते हैं, परन्तु उससे कुछ कल्याण होने वाला नहीं ॥६॥

साखी—मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय।
अचरज एक देखो हो संतो, हस्ती सिंहहि खाय ॥२६३॥

शब्दार्थ — मूस = जीव। बिलाई = माया। हस्ती = मन। सिंह = जीव।

भावार्थ — चूहा और बिल्ली कहो एक साथ में कैसे रह सकते हैं ? बिल्ली अवश्य चूहे को खायेगी। इसी प्रकार खानी-वाणी के कुसंग में रहकर उनके फन्दे से जीव कैसे बच सकता है। ऐ सन्तो ! एक आश्चर्यमय बात देखता हूँ, कि हस्ती सिंह को खा रहा है। अर्थात (बिना विवेक) मन जीव को भ्रमा रहा है ॥२६३॥

विशेष — माया की संगत साधकों के लिये आपत्ति से रिक्त नहीं है। अतः उन्हें सावधानी से कुसंग-त्यागकर विवेक पूर्वक रहना चाहिये।

जेकर शर तेहि लागे, सोइ जानेगा पीर।
लागे तो भागे नहीं, सुख सिन्धु निहार कबीर ॥२६४॥

शब्दार्थ — जेकर = जिसका। शर = वाण, लक्ष्य। तेहि = ब्रह्म। पीर = पीड़ा, अनुभव। कबीर = जीव।

भावार्थ — जिनका लक्ष्य उस ब्रह्म में लगेगा, वही उसके दर्द (अनुभव) को जान सकता है। नियम यह है कि ब्रह्म में लक्ष्य लग जाने पर उसे छोड़े नहीं, हे जीव! आनन्द-समुद्र उस ब्रह्म में ही वृत्ति रखे रहो ॥२६४॥

विशेष — यह उपासक या ब्रह्मवादियों के मनोभाव का चित्रण है।

७३--नाना भ्रमकृत साधनाओं का दिग्दर्शन

चौपाई—७७

बिष्णु फाँस जेहि लागे नाहीं। परगट शिव के फाँस अरुझाहीं ॥१॥
वर्णाश्रम संन्यास दृढ़ाई। परमहंस ले अंत देखाई ॥२॥

शब्दार्थ — शिव फाँस = तमोगुणीबंधन। अंत = ब्रह्मवाद।

भावार्थ — सतोगुणी बंधनों से भी जो विरत हो गया वह प्रत्यक्ष तमोगुणी बंधनों में फँस जाता है ॥१॥ इसमें भी वर्णाश्रम का उपदेश करते हैं और आश्रमों में संन्यास को अधिक प्रश्रय देते हैं और परमहंस दशा में ब्रह्म का पूर्ण विवेचन करते हैं।

चारि अवस्था चहुँ प्रतिबंदी। पँचयें नाशक आपु अनंदी ॥३॥
नाश करै आनंद कहावै। बंदी कठिन यम घात लगावै ॥४॥

शब्दार्थ — चारि अवस्था = जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय। प्रतिबंदी = बंधन, रुकावट। पँचयें = विज्ञान। यम = अज्ञान; मन। घात = छल।

भावार्थ — जागृति आदि चार अवस्थाओं को मोक्ष में रुकावट कहकर पाँचवें कैवल्य स्वयं आनन्ददशा में जाते हैं जहाँ उक्त चारों का लय हो जाता है ॥३॥ द्वैत का अपने में लय करके स्वयं को आनन्द ब्रह्म कहलाते हैं। परन्तु ये कठिन बंधन में हैं, क्योंकि मन ने इनको छल लिया है ॥४॥

विशेष — विकारी संसार को अपने से अभिन्न मानकर उसे अपने ही में लय करने की भावना करना और अपने को आनन्द रूप भी मानना विरोधी है और यह मनके छल को न समझ पाना है। अर्थात भूल का सुधार न होना है।

योग अभ्यास बिगुर्चन भारी। दुख संताप अनंत सँवारी ॥५॥
जीवत गड़े अनल तन जारै। कुम्भ बाँधि जलमाँहि पवारै ॥६॥

शब्दार्थ — बिगुर्चन = बिगूचन, उलझन । कुंभ = घड़ा । पवारै = पवांरना, फेंकना ।

भावार्थ -- (विवेकरहित) हठ आदि योग का अभ्यास भी एक भारी उलझन की साधना है; जिनमें पड़कर लोग अनन्त दुःख संताप तथा अज्ञान बना लेते हैं ।।५।। कितने लोग पृथ्वी के भीतर जीवित समाधि ले लेते हैं, कितने लोग शरीर को आग में जलाते हैं, कितने लोग अपने गले में बालू भरा हुआ घड़ा बाँधकर अपने शरीर को नदी में डाल देते हैं ।।६।।

विशेष -- लोग उपर्युक्त विवेक-विरुद्ध साधनायें करते हैं परमात्मा को पाने के लिये । यह एक बहुत बड़ा व्यामोह है । नेपाल में एक संत जी परमात्मा की प्राप्ति के लिये अपने अनेक शिष्यों के साथ नदी में डूब गये थे । यह सच्ची आधुनिक घटना बतलायी जाती है ।

श्वासा साधि मस्तक मसकावै । छार लगाय जगत भरमावै ।।७।।
पठवै जंगल कोश पहारा । बहु सासत देई जिव मारा ।।८।।

शब्दार्थ -- मसकावै = मसकाना, तनावपूर्ण करना । कोश = कोस, दो मील; तात्पर्य में कोसों ।

भावार्थ — कितने लोग श्वास की साधना करके मस्तक को तनावपूर्ण स्थिति में लाकर अचेत होते हैं । कितने शरीर में राख या धूल लगाकर अपने को सिद्ध होने का जगत में भ्रम डालते हैं ।।७।। कितने गुरु अपने शिष्यों को परमात्मा की प्राप्ति के लिये कोसों दूर पहाड़ में भेज देते हैं । इस प्रकार भ्रामक लोग अनेक कष्ट देकर व्यक्तियों को पीड़ित करते हैं ।।८।।

आशा बंधन फाँस फँसाना । जीव न मानै मरण अपाना ।। ९ ।।
त्रिगुण फाँस कष्ट परचंडा । पूरण पिंड खंड ब्रह्मंडा ।।१०।।

शब्दार्थ -- त्रिगुण = सत, रज, तम । परचंडा = भयंकर ।

भावार्थ -- लोग अपने से पृथक किसी परमात्मा की प्राप्ति की आशा रूपी बंधन या फाँसी में फँसे हैं; परन्तु वे यह नहीं समझते कि अपने चेतन स्वरूप से पृथक किसी वस्तु की आशा करना अपनी मृत्यु अर्थात पतन है ।।९।। त्रिगुणात्मक बंधन भयंकर है जो शरीर, संसार तथा समस्त क्षेत्रों में फैला है ।।१०।।

व्याधि विविधि दुःख पावै कलेशा । ठाढेश्वरी मौनी दिगंबर भेसा ।।११।।
जेवरि वाणीमें लपटावै । फूला फिरै ऊर्धबाँहु कहावै ।।१२।।

शब्दार्थ -- जेवरि = रस्सी । फूला = अहंकार में भरा ।

भावार्थ — लोग अज्ञानजनित अनेक वेदना और कलेश उठाते हैं । कोई दश-दश बारह-बारह वर्ष या जीवन पर्यंत खड़ा ही रहता है, कोई मौनी बना रहता है, कोई

दिशाओं को ही वस्त्र मानकर नंगा ही रहता है, कोई अन्य अनेक विचित्र वेषों में है ॥११॥ बिना विवेक सब कल्पित वाणी की रस्सी में बँधे हैं। कितने तो एक हाथ वर्षों निरन्तर ऊपर ही उठाये रहते हैं और उसी के अहंकार में फूला-फूला फिरते हैं ॥१२॥

साखी—पूरण पिंड ब्रह्मांड सो, त्रिगुण फाँस लगाय।
नाशक नाशे जीवको, आपै आप कहाय ॥२६५॥

शब्दार्थ — आपै आप=स्वयं।

भावार्थ —शरीर-संसार सर्वत्र त्रिगुणात्मक जाल बिछा कर और मैं ही जड़-चेतन सब कुछ हूँ ऐसा कहकर और अविनाशी जीव को मिथ्या सिद्ध करके भूले लोग उसका लय करना चाहते हैं ॥२६५॥

बंदीछोर छोड़ावहिं, मेटि मेटि यम फाँस।
धन्य धन्य सो जीव है, तजहिं महा भवगाँस ॥२६६॥

शब्दार्थ — बंदीछोर = बंधन छुड़ाने वाले। यम = मन; वासना; अज्ञान। भव = जन्म; मन। गाँस = तीर का फल, बंधन।

भावार्थ —बंधन छुड़ाने वाले सच्चे सद्गुरु वासना और अज्ञान की फाँसी को काट-काट कर जीवों को भवबंधनों से छुड़ाते हैं। वे व्यक्ति बारम्बार धन्यवाद के पात्र हैं जो महान भवजाल से मुक्त होते हैं ॥२६६॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी–१०, साखी–१००

राही लै पिपराही बही। करगी आवत काहु न कही ॥१॥
आयी करगी भौ अजगूता। जन्म जन्म यम पहिरे बूता ॥२॥

शब्दार्थ –– राही = कर्ममार्गी जीव। पिपराही = पीपल-पत्ते के समान चंचल वंचक गुरु या मन। करगी = हाथ से लिखी हुई कल्पित गीत-वाणी, बन्धन, फाँसी। अजगूता = आश्चर्य। यम = मन। बूता = कर्म, साहस या देह।

भावार्थ — कर्म-रथ पर चलने वाले जीवों को लेकर वंचक गुरु संसार-सागर में बह गये। यह कोई नहीं कहा कि इनका उपदेश क्या, जीव को बाँधने के लिये फाँसी आ रही है ॥१॥ वंचक गुरुओं की भ्रामक उपदेश रूपी फाँसी जब संसार में आयी, तब आश्चर्यजनक घटना हुई, (सब जीव नाना कल्पना और विषयवासना को ही मोक्ष-साधन मानने लगे और हिंसा आदि भी धर्म के श्रेष्ठ रूप बन गये)। अतः कर्म और देह का जामा जीव को पहना कर, जन्म-जन्मान्तरों से इसी प्रकार मन नचाता है ॥२॥

बूता पहिरि यम कीन्ह समाना। तीन लोक में कीन्ह पयाना ॥३॥
बाँधेउ ब्रह्मा विष्णु महेशू। सुर नर मुनि औ बाँधु गणेशू ॥४॥

शब्दार्थ — समाना = सदृश । तीन लोक = सत, रज, तम ।

भावार्थ — (अनादिकाल से) कर्म और शरीर धारण कर-कराके मन ने जीव को अपने सदृश चंचल बना लिया । सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण—तीनों प्रकार के स्वभाव धारण करने वाले जीवों में मन अपनी दौड़ लगा रहा है ॥३॥ इस मन रूप यमराज ने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, देवता, मनुष्य, मुनि एवं गणेश आदि सबको बाँध रखा है ॥४॥

बाँधे पवन पावक औ नीरू । चाँद सूर्य बाँधेउ दोउ बीरू ॥५॥
साँच मन्त्र बाँधे सब झारी । अमृत वस्तु न जानै नारी ॥६॥

शब्दार्थ — पवन = पवन में पवन मिल जाना यह फकीरों का सिद्धान्त है । पावक = अग्नि उपासक ब्राह्मण । नीरू = जल, गंगादि नदियों को मानने वाले कर्मी । चाँद = कर्मयोगी । सूर्य = कर्म संन्यासी । साँच = जीव । मन्त्र = वाणी । झारी = सबके सब । अमृत वस्तु = अविनाशी पारख-स्वरूप जीव । नारी = भक्त ।

भावार्थ — मन ने फकीर, ब्राह्मण और कर्मी को तथा कर्मयोगी और कर्म-सन्यासी—इन दोनों वीरों को भी बाँध लिया ॥५॥ वाणी जाल ने समस्त जीवों को बाँध लिया । कल्पित ईश्वर के उपासक भक्त लोग, अविनाशी स्वतः चैतन्य पारख-स्वरूप को वस्तुतः नहीं जानते ॥६॥

साखी—अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भया सब लोय ।
कहहिं कबीर कामों नहीं, जीवहिं मरण न होय ॥२६७॥

शब्दार्थ — अमृतवस्तु = अविनाशी पारख स्वरूप । लोय = लोग । कामों = कामना-इच्छा ।

भावार्थ — अविनाशी स्वतः पारख स्वरूप चैतन्य को जानते नहीं, अपने से पृथक भास में ही लोग मस्त हैं । सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं कि जीव के शुद्ध-स्वरूप में कामना-मल नहीं है और न उसका कभी नाश होता है । अथवा विषयों की कामना-त्याग देने पर, जीव का फिर से जन्म-मरण नहीं होता ॥२६७॥

करक करेजे गड़ि रही, बचन वृक्ष की फाँस ।
निकसाये निकसे नहीं, रही सो काहू गाँस ॥२६८॥

शब्दार्थ — करक = रुक-रुक कर होने वाली पीड़ा, काँटे । फाँस = बन्धन । काहू = बे-पारखी । गाँस = गाँसी, तीर का फल, कल्पित वाणी ।

भावार्थ — भ्रामक वचन-वृक्षों के फाँस काँटे रूप में होकर मनुष्य के कलेजे में गड़े हैं । विवेकियों द्वारा निकालने पर भी वे काँटे नहीं निकलते । बे-पारखियों के वे गाँसियाँ भली-भाँति चुभ गयी हैं ॥२६८॥

विशेष — नाना कल्पित पोथियाँ ही भ्रामक वचनों के वृक्ष हैं। उनकी अनेक भ्रान्तियाँ ही जीव के फँसने के फाँस हैं। ऐसी भ्रान्तिपूर्ण वाणियों के काँटे अर्थात अध्यास जीव के हृदय में गड़े हुए हैं।

७४–राजनीति का दिग्दर्शन तथा उसके दोष

चौपाई—७८

तन मन राचे कर्म दृढ़ाई। करहिं राज बहु दंड देखाई ॥१॥
सोई राज कला धरतीके। विदित कीन्ह बलवश क्षत्रीके ॥२॥

शब्दार्थ — राचे = अच्छा लगना।

भावार्थ — विद्वानों ने क्षत्रियों को ऐसे कर्मों का उपदेश दिया जो उनके तन और मन को अच्छे लगें; इस प्रकार क्षत्रिय लोग मारकाट का उपदेश पाकर तथा प्रजा को अनेक दण्ड दिखाकर गलत-सही ढंग से राज्य करते हैं ॥१॥ वही राजनीति की कलाबाजी पृथ्वी को क्षत्रियों की शक्ति के वश में रखती है, यह बात सब जानते हैं ॥२॥

बाहुकर्म जिनके बल भारी। जीतहिं जहाँ तहाँ राज बिचारी ॥३॥
सन्मुख मरण शूर ललकारी। करहिं घात प्रचारि प्रचारी ॥४॥

शब्दार्थ — विचारी = बेचारे। प्रचारिप्रचारी = फैलाकर।

भावार्थ — जिस राजा का बाहुबल एवं सैन्यबल अधिक रहा वह यत्र-तत्र दूसरे बेचारे छोटे राजाओं को जीतता रहा ॥३॥ शूर-वीर लोग सामने शत्रुओं को ललकार कर और मरण का भ्रम त्याग कर दूसरे का सामूहिक संहार करके अपना राज्य फैलाते रहे ॥ ४ ॥

मारे मरहिं परमगति पावै। अकथ कलाको भेद लखावै ॥५॥
त्रिगुणमई राज परमाना। चारिकला तेहि माँह ठेकाना ॥६॥

शब्दार्थ — अकथकला = गोपनीय गुण। त्रिगुणमई = सत, रज, तम युक्त; काम, क्रोध, लोभ; राज्यक्षेत्र, धन, युद्धशक्ति। चारिकला = साम, दाम, दण्ड, भेद।

भावार्थ — युद्ध में विपक्षी द्वारा मारे जाकर यदि मृत्यु हो जाय तो परमगति मिलती है; कहते हैं यह गोपनीय बात का रहस्य है ॥ ५ ॥ वस्तुतः राज-काज काम, क्रोध और लोभ से पूर्ण ही होता है। अथवा राज्य की मान्यता मुख्य तीन बलपर हैं—राज्य का क्षेत्रफल, धनशक्ति तथा युद्धशक्ति। उनमें चार नीतियाँ निहित हैं—साम, दाम, दण्ड और भेद ॥ ६ ॥

विशेष — लोग कहते हैं यह अकथ कथा यानी गुप्तरहस्य है कि युद्ध में मृत्यु होने पर व्यक्ति की परमगति होती है। परन्तु यह जवानों को युद्ध में लगाये रखने का

लासा है। राजनीति की दृष्टि से केवल राज्यविस्तार के लिये मारकाट व युद्ध करना महा अपराध है। हाँ, राष्ट्ररक्षा के लिये युद्ध कर्तव्य है।

समिता भाव मिलावै जानै। दाम देई अवसर अनुमानै ॥७॥
करहिं भेद मत भोरि भुलाई। रार परस्पर प्रीति तोराई ॥८॥

शब्दार्थ — अनुमानै = अंदाज कर। भोरि = भ्रम डालकर। रार = झगड़ा।

भावार्थ — 'साम' का अर्थ है प्रजा या विपक्षी राजा से समता करके उनसे मेल-मिलाप रखने की कला जानना। 'दाम' का तात्पर्य है अपना दुर्बल समय आया हुआ अंदाज कर प्रजा की माँगें स्वीकार कर लेना या विपक्षी राजा को कुछ धन देकर उन्हें अनुकूल बना लेना ॥ ७ ॥ 'भेद' का अर्थ है विपक्षियों की बुद्धि में भ्रम डालकर उनको भुला देना और उनमें फूट डाल देना, तथा उनमें झगड़ा मचाकर परस्पर प्रेम को खण्डित कर देना ॥ ८ ॥

दंड युद्ध बहुभाँति विचारै। राज काज सब विधिहि सँवारै ॥९॥
हाथ कृपाण बाण बल जाके। डरहिं जीव धरती वशि ताके ॥१०॥

शब्दार्थ — कृपाण = तलवार।

भावार्थ — 'दण्ड' का अर्थ है दण्ड देकर या विपक्षियों से युद्ध करके उनको दबा देना। इस प्रकार राजकाज को चलाने के लिये राजा लोग अनेक भाँति से विचार करते हैं और सब प्रकार से अपने राज्य का काम बनाते हैं ॥९॥ जिसके हाथ में तलवार और वाण का बल है उसी राजा को लोग डरते हैं तथा उसी राजा के अधिकार में पृथ्वी रहती है ॥१०॥

विशेष — जैसे कि एक बार कह आये हैं इन चौपाइयों के रचनाकाल में तलवार और वाण ही श्रेष्ठ आयुध थे; परन्तु आज तो कहना चाहिये जिसके पास में अणु बम, परमाणु बम हैं, उसी को अन्य राष्ट्र डरते हैं और उसी का धाक संसार पर रहता है।

लूटहिं मारहिं करहिं कलोला। भय वशि एक एक जग डोला ॥११॥
जुझहिं जुझावहिं अनबनि भाँती। पूरि रहा जग सोइ यम घाती ॥१२॥
अस्तुति निंदा हर्ष विषादा। कलह कल्पना परस्पर वादा ॥१३॥

शब्दार्थ — कलोला = कलोल, क्रीड़ा। जुझहिं = जूझना, लड़ना; लड़ते हुए मरजाना। अनबनि = अनेक। यम = अज्ञान। घाती = चोटकरने वाला। विषाद = दुःख। वादा = वाद, विवाद।

भावार्थ — राजनीति नाम रखकर एक दूसरे को लूटते, मारते और क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार एक दूसरे के भय के वश में पड़े हुए जगत के लोग भटक रहे हैं ॥११॥

वे अनेक प्रकार प्रपंच रचकर स्वयं लड़ते-मरते हैं और दूसरे को लड़ाते-मारते हैं। इस प्रकार अज्ञान से भरे हुए दूसरों को चोट पहुँचाने वाले लोग संसार में परिपूर्ण हैं ॥ १२ ॥ वे राग-द्वेष से परस्पर विवाद, झगड़ा और प्रशंसा-निंदा, हर्ष-दुःखादि कल्पनाओं से पूर्ण हैं ॥ १३ ॥

साखी—एकन्हि एकके वशि परे, त्रिगुण अदल चलाय।
पूरि रहा सब सोई कला, घातक नहीं लखाय ॥२६९॥

शब्दार्थ — त्रिगुण = संधि, विग्रह और दण्ड। अदल = अद्ल, न्याय। घातक = हानिकर, अहित।

भावार्थ — राजा लोग संधि, विग्रह और दण्ड का न्याय करके एक दूसरे के वशवर्ती हो रहे हैं। राजनीति उपयुक्त तीन गुणों तथा साम आदि चार नीतियों से परिपूर्ण है। राज पर अपना शासन जमाये रखने के लिये चाहे जितना पाप करना पड़े राजा लोगों को इसमें अपना अहित नहीं दिखता ॥ २६९ ॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-८३

क्षत्री करे क्षत्रिया धर्मा। सवाई वाके बाढ़े कर्मा ॥१॥
जिन अवधू गुरु ज्ञान लखाया। ताकर मन ताही लै धाया ॥२॥

शब्दार्थ — क्षत्रिया धर्मा = क्षात्र धर्म, धर्म युद्ध। अवधू = स्त्री-त्यागी, गुरु।

भावार्थ — क्षत्रियजन यदि अपने क्षात्र-धर्म (धर्म युद्ध) का आचरण करते हैं तो उनके शुभकर्म सवाई बढ़कर (अन्त में उनको स्वर्ग या मोक्ष मिल जाता है) ॥१॥ इस प्रकार जिन गुरुओं ने जिनको जैसा ज्ञान लखा दिया, उनका मन वही लेकर दौड़ने लगा ॥२॥

क्षत्री सो जो कुटुम सों जूझै। पाँचों मेटि एक कै बूझै ॥३॥
जीव मारि जीव प्रतिपारे। देखत जन्म आपनो हारे ॥४॥
हाले करे निशाने घाऊ। जूझि परे तहाँ मन्मथ राऊ ॥५॥

शब्दार्थ — कुटुम = काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर। पाँचों = आँख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा। मेटि = दमन। एक = जीव। देखत = जान-बूझकर। हारे = नष्ट। हाले = शीघ्र। घाऊ = चोट। मन्मथ = मन्मत, मन्मती, उन्मादी। राऊ = राजा।

भावार्थ — परमार्थतः क्षत्रिय वह है, जो अपने कामादिक षट्रिपु कुटुम्बियों से युद्ध करता है और पाँचो ज्ञान-इन्द्रियों का दमन करके अपने चेतनस्वरूप को समझता है ॥३॥ जो अन्य दीन जीवों को मार करके अपना और अपने कुटुम्बियों का प्रतिपालन करते हैं, वे तो जान-बूझकर अपने उत्तम नर-जन्म को नष्ट कर रहे हैं

॥४॥ ऐसे लोग क्रोध आते ही या जिह्वा-स्वाद-वश शीघ्र ही निशान लगाकर एवं वाण-गोली चलाकर अन्य पर चोट कर देते हैं। इस प्रकार ऐसी अवस्था में मन्मती राजा युद्ध ठान बैठते हैं या श्वान-सियारवत दीन प्राणियों को मार-मार कर खा जाते हैं ॥५॥

साखी—मन्मथ मरै न जीवै, जीवहि मरण न होय।
शून्य सनेही राम विनु, चले अपन पौ खोय ॥२७०॥

शब्दार्थ — मन्मथ = मन से मथन किया हुआ कल्पना, काम। अपन पौ = अपना स्वरूप-भाव।

भावार्थ — मन की कल्पना करके जहाँ तक अपने से पृथक माना है, सब मृतक है, वह जीव नहीं है, और जीव की कभी मृत्यु नहीं होती 'न जीवो म्रियते' 'जीवतीत जीवः' यह सत्य है। परन्तु शून्य के प्रेमी रमैया राम के बोध की प्राप्ति बिना, अपने स्वरूप-भाव को खो चले।

अथवा—मन्मथ (काम) के पूर्णतः नष्ट हो जाने, उसके पुनः कभी न जागने पर, जीव पुनः जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ेगा। परन्तु सुख से शून्य विषयों के स्नेही, हृदय-निवासी रमैया राम को जाने बिना, अपने स्वरूप भाव एवं मोक्ष के दाँव को खो कर पुनः गर्भवास में चले।

बीजक, शब्द–५६

माया महा ठगिनी हम जानी ॥१॥
त्रिगुणी फाँस लिये कर डोले, बोले मधुरी बानी ॥२॥
केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी ॥३॥
पण्डा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ हूँ में पानी ॥४॥
योगी के योगिनि ह्वै बैठी, राजा के घर रानी ॥५॥
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी ॥६॥
भक्ता के भक्तिनि ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ॥७॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तों, ई सब अकथ कहानी ॥८॥

शब्दार्थ — माया = मनः कल्पना, पंचविषय सम्पूर्ण दृश्य। त्रिगुणी = त्रिगुण सत, रज, तम। केशव = विष्णु। कमला = लक्ष्मी। भवानी = पार्वती।

भावार्थ — माया महान ठगिनि है, मैंने जान लिया है ॥१॥ यह त्रिगुण की फाँसी लेकर घूमती है, और लोगों को फँसाने के लिये मीठी-मीठी बातें बोलती है ॥२॥ यह विष्णु के घर में लक्ष्मी बनकर बैठी है और शिव के भवन में पार्वती बन-

कर बैठी है ॥३॥ पण्डा-पुजारियों के यहाँ मूर्ति बनकर बैठी है, और तीर्थ में गंगा-यमुना आदि का पानी होकर रहती है ॥४॥ योगियों के घर में योगिनि (सिद्धि) होकर बैठी है, और राजा के घर में रानी बनी है ॥५॥ यह माया सेठों के घर में हीरा-पन्ना-पोखराज बनकर बैठी है, दरिद्रों के घर में कानी कौड़ी (थोड़ा द्रव्य) बनकर बैठी है ॥६॥ भक्तों के घर में भक्तिनि एवं नवधा भक्ति बनकर बैठी है, ब्रह्मा के घर में सावित्री बनकर बैठी है ॥७॥ सद्गुरु कहते हैं कि ये माया की कथा अकथ्य है, कहके समाप्त नहीं किया जा सकता, सर्वत्र इसका राज्य है ॥८॥

७५—चौदह विद्यादि तथा चौदह रत्नों का वर्णन

चौपाई—७४

त्रिदेवा जननीके सेवा । जो कछु कलाको पावै भेवा ॥१॥
चौदह विद्या गाइ सुनाई । भिन्न भिन्नके प्रगट देखाई ॥२॥

शब्दार्थ — कला = गुण ।

भावार्थ — ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव ये तीनों देवता जो कुछ गुणों का रहस्य जानते थे सब माता की सेवा करके उसी से प्राप्त किये थे ॥१॥ अष्टांगी माता ने उन तीनों को चौदह विद्याओं का कथन करके सुना दिया और उसका पृथक-पृथक विश्लेषण भी कर दिया था ॥२॥

चौदह मूल अरु शाखा अंगा । गाँठि अनंत सोई परसंगा ॥३॥
चौदह मूल जगतके माहीं । और अनंत वर्णि नहिं जाहीं ॥४॥

शब्दार्थ — गाँठि = गाँठ, गुत्थी ।

भावार्थ — चौदह विद्यायें मुख्य मानी जाती हैं और अन्य विद्यायें डगालियाँ या उसके अंग हैं । उन्हीं प्रसंगों को लेकर अनेक कलाओं की गुत्थियाँ सुलझाई गयीं हैं, अर्थात वहुत विद्याओं का अन्वेषण हुआ है ॥३॥ संसार में चौदह विद्यायें मूल हैं, अन्य अनंत हैं जिन सबका यहाँ वर्णन हो पाना असम्भव है ॥४॥

ब्रह्मज्ञान रसक्रिया जोई । वेदपाठ कविताई होई ॥५॥
जोतिष औ विद्या संगीता । वैयाकरण जल तरण समेता ॥६॥
युद्धकरन धनु वाण प्रचारी । वाहन वशि सब अश्व सँवारी ॥७॥
विद्या वैदक कोक परवाना । नाटक चेटक चतुर सुजाना ॥८॥

शब्दार्थ — रसक्रिया = पारा, सोना, मोती आदि का भस्म बनाना । वैदक = नाड़ी तथा औषधज्ञान । कोक = काम शास्त्र का ज्ञान । नाटक = नाच । चेटक = इंद्रजाल, बाजीगरी, तमाशा; जादूगरी (मेस्मेरिज्म); सम्मोहनविद्या ।

भावार्थ — ब्रह्मज्ञान, रसक्रिया, वेद पढ़ने की कला, कविता, ज्योतिष, संगीत, व्याकरण, जलमें तैरना, धनुर्वाणादि से युद्ध करना, घोड़े आदि सवारी को अपने वश में रखना, वैद्यक, कामशास्त्र, नाटक तथा सम्मोहन—ये चौदह विद्यायें हैं जिनके जानने वाले लोग चतुर व बुद्धिमान माने जाते हैं ।।५–८।।

चौदह रतन कीन्ह परकाशा । मथिके भवजल विद्या विलासा ।। ९ ।।
कर्ता भये विद्याके सागर । थाह न पावै अगम रतनागर ।।१०।।

शब्दार्थ — कर्ता = ईश्वर । रतनागर = समुद्र ।

भावार्थ — जैसे देव-दनुज ने समुद्र का मंथन करके चौदह रत्न निकाले हैं, वैसे ही लोगों ने संसार सागर में अनेक अन्वेषण करके भोग-उपभोग के लिये अनेक विद्यायें प्रकट की हैं ।।९।। कहते हैं समस्त विद्याओं का सागर ईश्वर है जो अपार समुद्र के समान है, कोई उसकी थाह नहीं पा सकता ।।१०।।

विशेष — देवता-दैत्यों ने समुद्र मथ कर चौदह रत्न निकाले हैं यह कहावत है जो शुद्ध काल्पनिक है; क्योंकि यह सब समझ सकते हैं कि समुद्र के गर्भ में से ये सारी वस्तुयें नहीं निकल सकतीं । वैसे चौदह रत्न जिसकी यहाँ चर्चा है यह हैं—लक्ष्मी, कौस्तुभ-मणि, रम्भा अप्सरा, मदिरा, अमृत, पाँचजन्यशंख, ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, कामधेनु, धनुष, धन्वन्तरि, विष तथा उच्चैश्रवा घोड़ा । इसे एक दोहे में किसी ने पिरो दिया है—

दोहा—श्री मणि रम्भा वारुणी, अमी शंख गजराज ।
कल्पद्रुम शशि धेनु धनु, धन्वन्तरि विष, बाज ।।

अनवनि रतन अंत नहिं सोई । कारण कारज परगट होई ।।११।।
गावहिं गुण कर्ता त्रयदेवा । पावै न पार अनंत कहि तेवा ।।१२।।

शब्दार्थ — अनवनि = अनेक । रतन = रत्न; विद्यायें, कलायें कर्ता = ईश्वर । तेवा = उसे; ब्रह्मको ।

भावार्थ — जैसे समुद्र में अनेक प्रकार के रत्न होते हैं । उनका अंत नहीं होता क्योंकि वे अपने अनुकूल कारण से कार्य रूप में प्रकट होते रहते हैं ।।११।। उसी प्रकार ईश्वर या ब्रह्म को अनेक विद्याओं का समुद्र मानकर त्रिदेव उसके गुण गाते हैं । उसकी सीमा न पाने से उसे अनन्त कहते हैं 'नेति नेति' ।।१२।।

अनंत कला प्रगटै कर्तारा । लेखा करत न पावै पारा ।।१३।।
सोरह कला विदित लखाई । बहु माया सिद्धि प्रगटाई ।।१४।।

शब्दार्थ — कला = विद्या । लेखा = हिसाब; विचार ।

भावार्थ — कहते हैं ईश्वर अनन्त गुणों को प्रकट करता है । उसका कोई हिसाब

करके नहीं पार पा सकता ॥१३॥ इस प्रकार ईश्वर को सोलहों कलायुक्त यानी पूर्ण कलाकार कहकर प्रत्यक्ष प्रदर्शित करने की चेष्टा करते हैं और कहते हैं कि योगी अपनी सिद्धि द्वारा भी बहुत कला का प्रत्यक्षीकरण कर देते हैं ॥१४॥

चौदह भुवन भावना जोई। चौदह यम होय बर्तै सोई ॥२५॥
धर्मराय यमराज विराजै। थूल कला झीना नित गाजै ॥२६॥

शब्दार्थ — यम = वासना। धर्मराय यमराज = वासना। थूल = सूक्ष्म।

भावार्थ — लोग जो चौदह लोक तथा तत्रलोक वासी देवता, ईश्वरादि की भावना कर रखे हैं वही चौदहों की मान्यता मन में वासना बन कर दौड़ रही है ॥१५॥ वह मनकी सूक्ष्मकला व झीनी मानन्दी ही वासना बन कर हृदय में विराजती और नित्य गरजती है ॥१६॥

विशेष — जीव अपने से पृथक जो कुछ भी मानता है वह उसकी मनोभावना व वासना मात्र है।

साखी–धर्मराय राजा सोई, चौदह बाहन संग।
नर्क स्वर्ग दुख सुखमई, उठे अनेक तरंग ॥२७१॥

शब्दार्थ — धर्मराय = यमराज; वासना। बाहन = सवारी; मानन्दी।

भावार्थ — उपर्युक्त वासना राजा है, उसके साथ में चौदह भुवन (सारे प्रपंच) की आसक्ति व मानन्दी ही सवारी है। इसी के बीच में नरक, स्वर्ग, दुख और सुख के अनेक तरंगें उठती हैं और जीव उन्हीं में डूबते हैं ॥२७१॥

जननी के परसंग सो, विद्या लहै अनेक।
चौदह मूल प्रमाण ले, कीन्हा प्रगट विवेक ॥२७२॥

शब्दार्थ — जननी = माता। परसंग = संबंध, सम्पर्क।

भावार्थ — त्रिदेव माता अष्टांगी के सम्पर्क में अनेक विद्यायें प्राप्त किये; और वे चौदह मुख्य विद्याओं का आधार लेकर अनेक विद्याओं पर अपना विवेक प्रकट किये ॥२७२॥

वर्णन करहिं बहुभाँतिते, त्रिदेवा समुदाय।
विदित जगत परचंड सो, फाँस गाँस न लखाय ॥२७३॥

शब्दार्थ — फाँस गाँस = बंधन।

भावार्थ — आज लोग त्रिदेवादि समूह का प्रमाण देकर चौदह विद्यादिका अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं। परन्तु विवेक से यह विदित होता है कि वे विद्यायें संसारी या त्रिगुणात्मक होने से जीव के लिए आसक्तिप्रद होकर विकट बन्धन हैं। फिर भी लोगों को यह बंधन दिखाई नहीं देता ॥२७३॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-४३, ४१

जिन्ह जिव कीन्ह आपु विश्वासा । नरक गये तेहि नरकहिं वासा ॥१॥
आवत जात न लागे बारा । काल अहेरी साँझ सकारा ॥२॥

शब्दार्थ — आवतजात = जन्मते-मरते । अहेरी = शिकारी ।

भावार्थ — जिन जीवों ने यह विश्वास कर लिया कि मैं देह ही हूँ । वे नरक में गये, और वे नरक ही में निवास पायेंगे (क्योंकि देहाभिमानी होकर वे विषय रूपी नरक में आसक्त हैं) । ॥१॥ उनके जन्मने-मरने में विलम्ब नहीं लगेगा । देहधारियों के पीछे काल रूप शिकारी दिन-रात लगा रहता है, प्रतिक्षण आयु को क्षीण करते हुए, एक दिन समूल खा लेता है ॥ ॥

चौदह विद्या पढ़ि समझावा । अपने मरण की खबरि न पावा ॥३॥
जाने जीव को परा अँदेसा । झूठहिं आयके कहा सँदेसा ॥४॥

शब्दार्थ — मरण = मृत्यु, अज्ञान, पतन । जाने जीव = चतुर लोग । सँदेसा = उपदेश ।

भावार्थ — बड़े-बड़े विद्वान लोग, चौदहों विद्याओं को पढ़कर, दूसरे को भी समझाते हैं । परन्तु अपनी मृत्यु, अज्ञान एवं पतन का पता उन्हें नही है ॥३॥ चतुर लोगों के हृदय में भी सन्देह हो गया । क्योंकि भ्रमिक गुरुओं ने संसार में आकर झूठी-मूठी बातों के ही उपदेश फैलाये हैं ॥४॥

संगत छाड़ि करे असरारा । उबहै मोट नरक कर भारा ॥५॥

शब्दार्थ — असरारा = दुष्ट व्यवहार । उबहै = उलीचना । मोट = चाम का मोट (कूयें से पानी निकालने का थैला), देह ।

भावार्थ — विवेकी सन्तों की संगत छोड़कर, मनमती लोग दुष्टता का व्यवहार करते हैं । मानों चाम के मोट में नरक भर कर उलीचते हैं (अपने द्वारा अपनी बुराई फैलाते हैं) । अथवा—विषयासक्ति वश नरक के बोझ से भरे हुए, शरीर रूपी मोट को ढोते हैं ॥५॥

साखी—गुरु द्रोही मन्मुखी, नारी पुरुष विचार ।
ते नर चौरासी भरमि हैं, ज्यौं लौं चन्द्र दिवाकार ॥२७४॥

शब्दार्थ — दिवाकार = दिवाकर, सूर्य ।

भावार्थ — विचार करके देखा जाय, तो जो गुरु-द्रोही एवं मन्मुखी (मन्मती) है, चाहे स्त्री हो या पुरुष, वे मनुष्य जीव (यदि गुरु न मिले तो) चारों खानियों में तब तक भटकते रहेंगे, जब तक चाँद-सूर्य हैं ॥२७४॥

विशेष — यहाँ का वास्तविक भाव यह है कि गुरु-विमुख जीव तब तक भटकेगा, जब तक गुरु बोध नहीं प्राप्त होगा।

रमैनी- ४१

अम्बु की राशि समुद्र की खाई। रवि शशि कोटि तैंतीसों भाई ॥१॥
भँवर जाल में आसन माड़ा। चाहत सुख, दुःख संग न छाड़ा ॥२॥

शब्दार्थ — अम्बु=पानी, वीर्य। राशि=समूह, शरीर। समुद्र=संसार। खाई=गड्ढा, माया। रवि शशि=आदित्य चन्द्रमा नाम के देवता। कोटि तैंतीसों=तैंतीस करोड़ देवता। भँवरजाल=काम-जाल, मोह-जाल। माड़ा=जमाया।

भावार्थ — वीर्य से रचित यह शरीर, संसाररूपी माया के गड्ढे में पड़ा हुआ है। अथवा जैसे पानी की राशि समुद्र की खाईं में होती है, वैसे काम की राशि माया मोह की खाईं में होती है। हे भाई! इस खाईं में आदित्य, चन्द्रमा एवं तैंतीस करोड़ देवता पड़े हैं ॥१॥ सब लोग काम-जाल एवं मोह-जाल में आसन जमाये हैं। चाहते सब सुख हैं, परन्तु दुःखदायी भोगों का संग छोड़ना नहीं चाहते ॥२॥

विशेष — रवि-शशि अर्थात सूर्य-चन्द्रमा जो आकाश में चमकते हुए जड़तत्त्वों के पिण्ड हैं, उनका मन्तव्य यहाँ नहीं है। क्योंकि वे तो प्रत्यक्ष जड़ हैं। यहाँ तो किसी चेतन रवि-शशि के लिए कहा गया है। पुराणों में जो कई स्थलों पर आदित्य-चन्द्रमा आदि का वर्णन आता है, जो कि लोगों से बात-चीत करते, मिलते-जुलते थे, उन्हीं के लिये यहाँ मन्तव्य है।

दुःख को मर्म न काहू पाया। बहुत भाँतिके जग भरमाया ॥३॥
आपुहि बाउर आपु सयाना। हृदया बसे तेहि राम न जाना ॥४॥

शब्दार्थ — बाउर=पागल। सयाना=चतुर।

भावार्थ — दुःख का भेद कोई नहीं पाया। इस विषयासक्ति और वाणी की कल्पना ने जगत जीवों को बहुत प्रकार से नाच नचाया है ॥३॥ भँवरजाल (विषयों) में पड़कर मनुष्य स्वयं पागल बनता है और बकुजाल (कल्पित वाणियों के चक्कर) में पड़कर स्वयं चतुर बनता है। परन्तु हृदय में जो चेतन रूप राम बसता है, उसको नहीं जानता।

साखी—तेही हरी तेहि ठाकुर, तेही हरी के दास।
ना यम भया न जामिनी, भामिनि चली निराश ॥२७५॥

शब्दार्थ — हरी=विवेक हरने वाली माया कल्पना। ठाकुर=स्वामी। यम=वासना। जामिनी=साक्षी, भ्रमिक गुरु। भामिनि=भावुक जीव।

भावार्थ — स्वतन्त्र विवेक को हरने वाली माया जीव के ऊपर स्वामिनि बनी; और उसी के सब जीव दास बने। अन्त में जीव का साथी न यम हुआ और न साक्षी (गवाह) भ्रमिक गुरु लोग हुए, यह भावुक जीव कल्याण से निराश होकर, पुनः गर्भवास में चला ॥२७५॥

७६–अपना चेतन स्वरूप जड़-चेतन अभिन्न अद्वैत नहीं अपितु जड़से भिन्न है

चौपाई—८०

ब्रह्म समाधि त्रिदेव लगावै। तृपित रूप अक्षय सोइ गावै ॥१॥
तेहि तृपित सोइ आगि समाना। जेहि से जरै सकल अरुझाना ॥२॥

शब्दार्थ — तृपित = तृप्त, संतुष्ट। आगि = स्वाभाविक जगतइच्छा।

भावार्थ — त्रिदेव के अनुयायी सब ब्रह्म में समाधि लगाते हैं और कहते हैं वह सन्तुष्ट तथा अविनाशी स्वरूप है ॥१॥ परन्तु यह भी उन्हें समझना चाहिये कि उसी तृप्त स्वरूप ब्रह्म में स्वाभाविक जगत उत्पन्न करने की इच्छा रूपी आग अभिन्न रूप से समायी हुई है जिसमें सब प्राणी पड़कर जल रहे और उलझे पड़े हैं ॥२॥

संशय शोक लहरि उठि आवै। पुनि सो वाही जाय समावै ॥३॥
परवश जीव न सूझै पारा। अगम अथाह शब्द उच्चारा ॥४॥

शब्दार्थ — पारा = किनारा। अगम = अप्राप्य।

भावार्थ — लोगों के मनमें उसके विषय में सन्देह की दुःखमय तरंगें उठती हैं; और पुनः उसी की मान्यता में जाकर लीन हो जाती हैं कि है कोई ॥३॥ इस प्रकार व्यक्ति मन की कल्पनाओं के वश में पड़ा हुआ उसे किनारा नहीं दिखता और वह उसके लिये अप्राप्य, अथाह शब्दों को कहकर संतोष कर लेता है ॥४॥

तीनि लोकके द्रष्टा आपू। दृश्य सबै माया परतापू ॥५॥
नहिं पुनि दृश्य न द्रष्टा कोई। गुमसुम आपु अकेले सोई ॥६॥

शब्दार्थ — आपु = स्वयं, ब्रह्म। परतापू = प्रताप, प्रभुत्व। गुमसुम = अनिर्वाच्य; मौन।

भावार्थ — (कहते हैं) ब्रह्म तीन लोकों (सब) का द्रष्टा है, उससे भिन्न जो कुछ दृश्य है वह माया का प्रभुत्व है ॥५॥ फिर अंत में कहते हैं न दृश्य है और न कोई द्रष्टा है वह अकेला मौन है ॥६॥

नाहिं नाहिं सो लखेउ स्वरूपा। नहिं नाशक सो आपु अनूपा ॥७॥
नाशक नाशे जीवहिं भोरी। त्रिगुण फाँस कलेश न थोरी ॥८॥

शब्दार्थ — नाहिं नाहिं = नेति नेति । **अनूपा** = विलक्षण । **नाशक** = सबका लय करने वाला ब्रह्म । **भोरी** = भुलाकर ।

भावार्थ — वे जो सबको नहीं-नहीं अर्थात सबका अभाव करता है उसे अपना स्वरूप समझते हैं । यह सबका निषेधक, सबका अभाव या लय करने वाला स्वयं विलक्षण है ।।७।। सबका अभाव या लय करने वाला जीव को भी भुलाकर उसका अपने में या एक अधिष्ठान में विलय होना बतलाता है । इस प्रकार तीनों गुणोंके मतों में जीवों को अत्यन्त कष्ट है ।।८।।

विशेष — 'नाहिं नाहिं सो लखेउ स्वरूपा' । इसका अभिप्राय यह है कि जो यह कहता रहे कि मैं यह पृथ्वी नहीं हूँ, मैं यह जल नहीं हूँ, मैं यह अग्नि, वायु, आकाश नहीं हूँ; मैं यह देह नहीं हूँ, वह 'नहीं' कहने वाला सबका अभाव कर्ता सबका निषेधक अपना स्वरूप है । यह सब बात तो ग्रन्थकार के अपने पारखसिद्धान्त में भी मान्य है । फिर यहाँ उसे नाशक या जीव को भुलाने वाला क्यों कहा गया ? इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्मवादी जन पहले तो यह कहते हैं कि मैं यह नहीं हूँ । अर्थात मैं पृथ्वी, जलादि दृश्य नहीं हूँ । सबका अभाव करने वाला हूँ । यहाँ तक कि वे अविनाशी जीव को भी प्रतिबिम्ब व प्रतिभास कहकर उसका भी अभाव करने का दुस्साहस करते हैं । परन्तु अन्त में वे कहते हैं कि सब कुछ मैं ही हूँ । एक तो स्वरूपतः भिन्न असंख्य अविनाशी जीवों को मिथ्या, प्रतिबिम्ब, प्रतिभास आदि कहकर उसका नाश मान लेते हैं और दूसरा अपने स्वरूप को जड़से अभिन्न मान लेते हैं । अतएव उनका यह कहना कि मैं यह नहीं हूँ, यह नहीं हूँ केवल औपचारिक एवं दिखाऊ रहता है । इसलिये वे जीवों को उनके वास्तविकस्वरूप से भटका देने वाले ही होते हैं । इसका उदाहरण लें, ब्रह्मवादी सुन्दरदासजी कहते हैं—

तूं तौ कछु भूमि नांहि अप तेज वायु नांहि,
व्योम पंच विषै नांहि सो तौ भ्रम कूप है ।
तूं तौ कछु इन्द्रिय रु अंतःकरण नांहि,
तीन गुण तूं तौ नांहि न तौ छांहि धूप है ।।
तूं तौ अहंकार नांहि पुनि महतत्त्व नांहि,
प्रकृति पुरुष नांहि तूं तौ स्व अनूप है ।
सुन्दर विचार ऐसे शिष्य सूं कहत गुरु,
नांहि नांहि कहत रहै सो तौ तेरो रूप है ।।

उपर्युक्त कवित्त में प्रकृति के साथ में पुरुष आया है जो चेतन वाचक है; सुन्दर दासजी ने उसे भी अपना स्वरूप नहीं बतलाया है क्योंकि वह सांख्य का पुरुष होगा । खैर, अन्य बातें तो उत्तम ही कही है कि तू पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि नहीं है । जो

सबको अस्वीकार कर दे वही स्वतः स्वरूप है। बहुत बढ़िया बात है। परन्तु इस दिखाऊ विवेक के भीतर बहुत बड़ा भंगार भरा है। वे कहते हैं—

तो में है जगत यह तू हूँ है जगत माहि,
तो में अरु जगत में भिन्नता कहां रही।
भूमि ही ते भाजन अनेक विधि नाम रूप,
अंत में विचार देख उहै एक है मही॥
जल के तरंग फेन बुदबुदा अनेक भांति,
करके विचार देख उहै जल है सही।
जेते महापुरुष हैं सबकूं सिद्धांत एक,
सुन्दर अखिल ब्रह्म अंत वेद यूं कही॥

अर्थात जगत तेरे में है और तू जगत में है फिर तुम्हारे और जगत में पृथकता कहाँ रह गयी ? पृथ्वी से अनेक बर्तन बनते हैं, परन्तु अन्ततः सब बर्तन पृथ्वीरूप हैं। जल के अनेक तरंग, फेन, बुदबुदा होते हैं, परन्तु अन्ततः वे सब जल हैं। इसी प्रकार जितने महापुरुष हैं सबका एक सिद्धान्त है और वेदों ने भी अंततः यही कहा है कि सारा विश्व ब्रह्म है। क्योंकि विश्वका अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म है।

यहाँ आकर ऊपर का सारा विवेक नष्ट हो गया और यहाँ जड़-चेतन वैसे ही अभिन्न हो गये जैसे जल और उसके तरंग। इसीलिये मूलकार ने कहा कि 'नाशक नाशे जीवहिं भोरी।' ये जीव को भुलाकर जड़ में मिला देने का उपदेश करते हैं।

वस्तुतः जीव अनेक हैं वे चेतन स्वरूप एक दूसरे से सर्वथा पृथक और जड़से भी सर्वथा पृथक हैं।

सत्य वैद्य जियावन हेतू। सो नाशक वशि भये अचेतू॥९॥
कीन्ह अचेत सुधि नहिं राखी। देखहु परखहु मत सब साखी॥१०॥
पारख सबके बीजक कीन्हा। जहाँ वो जीव चिन्हावै दीन्हा॥११॥

शब्दार्थ — वैद्य = सद्गुरु। अचेतू = असावधान।

भावार्थ — जैसे रोगी व्यक्ति सच्चे वैद्य के पास जाता है जो उसे नीरोग कर दे, वैसे मुमुक्षु को सच्चे सद्गुरु के पास जाना चाहिए जो उसे सच्चा स्वरूपबोध देकर भवबन्धनों से मुक्त कर सके। परन्तु अधिकांश मुमुक्षु भ्रम में डालने वालों के वशवर्ती होकर असावधान हो गये हैं॥९॥ फलतः उनलोगों ने अग-जग अपना स्वरूप बतला कर उन्हें बदहोश कर दिया है, फिर उनको जड़-चेतन के निर्णय की सुध नहीं रह गयी। परख करके देखो उनके मत की पुस्तकें या मान्यतायें इस बात की साक्षी दे रही हैं॥१०॥ सद्गुरु कबीर रचित बीजक में इन सबके मतों की परख एवं छानबीन करायी गयी है; और जीव जहाँ है, उसका जैसा स्वरूप है परिचय कराया गया है॥११

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी—३७

एक सयान सयान न होई। दूसर सयान न जाने कोई ॥१॥
तीसर सयान सयानहिं खाई। चौथे सयान तहाँ लै जाई ॥२॥
पँचये सयान जो जानेउ कोई। छठयेंमा सब गयल बिगोई ॥३॥
सतयाँ सयान जो जानहु भाई। लोक वेद मों देउँ देखाई ॥४॥

शब्दार्थ — एकसयान = अद्वैतब्रह्म। दूसरसयान = माया या मायाविशिष्ठ ईश्वर। तीसरसयान = कर्म, उपासना, योग या ब्रह्मा, विष्णु, शिव। चौथे सयान = चारों वेद। पँचये सयान = पंचविषयासक्त भौतिकवादी। छठयें सयान = मन। सतयाँ सयान = जीव।

भावार्थ — एक अद्वैत ब्रह्म को जो श्रेष्ठ माना है वह तो श्रेष्ठ हो नहीं सकता (क्योंकि अद्वैत की कल्पना करने वाला जीव ही है)। लोगों ने दूसरा श्रेष्ठ जो माया को माना है, उसको तो कोई जानता ही नहीं, बड़े-बड़े विद्वान उसे सत-असत से परे अनिर्वचनीय बताते हैं, फिर वह श्रेष्ठ क्या होगी ? अथवा माया-विशिष्ठ ईश्वर को जो श्रेष्ठ माना है, वह भी श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि उसको भी लोग टटोल-टटोल कर कहते हैं, अतः वह भी मनःप्रसूत है ॥१॥ तीसरे सयान जो कर्म१—उपासना-योग हैं, ये भी श्रेष्ठ नहीं हो सकते अथवा ब्रह्मा, विष्णु, शिव तो माया-वश हैं, ये श्रेष्ठ कैसे हो सकते हैं ? ये तो माया में पड़कर अपने ही सयानपन को खो चुके हैं। चौथे जो चारों वेदों को श्रेष्ठ माना है, वे भी उसी कल्पना वाणी-जाल एवं सकाम-कर्ममें ले जाते हैं (अतः ये भी श्रेष्ठ नहीं) ॥२॥

पाँचवें सयान२—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन पाँच विषयों को ही श्रेष्ठ

१—कर्म से सकाम कर्मादि, उपासना से कल्पित ईश्वरादि की उपासना तथा योग से हठ योगादि समझना चाहिये। यों निष्काम शुभकर्म, सद्गुरु-सन्तों की उपासना और चित्त-निरोधरूप योग सर्वथा माननीय हैं।

२—पाँचवें सयान का तात्पर्य पाँच तत्त्व भी है। भूले लोग इन पाँच तत्त्वों को देवी-देवता या परमात्मा-ब्रह्म करके मानते हैं। जैसे पृथ्वी के कार्य अष्टधातु, पत्थर, काष्ठ, मिट्टी आदि की मूर्तियाँ बनाकर या चौरी-चौरा पाटकर उसे भगवान या देवी-देवता मानकर पूजना। गंगा-यमुना-सरयू आदि नदियों के जल को पूजना। अग्नि को देवता मानकर उसे पूजना 'गुरुर्ग्निर्द्विजातीनां'। वायु को पवन देवता मानकर उसे पूजना तथा शून्य आकाश को ब्रह्म रूप या ब्रह्म ही मानकर उसकी उपासना करना—यह सब अज्ञान का लक्षण है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि इस प्रकार पाँच जड़तत्व तथा उसके कार्य पदार्थ श्रेष्ठ, सत्य एवं उपास्यदेव या उद्धारक नहीं हो सकते। अथवा चेतन पक्ष को न मानने वाले जो भौतिकवादी पाँच तत्व को ही सर्वोपरि मानते हैं वे महा अज्ञान में हैं। क्योंकि जड़तत्व श्रेष्ठ नहीं हो सकते।

मानने वाले इन्हीं के भोगी देहाध्यासी एवं भौतिकवादी हैं। यदि कोई इन पंच विषय-भोगों को ही श्रेष्ठ करके मानता है (वह तो बिलकुल अज्ञान दशा में है)। और छठयें—मन में तो सब जीव खराब हुए हैं। अर्थात मन की वासना कल्पना में सब जीव बन्धमान हुए ॥३॥ ऐ भाई ! सातवें जीव को यदि सत्य करके जानो, तो मैं लोक और वेद में तुम्हें दिखा दूँ ॥४॥

विशेष — उपर्युक्त छह का खण्डन करके, सातवें को सद्गुरु अपना सिद्धान्त बतलाते हैं। वह सातवाँ जीव है। क्योंकि आगे साखी में इसका स्पष्टीकरण हो गया है। सद्गुरु कहते हैं कि यदि सातवें जीव को श्रेष्ठ करके जानो तो उसका प्रमाण लोक-वेद दोनों से मिल सकता है। लोक में देह से जब जीव निकल जाता है, तब अज्ञानी भी जानता है कि अब जीव निकल गया। इसीलिये शरीर निष्प्रयोजन हो गया। जीव ही से शरीर चलता है। जीव के न रहने पर कल्पित ईश्वर-ब्रह्म कोई उसको चला नहीं सकता, और जीव के अविनाशी होने में वेदादि शास्त्र के प्रमाण तो अधिक रूप से हैं ही। इसीलिये लोक-वेद दोनों से जीव की श्रेष्ठता एवं सत्यता प्रमाणित है। अतः जीव ही सर्वोपरि है।

साखी—बीजक वित्त बतावै, जो वित गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीवको, बूझै विरला कोय ॥२७६॥

शब्दार्थ — बीजक=बीजक ग्रन्थ या सांकेतिक शब्दों में गुप्त धन का परिचय कराने वाला ताम्र पत्र आदि।

भावार्थ — जो धन कहीं गुप्त रूपसे गड़ा हुआ रहता है उस धन को सांकेतिक शब्दो में बीजक बताता है। इसी प्रकार विषयों के पर्दे में छिपे हुए गुप्त जीव को इस बीजक ग्रन्थ के गुरुमुख निर्णय पारख के शब्द बतलाते हैं; परन्तु इसे कोई बिरला ही बूझता है ॥२७६॥

साखी—तीन लोकके द्रष्टा कहिये, इच्छारूपी राँड़।
तिनहुँ के भीतर सो निकसी, पैठि रही तेहि भाँड़ ॥२७७॥

शब्दार्थ — राँड़=माया। तिनहुँ = ब्रह्म। भाँड़=बर्तन।

भावार्थ — तीनलोक (सारे विश्व) को रचने वाली इच्छा रूपी माया है। वह ब्रह्मके भीतर से निकली हुई बतायी जाती है और अंततः उसी ब्रह्म रूपी बर्तन में प्रविष्ट हो जाती है ॥२७७॥

नहीं रोग नहिं रोगी कहते, सत्य वैद्य सो नाम।
संशयमई विकल फिरै, पूरण ब्रह्म अकाम ॥२७८॥

शब्दार्थ — रोग=अविद्या। रोगी=जीव। सत्य वैद्य=ब्रह्म।

भावार्थ — कहते हैं वस्तुतः न अविद्या है न जीव हैं। जिसका नाम ब्रह्म है वही सत्य वेद्य है। वह ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण और निष्काम है। ऐसा कहकर भी संदेह का रूप धारण किये बेचैन बने घूमते हैं ॥२७८॥

विशेष — एक ब्रह्ममें अविद्या, जीव, जगत, ईश्वर—यह सब सम्भव नहीं। फिर भी नानात्व दिखता है। वह पूर्णकाम है फिर भी उसमें जगत रचनेकी असाध्य इच्छा है। मैं जड़ से भिन्न चेतन हूँ पुनः जड़ भी मेरा ही स्वरूप है—यह सब संशय पूर्ण ब्रह्मज्ञान है।

कालचक्र के फेरमें, जियरा परै भुलाय।
नित्य प्रलय परलय रहै, महाप्रलय हाथ बिकाय ॥२७९॥

शब्दार्थ — कालचक्र = कल्पना का चक्कर। महाप्रलय = सबका ब्रह्म में अभिन्न रूप से विलय।

भावार्थ — मनके कल्पना चक्कर में सब व्यक्ति भूले पड़े हैं। रोज सो जाना रूपी नित्य प्रलय तथा शरीर का छूट जाना रूपी जलामय प्रलय के वश में जीव पड़े ही हैं, व्यक्तित्व का सर्वथा विलय होकर ब्रह्म में मिल जाना रूपी महाप्रलय के हाथोंमें भी जीव बिका हुआ है ॥२७९॥

विशेष — जीव अजर-अमर है। उसका विलय या नाश असम्भव है। नाना जीवों से पृथक ब्रह्म नाम की कोई वस्तु मानना एक कल्पना है। परन्तु उसी कल्पना में भूले लोग अपना अंततः विलय मानते हैं।

लोक देव गुण कर्म त्रय, ताप कला तन तीन।
तृणके ओट पहाड़ है, वाणी तीन प्रवीन ॥२८०॥

शब्दार्थ — कर्म त्रय = संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण। कला = रचना—स्त्री, पुरुष, नपुंसक। तन तीन = स्थूल, सूक्ष्म, कारण। वाणी तीन = काल, संधि, झाँई तथा जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख।

भावार्थ — नाना लोकों; देवताओं; तीनों गुणों; तीनों कर्मों; तीनों तापों; स्त्री, पुरुष, नपुंसक शरीर की इन तीन रचनाओं, स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरों तथा बुद्धिमानों की काल, संधि, झाईं ये तीन वाणियों आदि की मान्यता रूपी तृण के आड़ में अपना चेतनस्वरूप रूपी पर्वत छिपा है ॥२८०॥

विशेष — जैसे पर्वत दूर से दिखाई देता है; परन्तु आँख के सामने पास में ही एक छोटा तृण रख लिया जाय तो वह नहीं दिखेगा।

अपना चेतनस्वरूप सबका द्रष्टा होने से स्वयं प्रत्यक्ष है। परन्तु स्वस्वरूप के साक्षात्कार होनेमें भ्रमकृत मान्यताओं का तुच्छ तृण अवरोधक हो रहा है। स्वरूपज्ञान

के जिज्ञासु को चाहिये कि वह विवेकी सन्तों से सत्संग करे तथा लोक, देवता, गुण, कर्म, ताप, रचना, वाणी आदि दृश्यों का द्रष्टा बन जाय ।

परवश जियरा कालके, दुख पावै संसार ।
बिनु पारख भटकत फिरै, थकै विचार विचार ॥२८१॥

शब्दार्थ — काल = कल्पना ।

भावार्थ -- व्यक्ति मनःकल्पनाओं के वश में पड़ा हुआ संसार में दुःख पाता है । उसे कल्पनाओं की परख न होने से उनमें भटकता फिरता है और उन्हीं भ्रममान्यताओं का विचार कर-करके थकित होता है ॥२८१॥

महाचाक भवचक्र है, ठहरै नहीं छिन एक ।
तहाँ जियरा चाहै कुशल, करि करि ब्रह्मविवेक ॥२८२॥

शब्दार्थ — भवचक्र = जन्म और जगत का चक्कर ।

भावार्थ — माना हुआ ब्रह्म जन्म जगत आदि का स्वाभाविक कारण व योनि होने से वह महान भवचक्कर है । वह क्षण भी कभी स्थिर न होकर उसमें सदैव उत्पाद और विनाश होता रहता है । उसी ब्रह्मचक्र का विवेक करके तथा उसमें स्थित होकर व्यक्ति अपना कल्याण चाहते हैं, फिर कैसे सम्भव है ? ॥२८२॥

७७—अनेक भ्रमों का निराकरण

चौपाई—८१

बिन गुरु पूरण पूर न होई । कोटिक जतन करै जो कोई ॥१॥
बहुतक जतन करै संसारा । मुद्रा पाँचों नाम अधारा ॥२॥

शब्दार्थ — पूर = पूर्ण कल्याण । मुद्रा पाँचों = पाँच मुद्रायें—खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी तथा सर्वसाक्षिणी ।

भावार्थ — बिना पूर्ण पारखी सद्गुरु के मिले व्यक्ति का पूर्ण कल्याण नहीं होता, चाहे कोई अन्य करोड़ों साधनायें करे ॥१॥ संसार के लोग मोक्षप्राप्ति के लिये अनेक साधनायें करते हैं । कोई खेचरी आदि पाँच मुद्राओं की साधना करता है और कोई किसी नामजप का आधार लेकर पड़ा है ॥२॥

साधन विविधि बिगुर्चन भारी । कामिनिरूपी भक्ति विचारी ॥३॥
ब्रह्मज्ञान अद्वैत कहावै । विषय विकार सदा पछतावै ॥४॥

शब्दार्थ — बिगुर्चन = उलझन । कामिनि = साधक का अपने आपको ईश्वर की पत्नी मानना ।

भावार्थ — अनेक ऐसे साधन हैं जो पूरे उलझन के रूप हैं । कोई इस प्रकार की भक्ति करने का विचार कर लिया कि मैं भगवान की पत्नी हूँ ॥३॥ कोई ब्रह्मज्ञान

की साधना करके अपने आपको जड़-चेतन अभिन्न अद्वैत कहने लगा; और इस सिद्धांत में विषय विकार भी अपने स्वरूप से पृथक न होने से सदैव पश्चाताप एवं दुःख के रास्ते में पड़ गया ॥४॥

अनहद वोहं सोहं जापा। शून्याशून्य निःअक्षर थापा ॥५॥
नाम निःअक्षर जपहिं मनलाई। अर्ध नाम ररा रराई ॥६॥

शब्दार्थ — अनहद = अनाहतनाद। शून्याशून्य = केवल शून्य।

भावार्थ — कोई खोपड़ी के नसों की झनकारोंको अनाहतनाद कहकर उसी को जप मानता है, कोई वोऽहम् और कोई सोऽहम् जपता है। कोई केवल शून्य के ध्यान में मग्न है तो कोई अक्षरों से रहित जप की सिद्धि करता है ॥५॥ कोई मग्नभाव से निःक्षर नाम का जप करता है और कोई रामके आधे नाम 'रा' को लिये हुए ररा रहा है ॥६॥

धावहिं स्वर अक्षरन के माँहीं। जल थल पाथर मों अरुझाहीं ॥७॥
विविधि प्रकार युक्ति जग जापू। फंदा बंदी सहै संतापू ॥८॥

शब्दार्थ — फंदा = बन्धन। बंदी = कैदी, बंधनग्रस्थ।

भावार्थ — वस्तुतः लोग जप के नाम पर स्वर-व्यंजनों में भटकते हैं; अथवा गंगा-यमुनादि नदियों के जलों, देवी-देवादि मानकर चौरी-चौरा आदि मिट्टी के पिंडों, मूर्ति आदिरूपी पत्थरों में फँसे पड़े हैं ॥७॥ इस प्रकार अनेक विधि के कल्पित साधनाओं में पड़कर लोग सांसारिक ताप सहते है, और भ्रमके कारावास में पड़े हुए बंधनजनित दुःख उठाते हैं ॥८॥

बिनु पारख नहिं चीन्है काला। बिनु चीन्हें रहै भवके जाला ॥९॥
पंचकोश के घेरा माहीं। देखहु संत कतहु सुख नाहीं ॥१०॥

शब्दार्थ — काला = काल; कल्पना; अज्ञान। भव = जन्म; संसार।

भावार्थ — कोई भी व्यक्ति बिना पारखदृष्टि की प्राप्ति हुए अज्ञान को नहीं परख सकता; और उसको पहचान कर त्याग किये बिना वह संसार के बंधनों में ही रहेगा ॥९॥ हे संतो ! विवेक करो, पाँचों कोशों के घेरे के बीच में मन रखने से व्यक्ति को कभी शांति नहीं मिल सकती ॥१०॥

साखी—महाचक्रके चरखपर, घूमन लागे जीव।
चैन न पावै दुख सहै, गोहरावै पिव पीव ॥२८३॥

शब्दार्थ — महाचक्र = मनःकल्पनाका बड़ा चक्कर।

भावार्थ — मनःकल्पना के महान चक्कर पर चढ़कर सब जीव घूम रहे हैं।

उन्हें उस चक्कर में विश्रांति नहीं मिलती प्रत्युत उसमें दुःख उठाते हैं। अतएव उससे छुटकारा के लिये किसी पति-परमात्मा को अलग मानकर उसे पुकारते हैं ॥२८३॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-४६

कबीर भरम न भाजिया, बहुविधि धरिया भेष।
साँईं के परचावते, अन्तर रहि गई रेष ॥२८४॥

शब्दार्थ — साँईं = ब्रह्म। परचावते = परिचय कराते। रेष = लकीर, अध्यास, वासना।

भावार्थ — अनेकों प्रकार के वेष धारण करने पर भी, जीवों का भ्रम दूर नहीं हुआ। ब्रह्म का परिचय करते कराते, गुरु-शिष्य दोनों के अन्तःकरण में जगत की वासना शेष रह गयी ॥२८४॥

विशेष — जल तरंगवत जगतब्रह्म एक वस्तु है। अतएव इस ब्रह्मज्ञान के निर्णय से गुरु-शिष्य सभी जगतरूप हो रहे हैं। क्योंकि जगत से त्रयकाल पृथक एवं व्याप्य-व्यापक-वर्जित अपने चेतन स्वरूप को समझे बिना जगत अध्यास कैसे मिट सकता है ?।

आप अपन पौ भेद बिन, उलटि पलटि अरुझाय।
गुरु बिन मिटै न दुगदुगी, अनबनि यतन नशाय ॥२५॥ (पंचग्रंथी-रमैनी)

७८–संसार की नश्वरता

चौपाई—८२

विशेष रूप त्रिदेव नशाना। काल कराल मुख जाय समाना ॥१॥
लक्ष्मी पारवती ब्रह्मानी। एक एककै सबै बिलानी ॥२॥

शब्दार्थ — कराल = भयंकर।

भावार्थ — विशेष कलाधारी रूप महान ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव जी भी भयंकर मृत्यु के मुख में लीन हो गये ॥१॥ इसी प्रकार उनकी क्रमशः अर्धांगिनियाँ ब्रह्मानी, लक्ष्मी और पारवती भी एक-एक करके मृत्यु के मुख में विलीन हो गयीं ॥२॥

गुणमय रूप रहे त्रिदेवा। संतत अपनी करावै सेवा ॥३॥
कारण कारज विविधि प्रकारा। थूल अस्थूल उपजायकै मारा ॥४॥

शब्दार्थ — संतत = सदैव। थूल = सूक्ष्म।

भावार्थ — वस्तुतः रज, सत, तम ये तीन गुण ही त्रिदेव हैं। ये सृष्टि में सर्वत्र रहकर हर प्राणी से अपनी सदैव सेवा कराते हैं। अर्थात भूलवश सब जीव त्रिगुणात्मक भौतिक भोग के ही उपासक बने हैं ॥३॥ अनेक प्रकार के कार्यपदार्थों की उत्पत्ति में पृथ्वी आदि तत्त्व तो कारण हैं ही, परन्तु उन तत्त्वों में जो सृजन, पोषण

तथा विघटन के स्वभाव रूप त्रिगुण हैं वे भी उसमें कारण हैं। इस प्रकार ये त्रिगुण पदार्थों को सूक्ष्म से स्थूल रूप उत्पन्न करके पोषते और पुनः नष्ट कर देते हैं ॥४॥

उपजै विनशै सहज स्वभाऊ। पिंड ब्रह्मांड सब यमके दाऊ ॥५॥
कोई न बचा जे जग औतारा। नाशक रूपमई संसारा ॥६॥

शब्दार्थ — यम = मन। दाऊ = दाँव, छल।

भावार्थ — त्रिगुणात्मक प्रकृति का स्वभाव ही है कि उसमें कार्य उत्पन्न हो, कुछ दिन उनकी स्थिति हो और पुनः उनका विनाश हो। अतएव शरीर-संसार में आस्था करना मनका छल है ॥५॥ जगत में जिसका भी अवतार हुआ या जो जन्म लिया कोई मृत्यु से नहीं बचा। यह संसार नाशवान स्वरूप अर्थात परिवर्तनशील है ही।

विशेष — तीन गुणों से पृथ्वी आदि की उत्पत्ति बताना एक भ्रम है। वस्तुतः पृथ्वी आदि तत्त्वों में जो सृजनस्वभाव है वही 'रज' गुण है, उनमें जो पोषण स्वभाव है वह 'सत' गुण है और बिखरना 'तम' गुण है।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-५४

मरिगौ ब्रह्मा काशी को वासी। शीव सहित मूये अविनाशी ॥१॥
मथुरा को मरिगौ कृष्ण गोवारा। मरि मरि गये दशों अवतारा ॥२॥
मरि मरि गये भक्ति जिन ठानी। सगुण मा निर्गुण जिन आनी ॥३॥

शब्दार्थ — अविनाशी = विष्णु जी।

भावार्थ — ब्रह्माजी मर गये, और काशी के निवासी शिव के सहित अविनाशी कहलानेवाले विष्णु जी भी नहीं रह गये ॥१॥ मथुरा के कृष्ण गोपाल भी नहीं रहे। श्रीराम आदि दशों अवतार भी संसार से पयान कर गये ॥२॥ उपर्युक्त पुरुषों की नाच-गाय, रोय-हँसकर जिन्होंने भक्ति की, वे भी मर गये। सगुण-साकार में निर्गुण-निराकार की जिन्होंने कल्पना की, वे भी मर गये ॥३॥

साखी—नाथ मछन्दर बाँचे नहीं, गोरखदत्त औ व्यास।
कहहिं कबीर पुकारि के, ई सब परे काल के फाँस ॥२८५॥

शब्दार्थ — नाथमछन्दर = मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ के गुरु। दत्त = दत्तात्रेय।

भावार्थ — प्रसिद्ध योगी मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, दत्तात्रेय और व्यास—ये कोई कालबली से बचे नहीं। सद्गुरु कबीर पुकार करके कहते हैं कि ये सब काल के फाँस में पड़ गये ॥२८५॥

इस रमैनी का अन्तिमसार यह है कि बड़े-बड़े कहलाने वाले भी कालबली से नहीं बचे। अतएव अपनी शारीरिक अमरता का मोह त्यागकर, वास्तविक अमरता—मोक्ष के लिये प्रयत्न करो।

७६—वाणीजाल की प्रबलता

चौपाई—८३

जेहि त्रिदोष मुये त्रिदेवा। कर्म धर्म मत रचिया भेवा ॥१॥
सोई सिद्धि सब साधुन पाई। सनकादिक मुनि नारद गाई ॥२॥

शब्दार्थ — कर्म = कर्मकाण्ड। धर्म = उपासनाकाण्ड। मत = ब्रह्मज्ञानकाण्ड।

भावार्थ — जिन रज, सत तथा तम गुणों के दोषों में रहकर क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के शरीर विसर्जित हो गये, उन्हीं के रहस्यरूप में यज्ञादि कर्मकाण्ड, कल्पित पुरुष की उपासना तथा जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्मज्ञान का मार्ग निर्मित किया गया ॥१॥ उक्त मत के सभी साधु उसी मतद्वारा अपनी सफलता या सिद्धि पाना मानते हैं और सनकादि चारों भाई तथा नारद जी भी उन्हीं मतों का वर्णन किये हैं ॥२॥

वालमीक मुनिवर इत्यादी। षट मुनि षट शास्त्रन के वादी ॥३॥
जैमिनि और कणाद कहावै। गौतम भिन्न भिन्न सो गावै ॥४॥
कपिल व्यास शेष परवाना। षट शास्त्रके कीन्ह बंधाना ॥५॥
उक्ति पनिच धनु वाक्य बनाई। बहुमत वेद शर ताई चढ़ाई ॥६॥

शब्दार्थ — वादी = वक्ता। शेष = पतंजलि। उक्ति = कथन। पनिच = पनच, धनुष की डोरी। शर = वाण। ताई = तानकर।

भावार्थ - मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि इत्यादि तथा छह शास्त्रों के छह प्रवक्ता ऋषि—जैमिनि, कणाद, गौतम, कपिल, व्यास, पतंजलि—ये पृथक-पृथक दर्शनों को पृथक-पृथक शास्त्रों में सिद्ध किये ॥ ३-५ ॥ उन्होंने वाक्य रूपी धनुष में कथन रूपी डोरी लगाकर अनेक मत तथा वेदसिद्धांत के वाण जोर से चढ़ाकर ॥ ६ ॥

उर सब जीव निशाना कीन्हा। सायक विविधि चलावन लीन्हा ॥७॥
लगे तीर सबके उर माहीं। विनु पारख सो निकसत नाहीं ॥८॥

शब्दार्थ — सायक = वाण।

भावार्थ — और सभी मनुष्यों के हृदय को निशाना बनाकर अनेक वाण चलाने लगे ॥ ७ ॥ वे वाण सबके हृदय में लगकर गहराई से प्रविष्ट हो गये हैं; बिना उनकी वास्तविकता की परख हुए वे निकलते नहीं हैं ॥ ८ ॥

षट शास्त्र शाखा उपराजा। ग्रासित काल कर्म नहिं भाजा ॥ ९ ॥
षट शास्त्र षट अंश विराजे। तीन पुरुष तीन नारी गाजे ॥१०॥

शब्दार्थ — ग्रासित = ग्रसा हुआ । काल = कल्पना । अंश = भाग । गाजै = गर्जना; उपदेश ।

भावार्थ — छह शास्त्रों को वेदों की शाखा रूप में प्रकट किया गया । परन्तु कल्पना तथा कल्पनाजनित कर्मों से ग्रसित मनुष्य इनको पढ़कर भी कल्पना-कर्म से विरत नहीं हो सके ।। ९ ।। छह शास्त्र छह भागों में विराजमान हैं । उनमें भी सांख्य, योग और वेदान्त को पुरुष रूप में तथा न्याय, वैशेषिक और मीमांसा नारी रूप में कहकर उपदेश करते हैं ।। १० ।।

विशेष — सांख्य योग तथा वेदांत में चेतन पुरुष की महत्ता पर अधिक जोर है; इसलिये इन्हें पुरुष रूप मानते हैं । और न्याय वैशेषिक तथा मीमांसा में वादविवाद, तत्त्वविश्लेषण तथा कर्मप्रपंच है; इसलिये इन्हें नारी रूप मान रखा है ।

मीमांसा वैशेषिक सोई । परगट न्याय पातंजल जोई ।।११।।
शास्त्र सांख्य वेदांत सो जोरी । इन्ह षटमाँह वैर नहिं थोरी ।।१२।।

शब्दार्थ — पातंजल = पतंजलि सम्बन्धी; योगशास्त्र । जोरी = जोरदार ।

भावार्थ — मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य तथा वेदान्त ये छह शक्तिशाली शास्त्र वैदिक माने जाते हैं । परन्तु इन छहों में परस्पर कम विरोध नहीं है ११-१२

साखी—चारवेद षट अंश सो, परगट भये जग आय ।
अर्थ विचारत जीव थके, झगरा बहुत मचाय ।।२८६।।

शब्दार्थ — षट = छह शास्त्र । अंश = भाग, शाखा ।

भावार्थ — चारवेद, उनकी शाखा रूप छह शास्त्र संसार में आकर प्रसिद्ध हुए हैं । इनके अर्थों के विचार में सभी मनुष्य थके जाते हैं और मतनिर्धारण के लिये अनेक प्रकार से झगड़ा करते हैं ।।२८६।।

खट खट षटके जानहीं, सो न परहिं भवफंद ।
गुरु पारख परताप सो, सदा रहै आनंद ।।२८७।।

शब्दार्थ — खटखट = झगड़ा ।

भावार्थ — जो व्यक्ति उक्त चार वेदों, छह शास्त्रों तथा नाना मतके शास्त्रोंके विचार-विरोधी रूपी झगड़ा को जानते हैं वे इनके चक्कर में नहीं पड़ते । वे सद्गुरु के पारखज्ञानतेज से सब भ्रमों को दूर कर अपने चेतनस्वरूप में ही संतुष्ट रहते हैं ।।२८७।।

विशेष — जो जिस शास्त्र के पक्ष में पड़ गया है, वह उसी को स्वतः प्रमाण मानता है । परन्तु एक मानवतावादी तथा सत्य के जिज्ञासु के लिये वेदानुसारी छह शास्त्र ही नहीं विश्वके समस्त शास्त्र आदरणीय हैं । इसीलिए वह एक शास्त्रके पक्ष में न पड़कर उन सबकी निष्पक्ष परख करता है और सबमें असारको छोड़कर सार को ले

लेता है। ऐसा व्यक्ति किसी शास्त्र को प्रमाण न मानकर 'पारख' या 'परख' को ही प्रमाण मानता है। अर्थात छानबीन करने पर जो सत्य सिद्ध हो उसी को स्वीकार करता है। ऐसा व्यक्ति परमशांतिको प्राप्त करता है।

चौपाई—८४

और अठारह कथे पुराना। बहुविधि कर्म फाँस अरुझाना ॥१॥
युक्ति इतिहास अनेक मिलाई। सुनहिं सुनावहिं व्यास अधिकाई ॥२॥
जो परपंच होय जगमाहीं। उपजहिं ग्रंथ व्यासके ताहीं ॥३॥
ग्रंथ अनेक को गनै गनावै। शाखामों शाखा उपजावैं ॥४॥

शब्दार्थ — व्यास = कथा वाचक; व्यासमुनि जिनके नियोग द्वारा पाण्डु, धृतराष्ट्र तथा विदुर उत्पन्न हुए थे।

भावार्थ — वेद शास्त्रों के अतिरिक्त लोग अठारह पुराणोंकी कथा करते हैं; और उनके वर्णन के अनुसार अनेक प्रकार से कर्मबंधनों में जकड़े रहते हैं ॥१॥ विशेषतर कथावाचक लोग युक्तिपूर्वक अनेक इतिहासों को मिला-मिलाकर इसकी कथा कहते तथा श्रोता सुनते रहते हैं ॥२॥ संसार में जन्म, लड़ाई, विवाहादि जो प्रपंच बड़े-बड़े पुरुषों-द्वारा हुए उन सबको वेदव्यास ने ग्रन्थों में कथा का रूप दिया (उसमें बीच-बीच में राजनीति तथा धर्मनीति का भी पुट दिया) ॥३॥ संसार में अनेक ग्रन्थ हैं, उनको कौन गिन तथा गिना सकता है ? शाखाओं में भी अनेक शाखायें बनती गयीं हैं ॥४॥

विशेष — कहते हैं वेदव्यास जी सत्यवती के गर्भ से पराशर द्वारा उत्पन्न हैं। कहा जाता है इन्होंने वेदों का वर्तमान रूप में संकलन किया और महाभारत, वेदांत-सूत्र तथा १८ पुराणों की रचना की। परन्तु ये बातें विवेक से नहीं घटतीं। महाभारत बहुत पहले की रचना है जबकि वेदांतसूत्र बुद्ध के बाद की; क्योंकि उसमें बुद्धमत की आलोचना है। अठारहों पुराणों का एकही कर्ता मानना भी समीचीन नहीं।

वेदव्यास राम के समय में भी थे और कृष्ण के समय भी। दोनों समयों में एक ही व्यक्ति नहीं रह सकता। यह हो सकता है कि पहले समय में उच्चकोटि के इतिहास लेखक को व्यास कहा जाता रहा हो और भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न व्यास हुए रहे हों। जैसे आज हजार बारहसौ वर्षों से भारत में चार शंकराचार्य हर समय रहते हैं। वशिष्ठ के लिये भी कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। कदाचित सूर्यवंश का राजगुरु वशिष्ठ कहलाता रहा हो; इसीलिये सभी रघुवंशियों के वशिष्ठ थे और यही बात नारद पर घटती है। धार्मिक नेताओं तथा महान राजाओं का संदेशवाहक कदाचित नारद कहलाता रहा हो।

हेतु सबै कारज होय आवै । एक समय पुनिताहि मिटावै ॥५॥
रहटा उपजन विनशन केरा । परखहिं जीव न रहहिं धंधेरा ॥६॥

शब्दार्थ — धंधेरा = गोरखधन्धा; भ्रम ।

भावार्थ — (कहते हैं) जगत आदि सभी कार्य पदार्थ हैं । ये जहाँ से निर्मित होकर आते हैं वह एक कारण ब्रह्म है । एक समय ऐसा आता है कि सबका प्रलय होकर उसी ब्रह्ममें लौट जाता है ॥५॥ इसप्रकार उत्पत्ति-विनाश का रहँट चक्कररूप गोरखधंधा उसकी दृष्टि में नहीं रह जाता जो सारासार को परख लेता है ॥६॥

विशेष — जिसे पारख प्राप्त है वह समझता है कि जगत कहीं तथाकथित ब्रह्म से बनकर न आता है और न कभी वहाँ लौटकर जाता है । अपितु जगत अनादि-अनन्त स्वतः है ।

धंधारी सब कालको आहीं । भरमहिं विविधि भाँति पछताहीं ॥७॥
जेहि देखहु सो सृष्टि नियारा । बहै जीव सब भवजलधारा ॥८॥

शब्दार्थ — धंधारी = गोरखधंधा; मायाजाल; भ्रम । काल = कल्पना; अज्ञान ।

भावार्थ — जितने भ्रम हैं सब कल्पना से उत्पन्न हैं । उसमें पड़े जीव भटकते और पछताते हैं ॥७॥ जिसको देखो, वह अपनी एक पृथक ही कल्पना की सृष्टि बना रखा है । इस प्रकार सब भूले जीव कल्पना के जलधारा में बहे जा रहे हैं ॥८॥

पार लगै जब पारख पावै । नहिं तो भवके धार डुबावै ॥ ९ ॥
भवके धार तरंग अनेका । भौंर गंभीर अथाह संशयका ॥१०॥

शब्दार्थ — भौंर = भ्रमर, जलावर्त, जलका चक्कर, तात्पर्य में भ्रमचक्कर ।

भावार्थ — उक्त कल्पना से जीव तभी पार पा सकता है जब उसे पारख की प्राप्ति हो । अन्यथा वह कल्पना के सागर में डूब जायगा ॥९॥ क्योंकि कल्पनासागर के अनेक तरंगे हैं; और उसमें अथाह संशय का भँवर है ॥१०॥

साखी—महासागर संसार है, जाके संशय सार ।
सुर नर मुनि सब बहि गये, पारखी उतरे पार ॥२८८॥

शब्दार्थ — सार = फल । पारखी = कसर को समझनेवाला, द्रष्टा ।

भावार्थ — यह इन्द्रिय तथा मन:गोचर पंचविषय तथा वासनामय संसार अपार महासमुद्र है । इसमें राग करने का फल है संदेह व अज्ञान में पड़े रहना । इसमें पड़कर त्रिगुणी सुर, नर तथा मुनिगण सब बह गये और बह रहे हैं । जो इसका द्रष्टा बनकर इससे अपने को पृथक कर लेता है, वही मुक्त होता है ॥२८८॥

अनुभव वहु आश्चर्य सो, युक्ति किये इतिहास ।
चंचल मायाके वशि परे, समुझि परी नहिं फाँस ॥२८९॥

शब्दार्थ — अनुभव = ज्ञान। फाँस = बंधन।

भावार्थ — विद्वानों ने अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक ज्ञान की युक्ति से इतिहास, कथा तथा ग्रन्थों की रचना की है। उसी कल्पित वाणी रूपी चंचल माया के वश में सब जीव पड़े हैं। उन्हें उसकी बंधनरूपता समझने में नहीं आती ॥२८९॥

विशेष — अनेक इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थों में ऐसी जटिल कल्पनाओं, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों और युक्तियों का प्रयोग किया गया है जिनमें साधारण ही क्या बड़े-बड़े विद्वान कहलाने वाले भी भटक जाते हैं। ये चंचल मन, वाणी की परख कोई पारखी ही करता है।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-८९, १००

हिलगी भाल शरीर में, तीर रहा है टूट।
चुम्बक बिना न नीकरे, कोटि पाहन गये छूट ॥२९०॥

शब्दार्थ — हिलगी = घुस गयी। भाल = तीर का फल, नोंक। चुम्बक = एक पत्थर, जो लोहा को अपनी ओर खींचता है (कहा जाता है कि तीर का फल टूट कर शरीर में रह जाय, तो उसके सामने चुम्बक कर देने से उसके आकर्षण से तीर का फल निकल जाता है)।

भावार्थ — भ्रमिकों का वाणी रूपी वाण मनुष्य के शरीर में घुस गया है, और उस वाण का फल टूटकर भीतर ही रह गया है (अर्थात भ्रांति हृदय में खूब दृढ़ हो गयी है)। यह भ्रांति पारखज्ञान रूपी चुम्बक बिना नहीं निकल सकती। करोड़ों साधारण उपदेश करना निष्फल है ॥२९०॥

विशेष — तीर का टूटा अंश जैसे चुम्बक पत्थर से ही निकलता है, करोड़ों अन्य पत्थरों का प्रयोग करना निष्फल जाता है, वैसे पारखज्ञान से ही सर्वभ्रम दूर होते हैं; अन्य साधारण उपदेश काम नहीं करते।

करक करेजे गड़ि रही, वचन वृक्ष की फाँस।
निकसाये निकसे नहीं, रही सो काहू गाँस ॥२९१॥

शब्दार्थ — करक = रुक-रुक कर होनेवाली पीड़ा, काँटे। फाँस = बन्धन। काहू = वे-पारखी। गाँस = गाँसी, तीर का फल, कल्पित वाणी।

भावार्थ — भ्रामक वचन-वृक्षों के फाँस काँटे रूप में होकर मनुष्य के कलेजे में गड़े हैं। विवेकियों द्वारा निकालने पर भी वे काँटे नहीं निकलते। वे गाँसियाँ वे-पारखियों के भली-भाँति चुभ गयी हैं ॥२९१॥

विशेष — नाना कल्पित पोथियाँ ही भ्रामक वचनों के वृक्ष हैं। उनकी अनेक भ्रांतियाँ ही जीव के फँसने के फाँस हैं। ऐसी भ्रांतिपूर्ण वाणियों के काँटे अर्थात अभ्यास जीव के हृदय में गड़े हुए हैं।

रोचक भयानक तथा कल्पित भ्रमपूर्ण वाणियों को बहुत दि..ों से मनुष्यों ने सच करके मान रखा है। उसपर विवेक करने पर लोग उलझ जाते हैं। कितना ही समझाओ, परन्तु भूले लोग न असत्य को छोड़ना चाहते हैं और न सत्य को ग्रहण करना चाहते हैं।

८०—विदेशी मतों का दिग्दर्शन

चौपाई—८'१

काल कराल तरंग उठावै। नाना भाँति पंथ निरमावै ॥१॥
आदम नाम कर्म बौराना। मामा हवा माँहि समाना ॥२॥

शब्दार्थ — काल=अज्ञान; कल्पना। आदम=यहूदी, इसलामी आदि धर्मों के अनुसार ईश्वर का बनाया हुआ पहला मानव। मामा=माता; वृद्धा; खाना पकाने वाली, पाचिका; सेविका, नौकरानी; तात्पर्य में माता या जगज्जननी। 'मामा' शब्द को जब हम फारसी के स्तर पर रखते हैं तब उसका अर्थ उपयुक्त ही होते हैं। हवा= जगज्जननी; आदम की पत्नी।

भावार्थ — मनका अज्ञान कल्पनाओं की भयंकर लहरियाँ उठाता है; और उसके आधार में नाना प्रकार के पंथों, संप्रदायों एवं फिरकों का निर्माण करता है ॥१॥ यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों के विश्वासानुसार सृष्टि के प्रथम मानव आदम जो हिंदुओं के ब्रह्मास्थानीय हैं तथा जो जगज्जननी माता 'हवा' के साथ में अनुरक्त रहकर जीवन व्यतीत किये हैं उनके नाम पर या उनका प्रमाण देकर उनके अनुगामी लोग नाना काल्पनिक कर्मों में उलझे हैं ॥२॥

दुविधा भरम बीच सो डारी। हिंदू तुरुक दुइ जाल पसारी ॥३॥
जो मत वेद किताब सो चारी। जंबूर तौरेत इंजील अनुसारी ॥४॥
चौथे कहै फुरकान कुराना। चारिहु चारि मता बंधाना ॥५॥
आदम आदि सुलेमा नामा। नूह नबी जंबूर कलामा ॥६॥

शब्दार्थ — जंबूर=जबूर, इलहामी किताब जो मुसलमानों के विश्वासानुसार दाऊद पर उतरी थी। तौरेत=यहूदियों का प्रधान धर्मग्रन्थ। इंजील=ईसाइयों की धर्मपुस्तक, बाइबिल। फुरकान कुरान=कुरान शरीफ जो मुहम्मद पर उतरी; मुसलमानों की पुस्तक। सुलेमा=सुलेमान, दाऊद का बेटा; यहूदियों का तीसरा बादशाह जिसने यरुशलम नगर का निर्माण कराया और जिसकी गणना विश्व के सबसे बड़े मनीषियों में की जाती है। नूह=शामी या इबरानी मतों के अनुसार आदम से दशवीं पीढ़ी में उत्पन्न एक पैगम्बर।

भावार्थ — एक मानवजाति के बीच में लोगों ने संदेह तथा भ्रम डालकर हिंदू और मुसलमान—इन दो जातियों का जाल फैलाया है ॥३॥ चारवेदों में जो मत है प्रकारभेद से उन्हीं मतों का दिग्दर्शन चार किताबों में है। वे हैं जबूर, तौरेत, इंजील और चौथा कुरान जिसको फुरकान भी कहा गया है। ये चारों चार मतों का निर्धारण किये हैं ॥४, ५॥ (कहते हैं) सृष्टि के शुरू में आदम पैदा हुए, फिर सुलेमान बादशाह तथा नूह नबी पैदा हुए जिनका वर्णन जबूर के वचनों में है ॥६॥

विशेष — चाहे भारतीय चार वेद हों या अभारतीय चार किताब हों सभी में अपने चेतन स्वरूप से पृथक किसी कर्ता की ओर संकेत किया गया है। इसलिये सावधानी न रखने पर ये सभी वाणियाँ स्वरूपज्ञान से भटकाने वाली हैं।

बाइबिल के आरम्भ में ही आया है कि ईश्वर सृष्टि बनाकर पछताया, क्योंकि सृष्टि पापी हो गयी। और उसने दशवीं पीढ़ी में ही जलप्रलय कर दिया; परन्तु इसके पहले ईश्वरकी आज्ञा से नूह ने एक नौका बनवाकर अपने परिवार तथा सभी प्राणियों के एक-एक नर-मादा तथा संसार के सभी प्रकार के बीजों को उसमें रख लिया था। जल सूख जाने पर नूह ने पुनः सृष्टि फैलायी। इस प्रकार नूह एक बड़ा पैगम्बर माना जाता है।

तुरिया सोई लाहूत दृढ़ाई। और सबै सो जाल देखाई ॥७॥
मूसा नूर तूर पर धावै। सो तौरेत माया भटकावै ॥८॥

शब्दार्थ — **मूसा**=यहूदी धर्म के प्रवर्तक जो पैगंबर या ईश्वर के संदेशवाहक माने जाते हैं। **नूर**=प्रकाश; ईश्वरीय ज्योति। **तूर**=एक पर्वत। **तौरेत**=यहूदियों का प्रधान धर्मग्रन्थ।

भावार्थ — जैसे ब्रह्मज्ञानी लोग सब-कुछ जाल रूप या भ्रम रूप बताकर तुरीय एवं ब्रह्मज्ञान का उपदेश करते हैं वैसे मुसलिमों में 'लाहूत' माना है। तुरीय तथा लाहूत में बहुत कुछ साम्य है ॥७॥ मूसा पैगम्बर तूर पर्वत पर तप किये तो (कहते हैं) उन्हें ज्योति के रूप में ईश्वर के दर्शन हुए जिससे वे चकाचौंध में पड़ गये। ऐसी-ऐसी कल्पित माया की बातें कहकर तौरेत में भटक जाने भर की चर्चा की गयी है ॥८॥

ईसा नबी लिंगम अभिमानी। फलक मोकाम इंजील बखानी ॥ ९ ॥
खत्मा नबी महम्मद जेहि नाऊँ। जामें जमी ये चारों दाऊँ ॥१०॥

शब्दार्थ — **लिंगम**=सूक्ष्म; उपासनामार्ग। **फलक**=फलक, आकाश; स्वर्ग। **खत्मा नबी**=अंतिम पैगंबर।

भावार्थ — ईसा पैगंबर उपासनामार्ग को मानने वाले थे; उन्होंने बाइबिल में ईश्वर या ईश्वरप्राप्त आत्माओं का स्थान आकाशस्थ स्वर्ग में बताया है ॥९॥ जिनका

नाम मुहम्मद है (कहते हैं) वे आखीरी पैगम्बर हैं जिनके सिद्धांत में जबूर, तौरेत, इंजील तथा कुरान की सारी सार बातें आकर जम गयी हैं ॥१०॥

विशेष — मुसलमान लोग कहते हैं कि ईश्वर ने जितने पैगम्बर व अवतार हजरत मुहम्मद के पहले भेजे हैं उसने उन सबकी बातों को अब रद्द करके अंतिम पैगम्बर हजरत मुहम्मद को भेजा है । अतएव इनकी बातों में उक्त चारों किताबों का सार सिद्धांत स्थित है । वस्तुतः अब बाइबिल, तौरेत, जबूर, वेद आदि कुछ पढ़ने-मानने की जरूरत ही नहीं है । अब तो केवल हजरत मुहम्मद तथा उनके कुरान का ही अनुसरण करना चाहिये । अब रोजकयामत (प्रलय) के दिन तक कुरान और मुहम्मद के ही पीछे चलो । यह है कुरान और हजरत मुहम्मद को बढ़ावा देकर इसलामधर्म के प्रचार का प्रकार । इन ईश्वरवादियों को झूठ बोलने में कोई हिचक नहीं है ।

सो फ़ुरकान कुरान कलामा । वर्णन बहुविधि चार मुकामा ॥११॥
जागृत सो नासूत कहाई । तहवाँ सरीखत चाल चलाई ॥१२॥

शब्दार्थ — कलामा = कलाम, वचन । सरीखत = शरीअत, कर्मकाण्ड—सलात (प्रार्थना-नमाज), जकात (दान), सौम (रोजा) तथा हज (तीर्थयात्रा) ।

भावार्थ — उपर्युक्त इसलाम धर्म का वर्णन कुरान में आया है; और इसलामी पुस्तकों में नासूत, मलकूत, जबरूत और हाहूत इन चार मुकाम का वर्णन अनेक प्रकार से हुआ है ॥ ११ ॥ जागृति अवस्थों के कर्ममार्ग का फल 'नासूत' मुकाम (स्वर्ग) माना है जिसकी प्राप्ति के लिये शरीअत के अनुसार चलना बताया गया है ।

दूजे थूल मलकूत बखाना । साधन जतन तरीकत अनुमाना ॥१३॥
तीजे सो जबरूत बताई । समय हकीकत तहाँ लखाई ॥१४॥
चौथे सो लाहूत अनुमाना । मारफत सोई है ब्रह्मज्ञाना ॥१५॥

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म । मलकूत = मलक कहते हैं फिरिश्ता को जो अल्लाह की प्रार्थना करते हैं, तात्पर्य में वह स्थान जो देवताओं का हो । तरीकत = उपासना । हकीकत = हकीकत, साधना नहीं, साध्य की परम अनुभूति; तात्पर्य में असलियत । मारफत = मारिफत, परमज्ञान; इसके इश्क, मुहब्बत, प्रेम, वस्ल, वज्द आदि पर्याय हैं ।

भावार्थ — दूसरा सूक्ष्म शरीर के स्वप्न अवस्था सम्बन्धी उपासना मार्ग का फल 'मलकूत' कहा गया है जिसकी प्राप्ति का साधन या यत्न तरीकत यानी उपासना मानी गयी है ॥१३॥ तीसरा 'जबरूत' मुकाम है जिसके पाने के लिये असलियत पकड़ना पड़ता है ॥१४॥ चौथा 'लाहूत' मुकाम माना है, उसकी प्राप्ति के लिये 'मारिफत' की साधना पर चलना पड़ता है जो ब्रह्मज्ञान को कहते हैं ॥१५॥

साखी—पँचयें सो विज्ञानमें, है हाहूत विचार।
जबराइल मिकाइल अज, हरिहर इसराफिल संघार ॥२९२॥

शब्दार्थ — हाहूत = विज्ञान। इसराफिल = इजराइल।

भावार्थ — पाँचवें विज्ञानदशा की भाँति 'हाहूत' की स्थिति मानी है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के सदृश जिब्रील, मेकाइल तथा इजराइल ये फिरिस्ते सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय में सहायक हैं ॥२९२॥

विशेष — ग्रंथकार नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत ये चार मुकाम बतला रहे हैं जिसके पाने के लिये क्रमशः शरीअत (कर्म), तरीकत (उपासना), मारिफत (ज्ञान) तथा हकीकत (सत्य) है। इसमें मारिफत के पहले हकीकत आ गया है जो वर्णन में उलट-सा लगता है। वस्तुतः मारिफत के बाद हकीकत होना चाहिये। पाँचवाँ मुकाम हाहूत है जहाँ सबका प्रलय है और विज्ञानदशा है। नासूत आदि की दूसरी व्याख्या समष्टिसार की अंतिम चौकड़ी में भी देखने योग्य है।

दुर्मति कारण सबनके, कारण दुविधा दोय।
विविधि चाल तेहि मध्यमें, संतत परगट होय ॥२९३॥

शब्दार्थ — दुर्मति = कुमति। दुविधा = सन्देह।

भावार्थ — इन सबका अपने स्वरूपसे पृथक किसी ईश्वरादि की खोज का कारण बुद्धि की उलटी होना तथा संदेह या अज्ञान का होना है। इसी अज्ञान के बीच में नाना विचार व आचरण चलते हैं और नाना काल्पनिक मत सदैव प्रकट होते रहते हैं ॥२९३॥

विशेष — ऊपर इसलामधर्म की चार साधनाओं का वर्णन हुआ है; जिनका कुछ स्पष्टीकरण इस प्रकार है। यह मैं बहुत पहले कहीं पढ़ा था और लिख लिया था, उसे ज्यों-का-त्यों दिया जा रहा है—

शरीअत—सलात (प्रार्थना, नमाज) जकात (दान), सौम (रोजा, उपवास) तथा हज (मक्का-मदीना की यात्रा)।

तरीकत—बाहरी क्रियाओं से ऊपर उठकर हृदय की शुद्धता द्वारा अल्ला का ध्यान करना तरीकत है। शरीअत का मार्ग तय करके इस साधनाका मनुष्य अधिकारी माना जाता है। इसमें मन-इन्द्रिय जीतना तथा अहंकार छोड़कर तितिक्षा, मौन, एकान्तवास करना होता है।

मारिफत—परमज्ञान को मारिफत कहते हैं जैसे कि ऊपर बताया गया है कि इसके इश्क, मुहब्बत, प्रेम, वस्ल, वज्द, आदि पर्याय हैं। इसका साधक अपने आपको भूल जाता है। परन्तु इस स्थिति तक पहुँचने के लिये निम्न सात श्रेणियों (मुकामों) को पार करना पड़ता है, वे ये हैं—

१. तौबा—(क) पहले किये गये बुरे कर्मों के लिए प्रायश्चित्त, (ख) फिर से पाप न करने की सावधानी, (ग) अल्लाह की सेवा में त्रुटियाँ होती हों उन्हें दूर करना, (घ) दूसरों के साथ जो गलती हुई हो उससे क्षमा माँगकर या बदला चुका कर उससे छुटकारा ले लेना, (ङ) गलत भोगों से बढ़े हुए खून, मांस को सुखा देना, (च) जिस मन ने पाप का मजा चखा हो उसे साधना की कटुता का मजा चखाना।

२. जहद—स्वेच्छा गरीबी स्वीकार करना, गरीबों से प्रेम जोड़ना, अपनी आवश्यकता कम-से-कम रखना।

३. सब्र—संतोष।

४. शुक्र—खुदा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना।

५. रिआज—इन्द्रियों का दमन।

६. तवक्कुल—मालिक की कृपा पर पूरा भरोसा।

७. रिजा—सुख-दुःख मानापमान में समता।

हकीकत—साधना नहीं साध्य की परम अनुभूति

किसकी सादी किसका गम।
हू अल्लाहू दम पर दम॥

उपर्युक्त चार साधनाओं में ईश्वरादि कल्पनाओं को छोड़कर काफी मानवीय गुण हैं जो सबको आचरणीय हैं।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-४०, ३९

आदम आदि सुधी नहिं पाई। मामा हवा कहाँ ते आई॥१॥
तब नहिं होते तुरुक औ हिन्दू। माय के रुधिर पिता के बिन्दू॥२॥
तब नहिं होते गाय कसाई। तब बिसमिल्ला किन फुरमाई॥३॥
तब नहिं होते कुल औ जाती। दोजख बिहिस्त कौन उत्पाती॥४॥
मन मसले की सुधि नहिं जाना। मति भुलान दुई दीन बखाना॥५॥

शब्दार्थ — आदम=ईसाइयों और मुसलमानों द्वारा माना हुआ (हिन्दुओं के ब्रह्मा के समान) आदि सृष्टि का प्रथम मानव। आदि=सृष्टि का आरम्भ। सुधि= पता। मामा=माता, फारसी में मामा का अर्थ माता है। हवा=हव्वा (जगज्जननी) आदम की स्त्री। फुरमाई=आज्ञा। मन मसले=मनःकल्पित कहावत, कहानी।

भावार्थ — आदम भी जगत-सृष्टि का आरम्भ नहीं जान सके। वे तो यहाँ तक नहीं जान सके कि उनकी स्त्री कहाँ से आ गई॥१॥ (उनके कथनानुसार) सृष्टि के आदि में हिन्दू-मुसलमान नहीं थे। माता का रज और पिता का वीर्य भी नहीं था॥२॥ उस समय गाय-कसाई भी नहीं थे। तो बिसमिल्लाह का नाम लेकर कुर्बानी करने की आज्ञा किसने, किसको दी ?॥३॥ उस समय कुल और जाति नहीं

थी अतः [कर्तव्य-अकर्तव्य] कर्मों का विधान भी नहीं था, तब बिना अजाब-सबाब (शुभाशुभ कर्म के) स्वर्ग-नरक किसने उत्पन्न कर दिया ? ।।४।। मनःकल्पित कहानियों का कोई पता नहीं पाया। इनकी बुद्धि भ्रमित हुई और मानवता छोड़कर हिन्दू-मुसलिम दो मजहबों का व्याख्यान करने लगे ।।५।।

साखी—संजोगे का गुण रवै, विजोगे का गुण जाय ।
जिभ्या स्वारथ कारणे, नर कीन्हें बहुत उपाय ।।२९४।।

शब्दार्थ — रवै = प्रकट, विकास । जाय = नष्ट । जिभ्यास्वारथ = वचन मात्र के स्वाद, रसनारम्भन, बकवाद ।

भावार्थ — 'ईश्वर या खुदा जब जगत बनाना चाहता है, तब अपने संकल्प से जीव और प्रकृति (माया) का संयोग कर देता है, तब त्रिगुणात्मक जगत प्रकट होकर विकसित होता है, और जब लय करने के लिए विकल्प करता है, तब यह त्रिगुणात्मक जगत नष्ट या लय हो जाता है'—जिह्वा के स्वादरूप वाणी मात्र के इस मत को पुष्ट करने के लिये, मनुष्यों ने अनेक युक्तियाँ की हैं ।।२९४।।

रमैनी-३८

जिन्ह कलमा कलिमाहिं पढ़ाया । कुदरत खोज तिनहुँ नहिं पाया ।।१।।
कर्मत कर्म करे करतूता । वेद कितेब भये सब रीता ।।२।।

शब्दार्थ — जिन्ह = हजरत मुहम्मद ने । कलमा = मुसलमानी मंत्र । कुदरत = ईश्वरीय-शक्ति, प्रकृति, शक्ति, सामर्थ्य, कारीगरी । कर्मत = कर्म का मत । करतूता = कर्तव्य । कितेब = कुरान । रीता = खाली ।

भावार्थ — जिन हजरत मुहम्मद ने कलिकाल में कलमा पढ़ाकर लोगों को मुसलमान बनाया, उन्होंने भी ईश्वर की शक्ति या कारीगरी की खोज नहीं कर पायी ।।१।। वेद-कुरान प्रतिपादित कर्म के मत से हिंसाप्रयुक्त एवं भ्रमपूर्ण कर्तव्य कर्म हिन्दू-मुसलमान करते हैं। (अतएव इनके लिये) वेद-कुरान आदि सभी पोथियाँ सत्यता से खाली-ही-खाली रह गयीं हैं ।।२।।

कर्मत सो जग भौ अवतरिया । कर्मत सो निमाज को धरिया ।।३।।
कर्मत सुन्नति और जनेऊ । हिन्दू तुरुक न जाने भेऊ ।।४।।

शब्दार्थ — भौ = हुआ । अवतरिया = जन्म । भेऊ = भेद, रहस्य ।

भावार्थ — कर्म से ही जगत में जन्म होता है। कर्म के मत से ही मुसलमान लोग पाँच वक्त नमाज पढ़ने का नियम धारण करते हैं ।।३।। कर्म के मत से ही वे लोग खतना करवाते हैं और हिन्दू में द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) जनेऊ करवाते हैं। परन्तु अज्ञान-कल्पना और हिंसायुक्त कर्मों में पड़कर हिन्दू-मुसलमान दोनों वास्तविक धर्म एवं सत्य का भेद नहीं जानते ।।४।।

साखी—पानी पवन संजोयके, रचिया यह उतपात ।
शून्यहि सुरति समोयके, कासो कहिये जात ॥२९५॥

शब्दार्थ — **पानी**=नर-नारी के रज-वीर्य । **पवन**=वायु, प्राणवायु । **संजोय**=एकत्र । **उतपात**=झंझट रूप शरीर । **शून्यहि**=कल्पित विषय-सुखों में । **सुरति**=लक्ष्य । **समोय**=लीन । **जात**=जाय ।

भावार्थ — वास्तविक सुख से जो सर्वथा शून्य है, ऐसे विषय-भोगों में नर-नारी अपना लक्ष्य लीन (आसक्त) करके, पारस्परिक सम्बन्ध किये । तत्पश्चात प्राण एवं अपान वायु के उत्तेजन से नर-नारी के रज-वीर्य एकत्र होकर एवं नारी के गर्भाशय में (कर्मी जीवों के अध्यास-वश) प्रारम्भ में कलल बनकर यह शरीर रूपी उपाधि (झंझट) की रचना हुई । यह किससे कहा जाय (कि इस विषयासक्ति-वश ही यह जीव बार-बार गर्भ में जाता है) ॥२९५॥

८१–हिंदू-मुसलिम की मान्यताओं में साम्य

चौपाई—८६

वेद कितेब दोउ फंदा भारी । पूर परस्पर एक अनुहारी ॥१॥
संतत पंथ अनेक उपराजे । सैयद खान मिरजा होय गाजे ॥२॥
चौथे सेखमों सिखत दासा । पाँड़े मोलना समहिं विलासा ॥३॥
पंडित काजी निर्णय देहीं । हाकिम राजा पोता लेहीं ॥४॥

शब्दार्थ — **अनुहारी**=रूप । **सैयद**=बीबी फातमा से उत्पन्न अली का वंश, जो ब्राह्मणवत उच्च माना जाता है । **खान**=पठान, क्षत्रिय स्थानीय । **मिरजा**=मुगलों की उपाधि; वैश्य स्थानीय । **शेख**=मुसलमानों की चार जातियों में से चौथा जो शूद्र स्थानीय मानते हैं । **हाकिम**=हुक्म करनेवाला; राजा । **पोता**=पोत; लगान ।

भावार्थ — चार वेद और चार किताब ये बहुत बड़े वाणीजाल हैं । ये परस्पर पूर्णतया एक ही रूप के हैं ॥१॥ इन्हीं से सदैव अनेक सम्प्रदायों के जन्म होते रहते हैं। हिन्दुओं के चार वर्णों के अनुसार मुसलमानों में क्रमशः सैयद, खान, मिरजा, तथा चौथे शेख हैं । शेख शूद्र पद के माने जाते हैं । हिंदू में पाँड़े तथा मुसलमान में मौलवी-दोनों का समान व्यवहार है ॥२, ३॥ हिन्दुओं में पण्डित तथा मुसलमानों में काजी धर्म का निर्णय देते हैं । मुसलमानों में हाकिम तथा हिंदुओंमें राजा लगान (कर) वसूल करते हैं ॥४॥

दंड परस्पर एक समतूला । शाहनशाह महाराजी भूला ॥५॥
चक्रवर्ति आपु पद पाई । कला विशेष भये प्रभुताई ॥६॥

शब्दार्थ — समतूला = समान । चक्रवर्ति = सार्वभौम, पूरी पृथ्वी का राजा ।

भावार्थ — किसी के अपराध करने पर दोनों एक समान दंड भी देते हैं । मुसलमान बादशाह शाहंशाह तथा हिंदू महाराज कहलाकर भूलते हैं ॥५॥ हिंदू-मुसलमान आदि के आचार्य लोग विशेष गुण तथा प्रभुता पाकर अपने आपको सार्वभौम गुरुपद पाया हुआ समझते हैं ॥६॥

अद्बुद पंथ जीव अकुलाई । दुविधा फंद जो करै उपाई ॥७॥
आकुल होय वोहि मग धावै । जहाँ कसाई छुरी चलावै ॥८॥

शब्दार्थ — अद्बुद = अद्भुत । आकुल = घबराया हुआ ।

भावार्थ — अनेक आश्चर्यजनक पंथ फैले हैं; जिनमें पड़कर व्यक्ति घबराते हैं । वे उससे छूटने का भी जो प्रयत्न करते हैं उसके द्वारा वे सन्देह के दोहरे बंधन में बँध जाते हैं ॥७॥ व्यक्ति घबरा कर अधिकांशत: उसी पथ पर दौड़ जाता है जहाँ लोग धर्मके नामपर कसाई बने हुए जीवों पर छूरी चलाते हैं ॥८॥

कुहके जीव अनेक कुचाला । बलिप्रदान कोइ करै हलाला ॥९॥
झटका हलाल न शंका मानै । आपुन छागर सो नहिं जानै ॥१०॥

शब्दार्थ — कुहके = दु:खोंमें कराहना । बलिप्रदान = वध । झटका = पशुबलि का वह प्रकार जिसमें पशु की गरदन तलवार आदि से एक ही बार में मारने से अलग हो जाय, यह हिंदुओं का प्रकार है । हलाल = विहित, जायज; गला को छूरी आदि से रेत कर पशुवध करना, यह मुसलमानों का प्रकार है । छागर = बकरा ।

भावार्थ — अनेक गलत आचरणों में पड़कर मनुष्य पीड़ित हैं । हिंदू लोग पशुओं को एक झटके में मार कर देवस्थानपर उसे चढ़ाते और खाते हैं तथा मुसलमान लोग खुदा के नाम पर पशु-पक्षियों का गला रेतकर उन्हें मारते और खाते हैं ॥९॥ हिन्दू और मुसलमानों से भिन्न लोग झटका और हलाल में भी शंका नहीं मानते हैं; जैसे-कैसे जीव को वध करके मारते-खाते रहते हैं । निर्दयी लोग इतनी भी सभ्यता व दया नहीं रखते कि यह अपना पाला हुआ बकरा है इसको कैसे मारें ॥१०॥

जरहिं दुनों घर यमकी आगी । झुलसि झुलसि रहे आशा लागी ॥११॥
वाचा फेर बहु पंथ देखावै । मत एकै जहाँ तहाँ होय धावै ॥१२॥

शब्दार्थ — यम = वासना; हिंसा ।

भावार्थ — उपर्युक्त प्रकार से हिन्दू तथा अहिंदू दोनों के सम्प्रदायों व हृदयों रूपी घरों में हिंसा की आग लगी है और वे उसी में जल रहे हैं, और जल-जलकर भी तथाकथित ईश्वर तथा देवताओं को वध तथा कुर्बानी से खुश करके स्वर्ग पाने की आशा लगाये हैं ॥११॥ वचनों के हेरफेर में अनेकों पंथ व सम्प्रदाय दिखाई देते हैं;

परन्तु उनका मत एक है अपने स्वरूप से पृथक किसी को खोजना, जिस भ्रम में पड़कर वे यत्र-तत्र दौड़ते हैं ॥१२॥

सत्यनिर्णय का मसला – ३

नदिया एक घाट बहुतेरी। कहहिं कबीर वचनकी फेरी॥

शब्दार्थ — नदिया = नदी; मान्यता। घाट = मत।

भावार्थ — जैसे एक नदी में अनेक घाट होते हैं, वैसे वचनों का हेरफेर लेकर पंथ अनेक हैं; परन्तु उन सबमें भ्रमकृत मान्यतायें एक समान हैं।

अथवा — जैसे एक नदी में अनेक घाट होते हैं; वैसे सबका लक्ष्य परमशांति को पाना है और उसी लक्ष्य को लेकर नाना मत, पंथ निकले हुए हैं। अतएव विविध अनमिल पंथों में एकता का सूत्र है सबका एक लक्ष्य—परमशांति की प्राप्ति। बुद्धिभ्रम से उस शान्ति को वे अपने से पृथक किसी देवी-देवता तथा ईश्वर में खोजते हैं। जिनका भ्रम मिट जाता है वह अपने आप ही में उस परमशांति को पा लेता है।

साखी – रेख रूप बिनु वेदमें, औ कुरान बेचून।
आपस में दोऊ लड़ैं, जाना पै न दोहून ॥२९६॥

शब्दार्थ — रेख रूप = आकार-चिन्ह। बेचून = बेआकार; अकृत्रिम।

भावार्थ — वेदों में निर्गुण-निराकार तथा कुरान में बेचून-बेनमून कहकर आपस में दोनों लड़ते हैं; परन्तु वे दोनों यह नहीं जानते कि परमतत्त्व अपना चेतनस्वरूप है जो निर्गुण-सगुण की कल्पनाओंका द्रष्टा है ॥२९६॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, शब्द–३०, १०

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बौराया ॥ १॥
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया ॥ २॥
गहना एक कनक ते गहना, यामें भाव न दूजा ॥ ३॥
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा ॥ ४॥
वोही महादेव वोही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये ॥ ५॥
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये ॥ ६॥
वेद कितेब पढ़ै वै कुतबा, वै मोलना वै पाड़े ॥ ७॥
बेगर बेगर नाम धराये, एक मिट्टी के भाँड़े ॥ ८॥
कहहिं कबीर वै दूनों भूले, रामहिं किनहु न पाया ॥ ९॥
वे खसी वै गाय कटावैं, वादिहिं जन्म गमाया ॥१०॥

शब्दार्थ — हजरत = साहब, स्वामी। कितेब = कुरान। कुतबा = कुतुब, किताब का बहुवचन, बहुत-सी किताबें या खुतबा (प्रार्थना)। बेगर-बेगर = पृथक्-पृथक्। भाँड़े = बर्तन। वादिहिं = विवाद में या व्यर्थ में।

भावार्थ — (हिन्दू-मुसलमानों को सम्बोधित करके सद्गुरु कहते हैं –) ऐ भाइयों ! दो ईश्वर कहाँ से टपक पड़े ? कहो, तुमलोगों को किसने पागल बना दिया है ? ॥१॥ अल्ला और राम, करीम और केशव, हरि और हजरत नाम धरा करके परस्पर झगड़ते हो ॥२॥ एक सोने से कड़ा-कुण्डल-करधन आदि अनेक गहने बनते हैं, परन्तु उन सबमें सोने के अतिरिक्त दूसरे का अस्तित्व नहीं होता ॥३॥ इसी प्रकार कहने-सुनने को दो नियम बना लिये, एक निमाज और एक पूजा (अन्ततः हैं दोनों में उपासना या प्रार्थना ही) ॥४॥ महादेव, मुहम्मद, ब्रह्मा और आदम में भी क्या अन्तर है ? ॥५॥ कौन हिन्दू कहलाता है और कौन मुसलमान ! एक ही पृथ्वी पर तो सब रहते हैं ॥६॥ कोई वेद-शास्त्र पढ़ता है, कोई कुरान तथा हदीश आदि किताबों को पढ़ता है, कोई मुल्ला-मौलवी कहलाता है और कोई पण्डित कहलाता है ॥७॥ अपने-अपने नाम पृथक्-पृथक् रखे हैं, परन्तु हैं एक मिट्टी के बर्तन ! ॥८॥ सद्गुरु श्री कबीर साहेब कहते हैं, कि वे दोनों भूले हैं, राम-रहीम को किसी ने नहीं पाया ॥९॥ क्योंकि हिन्दू खसी (बकरा, भैंसा, सूअर आदि) कटाते हैं और मुसलमान लोग गाय कटाते हैं, अतः दोनों विवाद करके एवं व्यर्थ में जीवन समाप्त करते हैं ॥१०॥

शब्द —१०

सन्तो राह दुनों हम दीठा ॥१॥

हिन्दू तुरुक हटा नहिं माने, स्वाद सबन को मीठा ॥ २॥
हिन्दू बरत एकादशी साधे, दूध सिंघारा सेती ॥ ३॥
अन्न को त्यागे मनको न हटके, पारन करे सगौती ॥ ४॥
तुरुक रोजा निमाज गुजारे, बिसमिल बाँग पुकारे ॥ ५॥
इनको विहिस्त कहाँ से होवे, जो साँझै मुरगी मारे ॥ ६॥
हिन्दू की दया मेहर तुरुकनकी, दोनों घट से त्यागी ॥ ७॥
ई हलाल वे झटका मारे, आग दुनों घर लागी ॥ ८॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु सोई लखाई ॥ ९॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहूँ खुदाई ॥१०॥

शब्दार्थ — राह = पथ-मत। दीठा = देखा। हटा = रोकना। सेती = साथ। सगौती = मांस। बिहिस्त = स्वर्ग।

भावार्थ — ऐ सन्तो ! मैंने हिन्दू और मुसलमान—इन दोनों का मार्ग देख लिया है ॥१॥ हिन्दू और मुसलमान दोनों किसी विचारवान का कहा नहीं मानते। इन लोगोंको जिह्वा का स्वाद बड़ा मीठा लगता है ॥१॥ दूध-सिघाराके साथ अर्थात दूध सिघारा खाकर हिन्दू लोग एकादशो व्रत रहते हैं ॥३॥ वे लोग अन्न को तो त्यागते हैं, परन्तु मनको नहीं रोकते और द्वादशो को सामिष१ भोजन का पारण करते ॥४॥ मुसलमान लोग रमजान के दिनों में तीस दिन रोजा (उपवास) रहते हैं और प्रतिदिन पाँच वक्त नमाज पढ़ते हैं और बिसमिल्लाह का नाम लेकर बाँग पुकारते हैं ॥५॥ परन्तु इनको स्वर्ग कैसे मिलेगा, जब शाम को ही मुर्गी-बकरी या गाय मारते हैं ? ॥६॥ हिन्दू मुसलमान दोनों ने अपने-अपने हृदय से दया और मेहरबानी त्याग दी है ॥७॥ मुसलमान बकरादि प्राणियों को हलाल करते (छूरी से रेत कर मारते), और हिन्दू लोग झटका मारते (एक ही बार में जोर से मार गिराते) हैं। इस प्रकार दोनों के हृदय रूप (या मतरूप) घर में निर्दयता की आग लगी है ॥८॥ हिन्दू-मुसलमानों का एक ही कल्पित भ्रान्तिपूर्ण मार्ग है, क्योंकि इनके गुरुओं ने वही लखाया है; अथवा गुरु-ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दू और मुसलमान—दोनों का एक सत्य-अहिंसा का पथ होना चाहिये ॥९॥ सद्गुरु कहते हैं कि ऐ सन्तो ! सुनो, घट-घट वासी हृदय-निवासी रमैया राम से पृथक् न कहीं राम है और न कहीं खुदा है, जिसके भरोसे जीव हत्यादि करते या पाँव पसारे साधनहीन बने सोते हो ॥१०॥

साखी – बड़ उतपात यमजाल है, परखहु संत सुजान।
घात करे बहुभाँति सो, तहाँ जीव चहै कल्यान ॥२९७॥

शब्दार्थ — यमजाल = मनका जाल; मतवाद। घात = छल।

भावार्थ — हे ज्ञानी संतो ! छानबीन करो, मनका या मतवाद का जाल बड़ा उपद्रवी है। वह अनेक प्रकार से व्यक्तियों के साथ में छल करता है, और भूला व्यक्ति उसी में अपना कल्याण चाहता है ॥ २९७॥

८२ – मनके जाल से ऊपर उठकर स्वरूप-स्थिति घर में चलो

चौपाई—८७

असी सहस्र मिलि नवी कहाई। विन गुरु आदम अंत न पाई ॥१॥
मध्य मध्य फंदा बहुतेरा। विविधि कलेश जीव अरुझेरा ॥२॥

शब्दार्थ — नवी = ईश्वर का दूत, पैगंबर। अंत = परिणाम; निश्चय; सत्य।

भावार्थ — तथाकथित ईश्वर के भेजे हुए असी हजार पैगम्बर माने जाते हैं जो ईश्वर का संदेश (सत्यज्ञान) संसार वालों को देने के लिये लाये; परन्तु सभी पैगम्बरों

१—हिंदुस्थान के सब प्रदेशोंमें ऐसी बात नहीं। किसी-किसी प्रदेशमें ही यह अज्ञान है।

के मूल आदम ही गुरु बिना यथार्थता को नहीं समझ सके ॥१॥ मनुष्यों ने बीच-बीच में कल्पना के अनेक बंधन रचते रहे। इस प्रकार व्यक्ति अनेक अज्ञानकृत कष्टों में फँसे हैं ॥२॥

विशेष — इसलाम प्रबोधिनी (पृ० १३०) में लिखा है कि "संसार में एक लाख चौवीस हजार रसूल (पैगम्बर) आये।"

आदि पैगम्बर आदम है जो स्वयं गलती के कारण अपने निवास से निकाल दिया गया। इसका विवरण बाइबिल में है। फिर अन्य रसूल कहाँ तक खुदाई रास्ता बताने का दावा कर सकते हैं।

वस्तुतः मनुष्य से पृथक न कहीं ईश्वर है और न वहाँ से कोई सत्यज्ञान का प्रचार करने के लिये पैगम्बर, अवतार आदि आते हैं। यदि ईश्वर का भेजा हुआ कोई आता तो उसी का सिद्धांत सर्वत्र चलता। सब कल्पना, ग्रन्थरचना, यश फैलाना—मनुष्य का काम है।

उरझ रहै जिव जहाँ तहाँ बंधा। बंदीछोर न चीन्है अंधा ॥३॥
क्षर अक्षर निःअक्षर धावै। त्रिगुण फाँसही में अरुझावै ॥४॥

शब्दार्थ — क्षर = शरीरादि नाशवान पदार्थ। अक्षर = अविनाशी; ईश्वर। निःअक्षर = निर्गुण।

भावार्थ — व्यक्ति यत्र-तत्र कल्पनाओं में बँधकर फँस रहे हैं। वे विवेकरहित लोग बंधन छुड़ाने वाले सद्गुरु को नहीं पहचानते ॥ ३ ॥ कोई शरीरादि नाशवान पदार्थों का मोही है, कोई अविनाशी ईश्वर की कल्पना में मस्त है और कोई निर्गुण-निराकार की खोज में दौड़ रहा है। इस प्रकार सब व्यक्ति त्रिगुणात्मक मन की उलझन में ही फँसे हैं ॥ ४ ॥

परख न टिके और मन लावै। जतन कलेश सोई सोइ भावै ॥५॥
अमली अमलहीके लत लागी। पतंग न लखहिं उतंगहि आगी ॥६॥

शब्दार्थ — अमली = आदती। अमल = आदत। उतंगहि = उतंग, उत्तुंग; ऊँचा।

भावार्थ — भूला मानव पारखज्ञान में नहीं स्थिर होता, वह दृश्य पदार्थों में ही मन फँसाता है। जिससे उसे क्लेश हो, वही यत्न करता है ॥५॥ आदती लोगों को जो आदत लग गयी है वे उसी में पड़े पचते हैं। पतंग कीड़ा आग की ऊँची ज्वाला को मोहवश अपने विनाश का कारण नहीं समझता ॥६॥

काल मता मद जीव बौराना। विविधि युक्ति बहु पंथ उपाना ॥७॥
साहेब नाम ओट धरे काला। जीवहिं भोरि करे बेहाला ॥८॥

शब्दार्थ — काल = कल्पना । साहेब = स्वामी; गुरु; संत । भोरि = भुला कर ।

भावार्थ — कल्पित मतों के अहंकार में पड़कर व्यक्ति उन्मत्त हो गये हैं; और वे अनेक युक्तियों की कल्पना करके अनेक सम्प्रदाय प्रकट कर दिये हैं ॥७॥ स्वामी, गुरु तथा सन्त के आड़ में भटकाने वाले भी अपना वही नाम व वेष रख लिये हैं; और वे मनुष्यों को सत्पथ से विचलित करके पीड़ित करते हैं ॥८॥

सदा काल बहु फँद बनावै । सोई फाँस जीवहिं उरमावै ॥९॥
चलहु जीव यम फाँस बचाई । जेहि विधि तीर चुभै नहिं भाई ॥१०॥

शब्दार्थ — काल = मन; मनवशी लोग । उरमावै = उरमाना, लटकाना, झुलाना । यम = मन; मनवशी लोग ।

भावार्थ — हर व्यक्ति का अपना मन तथा मनवशी लोग सदैव बंधन ही रचते रहते हैं । उन्हीं बंधनों में जीवों को फँसाते हैं ॥९॥ अतएव हे मुमुक्षुओ ! मन या मनवशी लोगों के भवबंधनों से उस प्रकार बचकर चलो जिससे उनके अज्ञानावरण तुम्हें न वेध सकें ॥१०॥

रहहु परख में हो हुशियारा । छार भार सब यम सिर मारा ॥११॥
शरणागत पारख लौलाये । यमके फंदा चलहु मिटाये ॥१२॥

शब्दार्थ — छार भार = छरभार, झंझट । यम = मन, वासना । मारा = मार, कष्ट ।

भावार्थ — सावधान होकर सदैव ज्ञानकी दृष्टि में रहो; और सभी झंझटों तथा कष्टदायी कल्पनाओं का बोझ मनपर ही लौटते रहो (वासनाओं को दूर करते रहो) ॥११॥ पारखज्ञान के आश्रय में आकर ध्यानमग्न हो जाओ और मनके बंधनों को मिटाते चलो ॥१२॥

निजघर वास करहु जिय अपना । यमपुर बहुत कलेश कल्पना ॥१३॥
कल्पत कल्पत जन्म सिराई । सदा रहै यम घात लगाई ॥१४॥

शब्दार्थ — निजघर = अपनी स्वरूपस्थिति । यमपुर = मन व वासना का घेरा । यम = मन । घात = छल ।

भावार्थ — हे अविनाशी जीव ! तुम अपने स्वरूपस्थिति रूप घर में निवास करो । मन-वासनाओं के घेरे में रहने से कल्पना-जनित अपार कष्ट हैं ॥१३॥ नाना कल्पना करते-करते तुम्हारे असंख्यों जन्म बीत चुके, और मन छल करके तुम्हें सदैव दुःख देता रहा ॥१४॥

बाँचहिं तेहि जे परम सयाने । सुर्ति समेटि प्रभुपद लपटाने ॥१५॥
परखत शब्द सुर्ति करै जीवा । होय अशंक शरण समकीवा ॥१६॥

शब्दार्थ—सुर्ति = सुरत, ध्यान। सम = एक ही; अभिन्न। कीवा = कर लेना।

भावार्थ — भवबंधनों से वे ही बचेंगे जो परम बुद्धिमान होंगे और अपने ध्यान को बटोर कर यथार्थ सद्गुरु के चरणों में सदा के लिये निवास करेंगे ॥१५॥ सारासार शब्दों की परख कर लेने पर व्यक्ति निश्चित ही यथार्थ सद्गुरु की ओर ध्यान देता है और उनके आश्रय में अभिन्न होकर निर्भय हो जाता है ॥१६॥

साखी – परखत सुरत समेटते, भये अशंक शरणाय।
सिर कूटत यम आपना, नेकौ नाहिं बसाय ॥२९८॥

शब्दार्थ — सुरत = ध्यान। शरणाय = आश्रय में आकर। यम = मन। नेकौ = किंचित-भी। बसाय = बस चलना।

भावार्थ — अपने से पृथक सारे स्थूल-सूक्ष्म की असारता परख कर और उनसे ध्यान समेट कर जब साधक यथार्थ सद्गुरु के आश्रय में आ जाता है तब वह सर्व भयों से मुक्त होकर निर्भय हो जाता है फिर तो मन जीवको फँसाने के लिये अपना सिर पटक कर मर जाय तो भी उसका किंचिन्मात्र भी वस नहीं चलता ॥२९८॥

पारख अचल अखंड है, ताहि परे नहिं और।
बिनु तेहि भटकि जग रहे, जहाँ नहीं थिति ठौर ॥२९९॥

शब्दार्थ — पारख = शुद्ध चेतन। थिति ठौर=स्थिति।

भावार्थ — अपना शुद्ध स्वरूप चेतन अविचल और अविनाशी है, उसके ऊपर अन्य कुछ नहीं है। इस पारखस्वरूप के ज्ञान बिना जगत के लोग वहाँ भटकते हैं जहाँ कोई स्थिति नहीं है ॥ २९९ ॥

छंद–६, ७

भटिके बहे बहु धारमें, पारख बिना नहिं ठौर है।
बूड़े न पावै थाह सो, गंभीर दहुँ दिश भौ रहै ॥
तामस वसी जिव उजबुजै, चहै और गावत और है।
आशा मगर भक्षण करै, जेहि ग्रास हेतक गौर है ॥६॥

शब्दार्थ — भौ = भव, जन्म, संसार; वासना। तामस = अज्ञान; अंधकार। उजबुजै = व्याकुल होना। मगर = घड़ियाल नामक हिंसकी प्राणी। ग्रास = कौर; ग्रहण; ढँक लेना। गौर = विचार, उद्देश्य।

भावार्थ — बहुत जीव भ्रम में भटक कर भवधारा में बह रहे हैं। पारख की प्राप्ति बिना जीव को स्थिति नहीं मिलती। जीव कल्पना में डूबे हुए हैं और वे थाह

नहीं पाते; क्योंकि उनकी दशों दिशाओं में गहरी वासना का समुद्र लहराता है । अज्ञान अंधकार में पड़कर जीव व्याकुल होते हैं । वे चाहते तो हैं परमशांति, परन्तु गाते हैं कल्पना का गीत । उनको आशा घड़ियाल चबाये डालता है । वस्तुतः अपने स्वरूप से पृथक उद्देश्य रखना स्वरूपज्ञान को ढँकने का कारण है ।।६।।

गावै विषय विकारके, नित्य ध्यावै अगम अपारके ।
नहिं थाह सो संसारके, चहै पार आश लबारके ।।
मतिभ्रष्ट करत खुवार तेई, यार परम विचारके ।
घर चोर ठौर उबारके, मत विदित जस सरकारके ।।७।।

शब्दार्थ — लबार = झूठा, गप्पी; मन । खुवार = ख्वार, परेशान । यार = मित्र । घर चोर = चोर का घर । सरकार = पंथाचार्य ।

भावार्थ — लोग विषय-विकार के गीत गाते हैं, परन्तु ध्यान करते हैं अगम-अपार ब्रह्म के । अतएव संसार के लोग थाह नहीं पाते । वे लबरे मनकी आशा में पड़कर संसार सागर से पार पाना चाहते हैं । वह मन व्यक्ति की बुद्धि भ्रष्ट करके उसे परेशान कर देता है; परन्तु भूलवश लोग उसी को परम विचार का मित्र मानते हैं । और चोर के घर में उद्धार का स्थान समझते हैं जैसे पंथाचार्यों के मत में प्रसिद्ध है ।।७।।

विशेष — पंथाचार्यों के मत की बातें अगले शब्द में स्पष्ट है ।

सत्यशब्द टकसार–१४

ऐसो वेद वैद्य जग माँहीं, ताते रोगी जीवत नाहीं ।।१।।
कथा कर्म काटनके ताँईं, सुनता है सब कोई ।।२।।
औषध और रोग कछु औरहि, कुपथ परे सब लोई ।।३।।
गोपी कृष्ण काँधकै लीन्हा, सबको यही बतावै ।।४।।
जैसी सुनै उपजै पुनि तैसी, लहरि विषय की आवै ।।५।।
बारह बरस को पुरुष बतावै, सोरह बरस की नारी ।।६।।
कहहिं कबीर भली समुझाई, भूला चोर कटारी ।।७।।

शब्दार्थ — वेद = ज्ञान । वैद्य = उपदेष्टा, गुरु । कुपथ = अयुक्त ।

भावार्थ — संसार में ऐसे ज्ञान और गुरु हैं जिनसे भवव्याधि से पीड़ित मनुष्य निर्बन्ध होने की अपेक्षा अधिक पतित होता है ।।१।। सब कोई कथा वार्ता इसलिये सुनते हैं जिससे काम-क्रोधादि का कर्मबंधन कट कर जीव का कल्याण हो ।।२।। परन्तु यहाँ तो रोग कुछ अन्य है तथा औषध कुछ अन्य प्रकार की दी जाती है, अत-

एव सब लोग अयोग्य स्थिति में पड़कर अधिक मानसिक बीमार होते हैं ।।३।। श्रीमद्-भागवत की कथा में कहते हैं कृष्ण ने गोपी को काँध पर लेकर उनका प्यार किया; और भागवत के "रासपंचध्यायी" के अत्यंत शृंगाररसपूर्ण कथा श्रोता को सुनाया जाता है ।।४।। यह मानी बात है व्यक्ति जैसी बात सुनता है वैसी ही भावना, कल्पना उसके मनमें उत्पन्न होती है; और इस प्रकार रासलीला के दर्शन तथा उसके कामोत्तेजक शब्द सुनकर लोगों के मनमें विषय-वासनाओं की ही तरंगे उठती हैं ।।५।। कथा वाचक लोग कहते हैं कि श्रीकृष्णमहाराज उस समय बारह वर्षके थे और गोपिकायें विशेषतर सोलह वर्षीया थीं ।।६।। कबीर साहेब कहते हैं कि संसार के मानसरोग से ग्रसित लोगों को गुरुओं ने अच्छा पाठ पढ़ाया जो भूला चोर कटारी हो गया ।।७।।

विशेष — रासलीला श्री कृष्णके जीवन के साथ में जोड़ा गया वह भीषण कलंक है जिस पर चिन्मय लीला तथा दिव्यानुभव आदि शब्दावलियों की सफेदी से पोत कर मिटाया नहीं जा सकता । आज भी जगह-जगह हजारों के बीच में कृष्ण और राधा को नचाकर हास्यास्पद मिथ्याभिमान किया जाता है । और यह रासलीला जब त्यागी नामधारियों के मंदिरों में होती है तब और हास्यास्पद एवं पतनकारी स्थिति हो जाती है ।

ज्ञान, वैराग्य, भक्ति के उपदेश से मन शुद्ध हो सकता है । इसके उलटा जब विषयरस की कथा कही जायगी तब श्रोता का मन कहाँ पहुँचेगा इसका अंदाज लगाना किसी को कठिन नहीं है । अतएव सदैव विषय रस रहित सतचर्चा होनी चाहिये ।

सत्यशब्द टकसार-१५

सहज एक ऐसी हूल परी ।।१।।
भागे शुक सनकादिक नारद, मोहे अक्षय हरी ।।२।।
ब्रह्मा विष्णु आदि ले भागे, सुध बुध सब बिसरी ।।३।।
ये तीनोंके देखादेखी, दुनियाँ भागी सगरी ।।४।।
नौ दश भागे औ तैंतीसों, चौरासी सगरी ।।५।।
भेष अलेख करे को लेखा, काहु न परख करी ।।६।।
धीरज राखि रहे नहिं कोई, छाँड़ि चले नगरी ।।७।।
कहहिं कबीर हटो नहिं माने, धोखेकी बिडरी ।।८।।

शब्दार्थ — हूल = वेदना, पीड़ा; हल्ला-गुल्ला; भीड़; ललकार । अक्षय = अविनाशी । नौ = नौ नाथ । दश = दश मुख्य अवतार । तैंतीसों = तैंतीस कोटि देवता । अलेख = बेहिसाब । हटो = रोकना, कहा । बिडरी = बिड़रना, चौंकना; भागना; तितर-बितर होना ।

भावार्थ — संसार में ब्रह्मवाद का एक ऐसा सहज हल्ला-गुल्ला, भीड़ व ललकार मचा जिसमें सुकदेव, सनकादि; नारद, अविनाशी विष्णु आदि सब विमोहित होकर भागादौड़ी करने लगे ॥१,२॥ ब्रह्मा, विष्णु महादेव आदि तक इस ब्रह्मवाद के हो-हल्ला में अपने जड़-चेतन के विवेक का होश-हवाश छोड़कर भागने लगे ॥३॥ फिर तो इन महान कहलाने वालों की देखादेखी सारा संसार ही उसी के पीछे दौड़ने लगा ॥४॥ नौनाथ, दश अवतार तथा तैंतीस कोटि माने गये देवता सम्पूर्ण चौरासी (पूर्ण विश्व) को एक ब्रह्म मानकर उसी मान्यता में दौड़ने लगे ॥५॥ बेहिसाब षट्-दर्शन वेष-धारियों की कौन गणना कर सकता है, इन लोगों ने भी ब्रह्मवाद की छानबीन नहीं की ॥६॥ उक्त लोगों में कोई धैर्य धर कर ठहर नहीं सका; किन्तु विवेक-नगर को सब छोड़कर ब्रह्मवाद में ही भाग चले ॥७॥ सद्गुरु कबीर कहते है कि लोग रोकने से भी नहीं मानते हैं, धोखे में पड़कर सब चौकन्ने बने भाग रहे हैं ॥८॥

विशेष — जो माना हुआ ब्रह्म जड़ से अभिन्न तथा सृष्टि का स्वाभाविक कारण है वह मोक्ष का कारण नहीं बन सकता । इतनी-सी बात बड़े-बड़े कहलाने वाले भी नहीं समझ सके ।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी १२५, १३३, १३४,

एक शब्द गुरुदेव का, ताका अनन्त विचार ।
थाके मुनिजन पण्डिता, वेद न पावै पार ॥३००॥

शब्दार्थ— एक शब्द = मोक्ष ।

भावार्थ — 'मोक्ष'—गुरुदेव के इस एक शब्द पर मनीषियों ने अनन्तों विचार व्यक्त किये हैं । मुनिजन तथा विद्वान लोग विचार करके थक गये हैं; वेदों ने भी इसका पार नहीं पाया है ॥३००॥

विशेष — इस अनादि कालीन जगतीतल पर समस्त धार्मिक गुरुजनों ने जीवों के मोक्ष की मान्यता एक स्वर से की है, परन्तु उस पर विचार असंख्यों प्रकार से किये गये हैं । अन्ततः विद्वानों और वेदों ने उसका सम्बन्ध ब्रह्म से जोड़ा है; परन्तु ब्रह्म क्या है—इस पर पण्डित और वेद भी भ्रम में पड़ गये हैं, और वे उसे जगत रूप ही कह डाले हैं । जगत रूप कहकर भी उसको नेति-नेति भी कहते हैं । जो हो, चारों वेद ब्रह्म के पक्ष में हैं, यद्यपि उसका परिणाम उत्तम नहीं है; क्योंकि सत्य जीव के अतिरिक्त ब्रह्म एक भ्रम ही है और भ्रम में पड़कर जीव का कल्याण कहाँ ?

विषके बिरवे घर किया, रहा सर्प लपटाय ।
ताते जियरहिं डर भया, जागत रैनि बिहाय ॥३०१॥

शब्दार्थ — विष = विषय, कल्पना । घर = निवासस्थान । सर्प = खानी-वाणीका अहंकार । बिहाय = व्यतीत होता है ।

भावार्थ —कल्पना और विषय रूपी विष-वृक्ष के नीचे, जीव ने अपना निवास-स्थान बनाया है; जिसमें अहंकार रूपी सर्प लिपटे हुए हैं। इस देहाभिमान से ही शरीर और शरीर सम्बन्धी भौतिक पदार्थों के छूटने का भय जीव को लगा रहता है। इसी चिन्ता में जागते ही रात बीतती है, (फिर दिन की तो बात ही क्या ?) ॥३०१

विशेष — विषय विष के तुल्य हैं, विषयासक्ति से अहंकार की उत्पत्ति होती हैं। सांसारिक पदार्थों एवं शरीर के अहंकार में पड़कर; उनकी रक्षा वृद्धि की चिन्ता में मनुष्य के रात-दिन कटते हैं, उन्हे माया प्रपंचवश सुख से सोने का भी बदा नहीं होता।

अथवा 'जागत रैनि बिहाय' सावधानता पूर्वक अज्ञान रूपी रात्रि को समाप्त कर दो जिससे तुम्हारा कल्याण हो।

जो घर हैगा सर्प का, सो घर साधन होय।
सकल सम्पदा ले गये, विष भरि लागा सोय ॥३०२॥

शब्दार्थ — सर्प = अहंकार या अहंता-ममता। विष = विषय, नाना कल्पनायें सोय = अहंकार सर्प।

भावार्थ — जो मन की मानन्दी, अहंता-ममता रूपी सर्प का घर है; इसी घर को भूले लोग अपने कल्याण-साधन का घर बना रखे हैं, अतएव परिणाम यह हुआ कि जीव की विवेक-विचारादि सम्पूर्ण दैवीसम्पदा को अहंकार सर्प हर ले गये, और वे विष भर करके जीव के हृदय में चिपट गये ॥३०२॥

८३–जीवका चारों खानियों में भ्रमण

चौपाई–८८

सो त्रिदोष ब्रह्मांड विराजै। सोई कला घट भीतर साजै ॥१॥
त्रिविधि अपनी फाँश चलावै। बहुविधि रोग शोग उपजावै ॥२॥

शब्दार्थ — त्रिदोष = तत्, त्वम्, असि; रज, सत, तम। ब्रह्मांड = विश्व; वाणी। कला = अंश।

भावार्थ — तत्त्वमसि शब्द से सिद्ध किया हुआ जड़-चेतन-अभिन्न ब्रह्म विश्व में परिपूर्ण है और वही अंश रूप से हर मनुष्य के भीतर भी शोभित है ॥१॥ इस तरह यह तीन प्रकारों वाले ब्रह्म की मान्यता का बंधन लोगों पर व्याप्त है जो अनेक प्रकार के रोग-शोकों से पूर्ण जगत को उत्पन्न करता है ॥२॥

अनवनि रोग को वर्णै पारा। सब मिलि गाइ गाइ पुनि हारा ॥३॥
नाशै अंत न रखै शरीरा। घुर्महि रहटा साँझ सकेरा ॥४॥

शब्दार्थ — अनवनि = अनेक। घुमेहि = घूमना। रहटा = रहंट, चक्कर।

भावार्थ — कल्पना और अज्ञान की अनेक व्याधियाँ हैं। उन सबका कौन वर्णन

कर सकता है ? सब बड़े-बड़े मिल कर अनादिकाल से ईश्वर-ब्रह्म के गीत गाकर पुनः थक गये; परन्तु उसे नहीं पाये ॥३॥ यह शरीर भी अंत में नष्ट हो जाता है, इसको रख नहीं सकता। और जीव सुबह से शाम तथा शाम से सुबह होने के सदृश रहँट चक्कर में घूमते रहते हैं ॥४॥

जन्म मरण सोई कहलावै। रहटा माँहिं जीव घुमावै ॥५॥
चारि खानिके आशा चारी। उलटि पलटि सोइ बासा डारी ॥६॥

शब्दार्थ — घुमावै = घूमते हैं। बासा = वासना।

भावार्थ — उसी को जन्म-मरण कहते हैं जो देह धरना तथा छोड़ने के रहँट-चक्कर में जीव घूमते हैं ॥५॥ स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण—ये चार देहों की चार आशायें चारों खानियों में ले जाने के बीज हैं। वासना-वश उलट पलट करके चारों खानियों में ही सब जीव अपना निवास स्थान बनाते रहते हैं ॥६॥

जोइ आशा सोइ बासा लाई। उपजन विनशन बीज बनाई ॥७॥
आशा तुर्या पिंडज परधाना। बासा धरती कीन्ह ठेकाना ॥८॥

शब्दार्थ — तुर्या = तुरीय, ज्ञान दशा।

भावार्थ — जिस जीव की जैसी आशा-वासना रहती है, उसका वैसी ही खानि में निवास होता है; और सब जीव भूलवश जन्म-मरण की बीजवासना बनाते रहते हैं ॥७॥ महाकारण देह के ज्ञानमार्ग के अभ्यासी जीव शुद्ध स्वरूप की परख तथा स्थित न होने से पिंडज खानि के प्रधान अंग उत्तम मानव तन में जाते हैं और वे पृथ्वी पर निवास करते हैं ॥८॥

अचल खानि आशा थिर पौना। धरती बास जड़ताई तौना ॥ ९ ॥
अंडज आशा धरती लाई। बासा शून्य अधिकार उड़ाई ॥१०॥
आशा उखमज श्वास बनाई। बासा अनल देह भरमाई ॥११॥

शब्दार्थ — थिर पौना = सुषुप्ति अवस्था कारण देह का मूढ़तापूर्ण अध्यास। आशा धरती = स्थूलदेह जागृति अवस्था का कर्माध्यास। श्वास = सूक्ष्मदेह स्वप्नावस्था का अध्यास।

भावार्थ — अत्यंत मूढ़तापूर्ण कर्मों के अध्यास से जीव पर्वत, वृक्षादि में बाहर से जाकर देह धारण कर लेते हैं; और पृथ्वी के स्थूल पदार्थों में जड़ता पूर्वक निवास करते हैं ॥९॥ स्थूलदेह की जागृति अवस्था के चंचल कर्माध्यास से जीव अंडज खानिमें जाकर निवास करते हैं, और आकाश में उड़ने के अधिकारी होते हैं ॥१०॥ सूक्ष्मशरीर के स्वप्नावस्थावत अज्ञान पूर्ण कर्मों के अध्यास से जीव उष्मज खानि में जाकर भटकते हैं, जहां उनके शरीर उष्मा (गरमी) से उत्पन्न होते हैं ॥११॥

साखी – सबै कला सब खानिमें, अधिकारी बिलगाय।
और योनिते औरमें, कारण देइ भरमाय ॥३०३॥

शब्दार्थ — अधिकारी = अधिक योग्यता वाला। कारण = कर्म वासना।

भावार्थ — अनादिकाल से सभी खानियों में सब जीव भटकते हुए आये हैं। जिस खानि का अध्यास अधिक रहता है जीव मनुष्य खानि से पृथक होकर उसी खानि में चले जाते हैं। किसी योनि में रहे हुए जीव के शरीर छूटने पर उसकी कर्मवासनायें अन्य खानियों में लेजाकर उसे डाल देती है ॥३०३॥

बढ़े विलास चहुँ खानिमें, अपने अपने आश।
चलन अधिकता जहाँ नहीं, जिनकी जैसी वास ॥३०४॥

शब्दार्थ — विलास = भोग, क्रीड़ा; हिलना-डुलना। आश = वासना।

भावार्थ — मनुष्य, पिण्डज, अण्डज और उष्मज—इन चारो खानियों में अपनी-अपनी वासना के अनुसार जीव भोग-क्रीड़ा करने में बढ़चढ़कर हैं या उनमें हलन-चलन शक्ति है। जिस खानि में अधिक चलना-फिरना नहीं होता जैसे अजगर आदि में उनकी वैसी ही कर्मवासना समझनी चाहिये। जिन जीवों की जैसी वासनायें रहती हैं वे वैसी खानियों को प्राप्त होते हैं ॥३०४॥

चौपाई—८६

तैसो फंद जनमके हेता। भिन्न भिन्न तेहि लक्ष सचेता ॥१॥
देह माँह जस कर्म कमावै। सोई कर्म बुद्धि होयके धावै ॥२॥

शब्दार्थ — फंद = बंधन। लक्ष सचेता = जागृत संस्कार, जानबूझकर इच्छा-पूर्वक किया गया कर्म।

भावार्थ — वे ही भिन्न-भिन्न वासनायें बंधन बनकर जन्म के कारण हैं जो जागृति अवस्था में जान-बूझकर इच्छापूर्वक की गयीं हैं ॥१॥ जीव मानव शरीर में जिस प्रकार पाप-पुण्य के कर्म करते हैं उनके वे कर्म सूक्ष्मरूप में बुद्धि के रूप में बदल जाते हैं। अर्थात अच्छे-बुरे कर्मों से अच्छी-बुद्धि बनता है ॥२॥

लक्ष स्वभाव सोइ सोइ होई। घट साँचा घट माँहि समोई ॥३॥
देह अभिमानी देह निवासा। थूल अभिमानी लिंगम बासा ॥४॥

शब्दार्थ — घट = शरीर। साँचा = किसी गीली वस्तु को ढालने का ढाँचा, जैसे ईंट का साँचा; तात्पर्य में सूक्ष्म संस्कार बोज। थूल = सूक्ष्म। लिंगम = सूक्ष्म।

भावार्थ — शुभाशुभ बुद्धि के अनुसार ही जीवों के संस्कार तथा स्वभाव होते हैं। वस्तुतः स्थूल शरीर का संस्कार बीज सूक्ष्म शरीर में समाया रहता है ॥३॥

स्थूल देह के अभिमानी जीव देह की ही वासना में लिपटे रहते हैं; और सूक्ष्मदेह के अभिमानी को सूक्ष्मवासनायें रहती हैं ।।४।।

शून्य अभिमानी शून्यहि राखै । तुर्या अभिमानी निरंजन चाखै ।।५।।
ताहि कला चौ कला उपाई । कला बीच बहु कला समाई ।।६।।

शब्दार्थ — निरंजन = ब्रह्म ।

भावार्थ — हठयोगादि करके अचेती में रहने वाले या विवेकसे शून्य तमोमय मूढ़तापूर्ण स्थिति के अभिमानी जीव मूढ़ता में ही रहते हैं । और व्यापकब्रह्म की साक्षी दशा के अभिमानी ब्रह्मज्ञान में रमते हैं ।।५।। उक्त स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा महाकारण देहकी ये चार कलायें हैं और इनसे चार प्रकार के अध्यासबीज रूपी चार कलायें उत्पन्न होती हैं । इन कलाओं-रचनाओं एवं अध्यासों के बीच में अन्य अगणित देहों में जाने के लिये अगणित अध्यास बीज बनते हैं ।।६।।

देह बुद्धि जेहि जीव लगावै । सोई आशा होय उपजावै ।।७।।
विनशे देह देह सोइ पावै । अंडज खानिमों जाइ समावै ।।८।।

शब्दार्थ — लगावै = लगाना, आरोपित करना ।

भावार्थ — जो जीव अपने मनमें अपने विषय में देहबुद्धि का आरोपण करता है । उसकी वह देहबुद्धि ही आशा, वासना बनकर दूसरी देह उत्पन्न करने में कारण बनती है ।।७।। वह देहाभिमानी जीव वर्तमान देह के नष्ट हो जाने पर दूसरी देह ग्रहण करता है; और अधिक चंचल वासना रखने वाले जीव अंडज खानि में प्रविष्ट होकर तथा पंखदार देहधारण करके आकाश में उड़ते रहते हैं ।।८।।

पहिली आश बास उलटाई । थीर पौन दुनियाँ भरमाई ।।९।।
ज्ञानी थूल थूल सो आशा । पलटि उखमज तेहि दीन्ह निवासा१०

शब्दार्थ — थीर पौन = माया । थूल = सूक्ष्म । उखमज = उष्मज ।

भावार्थ— मनुष्य पहले भौतिक वस्तुओं की आशा करता है फिर उनका उपभोग करके उनमें आसक्त हो जाता है और वह आसक्ति ही उलटकर जीव को बाँधने के लिये वासना बन जाती है । इस प्रकार माया के चक्कर में पड़कर संसारी जीव भटकते हैं ।।९।। सूक्ष्मज्ञानी ही क्यों न हो यदि उसको विषयों की सूक्ष्म आसक्ति लगी है और उसका वचनमात्र का ही ज्ञान है तो उसे वासनायें उष्मजखानि तक में पटक सकती हैं ।।१०।।

थीर पौन अभिमान दृढ़ाई । खानि अंकुरज जाइ समाई ।।११।।
तुर्या ज्ञान न और अलंभा । पिंडज तेहि राखै जगदम्बा ।।१२।।
उलटि पलटि योनी भरमावै । आपुहि आश वास होइ धावै ।।१३।।

शब्दार्थ — थीर पौन = माया; मूढ़ता। अलंबा = अवलम्ब, आधार। जगदम्बा = माया, वासना।

भावार्थ — माया का अभिमान व मूढ़ता मनमें दृढ़ हो जाने से जीव अंकुरज-काष्ट-फल आदि में जाकर कीड़े-मकोड़ों के रूप में देहधारण करता है ॥११॥ तुर्यस्थ ब्रह्मज्ञानी पुरुष यद्यपि अन्य अवलम्ब नहीं पकड़ते और शुद्ध आचार-विचार में चलते हैं; परन्तु जड़-चेतन का ठीक विवेक न होने से उन्हें वासना पुनः पिंडज खानि के उत्तम मानवशरीर को धारण करने को वाध्य कर देती है ॥१२॥ इस प्रकार विषयों की आशा स्वयं वासना बन कर जीव के मनमें दौड़ती और चारों खानियों में जीव को उलट-पलट करके भ्रमाती है ॥१३॥

विशेष — जो ज्ञानमार्ग से चलता है वह स्वरूपज्ञान की भूल या विषयासक्ति कुछ रह जाने से बारम्बार नरतन को पाता है और कभी शुद्ध बोध और वैराग्य को धारण करके मुक्त हो जाता है।

साखी — उलटि पलटि बहु भाँतिते, चौरासी भरमाय।
आश भरोसा कुशलके, अंध सबै पतियाय ॥३०५॥

शब्दार्थ — अंध = विवेकहीन। पतियाय = विश्वास करना।

भावार्थ — जीव उलट-पलट कर ऊँच-नीच खानियों में भटकता है। अविवेकी व्यक्ति अपने कल्याण की आशा तथा भरोसा करके विषयभोगों और मनःकल्पनाओं में ही विश्वास करता है ॥३०५॥

विविधि प्रकार उपजा करे, एकते करै अनेक।
चहै भक्ति जेहि जीवको, देइ विज्ञान विवेक ॥३०६॥

शब्दार्थ — उपजा करे = उत्पन्न होता है। विज्ञान = ब्रह्मज्ञान, जड़-चेतन की एकता।

भावार्थ — मनुष्यों के मनमें अनेक प्रकार की कल्पनायें उत्पन्न होती रहती हैं। यहाँ तक कि मनुष्य एक तथाकथित अखण्डब्रह्म से खण्डस्वरूप अनेकतापूर्ण जगत की उत्पत्ति का दावा करते हैं और वे उसके जोश में पड़कर जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्मज्ञान को विज्ञान तथा विवेक की वस्तु बतलाकर उन साधारण लोगों तक को उसी का उपदेश करते हैं, जिनको साधारण भक्ति, धर्म एवं सदाचरण का उपदेश देना चाहिये ॥३०६॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, ज्ञानचौंतीसा—४

घघा घट विनसै घट होई। घटही में घट राखु समोई ॥१॥
जो घट घटै घटहि फिरि आवै। घट ही में फिर घटहि समावै ॥२॥

शब्दार्थ — घट = शरीर। समोई = शमन। घटै = आसक्त होय, देहासक्ति रखे। समावै = प्रविष्ट होगा।

भावार्थ — (गुरोक्ति) घघा कहता है कि एक शरीर के नाश होने पर, पुनः दूसरा शरीर बनता है। अतः इस शरीर का अध्यास, इसी शरीर में शमन (नाश) कर डालो ॥ १ ॥ परन्तु यदि विषयों की आसक्ति में पड़कर मन में शरीरासक्ति की रचना करोगे, तो शरीर में पुनः आना पड़ेगा और सूक्ष्म शरीर-सहित माता के गर्भाशय रूपी घट में प्रविष्ट होकर पुनः शरीर बनेगा ॥ २ ॥

विशेष — 'घट ही में घट राखु समोई' का तात्पर्य यह है कि कल्याणसाधन करने योग्य इसी नर-तन रूप घट में (जीवन में) शरीर की आसक्ति तथा शरीर से उत्पन्न हुए भास-अध्यास अनुमान कल्पनादि को नष्ट कर डालो, फिर शरीर में नहीं आना पड़ेगा।

परन्तु 'जो घट घटै' अर्थात घट में घटोगे—आसक्त होओगे, तो शरीर में आओगे, और माता के गर्भाशयरूपी घट में तुम्हारा नवीन घट पुनः प्रवेश होगा। नवीन शरीर की सब सामग्री सूक्ष्म-शरीर में ही स्थित रहती है, अतएव विषयासक्ति का नाश करके देहाभिमान को दूर करना साधक का परम कर्तव्य है।

अपने चेतन स्वरूप से पृथक् जहाँ तक कल्पनायें भास, अध्यास, अनुमान, विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता, द्वेष तथा अहंकार हैं—ये ही मुख्य बन्धन हैं। इनके रहते-रहते यदि शरीर छूट गया तो जीव को पुनः बन्धन में आना पड़ता है; परन्तु इनका त्याग करके जो अपने चेतन स्वरूप में स्थित हो गया, वह दुःखहीन मुक्त स्वरूप है।

८४—विवेकरहित साधनाओं का दिग्दर्शन

चौपाई—९०

बुद्धि थूल मिलावै जाही। भुगतावै स्वर्गादिक ताही ॥१॥
थूल अस्थूल के जेहि नहिं आशा। बुद्धि शून्य अचेत निवासा ॥२॥

शब्दार्थ — थूल = सूक्ष्म।

भावार्थ — (स्थूल कर्ममार्गी लोक-परलोक के सुख भोगते हैं) और जो सूक्ष्म बुद्धि को मिलाकर उपासना करते हैं। उनकी उपासना उन्हें स्वर्गादिक सुखों का उपभोग कराती है ॥१॥ जिनको सूक्ष्म उपासनामार्ग तथा स्थूल कर्ममार्ग दोनों की आशा नहीं है वे योगी जन योगाभ्यासद्वारा वृत्ति को शून्य करके अचेती अवस्था में निवास करते हैं।

विशेष — अमुक यज्ञ करने से पुत्र, अमुक यज्ञ करने से राज्य आदि की प्राप्ति की कल्पना केवल भ्रम ही है। स्वर्ग कोई वस्तु न होने से उसकी प्राप्ति की आशा भी निरर्थक तथा जीव को भटकाने वाली है। स्वरूपस्थिति से रहित योगाभ्यास की अचेती अवस्था भी श्रेयस्कर नहीं हो सकती।

शून्यहि छोड़ि ज्ञानरस पागे। सर्वसाक्षिणी पद अनुरागे ॥३॥
एकते एक कला अधिकाई। भास विलास न संधि लखाई ॥४॥

शब्दार्थ — सर्वसाक्षिणी=सबका द्रष्टा, तुरीयावस्था। कला=विशेषता। भास=प्रतीत, दृश्य। विलास=रमण। संधि=कसर, त्रुटि।

भावार्थ — कोई शून्यवृत्ति रूप योगाभ्यास को छोड़कर ब्रह्मज्ञान के भाव में विभोर होता है और तुरीयपद में प्रेम करता है ॥३॥ इस प्रकार कर्म, उपासना, योग तथा ज्ञान में क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक विशेषता है। परन्तु उन लोगों को यह त्रुटि नहीं देख पड़ती है कि उपर्युक्त जितना पसारा है सब भास-दृश्य में रमण करना है ॥

सर्वासर्व गिरासहि ताहीं। तुर्यातीत होय पद जाहीं ॥५॥
उतपति परलय सो तहाँ सुभाई। उलटि पलटि पुनिपुनि जहँड़ाई ॥६॥

शब्दार्थ — सर्वासर्व=सम्पूर्ण। गिरासहि=निगल जाना; खा लेना; अपने में लीन कर लेना। पद=स्वरूप। जहँड़ाई=ठगाजाना।

भावार्थ — जिसे तुरीय से भी परे शुद्ध ब्रह्मस्वरूप कहते हैं वह सम्पूर्णविश्व को अपने में लीन कर लेने वाला है ॥५॥ उसका स्वभाव है मकड़ीतारवत अपने से विश्व को उत्पन्न करना तथा कालान्तर में पुनः उसे अपने में लीन कर लेना। अतएव जो अपने आप को ब्रह्म मानता व ब्रह्म में लीन होना चाहता है वह उलट-पलट कर बार-म्बार उत्पत्ति-प्रलय तथा जन्म-मरण में पड़कर अपने को ठगाता है ॥६॥

सर्वखेत उपजा उपजाई। पेरहिं कोल्हू कष्ट देखाई ॥७॥
कोल्हुहि पेरि रसलेत चुवाई। महाकराह साधन औंटाई ॥८॥

शब्दार्थ — खेत=क्षेत्र; मत। औंटाई=पकाना।

भावार्थ — नाना मतके गुरुजन अपने उपदेशों द्वारा सभी मतों में भक्ति-ज्ञान रूपी उपज करते हैं और शिष्यों को नरकादि का भय बता कर उन्हें साधना के कोल्हू में पेरते हैं ॥७॥ लोग साधना करके अनुभव रस निचोड़ लेते हैं और उसे उच्चतम साधना के बड़े कराह में पकाते हैं ॥८॥

कर्म सुकर्म इंधन बहुतेरा। अनल विरह तन चूल्ह निबेरा ॥९॥
रस औटत कोउ रावा भयऊ। कोई चक्की गुर स्थूल उपयऊ ॥१०॥

शब्दार्थ — इंधन=जलाने की लकड़ी आदि। निबेरा=तय किया। रावा=राब, गाढ़ा सीरा। गुर=गुड़।

भावार्थ — बुरे और अच्छे जो अनेक प्रकार के कर्म हैं उन्हें इंधन बनाया, विरह की आग तथा शरीर को चूल्हा निर्धारित किया ॥९॥ अनुभव रस को पकाते समय किसी के तो राब हुई और किसी के कठोर गुड़ के चाक बने ॥१०॥

विशेष — राब का तात्पर्य कर्मसिद्धान्त है तथा गुड़ का तात्पर्य उपासना-सिद्धांत है।

अति प्रसन्न न गुरुके मीठा। रही कंद जो मिलि सब सीठा ॥११॥
रावा कसी शक्कर सो कीन्हा। छोई कसरी भिन्न कै लीन्हा ॥१२॥

शब्दार्थ — कंद = सफेद शकर, मिश्री। सीठा = फीका। छोई = ईख की पत्ती; खोई। कसरी = कसर, विकार; मैल।

भावार्थ — गुड़की मिठास में लोग बहुत खुश नहीं होते। क्योंकि उसके मूल शकर में फीकी वस्तुयें मिली रहती हैं ॥११॥ अतएव लोग राव या गुड़ को शोध एवं औंटा कर तथा उसमें मिली हुई पत्ती, खोई आदि को निकालकर शकर बना लेते हैं ॥१२॥

विशेष — लोग कर्म तथा उपासना में पूर्ण संतोष न पाकर योगमार्ग का अनुसरण करते हैं।

शक्कर दूध विचार मिलाई। अनबनि भाँति ताहि फरियाई ॥१३॥
दीन्ह सेवार धीरता बहुताई। चीनी कीन्ह निजमाटन माँही ॥१४॥

शब्दार्थ — अनबनि = अनेक। फरियाई = फरियाना, शुद्धकरना। सेवार = सिवार, शैवाल, एक जलीय पौधा। माटन = घड़ों।

भावार्थ — कोई शकर में दूध मिलाकर और उसे पकाकर शोधता है। इस प्रकार लोग उसे अनेक प्रकार से शुद्ध करते हैं। कोई शकर में शैवाल डालकर और उसे पकाकर महीन चीनी बनाता है और अपने घड़ों में रख लेता है जो खाने में रुचिकर होती है।

इस प्रकार विचार का दूध तथा धैर्य का शैवाल मिलाकर लोग योगानुभव का शकर शुद्ध करते हैं ॥१३, १४॥

पुनि पुनि ताहि दोबारा करहीं। तुरिया शुद्ध बोद्र तेहि भरहीं ॥१५॥
मिश्री सो विज्ञान कहावै। सब विधि कालके मुखहिं समावै ॥१६॥
महिमा बास फूल प्रभुताई। तेहिते कंद बिकंद बनाई ॥१७॥

शब्दार्थ — काल = कल्पना। कंद = मिश्री। बिकंद = विष, जहर।

भावार्थ — योगी लोग बारम्बार योगाभ्यास की पुनरावृत्ति करके ब्रह्मज्ञान की शुद्ध तुरीयदशा को प्राप्त होते हैं और कहते हैं उस स्थिति में उनका मन उसी प्रकार संतुष्ट हो जाता है जैसे कोई मिश्री खाकर पेट भर लिया हो ॥१५॥ यहाँ मिश्री विज्ञान को कहा गया है जिसमें जड़-चेतन की अभिन्नता है और इस मान्यता को स्वीकार करना वस्तुतः कल्पना के मुख में समा जाना है ॥१६॥ ब्रह्मज्ञान की प्रभुता में महिमा की सुगंधी है इसीलिये यह कंद ही विकंद अर्थात मिश्री विष हो गयी है ॥१७॥

विशेष — संसार में ब्रह्मज्ञान की बड़ी महिमा है। अतएव लोग उसके अहंकार में फूलकर बेभान हो गये हैं। ब्रह्मज्ञान या विज्ञान दशा में जड़-चेतन एक मान लेने से यहाँ कंद विकंद हो गया है, अर्थात मिश्री विष हो गयी है। जिस ज्ञान में अपनी चेतन सत्ता जड़से पृथक न सिद्ध होकर जड़-चेतन अभेद हो, वह ज्ञान वस्तुतः अज्ञान ही है।

साखी–सब विधि खाई आपुहि, शुभ अरु अशुभ बनाय।
कोउ मीठा बहुभाँति सो, गुड़ करनी समुदाय ॥३०७॥

शब्दार्थ — बनाय = करके।

भावार्थ — कोई (अद्वैतवादी) पाप-पुण्य कर्मों को करके भी उन्हें सब प्रकार से अपने में हजम हुआ मानकर स्वयं ब्रह्म बनता है। और कोई (कर्मी) कर्मसमूह को गुड़, सदृश मीठा मानकर अनेक प्रकार से कर्म करता है ॥३०७॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी–४७

बिनु डाँड़े जग डाँड़िया, सोरठ परिया डाँड़।
बाटनिहारे लोभिया, गुरते मीठी खाँड़ ॥३०८॥

शब्दार्थ — बिनुडाँड़े = बिना दण्ड किये। डाँड़िया = दण्डित हुआ। सोरठ = (सोर = सोरह, ठ = ठौर—सोलह जगह, जूआ खेलने के सोलह कोष्टक) जूवा। डाँड़ = व्यर्थ। बाटनि = जूवा में पड़ने वाली चिट्ठी, दाँव, नरतन। गुर = गुड़, संसारी-भोग। खाँड़ = शकर, शून्य समाधि का सुख।

भावार्थ — किसी के बिना दण्ड किये ही, संसार के लोग दण्डित हुए। मोक्ष-प्राप्ति के लिये ब्रह्मवाद का जूवा खेला, वह व्यर्थ गया, और ये ब्रह्म-प्राप्ति के लोभी जीव अपना नरतन का उत्तम दाँव भी हार गये। गुड़ से शकर अवश्य मीठा (प्रिय) होता है। इसी प्रकार सांसारिक भोगों से शून्यसमाधि अवश्य उत्तम है, परन्तु है वह भी अपने स्वरूप से पृथक भास-अभ्यास ही मात्र ॥३०८॥

विशेष — मोक्ष-प्राप्ति रूपी जूवा में, अपना नरतन रूपी दाँव लगाकर शून्य में समाधिस्थ होकर सब खो दिया। स्वरूप-विवेक नहीं हुआ।

८५–अज्ञान की प्रबलता तथा उससे छुटकारा

चौपाई—९१

सर्व कला शाखा यम मूला। सो वशि जीव सहै बहु शूला ॥१॥
सबविधि पिंड ब्रह्मांड नशाई। महाशून्यमें रहत समाई ॥२॥

शब्दार्थ — कला = कल्पनायें। यम = वासना; अज्ञान।

भावार्थ — नाना मतों की सभी कल्पनायें डगालियाँ हैं और वासना व अज्ञान जड़ है। इसी के अधीन होकर व्यक्ति अनेक कष्टों को सहता है ॥१॥ कितने ज्ञानी शरीर तथा संसार का सब प्रकार से अभाव करके महाशून्य में लीन होते हैं ॥२॥

विशेष — शरीर-संसार का अभाव करना ज्ञानदशा में ठीक है, परन्तु शून्य में लीन होना धोखा है। साधक को अपने स्वरूप में ही स्थित होना चाहिये।

पुनि सोइ भाँति जगत निर्मावै। साँझ सबेरा प्रगट देखावै ॥३॥
आदि अंत मध्य बहुत सँवारा। तामें जीव एक परा बेचारा ॥४॥

शब्दार्थ — आदि = जगत। अंत = ब्रह्म।

भावार्थ — ब्रह्मवादी कहते हैं कि जिस प्रकार प्रातः-सायं होना प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। उसी प्रकार ब्रह्म से जगत का निर्माण तथा जगत का अन्ततः ब्रह्ममें लीन होना बना रहता है ॥३॥ इस प्रकार लोगों ने जगत और ब्रह्मके बीच में अनेक कल्पनायें रच रखी हैं, जिनमें पड़ा हुआ अकेला दीन जीव भटक रहा है ॥४॥

जो यह काल जाल लखि पावै। झाँईं गाँसि सब दूरि बहावै ॥५॥
आशा पारख पारख बासी। जीवन जीव सदा सुखराशी ॥६॥

शब्दार्थ — झाँईं = धोखा, भ्रम। गाँसि = बंधन। पारख = ज्ञान।

भावार्थ — जो व्यक्ति उपर्युक्त अज्ञान एवं कल्पना के बंधनों को परख लेता है, वह धोखा और सारे बंधनों को दूर कर देता है ॥५॥ जो समस्त आशा-वासनाओं की परख कर उन्हें त्याग करता है वह तत्काल ही पारखस्वरूप में निवास पा जाता है। वह जिन्दगी के मूलतत्त्व जीव को अर्थात अपने अविनाशी चेतन स्वरूप को जानकर उसी में स्थित हो जाता है। इस प्रकार वह सदा के लिये सुखकी राशि ही पा लेता है।

आशा पारख बरते जबहीं। काल फाँस नहिं व्यापै तबहीं ॥७॥
आदि अंतकै पारख पावै। सोई यमपर अदल चलावै ॥८॥

शब्दार्थ — बरते = बरतना, काम में लाना, व्यतीत करना। काल = अज्ञान; कल्पना। यम = वासना; अज्ञान। आदि अन्त = जगत ब्रह्म। अदल = अद्ल, न्याय, इन्साफ; हुकूमत, शासन।

भावार्थ — जभी से व्यक्ति समस्त आशा-वासनाओं को परख कर और उन्हें त्यागते हुए जीवन व्यतीत करता है तभी से उसको अज्ञान एवं कल्पना के बंधन नहीं लगते ॥७॥ जो व्यक्ति जगत और ब्रह्म की ठीक से परीक्षा करके और उनकी मान्यताओं को छोड़ कर अपने स्वरूप में स्थित होता है वही वासनाओं पर शासन करता है ॥८॥

आप बचै और जीव बचावै। जो समुझै तेहि बंदि छोड़ावै ॥ ९ ॥
यम पछिताइ हारि मुख गोई। पारख पाय परमपद सोई ॥१०॥

शब्दार्थ — यम = मन। गोई = छिपाना।

भावार्थ — वह विवेकी स्वयं जगत बंधनों से बचता है और अन्य व्यक्तियों को बचाता है। जो उसकी सत्य बातें समझ लेता है वह उसको बंधनों से छुड़ा देता है ॥९॥ साधक के ऐसी अवस्था में पहुँच जाने पर अविवेकी मन मानो पश्चाताप करके अपना मुख छिपा लिया हो — उस समय मन शांत हो जाता है। व्यक्ति को जिसकी प्राप्ति करनी है वह परमोच्चपद पारख-स्वरूपज्ञान की स्थिति ही है ॥१०॥

जेहि प्रसाद छूटे यम फाँसा। रहै न एकौ वाके गाँसा ॥११॥
परख विलास मगन मन अपने। संशय भरम कलेश न सपने ॥१२॥

शब्दार्थ — प्रसाद = निर्मलता, स्वच्छता; कृपा। यम = मन। गाँसा = बंधन।

भावार्थ — उक्त गुरुकृपा तथा स्वरूपज्ञान की निर्मलता से मन की मोह फाँसी कट जाती है और उसके पास एक भी बंधन नहीं रहते ॥११॥ वह सदैव ज्ञान में ही रमण करता है और अपने मन में प्रसन्न रहता है। उसे स्वप्न में भी संदेह, भ्रम तथा दुःख नहीं सताते ॥१२॥

साखी — रामरहस साहेब शरण, अभय अशंक उद्योत।
आवागमन की गम नहीं, भोर साँझ नहिं होत ॥३०९॥

शब्दार्थ — साहेब = स्वामी, सद्गुरु। उद्योत = उद्द्योत, प्रकाशवान, ज्वलंत। गम = पहुँच।

भावार्थ — श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि सच्चे सद्गुरु का आश्रय पाकर मनुष्य निर्भय, निश्शंक तथा ज्वलंत ज्ञान में जगमगा उठता है। फिर उसमें जन्म-मृत्यु की पहुँच नहीं होती और न उसमें सुबह-शाम तथा जगत-ब्रह्म के रहँट का ही चक्कर रहता है ॥३०९॥

विशेष — विदेहमुक्त चेतन में जन्म-मृत्यु, सुबह-शाम तथा जगत-ब्रह्म का चक्कर नहीं है।

नाशकके सब रूप हैं, रहै तेहि मध्य समाय।
कष्ट विविधि विधि पावते, पारख लीन्ह छोड़ाय ॥३१०॥

शब्दार्थ — पारख = छानबीन; सभी दृश्यों से पृथक अपना स्वरूपज्ञान।

भावार्थ — मनःकल्पनाओं के जितने रूप हैं सब कल्याण के नाश करनेवाले हैं और उन्हीं के बीच में व्यक्ति लीन होकर अनेक कष्ट पाते हैं। इन कष्टों से व्यक्ति को पारखज्ञान ही मुक्ति दिलाता है ॥३१०॥

चौपाई—६२

मिथ्या सत्य सबै जग झूठा। परखहु खोलहु मर्कट मूठा ॥१॥
जाके नाशक मूल कहावै। सो पद सत्य कहाँते पावै ॥२॥

शब्दार्थ — मर्कटमूठा = बंदर की मुट्ठी जो चने के लोभवश पकड़ता है।

भावार्थ — मिथ्या हो या सत्य अपने चेतन स्वरूप से जो कुछ पृथक है उस सारे जगत का सम्बन्ध झूठा है। अतएव मर्कटमुट्ठी न्याय तुम जो जगत का मोह पकड़ रखे हो उसे परखो और छोड़ो ॥१॥ जिसके सम्बन्ध का जड़ ही ध्वंसात्मक वासना है, उस वासनात्मक संसार में सत्यस्वरूप की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? ॥२॥

नाशक झूठ साँच प्रभु शरणा। महाविकट दारुण दुख हरणा ॥३॥
ऐसो शरण न आवै जोई। राखनहार और नहिं कोई ॥४॥

शब्दार्थ — प्रभु = यथार्थ सद्गुरु। दारुण = कठिन।

भावार्थ — जो कल्याण का नाशक है वह झूठा है और सद्गुरु का आश्रय सच्चा मार्ग दिखलाता है जो महान भयंकर और कठिन दुःख को हरण करता है ॥३॥ जो व्यक्ति ऐसे सच्चे सद्गुरु की शरण में नहीं आता, उसे दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो भवबंधनों से बचा सके ॥४॥

ब्रह्मादिक सनकादिक जेते। पीर पैगंबर औलिया तेते ॥५॥
बूड़े भवजल मायाके चेरा। गहहु शरण दृढ़ परख सबेरा ॥६॥

शब्दार्थ — पीर = गुरु। पैगम्बर = ईश्वरदूत। औलिया = सिद्ध। चेरा = दास। सबेरा = शीघ्र।

भावार्थ — जितने ब्रह्मादि, सनकादि, पीर, पैगंबर तथा औलिया हैं, सब भ्रम-मानन्दी रूपी माया के दास होकर संसार-सागर में डूबते हैं। अतएव शीघ्रतापूर्वक पारखी सद्गुरु का आश्रय लेकर अविचल पारख की प्राप्ति करो ॥५, ६॥

आशा इन्ह परपंच न कीजै। जीवन जन्म सफल कर लीजै ॥७॥
विघ्न कोई नहिं कष्ट अपारा। जाते सुख साहेब दरबारा ॥८॥

शब्दार्थ — इन्ह = नाना मतवाद।

भावार्थ — नाना मतवाद के मोहक प्रपंचों की आशा मत करो। अपने जीवन तथा जन्म को सार्थक बनाओ ॥७॥ न वहाँ कोई बाधा है और न कष्ट; अतएव सद्गुरु के दरबार में अपार सुख-शान्ति ही का वास है ॥८॥

शरण समान करहिं प्रभु अपना। जन्ममरण के मिटे कल्पना ॥ ९ ॥
सत्यलोक सुखसागर सोई। प्रभु शरणागत पारखी जोई ॥१०॥
सो सत्यलोक करहु विश्रामा। आश तजहु यमरायके ग्रामा ॥११॥

शब्दार्थ — यमराय = मन। ग्रामा = ग्राम, स्थान, समूह।

भावार्थ — सद्गुरु शिष्य को अपने आश्रय में लेकर तथा उसके जन्म-मरण की वासनाओं को मिटाकर उसे अपने सदृश बना लेते हैं ॥९॥ वही सत्यलोक में निवास

करने वाला शांति समुद्र है जो विवेक सम्पन्न पारखी सद्गुरु के आश्रय में आ गया है ॥१०॥ बाह्य सत्यलोक सत्संग है और आंतर सत्यलोक अपना चेतनस्वरूप है इनमें विश्राम करो; और मन-वासनाओं के समूह की आशा छोड़ दो ॥११॥

साखी—प्रभु शरणागत परख दृढ़, सत्यलोक परवान ।
संतत जीव विलास है, झूठा काल गुमान ॥३११॥

शब्दार्थ — परवान = प्रमाण; मानने योग्य । संतत = सदैव । काल = अज्ञान; कल्पना । गुमान = संदेह; गर्व ।

भावार्थ — सद्गुरु के आश्रय में आकर दृढ़ पारखबोध में स्थित हो जाना प्रामाणिक सत्यलोक को पा जाना है । व्यक्ति को इसी में सदैव रमण करना चाहिये; कल्पित वस्तुओं का गर्व करना व्यर्थ है ॥३११॥

पारख सीढ़ी झाँकके, पलटि बहै भवधार ।
थाह न पावहिं बूड़हीं, नहिं ताके निस्तार ॥३१२॥

शब्दार्थ — सीढ़ी = जीना, निसेनी; ऊपर जाने का पथ । निस्तार = कल्याण ।

भावार्थ — पारखज्ञान का उन्नतपथ देखकर और पुनः उसे छोड़कर यदि कोई मन की धारा में बहेगा वह कहीं थाह न पाकर डूबेगा और उसका कल्याण नहीं होगा ।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी २८६, ३०८, ३३४

गुरु सीढ़ीते ऊतरै, शब्द बिमूखा होय ।
ताको काल घसीटि हैं, राखि सकै नहिं कोय ॥३१३॥

शब्दार्थ -- काल = कल्पना, काम ।

भावार्थ -- जो सद्गुरु की ज्ञान-सीढ़ी से उतर गया, और उनके सारशब्दों-सत्योपदेशों से विमुख हो गया, उसको काल घसीट कर संसार में रगड़ेगा, कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता ॥३१३॥

साँचे श्राप न लागे, साँचे काल न खाय ।
साँचहि साँचा जो चलै, ताको काह नशाय ॥३१४॥

शब्दार्थ — काल = कल्पना, मौत ।

भावार्थ — सच्चे को शाप नहीं लगता । सच्चे को काल नहीं खाता । जो सच्चे बोध एवं सच्चे आचरण ही में चलता है उसका कोई कुछ विगाड़ नहीं सकता ।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप ॥३१५॥

शब्दार्थ — आप = स्वयं, स्वतः ।

भावार्थ — सत्य-पालन के सदृश तपस्या नहीं है और असत्य के समान पाप नहीं है। जिसके हृदय में सत्य है, उसके हृदय में अपने आपका स्वराज्य है ॥३१५॥

विशेष — मुख से सत्य बोलना, शरीर से सत्य का आचरण करना और मन में सत्य का भाव रखना तथा अपने आप सत्य स्वरूप चैतन्य पारख का बोध और उसमें स्थित होना, यही परम तपस्या है। इसके समान तपस्या नहीं। और झूठ बोलना, मिथ्याचरण करना, मिथ्या-भावना—नाना कल्पना, भास, अध्यास, अनुमान आदि रखना, यही महापाप है।

अतएव जिसके हृदय में उपर्युक्त प्रकार की सत्यता है उसका हृदय स्ववश रहता है। वहाँ पराया भास-अध्यास नहीं, किन्तु भासिक अपने आप स्थित है।

सत्य न सादृश्य जगत कछु, आप आप ही सत्ति।
सत्य की समता कौन करि, सबका थापक अस्ति ॥ (मुक्तिद्वार १।४९)

८६—भ्रम-भूल का दिग्दर्शन

चौपाई—६३

विधि हरि हर बहुरूप करंगा। जहाँ तहाँ ताके उठैं तरंगा ॥१॥
उठत तरंग उक्ति बहुतेरा। हेतक फाँस काल बौंड़ेरा ॥२॥

शब्दार्थ — करंगा = किये। उक्ति = कथन। हेतक = कारण। काल = कल्पना। बौंड़ेरा = बवंडर।

भावार्थ — ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के प्रतिनिधित्व करने वाले क्रमशः रज, सत और तम—ये संसार में अनेक रूप करके विद्यमान हैं, और यत्र-तत्र इन्हीं तीनों गुणों की लहरें उठती हैं ॥१॥ बहुत सी वाणियों की तरंगें उठती हैं जो कल्पनाओं के बवंडर होने से जीवों के बंधनों के कारण हैं ॥२॥

बौंड़ेरा उठि जाय बिलाई। उड़हि संग सो उलटि गिराई ॥३॥
बौंड़ेरा आवै बहु भाँती। बाँचहु उड़े नाहिं कुशलाती ॥४॥

शब्दार्थ — बौंड़ेरा = बवंडर, अंधड़।

भावार्थ — बवंडर उठकर पुनः विलीन हो जाता है और जो तृण आदि उसके साथ उड़ते हैं वे लौटकर जमीन पर गिर पड़ते हैं ॥३॥ शारीरिक, मानसिक, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अंतराष्ट्रीय अनेक प्रकार के अंधड़-तूफान आते हैं। हे कल्याण-इच्छुक ! उनसे बचो, उनमें उड़ने से कुशल नहीं है ॥४॥

रज समान संग पौन उड़ाई। जलमें पायके कीच समाई ॥५॥
त्याग करहिं प्रथम जग मोटा। बिना विचार वशी सब खोटा ॥६॥

शब्दार्थ — मोटा = मोटी माया स्त्री, पुत्र, धनादि। खोटा = तुच्छ।

भावार्थ — वायु सूक्ष्म रजकणों तथा उनके सदृश अन्य वस्तुओं को अपने साथ में उड़ा ले जाता है। जब वायु मंद हो जाता है तब रजकण नीचे आकर और जलका सम्पर्क पाकर कीचड़ में लीन हो जाते हैं ॥५॥ इसी प्रकार कुछ शुद्ध संस्कारों तथा अच्छी संगत पाकर लोग पहले संसार की मोटी माया परिवार धन, जमीन आदि का त्याग करते हैं, परन्तु उनमें से कितने ही विवेक न होने से तुच्छ वस्तुओं की वासना के वश होकर भटकते हैं ॥६॥

जब नहिं देखि परे भ्रम त्यागा । मनहिं मन पछिताहि अभागा ॥७॥
कथनी कहहीं उड़हिं अकाशा । पुनि सोइ विषय भई जग वासा ॥८॥

शब्दार्थ — भ्रम = मोह; विषयासक्ति; अज्ञान । वासा = वासना ।

भावार्थ — जब वे देखते हैं कि मैं त्याग का पाखण्ड रचकर भी वस्तुतः मोह व अज्ञान का त्याग नहीं कर पाया हूँ, तब वे अभागे मन के भीतर ही अपनी करनी पर पश्चाताप करते हैं ॥७॥ वक्तव्य तो करते हैं बहुत ऊँचा आकाश में उड़ने सरीखा; परन्तु वे वारम्बार विषयरूप जगतकी वासनाओं में ही डूबते रहते हैं ॥८॥

मत मतवारे बाउर लोगा । बिनु पारख सब भये संशय शोगा ॥ ९ ॥
सुख अनुमान जग उनके चरणा । तेहि संताप विविधि विधि मरणा॥१०॥

शब्दार्थ — बाउर = पागल ।

भावार्थ — लोग नाना मतों की मान्यता में उन्मत्त होकर पागल हो रहे हैं। सारासार की यथार्थ पारख पाये बिना सब जीव संदेह तथा शोक में पीड़ित हैं ॥९॥ और जगत जीव उन्हीं भूले मतवादियों के आश्रय में अपना कल्याण मानकर उन्हीं के पास जाते हैं। इस प्रकार अज्ञानताप में पड़कर जीव अनेक विधि से कष्ट पाते और पतित होते हैं ॥१०॥

वोहि बंदी जग जोहहिं आशा । नाश कलेश यम करे तमाशा ॥११॥
सुखके घमंड कछु वर्णि न जाई । रोवहिं आशा निराशा भाई ॥१२॥

शब्दार्थ — बंदी = कैद, बंधन। जोहहिं = जोहना, प्रतीक्षा करना, राह देखना। यम = मन; वासना। आशा = गृहस्थ। निराशा = साधु वेषधारी।

भावार्थ — वह व्यक्ति बन्धनों में बँधा है जो जगत भोगों तथा मान-बड़ाई की आशा रखकर उनकी प्रतीक्षा करता है। इस प्रकार मनुष्य का मन विवेक को नष्ट करके जीव को कष्ट देता है और विचित्र तमाशा करता है ॥११॥ मनुष्यों को मोह में पड़े-पड़े सुख-भोगने का बहुत बड़ा गर्व है; और हे भाई ! इस व्यामोह में पड़कर स्त्री, पुत्र, धनादि की आशा करने वाले गृहस्थ तो रो ही रहे हैं, कितने साधुनामधारी भी विवेकहीन होने से रोते हैं ॥१२॥

सत्यशब्द टकसार

साखी--कथनी कथै अगाध की, ज्यों आकाश को गिद्ध ।
चारा वाके भूमि पर, उड़ै भया क्या सिद्ध ॥३१६॥

शब्दार्थ — अगाध=अथाह; दुर्बोध; अज्ञेय । चारा=भोजन ।

भावार्थ — संसार में कितने लोग ऐसे हैं जो बड़े दुर्विज्ञेय विषय पर गहन चर्चा करते हैं; परन्तु उनका आचरण उसी प्रकार मलीन होता है जैसे बहुत ऊँचे आकाश में उड़ते हुए गिद्ध का भोजन पृथ्वी पर पड़े हुए पशु आदि के मृतक शरीर हैं । तो क्या बहुत ऊँचे आकाश में उड़ने से वह श्रेष्ठ हो सकता है ? इसी प्रकार आचरण से रहित रहकर केवल ऊँची-ऊँची बातें करने से क्या कोई सफलता पा सकता है ? ॥३१६॥

घर जंजाल बाहर जंजाल, जंजाल काया माथे ।
जो जंजाल तजि योगी भये, सो जंजाल है साथे ॥३१७॥

शब्दार्थ — जंजाल=झंझट, बखेड़ा, फँसाव; बन्धन ।

भावार्थ — मनुष्य को घर में बन्धन है बाहर बंधन है और बन्धनों का स्वरूप शरीर उसके साथ ही में लगा है । जिस ममता रूपी बन्धनों को छोड़कर लोग योगी-वैरागी होते हैं यदि वही अहंता-ममता वहाँ भी लगी रही तो क्या फल हुआ ?॥३१७

विशेष — मनुष्य चाहे गृहस्थी में रहे या विरक्तो में उसके साथ शरीर होने से कुछ बन्धन रहता ही है । अंतर इतना है कि कहीं बन्धन अधिक हैं कहीं कम तथा कहीं बहुत कम । मनुष्य बन्धनों से वस्तुतः तभी छूट सकता है जब वह अहंता-ममता छोड़ दे ।

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-५३

गृह तजिके भये उदासी, वन खण्ड तप को जाय ।
चोली थाकी मारिया, बेरई चुनि चुनि खाय ॥३१८॥

शब्दार्थ — चोली=शरीर । थाकी=निर्बल हुई । बेरई=बेर ।

भावार्थ — कितने लोग घर छोड़कर वैरागी हो जाते हैं, और वनखण्डों में जाकर तपस्या करने लगते हैं । परन्तु भूख के मारे जब शरीर निर्बल हो जाता है, तब बेर आदि साधारण फल भी बीन कर खाते हैं ॥३१८ ।

विशेष — केवल वन में जाकर, उपवास करते हुए तपस्या करने से शान्ति नहीं मिलती । शरीर को उचित आहार देते हुए, तथा इसकी ठीक व्यवस्था रखते हुए ही कल्याण-साधना बन सकती है । वह साधना केवल वन में नहीं बनती, सत्संग की आवश्यकता है ।

कबीर भूख कुतिया अहै, करे भजन में भंग ।
याको टुकड़ा डारिके, भजन करो निःसंग ॥ (कबीर अमृतवाणी)

शब्द-१६

सुन रे सुभगिया, कौने कारण बन लौले अगिया ॥१॥
नहिं बन कतरा नहिं बन कूश, अगिया लौले बन-आगन फूस ॥२॥
रोवहिं आशा रोवहिं निराशा, भरलि डेहर मोर जरे कपासा ॥३॥
यहि ठगनी के पाँच भतार, ठगत ठगत आइलि संसार ॥४॥
कहैं कबीर मोर जतिया झीन, गुरुके शब्द से रहत लौलीन ॥५॥

शब्दार्थ — बन = अंत:करण । कतरा = टुकड़ा, कूड़ा-कचड़ा । कूश = कुश, घास विशेष, तात्पर्य में विकार । आगन = अंत:करण । फूस = छपरा, घास का छाजन; मकान । आशा = गृहस्थ । निराशा = वेषधारी त्यागी । डेहर = डेहरी, बखारी, कोठी । ठगिनी = वासना । पाँच भतार = काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय । कहैं कबीर = नाना मतों में पड़े हुए जीव कहते हैं । जतिया = जात; लक्षण; स्वभाव; स्वरूप । झीन = सूक्ष्म ।

भावार्थ — हे सुन्दर भाग्य वाले मनुष्य ! सुन, किस कारण से तू अपने अंत:-करण रूपी जंगल में अज्ञान की आग लगा रखा है ? (मानव तन पाने से तुम स्वभा-वत: शुद्ध हो) तुम्हारे अंत:करण में विकार रूप कचड़ा-घास नहीं है । परन्तु तू अपने अंत:करण रूप आगन के मकान में राग-द्वेष की अग्नि लगा रखा है ।।२।। अविवेक वश गृहस्थ-विरक्त सब दुखी हैं, क्योंकि मनुष्यों के अपने अंत:करण रूपी कोठी में सद्ज्ञान तथा सद्गुणरूपी जो कपास भरे हुए हैं । भीतर-ही-भीतर जल रहे हैं ।।३।। इस वासना या अविद्यारूपी ठगनी के कामादिक पाँच पति हैं । ये सब मिलकर संसार के जीवों को ठगते आये हैं ।।४।। नाना मत में पड़े हुए जीव कहते हैं कि हमारा स्वरूप सूक्ष्म है, इसको समझ पाना कठिन है । इसी को समझने के लिये गुरुके वचन में हम ध्यान-मग्न रहते हैं ।।५।।

८७ – मोहनिरास तथा पारखपद के लिये प्रेरणा

चौपाई-६४

त्याग सोई जो सदा सुखारी । आशा मोह भव फंदा भारी ॥१॥
मोह नदीमें सब कोइ डूबै । सुसुकि सुसुकि उजबुज होय ऊबै ॥२॥

शब्दार्थ — भवफंदा = संसार बंधन । उजबुज = व्याकुल होना ।

भावार्थ — वास्तविक त्याग वही है जिसके परिणाम में जीव सदैव के लिये सुखी हो जाये । अपने चेतन स्वरूप से पृथक वस्तुओं की आशा व मोह करना ही भारी संसारबंधन है ॥१॥ सब जीव मोह की नदी में डूब रहे हैं और रो-रो कर व्याकुल होते तथा घबराते है ।।२।।

थाह नहीं नहिं देखै पारा । पुनि पुनि वहे भवही के धारा ॥३॥
करहु विचार तजहु सो आशा । संशय शोग मोह भ्रम नाशा ॥४॥

शब्दार्थ — पारा = किनारा । संशय = सन्देह ।

भावार्थ — साधारण जीव मनोमय सागर की थाह नहीं पाते और न उन्हें किनारा ही दिखता है; प्रत्युत वे बारम्बार संसार समुद्र की धारा में गोते लगाते हैं ॥३॥ अतएव हे कल्याणार्थियो ! विवेक करो और जगत विषयों की आशा का परित्याग करो और संदेह, शोक, मोह तथा भ्रम का नाश करो ॥४॥

पारख अटल सदा सुख करहू । भरमि भरमि जीव काहे मरहू ॥५॥
पारख सब जग गाँस मिटावै । बिनु परिश्रम परमपद पावै ॥६॥

शब्दार्थ — पारख = स्वरूपज्ञान । गाँस = फंदा, बंधन । परमपद = स्वस्वरूपस्थिति ।

भावार्थ — हे कल्याणार्थी ! अविचल स्वरूपज्ञान में स्थित होकर सदैव जीवन्मुक्ति सुख में विहरो; दृश्यों में भटक-भटक करके क्यों मरते हो ? ॥५॥ स्वरूपज्ञान सारे जगतबंधनों को तोड़कर फेंक देता है और तपस्यादि अधिक परिश्रम किये बिना भी जीव सर्वोच्चपद स्वरूपस्थिति को पा जाता है ॥६॥

रामरहस गुरुशरणा आये । सब भय संशय तुरित मिटाये ॥७॥
नहिं कछु साधन नहिं कछु युक्ती । नहिं कछु बौड़ेरा की उक्ती ॥८॥

शब्दार्थ — युक्ती = युक्ति, तरीका । बौड़ेरा = बवंडर; कल्पना । उक्ती = उक्ति, कथन ।

भावार्थ — ग्रन्थकार श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि जो व्यक्ति यथार्थ सद्गुरु की शरण में आ जाता है उसके सभी भय और सन्देह शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥७॥ न तो उसे कुछ कष्टकर साधना करना है और न कोई चक्करदार तरीका अपनाना है तथा न तो संसार में उठी हुई कल्पना की बवंडरों की वाणियों के मोह में पड़ना है; बस केवल—॥८॥

पूजा संतन गुरु सेवकाई । परख विलास अटल देखलाई ॥ ९ ॥
जो पारख तजि और लोभाना । निश्चय यमके हाथ बिकाना ॥१०॥

शब्दार्थ — परखविलास = ज्ञान में रमण । यम = मन; वासना ।

भावार्थ — विवेकी सन्तों का सत्कार और सद्गुरु की सेवा करके मुमुक्षु को वास्तविकता का दिग्दर्शन हो जाता है और वह अविचल पारखस्वरूप चेतन में रमण करता है ।.९॥ जो पारखज्ञान को छोड़कर अन्य वस्तुओं में आकर्षित होता है वह निश्चय ही मन-वासनाओं के हाथों में बिक गया है ॥१०॥

विशेष — उपर्युक्त ८ वीं चौपाई में जो यह कहा गया है कि जो पारख पा गया उसे कुछ साधना नहीं करनी पड़ती न उसे किसी युक्ति की आवश्यकता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पारखसिद्धांत में बिना किसी साधना युक्ति का उपयोग किये ही मोक्ष होना माना जाता है, और इस प्रकार सस्ता नुसखा बांटा जाता है। वस्तुतः यहाँ यह बताया गया है कि हठतापूर्वक किये गये श्रमपूर्ण अनेक कायाकष्टकर साधनाओं की आवश्यकता यहाँ नहीं है और न तो यहाँ यही कहा जाता है कि किसी योगादि की युक्ति से ब्रह्माण्ड का कपाट खोलकर किसी ज्योति, शब्दादि रूप में ईश्वर को पाना है। और न तो कल्पित वाणियों के बवंडर में ही उड़ना है। विवेकी सन्त-सद्गुरु की सेवा तथा सत्संग से सत्य स्वरूप का बोध प्राप्त हो जाता है और तब विषयों का अभाव करके स्वस्वरूप में स्थित होना रहता है जो सद्उपासना, विवेक, वैराग्य, द्रष्टा-अभ्यास के द्वारा होता जाता है।

जो चेतहु तो होय उबारा। नहिं तो होइहौ यमके चारा ॥११॥
कर्म धर्म मत सब बौराये। कहहु परमपद कैसे पाये ॥१२॥
तजहु आश भ्रम जालके बानी। लहहु विलास परखपद जानी ॥१३॥

शब्दार्थ — यम = वासना; मन। धर्म = कल्पित उपासना।

भावार्थ — यदि मन-माया से सावधान हो गये तो कल्याण हो जायगा, अन्यथा वासनायें तुम्हें खा जायेंगी ॥११॥ सब मनुष्य कल्पित कर्मकाण्ड तथा कल्पित उपासना के जाल में पड़कर उन्मत्त हो गये हैं। कहो भला, वे सर्वोच्च स्थिति कैसे पा सकते हैं ॥१२। अतएव भ्रमबंधनों को पुष्ट करने वाली वाणियों द्वारा प्रतिपादित प्रलोभक पदार्थों की आशा छोड़ दो और अपने पारखस्वरूप चेतन को सर्वोपरि जानकर उसी में रमण करो ॥१३॥

साखी--पूजा संतन कीजिये, सेवकाई गुरु केर।
भूखे अन्न जेवाँइये, पारख करहु सबेर ॥३१९॥

शब्दार्थ — पूजा = सत्कार। पारख = परीक्षा, सारासार की छानबीन। सबेर = शीघ्र।

भावार्थ — विवेकी संतों का सत्कार करो और सद्गुरु की सेवा करो। भूखे को भोजन दो एवं गरीबों की सहायता करो; और शीघ्र सारासार की छानबीन करके स्वस्वरूप ज्ञान प्राप्त करो ॥३१९॥

टकसार के शब्द

जो तू आया जगत में, तो ऐसा करि लेउ।
कर साहेबकी बंदगी, भूखे को कछु देउ ॥३२०॥

शब्दार्थ —साहेब =स्वामी, सद्गुरु।

भावार्थ — यदि तू उत्तम मानव-तन धारण करके संसार में आया है तो ऐसा करले कि सच्चे सद्गुरु की सेवा करके स्वरूपज्ञान प्राप्त करले और भूखे व्यक्ति को कुछ देने का स्वभाव बना ॥३२०॥

फेर परा नहिं तत्त्वमें, नहिं इन्द्रियनके माहिं ।
फेर परा कछु बूझमें, सो निरुवारेहु नाहिं ॥३२१॥

शब्दार्थ — फेर=फर्क, अंतर। निरुवारेहु=निरवारना, सुलझाना।

भावार्थ — ज्ञानी तथा अज्ञानी के शरीरों में लगे हुए तत्त्वों में तथा इन्द्रियों में कोई अंतर नहीं है यदि अंतर है तो कुछ समझ में ही; परन्तु उसका मनुष्य सुलझाव नहीं करता ॥३२१॥

८८–पारखज्ञान की विशेषता

चौपाई—८५

और जतन कछुवो मत करहू। केवल पारख साहेब लहहू ॥१॥
शंका संधि रहत कछु नाहीं। नाशक आपुहि आप बिलाहीं ॥२॥

शब्दार्थ — जतन=यत्न, उद्योग। शंका=संशय। संधि=भेद; कसर। नाशक=कल्याण के विरोधी तत्त्व।

भावार्थ — हे कल्याणेच्छुक ! अन्य उद्योग कुछ मत करो, सद्गुरु के सत्संग से केवल परखदृष्टि प्राप्त करो ॥१॥ परखदृष्टि पा जाने पर संशय, कसर आदि कुछ भी शेष नहीं बचेगा और कल्याण के विरोधी तत्त्व अपने आप नष्ट हो जायेंगे ॥२॥

जे नाशक स्नेही कीन्हा। कष्ट घनेरी माथे लीन्हा ॥३॥
बोध चहहु पारख प्रभु शरणा। बिना प्रयासे भव जल तरणा ॥४॥

शब्दार्थ — घनेरी=बहुत। बोध = ज्ञान; तृप्ति; शांति। भवजल = वासना प्रवाह।

भावार्थ — जो व्यक्ति कल्याण के नाशक तत्त्वों का अर्थात अज्ञान और विषय-वासनाओं का प्रेमी बनता है वह अपने सिर पर महानकष्टों का बोझा ले लेता है ॥३॥ अतः यदि यथार्थ ज्ञान और परमशांति चाहते हो तो पारखी सद्गुरु का आश्रय लो फिर बिना अधिक श्रम के ही वासनाप्रवाह से मुक्त हो जाओगे ॥४॥

विशेष — भूल में पड़कर कितने साधक नंगे रहकर ठंढी, गरमी तथा वर्षा का दुःख सहते हैं, महीनों उपवास रहते, खड़ेश्वरी, ऊर्ध्वबाहु रहते, अपने सिर का बाल नोचकर फेंकते तथा अवैज्ञानिक उपाय करते हैं। परन्तु जिनको सारासार की परख

हो गयी है वे निरर्थक कायाकष्ट न करके विवेक-वैराग्यपूर्वक दृश्य से अनासक्त हो जाते हैं और अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं।

बिनु पारख परतीति न होई। बिना प्रतीति प्रीति नहिं सोई ॥५॥
प्रीति बिना नहिं साहेबके शरना। भटकि भटकि भवजल में बहना ॥६॥

शब्दार्थ — प्रतीति = विश्वास। भवजल = वासना।

भावार्थ — बिना वास्तविकता की परख हुए सत्य वस्तु पर भी विश्वास नहीं होता और विश्वास हुए बिना उसमें श्रद्धा नहीं होती ॥५॥ और श्रद्धा-विश्वास के बिना मनुष्य सद्‌गुरु के आश्रय में रह नहीं सकता है। अंततः वह भ्रम-भ्रमकर वासनाओं की धारा में बहता है ॥६॥

बाँचन चहहु जो यह यम फाँसा। वचन बसावहु परख विलासा ॥७॥
सत्यशब्द टकसार कहावै। बीजक जीवन पद परखावै ॥८॥

शब्दार्थ — यम = वासना, अज्ञान। विलासा = विलास, व्यक्त, प्रकाशित। टकसार = टकसाल, सिक्के ढलने का स्थान; तात्पर्य में प्रामाणिक। पद = स्वरूप।

भावार्थ — यदि अज्ञानकी फाँसी से छूटना चाहते हो तो परख से प्रकाशित हुए वचनों को अपने मनमें स्थान दो ॥७॥ जो सत्यशब्द टकसार के नाम से विख्यात है वह सद्‌गुरु कबीर रचित बीजक जीवों के वास्तविक स्वरूप की परख कराता है ॥८॥

जहाँ जो जीव रहै अरुझाई। फाँस गाँस यम सबहिं लखाई ॥ ९ ॥
देखत पारख छूटै फाँसा। तहँवाँ यमके रहै न वासा ॥१०॥
संतत शरण जीव सुखकारी। नाशक जाल सबै भवहारी ॥११॥

शब्दार्थ — यम = अज्ञान; वासना। संतत = निरंतर।

भावार्थ — सद्‌गुरु कबीर का बीजकज्ञान जो व्यक्ति जहाँ पर उलझे हुए हैं उन अज्ञान के सारे फाँस और बन्धनों को परखा देता है ॥९॥ पारखबोध साक्षात्कार होते ही सारे बन्धन कट जाते हैं; फिर वहाँ पर अज्ञान का निवास नहीं रहता ॥१०॥ और व्यक्ति जीवनपर्यन्त उस सुखमय सद्‌गुरु की शरण में निवास करता है जो सभी बन्धनों का नाश करने वाला तथा जन्मादि का हरणकर्ता है ॥११॥

साखी— वचन बसावहु पारखी, बीजक है सो नाम।
अक्षर अक्षर गुरु से लखहु, संशय मेटहु तमाम ॥३२२॥

शब्दार्थ — तमाम = बहुत, संपूर्ण।

भावार्थ — पारखी सन्तों के वचनों को अपने मनमें स्थान दो, जो पारखसिद्धांत का कोश है उसका नाम है 'बीजक'। पारखी सद्‌गुरु के द्वारा उसके अक्षर-अक्षर का भेद जानो और मनके सारे सन्देहों को समाप्त करो ॥३२२॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-५९

तैं सुत मान हमारी सेवा। तो कहँ राज देउँ हो देवा ॥१॥
अगम दुगम गढ़ देउँ छुड़ाई। औरों बात सुनहु कछु आई ॥२॥
उतपति परलय देउँ देखाई। करहु राज सुख बिलसो जाई ॥३॥
एकौ बार न होइहैं बाँको। बहुरि जन्म न होइहैं ताको ॥४॥
जाय पाप सुख होइहैं घना। निश्चय बचन कबीर के मना ॥५॥

शब्दार्थ — सुत = शिष्य। सेवा = उपदेश। राज = स्वरूपस्थिति का स्वतंत्र साम्राज्य। अगम = देखने-जानने में न आने वाला, निर्गुण-निराकार। दुगम = दृष्टिगोचर, साकार, स्थूल। उतपति = जन्म। परलय = मरण। गढ़ = किला, आवरण। बाल बाँका न होना = किंचित भी कष्ट या हानि न होना। कबीर = जीव। मना = मनमें।

भावार्थ — ऐ कल्याण-इच्छुक शिष्य ! तू मेरे सदुपदेश रूपी सेवा को स्वीकार कर। हे देव ! तुम्हें स्वरूप स्थिति का स्वतंत्र साम्राज्य दे रहा हूँ ॥१॥ स्वरूप-ज्ञान होने में अवरोधक निराकार-साकार के जो दो गढ़ हैं इन्हें छुड़ा दूँगा, और सत्संग में आकर कुछ और बातें सुनो ॥२॥ जन्म-मरण का रहस्य भी दिखला दूँगा (कि ये खानी-वाणी के अध्यास से ही होते हैं। फिर तो इनके अध्यासों को छोड़कर) स्वतन्त्र स्वरूप स्थिति के स्वराज्य में जाकर रमण करो ॥३॥ उक्त स्वरूपस्थिति में निमग्न हो जाने पर तुम्हारा एक बाल भी बाँका नहीं होगा (कोई प्राणी-पदार्थ तुम्हारी किसी प्रकार भी हानि नहीं कर सकते)। ऐसे स्वरूपस्थितिपरायण पुरुष का फिर कभी जन्म नहीं होगा—वे सदा के लिये मुक्त हो जायँगे ॥४॥ उनके सभी दोषों की सर्वथा निवृत्ति हो जायगी और जीवन्मुक्ति के आत्यन्तिक सुख (अनन्त शान्ति) को वे प्राप्त करेंगे, यदि उपर्युक्त निर्णय वचन जीवों के मनमें दृढ़ हो जायँ तो ॥५॥

विशेष — गुरु की ओर से शिष्य को सदुपदेश देना ही सेवा है। संसार में कुछ लोग ईश्वर या ब्रह्म को निर्गुण-निराकार मानकर उसकी उपासना करते हैं और कुछ लोग सगुण-साकार मानकर करते हैं। सद्गुरु कहते हैं ये दोनों बन्धन हैं। क्योंकि ये मनुष्य के मन की मानन्दी मात्र हैं। अतएव बाह्य साकार-निराकार एवं सगुण-निर्गुण की कल्पना छोड़कर स्वतन्त्र स्वस्वरूप का विवेक करो।

स्व-स्वरूप चेतन के अतिरिक्त विषय-वाणी आदि दृश्य का अध्यास ही जन्म-मरण का मूल है। इसको त्यागकर स्व-स्वरूप में स्थित होना ही मोक्ष है। सर्वासक्ति का सर्वथा परित्याग करके स्वरूपस्थ होने पर ही अनन्त दिव्य शान्ति की प्राप्ति होती है, जिसमें दुःख का किंचित किरकिरा नहीं है। निर्दोष-अवस्था ही में दुःखहीन अवस्था है। ऐसी स्थिति को प्राप्त हुए पुरुष ही सर्वोपरि एवं सर्वाजीत हैं।

साखी– साधु सन्त तेई जना, जिन मानल वचन हमार ।
आदि अन्त उत्पति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥३२३॥

शब्दार्थ — हमार = विवेकी गुरु का । आदि = जगत । अन्त = ब्रह्म । उत्पति = जन्म । प्रलय = मरण ।

भावार्थ — वे ही साधु हैं वे ही सन्त हैं, जो विवेकी गुरु के निर्णय वचनों को मानते हैं । (यदि तुम भी निर्णय वचनों पर विचार करो, तो) जगत-ब्रह्म तथा जन्म-मरण के रहस्य को विवेक दृष्टि फैलाकर देख सकोगे ॥३२३॥

८९ – बीजक ज्ञान की विशेषता

चौपाई—८६

वचन वचन जग सब कोई कहहीं । वचन कला विरले कोइ लहहीं ॥१॥
पारखी वचन बचावन फाँसा । और वचन हैं यम के गाँसा ॥२॥

शब्दार्थ — वचन कला = वचनों की परख व ज्ञान । यम = अज्ञान ।

भावार्थ — संसार में सभी व्यक्ति वाणी का व्यवहार करते हैं; परन्तु वाणियों की वास्तविक परख कोई विरला करता है ॥ १ ॥ जो सारासार का पारखी है उसकी वाणियाँ जीवों को भवबंधनों से छुटकारा दिलाती हैं, और अन्य वाणियाँ अज्ञानमिश्रित होने से बंधनप्रद हैं ॥ २ ॥

विषके गुण अमृत कहि ताके । भोरे जीव परहिं वशि जाके ॥३॥
जेहि जेहिं पूँजी भवजल बेरा । सबके बीजक परख निबेरा ॥४॥

शब्दार्थ — भोरे = भुलाये । पूँजी = धन; विद्या-बुद्धि; ज्ञान । भवजल = संसार-सागर । बेरा = बेड़ा, जहाज । निबेरा = निर्णय ।

भावार्थ — संसार में भूले लोगों ने कल्पना तथा विषय रूपी विषके गुण को अमृत करके मान रखा है और उसी प्रकार की वाणियाँ बना रखी हैं । जो व्यक्ति उनमें पड़ जाते हैं वे उन्हीं में भूल जाते हैं ॥ ३ ॥ जिस-जिस ज्ञान रूपी धन व जहाज के आधार से मनुष्य संसार सागर से तर सकता है सद्गुरु कबीर ने बीजक में सबकी परखपूर्वक निर्णय किया है ॥ ४ ॥

साखी शब्द रमैनी कीन्हा । बेलि बिरहुलि कहरा रचि दीन्हा ॥५॥
और बसंत हिंडोला लगनी । विप्रमतीसी अर्थ में बरनी ॥६॥
चाँचर लार विरह जग जेता । जेहि जेहि बूझवेग सब तेता ॥७॥
विपर्जय चौंतीसा सब बानी । नाम अर्थमें सबहिं बखानी ॥८॥

शब्दार्थ — लगनी = लगन, विरह । लार = आदत; मोह । विपर्जय = विपर्यय, उल्टबासी ।

भावार्थ — सद्गुरु कबीर ने साखी, शब्द, रमैनी, वेलि, बिरहुली, कहरा, बसंत, हिंडोला, विप्रमतीसी, चाचर और ज्ञान चौंतीसा—इन ग्यारह प्रकरणों में विभक्त करके बोजक ग्रंथ की रचना की है। और संसार के लोग जिस प्रकार खानी-वाणी में अपनी लगन, आदत व विरह लगा रखे हैं और जिनकी जैसी समझबूझ है उसी प्रकार उनके उस ओर मनके वेग हैं, इन सब बातों का सद्गुरु कबीर ने बीजक में नाम, संज्ञा व संकेत में कहकर तथा अनेक पद्यों में उसकी व्याख्या अर्थात खुलासा करके समझाया है। जगत की उल्टीरीति का दिग्दर्शन उन्होंने उल्टवासियों में कराया है ॥ ५-८ ॥

विशेष — 'अर्थ में वरनी' तथा 'नाम अर्थ में सबहिं बखानी' का तात्पर्य यह नहीं होगा कि इसका अर्थ अमुक टीका में वर्णन है। यहाँ ग्रन्थकार सद्गुरु कबीर को ही संकेत करते हैं कि उन्होंने बीजक के इन विभिन्न प्रकरणों में अपने वस्तुवर्णन का नाम लिया है और उनका विविध प्रकार से अर्थ भी समझाया है। अर्थ समझाने का मतलब यही नहीं होता है कि उसे गद्य में ही लिखा जाय। कोई भी मूलकार अपने विषय को पहले संज्ञा रूप में कह देता है, फिर वह आगे के पद्यों में उसी का खुलाशा करता है वही उसका अर्थ है। सद्गुरु कबीर ने भी बीजक के प्रथम पूरे पद्य (पहली रमैनी—अन्तरज्योति शब्द एक नारी) को नाम व संज्ञा रूप में व्यक्त किया है, फिर उसके आगे पूरा बीजक उसी का अर्थ या व्याख्या समझना चाहिये।

आयत बैत हदीश रुवाई। मसला मसल सब भेद सुनाई ॥ ९ ॥
रेखता और झूलना भेदा। षट अष्टादश मत चहुँ वेदा ॥१०॥

शब्दार्थ — आयत = कुरान का वाक्य; चिन्ह, निशान। बैत = शेर, पद्य। हदीश = बात; नयी बात; हजरत मुहम्मद के कर्मकलापों और वचनों का संग्रह जो कुरान में नहीं कहे गये हैं उन विषयों के लिये प्रमाण माना जाता है; वर्णन; इतिहास। रुवाई = एक प्रकार का छन्द। मसला = विषय। मसल = कहावत, दृष्टांत। रेखता = अरबी-फारसी मिश्रित हिंदी का गाना; उर्दू का आरंभिक नाम। झूलना = एक छंद। षट = छह शास्त्र—सांख्य, योग, मीमांसा, वैशेषिक, न्याय और वेदांत। अष्टादश = अठारहपुराण।

भावार्थ — कुरान के वाक्य, शेर, इसलामी इतिहास, छन्द, अनेक विषय, उदाहरण, रेखता और झूलना में कही गयी बातें, छह शास्त्र, अठारह पुराण तथा चारों वेदों के सब रहस्य सद्गुरु कबीर ने संक्षिप्त-विस्तृत रूप से बीजक में कहा है ॥९,१०॥

जे सब गुप्त मता रखु गोई। पारख टाटि सबनके खोई ॥११॥
जाल फाँस परखहिं जे जीवा। विविधि प्रकार शब्द तेहि कीवा ॥१२॥

शब्दार्थ — गोई = छिपा हुआ। टाटि = परदा।

भावार्थ — जो लोग अपने सम्प्रदाय की कल्पित बातों को तथाकथित ईश्वरीय आदेश की भ्रमपूर्ण मान्यता में ढाँक कर छिपाना चाहते हैं; उन सबके परदा को पारख की वाणियाँ फाड़ फेंकती हैं ॥११॥ जिससे व्यक्ति पारखज्ञान को लेकर नाना-मतों के जाल और भ्रमबंधन को परख लें; ऐसे अनेक प्रकार के निर्णय शब्दों की रचना सद्गुरु कबीर तथा पारखी सन्तों ने की है ॥ १२ ॥

परख विलास करहिं जो कोई । संशय मोह रहित जीव होई ॥१३॥
आवागमन बीज नहिं राखी । परख विलास प्रगट है साखी ॥१४॥

शब्दार्थ — परख विलास = निरख-परख या छान-बीन में प्रेम; स्वस्वरूप में रमण । साखी = साक्षी, गवाह ।

भावार्थ — जो व्यक्ति सारासार की छानबीन में प्रेम और स्वस्वरूप में रमण करता है वह संदेह और मोह से सर्वथा निवृत्त हो जाता है ॥ १३ ॥ पारखज्ञान जन्म-मरण का बीज नहीं रहने देता । समस्त आकर्षणों से रहित होकर स्वरूपज्ञान में निरन्तर रमण करना ही जीवन्मुक्ति का सुबूत या प्रमाण है ॥ १४ ॥

बिस्मय एकौ नहिं जो आपै । परख विलास जाप सोइ जापै ॥१५॥
जप तप जतन करत जिव मरहीं । परख विलास कष्ट सब हरहीं ॥१६॥

शब्दार्थ — बिस्मय = आश्चर्य; संदेह; गर्व; विषाद ।

भावार्थ — जो सदैव अपने आप में रमण करता है जो परखविलासी तथा निजरूप का ही जप जपने वाला है, उसे संसार में भूत-भौतिक किसी प्रकार की घटना देखकर न आश्चर्य होता है न संदेह और न विषाद एवं दुःख और न तो उसे किसी वस्तु का अहंकार ही होता है ॥ १५ ॥ मनुष्य बाहरी नाम, रूप आदि के जप, तपस्या और साधना करके कष्टित होते हैं; परन्तु स्वरूपस्थिति ही सारे दुःखोंको दूर करने वाली है ।

विशेष — सारे संकल्पों को परख-परख करके त्यागते रहना और अपने चेतन-स्वरूप में संतुष्ट रहना यही 'परखविलास'है; यही सर्वोच्च साधना तथा सिद्धि है ।

साखी — जे जीव परख विलासमें, लहैं सदा सुख चैन ।
तिन्हके त्रास न कालके, और कहै को बैन ॥२२४॥

शब्दार्थ — त्रास = दुःख । काल = कल्पना; मन; अज्ञान; वासना, मृत्यु ।

भावार्थ — जो व्यक्ति संकल्पों को छोड़-छोड़कर स्वस्वरूप में ही शांत रहते हैं वे सदैव जीवन्मुक्ति सुख तथा मंगलमयता में विहरते हैं । उन्हें न कोई अज्ञानजनित कष्ट है न मृत्यु का भय, फिर उनके विषय में अन्य दुःख और भय की बात कौन कहे ?

परख विलासी जीव जे, धन्य सोई संसार ।
और सबै निर्धन रहै, यमके हाथ खुवार ॥२२५॥

शब्दार्थ — यम = अज्ञान; वासना । खुवार = ख्वार, दुखी ।

भावार्थ — जो व्यक्ति सदैव स्वस्वरूप में ही रमण करता है वह संसार में प्रशंसनीय एवं सर्वोच्च है। शेष लोग तो दरिद्र रहकर वासनाओं के हाथों में पड़े हुए सदैव दुःखी बने रहते हैं ॥३२५॥

९०—माया की प्रबलता से सावधान

चौपाई—६७

जीवन धन पारख है तेरा । दृढ़कै गहहु सो समुझ सबेरा ॥१॥
जो जहाँ प्रीति अटल है जाके । बासा तेई तहाँ है ताके ॥२॥

शब्दार्थ—पारख = ज्ञान, सत्यासत्य निर्णय करने की शक्ति । सबेरा = शीघ्र ।

भावार्थ — हे मनुष्य ! ज्ञान ही तुम्हारे जीवन की मुख्य संपत्ति है; अतएव उसे मजबूती से पकड़ो और शीघ्र सत्यासत्य को समझो ॥१॥ यह नियम है कि जिसके मन में जिस वस्तु का अधिक प्रेम होता है उसके मन का निवास उसी वस्तु में होता है ॥२॥

विशेष — मनुष्य का जहाँ प्रगाढ़ प्रेम होता है वह उसी का सदैव चिंतन करता है। अतएव कल्याण चाहने वाले लोगों को चाहिये कि वे स्वरूपज्ञान के ही प्रगाढ़ प्रेमी बनें ।

अधिकारी खैंचे निज ओरा । सो जीव जानि परहु जनि भोरा ॥३॥
यमके गाँस अनेकन्हि भाँती । भूलि सो बहुमति मोहके राती ॥४॥

शब्दार्थ — अधिकारी = अधिकार रखनेवाला; किसी विषय में प्रवीण; किसी मत के आचार्य । भोरा = भूल । यम = मन; भूले हुए मनुष्य । गाँस = बंधन । राती = रात, रात्रि ।

भावार्थ — जो व्यक्ति जिस विषय में प्रवीण होता है वह उसी का पक्ष लेकर अन्य लोगों को उसी की ओर खींचता है अथवा प्रत्येक मत के आचार्य अन्य लोगों को अपनी ओर खींचते हैं। परन्तु हे कल्याणार्थियो ! उन सबकी वास्तविकता को जान करके सावधान हो जाओ, किसी के भूल-भुलैया के चक्कर में मत पड़ो ॥३॥ मन तथा मनवशी मनुष्यों के बंधन अनेक प्रकार के हैं, उनके अनेक मतरूपी अज्ञान की घोर रात्रि में जीव भूले पड़े हैं ॥४॥

साखी — अधम कला सब कालके, देखहु उलटी रीति ।
करै प्रतीति दृढ़ चोर सो, साहेब से नहिं प्रीति ॥३२६॥

शब्दार्थ — अधम कला = नीच गुण । काल = अज्ञान । चोर = ज्ञान को हरने वाले ।

भावार्थ — मनुष्य के मन में रहे हुए अज्ञान के ये नीच गुण हैं जिससे प्रभावित होकर वह चोर से तो प्रगाढ़ प्रेम करता है और सच्चे सद्गुरु से प्रेम नहीं करता। मनुष्य के इस उल्टे व्यवहार को परखो ॥३२६॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-१०२

काल खड़ा शिर ऊपरे, तैं जागु बिराने मीत।
जाका घर है गैल में, सो कस सोवे निश्चिन्त ॥३२७॥

शब्दार्थ — काल=काम, कल्पना, मृत्यु। बिरानेमीत=पराये का मीत, माया का मित्र। गैल=मार्ग।

भावार्थ — काम और कल्पनायें तुम्हारे सिर पर खड़ी हैं, अथवा मृत्यु तुम्हारे सिर पर मड़ला रही है। ऐ माया के प्रेमी! तू शीघ्र सावधान हो जा। जिसका निवास-स्थान काल के मार्ग में है, वह कैसे निश्चिन्त होकर सो रहा है?—असावधान हो रहा है ॥३२७॥

९१--हिताहित की परख

चौपाई—९८

साहेब अनबनि भाँति बुझावै। सुनै न जीव चोर संग धावै ॥१॥
नाना रंग सब रहै रंगाई। सूझै न निज पद तमहि तमाई ॥२॥

शब्दार्थ — अनबनि=अनेक। रंग=भाव। तमहिं=अंधकार; भ्रम। तमाई=भ्रमजाना।

भावार्थ — सद्गुरु अनेक प्रकार से सत्य और असत्य का स्वरूप बताते हैं; परंतु बहुत से व्यक्ति उसे न सुनकर उनके पीछे दौड़े जाते हैं जो उनके विवेकधन की चोरी कर लें और उन्हें अधिक अंधकार में डाल दें ॥१॥ संसारी सब जीव नाना भावनाओं में रंगे हैं; उन्हें अपना स्वरूप नहीं समझ पड़ता; प्रत्युत अंधकार में ही चक्कर काटते हैं ॥२॥

औषध पारख जीवहि लावै। नैन रोग सब तुरित मिटावै ॥३॥
तब देखहु जिव आँख पसारी। साहेब सुख तस्करके खुवारी ॥४॥

शब्दार्थ — तस्कर=चोर, काम, क्रोधादि या भटकाने वाले व्यक्ति। खुवारी=ख्वारी, परेशान, दुःखी।

भावार्थ — यदि व्यक्ति पारख रूपी औषध का सेवन करे तो उसके विवेक-विचार रूपी नेत्रों पर जो अज्ञान का परदा है वह शीघ्र हट जाय ॥३॥ हे मनुष्य! तब तू विवेक की आँखें खोल करके देख सकेगा कि सच्चे सद्गुरु की शरण में जीवन्मुक्ति का सुख है और काम तथा कल्पना में भूले हुए कुसंगी लोगों तथा कामादि की संगति में रहकर दुःख है ॥४॥

ठाकुर तस्कर केहि विधि मानी । फूटि आँख एकौ नहिं जानी ॥५॥
जो जानहु तो करहु विचारा । तस्कर संग कौन निस्तारा ॥६॥

शब्दार्थ — ठाकुर = स्वामी; सच्चा । तस्कर = चोर; भटकाने वाला । निस्तारा = कल्याण ।

भावार्थ — तू ने चोर को ही सच्चा स्वामी किस प्रकार मान लिया है ? तेरी विवेक की आँखें फूट गयी हैं. तू ने वास्तविकता का एक अंश भी नहीं जाना है । ५॥ यदि जानते हो तो विवेक करो, कुसंग में रहकर कैसे कल्याण होगा ? ॥६॥

तस्कर के संग कौन भलाई । जीवनधन हरि हरिले जाई ॥७॥
करहु संभार वचन गुरु मानो । विष अमृत मत एकै सानो ॥८॥

शब्दार्थ — जीवनधन = विवेक । विष = विषय, कल्पना । अमृत = स्वरूपज्ञान

भावार्थ — चोरों के साथ में रहने से क्या कल्याण होगा, वे तो तुम्हारे विवेक को हरण करके तुम्हें अंधकार में ढकेल देंगे ॥७॥ अतएव सद्गुरु का निर्णय वचन स्वीकार करके अपने को कुसंग से बचाओ, विष और अमृत, जड़ तथा चेतन को एक में मत मिलाओ ॥८॥

विष के खाये न जीवै जीवा । देखहु अनेक यतन जो कीवा ॥ ९ ॥
स्वारथ परमारथ के हेता । सहहु कलेश कहहु गुण केता ॥१०॥
परख लहहु साहेब के शरणा । स्वतः स्वभाव सबै दुख हरणा ॥११॥

शब्दार्थ — स्वतः स्वभाव = अपना ज्ञान स्वभाव ।

भावार्थ — व्यक्ति जहर को खाकर नहीं जी सकता । सुखकी प्राप्ति के लिये जो लोग अनेक गलत उद्योग करते हैं उसके विषय में भी वही बात समझना चाहिए ॥९॥ हे मनुष्य ! तू अपने स्वार्थ और परमार्थ की सिद्धि के लिए अनेक परिश्रम करके कष्ट सहता है; परन्तु समझ गलत होने से कहो उसमें क्या फल मिलता है ? ॥१०॥ सद्गुरु के आश्रय में जाकर पारख की प्राप्ति करो । वे अपने ज्ञान स्वभाव से तुम्हारे सारे दुःख दूर कर देंगे या ज्ञान पाकर तुम स्वाभाविक दुःखों से मुक्त हो जाओगे ॥११

९२–सद्गुरु का महत्त्व

छंद–८–१२

साहेब स्वतः प्रकाश पारख. त्रास नहीं यम दंडके ।
बास शरण विलास तजि सब, आश पिंड ब्रह्मांडके ॥
सब गाँस फाँस मिटाय दास, हुलास ज्ञान अखंडके ।
नहिं नाश ते इतिहास सुनि सोई, आदि अंत प्रचंडके ॥८॥

शब्दार्थ — यम = अज्ञान; वासना । हुलास = उल्लास; उत्साह ।

भावार्थ — सद्गुरु स्वयं ज्ञान प्रकाश से देदीप्यमान होते हैं । उन्हें अज्ञान व वासना-जनित दण्ड का कष्ट नहीं होता । कल्याणार्थी को चाहिये कि वह शरीर तथा संसार की आसक्ति छोड़कर उन्हीं के आश्रय में निवास करते हुए ज्ञान में विहरण करे । वह शिष्य कल्पना और विषय के सारे बन्धनों एवं फाँसियों को तोड़ कर सदैव अखंड ज्ञान के उत्साह में ही निमग्न रहे । और वह भ्रमिकों के महान कल्पित और भ्रामक इतिहासों तथा गाथाओं को आदि से अंत तक सुनकर भी उनमें भूले नहीं ॥८॥

यम हंत एक अनंत तेहिके, फाँस बहु वर्णतके ।
बहु जन्त गाइ हरंत कूप, पतंत बहुत गनंतके ॥
सब दास होय रहंत दुष्ट, परंत चीन्ह न कंतके ।
आदि अंत जे सुनहिं संत, नहिं ध्यावहिं सो वे अंतके ॥९॥

शब्दार्थ — यम = अज्ञान । हंत = अहंकार । जंत = जीव, मनुष्य । दास = बद्ध । कंत = स्वामी; सद्गुरु । आदि = जगत । अंत = ब्रह्म ।

भावार्थ — यह अहंकार होना कि एक ब्रह्म से अनन्त विश्व की उत्पत्ति हुई है, अज्ञान है; नाना ग्रन्थों में इस अज्ञान से उत्पन्न हुए अनेक बन्धनों का वर्णन हुआ है । बहुत से मनुष्य उसी का वर्णन करके अपने विवेक को खोकर अज्ञानकूप में पड़ चुके हैं, उनकी संख्या कौन कर सकता है ? सब जीव दुष्ट वासनाओं से आबद्ध होकर भ्रममें पड़े रहते हैं, और सच्चे सद्गुरु की पहचान नहीं करते । जो विवेकी सन्त जगत और ब्रह्म की परख कर लिये हैं, वे तथाकथित बेअन्त ब्रह्म के चक्कर में नहीं पड़ते ॥९॥

जीव हाल कीन्ह बेहाल काल, कराल सुनि अब जालके ।
उर साल अनेकन्हि भालसो, बाचाल कवितन गालके ॥
तेहि टाल डाल प्रचंड होहु, निहाल नाल कृपालके ।
लहु परख मालामाल मेटि, भवजाल शरण दयालके ॥१०॥

शब्दार्थ — हाल = अवस्था, भक्तिभाव भरी ईश्वर प्रेम परक कविता, गीत सुनने से सहृदय व्यक्ति को होने वाली आत्मविस्मृति या आनन्द विह्वलता । साल = घाव; पीड़ा । भाल = भाला; गाँसी । गाल = मुख । नाल = मार्ग । मालामाल = समृद्ध; भरपूर ।

भावार्थ — अब कुछ और बन्धनों की बातें सुनो, लम्बी चौड़ी कल्पित बातों को सुनकर जीव आत्मविस्मृत और विह्वल होकर उसी में भूल गये हैं । वाक्पटु कवियों के मुख से निकली हुई बात रूप अनेक भालों से मनुष्य के हृदय में घाव हो गये हैं । हे कल्याणार्थी ! उसे हृदय से निकाल कर फेंक दो और महान ज्ञान में स्थित होकर

कृपालु सद्गुरु के सन्मार्ग से कृतार्थ हो जाओ। दयालु सद्गुरु की शरण में पहुँच कर और पारखपद पाकर ज्ञान में अत्यंत समृद्ध हो जाओगे; और तुम्हारे सारे भवबन्धन समाप्त हो जायेंगे ॥१०॥

यह बुदबुदा जो शरीर नीर, न थीर झूठा हीरके।
परपंच बहु ततबीर तेहिके, बीर उबरे धीरके ॥
तजु नलिनि कीर फकीर जेहि डर, नहिं वजीर अमीरके।
गुरु पीर हरें भवभीर अभय, गंभीर शरण कबीरके ॥११॥

शब्दार्थ — बुद्बुदा = बुलबुला, पानी का बुलबुला। ततबीर = तदबीर, प्रयत्न। नलिनि = ललनी, बाँस की चरखी जिसमें सुग्गे फँसाये जाते हैं। कीर = तोता, सुग्गा। वजीर=मंत्री, महंत, पंडित। अमीर=राजा, धर्माचार्य, बड़े-बड़े संप्रदायाभिमानी। पीर = पीड़ा।

भावार्थ — यह शरीर पानी के बुलबुले के समान स्थिर नहीं है; भूलवश हीरे के समान माना हुआ यह शरीर झूठा है। परन्तु इस शरीर को सदैव सुरक्षित रखने के लिये भूलामनुष्य बहुत सी झंझटें तथा प्रयत्न करता है। कोई धीर-वीर पुरुष ही इसकी आसक्ति से मुक्त होते हैं। तोता ललनी यंत्र में लगे हुए फल को खाने की आशा में उसे पकड़ कर फँस जाता है, वैसे मनुष्य भोगों की आशा में पड़ कर देहाभिमान में फँस जाता है। परन्तु शरीर रूपी ललनी का तोता बना हे मनुष्य! उसका मोह छोड़ और विरक्त सद्गुरु की शरण पकड़ जिसे अमीर और वजीर किसी का भय नहीं है। सद्गुरु कबीर के निर्भय और गम्भीर ज्ञानाश्रय में आ जाने से अज्ञान जनित समस्त बोझ और पीड़ा को गुरु हरण कर लेते हैं ॥११॥

नारदादि शुकादि दै, ब्रह्मादि सब जेहि गावहीं।
गाइ ध्याइ हेराइ बारंबार, मन पछतावहीं ॥
जस जस यतन छूटन करहिं, भव बूड़े थाह न पावहीं।
सोई धार कठिन अंधार ते, पहि पार पारख लावहीं ॥१२॥

शब्दार्थ — ध्याई = ध्यान करके। हेराइ = खो जाना।

भावार्थ — नारद, सुकदेव, ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुष जिस ब्रह्म का गुणानुवाद करते, उसको गाते और उसका ध्यान करते हैं वह ब्रह्म खोया हुआ लापता होने से वे बारम्बार मनमें पश्चाताप करते हैं। लोग भवबंधनों से जितना ही छूटनेका उद्योग करते हैं उतना ही भवसागर में डूबते जाते हैं और वे उसकी थाह नहीं पाते। इस कठिन कल्पना की अँधियारी धारा से जीव को पकड़ कर पारखज्ञान उबार लेता है ॥१२॥

साखी – संतत सुख है पारख में, साधन यतन विनाश ।
भूलि भटकि लति जाहु जिव, विविधि-कर्म के फाँस ॥३२८

शब्दार्थ — संतत = सर्वदा । परख = ज्ञान ।

भावार्थ — सारे संकल्पों को परख-परख कर उन्हें छोड़ते रहना इसी में एकरस जीवन्मुक्ति का सुख है । शेष अज्ञान पूर्ण अनेक साधनायें और उद्योग जीव को अंधकार में ले जाते हैं । अतएव हे कल्याणार्थियो ! अनेक कर्मों के बंधनों में भूल-भटक कर कहीं मत जाओ ॥३२८॥

९३ -- मोह नींद की प्रबलता का वर्णन

चौपाई — ६६

कर्म फाँस बहुते कठिनाई । बिनु पारख कोइ छुटै न भाई ॥१॥
कालबली राखै जीव रोकी । परख न देई जाल त्रिलोकी ॥२॥

शब्दार्थ — कालबली = शक्तिशाली अज्ञान । त्रिलोकी = तीनलोक सत, रज, तम ।

भावार्थ — कर्मों का बंधन बड़ा कठोर है । हे भाई । बिना पारख की प्राप्ति हुए उससे कोई छूटता नहीं है ॥१॥ शक्तिशाली अज्ञान जीव को फँसा रखता है और उसे त्रिगुणात्मक कर्मबंधनों को परखने नहीं देता ॥२॥

विशेष — मनुष्य की अपनी ही बनायी हुई बलशाली भूल उसे दुःख देती है ।

बहु मत मदिरा सबनि मताई । भये अचेत न रही चेताई ॥३॥
लाज सकुच परिवार उपाधा । नेम बाँध अनेकन्हि बाँधा ॥४॥

शब्दार्थ — मताई = मतवाला बनाया । बाँध = मर्यादा ।

भावार्थ — अनेक कल्पित मतवादों का नशा सबको मतवाला बना दिया है । उसमें पड़कर सब बेसुध हो गये हैं, प्रायः लोगों को होश-चेत नहीं है ॥३॥ सन्मार्ग में चलने में लज्जा, संकोच तथा पारिवारिक झंझटें उठ खड़ी होती हैं । उधर धर्माचार्यों ने अनेक गलत नियम और मर्यादायें बाँधकर मनुष्यों का कल्याण मार्ग रोक रखा है ॥

कौन सुनै को मानै बाता । यमके घात सोई कुशलाता ॥५॥
मोह नींद बहु विधिते लागे । गाढ़ी नींद जगाये न जागे ॥६॥

शब्दार्थ — यम = मन; वासना । घात = छल ।

भावार्थ — (ऐसी अवस्था में) सत्य बात को कौन सुनता है और कौन मानता है ? जो मन की छलपूर्ण बातें हैं उसी में लोग अपना भला मानते हैं ॥५॥ लोगों को अनेक प्रकार से मोह की नींद लगी है और सब ऐसी प्रगाढ़ निद्रा मे सोये हैं कि वे जगाने पर भी नहीं जागते हैं ॥६॥

बिरले जागहिं परख प्रकाशा। तम तामस के होय विनाशा ॥७॥
बहुत सुनहिं नहिं खोलहिं नैना। परख पुकार दहुँदिश बैना ॥८॥

शब्दार्थ—तम = अंधकार। तामस = अज्ञान। दहुँदिश = दशोंदिशा, सब ओर।

भावार्थ — पारख का ज्ञान पाकर कोई बिरला मोह नींद से जाग जाता है, फिर उसके अज्ञान अंधकार का सर्वथा अभाव हो जाता है ॥७॥ बहुत व्यक्ति तो ऐसे हैं कि सब ओर से ज्ञान की बातें सुनकर भी अपने विवेक के नेत्र नहीं खोलते ॥८॥

माते नींद पलक जो खोलहीं। औरहि और भोर मत बोलहीं ॥९॥
छिन छिन आँख ढँपि ढँपि जाई। चेतहिं नहिं परखैको भाई ॥१०॥

शब्दार्थ — भोर = भूल, भ्रम।

भावार्थ — यदि कोई नेत्र खोलता भी है तो नींद में मतवाला ही बना रहता है और वह अन्य-अन्य भ्रमपूर्ण मत की बातें करता रहता है ॥९॥ इस प्रकार उनकी विवेक आँखें क्षण-क्षण बंद हो जाती हैं। हे भाई! जब वे स्वयं नहीं जागते तो उनके लिये सारासार की परख कौन करे ॥१०॥

साखी—जगै न खोलै पलक जो, बारंबार जगाय।
झूठी मीठी नींद है, आँखहि ढपि ढपि जाय ॥३२९॥

शब्दार्थ — जगै न = सावधान नहीं होते।

भावार्थ — यदि बारम्बार जगाया जाय तो भी जगत के लोग आँखें खोलकर सावधान नहीं होते। यह झूठे पदार्थों में लगे हुए मोह की मीठी नींद है और मनुष्यों की आँखें ढँप-ढँप जाती हैं ॥३२९॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी–२८

वज्रहुँ ते तृण खिन में होई। तृण ते वज्र करै पुनि सोई ॥१॥
निझरू नीरु जानि परिहरिया। कर्म का बाँधा लालच करिया ॥२॥

शब्दार्थ — खिन = क्षण। निझरू = निर्झर, प्रपात, झरना, बहता हुआ। नीरु = पानी, पानी के समान गतिशील-चंचल जगत। परिहरिया = त्याग किया।

भावार्थ — (ईश्वरवादी कहते हैं—) "उस ईश्वर की कृपा से क्षण ही में वज्र से तृण हो जाता है और पुनः वही तृण से वज्र भी कर देता है ॥ १ ॥ यह सुन कर मनःप्रसूत ईश्वर की प्राप्ति के लिये झरना या पानी के समान बहने वाले चंचल जगत-भोगों का मनुष्य त्याग किया, और कर्म-प्रपंत्रों में बँधा, कल्पित स्वर्गादि का लालच करने लगा ॥ २ ॥

कर्म धर्म मति बुधि परिहरिया। झूठा नाम साँचले धरिया ॥३॥
रजगति त्रिविधि कीन्ह परकाशा। कर्म धर्म बुधि केर विनाशा ॥४॥

शब्दार्थ — **मति**=मन की वह शक्ति जिससे भविष्य के विषय में निर्णय किया जाय । **बुधि**=बुद्धि, मन की वह शक्ति जिससे वर्तमान के विषय में निर्णय किया जाय । **रजगति**=रज्जूसर्प न्याय । **त्रिविधि**=तीन प्रकार, अस्ति-भाति-प्रिय ।

भावार्थ — जड़-चेतन सब कुछ ब्रह्म ही है ऐसा मानकर अद्वैतवादी जन शुभाशुभ कर्मों में विधि-निषेध, धर्म-अधर्म एवं जड़-चेतन की निर्णयवती विवेक-बुद्धि का परित्याग कर दिये । जो ब्रह्म झूठा है, केवल नाम-ही-नाम है, उसको सत्य मानकर धारण कर लिये ॥३॥ ब्रह्मवादियों ने रस्सी में सर्प की भ्रान्ति सदृश ब्रह्म में जगत को प्रतिभास मात्र मिथ्या बतलाकर, पुनः तीन प्रकार (अस्ति-भाति-प्रिय) के उपदेश का प्रकाश करके मानो कर्म-धर्म और बुद्धि का विनाश ही कर दिया ॥४॥

विशेष — अस्ति (सत) भाति (चिद्) प्रिय (आनन्द) अर्थात सत-चिद्-आनन्द संसार के हर पदार्थों का स्वरूप है । यह 'घट' प्रिय भासता है । अतः इसमें भी सद्-चिद्-आनन्द एवं अस्ति-भाति-प्रिय लक्षण हैं । प्रिय ही 'आनन्द' है, भासता ही 'चिद्' या भाति है और 'घट है' ही 'सद्' है । इस प्रकार कथन करके अद्वैत वेदान्ती सारे विश्व को ब्रह्म रूप कहते हैं । अतः इसमें कर्म-धर्म विधि-निषेध कुछ न रहा, जड़-चेतन की विवेकवती बुद्धि भी गयी, सब एक हो रहा अब तो 'वेश्या सती की गति एक चाही' ।

तात्पर्य यह कि "ब्रह्म के जो सद्-चिद्-आनन्द लक्षण हैं, वह जगत के हर एक जड़-चेतन पदार्थों में अस्ति-भाति-प्रिय रूपमें विद्यमान हैं । इसलिये सारा जड़-चेतन—संसार ब्रह्म ही है ।"—इस दृष्टि से जड़-चेतन, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्यादि के विवेक-विचार ही समाप्त हो गये ।

रवि के उदय तारा भौ छीना । चर बीहर दोनों में लीना ॥५॥
विष के खाये विष नहिं जावै । गारुण सो जो मरत जियावै ॥६॥

शब्दार्थ — **रवि**=अद्वैतज्ञान । **तारा**=द्वैत । **चर**=चेतन । **बीहर**=जड़ । **गारुण**=विष झाड़ने वाले, विवेकी-पारखी ।

भावार्थ — (अद्वैतवादी कहते हैं—) अद्वैत ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होते ही द्वैत रूपी तारागणों का प्रकाश नष्ट हो जाता है । फिर तो वह ब्रह्म जड़-चेतन दोनों में लीन है, (बल्कि जल-तरंग न्याय जड़-चेतन सब ब्रह्म ही है) ॥५॥ (सद्गुरु कहते हैं—) जहर के खाने से जहर नहीं जाता१ । विष झाड़ने वाला वह है, जो मरते हुए को जिला ले ॥६॥

१–ग्रह ग्रहीत पुनि बात वश, पुनि तेहि बीछी मार ।
ताहि पियाइहि बारुणी, कहौ कौन उपचार ॥ (रामायण)

विशेष — सब जीव विषय-भोग एवं जगत-अध्यास रूपी विष तो यों ही खाये हैं, अब पुनः उन्हें उपदेश दिया गया कि सारा जगत तुम्हारा ही स्वरूप है। तुम इससे पृथक नहीं हो। तो बात वही रही। अज्ञानदशा में जिसे जगत कहा जाता था, ज्ञानदशा में उसे ब्रह्म कहा जाने लगा। विषयानन्द ब्रह्मानन्द में अन्तर ही क्या रहा? जब सारा जगत अस्ति-भाति-प्रिय रूप अर्थात सच्चिदानन्द है।

जड़-चेतन की भिन्न दृष्टि न होने से अद्वैतवाद में जड़ाध्यास-जड़वासना का सर्वथा त्याग नहीं हो सकता। अद्वैतवाद में त्याग ग्रहण, विधि-निषेध कुछ है ही नहीं। विष खाने से जैसे विष नहीं दूर होता, इसी प्रकार अद्वैतज्ञान से जड़ाध्यास नहीं दूर हो सकता। जड़ से चेतन को सर्वथा भिन्न मानने वाले विवेकियों का ज्ञान ही कल्याण-प्रद है।

साखी—अलख जो लागी पलक में, पलकहिं में डसि जाय।
विषहर मंत्र न मानै, तो गारुण काह कराय ॥३३०॥

शब्दार्थ — अलख = ब्रह्म। विषहर = विषहरने वाला। मंत्र = उपदेश। गारुण = विष झाड़ने वाले विवेकी गुरु।

भावार्थ — यह जीव जो अलख ब्रह्म में पलक (ध्यान) लगाया है, सो वह पलक ही में जीव को डँस लिया। विषय-कल्पना रूपी विष को उतारने वाले पारख-उपदेश को अध्यासी जीव मानता नहीं, तो विवेकी-पारखी गुरु क्या करें? ॥३३०॥

विशेष — अलख ब्रह्म की कल्पना जीव ने की, वही कल्पना जीव के लिये बन्धन हुई। इस कल्पना में जीव का इतना प्रेम हो गया है कि इसके आगे विवेकपूर्ण वचनों को नहीं मानता। कोई निष्पक्षी पुरुष ही निष्पक्ष विचार करते हैं।

बीजक, साखी–१०४

मन माया की कोठरी, तन संशय का कोट।
विषहर मन्त्र माने नहीं, काल सर्प की चोट ॥३३१॥

शब्दार्थ — **माया** = अनेक अध्यास, संस्कार, वासना, आसक्ति। **संशय** = दुविधा, सन्देह, भ्रम, अज्ञान। **कोट** = घेरा, किला। **विषहर मन्त्र** = विषयरूपी विष हरने वाला उपदेश। **काल** = काम, कल्पना, अहंकार।

भावार्थ — यह मन, माया की कोठरी है; और शरीर, अनेक सन्देहभ्रमों का किला है। काल-सर्प ने ऐसा कठिन घाव किया है, कि सद्गुरु के विषहारी उपदेश को भी जीव नहीं मानता ॥३३१॥

विशेष — जिस वस्तु की जो कोठरी रहती है, उसमें वह वस्तु परिपूर्ण रहती है। मन ही माया की कोठरी है। अतः मन में माया-ही-माया भरी है। साधन-द्वारा

जिनका मन शुद्ध नहीं हुआ है, उनके मन में से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि के ही संस्कार सदैव उठते रहते हैं। यह मनोविकार ही माया है। इसी प्रकार बिना विवेक के शरीरधारी को नाना भ्रम घेरते रहते हैं इन सबों से रहित होना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है।

९४--मुमुक्षु को उद्बोधन

चौपाई—१००

रहहु सदा पारख हुशियारा। नाशक नष्ट सदा व्यवहारा ॥१॥
अद्‌बुद रूप देखाय भुलाई। नाशक नास्ति नहीं कुशलाई ॥२॥

शब्दार्थ — नाशक = नाश करने वाला अविवेक। अद्‌बुद = अद्‌भुत। नास्ति = असत्य।

भावार्थ — हे मुमुक्षु! सारासार परखने में सदैव सावधान रहो। अविवेक कल्याण का विरोधी है और उसका व्यवहार सदैव हित का विघातक है ॥१॥ मनुष्य के मनका अविवेक अद्‌भुत कल्पना का दृश्य दिखा-दिखाकर जीवको भुला देता है। अतएव इस अविवेक और असत्य पदार्थों के मोह में जीवका कल्याण नहीं है ॥२॥

नष्ट कला नाशक पहिचानी। फाँस गाँस मेटहु बिलछानी ॥३॥
रहस दयाल रहु लौलाये। आश गाँस छूटे पारख पाये ॥४॥

शब्दार्थ — नष्ट कला = वह गुण जो हित का विघातक हो। रहस = दिव्याचरण।

भावार्थ — नाशक उसे समझो जिसका गुण कल्याण का विघातक हो; अतएव ऐसे तत्त्वोंकी छानबीन करके उनके बंधनोंकी फांसी मिटा दो ॥३॥ कृपालु सद्‌गुरु के दिव्याचरणों का अनुकरण करो। फिर तो पारख ज्ञान के प्राप्त होने पर जड़ आशा की फांसी छूट जायेगी ॥४॥

नहिं अनुमान न अटपट चाला। परखहु सब विधि यम जंजाला ॥५॥
जानै जनावै पारख सोई। लहत शरण सुख जीवहि होई ॥६॥

शब्दार्थ — अनुमान = अटकलबाजी। यम = अज्ञान; वासना।

भावार्थ — न अटकलऊ ज्ञान में पड़ो और न ऊटपटांग आचरण रखो; सब प्रकार के वासनाओं के बंधनों को परखो ॥ ५ ॥ जो सारासार को जानता है और दूसरे को जना देता है वही पारख है। उसका आश्रय लेने से जीव को जीवन्मुक्ति का सुख मिलता है ॥ ६ ॥

संतत जीवै जीव व्यवहारा। नाशक नष्टमई संसारा ॥७॥
सो अव्यक्त नहिं चीन्है कोई। यद्यपि आपु व्यक्त रूपी है सोई ॥८॥

शब्दार्थ — संतत = सदैव । अव्यक्त = अप्रकट; अनिश्चित । व्यक्त=प्रकट; प्रत्यक्ष; ज्ञान ।

भावार्थ — अविनाशी चेतन जीव सदैव जीवित रहता है, वह शरीर के मरने पर मरता नहीं । हाँ, शरीर द्वारा किया गया व्यवहार नाशवान संसार का स्वरूप होने से तथा नाशक काल के अधीन होने से नष्ट हो जाता है ।। ७ ।। कहते हैं सबका प्रलय करने वाला अव्यक्त ब्रह्म है; परन्तु कोई उसकी परख नहीं करता कि वह मन की कल्पना है । यद्यपि चेतनजीव स्वयं प्रत्यक्ष है, परन्तु वह भूलवश किसी अनिश्चित वस्तु की कल्पना करता है ।। ८ ।।

देखहु व्यक्त सो सब अव्यक्ता । आपु ब्रह्म आपुहि सो शक्ता ।। ९ ।।
पारख लहत नियारा होई । आश बास हेतु सब खोई ।।१०।।

शब्दार्थ — व्यक्त = प्रत्यक्ष । अव्यक्त = अप्रत्यक्ष । शक्ता = आसक्त । हेतु = प्रयोजन ।

भावार्थ — देखो, यह स्वयं प्रत्यक्ष चेतन जीव ही सभी अव्यक्त, अनिश्चित ईश्वर, ब्रह्मादि की कल्पना करता है । यह स्वयं ब्रह्म आदि की मान्यता करता है । और स्वयं उसमें आसक्त होता है ।। ९ ।। जब मनुष्य को अपने चेतनस्वरूप से भिन्न वस्तुओं की वास्तविकता परखने में आ जाती है और अपने पारखस्वरूप का बोध हो जाता है तब वह सारे दृश्यों से पृथक हो जाता है और वह सबकी आशा-वासना व प्रयोजन समाप्त कर देता है—स्वयं तृप्तात्मा हो जाता है ।। १० ।।

सहजहिं नष्ट स्वभाव शरीरा । त्याग जतन तेहि अनबनि पीरा ।।११।।
यतन युक्ति मत नाशक केरा । सो सब तन है करहु निबेरा ।।१२।।

शब्दार्थ — अनबनि = अनेक । नाशक = कल्याण का विघातक । निबेरा = निर्णय; त्याग ।

भावार्थ — शरीर का स्वभाव सहज ही नाशवान है और अनेक पीड़ाओं से भरा है; अतएव उसको सदैव सुरक्षित रखने का मोह छोड़ दो ।। ११ ।। शरीर को अमर बनाने, उससे ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करने तथा उनका बहुतकाल तक उपभोग करने आदि के उद्योग, युक्ति आदि करना यह सब कल्याण के विघातक अविवेक का मत और शरीर की आसक्ति का परिणाम है; अतएव इनका त्याग करो ।। १२ ।।

योनी भरमत पीरा भारी । जन्म मरण दुख दुसह विचारी ।।१३।।
तन अभिमान लहहु दुखकाहे । बनि है परख विलासकी चाहे ।।१४।।

शब्दार्थ — परख विलास = परख-परख कर सारे संकल्पों को दूर करना और अपने आप में तृप्त रहना ।

भावार्थ — नाना योनियों में भ्रमते हुए जीव को महान पीड़ा होती है। विवेक से देखें तो जन्म-मरण में जीव को असहनीय वेदनायें हैं ॥ १३ ॥ हे मनुष्य ! शरीर का अहंकार धारण करके क्यों दुःख उठा रहे हो ? तुम्हारा कल्याण तो तभी बनेगा जब तुम्हारे हृदय में देहादिक वासनाओं को त्याग कर स्वरूपस्थिति करने की प्रबल अभिलाषा उत्पन्न होगी ॥ १४ ॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी–६२, १५६, १४०

दोहरा तो नौ तन भया, पर्दाहिं न चीन्हैं कोय।
जिन्ह यह शब्द विवेकिया, छत्र धनी है सोय ॥३३२॥

शब्दार्थ — दोहरा = दो पर्त का, दुगुना, स्त्री-पुरुष। नौ = नव, नवीन। पर्दाहिं = पारखपद को। छत्रधनी = राजा, स्वतन्त्र, सुखी।

भावार्थ — स्त्री-पुरुष दोनों के शरीर की आसक्ति के वशीभूत होकर ही जीव बारम्बार नवीन शरीर को धारण करता रहता है। कोई जीव अपने पारख पद—स्वस्वरूप को नहीं पहचानता कि अपने आप की भूल से यह जन्म-मरण का दुःख है। इस शब्द का विवेक करके और समस्त शरीरों की आसक्ति को त्यागकर, जो अपने आप चेतन स्वरूप में स्थित हुआ, वही छत्रधनी, सम्राट, स्वतन्त्र, जीवन्मुक्त है।३३२।

साहु चोर चीन्है नहीं, अन्धा मति का हीन।
पारख बिना विनाश है, कर विचार होहु भीन ॥३३३॥

शब्दार्थ — साहु = सच्चे सद्गुरु। चोर = भ्रमिक गुरु।

भावार्थ — विवेक-हीन अन्धा मनुष्य, सच्चे सद्गुरु एवं भ्रमिक गुरुओं को नहीं पहचानता है। हे जीव! पारख-ज्ञान की प्राप्ति बिना तुम्हारा पतन है अतएव विवेक करके भ्रमिक गुरुओं के वाणी-जालों से पृथक हो जाओ ॥ ३३३ ॥

विशेष — कबीरपन्थी कहलाकर भी जो महाशय पारख-ज्ञान से घबराते हैं, वे इस निचली पंक्ति पर गम्भीर विचार करें, कितनी वजनदार है—

"पारख बिना विनाश है, कर विचार होहु भीन"

माया तजे क्या भया, जो मान तजा नहिं जाय।
जेहि माने मुनिवर ठगे, सो मान सबन को खाय ॥३३४॥

शब्दार्थ — माने = मानन्दी या अहंकार में पड़कर।

भावार्थ — स्त्री-पुत्र, धन-घर त्याग कर साधु हुए तो क्या हुआ ? यदि अपने-अपने मत, वाद, पोथी, मजहब का या मन का अभिमान नहीं त्यागा जाता। जिस अहंता-ममता में पड़कर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि ठगा गये; वह मान-अभिमान सबको खा रहा है ॥ ३३४ ॥

९५ – कठिन भवबंधनों से बचानेवाला पारखज्ञान

तोमर छंद–१३, १४

संसार संशय शरीर, भवधार गहिर गंभीर ।
भवतरंग बहु पीर, पारख लगावै तीर ॥
बहु बहि गये तेहि धार, कहि कहि अथाह अपार ।
सूझै न धूंध अंधार, परख प्रकाश उबार ॥
तेहि धन्य धन्य सो जीव, जिन्ह परख पाये पीव ।
बहु छीर कविमत कीव, मथि मथि निकारे घीव ॥१३॥

शब्दार्थ — संशय = संदेह, शंका । धूंध = धुंध, अंधियारा । पीव = पति; श्रेष्ठ; जीव । छीर = दूध, सार । कविमत = व्यासादि बड़े-बड़े कवियों का मत ।

भावार्थ — संसार और शरीर अनेक संदेहों के केन्द्र हैं, यही गहरा और गंभीर भवसागर है । भवसागर में अनेक पीड़ाओं की तरंगें हैं । पारखज्ञान ही इससे पार लगाता है । इस भवसागर को अगम और अपार कह-कहकर असंख्य व्यक्ति इसी की धारा में बह गये हैं । व्यक्ति को इस अज्ञान रूपी धुंध और अंधियारी में कुछ नहीं दिखाई देता । जिस घट में पारख का प्रकाश हो जाता है वही इस अज्ञान अंधकार से बचता है । वे व्यक्ति बारम्बार प्रशंसाभाजन हैं जिनको यह परख हो गयी कि सबका निर्धारण करनेवाला सर्वोच्च स्वामी यह चेतन जीव ही है । बाल्मीकि, व्यासादि विश्व के बड़े-बड़े कवियों ने भी अपने मतों में पानीवत असार के साथ-साथ दूधवत सार तत्त्व का भी वर्णन किया है । सद्गुरु कबीर तथा पारखी संतजन उनको मथन करके घी के समान सार तत्त्व को निकाल लिये हैं ॥१३॥

विशेष — सद्गुरु कबीर एवं कोई भी निष्पक्ष विवेकी पुरुष समस्त वाणियों से सार तत्त्व ले लेते हैं । साथ-साथ वे जड़-चेतन का ठीक विवेक करके, व्यवहार और अनुभव पर तौलकर सत्य का निर्धारण कर लेते हैं ।

सो वचन हैं टकसार, करु एक एक विचार ।
मत देखहु सहज लबार, करे जीवनहिं संघार ॥
बेहा सो खेत उजार, तेहि आश भास उबार ।
परपंच सब बदकार, बेबुध करैं इतबार ॥१४॥

शब्दार्थ — टकसार = बीजक; सत्संग । लबार = लम्बी चौड़ी कल्पना की बातें करने वाले । बेहा = बाड़; रक्षक । बदकार = कुकर्मी, व्यभिचारी, तात्पर्य में

वह व्यक्ति जो अपने शुद्ध चेतन स्वरूप से पृथक भास-अध्यास में प्रेम करता हो। बेबुध = बुद्धिहीन।

भावार्थ — उपर्युक्त निर्णय वचन बीजक एवं सत्संग में प्राप्त होते हैं। उसकी एक-एक वाणी पर विचार करो। हे मुमुक्षु! जो स्वाभाविक वक्की तथा लम्बी-चौड़ी कल्पना की बातें करने वाले हैं उनके भ्रामक मतों को परखो, वे जीवों को सत्पथ से भटकाने वाले हैं। जैसे बाड़ ही खेत की फसल नष्ट करने लगे, वैसे जीव के कल्याण-कर्ता कहलाने वाले धर्माचार्य ही जीवों को भ्रम में डालते हैं। अतएव उनके द्वारा लगायी गयी मिथ्या वस्तुओं की आशा और वासना को दूर करके अपने आपका उद्धार करो। अपने शुद्ध स्वरूप चेतन का ज्ञान तथा स्थिति को छोड़कर विजाति जड़ एवं काल्पनिक मान्यताओं में अनुराग करने वाले लोगों की भ्रममान्यताओं के विस्तार में बुद्धिहीन लोग ही विश्वास करते हैं ॥१४॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-१०६

बेहा दीन्हों खेत को, बेहा खेतहिं खाय।
तीन लोक संशय परी, मैं काहि कहौं समुझाय ॥ ३३५ ॥

शब्दार्थ — बेहा = बाड़, रक्षक।

भावार्थ — खेत की रक्षा के लिये, उसके चारों ओर बेहा लगाया गया। परन्तु वह बेहा ही खेत को खाने लगा। इसी प्रकार उपर्युक्त माया को मनुष्य अपनी रक्षिका समझा, परन्तु वह माया ही मनुष्य को नष्ट करने लगी। तीन लोक में माया के रक्षिका होने का भ्रम पड़ा है। मैं किस-किसको समझा कर कहूँ कि माया रक्षिका नहीं, भक्षिका है ॥ ३३५ ॥

९६ – निष्पक्ष पारख विचार से ही कल्याण

चौपाई—१०१

संशय भरम मिटावहु भाई। परख विलास प्रीति अधिकाई ॥ १ ॥
परख परे नहिं और ठिकाना। धोखे में मति फिरहु भुलाना ॥ २ ॥

शब्दार्थ — संशय = शंका। भरम = भ्रम, विपरीत भास।

भावार्थ — हे भाई! सब संदेह और भ्रम को नष्ट करके स्वरूपज्ञान की स्थिति में ही अधिक प्रेम करो ॥ १ ॥ पारखपद एवं स्वरूपस्थिति को छोड़कर जीव की स्थिति अन्य जगह नहीं है। अतएव अपने चेतनस्वरूप की स्थिति को छोड़कर किसी कल्पित वस्तु के धोखे में भूले-भूले मत फिरो ॥ २ ॥

और बिरानेके मत बौरा। फिरहि विकल दहुँदिश जग दौरा ॥३॥
कतहुँ न थीर झीना औ मोटा। नाशक नष्टमई कलि खोटा ॥४॥

शब्दार्थ — झीना = वाणीजाल; सूक्ष्मबंधन । मोटा = खानी जाल; स्थूल-बंधन । कलि = अज्ञान ।

भावार्थ — स्वरूपज्ञान से पृथक काल्पनिक मतों में जीव उन्मत्त हैं; और वे व्याकुल होकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संसार के दशोदिशाओं में दौड़ते हैं ॥३॥ परन्तु खानी और वाणी में कहीं जीवको शांति नहीं मिलती । अज्ञान हित का नाशक असत्य रूप तथा मलीन है ॥ ४ ॥

लहहु परख परखावहु हंसा । जे कछु गाँठि बाँधेहु संसा ॥ ५ ॥
परखत गाँठि संशय नशावै । नाशक अपनो रूप देखावै ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — हंसा = मनुष्य; चेतनजीव । गाँठि = आसक्ति । संसा = संशय ।

भावार्थ — उन बातों की स्वयं परख करो और दूसरे मनुष्यों को परखाओ जो कुछ तुम लोगों ने संशय की ग्रन्थि बाँध रखी है ॥ ५ ॥ अपने मन के भ्रम एवं आसक्ति को परख लेने पर सारे सन्देह मिट जायेंगे और कल्याण का विघातक जो अज्ञान है उसका स्वरूप पहचान में आ जायेगा ॥६॥

सो पहिचान मान सब डारो । परवश यम जीवन मति हारो ॥७॥
बहियाँ बल पारख प्रभुताई । गहत शरण सो लेत छोड़ाई ॥८॥

शब्दार्थ — यम = वासना । बहियाँ बल = बाहुबल; पुरुषार्थ की शक्ति । प्रभुताई = प्रभुत्व; गौरव; महत्त्व ।

भावार्थ — उपर्युक्त अज्ञान को परख कर उससे उत्पन्न हुए सारे अहंकार को दूर कर दो । वासना के वशीभूत होकर अपने जीवन को मत खोवो ॥ ७ ॥ जो व्यक्ति सच्चे सद्गुरु की शरण ग्रहण कर लेता है वह अपने पुरुषार्थ की शक्ति तथा पारख के तेज द्वारा अपने आप को भवबंधनों से छुड़ा लेता है ॥ ८ ॥

कलह कल्पना सब जग भर्मा । निर्मल चाल परखमय मर्मा ॥ ९ ॥
सुजन सेवक साहेब गुरुदेवा । धाय गहिल करहिं तेहि सेवा ॥१०॥
चरणोदक परसादी लेहीं । परख प्रताप जीव सुख देहीं ॥११॥

शब्दार्थ — सुजन = सज्जन । गहिल = गह लिया, पकड़ लिया । चरणोदक = चरण से स्पर्श किया हुआ जल; दिव्याचरण । परसादी = महाप्रसाद ।

भावार्थ — जगत के प्रायः सब जीव राग-द्वेष के झगड़े में भटक रहे हैं । पूर्ण शुद्ध आचरण उन्हीं का होता है जो पारखस्वरूप के रहस्य को ठीक से जानकर उसमें स्थित होते हैं ॥९॥ वे ही सेवक सज्जन हैं जो सच्चे सद्गुरु स्वामी की शरण को श्रद्धा-पूर्वक ग्रहण करके उनकी सेवा करते हैं और बोध प्राप्त करते हैं ॥१०॥ वे दिव्याचरण

रूपी चरणजल तथा सत्योपदेश रूपी महाप्रसाद ग्रहण करके पारख ज्ञान के प्रकाश की स्थिति में पहुँचकर अपने आप को परमसुख में तृप्तकर देते हैं ॥११॥

साखी—साहु साहेब गुरु सोई, दरश प्रत्यक्षहि होय ।
ध्यान अनुमान यमके कला, चले अपन पौ खोय ॥३३६॥

शब्दार्थ — साहु = सच्चा । यम = अज्ञान । कला = गुण । अपन पौ = स्वरूपभाव; अपना दावँ ।

भावार्थ — जीव का कल्याणदाता सच्चा स्वामी वह सद्‌गुरु ही है जिसके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं । और ईश्वरादि अनुमान विषय ध्यान करना अज्ञान का गुण है जिस धोखे में पड़कर असंख्य व्यक्ति अपने स्वरूपज्ञान तथा मानव जीवन के उत्तम अवसर को खोते रहते हैं ॥३३६॥

पारख मिले संशय भजै, रहै न कल्पना कोय ।
और परे कोई नहीं, धोखा यमके होय ॥३३७॥

शब्दार्थ — परे = ऊपर । यम = अज्ञान ।

भावार्थ — पारखज्ञान प्राप्त होने पर सारे संदेह समाप्त हो जाते हैं, फिर उस व्यक्ति को कोई कल्पना नहीं रह जाती । पारखपद-चेतनस्वरूप के ऊपर अन्य कोई परमतत्त्व नहीं है । यदि जीव के ऊपर कोई पृथक परमतत्त्व बतलाता है तो वह अज्ञानजनित छलावा ही है ॥३३७॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी–१२३

जाके मुनिवर तप करें, वेद थके गुण गाय ।
सोई देऊँ सिखापना, कोई नहीं पतियाय ॥३३८॥

शब्दार्थ — जाके = मोक्ष के लिये । सिखापना = शिक्षा उपदेश ।

भावार्थ — जिस आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति तथा परम शान्ति की प्राप्ति रूपी मोक्ष के लिये बड़े-बड़े मुनिजन तपस्या करते थे और करते हैं, जिस मोक्ष-सुख के गुणों को वेद भी गाते थकते हैं, उसी की शिक्षा मैं दे रहा हूँ, परन्तु (साधारण लोगों में) कोई विश्वास नहीं करता ॥३३८॥

विशेष — वैदिक ऋषि मुनि जनों ने मुक्तितत्त्व की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है; परन्तु अन्ततः जड़-चेतन एक में मिलाकर अद्वैत निरूपण करने से, मुक्ति के वास्तविक स्वरूप से पृथक रह गये हैं । इधर सत्संग में जड़-चेतन का पृथक निर्णय करके, जड़वर्ग का जनैया सबका परखने वाला पारख स्वरूप चेतन तथा उसकी स्थिति रूपी वास्तविक मुक्ति का उपदेश करता हूँ, परन्तु जो बहुत दिनों से जड़-चेतन की एकता को ही मुक्ति मानने का संस्कार पड़ा है, उन संस्कारों से अभिभूत होने से लोग इस जड़-चेतन के

पृथक निर्णय तथा पारख-विचार पर सहसा विश्वास नहीं करते । अपनी उल्टी बुद्धि होने से ऐसे लोग सीधे को ही उल्टा कहते हैं :—

'जाकर मति भ्रम भयो खगेसा । सोकह पच्छिम उगेउ दिनेसा' ॥

मनुष्य को चेतने का अवसर आज ही है, ऐसा समय खोना उचित नहीं है ।

९७ – सत्य रहनी के उपदेश तथा असत्य से सावधान

चौपाई — १०२

गुरुके मिलत कल्पना भाजै । सोई साहेब सत्य विराजै ॥१॥
तजहु और आशा यम केरा । पारख सब दुख करै निबेरा ॥२॥

शब्दार्थ — यम = मन । निबेरा = छुटकारा ।

भावार्थ — यथार्थ सद्‌गुरु के मिलते ही शिष्य की भ्रांतियाँ समाप्त हो जाती हैं और उसमें उसी सद्‌गुरु का सत्यबोध विराजमान हो जाता है ॥१॥ मन की अन्य आशायें छोड़ दो । पारख ज्ञान सारे दुःखों को दूर कर देगा ॥२॥

हंस दशा धरि बिहरहु भाई । नीर क्षीर बहु विधि फरियाई ॥३॥
निर्वैरी वर्ते व्यवहारा । एक अनेक बहे भवधारा ॥४॥

शब्दार्थ — हंस = विवेकी । बिहरहु = विहरना, घूमना-फिरना । फरियाई = फरियाना, साफ करना ।

भावार्थ — हे भाई साधक ! हंस जैसे मिले हुए दूध-पानी को अलग कर देता है, वैसे तुम विवेकी बनकर सारासार का अत्यंत विभेद करके और सार को ग्रहण करके विचरण करो ॥३॥ सारा व्यवहार रागद्वेष-रहित होकर बरतो । भूलवश ही एक जीव अनेक कल्पनाओं की भवधारा में बहता है ॥४॥

एकै जीव अनेक बनाई । केहिसे बैर करहु मेरे भाई ॥५॥
परखहु दुर्मति करहु विनाशा । जोई विकार यमकेर विलासा ॥६॥

शब्दार्थ — यमकेर = मन का । विलास = कल्पना ।

भावार्थ — एक जीव ने ही भूलवश अनेक कल्पना, मान्यता तथा रागद्वेष बना रखा है । हे मेरे प्रिय बंधु ! किससे शत्रुता किया जाय ? सब तो स्वजाति हैं ॥ ५ ॥ दुर्बुद्धि की परख करके उसका नाश करो जो मनका विकार तथा कल्पना है ॥ ६ ॥

त्रिविधि फाँस सबै बौराई । भाँति अनेकन्हि दुर्मति लाई ॥ ७ ॥
धोखा दयाल कर्म कठिनाई । विष्णु दुर्मति चाल चलाई ॥ ८ ॥
ब्रह्मा राजतिलक अनुसारी । अदल न्याय परपंच सँवारी ॥ ९ ॥
जुलमी जुलम तिलक नहीं शोभे । झूठ महातम सबै जिव लोभे ॥१०॥

शब्दार्थ — त्रिविधि = सत, रज, तम। अदल = अद्ल, न्याय। जुलमी = जर्मी, अपराधी; गलत काम करने वाला।

भावार्थ — त्रिगुणात्मक बंधनों में बँध कर और अनेक प्रकार से दुर्बुद्धि कमा कर लोग उन्मत्त हो गये हैं ॥ ७ ॥ वेष बनाते हैं दयालु का और कर्म करते हैं क्रूरतापूर्ण, यह छलावा ही है। विष्णु जी भी बलि तथा वृंदादि से अपना छलपूर्ण व्यवहार करके कलंकित हुए ॥ ८ ॥ ब्रह्मा ने न्याय का अनुसरण करने के लिये राजतिलक अपनाया; परन्तु अनेक प्रपंचयुक्त कार्य किये ॥ ९ ॥ जो जर्मी बनकर जुर्म करे उसे न्याय का तिलक शोभा नहीं देता। परन्तु व्यर्थ के महात्म्य सुनकर सब जीव लुब्ध हैं ॥

विषय त्यागी हर बानाधारी। जती कहावै सती संघारी ॥११॥
जामें पुत्र जतीके शोभा। देखत राम सीता मन लोभा ॥१२॥
सतवंती पतिव्रता कहाये। विधि संयोग कुंभज ऋषि आये ॥१३॥
वर्णन सबके चाल कुचाला। विदित पुराणन तिन्हके हाला ॥१४॥

शब्दार्थ — जती = यती, त्यागी। विधि = ब्रह्मा। हाल = समाचार; बात।

भावार्थ — महादेव ने विषयविरक्ति का वेष लंगोटी पहन रखे हैं और त्यागी-कामारि कहलाते हैं; परन्तु सती के साथ में अपने त्याग का नाश कर चुके हैं और मोहवश अनेक स्त्रियों का मुंडमाल भी पहन रखे हैं ॥ ११ ॥ उसमें भी स्वामि-कार्तिक तथा गणेश जी उनके पुत्र हैं, यह उनकी विरक्ति की शोभा है। मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाने वाले श्रीराम भी जनकपुर में विवाह के पहले ही जानकी जी को वाटिका में देखकर मोहित होकर विह्वल हो गये थे। फिर वन में तो पेड़-पौधों से सीता की खबर पूछी ही थी ॥ १२ ॥ सतवंती पतिव्रता कहलाती थीं, परन्तु कहा जाता है उससे ब्रह्मा संयोग किये तो कुम्भज जी पैदा हुए ॥ १३ ॥ इस प्रकार बड़े-बड़े लोगों के चाल-कुचाल की बातें पुराणों में विदित हैं ॥ १४ ॥

विशेष — कहा जाता है कि मित्रवरुण उर्वशी को देखकर विकारी हुए और अपना वीर्य घड़ा में रख दिये, उससे कुंभज पैदा हुए। वस्तुतः किसी नारी के शरीर रूपी घट में ही वीर्य का आधान किये होंगे।

साखी—बहुतक चाल दुर्मति रचे, धोखा आश लगाय।
महिमा केरी गाँस में, अंध सबै पतियाय ॥३३९॥

शब्दार्थ — गाँस = बंधन। पतियाय = विश्वास करना।

भावार्थ — संसार में लोग अनेक दुर्बुद्धि की चाल चलकर धोखाधड़ी में आशा लगाये हैं। और झूठे मान-माहात्म्य के बंधनों में पड़कर सब अनसमझ लोग उसमें विश्वास करते हैं ॥३३९॥

सत्यशब्द भूलना-२

गुरुदेव की नारी जो हर लई चंद्रमा, कुंता कुमारी से सूर्य प्रसंग कीन्हा।
गौतम के घरणि से सुरपतिने छलकरी, कृष्ण सब गोपिन कै रंग भीना ॥
ब्रह्मा सुता संग भागा फिरै, शिव मोहिनी देखिके भये अधीना।
हरि जग आयके जत्तसत्तटारिया, माता पुत्रि सों तीहुँ भोग कीन्हा ॥
अंजनी के छलन को देव तीनों गये, पाप औ पुण्य जिन्ह घोरि पीन्हा।
कहहिं कबीर सब देव अन्याई भये, तिनहिं का कहा सब जगत कीन्हा ॥

शब्दार्थ — घरणि = गृहणी, पत्नी। सुरपति = इन्द्र।

भावार्थ — चन्द्रमा ने अपने गुरु वृहस्पति की पत्नी को छीनकर उससे बुध को जन्म दिया, सूर्य ने कुन्ती से कुमारी अवस्था में ही दूषित व्यवहार करके कर्ण को जन्म दिया। इन्द्र ने ऋषि गौतम की पत्नी से छल किया, गिरधारी कृष्ण मुरारी गोपिका विहारी थे ही, परायी स्त्रियों के साथ रंग रास करना उनका काम था॥ ब्रह्माजी स्वपुत्री के सौंदर्य पर मोहित हो उसके पीछे दौड़ने लगे थे, शिवजी मोहिनी को देखकर उसके मोहवश हो ही गये थे। विष्णुजी ने मोहिनी बनकर महादेव को पागल बनाया और वृन्दा को छला, त्रिदेव माता, पुत्री के प्रति भी मन मलीन किये॥ कहा जाता है अंजनी या अनुसुइया को छलने के लिये ब्रह्मादि तीनों देवता गये थे, इस प्रकार इन लोगों ने पाप और पुण्य को एक में मिलाकर पी लिया। सद्गुरु कहते है कि सारे देवता नामधारी अन्याय का काम किये, परन्तु उन्हीं की बातों पर लोग विश्वास करके आचरण करते हैं॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, रमैनी-८१

देव चरित्र सुनहु हो भाई। जो ब्रह्मा सो धियउ नशाई ॥१॥
दूजे कहौं मंदोदरि तारा। जेहि घर जेठ सदा लगवारा ॥२॥
सुरपति जाय अहिल्या छरी। सुरगुरु घरणि चंद्र ने हरी ॥३॥
कहहिं कबीर हरि के गुण गाया। कुंतिहि कर्ण कुँवारेहि जाया ॥४॥

शब्दार्थ — चरित्र = आचरण। धियउ = पुत्री को। सुरपति = इंद्र। घरणि = पत्नी।

भावार्थ — हे भाई! देवताओं के आचरणों को सुनो जो ब्रह्मा थे वे पुत्री के साथ नष्ट हुए ॥१। दूसरे मंदोदरी और तारा को कहता हूँ (जो पाँच कन्याओं में मानी जाती हैं) ये जेठी थीं, परन्तु इनके लघु देवर विभीषण और सुग्रीव सदैव उपपति रहे ॥२॥ इन्द्र जाकर अहिल्या के साथ छल किया। देवताओं के गुरु

बृस्पति की पत्नी को चन्द्रमा ने हरण किया ॥३॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि जिन हरि का गुण गाया जाता है वे भी वृन्दा को दूषित किये; और कुन्ती ने कर्ण को अपनी कुमारी अवस्था में जन्म दिया ॥४॥

९८–सबसे सार ग्रहण और पारख पद की प्राप्ति

चौपाई–१०३

करहिं कुचाल महातम भारी। धोखा देइ देइ जीवन मारी ॥१॥
पातशाह शिर टोपी दीन्हा। सोउ चाल कुचाल गहि लीन्हा ॥२॥

शब्दार्थ — पातशाह=बादशाह।

भावार्थ — कितने लोग तो आचरण गलत करते हैं; परन्तु उनका लोग बहुत बड़ा महात्म्य कर रखते हैं। यह तो व्यक्तियों को धोखा देकर उन्हें नीचे गिराना है ॥१॥ धर्म का बादशाह बन, ताज लगाकर और गद्दी पर बैठकर गलत आचरण ग्रहण करना कितना शोचनीय विषय है ॥२॥

कफनी कफन अजादी बाना। तीनहुँ सोई फाँस अरुझाना ॥३॥
पारखी सबके पारख कीन्हा। अपनी भेष अपनाय सो लीन्हा ॥४॥

शब्दार्थ — कफनी=अलफी। कफन=अचला। बाना=वेष।

भावार्थ — अलफी तथा अचला ये स्वतन्त्र साधु के वेष हैं। परन्तु तीनों गुणों के अहंकारी लोगों के लिये ये वेष उलटे बंधन रूप हो जाते हैं ॥३॥ विवेकी पुरुष सबका विवेक करके त्याग का वेष ग्रहण कर लेते हैं ॥४॥

भेष यथारथ राखि सो साखी। और अमंगल एकौ नहिं राखी ॥५॥
निज पद जानि भेष अपनाई। कंठी तिलक लँगोट सोहाई ॥६॥

शब्दार्थ — साखी=साक्षी, गवाही; चिन्ह।

भावार्थ — पारखी संत चिन्ह तथा सात्विकता के लिये यथार्थ वेष रख लिये। अन्य अकल्याणकारक वेष और आचरण एक भी नहीं रखे ॥५॥ अपने स्वरूप की स्थिति में सहायक जानकर शुद्ध वेष अपनाया और कण्ठी, तिलक तथा लंगोटी अचला से सुशोभित हुए ॥६॥

टोपी कफनी कुरता राजै। परख विलास सबै शुभ साजै ॥७॥
सोई भेष सो मंगलकारी। और अनेकन्हि जतन खुवारी ॥८॥

शब्दार्थ — राजै=राजना, विराजना, सुशोभित होना। खुवारी=ख्वारी, खराबी, बरबादी।

भावार्थ — साधु-मंहतों को टोपी, अलफी और कुरता शोभता है। परन्तु जो

वासनाओं को त्याग-त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होते हैं वे जिस प्रकार वेष रखें सब शुभ और शोभायमान है ॥ ७ ॥ वस्तुतः वे वही वेष अपनाते हैं जो मंगल करने वाला हो। कल्याणमार्ग छोड़कर अन्य उपाय करना तो अपनी तथा दूसरे की बरबादी करना है ॥ ८ ॥

क्षीर नीर सो हंस निबेरा। बकबक ध्यान कालके प्रेरा ॥ ९ ॥
बक अरु हंस चाल बिलगावै। परख विलास सदा सुख पावै ॥१०॥
आदि अंत परखो परखाओ। झाँईं दुर्मति दूर बहाओ ॥११॥

शब्दार्थ — बक = बकुला। झाँईं = धोखा।

भावार्थ — हंस मिले हुए दूध और पानी को अलग-अलग करता है और बकुला कपट ध्यान करता है तथा मछली को देख काल बनकर उनपर टूट पड़ता है। इसी प्रकार विवेकी सारासार का विवेक करते हैं और अविवेकी शुद्ध वेष बना कर गलत आचरण करते हैं ॥ ९ ॥ जो अविवेकी और विवेकी के आचरणों का बिलछान करके विवेकी बनता है और अपने पारख स्वरूप में रमण करता है वह जीवन पर्यन्त जीवन्मुक्ति सुख में विहरता है ॥ १० ॥ अतएव हे मुमुक्षुओ ! हिताहित की सारी बातें आदि से अंत तक परखो और दूसरों को परखाओ और मन के सारे धोखा तथा भ्रम को दूर फेंकदो।

साखी — जिन्ह चेता तिन्ह चेता, मानुष केरी दाव।
नहिं तो दुर्मत फेर में, सहै घनेरी घाव ॥३४०॥

शब्दार्थ — दाव = अवसर। घनेरी = बहुत। घाव = चोट; दुःख।

भावार्थ — इस मानव शरीर के उत्तम अवसर में जो मन-माया से सावधान हो गया वह जानो उबर गया, अन्यथा जो व्यक्ति दुर्बुद्धि के चक्कर में ही पड़ा रहा वह खानियों में पड़ा-पड़ा अनेक दुःखों को सहता रहेगा ॥ ३४० ॥

सत्यशब्द टकसार : बीजक, साखी-११३

मानुष जन्म नर पायके, चूके अबकी घात।
जाय परे भवचक्रमें, सहै घनेरी लात ॥३४१॥

शब्दार्थ — घात = अवसर, दाँव। भवचक्र = संसार चक्र। घनेरी = बहुत।

भावार्थ — कल्याण-साधन करने योग्य उत्तम मनुष्य-शरीर पाकर भी, जो अबकी दाँव चूक गया (अपना कल्याण-साधन नहीं किया), तो पुनः जीव संसार के जन्म-मरण चक्कर में पड़ जायेगा, और कीड़े-मकोड़े होकर मनुष्य-पशुओं के बहुत से लातें खाया करेगा ॥ ३४१ ॥

विशेष — छोटे छोटे जीव रात-दिन मनुष्यों और पशुओं के पैरों के नीचे दब-

दब कर, दुःख उठाते या मारे जाते हैं। 'सहै घनेरी लात' का यही अभिप्राय है। आज सुन्दर अवसर पाकर जो माया-मद की असावधानी में भूलते हैं और अपना कल्याण नहीं करते, उनको यही फल मिलता है।

छन्द – १५

जेहि हेतु सुर नर मुनि जना, बहु योग जप रटहु लावहीं।
नहिं ओर छोर बेकार पावहिं, अगम कहि कहि गावहीं॥
सो आदि अंत जे सुजन जन, पारख करहिं परखावहीं।
सब गाँस भास मिटाय अभय, अशंक सोइ पद पावहीं॥

शब्दार्थ — अगम = अपार। गाँस = बंधन। भास = भ्रम।

भावार्थ — जिस सर्वोच्च पद–मोक्ष की प्राप्ति के लिये सुर, नर, मुनि जन अनेक प्रकार से योग, जप, तप करते हैं। परन्तु एक जड़-चेतन अभिन्न जगत का कारण स्वरूप विकारवान ब्रह्मकी कल्पना खड़ी करके उसका आदि-अंत नहीं पाते और उसे अपार कहकर उसका वर्णन करते हैं। जो विवेकी पुरुष उसका आदि-अंत परख कर दूसरे को भी परखा देते हैं वे सब प्रकार भ्रमबन्धनों को नष्ट कर उस निर्भय निश्शंक पारखपद को पा जाते हैं जो सबका अभिलषित है॥ १५॥

विशेष — सुर, नर, मुनि एवं मानवमात्र की अभिलाषा है दुःखरहित, नाश-रहित, परमशांति स्थिति की प्राप्ति। इसके लिये शुद्ध बोध तथा शुद्ध आचरण अपेक्षित है। जहाँ अपने चेतन स्वरूप से अपना लक्ष्य पृथक माना जाता है वहाँ अबोध है; और जहाँ अपने स्वरूप को सर्वव्यापक जड़-चेतन अभिन्न माना जाता है वहाँ भी पूर्ण अबोध व भ्रम है। जब यह परख हो जाती है कि मैं शुद्ध चेतन जड़ से सर्वथा पृथक, व्याप्य-व्यापकवर्जित; सबका द्रष्टा एवं शुद्ध हूँ तथा विषयासक्तियों का त्याग करके स्वस्वरूप में स्थिरता हो जाती है तब जीवन लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

टकसार पहला भाग समाप्त

सद्गुरवे नमः

(टकसार दूसरा भाग)

सत्ताईस रमैनी

दया गुरु की ॥ अथ लिख्यते सत्ताइस रमैनी ॥

९९—परा, पश्यंती, मध्यमा तथा वैखरी वाणी का वर्णन

रमैनी–१

प्रथम शब्द है शून्याकार। परा अव्यक्त सो कहै विचार ॥१॥
अंतःकरण उदय जब होय। पश्यंती अर्धमात्रा सोय ॥२॥
स्वर सो कंठ मध्यमा जान। चौंतिस अक्षर मुख अस्थान ॥३॥
अनबनि बानी तेहिके माहिं। बिन जाने नर भटका खाहिं ॥४॥

शब्दार्थ — परा = नाभि (या मूलाधार) में स्थित रहने वाली नादरूपिणी वाणी। अव्यक्त = अप्रकट। पश्यंती = परा वाणी ही हृदय में आकर पश्यंती कहलाती है। अर्धमात्रा = ॐ की आधी मात्रा ' ँ ' जो माया का अंग मानी जाती है। अनबनि = अनेक।

भावार्थ — ज्ञानी और योगी लोग विचार करके कहते हैं कि शब्द का पहला रूप जो अप्रकट है जिसका नाम 'परा' है और जो नाभि-प्रदेश में रहता है वह आकार से शून्य होता है ॥१॥ वह जब उन्नत होकर अंतःकरण में पहुँचता है तब उसे पश्यंती व अर्धमात्रा कहते हैं ॥२॥ वही शब्द जब और ऊपर उठकर कंठ में पहुँचता है तब उसे मध्यमा के नाम से जाना जाता है; और वही मुख के स्थान में पहुँच कर चौंतीस अक्षरों में बदल कर वैखरी कहलाता है ॥३॥ इसी वैखरी में हिताहित की अनेक प्रकार की वाणियाँ होती हैं; उनका रहस्य जाने बिना मनुष्य भटका खाते हैं ॥४॥

विशेष — कहीं-कहीं बतलाते हैं कि वाणी का पहला रूप 'परा' मूलाधार में रहता है, दूसरा रूप 'पश्यंती' नाभि में, तीसरा 'मध्यमा' हृदय में तथा चौथा 'वैखरी' कंठ में। इस ग्रन्थ में इन्हें क्रमशः नाभि, हृदय, कंठ तथा मुख में माना है जिसमें वस्तुतः कोई अंतर नहीं है। जो शब्द हम बोलते हैं वह 'वैखरी' है। इसके पहले उसके तीन स्तर माने गये हैं परा, पश्यंती और मध्यमा जो नाद या वायु रूप हैं। वैखरी वाणी में अनेक प्रकार की वाणियाँ होती हैं जिसको इस प्रकरण में काल, संधि, झाँईं और सार के नाम से आगे विवरण पूर्वक परख कराया जायगा। मनुष्य विवेक न करने से वाणी जाल में भूला है। अतएव उसे वाणियों का विवेकी होना चाहिये।

वानी अक्षर स्वर समुदाय। अर्ध पश्यंती जात नशाय ॥५॥
शून्याकार सो प्रथमा रहे। अक्षर ब्रह्म सनातन कहै ॥६॥
निरवर्त परवर्त है शब्दाकार। प्रणव जानै यही विचार ॥७॥

शब्दार्थ — निरवर्त = निवृत्त-ब्रह्म। परवर्त = प्रवृत्त-जगत। प्रणव = ॐ।

भावार्थ — (कहते हैं) अंततः अक्षर रूप वैखरी वाणी जो स्वर समूह है तथा अर्धमात्रा, पश्यंती सब विलय होकर उस प्रथम 'परा' वाणी की स्थिति में पहुँच जाती हैं, जो आकार से हीन शून्य स्वरूप है जिसको हम सनातन, अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म कह सकते हैं ॥५, ६॥ ब्रह्मवादियों के यही विचार है कि ब्रह्म और जगत जो कुछ भी है सब प्रणव यानी ॐ शब्द के आकार में ही जानना चाहिये ॥७॥

विशेष — माण्डूक्य उपनिषद प्रथम मंत्र में आता है "ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्।" ॐ यह अक्षर ही सब कुछ है।

साखी — अकुलाहट के शब्द जे, भये चारि सो भेष।
बहुवानी बहु रूपकी, पृथक पृथक सब देश ॥ १ ॥

शब्दार्थ — अकुलाहट = व्याकुलता; विह्वलता। भेष = रूप। देश = स्थान; क्षेत्र; विभाग।

भावार्थ — संसार के दुःखों से व्याकुल होकर उनसे मुक्ति पाने के लिये जो मनुष्यों ने शब्द कहे उनके मुख्य चार स्वरूप हुए—काल, संधि, झाँईं और सार। उनमें भी अवांतर भेदों से अनेक रूपों की अनेक वाणियाँ बनीं जिन सबके क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं ॥ १ ॥

विशेष — काल, संधि, झाँईं और सार—इन चार प्रकार की वाणियों का विवरण अगली रमैनियों में दिया जाता है। उनकी अवांतर (अंतर्गत या गौण) वाणियाँ विविध प्रकार हैं जिनका बहुतायत वर्णन टकसार में कर आये हैं।

१०० — काल, संधि, झाईं तथा सार वाणियों के स्वरूप

रमैनी—२

अनवनि वानी चार प्रकार । काल संधि झाँईं औ सार ॥१॥
हेतु शब्द बूझिये जोय । जानि यथारथ द्वारा सोय ॥२॥
भरमिक झाँईं संधि औ काल । सारशब्द काटे भ्रम जाल ॥३॥

शब्दार्थ — अनवनि = अनेक । हेतु = प्रयोजन । द्वारा = मुख, जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख, गुरुमुख जो क्रमशः काल, सन्धि, झाँईं तथा सार के स्थान पर हैं ।

भावार्थ — संसार की अनेक वाणियाँ इन चार रूपों में विभक्त की जा सकती हैं—काल, संधि, झाँईं और सार ॥१॥ कोई भी शब्द सुनकर यह विचार करना चाहिये कि यह किस प्रयोजन से कहा गया है; और यह भी समझना चाहिये कि उस शब्द का वास्तविक द्वार क्या है, अर्थात वह जीवमुख है कि मायामुख अथवा ब्रह्ममुख है या गुरुमुख जिन्हें क्रमशः काल, संधि, झाँईं और सार शब्द के रूप में कहा जाता है ॥२॥ झाँईं, संधि और काल की वाणियाँ उनकी कही होती हैं जो भ्रम में हैं; अथवा उक्त तीनों वाणियाँ भ्रमोत्पादक होती हैं और चौथा सारशब्द निर्णय वचन है जो भ्रमजाल को काट कर सत्य की स्थापना करता है ॥३॥

द्वारा चारि अर्थ परमान । पदारथ विंगारथ पहिचान ॥४॥
भाव अर्थ धुन्यारथ चार । द्वारा शब्द कोइ लखै विचार ॥५॥
परा पराइत मुख सो जान । मोरे सोरह कला निदान ॥६॥

शब्दार्थ — परमान = प्रमाण; मानना । परा = ब्रह्मज्ञान । पराइत = पराये की, दूसरे की; पूर्व पक्ष की । मोरे = मोड़ना, घुमाना, अर्थ बदलना । सोरह कला = अ, आ आदि सोलह स्वर ।

भावार्थ — जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख तथा गुरुमुख—ये चार द्वारा हुए; जिन्हें क्रमशः काल, संधि, झाँईं और सार कहते हैं । अर्थों की मान्यता भी चार रूपों में है वे हैं पदार्थ, व्यंगार्थ, भावार्थ तथा ध्वन्यार्थ । इस प्रकार शब्दों के द्वारा और अर्थों के भेद कोई विरला ही, विवेक पूर्वक समझता है ॥४, ५॥ जहाँ भ्रमकृत बातों की प्रशंसा है वहाँ परमत के मुख से कही हुई बातें समझो । अंततः सारे शब्दों के अर्थों का तोड़-मरोड़ सोलह स्वरों एवं मात्राओं द्वारा होता है ॥६॥

विशेष — पदार्थ, व्यंगार्थ, भावार्थ तथा ध्वन्यार्थ इन चारों का थोड़ा स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है—

पदार्थ—पद यानी शब्द का अर्थ, जैसे 'घट' पद है, इसको सुनते ही अर्थ स्वरूप कम्बुग्रीवादिमान घड़े का स्मरण हो जाता है ।

व्यंगार्थ — जिसका सहज अर्थ एक हो; परन्तु व्यंग का अर्थ अन्य हो जैसे बुखार की दशा में किसी को हलुवा खाते देखकर किसी ने कहा 'हाँ, बुखार में हलुवा अच्छा भोजन है।' इस वाक्य का सहज अर्थ तो यही है कि बुखार में हलुवा लाभकर है; परन्तु उसका व्यंगार्थ है कि बुखार में हलुवा खाना बहुत हानिकर है।

भावार्थ — वह अर्थ जिसमें प्रत्येक शब्द का अर्थ न देकर समूचे वाक्य का आशय दे दिया जाय।

ध्वन्यार्थ—वह अर्थ जिसका बोध व्यंजनावृत्ति से होता हो; अर्थात जो संकेत में कहा जाय, जैसे कोई व्यक्ति किसी के यहाँ गया और वहाँ भोजन तो करना चाहता है; परन्तु सीधे नहीं कहता कि मैं आपके यहाँ भोजन करूँगा, प्रत्युत कहता है "आपके यहाँ का भोजन मुझे बहुत मीठा लगता है।"

अ, आ, इ, ई आदि सोलह स्वरों का प्रयोग करके ही शब्दों के नाना अर्थ होते हैं। जैसे 'दादा' में दोनों अ कार के स्वर निकाल लिये जायँ तो केवल 'द द' का कोई अर्थ नहीं होगा; और 'दादा' में अंतिम वाला 'ा' 'ई = ी' कर दिया जाय तो 'दादी' हो जायगा, जिसका अर्थ दूसरा हो जायगा। इस प्रकार सोलह स्वरों की कलाओं, गुणों एवं हुनरों से ही शब्द के अर्थ मोड़े जाते हैं।

साखी—बिनु जाने सोरह कला, शब्दी शब्द कौवाय।
शब्द सुधारि पहिचानिये, कौन कहाँ बौवाय॥ २॥

शब्दार्थ — शब्दी = शब्दों का उच्चारण। कौवाय = स्वप्न में बोलना; व्यर्थ बातें करना। बौवाय = बौआना, सपने में प्रलाप करना।

भावार्थ — बिना इस बात को ठीक से समझे कि छत्तीस वर्णों में सोलह स्वरों की कलायें मिलाकर सारे शब्द बनते हैं; अतएव शब्दों से उसका रचयिता एवं द्रष्टा चेतन मनुष्य श्रेष्ठ है, लोग शब्दों को लेकर मिथ्या प्रलाप करते हैं। अत: हे मनुष्य! शब्दों को सुधार करके यह परीक्षा करो कि कौन व्यक्ति किस विचार को लेकर व्यर्थ वाद कर रहा है॥ २॥

विशेष — मनुष्य को चाहिये कि वह शब्दों का दास न बने, अपितु शब्दों से अधिक महत्त्व शब्दी — चेतन को दे।

रमैनी—३

अक्षर वेद पुराण बखान। धर्म कर्म तीरथ अनुमान॥ १॥
अक्षर पूजा सेवा जाप। और महातम जेते थाप॥ २॥
यही कहावत अक्षर काल। जाय गड़ी उर होय के भाल॥ ३॥

शब्दार्थ — अक्षर = शब्द। थाप = सिद्ध। भाल = भाला।

भावार्थ — वेदों-पुराणों के अनेक कल्पित शब्द, कल्पित ईश्वरादि की उपासना रूपी धर्म, यज्ञादि कर्म, तीर्थ, अनेक अनुमान की बातें ॥ १ ॥ मूर्ति आदि की पूजा, सेवा तथा अनेक प्रकार के जप और अन्य जितनी प्रकार की सत्यतारहित महिमायें फैलाई गयी हैं ॥ २ ॥ इन्हीं सब वाणियों को 'काल' या 'जीवमुख' माना गया है। ये कल्पित वाणियाँ मनुष्यों के हृदय में भालारूप बनकर गहराई से गड़ी हैं ॥ ३ ॥

वोहं सोहं आतम राम। माया मंत्रादिक सब काम ॥ ४ ॥
यह सब अक्षर संधिक कहै। जेहिमा निशिवासर जिव रहै ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — अक्षर = वाणी। संधिक = संधि का

भावार्थ — वोऽहम्, सोऽहम्, आत्मा, राम इत्यादि शब्दों को लेकर जहाँ तक चराचर व्यापक आत्मा व ईश्वर का वर्णन आता है तथा मायावी महिमाओं और मंत्र आदि सिद्धि की बातें हैं; यह सब वाणियाँ 'संधि' की कही जाती हैं जिसमें मनुष्य रात-दिन आसक्त हैं ॥ ४, ५ ॥

विशेष — आत्मा और राम शब्द कहीं-कहीं विधिपरक कथन में आते हैं वहाँ उनका अर्थ व्याप्य-व्यापक वर्जित शुद्ध चेतन है। परन्तु खण्डनपरक है।

निर्गुण अलख अकह निर्वान। मन बुद्धि इंद्री जाइ न जान ॥ ६ ॥
विधि निषेध जहाँ बनत न दोय। कहहिं कबीर पद झाँई सोय ॥ ७ ॥

शब्दार्थ — झाँईं = परछाईं, धब्बा; धोखा।

भावार्थ — गुणातीत, अदृश्य, अकथनीय, निर्वाण, मन-बुद्धि-इन्द्रियों से अग्राह्य जहाँ पुण्य-पाप का विधि-निषेध करते नहीं बनता—गुरु कबीर कहते हैं यही झाँईं का स्वरूप है ॥ ६, ७ ॥

विशेष — यद्यपि ग्रंथकार के स्वपक्ष में भी अपना चेतन स्वरूप तीनों गुणों से परे हैं, नेत्रों से अदृश्य है, वाक् से परे, मुक्तरूप, मन-बुद्धि-इन्द्रियों से अग्राह्य है। परन्तु वह व्याप्य-व्यापक भाव से भी रहित है, जगत की कारणता से भी पृथक तथा जड़ से सर्वथा भिन्न है, और रहनी में जीवन पर्यन्त पुण्य-पाप के विधि-निषेध मान्य हैं।

झाँईं स्वरूप अद्वैत ब्रह्मवाद में आत्मा व्यापक, जड़ से सर्वथा अभिन्न जगत का कारणरूप है; इसलिये यह मत बंधनप्रद है।

साखी—पहले झाँईं झाँकते, पैठा संधिक काल।
पुनि झाँईं की झाँईं रही, गुरु बिन सकै को टाल ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — झाँईं = प्रतिबिंब; धोखा। झाँकते = देखते; भ्रम पड़ते।

भावार्थ — पहले मनुष्य के हृदय में जो यह धोखा या भ्रम खड़ा हुआ कि मैं

जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्म हूँ, इससे मनमें सन्धि और काल की वाणियाँ घुसीं। फिर जड़-चेतन-अभिन्न ब्रह्म तो केवल मन का भ्रम था और भ्रम मात्र ही रहा; परन्तु पारखी सद्गुरु बिना इस भ्रम को कौन मिटा सकता है ?

१०१—स्वस्वरूपभूल से सारे बंधन

रमैनी-४

प्रथमें संभव शब्द अमान। शब्दी शब्द कियो अनुमान ॥१॥
मान महातम मान भुलान। मानत मानत बावन ठान ॥२॥

शब्दार्थ — सम्भव = उत्पन्न; कल्पना। अमान = ब्रह्म। शब्दी = मनुष्य जीव। ठान = निश्चय।

भावार्थ — मनुष्य के मनमें पहले ब्रह्म शब्द की कल्पना हुई। शब्द का अनुमान शब्दी-चेतन करता है। अर्थात चेतन मनुष्य ने ही ब्रह्म शब्द की कल्पना की ॥१॥ उस ब्रह्म शब्द की मान्यता बढ़ाते-बढ़ाते उसके मिथ्या माहात्म्य में जीव अपने शुद्ध चेतन-स्वरूप को भूला ही रहा; और अपनी अनेक कल्पित मान्यताओं के प्रचार के लिये बावन (५२) स्वर-व्यंजनों का निश्चय किया ॥२॥

फेरा फिरत भया भ्रमजाल। देह आदिक जग भये विशाल ॥३॥
देह भयेते दैहिक होय। जगत भयेते कर्ता कोय ॥४॥

शब्दार्थ — फेरा फिरत = चक्कर काटते; जन्म-मरण में घूमते। दैहिक = देहसम्बंधी।

भावार्थ — जीव अनादिकाल से जन्म-मरण के चक्कर में घूमते-घूमते वे कठिन भ्रमबन्धनों में बंध गये हैं; और उन्होंने शरीर, संसार आदि में अत्यंत बड़ी ममता बना रखी है ॥३॥ देह में आसक्त होने में देह सम्बन्धी अनेक शोक-मोह बढ़ते हैं; और संसार के अनादित्व का बोध न होने से उसका कोई रचयिता होगा इसकी कल्पना होती है ॥४॥

कर्ता कारण कर्महिं लाग। घर घर लोग कियो अनुराग ॥५॥
छौ दर्शन वर्णाश्रम चार। नौ छौ भये पाखण्ड बेकार ॥६॥

शब्दार्थ — कर्ता = रचयिता। कारण = जगत का मूल। छौ दर्शन = योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मण। नौ = व्याकरण के नौ भाग। छौ = सांख्यादि छह शास्त्र।

भावार्थ -- जड़-चेतन का विवेक न होने से लोग जगत के कर्ता और मूलकारण कहीं अन्य ईश्वर-ब्रह्मादि मान कर उसको प्राप्त करने के कर्म में लग गये; और घर-घर लोग उसकी भक्ति करने लगे ॥५॥ इसी मान्यता में छह दर्शन, चार वर्ण, चार

आश्रम, व्याकरण के नौ भाग, छह शास्त्र तथा छान्नवे पाखण्डों का विकार खड़ा हुआ ॥६॥

कोई त्यागी अनुरागी होय । विधि निषेध मायाते दोय ॥७॥
कल्पेउ ग्रंथ पुराण अनेक । भरमि रहे सब बिना विवेक ॥८॥

शब्दार्थ — अनुरागी = भक्त ।

भावार्थ — उक्त ब्रह्म-ईश्वर की प्राप्ति के लिये कोई त्यागी बना, कोई भक्त बना और कोई पुण्य-पाप विषये विधि-निषेध दोनों को मायारूप समझ कर सर्वभक्षी एवं सर्वग्राही बनकर अद्वैत बना ॥७॥ इस प्रकार नाना मान्यताओं में पड़कर अनेक पुराणों एवं ग्रंथों की रचना की गयी तथा उनमें नाना कल्पित बातों का वर्णन किया गया, उसी में संसार के सब मनुष्य विवेकहीन बने भटक रहे हैं ॥८॥

साखी--भरमि रहा सब शब्दमों, शब्दी शब्द न जान ।
गुरु कृपा निज परख बल, परखो धोखा ज्ञान ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — शब्दी = शब्द का अधिष्ठाता चेतन मनुष्य ।

भावार्थ — सभी भूले मनुष्य शब्दजाल में भटक रहे हैं; क्योंकि शब्दों का अधिष्ठाता चेतन मनुष्य शब्दों की वास्तविकता को नहीं जानता । अतएव हे कल्याणार्थी ! सद्गुरु सदुपदेश रूप कृपा तथा अपने विवेकबल की शक्ति से ज्ञानके वेष में रहे हुए धोखाधड़ी के फैलावा की परख करो ॥४॥

विशेष — शब्द कृत्रिम है, मनुष्य उसका कर्ता है । मनुष्यको चाहिये कि वह शब्दों को आँख मूँद कर न मान ले, अपितु उसकी निष्पक्ष होकर परख करे ।

रमैनी-'१

धोखा प्रथम परखिये भाई । नाम जाति कुल कर्म बड़ाई ॥१॥
क्षिति जल पावक मरुत अकाश । तामहँ पंच विषय परकाश ॥२॥

शब्दार्थ — धोखा = वंचना, छलावा । नाम = शरीरादि का नाम, संज्ञा । परकाश = प्रकट ।

भावार्थ — हे भाई ! पहले उन सभी वंचना व छलावा वाली बातों की परख कर उन्हें त्याग करो जो तुम्हारे स्वरूपज्ञान को ढँक रखती हैं; वे हैं जड़-शरीर के नाम जाति, वर्ण, कुल, कर्म तथा मान-बड़ाई आदि ॥१॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पंच तत्त्वों से शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध का प्रकटीकरण होता है जिनमें जीव भूलते हैं ॥२॥

विशेष — आकाश निष्क्रिय तथा शून्य है; अतः उससे शब्द गुण नहीं हो सकता स्पर्श और शब्द वायु के गुण हैं । यहाँ सहज कथन है ।

तत्त्व पाँचमें श्वासा सार। प्राण अपान समान उदार ॥३॥
उदान व्यान बावन संचार। निजनिज थल निज कारज कार ॥४॥

शब्दार्थ — श्वासा = प्राण; वायु। सार = मूल।

भावार्थ — पाँच तत्त्वों में वायु या प्राणशक्ति मुख्य है। प्राण से हृदयगति होती है, अपान से मल-मूत्रविसर्जित होती हैं, समान भोजन पचाकर उदारता पूर्वक शरीर भर में रस-रक्त का वहन करता है ॥३॥ उदान कंठ में रह कर जल-भोजन को भिन्न-भिन्न कर आँती में पहुँचाता तथा व्यान शरीर भर में रहकर जोड़ों के घूमने में सहायता करता है। श्वास स्वर से ही बावन वर्ण मात्राओं का उच्चारण होता है। इस प्रकार ये सब अपनी-अपनी जगह रहकर चेतन जीव के साक्षित्व में अपना-अपना काम करते हैं ॥४॥

इंगला पिंगला औ सुखमनी। एकईस सहस्र छौसतसै गनी ॥५॥
निगम अगम सो सदा बतावै। श्वासा सार स्वरोदै गावै ॥६॥

शब्दार्थ — सुखमनी = सुषुम्णा। निगम = वेद। अगम = आगम, शास्त्र। स्वरोदय = स्वर का उदय; श्वासभेद से शुभाशुभ फल जानने की विद्या।

भावार्थ — इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा— ये तीन नाड़ियाँ हैं। रात-दिन (चौबीस घंटे) में इक्कीस हजार छह सौ (२१६००) श्वास चलते हैं ऐसा विद्वानों ने गिन रखा है ॥५॥ वेद शास्त्र भी सदैव यही बताते हैं; और श्वास भेद बताने वाली स्वरोदयविद्या में भी यह बात बतायी गयी है ॥६॥

साखी—धोखा अंधेरी पायके, यहि विधि भया शरीर।
कल्पेउ कर्ता एक पुनि, बढ़ी कर्म की पीर ॥ ५ ॥

शब्दार्थ — अंधेरी = अज्ञान। पीर = पीड़ा, कष्ट।

भावार्थ — इस प्रकार स्वरूप के अज्ञान तथा मनके अनेक छलावा रूपी अंधकार में फँसकर जीव बारम्बार शरीर धारण करता है। फिर वह भ्रमवश एक जगतकर्ता की कल्पना करके उसकी प्राप्ति के लिये नाना कर्मों का दुःख अपने सिर पर उठा लेता है ॥५॥

१०२—काल वाणी का स्वरूप

रमैनी—६

योग जप तप ध्यान अलेख। तीरथ फिरत धरत बहु भेष ॥१॥
योगी जंगम सिद्ध उदासी। घरको त्यागि फिरत बनवासी ॥२॥

शब्दार्थ — अलेख = अदृश्य। जंगम = शिवाचारी।

भावार्थ — कितने लोग तथाकथित ईश्वर की प्राप्ति के लिये हठयोगादि करते, जप, तपस्या तथा अदृश्य का ध्यान करने का साहस करते, तीर्थों में घूमते और अनेक प्रकार के वेष धारण करते हैं ॥१॥ लोग योगी, शिवाचारी, सिद्ध, उदासी बनकर और घर को छोड़कर यत्र-तत्र घूमते तथा जंगलों में निवास करते हैं ॥२॥

कंद मूल फल करे अहार । कोइ कोइ जटा धरे शिर भार ॥३॥
मन मलीन मुख लाये धूर । आगे पीछे आगि औ सूर ॥४॥
नगन होय नर खोरिन फिरैं । पीतर पाथरमें शिर धरै ॥५॥

शब्दार्थ — **कंद** = गाँठदार या गूदेदार जड़ । **आगि** = अग्नि । **सूर** = सूर्य । **खोरिन** = गलियों में ।

भावार्थ — कितने लोग अन्न त्याग कर कंद, मूल, फल आदि का आहार करते हैं; और कोई सिर पर जटाजूट का बोझा धारण कर लेता है ॥३॥ कोई तो ईश्वर की विरह में मनको दुःखी बनाकर और मुख आदि शरीर में धूल या राख लपेट कर गर्मियों की दुपहरियों में पंचाग्नि, पचासाग्नि, सहस्राग्नि तापते हैं । उस समय उनके आगे पीछे आग तथा सूर्य का ताप रहता है ॥४॥ कितने मनुष्य परमात्मा के विरह में नंगे होकर गलियों में घूमते हैं और कितने तो अष्टधातुओं की मूर्तियों में सिर झुकाते एवं उसकी पूजा करते हैं ॥५॥

साखी—काल शब्दके सोरते, होर परी संसार ।
देखा देखी भागिया, कोई न करै विचार ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — **काल शब्द** = कल्पना के शब्द । **सोर** = शोर, हल्ला । **होर** = होड़, प्रतिस्पर्धा, लाग-डाट, चढ़ा-उपरी ।

भावार्थ — काल्पनिक शब्दों का शोरगुल सुनकर संसार के लोगों में ईश्वर को पाने के लिये लाग-डाट हो गयी । सब एक दूसरे की देखा देखी उसी कल्पना की ओर भागते हैं, कोई स्थिर होकर विचार नहीं करता ॥६॥

१०३ – संधि वाणी का स्वरूप

रमैनी–७

जब पुनि आय बसी अस वानी । तब चित माँहि कियो अनुमानी ॥१॥
मैं ही ब्रह्म कर्ता जग केरा । परे सो जाल जगतके फेरा ॥२॥

शब्दार्थ — **अनुमानी** = अनुमान, अटकल । **फेरा** = फिर, पुनः ।

भावार्थ — जब उपर्युक्त प्रकार की अनेक भ्रामक वाणियाँ मनुष्य के मन में दृढ़ हुईं और योग, जप, तपादि करके भी ईश्वर नहीं मिला तब उसने अपने मनमें

अटकल लगाया कि—॥१॥"मैं जगत का कर्ता ब्रह्म हूँ।" इस प्रकार वे पुनः संसार के बंधनों में पड़ गये ॥२॥

पाँच तीनि गुण जग उपजाया । सो माया मैं ब्रह्म निकाया ॥३॥
उपजै खपै जगत विस्तारा । मैं साक्षी सब जाननिहारा ॥४॥

शब्दार्थ — निकाया = निकाय, समूह, समष्टि, संपूर्ण ।

भावार्थ — (कहते हैं—) पाँच तत्त्व, तीनगुण संयुक्त संसार मेरा उत्पन्न किया हुआ है । यह सब माया है और मैं सम्पूर्ण ब्रह्म हूँ ॥३॥ जो उत्पन्न होता और लीन होता है वह जगत का विस्तार है । मैं सबका साक्षी सबको जानने वाला हूँ ॥४॥

मोकहँ जानि सकै नहिं कोई । जोपै विधि हरि शंकर होई ॥५॥
अस संधिककी परी बेकार । बिन गुरु कृपा न होय उबार ॥६॥
मगन ब्रह्म संधिकके ज्ञान । अस जानि अब भौ भ्रम हान ॥७॥

शब्दार्थ — संधिक = संधि की, संधि का अर्थ भेद, दरार, भ्रम आदि हैं । मगन = मग्न, डूबा हुआ ।

भावार्थ — (वे कहते हैं--) मुझको कोई नहीं जान सकता है चाहे वह ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर ही क्यों न हो ॥५॥ इस प्रकार संधि एवं भ्रम का विकार मनुष्य के मनमें उदय हुआ । बिना सद्गुरु पारखी का उपदेश प्राप्त किये इस भ्रम से जीवका छुटकारा नहीं होता ॥६॥ लोग सन्धि एवं भ्रम के ज्ञान में पड़कर 'मैं ही जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म हूँ' इस भाव में डूबे । परन्तु वे यह मान लिये कि मेरे भ्रम एवं अज्ञान का नाश हो चुका है ॥७॥

साखी–संधि शब्द है ब्रह्ममें, भूलि रहा कित लोग ।
परखेउ धोखा भेव नहीं, अंत होय बड़ शोग ॥७॥

शब्दार्थ — सन्धि = त्रुटि, कसर, भ्रम ।

भावार्थ — मैं जगतका कर्ता ब्रह्म हूँ इस मान्यता में ही संधि शब्दों का विस्तार है । कितने लोग इसी में भूल कर पड़े हैं । हे मनुष्य ! यदि तू शरीर रहते-रहते इस धोखा एवं भेद को परखकर नहीं छोड़ा तो अंत में तुम्हें बड़ा कष्ट होगा ॥७॥

विशेष — अपने आपको जगत से अभिन्न और कर्ता मान लेने से अपनी मनोवृत्ति जड़ाध्यास से नहीं छूटती और जीवको अंततः भवबन्धनों में ही पड़ा रहना पड़ता है । अपने आपको उक्त मान्यता से पृथक करना चाहिये ।

१०४–झाँई शब्द का स्वरूप

रमैनी–८

जो कोई संधिक धोखा जान । सो पुनि उलट कियो अनुमान ॥१॥
मन बुद्धि इंद्री जाइ न जान । निर्वचनी सो सदा अमान ॥२॥

शब्दार्थ — निर्वचनी = निर्वचन, मौन, वाणीसे परे। अमान = मानरहित ब्रह्म।

भावार्थ —यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त संधि की बातों को धोखा रूप जान लिया वह उलट करके इस प्रकार अटकल लगाया कि—॥१॥ उस ब्रह्म को मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। वह वचन से परे तथा सदैव मान-अभिमान से रहित है ॥२॥

अकल अनीह अबाद अभेद। नेति नेति कहि गावहिं वेद ॥३॥
सोहं वृत्ति अखंडित रहै। एक दोय अब को तहाँ कहै ॥४॥
जानि परी तब नित्याकार। झाँईं सो भ्रम महा विकार ॥५॥

शब्दार्थ — अकल = अवयवरहित; अखंड; अंशरहित, कलारहित; गुणातीत। अनीह = इच्छारहित। अबाद = निर्विवाद। अभेद = सर्वत्र। नेति नेति = इतना ही नहीं, अपार। सोहं = सोऽहम्, वह मैं हूँ।

भावार्थ — उस ब्रह्मको अवयवरहित, इच्छाहीन, निर्विवाद, सर्वत्र व्याप्त तथा अपार कहकर वेद उसका गुण गाते हैं ॥३। वह ब्रह्म मैं हूँ, यह वृत्ति अखण्ड करके रखते हैं। इसमें एक और दो अर्थात अद्वैत तथा द्वैत कौन कहे ? ॥४॥ इस समय नित्य सबकुछ ब्रह्मके आकार में ही प्रतीत होता है। यह है झाँईं जो महान विकारपूर्ण है॥५॥

विशेष — शुद्ध अद्वैतवाद में जड़-चेतन एक हो जाता है। यह है झाँईं तथा महान भ्रम।

साखी—संभव शब्द अमान जो, झाँईं प्रथम विकार।
परखो धोखा भेव निजु, गुरु की दया उबार ॥८॥

शब्दार्थ — संभव = उत्पन्न। अमान = ब्रह्म। झाँईं = धोखा। भेव = भेद, रहस्य।

भावार्थ — जड़-चेतन-अभिन्न लक्षण वाले जो ब्रह्म की कल्पना व शब्द उत्पन्न हुए यही झाँईं है और पहला विकार है। हे मनुष्य! इस अपने मनका धोखा और रहस्य को परखो; और पारखी सद्गुरु के उपदेश रूपी कृपाप्रसाद से अपने आपका झाँईं के बन्धनों से उद्धार करो ॥८॥

१०५—शब्दजाल वर्णन

रमैनी-६

पहिले एक शब्द समुदाय। बावन रूप धरे छितराय ॥१॥
इच्छा नारि धरी तेहि भेस। ताते ब्रह्मा विष्णु महेश ॥२॥

शब्दार्थ — समुदाय = समूह, एकबद्ध। छितराय = खोलकर, फैलाकर।

भावार्थ — कहते हैं पहले पहल मनुष्य के मूलाधार या नाभि में परा वाणी रूप सम्पूर्ण शब्दों की एक समवेत सत्ता रहती है। उसी की पश्यंती, मध्यमा तथा वैखरी के रूप में उन्नति होकर मनुष्य ने उसे बावन (५२) स्वरव्यंजनों में फैलाकर रखा है ॥१॥ इच्छा रूपी नारी ने उस वाणी का वेष धारण किया; अर्थात मनुष्य की इच्छा से अनेक वाणियाँ बनीं। उसी से ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के क्रमशः कर्म, उपासना एवं ज्ञानकाण्ड की मान्यतायें फैलीं ॥२॥

चारिउ उर पुर बावन जागे। पाँच अठारह कंठहि लागे ॥३॥
तालू पाँच शून्य सो आये। दश रसना के पूत कहाये ॥४॥

शब्दार्थ — चारिउ = मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। उर = हृदय। पुर = नगर। पाँच अठारह = तेईस (२३)।

भावार्थ — चतुष्टय अन्तःकरण रूपी नगर से अ से अः तक सोलह स्वर तथा क से क्ष तक छत्तीस व्यंजन—सब बावन (५२) वर्णमात्रायें उदय हुईं जिनमें अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः तथा क, ख, ग, घ, ङ, ह, क्ष—ये तेईस कंठ से उत्पन्न हुए ॥३॥ च, छ, ज, झ, ञ ये तालू या शून्य से प्रकट हुए, और ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न—ये दश जिह्वा और दंत के सहारे से प्रकट होने के कारण जिह्वा के पुत्र कहलाये ॥४॥

पाँच अधर अधरहिमा रहे। शून्यहि कंठसम मध्यहि वहे ॥५॥
ओठ कंठ लें प्रगटे ठौर। बोलन लागैं और की और ॥६॥

शब्दार्थ — अधर = ओष्ठ। शून्यहि = सुलभ।

भावार्थ — प, फ ब, भ, म—ये पाँच ओष्ठ से उच्चरित अक्षर ओष्ठ के आधार में ही रहते हैं; और य, र, ल, व, श, ष, स ये सब सुलभ (सहज ही) उत्पन्न होकर कंठ में बहते हैं ॥५॥ इस प्रकार मुख्य रूप से ओष्ठ और कंठ के बीच में सभी स्वर-व्यंजन एवं वाणियाँ प्रकट होती हैं। उनको लेकर मनुष्य बिना विवेक के अन्यका अन्य ही बकने लगता है ॥६॥

साखी-- एक शब्द समुदाय जो, जामें चारि प्रकार।
काल शब्द संधि शब्द, झाँईं औ पुनि सार ॥९॥

शब्दार्थ — समुदाय = अनेक शब्दों का समूह।

भावार्थ — असंख्य शब्दों की एक सामूहिकता में शब्दों के मुख्य चार भेद (वर्गीकरण) किये जा सकते हैं। वे हैं कालशब्द, संधिशब्द, झाँईं शब्द और सार-शब्द ॥९॥

१०६ -- काल, संधि, झाँई शब्दोंके स्वरूप

रमैनी-१०

पाँच तीन नौ छौ औ चार । और अठारह करैं पुकार ॥१॥
कर्म धर्म तीरथके भाव । ये सब काल शब्दके दाव ॥२॥

शब्दार्थ — पाँच=पाँच मात्रायें—अ, उ, म, अर्धचंद्र "ँ" और बिंदु "ं" तीन=सत, रज, तम। धर्म=ईश्वरोपासना। काल=कल्पना। दाव=दावँ, अवसर, स्थान।

भावार्थ — पाँच मात्रायें, तीनगुण, व्याकरण के नौ भाग, चार वेद और अठारहों पुराणों के कथन। कर्मकाण्ड, ईश्वरोपासना, तीर्थ, व्रतादि—यह सब कालशब्द एवं कल्पना वाणी के स्थान हैं ॥१, २॥

सोहं आतम ब्रह्म लखाव । तत्त्वमसि मृत्युंजय भाव ॥३॥
पंचकोश नौ कोश बखान । सत्य झूठमें कियो अनुमान ॥४॥
ईश्वर साक्षी जाननिहार । ई सब संधिक कहै विचार ॥५॥

शब्दार्थ — मृत्युंजय=मृत्यु को जीतने वाला; शिव; शिवका एक अकालमृत्यु निवारक मंत्र। पंचकोश=अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय, विज्ञानमय, शब्दमय, प्रकाशमय, आनन्दमय तथा आकाशमय—इन चारों को मिला देने से पंचकोश नौकोश हो जाते हैं।

भावार्थ — सोऽहम्, आत्मा और ब्रह्म के परिचायक शब्द तत्त्वमसि को मृत्युसे परे बताने का भाव ॥३॥ पंचकोशों तथा नौकोशों का वर्णन जिसमें सत्य जीव ने तमाम झूठी बातों का अनुमान कर रखा है ॥४॥ सर्वत्र व्यापक आत्मारूपी ईश्वर सबका द्रष्टा है—यह सब मान्यता संधिशब्द का कथन या विचार है ॥५॥

कारण कारज जहाँ न कोय । मिथ्याको मिथ्या कहि सोय ॥६॥
बैन चैन नहिं मौन रहाय । ई सब झाँई दीन्ह भुलाय ॥७॥

शब्दार्थ — बैन=वाणी। चैन=विश्रांति।

भावार्थ — जहाँ कारण और कार्य कुछ नहीं है; जगत को मिथ्या मानकर उसे मिथ्या ही कहते हैं ॥६॥ जहाँ बोलने में विश्रांति न मानकर मौन रहा जाता है—ये सब अद्वैतब्रह्म का भाव झाँई है जो व्यक्ति को भुला देने वाला है ॥७॥

विशेष — झाँई में जड़-चेतन विधि-निषेध नहीं रहते। इसमें सबकुछ एक माना जाता है।

कोइ काहुका कहा न मान । जो जेहि भावै तहाँ अरुझान ॥८॥
परे जीव तेहि यम की धार । ज्यों लों पावै शब्द न सार ॥९॥

जीव दुसह दुख देखि दयाल । तब प्रेरी प्रभु परख रिसाल ॥१०॥

शब्दार्थ -- अरुझान = फँसा । यम = वासना; अज्ञान । रिसाल = रसाल, रसयुक्त, मीठा, सत्योपदेश, पारखज्ञान ।

भावार्थ -- काल, संधि और झाँईं की वाणियों में पड़कर कोई किसी का कहा नहीं मानता है । जिसको जहाँ अच्छा लगता है । वह वहीं अपने को फँसा बैठता है ।।८।। फिर उसी अज्ञान की धारा में जीव तब तक पड़े रहते हैं जब तक सारशब्द नहीं पाते हैं ।।९।। दयालु सद्गुरु ने जीवों का अज्ञानजनित असहनीय दुःख देखकर अमृतमय पारखज्ञान का उपदेश किया ।।१०।।

साखी--परखावै प्रभु एकको, जामें चार प्रकार ।
काल संधि झाँईं लखी, लखी शब्द मत सार ॥१०॥

शब्दार्थ — प्रभु = सद्गुरु ।

भावार्थ — सद्गुरु उस एक सामूहिक वाणी की परख कराते हैं जिसमें चार भेद हैं । सद्गुरु की कृपासे शिष्य काल, सन्धि और झाँईं की बन्धनरूपता को परख कर कल्याणकारक सारशब्द भी परख लेता है ।।१०।।

विशेष — गुरुबोध के अंत में सारशब्द का निर्णय आया है । संक्षिप्त में निर्णय वाणी को सारशब्द कहते हैं ।

१०७–भ्रम के प्राबल्य पर विचार

रमैनी–११

प्रथमें एक शब्द आरूढ़ । तेहि तकि कर्म करै बहु रूढ़ ॥१॥
ब्रह्म भरम होय जगमें पैठा । निर्मल होय फिरत बहु ऐठा ॥२॥

शब्दार्थ — आरूढ़ = दृढ़ । पैठा = प्रवेश किया । ऐठा = ऐठन, अहंकार ।

भावार्थ — मनुष्य पहले काल, संधि, झाँईं में से किसी एक शब्द को अपनाकर उसी में दृढ़ हो जाता है । बस वह भोला व्यक्ति उसी को देखकर उसी के अनुसार अनेक कर्म करने लग जाता है ।।१।। ब्रह्म की मान्यता भ्रमरूप बनकर संसार के लोगों में प्रवेश कर गयी है और लोग शब्दों के जोर से अपने को निर्मल, निर्लिप्त ब्रह्म मानकर अहंकारी बने घूमते हैं ।।२।।

भरम सनातन गावै पाँच । अटकि रहै नर भवकी खाँच ॥३॥
आगे पीछे दहिने बाँय । भरम रहा चारिउ दिश छाँय ॥४॥

शब्दार्थ — सनातन = अनादि से । पाँच = शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध– पाँच विषय । खाँच = जाल ।

भावार्थ — पाँच विषयों में सुख का भ्रम अनादिकाल का कहा जाता है। इसी से प्राणी जन्म-मरण के जाल में भटक रहे हैं ॥३॥ मनुष्य के आगे और पीछे, दाहिने तथा बायें चारों ओर से भ्रम ने घेर रखा है ॥४॥

पैठि भरम नर भये उदास। घरको त्यागि फिरत बनवास ॥५॥
भरम बढ़ी शिर केश बढ़ाये। तके गगन कोइ बाँह उठाये ॥६॥
दै तारी कर नासा गहै। भरमिक गुरु बतावै कहै ॥७॥
भरम बढ़ी अरु घूमन लागै। बिन गुरु परचै कहु को जागै ॥८॥

शब्दार्थ — तारी = समाधि, ध्यान; मुद्रा। परचै = परख।

भावार्थ — मनुष्य के मन में यह भ्रम घुसा कि मेरा लक्ष्य मुझसे पृथक है, अतएव वे उसके पाने के लिये उदासीन रहने लगे; और घर को छोड़कर तथा बनवासी बनकर घूमने लगे ॥५॥ व्यक्ति में और अधिक भ्रम बढ़ा तो वह सिर के केश बढ़ा लिया। कोई ईश्वर को पाने के लिये आकाश को एकटक देखने लगा तथा कोई एक हाथ ऊपर उठाकर तपस्या करने लगा ॥६॥ कोई नासिकादि पकड़ कर प्राणायाम साधने तथा ध्यान, समाधि लगाने लगा, क्योंकि भ्रमिक गुरु लोग यही सब बातें बताते और कहते हैं ॥ ७ । इस प्रकार संसार में अनेक भ्रम बढ़ा और उसमें पड़कर सब जीव भटकने लगे। बिना पारखी सद्गुरु द्वारा पारख प्राप्त हुए कहो भला कौन इस भ्रम से सावधान हो सकता है ? ॥८॥

साखी—कहहिं कबीर पुकारिके, गहहु शरण तजिमान।
परखावै गुरु भरमको, खानि बानि सहिदान ॥११॥

शब्दार्थ — खानि = मोटी माया। बानि = झीनी माया। सहिदान = लक्षण, पहिचान।

भावार्थ — सद्गुरु कबीर स्पष्ट करके कहते हैं कि हे मनुष्यो ! सब अभिमान को छोड़कर तुम उन सद्गुरु की शरण ग्रहण करो जो सभी भ्रमों तथा मोटी-झीनी माया के जहाँ तक लक्षण हैं उनको परखा कर छुड़ाते हैं ॥११॥

रमैनी–१२

भरमे जीव परमातम माया। भरम देह औ भरम निकाया ॥१॥
अनहद भरम औ ज्योति प्रकाश। आदि अंत लौं भरमहि भास ॥२॥
इत उत करै भरम निर्मान। भरम मान औ भरम अमान ॥३॥

शब्दार्थ — निकाया = सम्पूर्ण। अनहद = अनाहतनाद, कान को बंद करके खोपड़ी मे सुनी गयी नसों की झन्कारें। मान = जगत। अमान = ब्रह्म।

भावार्थ — यह जीव परमात्मा को अपने से पृथक मानकर भटकता है। जीव ने जहाँ तक अपना मान रखा है वह मन का मोह रूपी माया, शरीर तथा सम्पूर्ण प्रपंच भ्रम है ॥१॥ खोपड़ी में सुनायी देता हुआ अनाहतनाद, नेत्र या त्रिकुटी आदि का ज्योति प्रकाश सब भ्रम है। यहाँ तक मनुष्य अपने जीवन के आरम्भ से अंत तक भ्रम और भास में ही भटकता है ॥२॥ मनुष्य यत्र-तत्र-सर्वत्र भ्रम की ही रचना करता है। जगत का सम्बन्ध और उसकी मोह-ममता भ्रम है और अग-जग व्यापक ब्रह्म की कल्पना भी भ्रम है ॥३॥

कोहं जगत कहाँ ते भया। ई सब भरम अति निर्मया ॥४॥
प्रलय चारि भ्रम पुण्य औ पाप। मंत्र जाप पूजा भ्रम थाप ॥५॥

शब्दार्थ — **कोहं**=कोऽहम्, मैं कौन हूँ? **प्रलय चारि**=नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, विश्वप्रलय, महाप्रलय। **थाप**=स्थापन, निश्चय।

भावार्थ — मैं कौन हूँ तथा जगत कहाँ से निर्मित हुआ है?—यह सब अत्यन्त भ्रम खड़े हैं ॥४॥ चार प्रलयों की मान्यता में भी काफी भ्रम है। धर्मशास्त्रों के अनुसार पाप-पुण्य के निर्धारण में भी काफी भ्रम है। कल्पित ऋद्धि-सिद्धि आदि की प्राप्ति के लिये मंत्रों का जप तथा प्रतिमादि पूजा आदि सब भ्रम है ॥५॥

विशेष — मैं अविनाशी शुद्ध चेतन हूँ। जगत अनादि, अनंत और स्वत: है। नित्य प्रलय रोज सो जाना है। नैमित्तिक प्रलय तो केवल भ्रम ही है। उसे माना है कि सौ वर्षों तक वृष्टि नहीं होती, और बारह सूर्य तीनों लोकों को दग्ध करते हैं,— और अंतत: मेघ सौ वर्षों तक वृष्टि करके विश्व को जलमग्न कर देते हैं। विश्वप्रलय किसी ब्रह्माण्ड का शून्य हो जाना है तथा महाप्रलय समस्त ब्रह्माण्डों का सर्वथा शून्यत्व है जो एक कल्पना की उड़ान होने से महाभ्रम है।

मनु आदि धर्म शास्त्रों में यज्ञादि में पशु आदि मारना भी पुण्य माना है तथा यज्ञ में मारे गये पशु का मांस न खाना पाप माना है। ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहाँ पर पाप और पुण्य के निर्धारण में काफी भ्रम है। मंत्रजप तथा अनेक प्रकार की जड़-पूजाओं से सिद्धि व कल्याण मानना भ्रम है।

साखी—बाप पूत दोउ भरम हैं, आध कोश नौ पाँच।
बिनु गुरु भरम न छूटै, कैसे आवै साँच ॥१२॥

शब्दार्थ — बाप=अंशी ब्रह्म। पूत=अंश जीव। आध=अर्धमात्रा तुरीय ब्रह्म की साक्षी दशा। **कोश नौ**=नौ कोश—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय, विज्ञानमय, शब्दमय, प्रकाशमय, आकाशमय तथा आनन्दमय। **पाँच** = पाँच विषय।

भावार्थ — ब्रह्म पिता तथा जीव उसका पुत्र मानना महाभ्रम है, अर्धमात्रा ब्रह्म की साक्षी दशा मानना, नौ कोश तथा पाँच विषयों में अहंता-ममता करना भ्रम है।

बिना यथार्थ सद्गुरु से सत्योपदेश पाये मनुष्य का भ्रम नहीं छूट सकता और भ्रम छूटे बिना सच्चाई कैसे आ सकती है ? ॥१२॥

साखी—बाट बाट सब भरम है, माया रची बनाय ।
भेद बिना भरमै सकल, गुरु बिन कहाँ लखाय ॥१३॥

शब्दार्थ — बाट बाट = प्रत्येक मार्ग । बनाय = अच्छी तरह ।

भावार्थ — मनुष्य के प्रत्येक मार्ग में भ्रम फैला है क्योंकि उसने स्वरूप भूलवश अच्छी तरह माया का जाल बना कर उसमें अपने आप को उलझा लिया है । भ्रम एवं बंधनों का रहस्य जाने बिना सब जीव उन्हीं में पड़े भटक रहे हैं । मनुष्य को, बिना यथार्थ सद्गुरु की शरण पाये सब भ्रमों की परख कहाँ हो सकती है ? ॥ १३ ॥

रमैनी-१३

कलमा वाँग निमाज गुजारे । भरम भई अल्लाह पुकारे ॥ १ ॥
अजब भरम एक भई तमाशा । अल्लाह मकान बेचून नेवासा ॥ २ ॥
बेनमून वे सबसे पारा । आखिर ताको करे दिदारा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ — कलमा = वह वाक्य जो मुसलमानों के धर्मविश्वास का मूल मंत्र है—'ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मद रसूलिल्लाह' अर्थात अल्लाह के समान दूसरा नहीं, मुहम्मद अल्लाह का भेजा हुआ है । वाँग = अजान । बेचून = अदृश्य । बेनमून = अद्वितीय, बेजोड़ । दिदारा = दीदार, दर्शन ।

भावार्थ — लोगों को यह भ्रम हुआ कि जगतकर्ता कोई अल्लाह है; अतएव वे उसको लक्ष्य रखकर कलमा पढ़ने लगे; वाँग देने तथा नमाज गुजारने लगे और इस प्रकार अल्लाह को पुकारने लगे ॥ १ ॥ एक आश्चर्यजनक भ्रम का तमाशा हुआ और कहने लगे कि अल्लाह का मकान आकाश में अदृश्य रूप से है जो बिना चुने एवं बिना निर्माण के है ॥ २ ॥ वह अल्लाह बेजोड़ तथा सबसे परे हैं, फिर रोजकयामत (प्रलय) के दिनों में उसके दर्शनों की भी इच्छा रखते हैं ॥ ३ ॥

रगरे नाक मसजीद अचेत । नींदें बूत परसते हेत ॥ ४ ॥
बावन तीस वर्ण निरमान । हिंदू तुरुक दोऊ भरमान ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—बूत = बुत, मूर्ति । परस = फर्श, दरी आदि बिछावन, जमीन; कब्र ।

भावार्थ — कुछ लोग ऐसे हैं जो स्वयं असावधान होकर अल्लाह को पाने के लिये मसजिद के फर्श पर प्रेमविह्वलता में नाक रगड़ते एवं कब्र पूजते हैं और हिंदुओं की मूर्तिपूजा की निंदा करते हैं ॥ ४ ॥ हिन्दू बावन वर्णों में तथा मुसलमान तीस हरफों में अनेक अनुमान-कल्पना की बातें लिख, पढ़ एवं बोलकर भटक रहे हैं ॥ ५ ॥

विशेष — नागरीलिपि के बावन वर्णों का वर्णन ऊपर कई बार आचुका है। फारसी लिपि में मुख्य तीस वर्ण होते हैं जिनमें चार वर्णों में एक-एक अवांतर वर्ण करके चौंतीस (३४) हो गये हैं, वे ये हैं—अल्लिफ, बे, पे, ते, टे, पे, जीम, चे, हे, खे, दाल, डाल, जाल, रे, डे, जे, सीन, शीन, स्वाद, ज्वाद, तोय, ज़ोय, ऐन, ग़ैन, फे, काफ, क़ाफ, गाफ, लाम, मीम, नून, वाव, हे, ये।

साखी – भरमि रहा सब वर्णमों, हिंदू तुरुक बखान।
कहहिं कबीर पुकारिके, बिन गुरु को पहिचान ॥१४॥

शब्दार्थ — वर्ण = अक्षर, शब्द जाल।

भावार्थ — हिंदू, मुसलमान तथा अन्य अनेक जाति, धर्म के नामों से कहे जाने वाले सब लोग शब्द जाल में पड़कर भटक रहे हैं। सद्गुरु कबीर स्पष्ट करके कहते हैं कि बिना पारखी सद्गुरु का सत्योपदेश प्राप्त हुए शब्दजाल की परख कौन कर सकता है? ॥ १४ ॥

रमैनी-१४

भरमत भरमत सब भरमाने। राम सनेही कोइ बिरला जाने ॥ १ ॥
त्रिदेवा सब खोजत हारे। सुरनर मुनि नहिं पावत पारे ॥ २ ॥
थकित भये तब कहै बेअंता। बिरहिनि नारि रही बेकंता ॥ ३ ॥
कोटिन तर्क करै मन माहीं। दिलकी दुविधा कतहुँ न जाहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — राम = अपना चेतन स्वरूप। बिरहिनिनारि = पति परमात्मा के उपासक। बेकंता = पतिरहित। तर्क = दलील।

भावार्थ — संसार के सब जीव भ्रमते आये हैं और भ्रम रहे हैं। कोई बिरला ही स्वरूपज्ञान का प्रेमी भ्रम की वास्तविकता को जानकर उससे बचता है ॥ १ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सुर, नर, मुनि आदि सब परमात्मा की खोज करके हार गये, परन्तु वे अपनी कल्पना का पार नहीं पाये ॥ २ ॥ थक जाने पर उसे अपार कहकर रह गये। इस प्रकार कल्पित पति परमात्मा के उपासक पतिपरमात्मा से रहित ही रह गये ॥ ३ ॥ यद्यपि वे मन में उसके लिये करोड़ों दलीलें करते हैं और उनमें से कइयोंको उसकी सत्तामें संदेह भी होता है, परन्तु उनके मनकी दुविधा दूर नहीं होती।

विशेष — संस्कृतजगत के महानविद्वान 'उदयन' (९४८ ईस्वी) जो ईश्वर के महान समर्थक थे जब आपने यह अनुभव किया कि आपकी भक्ति के उत्तर में ईश्वर आपके ऊपर कोई कृपा नहीं करता तब आप बोल पड़े—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्तसे।
पराक्रांतेषु बौद्धेषु मदधीना तव स्थितिः ॥

अर्थात अपनी शक्ति के अहंकार में तुम मेरी अवहेलना करते हो जबकि (अनीश्वरवादी) बौद्धों का जोर होने पर तुम्हारी सत्ता मुझपर ही निर्भर करती थी ।

(राधाकृष्णन-भारतीय दर्शन, पृ० ३०)

कोई नख शिख जटा बढ़ावै । भरमि भरमि सब जहाँ तहाँ धावै ॥५॥
बात न सूझै भई अंधेरी । होय रही बानीकी चेरी ॥६॥
नाना पंथ वर्णि नहिं जाई । नाम जाति गुण कर्म बड़ाई ॥७॥
रैन दिवस वै ठाढ़ैं रहहीं । वृक्ष पहाड़ काहे नहिं तरहीं ॥८॥

शब्दार्थ — **चेरी** = दासी, तात्पर्य में दास, गुलाम ।

भावार्थ — कोई नाखून, केश और जटाजूट बढ़ा लेता है और भ्रम-भ्रमकर यत्र-तत्र तीर्थों में भटकता है ॥५॥ बातों की वास्तविकता नहीं समझ पड़ती, मनुष्यों के हृदय में अज्ञान की घोर अँधियारी छायी है । लोग आँखें मूँदकर वाणी के गुलाम हो रहे हैं ॥६॥ संसार में अनेक सम्प्रदाय हैं जिनका एकत्र वर्णन कर पाना कठिन है । अधिकांशतः लोग नाम, जाति, गुण, कर्म और मान-बड़ाई के घमंड में भूले हैं ॥७॥ कितने लोग ऐसे हैं जो भगवान को पाने के लिये रात दिन खड़े रहते हैं, परन्तु यदि खड़ा रहने से उद्धार हो जाय तो पेड़-पहाड़ क्यों नहीं तर जाते हैं ? ॥८॥

साखी—खसम न चीन्है बावरी, परे पुरुष लौलीन ।
कहहिं कबीर पुकारिके, परी न बानी चीन्ह ॥१५॥

शब्दार्थ — **खसम** = पति, अपना चेतनस्वरूप । **बावरी** = पगली, ईश्वरोपासक । **परे** = अपने से पृथक ।

भावार्थ — उन्मत्त कल्पित ईश्वरोपासक लोग अपने चेतन-स्वरूप को नहीं पहचानते जो सबको कल्पना करने वाला होने से सबका पति है; प्रत्युत अपने से पृथक कोई पुरुष मानकर उसी के ध्यान में मग्न रहना चाहते हैं । सद्गुरु कबीर स्पष्ट करके कहते हैं कि ऐसे लोगों को वाणी की वास्तविकता की परख नहीं हुई है ॥१५॥

रमैनी-१५

कनरसकी मतवाली नार । कुटनिन से खोजै लगवार ॥१॥
कुटनी आँखिन काजर दीऊ । लगी बतावन ऊपर पीऊ ॥२॥
काजर देके होय गई अंधी । समुझि न परी बातकी संधी ॥३॥

शब्दार्थ — **कनरस** = कान का रस-शब्द जाल । **नार** = उपासक । **लगवार** = जारपति, कल्पित पति । **कुटनी** = जीव को स्वरूपसे पृथक कल्पित पति में लगाने वाले भूले गुरु । **संधी** = संधि, कसर ।

भावार्थ — उपासक लोग शब्दजाल के रसिक होते हैं वे भूले गुरुओं के सहारे से कल्पित पति की खोज करते हैं ।।१।। भ्रमिक गुरुलोग अपने और शिष्योंके हृदयनेत्रों में अंधश्रद्धा का काजल लगा देते हैं और ऊपर आकाश में पति परमात्मा का संकेत करते हैं ।।२।। वस्तुतः वे उक्त कज्जल लगाकर विवेकरहित हो जाते हैं । उनको वाणी-जाल की कसर समझ में नहीं आती ।।३।।

बाजै कुटनी मारै मटकी । ई सब छिनरों तामें अटकी ।।४।।
विरहिन होयके देह सुखावै । कोई शिरमें केश बढ़ावै ।।५।।
मानि मानि सब कीन्ह सिंगारा । बिनु पिया परसे सबै अंगारा ।।६।।

शब्दार्थ — बाजै = वाद विवाद करना । मटकी = मटकाना, हाथ, भौं, आँख आदि को किसी विशेष संकेत में चालित करना, संकेत से आकाशादि में ईश्वर बतलाना ।

भावार्थ — भ्रमिक गुरु लोग ईश्वर के लिये वाद-विवाद करते हैं और उसका आकाशादि में संकेत करते हैं, और ये सब जो अपने स्वरूपज्ञान से रहित पर-पति की कल्पना में भूले हैं उन्हीं की वाणी जाल में फँसे रहते हैं ।।४।। कोई तो कल्पित पति की विरह में विरहिनी बनकर अपने शरीर को सुखाता है और कोई अपने सिर पर जटाजूट बढ़ाता है ।।५।। ये सब केवल मनसे परमात्मापति की कल्पना करके उस पर श्रृंगार करते हैं, परन्तु बिना उसका स्पर्श पाये यह सब अग्नि तुल्य जलाने वाला ही है ।

विशेष — उपासकों का सारा श्रृंगार एवं प्रयत्न विफल जाता है क्योंकि अपने स्वरूप से पृथक परमात्मा नाम की वस्तु नहीं है ।

साखी–अटकी नार छिनार, सब हरदम कुटनी द्वार ।
खसम न चीन्हें बावरी, घर घर फिरत खुवार ।।१६।।

शब्दार्थ — अटकी = फँसी, उलझी । खसम = पति, स्वस्वरूप । खुवार = ख्वार, दुखी ।

भावार्थ — पर पति की कल्पना में सभी उपासक लोग भ्रमिक गुरुओं की संगति में उलझे हुए हैं । वे उन्मत्त लोग स्वस्वरूप चेतन को नहीं पहचानते, फलतः नाना मतों के जाल में दुःखी होकर भटकते हैं ।।१६।।

रमैनी–१६

नौ दरवाजा भरम बिलास । भरमे बावन बहै बतास ।।१।।
कनउज बावन भूत समान । कहल गाँव सो प्रथम उड़ान ।।२।।

शब्दार्थ — नौ दरवाजा = दो कान, दो नाक, दो आँख, मुख, गुदा और

उपस्थ। वतास=वायु; वासना। कनउज=कान। कहल=कथन, प्रवचन। गाँव=मुख, स्थान।

भावार्थ — शरीर के नौ द्वारों से जितने भोग-विलास किये जाते हैं सब भ्रम को ही दृढ़ करने वाले हैं। बावन अक्षरों में असंख्य शब्दों का संयोजन होकर उसमें भी काफी भ्रमवायु एवं बवंडर बहता है ॥१॥ लोगों के कानों में वे शब्दभूत समाये जो भ्रमिकों के प्रवचनस्थल-मुख से पहले निकल कर उड़े ॥२॥

माया ब्रह्म जीव अनुमान। मानतहीं मालिक बौरान ॥३॥
अकबक भूत बकै परचंड। व्यापि रहा सकलों ब्रह्मंड ॥४॥

शब्दार्थ — मालिक=जीव। अकबक=अंडबंड बातें; प्रलाप।

भावार्थ — माया और ब्रह्म—दोनों जीवकी कल्पनायें हैं। माया और ब्रह्म में अहंता-ममता करते ही स्वामी जीव बौखला जाता है ॥३॥ लोगों के मन पर चढ़ा हुआ कल्पना का भूत असम्बद्ध प्रलाप करता है, और सम्पूर्ण मनुष्यों के मनमें व्याप्त है ॥४॥

ई भ्रमभूत की अकथ कहानी। गोतै जीव जहाँ नहिं पानी ॥५॥
तनिक तनिक पर बौरे दौरा। जहाँ जाय तहाँ पावै न ठौरा ॥६॥

शब्दार्थ — अकथ=न कहने योग्य। गोतै=गोता या डुबकी लगाना, खोजना। बौरे=पगले। ठौरा=स्थित।

भावार्थ — मनुष्यों के मनमें लगे हुए इस भ्रम रूपी भूतकी कथा न कहने योग्य एवं महा अज्ञानपूर्ण है। यह मनुष्य वहाँ पर डुबकी लगाता है जहाँ पर पानी की बूँद नहीं है। अर्थात वह वहाँ अपना लक्ष्य खोजता है जहाँ उसका सर्वथा अभाव है ॥५॥ ये पगले मनुष्य जरा-जरा से कल्पित चमत्कार की बातों पर स्वार्थसिद्धि के लिये दौड़ पड़ते हैं और अपने को ठगाते हैं; परन्तु मनुष्य अपने चेतनस्वरूप का बोध एवं स्थिति छोड़कर जहाँ-जहाँ जायगा वहाँ स्थिति नहीं पा सकेगा ॥६॥

साखी—योगी रोगी भक्त बावरा, ज्ञानी फिरै निखट्टू।
संसारी को चैन नहीं है, ज्यों सराय का टट्टू ॥१७॥

शब्दार्थ — बावरा=पागल। निखट्टू=जो कहीं न टिके; जिससे कुछ करते-धरते न बने; निकम्मा। सराय=मुसाफिरखाना, तात्पर्य में बाजार। टट्टू=एक छोटा कद का घोड़ा।

भावार्थ — योगी लोग अनेक भ्रामक विचारों के रोगी होते हैं, भक्तलोग श्रद्धातिरेक में पड़कर पागल होते हैं, शुष्कज्ञानी लोग निकम्मे बने घूमते हैं और संसारासक्त लोगों को बाजार के टट्टू के समान विश्रांति नहीं है (फिर सारासार विवेचन कौन करे ?) ॥१७॥

रमैनी-१७

इत उत दौरैं सब संसारा । छुटै न भरम कियो उपचारा ॥१॥
जारे जीवको बहुरि जरावै । काटे ऊपर लोन लगावै ॥२॥

शब्दार्थ — उपचारा = उपचार, चिकित्सा, पूजानुष्ठान, प्रार्थना ।

भावार्थ — संसार के सब लोग यत्र-तत्र दौड़ते हैं, परन्तु अनेक पूजा-प्रार्थना करते हुए भी उनके भ्रम नहीं छूटते ॥१॥ मोह-माया में जले हुए जीव को भ्रांतियों में डालकर और जलाते हैं, मानो वे कटे हुए अंगों पर नमक छिड़कते हैं ॥२॥

योगिनकी ऐसी हाल बनाई । उलटी बत्ती नाक चलाई ॥३॥
कोइ विभूति मृगछाला डारे । अगम पंथकी राह निहारे ॥४॥
काहूको जलमाहि सुतावै । कहरत ही सब रैन गमावै ॥५॥

शब्दार्थ — हाल = दशा । अगम पंथ = अगम्य एवं लापता ब्रह्म को पाने का रास्ता । कहरत = कहरना, कराहना ।

भावार्थ — योगियों ने तो अपनी ऐसी दशा बना रखी है कि नाक में उलटी बत्ती चलाते तथा शरीर को नाना कष्ट देने में ही लगे रहते हैं ॥३॥ कोई शरीर पर राख लगा रखा है तो कोई मृगचर्म डाल रखा है । वे सब अगम्य ब्रह्म को पाने का रास्ता खोजते हैं ॥४॥ वे किसी को तो जलशयन का उपदेश देते हैं जो रात भर पानी में पड़ा-पड़ा कराहता और समय काटता है ॥५॥

भक्ति नार सब कीन्ह सिंगारा । बिनु पिया परचै सबै अंगारा ॥६॥
एकै गर्भ ज्ञान अनुमाना । नारि पुरुष का भेद न जाना ॥७॥
संसारी कहुँ कल न पावै । कहरत जग में जीव गमावै ॥८॥

शब्दार्थ — कल = विश्रांति । कहरत = कराहते ।

भावार्थ — कितने लोग भक्तिभाव धारण करके अपने को भगवान की पत्नी मानते हैं और वे सब भक्ति का अनेक श्रृंगार करते हैं । परन्तु यदि पति का स्पर्श न पाये तो स्त्री के सारे श्रृंगार उसको जलाने वाले दुःखदायी ही हैं । इसी प्रकार अपने चेतनस्वरूप से पृथक पतिपरमात्मा कोई वस्तु न होने से वह मिलता नहीं, अतः भक्तों के श्रृंगार उनके दुःख के ही कारण बनते हैं ॥६॥ एक ब्रह्मज्ञानमार्ग है जो अहंकार-पूर्ण तथा अनुमित है, वहाँ नर-नारी, प्रकृति-पुरुष मे भेद नहीं माना जाता, वहाँ सब धान साढ़े बाइस पसेरी है ॥७॥ मोहासक्त संसारी लोग तो कहीं विश्रांति ही नहीं पाते और वे शोक में कराहते ही जीवन व्यतीत करते हैं ॥८॥

चारि दिशा सो मंत्री झारे । लिये पलीता मोलना हारे ॥ ९ ॥
झरै न भूत बड़ो बरियारा । काजी पंडित पढ़ि पढ़ि हारा ॥१०॥

इन दोनों पर एकै भूत। झारेंगे क्या माके पूत ॥११॥

शब्दार्थ — मंत्री = मंत्र का ज्ञाता पंडित-काजी। पलीता = यंत्र लिखा हुआ कागज जिसे बत्ती की तरह बनाकर जलाते हैं, तात्पर्य में धर्मशास्त्र। पूत = पुत्र, दास, गुलाम।

भावार्थ — धर्मशास्त्रों के मंत्रों के ज्ञाता कर्मी, उपासक, योगी और ज्ञानी— ये चारों दिशाओं से धर्मशास्त्र रूपी पलीता हाथ में लेकर मनुष्यों के मन का भ्रमभूत झाड़ने लगे, परन्तु मौलवी और पंडित थक गये ॥९॥ काजी और पंडित यद्यपि मंत्र पढ़-पढ़ कर हार गये हैं, परन्तु मनुष्यों का भ्रमभूत दूर नहीं होता, क्योंकि वह बड़ा प्रबल है ॥१०॥ काजी और पंडित से लोगों के भ्रमभूत दूर भी कैसे हों, क्योंकि इन दोनों पर भी तो वही भ्रमभूत खेल रहा है। फिर ये माया के गुलाम दूसरे के भ्रम को क्या दूर करेंगे ॥११॥

साखी--भूत न उतरे भूत सो, संतो करो विचार।
कहहिं कबीर पुकारिके, बिनु गुरु नहिं निस्तार ॥१८॥

शब्दार्थ — भूत = भ्रम।

भावार्थ — हे संतो ! विचार करो, भ्रमिकों से दूसरे का भ्रम दूर नहीं हो सकता। सद्गुरु कबीर स्पष्ट कहते हैं कि बिना यथार्थ सद्गुरु का आश्रय लिये मनुष्य का कल्याण नहीं होता ॥१८॥

परम प्रकाश भास जो, होत प्रौढ़ विशेष।
तद प्रकाश संभव भई, महाकाश अवशेष ॥१९॥

शब्दार्थ — भास = प्रतीत, दृश्य, जड़। तद = उस। संभव = उत्पन्न। महाकाश = अनंतआकाश वत ब्रह्म। अवशेष = बचा हुआ।

भावार्थ — मनुष्य के मन में जो कुछ दृश्य कल्पना खड़ी हुई उसे ही वह परम प्रकाश माना और उसी कल्पना को विशेष मजबूत कर लिया। उसी काल्पनिक प्रकाश से अवशिष्ट अनंताकाश ब्रह्मानुभव की उत्पत्ति हुई ॥१९॥

झाँई संभव बुद्धि ले, करै कल्पना अनेक।
सो प्रकाशक जानिये, ईश्वर साक्षी एक ॥२०॥

शब्दार्थ — झाँई = धोखा।

भावार्थ — मनुष्य धोखे से उत्पन्न हुई बुद्धि के आधार पर अनेक कल्पनायें करता है। इसी बुद्धि के आधार पर जगत का एक प्रकाशक तथा साक्षी ईश्वर की मान्यता उत्पन्न हुई समझनी चाहिये ॥२०॥

विषय भई संकल्प जब, तदाकार सो रूप।
महाँ अँधेरी भूल सो, परे अविद्या कूप ॥२१॥

शब्दार्थ — तदाकार = तन्मय। अविद्याकूप = अज्ञान का कूवाँ।

भावार्थ — अपने चेतन स्वरूप से पृथक जो कुछ भी है सब विषय हैं, जब मनुष्य उसका संकल्प करता है, तब उसी में तन्मय हो जाता है। इस प्रकार दृश्य में फँस जाना ही महान भूल की अँधियारी तथा अज्ञान कूयें में पड़ जाना है ॥२१॥

महातत्त्व त्रिगुण पाँच तत्त्व, समष्टि व्यष्टि परमान।
दोय प्रकार होय प्रगटे, खंड अखंड सो जान ॥२२॥

शब्दार्थ — महातत्त्व = महतत्त्व, प्रकृति का प्रथम विकार, बुद्धितत्त्व। समष्टि = सबका एकरूप, समवेतसत्ता। व्यष्टि = पृथक। दोयप्रकार = परा-अपरा, चित-अचित, जड़-चेतन।

भावार्थ — (वेदांतानुसार) समवेत सत्ता रूप ब्रह्म से व्यष्टि एवं विभिन्नतापूर्ण संसार प्रकट हुआ। ब्रह्म से मूल प्रकृति, मूल प्रकृति से महतत्त्व, उससे अहंकार, फिर तीनों गुण उत्पन्न हुए। सतोगुण से दश इन्द्रिय और चतुष्टय अंतःकरण के चौदह देवता, रज से दश इन्द्रियाँ, तम से पांच विषय तथा पांच विषय से पाँचतत्त्वों की उत्पत्ति मानकर विश्वरचना की कल्पना की है। इस प्रकार एक अखंड ब्रह्म से खंड एवं विभिन्नतापूर्ण जड़-चेतन की सृष्टि होना माना है ॥२२॥

१०८--अपने कल्पित भासको ही ब्रह्म मान लेने का वर्णन

रमैनी – १८

सदा अस्ति भासै निज भास। सोई कहिये परम प्रकाश ॥१॥
परम प्रकाश ले झाँईं होय। महदाकाश होय बरतै सोय ॥२॥

शब्दार्थ — अस्ति = सत्ता, सत्य। झाँईं = प्रतिबिंब; भास; धोखा।

भावार्थ — जो एकरस सत्य चेतन है उसे देहसम्बन्ध से मनमें कल्पनायें उठती हैं। उसी को वह परम प्रकाश मान लेता है ॥१॥ इस तथाकथित परम-प्रकाश को लेकर ही मनुष्य को धोखा होता है और वह धोखा मनुष्य के मनमें अनन्ताकाश वत ब्रह्म बनकर उपस्थित रहता है ॥२॥

विशेष — अपने चेतन स्वरूप से पृथक जहाँ तक मन से माने हुए परमप्रकाश, ब्रह्म आदि हैं सब भास एवं भ्रम हैं।

बरतै वर्तमान परचंड। भासत तुर्यातीत अखंड ॥३॥
काल संधि होय उश्वास। आगे पीछे अनबनि भास ॥४॥

शब्दार्थ — परचंड = तीव्र, महान । तुर्यातीत = तुरीय से परे परमहंस दशा । काल = कल्पना । संधि = कसर । अनवनि = अनेक ।

भावार्थ — भास-दृश्य को ही ब्रह्म मानकर वर्तमान में उसका तीव्र मनोभाव करते-करते ब्रह्मज्ञानी लोग तुरीय से परे अखंड परमहंसदशा के भास में पहुँच जाते हैं जहाँ विधि-निषेध का अंत मान लेते हैं ॥३॥ इस प्रकार मनुष्य जीवन में श्वास गति के साथ कल्पनाओं; कसरों एवं त्रुटियों में होकर गुजरता है; इसलिये उसके आगे-पीछे अनेक भास-अध्यास एवं भ्रम लगे रहते हैं ॥४॥

विविधि भावना कल्पित रूप । परकाशिक सो साक्षी अनूप ॥५॥
शून्य आज्ञा सुपुप्ति होय । अकुलाहट तेहि नाद है सोय ॥६॥

शब्दार्थ — अनूप = उपमारहित, विलक्षण । नाद = शब्द, ध्वनि; भारी शब्द, गर्जन ।

भावार्थ — मनुष्य के मन में अनेक ऐसी भावनायें उठती हैं जिसके स्वरूप सत्य के धरातल से सर्वथा दूर केवल कल्पित होते हैं । परन्तु उनका प्रकाश एवं कल्पना करने वाला स्वयं चेतन साक्षी और प्रकृति, मन आदि से विलक्षण है ॥५॥ (कहते हैं) सृष्टि के आरम्भ में सबकुछ शून्य, अज्ञात तथा सुषुप्ति वत था; फिर ब्रह्म को सृष्टि रचने के लिये बेचैनी हुई फिर उसकी प्रेरणा से आकाश में जोर से गर्जना हुई ॥६॥

नाद उद्वेग आकर्षण जान । तेज नीर प्रगटे तेहि आन ॥ ७ ॥
पानी पौन गाँठि परिजाय । देही देह धरै जग आय ॥ ८ ॥
सो कौवार शब्द परचंड । बहु व्यवहार खंड ब्रह्मंड ॥ ९ ॥

शब्दार्थ — देही = देह धरने वाला चेतन जीव । कौवार = कागारोल, हो-हल्ला ।

भावार्थ — उक्त भयंकर गर्जना के उद्वेग से वायु में आकर्षण उत्पन्न हुआ तब अग्नि और जल तत्त्व की उत्पत्ति हुई ॥ ७ ॥ पुनः रज-वीर्य रूप पानी तथा प्राणवायु रूप पवन की गाँठ पड़ गयी और जीव जगत में आकर देह धारण कर लिये ॥ ८ ॥ उपर्युक्त मान्यता का हो-हल्ला संसार में बहुत है और इसी की चर्चा प्रकार भेद से विश्व के कोने-कोने में है ॥ ९ ॥

साखी – जतन भयो निज अर्थको, जेहि छूटै दुख भूर ।
धूर परी जब आँखिमें, तब किमि सूझै निजमूर ॥२३॥

शब्दार्थ — जतन = यत्न, साधन । निज अर्थ = अपना प्रयोजन; कल्याण । भूर = भूरि, बहुत; तात्पर्य में सब । निजमूर = अपना स्वरूप ।

भावार्थ — मनुष्य सभी साधनायें अपने कल्याण के लिये करता है जिससे उसके सारे दुःख दूर हों। परन्तु जिसकी विवेक आँखों में अविद्या की धूल पड़ी हुई है उसको अपने स्वरूप का ज्ञान कैसे हो ? ॥ २३ ॥

१०९ – पारखज्ञान का मार्ग सर्वोत्तम

रमैनी – १८

पाँजी परख जबै फरियाय। तुरितहिं सबै विकार नशाय ॥ १ ॥
शब्द सुधारे रहै अकर्म। सौति भक्तके खोटे कर्म ॥ २ ॥

शब्दार्थ — पाँजी = मार्ग, पथ। फरियाय = फरियान, साफ या स्पष्ट होना सौतिभक्त = वह भक्त जो सौतियाडाह के समान नाना देवी-देवताओं की उपासना के पक्ष-विपक्ष में जलता हो।

भावार्थ — जिसे जब पारखज्ञान का मार्ग स्पष्ट हो जाता है तब उसके सारे दोष तुरंत नष्ट हो जाते हैं ॥१॥ मुमुक्षु को चाहिये कि वह सारासार शब्दों का विवेक करे और कर्मवासनाओं से निष्काम रहे; और नाना देवी-देवताओं के उपासकों के कर्म तो खोटे हैं ॥ २ ॥

काल जाल ज्यों लखी न आय। तौ लों निजपद नाहिं पाय ॥ ३ ॥
झाँईं संधि काल पहिचान। सारशब्द बिन गुरु नहिं जान ॥ ४ ॥

शब्दार्थ — निजपद = स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति।

भावार्थ — जब तक कल्पनाओं तथा अज्ञान के बंधन परख कर त्यागे नहीं जाते तब तक स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति नहीं मिलती ॥३॥ अतएव झाँईं, संधि, काल तथा सारशब्दों को पहचानो; परन्तु बिना यथार्थ सद्गुरु का आश्रय लिये इनका वास्तविक ज्ञान नहीं होता ॥ ४ ॥

परखै रूप अवस्था जाय। आन विचार न ताहि समाय ॥ ५ ॥
झाँईं संधि ले परखै जोय। संशय वाके रहै न कोय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ — आन = दूसरे। संशय = संदेह, अज्ञान।

भावार्थ — विवेकी पुरुष की सारी अवस्थायें मनकी परख तथा स्वरूपज्ञान की स्थिति में ही जाती हैं; उनमें दूसरे विचार नहीं प्रवेश करते ॥ ५ ॥ जो व्यक्ति झाँईं, संधि से लेकर काल तक की वाणियों को परख कर त्याग और सारशब्दों में अनुराग करता है उसके हृदय में कोई संदेह नहीं रह जाता ॥ ६ ॥

साखी – धन्य धन्य तारण तरण, जिन परखा संसार।
बंदीछोर कबीर सों, परगट गुरु विचार ॥२४॥

शब्दार्थ — तारण = दूसरे को तारने वाला। तरण = स्वयं तर जाने वाला।

भावार्थ — वही प्रशंसनीय, दूसरे का उद्धारक तथा स्वयं मुक्त रूप है जो संसार की वास्तविकता को परख कर सबसे अनासक्त हो गया है। बंदीमोचन सद्गुरु कबीर ने ऐसे श्रेष्ठ विचारों का उद्घाटन किया है ।। २४ ।।

११० – संधि के चक्कर

रमैनी – २०

शब्द संधि ले ज्ञानी मूढ़ । देह कर्म जगत आरूढ़ ।। १ ।।
नाद संधि ले सपना होय । झाँईं शून्य सुषुप्ति सोय ।। २ ।।

शब्दार्थ — संधि = संयोग, मेल। नाद = श्वास। सपना = उपासना मार्ग। सुषुप्ति = योग।

भावार्थ — ज्ञानी हो या मूढ़ काल एवं काल्पनिक शब्दों का सम्बन्ध लेकर और जागृति जगत में स्थित होकर स्थूल शरीर द्वारा कर्म करते हैं ।। १ ।। श्वास का सम्बन्ध लेकर स्वप्न होता है जिसमें उपासना मार्ग का वर्तमान होता है। अर्थात श्वास को साधकर लोग स्वप्नवत कल्पित ईश्वरादि का ध्यान या उपासना करते हैं। सुषुप्तिवत ज्ञान से शून्य योगसिद्धि है जो एक झाँईं या धोखा है ।। २ ।।

ज्ञान प्रकाशिक साक्षी संधि । तुर्यातीत अभास अबंधि ।। ३ ।।
झाँईं ले वर्ते वर्तमान । सो जो तहाँ परै पहिचान ।। ४ ।।

शब्दार्थ — अबंध = सीमारहित स्वच्छन्द।

भावार्थ — जो ज्ञान का प्रकाश साक्षीदशा तुरीय है वह झाँईं संधि एवं ज्ञान-मार्ग है। और तुरीय से भी अतीत दशा सब भासों से रहित और सीमातीत अनन्त माना है ।। ३ ।। उक्त जड़-चेतन अभिन्न की गाफिली दशा लेकर आज भी कितने लोग वर्तमान करते हैं। परन्तु वह जिसे पहिचान हो गयी है— ।। ४ ।।

काल इस्थितिके भास नशाय । प्रेम प्रकाश लक्ष बिलगाय ।। ५ ।।
बिलगै लक्ष अपन पौ जान । आपअपन पौ भेद न आन ।। ६ ।।

शब्दार्थ — काल = कल्पना; अज्ञान। अपन पौ = अपना स्वरूप भाव।

भावार्थ — उसके मन की स्थिति जो कल्पना व अज्ञान से पूर्ण थी वह नष्ट हो जाती है। क्योंकि उसको यथार्थ ज्ञान के प्रकाश में प्रेम हो जाता है, इसलिये उसका मन भवबंधनों से पृथक हो जाता है ।। ५ ।। वस्तुतः मनुष्य का मन तभी राग से सर्वथा मुक्त होता है जब वह अपने स्वरूप को ठीक से जान लेता है। स्वयं में और स्वयं स्वरूप में कोई भेद नहीं है। अर्थात मनुष्य का लक्ष्य उसका अपना शुद्ध स्वरूप चेतन है ।। ६ ।।

साखी—आप अपन पौ भेद बिनु, उलटि पलटि अरुझाय ।
गुरु बिन मिटै न दुगदुगी, अनबनि यतन नशाय ॥२५॥

शब्दार्थ — दुगदुगी = सन्देह । अनबनि = अनेक ।

भावार्थ — मनुष्य स्वयं अपने स्वरूप का रहस्य जाने बिना उलट-पलट कर भव-बन्धनों में ही फँसता रहता है । यथार्थ सद्गुरु के बिना मनुष्य के मनका सन्देह दूर नहीं होता; प्रत्युत वह अनेक उलटी साधनायें करके पतनपथ में ही जाता है ॥२५

रमैनी-२१

निज प्रकाश झाँईं सो जान । महा संधि माकाश बखान ॥१॥
सोई पाँजिले बुद्धि विशेष । परकाशिक तुर्या अवशेष ॥२॥

शब्दार्थ — महासंधि = महान कसर या त्रुटि । माकाश = महान आकाशवत ब्रह्म । पाँजि = मार्ग ।

भावार्थ — अपने ज्ञान के प्रकाश से उस झाँईं या धोखा को परखो जो महान त्रुटिपूर्ण आकाशवत ब्रह्म कहा गया है ॥१॥ जब मनुष्य उसी ब्रह्मज्ञानके मार्ग को बुद्धि में विशेष स्थान दे देता है, तब वह यही निश्चय करता है कि सबका प्रकाशक तुरीय दशा आरूढ़ अवशेष ब्रह्म है ॥२॥

विविधि भावना बुद्धि अनुरूप । विद्या माया सोई स्वरूप ॥३॥
सो संकल्प बसे जिव आप । फुरी अविद्या बहु संताप ॥४॥

शब्दार्थ — फुरी = प्रकट हुई, निकली ।

भावार्थ — मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक भावनायें करता है । सांसारिक विद्या माया का ही स्वरूप है ॥३॥ और उन्हीं मायिक संकल्पों में जीव हरक्षण निवास करता है; अतएव मनुष्य के हृदय में अज्ञान उत्पन्न होता है जिससे उसे अत्यंत दुःख होता है ॥४॥

त्रिगुण पाँच तत्त्व विस्तार । तीन लोक तेही के मँझार ॥५॥
अद्बुद कला वर्णि नहिं जाय । उपजै खपै तेहि माह समाय ॥६॥

शब्दार्थ — अद्बुद कला = अद्भुत कल्पना । खपै = लीन होना ।

भावार्थ — तीन गुण, पाँच तत्त्वों का विस्तार तथा तीनों (या सभी) लोक उसी ब्रह्म के मध्य में हैं ॥५॥ इस प्रकार ब्रह्म के विषय में ऐसी अद्भुत कल्पनायें हैं जिनका वर्णन करना असम्भव है, कहते हैं ब्रह्म से ही सब उत्पन्न होता है और उसी में सब लीन होता है ॥६॥

निज झाँईं जो जानी जाय । सोच मोह सन्देह नशाय ॥७॥
अनजानेकी यही रीति । नाना भाँति करै परतीति ॥८॥

शब्दार्थ — निज झाँईं = अपने मन का भ्रम या धोखा ।

भावार्थ — यदि मनुष्य को अपने मन का धोखा जानने में आ जाय, तो उसके शोक, मोह और संशय नष्ट हो जायँ ॥७॥ परन्तु जो अपने मनका अज्ञान नहीं जानता उसका यही व्यवहार रहता है कि वह नाना प्रकार की भ्रांतियों में विश्वास कर लेता है ॥८॥

सकलों जगत जाल अरुझान । विरला और कियो अनुमान ॥ ९ ॥
कर्ता ब्रह्म भजै दुख जाय । कोई आपै आप कहाय ॥१०॥

शब्दार्थ — आपै आप = ब्रह्म ।

भावार्थ — संसार के सभी लोग संसार के बन्धनों में बँधे हैं । कोई विरला होता है जो जगत जाल को छोड़कर किसी अन्य का अनुमान करता है ॥९॥ और वह जगत का कर्ता ब्रह्म मानकर उसके भजने से अपनी दुःख निवृत्ति मानता है; और कोई तो अपने आपको ही अखिल विश्व ब्रह्म कहता है ॥१०॥

पूरण संभव दूसर नाहिं । बंधन मोक्ष न एकौ आहिं ॥११॥
फल आश्रित स्वर्गहिके भोग । कर्म सुकर्म लहै संयोग ॥१२॥

शब्दार्थ — सम्भव = होना ।

भावार्थ — (वे मानते हैं) मैं ब्रह्म सर्वत्रपूर्ण हूँ, दूसरे का अस्तित्व होना असम्भव है । अद्वैत में न बंधन है और न मोक्ष ॥११॥ स्वर्ग के भोग कर्म फल के अधीन होते हैं और उनकर्मों से स्वर्गफलों का सम्बन्ध होता है जो सुकर्म हैं; परन्तु—

कर्महीन बाना भगवान । सूत कुसूत लियो पहिचान ॥१३॥
भाँतिन भाँतिन पहिरे चीर । युग युग नाचै दास कबीर ॥१४॥

शब्दार्थ — बाना = भेष; तात्पर्य में स्वरूप । सूत कुसूत = पुण्य पाप । चीर = कपड़ा, साड़ी; मान्यता; देह । दास कबीर = भूले जीव ।

भावार्थ — मुझ परब्रह्म का स्वरूप कर्मों से परे है । मैंने पुण्य पाप कर्मों को मिथ्या समझ लिया है ॥१३॥ इस प्रकार भूले जीव अनेक प्रकार की मान्यता व देह रूपी साड़ी पहनकर अनादिकाल से नाच रहे हैं ॥१४॥

१११–नाना भास का वर्णन

चौपाई–२२

भासेव जीवरूप जो एक । तेहि भासके रूप अनेक ॥१॥
कोई मगन रूप लौलीन । कोई अरूप ईश्वर मन दीन ॥२॥
कोई कहै कर्म रूप है सोय । शब्द निरूपण करै पुनि कोय ॥३॥

समयरूपी कोई भगवान । कर्ता न्यारा कोई अनुमान ॥४॥
कोई कहै ईश्वर ज्योतिहि जान । आत्माको कोई स्वतः बखान ॥५॥
कोई कहै सब पुनि सबते न्यार । आपै राम विश्व विस्तार ॥६॥
शब्दभाव कोई अनुमान । अद्वयरूप भई पहिचान ॥७॥
दुगदुग रहिके बोलै बात । बोलतहिं सब तत्त्व नशात ॥८॥
बोल अबोल लखै पुनि जोय । भास जीव नहिं परखै सोय ॥९॥

शब्दार्थ — रूप = साकार । अरूप = निराकार । दुगदुग = सन्देह । बोल अबोल = शब्द-शून्य; साकार-निराकार ।

भावार्थ — जीव को जो अपने से पृथक एक कल्पित कर्ता के रूप का भास खड़ा हुआ, उस भास के अनेक रूप हैं, अर्थात ईश्वर के विषय में विभिन्न कल्पनायें हैं ॥१॥ कोई तो सगुणसाकार में ध्यानमग्न है और कोई निर्गुणनिराकार में मन लगाता है ॥२॥ कोई कहता है कि वह कर्म रूप है और कोई उसे शब्द रूप बतलाता है ॥३॥ कोई मानता है कि समय ही ईश्वर है और कोई उसे सबसे पृथक सिद्ध करता है ॥४॥ कोई कहता है कि ईश्वर को ज्योतिस्वरूप ही समझना चाहिये, तो कोई कहता है कि आत्मा स्वतः है ॥५॥ कोई कहता है कि वही सबकुछ (जड़-चेतन) है और सबसे पृथक भी है, अंततः कहते हैं ब्रह्म स्वयं संसार के रूप में फैला है ॥६॥ कोई दश अनाहत नाद को ही ईश्वर मान रखा है, कोई कहता है कि मैं पहचान गया हूँ कि वह अद्वैत है ॥७॥ इस प्रकार लोग सन्देह में पड़कर ईश्वर सम्बंधी बातें करते हैं; अपने चेतनस्वरूप से पृथक किसी कल्पित लक्ष्य को लेकर बात करने से विवेक के सब तत्त्व नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ जो चेतन जीव शब्द-शून्य तथा साकार-निराकार की कल्पना करने वाला तथा द्रष्टा है वह बिना विवेक यह परीक्षा नहीं करता कि जो कुछ मुझसे भिन्न इन्द्रिय-मनःगोचर है सब मेरा भास-अध्यास है ॥९॥

साखी—निजध्यास झाँईं लहै, सो संधिक भौ भास ।
　　प्रथम अनुहारसो कल्पना, सदा करै परकाश ॥२६॥

शब्दार्थ — निजध्यास = अपने मनका अध्यास, वासना व भ्रम । अनुहार = अनुसार । संधिक = संधि, धोखा ।

भावार्थ — मनुष्य अपने मन के भ्रम एवं असावधानी में पड़ता है, जो धोखा और भास रूप है । वह पहले अनेक कल्पनाओं को सुनकर उसी के अनुसार आगे-आगे भी सदैव कल्पनाओं का विस्तार करता जाता है ॥२६॥

रमैनी-२३

लक्ष चौरासी योनी जेते । देह बुद्धि जानिये तेते ॥१॥
जहाँ जेहि भासा सोइ सोइ रूप । निश्चय किया परे भव कूप ॥२॥

शब्दार्थ — भवकूप = संसार कूवाँ ।

भावार्थ — चार खानियों के लक्ष्य एवं अध्यास वाले जितने जीव हैं उन सब की देहबुद्धि समझनी चाहिये ॥१॥ जिसको जहाँ पर जो कल्पना खड़ी हुई वह उसी को अपना स्वरूप समझ कर संसार के अज्ञान कूयें में पड़ा ॥२॥

नाना भाँति विषय रस लीन्ह । अरुझि अरुझि जिव मिथ्या दीन्ह ॥३॥
दावा विषय जरै सब लोय । बाँचा चहै गहै पुनि सोय ॥४॥

शब्दार्थ — दावा = दावाग्नि । लोय = लोग ।

भावार्थ — लोग देहाभिमानी बनकर अनेक प्रकार विषयों की आसक्ति में लीन रहते हैं । इस प्रकार जीव मिथ्या में फंस-फँस कर अपने को हार रहा है ॥३॥ सब अज्ञानी लोग विषय-वासना की दावाग्नि में जलते हैं; यद्यपि वे दुःखों से बचना चाहते हैं, परन्तु उसी दुःखप्रद विषय को पुनः-पुनः पकड़ते हैं ॥४॥

दृढ़ विश्वास भरोसा राम । कबहूँ तो वह आवै काम ॥५॥
विषय बेकार माँझ संग्राम । राम खटोला कियो आराम ॥६॥

शब्दार्थ — संग्राम = लड़ाई, तात्पर्य में विषयरति । खटोला = छोटी खाट; तात्पर्य में शय्या । आराम = विश्राम ।

भावार्थ — लोग ईश्वर का दृढ़ विश्वास तथा भरोसा रखते हैं और कहते हैं कि वह कभी तो हमारे ऊपर कृपा करके हमारा कल्याण करेगा ॥५॥ इधर तो विषय विकारों में रात दिन लीन रहना चाहते हैं और उधर ईश्वर के भरोसे कल्पनाशय्या पर विश्राम करना चाहते हैं ॥६॥

घायल बिना तीर तरवार । सोई अभरण जेहि रिझै भ्रतार ॥७॥
कामिनि पहिर पिया सो राँची । कहैं कबीर भव बूड़त बाँची ॥८॥

शब्दार्थ — अभरण = आभरण, गहना, आभूषण; प्रेमलक्षणा भक्ति । भ्रतार = पति, ईश्वर । राँची = आसक्त होना ।

भावार्थ — संसार के लोग बिना वाण और तलवार के ही अज्ञान से घायल हो गये हैं । लोग वही प्रेमलक्षणा भक्ति का शृंगार करते हैं जिससे पतिपरमात्मा प्रसन्न हो ॥७॥ इस प्रकार भक्त लोग प्रेमलक्षणा के आभूषण पहनकर तथाकथित पतिपरमात्मा में लवलीन होते हैं । इसमें वे लोग संसारसागर में डूबते हुए से अपना बचना मानते हैं ॥८॥

रमैनी–२४

भव बूड़त बेड़ा भगवान । चढ़ै धाय लागिलौ ज्ञान ॥१॥
थाह न पावै कहै अथाह । डोलत करत तराह तराह ॥२॥

सूझ परै नहिं वार न पार । कहै अपार रहै मँझधार ॥३॥
माँझधारमें कियो विवेक । कहाँका दूजा कहाँका एक ॥४॥
बेरा आपु आपु भवधार । आपुहि चहै उतरन पार ॥५॥
विनु जानै जाने है और । आपै राम रमै सब ठौर ॥६॥
वार पार नहिं जाने जोर । कहैं कबीर पार है ठौर ॥७॥

शब्दार्थ — बेड़ा = लट्ठों या तख्तों को बाँधकर उनपर बाँस का ठट्टर रखकर बनायी हुई नाव; नाव, जहाज । तराह तराह = त्राहि त्राहि, बचाओ; रक्षा करो ।

भावार्थ — संसारी लोग अपने आपको संसार के दुःखों में डूबते हुए देखकर एक ईश्वर रूपी जहाज स्थिर किये और दौड़कर उसी पर चढ़ लिये तथा उसी ज्ञान में अपने ध्यान को लगाये ॥१॥ वे उस ईश्वर की भी कुछ थाह नहीं पाते, इसलिये उसे अथाह कहकर इधर-उधर भटकते तथा बचाओ, रक्षा करो आदि कह कर प्रार्थना-पुकार करते हैं ॥२॥ उनको इधर-उधर का किनारा नहीं दिखता, अतएव संसार को भी अपार कहकर बीच धारा में पड़े डूबते हैं ॥३॥ फिर कितने लोग बीचधारा में ही ऐसा विवेक किये "कहाँ द्वैत है और कहाँ अद्वैत है ॥४॥ मैं ब्रह्म स्वयं जहाज हूँ, स्वयं संसार सागर हूँ और स्वयं भ्रमवश पार उतरना चाहता हूँ ॥५॥ वस्तुतः ब्रह्म-तत्त्व को न जानने से मैं संसार को कुछ अन्य (जड़) समझता था; परन्तु उसे जान लेने पर यह ज्ञान हो गया कि स्वयं ब्रह्म ही जड़-चेतन सभी रूपों में सब स्थलों में रम रहा है ॥६॥" इस प्रकार वे लोग भवबंधनों का अंत न पाकर भी उक्त मान्यता पर जोर देते हैं और वे इसी को मुक्तस्थिति मानते हैं ॥७॥

११२–अक्षर के हिताहित स्वरूप

रमैनी-२५

अक्षर खानी अक्षर बानी । अक्षरते अक्षर उतपानी ॥१॥
अक्षर कर्ता आदि प्रकाश । ताते अक्षर जगत विलास ॥२॥
अक्षर ब्रह्मा विष्णु महेश । अक्षर रज सत तम उपदेश ॥३॥
क्षिति जल पावक मरुत अकाश । ये सब अक्षरमा परकाश ॥४॥
दश अवतार सो अक्षर माया । अक्षर निर्गुण ब्रह्म निकाया ॥५॥
अक्षर काल संधि औ झाँईं । अक्षर दहिने अक्षर बाँईं । ६॥
अक्षर आगे करै पुकार । अटके नर नहिं उतरे पार ॥७॥
गुरु कृपा निज उदय विचार । जानिपरी तब गुरुमुख सार ॥८॥

शब्दार्थ — अक्षर = वर्ण, तात्पर्य में शब्द, वाणी । विलास = प्रकाश, उद्-घाटन । निकाया = निकाय, सम्पूर्ण । दहिने = दक्षिणमार्ग, शुद्धमार्ग । बाँईं = वाममार्ग, अशुद्ध मार्ग ।

भावार्थ — शब्दों में मोटी माया तथा झीनी माया का स्वरूप बताया जाता है, और बावन वर्णों से ही सभी शब्द उत्पन्न होते हैं ॥१॥ शब्दों में ही जगत के आदि कर्ता की कल्पना करके लिखा, कहा जाता है। इसलिये मालूम होता है कि सारे जगत का उद्घाटन शब्दों में ही होता है ॥२॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव की कथायें भी शब्दों में ही हैं, और रज, सत एवं तम गुण के एवं कर्म, उपासना, योग के उपदेश भी शब्दों में हैं ॥३॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन सबका विवेचन भी शब्दों में किया जाता है ॥४॥ माने गये दशों अवतार भी शब्दों की ही माया हैं; और अखिल विश्व निर्गुण ब्रह्म ही है यह मान्यता का दिग्दर्शन भी शब्दों में है ॥५॥ शब्दों में ही काल, संधि और झाँई का पसारा है; तथा शुद्धमार्ग और अशुद्धमार्ग के उपदेश भी शब्दों में हैं ॥६॥ आगे-आगे नयी-नयी कल्पनाओं के शब्दों का जोर-शोर से हो-हल्ला है, मनुष्य उन्हीं में फँस जाते हैं, वे उससे पार नहीं पाते ॥७॥ जब पारखी सद्गुरु मिलें और वे कृपाकर सारासार परखा दें और अपना भी विवेक उदित हो तब गुरुमुख एवं सार शब्दों से सत्य-असत्य के स्वरूप समझ में आते हैं ॥८॥

साखी--जहाँ ओसको लेश नहीं, बूड़े तहाँ जहान।
गुरुकृपा निज परख बल, तब ताको पहिचान ॥२७॥

शब्दार्थ — ओस = शीत, शबनम। जहान = संसार, संसार के लोग।

भावार्थ — जहाँ (जल कौन कहे) ओस का लेशमात्र भी न हो उस शब्द के समुद्र में संसार के लोग डूब गये हैं। जब पारखी सद्गुरु की कृपा तथा अपने परख बल का सहारा होता है तब उसकी वास्तविकता परख में आती है तथा उससे छुटकारा होता है ॥२७॥

रमैनी–२६

अक्षर काया अक्षर माया। अक्षर सतगुरु भेद बताया ॥१॥
अक्षर यंत्र मंत्र औ पूजा। अक्षर ध्यान धरावत दूजा ॥२॥
अक्षर पढ़ि पढ़ि जगत भुलाना। अक्षर बिनु नहिं पावै ज्ञाना ॥३॥
बिनु अक्षर नहिं पावैं गती। अक्षर बिनु नहिं कारज रती ॥४॥
अक्षर भये अनेक उपाय। अक्षर सुनि शून्य समाय ॥५॥
अक्षरते भव आवै जाय। अक्षर काल सबनको खाय ॥६॥
अक्षर सबका भाखै लेखा। अक्षर उतपति प्रलय विशेषा ॥७॥
अक्षरकी पावै सहिदानी। कहहिं कबीर तब छूटै प्रानी ॥८॥

शब्दार्थ — अक्षर = शब्द। रती = थोड़ा भी। भव = संसार। काल = कल्पना। लेखा = हिसाब, गणना, ज्योतिष, इतिहास। सहिदानी = निशान, परिचय-चिन्ह।

भावार्थ — शब्दों में ही काया और माया का स्वरूप बताया जाता है और

शब्दों में ही सद्गुरु सत्यासत्य का रहस्य बतलाते हैं ॥१॥ शब्दों में ही यंत्र-मंत्र और पूजा के विधान होते हैं; और शब्दों को सुनकर ही मनुष्य अपने स्वरूप से पृथक जड़-भास का ध्यान धारण करता है ॥२॥ शब्दों को पढ़-पढ़कर ही जगत के लोग भूले हैं; और शब्दों के बिना मनुष्य यथार्थ ज्ञान भी नहीं पाता ॥३॥ शब्दों के बिना मनुष्य को कल्याण नहीं मिल सकता। वस्तुतः शब्दों के आदान-प्रदान किये बिना थोड़ा भी काम नहीं बन सकता ॥४॥ शब्दों को सुनकर लोग अनेक उलटी-सीधी साधनायें करते हैं। शब्दों को सुन कर कितने लोग शून्य समाधि में लीन होते हैं ॥५॥ शब्दों के चक्कर में पड़कर जीव जन्म-मरण में आता-जाता रहता है। इस प्रकार अज्ञान वर्द्धक शब्द सबको पतित करता है ॥६॥ शब्दों में ही ज्योतिष, गणित, इतिहास, भौतिकशास्त्र तथा आध्यात्मिक शास्त्र होते हैं। शब्दों में ही जगत के कल्पित उत्पत्ति-प्रलय की विशेष महिमायें वर्णन की हैं ॥७॥ कबीर साहेब कहते हैं कि जब मनुष्य यह जान लेता है कि कौन शब्द साधक है और कौन बाधक तब वह बंधनदायी शब्दजालों से तथा भवबंधनों से छूट जाता है ॥८॥

साखी--परखावै गुरु कृपा करि, अक्षरकी सहिदानि।
निज बल उदय विचारते, तब होवै भ्रम हानि ॥२८॥

शब्दार्थ — सहिदानि = सहिदान, लक्षण।

भावार्थ — पारखी सद्गुरु कृपा करके काल, संधि; झाँई और सार शब्दों के लक्षणों को परखाते हैं। सद्गुरु का उपदेश पाकर जब मनुष्य में अपने विवेक से परख और त्याग की शक्ति का उदय होता है तब उसकी सारी भ्रान्तियों का नाश हो जाता है और वह कृतार्थ हो जाता है ॥२८॥

रमैनी-२७

बावनके बन बने तरंग। ताते भासत नाना अंग ॥१॥
उपजै औ पालन अनुसरे। बावन अक्षर आखिर करे ॥२॥
राम कृष्ण दोउ लहरि अपार। जेहि पद नर गहि उतरै पार ॥३॥
महादेव लोमश नहिं बाँचे। अक्षर त्रास सबै मुनि नाचे ॥४॥

शब्दार्थ — लोमश = एक ऋषि जिनको लोगों ने अमर मान रखा है।

भावार्थ — मनुष्य के मन में जितने तरंग उठते हैं बावन वर्णों से उन्हीं के शब्दारण्य बनते है। उसी शब्द-वन में भूलकर मनुष्यों के मन में अनेक कल्पनायें खड़ी होती हैं ॥१॥ शब्दों द्वारा ही सृष्टि के उत्पत्ति, पालन और प्रलय की बातें करके उसके अनुसार लोग उपदेश करते हैं ॥२॥ जिन श्रीराम और श्रीकृष्ण की शरण लेकर मनुष्य संसार सागर से पार पाना चाहता है उन दोनों की ईश्वरता अपार शब्द-समुद्र की तरंगे हैं ॥३॥ महादेव तथा लोमश ऋषि भी शब्दजाल से नहीं बचे। यहाँ तक सभी ऋषि-मुनि गण शब्दों के भय में शास्त्रप्रमाण की दोहाई देते हुए चक्कर काटते रहे ॥४॥

ब्रह्मा विष्णु नाचे अधिकाई । जाकी धर्म जगत सब गाई ॥५॥
नाचे गण गंधर्व मुनि देवा । नाचे सनकादिक बहु भेवा ॥६॥
अक्षर त्रास सबनको होई । साधक सिद्ध बचे नहिं कोई ॥७॥
अक्षर त्रास लखै नहिं कोई । आदि भूल बँधे सब लोई ॥८॥

शब्दार्थ — आदिभूल = अगुवा लोगों की भूल ।

भावार्थ — जिसकी महिमा संसार के अधिकांश लोग गाते हैं वे ब्रह्मा, तथा विष्णु जी शब्दों के जाल में अधिक चक्कर खाते रहे ॥५॥ गंधर्वगण, मुनि, देवता, सनकादि अनेक भेदों वाले शब्दों के चक्कर में पड़कर भटका खाये हैं ॥६॥ भ्रामक शब्दों द्वारा सबको पीड़ा होती है, इसमें बिना पारख साधक और सिद्ध कोई नहीं बचता ॥७॥ इस शब्दजाल के द्वारा प्राप्त होते हुए दुःखों को कोई परखता नहीं। अगुवा लोगों की भूलों में पड़कर सब लोग भूले हैं ॥८॥

अक्षर सागर अक्षर नाव । करणधार अक्षर समुदाव ॥९॥
अक्षर सबका भेद बखान । बिनु अक्षर नहिं अक्षर जान ॥१०॥
अक्षर आशते फंदा परे । अक्षर लखे ते फंदा टरे ॥११॥
गुरु शिष्य अक्षर लखे लखावै । चौरासी फंदा मुक्तावै ॥१२॥

शब्दार्थ — करणधार = कर्णधार, नाविक ।

भावार्थ — भ्रामक शब्द ही समुद्र हैं, उससे तरने के लिये निर्णय शब्दों का समूह ही नाव तथा नाविक है ॥९॥ सार शब्द सबका रहस्य बतलाता है बिना उसके काल, संधि तथा भाँईं के शब्दों की परख नहीं हो सकती ॥१०॥ भ्रामक शब्दों द्वारा दिये गये प्रलोभनों में पड़कर व्यक्ति बंधनों में पड़ता है और सार शब्दों का अध्ययन-मनन करने से उसके बंधन कट जाते हैं ॥११॥ गुरु और शिष्य भी परस्पर शब्दों की ही परख करते-कराते हैं और निर्णय शब्दों के अभ्यास से व्यक्ति चारों खानियों के अध्यासों से मुक्त हो जाता है ॥१२॥

बिनु गुरु अक्षर कौन छुड़ावै । अक्षर जाल से कौन बचावै ॥१३॥
संचित क्रिया उदय जब होय । मानुष देह पावै तब सोय ॥१४॥
गुरु पारख बल उदय विचार । परखि लेहु जग गुरुमुख सार ॥१५॥
हंस अस्ति प्रकाश अपार । गुरुमुख सुख निज अतिदातार ॥१६॥

शब्दार्थ — संचित क्रिया = पूर्वजन्मों के शुभ संचित । हंस = चेतन । अस्ति = सत्य ।

भावार्थ — बिना यथार्थ सद्गुरु के शब्दजाल से कौन छुड़ा कर उससे बचा सकता है ॥ १३ ॥ जीव विवेक सम्पन्न मनुष्य देह तब पाता है जब उसके पूर्व जन्मों के पुण्य संचित कर्म उदय होते हैं ॥ १४ ॥ इस उत्तम मानव शरीर में गुरु से परख

बल प्राप्त करके विवेक जाग्रत करो और संसार में गुरुमुख द्वारा सारवाणियों को परख लो ॥१५॥ अपना चेतन स्वरूप सत्य और अत्यंत ज्ञानस्वरूप है। यहगुरुमुख निर्णय स्वरूपस्थिति-जनित आत्यंतिक सुख को देने वाला है ॥१६॥

साखी—अक्षर है तिहुँ भर्मका, बिनु अक्षर नहिं जान।
गुरु कृपा निज बुद्धि बल, परखो धोखा ज्ञान ॥२९॥

शब्दार्थ — तिहुँ = तीनों—काल, संधि, झाँई।

भावार्थ — काल, संधि और झाँई के शब्द भ्रमपूर्ण हैं, बिना सारशब्द के इनकी परख नहीं हो सकती। अतएव हे जिज्ञासु! पारखी सद्गुरु के उपदेश रूप कृपा तथा अपने विवेक बल से छलावा से भरे हुए तथाकथित ज्ञान को परखो ॥ २९ ॥

जहँवाँ से प्रगटे सबै, सो हंस समुझत नाहिं।
यह अज्ञान है मानुषा, मन वच ब्रह्म कहाहिं ॥३०॥

शब्दार्थ — हंस = चेतन मनुष्य।

भावार्थ — जिस ब्रह्म से सम्पूर्ण विश्व की स्वाभाविक उत्पत्ति मानी जाती है, उसे भूल: मनुष्य बंधनप्रद नहीं समझता। यह मनुष्य का अज्ञान ही है कि वह मन, वाणी तथा कर्म से ब्रह्म कहलाने के लिये उतावला है ॥ ३० ॥

विशेष — जो ब्रह्म सृष्टि का स्वाभाविक कारण है वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता। अतएव ब्रह्म में मिलकर ब्रह्म बनने की बेतावो भोलापन का ही परिचायक है।

ब्रह्म विचारैं ब्रह्मको, पारख गुरु परसाद।
रहित रहै पद परखिके, जीवका होय उबार ॥३१॥

॥ श्री रामरहस साहेब कृत पंचग्रंथी गुरु की दया से संपूर्ण ॥

शब्दार्थ — परसाद = प्रसाद; कृपा; उपदेश। उबार = उद्धार, छुटकारा।

भावार्थ — ब्रह्मवादी भले ही ब्रह्म का विचार करके उसमें मिलना चाहे, परंतु निष्पक्ष मुमुक्षु को चाहिये कि वह पारखी सद्गुरु के सत्योपदेश रूपी कृपाप्रसाद से पारखस्वरूप का ही विवेक करे और तथाकथित ब्रह्म को भवबंधनों का मूल समझ कर उससे सर्वथा पृथक अपने पारख चेतन स्वरूप में स्थित होवे, जिससे जीव का बंधनों से छुटकारा हो ॥ ३१ ॥

विशेष — ब्रह्मवादियों के अनुसार ब्रह्म जगत का कारण है; परन्तु पारख जगत आदि समस्त भासों से सर्वथा पृथक है। इसलिये ब्रह्मादि बंधनप्रद तथा पारखपद मोक्षस्वरूप है। पारख कहते हैं ज्ञानको जो अपना चेतन स्वरूप है। समस्त इन्द्रिय मन:कृत भासों को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाना ही मोक्ष है।

श्री कबीर मंदिर बड़हरा की पुस्तकें

श्री कबीर साहेब रचित	
बीजक मूल गुटका	३·००
श्री रामसूरत साहेब रचित	
विवेक प्रकाश मूल	—
रहनि प्रबोधनी मूल	·६०
बोधसार मूल	·८०
श्री निर्बन्ध साहेब कृत	
भजन प्रवेशिका	१·००
अभिलाष दास कृत	
बीजक पारख प्रबोधिनी टीका	२४·००
पंचग्रन्थी टीका	—
कबीर परिचय टीका	५·००
गीतासार	६·७०
विवेक प्रकाश सटीक	१५·००
बीजक शिक्षा	१०·००
रहनि प्रबोधिनी सटीक	७·००
बोधसार सटीक सजिल्द	५·२०
बोधसार सटीक अजिल्द	४·००
कल्याणपथ सजिल्द	४·४०
कल्याणपथ अजिल्द	३·२०
ब्रह्मचर्य जीवन	४·००
सन्तसम्राट सद्गुरु कबीर	३·००
मानसमणि,	४·००
श्रीराम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक	·४०
जगन्मीमांसा	२ ६०
सरल शिक्षा	३·४०
तुलसी पंचामृत	२·४०
स्त्री-बाल-शिक्षा	२·४०
वैराग्य संजीवनी	३·००
गुरु पारखबोध सटीक	२·००
आप किधर जा रहे हैं ?	१·२०
कबीरपन्थी जीवनचर्या	१·२०
भजनावली	१·६०
अहिंसा शुद्धाहार	१·२०
हितोपदेश समाधान	·८०
सन्त महिमा बड़ी	१·२०
संत महिमा छोटी	—
आदेश प्रभा	·६०
मैं कौन हूँ ?	·६०
जीवन क्या है ?	·४०
कबीर कौन ?	·४०
सरल बोध	·४०
मोहभंग नाटक	·६०
संतवचनामृत (अज्ञातकृत)	·४०
डा० नीलमणि कृत	
पारखपद पुष्पांजलि	—
जीवन दास सजीवन दास कृत	
जीवनगीत	·२०

पुस्तक मिलने का पता—

१ बाबू बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर, राजादरवाजा, वाराणसी।

२ रामलाल गुप्त, मु० पो० बभनान, जि० बस्ती (उत्तर प्रदेश)

३ संत सेवक कमल सिंह, मु० दर्रा,

पो० पटेवा (नयापारा राजिम), जि० रायपुर, (म० प्र०)

[illegible]